ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(१)

मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन

(अनुवाक १–३)

लेखक

महाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्याय मण्डल, औंध (जि० सातारा)

संवत् २००२, सन १९४५

मूल्य १) रु.

वैदिक दर्शन

मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन

अध्ययन की पद्धति

वेदका अध्ययन करना वैदिक धर्मियोंके लिये अत्यंत आवश्यक है। वेदका अध्ययन दो रीतियोंसे होना सम्भव है और आवश्यक भी है।

(१) एक देवतानुसार मन्त्रोंका अध्ययन। और

(२) दूसरा ऋषिके अनुसार मन्त्रोंका अध्ययन।

देवताके मन्त्रोंका अध्ययन करनेकी सुविधा करनेके उद्देश्यसे "दैवत-संहिता" बनायी है और देवतानुसार मन्त्रोंके अनुवाद प्रकाशित किये जा रहे हैं। इस समयतक "मरुद्देवता"के मन्त्रोंका अनुवाद प्रकाशित हुआ है और "अश्विनौ" देवताके मन्त्रोंका अनुवाद छप रहा है। आगे अन्यान्य देवताओंके मन्त्रोंके अनुवाद इसीतरह प्रकाशित किये जायेंगे।

दैवत और आर्षेय मन्त्रसंग्रह

ऋषिके क्रमानुसार मन्त्रोंका संग्रह ऋग्वेदमें है। अतः ऋग्वेद संहिता 'आर्षेय संहिता' ही है। केवल नवम मण्डलमें सोमदेवताके मन्त्र ऋषिक्रममें संमिलित होना आवश्यक है।

यह पुस्तक 'आर्षेय संहिता' का प्रथम भाग है। इसमें मधुच्छन्दा ऋषिके मन्त्रोंका अनुवाद है। इसीतरह आगे अन्यान्य ऋषियोंके मन्त्रोंका अनुवाद प्रसिद्ध किया जायगा। इससे एक एक ऋषिके मन्त्रोंका भाव पाठक सहज हीसे समझ जायेंगे।

मन्त्रोंके द्रष्टा

ऋषि 'मन्त्रोंके द्रष्टा' होते हैं। इसलिये 'ऋषिका दर्शन' ऐसा इसका नाम रखा है। इस पुस्तकका नाम 'मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन' है। आगेका ग्रन्थ 'मेधातिथि ऋषिका दर्शन' इस नामसे प्रकाशित किया जायगा और इसी क्रमानुसार आगे ऋग्वेदका अनुवाद क्रमपूर्वक प्रकाशित होता रहेगा।

यथार्थ ज्ञान

'आर्षेय संहिता' और 'दैवत-संहिता' इन दोनों क्रमोंके अनुसार वेदका अध्ययन हुआ तो यथा रीतिसे वेदाध्ययन हुआ ऐसा समझना योग्य है। आशा है कि यह प्रयत्न वेदकी विद्या वैदिक धर्मियोंके अन्दर प्रसृत करनेके लिये सहायक होगा और वेदका ज्ञान फैलानेके लिये *इससे योग्य सहायता होगी।*

निवेदनकर्ता
श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल
औंध (जि० सातारा)

मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका सुबोध भाष्य)

(१) प्रथमोऽनुवाकः

अग्नि

(१।१-९) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । अग्निः । गायत्री ।

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥

अन्वयः- पुरोहितं यज्ञस्य देवं ऋत्विजं होतारं रत्नधातमं अग्निं ईळे ॥ १ ॥

अर्थ- मैं अग्रभागमें रखे, यज्ञके प्रकाशक, ऋतुके अनुकूल यजन करनेवाले, हवन करनेवाले अथवा देवताओंको बुलानेवाले, रत्नोंका धारण करनेवाले अग्निकी प्रशंसा करता हूं, ऐसे अग्निके गुण वर्णन करता हूं।

(अहं अग्निं ईळे) मैं अग्निकी स्तुति करता हूं। मैं अग्निके गुणोंका वर्णन करता हूं। अग्निदेव प्रकाश देता है, उष्णता देता है और गति करता है। जो प्रकाश बताकर उत्तम मार्ग बताता है, जो उष्णता देकर उत्साह बढाता है और जो सबकी प्रगति करता है, वह देव वर्णनका विषय होने योग्य है। मनुष्य भी अन्य जनोंको प्रकाश बताकर सन्मार्ग बताने, जनतामें उत्साह उत्पन्न करके बढावे और सबकी उत्तम प्रगति करे। जो ऐसा करता है, वही समाजमें अग्नि जैसा तेजस्वी धुरीण है।

-यही अग्रणी है। अग्निः कस्मात् अग्रणीर्भवति (निरुक्त) अग्नि अग्रणीही है, क्योंकि वह अग्रभागतक ले जाता है, अन्तिम सिद्धितक पहुंचाता है। बीचमें न छोडता हुआ आखीरतक ले चलता है, वही अग्रणी है, वही धुरीण है। ऐसे अग्रणीके पीछे पीछे जानेवाला समाज निःसन्देह उन्नति करता रहता है। जो ऐसा अग्रणी होगा उसीकी मैं प्रशंसा करता हूं। यही प्रशंसा करने योग्य है। अनुयायियोंको यही अंतिम यशको प्राप्त कराता है।

(अहं पुरोहितं अग्निं ईळे) मैं अग्रभागमें रहे अग्रणीके गुण गाता हूं। जो अग्रणी हमारे पास, हमारे समीप, हमारे सामने, हमारे निकट रहता है, हरएक कार्यमें अग्रभागमें रहता है, पहिलेसे ही जो हित करता है, कभी पीछे नहीं हटता, वही स्तुतिके योग्य है। जो स्वयं पीछे रहे और दूसरोंको संकटके स्थानोंपर भेज दे, स्वयं सुरक्षित स्थानमें रहे, वह प्रशंसाके योग्य नहीं है।

(यज्ञस्य देवं) यज्ञ वह कर्म है कि जिसमें देवपूजा-संगतिकरण-दान रूप त्रिविध शुभ कार्य होता है। श्रेष्ठोंका जहां सत्कार होता हो, सबका संगठन अथवा सबका संगतिकरण, सबका परस्पर मेलमिलाप जिससे हो और सुयोग्योंको जहां दान मिले, वह यज्ञरूप कर्म सबका कर्तव्य है। सज्जनोंका सत्कार, सबकी संघटना, दीनों और दुर्बलोंकी दानद्वारा जहां सहायता होती है वह यज्ञकर्म है। यह प्रशस्ततम कर्म है। यही श्रेष्ठ कर्म है। ऐसे प्रशस्त कर्मोंका प्रकाशक यह अग्रणी होता है। यह ऐसे ही कर्म करता और कराता है, इसीलिये वह प्रशंसाके योग्य होता है। जो ऐसे कर्म करेगा, वही प्रशंसा होने योग्य होगा।

(ऋत्विजं = ऋतु + यजं) ऋतुके अनुकूल जो यजन करता है, ऋतुके अनुसार जो कर्म करता रहता है। वसंत ग्रीष्म, वर्षा, शरत, हेमन्त और शिशिर ये छः वर्षके ऋतु हैं, इन ऋतुओंके अनुसार जो अपनी ऋतुचर्या करेगा, वह

नीरोग, सुदृढ और दीर्घायु होगा। आयुर्वेदमें ऋतुचर्या लिखी है, वह यहां देखनी योग्य है। मनुष्यके जीवनमें भी बाल्य, कौमार, तारुण्य, वार्धक्य, जीर्ण, क्षीण ऐसे अवस्था के ऋतु होते हैं। इनके अनुसार मनुष्यको अपनी दिनचर्या रखनी योग्य है। इससे नीरोगिता सिद्ध होगी। प्रतिदिन उष:काल, सूर्योदय, मध्याह्न, उत्तराह्न, सायंकाल, रात्रि ये ऋतु होते है। इनके अनुसार दैनंदिनका व्यवहार करना योग्य है। इस तरह ऋतुसंधियोंमें जो परिवर्तन होते हैं, उस कारण नाना रोग उत्पन्न होते हैं, उस समय योग्य हवन करनेसे रोगोंका शमन होता है। ऋतुके अनुसार विचारपूर्वक यजन, याजन, तथा अन्यान्य व्यवहार करनेसे मनुष्यका कल्याण होता है। ऋतुके अनुकूल दिनचर्या रखनेवाला पुरुष आदर्श पुरुष है, इसीलिये वह स्तुतिके लिये योग्य है।

(होतारं, ह्वातारं) हवन करनेवाला होता है, और देवताओंको आह्वान करनेवाला भी होता कहलाता है। यज्ञ-स्थानमें देवोंको, श्रेष्ठोंको बुलाना और उनका सत्कार करना उनके उद्देश्यसे धनादिका अर्पण करना चाहिये। समाजमें भी ज्ञानदेव ब्राह्मण हैं, बलदेव क्षत्रिय हैं, धनदेव वैश्य हैं, कर्मदेव शूद्र हैं, तथा वनदेव निषाद हैं। ये सब देव सत्कारसे तथा आदरसे यज्ञकर्ममें बुलाने योग्य हैं। अग्रणी इनको बुलाता और उनका सत्कार करता है। उत्सवोंमें, शुभ दिनोंमें, यज्ञके समय देवोंको बुलाकर उनका सत्कार करना, उनके साथ मित्रता करना और उनके लिये कुछ अपने धनका अंश अर्पण करना चाहिये।

(रत्न-धा-तमं) रत्नोंको अत्यंत बडे प्रमाणमें अपने पास धारण करनेवाला, अपने पास बहुत धन आदि पदार्थ धारण करनेवाला, जो अपने पास बहुत ही धन और धान्य रखता है, अपने पास रमणीय धनोंका धारण करनेवालोंको (रत्न-धा) कहते है, 'रत्न-धा-तर' और 'रत्न-धा-तम' ये पद उससे अधिक अत्यधिक रत्नोंके धारण करनेवालोंके वाचक हैं। यहां प्रश्न उत्पन्न होता है कि, यह जो अपने पास इतना प्रचण्ड धन धारण करके रखता है, वह अपने भोगके लिये या जनताके हितके लिये ? इसके उत्तरमें निवेदन है कि, यह अपने भोगके लिये नहीं; क्योंकि यह 'देव' है और जो देव होता है वह दाता होता ही है। देवो दानाद्वा द्योतनाद्वा (निरुक्त) देव दान देता है और दान देनेसे प्रकाशता भी है। अग्नि प्रकाशका दान करता है, धनदाता है, 'द्रविणो-दा' अर्थात् धनका दाता इसी अग्निका नाम है। इसलिये यह जो अपने पास इतना धन रखता है यह अनुयायियोंको दान करनेके लिये ही निःसंदेह है। अग्नि धन प्राप्त करता है और उसका दान भी करता है। यही उसका महत्त्व है। मानवोंको भी धन प्राप्त करके उसका दान करना उचित है।

जो अग्रभागमें रहता है, प्रथमसे सबका हित करता है, शुभ कर्मोंका प्रवर्तन करता है, ऋतुके अनुसार यजन करता है, देवोंको बुलाता है, अपने पास धनका संग्रह करके उसका जो दान करता है, उसीका वर्णन करना योग्य है।

अर्थात् जो पीछे रहता है, सत्कर्मोंका प्रवर्तन नहीं करता, ऋतुओंके अनुसार जो कर्म नहीं करता, जो देवजनोंको अपने पास नहीं बुलाता, जो धन प्राप्त नहीं करता अथवा प्राप्त करके अपने भोगके लिये ही जो धनका व्यय करता है वह प्रशंसाके योग्य नहीं है।

इस मन्त्रमें छः गुण वर्णनीय करके कहे हैं—

(१) अग्निः= जनताको प्रकाशका मार्ग बताना; अग्र-नीः= अन्त तक ले जाना, सिद्धितक पहुंचाना, अग्रणी या नेता होना; (२) पुरः-हितः = पहिलेसे हित करनेकी आयोजना करना, पूर्ण हित करना, अग्रभागमें अथवा सामने रहना; (३) यज्ञस्य देवः = यज्ञका प्रकाश करना, सत्कार-संगति दानात्मक शुभ कर्मको सतत करना; (४) ऋत्विक् = ऋतुके अनुसार यज्ञ करना, समयके अनुसार कर्म करना, समयमें करनेयोग्य कर्म करना; (५) होता= दाता, आदाता, हवनकर्ता, आह्वान करनेवाला; (६) रत्न-धा-तम = धनादि रत्नोंको धारण करना और उनका दान करना ये सद्गुण प्रशंसा योग्य हैं। ये गुण वर्णनके योग्य हैं।

इस मन्त्रमें 'पुरोहित, ऋत्विज्, होता' ये तीन ऋत्विजों अथवा याजकोंके नाम हैं। ये याजक समाजमें अग्निके ही रूप हैं। इन याजकोंके रूपोंमें समाजमें अग्नि कार्य करता है। वेदमें अग्निको वाग्रूप कहा है। 'अग्नि-र्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्।' (ऐ० उ० १।२) अग्नि वाणी

ोकर मुखमें प्रविष्ट हुआ है। अर्थात् वाणी अग्निका रूप है। यह वाणी ब्राह्मणोंमें रहती है, इसलिये ब्राह्मण अग्निके रूप हैं। उन ब्राह्मणोंमेंसे 'पुरोहित, ऋत्विज्, होता' ये तीन नाम इस मन्त्रमें कहे हैं। इसी सूक्तमें 'कवि' नाम अग्निके लिये आया है (मं. ५)। यह कवि भी वाणी का ही प्रभावी रूप है। इस मन्त्रका 'रत्न-धा-तम' पद भी धनवान्‌का वाचक है। धनवान् मानव भी अग्नि-रूप है। यह पद यहां यजमानका वाचक है। आगे यजमानको अनेक मंत्रोंमें धनवान् कहा है। यजमान धनधान्य संपन्न होनेसे ही वह उस धनसे तथा धान्यसे यज्ञ करता है। अतः 'रत्नधातम' पद धनी लोगोंका वाचक मानना योग्य है। इस तरह समाजमें कौन अग्नि हैं, इसका ज्ञान हो सकता है।

'रत्न-धा-तम' पद अग्निका भी वाचक है, क्योंकि भूमिगत अग्निकी उष्णतासे ही तो नाना प्रकारके रत्न हीरे, लाल, पन्ने आदि बनते हैं। भूमिगत उष्णता न होगी तो कोई रत्न नहीं बनेगा। इस तरह अग्निका रत्नोंकी उत्पत्तिके साथ सम्बन्ध है। इस मन्त्रके सब पद अग्निवाचक तो हैं ही। ये ऐसे होते हुए सामाजिक मानवरूप अग्निके भी वाचक हैं।

'तत् एव अग्निः' (वा० य० ३२।१) वह ब्रह्म ही अग्नि है। यह जो अग्नि जलता है वह ब्रह्मका प्रकट रूप है। 'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं०। (ऋ. १।१६४।४६) एक ही सत् है, उसका वर्णन ज्ञानी लोग अनेक प्रकारसे करते हैं, उसीको अग्नि, यम, इन्द्र आदि कहते हैं। इस तरह यह 'अग्नि' ब्रह्मका, आत्माका, परब्रह्मका, परमात्माका अथवा परमेश्वरका रूप है। 'अग्निं यस्य आस्यं' (अथर्व १०।७।३३) अग्नि परमेश्वरका मुख है। इस तरह अग्निको परमात्माका रूप कहा है। परमात्माका स्वरूप समझकर ही अग्निकी ओर देखना चाहिये।

यह परमात्माका स्वरूप अग्नि है, यह उपासकोंको अग्र-भागमें-अन्तिम मुक्तिरूप सिद्धितक ले जाता है, सामने रहकर पूर्ण हित करता है, हरएक यज्ञकी सिद्धि करता है, ऋतुओंके अनुसार सबकी योजना करता है, दान देता है, सब देवताओंको लाता है। सूर्यादि नाना रमणीय पदार्थों को अपने शरीरपर धारण करता है। यह परमात्मविषयक वर्णन इसी मन्त्रमें है। व्यक्तिके शरीरमें रहनेवाले जीव आत्माका भी यही वर्णन अंशरूपसे-थोडे संक्षेपमें हो जाता है।

> अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।
> स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥

अन्वयः- पूर्वेभिः ऋषिभिः उत नूतनैः ईड्यः अग्निः (अस्ति)। सः देवान् इह आ वक्षति ॥ २ ॥

अर्थ- प्राचीन ऋषियोंद्वारा तथा नवीन ऋषियों द्वारा स्तुति करने योग्य यह अग्निदेव है। वह अन्य देवोंको यहां ले आता है।

अग्निदेव तथा अग्रणी जिसके गुण पूर्व मन्त्रमें कहे गये हैं, वह प्राचीन तथा नवीन ज्ञानियों द्वारा प्रशंसाके योग्य है। सर्व कालोंमें उक्त गुणोंवाला प्रशंसित होता है, क्योंकि वह सब देवोंको अपने साथ लाता है और अपना निवास-स्थान देवतामय करता है। परमात्मा सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वायु, आदि देवताओंके साथ ही इस विश्वमें विराजता है। जीवात्मा इस देहमें देवतांश नेत्र, कर्ण, नासिका त्वचा, मुख, आदि अवयवोंके साथ रहता है, यह भी गर्भमें अपने साथ इन देवांशोंको लाता है और यथास्थान रखता है। इस शरीरमें यह जीव शतसांवत्सरिक यज्ञ करता है। देह इसका कार्यक्षेत्र है और ३३ देवताओंके अंश इसके साथ रहते हैं। राष्ट्रमें अग्नि जैसा तेजस्वी राजा अपने साथ नाना प्रकारके ओहदेदारोंको, विद्वानोंको, शूरोंको, धनियोंको और कर्मवीरोंको रखता है और इनके द्वारा राज्य-शासन चलाता है। ज्ञानी जन अनेक दिव्य गुणवालोंको अपने साथ लाता और यहांका संसार सुखमय करता है। इस तरह देवोंको साथ लानेका सर्वत्र बडा ही महत्त्व है। जो अपने साथ देवोंको लाता और रखता है, वही प्राचीनों और अर्वाचीनों द्वारा प्रशंसित होता है।

यहां प्राचीनों और अर्वाचीनोंद्वारा समानतया प्रशंसित होनेकी बात कही है। यह बडे महत्त्वकी है। कोई मनुष्य किसी एक समयमें प्रशंसित हो सकता है, परन्तु वह प्रशंसा सत्य नहीं है। जिसकी प्रशंसा प्राचीन और अर्वाचीन, पूर्वों और नवीनों द्वारा भी होती है, वही सच्ची प्रशंसा है और वही सच्चा प्रशंसित समझना चाहिये।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे ।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥

अन्वय – अग्निना रयिं, दिवे दिवे पोषं, वीरवत्तमं यशसं अश्नवत् ॥

अर्थ – अग्निसे धन, प्रतिदिन पोषण और वीरता युक्त यश प्राप्त होता है ।

परमात्मासे विश्वमें और जीवात्मासे व्यक्तिके शरीरमें शोभा, पुष्टि और यशकी प्राप्ति होती है, यह सर्वत्र ध्यानमें आसकता है । धन, रयि, ये पद धन्यता शोभा आदिके वाचक पद हैं । शरीरमें शोभा तो जीवके रहनेसे ही है, पोषण भी जीवके रहनेतक ही होता है और वीरता भी जीवके रहनेतक ही रहती तथा बढती है । शरीरमें आत्मा न रहा तो न शोभा, न पोषण और नाही वीरता ही होगी।

समाजमें पुरोहित और कवि राष्ट्रके आत्मरूप हैं । वे ही समाजमें तथा राष्ट्रमें नवचैतन्य निर्माण करते हैं । समाजमें धन, शोभा, पुष्टि और वीरतायुक्त यश बढानेवाले कविरूप अग्नि ही है । लेखक, कवि, वक्ता, उपदेशक पुरोहित ब्राह्मण ही समाज और राष्ट्रमें धन पोषण और वीरता युक्त यश बढाते रहते हैं ।

यहां 'वीरवत्तमं यशसं पोषं रयिं' ये पद महत्वपूर्ण हैं, धन पोषण और यश मानवोंको चाहिये, पर ये तीनों 'वीर-वत्-तमम्' वीरतासे अत्यंत परिपूर्ण चाहिये । जिसके साथ वीरता नहीं है, ऐसा धन भी नहीं चाहिये, कमजोरी उत्पन्न करनेवाला पोषण भी नहीं चाहिये, और निर्बलताको बढानेवाला यश भी नहीं चाहिये । वीरतारहित धन किस कामका है ? उस धनकी रक्षा कौन करेगा ? इस लिये धनके साथ वीरताका बल अवश्य चाहिये । शरीर बडा पुष्ट रहता है, पर वीरता नहीं है, ऐसा पोषण धनवान् सेठोंका होता है । यह किस कामका ? जिस पुष्टिसे वीरतायुक्त बल बढता है वही पुष्टि हमें चाहिये । यश भी बल और वीरताके साथ चाहिये । नहीं तो कई लोग बहुत ज्ञान प्राप्त करते हैं, पर शरीरसे मरियल, रोगी और निर्बल रहते हैं। ऐसी विद्या किस कामकी ? अतः धन, पुष्टि और यशके साथ वीरता भी अवश्य चाहिये । यहां तीनोंके साथ वीरता चाहिये यह भाव समझना उचित है । यहां 'वीर' का अर्थ 'सुपुत्र, सुसन्तान' मान कर अर्थ करना भी योग्य है । धन, पोषण और यशके साथ सुसन्तान भी चाहिये ।

नहीं तो मनुष्य धनवान तो रहता है, पुष्ट भी रहता है और विश्वमें यशस्वी भी होता है, परंतु सन्तान नहीं होते । ऐसा पुत्ररहित घर किस कामका है ? घरमें पुत्र पौत्र हों और वे सब धनी हृष्ट पुष्ट और यशस्वी भी हों।

पुत्रके लिये वेदमें 'वीर' पद आता है । इसका आशय यह है कि (वीरयति शत्रून्) जो शत्रुओंको दूर भगानेका सामर्थ्य रखता है, वह वीर कहलाता है । ऐसा वीर सन्तान हो । पुत्र पौत्र ऐसे होने चाहियें इसका यह स्पष्ट निर्देश है कि पुत्र शत्रुको परास्त करनेवाले वीर होने चाहिये ।

हम देखते हैं कि धनवान् स्वयं कमजोर निर्बल होते हैं, उनको प्रायः सन्तान भी नहीं होता । परंतु वेदने यहां कहा है कि धनके साथ बल, बलके साथ पुष्टि, और पुष्टिके साथ वीरपुत्रों और वीरपुत्रोंके साथ मिलनेवाला यश प्राप्त करना चाहिये ।

अपने पास क्या है इसकी परीक्षा मनुष्य करे और जहां दोष हो वहांका आवश्यक सुधार करे । इस मन्त्रने आदर्श मानव अग्निके वर्णनसे बताया है । प्रत्येक मनुष्य इस आदर्शसे अपना परीक्षा करे ।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि ।
स इद्देवेषु गच्छति । ४ ॥

अन्वय – हे अग्ने ! यं अध्वरं यज्ञं (त्वं) विश्वतः परिभूः असि, सः (यज्ञः) इत् देवेषु गच्छति ॥ ४ ॥

अर्थ – हे अग्ने ! जिस हिंसा रहित यज्ञको (तू) चारों ओरसे सफल बनानेवाला है, वह (यज्ञ) निःसन्देह देवोंके पास पहुंचता है ॥

यज्ञ वह कर्म है कि जिससे श्रेष्ठोंका सत्कार, जनताका संगठन और निर्बलोंकी सहायता होती है । यह कर्म ऐसा होना चाहिये कि जिसमें (अध्वर) कुटिलता, कपट, टेढापन, छल, हिंसा न हो । हिंसा या कुटिलता कायिक वाचिक और मानसिक सब प्रकारकी यहां समझनी चाहिये । यहां अग्निसे जो यज्ञ होता है उसका नाम 'अध्वर यज्ञ' है अर्थात् इसमें सत्कार संघटन दानरूप त्रिविध कर्म तो अवश्य ही होगा, परन्तु इसमें लेशमात्र हिंसा, कुटिलता,

छल या कपट नहीं होगा। यहां अध्वर पदसे यज्ञमें हिंसा या कुटिलताका सर्वथा निषेध किया है। यह वेदमें सर्वत्र स्मरण रखने योग्य महत्त्वकी बात है। अग्नि जो यज्ञ करता है वह (अध्वर) हिंसारहित होनेवाला कर्म है। कायिक वाचिक और मानसिक कुटिलता भी उसमें होनेकी संभावना नहीं है। किसीकी हिंसा अर्थात् प्राणवियोगकी संभावना भी यहां नहीं है। इसीलिये अग्नि ऐसे हिंसारहित कर्मों को चारों ओरसे सफल बनानेका यत्न करता है और निर्विघ्नतया परिपूर्ण करता है।

'परि-भूः' का अर्थ शत्रुका पराभव करना, विजय प्राप्त करना, शत्रुका नाश करना, शत्रुको घेरना, चारों ओरसे घेरना, साथ रहकर परिपूर्ण करना, सम्भालना, ग्यालसे सुरक्षित रखना, चलाना, अपने स्वामित्वसे जारी रखना, ठीक मार्गसे चलाकर योग्य रीतिसे समाप्त करना है।

अग्रणी शत्रुका पराभव करके निर्विघ्नता पूर्वक यज्ञकर्म सफल और सुफल करता है। यह भाव यहां 'परि-भूः' पदमें है।

जो यज्ञकर्म देवोंतक जाकर पहुंचता है, देवता जिसका स्वीकार करते हैं वह यज्ञकर्म हिंसा कुटिलता तथा छल कपटसे रहित ही होना चाहिये। यह इस मन्त्रका आशय है। अग्रणी अपने अनुयायियोंसे ऐसेही हिंसारहित और कुटिलता रहित कर्म करावे। येही कर्म दिव्य विबुधोंको प्रिय होते हैं। पुरोहित, ऋत्विज् और होता यजमानसे ऐसे ही हिंसारहित कर्म करावें और जहां ऐसे हिंसारहित कर्म होते हैं वहां उन कर्मोंकी सहायता भी करें।

> अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ।
> देवो देवेभिरा गमत् ॥ ५ ॥

अन्वय- होता कविक्रतुः सत्यः चित्रश्रवस्तमः देवः अग्निः देवेभिः आ गमत् ॥ ५ ॥

अर्थ- हवन करनेवाला अथवा देवोंको बुलानेवाला, कवियों या ज्ञानियोंकी कर्मशक्तिका प्रेरक, सत्य अवि नाशी, अत्यंत विलक्षण यशसे युक्त, यह दिव्य अग्निदेव अनेक देवोंके साथ आता है।

'कवि-क्रतु' पद ज्ञान और कर्म शक्तिका बोधक है। 'कवि' पद ज्ञानीका वाचक और 'क्रतु' पद कर्मशक्तिका वाचक है। ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाला, ज्ञानका उपयोग कर्ममें करनेवाला यह भाव यहां प्रतीत होता है। मनुष्यको प्रथम ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और उस ज्ञानका उपयोग करके सुयोग्य कर्म करना चाहिये। ज्ञानपूर्वक किये कर्मसे ही मनुष्यकी उन्नति होती है।

मनुष्य (होता) दाता, हवनकर्ता तथा यज्ञकर्ता बने, और (कवि-क्रतु) ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाला बने, कवि बने, ज्ञानी बने और सुयोग्य कर्म भी करे। मनुष्यकी पूर्णता होनेके लिये ज्ञान, कर्मप्रावीण्य और दातृत्व इन गुणोंकी आवश्यकता है।

'चित्र-श्रवस्-तमः' यह भी गुण उत्तम है। 'श्रवस्' का अर्थ 'यश, प्रशंसनीय कर्म, धन' है। प्रशंसनीय कर्मसे यश और धन मिलता है। अत्यंत विलक्षण, आश्चर्यकारक, प्रशंसनीय कर्म करनेवाला, यश प्राप्त करनेवाला और धन प्राप्त करनेवाला। 'श्रवस्' का अर्थ श्रवण करना भी है। 'बहु-श्रुत' जैसा अर्थ इस पदमें है। जो अग्रणी अनुयायियोंकी सब बातें ध्यानपूर्वक सुनता है वह 'चित्रश्रवस्तम' है। जो श्रेष्ठ पुरुष होते हैं, वे सब की बातें सुनते हैं और विचारपूर्वक जो करना योग्य है, वही क्रिया करते हैं।

हवन करनेवाला, ज्ञान प्राप्त करके योग्य कर्म करनेवाला, सत्यनिष्ठ, अत्यंत ध्यानपूर्वक श्रवण करनेवाला दिव्य तेजस्वी देव अपने साथ अन्य दिव्य विबुधोंको ले आता है। ज्ञानी के साथ अन्य ज्ञानी सदा रहते हैं।

'देवो देवेभिः आगमत्' अनेक देवोंके साथ एक देवका आना यहां लिखा है। एक देव शरीरमें आत्मदेव ही है। यही जीवात्मा है। यह अपने साथ ३३ देवताओंको ले आता है और उनको शरीरमें यथास्थान रखता है तथा स्वयं उनका अधिष्ठाता होकर रहता है। आंखमें सूर्य, कानमें दिशाएं, नाकमें वायु तथा अश्विदेव, मुखमें अग्नि, त्वचामें वायु, पेटमें अग्नि (जाठर), बालोंमें औषधिवनस्पति, जिह्वापर जल इस तरह सब ३३ देवताओंके अंशदेव इस देहमें यथास्थान रहे हैं और इन सबका अधिष्ठाता आत्मा हृदयमें रहा है। अनेक देवोंके साथ एक देवका आना इस तरह शरीरमें होता है। मृत्युके समय यह जीव आत्मा इन देवोंके साथ चला जाता है और पुन

शरीरमें, गर्भमें, आनेके समय पुनः उन ३३ देवोंके साथ आता है। यह है देवका देवोंके साथ आना।

विश्वमें परमात्मा महान् तैंतीस देवोंके साथ विश्वरूपमें ही विराजमान है। इनके ही ३३ अंश जीवके साथ आते हैं। इस तरह देवोंका देवके साथ आना होता है।

इसीका स्वरूप यज्ञमें बताया जाता है। जैसा भूप्रदेशोंका नकशा कागजपर खींचा जाता है, वैसा ही विश्वभरमें जो है और देहमें जो बनता है, उसका चित्र यज्ञभूमिमें बताया जाता है। यहां मुख्य अग्निदेव रहता है और बाकीके ३३ देव यथास्थान सत्कारपूर्वक रहते हैं, पूजे जाते हैं। देवोंका देवके साथ आना इस तरह हरएक मनुष्य देख सकता है और इसका अनुभव भी कर सकता है।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥

अन्वयः— हे अङ्ग अग्ने ! दाशुषे त्वं यत् भद्रं करिष्यसि, हे अङ्गिरः, तत् (कर्म) तव इत् सत्यम् ॥ ६ ॥

अर्थ— हे प्रिय अग्ने ! दान करनेवालेके लिये तू जो कल्याण करता है, हे अङ्गिरः अग्ने वह (कर्म) निःसन्देह तेरा ही सत्य कर्म है।

यहां अग्निके दो विशेषण आये हैं। अङ्ग और आङ्गिरः। ' अङ्ग ' का अर्थ – तत्काल, पुनः, दूर्वप्रिय अर्थवाला संबोधन अर्थात् किसीको पुकारनेके लिये प्रयुक्त होनेवाला पद। हे प्रिय ! हे अङ्ग ! अर्थात् हे अपने अंगके समान निज ! अपने शरीरका भाग। अपने शरीरका भाग ही अत्यंत प्रिय होता है। ' अङ्गिरः, अङ्गिरस्, अङ्गिय-रस ' अंगों अवयवों और इंद्रियोंमें जो जीवनरस होता है, वही अंगिरस् कहलाता है। आंगिरसोंने इस अंगरस-विद्याकी खोज की थी, इसलिये इस जीवनरसको यह नाम मिला है। शरीरमें जो जीवनरस है उस संबंधकी विद्या अंगरस विद्या है। जो अग्नि अंगप्रत्यङ्गोंमें जीवनरस बनकर रहा है वह अंगिरस अग्नि है। इसीसे अंगसौष्ठव सुस्थिर रहता है।

जो अन्न जितना आग्नेय गुण शरीरमें बढाता है, वह अन्न उतना अंगीय रस शरीरमें उत्पन्न करता है। अग्नि प्रदीप्त करके उसमें आहुतियाँ देनेका अर्थ प्रदीप्त जाठर अग्निमें अन्नकी आहुतियोंका प्रदान करना ही है।

' यह अग्नि दाताका कल्याण करता है और यही इसका सत्य कर्म है ' ऐसा यहां कहा है। इसका अनुभव देखिये- प्रदीप्त जाठराग्निमें जो उत्तम अन्नकी आहुतियाँ देता है उसका कल्याण यही जाठर अग्नि करता है। उस अन्नका उत्तम पचन होता है और उसका अङ्गीय रस बनता है। उत्तम अंगरस बनना ही मनुष्यका सच्चा कल्याण है। इसी अंगरससे मनुष्यका शरीर सुंदर, बलवान्, वीर्यवान्, तेजस्वी दीर्घजीवी, उत्साही, कार्यक्षम, और ओजस्वी बनता है। इस लिये इस अंगीय-रसका महत्व मानव जीवनमें अत्यंत अधिक है।

अखिल मानव समाजके हितके लिये अपने भीतर विद्यमान ज्ञान बल और धन तथा कर्म शक्तिका प्रदान करनेवालोंका कल्याण होता है। राष्ट्रमें यही यज्ञसे सिद्ध होनेवाला महान् कार्य है। यह यज्ञकर्म अग्निसे ही सिद्ध होता है। बस, यही अग्निका महत्व है।

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि ॥ ७ ॥

अन्वयः- हे अग्ने ! दिवे दिवे दोषा वस्तः वयं धिया नमः भरन्तः त्वा उप आ इमसि ॥ ७ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! प्रतिदिन, रात्रीमें और दिनमें हम सब अपनी बुद्धिसे, मनः पूर्वक, नमस्कार करते हुए तेरे समीप पहुँचते हैं, अथवा अन्न लेकर तुझे अर्पण करनेके लिये तेरे समीप आते हैं।

' दोषा ' रात्रीका नाम है, क्योंकि रात्रीमें ही अनेक दोष, अनेक अपराध होते हैं, अन्धकार रहनेके कारण चोरादिकोंका बडा उपद्रव होता है। ' वस्तः ' दिनका नाम है, क्योंकि यह मनुष्योंके लिये बसने योग्य समय है। रात्रीमें एक वार और दिनमें एक वार ऐसे प्रतिदिन दो वार मनुष्य अन्न लेकर अग्निके पास जाते हैं और नमनपूर्वक उस अग्निमें अन्नकी आहुतियां समर्पण करते हैं। (धिया नमः भरन्तः) बुद्धिपूर्वक नमन करते हुए, जानबूझकर ज्ञानपूर्वक प्रणिपात करके सब हम मिलकर अग्निके पास पहुँचते हैं और उसकी उपासना करते हैं। यहां दोवार उपासना कही है।

जाठर अग्निमें भी दिनमें दो वार अन्नकी आहुतियाँ देना योग्य है। प्रतिदिन दो वार भोजनका सेवन करना योग्य है। अधिकवार खाना योग्य नहीं है।

इस सूक्तके प्रथम मन्त्रमें 'ईडे' पदका कर्ता 'अहं' यह एक वचनमें है। मैं अग्निकी प्रशंसा करता हूं। मैं अकेला ही अग्निके गुणोंका वर्णन करता हूँ। यहां व्यक्तिका प्रयत्न है। पर इस मन्त्रमें 'वयं त्वा उप एमसि' हम सब मिलकर अग्निके पास उसकी उपासना करनेके लिये उपस्थित होते हैं, ऐसा सामूहिक रूपमें उपासना करनेका आशय व्यक्त किया है। इसके आगेके नवम मन्त्रमें भी 'नः' पद है, हम सबका (नः स्वस्ति) कल्याण हो ऐसा वहां कहा है। यह सामुदायिक उपासनाकी सूचना है।

व्यक्ति-व्यक्तिको ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और समाजमें संगठित होकर बडे समुदायमें इकट्ठे होकर उपासना करना चाहिये। यह उपासना बुद्धिपूर्वक और नमस्कारपूर्वक होनी चाहिये। अर्थात् (धिया) बुद्धिके द्वारा अर्थज्ञानपूर्वक मन्त्र बोले जायँ और शरीरसे (नमः भरन्तः) नमन करते हुए (त्वा उपेमसि) देवताकी उपासना करें ऐसी यह विधि यहां लिखी है।

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्।
वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८ ॥

अन्वयः- अ-ध्वराणां राजन्तं, ऋतस्य गोपां, दीदिविं, स्वे दमे वर्धमानं (त्वा उपेमसि) ॥ ८ ॥

अर्थ- हिंसा-रहित यज्ञोंका प्रकाशक, सत्यका रक्षक, स्वयं प्रकाशमान, अपने स्थानमें बढनेवाले (तुझ अग्निके पास हम सब आते हैं।)

यह देव ऐसा है कि जो हिंसारहित, कुटिलतारहित शुभ कर्मोंका ही अधिपति होता है। ऋत नामक जो अटल सत्य नियम हैं उनका संरक्षण यह करता है। यह स्वयं प्रकाशमान है, सदा प्रकाशता रहता है। तथा अपने यज्ञस्थानमें रहकर, प्रदीप्त होता हुआ बढता रहता है। ऐसे देवकी हम सब उपासना करते हैं। इस उपासनासे हमारे अन्दर ये गुण रहेंगे और बढेंगे। इस उपासनाका फल यह है-

मनुष्य हिंसारहित, छल कपटरहित, कुटिलतारहित कर्म करता जाय, स्वभावसे ही यह ऐसे कर्म करे, सत्यका पालन और संरक्षण करे, प्रकाशित होवे, तेजस्वी बने, अपने स्थानमें, घरमें और देशमें बढता रहे।

यह पूर्वोक्त उपासनाका फल है।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ९ ॥

अन्वयः— हे अग्ने ! सः (त्वं), सूनवे पिता इव, नः सूपायनः भव, नः स्वस्तये सचस्व ॥ ९ ॥

अर्थ- हे अग्नि देव ! वह (तू), पुत्रको पिता जैसा, हम सबको सुगमतासे प्राप्त होनेवाला हो, और हम सबके कल्याणके लिये सहायक बन।

(सूनवे पिता सूपायनः भवति) पुत्रको पिता सहजहीसे प्राप्त होता है, वैसा प्रभु मानवोंको सुप्राप्य है। पिता जैसा पुत्रका (स्वस्तये सचति) कल्याण करनेके लिये मार्गदर्शक बनता है वैसा प्रभु मानवोंके लिये सहायक बनता है। यहां पिता-पुत्र जैसा संबंध प्रभु और भक्तका बताया है। और पुत्रका कल्याण करनेके लिये जैसे पिताको मार्गदर्शन करना चाहिये, वैसाही वह करता है ऐसा यहां सूचित किया है।

यहां पिताका कर्तव्य बताया है। पिता अपने पुत्रको अपने पास करे, उसपर प्रेम करे और उसका कल्याण करनेके लिये जो जो करनी योग्य हो वह सब करता जाय। राजाकाभी यही कर्तव्य है कि वह प्रजाओंके आदरको प्राप्त हो। प्रजाजनोंका पुत्रवत् पालन पोषण करे, उनसे मिलता जुलता रहे तथा उनका कल्याण करनेके लिये बडा यत्न करे। प्रजाका कल्याण करना ही एकमात्र कर्तव्य राजाका हो।

प्रजा निडर होकर राजासे मिले, अपने सुखदुःख उससे कहे और वह सब सुने और जो योग्य कर्तव्य हो वह करे।

सब मनुष्य अग्निकी उपासना करें और उससे कल्याण प्राप्त करें। अग्निमें हवन करनेसे जो अनेक लाभ होते हैं उन सबको वे प्राप्त करें।

वायु

(२।१-३) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। १-३ वायुः। गायत्री।

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः।
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ १ ॥
वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः।
सुतसोमा अहर्विदः ॥ २ ॥
वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे।
उरूची सोमपीतये ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे दर्शत वायो! आ याहि, इमे सोमाः अरंकृताः, तेषां पाहि, हवं श्रुधि ॥ १ ॥ हे वायो! सुतसोमाः अहर्विदः जरितारः उक्थेभिः त्वां अच्छ जरन्ते ॥ २ ॥ हे वायो! तव प्रपृञ्चती उरूची धेना सोमपीतये दाशुषे जिगाति ॥ ३ ॥

अर्थ- हे सुन्दर दर्शनीय वायो! यहां आओ, ये सोमरस अलंकृत करके तुम्हारे लिये यहां रखे हैं, उनका पान करो, और हमारी प्रार्थना सुनो ॥ १ ॥ हे वायो! सोमरस निकालनेवाले, दिनका महत्त्व जाननेवाले, स्तोता लोग स्तोत्रोंसे तुम्हारे महत्त्वका अच्छी तरह वर्णन करते हैं ॥ २ ॥ हे वायो! तुम्हारी हृदयस्पर्शी विस्तृत वाणी सोमरसपानके लिये दाताके पास पहुंचती है ॥ ३ ॥

यहां वायुको परब्रह्मका रूप समझकर वर्णन है। 'तद् वायुः' (वा० य० ३२।१) यह ब्रह्म वायुरूपसे यहां है। यह वायु 'दर्शत' (दर्शनीय, सुन्दर) कैसा माना जा सकता है, यह विचारणीय विषय है। वायुका रूप शरीरमें 'प्राण' है वह भी दीखता नहीं, वायु भी अदृश्य है। जो अदृश्य है वह सुन्दर कैसे हो सकेगा? विचार करनेपर इस बातका पता लगता है कि वायुका रूप प्राण है और यह प्राण जहां तक शरीरमें रहता है तबतक ही वहां सौंदर्य रहता है। प्राणके चले जानेपर वहां सौंदर्य नहीं रहता, इस लिये सौंदर्य प्राणका रूप है और वही विश्व-प्राण-वायुका सौंदर्य है, ऐसा मानना स्वाभाविक है और इस दृष्टिसे प्राणरूप यह वायु सुन्दर माना जाना स्वाभाविक है।

सोमरस अलंकृत करके रखे हैं अर्थात् रस छान कर, उनमें दूध मिलाकर तैयार करके रखे हैं, सुन्दर बनाये हैं। सोमरसको एक बर्तनसे दूसरे बर्तनमें इसलिये उण्डेला जाता है कि उसमें वायु मिले। यही वायुका सोमरस सेवन होगा। वायुका शब्द इस सोमरसस्पर्शके लिये, सोमरसमें मिलानेके लिये सब सोमरस निकालनेवाले सुनते हैं और वे उसकी प्रशंसा करते हैं।

इन्द्रवायू

(२।४-६) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। ४-६ इन्द्रवायू। गायत्री।

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम्।
इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ४ ॥

वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू।
तावा यातमुप द्रवत् ॥ ५ ॥

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्।
मक्ष्वि१त्था धिया नरा ॥ ६ ॥

अन्वयः— हे इन्द्र-वायू! इमे सुताः, प्रयोभिः उप आ गतम्। इन्दवः हि वां उशन्ति ॥ ४ ॥ हे वायो! इन्द्रः च, (युवां) वाजिनीवसू सुतानां चेतथः, तौ (युवां) द्रवत् उप आ यातम् ॥ ५ ॥ हे वायो इन्द्रः च, हे नरा! इत्था धिया मक्षु सुन्वतः निष्कृतं उप आ यातम्। ॥ ६ ॥

अर्थ- हे इन्द्र और वायु! ये सोमके रस यहां रखे हैं, प्रयत्नके साथ यहां आइये, क्योंकि ये सोमरस आपको ही चाहते हैं ॥ ४ ॥ हे वायो और हे इन्द्र! (तुम दोनों) अन्नके साथ रहनेवाले सोमरसों (की विशेषता) को जानते हो, वे (तुम दोनों) शीघ्र ही यहां आओ ॥ ५ ॥ हे वायो और हे इन्द्र! हे नेता लोगो! इस तरह बुद्धिकौशल्यसे तत्पर रस निकालनेवालेने तैयार किये सोमरसके समीप आइये ॥ ६ ॥

यह सूक्त इन्द्र और वायुका मिलकर है। इन्द्र नाम विद्युत्का है और वायु यही वायु है। वृष्टिकालमें विद्युत् और वायु वृष्टिके पूर्व अपना कार्य दिखाते हैं। विद्युत् मेघोंमें कडकती हुई धडाकेके साथ चमकती है और वायु मेघोंको इधर उधर ले जाता है। इस समयके ये दो-इन्द्र और वायु-नेता हैं, धुरीण हैं, प्रमुख हैं, मुख्यकार्यका प्रबन्ध करनेवाले हैं। इसीलिये इनको (नरौ) नेता कहा है।

ये 'वाजिनी-वसू' अर्थात् अन्नसे युक्त हैं। ये अन्न के उत्पादनकर्ता हैं। अन्नको बसानेवाले हैं। मेघस्थानमें रहनेवाला विद्युदग्नि और वायु ये दोनों नाना प्रकारके अन्न उत्पन्न करते हैं। इसीलिये कहा है कि (प्रयोभिः आगतं) नाना प्रकारके अन्नोंके साथ आओ। जब ये दोनों देव आकाशमें संचार करने लगते हैं, तब वृष्टि होती है और वृष्टिसे अन्न उत्पन्न होता है, इस तरह ये दो देव अन्नके साथ आते हैं।

इन्द्र राजाका नाम है। नरेन्द्र राजाको कहते हैं। वायु मरुतोंका अर्थात् इन्द्रके वीर सैनिकोंका नाम है। इस तरह यह सूक्त 'नरेन्द्र और वीर सैनिकोंका' है। हे राजन् और हे सेनापते! आपके लिये ये सोमरस यहां तैयार करके

रखे हैं, प्रयत्नपूर्वक यहां आइये, क्योंकि ये रस आपके लिये ही रखे हैं। हे वीर और हे राजन्! तुम दोनों अन्नोंके साथ प्रजाका निवास करनेवाले हो और रसोंका स्वाद तुम दोनों जानते हो, इसलिये यहां शीघ्र आओ। हे वीर और हे राजन्! यह सोमरस बुद्धिकी कुशलतासे तैयार करके आपके लिये ही रखा है इसलिये तुम दोनों यहां आओ और इसका स्वीकार करो।'

यह सूक्त राजा और सेनापतिके सन्मानके लिये है ऐसा अधिभूत अर्थमें कहा जा सकता है। अतः इससे इनके निम्न लिखित कर्तव्य प्रगट होते हैं-

(इन्द्रः - इन् + द्रः) शत्रुका नाश करनेवाला, राजा राष्ट्रके शत्रुका नाश करनेका उत्तम प्रबंध करे। (वायु- वा गतिगन्धनयोः) शत्रुपर गतिसे हमला करना और शत्रु का नाश करना। वीर शत्रुपर हमला करे और उसका नाश करे। (प्रयोभिः आगतं) प्रयत्न, अन्न और यत्नके साथ ये दोनों आवें। प्रयत्न करके राष्ट्रमें अन्न उत्पन्न करें और अन्नके प्रदानसे यज्ञ करें। राष्ट्रमें पर्याप्त अन्न उत्पन्न करना और सबको अन्न प्राप्त करा देनेका यत्न करना ये इनके कर्तव्य हैं। वीर सबकी सुरक्षा करें और राजा प्रजाद्वारा योग्य प्रबंध करें, इस तरह दोनों राष्ट्रमें अन्नोंकी पर्याप्त प्रमाणमें उत्पत्ति करावें। राष्ट्रमें भरपूर अन्न उत्पन्न हो। (वाजिनीवसू) अन्नके साथ जनताको बसानेहारे, बल- वर्धक अन्नोंके साथ प्रजाको रखनेवाले, सेनाके साथ प्रजाकी सुरक्षिततासे बस्ती बढाने या अन्नके द्वारा सबको सुस्थिर रखनेवाले। 'वाजिनी' के अर्थ बल, बलवर्धक अन्न, सेना ये हैं। इनसे प्रजाको बसानेवाले राजा और सेनापति हों। ये (न-री) अपने भोगोंमें ही न रमनेवाले हों और (नरौ) जनताके नेता हों, जनताको आगे उन्नतिकी ओर बढानेवाले हों।

इन कर्तव्योंको निभानेवाले राजा और सेनापतिका सम्मान सब प्रजाजन करें और प्रजाकी सहायता और सुरक्षा वे करें। यहां सोमरस ही अन्न कहा है, इसमें दूध, दही, शहद, सत्तूका आटा मिलाकर यह रस पिया जाता है। इस विषयका वर्णन आगे आनेवाला है।

इन्द्र-वायु, विद्युत् और वायु-से वृष्टि होती है, और वृष्टिसे अन्न होता है। 'पर्जन्यात् अन्न-संभवः।' (गीता ३।१४।) यह अन्न शाकाहारका ही खाद्य है। यह अन्न धान्य, सोमरस आदि ही है।

मित्रावरुणौ

(२।७-९) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। ७-९ मित्रावरुणौ। गायत्री।

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।
धियं घृताचीं साधन्ता ॥ ७ ॥
ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा।
क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ ८ ॥
कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया।
दक्षं दधाते अपसम् ॥ ९ ॥

अन्वयः- पूतदक्षं मित्रं, रिशादसं वरुणं च हुवे, घृताचीं धियं साधन्ता ॥ ७ ॥ मित्रावरुणौ ऋतावृधौ ऋतस्पृशा, ऋतेन बृहन्तं क्रतुं आशाथे ॥ ८ ॥ कवी तुविजाता उरुक्षया मित्रावरुणा अपसं दक्षं नः दधाते ॥ ९ ॥

अर्थ- पवित्र बलसे युक्त मित्रको, और शत्रुका नाश करनेवाले वरुणको मैं बुलाता हूँ, ये स्नेहमयी बुद्धि तथा कर्मको संपन्न करते हैं ॥ ७ ॥ ये मित्र और वरुण सत्यसे बढनेवाले तथा सत्यसे सदा युक्त हैं, वे सत्यसे ही बडे यज्ञ को संपन्न करते हैं ॥ ८ ॥ ये ज्ञानी, बलशाली और सर्वत्र उपस्थित रहनेवाले मित्र और वरुण कर्म करनेका उत्साह देनेवाला बल हमें देते हैं ॥ ९ ॥

'मित्रावरुणौ' ये दो राजा हैं, सम्राट् हैं, ऐसा निम्न लिखित मन्त्रमें कहा है- 'राजानौ अनभिद्रुहा .. सदसि... आसाते ॥ ५ ॥ ता सम्राजा .. सचेत अनवह्वरम् ॥ ६ ॥ (ऋ. २।४१) ये दो राजा परस्पर द्रोह नहीं करते, क्योंकि...ये सभामें...बैठते (और सभा की संमतिसे राज्य करते हैं)। ये दो सम्राट् हैं ये छल कपट रहित आचरण करनेवालेकी सहायता करते हैं। ऐसे ये दो सम्राट् हैं।

एकका नाम 'मित्र' है जो मित्रवत् सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करता है, दूसरा 'वरुण' है जो निष्पक्ष व्यवहार करता है। यह मित्र (पूत-दक्ष) पवित्र कार्यमें ही अपना बल लगाता है, अपने बलसे कभी अपवित्र कार्य नहीं करता, सदा शुभ कार्य ही करता है। दूसरा वरुण (रिशा-

अदन) शत्रुको खानेवाला है, शत्रुका पूर्णरूपसे नाश करता है, शत्रुको जीवित नहीं रखता। ये दोनों राजा मिलकर (घृत-अर्ची) घृतसे पूर्णतया भीगी, घीसे लबालब भरी, अर्थात् स्नेहसे परिपूर्ण (धियं) बुद्धिको तथा कर्मको करते हैं, परस्पर स्नेहभाव बढने योग्य कर्म करते हैं। ऐसे विचार प्रसृत करते हैं तथा ऐसे कार्य करते हैं जो स्नेहको बढानेवाले हों। परस्पर वैर बढने योग्य किसी तरह भी आचरण नहीं करते। (७)

ये मित्र और वरुण (ऋत-स्पृशौ) सदा सत्यको ही स्पर्श करनेवाले, सत्यपालक हैं। 'ऋत' का अर्थ सत्य, सरलता है। ये (ऋता-वृधौ) सत्य व्यवहारको बढानेवाले, सत्यव्यवहारसे ही वृद्धिको प्राप्त करनेवाले हैं, कभी असत्यकी ओर नहीं जाते, इसलिये (बृहन्तं क्रतुं) बडे बडे कार्योंको (ऋतेन आशाथे) सत्यसे ही परिपूर्ण करते हैं। अर्थात् इन राजाओंका सारा राज्ययन्त्र सत्यके आश्रयसे चलता है, कभी किसी तरह असत्य, छल, कपट, कुटिलता, टेढापन इनके व्यवहारमें नहीं रहता और इसी कारण ये किसीका द्रोह नहीं करते हैं। (८)

ये दोनों (कवी) ज्ञानी, बुद्धिमान्, कवी हैं, दूरदर्शी हैं, (तुवि-जातौ) सामर्थ्यके लिये प्रसिद्ध हैं, (उरु-क्षया) विस्तृत घरोंमें रहते हैं, बडे निवासस्थानमें रहते हैं। और (अपसं दक्षं) कर्म करनेकी शक्ति या क्षमता अपनेमें धारण करते हैं, बढाते हैं। (९)

इन तीनों मंत्रोंमें दो राजाओंका व्यवहार कैसा हो, इसका उत्तम वर्णन है। राजा लोग अपना बल पवित्र कार्यमें ही लगावें, कभी अयोग्य, अपवित्र कार्योंमें न खर्च करें। शत्रुका नाश करनेका बल धारण करें, इसमें कभी न्यूनता न रखें, परस्पर स्नेहपूर्ण व्यवहार करें और प्रजासेभी स्नेहमय व्यवहार होने योग्य ज्ञान प्रजामें फैला दें। सत्य और सरल व्यवहार बढावें, सदा सत्य और सरल मार्गका अवलम्ब करें, कभी टेढे और असन्मार्गोंसे न जावें। सत्य सरल व्यवहार करते हुए बडे बडे कार्य करें और बडे विशाल कार्य सफल करें। ज्ञानी बनें, बल बढावें, सुदृढ विशाल घरोंमें रहें और कर्म को यथायोग्य रीतिसे निभानेका सामर्थ्य अपनेमें बढावें।

संक्षेपसे इस तरहकी राज्यव्यवस्था उक्त तीन मंत्रोंमें कही है।

'मित्रावरुणौ' के और भी अर्थ हैं– प्राण और अपान। तै. ब्रा. २।३।६।९, अहोरात्र। श. ब्रा. १।८।३।१२; दिन मित्र है रात्री वरुण है। ऐ. ब्रा. ४।१०; दोनों पक्ष (शुक्ल कृष्ण) मित्रावरुण हैं। तां ब्रा. २५।१०।१०; भूलोक और द्युलोक मित्रावरुण हैं। श. ब्रा. १२।९।२।१२; सूर्य मित्र है और चन्द्रमा वरुण है। इस तरह वैदिक वाङ्मयमें अनेक अर्थ हैं। मनन करनेवाले इसका अधिक मनन करें।

अश्विनौ

(३।१ २) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। १-३ अश्विनौ। गायत्री।

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती।
पुरुभुजा चनस्यतम्॥ १॥
अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया।
धिष्ण्या वनतं गिरः॥ २॥
दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः।
आ यातं रुद्रवर्तनी॥ ३॥

अन्वयः– हे पुरुभुजा शुभस्पती! द्रवत्पाणी अश्विना! यज्वरीः इषः चनस्यतम्॥ १॥ हे पुरुदंससा धिष्ण्या नरा अश्विना! शवीरया धिया गिरः वनतम्॥ २॥ हे दस्रा नासत्या रुद्रवर्तनी! युवाकवः वृक्तबर्हिषः सुताः आ यातम्॥ ३॥

अर्थ– हे विशाल भुजावाले, शुभ कार्योंका पालन करनेवाले, अतिशीघ्र कार्य करनेवाले अश्विदेवो! यज्ञके योग्य अन्नसे आनन्द-प्रसन्न हो जाओ॥ १॥ हे अनेक कार्य करनेवाले, धैर्ययुक्त बुद्धिमान् नेता अश्विदेवो! अपनी बहुत तेजस्वी बुद्धिके द्वारा हमारे भाषणको सुनो॥ २॥ हे शत्रुविनाशकर्ता असत्यसे दूर रहनेवाले भयंकर मार्गसे जानेवाले वीरो! ये संमिश्रित किये, तिनके निकाले हुए सोमरस हैं, उनका पान करनेके लिये यहां आओ॥ ३॥

यहां दोनों अश्विदेवोंका वर्णन है। अश्वोंका, घोडोंका पालन करनेमें ये चतुर थे। ये (पुरुभुजा) विशाल बाहुवाले, (शुभस्-पति) शुभ कर्मोंको करनेवाले, (द्रवत्-पाणी) अपने हाथोंसे अतिशीघ्र कार्य करनेवाले, (पुरु-दंससा) अनेक कार्य निभानेवाले, (धिष्ण्या) अत्यत बुद्धिमान् तथा धैर्ययुक्त, (नरा) नेता, अनुयायियोंको उत्तम मार्गसे ले जानेवाले, (दस्रा) शत्रुका नाश करनेवाले,

हे सब देवो ! आप कर्म करनेमें कुशल हैं, सत्वर कर्म करनेवाले हैं, अतः जिस तरह अपनी गोशालामें गौवें जाती हैं, उस तरह यहां आओ ॥ ८ ॥ हे सब देवो ! आपका घातपात कोई नहीं कर सकता, आपकी कुशलता अनुपम है, आप किसीका द्रोह नहीं करते, आप सबके लिये सुख साधन ढोकर ला देते हैं, वे आप हमारे यज्ञमें आकर हमारे दिये अन्नका सेवन करो ॥ ९ ॥

यहांका 'विश्वे देवाः' का वर्णन मानवोंके लिये बडा बोधप्रद हो सकता है। (१) ओमासः = सबका रक्षण करनेवाले; (२) चर्षणी-धृतः = मानव संघोंका धारण पोषण करनेवाले, किसानोंकी सुरक्षा करनेवाले; (३) दाश्वांसः = दान देनेवाले, दाता, (४) अप्-तुरः = त्वरासे सब कार्य उत्तम रीतिसे करनेवाले; (५) तूर्णयः = सब कार्य अतिशीघ्र परंतु उत्तम संपन्न करनेवाले; (६) अ-स्रिधः = जिनका कोई घातपात नहीं कर सकते, जिनके कार्यमें कोई रुकावट नहीं डाल सकते (७) वहिमायासः = जिनकी कर्मकुशलता अनुपम है, जिनके समान कुशल दूसरे कोई नहीं हैं, जो कुशलताके मार्गमें ही प्रगति करते हैं, (८) अ-द्रुहः = किसीका कभी द्रोह न करनेवाले, (९) वह्नयः = ढोकर सब सुखसाधन जनताके पास पहुंचानेवाले, वाहनकर्ता। ये गुण हरएक मनुष्यको अपनेमें संपादन करनेयोग्य हैं।

ये विश्वे देव यज्ञ-कर्ताके सोमयागके पास जाते हैं, गौवें घरमें आनेके समान याजकके घर आते हैं और पवित्र अन्नका सेवन करते हैं।

'मेध' का अर्थ यज्ञ है। जिससे मेधाकी वृद्धि होती है उसका नाम मेध है। मेधाकी वृद्धि करनेवाले कर्मका नाम मेध है। इससे पूर्व 'अ-ध्वर' पद यज्ञवाचक आया है। उसका अर्थ है अहिंसायुक्त कर्म। मेधा बुद्धिकी वृद्धि करनेवाले यज्ञ होते हैं और उनमें सब देव आते हैं, आदर सत्कार पाते हैं और उस यज्ञकी सहायता करते हैं।

पूर्वोक्त गुण मानवोंमें देवत्वकी वृद्धि करनेवाले हैं और अपनेमें इन गुणोंकी स्थापना करना ही मनुष्यके लिये करने योग्य अनुष्ठान है।

सरस्वती

(३।१०-१२) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। १०-१२ सरस्वती। गायत्री।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १० ॥
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति ॥ १२ ॥

अन्वयः — सरस्वती नः पावका, वाजेभिः वाजिनीवती; धियावसु यज्ञं वष्टु ॥ १० ॥ सूनृतानां चोदयित्री, सुमतीनां चेतन्ती, सरस्वती यज्ञं दधे ॥ ११ ॥ सरस्वती केतुना महो अर्णः प्र चेतयति, विश्वा धियः वि राजति ॥ १२ ॥

अर्थ — विद्या हमें पवित्र करनेवाली है, अन्नोंको देनेके कारण वह अन्नवाली भी है, बुद्धिसे होनेवाले अनेक कर्मोंसे नाना प्रकारके धन देनेवाली (यह विद्या हमारे) यज्ञकी सफलता करे ॥ १० ॥ सत्यसे होनेवाले कर्मोंकी प्रेरणा करनेवाली, सुमतियोंको बढानेवाली, यह विद्यादेवी हमारे यज्ञका पूर्ण रूपसे धारण करती है ॥ ११ ॥ यह विद्या ज्ञानसे (जीवनके) बडे महासागरको स्पष्ट दर्शाती है, (यह विद्या) सब प्रकारकी बुद्धियोंपर विराजती है ॥ १२ ॥

यह सरस्वतीका सूक्त है। सरस्वती विद्या ही है। अनादि कालसे चली आयी विद्या प्रवाहवती होनेसे सरस्वती कहलाती है। यह विद्या रस देती है, रहस्य प्राप्त होनेसे उत्तम आनंद देती है, इसलिये 'स-रस्-वती' कहलाती है। सरस्वती नदीके तीरपर नाना ऋषियोंके आश्रम थे और विद्याका पढना पढाना वहां अनादि कालसे चलता था, *इसलिये उस नदीको भी सरस्वती नाम मिला होगा।*

यह विद्या सब प्रकारका ज्ञान ही है। अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत ऐसा तीन प्रकारका ज्ञान होता है, इसमें सब प्रकारका ज्ञान अन्तर्भूत होता है ! मनुष्यकी उन्नति करनेवाला यही सब प्रकारका त्रिविध ज्ञान है। इसी ज्ञानमयी विद्याका नाम इस सूक्तमें सरस्वती कहा है ! यह विद्या (पावका) पवित्रता करनेवाली है, शरीर मन और बुद्धिकी शुद्धता इसी विद्यासे होती है। (वाजेभिः वाजिनीवती) विद्या अन्न देती है, खानपानके प्रश्नका हल करती है, इसलिये इसको अन्नवाली कहते हैं। नाना प्रकारके बल भी विद्यासे प्राप्त होते हैं, अतः विद्याको बलवती भी कहते हैं। 'वाज' का अर्थ अन्न और बल दोनों हैं। (धियावसुः)

' धी ' का अर्थ बुद्धि और कर्म है। बुद्धिसे जो उत्तम कर्म होते हैं उनसे नाना प्रकारके धन देनेवाली यही विद्या है, (सूनृतानां चोदयित्री) सत्यसे बननेवाले विशेष महत्त्वपूर्ण कर्मोंकी प्रेरणा करनेवाली यह विद्या है, (सुमतीनां चेतन्ती) शुभ मतियोंको चेतना यही देती है, यह विद्या (केतुना) ज्ञानका प्रसार करनेके कारण (महो अर्णः प्रचेतयति) कर्मोंके बडे महासागरको ज्ञानीके सामने खुला कर देती है। ज्ञानसे नाना प्रकारके कर्म करनेके मार्ग मनुष्य के सम्मुख खुले होते हैं। जितना ज्ञान बढेगा उतने नाना प्रकारके कर्म करनेकी शक्ति भी मनुष्यकी बढती जायगी और यही मनुष्यके सुखोंको बढानेवाली होगी। मानवोंकी सब प्रकारकी बुद्धियोंपर इसी विद्याका राज्य है। विद्यासे ही सभी मानवोंकी सब प्रकारकी बुद्धियोंका तेज बढ सकता है। मानवी बुद्धियोंपर विद्याकाही साम्राज्य है।

यह विद्याका उत्तम सूक्त है और इसका जितना मनन किया जाय, उतना यह अधिक बोधप्रद होनेवाला है।

---

(२) द्वितीयोऽनुवाकः ।

इन्द्रः

(४।१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब ।
गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥
परे हि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् ।
यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत ।
दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥ ५ ॥
उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः ।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् ।
पतयन् मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः ।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो ।
धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥
यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

अन्वयः — गोदुहे सुदुघां इव, द्यवि द्यवि ऊतये सुरूपकृत्नुं जुहूमसि ॥ १ ॥ हे सोमपाः ! नः सवना उप आ-गहि, सोमस्य पिब, रेवतः मदः गोदा इत् ॥ २ ॥ अथ ते अन्तमानां सुमतीनां विद्याम, (त्वं) नः मा अति ख्यः, आ गहि ॥ ३ ॥ परा इहि, यः ते सखिभ्यः वरं आ (यच्छति, तं) विग्रं अस्तृतं विपश्चितं इन्द्रं पृच्छ ॥ ४ ॥ इन्द्रे इत् दुवः दधानाः, ब्रुवन्तु, नः निदः अन्यतः चित् उत निः आरत ॥ ५ ॥ हे दस्म ! अरिः नः सुभगान् वोचेयुः, उत कृष्टयः (च वोचेयुः), इन्द्रस्य शर्मणि स्याम इत् ॥ ६ ॥ आशवे ईं यज्ञश्रियं, नृमादनं, पतयत् मन्दयत्सखं आशुं आ भर ॥ ७ ॥ हे शतक्रतो ! अस्य पीत्वा वृत्राणां घनः अभवः, वाजेषु वाजिनं प्र आवः ॥ ८ ॥ हे शतक्रतो ! इन्द्र ! धनानां सातये वाजेषु तं वाजिनं त्वा वाजयामः ॥ ९ ॥ यः रायः अवनिः, महान् सुपारः, सुन्वतः सखा, तस्मै इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

अर्थ- गौके दोहनके समय जिस तरह उत्तम दूध देनेवाली गौको ही बुलाते है उस तरह, प्रतिदिन अपनी सुरक्षा के लिये सुन्दर रूपवाले इस विश्वके निर्माता (इन्द्र) की हम प्रार्थना करते है ॥ १ ॥ हे सोमपान करनेवाले इन्द्र ! हमारे सोमरस निकालनेके समय हमारे पास आओ, सोमरसका पान करो, (तुम जैसे) धनवान्का हर्ष निःसंदेह गौवें देनेवाला है ॥ २ ॥ तेरे पासकी सुमतियाँ हम प्राप्त करें, (तुम) हमें छोडकर अन्यके समीप प्रकट न होओ, हमारे पास ही आओ ॥ ३ ॥ (हे मनुष्य !) तू दूर जा और जो तेरे मित्रोंके लिये श्रेष्ठ धनादि (देता है उस) ज्ञानी, पराजित न हुए कर्मप्रवीण इन्द्रसे पूछ ले और (जो मांगना है वह उससे मांग) ॥ ४ ॥ इन्द्रकी ही उपासना

का धारण करनेवाले घोषणा करके कहें कि, हमारे सब निन्दक दूर जायँ और यहांसे भी वे भाग जायें ॥ ५ ॥ हे अनन्त सामर्थ्यवाले इन्द्र ! हमारे शत्रुभी हमें भाग्यवान् कहें, इसी तरह सभी मनुष्य (कहें), हम इन्द्रके ही आश्रयसे रहेंगे ॥ ६ ॥ इन्द्रको यह यज्ञकी शोभा बढाने-वाला, मनुष्योंको आनन्द देनेवाला, यज्ञको संपन्न करने वाला, आनन्द देनेवालेका मित्र जैसा यह सोमरस भरपूर दे ॥ ७ ॥ हे सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! इस सोमरसके पीनेसे तुम वृत्रोंका नाश करनेवाले बने हो, इसीसे तुम युद्धोंमें वीरकी सुरक्षा करते हो ॥ ८ ॥ हे सैकडों कर्म करने वाले इन्द्र ! धनोंके दान करनेके लिये युद्धोंमें बल बतानेवाले तुझको हम अन्न प्रदान करते हैं ॥ ९ ॥ जो तू धनका रक्षक बडा दुःखोंसे पार ले जानेवाला, यज्ञकर्ताका मित्र है उसी इन्द्रका गुणगान करो ॥ १० ॥

यह सूक्त इन्द्रका है अतः इन्द्रके वर्णन करनेके लिये जो पद इस सूक्तमें प्रयुक्त हुए हैं वे किन गुणोंका प्रकाश करते हैं यह देखना आवश्यक है, क्योंकि इन्द्र-सूक्तोंमें आदर्श वीर ' इन्द्र ' ही है। अतः इस सूक्तमें आये इन्द्रके गुण देखिये—

१ सुरूपकृत्नु — सुंदररूप करनेवाला । रूपको सौन्दर्य देनेवाला। जो करना है वह अत्यंत सुन्दर बनानेवाला। यह इन्द्रकी कुशल कारीगरीका वर्णन है। मनुष्य भी अपने अन्दर इस तरहकी कर्ममें कुशलता लावे और बढावे। ' इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते । ' (ऋ० ६।४७।१८) इन्द्र अपनी कुशलताओंसे अनेक रूप होकर विचरता है। इन्द्र अनेक रूप इतनी कुशलताके साथ लेता है कि वह पहचाना नहीं जाता। ऐसा बहुरूपिया इन्द्र है। यह भी इन्द्रकी कुशलताका ही उदाहरण है। वैसी ही कुशलता इस पदमें वर्णन की है। इन्द्र जो बनाता है वह सुन्दर बनाता है। इन्द्र पद परमात्माका वाचक है और उसमें ये पद पूर्णतया सार्थ होते हैं। अन्यत्र अंशरूप सार्थकता समझनी चाहिये।

२ सोमपा — सोमरसका पान करनेवाला।

३ गो-दाः — गौवें देनेवाला।

४ न-स्तृत — अपराजित, जिसको कोई पराभूत नहीं कर सकता ऐसा अजेय वीर।

५ विपश्चित् — ज्ञानी, विद्यावान्।

६ विप्रः— मेधावान्, प्रज्ञावान् (निघ ३।१५) जिसकी बुद्धिकी ग्राहक शक्ति विशेष है। जिसकी विस्मृति नहीं होती।

७ शतक्रतु — सैकडों कर्म करनेवाला, बडे बडे कर्म करनेवाला।

८ वाजी — बलवान्, अन्नवान्।

९ दस्म — शत्रुका नाश करनेवाला, सुन्दर।

इन पदोंद्वारा कर्मकी कुशलता, गौओंका दान करनेका स्वभाव, अपराजित रहनेका बल, ज्ञान और धारणासे युक्त, अनेक बडे कार्य करनेकी शक्ति, सामर्थ्यवान्, शत्रुका नाश करना आदि गुणोंका वर्णन हुआ है। ये गुण मानवोंके लिये अत्यंत ही आवश्यक हैं। अब वाक्योंद्वारा इन्द्रके जिन गुणोंका वर्णन इस सूक्तमें किया गया है उन्हे देखिये—

१० ऊतये जुहूमसि— हमारी सुरक्षाके लिये इन्द्रको बुलाना। अर्थात् इन्द्रमें जनताकी सुरक्षा करनेकी शक्ति है।

११ रेवतः मदः गोदा — धनवान्का आनन्द गायोंका दान करता है। धनवान् इन्द्र है वह गौका दान करता है। धनवान् अपने पास गौवें बहुत रखे और उनका प्रदान भी करे।

१२ ते अन्तमानां सुमतीनां विद्याम— इन्द्रके पास जो उत्तम बुद्धियां हैं उनको हम प्राप्त हों। वीर बुद्धिमान् हो और वह उत्तम मन्त्रणा या परामर्श दूसरोंको दे दे।

१३ सखिभ्य वरं आ (यच्छति)— मित्रोंको इष्ट और श्रेष्ठ वस्तुओंका प्रदान करता है। मित्रोंको कल्याण कारी वस्तु ही दी जावे।

१४ इन्द्रस्य शर्मणि स्याम— इन्द्रके सुखमें हम रहें। इन्द्र सुख देता है। वैसा सुख वीर सब लोगोंको दे दे।

१५ वृत्राणां घनः— घेरनेवाले शत्रुका विनाश करने-वाला। वीर अपने शत्रुका नाश करे।

१६ वाजेषु वाजिनं प्राव, वाजेषु वाजिनं वाजय। युद्धोंमें बल दिखानेवालेकी सुरक्षा कर।

१७ धनानां सनिः— इन्द्र धनोंका प्रदान करता है। वीर धन कमाता रहे और उसका जनताकी उन्नतिके लिये दान भी करे।

१८ रायः अवनिः धनोंकी सुरक्षा कर,

१९ महान् सुपारः- दुःखोंसे उत्तम पार ले जा।

इतने मन्त्र-वाक्योंसे बडा ही बोध दिया है। सुरक्षा करना, धनवान् गौओंका पालन अवश्य करें और गौओंका दान भी दें, अपनी बुद्धि सुसंस्कारसंपन्न करें और दूसरोंको उत्तम सलाह दें, अपने मित्रोंको श्रेष्ठ वस्तुका प्रदान करें, दूसरोंको सुख दे दें, अपने शत्रुका नाश करें, युद्धोंमें शौर्यसे लडनेवालोंकी सहायता करें, अपने धनोंका उत्तम दान करें, धनकी सुरक्षा करें, दुःखोंसे पार होनेकी योजना करें। ये उपदेश इस सूक्तसे मनुष्योंको मिलते हैं।

पाठक इस तरह मन्त्रके पदपदका मनन करें और उनसे मिलनेवाला बोध अपना लें।

इस सूक्तमें ' इन्द्रे दुवं दधानाः ' ऐसा मन्त्रभाग है, ' इन्द्रकी उपासनाका धारण करनेवाले ' ऐसा इसका अर्थ है। इससे पता चलता है कि इन्द्रकी उपासनाका व्रत धारण किया जाता था। इसी सूक्तके ५ वें मन्त्रमें (निदः) निन्दक हैं। वे संभवतः इन्द्रकी उपासना करनेवालोंके द्रोही या निंदक होंगे। वे दूर भाग जायँ और हम इन्द्रकी उपासना यथासांग करें। आगेके छठे मन्त्रमें कहा है कि ये ही शत्रु कहें कि हम इन्द्रकी उपासनासे (सुभगास्) भाग्यवान् बन गये हैं। इन्द्रकी उपासना करनेवालोंका भाग्य बढता है यह देखकर अन्य लोग भी इस उपासनाका धारण करेंगे। यह आशय यहां दीखता है।

इन्द्र

(५।१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। इन्द्रः। गायत्री।

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत।
सखायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥
स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम्।
गमद्वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥
यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥
सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये।
सोमासो दध्याशिरः ॥ ५ ॥
त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः।
इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ६ ॥
आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः।
शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ७ ॥
त्वां स्तोमा अवीवृधन्त्वामुक्था शतक्रतो।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम्।
यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ९ ॥
मा नो मर्ता अभि द्रुहन्तनूनामिन्द्र गिर्वणः।
ईशानो यवया वधम् ॥ १० ॥

अन्वयः- हे स्तोमवाहसः सखायः! आ तु आ इत, निषीदत, इन्द्रं अभि प्र गायत ॥ १ ॥ सचा सोमे सुते पुरूतमं, पुरूणां वार्याणां ईशानं इन्द्रं (अभि प्र गायत) ॥ २ ॥ स घ नः योगे, सः राये, स पुरंध्यां आ भुवत्। सः वाजेभिः नः आ गमत् ॥ ३ ॥ समत्सु यस्य संस्थे हरी शत्रवः न वृण्वते, तस्मै इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥ इमे सुताः शुचयः दध्याशिरः सोमासः सुतपाव्ने वीतये यन्ति ॥ ५ ॥ हे सुक्रतो इन्द्र! त्वं सुतस्य पीतये ज्यैष्ठ्याय सद्यः वृद्धः अजायथाः ॥ ६ ॥ हे गिर्वणः इन्द्र! सोमासः आशवः त्वा आविशन्तु, ते प्रचेतसे शं सन्तु ॥ ७ ॥ हे शतक्रतो! त्वां स्तोमाः, त्वां उक्था अवीवृधन्, नः गिरः त्वां वर्धन्तु ॥ ८ ॥ अक्षितोतिः इन्द्रः यस्मिन् विश्वानि पौंस्या सहस्रिणं इमं वाजं सनेत् ॥ ९ ॥ हे गिर्वणः इन्द्र! मर्ताः नः तनूनां मा अभिद्रुहन्, ईशानः वधं यवय ॥ १० ॥

अर्थ- हे स्तोत्र पाठक मित्रो! आओ, यहाँ आओ, बैठो, और इन्द्रके ही स्तोत्र गाओ ॥ १ ॥ सबके द्वारा मिलकर सोमरस निकालनेपर, श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ, बहुत पास रखनेयोग्य धनोंके स्वामी, इन्द्रकी (स्तुतिका गान करो) ॥ २ ॥ वही इन्द्र निश्चयसे हमें अप्राप्यकी प्राप्ति करानेमें, धन-प्राप्तिमें और विशाल बुद्धि करनेमें सहायक होवे, वह अपने अनेक सामर्थ्योंके साथ हमारे पास आ जावे ॥३ ॥ युद्धोंमें जिसके रथमें घोडे जुत जानेपर शत्रु जिसको पकड नहीं सकते, उसी इन्द्रका काव्यगायन करो ॥ ४ ॥ ये सोमरस छान कर पवित्र किये और दही मिलाकर सोम पीनेवाले इन्द्रके पानेके लिये सिद्ध हुए हैं ॥ ५ ॥ हे उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र! तू सोमरस पीनेके लिये और श्रेष्ठ होनेके लिये सत्वर ही बडा हो गया है ॥ ६ ॥ हे स्तुति-योग्य इन्द्र! ये सोमरस तेरे अन्दर प्रविष्ट हों और तेरे चित्तको आनन्द देते रहें ॥ ७ ॥

हे सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ये स्तोत्र तेरी और ये गान तेरी बधाई करें, हमारी वाणियाँ तेरी यशोवृद्धि करें ॥ ८ ॥ जिसकी रक्षाशक्तिमें कभी न्यूनता नहीं होती वह इन्द्र, जिसमें सब बल समाये हैं, ऐसा सहस्रोंके पालन करनेके सामर्थ्यसे युक्त बल हमें देवे ॥ ९ ॥ हे स्तुतियोग्य इन्द्र ! कोई भी मानव हमारे शरीरोंको किसी तरहका उपद्रव न दे सके, और तू सबका ईश है इसलिये वध हमसे दूर कर दे ॥ १० ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके वर्णनके लिये निम्नलिखित पद प्रयुक्त हुए हैं-

१. **पुरूतमः**- जिसके पास अत्यंत धन है। जो सबका पालन और पोषण करता है वह ' पुरु ' है और वही पालनपोषणका कार्य अत्यंत पूर्ण रीतिसे करता है, इसलिये वह 'पुरु-तम' है। अत्यंत श्रेष्ठ, श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ, मनुष्य श्रेष्ठ बने।

२. **पुरूणां वार्याणां ईशानः**- अनंत धनोंका स्वामी, जिसके पास जनताका पालनपोषण करनेवाले सब प्रकारके पर्याप्त धन हैं। मनुष्य अपने पास धन रखे।

३. **सुत-पावा**- सोमरस पीनेवाला।

४. **सुक्रतुः**- उत्तम कर्म करनेवाला।

५. **वृद्धः**— बडा हुआ, श्रेष्ठ।

६. **गिर्वण**. — प्रशंसाके योग्य।

७. **प्रचेतस्** — विशेष विचारशील, ज्ञानी।

८. **शतक्रतुः** — सैकडों कर्म करनेवाला, सैकडों प्रकारकी युक्तियाँ जिसके पास हैं।

९. **अक्षित-ऊतिः** — जिसके पासके संरक्षणके साधन कभी न्यून नहीं होते, सदा जिसके पास पर्याप्त सुरक्षाके साधन रहते हैं।

१०. **ईशानः** — जो समर्थ प्रभु है।

जनताका पालन करनेके साधन अपने पास रखना, अनेक श्रेष्ठ धन अपने पास रखना, रस पीना, उत्तम कर्म करना, शक्तिसे संपन्न होना, प्रशंसाके योग्य बनना, विचारशील बनना, सैकडों उत्तम कर्म करना, अपने पास अनेक सुरक्षाके साधन रखना और सामर्थ्य युक्त होना यह उपदेश ये पद दे रहे हैं। मानवोंके लिये यह उपदेश इन पदोंसे मिलता है।

अब उक्त सूक्तमें निम्न लिखित वाक्य जो उपदेश देते हैं सो देखिये—

११. **स योगे राये पुरन्ध्यां आ भुवत्**— वह साधन धन और सुबुद्धि देता है। वैसा मनुष्य जो जिसके पास न हो वह उसको देवे, धनका प्रदान करे, और उत्तम सुबुद्धि देता रहे।

१२. **समत्सु शत्रवः यस्य न वृण्वते**— युद्धोंमें शत्रु जिसको घेर नहीं सकते। मनुष्य ऐसा सामर्थ्य प्राप्त करे कि जिससे वह शत्रुको भारी हो जावे।

१३. **ज्येष्ठ्याय वृद्धः अजायथाः**- श्रेष्ठ होनेके लिये बडा हुआ। मनुष्य श्रेष्ठ बने और बडा बने।

१४. **अक्षितोतिः इन्द्रः विश्वानि पौंस्या, सहस्रिणं वाजं सनेत्** – अक्षय रक्षासाधनोंसे संपन्न इन्द्र अनेक बल और सहस्रोंका पालन करनेवाला अन्न देता है। इसी तरह मनुष्य अपने पास अनेक रक्षा साधन रखे और और अनेकोंका पालन पोषण होने योग्य अन्नका प्रदान करे।

१५ **ईशानः वधं यवय** – परिस्थितिका स्वामी वध और मृत्यु दूर कर। मनुष्य अपनी परिस्थितिका अवलोकन करे, उसपर अपना अधिकार चलावे और दुःख तथा मृत्यु दूर करे। दीर्घायु बने।

इस तरह प्रत्येक पदका और प्रत्येक वाक्यका विचार करके मानव धर्मका बोध वेदमंत्रोंसे प्राप्त करना योग्य है। जैसा इन्द्र करता है वैसा मनुष्य करे और अपनेमें इन्द्रत्व स्थिर करे।

इन्द्रः, मरुतश्च

(६।१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। १-३ इन्द्रः; ४,६,८,९ मरुतः; ५,७ मरुत इन्द्रश्च; १० इन्द्रः। गायत्री।

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥
वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः।
अविन्द उस्रिया अनु ॥ ५ ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः ।
महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा ।
मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति ।
गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।
समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥

अन्वयः- अरुषं चरन्तं ब्रध्नं परि तस्थुषः युञ्जन्ति,(तस्य) रोचना दिवि रोचन्ते ॥१॥ अस्य रथे विपक्षसा काम्या शोणा धृष्णू नृवाहसा हरी युञ्जन्ति ॥ २ ॥ हे मर्याः ! अकेतवे केतुं कृण्वन्, अपेशसे पेशः (कुर्वन्), उषद्भिः सं अजायथाः ॥ ३ ॥ आत् अह, स्वधां अनु, यज्ञियं नाम दधानाः (मरुतः) गर्भत्वं पुनः एरिरे ॥४॥ हे इन्द्र ! वीळु चित् आरुजत्नुभिः वह्निभिः गुहा चित् उस्रियाः अनु अविन्दः ॥ ५ ॥ देवयन्तः गिरः महां विदद्वसुं श्रुतं यथा मतिं, अच्छ अनूषत ॥ ६ ॥ अबिभ्युषा इन्द्रेण संजग्मानः सं दृक्षसे हि । मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥ मखः अनवद्यैः अभिद्युभिः काम्यैः गणैः इन्द्रस्य सहस्वत् अर्चति ॥ ८ ॥ हे परिज्मन् ! अतः आगहि, दिवः वा, रोचनात् अधि, अस्मिन् गिरः सं ऋञ्जते ॥ ९ ॥ इतः पार्थिवात्, दिवः वा, महो वा रजसः इन्द्रं सातिं अधि ईमहे ॥ १० ॥

अर्थ- अहिंसित परंतु गतिमान् सूर्यके रूपमें अवस्थित (इन्द्र) के साथ चारों ओरसे सब पदार्थ अपना संबंध जोडते हैं, (इसके) किरण द्युलोकमें प्रकाशते हैं ॥ १ ॥ इस (इन्द्र) के रथमें धुराके दोनों ओर जोडे, प्रिय, लालवर्णवाले, शत्रुका धर्षण करनेवाले, वीरोंको ढोनेवाले दो घोडे जोते रहते हैं ॥ २ ॥ हे मनुष्यो ! ज्ञानहीनको ज्ञान देता हुआ, रूपरहितको रूपवान् (करता हुआ) उषाओंके पश्चात् (यह सूर्यरूप इन्द्र) सम्यक् रीतिसे प्रकट हुआ है ॥ ३ ॥ निश्चयसे अन्नकी प्राप्तिकी इच्छा करके, यज्ञसे प्राप्त पूज्य यशका धारण करनेवाले (ये वीर मरुत्) गर्भको पुनः प्राप्त हुए हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! बलवान् दुर्गस्थानका नाश करनेमें समर्थ अग्निसदृश (मरुतोंके साथ रहनेवाला तू शत्रुकेद्वारा) गुहामें रखी हुई गौओंको भी प्राप्त कर सका ॥ ५ ॥ देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले स्तोता जन बडे धनवान् और ज्ञानी (मरुद्गण) की, अपनी बुद्धिके अनुसार मुख्यतासे स्तुति करते रहे ॥ ६ ॥ न डरनेवाले इन्द्रके साथ जानेवाला (यह मरुत्समूह) दीखता है । ये दोनों (इन्द्र और मरुत्) सदा आनंदित और समान रूपसे तेजस्वी हैं ॥ ७ ॥ यह यज्ञ निर्दोष तेजस्वी और प्रिय मरुद्गणोंके साथ रहनेवाले इन्द्रकी बलपूर्वक पूजा करता है ॥८॥ हे चारों ओर जानेवाले मरुद्गण ! यहांसे आओ, द्युलोकसे आओ अथवा इस तेजस्वी सूर्यलोकसे आओ, क्योंकि इस यज्ञमें सब स्तुतियां मिलकर तेरी ही प्रसाधना करती हैं ॥ ९ ॥ इस पार्थिव लोकसे, द्युलोकसे अथवा बडे अन्तरिक्षलोकसे (लाया हुआ धन हम) इन्द्रके पाससे दानरूपमें पानेकी इच्छा करते हैं ॥ १० ॥

इस सूक्तमें सूर्यरूप धारण किये इन्द्रकी स्तुति है । इस सूक्तमें इन्द्रके गुण बतानेवाले ये पद हैं—

१ ब्रध्न — बडा, आकारमें सबसे बडा,

२ अ-रुष् जिसका कोई घातपात नहीं कर सकता,

३ चरन्— चलने, फिरने, घूमनेवाला, हलचल करनेमें समर्थ, (ये तीनों पद सूर्यके भी विशेषण हैं, पर यहां इन्द्रके वर्णनमें आये हैं ।)

४ अबिभ्युष् — न डरनेवाला, निर्भीक, भयरहित,

५ मन्दुः — आनन्दित, सदा प्रसन्न,

६ वर्चस् — तेजस्वी, प्रकाशमान,

ये पद निम्नलिखित बोध मानवको दे रहे हैं— बडा बनो, तुम्हारी कोई हिंसा न कर सके ऐसा सामर्थ्यवान् बनो, सदा हलचल करो, निडर बनो, आनन्दप्रसन्न रहो और तेजस्वी बनकर रहो । अब इस सूक्तके वाक्यों द्वारा जो बोध मिलता है वह यह है—.

७ अकेतवे केतुं कृण्वन्- अज्ञानीको ज्ञान देता है । अज्ञानीको ज्ञान देनेका प्रबंध करो, निरक्षरको साक्षर करो।

८ अपेशसे पेशः कुर्वन्- रूपहीनको सुरूप बनाता है । जो सुरूप नहीं है उसको सुरूप बनाओ ।

९ वीळु आरुजत्नुभिः गुहा उस्रियाः अनु अविन्द.. बलवान् दुर्गोको तोडनेवाले वीरोंके साथ रह कर शत्रुने गुप्त स्थानमें रखी गौओंको इन्द्र प्राप्त करता है । अपनेपास

ऐसे प्रबल वीर रखो कि जो शत्रुके गढोंको तोड सकेंगे, और शत्रुका पराभव करके उसका गवादि धन प्राप्त करा देंगे।

१० अबिभ्युषा संजग्मानः- न डरनेवालेके साथ मिलकर रहनेवाला। निडर वीरोंके साथ रहो।

११ इन्द्रं त्वोति अधि ईमहे- इन्द्रके पाससे हम धनका दान प्राप्त करना चाहते हैं। ऐश्वर्यवान्से ही ऐश्वर्य की इच्छा करो।

ये उपदेश स्पष्ट हैं, अतः इनपर टिप्पणी करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस सूक्तमें कुछ शास्त्रीय सिद्धान्त कहे हैं, उनका अब विचार करते हैं-

सूर्यका आकर्षण

अरुषं चरन्तं ब्रध्नं परि तस्थुषः युञ्जन्ति ।
(तस्य) रोचना दिवि रोचन्ते ॥ १ ॥

' अविनाशी, गतिशील महान् सूर्यके साथ उसके चारों ओर रहनेवाले सब पदार्थ जुडे हुए हैं। ' आकर्षण-संबंधसे वे जुडे रहते हैं। इस सूर्यके किरण आकाशमें प्रकाशते हैं। यहां सूर्यका यह आकर्षण संबंध अन्य सब सूर्यमालिकाके पदार्थोंके साथ है ऐसा स्पष्ट कहा है। सूर्य (ब्रध्नः) बडा है, सूर्यमें गुरुता या गुरुत्व है, इस गुरुताका ही यह संबंध है। इस गुरुत्वाकर्षणके संबंधसे सब पदार्थ, विश्वकी सब वस्तुएं, सूर्यसे बंधी गयी हैं।

अनेक उषाओंके पश्चात् सूर्यका आना

उषद्भिः सं अजायथाः ॥ ३ ॥

अनेक उषाओंके पश्चात् सूर्य उत्पन्न होता है। अनेक उषाओंके पश्चात् सूर्यका उदय उत्तरीय ध्रुव-प्रदेशमें ही दीखनेवाला दृश्य है। ' उषद्भिः ' का अर्थ ' किरण ' करते हैं, परन्तु ' उषाओंके पश्चात् ' ऐसा ही इसका अर्थ स्पष्ट है। उत्तरध्रुवप्रदेशमें अनेक उषाओंके पश्चात् ही सूर्य का उदय होता है।

मरुतोंका वर्णन

इस सूक्तमें मरुतोंका भी वर्णन है। यह वर्णन मरुतोंके गणोंका है, इसमें निम्नलिखित पद अत्यंत महत्त्वके हैं-

१ वीळु आरुजत्नु - बलवान् और सुदृढ शत्रुका पूर्ण नाश करनेवाला मरुतोंका समूह है। बलवान् शत्रुका पूर्ण नाश करनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये।

२ वह्निः- अग्नि जैसा तेजस्वी बनो। सुखसाधन ढोकर लाओ।

३ अन्-अवद्यः- अनिंद्य बनो।

४ अभिद्युः- तेजस्वी बनो।

५ काम्यः- प्रिय बनो।

६ गण- समूहमें रहो

७ परि-ज्मा- चारों ओर भ्रमण करो।

ये विशेषण वीर कैसे हों, इस विषयका बोध कराते है। मनुष्य मरुतोंके समान वीर बनें। अपनी शक्ति बढाकर प्रबल शत्रुका भी नाश करे। अग्निके समान तेजस्वी बनें, किसी तरह निंदनीय कार्य न करें, जनताकी सेवा करें, उसका प्रिय बनें, सर्वत्र भ्रमण करके शत्रुको ढूंढ निकालें और उनका नाश करें।

देवत्वकी प्राप्ति

छठे मन्त्रमें ' देवयन्तः ' पद है। देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले उपासक होते हैं। मनुष्य देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करें। यही वेदके धर्मकी सफलता है कि मनुष्य देवत्वसे युक्त हो जाय! यह कैसे बने? जो देवताओंके गुण सूक्तों और मन्त्रोंमें वर्णन किये हैं उनको अपनेमें उपासक स्थिर करे और बढावे। यही साधना है, यही अनुष्ठान है। अग्नि, इन्द्र, मरुत्, विश्वे देव, मित्र और वरुण, सरस्वती आदि देवोंके सूक्त यहां तक आये हैं। इन देवोंके वर्णन इतने सूक्तोंमें हैं। यहां देवोंके वर्णनोंमें जो पद प्रयुक्त हुए हैं उन पदोंसे व्यक्त होनेवाले गुण साधक अपनेमें धारण करें। जितना इन गुणोंका धारण साधक करेंगे उतनी साधना उन साधकोंकी होगी। इस साधनाको बतानेके लिये ही हमने पदों और वाक्योंका अलग स्पष्टीकरण यहां किया है और आगे भी ऐसा ही बताया जायगा।

इन्द्र

(७।१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। इन्द्रः। गायत्री।

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥

था। अब इस सूक्तमें इन्द्रके वर्णनपरक वाक्योंका भाव देखिये —

८ वचोयुजा हर्योः सचा– केवल इशारेसे ही जाने वाले घोडोंको रथमें जोतनेवाला। इस तरहके शिक्षित घोडोंको अपने पास रखनेवाला।

९ उग्रः उग्राभिः ऊतिभि वाजेषु न. अव– वीर अपने प्रतापी सुरक्षा करनेके साधनोंसे युद्धोंमें हमारी रक्षा करे। वीर अपने पास सुरक्षाके उत्तम साधन रखे और उनसे वह हमारी रक्षा करे।

१० सहस्र-प्रधनेषु च अव– धन-प्राप्तिके सहस्रों कार्योंमें हमारी सुरक्षा हो।

११ सः (त्वं) न. अमुं चरुं अपावृधि– वह तू हमारे लिये इस अन्नके खजानेको खोल दे। इस जलाशयको खुला कर दे। अन्न और जल सबको मिले ऐसा कर। अन्नके उपरका ढक्कन खोल दे।

१२ वृषा ओजसा कृष्टी. इयर्ति— बलवान् वीर अपने सामर्थ्यसे सब लोगोंको प्रेरित करता है, सबको मार्गदर्शन करता हुआ, उन्नति पथसे चलाता है। प्रेमसे सबको चलाता है।

१३ एक. पञ्च चर्षणीनां क्षितीनां इरज्यति– एक ही प्रभु सब पाँचों मानववर्शोंका राजा है। सब मानवोंका एक ही राजा हो।

१४ विश्वतः जनेभ्यः परि इन्द्रं हवामहे– सब जनोंपर प्रभुत्व करनेवालेकी हम प्रशंसा करते हैं।

सूक्तमें कविका नाम

इस सूक्तके प्रारंभमें ' इंद्रं इद्गाथिनो बृहत् ' यह चरण है। इसमें ' गाथिन ' पद है, वह इस सूक्तके कविका सूचक है। इस सूक्तका ऋषि ' मधुच्छन्दा ' है, यह ऋषि (वैश्वामित्र) विश्वामित्रका पुत्र है और विश्वामित्र (गाथिन) गाथी या गाधि कुलमें उत्पन्न हुआ है, इसलिये मधुच्छन्दा भी ' गाथिन ' अर्थात् गाधिकुलका ही है। ' विश्वामित्रो गाथिनः ' ये सूक्त तीसरे मण्डल में आरम्भमें पठ्यमान हैं, बीचमें विश्वामित्र पुत्रोंके कुछ सूक्त हैं। पाठक इस दृष्टिसे तृतीय मडलके ऋषि देखें। यद्यपि यह ' गाथिन. ' पद सामगान करनेवालोंके अर्थमें यहां आया है, तथापि यहां यह ऋषि अपने गोत्रका भी उल्लेख करता है ऐसा पता लगता है।

सुदीर्घ प्रकाश

इस सूक्तमें सुदीर्घ प्रकाश देनेके लिये इन्द्रने सूर्यको आकाशमें ऊपर चढाया ऐसा लिखा है–

> इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि।
> वि गोभिः अद्रिं ऐरयत् ॥ ३ ॥

' इन्द्रने सुदीर्घ प्रकाशके लिये सूर्यको द्युलोकमें ऊपर चढाया और उस सूर्यने पश्चात् अपने किरणोंसे पर्वतको विशेष प्रकारसे चलाया। '

यह वर्णन सूक्ष्म दृष्टिसे देखने योग्य है। इन्द्र पहिले था, उस समय सूर्य नीचे था, उस समय अन्धेरा भी था, पश्चात् इन्द्रने सूर्यको द्युलोकपर चढाया, सूर्य वहां चढा और वहांसे सुदीर्घ काल तक वहीं रहता हुआ प्रकाशता रहा। सूर्यके इस सदीर्घ कालके प्रकाशके किरणोंसे पहाड भी विचलित हुए, पिघलने लगे। बर्फ पिघलकर पर्वतसे जल चूने लगा।

हमारे देशमें प्रतिदिन सूर्य द्युलोकमें अर्थात् आकाशके मध्यमें नियत समय चढता और वहां प्रकाशता है। प्रतिदिन प्राय यह ऐसा ही होता है। इसको कोई सुदीर्घ कालतक प्रकाशना नहीं कहेंगे।

अनेक उपाओंके पश्चात् सूर्यके उदय होनेका वर्णन हमने ऋ १।६।३ में देख लिया है। जहां अधिक उषाओंके पश्चात् सूर्य आता होगा, उसी प्रदेशमें सूर्य द्युलोकमें आकाशमें अधिक दिनतक रहता होगा और वहीं अधिक दीर्घ रात्रि भी होती होगी।

सर्वसाधारणत छ मासकी रात्रि और छ मासका दिन उत्तरीय ध्रुवमें होता है। इसमें एक मासका उष.काल, एक मासका साय सध्याकाल और शेष रात्रिका अखण्ड अंधेरे का समय और अखण्ड प्रकाशका भी उतना ही समय होता है।

वहां सूर्य बिल्कुल मध्य आकाशमें कभी आता ही नहीं। नौ बजेसे साडेदस बजेतक सूर्य जहां रहता है वहां ही सूर्य रहा हुआ गोल इर्दगिर्द घूमता है। किसी पर्वतको प्रदक्षिणा करनेके समान सूर्य घूमता है। प्रदक्षिणा करनेकी पद्धति इसी सूर्यसे प्रचलित हुई होगी।

इस प्रदेशमें सूर्य नौ बजे आनेके आकाशके स्थान पर आया तो द्युलोकमें चढा। इस समय आकाशकी लालिमा पूर्णतया नष्ट होती है और सूर्यका धवल प्रकाश चमकने लगता है, यही दिन सतत तीन महिने रहता है और इसी सूर्यकी किरणोंकी गर्मीसे हिमकालमें जमा हुआ पहाडोंपर का बर्फ पिघलने लगता है और पहाड ही पिघलने और चूने लगते हैं।

मन्त्रमें ' अद्रिं वि ऐरयत् ' पद है। यहां जो ' अद्रि ' पद है वह पर्वतका वाचक है। इसको निघण्टु निरुक्तमें ' मेघ ' वाचक माना है। परन्तु सूर्य-किरणोंसे मेघोंका कभी पानी नहीं होता, न मेघ सूर्य किरणोंसे पिघलते हैं। सूर्य किरणोंसे चूने या पिघलनेवाले ' अद्रि ' पर्वत वे हैं कि जिन पर हिमकालमें बर्फ जमा होता है। हिमकालका अर्थ ही बर्फ जमनेका काल है, उसका पीछेसे अर्थ सर्दीका जमाना हुआ है। अन्धेरा होना, दीर्घ रात्रिका होना, बर्फ या हिमकी वृष्टिका होना और सर्दीका होना एक ही समय होनेवाली बातें हैं। इसीके विरुद्ध सुदीर्घ प्रकाशका होना और बर्फका पिघलना ये एक समय प्रकाशके समय होनेवाली बात है।

' ईर-गतौ ' ईर् धातु गत्यर्थक है, गति कराता है। ' अद्रिं वि ऐरयत् ' पर्वतको विशेष गतिशील बनाता है, पर्वतसे चूनेवाले जलको गतिमान् बनाता है। बर्फानी पहाडोंसे जो पानी गर्मीके दिनोंमें पिघलता है, उसीसे नदियोंको महापूर आते है, उस पानीमें उस समय बडी गति रहती है।

सूर्य किरणोंका मेघोंपर ऐसा कोई असर नहीं होता, कि जो मेघोंसे पानी चूने लगे और नदियां बहती जायँ। अत अद्रिका अर्थ मेघ न करते हुए, यहां ' पर्वत ' अर्थ करना और सूर्य किरणोंसे बर्फानी पहाड चूने लगते हैं ऐसा मानना योग्य है।

यहां ' ईर् ' धातु है। ईर्, ईट्, ईड्, ईळ् ये धातु समान अर्थवाले हैं। इर्, इट्, इड्, इळ् तथा इरा, इळा, इडा, इळा ये पदभी परस्पर सबधित है। उपजाऊ भूमि, अन्न, जल आदि अर्थवाले ' इरा ' आदि पद हैं। यही भाव इस धातुमें मानना योग्य है। बर्फानी पहाडोंसे चूनेसे जो पानी नदियोंमें भरता है, वह अपने साथ उपजाऊ मिट्टी लाता है, उस भूमिसे बहुतसा धान्य उत्पन्न होता है। इसी कारण ' इरा, इडा ' के अर्थ भूमि और अन्न हुए है।

' गोभिः अद्रिं वि ऐरयत् ' का अर्थ पर्वतपरके बर्फरूप जलको सूर्य अपने किरणोंसे गति देता है, और यह जल आगे जाकर भूमि और अन्न निर्माण करता है। ' इर् ' का अर्थ भी ऐसा ही समझना योग्य है। अन्नकी उपज करनेके लिये जो जल प्रेरणा करता है वह प्रेरणा यहां का ' इर् ' धातु बताता है।

इन्द्र सूर्यको ऊपर चढाता है यहां इन्द्र सूर्यसे पृथक् माना है। सूर्य तो अपना ही सूर्य है, इन्द्र वह है कि जो प्रकाश उत्तरीय ध्रुवमें सूर्यके आनेके पूर्व रहता है। यह विद्युत्प्रकाश है। वहां सूर्योदयके पूर्व यह प्रकाश रहता है। इसके पश्चात् सूर्य ऊपर आता है और ऊपर ही ऊपर तीन चार महिने तक रहता है, इसका अखण्ड प्रकाश ' दीर्घाय चक्षसे ' पदोंसे व्यक्त हुआ है। वेदमें—

दीर्घं तम आशयत् इन्द्रशत्रु ।
दीर्घाय चक्षसे दिवि सूर्यं आरोहयत् ।

ऐसे प्रयोग हैं। (दीर्घं तम) रात्रि भी प्रदीर्घ है, (दीर्घाय चक्षसे) और दिन प्रकाश भी सुदीर्घ है। इनका मेल करनेसे पूर्वोक्त स्पष्टीकरण दीखने लगता है।

पञ्च क्षिति

' क्षिति ' का अर्थ है पृथ्वी, जिसपर मनुष्य रहते हैं वह भूमि। पश्चात् भूमिपर रहनेवाला मनुष्य ऐसा इसका अर्थ हुआ। इस भूमिपर पांच प्रकारके मनुष्य रहते हैं श्वेत, रक्त, पीत, भूरा और काला। ये पांच रंगों या वर्णोंवाले पांच मनुष्य पांच स्थानोंके विभिन्न भूविभागोंपर रहते हैं। श्वेत वर्णवाले यूरोपमें, लालरंगवाले उत्तर अमरीकामें, पीत रंगवाले चीन जापानमें, भूरे रंगवाले भारतवर्षमें और कृष्ण वर्णवाले अफ्रीकामें रहते हैं। इनका नाम क्षिति है क्योंकि इनका सबंध विशेष भूविभागके साथ है।

यह इन्द्र देव इन पांचों प्रकारके भूविभागोंमें रहनेवाले पांच रंगोंवाले मानवोंका प्रभु है और इन सबका पालनकर्ता है। ' पञ्च क्षिति ' का अर्थ ' ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ' ये पांच जातिके लोग हैं ऐसा कई मानते हैं। पर इन ब्राह्मणादिकोंका पांच भूविभागोंसे कोई संबंध नहीं है। ' पञ्च क्षिति ' का अर्थ ' पांच भूविभाग ' है। अर्थात्

पांच विभिन्न भूविभागोंमें रहनेवाले पांच प्रकारके लोग, यह इसका अर्थ स्पष्ट है।

वाज, प्रधन, महाधन

'वाज, प्रधन, महाधन' ये पद युद्धवाचक हैं। 'वाज' का अर्थ बल वा अन्न है, 'प्रधन' का अर्थ श्रेष्ठ धन है, 'महाधन' का अर्थ बडा धन है। युद्धसे अन्न और धन मिलता है, युद्धमें जो वीर विजयी होता है वह शत्रुका अन्न और धन अपने अधीन करता है। शत्रुके प्रदेशोंको लूटकर धन लाता है। इस रीतिके अनुसार 'धन, प्रधन, महाधन' ये पद युद्धवाचक हुए हैं। अन्न भी उसी तरह युद्धसे मिलता है, इसलिये 'वाज' पद युद्धका वाचक हुआ। 'वाज' पद बलवाचक भी है, जो सेनावाचक भी आलंकारिक रीतिसे होना संभव है।

वचोयुजा हरी

'शब्दके इशारेसे चलनेवाले घोडे।' ये पद बता रहे हैं कि, घोडोंको सिखाकर इतना तैयार किया जाता था। ये केवल शब्दका उच्चार करते ही जिस तरह चाहिये उस तरह घोडे चलने लगते हैं। इतने उत्तम शिक्षित घोडे होने चाहिये।

अन्नका खजाना खोलो

'न चरुं अपावृधि' हमारे अन्नका खजाना खोल दो, चावलोंके पात्रके उपरका ढक्कन दूर करो। यह ढक्कन कौनसा था ? चरु का अर्थ अन्न या अन्नपात्र है। वर्षा जहां चार महीने जमीनपर पडा रहता है वहां वर्षा पडनेसे पूर्व जमीनमें धान्य बोते हैं, पश्चात् उसपर वर्षा पडता है, यही अन्नके उपरका ढक्कन है। जब यह वर्षा पिघलता है तब उस बोये धान्यपरका ढक्कन दूर होता है और उसी पिघलने वर्षसे जलसे वह धान्य उगता और परिपक्व होता और मनुष्योंको मिलता है। इसीलिये इन्द्रसे प्रार्थना की गयी कि हमारे चरुके उपरका ढक्कन दूर कर दो। 'चरु' का अर्थ मेघ करके इस मन्त्रका अर्थ कुछ और आलंकारिक करते हैं। पर वैसा करनेकी आवश्यकता नहीं है। चरु-अन्न-पर वर्षका ढक्कन पडता है, सूर्य उपर पडनेसे वह वर्ष पिघलता है, वह अन्न खुलकर बाहर आता है और मनुष्योंको योग्य समयमें मिलता है।

इस तरह कई बातें इस सूक्तमें विशेष ही महत्वपूर्ण हैं। ये सब विचार करने योग्य हैं।

एक ईश्वर

य एक चर्षणीनां वसूनामिरज्यति।
इन्द्रः पञ्च क्षितीनां (ईशः) ॥ ९ ॥
विश्वतः परि जनेभ्य इन्द्रं हवामहे।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

ये मन्त्र एक ईश्वरके वाचक हैं। सबका राजा एक ही इन्द्र है, सब जनोंका वही एक शासक है। ये मन्त्र एक ईश्वरकी सत्ताके वाचक हैं।

---

(३) तृतीयोऽनुवाकः

इन्द्रः

(८।१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। इन्द्रः। गायत्री।

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्।
वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै।
त्वोतासो न्यर्वता ॥ २ ॥
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि।
जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम्।
सासह्याम पृतन्यतः ॥ ४ ॥
महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ ५ ॥
समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ।
विप्रासो वा धियायवः ॥ ६ ॥
यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते।
उर्वीरापो न काकुदः ॥ ७ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥

एवा हि ते विभूतयः ऊतय इन्द्र मावते।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ९ ॥
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या।
इन्द्राय सोमपीतये ॥ १० ॥

अन्वयः— हे इन्द्र ! सानसिं सजित्वानं सदासहं वर्षिष्ठं रयिं ऊतये आ भर ॥ १ ॥ येन त्वोतासः मुष्टिहत्यया नि अर्वता वृत्रा नि रुणधामहै ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! त्वोतासः वयं घना वज्रं आ ददीमहि, युधि स्पृधः सं जयेम ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! वयं शूरेभिः अस्तृभिः त्वया युजा वयं पृतन्यतः सासह्याम ॥ ४ ॥ इन्द्रः महान् परः च, नु वज्रिणे महित्वं अस्तु, द्यौः न शवः प्रथिना ॥ ५ ॥ ये नरः समोहे, तोकस्य सनितौ वा, विप्रासः वा धियायवः, आशत ॥ ६ ॥ यः सोमपातमः कुक्षिः समुद्र इव पिन्वते, ककुदः उर्वीः आपः न ॥ ७ ॥ अस्य विरप्शी गोमती मही, सूनृता दाशुषे एवा हि पक्वा शाखा न ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! ते विभूतयः एवा हि, मावते दाशुषे ऊतयः सद्यश्चित् सन्ति ॥ ९ ॥ अस्य स्तोमः उक्थं च एवा हि काम्या शंस्या सोमपीतये इन्द्राय ॥ १० ॥

अर्थ— हे इन्द्र ! सेवनीय, सदा विजयी, सदा शत्रुका पराभव करनेवाले, सामर्थ्यसे युक्त, श्रेष्ठ धन, हमारी सुरक्षा के लिये, हमारे पास भरपूर भर दे ॥ १ ॥ जिस धनसे तेरी सुरक्षासे सुरक्षित हुए हम, मुष्टि-प्रहारसे और अश्वयुद्ध से शत्रुओंका निरोध कर सकेंगे, (ऐसा धन हमें दे दो) ॥२॥ हे इन्द्र ! तेरेसे सुरक्षित हुए हम सुदृढ शस्त्र (हाथमें) लेंगे और युद्धमें स्पर्धा करनेवाले शत्रुपर विजय प्राप्त करेंगे ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! हम शूर और शत्रुपर प्रहार करनेमें कुशल योद्धाओंके साथ, तथा तेरे साथ रहते हुए, हमपर सेनासे चढाई करनेवाले शत्रुको, परास्त करेंगे ॥ ४ ॥ इन्द्र बडा है और श्रेष्ठ भी है, इस इन्द्रका महत्व सदा स्थिर रहे, इसका द्युलोकके समान विस्तृत सामर्थ्य फैलता जाय ॥ ५ ॥ जो (यश) शूर लोग युद्धमें प्राप्त करते हैं, जो पुत्रकी प्राप्तिमें आनन्द मिलता है, वही ज्ञानी लोग बुद्धिकी वृद्धि करनेमें संपादन करते हैं, ॥ ६ ॥ जो इन्द्रके पेटका भाग सोमरस पीनेसे समुद्र जैसा फूलता है वैसा उसके मुखका भाग सोमरसके बडे घूँटसे भर जाता है ॥ ७ ॥ इस इन्द्रकी अनेक स्वरोंसे युक्त, गोदानसे शोभित, पूज्य सत्य वाणी, दाताके लिये वैसी सुखदायी होती है, जैसी वृक्षकी पक्व फलोंकी शाखा ॥ ८ ॥ तेरी विभूतियाँ ऐसी हैं, मुझ जैसे दाताके लिये तेरी संरक्षक शक्तियाँ सदैव मिलती हैं ॥ ९ ॥ इसके स्तोत्र और स्तोत्रगान ऐसे प्रिय और वर्णनीय हैं, सोमपान करनेवाले इन्द्रके लिये ही ये समर्पित हैं ॥ १० ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके निम्नलिखित गुण वर्णन किये गये हैं–

१ इन्द्रः महान्– इन्द्र बडा है, यहां इसका महत्व वर्णन किया गया है।

इसके अतिरिक्त ' वज्रिन् ' (वज्रधारी) पद है जिस का आशय पूर्व स्थानमें अनेक बार आया है।

२ वज्रिणे महित्वं अस्तु– वज्रधारी शूर इन्द्रका महत्व प्रख्यात होवे। जो शूर है और जो अपने शस्त्रसे शत्रुको परास्त करता है, उसको महत्व प्राप्त होता है।

३ अस्य विरप्शी सूनृता दाशुषे एवा हि– इस इन्द्रकी उत्तम स्पष्ट वाणी दाताके लिये ऐसा ही सुख देती है। इसी तरह लोग दाताका कल्याण करनेके लिये ही अपना भाषण करें। जो बोलें उससे सबका हित हो।

४ दाशुषे ऊतयः सद्यः सन्ति– दाताके लिये सुरक्षाएँ तत्काल प्राप्त हों।

दान करनेकी इच्छा बढायी जाय। इन्द्र उदार दाताकी सहायता करता है, वैसेही सब लोग अन्योंकी सहायता करें। यह इस सूक्तका तात्पर्य है। इन्द्र जिस तरह सबकी सुरक्षा करता है, वैसी ही सब लोग करें। इस सूक्तमें निम्नलिखित मांगें पेश की गयी हैं–

वीरतावाला धन

१ सानसिं, सजित्वानं सदासहं, वर्षिष्ठं, रयिं ऊतये आभर– स्वीकार करने योग्य, विजयशील, सदा शत्रुका नाश करनेमें समर्थ, श्रेष्ठ धन हमारी सुरक्षा करनेके लिये हमें भरपूर भर दे। यहां धन भरपूर मांगा है, परन्तु वह केवल धनही नहीं है, परंतु वह ' वर्षिष्ठं रयिं ' श्रेष्ठ धन है, हमें श्रेष्ठसे श्रेष्ठ धन चाहिये, मध्यम वा निकृष्ट धन नहीं चाहिये। धन अनेक प्रकारके हैं, उनमें श्रेष्ठ अथवा वरिष्ठ धन ही चाहिये। मनुष्य अपने पास उत्तमसे उत्तम धन रखनेका यत्न करें। हरएक वस्तु ' धन ' हो सकती है, अतः वह वस्तु उत्तमसे उत्तम हो, मध्यम वा कनिष्ठ न हो, यह धनके विषयमें सबसे प्रथम बात ध्यानमें धारण करना

चाहिये। इतनेसे ही काम नहीं होगा, वेद इसमें और भी सावधानीकी सूचना देता है कि वह ' सानसि ' अर्थात् सेवनीय चाहिये।

उदाहरणके लिये देखिये कि मद्य एक ऐसी वस्तु है कि जो उत्तमसे उत्तम भी हुआ, तो वह मनुष्यके लिये स्वीकारके योग्य वस्तु नहीं है। इस तरह धन उत्तम होना चाहिये और वह हमारे स्वीकार करनेके योग्य भी होना चाहिये। दूसरेकी वस्तु स्वीकारके योग्य नहीं हो सकती। दूसरेका धन, स्त्री, भूमि या अन्य उसकी स्वामित्वकी वस्तु किसी अन्यके लिये स्वीकार करने योग्य नहीं है। अतः यहां कहा है कि ' सानसिं वर्षिष्ठं रयिं ' सेवनीय श्रेष्ठ धन चाहिये। और भी इसमें दो मननीय धर्म चाहिये, वे ये हैं— ' स-जित्वानं ' विजयशील लोगोंके साथ जो धन रहता है, वही धन हमें चाहिये, डरपोक भीरु धैर्यहीन आदिकोंके पास रहनेवाला धन हमें नहीं चाहिये, तथा ' सदा सहं ' सदा शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य अपने पास रखनेवाला धन हमें चाहिये। जिससे शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य घट जाय ऐसा धन हमें नहीं चाहिये, अथवा दूसरेके द्वारा ही जिस धनकी सुरक्षा होती है, ऐसा धन भी हमें नहीं चाहिये।

वेदने केवल धन नहीं मांगा है, प्रत्युत 'सेवन करनेयोग्य, वीरोंके साथ रहनेवाला, शत्रुका पराजय करनेके सामर्थ्यसे युक्त श्रेष्ठ धन ही चाहिये' ऐसी इच्छा यहाँकी है। यह बडी सावधानीकी सूचना है। लोग धन चाहते हैं, परंतु दुर्बलके हाथका धन दुर्बलके पास नहीं रह सकेगा, यह बात वे भूलते हैं। धनके साथ बल, वीर्य और पराक्रम चाहिये, ऐसा जो यहां कहा है वह सदा ध्यानमें रखने योग्य है। आगे जहां जहां धनकी कामना होगी, वहां बलवीर्य पराक्रमके साथ रहनेवाला धन ही समझना उचित है। वेदमें केवल धनकी कामना नहीं है, पर वीर्य पराक्रम तथा रक्षाशक्तिसे युक्त धन ही चाहिये, ऐसा ही यहां भाव समझना चाहिये।

१ येन (रयिणा) मुष्टिहत्यया, अर्वता वृधा निरुणधामहै— जिस धनसे हम मुष्टियुद्ध करें, तथा घोडोंपर सवार होकर शत्रुओंका निरोध करेंगे। हमें धन ऐसा चाहिये कि जिस धनसे हमारेमें मुष्टियुद्ध करनेकी शक्ति बढे, तथा घोडेपर सवार होकर युद्ध करनेका बलभी बढे। धन ऐसा सामर्थ्यवाला चाहिये। यहां शत्रुका ' निरोध ' करनेमें समर्थ होनेका उल्लेख है। ' निरोध ' का अर्थ शत्रुको घेरना, कैद करना, बंद रखना, नष्ट करना, नाश करना आदि सब प्रकारका लेना योग्य है। शत्रुका संपूर्ण नाश हो यहां अभीष्ट है। ऐसा सामर्थ्यवाला धन चाहिये '

३ वयं घना वज्रं आददीमहि, युधि स्पृधाः सं जयेम— हम अपने हाथमें प्रबल शस्त्र धारण करेंगे और युद्धमें हमसे स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंके साथ युद्ध करके हम सब मिलकर शत्रुका पराजय करेंगे। धनसे प्रबल शस्त्र बर्तनेकी और युद्धमें शत्रुका पराभव करनेकी शक्ति प्राप्त होनी चाहिये।

४ वयं शूरेभिः अस्तृभिः पृतन्यतः सासह्याम— हम सब शूर वीर शस्त्रोंके आघातोंसे, सेनासे चढाई करनेवाले शत्रुको परास्त करेंगे। धनसे हमारे पास ऐसी शक्ति बढनी चाहिये कि जिससे हम शत्रुपर हमला करके शत्रु-सेनाका नाश करनेमें समर्थ बन जायँ।

५ नरः समोहे आशत— नेता शूर वीर युद्धमें जो यश प्राप्त करते हैं, वह यश हमें प्राप्त हो। जहां दोनों शत्रु-दल इकट्ठे होकर लडते हैं, उस युद्धका नाम 'समोह' है। ऐसे युद्धमें हमारा विजय होने योग्य शक्ति हमें प्राप्त हो, यह इच्छा यहां स्पष्ट दीखती है।

धनसे ये सब शक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिये। ऐसा सामर्थ्य-युक्त धन चाहिये। हरएक ऐसा धन अपने पास रखनेकी इच्छा करे।

सत्य भाषण

भाषण मनुष्य ही करता है, मनुष्यमें ही वाक्यशक्ति है। वाणी कैसी हो, इस विषयमें इस सूक्तके निम्नलिखित निर्देश देखने योग्य हैं—

पक्वा शाखा न। विरप्शी गोमती मही सूनृता।

उत्तम मधुर फलवाले वृक्षकी परिपक्व फलोंसे भरपूर भरी शाखा जैसी लाभदायक होती है, वैसी वाणी हो। अर्थात् यह वाणी शुष्क शाखाके समान शुष्क न हो, परन्तु रसदार फलवाली, परिपक्व फलोंसे लदी शाखाके समान रसीली हो, मधुर हो, स्वादु हो। यह तो उपमासे बोध मिलता है। अब वाणीका वर्णन देखिये—

(वि-स्पर्शी) विशेष सुन्दर स्वरालापोंसे युक्त वाणी हो, सुन्दर मधुर कोमल वाणी हो, (गो-मती) गतिवाली, प्रवाहयुक्त, प्रगतिशील वाणी हो, (मही) महत्ववाली, बडी श्रेष्ठ विचारोंसे युक्त और (सूनृता= सु+नृ+ता) उत्तम मानवता जिससे प्रकट होती है, मनुष्यत्वका विकास करनेवाली, जिस वाणीमें पशुता या असुरता नहीं है और जिससे मानवता प्रकट होती है ऐसी वाणी मनुष्यों को बोलनी चाहिये।

इस सूक्तसे धन और वाणीका वर्णन मनुष्योंके लिये मनन करने योग्य है। मनुष्यमें स्वभावतः वाणी है, मनुष्य उसको कैसी उन्नत और प्रयुक्त करे, यह बात यहां कही है। मनुष्यको धन चाहिये, वह धन भी कैसा हो, यह भी यहां बताया है। ये दोनों महत्त्वपूर्ण विषय इस सूक्तमें अच्छी तरह वर्णन किये गये हैं। पाठक इनको समझें और मनन करके अपनायें।

इन्द्रः

(९।१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। इन्द्रः। गायत्री।

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः।
महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने।
चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे।
सचैषु सवनेष्वा ॥ ३ ॥
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत।
अजोषा वृषभं पतिम् ॥ ४ ॥
सं चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम्।
असदित्ते विभु प्रभु ॥ ५ ॥
अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः।
तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ ६ ॥
सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत्।
विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ ७ ॥
अस्मे धेहि श्रवो बृहद्द्युम्नं सहस्रसातमम्।
इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ ८ ॥
वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्।
होम गन्तारमूतये ॥ ९ ॥
सुतेसुते न्योकसे बृहद्बृहत एदरिः।
इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १० ॥

अन्वयः- हे इन्द्र! एहि, विश्वेभिः सोमपर्वभिः अन्धसः मत्सि। ओजसा महान् अभिष्टिः ॥ १ ॥ सुते ईं मन्दिं चक्रिं एनं विश्वानि चक्रये मन्दिने इन्द्राय आ सृजत ॥ २ ॥ हे सुशिप्र! मन्दिभिः स्तोमेभिः मत्स्व। हे विश्वचर्षणे! एषु सवनेषु सचा आ (गच्छ) ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! ते गिरः असृग्रम्। वृषभं पतिं त्वां प्रति उत् अहासत अजोषा ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! वरेण्यं चित्रं राधः अर्वाक् सं चोदय, ते विभु प्रभु असत् इत् ॥ ५ ॥ हे तुविद्युम्न! इन्द्र! राये रभस्वतः यशस्वतः अस्मान् तत्र सु चोदय ॥ ६ ॥ हे इन्द्र! गोमत्, वाजवत्, पृथु, बृहत्, विश्वायुः अक्षितं श्रवः, अस्मे सं धेहि ॥ ७ ॥ हे इन्द्र! बृहत् श्रवः सहस्रसातमं द्युम्नं अस्मे धेहि। ताः इषः रथिनीः ॥ ८ ॥ वसो. ऊतये वसुपतिं ऋग्मियं गन्तारं इन्द्रं गीर्भिः गृणन्तः होम ॥ ९ ॥ आ इत् अरिः सुते-सुते बृहत् शूषं न्योकसे बृहते इन्द्राय अर्चति ॥ १० ॥

अर्थ- हे इन्द्र! (हमारे) समीप आ, सब सोमके पर्वोंसे निकाले अन्नरूप (इस रसका पान करके) आनंदित हो। (तू अपने) सामर्थ्यसे (हमारा) बडा ही सहायक है ॥ १ ॥ सोमरस निकालनेपर आनन्ददायक, कर्मशक्तिवर्धक, इस (सोमरसको), सब कर्म करनेवाले आनन्दयुक्त इन्द्रके लिये (पृथक्) रख दो ॥ २ ॥ हे सुन्दर हनुवाले इन्द्र! हर्ष बढानेवाले इन स्तोत्रोंसे आनंदित हो जाओ। हे सब मानवोंका हित करनेवाले इन्द्र! इन सोमके सवनोंमें (अन्य देवोंके) साथ आओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तेरी (स्तुति करनेके लिये ही मैंने अपनी) वाणियाँ उचारी हैं। बलशाली, सबके पालनकर्ता तुझको (वे स्तुतियां) पहुंचती हैं, (और तुमने उनका) स्वीकार भी किया है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! श्रेष्ठ और विविधरूपोंवाला धन हमारे समीप भेज दो। तेरे पास वह विशेष प्रभावी धन निःसन्देह है ॥ ५ ॥ हे बहुत धनवाले इन्द्र! धन प्राप्त करनेके लिये प्रयत्नशील और यशस्वी ऐसे हम सबको उस (शुभ कर्ममें) प्रेरित कर ॥ ६ ॥ हे इन्द्र! गौओंसे युक्त, बलसे युक्त, महान्, विशाल, पूर्ण आयु देनेवाला अक्षय धन हमें प्रदान कर ॥ ७ ॥ हे इन्द्र! बडा यशस्वी, सहस्रों प्रकार दान करनेयोग्य, धन हमें दे दो। ये अन्न रथोंसे लानेयोग्य

है ॥ ८ ॥ धनकी सुरक्षाके लिये धनपालक, स्तुतियोग्य यज्ञके प्रति जानेवाले इन्द्रकी स्तुति हम अपनी वाणियोंसे करते हैं ॥ ९ ॥ प्रगतिशील मानव प्रत्येक सोमयागमें बडे बलकी प्राप्तिके लिये शाश्वत स्थानमें रहनेवाले बडे महान् इन्द्रकी पूजा करता है ॥ १० ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके निम्न लिखित विशेषण आये हैं-

१ सु-शिप्र— उत्तम हनुवाला, उत्तम नासिकावाला, अथवा जिसकी नासिका और हनु सुन्दर है।

२ वृषभः— बैल जैसा बलिष्ठ, वीर्यवान्, शक्तिमान्।

३ पतिः— पालनकर्ता, स्वामी, अधिपति।

४ तुवि द्युम्नः— अत्यंत प्रकाशमान, बहुत धनवाला, अति तेजस्वी।

५ वसुपतिः— धनका स्वामी।

६ ऋग्मियः— ऋचाओंसे जिसकी प्रशंसा होती है, प्रशंसित स्तुत्य।

७ गन्ता— चलनेवाला, चलनेमें अग्रेसर, यज्ञ जैसे शुभ कर्मोंमें जानेवाला।

८ ओजसा महान् अभिष्टिः— अपनी विशाल शक्तिसे सहायता करनेवाला, संरक्षण करनेवाला, शत्रुपर हमला करनेवाला।

९ विश्वानि चक्रिः— सब प्रकारके महान् कार्य करनेवाला, सब पुरुषार्थ करनेवाला।

१० मन्दी— आनंदित, हर्षयुक्त, सदा हास्ययुक्त, उत्साहवृत्तिवाला।

११ सचा आ— अपने साथ (श्रेष्ठ वीरोंको) रखनेवाला।

१२ विश्व चर्षणि.— सब मानवोंका हित करनेवाला।

१३ स्वोकः— बडे विशाल घरमें रहनेवाला।

ये पद इस सूक्तमें इन्द्रके गुण दर्शाते हैं। ये गुण मनुष्य तो अपनाने चाहिये। इनमें 'सुशिप्र' पदसे हनु और नासिकाका सौंदर्य बताया है, यह हर कोई मनुष्य अपना नहीं सकता। परन्तु शेष पद मनुष्यके लिये बोधप्रद हो सकते हैं। साधक बल बढावे, अपने अनुयायियोंका पालन करे, अपनी तेजस्विता बढावे, धनका संग्रह करे, प्रशंसित बने, शीघ्रतासे चलनेका अभ्यास बढावे, अपनी शक्तिके अनुसार जनताकी सहायता करे, सदा अच्छे कर्म करता रहे, सदा आनंदित रहे, अच्छे भद्र पुरुषोंको अपने साथ रखे, इत्यादि बोध उक्त पद दे रहे हैं।

धन कैसा हो ?

किस तरहका धन प्राप्त करना योग्य है, इस विषयमें इस सूक्तके निर्देश मनन करने योग्य हैं-

१ वरेण्यं चित्रं विभु प्रभु राधः- श्रेष्ठ विविध प्रकारका, विशेष बढनेवाला, विशेष प्रभावी और सिद्धितक पहुंचानेवाला धन हो, तथा-

२ गोमत्, वाजवत्, पृथु, बृहत्, विश्वायु, अक्षितं, श्रवः- गौओंके साथ रहनेवाला, बलके साथ रहनेवाला, विस्तृत, बडा, पूर्ण आयुतक जीवित रखनेवाला, अक्षय और यश देनेवाला धन हो, तथा-

३ बृहत् श्रवः, सहस्रसातमं द्युम्नं- बडा यश, सहस्रोंको दान दिया जानेवाला तेजस्वी धन हो।

४ वसु- जो मनुष्योंके सुखपूर्वक निवासका हेतु होता हो ऐसा धन हो।

धनका वर्णन करनेवाले ये पद देखनेसे धन कैसा होना चाहिये इस बातका पता लग सकता है। धन श्रेष्ठ हो, विविध प्रकारका हो, विशेष पराक्रम और प्रभाव बढानेवाला हो, अन्तिम सिद्धितक पहुंचानेवाला हो, धनसे गौओंका पालन होता रहे, बल बढता जाय, आयु बढ जाय, सहस्रोंको दान देनेके बाद भी कम न हो, मनुष्यका जीवन सुखसे व्यतीत हो जाय। (ऋ. १।८।१-२ में) जो धन का वर्णन पूर्वस्थानमें आया है वह भी इसके साथ पाठक देखें। इस सूक्तकी एक विशेषता यह है कि यहां केवल धनकी प्रार्थना नहीं है, प्रत्युत धन प्राप्तिके लिये स्वयं प्रयत्न करनेका भी उपदेश है, देखिये-

प्रथम अपना प्रयत्न

५ रमस्वतः यशस्वतः अस्मान् राये चोदय- हम प्रयत्न करते हैं, यश मिलनेतक हम यत्न करते हैं। इतना करनेके बाद हमें ईश्वर अनुकूलतापूर्वक धन देवे। यहां प्रथम धन प्राप्त करनेके लिये बडा प्रयत्न करना चाहिये, और यश मिलनेतक यत्न करते रहना चाहिये ऐसा जो कहा है वह बडे महत्त्वका है। अपना प्रयत्न प्रथम होना चाहिये, यश मिलनेके लिये जो भी किया जा सकता है, पहिले

करना चाहिये, और पश्चात् ईश्वरकी सहायता मांगनी चाहिये। प्रयत्न करनेवालेकी सहायता ईश्वर अवश्यही करता है।

'अरि' पद

इस सूक्तके अन्तिम मन्त्रमें 'अरिः' पद है। इसका प्रसिद्ध अर्थ 'शत्रु' है। परन्तु यहाँ इसका अर्थ अपनी प्रगति करनेवाला, अपनी उन्नतिका यत्न करनेवाला है। गत्यर्थक 'ऋ' धातुसे यह पद बना है। यौगिक अर्थमें यह भाव इस पदमें दीख पडता है।

न्योकस्

'ओकस्, ओक.' पद घरका वाचक है। नि+ओकः, न्योकस्, ये पद बडे भारी विशाल घरके वाचक है। इन्द्रके घरका यह पद वर्णन करता है। इन्द्र जिस घरमें रहता है वह सबसे बडा घर है। परमात्मा रूप इन्द्र इस विश्वरूप घरमें रहता है। वह सबसे बडा घर है। इसमें इन्द्रके साथ सभी तेंतीस देवगण भी रहते हैं। इसीतरह राजाका घर भी इन्द्रगृहही कहलाता है। वह भी बडा भारी होता था, जिसमें राजाके मंत्री, अनेक कचहरियाँ, अनेक सैनिक आदिका निवास होता है। 'न्योकस्' पदसे यह बोध मिलता है।

धनका दान

धन अपने पास जमा होनेके पश्चात् उसका दान सहस्रों मनुष्योंको करना चाहिये, वह धन किसी अकेलेके भोगके लिये नहीं होता, प्रत्युत वह सहस्रोंके पालन पोषण और संवर्धनमें लगाना चाहिये, यह भाव 'सहस्रसातमं' पदसे व्यक्त होता है। धनीका धन धनीके भोगके लिये नहीं है, प्रत्युत सहस्रों अन्योंके हित करनेके लिये है। यह पद बडाही महत्त्वपूर्ण उपदेश दे रहा है। पाठक इसका यह भाव मननपूर्वक देखें।

इन्द्रः

(१०। १२) मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्र । अनुष्टुप्।

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥
यत्सानोः सानुमारुहद्भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥
युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥
एहि स्तोमाँ अभि स्वराऽभि गृणीह्या रुव।
ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥
उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च ॥ ५ ॥
तमित्सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये।
स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥ ६ ॥
सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः।
गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥ ७ ॥
नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः।
जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥ ८ ॥
आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥ ९ ॥
विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम्।
वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥ १० ॥
आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥ ११ ॥
परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ १२ ॥

अन्वयः- हे शतक्रतो ! गायत्रिणः त्वा गायन्ति। अर्किणः अर्कं अर्चन्ति। ब्रह्माणः, वंशं इव, त्वा उत् येमिरे ॥ १ ॥ यत् सानोः सानु आरुहत्, भूरि कर्त्वं अस्पष्ट। तत् इन्द्रः अर्थं चेतति, वृष्णिः यूथेन एजति ॥ २ ॥ हे सोमपाः इन्द्र ! केशिना वृषणा, कक्ष्यप्रा हरी युक्ष्व हि। अथ नः गिरां उपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥ हे वसो इन्द्र ! एहि। स्तोमान् अभि-स्वर। गृणीहि। आ रुव। नः ब्रह्म च यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥ पुरु-निष्षिधे, इन्द्राय वर्धनं उक्थं शंस्यम्, यथा शक्रः नः सुतेषु सख्येषु च रारणत् ॥ ५ ॥ सखित्वे तं इत् ईमहे, राये तं, सुवीर्ये तं, (ईमहे)। उत शक्रः सः इन्द्रः नः वसु दयमानः शकत् ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! त्वादातं यशः, सुविवृतं सुनिरजं, गवां व्रजं अप वृधि, हे अद्रिवः ! राधः कृणुष्व ॥ ७ ॥ ऋघायमाणं त्वा उभे रोदसी नहि इन्वतः। स्वर्वतीः अपः जेषः। अस्मभ्यं गाः सं धूनुहि ॥ ८ ॥ हे आश्रुत्कर्ण ! इन्द्र ! हवं नु श्रुधि। मे गिरः चित् दधिष्व। मम इमं स्तोमं युजः चित् अन्तरं कृष्व ॥ ९ ॥ वाजेषु

वाजेषु हवनश्रुतं त्वा विद्म हि । वृषन्तमस्य सहस्रसातमां ऊतिं हूमहे ॥ १० ॥ हे कौशिक इन्द्र ! तु न आ (गहि), मन्दसानः सुतं पिब । नव्य आयुः प्र सू तिर । सहस्रसा ऋषिं कृधि ॥ ११ ॥ हे गिर्वण ! विश्वतः इमा गिरः त्वा परि भवन्तु, वृद्धायुं अनु वृद्धयः जुष्टाः जुष्टयः भवन्तु ॥ १२ ॥

अर्थ- हे सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! गायक लोग तेरे (काव्योंका) गान करते हैं । पूजक लोग तुझ पूजार्हकी पूजा करते हैं । ब्रह्मचारी लोग भी (झण्डेके) बाँसको (ऊपर उठानेके समान), तुझे ऊंचा दिखा देते हैं ॥ १ ॥ जब एक पर्वत शिखरपरसे दूसरे पर्वत शिखरपर जानेवाला (कवि) उसकी प्रचण्ड कर्म शक्तिको साक्षात् देखता है, तब इन्द्र भी उसके भावको जानता है और वह वृष्टिकर्ता इन्द्र अपने साथी (सैनिकगणके साथ उसकी सहायताके लिये) दौडता है ॥ २ ॥ हे सोमरस पीनेवाले इन्द्र ! बडी अयालवाले, बलवान्, और पुष्ट दोनों घोडोंको अपने रथके साथ जोत दे । और हमारी वाणीको श्रवण करनेके लिये चल ॥३॥ हे सबको बसानेवाले इन्द्र ! हमारे समीप आ । हमारे स्तोत्रोंकी प्रशंसा कर । आनन्दसे बोल । प्रशंसा कर । और हमारा ज्ञान और कर्म बढाओ ॥ ४ ॥ शत्रुका पूरा नाश करनेवाले इन्द्रका यशोवर्धक स्तोत्र हमें अवश्य गाना चाहिये, क्योंकि वह इन्द्र हमारे पुत्रपौत्रों (या धनों) के तथा मित्रताओंके विषयमें अवश्य ही अनुकूलताके भाषण बोलेगा ॥ ५ ॥ मित्रताके लिये हम उसके पास पहुंचते हैं, धनके लिये और श्रेष्ठ पराक्रमके लिये उसकी ही सहायता चाहते हैं । वह शक्तिमान् इन्द्र हमें धन देनेके लिये समर्थ है ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तेरा दिया यश सर्वत्र फैलता और सहज प्राप्त भी होता है । हमारे लिये गौओंका बाडा खोल दे । हे पर्वतपरसे लडनेवाले इन्द्र ! हमारे लिये धन अर्पण कर ॥ ७ ॥ शत्रुका नाश करनेवाले तुझ वीरका महात्म्य भूमि और द्यु इन दोनों लोकोंमें समाया नहीं जाता । स्वर्गीय जल प्रवाहोंपर तू जय प्राप्त कर । और हमारे लिये गौएँ भेज दे ॥ ८ ॥ हे (भक्तोंकी) प्रार्थना सुननेवाले इन्द्र ! मेरी प्रार्थनाका श्रवण कर । मेरी स्तुतियोंका स्वीकार कर, मेरे इस स्तोत्रको, यह तेरे मित्रका है इसलिये, अपने अन्तःकरणमें रख दो ॥ ९ ॥ तू अत्यंत बलवान् और युद्धोंमें की हुई पुकारका श्रवण करनेवाला है, ऐसा हम जानते हैं । इस बलवान् इन्द्रसे हजारों दानोंके साथ रहनेवाली रक्षादानि हम चाहते हैं ॥ १० ॥ हे कौशिक इन्द्र ! हमारे पास आ, आनन्दसे सोमरसका पान कर । नवीन (उत्साहकी) आयु हमें दे दो । और मुझे सहस्रों सामर्थ्योंसे युक्त ऋषि बना दो ॥ ११ ॥ हे स्तुतिके योग्य इन्द्र ! सब ओरसे की हुई हमारी ये स्तुतियाँ तुझे प्राप्त हों, तेरी आयुकी वृद्धिके साथ ये स्तुतियाँ भी बढती जायँ, तथा तेरे द्वारा स्वीकारी गयी स्तुतियाँ हमारा आनन्द बढानेवाली हों ॥ १२ ॥

कौशिक इन्द्र

इस सूक्तमें इन्द्रको ' कौशिक ' कहा है । इन्द्रके पिताका नाम कुशिक है ऐसी कल्पना कईयोंने की है । परन्तु ऐसा संभव नहीं है । इन दसों सूक्तोंका ऋषि ' विश्वामित्र पुत्र मधुच्छन्दा ' है अर्थात् मधुच्छन्दा ऋषिके पिताका नाम विश्वामित्र है और विश्वामित्रका पिता गाथी है और गाथीका पिता कुशिक है । मधुच्छन्दा-विश्वामित्र-गाथी-कुशिक ऐसा यह वंश है । कुशिकसे उत्पन्न हुएको कौशिक कहते हैं । और कौशिकोंकी सहायता करनेवाले देवको भी कौशिक कहते हैं । कुशिक ऋषिसे उसके कुलमें इन्द्रकी उपासना प्रचलित थी । इसलिये इन्द्रको यहां ' कौशिक ' कहा है । कुशिकके वंशजोंपर कृपा करनेवाला अथवा कौशिकोंका उपास्य देव इन्द्र है । ' कौशिक इन्द्र ' का यह अर्थ है ।

इस सूक्तमें इन्द्रके निम्नलिखित गुण वर्णन किये गये हैं-

१ शतक्रतु.- सैकडों कर्म करनेवाला, अनेक बुद्धि-सामर्थ्योंसे युक्त, कर्मकुशल और प्रज्ञावान्,

२ वृष्णि- वृष्टि करनेवाला, बलवान्, वीर्यवान्,

३ वसु.- बसानेवाला, निवासका हेतु,

४ पुरु नि सिध्- बहुत शत्रुओंका निषेध करनेवाला, शत्रुओंका नाश करनेवाला,

५ अद्रि-व - पर्वतपर रहनेवाला, मेघोंमें रहनेवाला, पर्वतपरके दुर्गमें रहकर शत्रुके साथ लडनेवाला,

६ ऋ-घायमाण - (नृ-हन्) शत्रुके वीरोंका वध करनेवाला, शत्रुके सैनिकोंका वध करनेवाला, (यहाँ ' नृ ' पदमेंसे ' ऋ ' रहा है और ' हन् ' का ' घ ' बना है,

'ऋ + घ' का अर्थ इस तरह शत्रुके सैनिकोंका वध करनेवाला है।)

७ आ-श्रुत्-कर्णः— जिसके कान अनुयायियोंकी पुकार सुनते हैं,

८ वृषन्तम.- अतिव बलवान,

९ हवन-श्रुत— पुकार सुननेवाला, सहायार्थ कोई बुलावे तो उसकी सहायतार्थ जानेवाला,

१० मन्दसानः- आनन्दित,

११ गिर्वण.- स्तुत्य, प्रशंसनीय,

१२ वृद्धायु - बडी आयुवाला

१३ अर्क - पूजनीय

इन पदोंसे जो बोध प्राप्त होता है, पाठक उसका ग्रहण करें। अब और इन्द्रका वर्णन देखिये-

१३ इन्द्रः अर्थ चेतति— इन्द्र अर्थको जानता है, वह आशयको समझ लेता है,

१४ वृष्णि. यूथेन गच्छति- बलवान इन्द्र अपने सैनिकोंके साथ जाता है, शत्रुपर हमला करता है,

१५ ब्रह्म यज्ञं च वर्धय— ज्ञान और कर्मकी वृद्धि करता है,

१६ सखित्वे राये सुवीर्ये त ईमहे— हम इन्द्रकी मित्रता, धन और पराक्रमके लिये चाहते हैं,

१७ स शक्त.- वह समर्थ है,

१८ नव्य आयु सु प्रतिर- नवीन दीर्घायु दे, उत्तम दमय आयु दे।

ये सब वाक्य इन्द्रके गुणोंका वर्णन कर रहे है। ये सब वाक्य उपासकको बडा महत्व पूर्ण उपदेश दे रहे हैं।

ऋषिका निर्माण

'सहस्रसां ऋषिं कृधि'— सहस्रों सामर्थ्योंसे युक्त ऋषि मुझे बनाओ। यह प्रभुसे प्रार्थना है। इस समय मैं ऋषि नहीं हूं, विशेष सामर्थ्योंके बढनेसे ऋषि होना संभव है वैसा ऋषि मैं बनूगा। यह इच्छा इस मंत्रमें व्यक्त हुई है। जो ऋषि नहीं हैं वे यत्नसे ऋषि हो सकते हैं ऐसा इसका तात्पर्य है। 'पूर्व और नवीन' ऋषियोंका वर्णन (ऋ १।१।२ में) है जिसका भाव इसमें स्पष्ट होता है। मनुष्य जैसा ऋषि बन सकता है वैसा मनुष्य देवता भी बन सकता है।

झण्डा ऊंचा करना

'वंशं उत् येमिरे' झण्डा ऊंचा करनेके लिये जैसा बांस ऊंचा खडा कर देते हैं। यह एक उपमा है जो इन्द्रके उच्च स्थानका वर्णन करनेके लिये की है। जैसा बांस ऊंचा करके उसपरके झण्डेको ऊंचा करके सबको दिखाते हैं, उस तरह इन्द्रको स्तोत्रोंके द्वारा ऊंचा करके सबको उसकी उच्चता दिखाते हैं।

गोधन दो

गवां व्रजं अपवृधि। राधः कृणुष्व ॥ (७)
अस्मभ्यं गा. स धूनुहि ॥ ८॥

गौओंका बाडा खोल दो और हमें धन दो। हमें गौवें दे दो। यहाँ गौओंको धन कहा है। सच्चा धन गौवें हैं।

पहाडपरसे कर्तव्य देखो

'जो एक पर्वत शिखरपरसे दूसरे पर्वत शिखरपर चढ जाता है वही प्रभुका कर्तव्य देख सकता है।' (मं० २) पर्वत शिखरपर चढनेसे विशाल सृष्टिकी सुंदरता दीखती है और उससे प्रभुके रचना चातुर्यका ज्ञान होता है। जितना ऊंचा जाना होगा, उतना यह ज्ञान अधिक होगा। यह सत्य है, पाठक इसका अनुभव ले सकते हैं।

ज्ञान और कर्मका वर्धन

ज्ञान और कर्म ये दो ही मानवी उन्नतिके अत्यंत प्रबल साधन हैं। मनुष्यमें जितना ज्ञान अधिक होगा, और जितना उसमें कर्म करनेका सामर्थ्य होगा उतना मनुष्य उन्नत हो सकता है। इसीलिये मनुष्यको जैसा ज्ञान बढाना चाहिये, वैसी अपनी कर्मशक्ति भी बढानी चाहिये। ज्ञान बढनेसे नाना प्रकारके कर्म मनुष्य कर सकता है। इस सूक्तका 'शत-क्रतु' पद ज्ञान और कर्म शक्तिका वाचक है। 'शतक्रतु' होनेका आदर्श मनुष्यके सामने रखा गया है। पाठक अपनेमें ज्ञान और कर्मकी शक्ति बढाकर शतक्रतु बननेका यत्न कर सकते हैं।

इन्द्रः

(११।१-८) जेता माधुच्छन्दस । इन्द्र । अनुष्टुप्।

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचस गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥४॥
त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥५॥
तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् ।
उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥६॥
मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥
इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥८॥

अन्वयः— विश्वाः गिरः, समुद्र-व्यचसं, रथीनां रथीतमं, वाजानां पतिं, सत्पतिं इन्द्रं अवीवृधन् ॥ १ ॥ हे शवसस्पते इन्द्र ! ते सख्ये वाजिनः मा भेम। जेतारं अपराजितं त्वा अभि प्रणोनुमः ॥ २ ॥ इन्द्रस्य रातयः पूर्वीः। स्तोतृभ्यः गोमतः वाजस्य मघं यदि मंहते, ऊतयः न वि दस्यन्ति ॥ ३ ॥ पुरां भिन्दुः, युवा कविः, अमितौजाः, विश्वस्य कर्मणः धर्ता पुरुष्टुतः वज्री इन्द्रः अजायत ॥ ४ ॥ हे अद्रिवः ! त्वं गोमतः वलस्य बिलं अप अवः। तुज्यमानासः देवाः अबिभ्युषः त्वा आविषुः ॥ ५ ॥ हे शूर ! तव रातिभिः अहं सिन्धुं आवदन् प्रत्यायं। हे गिर्वणः ! कारवः उप अतिष्ठन्त, तस्य ते विदुः ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! त्वं मायिनं शुष्णं मायाभिः अवातिरः। मेधिराः तस्य ते विदुः। तेषां श्रवांसि उत्तिर ॥ ७ ॥ स्तोमाः ओजसा ईशानं इन्द्रं अभि अनूषत। यस्य रातयः सहस्रं सन्ति, उत वा भूयसीः ॥ ८ ॥

अर्थ— सब वाणियाँ, समुद्र जैसे विस्तृत, रथियोंमें श्रेष्ठ रथी, बलों (या अन्नों) के स्वामी, सज्जनोंके पालन कर्ता इन्द्र (के महत्त्व) को बढाते हैं ॥ १ ॥ हे बलोंके स्वामी इन्द्र ! तेरी मित्रतामें (रहकर) बलिष्ठ बने हम किसीसे डरेंगे नहीं। नित्य विजयी और कभी पराजित न हुए तेरी हम प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥ इन्द्रके दान प्राचीन कालसे (मिलते रहे हैं)। स्तोताओंके लिये गौओंसे प्राप्त अन्नका दान जो देते हैं, उनके लिये इन्द्रके संरक्षण कभी कम नहीं होते ॥ ३ ॥ शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला तरुण ज्ञानी, अपरिमित बलवाला, सब कर्मोंका धारण कर्ता, बहुतों द्वारा प्रशंसित, वज्रधारी इन्द्र (अब) प्रकट हुआ है ॥ ४ ॥ हे पर्वतपरसे लडनेवाले इन्द्र ! तूने गौवें छीन लेनेवाले बल असुरके (दुर्गके) द्वारको खोल दिया है। (इस युद्धमें) सताये हुए देव (तेरी सुरक्षाके कारण) न डरते हुए तेरे पास पहुंचे ॥ ५ ॥ हे शूर ! तेरे दानोंसे (उत्साहित हुआ) मैं, सोमरसका वर्णन करता हुआ, तेरे पास पुनः (दान लेनेके लिये) आया हूं। हे स्तुत्य इन्द्र ! जो कारीगर तेरे पास पहुँचे हैं, वे तेरी महिमाको जानते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तूने मायावी शुष्ण असुरको अपनी कुशल योजनाओंसे परास्त किया है। मेधावी लोग तेरे (इस महत्त्वको) जानते हैं। उनके यशोंको तू बढाओ ॥ ७ ॥ सब यज्ञ अपने सामर्थ्यसे स्वामी इन्द्रकी प्रशंसा फैलाते हैं। उस इन्द्रके दान हजारों हैं अथवा उससे भी अधिक हैं ॥ ८ ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके निम्नलिखित गुणोंका वर्णन किया है—

१ समुद्र-व्यचाः— समुद्रके समान विस्तृत, बहुत ही बडा, समुद्रके पार जिसकी प्रशंसा फैली है,

२ रथीनां रथीतम — रथियोंमें श्रेष्ठ वीर, वीरोंमें श्रेष्ठ वीर, शूरोंमें शूर,

३ वाजानां पति — बलोंका स्वामी, अन्नोंका स्वामी, बहुत संख्यामें जिसके पास अनेक सामर्थ्य हैं।

४ सत्पति — सज्जनोंका पालन करनेवाला, भ० गीतामें 'परित्राणाय साधूनां' (गी० ४।८) भगवानको साधुओंकी रक्षा करनेवाला कहा है वही भाव यहां है। श्रीकृष्ण वृष्णि थे, यह 'वृष्णि' पद इन्द्रवाचक गत सूक्तमें (ऋ० १।१०।२) आया है। दुष्ट कर्म करनेवालोंका नाश करनेवाला तो अनेक वार कहा ही गया है।

५ शवस-पति — बलका स्वामी, बलिष्ठ,

६ जेता— जयशाली, विजयी, जीतनेवाला,

७ अपराजित— जो कभी पराजित नहीं होता, सदा विजयी,

८ पुरां भिन्दु — शत्रुकी नगरियोंको, शत्रुके कीलोंको

तोडनेवाला,

९ युवा— तरुण, जवान्

१० कविः- कवि, ज्ञानी, विद्वान्,

११ अमित-ओजाः— अपरिमित सामर्थ्यवान्

१२ विश्वस्य कर्मणः धर्ता— सब कर्मोंका धारण करनेवाला, सब कर्मोंका आधार, सब कर्मोंका संचालक,

१३ वज्री- वज्रधारी,

१४ पुरु-स्तुतः- अनेकोंद्वारा प्रशंसित,

१५ अद्रि-वः- पर्वतपर रहनेवाला, मेघोंमें रहनेवाला, पर्वतपरके कीलोंमें रहकर शत्रुसे लडनेवाला,

१६ शूरः- शूर वीर,

१७ गिर्वणः- स्तुतियोग्य,

१८ ईशानः- स्वामी, अधिपति,

१९ मायिनं मायाभिः अवातिरः— कपटी शत्रुका नाश कपट युक्तियोंसे करनेवाला,

सोमरस

इस सूक्तमें ' सिन्धु ' पद सोमरसका वाचक है, इसका कारण यह है कि सोमरस निकालते ही उसमें (सिंधु) नदीका पानी मिलाते हैं और छानते हैं। जिसमें नदीका पानी मिलाया जाता है उसका नाम सिंधु ही है।

वल असुर

वल नामक असुर था, वह गौवें चुरा कर ले जाता था और किसी गुप्त स्थानमें उनको बंद करके रखता था। इन्द्र उस स्थानका पता लगाता था, उस स्थानके द्वारको तोडकर गौओंको शत्रुसे मुक्त करके उनके स्वामीको देता था। यह बात — ' गोमतः वलस्य बिलं त्वं अप अवः । ' (५) इस मंत्रमें है।

' वल् ' धातुका अर्थ ' घेरना, लपेटना आच्छादन करना, संचार करना ' है। इस कारण ' वल ' का अर्थ घेरनेवाला, आच्छादन करनेवाला ' है। ' वृत्र ' का भी यही अर्थ है। अत्यंत शीत प्रदेशमें सर्दीके कारण जो बर्फ भूमिपर अथवा पर्वतादिपर गिरता है उसका यह नाम है। भूमिपर लपेटनेवाला।

उत्तरी ध्रुवमें अंधेरा पडना और बर्फ पडना एक ही समय होता है, अन्धेरा पडनेका ही नाम सूर्यके किरणोंपर अन्धेरेका आच्छादन होना, अर्थात् यही गौओंका चुराना है। सूर्य-किरणोंका नाम गौवें हैं।

इस अन्धेरा, दीर्घरात्री, बर्फका भूमिपर ढकना, आदि पर अनेक रूपक वेदमें किये गये हैं। अन्धकारको दूर करना और प्रकाशका फैलाव करना ही धर्म है। यही धर्म इन नाना प्रकारके रूपकों द्वारा बताया है।

सूर्यास्त होता है, यही विवरमें सूर्यको बंद करना है, और सूर्योदयकाही अर्थ उस विवरको तोडकर सूर्यका तथा किरणोंका बाहर आना है। अतः ' बिलं ' पद जो यहां है वह सार्थ है।

वीरताका आदर्श

इस सूक्तमें इन्द्र वीरताका आदर्श करके वर्णन किया है। ये सब वर्णन पाठक अपने लिये आदर्श समझें और उनको अपनानेके यत्नमें प्रयत्नशील हों। यही वेदोंका मनन, और ध्यान है।

यहां प्रथम मण्डलमें 'मधुच्छन्दाका दर्शन' समाप्त होता है।

सोमः

(ऋ० ९।१।१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः।
पवमानः सोमः। गायत्री।

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥
रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम् ।
द्रुणा सधस्थमासदत् ॥ २ ॥
वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः ।
पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥
अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ ४ ॥
त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे ।
इन्दो त्वे न आशसः ॥ ५ ॥
पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता ।
वारेण शश्वता तना ॥ ६ ॥
तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश ।
स्वसारः पार्ये दिवि ॥ ७ ॥
तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम् ।
त्रिधातु वारणं मधु ॥ ८ ॥
अभीममघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम् ।
सोममिन्द्राय पातवे ॥ ९ ॥

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते ।
शूरो मघा च मंहते ॥ १० ॥

अन्वय – हे सोम ! इन्द्राय पातवे सुत. (त्वं) स्वादिष्ठया मदिष्ठया धारया पवस्व ॥१॥ रक्षोहा विश्वचर्षणिः अयोहतं द्रुणा सधस्थं योनिं आ असदत् ॥ २ ॥ वरिवोधातमो भव मंहिष्ठः वृत्रहन्तमः मघोनां राधः पर्षि ॥ ३ ॥ महानां देवानां वीतिं अन्धसा अभि अर्ष । वाजं उत श्रवः अभि (अर्ष) ॥ ४ ॥ हे इन्दो ! दिवेदिवे तत् इत् अर्थं त्वां अच्छ चरामसि । न. आशसः त्वे ॥ ५ ॥ ते परिस्रुतं सूर्यस्य दुहिता वारेण शश्वता तना पुनाति ॥ ६ ॥ समर्ये पार्ये दिवि दश स्वसारः योषणः तं ईं आ गृभ्णन्ति ॥ ७ ॥ तं ईं अग्रुवः हिन्वन्ति । बाकुरं दृतिं धमन्ति । त्रिधातु वारणं मधु (भरति) ॥ ८ ॥ उत इमं शिशुं सोमं अघ्न्याः इन्द्राय पातवे अभि श्रीणन्ति ॥ ९ ॥ शूरः इन्द्रः अस्य मदेषु विश्वा वृत्राणि आ जिघ्नते । मघा च मंहते ॥ १० ॥

अर्थ— हे सोम ! इन्द्रके पीनेके लिये निकाला गया (तू रस) स्वादु और मधुर धारासे छाना जा ॥ १ ॥ राक्षसोंका नाशक और सब मानवोंका हितकारी (यह सोम) सुवर्णसे तथा लकडीसे ताडित हुआ साथवाले स्थानमें बैठता है ॥ २ ॥ (हे सोम !) तू धनका दाता हो । बडा होकर शत्रुओंका नाशकर्ता होता हुआ धनवानोंके धनका दान कर ॥ ३ ॥ बडे देवोंकी प्रसन्नताको अपने अन्नमय रससे संपन्न कर । तथा बल और यशको बढा ॥ ४ ॥ हे सोम! प्रतिदिन इसी कार्यके लिये तेरे पास हम आते हैं । हमारी आशाएं तेरे अन्दर (स्थिर हुई हैं) ॥ ५ ॥ तेरेसे चूनेवाले रसको सूर्यकी दुहिता बालोंकी शाश्वत फैली हुई (छलनीसे) छानती है ॥ ६ ॥ सब मानवोंके समेत अन्तिम दिनमें दस बहिनें स्त्रियें (अंगुलियां) उस (रसका) ग्रहण करती हैं ॥ ७ ॥ उसीको अंगुलियां हिलाती हैं । वे फैलाये चर्मपात्रको बजाती हैं । और तीन पात्रोंसे दुःखनिवारक मधुर रस रखती हैं ॥ ८ ॥ इस पुत्र जैसे सोमरसको गौवें इन्द्रके पीनेके लिये (अपने दूधके साथ) मिला देती हैं ॥ ९ ॥ शूर इन्द्र इसके आनंदोंमें सब वृत्रोंका — शत्रुओंका – नाश करता है । और धनोंका दान करता है ॥ १० ॥

यह सोमका सूक्त है । पहिले मंत्रमें इन्द्रके पानके लिये यह सोमका रस निकाला है ऐसा कहा है । छाननीसे यह छाना जाता है । द्वितीय मंत्रमें इस रसको ' रक्षो-हा ' कहा है । यह राक्षसोंका नाश करता है । इन्द्र, मरुत् आदि वीर सोमरसको पीते हैं और उससे उत्साहका वर्धन होनेके बाद वे असुरों और राक्षसोंका नाश करते हैं । यह एक प्रकारका असुरनाश है । रोगबीजरूपी राक्षस भी इस रससे मारे जाते हैं । यह रस रोगबीजोंका नाश करता है और आरोग्य बल तथा दीर्घायु देता है । यह दूसरे प्रकारका असुरवध है । यह दोनों प्रकारका लाभ सोमरससे होता है ।

इस सोमको द्वितीय मंत्रमें 'विश्व-चर्षणि' कहा है । सारी मानवजाति ऐसा इसका अर्थ है । अर्थात् यह रस सारी मानवजातीका हित करता है । यह रस पुष्टिकारक, उत्साहवर्धक, बलवर्धक, दीर्घायुवर्धक है इसलिये यह मानवोंका हितकारी है ।

' अयोहतं द्रुणा हतं ' ऐसा वर्णन इसी मंत्रमें है, ' अयः ' का अर्थ लोहा, सुवर्ण और पत्थर है । लोहेकी मुसलसे यह कूटा जाता है, सुवर्णका आभूषण हाथमें धर कर यह कूटा जाता है, अथवा पत्थरोंसे यह कूटा जाता है । हमारे मतसे तीसरा अर्थ यहां विवक्षित है, क्यों कि आगे सोमके सूक्तोंमें पत्थरोंद्वारा सोमके कूटनेका अनेकवार उल्लेख है । ' द्रुणा हतं ' का अर्थ लकडीके सलेपर सोम कूटा जाता है, द्रु का अर्थ लकडी है । साथवाला स्थान यह है कि जहां सोम कूटा जाता है ।

तृतीय मंत्रमें सोम वृत्रका वध करता है ऐसा कहा है । असुरवधके विषयमें इससे पूर्व कहाही है । इसी मंत्रमें ' धनवानोंके धनोंका दान करता है ' ऐसा कहा है । यहां धनवानोंके अर्थात् धनवान शत्रुओंसे धन लाता और उस धनका दान करता है, ऐसा अर्थ समझना योग्य है । सोमरस पानसे बल, वीर्य और पराक्रम बढता और शत्रुपर विजय मिलता है । विजयसे धन मिलता है जिसका दान दिया जाता है । विजयमें प्राप्त धनका स्वयं भोग नहीं करना है, प्रत्युत उस धनका दानसेही भोग करना है ।

सोमरसके पानसे मनकी प्रसन्नता होती है, ऐसा चतुर्थ मन्त्रका कथन है, सोमरस तो एक उत्तम पौष्टिक अन्न है । उत्साह बल तथा यशकी वृद्धि इससे होती है, इसीसे मन प्रसन्न होता है ।

अंगुलियोंसे यह पकडा जाता है और दोनों हाथोंकी अंगुलियोंसे बडी शक्ति लगाकर दोनों ओरसे दबाकर रस निकाला जाता है।

अष्टम मंत्रमें यही फिरसे कहा है। तीन पात्रोंमें यह रस रखते हैं। एकके ऊपर दूसरा और दूसरेपर तीसरा ऐसे तीन पात्र रखते हैं और एकसे दूसरेमें और दूसरेसे तीसरेमें यह छाना जाता है। अधिक बार छाननेसेही यह अधिक शुद्ध होता है। यह रस मधुर है और दुःखका निवारण करनेवाला है अर्थात् इसके सेवनसे उत्साह बढता है, शारीरिक क्लेश दूर होते हैं और मनुष्यकी कर्मशक्ति बढती है।

नवम मंत्रमें सोमरसको बालक या पुत्र कहा है। सोम वल्ली माता है, और यह रस उसका पुत्र है। इसको गौवें दूध पिलाती हैं। इस तरह दूध पीकर यह रसरूपी बालक पुष्ट होता है। यह बडा उत्तम आलंकारिक वर्णन है। सोमरसको अन्य मंत्रोंमें 'शिशु' भी कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि सोमरसमें गौका दूध मिलानेके बादही उसका पान करते हैं।

दशम मन्त्रका कथन है कि शूर इन्द्र सोमरस पीकर आनन्द-प्रसन्न होता है और इस उत्साहमें सब शत्रुओंका नाश करता है तथा उनका धन अपने राज्यमें लाकर अपने अनुयायियोंको बांट देता है।

इस मन्त्रोंमें सोमके विषयमें इतना वर्णन है। इस सूक्तमें सोमके कुछ विशेषण वीरताका वर्णन करनेवाले हैं। उनका स्वरूप यह है—

१ रक्षो-हा- राक्षसोंका वध करनेवाला, शत्रुओंका नाश करनेवाला,

२ विश्व-चर्षणि – सब मानवोंका हित करनेवाला, जनताका हित करनेवाला,

३ वरिव -धा-तम — विपुल प्रमाणमें धन देनेवाला, धनका अधिकसे अधिक दान करनेवाला, (तुलना करो 'रत्न धा-तम' से। ऋ० १।१।१)

४ मंहिष्ठ — महान्, बडा,

५ वृत्र-हन्तम — असुरोंका नाशकर्ता, शत्रुओंका नाशकर्ता, रुकावटोंका खूब विध्वंस करनेवाला।

६ सदस्थ आसीद— अपने स्थानमें रह, अपने देशमें रह, (तुलना करो 'स्वे दमे वर्धमानं' से। ऋ० १।१।८)

७ मघोना राध पर्षि— शत्रुके धनिकोंका धन लाकर अपने लोगोंको दो। (सूचना- यह शत्रुके धनको लूटनेकी रीति आजतक चली आयी है।)

ये गुण मानवोंके लिये अपनाने योग्य हैं। इनमें वीरता दातृत्व आदि गुण विशेष उल्लेखनीय हैं।

मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन

विश्वामित्र पुत्र मधुच्छन्दा ऋषिके देखे मंत्र ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें १०२ हैं, नवम मण्डलमें सोमदेवताके १० मंत्र हैं। अर्थात् कुल ११२ मंत्र ऋग्वेदमें हैं और इसके पुत्र जेता ऋषिके ८ हैं। सब मिलकर १२० मंत्र होते हैं। इन मंत्रोंमें इन दो ऋषियोंका तत्त्वज्ञान ग्रथित है, जिसे अब देखना है और उसका मनन करना है। इन मन्त्रोंका ब्यौरा देवताओंके अनुसार इस प्रकार है।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र

प्रथम अनुवाक।

ऋ० १।१।१—९ अग्नि ९ मन्त्र
२।१—३ वायु ३ „
२।४—६ इन्द्रवायू ३ मंत्र
७—९ मित्रावरुणौ ३
३।१—३ अश्विनौ ३
४—६ इन्द्र ३
७—९ विश्वे देवा ३
१०—१२ सरस्वती ३ (मंत्र ३०)

द्वितीय अनुवाक।

४।१—१० इन्द्र १०
५।१—१० „ १०
६।१—१० इन्द्रामरुतौ १०
७।१—१० इन्द्र १० (मंत्र ४०)

तृतीय अनुवाक ।
१।८।१—१० इन्द्रः १०
९।१—१० ,, १०
१०।१—१२ ,, १२

जेता माधुच्छन्दसः ।

११।१–८ इन्द्रः ८ (मंत्र ४०)
११०
९।१।१—१० सोमः १० १०
१२०

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रके मंत्र ११२
जेता माधुच्छन्दाके ,, ८
१२०

ऋग्वेद-सूक्तक्रमसे ये मंत्र लिखे हैं, अब देवताके क्रमसे मंत्रसंख्या इसतरह है—

वेदक्रम		मन्त्राधिविषयक्रम	
अग्नि.	९ मंत्र	इन्द्र	७२ मंत्र
वायु.	३ ,,	सोम·	१० ,,
इन्द्रवायू	३ ,,	इन्द्रामरुतौ १०	,,
मित्रावरुणौ	३ ,,	अग्नि·	९ ,,
अश्विनौ	३ ,,	वायु·	३ ,,
विश्वे देवा	३ ,,	इन्द्रवायू	३ ,,
सरस्वती	३ ,,	मित्रावरुणौ	३ ,,
इन्द्रामरुतौ	१० ,,	अश्विनौ	३ ,,
इन्द्रः	७२ ,,	विश्वे देवाः	३ ,,
सोमः	१० ,,	सरस्वती	३ ,,
	१२० मंत्र		१२० ,,

इन्द्र ७२, सोम १०, इन्द्रामरुतौ १०, अग्नि ९ शेष (१) वायु— (२) इन्द्रवायू— (३) मित्रावरुणौ— (४) अश्विनौ — (५) विश्वे देवा — (६) सरस्वती इनमेंसे प्रत्येकके तीन तीन मिलकर उक्त छः देवताओंके १८ होते हैं । ये सब १२० हुए ।

ऋषि देवताओंका साक्षात्कार करते हैं, उन देवताओंमें वे अपने अतीन्द्रिय दृष्टिसे कुछ विशेष गुणधर्म देखते हैं । इनमें कई गुणधर्म ऐसे हैं कि जो अन्य लोग देख नहीं सकते, केवल अभौतिक दिव्य दर्शन करनेवाले ऋषिही देखते हैं, कविही देख सकते हैं । ये इनके जो दर्शन हैं, वे ऋषियोंके साक्षात्कृत दर्शन हैं । ये दर्शनही मानवधर्मका प्रकाश करनेवाले हैं ।

ऋषिकी दृष्टिमें अग्नि जातवेदा है, पवि है, द्रविणोदा है, गोसखा रक्षोहा है । ये गुणधर्म सामान्य जन अग्निमें तथा सोममें देख नहीं सकते । अतीन्द्रियार्थदर्शी ऋषिही देख सकते हैं । अतीन्द्रियदर्शनसे वेदका काव्य भरपूर भरा है, इस कारणही इस काव्यकी विशेषता है और जो अतीन्द्रिय दृष्टिसे देखा हुआ ऋषियोंका साक्षात्कृत धर्म है, वही इसी कारण इस काव्यमें प्रकट हुआ है, जो मानवोंको मननपूर्वक देखना योग्य है ।

इसके देखनेकी कुछ विशेष रीति है, उसी रीतिके अनुसार यह मानवधर्म देखा जा सकता है । जैसा देवता आचार व्यवहार करते हैं, वैसा व्यवहार मानवोंको करना चाहिये । देवताको अपना आदर्श मानना चाहिये और उनके समान बननेका यत्न करना चाहिये ।

> यद्देवा अकुर्वंस्तत्करवाणि । (श० ब्रा०)
> मर्त्या ह वा अग्रे देवा आसुः॥ (श०ब्रा०११।१।२।१२; ११।२।३।६)
>
> एतेन वै देवा देवत्वमगच्छन् ।
> देवत्वं गच्छति य एवं वेद । (तां०ब्रा०२२।१२।२-३)

'जैसा देव करते हैं वैसा मैं करूंगा । देव प्रथमतः मर्त्य ही थे । वे विशेष श्रेष्ठ कर्मके अनुष्ठानसे देवत्वको प्राप्त हुए । जो इस अनुष्ठानको जानता है, वह देवत्व प्राप्त करता है ।' ऋग्वेदके मंत्रमें भी कहा है—

> मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः । (ऋ० १।११०।४)
> सायणभाष्य-एवं कर्माणि कृत्वा मर्तासो मनुष्याः अपि सन्तोऽमृतत्वं देवत्वं आनशुः आनशिरे । कृतैः कर्मभिर्लेभिरे । (ऋ० १।११०।४)

'ऋभुदेव प्रथम मर्त्य थे, पश्चात् शुभ कर्म करनेसे देवत्वको प्राप्त हुए ।' इस तरह मर्त्य भी देवत्वको प्राप्त होते हैं । देवत्वके गुणधर्मोंको धारण करनेसे मर्त्य देव बनते हैं । यही इस सब प्रतिपादनका तात्पर्य है । इस विवरणका तात्पर्य यह है कि वेदके मंत्रोंमें जो देवोंका गुणवर्णन है, वह मनुष्योंको अपने जीवनमें धारण करनेके लियेही है । देवत्व-प्राप्तिका यही अनुष्ठान है ।

इस दृष्टिसे मंत्र और सूक्त देखनेसे, उनसे जो मानव-धर्म मिलना संभव है, वह मनुष्यके मनमें मंत्रके मननसे उतर सकता है। उदाहरणके लिये देखिये—

'इन्द्र वृत्रका वध करता है' यह एक मंत्रका अर्थ है। वृत्रका अर्थ 'घेरकर लडनेवाला शत्रु' है। इस मन्त्रसे मानवको इस क्षात्रधर्मका ज्ञान होता है कि 'मनुष्य अपने शत्रुका नाश करे।' इसीतरह अन्यान्य मन्त्रोंके विषयमें जानना उचित है। वेदमंत्रोंसे मानवधर्म इस तरह प्रकट होता है।

देवताके स्थानमें उपासक अपने आपको रखे और मन्त्रोक्त वर्णन अपना वर्णन होनेके लिये कितने अधिक अनुष्ठानकी आवश्यकता है, इसकी परीक्षा करे। सोम आदि देवताओंके विषयमें विशेष आलंकारिक रीतिसे बोध लेना पडेगा। सोम-(स+उमा)— विद्या (उमा) है, उसके समेत विद्वान्‌ही सोम है। इस सोमका ज्ञानरूप रस है, यही सोमरस है। हरएक मनुष्य ज्ञान ग्रहण करता है यह शिष्य गुरुरूपी सोमके ज्ञानरूप रसको पीता है और ज्ञान ग्रहण करके समर्थ और प्रभावी होता है। इस-तरह सोमके विषयमें जानना चाहिये।

मन्त्रोंसे अनुष्ठानकी रीति इस तरह जानी जा सकती है। पाठक मन्त्रोंका मनन करते जायेंगे तो उनको इस बातका पता लगता जायगा। यहां संकेतमात्र लिखा है। प्रत्येक देवताके लिये पृथक् विवरण करना आवश्यक है। परंतु देवताके समान अपना जीवन करनाही अनुष्ठानका मुख्य सूत्र है, इसमें संदेह नहीं है। अब मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनका विचार कीजिये। मधुच्छन्दा ऋषिने जो मन्त्र देखे वे यहां १२० हैं। इस ऋषिने कौनसा आदर्श देवता ओंमें देखा और उन्होंने वह जनताके सम्मुख रखा है, इस बातका अब विचार करना है।

अग्नि देव- [आदर्श ब्राह्मण]

प्रथम अनुवाक।

मधुच्छन्दा ऋषिके इन मन्त्रोंमें अग्निदेवके वर्णनके लिये ९ मन्त्र हैं। इनमें निम्न लिखित आदर्श ऋषिने देखा है—

[१] इस सूक्तके 'पुरोहित, ऋत्विक्‌ होता (मं०१)' ये पद पौरोहित्यके, अर्थात् यज्ञकर्मके बोधक हैं। इन पदोंसे पौरोहित्य, ऋत्विक्‌कर्म और हवन करनेका भाव प्रकट होता है। इसतरह अग्नि देवताके मन्त्रोंमें ब्राह्मणकर्मकी झलक दीखती है। 'होता' पद ५ वें मन्त्रमें भी पुनः आया है। वह देवोंको बुलाने, आवाहन करनेका बोध करता है।

[२] छठे मंत्रका 'अंगिरः (मं० ६) पदभी अंग-रस-विद्याके प्रचारक तथा अग्निकी उत्पत्ति करके यज्ञ-विद्याके प्रवर्तक आंगिरस ऋषिका सूचक है।

[३] 'सत्य' (५) और 'ऋतस्य गोपा' (८) सत्यका रक्षक ये पदभी सत्यपालन करनेका गुण बता रहे हैं। यमनियममें सत्यपालन एक व्रत है, जो इन पदोंसे बताया है। 'यशस्य देव.' (मं० ३) ये पद यज्ञका प्रकाशक होनेका भाव बता रहे हैं। यज्ञमार्गका प्रवर्तन करनेका भाव इससे स्पष्ट होता है।

[४] 'अध्वरं परिभू' (मं० ४) हिंसारहित यज्ञ-का करनेवाला है। इसके कर्ममें हिंसा नहीं होती। यम नियमपालनमें 'सत्य'के विषयमें पहिले कहा, अब 'अहिंसा'के विषयमें यह निर्देश है। अ हिंसाके लिये यहाँ 'अध्वर' पद है। जो अहिंसामय कर्म है वही 'स देवेषु गच्छति' (४) देवोंके पास पहुंचता है। देव उस कर्मका स्वीकार करते हैं कि जो हिंसारहित होता है। हरएकको इस कारण हिंसारहित कर्म करने चाहिये। इस तरह कर्ममें अहिंसाका पालन करना आवश्यक है। 'अध्वराणां राजन्‌' (मं० ८) अहिंसापूर्ण कर्मोंके प्रकाशना आवश्यक है। मनुष्यको अहिंसापूर्ण कर्मोंसेही अपना यश बढाना चाहिये। अहिंसामय कर्म करनाही मानवोंका श्रेष्ठ धर्म है। अहिंसा और अकुटिलताही मानव धर्मका मुख्य सूत्र है।

[५] 'कवि क्रतु' (५) 'कवि' पद ज्ञानीका वाचक है और 'क्रतु' पद ज्ञान, प्रज्ञा और कर्मका वाचक है। ज्ञानपूर्वक कर्म करने चाहिये। ज्ञानी और कर्मप्रवीण होने-की सूचना इससे मिलती है।

[६] स्वे दमे वर्धमान (८) अपने स्थानमें वृद्धि-को प्राप्त होना। अपने देशमें उन्नतिको प्राप्त करना चाहिये। उन्नति या प्रगतिका भाव यह है—

[७] रयिं पोष वीरवत्तम यशसं अश्नवत् (३) 'धन, पोषण और वीरोंका यश प्राप्त करना चाहिये।' अर्थात् वीरोंके साथ रहनेवाला धन, वीरोंके साथ रहनेवाला पोषण और वीरोंका यश प्राप्त करना चाहिये। यही 'चित्र श्रव तम' (५) विलक्षण यश है, यही श्रेष्ठ यश है। इसको प्राप्त करनेके लिये-

[८] 'देव देवेभि आगमत्' (५) स्वय देवत्व प्राप्त करे और वैसेही दिव्य गुणोंवाले भद्र पुरुषोंके साथ रहे। स्वय भद्र पुरुष बनना और भद्र पुरुषोंके साथ रहना चाहिये। विशेष यश और वीरोंका यश प्राप्त करनेका यही साधन है।

[९] 'दाशुषे भद्रं करिष्यसि।' (६) दाताका कल्याण करो।जो मनुष्य उदार है, अपने धनका जनताकी भलाई करनेके लिये दान देता है, उसका भला करना सबका कर्तव्यही है। दानही एक मार्ग है जिससे सबका सच्चा हित होता है।

[१०] 'स्वस्तये सचस्व' (९) कल्याण करनेका यत्न कर। यह कल्याणका मार्ग दानके साथ जाता है।

[११] 'पिता सूनवे सूपायन.' (९) पिता पुत्रको जैसा सुप्राप्य है वैसा तू बन। धन और पराक्रमकी घमडमें बैठकर दूसरोंको अप्राप्य न बन।

[१२] दिवेदिवे दोषावस्त धिया नमो भरन्त।' (७) प्रतिदिन रात्रिमें और दिनमें बुद्धिसे नम्र होकर ईश्वर की उपासना करो। यह बुद्धिकी शक्ति बढानेका मार्ग है।

यह मानवके सामने आदर्श ब्राह्मणका रूप मधुच्छन्दा ऋषिने अग्निके वर्णनसे इस सूक्तके द्वारा रखा है। इसका सक्षेपसे यह आशय है-- (१) पारोहित्य, ऋत्विक्कर्म, तथा हवनकर्ममें प्रवीण बन, (२) अगरसकी विद्यामें चिकित्साशास्त्रमें प्रवीण हो, (३) सत्यका पालन कर, (४) हिसारहित कर्म कर ऐसे कर्म कर कि जो देवोंको पसद होंगे (५) ज्ञानी बनकर, प्रज्ञाको विज्ञानमय करके, श्रेष्ठ कर्म कर, (६) अपने स्थानमें श्रेष्ठ बन, (७) धन, पोषण और वीरोंका यश प्राप्त कर, (८) श्रेष्ठ बन और श्रेष्ठोंके साथ रह, (९) उदार दाताका कल्याण कर, (१०) सबका हित करनेका यत्न कर, (११) जैसा पिता पुत्र सबध प्रेमका होता है, वैसा प्रेमका संबध निर्माण कर। कभी द्वेष न कर। (१२) प्रतिदिन सुबह शाम ईश्वरो पासना मनको नम्र करके कर।

इतने शुभ गुणोंसे युक्त होनेसे मनुष्य देवत्वको प्राप्त करता है। यह दर्शन मधुच्छन्दा ऋषिने किया, जो इस सूक्तमें मानवधर्मके रूपमें हमें भी इन मन्त्रोंके मननसे प्राप्त हो सकता है।

वेदोंमें अग्निवर्णनके सूक्तोंमें आदर्श ब्राह्मणका स्वरूप इस तरह है।

(२-१) वायुदेव (आदर्श क्षत्रिय)

द्वितीय सूक्तमें प्रथम त्रिक वायुदेवका है, जो मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें दूसरा है। इसमें मुख्य वाक्य यह है-

'हे दर्शत वायो! आ याहि। हव श्रुधि।
तव पपृञ्चती उरूची धेना दाशुषे जिगाति।'

इसका आशय यह है- 'हे दर्शनीय वायो' यहा आओ, और हमारी प्रार्थनाको सुन लो। तेरी हृदयस्पर्शी विस्तृत वाणी दाताकाही वर्णन करती है।'

यहा वायुका यौगिक अर्थ 'गतिमान् और शत्रुनाशक है। (वा- गति- गन्धनयो) जो अपनी तथा अपने समाजकी प्रगति करता है और जो शत्रुका नाश करता है वह वीर वायु है। वायुकाही वर्णन 'मरुत्' देवताके वर्णन से वेदमें अन्यत्र आया है, जो वीरोंकाही वर्णन है। वायु ही मरुत् हैं और वे मरनेतक उठकर लडनेवाले वीर हैं। इससे वायुका वर्णन वेदमें वीरोंका वर्णन है, यह बात स्पष्ट होती है। वायु जब प्रचण्ड वेगसे चलने लगता है, तब वह वृक्षोंको उखाड देता है, यही वीरोंका शत्रुको स्थानसे उखाड देना है।

वायुका प्रतिनिधि शरीरमें 'प्राण' है। शरीरमें प्राण अशुद्धिको दूर करता और बलको स्थापन करता है। प्राणही वीरभद्र है और रुद्र भी है। ये सब वीरही हैं। इस तरह वायु वीरत्वका प्रतीक माना गया है और इससे वेदमें क्षात्र धर्म प्रकट होता है। पाठक मरुद्देवताके, प्राणदेवताके और वायुदेवताके सूक्तोंमें वीरोंका पर्याप्त वर्णन देख सकते हैं। वैदिक ऋषि वायुदेवतामें क्षात्रभाव देखते हैं।

राजा, राजपुरुष, सेनापति, सैनिक आदि क्षत्रिय हैं, जो वायुके रूप हैं।

२. क्षत्रिय (दर्शत) दर्शनीय, सुंदर और सजधजसे रहने वाले हों। वे सजकर बाहर आयें और सुन्दरतायुक्त वेष भूषासे समाजमें रहें और विचरें। इससे उनका प्रभाव जनतापर अत्यधिक हो सकता है। वे जनतामें सुन्दर बनकर भ्रमण करें और (हव श्रुधि) सब जनताकी पुकार सुनें। अर्थात् जनताके कष्ट जानें, उनकी परिस्थिति समझ लें। समझकर उनकी उचित सहायता करें, यह आशय यहां है।

क्षत्रियको उचित है कि वह (पपृञ्चती उरूची धेना) अपनी वाणीको हृदयस्पर्शी बनावे, वह जब बोले तब ऐसा बोले कि जो जनताका (पपृञ्चती) हृदय हिला देवे। दिलको हिला देनेवाला भाषण करे, (उरूची) विस्तृत विचारका प्रचार अपनी वाणीसे करे अर्थात् सकुचित विचारोंको अपने भाषणमें स्थान न दे। केवल व्यक्तिगत हितका विचार सकुचित विचार है और सपूर्ण मानवताका विचार विस्तृत विचार है। इसीका नाम (उरूची) विस्तृत भाव है। क्षत्रियके मनमें सकुचित भाव न रहें, पर विस्तृत, व्यापक और सपूर्ण मानव्यका भाव उसके मनमें रहे और वही उसकी वाणीसे प्रकट हो जावे। अर्थात् क्षत्रियके भाषणमें हृदय हिलानेकी शक्ति हो और व्यापक विचार हो और (धेना) उसकी वाणी तृप्ति और सतुष्टि करनेवाली हो तथा वह दाताकीही प्रशसा करे। हर किसी कजूसका वर्णन न करे। कजूसका वर्णन न हो, पर उदार (दाशुषे) दाताकी ही प्रशसा होती रहे। दाताही प्रशसा करने योग्य है।

इस तरह क्षत्रिय वीर क्या बोले, क्या सुने और क्या करे, इसका वर्णन यहां किया है।

ये वीर सोमरसका पान करें, वे सोमरस अत्यत शुद्ध किये हों। कवि इन क्षत्रियोंके शौर्यके कृत्योंका वर्णन करें। इत्यादि इस सूक्तका अन्य वर्णन पाठक सहजहीसे समझ सकते हैं, जो उन मन्त्रोंमें स्पष्टही है।

इस तरह इस द्वितीय सूक्तमें उत्तम क्षत्रियके धर्मका वर्णन किया गया है।

(२-२) इन्द्र और वायु

मधुच्छन्दाके दर्शनेमें द्वितीय सूक्तका द्वितीय त्रिक इन्द्र और वायुका है। इन दोनों देवताओंका इकट्ठा वर्णन इस सूक्तके प्रारभिक तीन मन्त्रोंमें है। 'वायु' देवताके वर्णनमें क्षत्रियका वर्णन है और वायु क्षात्रधर्मका प्रतीक है, नमूना है, यह हमने पूर्व सूक्तमें देख लिया है। इस सूक्तमें इन्द्र देव प्रथम है और वायु उसका साथी है। इन्द्रका अर्थ (इन्+द्र) शत्रुका नाश करनेवाला है। वेदमें इन्द्रका यही एक प्रधान कर्तव्य वर्णन किया है। वह वृत्रादि शत्रुओंका सदा नाश करता है और अपने राष्ट्रको शत्रुरहित कर देता है। अत यह राजा, राजन्य, राजपुरुष अथवा सेनापति है। इन्द्रको राजा कहते हैं, नरेन्द्र मानवोंके राजाको ही कहते हैं, सेनेन्द्र सेनापति है। देवेन्द्र देवोंका राजा है। इस तरह इन्द्र पद राजा, मुख्य, अधिपति अर्थमें है। वायुपद यहां सहायक सैनिकोंके अर्थमें है।

राजा और सेनिक, सेनापति और सेनिक आदि भाव कविने यहाँ इन इन्द्र वायु देवताओंमें देखे हैं। वस्तुत इन्द्र विद्युत् है जो उत्तरीय ध्रुवमें सूर्य आनेके पूर्व प्रकाशमय दीप्तियुक्त है, जो सूर्यको लाती और आकाशमें स्थापन करती है। यहां इन्द्रका कार्य वृत्रादि असुरोंसे लडना और उनको परास्त करना तथा प्रकाशका मार्ग खुला करना है।

वायुभी इसका सहायक है। वायु बडे वेगसे चलता है मेघोंको तितरबितर कर देता है और प्रकाशको खुला मार्ग कर देता है। इस तरह इन्द्रका सहायक वायु है। कविने यहां इन्द्र और वायुमें क्षत्रियोंके गुण देखे और उनके वर्णनसे क्षत्रिय-धर्मका वर्णन किया है। इन तीन मन्त्रोंमें निम्न लिखित वाक्य मुख्य वाक्य हैं—

१ हे इन्द्रवायू ! प्रयोभि उप आ गतम्।

२ वाजिनीवसू, द्रवत् उप आ यातम्।

३ हे नरा ! धिया मक्षु निष्कृत उप आ यातम्।

(१) 'सेनापति और सैनिक (शत्रुको परास्त करके) नाना प्रकारके अन्नोंको लेकर यहां हमारे पास आ जायँ, प्रयत्नके साथ हमारे पास हमारी सुरक्षा करनेके लिये रहें। (२) ये अन्नोंको लेकर दौडते हुए अर्थात् शीघ्र हमारे पास आजायँ। (३) हे नेता लोगो ! अपनी बुद्धि और कर्मशक्तिके साथ सत्वर यहां आजायँ।' इसका तात्पर्य यह है कि, हमारे सेनापति और सैनिक शत्रुका पराभव

करें, बहुत धन प्राप्त करें, बहुत अन्न प्राप्त करें और उस धन तथा अन्नके साथ हमारे पास आजायें, हमारी सुरक्षा करें और वह धन और अन्न हमें बांट देवें। अन्य सूक्तोंके वर्णनका विचार साथसाथ करनेसे इस सूक्तसे यह भाव प्रकट होता है। यह क्षत्रियोंका कर्तव्यही है।

इन मंत्रोंमें जो अन्य वर्णन है वह यही है कि ये इन्द्र और वायु (सेनापति और सैनिक) यहां अन्नके साथ आजायें और उनके लिये तैयार किया हुआ सोमरस पीलें। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि विजयी सैनिक विजय प्राप्त करके जब आते हैं, तब उनका सत्कार करनेके लिये स्थान स्थानपर सोमरस तैयार करके रखे रहें। वे आवें और उन रसोंका सेवन करें।

विजयी वीरोंका सत्कार इस तरह होता रहे, यह इसका आशय है।

(२-३) मित्रावरुणौ

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें द्वितीय सूक्तका तीसरा त्रिक मित्र और वरुण देवताका है। मित्र और वरुण (सूर्य और चन्द्र) ये दो राजा हैं, इनके राज्यमें सभाके द्वारा राज्य चलाया जाता है। प्रजाजनही अपने लिये जैसा चाहिये वैसा राज्य चलाते हैं, अतः ऐसे दो राजाओंका आपसमें युद्ध नहीं होता। वे परस्पर मित्रताके साथ रहते हैं।

'मित्र'का अर्थ मित्रभावसे बर्ताव करनेवाला, (मि+त्र) हित करके रक्षा करनेवाला है। 'वरुण'का अर्थ श्रेष्ठ, वरिष्ठ है। ये इनके स्वाभाविक गुण हैं। ऐसे दो राजा आपसमें लडते नहीं, परंतु परस्पर सहायक होकर एक दूसरेका भला करते रहते हैं। सब राजा लोग ऐसे बनें और परस्पर न लडते हुए मित्रभावसे परस्पर सहायक बनें, यही वेदका सदेश इन मंत्रोंद्वारा प्रकट हुआ है।

(पूतदक्ष मित्र) पवित्रताका बल मित्रके पास है और (रिशादस वरुण) शत्रुका पूर्णताके साथ नाश करनेकी शक्ति वरुणके पास है। (रिश-अदस्) शत्रुको खा जानेका बल वरुणका है। ये बल राजाके पास रहने चाहिये। (रिश) जो शत्रु क्रमशः शनैः शनैः नष्ट करता है, उसका नाम 'रिश' है। जैसा जलके स्पर्शसे लोहेका नाश होता है। इस तरह जो शत्रु शनैः शनैः नाश करता है, वह 'रिश' कहलाता है।

१ पूतदक्षं रिशादसं च घृताचीं धियं साधन्ता- पवित्रताका बल और शत्रुनाशका सामर्थ्य ये दो शक्तियाँ स्नेहमयी बुद्धिको बढाती हैं और कर्मशक्तिकाभी विकास करती हैं। अर्थात् अपने अन्दर सामर्थ्यभी बढाना चाहिये, परंतु उसका उपयोग पवित्रताके साथ करना चाहिये तथा उस पवित्र बलका उपयोग शत्रुका नाश करनेके लिये करना चाहिये। ऐसा किया जाय, तो बडे बडे महत्त्वपूर्ण कर्म सुसपन्न हो सकते हैं।

२ ऋतावृधौ ऋतस्पृशौ ऋतेन बृहन्तं क्रतुं आशाथे सरलताको बढानेवाले, सरलताके साथ रहनेवाले, सरल मार्गसेही बडे बडे कर्मोंको सुसपन्न करते हैं। यहां 'ऋत' का अर्थ 'न्याय्य, उचित, शुद्ध, ठीक, योग्य, सरल' है। यद्यपि यहां ऋतका अर्थ सत्य किया जाता है, तथापि ऋत और सत्यमें थोडा अन्तर है। जो सच्चा है, जो जैसा बना है वैसा कहना सत्य है, परंतु जो योग्य है वह ऋत कहलाता है। जो सत्य है, न्याय्य, शुद्ध, उचित, योग्य, ठीक, सरल और करने योग्य है, वह ऋत है। सत्य हो, पर ऋत है वा नहीं, यह देखना चाहिये और ऋतकाही आचरण करना चाहिये।

ये मित्र और वरुण ऋतका पालन करनेवाले हैं, सदा ऋतके साथ रहते हैं, इसलिये वे अपने शुद्ध पथसे बडेबडे कार्य सुसपन्न करते हैं। जहां तेढापन बिलकुल नहीं है, जहां कुटिलता नहीं है, ऐसा सरल शुद्ध और योग्य मार्ग इनका है। दूसरोंको धोखा देना या फसाना इनके मार्गसे बाहर है। इसी तरह सरल मार्गसे ये अपने सब व्यवहार करते रहते हैं।

३ कवी तुविजाता उरुक्षया अपसं दक्षं आसाथे- ये ज्ञानी विशेष सामर्थ्यसे युक्त हैं, विशाल स्थानमें रहते हैं और शुभ कर्मोंको सुसपन्न करनेका सामर्थ्य धारण करते हैं। राजा लोग (कवि) ज्ञानी हों, सुविचारी हों, दूरदर्शी हों, (तुवि जाता) बलके लिये प्रसिद्ध अर्थात् सामर्थ्यवान् हों, (उरु-क्षया) बडे बडे विशाल मन्दिरोंमें रहें तथा महान् महान् कर्मोंको सुसपन्न करनेका सामर्थ्य अपने पास रखें और बढावें।

इन तीन मंत्रोंमें कहा है कि, राजा लोग आपसमें सर-

लतासे बर्ताव करें, मित्रतासे रहें, सरल और निष्कपट भावसे अपना कार्य करें, अपना बल बढावें और बडे बडे जनताके हितके कार्य करते जाँय। इन मंत्रोंका प्रत्येक पद बडा महत्वपूर्ण संदेश देता है। पाठक प्रत्येक पदका विचार करके योग्य मननपूर्वक मन्त्रका संदेश प्राप्त करें।

'मित्र'का अर्थ सूर्य है और 'वरुण'का अर्थ चन्द्र है। 'ऋत'का अर्थ जल है। इनमें कविने दिव्य दृष्टिसे राजधर्म देख लिया है जो ऊपरके स्पष्टीकरणमें दर्शाया है।

(३-१) अश्विनौ

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें तृतीय सूक्तका प्रथम त्रिक अश्विनौ देवताका है। अश्विनौ देवता वेदमें औषधि-प्रयोग-द्वारा आरोग्य देनेवाली कही है। अश्विनौ देवतामें दो देव हैं, पर वे साथसाथ रहते हैं, कभी पृथक् नहीं रहते।

दो तारकाएं हैं जिनको अश्विनौ बोलते हैं और जो मध्य-रात्रिके पश्चात् उदय होते हैं। ये अश्विनौ है ऐसा कहा जाता है। मध्यरात्रिके उपरान्त इनका उदय होता है, ऐसा वेदका वर्णन है। दो वैद्य अश्विनौ हैं ऐसा कई मानते हैं, एक औषधि प्रयोग करनेवाला और दूसरा शस्त्रकर्म करनेवाला है। ये दोनों मिलकर चिकित्साका कार्य करते हैं। दो राजा हैं ऐसाभी कईयोंका मत है। परंतु दो तारकाएं हैं, यह मत विशेष ग्राह्य है। ये दोनों तारकाएं साथसाथ रहती हैं, साथसाथ उदयको प्राप्त होती हैं, मध्यरात्रिके पश्चात् उदय होती है। अत. इनका नाम अश्विनौ होना संभवनीय है। इनके विषयमें निरुक्तकार ऐसा लिखते हैं—

> अथातो द्युस्थाना देवताः। तासामश्विनौ प्रथमागामिनौ भवतः। अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते सर्वं, रसेनान्यो, ज्योतिषान्यः। अश्वैरश्विनौ इत्यौर्णवाभः। तत् कावश्विनौ? द्यावापृथिव्या-वित्येके, अहोरात्रावित्येके, सूर्याचन्द्रमसा-वित्येके, राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिकाः। तयोः काल ऊर्ध्वमर्धरात्रात्, प्रकाशीभावस्यानु, विष्टम्भमनु, तमोभागो हि मध्यमः, ज्योतिर्भाग आदित्यः। (निरुक्त १२।१।१)

'अब द्युलोकके देवताओंका वर्णन करते हैं। इन द्युलोककी देवताओंमें अश्विनौ प्रथम आनेवाले देव हैं। इनको अश्विनौ इसलिये कहा जाता है कि ये सबको व्यापते हैं। इनमेंसे एक रससे, जलसे, व्यापता है और दूसरा प्रकाशसे व्यापता है। और्णवाभ ऋषिका मत है कि अश्विदेवोंके पास घोडे थे इसलिये उनको अश्विनौ कहा गया। कौन भला अश्विनौ हैं? द्युलोक और भूलोक ऐसा कई कहते हैं, दिन और रात्रि ऐसा कईयोंका मत है, सूर्य और चन्द्र ऐसा कई मानते हैं, पुण्यकर्म करनेवाले ये दो राजा थे ऐसा ऐतिहासिकोंका मत है। ऐसे अश्विनौके संबंधमें नाना मत हैं। इनका समय मध्यरात्रिके उपरान्तका समय है। जब प्रकाश खुलने लगता है और अन्धकार कम होने लगता है, तब अश्विदेवोंका समय है। अन्धकार मेघादिके कारण होता है, इसलिये वह मध्यस्थानीय है और प्रकाश तो सूर्यसेही होता है, इसलिये वह द्युस्थानीय है। इस तरह अश्विनौ देवतामें प्रकाश और अन्धकारका समावेश होता है।'

अश्विदेवोंके विषयमें इतने मतभेद हैं, तथापि इनका उदय मध्यरात्रिके पश्चात् है यह निश्चित है। ये दो तारकाएँ हैं ऐसाभी अनेकवार कहा है। इनके वर्णनमें कविने जो दिव्य ज्ञान देखा, उसका विचार अब करना है—

१ **पुरु-भुजौ**= विशाल बाहुवाले। बाहु हृष्टपुष्ट और सुदृढ करने चाहिये।

२ **शुभस्-पती**= शुभ कर्मोंकी सुरक्षा करनेवाले। वीर अपने बाहुबलसे जनताके शुभ कर्मोंकी रक्षा करे और सर्वत्र शुभ कर्म होने योग्य परिस्थिति निर्माण करें।

३ **द्रवत्-पाणी**= हाथोंसे अति शीघ्रतासे कार्य करनेवाले। हाथोंसे, अंगुलियोंसे जो कार्य करना हो वह अति शीघ्र, अति चपलताके साथ किया जावे।

४ **पुरु-दंससा**= अनेक बडे बडे कार्य करनेवाले। अनेक बडे कार्य करनेवाले मनुष्य बने।

५ **नरा**= नेता। नेता बने।

६ **दस्रा**= शत्रुका नाश करनेवाले।

७ **नासत्या** = सत्यका पालन करें।

८ **रुद्र वर्तनी** = भयानक मार्गसे जानेवाले। न डरते हुए कठिन मार्गसे भी आगे बढे।

९ **धिष्ण्या** = बुद्धिके कार्य करनेवाले।

१० **अश्विना** = घोडोंको पास रखनेवाले, सर्वत्र व्यापनेवाले, वेगवान्।

इन पदोंके विचारसे अश्विदेव किनगुणोंसे युक्त हैं, इसका

ज्ञान होता है और ये गुण अपने अन्दर बढ़ाने चाहिये, इसकाभी ज्ञान उपासकको होता है। तथा—

११ यज्वरीः इषः चनस्यतम् = यज्ञके योग्य अन्नका सेवन करो। पवित्र अन्नका भोजन करो।

१२ शवीरया धिया गिरः चनतम् = अपनी तेजस्विनी एकाग्र बुद्धिसे दूसरोंका भाषण सुनो।

१३ युवाकव सुताः वृक्तबर्हिषः सुताः आ यातम् = दूधके साथ मिलाये, तिनके निकाले अर्थात् अच्छी तरह छाने हुए, इन सोमरसोंका सेवन करनेके लिये आओ।

यहां पवित्र अन्नका सेवन करने, एकाग्र मनके साथ भाषण सुनने और रसपान करनेका वर्णन है। इन सब पदोंका और वचनोंका विचार तथा मनन पाठक करें और इनसे मिलनेवाला वेदका संदेश अपना लें।

(३-२) इन्द्र

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें तृतीय सूक्तका दूसरा त्रिक इन्द्र देवताका है। इन्द्रके विषयमें पहिले कहा गया है। (पाठक ऋ० म० १ सू० ३ त्रिक २ देखें) यहां इस सूक्तमें इन्द्रके वर्णनमें निम्न लिखित पद महत्त्वपूर्ण हैं।

१ इन्द्र = (इन्+द्र) शत्रुका नाश करनेवाला वीर,

२ चित्र-भानु = विशेष तेजस्वी,

३ हरि-वः = घोडोंकी पालना करनेवाला।

वीर तेजस्वी बने और अपने पास उत्तम घोडे रखे, यह इन पदोंका भाव है। तथा—

४ धिया इषितः = बुद्धियोंद्वारा प्रार्थित, जिसकी प्रशंसा मन पूर्वक की जाती है।

५ विप्रजूतः = विद्वानोंद्वारा प्रशंसित,

ये पद इन्द्रका वर्णन करते हैं। उपासक अपने अन्दर इन पदोंके भावोंको ढालनेका यत्न करें। तेजस्वी बनना, प्रशंसित होने योग्य श्रेष्ठ बनना, आदि बातें यहां है।

अन्य वर्णन सोमके है। (अण्वीभि तना पूतास सुता) अंगुलियोंसे निचोडे छाने गये ये सोमरस हैं। (न सुते चन दधिध्व) हमारे सोमयागमें अन्नका सेवन कर। इत्यादि अन्य वर्णन सहजहीसे समझमें आनेवाला है। अत उसका विशेष स्पष्टीकरण करनेकी जरूरत नहीं है।

(३-३) विश्वेदेवाः

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें तृतीय सूक्तके अन्दर तृतीय त्रिक विश्वे देवा देवताका है। इसमें विश्वे देवा देवताके वर्णनमें जो महत्त्वपूर्ण शब्द हैं, उनका अर्थ उसी सूक्तके अर्थके नीचे (पृष्ठ १२ पर) दिया है। पाठक इन पदोंके अर्थोंका विशेष मनन करें और मानवधर्मका संदेश प्राप्त करें। (१) सबकी सुरक्षाके लिये यत्न करना, (२) मानवोंके संघोंकी संघटना करना, (३) दान करना, (४) सत्वर कार्य करना, सुस्तीका त्याग करना, (५) शीघ्र और उत्तम कार्य करना, (६) घातपात न करना, (७) कुशलतासे कार्य करना, (८) द्रोह न करना, छल कपट न करना, (९) सुखसाधन ढो कर लाना, ये वर्णन विश्वे देवों के हैं। ये मनुष्योंको अपनाना चाहिये।

(३-४) सरस्वती

इसी दर्शनसे चतुर्थ त्रिक सरस्वती देवताका है। इसमें विद्याकी प्रशंसा है। इसका स्पष्टीकरण पूर्वोक्त स्थानमें (पृष्ठ १२-१३ पर) पाठक देख सकते हैं। यहां मधुच्छन्दा ऋषिके मन्त्रोंका प्रथमानुवाक समाप्त होता है।

द्वितीय और तृतीय अनुवाक

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनके द्वितीय और तृतीय अनुवाकोंमें मिलकर ८० मन्त्र हैं, इनकी इन्द्र देवता मुख्य है, केवल सूक्त ६।१-१० में मरुत् देवता अधिक है। इन सूक्तोंके सब पदोंका स्पष्टीकरण प्रत्येक सूक्तके अर्थके साथही किया है। अत यहां उनके संदेशोंके विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

सोम देवता

मधुच्छन्दा ऋषिके सोमदेवताके दस मन्त्र नवम मण्डलके प्रथम सूक्तसे लिये है। ये यहां इसलिये लाये हैं कि मधुच्छन्दा ऋषिका संपूर्ण दर्शन पाठकोंके सामने आजायँ।

ये सब मन्त्र १२० है। इतनाही मधुच्छन्दा ऋषिका तत्वदर्शन है। इन मन्त्रोंके मननसे पाठक जान सकते हैं कि विश्वामित्र-पुत्र मधुच्छन्दा ऋषिने किस तत्वज्ञानका दर्शन करके प्रचार किया था।

शतर्चा अर्थात् सौ मन्त्रवाले ऋषियोंमें मधुच्छन्दा ऋषिकी गणना है, क्योंकि इसके ११२ मन्त्र यहां हैं और इसके पुत्रक जेता ऋषिके-आठ मन्त्र हैं। सब मिलकर १२० मन्त्र होते है।

यहां मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन समाप्त हुआ।

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(२)

[काण्वदर्शनोंमें प्रथम विभाग]

मेधातिथि ऋषिका दर्शन

(मेध्यातिथिके मंत्रोंके समेत)

(चतुर्थ और पञ्चम अनुवाक)

लेखक

भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)

संवत् २००२

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

[काण्वदर्शनोंमें प्रथम विभाग]

मेधातिथि ऋषिका दर्शन

[मेध्यातिथि ऋषिके मंत्र इसमें संमिलित हैं]

ऋग्वेदमें मधुच्छन्दा ऋषिके पश्चात् मेधातिथि ऋषिके मंत्र आते हैं। मेधातिथि ऋषि काण्व गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषि हैं। इसलिये काण्वोंका एक विभाग करना योग्य प्रतीत हुआ। काण्व-दर्शन चार विभागोंमें प्रकाशित होगा। प्रथम विभागमें मेधातिथि और मेध्यातिथि इन दो ऋषियोंके मंत्र रहेंगे और दूसरे तीन विभागोंमें काण्व गोत्रके अन्य सभी ऋषियोंके मंत्र रहेंगे।

मेधातिथि और मेध्यातिथि ये साथ साथ आनेवाले ऋषि हैं और ऋ. मं. ८।१ सूक्तके इकट्ठे ये दोनों ऋषि माने हैं। इसलिये इन दोनोंके मंत्र यहां इकट्ठे दिये हैं। इनके सूक्तोंका ब्यौरा ऐसा है। ये सब ३२० मंत्र इस विभागमें आये हैं-

ऋग्वेदके प्रथम मण्डल

सूक्तक्रम	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
चतुर्थ अनुवाक			
१२	(काण्वो)मेधातिथिः	अग्निः	१२
१३	,,	,,	आप्रियः [(१) समिद्धोऽग्निः, (२) तनूनपात्, (३) नराशंसः, (४) इळः, (५) बर्हिः, (६) देवीर्द्वारः, (७) उषासानक्ता, (८) दैव्यौ होतारौ, (९) तिस्रो देव्यः, (१०) त्वष्टा, (११) वनस्पतिः, (१२) स्वाहाकृतिः]	१२
१४	,,	,,	विश्वे देवाः	१२
१५	,,	,,	[ऋतुसहिताः-] (१) इन्द्रः, (२) मरुतः, (३) त्वष्टा, (४) अग्निः, (५) इन्द्रः, (६) मित्रावरुणौ, (७-१०) द्रविणोदाः, (११) अश्विनौ, (१२) अग्निः	१२
१६	,,	,,	इन्द्रः	९
१७	,,	,,	इन्द्रावरुणौ	९
				६६
पञ्चम अनुवाक			
१८	,,	,,	१-३ ब्रह्मणस्पतिः, ४ इन्द्रब्रह्मणस्पतिसोमाः ५ ,, ,, ,, दक्षिणा, ६-८ सदसस्पतिः, ९ ,, नराशंसः वा	९

१७. मित्रावरुणौ	४
१८. ब्रह्मणस्पति.	३
१९. सदसस्पति·	३
२०. इन्द्रो मरुत्वान्	३
२१. पूषा	३
२२. द्यावापृथिवी	२
२३. इन्द्रवायू	२
२४. त्वष्टा	२
२५. इन्द्रब्रह्मणस्पतिसोमाः	१
२६. ,, ,, दक्षिणा च	१
२७. सदसस्पतिर्नराशंसो वा	१
२८. देव्य·	१
२९ इन्द्राणीवरुणान्यग्नाय्य	१
३० पृथिवी	१
३१. वायुः	१
३२ मरुत·	१
३३. इध्मः समिद्धोऽग्निः	१
३४. तनूनपात्	१
३५. नराशंस·	१
३६. इळः	१
३७ बर्हिः	१
३८. देवीर्द्वार·	१
३९ उषासानक्ता·	१
४०. दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ	१
४१ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्य·	१
४२. वनस्पतिः	१
४३ स्वाहाकृतय·	१

कुल मंत्रसंख्या ३२०

इन ३२० मंत्रोंमें ४३ देवताओंका विचार हुआ है। कुल सात ऋषियोंके मंत्र इसमें हैं। प्रगाथ-आसंग-शश्वतीके ७ मंत्र छोड दिये जायँ, तो मेधातिथि और मेध्यातिथि इन दो ऋषियोंके मंत्र इसमें ३१३ हैं और इनमें भी अकेले मेधातिथि-के २५३ इतने हैं। इसलिये यहां मेधातिथि मुख्य ऋषि है।

काण्व गोत्रके ऋषि

इस पुस्तकमें मेधातिथि और मेध्यातिथिके मंत्र लिये हैं। इसका कारण ये कण्वगोत्रके हैं और साथ साथ आनेवाले हैं, तथा मं० ८।१ में एकही सूक्तके ये दोनों इकट्ठे दृष्टा हैं। ऋग्वेदमें कण्व ऋषि और कण्व गोत्रके ऋषि अनेक हैं, उनमें दो ऋषियोंकेही मंत्र यहां लिये हैं, शेष कण्व ऋषि और काण्व-गोत्रके ऋषि ये हैं-

कण्वऋषि

१ (घोरपुत्र)'कण्व' ऋषिके मंत्र- ऋ.	१।३६-४३	९६	
	९।९४ मं.सं.	५	
			१०१

कण्व गोत्रके ऋषि

१	प्रस्कण्व (कण्वपुत्र)के मंत्र ऋ.	१।४४-५०	८२	
		८।४९	१०	
		८।९५	५	९७
२	देवातिथिः ,	ऋ. ८।४		२१
३	ब्रह्मातिथि· ,,	५		३९
४	वत्सः ,,	६	४८	
	,,	११	१०	५८
५	पुनर्वत्सः ,,	७		३६
६	सध्वंसः ,,	८		२३
७	शशकर्ण ,,	९		२१
८	प्रगाथ (घौर),,	८।१।१-२	२	
		१०	६	
		४८	१५	
		६२	१२	३५
९	प्रगाथः (कण्वपुत्र)	८।६३	१२	-
		६४	१२	
		६५	१२	३६
१०	पर्वत. ,,	८।१२	३३	
		९।१०४	६	
		१०५	६	४५
११	नारदः ,,	८।१३	३३	
		९।१०४	६	
		१०५	६	४५

१२ गोपृक्त और अश्वसूक्ति काण्वायनौ		८।१४-१५		१८
१३ इरिम्बिठिः कण्वपुत्रः		८।१६-१८		४९
१४ सोभरि	,,	८।१९-२२	९९	
		१०३	१४	११३
१५ नीपातिथिः	,,	८।३४		१५
१६ नाभाक	,,	८।३९-४२		३८
१७ त्रिशोकः	,,	८।४५		४२
१८ पुष्टिगुः	,,	८।५०		१०
१९ श्रुष्टिगु	,,	५१		१०
२० आयु	,,	५२		१०
२१ मेध्यः	,,	८।५३	८	
		५७-५८	७	१५
२२ मातरिश्वा	,,	८।५४		८
२३ कृश,	,,	५५		५
२४ पृषध्र	,,	५६		५
२५ सुपर्ण.	,,	८।५९		७
२६ कुरुसुति	,,	८।७६-७८		३३
२७ कुसीदी	,,	८।८१-८३		२७

इतने २७ ऋषि काण्व गोत्रके शेष रहे हैं। यहां इस पुस्तक में मेधातिथि और मेध्यातिथि ये दो ऋषि लिये गये हैं। अतः शेष २७ रहे हैं। इनके मंत्र ९१२ ऋग्वेदमें हैं। अत इनका प्रकाशन कमसे कम तीन विभागोंमें किया जायगा। इस विभागमें ३२० मंत्र मेधातिथि- मेध्यातिथिके लिये हैं। इसी तरह और तीन विभागोंमें काण्वोंके सब मंत्र आ जायेंगे।

सोमप्रकरण

इन ३२० मन्त्रोंमें सोमदेवताके २८ मन्त्र हैं, परंतु करीब २०० अन्य मन्त्रोंमें सोमरस पानका विषय साक्षात् या परपरासे आया है। ३२० मन्त्रोंमें बहुत करके १०० मन्त्रोंके करीब ऐसे मन्त्र हैं कि, जिनमें सोमका कुछ भी विषय नहीं है, शेष २२० के करीब मन्त्र ऐसे हैं कि, जिनमें सोमरसका कुछ न कुछ वर्णन है। अष्टम तथा नवम मण्डलके जो मन्त्र इस पुस्तकमें आये हैं, उनमें तो सबमें ही सोमका विषय है। अर्थात् मेधातिथि और मेध्यातिथिके ३२० मन्त्रोंमें करीब करीब २२० मंत्रोंमें सोमका कुछ न कुछ वर्णन है, शेष करीब १०० मंत्र सोमके वर्णनके बिना हैं। इससे ऐसा हम कह सकते हैं कि दो-तिहाई मंत्र सोमके वर्णनके लिये गाये गये हैं। इतना सोमका महत्व वेदोंमें है। इसी तरह वेदोंमें मद्यपान है वा नहीं, यह देखनेकी बात है।

सोमके संबंधमें सोमके मंत्रोंका मनन करनेके प्रसंगमें विचार किया है और इन ३२० मंत्रोंके मननसे यह स्पष्ट हुआ है कि सोमरस नशा उत्पन्न करनेवाला नहीं है। इसका विचार आगेके मंत्रोंमें अधिक होनेवाला है। अतः पाठकोंसे इतनाही निवेदन है कि, वे इस विचारको यहीं समाप्त न समझें, परंतु अन्य ऋषियोंके मंत्रोंके साथ इस विचारकी तुलना करते जायँ और अन्तमें अन्तिम निर्णयतक पहुंच जायँ।

अर्थ करनेकी रीति

यहां हमने जो अर्थ करनेकी पद्धति उपयोगमें लायी है वह सरलसे सरल है। प्रथम मंत्र देकर उसका अन्वय दिया है। जो साधारण संस्कृत जानते हैं, वे अन्वयसे ही मंत्रोंका मतलब निकाल सकते हैं। जो संस्कृत ठीक नहीं जानते, उनके लिये नीचे सरल शब्दार्थ अन्वयके अनुसार ही दिया है। जो पद मंत्रमें नहीं है और पूर्वापर संबंधसे अध्याहृत लिये हैं वे गोल कंसमें ( ) दिये हैं। पाठक गोल कंसके अन्दरके शब्द शेष शब्दोंके साथ पढेंगे, तो मंत्रका सरल अर्थ समझ जायेंगे।

हमने यहां मंत्रके पदोंका सुलभ अर्थ, स्पष्ट अर्थ, उत्तानार्थ ही दिया है। किसी तरह अलंकार, श्लेष या यौगिक अर्थ देने का यत्न नहीं किया। क्योंकि जिन्होंने ऐसा अर्थ करनेका यत्न किया है, उनके अर्थ सूक्तके अन्दर बैठनेवाले नहीं हुए हैं। प्रत्येक मंत्र फुटकर बताना योग्य नहीं। इसलिये हमने सूक्तके मंत्र इकट्ठे लिये हैं। जहां सूक्तके अन्दर अनेक देवताएँ आ गयीं हैं, वहां एक एक देवताके सब मन्त्र इकट्ठे लिये हैं और संपूर्ण देवताके मंत्रोंका विचार इकट्ठा किया है। इस तरह मंत्रका अर्थ समझनेमें आसानी होती है और खींचातानीकी संभावना नहीं होती। इसलिये यही रीति हमने इस भाष्यमें उपयोगमें लायी है।

सरल संस्कृत जाननेवाला सरल भाषासे जो अर्थ जान सकता है, वही व्यक्त अर्थ है। गूढार्थ पीछेसे जिसका वह स्वयं निकाल सकता है। जब सरल अर्थका अच्छी तरह मनन

होगा, तब विचार और मनन करनेवाले पाठक मन्त्रोंके अन्दर गूढार्थका अनुभव कर सकते हैं। वह अवस्था पीछेसे बडे मननके पश्चात् और वैदिक विचार-धाराका अधिक अभ्यास होनेके पश्चात् आनेवाली है।

जनता इस समय सरल अर्थ जाननेकी अवस्थामें है। इसलिये यह बिलकुल सरल अर्थ जनताके सामने रखा है। जिस तरह जगत्के अन्दर सर्वसाधारण मानव पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, तारका, पशु, पक्षी, वृक्ष, वनस्पति आदिको देखता है और जैसा स्थूल दृष्टिसे देखता है, वैसाही स्थूल अनुभवसे इन पदार्थोंको समझ भी लेता है, उसी तरह यह सरल स्थूल अर्थ है। जब मानव अधिक मननशील होता है, जब वह अधिक विज्ञान प्राप्त करता है, तब पृथ्वीसे ही नानाप्रकारके सूक्ष्म पदार्थ विज्ञानकी सहायतासे पृथक्करण द्वारा खोज कर लेता है और उनका उपयोग करके अनंत सुख-साधन निर्माण करता है, वैसाही वह मनुष्य अधिक विचार करके इन्हीं मंत्रोंके अन्दर अधिक गुह्य तत्त्वोंका ज्ञान देख सकेगा। जैसा योगी श्री अरविंद घोषजीने इन्हीं मंत्रोंमें सूक्ष्मतम ज्ञान देखा है। यह अवस्था आगे सब पाठकोंको कभी न कभी प्राप्त होगी।

अनुभवके विना वैसा लेख लिखना योग्य नहीं। अथवा हम वेदका ऐसा अर्थ घड देंगे, ऐसी पहिलेसेही प्रतिज्ञा करके अर्थ लिखना भी ठीक नहीं है। इसलिये जिस सरल रीतिमें अशुद्धि होनेकी संभावना नहीं है अथवा कम है, वैसी सरल रीति हमने यहां उपयोगमें लायी है। इतनी दक्षता लेनेपर भी संस्कृतके एक एक शब्दके अनेक अर्थ होनेके कारण किसी एक पदका अर्थ एक विचारक एक मानेगा और उसी पदका अर्थ दूसरा विचारक वहां दूसराही मानेगा। इस तरह मतभेद होनेकी संभावना रहेगीही। हरएक भाष्यके विषयमें यह बात समानही है। इसलिये यह दोष किसी एकका माना नहीं जायगा। क्योंकि यह दोष सभी भाष्योंपर आना संभव है।

जैसा 'वाजः' पदके अर्थ- 'पक्ष (पक्षीके), पंख, पर (पंखके), बाणके पीछे लगाये पर, युद्ध, लडाई, शब्द, (स जं) घी, घृत, पके चावलोंका पिंड, अन्न, जल, प्रार्थनामंत्र, यज्ञ, बल, शक्ति, सामर्थ्य, धन, गति, वेग, मास (महीना)' कोशमें इतने हैं। वेदमंत्रोंमें 'युद्ध, अन्न, बल' ये अर्थ मुख्यतः आते हैं। इनमें यहां इस फलाने मंत्रमें यही एक अर्थ योग्य है और दूसरा अयोग्य है, ऐसा निश्चयपूर्वक कहना प्रायः अशक्य है। ऐसा अनेक पदोंके विषयमें हो सकता है। इसलिये पदके अर्थके विषयमें मतभेद होगा। परंतु यह दोष अनिवार्य है।

कदाचित् २०-२५ वर्ष विचारपूर्वक वेदाध्ययन होनेके पश्चात् संभव है कि इस मंत्रमें इस पदका यही अर्थ है, ऐसा कहनेमें कोई समर्थ हो, तो उस समयकी बात और है। इसलिये यह मतभेद इस समय रहेंगे। तथापि हमने यावच्छक्य यत्न करके मतभेदके स्थान सरल अर्थ देकर दूर किये हैं।

मन्त्रोंसे बोध

'यद्देवा अकुर्वंस्तत्करवाणि' (जो देवोंने किया वैसा मैं करूंगा) देवताओंका आचरण मानवोंके लिये मार्गदर्शक हो सकता है। यह नियम वैदिक ऋषि अनुभव करते थे। यही नियम हमने वेदमें देखा और वही अनुभव इस भाष्यद्वारा पाठकोंके सामने, जैसा समझा, वैसा रखनेका यत्न इस सुबोध भाष्य द्वारा किया है।

मन्त्रका जो सरल अर्थ है, उसमें भी जो मंत्रभाग विशेष ध्यानमें रखने योग्य हैं, वे सूक्तार्थके बाद पृथक् करके दिये ही हैं। वे स्वतंत्र रूपसे मानव धर्मका बोध करतेही हैं। ये मंत्रभाग आगे अनेक सूक्तोंके अर्थके पश्चात् स्थान स्थानपर पाठक देख सकेंगे। ये मंत्र-भाग कण्ठस्थ करने योग्य हैं। स्मृतिशास्त्रके नियमोंके आधारही ये मंत्रभाग हैं। पाठक इनकी ओर इस दृष्टिसे देखें।

इसके अतिरिक्त हमने महत्त्वका मानवधर्मका भाग सूक्तोंमें देखा है, वह 'देवताका आदर्श स्वरूप' है। अग्नि, इन्द्र आदि देवताओंमें ऋषि लोग अपनी अतींद्रिय दृष्टिसे कुछ आदर्श देखते हैं, वह आदर्श वे देवताके वर्णनमें रखते हैं। उच्चतर मानव बननेका ही यह आदर्श है। इस दृष्टिसे हमने ये सूक्त देखे और इनमें जो 'आदर्श उच्चतम मानव' ऋषियोंने हमारे सम्मुख रखा, वह इस भाष्यके द्वारा जनताके सामने हमने रखा है।

ऋषिके सामने अग्नि केवल आग नहीं है, इन्द्र केवल विद्युत्प्रकाश नहीं है, सूर्य केवल प्रकाश-गोलही नहीं है।

एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति ।
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥
(ऋ० १।१६४।४६)

' एकही सत् है, वही अग्नि, वायु इन्द्र, सूर्य आदि रूपोंसे हमारे सामने है । ' यह ऋषियोंकी आत्मानुभवकी दृष्टि है । जो अग्नि पदसे केवल आग समझेंगे, वे यही अग्नि वाक्पति कैसा है, प्राणरूपसे मुखमें कैसा रहता है, वह होता, पुरोहित और ऋत्विज् आदि कैसा है, वही वेदप्रकाशक कैसा है इन बातोंको जान नहीं सकेंगे । इसलिये वैदिक अग्नि केवल आग नहीं है । वह ऋषिके सम्मुख अतींद्रिय दृष्टिसे आयी एक आध्यात्मिक दैवी वस्तु है । पाठक देवताओंको ऐसा ही समझनेका यत्न करें । यह एकदम नहीं हो सकेगा, परंतु इसका अभ्यास करना पाठकोंके लिये आवश्यक है ।

ऋषियोंने इन देवताओंमें मानवका उच्च आदर्श देखा है और वही वेदमें हमें इस समय मिल रहा है । देवता आदर्श गुणोंका पुंज है, इसलिये देवता मानवके लिये आदर्श हो सकता है । अत वेदमंत्रका अर्थ विदित न होते हुए भी उन मंत्रोंमें जो देवताका आदर्श स्वरूप भक्तके सामने ऋषिने पेश किया है, उसमें मानवको ' उच्चतम मानवका आदर्श ' दीख सकता है । मनुष्य यह देवताका आदर्श अपने सामने रखे और वह अपनेमें ढालनेका यत्न करे । यही अनुष्ठान ' अतिमानव ' अथवा ' पुरुषोत्तम ' किंवा नरका नारायण बननेके लिये वेदद्वारा सूचित किया गया है ।

देवताके विशेषण

इसलिये मंत्रोंमें देवताके जो विशेषण आते हैं, उनको साथ साथ इकट्ठे ध्यानमें धरेंगे मनुष्यके सामने एक ' आदर्श पुरुष ' खडा होता है, वही मनुष्योंका उत्तम वैदिक आदर्श है, मनुष्योंका वही ध्येय है, प्राप्तव्य है और साध्य भी है । इसलिये मंत्रके संपूर्ण अर्थकी अपेक्षा ' देवताके विशेषणोंसे जो ' आदर्श पुरुष बनता है, ' वही विशेष महत्वका है और वही मानवके सामने वेदका दिव्य मानवका नमूना है । इसीलिये हमने प्रत्येक सूक्तके अर्थके पश्चात् उसमें आये विशेषणोंको इकट्ठा करके पाठकोंके सामने रखा है । इससे उस सूक्तने मानवोंके सामने जो आदर्श रखा है, वह पाठकोंके सामने खडा हो जायगा ।

' अग्नि ' ज्ञान–दाता, वक्ता, धनदाता, होता, पवित्रता करनेवाला और आरोग्य–रक्षक है । यह ज्ञानी ब्राह्मणका आदर्श पाठकोंके सामने है । ' इन्द्र ' शूर वीर, पराक्रमी, शत्रुका पराभव करनेवाला, कभी पराभूत न होनेवाला, शत्रुसे कभी घेरा नहीं जाता, परंतु शत्रुको घेर कर उनका नाश करता है । यह क्षत्रियके लिये उत्तम आदर्श है । ' मित्रावरुणौ ' ये दो राजे सभामें बैठते, आपसमें लडाई नहीं करते, प्रजाका हित करते और अपना बल सत्यमार्गकी वृद्धि करनेमें खर्च करते हैं । ये आदर्श राजा हैं । इस तरह अन्यान्य देवताओंके विषयमें जानना योग्य है । ऐसा जाननेके लिये सब आवश्यक साधन इस सुबोध भाष्यमें स्पष्ट रूपसे दिये हैं । आशा है कि पाठक इस पद्धतिसे वैदिक दिव्य आदर्श अपने सामने रखेंगे, उसको अपने जीवनमें ढालेंगे और स्वयं उच्चतर मानव बननेका यत्न करेंगे ।

औंध (जि सातारा)
श्रावण शु पूर्णिमा
स २००२

निवेदक
श्री० दा० सातवळेकर,
अध्यक्ष स्वाध्याय मंडल

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

[(२) काण्वदर्शनोंमें प्रथम विभाग]

(१) मेधातिथि ऋषिका दर्शन

चतुर्थ अनुवाक

(१) आदर्श दूत

(ऋ० १।१२) मेधातिथिः काण्वः । अग्निः, ६ प्रथमपादस्य [निर्मथ्याहवनीयौ] अग्नी । गायत्री ।

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् १
अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् २
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ३
ताँ उशतो वि बोधय यदग्ने यासि दूत्यम् । देवैरा सत्सि बर्हिषि ४
घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह । अग्ने त्वं रक्षस्विनः ५
अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ६
कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ७
यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ८
यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृळय ९
स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह । उप यज्ञं हविश्च नः १०
स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा । रयिं वीरवतीमिषम् ११
अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः । इमं स्तोमं जुषस्व नः १२

अन्वयः- होतारं, विश्ववेदसं, अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं, दूतं अग्निं वृणीमहे ॥१॥ विश्पतिं, हव्यवाहं, पुरुप्रियं, अग्निं अग्निं सदा हवन्त ॥२॥ हे अग्ने! (त्वं) जज्ञानः, वृक्तबर्हिषे इह देवान् आवह। (त्वं) नः होता ईड्यः (च) असि ॥३॥ हे अग्ने! यत् दूत्यं यासि। उशतः तान् वि बोधय। बर्हिषि देवैः आ सत्सि ॥४॥ हे घृताहवन दीदिवः अग्ने! त्वं रिषतः रक्षस्विनः प्रति दह स्म ॥५॥ कविः, गृहपतिः, युवा, हव्यवाट्, जुह्वास्यः, अग्निः अग्निना सं इध्यते ॥६॥ सत्यधर्माणं, अमीवचातनं, कविं, अग्निं देवं अध्वरे उपस्तुहि ॥७॥ हे अग्ने देव! यः हविष्पतिः त्वां दूतं सपर्यति, तस्य प्राविता भव स्म ॥८॥ हे पावक! यः हविष्मान्, देववीतये अग्निं आ विवासति, तस्मै मृळय ॥९॥ हे दीदिवः पावक अग्ने! स (त्वं) नः देवान्

इह आ वह, नः हविः यज्ञं च उप (आवह) ॥१०॥ नवीयसा गायत्रेण स्तवानः सः (त्वं) वीरवतीं रयिं इषं नः आभर ॥११॥ हे अग्ने ! शुक्रेण शोचिषा, विश्वाभिः देवहूतिभिः, नः इमं स्तोमं जुषस्व ॥१२॥

अर्थ- देवोंको बुलानेवाले, सर्वज्ञ अथवा सब धनोंसे युक्त, इस यज्ञके उत्तम प्रकार संपन्न करनेवाले, अग्निको दूत रूपमें हम स्वीकार करते हैं ॥१॥ प्रजाओंके पालक, अन्न पहुंचानेवाले, सबको प्रिय, ऐसे तेजस्वी अग्निकी हि सदा प्रार्थना (हम) करते हैं॥२॥ हे अग्ने ! (तू) प्रकट होते ही, आसन फैलानेवाले भक्तके पास, यहां, सब देवोंको ले आ। (तू) हम सबके लिये देवोंको बुलानेवाला और प्रशंसनीय हो ॥३॥ हे अग्ने ! जब तू दूतकर्म करनेके लिये (देवोंके पास) पहुंचता है, (तब आनेकी) इच्छा करनेवाले उन (सब देवोंको) जगा दो। (उनको यहां ले आओ और) इस आसनपर सब देवोंके साथ बैठो ॥४॥ हे घीकी आहुतियां लेनेवाले प्रदीप्त अग्ने ! तू (हमारा) नाश करनेवाले क्रूर राक्षसोंमेंसे प्रत्येकको जला दो ॥५॥ कवि, गृहरक्षक, तरुण, अन्न पहुंचानेवाले, ज्वालारूपी मुखसे युक्त अग्निको (दूसरे) अग्निके द्वारा प्रदीप्त किया जाता है ॥६॥ सत्य धर्मके पालनकर्ता, रोगोंके नाशक, ज्ञानी अग्निदेवकी इस हिंसारहित यज्ञकर्ममें प्रशंसा करो ॥७॥ हे अग्निदेव ! जो अन्नोंका पति, तुझ जैसे दूतकी सेवा करता है, उसका तू रक्षक बन ॥८॥ हे पवित्रता करनेवाले अग्ने ! जो हविरन्नवाला भक्त देवोंके संतोषके लिये, तुझ अग्निकी सेवा करता है, उसे सुख दे ॥९॥ हे तेजस्वी पवित्रकर्ता अग्ने ! वह (तू) हमारे पास सब देवोंको यहां ले आ और हमारा अन्न और यज्ञ उनके समीप पहुंचा ॥१०॥ नवीन गायत्री छन्दके स्तोत्रसे प्रशंसित हुआ, वह (तू) वीरोंसे युक्त धन और अन्न हम सबके पास भर दे ॥११॥ हे अग्ने ! अपनी पवित्र दीप्तिसे और सब देवताओंके स्तोत्रोंसे युक्त होकर हमारे इस यज्ञका सेवन कर ॥१२॥

आदर्श राजदूत

यहां मेधातिथि ऋषिने अग्निके अन्दर आदर्श राजदूतका भाव देखा है। एक राज्यसे दूसरे राज्यमें जो जाता है और अपने राजाका संदेश वहांके कार्यकर्ताओंको पहुंचाता है और अपने राजाका कार्य जो करता है, वह उत्तम राजदूत कहलाता है। ऐसा राजदूत 'अग्नि' है।

अग्निर्देवानां दूत आसीत्
उशना काव्योऽसुराणाम् । (तै. सं. २।५।८।७)

'अग्नि देवोंका दूत था और उशना काव्य असुरोंका दूत था।' ऐसा तैत्तिरीय संहितामें कहा है। एक यज्ञका राज्य भूमिपर है और दूसरा देवोंका राज्य है। यह दूत अग्नि यहांसे देवोंके पास जाता, उनको बुलाता और यज्ञमें उनको लाता है, उनको यज्ञमें यथास्थान बिठलाता और हविर्भाग यथायोग्य रीतिसे पहुचाता है। यह इसका दूत-कर्म है।

जैसा अग्नि यज्ञमें दूतकर्म करता है, वैसा राजदूत राज्यशासनरूप यज्ञमें दूत कर्म करे। क्योंकि जैसा कर्म देव करते हैं वैसा मनुष्योंको करना चाहिये। इसलिये दूतके गुण जो इस सूक्तमें वर्णन किये हैं, उनका विचार करना चाहिये। देखिये—

राजदूतके गुण

१ अग्नि- वह तेजस्वी हो, निस्तेज फीका या उदास न हो। वह (अग्निः-अग्रणीः) अग्र भागतक अपना कार्य करनेवाला हो, कार्यको अन्ततक पहुंचानेवाला हो, वह प्रमुख अथवा मुख्य हो। (अगति इति अग्निः) वह गतिशील हो, हलचल करनेवाला हो। जिस कार्यके करनेके लिये जहांतक जाना आवश्यक हो वहांतक वह जाये और उस कार्यको संपूर्ण रूपसे सिद्ध करे, ऐसा दूत हो।

२ होता- बुलानेवाला, पुकारनेवाला दूत हो, वह अपना भाव उत्तम रीतिसे कहनेमें समर्थ हो।

३ विश्व-वेदाः- सब प्रकारके ज्ञानसे युक्त हो, सब धन भी उसके पास हो। ज्ञान और धनसे वह युक्त हो। परराष्ट्रमें जाकर ज्ञानसे उनपर प्रभाव डाले और धनका भी प्रभाव डाले और अपना कार्य करे।

४ यज्ञस्य सुक्रतुः- कार्यको उत्तम रीतिसे संपन्न या सिद्ध करनेवाला दूत हो। (यज्ञः- देवपूजा-संगतिकरण-दानात्मकः) वह दूत श्रेष्ठोंका सत्कार करे, संगठन करे और सहायता करे तथा साधनोंसे अपना कार्य सिद्ध करे। (१)

५ विश्-पतिः- अपने प्रजाजनोंका पालन करनेवाला हो। उसका यही ध्येय सदा रहे कि अपनी प्रजाका उत्तम रीतिसे पालन हो।

६ हव्यवाट्- अन्न पहुंचानेवाला हो। अन्न उसके पास दिया जाय, अथवा जो पहुंचानेके लिये उसके पास दिया हो वह जिसको पहुंचाना हो वह ठीक उसको पहुंचा देवे।

७ पुरुप्रियः- वह सबको प्रिय हो। (२)

८ ईड्यः- प्रशंसाके योग्य कर्म करनेवाला हो। (३)

९ घृताहवन- घी खानेवाला।

१० दीदिवः- तेजस्वी।

११ रिषतः रक्षस्विनः दह- हिंसक शत्रुओंका नाश कर। (५)

१२ कविः- ज्ञानी, विद्वान्, जो दूसरोंको न दीखनेवाला हो उसको भी वह देखे और ठीक तरह जानकारी प्राप्त करे। वह दूर-दर्शी हो।

१३ गृहपतिः- अपने घरकी उत्तम रक्षा करनेवाला हो। अपना घर, अपना देश, अपना राज्य इसकी रक्षा कैसी हो सकती है, इसका उत्तम ज्ञान उसको हो।

१४ युवा- राजदूत तरुण हो, अथवा तरुणके समान बलवान् और ओजस्वी हो।

१५ जुह्वास्यः- अग्नि ज्वालाके समान तेजस्वी भाषण करनेवाला हो। (६)

१६ सत्य-धर्मा- सत्य धर्मका पालन करनेवाला हो, वचन में और आचरणमें सचाई रखनेवाला हो, इससे वह सबका विश्वास संपादन करे।

१७ अमीवचातनः- दुष्टोंको दूर करनेवाला हो।

१८ प्राविता- जिसको वह अपना कहे उसकी सुरक्षा करनेकी शक्ति उसमें हो। (८)

१९ मृळय (मृळयिता)- सुख देनेवाला हो, जिसको वह अपना कहे उसको सुखी करे।

२० पावकः- वह पवित्र हो, पवित्रता करे। (९)

२१ देवान् आ वह- अपने साथ दिव्य जनोंको ले आवे, अपने साथ दिव्य विबुधोंको रखे। (१०)

२२. वीरवती रयिं इषं आभर- वीरोंके साथ रहनेवाला, धन और अन्न भरपूर ले आवे। जिसके साथ वीर रहते हैं ऐसाही धन और अन्न अपने पास रखे। (११)

२३ शुक्र-शोचिः- बलयुक्त तेज अपने पास रखे। (१२)

२४ विबोधय- जहां जावे वहां जागृति करे, सबको विशेष रीतिसे जगावे। (४)

उत्तम राज-दूतके इतने उत्तम गुण यहां इस सूक्तमें वर्णन किये हैं। जिस राजाके पास ऐसे उत्तम दूत होंगे वह निःसंदेह विजयी होगा। पाठक राजधर्मकी दृष्टिसे इस सूक्तके इन पदोंका विचार करें।

रोग-निवारण

अग्निका रोग-निवारक गुण इस सूक्तमें बताया है जो आरोग्यकी दृष्टिसे देखने योग्य है—

१ अमीवचातनः— अपचित अन्न 'आम' पेटमें बनता है, वही आम नाना रोगोंको उत्पन्न करता और बढाता है। इसलिये रोगोंका नाम वेदमें 'अमी-व' (अर्थात् 'अमीवान्' किंवा 'आमवान्') कहा है। अनेक रोग इस आमसे उत्पन्न होते हैं, इस बातको लोग जानें और अपने पेटमें आमका संग्रह न होने दें, पेट स्वच्छ रखें और रोगसे मुक्त हों। रोगकी उत्पत्ति बता कर इस तरह इस पदने बडा महत्त्वपूर्ण ज्ञान यहां दिया है।

'अमीव' रोग है उसका 'चातन' समूल उच्चाटन करनेवाला 'अमी-व-चातन' है, रोगोंको दूर करनेवाला अग्नि है। यह रोगके मूलोंको दूर करता है। जाठराग्नि अच्छीतरह प्रदीप्त रहा तो पेटमें आमका संग्रह नहीं रहता और रोग दूर होते हैं। बाहर अग्नि जलने लगा तो उसमें वायुमें स्थित रोग-बीज जल जाते हैं और वायु शुद्ध होता है और इस रीतिसे नीरोगिता प्राप्त होती है। इसलिये कहा है—

> ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते।
> ऋतुसंधिषु यज्ञाः क्रियन्ते ॥
> (गोपथ. १।१९; कौ. ५।१)

'ऋतुकी संधिके समय रोग उत्पन्न होते हैं, इसलिये ऋतु-संधिमें यज्ञ किये जाते हैं।' यज्ञोंमें अग्नि प्रदीप्त होता है जो रोग-बीजोंको जलाता है तथा यज्ञमें विविध औषधियोंका हवन किया जाता है वह भी रोग निवारण करता है। अग्नि रोग दूर करनेवाला होनेसेही उसमें यज्ञ किये जाते हैं। रामायण में ऐसे वर्णन आते हैं कि नगरोंमें जहां चार मार्ग मिलते हैं वहां प्रतिदिन अग्नि प्रदीप्त करके हवन किये जाते थे। पाठक कल्पना कर सकते हैं कि इस तरह नगरोंमें प्रत्येक चौराहेपर यदि हवन होंगे तो नगरकी वायु किस तरह शुद्ध होगी। अ-

दिन प्रत्येक घरमें हवन हो, नगरोंमें चार मार्ग मिलनेके स्थानों-पर हवन हो तथा देवताओंके मंदिरोंमें हवन हो । इस तरह होनेसे नगर आरोग्य-संपन्न हो सकेगा ।

२ रिपतः रक्षस्विनः दह- हिंसा करनेवाले राक्षसोंको जला दे । अर्थात् अग्नि हिंसक राक्षसोंको जला देता है । राक्षस और रक्षः (रक्षस्) ये पद जैसे बडे क्रूरकर्मा मानवोंके वाचक हैं, वैसेही वेदमें रोगजन्तुओंके भी वाचक हैं । (रक्षन्ति यस्मात्) जिनसे मनुष्योंको बचना चाहिये, वे राक्षस या रक्षस् हैं । रक्षस् क्षुद्रता-दर्शक पद है । सूक्ष्म कृमि ऐसा इनका अर्थ है । आगे अग्निके सूक्तोंमें राक्षस-वाचक अनेक पद आयेंगे जिनका अर्थ रोगजन्तु होगा । जहां ये पद आयेंगे वहाँ स्पष्टीकरणमें बताया जायगा, यहां सूचना मात्र लिखा है । 'रिप्' का अर्थ हिंसा करना है, नाश तथा घातपात करना है । ये जन्तु रोग उत्पन्न करके बडा संहार करते हैं इसलिये इनको यहां ' रिपतः ' (हिंसक) कहा है, जलानेसेही ये नष्ट होते हैं । अग्नि इनको जलाकर नष्ट कर देता है और सूर्य इनको अपने किरणोंसे नाश करता है । इसका वर्णन सूर्यके सूक्तोंमें आगे आनेवाला है । अग्नि रोग बीजोंको किस तरह दूर करता है, इसका स्पष्टीकरण यहां कहा है ।

३ पावकः- पवित्रता करनेवाला अग्नि है । अपवित्रतासे रोग-बीज बढते हैं । अग्नि पवित्रता करता है, इस कारण वह रोगोंका निवारण करता है । पवित्रता करनेवाले सभी पदार्थ रोग निवारक होते हैं ।

४ शुक्रः शोचिः- पवित्रता बढानेवाले इसके किरण हैं, *पवित्रता बढाकर रोग दूर करते हैं,* इस कारण ये वीर्यवर्धक अथवा बलवर्धक भी हैं । सूर्य भी 'शुक्र शोचिः ' है । ' शुक्र ' पदका अर्थ ' पवित्र, बल, वीर्य, पराक्रम' है । पवित्र-तासे सिद्ध होनेवाले ये गुण हैं ।

५ घृताहवनः- घीका हवन अग्निमें होता है । यहां गौका घृत है । वेदमें गौको छोडकर भैंस आदि किसी अन्यके घीका वर्णन नहीं है । इसलिये जहां वेदमें घीका वर्णन हो वहां गौके घृतकाही वह वर्णन है, ऐसा समझना चाहिये । सब घी विषनाशक होता है, इसीलिये अग्निमें घीका हवन होता है । यह सूक्ष्म रूपसे वायुके साथ फैलता है और वायुको निर्विष या रोगबीज-रहित करता है । गौके घृतमें यह विष दूर करनेका गुण विशेषही है ।

६ यज्ञस्य सुक्रतुः- यज्ञका निष्पादक कर्ता । यहां पूर्वोक्त गोपथ ब्राह्मणके वचनानुसार ऋतुसंधियोंमें रोग-नाशार्थ किये जानेवाले यज्ञोंका निष्पादन-कर्ता ऐसा समझना उचित है ।

७ हव्यवाट्- हवन किये हुए औषधिद्रव्योंको तथा घृतादिको सूक्ष्म करके इतस्ततः वायुमें फैला देनेवाला और इससे रोगोंको हटानेवाला अग्नि है ।

इस रीतिसे कई अन्य पद अग्निके गुणोंका वर्णन कर रहे हैं, उनका विचार पाठक अवश्य करें ।

नवीन स्तोत्र

'नवीयसा गायत्रेण स्तवानः' (मंत्र ११) नवीन गायत्री छंदके स्तोत्रसे स्तुति जिसकी की गयी है, ऐसा अग्नि । इसमें गायत्री छन्दमें यह नवीन स्तोत्र किया गया, ऐसा प्रतीत होता है । इस विषयमें ' मंत्रपति, मंत्रद्रष्टा ' और ' मंत्र-कृत् ' ऐसे ऋषियोंके तीन वर्ग हैं । प्राचीन कालसे चले आये मंत्रोंका संग्रह करके उनकी पठन-पाठनसे रक्षा करनेवाले 'मन्त्र-पति ऋषि ' होते हैं । सनातन गुप्त ज्ञान अथवा तत्त्वज्ञानका दर्शन करनेवाले ' मन्त्रद्रष्टा ऋषि ' होते हैं । मन्त्रोंकी रचना करनेवाले ' मन्त्रकृत् ऋषि ' कहलाते हैं । इस विषयमें तै० आरण्यकमें कहा है—

> नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यः ।
> मा मा ऋषयो मन्त्रकृतो मन्त्रपतयः परा दुः ।
> माऽहं ऋषीन् मन्त्रकृतो मन्त्रपतीन् परा दाम् ॥
> (तै० आ० ४।१)

'मन्त्रकृत् और मंत्रपति ऐसे जो ऋषि हैं, उनको मेरा प्रणाम है । *मन्त्रकृत् और मन्त्रपति ऋषि मेरा तिरस्कार न करें* और मैं मन्त्रकृत् और मन्त्रपति ऋषियोंका तिरस्कार कभी न करूंगा ।'

यहां ' मन्त्रकृत् और मन्त्रपति ' का उल्लेख है । मन्त्रद्रष्टा पद निरुक्तमें है । मन्त्रकृत् जो ऋषि होते हैं उनको ही 'कारू' (कारीगर) कहा है । यह कारू पद वेद मंत्रोंमें अनेक बार आता है । कारूका अर्थ है करनेवाला, निर्माण कर्ता, रचना करनेवाला ।

मन्त्रपति और मन्त्रकृत् में भेद है । दोनों मन्त्रोंके द्रष्टा होते हैं । मन्त्रका अर्थ ' मनन करने योग्य ज्ञानका तत्त्व ' । मन्त्रपति ऋषि उन मन्त्रोंमें इस गुप्त तत्त्वज्ञानको देखते हैं और उन प्राचीन समयसे चले आये मंत्रोंका संग्रह करते हैं और

पठन पाठन परंपराद्वारा उनको सुरक्षित रखने द्वारा पालन करते हैं। मन्त्रकृत् भी सनातन मनन योग्य गुप्त तत्त्वज्ञानको दिव्य दृष्टिसे देखते हैं और उनको मन्त्रमें रचनाविशेषसे सुस्थिर करते हैं अर्थात् दोनोंमें 'मननीय गुप्त तत्त्वज्ञानका दिव्य दृष्टिसे दर्शन 'समान ही है।

> युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान् सेतिहासान्महर्षयः ।
> लेभिरे तपसा पूर्वं अनुज्ञाताः स्वयंभुवा ॥

' पूर्वयुगकी समाप्तिपर गुप्त हुए वेद इतिहासोंके समेत इस युगमें ऋषियोंने प्राप्त किये।' यहां इतिहास भी वैसेही प्राप्त हुए ऐसा लिखा है। अस्तु। मन्त्रद्रष्टा, मन्त्रकृत् और मन्त्रपति ये तीन प्रकार ऋषियोंके हैं, यही यहां ध्यानमें धरने योग्य बात है। यह विषय आगे आनेवाला है, अतः इसका अधिक विवरण आगे यथासमय आयेगा।

वीरोंके साथ रहनेवाला धन

' वीरवतीं रयिं इषं च नः आ भर ' वीरोंके साथ रहनेवाला धन और अन्न हमें भरपूर भर दे। हमें ऐसा धन नहीं चाहिये कि जिसके साथ वीर न हों, ऐसा अन्न भी नहीं चाहिये जो वीरता तथा वीर्य उत्पन्न न करे। यहाँका वीर पद 'पुत्र और शूर वीर' दोनोंका बोध करता है। पुत्रका भी नाम वीर इसलिये है कि वह **(वीरयति अमित्रान्)** शत्रुओंको दूर भगानेका सामर्थ्य रखता है। जो ऐसा सामर्थ्य रखता है उसीको **' वीर '** संज्ञा वेद देता है। ऐसे शूरवीर जिस धनके रक्षक होंगे और ऐसे शूरवीर जिस अन्नसे निर्माण होंगे वही धन और वही अन्न हमें चाहिये। निर्बलता उत्पन्न करनेवाला धन और अन्न हमें नहीं चाहिये।

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें यह विषय (ऋ. १।१।३ में पृष्ठ ४ पर तथा ऋ. ८।१।१ में पृ. २३ पर और पृ. ३६ पर) है वह वहां पाठक देखें और इसके साथ उसकी तुलना करें।

पुनरुक्त मंत्र-भाग

अग्ने देवान् इह आ वह। (मं० ३,१०)

यह चरण यहां दोवार आया है। मंत्र ३ और मंत्र १० तथा यही ऋ. १।१५।४ में भी है। अग्नि अपने रथपर सब देवोंको रखता है और यज्ञस्थानमें लाता है। इस विषयका स्पष्टीकरण 'अग्निविद्या' ग्रंथमें किया है, तथा देवतसंहिता प्रथम भाग 'अग्निमंत्र-संग्रह' की भूमिकामें गया किया है।

मनुष्यका शरीर अग्निका रथ है, इस रथको दस घोडे जोते हैं, ये दश इंद्रियाँही हैं। इस रथमें सब देवताएं हैं।

> यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे सर्वे समाहिताः।
> स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १३ ॥
> यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे गात्रा विभेजिरे।
> तान् वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥ २७ ॥
> (अथर्व. १०।७)

'तैंतीस देव अंगोंके गात्रोंमें रहते हैं। शरीरका प्रत्येक अवयव इस तरह देवताका स्थान है।'

इस तरह इस शरीररूपी रथमें तैंतीस देवताएं हैं। तैंतीस देवताका अर्थही सब देवताएं हैं, क्योंकि तैंतीस देवताओंके अन्तर्गत सब देवताएं हैं। जब इस शरीरका गर्भमें निवास होता है, तब यह अग्निदेव अपने साथ इन सब देवताओंको लाता है और इस रथपर रखता है और इस रथमें स्वयं बैठकर यज्ञभूमिमें लाता है। इस रीतिसे अग्निदेवके शरीररूपी रथपर बैठकर सब देवगण इस विश्वरूपी यज्ञभूमिपर आते हैं और यहां शतसांवत्सरिक यज्ञ करते हैं। शरीरमें जठराग्निमें डाली हुई आहुतियां यहांके सब देवताओंको यथायोग्य रीतिसे पहुंचतीं हैं। यह यज्ञ यहां चल रहा है। पाठक विचार करके इस यज्ञके गुप्त तत्त्वको जाननेका यत्न करें।

ज्ञानी अग्नि

' कविः अग्निः ' मंत्र ६ और ७ में कहा है। यही अग्नि है। विद्वान्को संस्कृतमें ' विदग्ध ' कहते हैं। विशेष रीतिसे ज्ञानाग्निमें भूना या जला हुआ। ज्ञानाग्निसे जिसका अज्ञान पूर्णतया जल गया है, वह विदग्ध है। ' विदग्ध ' का अर्थ- 'जला हुआ, बुद्धिमान्, चतुर, कारीगर, विद्वान्, प्रिय, सुंदर' है। ये सब अर्थ अग्निके सूक्तोंमें पाठक देखेंगे।

अग्निना अग्निः समिध्यते...युवा। (मंत्र ६)

वृद्ध अग्निसे (ज्ञानीसे) युवा अग्नि (बुद्धिमान् युवक) प्रदीप्त किया जाता है, सिखाया जाता है, ज्ञानी किया जाता है। मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें कहा है कि-

केतुं कृण्वन्नकेतवे। (ऋ. १।६।३)

' अज्ञानीके लिये ज्ञान देता है।' यही भाव अंशतः यहां है।

युवाको वृद्ध अपने अनुभवके ज्ञानसे प्रदीप्त करता है। एक दीपसेही दूसरा दीप जगाया जाता है। एक अग्निसेही उस तरह दूसरा अग्नि जगाया जाता है। यही व्यवहार इस विषयमें हो रहा है। सूर्यका अग्नि शाश्वत टिकनेवाला है, उसके किरणोंको काचमणिसे सूखे घासपर कुछ समय तक रखा जाय तो यह अग्नि जाग उठता है। यही सूर्यरूपी एक अग्निसे अग्निरूपी दूसरे अग्निका जलाना है।

प्रजापालक

इस सूक्तमें ' विश्-पति ' पद द्वितीय मंत्रमें है। राजा प्रजापालक है। इस सूक्तमें कहे अनेक पद राजाके भी गुण बता सकते हैं। वह राजा (विश्पतिः) प्रजाका योग्य पालन करे, वह (हव्य-वाट्) अन्नको सब प्रजाजनोंतक पहुंचावे, किसीको भूखा न रखे, (विश्व-वेदाः) सब धनोंको पास रखे, सब ज्ञानोंको बढावे, (यज्ञस्य सुक्रतुः) राज्यशासनरूप यज्ञको अच्छीतरह निभावे, (रक्षस्विनः रिषतः दह) घातपात करनेवाले दुष्टकर्मी दुष्टोंका नाश करे, (देवान् इह आवह) ज्ञानदेव, वीरदेव, धनदेव, कर्मदेव और वनदेवोंको यहां उत्तम रीतिसे रखे और इनमें जो अदेव-असुर-होंगे उनका नाश करे, (सत्यधर्मा) सत्य धर्मसे राज्य करे, (पावकः) सर्वत्र पवित्रता करे, (मृळय) सबको सुख देवे, (अमीव-चातन) सब रोगोंको दूर करनेका प्रबंध करे, इस तरह राज्यशासन करनेसे (पुरु प्रियः) सब प्रजाजनोंको प्रिय बनें।

इस तरह विचार करके राज्यशासनकी विद्याका ज्ञान पाठक विचारपूर्वक प्राप्त करें।

---

(२) यज्ञकी तैयारी

(ऋ. १ १३) मेधातिथिः काण्वः (आप्रीसूक्तं, अग्निरूपा देवताः=) १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळः, ५ बर्हिः, ६ देवीर्द्वारः, ७ उषासानक्ता, ८ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, १० त्वष्टा, ११ वनस्पतिः, १२ स्वाहाकृतयः। गायत्री।

सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च । १
मधुमन्तं तनूनपाद् यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहि वीतये २
नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ३
अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह । असि होता मनुर्हितः ४
स्तृणीत बर्हिरानुषग् घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षणम् ५
वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः । अद्या नूनं च यष्टवे ६
नक्तोषासा सुपेशसाऽस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । इदं नो बर्हिरासदे ७
ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ८
इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ९
इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये । अस्माकमस्तु केवलः १०
अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः । प्र दातुरस्तु चेतनम् ११
स्वाहा यज्ञं कृणोतनेन्द्राय यज्वनो गृहे । तत्र देवाँ उप ह्वये १२

अन्वयः- हे पावक होतः अग्ने ! सुसमिद्धः (त्वं) हविष्मते, देवान् नः आ वह, यक्षि च ॥१॥ हे कवे ! (त्वं) तनूनपात् अद्य नः मधुमन्तं यज्ञं वीतये देवेषु कृणुहि ॥२॥ इह अस्मिन् यज्ञे प्रियं मधुजिह्वं हविष्कृतं नराशंसं उपह्वये ॥३॥ हे अग्ने ! ईळितः सुखतमे रथे देवान् आ वह, (त्वं) मनुर्हितः होता असि ॥४॥ हे मनीषिणः ! घृतपृष्ठं, बर्हिः आनुषक्

स्तृणीत, यत्र अमृतस्य चक्षणं ॥५॥ अद्य नूनं यष्टवे च, ऋतावृधः असश्चतः देवीः द्वारः विश्रयन्ताम् ॥६॥ सुपेशसा नक्तोषासा अस्मिन् यज्ञे उपह्वये, नः इदं बर्हिः आसदे ॥७॥ ता सुजिह्वौ होतारा दैव्या कवी उपह्वये, नः इमं यज्ञं यक्षताम् ॥८॥ इळा सरस्वती मही तिस्रः देवीः मयोभुवः । अस्रिधः बर्हिः सीदन्तु ॥९॥ अग्रियं विश्वरूपं त्वष्टारं इह उप ह्वये । (सः) केवलः अस्माकं अस्तु ॥१०॥ हे देव वनस्पते । देवेभ्यः हविः अव सृज, दातुः चेतनं प्र अस्तु ॥११॥ यज्वनः गृहे इन्द्राय यज्ञं स्वाहा कृणोतन । तत्र देवान् उपह्वये ॥१२॥

अर्थ- हे पवित्रता करनेवाले और हवन करनेवाले अग्ने ! उत्तम प्रदीप्त हुआ तू हवन करनेवालेके ऊपर कृपा करनेके लिये, सब देवोंको हमारे पास ले आ और (उनके उद्देश्यसे) हवन कर ॥१॥ हे बुद्धिमान् अग्ने ! (तू) शरीरको न गिरानेवाला है, अतः आज हमारे इस मधुर यज्ञ (के अन्न) को (देवोंके) भक्षन करनेके लिये देवोंतक पहुंचा दे ॥२॥ यहां इस यज्ञमें प्रिय मधुरभाषणी और हविकी सिद्धता करनेवाले तथा मनुष्योंद्वारा प्रशंसित (अग्निको) मैं बुलाता हूं ॥३॥ हे अग्ने ! प्रशंसित हुआ (तू) उत्तम सुख देनेवाले रथमें (बिठलाकर) देवोंको (यहां) ले आ। (क्योंकि तू) मानवोंका हितकर्ता (और देवोंको) बुलानेवाला है ॥४॥ हे बुद्धिमान् लोगों ! घीके समान चमकनेवाले आसन (यहां) साथसाथ फैला दो, जहां अमृतका साक्षात्कार होगा ॥५॥ आज निःसंदेह यज्ञ करनेके लिये, सत्यको बढानेवाले, दूसरेके साथ मिले न रहते हुए, ये दिव्य द्वार खुल जायँ ॥६॥ सुंदररूपवाली रात्रि और उषा (इन दो देवताओं)को इस यज्ञमें मैं बुलाता हूं, हमारा यह आसन (उनके) बैठनेके लिये है ॥७॥ उन उत्तम भाषण करनेवाले, (दोनों) याजक दिव्य कवियोंको मैं (यहां) बुलाता हूं, (वे) हमारे इस यज्ञको संपन्न करें ॥८॥ भूमि, सरस्वती और वाणी (ये) तीन देवताएं सुख देनेवाली हैं, वे क्षीण न होतीं हुईं आसनपर बैठें ॥९॥ प्रथम पूजनीय नाना रूपोंके निर्माता कारीगरको यहाँ बुलाता हूं, वह केवल हमारा ही होवे ॥१०॥ हे वनस्पति-देव ! देवोंके लिये हविरूप अन्न दो। दाताके लिये उत्साह प्राप्त होवे ॥११॥ याजकके घरमें, यज्ञशालामें, इन्द्रदेवताके लिये यज्ञ स्वाहा (करके) करें । यहां देवोंको बुलाता हूं ॥१२॥

आप्रीसूक्त

यह आप्रीसूक्त है । आप्री अथवा आप्रिय ये नाम वेदमें अग्निके हैं । यज्ञका प्रारंभ करनेकी तैयारीके ये आप्री-सूक्त हैं । वेदमें निम्नलिखित आप्रीसूक्त हैं-

	ऋषि	स्थान	मंत्रसंख्या
१	मेधातिथिः काण्वः	ऋ. १।१३।१-१२	१२
२	दीर्घतमा औचथ्यः	१।१४२।१-१३	१३
३	अगस्त्यो मैत्रावरुणः	१।१८८।१-११	११
४	गृत्समदः शौनकः	२।३।१-११	११
५	विश्वामित्रो गाथिनः	३।४।१-११	११
६	वसुश्रुत आत्रेयः	५।५।१-११	११
७	वसिष्ठो मैत्रावरुणि.	७।२।१-११	११
८	असितः काश्यपः	९।५।१-११	११
९	सुमित्रो वाध्र्यश्वः	१०।७०।१-११	११
१०	जमदग्निर्भार्गव.	१०।११०।१-११	११
११	प्रजापतिः	वा. य. २०।३६-४६ तै. सं. २।६।८, काठक १८।६,	११
१२		वा० य० २०।५६-६६	११
१३		२१।१२-२२	११
१४		२१।२९-४०	११
१५		२७।११-२२	११
१६	ब्रह्मा	अथर्व० ५।२७	१२
१७		वा० यजु० २८।१-११	११
१८		२८।२४-३४	११
१९		२९।१-११	११
२०		२९।२५-३६	११
२१		परिशिष्ट	११

इतने आप्रीसूक्त वैदिक संहिताओंमें हैं। जो वाजसनेयी यजुर्वेदमें हैं, वे प्रायः तैत्तिरीय, काठक, मैत्रायणी आदि यजुस् संहिताओंमें हैं। इनमें प्रायः ११ देवताएं होती हैं, परंतु दो तीन सूक्तोंमें एक दो देवताएं अधिक हैं। इन सबमें देवताओं का क्रम एकसाही है। इसलिये केवल इन आप्री सूक्तोंका ही

इकट्ठा अभ्यास करना योग्य होगा। तथापि यहां हम इसी सूक्तके विषयमें अपने विचार लिखते हैं।

देवताओंका क्रम

आप्री-सूक्तोंमें देवताओंका क्रम सर्वत्र एकसा रहता है, जो निम्नलिखित प्रकार है—

१ **सुसमिद्ध अग्निः**- प्रदीप्त प्रज्वलित अग्नि।

२ **तनूनपात्**- शरीरको न गिरानेवाला, शरीरका धारक अग्नि। शरीरमें उष्णता रहनेतक ही (तनू-न-पात्) शरीर गिरता नहीं। जब शरीरसे अग्नि चला जाता है, तब शरीर गिरता है। शरीरका कार्य इस तरह अग्निका कार्य है। (तनून-पात्) सूर्यरूपी शरीरका पुत्र विद्युत् अग्नि है और उसका पुत्र पार्थिव अग्नि है। इसलिये यह सूर्यका पोता है।

३ **नराशंसः**- मनुष्योंद्वारा प्रशंसित, नेताओंकी जहां प्रशंसा होती है, नेताही जिसकी प्रशंसा करते हैं।

४ **इळः**- (इडः, इलः, इडा, इला) प्रशंसा-योग्य, अग्नि, अन्न, प्रार्थनाका मंत्र।

५ **बर्हिः**- आसन, चटाई, दर्भ।

६ **देवीः द्वारः**- दिव्य द्वार।

७ **नक्तोषासा**- रात्री और उषा, उषाके पूर्वका रात्रीका भाग।

८ **दैव्या होतारा**- दिव्य होता गण।

९ **तिस्रः देवीः**- तीन देवताएं, (१) **इळा**-मातृभूमि, (२) **सरस्वती**-मातृसभ्यता और (३) **मही** (भारती)-मातृभाषा।

१० **त्वष्टा**- कारीगर, रचना करनेवाला कर्ममें कुशल।

११ **वनस्पति**- औषधि, वनस्पति, साग

१२ **स्वाहाकृतिः**- (स्व-आ-हा) अपने स्वामित्वके अन्दर जो होगा, उसका समर्पण करना, यज्ञ करना।

१३ **इन्द्रः**- प्रभु, स्वामी, ईश्वर।

इनमें प्रायः '**इन्द्र**' नहीं रहता और '**नराशंस**' और '**तनूनपात्**' में से कोई एक रहता है। इस तरह दो देवताओंके कम होनेसे शेष ग्यारह देवताएं रहती हैं जो बहुत आप्री-सूक्तोंमें रहती हैं।

प्रातःसमय का वर्णन

'**उषासानक्ता**' अथवा '**नक्तोषासा**' इस देवतासे यह समय ब्राह्ममुहूर्तके पश्चात् भागका प्रतीत होता है। (नक्त) रात्रिके साथ (उषा) उषःकालका समय अर्थात् जिस समय में थोडीसी रात्रि भी है और उषा भी थोडीसी शुरू हुई है, ऐसा जो समय है, उस समय यज्ञकी तैयारी करनेका कार्य शुरू होता है। ये सब मंत्र इस समयके कार्यके सूचक हैं। (मंत्र७)

द्वारोंका खोलना

इस समय दिव्य द्वार, यज्ञ-शालाके द्वार खोले जाते हैं। ये दिव्य द्वार हैं क्योंकि इन द्वारोंमेंसे अन्दर आकर यज्ञमें मनुष्य संमिलित हो सकते हैं। यज्ञही सबसे परम श्रेष्ठ और उत्तम कर्म है। इन द्वारोंसे अन्दर आकर यज्ञ करना संभव है इसलिये इस पवित्र यज्ञके कारण ये द्वार भी पवित्र ही हैं। पवित्र यज्ञतक पहुंचानेवाले द्वार दिव्यही हो सकते हैं। (मं. ६)

ज्ञानी दिव्य होताओंको बुलाना

(कवी दैव्यौ होतारौ) ज्ञानी दिव्य होताओंको बुलाया जाता है। ये (सु-जिह्वौ) उत्तम मीठी जबानवाले, उत्तम वक्ता होते हैं। ये आते हैं और यज्ञको यथायोग्य रीतिसे सिद्ध करते है। (मं. ८)

अग्निको प्रदीप्त करना

ये ऋत्विज् यज्ञशालामें आते हैं और अग्निको (सुसमिद्ध) उत्तम रीतिसे प्रदीप्त करते हैं। क्योंकि प्रदीप्त और प्रज्वलित अग्निमेंही हवन किया जाता है। जिसकी ज्वालाएं होती हैं उस अग्निमेंही हवन होता है। यही अग्नि (पावकः) पवित्रता करता है और यजन करने योग्य होता है। (मं. १)

शरीरको न गिरानेवाला

मनुष्य तथा अन्य प्राणीके शरीर उसमें अग्नि रहनेतक, उनमें उष्णता रहनेतकही कार्य करते हैं, चलना फिरना आदि सब कर्म शरीरमें उष्णता रहनेतकही हो सकते हैं। उष्णता चली गयी, शरीर ठंडा हो गया, तो यह शरीर मुर्दा बनता है और कोई कार्य करनेमें समर्थ नहीं होता। इसलिये अग्निको 'तनू-न-पात्' शरीरको न गिरानेवाला कहा है। संपूर्ण विश्वमें अग्निका यही कार्य है। सबको यथास्थानमें रखकर भ्रमण करानेवाला अग्निही है। (मं. २)

इसीलिये इसकी प्रशंसा (नर-आ-शंस) सभी मनुष्य करते है। क्योंकि सब ज्ञानी जानते हैं कि इसके विना विश्वमें कुछ भी कार्य नहीं हो सकता। (मं. ३)

सुखतम रथ

जिससे अत्यंत सुख होता है ऐसे रथमें बैठकर यह अग्नि सब देवोंको इस यज्ञभूमिमें लाता है और (मनुर्हितः) मनुष्योंका हित करता है। इस विषयमें पूर्व सूक्तमें विशेष स्पष्टीकरण किया है। (मं. ४)

अमृतका दर्शन

यहांही 'अमृतका दर्शन' (**अमृतस्य चक्षणं**) होता है। यहां सब देवताओंके लिये (आनुषक्) साथ साथ आसन फैलाये है। आंख नाक कान आदि इंद्रियोंमें आसनोंपर ये देव आकर बैठते हैं और यज्ञ करते हैं। इस यज्ञमेंही अमृतका साक्षात्कार होता है। इसलिये कहा है--

ये पुरुषे ब्रह्म विदुः ते विदुः परमेष्ठिनम्।

(अथर्व १०।७।१७)

जो पुरुषमें ब्रह्म देखते हैं वेही परमेष्ठी प्रजापतिका दर्शन करते हैं। यही अमृतका दर्शन है। यहां जो यज्ञ चलता है उसका अन्तिम फल अमृतका साक्षात्कारही है। (मं ५)

तीन देवियां

(इळा) मातृभूमि, (सरस्वती) मातृसंस्कृति, (मही-भारती) मातृभाषा ये तीन देवियां उपासनाके योग्य है। ये बडी सुख देनेवाली है। (इळा, इडा, इरा) अन्न देनेवाली भूमीमाता यह प्रथम उपास्य है। इसकी भक्तिके लिये **'मातृभूमि सूक्त'** (अथर्व १२।१ मे) है। उसका विचार यहां पाठक करें। यह स्थानका संबंध है। (सरस्-वती) प्रवाहसे अनादि जो सभ्यता है वह भी रक्षा करने योग्य है। यह मानवी जीवनका मार्ग बताती है। अनादिकालके साथ संबंध जोडनेवाली यही दिव्य भावना है जो अनंत कालमें एकतारा भाव निर्माण करती है। प्राचीनतम ऋषियोंके साथ हमारा संबंध जोडनेवाली यही सरस्वती है। जिसतरह उत्पत्तिस्थानके साथ समुद्रका संबंध नदी जोडती है, उसीतरह यह सभ्यता प्रत्येक व्यक्तिका संबंध ऋषियोंसे जोडती है। यह कालका संबंध है. तीसरी देवता मही है, इसीको अन्य आप्रीसूक्तोंमें भारती कहा है। भारती नाम वाणीका है। मातृभाषाही भारती है। भूमि, सभ्यता और वाणी इनमें मनुष्यकी मानवता रहती है। इसलिये यज्ञके द्वारा इनकी सुरक्षा और उन्नति की जाती है। जिस कर्मसे इनकी अवनति होगी, वे कर्म करने नहीं चाहिये और जिससे इनकी उन्नति होगी वे कर्म करने चाहिये। यही कर्म यज्ञनामसे प्रसिद्ध हैं। (मं. ९)

विश्वरूप त्वष्टा

त्वष्टा कारीगरका नाम है 'विश्वरूप त्वष्टा' है, जो मूल कारीगर है वह विश्वरूप है। '**विश्वं विष्णुः**' विश्वही विष्णु है और जो विष्णु है वही विश्व है अर्थात् विश्वरूप है। इस विश्वरूप देवकी ही सेवा करनी चाहिये।

नगरोंमें तर्खाण आदि जो (त्वष्टा) कारीगर हैं उनका संमान करना योग्य है। यज्ञमें उनका सन्मान होता है। यज्ञका मंडप वह तैयार करता है, यज्ञपात्र वह बनाता है, घर वह बनाता है। मानवी जीवनमें कारीगरोंका बडाभारी उपयोग है। ये कारीगर विश्वरूप अर्थात् नानारूप बनाते हैं। इसीलिये उनको सम्मानपूर्वक बुलाना योग्य है। (मं. १०)

वनस्पतियोंसे अन्न

(**वनस्पते ! देवेभ्यः हविः अवसृज**) हे औषधि-वनस्पतियों ! देवोंके लिये अन्नका निर्माण करो। (**पर्जन्यात् अन्नसंभवः**। गीता ३।१४) पर्जन्यसे अन्न उत्पन्न होता है। पर्जन्यसे औषधिया और (**ओषधिभ्यो अन्नं**) औषधियोंसे अन्न उत्पन्न होता है। यही अन्न देवोंको दिया जाता है और पश्चात् यज्ञशेषका सेवन किया जाता है। इसी यज्ञशेष अन्नको 'अमृत' कहते है। (मं. ११)

दाताको उत्साह

(**दातुः चेतनं अस्तु**) दाताके लिये उत्साह मिले। अधिक दान करते रहनेका उत्साह मनुष्योंमें बढे। इसीसे यज्ञ-कर्मकी वृद्धि होगी और मनुष्योंका हित होगा। (मं ११)

स्वाहा करो

(**स्व-आ-हा-कृतिः**) जो अपनी वस्तु है, उसको सबकी भलाईके लिये अर्पण करनेका नाम 'स्वाहा कृति' है। इसीका नाम यज्ञ है। यज्ञकी यह उत्तमसे उत्तम व्याख्या है। यज्ञही श्रेष्ठतम कर्म है। मनुष्यका जीवनही एक शतसांवत्सरिक यज्ञ है। और इस यज्ञमें 'स्वाहा' ही मुख्य है अर्थात् समर्पणही मुख्य किया है। (मं. १२)

संक्षेपसे इस आप्री सूक्तका भाव इस तरह यहां दिया है।

रहा है, यह अग्नि (शारीरिक उष्णता) यहांका मुख्य याजक अग्नि है। इत्यादि सत्य वर्णन यहां है ऐसाही मानना योग्य है। मनुष्य जीवन एक महान यज्ञ है और यह यज्ञ प्रत्यक्ष ही है।

यज्ञमें देवगण

यहांके यज्ञमें सब देवतागण यथस्थान विराजमान हैं (इन्द्र) मन है जो देवोंका राजा है, (वायु) मुख्य प्राण है, (बृहस्पति) वाणी और ज्ञान है, (मित्र) नेत्र है, (अग्नि) जाठर अग्नि, उष्णता और वाणीका प्रेरक शारीर अग्नि है, (पूषा) पोषक अन्नभाग, (भग) भाग्य, शोभा, ऐश्वर्य, (आदित्य) द्वादश महिने, कालके अवयव हैं, (मारुत गण) प्राण और उपप्राण, नाना जीवन शक्तियाँ (पत्नीवत.) इन की प्रेरक शक्तियाँ इस तरह ये सब देव यहां रहते हैं। हविर्भागका भोग करते है और आनन्द प्राप्त करके प्रसन्न होते हैं। पाठकोंको मननद्वारा इन देवताओंको जानना योग्य है।

सोमरस देवोंका अन्न

सोमरस ही देवोंका अन्न है। इस विषयमें कहा है—

अन्नं वै सोमः। (श. ३।९।१।८, ७।२।२।११)

एतद्वै देवानां परमं अन्नं यत्सोमः। (तै ब्रा. १।३।३।२)

एतद्वै परमं अन्नाद्यं यत्सोमः। (कौ १३।७)

एष वै सोमो राजा देवानां अन्नं। (श. १।६।४।५)

'यह सोमरस देवोंका अन्न है।' पूर्व आप्रीसूक्तमें (ऋ. १।१३।११ में) वनस्पतिसे अन्नकी प्रार्थना की है—

हे **वनस्पते! देवेभ्यो हविः अवसृज।** (ऋ १।१३।११)

इसका हेतु स्पष्ट है कि देवोंका अन्न वनस्पतिसे मिलता है। '**ओषधिभ्योऽन्नं**' ऐसा तै उपनिषद्ने भी कहा है। इस सबका आशय यही है कि वनस्पतिसे अन्न प्राप्त होता है, जो देवोंको देकर मानवोंको सेवन करने योग्य है।

सोमके गुण

इस सूक्तमें सोमके निम्नलिखित गुण कहे गये हैं।

१ **इन्दुः**- तेजस्वी रस

२ **मत्सर** – आनन्द कर, मद कर

३ **मादयिष्णु** – उत्साहवर्धक, मद बढानेवाला

४ **द्रप्स** – बूंद बूंद चूनेवाला, छानकर तैयार होनेवाला

५ **मधु** – मधुर

६ **चमूषद्**- पात्रमें जो रखा जाता है

७ **सोम्यं मधु**- सोमवल्लीका मधुर रस

सोमवल्लीका रस निकाला और छाना जाता है, यह पात्रोंमें भरा जाता है। यह मधुर है और हर्ष तथा उत्साह बढानेवाला है। यही आर्योंका मुख्य पेय था।

घोडे

घोडे किस तरह पाले जांय और रथके साथ जोतनेवाले घोडे कैसे हों, इस विषयमें इस सूक्तमें अच्छे निर्देश हैं देखिये-

घृतपृष्ठाः— घी लगाये समान घोडोंकी पीठ तेजस्वी हो।

मनोयुजः— इशारे मात्रसे वे जोते जांय और केवल इशारेसेही चलते रहें, ऐसे शिक्षित घोडे हों,

३ **वह्नय** – ढोनेमें, भार ढोनेमें समर्थ हों, अग्निके समान तेजस्वी हैं। यह अग्निवाचक पद घोडोंके लिये प्रयुक्त हुआ है।

४ **अरुषी**— चपल, लाल रंगवाला,

५ **हरितः**— तेज चलनेवाले पीले रंगवाले घोडे,

७ **रोहितः**— लाल रंगवाले।

ऐसे घोडे रथको जोतनेके लिये उत्तम शिक्षित होकर तैयार रहे। '**रथे रोहितः युक्ष्व**' (मं. १२) रथमें लाल रंगवाले घोडे जोतो, जो इशारेसे चलनेवाले हों। ऐसे घोडे रथमें बैठनेवालेको सुख देंगे।

इस रथमें अग्निके साथ सब देव बैठने थे और इन सबको येही घोडे खींचकर लाते थे। इस सूक्तमें तृतीय मंत्रमें सात देव, बारह आदित्य और मरुद्गण ४९ गिनाये हैं, मरुतोंके पार्श्वरक्षक १४ मिलकर ६३ होते हैं। अर्थात् ये ८२ अथवा कमसे कम ६८ देव तो हुए। इनको रथमें बिठलानेके लिये रेलके बडे डब्बेके समान बडा भारी रथ होगा और इसको खींचनेके लिये कितने घोडे लगेंगे इसका पता नहीं। इसलिये इस सूक्तमें वर्णित रथ इस शरीरको माननाही युक्तियुक्त है क्योंकि यहां सब देवताएं हैं और इसको दस घोडे जोते हैं और ये इस रथको खींचते भी हैं।

ये घोड उत्तम शिक्षित हों, तथा तेजस्वी और चपल भी हों, अपना कार्य करनेकी क्षमता भी इनमें हो।

विप्र अग्नि

इस सूक्तमें अग्निको '**विप्र**' अर्थात् विशेष प्राज्ञ या ज्ञानी कहा है। अग्निके मन्त्रोंमें आदर्श ब्राह्मणके गुण ऋषि देखते हैं ऐसा हमने मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें (पृष्ठ ३५ पर)

कहा है। वही यहां इस पदसे स्पष्ट होता है। (सुजिह्व) उत्तम मीठी जबानवाला, मीठा भाषण करनेवाला, यह पद भी विद्वानका ही वर्णन करता है।

देवोंके लक्षण

इस सूक्तमें देवोंके लक्षण जो आये हैं वे विशेषही मनन करने योग्य हैं—

१ यजत्राः– सतत यज्ञ करनेवाले, याजक। प्रशस्त कर्म करनेवाले,

२ ईड्याः– प्रशंसा करनेके लिये योग्य,

३ उषर्बुधः– उषःकालमें जागनेवाले, उषःकालमें उठकर अपना कार्य शुरू करनेवाले,

४ होता– हवन करनेवाला, देवताओंको बुलानेवाला,

५ मनुर्हितः– मनुष्योंका हित करनेवाला, जनताका हित करनेमें तत्पर,

६ ऋतावृधः– सत्यमार्गके बढानेवाले,

७ पत्नीवतः– गृहस्थाश्रमी।

ये गुण मनुष्योंको अपनाने योग्य हैं, मनुष्य उषःकालमें उठें, हवन करें, जनताका हित करें, इसीलिये नाना प्रकारके कर्म करें।

उपासकोंके लक्षण

इस सूक्तमें उपासकोंके भी लक्षण कहे हैं वे भी मननके योग्य है—

१ कण्वाः– आर्त, दुःखसे त्रस्त, अपने दुःखको जाननेवाले और उनको दूर करनेके इच्छुक, दुःखसे मुक्त होनेके मार्गको जाननेवाले, ज्ञानी जन,

२ वृक्त बर्हिषः– आसन फैलाकर उपासना करनेके लिये तत्पर,

३ हविष्मन्तः– हविष्य अन्न तैयार करके उसका समर्पण करनेवाले,

४ अरंकृतः– अलंकृत हुए, सजे हुए, अपना कर्म पूर्ण रूपसे सिद्ध करनेवाले, सुंदर रीतिसे अपना कर्तव्य करनेवाले,

५ अवस्यवः– अपना संरक्षण करनेके इच्छुक, अपनी सुरक्षा करनेमें तत्पर,

ये उपासकोंके लक्षण भी बोधप्रद हैं। ये अपनाने योग्य हैं।

अध्वर

यहां ' अध्वर ' नामक यज्ञका वर्णन है। अध्वर वह कर्म है कि जिसमें हिंसा, कुटिलता अथवा टेढापन बिलकुल नहीं होता। मनुष्यको ऐसे ही कर्म करने चाहिये। देवोंके सामने अकुटिल कर्म ही करना है।

देवोंके कार्य

तृतीय मंत्रमें कुछ देवोंके नाम गिनाये हैं। (इन्द्रः) शत्रुनाश करनेवाला, (वायुः) गतिमान, प्रगति करनेवाला, (बृहस्पतिः) ज्ञानी वक्ता, (मित्रः) हितकर्ता, (अग्निः) प्रकाश देनेवाला, मार्गदर्शक, (पूषा) पोषण करनेवाला, (भगः) ऐश्वर्यवान्, (आदित्यः) लेनेवाला, धारणकर्ता, (मारुतोगणः) संघमें रहनेवाला। मनुष्योंने इन गुणोंको अपनाना चाहिये। जिससे उनमें देवत्वका विकास होगा।

इस तरह सूक्तका मनन करके बोध लेना उचित है।

---

(४) दुर्दम्य बल

(ऋ. मं. १।१५) मेधातिथिः काण्वः। [प्रतिदैवतं ऋतुसहितम्=] १ इन्द्रः, २ मरुतः, ३ त्वष्टा, ४ अग्निः, ५ इन्द्रः, ६ मित्रावरुणौ, ७-१० द्रविणोदाः, ११ अश्विनौ, १२ अग्निः। गायत्री।

इन्द्र सोमं पिब ऋतुनाऽऽ त्वा विशन्त्विन्दवः । मत्सरासस्तदोकसः १
मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन । यूयं हि ष्ठा सुदानवः २
अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना । त्वं हि रत्नधा असि ३
अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिब ऋतुना ४
ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु । तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ५

युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम् । ऋतुना यज्ञमाशाथे ६
द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे । यज्ञेषु देवमीळते ७
द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे । देवेषु ता वनामहे ८
द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ९
यत् त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे । अध स्मा नो ददिर्भव १०
अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता । ऋतुना यज्ञवाहसा ११
गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि । देवान् देवयते यज, १२

अन्वयः— हे इन्द्र ! ऋतुना सोम पिब । इन्दवः त्वा आ विशन्तु । तदोकसः मत्सराः ॥१॥ हे मरुतः ! पोत्रात् ऋतुना पिबत । यज्ञं पुनीत । हे सुदानवः ! हि यूयं स्थ ॥२॥ हे ग्नावः नेष्टः ! नः यज्ञं अभि गृणीहि । ऋतुना (सोमं) पिब । हि त्वं रत्नधा असि ॥३॥ हे अग्ने ! देवान् इह आ वह । त्रिषु योनिषु सादय । परि भूष । ऋतुना पिब ॥४॥ हे इन्द्र ! ब्राह्मणात्, राधसः, ऋतून् अनु, सोमं पिब । हि तव इत् सख्यं अस्तृतम् ॥५॥ हे धृतव्रता मित्रावरुणा ! युवं ऋतुना, दूळभं दक्षं यज्ञं आशाथे ॥६॥ द्रविणसः ग्रावहस्तासः अध्वरे यज्ञेषु (च) द्रविणोदाः देवं ईळते ॥७॥ द्रविणोदाः नः वसूनि ददातु, यानि शृण्विरे, ता देवेषु वनामहे ॥८॥ द्रविणोदाः नेष्टात् ऋतुभिः पिपीषति, (अतः हे याजकाः) इष्यत, जुहोत, च प्र तिष्ठत ॥९॥ हे द्रविणोदः । यत् ऋतुभिः त्वा तुरीयं यजामहे। अध, नः ददिः भव स्म ॥१०॥ हे दीद्यग्नी शुचिव्रता ऋतुना यज्ञवाहसा अश्विना ! मधु पिबतम् ॥११॥ हे सन्त्य ! गार्हपत्येन ऋतुना यज्ञनीः असि। देवयते देवान् यज ॥१२॥

अर्थ— हे इन्द्र ! ऋतुके अनुकूल सोमरसका पान करो । ये सोमरस तेरे अन्दर प्रविष्ट हों । वही घर इन आनन्द-वर्धक सोमरसोंका है ॥१॥ हे मरुतो ! पोतृनामक पात्रसे ऋतुके साथ (सोमरस) पीओ ! हमारे यज्ञको पवित्र करो । हे उत्तम दान देनेवाले (मरुतो)! तुम वैसेही (पवित्रता करनेवाले) हो ॥२॥ हे पत्नीसहित प्रगतिशील याजक ! हमारे यज्ञकी प्रशंसा कर । ऋतुके अनुसार (सोमरसका) पान कर । तू रत्नोंका धारणकर्ता है ॥३॥ हे अग्ने ! अपने साथ देवोंको ले आ । तीनों स्थानोंपर (उनको) बिठला । (उनको) अलंकृत कर । और ऋतुके अनुसार (सोमरसका) पान कर ॥४॥ हे इन्द्र ! ब्राह्मणके पात्रसे, उसके पात्रसे, ऋतुके अनुसार, सोमरस पी । क्योंकि तेरी मित्रता अटूट है ॥५॥ हे नियमोंके पालन करनेवाले मित्र और वरुण देवो ! तुम दोनों मिलकर, ऋतुके अनुसार, दुर्दमनीय बल बढानेवाले यज्ञको सिद्ध करते हैं ॥६॥ धन प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हाथमें सोम कूटनेके पत्थर लेकर यज्ञमें और प्रत्येक कर्ममें धन देनेवाले देवकी स्तुति गाते हैं ॥७॥ धन देनेवाला देव हमें वे अनेक धन देवे, कि जिन (धनोंका) वर्णन हम सुनते आये हैं। वे धन हम देवोंकोही (पुनः) अर्पण करेंगे ॥८॥ धन देनेवाला देव नेष्टृसंबंधी पात्रसे ऋतुके अनुसार (सोमरस) पीनेकी इच्छा करता है । (इसलिये हे याजको!) वहां जाओ, हवन करो, और पश्चात् (वहांसे) चले आओ ॥९॥ हे धनके दाता देव ! जिस कारण हम ऋतुओंके अनुसार तुझे चतुर्थ भागका अर्पण करते हैं, उस कारण हमारे लिये तू धनका दान करनेवाला हो ॥१०॥ हे तेजस्वी शुद्ध कर्म करनेवाले, ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाले अश्विदेवो ! इस मधुर सोमरसका पान करो ॥११॥ हे फलदाता देव ! तू गार्हपत्यके नियमोंके अनुसार ऋतुके अनुकूल रहकर यज्ञ करनेवाला है, अतः देवत्व प्राप्तीकी इच्छा करनेवालेके लिये-देवोंको हविर्भाग पहुंचा दे ॥१२॥

ऋतुओंके अनुकूल व्यवहार

इस सूक्तमें ऋतुके साथ रहकर कार्य करनेका मुख्य संदेश है। 'ऋतुना पिब' (मं. १,३-४), 'ऋतुना पिबत' (मं. २,११), 'ऋतून् अनु पिब' (मं.५) 'ऋतुभिः इष्यत' (मं. ९), 'ऋतुभिः यजामहे' (मं. १०), 'ऋतुना यज्ञनीः असि' (मं. १२), 'ऋतुना दूळभं दक्षं यज्ञं आशाथे' (मं. ६) अर्थात् ऋतुके साथ रसपान करो, ऋतुओंके अनुकूल रसपान करो, ऋतुओंके साथ जाओ,

ऋतुओंके साथ यज्ञ करते हैं, ऋतुके अनुकूल यज्ञ चलानेवाला तू हो। ऋतुके अनुकूल रहनेसे दुर्दमनीय बल बढानेवाला यज्ञ होता है।

इनमें सबसे अन्तिम मन्त्रभाग बडा महत्त्वपूर्ण है।

न दबनेवाला बल

'**दूळभं दक्षं**' दुर्दमनीय अर्थात् न दबनेवाला बल मनुष्यको प्राप्त करना आवश्यक है। यह बल तब प्राप्त होगा, जब मनुष्य '**ऋतुना यज्ञं आशाथे**' ऋतुओंके अनुकूल अपने कर्म करता रहेगा। यह महत्त्वपूर्ण संदेश इस सूक्तने दिया है। *मनुष्य बल बढाना तो चाहता है, पर ऋतुके अनुकूल* अपनी दिनचर्या करना नहीं चाहता। अतः उसको सिद्धि नहीं मिलती।

वर्षमें वसंत ग्रीष्म वर्षा शरत् हेमन्त और शिशिर ये छः ऋतु हैं, मानवी आयुष्यमें बाल, कुमार, युवा, परिहान, वृद्ध और जीर्ण ये छः ऋतु हैं। दिनमें भी उषःकाल, उदयकाल, मध्याह्न, अपराह्न, सायंकाल और रात्री ये ऋतु हैं। इस तरह ऋतु स्थानस्थानपर काल विभागके अन्दर विद्यमान हैं। इनके अनुकूल अपना कार्य करना चाहिये। खानपान, कपडेलत्ते, आचार व्यवहार, आराम और विश्राम ऋतुके अनुसार करनेसेही मनुष्य उन्नत हो सकता है। इसका बल बढना होगा तो उसके योग्य ऋतुचर्यासेही बढ सकता है। *अतः न दबनेवाला बल बढाना है यह ध्यानमें धारण करके* ऋतुके अनुसार अपना आचार करना मनुष्यके लिये योग्य है।

इस सूक्तमें 'सोमपान 'का विषय है इसलिये वह ऋतुके अनुसार पीना ऐसा कहा है। अर्थात् सोमरस दूध, दही, सत्तू, शहद आदिके साथ पीया जाता है। जिस ऋतुमें जैसा पीना योग्य होगा, वैसा पीना चाहिये जिससे वह बल बढाकर हित करेगा। अन्यथा वैसा लाभ नहीं होगा।

इस सूक्तमें सर्वत्र ऋतुके अनुसार सोम पीनेकाही उल्लेख है ऐसा भी नहीं है, देखिये—

> ऋतुभिः इष्यत, प्रविष्टत। (मं ५)
> ऋतुभिः यजामहे। (मं १०)
> ऋतुना यज्ञनीः असि। (मं. १२)

ऋतुओंके अनुकूल चलो, रहो। ऋतुओंके अनुसार यज्ञ करते हैं। ऋतुके अनुसार यज्ञ चलानेवाला हो। इत्यादि वचन मनुष्यको सर्वसामान्य आचार व्यवहारकी सूचना दे रहे हैं। मनुष्यको अदम्य बल प्राप्त करना है यह ऐसे ही आचारसे प्राप्त होगा।

इस सूक्तमें 'इन्द्र, मरुत्, त्वष्टा, अग्नि, मित्र, वरुण, द्रविणोदा, अश्विनौ' इन देवताओंका वर्णन है।

देवताके गुण

इस सूक्तमें देवताओंके कुछ गुण दिये हैं वे मनन करने योग्य है—

१ **सुदानव**- (सु- दानु)= उत्तम दान करनेवाला, देने योग्य दान सत्पात्रमें देनेवाला।

प्रायः देव दाता होते हैं, पर यहां (सु-दानु) उत्तम दाता होनेका वर्णन है। केवल दातृत्वकी अपेक्षा उत्तम दातृत्व निःसंदेह प्रशंसाके योग्य है।

२ **रत्नधा**- रत्नोंका धारण करना। यह पद अग्निके (१।१।१ में) मंत्रमें अग्निका विशेषण आया है। वहां '**रत्न- धा- तम**' पद है। यहां '**रत्न- धा**' है।

३ **अस्तृतं सख्यं**- अटूट मित्रता। देवोंके साथ एकवार मित्रता हुई तो वह अटूट रहती है।

४ **दूळभं दक्षं**- अदम्य बलका धारण करना।

५ **द्रविणोदा**- धनका दान करना। ये गुण मनुष्योंको अपनाने योग्य है।

ऋत्विजोंके नाम

इस सूक्तमें '**ब्राह्मण**' (५), '**नेष्टा**' (३,५) और '**पोतृ**' (२) ये ऋत्विजोंके नाम आये हैं। ब्राह्मणका अर्थ *यहां 'ब्राह्मणात् शंसीः' नामक ऋत्विज है। यहां द्वितीय मंत्रमें 'पोत्र' पद है वह 'पोतृ' नामक ऋत्विजका स्थान* है। पवित्रता करना इसका कार्य है यह ब्रह्माका सहायक है।

सोम कूटनेके पत्थर

इस सूक्तमें '**ग्राव-हस्तासः**' (मं. ७) पद है। पत्थर हाथमें लिये ऋत्विज सोमको कूटते और उसका रस निकालते हैं। सोमका रस निकालनेका साधन यह है। आगे इसका वर्णन बहुत आनेवाला है।

गार्हपत्य

' गार्हपत्य ' (मं. १२) पद यहां है । गृहपति धर्मका यह बोधक है । गृहस्थही यज्ञका अधिकारी है । अतः ' ग्ना-वः ' (मं. ५) धर्मपत्नीके साथ नेष्टा नामक ऋत्विजका वर्णन देखने योग्य है । यहां यज्ञमें आनेवाले देवभी धर्मपत्नीयोंके साथ रहनेवाले हैं, यद्यपि हरएक यज्ञमें वे अपनी पत्नियोंको लाते हैं ऐसी बात नहीं है, तथापि वे गृहस्थी हैं । ऋत्विज भी (ग्ना- वः) धर्मपत्नीवालेही होते हैं । यजमानकी तो धर्मपत्नी यज्ञमंडपमें ही रहती है । इस तरह यह वैदिक यज्ञमार्ग गृहस्थियोंका मार्ग है । यह बात वेदका विचार करनेके समय अवश्य स्मरण रखनी चाहिये ।

(५) भरपूर गौवें चाहिये

(ऋ० मं. १।१६) मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री ।

आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये । इन्द्र त्वा सूरचक्षसः ॥ १
इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः । इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ २
इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ३
उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः । सुते हि त्वा हवामहे ॥ ४
सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम् । गौरो न तृषितः पिब ॥ ५
इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि । ताँ इन्द्र सहसे पिब ॥ ६
अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शंतमः । अथा सोमं सुतं पिब ॥ ७
विश्वमित्सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति । वृत्रहा सोमपीतये ॥ ८
सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो । स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥ ९

अन्वयः— हे इन्द्र ! वृषणं त्वा त्वा सूरचक्षसः हरयः सोमपीतये आ वहन्तु ॥१॥ हरी इमाः घृतस्नुवः धानाः सुखतमे रथे इन्द्रं इह उप वक्षतः ॥२॥ प्रातः इन्द्रं हवामहे । अध्वरे प्रयति इन्द्रं । सोमस्य पीतये इन्द्रं (हवामहे) ॥३॥ हे इन्द्र ! केशिभिः हरिभिः नः सुतं उप आ गहि । हि त्वा सुते हवामहे ॥४॥ सः (त्वं) नः इमं स्तोमं आ गहि । इदं सुतं सवनं उप । तृषितः गौरः न पिब ॥५॥ इमे सुतासः इन्दवः सोमासः बर्हिषि अधि । हे इन्द्र ! तान् सहसे पिब ॥६॥ अयं स्तोमः अग्रियः, ते हृदिस्पृक् शंतमः अस्तु । अथ सुतं सोमं पिब ॥७॥ वृत्रहा इन्द्रः मदाय, सोमपीतये, विश्वं सुतं सवनं इत् गच्छति ॥८॥ हे शतक्रतो ! सः (त्वं) नः इमं कामं गोभिः अश्वैः आ पृण । स्वाध्यः त्वा स्तवाम ॥९॥

अर्थ— हे इन्द्र ! तुझे सामर्थ्यवान्‌को सूर्यके समान तेजस्वी घोडे सोमपानके लिये ले आवें ॥१॥ (ये) दोनों घोडे इन घीसे भीगे भूने धान्यके साथ उत्तम रथमें इन्द्रको बिठलाकर यहां (यज्ञके) पास ले आवें ॥२॥ प्रातःकाल इन्द्रकी प्रशंसा हम करते हैं । यज्ञके आरंभ होनेपर (मध्यदिनमें हम) इन्द्रकी स्तुति करते हैं । और सोमपान करनेके समय (सायंके समय भी हम) इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥३॥ हे इन्द्र ! बालोंवाले घोडोंसे तुम हमारे सोमयागके पास आओ । क्योंकि तुम्हें सोमयाग शुरू होनेपर ही बुलाते हैं ॥४॥ वह तुम हमारे इस (अग्नि-) सोम यागके पास आओ । यह सोमरस (तैयार हुआ है उसके) पास (आओ) । और प्यासे गौर मृगके समान (इस रसको) पीओ ॥५॥ ये निचोडकर रखे रसीले सोमरस दर्भोंपर रखे हैं । हे इन्द्र ! उनका बल बढानेके लिये पान करो ॥६॥ यह अग्नि-ष्टोम यज्ञ मुख्य है, (वह) तेरे लिये हृदयस्पर्शी तथा आनन्ददायी हो । और इस निचोडे सोमरसको पीओ ॥७॥ यह वृत्रका वध करनेवाला इन्द्र, अपना उत्साह बढानेके लिये, सोमपानके उद्देश्यसे, सभी सोमयागके सवनोंमें जाता है ॥८॥ हे सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! वह (तुम) हमारी इस कामनाको गौओं और घोडोंसे पूर्ण करो । उत्तम ध्यानसे तुम्हारी स्तुति हम करते हैं ॥९॥

दिनमें तीनवार उपासना

इन्द्रकी तीनवार उपासना इस सूक्तके तृतीय मंत्रमें कही है।

इन्द्रं प्रातः हवामहे (प्रातःसवने)।
इन्द्रं प्रयति अध्वरे (माध्यंदिनसवने हवामहे)।
इन्द्रं सोमस्य पीतये (तृतीयसवने हवामहे)।

यज्ञमें प्रातःसवन प्रातःकालमें होता है, मध्यदिनमें माध्यंदिनसवन होता है, और शामको सायंसवन होता है। और शामको सोमरसका पान करते हैं। इन तीनों सवनोंमें इन्द्रकी स्तुति प्रार्थना उपासना होती है। यज्ञके तीन सवनोंके साथ इन्द्रकी तीनवार उपासना करनेका तत्त्व संबंधित है।

उपासककी इच्छा

(गोभिः अश्वैः नः कामं आ पृण। मं. ९) गौवें और घोडे पर्याप्त संख्यामें देकर हमारी कामना परिपूर्ण करो। हमारे घरोंमें पर्याप्त गौवें और घोडे रहें। घरकी पूर्णता गौओंसे होती है। घरमें दूध देनेवाली गौवें रहीं तो वहांसे सब मनुष्य हृष्टपुष्ट रहते हैं।

इन्द्रके गुण

यहां इन्द्रके कुछ गुणोंका वर्णन है वह देखिये-

१ इन्द्रः— शत्रुका नाश करनेवाला, तेजस्वी वीर,

२ वृषणः— बलवान्, वीर्यवान्, सामर्थ्यवान्, वृष्टी करनेवाला,

३ वृत्रहा— वृत्र नामक असुरका वध करनेवाला वीर, घेर कर लडनेवाले घातक शत्रुका नाश करनेवाला,

४ शतक्रतुः- सैंकडों शुभकर्म करनेवाला वीर,

५ सूरचक्षसः हरयः वहन्ति- सूर्यके समान चमकनेवाले घोडे (इसके रथमें जोते रहते हैं जो इसको इधर उधर) ले जाते हैं। (यहां कमसे कम तीन या चार घोडे जाते हैं ऐसा वर्णन है।)

६ इन्द्रं सुखतमे रथे हरी वक्षतः— इन्द्रको अत्यंत सुखदायी रथमें बिठलाकर उसको दो घोडे यहां लाते हैं। (यहां दो घोडे जोते रहते हैं ऐसा वर्णन है। रथ भी अत्यंत सुंदर और अत्यंत सुखदायी है।)

७ केशिभिः हरिभिः आ गहि— उत्तम अयालवाले घोडोंको (रथके साथ जोतकर यहां) आओ। (यहां भी तीन या चार घोडोंका उल्लेख है।) यहां घोडोंकी सुंदर अयालका वर्णन है।

८ सहसे तान् पिब— बल बढानेके लिये वह इन्द्र सोमरसको पीता है। सोमपानसे बल उत्साह और वीर्य बढता है।

यहां इन्द्रके गुण, घोडोंका वर्णन और सोमका वर्णन है। पाठक इसका मनन करें।

---

(६) दो उत्तम सम्राट्

(ऋ. मं. १।१७) मेधातिथिः काण्वः। इन्द्रावरुणौ। गायत्री, ४-५ पादनिचृत् (५ ह्रसीयसी वा) गायत्री।

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे । ता नो मृळात ईदृशे ॥ १
गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः । धर्तारा चर्षणीनाम् ॥ २
अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ । ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥ ३
युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् । भूयाम वाजदाव्नाम् ॥ ४
इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् । क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥ ५
तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि । स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६
इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे । अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ॥ ७
इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा । अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥ ८
प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे । यामृधाथे सधस्तुतिम् ॥ ९

अन्वयः- अहं इन्द्रावरुणयोः सम्राजोः अवः आ वृणे। ईदृशे ता नः मृळातः ॥१॥ चर्षणीनां धर्तारा, मावतः विप्रस्य अवसे हवं गन्तारा हि स्थ ॥२॥ हे इन्द्रावरुणा! अनुकामं रायः आ तर्पयेथां। तां वां नेदिष्ठं ईमहे ॥३॥ हि शचीनां युवाकु। सुमतीनां युवाकु। वाजदाव्नां (मुख्याः) भूयाम ॥४॥ इन्द्रः सहस्रदाव्नां क्रतुः, वरुणः शंस्यानां उक्थ्यः भवति ॥५॥ तयोः अवसा इत् वयं (धनं) सनेम, निधीमहि च। उत प्ररेचनं स्यात् ॥६॥ हे इन्द्रावरुणा! वां अहं चित्राय राधसे हुवे। अस्मान् सु जिग्युषः कृतम् ॥७॥ हे इन्द्रावरुणा! धीषु वां सिषासन्तीषु, अस्मभ्यं शर्म नू तु आ यच्छतम् ॥८॥ हे इन्द्रावरुणा! यां सधस्तुतिं हुवे, यां ऋधाते, सा सुष्टुतिः वां प्र अश्नोतु ॥९॥

अर्थ- मैं इन्द्र और वरुण नामक दोनों सम्राटोंसे अपनी सुरक्षा करनेकी शक्ति प्राप्त करना चाहता हूं। ऐसी स्थितिमें ये दोनों हमें सुखी करेंगे ॥१॥ (ये दोनों सम्राट्) मानवोंका धारणपोषण करनेवाले हैं। मुझ जैसे ब्राह्मणकी सुरक्षा करनेके लिये पुकारके स्थानतक जानेवाले होओ ॥२॥ हे इन्द्र और वरुण! हमारे मनोरथके अनुसार धन देकर हमें तृप्त करो। तुम दोनोंका हमारे समीप रहना ही हम चाहते हैं ॥३॥ शक्तियोंकी संघटना हुई है। और सुमतियोंकी भी एकता हुई है। अन्न दान करनेवालोंमें (हम मुख्य) बनें ॥४॥ इन्द्र सहस्रों दाताओंमें (मुख्य) कार्यकर्ता है, और वरुण (सहस्रों) प्रशंसनीयोंमें (मुख्य) प्रशंसित होने योग्य हैं ॥५॥ उनकी सुरक्षासे (सुरक्षित हुए) हम (धन) प्राप्त करना और संग्रह करना चाहते हैं। चाहे उससे भी अधिक धन (हमारे पास) हो ॥६॥ हे इन्द्र और वरुण! तुम दोनोंकी मैं अद्भुत सिद्धिके लिये प्रार्थना करता हूं। (तुम दोनों) हमें उत्तम विजयी बनाओ ॥७॥ हे इन्द्र और वरुण! (हमारी) बुद्धियाँ तुम्हारा हि कार्य कर रही हैं, इसलिये हमें सुख देओ ॥८॥ हे इन्द्र और वरुण! जिस संमिलित स्तुति को हम करते हैं, जिसको तुम बढाते हैं, वही उत्तम स्तुति (हमसे) तुम्हें प्राप्त हो ॥९॥

दो प्रशंसनीय सम्राट्

इस सूक्तमें प्रशंसनीय उत्तम दो सम्राटोंका वर्णन है। ये क्या करते हैं सो देखिये-

१ चर्षणीनां धर्तारौ- जनताका धारणपोषण करते हैं चर्षणीका अर्थ किसान खेती करनेवाले ऐसा है। सब किसानोंका उत्तम धारणपोषण ये करते हैं। प्रजाजनोंकी उन्नतिके लिये ही यत्न करते हैं। (मं. २)

२ सु जिग्युषः कृतं- अपने प्रजाजनोंको ये उत्तम विजयी करते हैं। अर्थात् ये उनको ऐसी सुशिक्षा देते हैं, कि जिससे इनके प्रजाजन सब कार्य व्यवहारमें उत्तम विजय पाते हैं। (मं. ७)

३ शचीनां युवाकु- (प्रजाजनोंकी) सब शक्तियोंकी संघटना करते हैं। (मं. ४)

४ सुमतीनां युवाकु- (प्रजाजनोंके) उत्तम विचारोंकी एकता करते हैं अर्थात् आपसका संघर्ष बढने नहीं देते। (मं. ४)

५ तयोः अवसा सनेम, निधीमहि, प्ररेचनं स्यात्- उनकी सुरक्षापूर्ण आयोजनासे प्रजाका धन बढता है, प्रजाके पास धनसंग्रह होता है और उनके पास जितना धन चाहिये उससे भी अधिक धन उनके पास हो जाता है। (मं. ६)

६ नः मृळात (१), अस्मभ्यं शर्म यच्छतं (मं. ८) हम प्रजाजनोंको (ये सम्राट्) सुखी करें, और सुख देवें। कभी ऐसा आचरण न करें कि जिसे प्रजा दुःखी हो सके।

७ विप्रस्य अवसे गन्तारौ- ज्ञानीकी सुरक्षा करनेके लिये ये तत्पर रहें। कभी ज्ञानीको कष्ट न दें। (मं. २)

८ अनुकामं तर्पयेथां- प्रजाजनोंको यथेष्ट संतुष्ट करते रहें। (मं. ३)

इस तरह ये दोनों सम्राट् अपने राज्यके प्रजाजनोंका सुख बढाते रहते हैं। ये आदर्श सम्राट् हैं इसलिये उनका वर्णन यहां ऐसा किया है।

९ इन्द्रः सहस्रदाव्नां क्रतुः- इन्द्र सहस्रों दानोंका कर्ता है। सहस्रों दाताओंसे भी अधिक उत्तम दानकर्ता है। और-

१० वरुणः शंस्यानां उक्थ्यः- वरुण प्रशंसा करने योग्य राजाओंमें अधिक प्रशंसा करने योग्य हैं।

वैदिक अनुशासनके अनुसार सम्राट् कैसे हों, यह आदर्श यहां बताया है। ऐसे सम्राट् हुए तो मानव अधिक सुखी हो सकते हैं।

पञ्चम अनुवाक

(७) सदसस्पति

(ऋ. मं. १।१८) मेधातिथिः काण्वः । १-३ ब्रह्मणस्पतिः, ४ इन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः सोमश्च, ५ ब्रह्मणस्पतिः सोम इन्द्रो दक्षिणा च, ६-८ सदसस्पतिः, ९ सदसस्पतिर्नराशंसो वा । गायत्री ।

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः १
यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । स नः सिषक्तु यस्तुरः २
मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ३
स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः । सोमो हिनोति मर्त्यम् ४
त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् । दक्षिणा पात्वंहसः ५
सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषम् ६
यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वति ७
आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् । होत्रा देवेषु गच्छति ८
नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम् । दिवो न सद्ममखसम् ९

अन्वयः— हे ब्रह्मणस्पते ! सोमानं स्वरणं कृणुहि । यः औशिजः, (तं) कक्षीवन्तं (इव) ॥१॥ यः रेवान्, यः अमीवहा, वसुवित्, पुष्टिवर्धनः, यः तुरः, सः नः सिषक्तु ॥२॥ हे ब्रह्मणस्पते ! अररुषः मर्त्यस्य धूर्तिः शंसः नः मा । नः रक्ष ॥३॥ यं मर्त्यं इन्द्रः ब्रह्मणस्पतिः सोमः च हिनोति, सः घ वीरः न रिष्यति ॥४॥ हे ब्रह्मणस्पते ! त्वं तं मर्त्यं अंहसः (पाहि), सोमः, इन्द्रः, दक्षिणा च पातु ॥५॥ अद्भुतं इन्द्रस्य प्रियं काम्यं सनिं सदसस्पतिं मेधां अयासिषम् ॥६॥ यस्माद् ऋते, विपश्चितः चन यज्ञः, न सिध्यति, सः (सदसस्पतिः) धीनां योगं इन्वति ॥७॥ आत् हविष्कृतिं ऋध्नोति, अध्वरं प्राञ्चं कृणोति, होत्रा देवेषु गच्छति ॥८॥ दिवो न सद्ममखसं, सुधृष्टमं सप्रथस्तमं नराशंसं अपश्यम् ॥९॥

अर्थः— हे ब्रह्मणस्पते ! सोमयाग करनेवालेको उत्तम प्रगतिसंपन्न करो । जैसा उशिक्पुत्र कक्षीवान् (उन्नत किया गया था वैसाही इसको करो) ॥१॥ जो (ब्रह्मणस्पति) सम्पत्तिमान, जो रोगोंका नाश करनेवाला, धनदाता और पुष्टिवर्धक तथा शीघ्रतासे कार्य करनेवाला है, वही हमारे ऊपर कृपा करता रहे ॥२॥ हे ब्रह्मणस्पते ! घातपात करनेवाले कपटी धूर्तकी निंदा हमारेतक न पहुंचे । इससे हमारी सुरक्षा करो ॥३॥ जिस मनुष्यको इन्द्र, ब्रह्मणस्पति और सोम बढा देते हैं, वह वीर निःसंदेह नष्ट नहीं होता ॥४॥ हे ब्रह्मणस्पते ! तुम उस मानवको पापसे (बचाओ), वैसेही सोम, इन्द्र और दक्षिणा उसको बचा देवे ॥५॥ मैं आश्चर्यकारक, इन्द्रके प्रिय मित्र आदरणीय और धनदाता सदसस्पति (सभाके अध्यक्ष)के पास मेधा बुद्धिको मांगता हूँ ॥६॥ जिसके बिना ज्ञानीका भी यज्ञ सिद्ध नहीं होता, वह सदसस्पति हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करे ॥७॥ हवि तैयार करनेवालेकी यह उन्नति करता है, हिंसारहित यज्ञको बढाता है, हमारी प्रशंसा करनेवाली वाणीको देवोंतक पहुंचा देता है ॥८॥ द्युलोकके समान तेजस्वी, प्रतापशाली और प्रसिद्ध तथा मानवोंद्वारा सुपूजित सदसस्पतिको मैंने देखा है ॥९॥

सभाका अध्यक्ष

'सदसस्पति' (सदसः-पति) का अर्थ सभाका अध्यक्ष है। सभाका प्रधान, परिषदका प्रमुख सदसस्पति कहलाता है। इस सभाके आसनमें कौनसे गुण हों, इस विषयमें इस सूक्तका कथन विचार करने योग्य है-

१ ब्रह्मणस्पतिः- (ब्रह्मन्-पति)- ज्ञानका पति अर्थात् यह सभापति ज्ञानी हो, विद्यासंपन्न अथवा विद्वान् हो। (मं. १,३-५)

२ रेवान्- यह धनवान हो। मं २

३ वसुवित्- धनका महत्त्व जाननेवाला हो,

४ अमीवहा- रोगोंको दूर करनेवाला हो, वैयक्तिक, सामाजिक और राजकीय बीमारियोंको दूर हटानेवाला हो,

५ पुष्टिवर्धनः- पोषण करनेवाला हो, सबके पोषण करनेके साधनोंका उत्तम प्रयोग करनेवाला हो,

६ तुरः- फुर्तीके साथ कार्य करनेवाला हो,

७ सुधृष्टः- धैर्यवाला, धीरजसे युक्त हो, (मं. ९)

८ स-प्रथस्तमः- प्रसिद्ध हो, यशस्वी हो, कीर्तिमान हो।

९ सद्म-मखः- घरके समान सबको विस्तृत आधार देनेवाला हो, सबका हित करनेवाला हो,

१० स्वरणं (कृणोति)- (सु-अरणं) उत्तम मार्गसे जो सबको ले जाता है, सन्मार्गसे चलाता है, योग्यमार्ग बताता है। (मं १)

११ यं ब्रह्मणस्पतिः हिनोति स न रिष्यति- जिसको ज्ञानी बढाता है, वह नष्ट नहीं होता। (मं ४)

१२ सदसस्पतिः- (सदस. पतिः)- सभाका वह पति हो, वही सभाका अध्यक्ष हो। (मं. ६)

१३ अद्भुतः- जो अद्भुत हो, जैसा यहां दूसरा कोई न हो,

१४ प्रियः; काम्यः- जो सबको प्रिय और सबके द्वारा इच्छा करने योग्य हो,

१५ सनिः- धन देनेवाला, उदार दाता हो,

१६ मेधां- (ददाति)- जो लोगोंको सुबुद्धि देता है।

१७ स धीनां योगं इन्वति- वह सबकी बुद्धियोंको प्रेरित करता है, सन्मार्गमें चलाता है, उन्नत करता है। (मं ७)

१८ हविष्कृतिं ऋध्नोति- अन्नका दान करनेवालेकी उन्नति करता है,

१९ अध्वरं प्राञ्चं कृणोति- हिंसारहित और कुटिलतारहित कर्मोंको बढाता है।

२० होत्रा देवेषु गच्छति- अपनी वाणीको देवोंतक पहुंचा देता है, अपनी वाणीको देवोंतक पहुचा कर परिणाम कारी बनाता है।

सभाका पति, परिषद्का अध्यक्ष ऐसा हो। इनमेंसे जो गुण अथवा जितने गुण अधिक होंगे उतनी उसकी योग्यता अधिक समझी जायगी।

ईश्वरही सभापति है।

इस विश्वरूपी सदसका पति परमेश्वरही है, वही ब्रह्मणस्पति है और वही पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त है। वही सब रीतिसे सच्चा सभापति है। 'नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमः।' (वा. य. १७) ऐसा रुद्राध्यायमें कहा है। सभा और सभापति ये परमात्माके रूप हैं, अतः उनके लिये प्रणाम है। 'परमात्माही जिसका रक्षक होता है उसका नाश नहीं होता। (मं. ४) यह सर्वदाही सत्य है। सच्चा ज्ञानपति वही है। यह जिसकी रक्षा करता है उसके पास किसीकी की हुई निंदा नहीं पहुंचती (३)। यही सच्चा रोग दूर करनेवाला और पुष्टि करनेवाला है, (२) इसीसे मेधाबुद्धिकी प्राप्तीकी प्रार्थना की जाती है (६)। इसीकी सहायताके विना कोई कर्म सफल नहीं हो सकता (७)। इसीकी सब स्तुति करते हैं, यही द्युलोकके समान विस्तृत तथा तेजस्वी है (९)। इसीका विश्वरूपमें साक्षात्कार करना चाहिये।

प्रभुकी कृपासे जैसी उशिक्पुत्र कक्षीवानकी उन्नति हुई वैसीही हरएककी उन्नति हो सक्ती है। इस सूक्तमें सभापतिके वर्णनसे परमात्माका वर्णन किया है, इसका मनन पाठक इस तरह करें।

उशिक्पुत्र कक्षीवान्

दीर्घतमाका पुत्र उशिक, और उशिकका पुत्र कक्षीवान है। ऋग्वेदमें मं. १।११६ सूक्तसे १२५ तकके १४६ मंत्रोंका यह ऋषि है। सू. १।१२६ के प्रथम ५ मंत्र इसीके है तथा नवम मंडलमें ७४ वे सूक्तके ९ मंत्र इसीके है अर्थात् १४६ + ५ + ९ = १६० मंत्र ऋग्वेदमें इसके हैं। मेधातिथिके इस सूक्तमें औशिज कक्षीवान् ऋषिकी उन्नति होनेका वर्णन है अतः मेधातिथिके पूर्वका यह कक्षीवान् होना उचित है।

'सोमः यं मर्त्यं हिनोति सः न रिष्यति'- सोम वनस्पति जिसकी सहायक होती है, वह क्षीण या दुर्बल नहीं होता, यह ठीक ही है। औषधियोंमें सोमवल्ली मुख्य है। सोमका नाम लेनेसे आयुर्वर्धक, पुष्टिकारक, रोगनाशक, स्फूर्तिवर्धक, मेधावर्धक सब औषधियोंका ग्रहण हुआ है। जिसको इन औषधि वनस्पतियोंकी सहायता होगी वह कदापि क्षीण हीनदीन दुर्बल अल्पायु या रोगी नहीं होगा। मं. ४ में 'रिष्यति' पद है। सब हीनदीन दुर्बलताके भावोंका दर्शक यह पद है। सोमादि वनस्पतियां जिसकी सहायक होती हैं वह दुर्बल नहीं होता। यह सत्यही है।

बुद्धियोंका योग

(सः धीनां योगं इन्वति। ७) वह बुद्धियोंका योग प्राप्त करता है। सबकी बुद्धियोंका योग ईश्वरके साथही होना योग्य है क्योंकि वही सबकी बुद्धियोंको प्रेरणा करनेवाला है। जब बुद्धिका योग परमात्माके साथ होगा, तभी तो वह साक्षात्कारमें प्रत्यक्ष होगा। परमात्माका साक्षत्कार विश्वरूपमेंही होगा जैसा सभापतिका साक्षात्कार सभामें होता है।

पाठक इस तरह विचार करके इस सूक्तसे परमात्माका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। सभापतिके कर्तव्य भी इसी सूक्तसे ज्ञात होंगे।

Sea wave विद्युत

(८) वीरोंकी साथ

(ऋ. मं. १।१९) मेधातिथिः काण्वः। अग्निर्मरुतश्च। गायत्री।

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि १
नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः । मरुद्भिरग्न आ गहि २
ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः । मरुद्भिरग्न आ गहि ३
य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ४
ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः । मरुद्भिरग्न आ गहि ५
ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते । मरुद्भिरग्न आ गहि ६
य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् । मरुद्भिरग्न आ गहि ७
आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ८
अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु । मरुद्भिरग्न आ गहि ९

अन्वयः- हे अग्ने ! त्यं चारुं अध्वरं प्रति गोपीथाय प्रहूयसे ॥ १ ॥ नहि देवः, न मर्त्यः, महः तव क्रतुं परः (भवति) ॥ २ ॥ ये अद्रुहः विश्वे देवासः महः रजसः विदुः ॥ ३ ॥ ये ओजसा अनाधृष्टासः उग्राः अर्कं आनृचुः ॥ ४ ॥ ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासः रिशादसः ॥ ५ ॥ ये देवासः नाकस्य अधि रोचने दिवि आसते ॥६॥ ये पर्वतान् ईङ्खयन्ति, समुद्रं अर्णवं तिरः (कुर्वन्ति) ॥ ७ ॥ ये रश्मिभिः आ तन्वन्ति, ओजसा समुद्रं तिरः (कुर्वन्ति) ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! पूर्वपीतये त्वा सोम्यं मधु अभि सृजामि। (अतः तैः) मरुद्भिः आ गहि ॥ ९ ॥

अर्थ- हे अग्ने ! उस सुंदर हिंसारहित यज्ञके प्रति तुम्हें सोमरसका पान करनेके लिये बुलाते हैं ॥ १ ॥ ना ही कोई देव और न कोई मर्त्य (ऐसा है कि जो) तुम्हारे महासामर्थ्यसे किये यज्ञसे बढकर (कुछ कर्म कर सकता हो) ॥ २ ॥ जो द्रोह न करनेवाले सब देव (अर्थात् मरुद्गण) हैं, वे इस बडे अन्तरिक्षको जानते हैं ॥ ३ ॥ जो अपने विशाल बलके कारण अजेय उग्र वीर हैं और जो प्रकाशके स्थानतक पहुंचते हैं ॥ ४ ॥ जो गौर वर्णवाले, बडे शरीरवाले, उत्तम पराक्रमी और शत्रुका नाश करनेवाले हैं ॥५॥ जो ये (मरुत्) देव सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित हुए द्युलोकमें रहते हैं॥६॥ जो पर्वत जैसे मेघोंको उखाड देते हैं और जलराशीको तुछ करके उसके परे फेंक देते हैं ॥ ७ ॥ जो किरणोंसे व्यापते हैं और जो बलसे समुद्रको भी तुछ मानते हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे प्रथम रसपानके लिये यह मधुर सोमरस मैं अर्पण करता हूं, अतः तुम उन (पूर्वोक्त वर्णन किये) मरुतोंके साथ आओ ॥ ९ ॥

वीरोंके साथ रहो

इस सूक्तमें प्रचण्ड वीरोंका वर्णन है। 'जो गौरवर्णवाले हैं, जिनके शरीर भयंकर हैं, जो क्षात्रकर्ममें अद्वितीय हैं और, जो शत्रुका नाश करनेमें प्रवीण हैं, (५) जो बलवान् होनेके कारण अजेय हैं, जिनपर शत्रुका आक्रमण नहीं हो सकता, जो बडे उग्र शूरवीर हैं, जो तेजस्वी होनेसे सूर्यके समान प्रभावी हैं, (४) जो स्वयं किसीसे द्रोह कभी नहीं करते, और जो सब विशाल स्थानको यथावत् जानते हैं (३), जो

प्रस्ताव देवोंने मान लिया और ऋभुओंकी गणना देवोंमें होने लगी।

आजकल अमेरिकामें भारतवासियोंको स्थायी रूपसे रहनेकी आज्ञा नहीं है। पर अब इस महायुद्धके कारण भारतीयोंको आज्ञा देनेका विचार वहां करने लगे हैं। इसी तरह यह ऋभुओंकी बात दीख रही है।

संभव है कि यह आलंकारिकही घटना हो। आलंकारिक होनेपर भी उससे यह बोध मिलता है कि जो जाती अपने राष्ट्रके हितके लिये उपयोगी है, ऐसा सिद्ध हो जाय, उस जातीको अपने राष्ट्रका अंग मानकर रहनेका अधिकार देना योग्य है। पर यह अधिकार देनेके लिये सब राष्ट्रवासी जातियोंके प्रतिनिधियोंकी संमति लेनी चाहिये, जैसीकी पूर्वोक्त ऐतरेय ब्राह्मणके वचनमें प्रजापति (राष्ट्रके अध्यक्ष) ने देवराष्ट्रकी प्रातिनिधिक देवसभाके सामने यह प्रस्ताव रखा था, और सबकी प्रथम प्रतिकूलता होनेपर भी आगे उनकी अनुकूलता युक्तिसे प्राप्त की और पश्चात् ऋभुओंको देवोंमें शामील किया गया।

इससे बडा भारी राष्ट्रीय संघटनाका बोध मिलता है उसको पाठक अवश्य विचार करें।

इस सूक्तमें भी ' **देवेषु यज्ञियं भागं ऋभवः अधारयन्त, अभजन्त च** । (मं. ८) ऐसा कहा है। ऋभुओंको प्रथम देवोंमें बैठकर यज्ञका हविर्भाग लेनेका अधिकार नहीं था, वह उनको मिला और पश्चात् वे उस भागका सेवन करने लगे।

प्रथम मण्डलके ११० वे सूक्तके साथ पाठक इसका विचार करें, इसका एक मंत्र ऊपर दिया है।

---

(१०) वीरोंकी प्रशंसा

(ऋ. मं. १।२१) मेधातिथिः काण्वः। इन्द्राग्नी। गायत्री।

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित्स्तोममुश्मसि । ता सोमं सोमपातमा १
ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः । ता गायत्रेषु गायत २
ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे । सोमपा सोमपीतये ३
उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ४
ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् । अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ५
तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ६

अन्वयः- इह इन्द्राग्नी उप ह्वये। तयो इत् स्तोमं उश्मसि। ता सोमपातमा सोमं (पिबतां) ॥ १ ॥ हे नरः! ता इन्द्राग्नी यज्ञेषु प्रशंसत। ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥ मित्रस्य प्रशस्तये, ता सोमपा ता इन्द्राग्नी सोमपीतये हवामहे ॥३॥ इदं सुतं सवनं उप उग्रा सन्ता हवामहे। इन्द्राग्नी इह आ गच्छताम् ॥ ४ ॥ ता महान्ता सदसस्पती इन्द्राग्नी रक्षः उब्जतम्। अत्रिण अप्रजा सन्तु ॥ ५ ॥ हे इन्द्राग्नी! प्रचेतुने पदे तेन सत्येन अधि जागृतम्। (न.) शर्म यच्छतम् ॥६॥

अर्थ- इस यज्ञमें इन्द्र और अग्निको मैं बुलाता हूं। उनकी हि स्तुति करना चाहता हूं। वे सोमपान करनेवाले यहां सोमरस पीवें ॥१॥ हे मनुष्यो! उन इन्द्र और अग्निकी यज्ञोंमें प्रशंसा करो। गायत्री छन्दमें उनके काव्योंका गान करो ॥२॥ मित्रकी प्रशंसा करनेके समान, उन सोमपान करनेवाले इन्द्र और अग्निको सोमपानके लिये ही हम बुलाते हैं ॥३॥ सोमरस निकालनेपर, उन उग्रवीरोंको बुलाते हैं। वे इन्द्र और अग्नि यहां आ जावें ॥४॥ वे इन्द्र और अग्नि, बडे सभापति हैं, वे राक्षसोंको सरल स्वभाववाले बना देवें। वे सर्व भक्षक (राक्षस न सुधरे तो) प्रजारहित हो जावें ॥५॥ हे इन्द्र और अग्नि! चित् प्रकाशसे उज्वल हुए स्थानमें उसी सत्यके साथ तुम जागते रहो। और हमें सुख प्रदान करो ॥६॥

वीरोंके काव्यका गान

इन्द्र और अग्नि ये बडे (उग्रौ) उग्र वीर हैं, वे शत्रुका नाश करते हैं, ये (महान्ता सदसः पती) बडे भारी श्रेष्ठ और उत्तम सभापती हैं। सभापतिका कार्य वे उत्तम रीतिसे निभाते हैं।

दुष्टोंका सुधार

वे (रक्षः उब्जतं) वे राक्षसोंको ऐसी नियंत्रणामें रखें कि जिससे वे राक्षस अपनी क्रूरताका त्याग करके सरल स्वभाववाले बन जाय। यहां पाठक ध्यानमें यह बात धारण करें कि, यहां राक्षसोंका नाश करो ऐसा नहीं कहा, परंतु (उब्जतं) उनको सरल स्वभाव बनानेका आदेश दिया है। दुष्टोंकी दुष्टता दूर करनी चाहिये न कि उनका वध करना चाहिये। यदि उन्होंने अपनी दुष्टता न छोड दी, तो पीछे उनका वध करनेका अवसर आ जायगा। परंतु प्रथम सुधारनेका यत्न होना चाहिये यह मुख्य आदेश यहां स्मरण रखना योग्य है।

आगे जाकर (अत्रिणः अप्रजाः सन्तु) यदि वे सर्वभक्षक दुष्ट दुर्जन न सुधरे, तो वे प्रजाहीन होते जांय ऐसा उनको शाप दिया है। यहांका ' अत्रिणः ' पद बडा महत्त्वका है। ' अद् ' धातु खानेके अर्थमें है इससे यह पद 'अत्रिन्' बनता है। भक्षक ऐसा इसका अर्थ है। सर्वभक्षक क्रूर होते हैं। सबको खानेवाले, लोभी दुष्टजन जो हैं वे इस पदसे जाने जाते है।

ऋषिवाचक दूसरा ' अत्रि ' पद है वह ' अत् ' धातुसे बनता है। गमन करनेवाला ऐसा उसका अर्थ है। देशमें भ्रमण करके जो ज्ञानका प्रसार करता है वह ' अत्रि ' है। यह ऋषिवाचक अत्रिपद भिन्न है और राक्षसवाचक ' अत्रिन् ' पद उससे सर्वथा विभिन्न है।

यह सर्वभक्षक अत्रिन् पद दुष्ट राक्षसोंका वाचक है वैसाही वह रोग क्रिमियोंका वाचक है। शरीरके रुधिरमेंसे लाल रक्त कणोंको जो क्रिमी खा जाते हैं वे ' अत्रिणः ' रोगजन्तु हैं। प्रायः राक्षसवाचक सभी वैदिक पद रोगक्रिमियोंके वाचक वेदमें होते हैं। यह एक सर्व साधारण नियमही समझना योग्य है।

शंखेन हत्वा रक्षांसि अत्रिणो वि षहामहे।
(अथर्व० ४।१०।२)

अर्चिषा अत्रिणो नुदतं प्रतीचः ॥ (अथर्व० ६।३२।३)

' शंखके द्वारा सर्व भक्षक (अत्रिणः रक्षांसि) राक्षसोंको दूर करते हैं। सूर्यके किरणोंसे (अत्रिणः) सर्वभक्षक क्रमियोंको दूर करते हैं। ' यहां सर्व रक्तभक्षक पीलक बढानेवाले रोग कृमियोंका नाश शंख (भस्म)से तथा सूर्यकिरणसे करनेका उल्लेख है। ये रोग क्रमिही हैं। सूर्य किरणमें रोगजन्तु मरते हैं और शंखके पीसकर पेटमें लेनेसे भी रोगक्रिमी मरते हैं। इस तरह वेदमें अत्रिन् पद रोग क्रिमियोंका वाचक आया है।

इस (ऋ. १।२१) सूक्तमें अत्रिन् पद दुष्ट मानवोंका वाचक हैं। और उनको सुधारनेका आदेश है। यह अहिंसासे सुधार करनेका आदेश है।

अहिंसा, सत्य और ज्ञान

(**प्रचेतुने पदे सत्येन अधि जागृतं** । ६) ज्ञानसे प्राप्तव्य स्थानमें सत्यके साथ जागते रहो। ' **अहिंसा** 'का व्रत, ' **सत्य** 'का पालन और ' **ज्ञान** ' से जागृति ये तीन साधन यहां मानवोंकी उन्नतिके लिये बताये हैं। यदि दुष्टोंका सुधार न हो सका तो उनको दण्ड देनेका आदेश वेदमें अन्यत्र है।

(१) **रक्षः उब्जतं**= राक्षसोंको सुधारो (उब्ज्=आर्जवे, सीधा बनाना (To make straight), टेढोंको सरल बनाना, क्रूरोंको अहिंसक बनाना। यह अहिंसासे सुधार है।

(२) **सत्येन अधि जागृतं**= सत्यके साथ जागो। यह सत्यकी पालनाका आदेश है।

(३) **प्रचेतुने पदे**— प्राप्तव्य स्थानको ज्ञानसे बताओ। यह ज्ञानकी महिमा है।

इस तरह इस एकही सूक्तमें ये तीन बातें बहुतही महत्व की हैं।

पर्वतोंको भी उखाड दे सकते और समुद्रको भी लांघ देते हैं (७), जो तेजसे अथवा अपने प्रभावसे सर्वत्र व्यापते हैं और अपने बलसे समुद्रको भी तुच्छ समझते हैं (८) ऐसे ये महावीर हैं।

अग्निवीर ऐसा है कि जिसके बराबर कार्य करनेवाला न कोई देवोंमें है और नाही मर्त्योंमें है। ऐसा यह वीर पूर्वोक्त वीरोंके साथ इस यज्ञमें आजाय और मधुर सोमरस पीवे। हम ऐसे वीरोंको बुलाते हैं और उनका सत्कार करते हैं।

यहां मंत्रके पूर्वार्धमें वीरोंका वर्णन है और सब मंत्रोंका उत्तरार्ध एकही है। इसलिये हमने अन्तमें एकही वार उत्तरार्ध-का अर्थ किया है। प्रत्येक मंत्रमें पाठक उसका अनुसंधान करें।

पाठक पूर्वार्धका मनन करें और जानें कि, वीरोंमेंकिन गुणोंका उत्कर्ष होना चाहिये। ये गुण क्षत्रिय वीर अपनाबें और अपने देशका (अ-द्रुहः) द्रोह न करते हुए अपनी वीरताका अधिकसे अधिक उत्कर्ष करें।

ये मरुत् वायुही हैं। अतः वायुके वर्णनसे यहां वीरोंका वर्णन किया गया है। वायु अन्तरिक्षमें रहता है इसीलिये वह अन्तरिक्षको जानता है (मं. ३), इस तरहके वर्णन पाठक विचारपूर्वक जान सकते हैं।

(९) दिव्य कारीगर

(ऋ. मं. १।२०) मेधातिथिः काण्वः। ऋभवः। गायत्री।

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया । अकारि रत्नधातमः १
य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी । शमीभिर्यज्ञमाशत २
तक्षन् नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम् । तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम् ३
युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः । ऋभवो विष्ट्यक्रत ४
सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता । आदित्येभिश्च राजभिः ५
उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् । अकर्त चतुरः पुनः ६
ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते । एकमेकं सुशस्तिभिः ७
अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया । भागं देवेषु यज्ञियम् ८

अन्वयः- विप्रेभिः आसया अयं रत्नधातमः स्तोमः जन्मने देवाय अकारि ॥ १ ॥ ये इन्द्राय वचोयुजा हरी मनसा ततक्षुः (ते) शमीभिः यज्ञं आशत ॥ २ ॥ नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथं तक्षन्, धेनुं सबर्दुघां तक्षन् ॥ ३ ॥ सत्यमन्त्राः ऋजूयवः विष्टी ऋभवः पितरा पुनः युवाना अक्रत ॥ ४ ॥ (हे ऋभवः) वः मदासः मरुत्वता इन्द्रेण, च राजभिः आदित्यैः च सं अग्मत ॥ ५ ॥ उत देवस्य त्वष्टुः निष्कृतं नवं त्यं चमसं, (तं एकं) पुनः चतुरः अकर्त ॥ ६ ॥ ते (यूयं) सुशस्तिभिः नः सुन्वते एकं एकं त्रिः साप्तानि रत्नानि आ धत्तन ॥ ७ ॥ वह्नयः सुकृत्यया देवेषु यज्ञियं भागं अधारयन्त अभजन्त (च) ॥ ८ ॥

अर्थ- ज्ञानियोंने अपने मुखसे इस रत्नोंको देनेवाले स्तोत्रका, दिव्य जन्मको प्राप्त होनेवाले ऋभुदेवोंके लिये (पाठ) किया ॥१॥ जिन्होंने इन्द्रके लिये शब्दके इशारेसे चलनेवाले दो घोडे चतुराईसे बनाये (सिखाये); वे (ऋभु देव) शमीके (चमसादिके साथ) यज्ञमें आते हैं ॥२॥ अश्विदेवोंके लिये (उन्होंने) उत्तम गतिमान सुखदायी रथ निर्माण किया और गौको उत्तम दुधारू बना दिया ॥३॥ सत्य विचारवाले, सरल स्वभाव, चारों ओर जानेवाले ऋभुओंने (अपने) मातापिताको पुनः जवान बना दिया ॥४॥ (हे ऋभुओ!) आपको आनन्द देनेवाला सोमरस मरुतोंके साथ इन्द्रके और चमकनेवाले आदित्योंके साथ आपको दिया जाता है ॥५॥ त्वष्टाके द्वारा बनाया यह नयाही चमस था, (ऋभुओंने उस एकहीको) चार प्रकारका बना दिया ॥६॥ वे (आप) स्तुतियोंसे (प्रशंसित होकर) हमारे सोमयाग करनेवाले के लिये तीनों प्रत्येकके लिये इक्कीस रत्नोंको धारण कराओ ॥७॥ अग्निके समान तेजस्वी (ऋभु देवोंने) अपने उत्तम कर्मोंसे देवोंमें (स्थान प्राप्त करके) यज्ञका हविर्भाग प्राप्त किया और उसका सेवन भी किया ॥८॥

दिव्य कारीगर

इस सूक्तमें ऋभु नामक दिव्य कारीगरोंका वर्णन है। इनकी कारीगरी इस सूक्तमें इस तरह वर्णन की गई है-

१ इन्द्रके लिये उत्तम शिक्षित घोडे इन्होंने दिये थे जो इशारे मात्रसे जैसे चाहे वैसे चलते थे। अर्थात् अश्वविद्यामें ऋभुदेव विशेष प्रवीण थे।

२ अश्विदेवोंके लिये इन्होंने उत्तम रथ बनाया, जो बैठनेवालोंके लिये बडा सुख देनेवाला था और चारों ओर अच्छी तरह चलाया जा सकता था। इससे सिद्ध है कि ऋभुदेव लकडीके काम तथा लोहेके काममें प्रवीण थे।

३ इन्होंने धेनुको अच्छी दुधारू बना दिया था। अर्थात् धेनुको दुधारू बनानेकी विद्या ऋभुदेव जानते थे।

४ वृद्धोंको तरुण बनाया। इससे सिद्ध है कि ये जीवन विद्या और औषधिप्रयोगोंमें प्रवीण थे और वृद्धोंको तरुण बनानेकी युक्ति जानते थे।

५ एक चमसके चार चमस बनाये। संभव है कि जैसा चमस त्वष्टाने बनाया था वैसेही इन्होंने चार बनाये होंगे।

६ इनके पास सात प्रकारके रत्न थे। जो उत्तम मध्यम कनिष्ठ भेदोंसे इक्कीस तरहके हो सकते है।

ऋभुदेवोंकी कथा

ऋभुदेवोंके संबंधमें ऐतरेय ब्राह्मणमें निम्नलिखित कथा मिलती है—

> ऋभवो वै देवेषु तपसा सोमपीथं अभ्यजयंस्तेभ्यः प्रातःसवने वाचि कल्पयंस्तानग्निर्वसुभिः प्रातःसवनादनुदत...तृतीये सवने वाचि कल्पयंस्तान् विश्वे देवा अनोनुद्यन्त, नेह पास्यन्ति, नेहेति, स प्रजापतिरब्रवीद् सवितारं, तव वा इमेऽन्ते वासास्त्वमेवैभिः सं पिबस्वेति। स तथेत्यब्रवीत्सविता तान्वै त्वमुभयतः परिपिबेति ...मनुष्यगन्धात्...॥ (ऐ. ब्रा ३।६)

" ऋभुदेव प्रारंभमें मनुष्य थे। तप करके वे देवत्वको प्राप्त हुए। प्रजापति और उसके साथ अपनी संमति रखनेवाले देव, इन देवोंने ऋभुओंको प्रातः सवनमें देवोंकी पंक्तिमें बिठलाकर सोमपान करानेका यत्न किया। परंतु आठों वसुदेवोंने उनको अपनी पंक्तिमें बैठने नहीं दिया। पश्चात माध्यंदिन सवनमें ग्यारह रुद्रोंने उनको अपनी पंक्तिमें बैठने नहीं दिया, इसी तरह प्रजापतिने ऋभुओंको आदित्योंकी पंक्तिमें बिठलानेका यत्न तृतीय सवनमें किया, पर सभी देवोंने उनको अपनी पंक्तिमें बिठलानेसे इन्कार किया। (नेह पास्यन्ति, नेहेति) ये ऋभु यहा बैठकर सोमपान नहीं करेंगे, कदापि यह बात नहीं होगी, ऐसा सब देवोंने कहा। तब प्रजापति सविताके पास गया और उन्होंने उससे कहा कि हे सविता। ये तेरे साथ रहनेवाले और अच्छे कार्य करनेवाले हैं, अत तू अपने साथ इनको बिठलाकर सोमपान करो और इनको करने दो। सविताने कहा कि इन ऋभुओंको (मनुष्य-गन्धात्) मनुष्योंकी बू आ रही है, इसलिये ये देवोंमें कैसे बैठ सकते हैं ? पर यदि हे प्रजापते ! तुम स्वयं इनके साथ बैठकर सोमपान करोगे, तो मैं भी वैसा करूंगा। और एक बार यह प्रथा चल पडी तो चलती रहेगी। प्रजापतिने वैसा किया, तबसे ऋभु देवत्वको प्राप्त हुए।'

यह कथा ऐतरेय ब्राह्मणमें है। इसमें यदि कुछ अलंकार होगा, तो उसका अन्वेषण करना चाहिये। ऋ १।११०।४ में कहा है-

> विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः। सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः॥ (ऋ. १।११०।४)

'शान्तिपूर्वक शीघ्र कार्य करनेमें कुशल और ज्ञानी ऐसे ये ऋभु प्रथम मर्त्य होनेपर भी देवत्वको प्राप्त हुए। ये सुधन्वाके पुत्र सूर्यके समान तेजस्वी ऋभुदेव सांवत्सरिक यज्ञमें अपनी कर्म कुशलताके कारण संमिलित हो गये।'

अंगिराके पुत्र सुधन्वा, और सुधन्वाके पुत्र ऋभु, विभु और वाज ये तीन थे। इनमेंसे ऋभु बडे कारीगर थे इसलिये उनकी कारीगरीके कारण इनको देवोंमें शामिल किया गया था। देव नामक जातीका एक दिग्विजयी राष्ट्र था, उस राष्ट्रमें मानवजातीके लोगोंको बसनेका अधिकार नहीं था। कभी कभी आवश्यकता पडनेपर कई मानवजातीके लोगोंको उनमें जाकर बसनेका अधिकार मिलता था। इसी तरह ऋभुओंको मिला था। ऋभु उत्तम कारीगर थे, उत्तम रथ बनाते थे, उत्तम शस्त्र बनाते थे, गौओंको अधिक दूध देनेवाली बनाते थे, वृद्धोंको जवान बनानेकी औषधियोजना वे जानते थे। देवजातीके लिये ऐसे कुशल कारीगरोंकी जरूरत थी अतः प्रजापतिने उन ऋभुओंको अपनी देवजातीमें लेनेका यत्न किया। प्रथम देवोंने इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया, परंतु पश्चात् प्रजापतिका

प्रस्ताव देवोंने मान लिया और ऋभुओंकी गणना देवोंमें होने लगी ।

आजकल अमेरिकामें भारतवासियोंको स्थायी रूपसे रहनेकी आज्ञा नहीं है । पर अब इस महायुद्धके कारण भारतीयोंको आज्ञा देनेका विचार वहां करने लगे हैं । इसी तरह यह ऋभुओंकी बात दीख रही है ।

संभव है कि यह आलंकारिकही घटना हो । आलंकारिक होनेपर भी उससे यह बोध मिलता है कि जो जाती अपने राष्ट्रके हितके लिये उपयोगी है, ऐसा सिद्ध हो जाय, उस जातीको अपने राष्ट्रका अंग मानकर रहनेका अधिकार देना योग्य है । पर यह अधिकार देनेके लिये सब राष्ट्रवासी जातियोंके प्रतिनिधियोंकी संमति लेनी चाहिये, जैसीकी पूर्वोक्त ऐतरेय ब्राह्मणके वचनमें प्रजापति (राष्ट्रके अध्यक्ष) ने देवराष्ट्रकी प्रातिनिधिक देवसभाके सामने यह प्रस्ताव रखा था, और सबकी प्रथम प्रतिकूलता होनेपर भी आगे उनकी अनुकूलता युक्तिसे प्राप्त की और पश्चात् ऋभुओंको देवोंमें शामील किया गया ।

इससे बडा भारी राष्ट्रीय संघटनाका बोध मिलता है उसको पाठक अवश्य विचार करें ।

इस सूक्तमें भी ' **देवेषु यज्ञियं भागं ऋभवः अधारयन्त, अभजन्त च** । (मं. ८) ऐसा कहा है । ऋभुओंको प्रथम देवोंमें बैठकर यज्ञका हविर्भाग लेनेका अधिकार नहीं था, वह उनको मिला और पश्चात् वे उस भागका सेवन करने लगे ।

प्रथम मण्डलके ११० वे सूक्तके साथ पाठक इसका विचार करें, इसका एक मंत्र ऊपर दिया है ।

---

(१०) वीरोंकी प्रशंसा

(ऋ. मं. १।२१) मेधातिथिः काण्वः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित्स्तोममुश्मसि । ता सोमं सोमपातमा ॥ १ ॥
ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः । ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥
ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे । सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥
उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४ ॥
ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् । अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥ ५ ॥
तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ६ ॥

अन्वयः- इह इन्द्राग्नी उप ह्वये । तयोः इत् स्तोमं उश्मसि । ता सोमपातमा सोमं (पिबतां) ॥ १ ॥ हे नरः ! ता इन्द्राग्नी यज्ञेषु प्रशंसत । ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥ मित्रस्य प्रशस्तये, ता सोमपा ता इन्द्राग्नी सोमपीतये हवामहे ॥३॥ इदं सुतं सवनं उप उग्रा सन्ता हवामहे । इन्द्राग्नी इह आ गच्छताम् ॥ ४ ॥ ता महान्ता सदसस्पती इन्द्राग्नी रक्षः उब्जतम् । अत्रिणः अप्रजाः सन्तु ॥ ५ ॥ हे इन्द्राग्नी ! प्रचेतुने पदे तेन सत्येन अधि जागृतम् । (नः) शर्म यच्छतम् ॥ ६ ॥

अर्थ- इस यज्ञमें इन्द्र और अग्निको मैं बुलाता हूं । उनकी हि स्तुति करना चाहता हूं । वे सोमपान करनेवाले यहां सोमरस पीयें ॥१॥ हे मनुष्यो ! उन इन्द्र और अग्निकी यज्ञोंमें प्रशंसा करो । गायत्री छन्दमें उनके काव्योंका गान करो ॥२॥ मित्रकी प्रशंसा करनेके समान, उन सोमपान करनेवाले इन्द्र और अग्निको सोमपानके लिये ही हम बुलाते हैं ॥३॥ सोमरस निकालनेपर, उन उग्रवीरोंको बुलाते हैं । वे इन्द्र और अग्नि यहां आ जायँ ॥४॥ वे इन्द्र और अग्नि, बडे सभापति हैं, वे राक्षसोंको सरल स्वभाववाले बना देवें । वे सर्व भक्षक (राक्षस न सुधरे तो) प्रजारहित हो जायें ॥५॥ हे इन्द्र और अग्नि ! चित् प्रकाशसे उज्वल हुए स्थानमें उसी सत्यके साथ तुम जागते रहो । और हमें सुख प्रदान करो ॥६॥

वीरोंके काव्यका गान

इन्द्र और अग्नि ये बडे (उग्रौ) उग्र वीर हैं, ये शत्रुका नाश करते हैं, ये (महान्ता सदसः पती) बडे भारी श्रेष्ठ और उत्तम सभापती हैं। सभापतिका कार्य वे उत्तम रीतिसे निभाते हैं।

दुष्टोंका सुधार

वे (रक्षः उब्जतं) वे राक्षसोंको ऐसी नियंत्रणामें रखें कि जिससे वे राक्षस अपनी क्रूरताका त्याग करके सरल स्वभाववाले बन जाय। यहां पाठक ध्यानमें यह बात धारण करें कि, यहां राक्षसोंका नाश करो ऐसा नहीं कहा, परंतु (उब्जतं) उनको सरल स्वभाव बनानेका आदेश दिया है। दुष्टोंकी दुष्टता दूर करनी चाहिये न कि उनका वध करना चाहिये। यदि उन्होंने अपनी दुष्टता न छोड दी, तो पीछे उनका वध करनेका अवसर आ जायगा। परंतु प्रथम सुधारनेका यत्न होना चाहिये यह मुख्य आदेश यहां स्मरण रखना योग्य है।

आगे जाकर (अत्रिणः अप्रजाः सन्तु) यदि वे सर्वभक्षक दुष्ट दुर्जन न सुधरे, तो वे प्रजाहीन होते जांय ऐसा उनको शाप दिया है। यहांका ' अत्रिणः ' पद बडा महत्त्वका है। ' अद् ' धातु खानेके अर्थमें है इससे यह पद 'अत्रिन्' बनता है। भक्षक ऐसा इसका अर्थ है। सर्वभक्षक क्रूर होते हैं। सबको खानेवाले, लोभी दुष्टजन जो हैं वे इस पदसे जाने जाते है।

ऋषिवाचक दूसरा ' अत्रि ' पद है वह ' अत् ' धातुसे बनता है। गमन करनेवाला ऐसा उसका अर्थ है। देशमें भ्रमण करके जो ज्ञानका प्रसार करता है वह ' अत्रि ' है। यह ऋषिवाचक अत्रिपद भिन्न है और राक्षसवाचक ' अत्रिन्' पद उससे सर्वथा विभिन्न है।

यह सर्वभक्षक अत्रिन् पद दुष्ट राक्षसोका वाचक है वैसाही वह रोग क्रिमियोंका वाचक है। शरीरके रुधिरमेंसे लाल रक्त कणोंको जो क्रिमी खा जाते हैं वे ' अत्रिणः ' रोगजन्तु हैं। प्रायः राक्षसवाचक सभी वैदिक पद रोगक्रिमियोंके वाचक वेदमें होते हैं। यह एक सर्व साधारण नियमही समझना योग्य है।

शंखेन हत्वा रक्षांसि अत्रिणो वि षहामहे।

(अथर्व० ४।१०।२)

अर्चिषा अत्रिणो नुदतं प्रतीचः॥ (अथर्व० ६।३२।३)

' शंखके द्वारा सर्व भक्षक (अत्रिणः रक्षांसि) राक्षसोंको दूर करते हैं। सूर्यके किरणोंसे (अत्रिणः) सर्वभक्षक क्रमियोंको दूर करते हैं। ' यहां सर्व रक्तभक्षक पलिक बढानेवाले रोग क्रमियोंका नाश शंख (भस्म)से तथा सूर्यकिरणसे करनेका उल्लेख है। ये रोग क्रमिही हैं। सूर्य किरणमें रोगजन्तु मरते हैं और शंखके पीसकर पेटमें लेनेसे भी रोगकिमी मरते हैं। इस तरह वेदमें अत्रिन् पद रोग क्रिमियोंका वाचक आया है।

इस (ऋ. १।२१) सूक्तमें अत्रिन् पद दुष्ट मानवोंका वाचक हैं। और उनको सुधारनेका आदेश है। यह अहिंसासे सुधार करनेका आदेश है।

अहिंसा, सत्य और ज्ञान

(प्रचेतुने पदे सत्येन अधि जागृतं । ६) ज्ञानसे प्राप्तव्य स्थानमें सत्यके साथ जागते रहो। ' **अहिंसा** 'का मत, ' **सत्य** 'का पालन और ' **ज्ञान** ' से जागृति ये तीन साधन यहां मानवोंकी उन्नतिके लिये बताये हैं। यदि दुष्टोंका सुधार न हो सका तो उनको दण्ड देनेका आदेश वेदमें अन्यत्र है।

(१) **रक्षः उब्जतं**= राक्षसोंको सुधारो (उब्ज्=आर्जवे, सीधा बनाना (To make straight), टेढोंको सरल बनाना, क्रूरोंको अहिंसक बनाना। यह अहिंसासे सुधार है।

(२) **सत्येन अधि जागृतं**= सत्यके साथ जागो। यह सत्यकी पालनाका आदेश है।

(३) **प्रचेतुने पदे**— प्राप्तव्य स्थानको ज्ञानसे बताओ। यह ज्ञानकी महिमा है।

इस तरह इस एकही सूक्तमें ये तीन बातें बहुतही महत्व की हैं।

(११) वेगवान् रथ

(ऋ. मं. १।२२) मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

(२२।१-४) अश्विनौ देवता

प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम् । अस्य सोमस्य पीतये १
या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा । अश्विना ता हवामहे २
या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ३
नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः । अश्विना सोमिनो गृहम् ४

अन्वयः– प्रातर्युजौ वि बोधय । अश्विनौ इह अस्य सोमस्य पीतये आ गच्छताम् ॥१॥ या उभा अश्विना सुरथा रथितमा दिविस्पृशा देवा ता हवामहे ॥२॥ हे अश्विनौ ! वां या कशा मधुमती सूनृतावती तया सह यज्ञं मिमिक्षतम् ॥३॥ हे अश्विनौ ! सोमिनः गृहं, यत्र रथेन गच्छथ., वां दूरके न अस्ति ॥४॥

अर्थ– प्रात कालके समयमें जागनेवाले अश्विदेवोंको जगाओ । वे अश्विदेव इस यज्ञमें इस सोमरसका पान करनेके लिये पधारें ॥१॥ ये दोनों अश्विदेव सुंदर रथसे युक्त हैं, वे सबसे श्रेष्ठ रथी हैं, और वे अपने रथसे आकाशमें संचार करते हैं, इन दोनों देवोंको हम बुलाते हैं ॥२॥ हे अश्विदेवो ! तुम्हारी जो मीठा सुंदर शब्द करनेवाली चाबूक है, उसके साथ यज्ञमें आओ ॥३॥ हे अश्विदेवो ! सोमयाग करनेवालेके घरके पास अपने रथसे तुम जाते हो, वह (तुम्हारे लिये बिल्कुल) दूर नहीं है ॥४॥

चाबूक

अश्विदेवोंका चाबूक (मधुमती सूनृतावती) मीठा और सुंदर शब्द करती है । उत्तम चाबूकका एक भान्तीका शब्द होता है । इस चाबूकके शब्दसे अश्विदेव आ रहे हैं ऐसा मालूम होता है । इनका रथ वेगवान् होनेसे इनके लिये कोई स्थान दूर नहीं है । जहां इनको पहुंचना होगा, वहां शीघ्रही ये पहुंचते हैं ।

(२२।५-८) सविता देवता

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ५
अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि । तस्य व्रतान्युश्मसि ६
विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ७
सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः । दाता राधांसि शुम्भति ८

अन्वय.– हिरण्यपाणिं सवितारं ऊतये उप ह्वये । स. देवता पदं चेत्ता ॥५॥ अपां नपातं सवितारं उप स्तुहि । तस्य व्रतानि उश्मसि ॥६॥ वसो. चित्रस्य राधस विभक्तारं नृचक्षसं सवितारं हवामहे ॥७॥ हे सखाय. ! आ नि षीदत । नः सविता नु स्तोम्य । राधांसि दाता शुम्भति ॥८॥

अर्थ– सुवर्णके समान किरणोंवाले सविताको अपनी सुरक्षा करनेके लिये मैं बुलाता हूं । वही देवता प्राप्तव्य स्थान-का बोध कर देता है ॥५॥ जलोंको न प्रवाहित करनेवाले सविताकी स्तुति करो । इसके लिये हम व्रतोंका पालन करना चाहते हैं ॥६॥ निवासके कारणीभूत नाना प्रकारके धनोंके दाता, मनुष्योंके लिये प्रकाशके प्रदाता, सूर्य देवका हम आवा-हन करते हैं ॥७॥ हे मित्रो ! आ कर बैठ जाओ । हम सबके लिये यह सविता स्तुति करने योग्य है । सिद्धियोंके प्रदाता (सूर्य देव अब) प्रकाशित हो रहे हैं ॥८॥

सबका प्रसविता सविता

' सविता वै सर्वस्य प्रसविता ' (श. ब्रा.) सविता सूर्य देव सब विश्वका प्रसव करनेवाला है। जिस तरह स्त्री अपने अन्दरसे संतानोंको प्रसवती है उसी तरह यह सूर्यदेव अपने अन्दरसे सब सृष्टीकी उत्पत्ति करता है।

सूर्य (सविता)
|
सूर्य मालिका
(बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु, शनि, वरुण और प्रजापति)
|
वृक्ष, कृमिकीट
|
मनुष्य
|
(श्वेत, लाल, पीत, भूरे और कृष्ण वर्णवाले मानव)

इस तरह यह सविता सब सृष्टीका प्रसव अपने अन्दरसे करता है। परब्रह्मसे सूर्य, और सूर्यसे सब सृष्टी होती है। यहां अपने अन्दरसे प्रसव करनेवा तत्त्व पाठक स्मरण रखें।

(**अवसे सवितारं उप**) अपनी सुरक्षाके लिये सविता सूर्यकी उपासना करो। सूर्यही सब रोगबीजोंको दूर करता है, और आरोग्य बढाता है। सूर्य दीर्घायु करनेवाला है।

(**तस्य व्रतानि उश्मसि**) सूर्यके व्रतोंका पालन करना है। सूर्यसे आरोग्य प्राप्त करनेके जो नियम हैं उनको जानकर आचारमें लाना चाहिये।

(**नृ-चक्षः**) यह सूर्य मनुष्योंके लिये नेत्र जैसा है, सब लोगोंके लिये वह प्रकाश बताता है।

संपत्तिका विभाजन

' संपत्तिका संग्रह एकके पास होना उचित नहीं है। इससे गरीब पीसे जाते हैं। इसलिये संपत्तिका बटवारा योग्य रीतिसे समाजमें होना उचित है।

'**वसोः विभक्ता सविता**' (मं० ७) मानवोंके निवासके लिये जो आवश्यक है वह वसु कहलाता है। उसीका नाम धन या संपत्ति है। इस धनका विशेष भाग करके उसका बटवारा यथायोग्य रीतिसे करना चाहिये। जिस तरह सूर्यकी संपत्ति ' प्रकाश ' है, उसका सब वस्तुमात्रपर वह बटवारा करता है। जब सूर्य प्रकाशता है तब पृथ्वी, जल, पर्वत, वृक्ष, मानव आदीपर वह समानतया प्रकाशता है और सबको प्रकाशित करता है।

इसी तरह राजा अपने राष्ट्रमें संपत्तिका विभाजन यथायोग्य रीतिसे करे तथा करावे और सबको सुखी करे।

यह '**वसु-विभाग**' वेदमें अनेक सूक्तोंमें आयेगा। वहां इसका संपूर्ण अर्थ पाठक विचारपूर्वक देखें और मननसे जानें।

(२२।९-१५), ९-१० अग्नि, ११-१५ देव्यः।

अग्नि और देवपत्नियाँ

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप । त्वष्टारं सोमपीतये ९
आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम् । वरूत्रीं धिषणां वह १०
अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः । अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ११
इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये । अग्नायीं सोमपीतये १२
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः १३
तयोरिद् घृतवत् पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः । गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे १४
स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथः १५

अन्वयः- हे अग्ने ! उशतीः देवानां पत्नीः इह उप आ वह। (तथा) त्वष्टारं सोमपीतये (उप आ वह) ॥९॥ हे अग्ने ! ग्नाः अवसे इह आ वह। हे यविष्ठ ! अवसे होत्रां भारतीं, वरूत्रीं, धिषणां (आ वह) ॥१०॥ नृपत्नीः अच्छिन्नपत्राः देवीः अवसा महः शर्मणा नः अभि सचन्ताम् ॥११॥ इह इन्द्राणीं वरुणानीं अग्नायीं स्वस्तये सोमपीतये उप ह्वये ॥१२॥ मही द्यौः पृथिवी च नः इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। भरीमभिः नः पिपृताम् ॥१३॥ गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे तयोः इत् घृतवत् पयः विप्राः धीतिभिः रिहन्ति ॥१४॥ हे पृथिवि ! स्योना, अनृक्षरा, निवेशिनी भव। सप्रथः शर्म नः यच्छ ॥१५॥

*

अर्थ- हे अग्ने ! इधर आनेकी इच्छा करनेवाली देवोंकी पत्नियोंको यहाँ ले आओ। तथा त्वष्टाको सोमपान करनेके लिये यहां ले आओ। हे अग्ने ! देवपत्नियोंको हमारी सुरक्षा करनेके लिये यहां ले आओ। हे तरुण अग्ने ! हमारी सुरक्षाके लिये देवोंको बुलानेवाली, भरणपोषण करनेवाली, सुरक्षा करनेवाली बुद्धिको यहां ले आओ ॥१०॥ जिनके आनेके साधन अविच्छिन्न हैं और जो मनुष्योंका पालन करती हैं, वे देवपत्नियाँ हमारी सुरक्षा करके बडे सुखके साथ हमारे पास (इस यज्ञमें) आ जायँ ॥११॥ यहां इन्द्रपत्नी, वरुणपत्नी और अग्निपत्नीको हमारी सुरक्षाके लिये और उनके सोमपानके लिये बुलाता हूं ॥१२॥ महान् द्युलोक और बडी पृथ्वी हमारे इस यज्ञके लिये (उत्तम रससे-जलसे) सिंचन करें। पोषणों द्वारा हमें पूर्ण करे ॥१३॥ गन्धर्व लोकके ध्रुव स्थानमें (अर्थात् अन्तरिक्षमें) इन दोनों -(द्यु और पृथ्वीके मध्यमें)- घीके समान जल, ज्ञानी लोक अपने कर्मों और बुद्धियोंके बलसे प्राप्त करते हैं ॥१४॥ हे पृथ्वी ! तू सुखदायिनी, कण्टकरहित और हमारा निवास करनेवाली बनो। और हमें विस्तृत सुख दो ॥१५॥

देवियोंका स्तोत्र

इस २२ वें सूक्तमें तृतीय सूक्त देवियोंका है। इसमें (भारती) भाषा, (धिषणा) बुद्धि, (इन्द्राणी) इन्द्र पत्नी [शूरता], (वरुणानी) वरुणपत्नी [रसिकता], (अग्नायी) अग्निपत्नी, द्यौः, मातृभूमी इनका वर्णन है। ये देवपत्नियाँ कैसी हैं सो देखो—

१ उशतीः- (हमारी सुरक्षा करनेकी) इच्छा करती है,

२ अवः- हमारी रक्षा करती हैं,

३ भारती- भरणपोषण करनेवाली,

४ वरूत्री- सुरक्षा करनेवाली,

५ धिषणा- बुद्धिमती, विदुषी,

६ नृपत्नी- मनुष्योंकी पालना करनेवाली,

७ अच्छिन्न-पत्राः- जिनके उडनेके विमान अटूट हैं, सुरक्षित यन्त्रसाधनोंसे युक्त,

८ मिमिक्षतां- उत्तम वृष्टी करें, जिससे उत्तम धान्य निर्माण हो,

९ भरीमन्- पोषण करनेवाला धान्य आदिक पदार्थ,

१० घृतवत् पयः- घी जैसा जल, उत्तम पाचक और पोषण परिशुद्ध जल,

११ स्योना- सुखदायी,

१२ अनृक्षरा- (अन-ऋक्षरा) कण्टक रहित, (अ नृ-क्षरा) जहां रहनेसे मनुष्योंमें क्षीणता नहीं आती ऐसा रहनेका स्थान हो,

१३ निवेशिनी- रहनेके लिये सुखदायक।

देवियोंके ये शुभ गुण हैं। इनसे हमारी उन्नति ये देवियाँ करें। मानवस्त्रियाँ क्या करें यह भी इन पदोंके मननसे समझमें आ सकता है। देवस्त्रिया जैसा आचरण करती हैं वैसा आचरण मानव स्त्रिया यहां करें। मानव स्त्रियोंके अनुकूल भाव उक्त पदोंमें गौण वृत्तीसे देखा जा सकता है। जैसा—

मनुष्यकी स्त्रियाँ (उशतीः) भलाई करनेकी इच्छा करें, (अवः वरूत्री) घरवालोंकी सुरक्षा करें, (भारती) भरण-पोषण करें, (धिषणा) सुबुद्ध हों, (नृ-पत्नी) कुटुंबके लोगोंकी पालना करें, (मिमिक्षतां) स्नेहयुक्त आचरण करें, (नृपत्नी) लोगोंका पालनपोषण करें, (भरीमन्) पालनपोषण करें, (घृतवत् पयः) घी और जल दें, (स्योना) सुखदायी हों, (अनृक्षरा) घर निष्कण्टक करें, घरमें कोई क्षीण न हो ऐसा व्यवहार करें, (निवेशिनी) सब लोग सुरक्षित रहें ऐसा प्रबंध करें।

देवपत्नीयोंके सूक्त मानवपत्नीयोंके कर्तव्योंकी शिक्षा इस तरह देते हैं।

मातृभूमिका राष्ट्रगीत

पन्द्रहवाँ मंत्र वैदिक राष्ट्रगीत है। यह संघमें राष्ट्रगीत जैसा बोलनेके लिये है 'हे मातृभूमे ! हमारे लिये तू सुखदायिनी, कण्टकरहित (शत्रुरहित) होकर उत्तम रीतिसे हमारा निवास करनेवाली हो। और विस्तृत सुख हमें प्रदान करो अर्थात् तुम्हारे ऊपर हम सुखसे रहें।'

(११।१६-२१) विष्णुः

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्त धामभिः १६

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूळ्हमस्य पांसुरे १७

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् १८
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा १९
तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् २०
तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत् परमं पदम् २१

अन्वयः- विष्णुः सप्त धामभि. यतः पृथिव्या. वि चक्रमे, अतः न. देवाः अवन्तु ॥१६॥ विष्णुः इदं वि चक्रमे। त्रेधा पदं नि दधे। अस्य पांसुरे समूढम्॥१७॥ अदाभ्यः गोपा॰ विष्णु, धर्माणि धारयन्, अत त्रीणि पदा वि चक्रमे॥१८॥ विष्णोः कर्माणि पश्यत। यतः व्रतानि पस्पशे। (सः) इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१९॥ विष्णोः तत् परमं पदं, दिवि आततं चक्षुः इव, सूरयः सदा पश्यन्ति ॥२०॥ विष्णोः यत् परमं पदं (अस्ति), तत् विपन्यव जागृवासः विप्रास. सं इन्धते॥२१॥

अर्थ- विष्णुने सातों धामोंसे जिस पृथ्वीपर विक्रम किया, वहांसे हमारी सब देव सुरक्षा करें ॥१६॥ विष्णुने यह विक्रम किया। उन्होंने तीन प्रकारसे अपने पद रखे थे। पर इसका एक पद धूली प्रदेशमें (अन्तरिक्षमें) गुप्त हुआ है ॥१७॥ न दबनेवाला, सबका रक्षक विष्णु, सब धर्मोंका धारण करता हुआ, यहांसे तीन पद रखनेका विक्रम करता है ॥१८॥ विष्णुके ये कर्म देखो। उनसे ही हम अपने व्रतोंको किया करते हैं। (वह विष्णु) इन्द्रका सुयोग्य मित्र है॥१९॥ विष्णुका वह परम स्थान द्यु लोकमें फैले हुए प्रकाशके समान, ज्ञानी सदा देखते हैं ॥२०॥ विष्णुका वह पद है कि जो कर्मकुशल, जाग्रत रहनेवाले ज्ञानी सम्यक् प्रकाशित हुआ देखते हैं ॥२१॥

विष्णु, व्यापक देव

विष्णु (वेवेष्टि इति) जो सब विश्वको व्यापता है, वह व्यापक देव विष्णु कहलाता है। यह व्यापक देव सात धामोंसे पृथ्वीपर विक्रम करता है। पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्रा और महत्तत्व ये सात धाम हैं जहां यह व्यापक प्रभु अपना विक्रम दिखाता है। इसका पराक्रम यहां सतत चलही रहा है। सब नक्षत्रादि तेजोलोक, तथा अग्न्यादि देव इसी व्यापक प्रभुकी महिमासे अपना अपना कार्य करनेमें समर्थ हुए हैं। उस व्यापक देवका सामर्थ्य लेकर ये सब देव (देवा नः अवन्तु) हमारी सुरक्षा करें। (१६)

यह व्यापक प्रभुही यह सब, जो इस विश्वमें दिखाई देता है, वह सब पराक्रम करता है। जो यहां दीख रहा है वह सब उसीका पराक्रम अथवा उसीका सामर्थ्यही है। सात्विक, राजस और तामस ऐसे तीन स्थानोंमें तीन पद उन्होंने रखे है। द्युलोक सात्विक, अन्तरिक्ष लोक राजस और भूलोक तमोगुण प्रधान है, यहां इसके तीन पद कार्य करते हैं। इनमें बीचके अन्तरिक्षमें जो इनका कार्य है वह गुप्त है। द्युलोक प्रकाशित है, भूलोकपर तो मनुष्य कार्य करही रहे हैं अत ये दो लोक स्पष्ट दीख रहे हैं। पर बीचका अन्तरिक्ष लोकका वायु अदृश्य है, विद्युत भी अदृश्यही रहती है, पर कभी कभी दीखती है। इस तरह बीचके स्थानमें होनेवाला उसका कार्य दीखता नहीं। (१७)

यह व्यापक प्रभु किसीसे कदापि दबनेवाला नहीं है। यही सबकी सुरक्षा करता है और यही सबमें व्यापक है, अतः प्रत्येक वस्तुमें विद्यमान है। ये सब कार्य वही करता है। भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें जो इनके तीन पद कार्य कर रहे हैं उनको देखो और उसका सामर्थ्य जानो (१८)

इस व्यापक प्रभुके ये सब कार्य देखो। ये कार्य सब विश्वमें सतत चल रहे हैं। इसीके व्यापक कार्योंके आश्रयसे मनुष्यके कार्य होते हैं। उसके किये कर्मोंका आश्रय करकेही मनुष्य अपने कार्य करता है। (जैसे उसके अग्निसे मनुष्य अपने अन्न पकाता है, उसके बीजसे यह खेती करता है इत्यादि)। यह इन्द्रका योग्य मित्र है। (व्यापक प्रभु जीवका मित्र है।) (१९)

इस व्यापक प्रभुका वह परम स्थान है जो आकाशमें जैसे प्रकाशित हुए सूर्यको मानव देखते हैं, उसी तरह ज्ञानी लोग सदा उसे देखते हैं। प्रत्येक वस्तुमें ये उसके कार्यको स्पष्टताके साथ सदा देखते हैं। (२०)

व्यापक प्रभुका वह स्थान है कि जो कर्मकुशल, जगनेवाले ज्ञानी सदा प्रकाशित अग्निके समान सर्वत्र प्रकाशित रूपमें

देखते हैं। (२१)

इस तरह इस सूक्तमें व्यापक प्रभुका वर्णन है। इसका पाठक मनन करें।

विष्णु–सूर्य

इस सूक्तके 'विष्णु' पदसे ' सूर्य ' अर्थ लेकर कई विचारक इस सूक्तका अर्थ करते हैं। सूर्य अपने किरणोंसे सब विश्व व्यापता है यही विष्णुपन है। सूर्य दक्षिणायनसे उत्तरायणतक जो पृथ्वीके विभागोंपर न्यूनाधिक प्रकाश डालता है वे सात भाग यहांके सात स्थान हैं। भूमध्य रेषा एक स्थान है, इसके नीचे तीन और ऊपर तीन मिलकर ये सात भूविभाग होते हैं। ये सूर्यके आक्रमणसे न्यूनाधिक प्रकाशसे युक्त होते हैं।

उत्तरीय ध्रुवमें उत्तरायणमें सूर्योदय होकर वह सूर्य सतत छ मासतक ऊपरही ऊपर चारों ओर प्रदक्षिणा करनेके समान इर्दगिर्द घूमता रहता है। यहां दस बजेतक जितनी ऊंचाईपर सूर्य आता है उतनी ऊंचाईपर वह तीन महिनोंमें आता है और फिर नीचे उतरने लगता है, ये ही उसके तीन आक्रमण हैं। पहिला पीत, दूसरा लाल और तीसरा श्वेत। भूविभाग सात होते हैं और आकाशमें तीन विभाग होते हैं। यहां ' सप्त धाम ' का अर्थ सात छन्द ऐसा सायनाचार्य करते हैं। कईयोंकी ऐसीही संमति है।

यहां सात छन्दोंका संबंध इस तरह है गायत्री २४, उष्णिक् २८, अनुष्टुप् ३२, बृहती ३६, पंक्ति ४०, त्रिष्टुप् ४४, और जगती ४८ अक्षरोंवाले ये सात छंद हैं। इन सात छंदोंके कुल अक्षर २५२ होते हैं, एक दिनके लिये एक अक्षर माना जाय तो इनके करीब साढे आठ महिने होते हैं। येही प्रकाशके महिने वहां उत्तरीय ध्रुवके पासके हैं। छ मास सूर्य दर्शन और उषा और अन्तके पूर्वका संधि प्रकाश मिलकर इतनेही दिन वहां प्रकाशके होते हैं। इसमें आश्चर्यकी बात यह है कि प्रथम गायत्री मन्त्रका ध्यान होता है, ठीक गायत्रीके २४ अक्षर होते हैं, उतनाही समय सूर्यबिंबको ऊपर आनेमें लगता है। इसी तरह सातों छंदोंकी अक्षरोंकी गणना और प्रकाशके दिनोंकी गणना समान है। इसलिये सातों छंदोद्वारा इसका विक्रम वर्णन किया है। अन्य वर्णन भी इसी तरह सुसंगत है।

इस उत्तरीय ध्रुवमें इन्द्र नाम उस प्रकाशका है कि जो सूर्य न होते हुए विलक्षण प्रकाश विद्युत्प्रकाश जैसा रहता है। यह इन्द्र सूर्यको ऊपर लाता और आकाशमें चढाता है ऐसा वर्णन वेदमन्त्रोंमें है। देखो—

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि॥ (ऋ १।७।३)

' इन्द्रने सुदीर्घ प्रकाश करनेके लिये सूर्यको द्युलोकमें ऊपर चढाया। ' यह इन्द्र और विष्णुकी मित्रता है।

इस तरह ये विद्वान् सूर्यपर यह सूक्त घटाते हैं। सूर्यका नाम विष्णु है ही वेदमें। ये अनेक अर्थ होनेपर भी इस सूक्तका परमात्मा, सर्वव्यापक प्रभुपरक अर्थ मारा नहीं जाता। क्योंकि वेदका मुख्य ध्येय वही है।

---

(१२) दो क्षत्रिय

(ऋ म १।२३) मेधातिथि काण्व। १-१८ गायत्री, १९ पुरउष्णिक्, २१ प्रतिष्ठा, २०,२२-२४ अनुष्टुप्।

(२३।१-३) वायु०, इन्द्रवायू

तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे । वायो तान् प्रस्थितान् पिब १
उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये २
इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये । सहस्राक्षा धियस्पती ३

अन्वय — हे वायो ! इमे सोमासः सुताः। तीव्राः आशीर्वन्तः। आ गहि। प्रस्थितान् तान् पिब ॥१॥ दिविस्पृशा उभा देवा इन्द्रवायू अस्य सोमस्य पीतये हवामहे ॥२॥ सहस्राक्षा धियः पती मनोजुवा इन्द्रवायू विप्राः ऊतये हवन्ते॥३॥

अर्थ- हे वायो ! ये सोमरस निचोडे हैं। ये तीखे (हैं अतः इनमें) दुग्धादि मिलाये हैं। यहाँ आओ। और यहां रखे इन (रसोंको) पीओ ॥१॥ द्युलोकको स्पर्श करनेवाले इन दोनों इन्द्र और वायु देवोंको इस सोमरसके पान करनेके लिये हम बुलाते हैं ॥२॥ सहस्रों आंखोंवाले, बुद्धिके अधिपती, मन जैसे वेगवान ये इन्द्र और वायु हैं, इनको ज्ञानी लोग अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं ॥३॥

सोमरस

सोमरस (तीव्राः) तीखा रहता है। इसलिये केवल सोमरसका पान करना अशक्य है। अतः उसके अन्दर जल, दूध, दही, सत्तू आदि (आशीर्) मिलाया जाता है इसीको (आशीर्-वन्तः)मिलाया हुआ रस कहते हैं। ' **गवाशिर, यवाशिर, दध्याशिर** ' आदि पद इसीके वाचक आगे आयेंगे। जो वस्तु मिलायी जाती है उसको ' आशिर् ' कहते हैं। ' गवाशिर ' गौका दूध मिलाया सोमरस, ' दध्याशिर् ' (गौका) दही मिलाया सोमरस, ' यवाशिर् ' गौका आटा मिलाया सोमरस इत्यादि। सोमरस बडा तीखा होनेके कारण उसमें ऐसे पदार्थ मिलानेही आवश्यक हैं। शहद भी मिलाते हैं।

दो क्षत्रिय

इन्द्र और वायु ये दो क्षत्रियदेव हैं। ये किस तरह आचरण करते हैं देखिये-

१ **दिविस्पृशौ-** अन्तरिक्षमें, आकाशमें (विमान आदि वाहनोंसे) संचार करते हैं।

२ **सहस्राक्षौ-** (सहस्र-अक्षौ) हजारों आंखोंसे देखते हैं। अर्थात् ये सहस्रों गुप्तचर रखते हैं और अपने तथा शत्रु-देशका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करते हैं। राज्यव्यवहारके लिये इसकी बडी आवश्यकता है।

३ **मनोजुवौ-** (मनः-जुवौ) मनके समान वेगवान्। शीघ्र गतिवाले वाहनोंसे युक्त हैं।

४ **धियः पती-** बुद्धियोंके स्वामी। प्रजाके विचार जिनके साथ रहते हैं, प्रजाके विचारोंके स्वामी, प्रजाके कर्मोंके स्वामी। प्रजाके विचार और कर्म जिनके अनुकूल रहते हैं।

५ **विप्राः ऊतये हवन्ते-** ज्ञानीलोग सुरक्षाके लिये जिनको बुलाते हैं। अर्थात् राष्ट्रके ज्ञानी लोगोंका भी जिनपर पूर्ण विश्वास है।

राजा तथा राजपुरुष इन गुणधर्मोंसे युक्त रहने चाहिये। ऐसे गुण जिनमें होंगे वे राजा प्रजाके लिये अनुकूलही होंगे और प्रजा उनके विरुद्ध कुछ कार्यवाही कदापि करेगीही नहीं।

(२३।४-६) मित्रावरुणौ

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । जज्ञाना पूतदक्षसा ४
ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ५
वरुणः प्राविता भुवन् मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ६

अन्वयः- वयं मित्रं वरुणं च सोमपीतये हवामहे। (उभौ) जज्ञाना पूतदक्षसा ॥४॥ यौ ऋतेन ऋतावृधौ, ऋतस्य ज्योतिषः पती, ता मित्रावरुणा हुवे ॥५॥ वरुणः प्राविता भुवत्। मित्रः विश्वाभिः ऊतिभिः (प्राविता भुवत्)। (तौ) नः सुराधसः करताम् ॥६॥

अर्थ- हम मित्रको और वरुणको सोमपानके लिये बुलाते हैं। (ये दोनों) बडे ज्ञानी और पवित्रकार्यके लिये अपने बलका उपयोग करनेवाले हैं ॥४॥ जो सरलतासे सन्मार्गकी वृद्धि करनेवाले और सन्मार्गकी ज्योतीके पालनकर्ता हैं, उन मित्र और वरुणको मैं बुलाता हूं ॥५॥ वरुण हमारी विशेष सुरक्षा करता है। मित्र भी सब सुरक्षाके साधनोंसे हमारी सुरक्षा करता है। (ये दोनों) हमें उत्तम धनोंसे युक्त करें ॥६॥

दो मित्र राजा

इस सूक्तमें दो मित्र राजाओंका उल्लेख है। मित्र और वरुण ये दो राजा हैं, इनका वर्णन ऋ. १।२।७-९ में है। (देखो ' मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन पृ. ९-१० और १८-१९) ये दोनों राजा ऐसे हैं कि जो परस्पर मित्रभावसे आचरण करते और कभी द्रोह नहीं करते। अब इनका वर्णन इस सूक्तमें देखिये--

१ **जज्ञानौ**— वे ज्ञानी हैं, विद्यावान् हैं, प्रबुद्ध हैं।

२ **पूत-दक्षसा**— पवित्र कार्य करनेके लिये ही अपने बलका ये उपयोग करते हैं, कभी अपने बलका उपयोग दुष्ट कार्यमें नहीं करते।

३ **ऋतेन ऋतावृधौ**— सरल मार्गसे ही सत्य मार्गकी वृद्धि करते हैं, सन्मार्गसे अभिवृद्धि करनेके लिये भी टेढे मार्ग का अवलंब नहीं करते। जो उन्नतिका साधन करना हो वह सीधे मार्गसे ही करते हैं।

४ **ऋतस्य ज्योतिषः पती**— सत्यकी ज्योती पालन करते है सत्य एक प्रकारची ज्योती है उसका पालन ये अखण्ड करते रहते हैं।

५ **विश्वाभिः ऊतिभिः प्राविता भुवत्**— सब प्रकार की सुरक्षा करनेके साधनोंसे हमारी सुरक्षा ये करते हैं। इनमें से प्रत्येक देव यही करता है।

६ **सुराधसः नः करतां**— उत्तम सिद्धि हमें, ये प्राप्त करा देवें। 'राधस्' का अर्थ सिद्धि है। 'सुराधस्' का अर्थ उत्तम सिद्धि है। जो कार्य करना है उसमें उत्तम सिद्धि करा देते हैं।

दो राजा लोग इस तरह अपने राज्यमें बर्ताव करें, परस्पर भी मित्र भावसे रहें और प्रजाकी उन्नतिका साधन करें।

(२३।७-९) मरुत्वान् इन्द्र

मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये	। सजूर्गणेन तृम्पतु	७
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः	। विश्वे मम श्रुता हवम्	८
हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा	। मा नो दुःशंस ईशत	९

अन्वयः— मरुत्वन्तं इन्द्रं सोमपीतये आ हवामहे। (सः) गणेन सजूः तृम्पतु ॥७॥ हे विश्वे देवासः! इन्द्रज्येष्ठाः पूषरातयः मरुद्गणाः! मम हवं श्रुतम् ॥८॥ हे सुदानवः! सहसा युजा इन्द्रेण वृत्रं हतम्। दुःशंसः नः मा ईशत ॥९॥

अर्थ— मरुतोंके साथ इन्द्रको हम सोमपानके लिये बुलाते हैं। (वह) मरुद्गणके साथ तृप्त हों ॥७॥ हे सब देवो (मरुद्गणो)! तुम्हारे अन्दर इन्द्र श्रेष्ठ है, पूषाके समान तुम्हारे दान हैं, ऐसे मरुतो! मेरी प्रार्थना सुनो ॥८॥ हे उत्तम दाता (मरुतो!) बलवान् और अपने साथी इन्द्रके साथ रहकर वृत्रका वध करो। कोई दुष्ट हमारा स्वामी न बन बैठे ॥९॥

दुष्टके आधीन न होना

(दुःशंसः नः मा ईशत) कोई दुष्ट शत्रु हमारा मालिक न बन बैठे। यह इस सूक्तमें मुख्य संदेश है। सब मिलकर शत्रुका नाश करें और शत्रुका ऐसा नाश हो जावे कि वह फिर न उठे और कदापि हमारे ऊपर स्वामित्व न करे। किसी दुष्टके स्वामित्वका स्वीकार किसीको भी करना नहीं चाहिये।

(२३।१०-१२) विश्वे देवाः मरुतः

विश्वान् देवान् हवामहे मरुतः सोमपीतये	। उग्रा हि पृश्निमातरः	१०
जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया	। यच्छुभं याथना नरः	११
हस्काराद् विद्युतस्पर्यतो जाता अवन्तु नः	। मरुतो मृळयन्तु नः	१२

अन्वयः— मरुतः विश्वान् देवान् सोमपीतये हवामहे। हि उग्राः पृश्निमातरः ॥१०॥ जयतां इव, मरुतां तन्यतुः धृष्णुया एति, यत् शुभं यायन ॥११॥ हस्कारात् विद्युतः अतः परिजाता मरुतः नः अवन्तु, मृळयन्तु ॥१२॥

अर्थ— सब मरुत् देवोंको सोमपानके लिये हम बुलाते हैं। वे बडे शूरवीर हैं और भूमिको माता मानते हैं ॥१०॥ विजयी लोगोंकी तरह, मरुतोंका शब्द बडी धीरताके साथ होता रहता है, जब वे शुभ कार्यके लिये आगे बढते हैं ॥११॥ प्रकाशित हुई विद्युत, उत्पन्न हुए मरुद्वीर हमारी रक्षा करें और हमें सुख देवें ॥१२॥

जलमें अमृत है अर्थात् अपमृत्यु दूर करनेका गुण है, जलमें औषधिके गुणधर्म हैं। इसलिये जल प्रशंसाके योग्य है। (१९)

औषधियोंका राजा सोम है, उसका कहना है कि 'जलमें सब औषधियाँ हैं, जलमें विश्वको सुख देनेवाला अग्नि है और सब दवाइयाँ जलमें हैं। (२०)

जल मेरे शरीरको औषधिगुण देवे और मुझे दीर्घायु बनावे। मैं दीर्घ आयुतक सूर्यको देखना चाहता हूं अर्थात् मेरी दृष्टि दीर्घ आयुतक उत्तम रहे। (२१)

मुझमें जो दोष है, द्रोह भाव हैं, शापनेका दुर्गुण है, असत्य है, वह सब दोष जल मेरे शरीरसे दूर बहा देवे। अर्थात् जल-चिकित्सासे रोग बीज दूर होते हैं, मनके दुष्टभाव दूर होते हैं, गालियाँ देने और असत्य बोलनेकी दुष्प्रवृत्ति दूर होती है। जलसे शरीर निर्दोष होकर मन और वाणीकी भी शुद्धता होती है (२२)

जलमें प्रवेश करके अथवा जलका मेरे शरीरमें प्रवेश कराकर जलके रसके साथ मेरे शरीरका संयोग हुआ है। जलके अन्तर्गत उष्णता भी मेरे शरीरकी उष्णतासे मिल चुकी हैं। इससे मेरा तेज बढेगा। (२३)

जलका अग्नि मुझे तेजस्विता, सुप्रजा और दीर्घ आयुष्य देवे। सब देव और इन्द्र तथा सब ऋषि इस कार्यके लिये मेरी सहायता करें। अर्थात् इन सबकी सहायताके साथ मैं तेजस्वी, वर्चस्वी, दीर्घायु और सुप्रजावान् बनूंगा। (२४)

इस तरह इस सूक्तका विचार पाठक करें। यह सूक्त जल-चिकित्साका मूल है।

अष्टम मण्डल।

(१३) आदर्श वीर

(ऋ. मं. ८।१) १-२ प्रगाथो घौरः काण्वः, ३-२९ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ, ३०-३३ आसङ्गः प्लायोगिः, ३४ शश्वती आङ्गिरसी ऋषिका। इन्द्रः, ३०-३४ आसङ्गः। १-४ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), ५-३२ बृहती, ३३-३४ त्रिष्टुप्।

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत। इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत १
अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम्। विद्वेषणं संवननोभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् २
यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये। अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ३
वि तर्तूर्यन्ते मघवन्विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम्। उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ४
महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम्। न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ५
वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः। माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ६
क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः। अलर्षि युध्म खजकृत्पुरंदर प्र गायत्रा अगासिषुः ७
प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुरंदरः। याभिः काण्वस्योप बर्हिरासदं यासद्वज्री भिनत्पुरः ८
ये ते सन्ति दशग्विनः शतिनो ये सहस्रिणः। अश्वासो ये ते वृषणो रघुद्रुवस्तेभिर्नस्तूयमा गहि ९
आ त्वद्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम्। इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरंकृतम् १०
यत्तुदत्सूर एतशं वङ्कू वातस्य पर्णिना। वहत्कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुस्त्सरद्गन्धर्वमस्तृतम् ११

पुवशं यत् तुदन्, (तत्) वंकू वातस्य पर्णिना शतक्रतुः आर्जुनेयं कुत्सं वहन् । अस्तृतं गंधर्वं स्तरन् ॥११॥ यः अभिश्लिपः ऋते चित् जत्रुभ्यो आतृदः संधि संधाता मघवा पुरुवसुः विह्रुतं पुनः इष्कर्ता (भवति) ॥१२॥ हे इन्द्र ! त्वत् निष्ट्याः इव मा भूम । अरणाः इव (मा भूम) । प्र-जहितानि वनानि न (मा भूम) । हे अद्रिवः ! दुरोपसः अमन्महि ॥१३॥ हे वृत्रहन् ! अनाशवः अनुग्रास च इत् अमन्महि इत् । हे शूर ! सकृत् महता राधसा ते सु स्तोमं अनुमुदामहि ॥१४॥ (अयं इन्द्रः) मम स्तोमं यदि श्रवत्, (तं) इन्द्रं अस्माकं पवित्रं तिरः ससृवांसः आशवः तुग्र्यावृधः इन्दवः मदन्तु । ॥१५॥ यावातुः सख्युः सधस्तुतिं अद्य तु आ आ गहि । मघोनां उपस्तुतिः त्वा प्र अवतु । अथ ते सुष्टुतिं वश्मि ॥१६॥ अद्रिभिः सोमं सोत । हि एनं ईं अप्सु आ धावत । गव्या वस्त्रा इव वासयन्त इत् नरः वक्षणाभ्यः निः धुक्षन् ॥१७॥ अध ज्मः, अध वा दिवः, बृहतः रोचनात् अधि, अया तन्वा मम गिरा वर्धस्व । हे सुक्रतो ! जाता आ पृण ॥१८॥ इन्द्राय मदिन्तमं वरेण्यं सोमं सु सोत । शक्रः विश्वया धिया हिन्वानं वाजयुं एनं न पीपयत् ॥१९॥ त्वा सचनेषु सोमस्य गल्दया गिरा अहं सदा याचन्, मा चुक्रुधम् । भूर्णिं मृगं न, कः ईशानं न याचिषत् ॥२०॥ मदेन इषितं, मदं उग्रं, उग्रेण शवसा, विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं (पुत्रं) नः मदे ददाति स्म हि॥२१॥ शेवारे पुरु वार्या देवः मर्ताय दाशुषे रासते । सः विश्वगूर्तः अरिस्तुतः सुन्वते च स्तुवते च (रासते) ॥२२॥ हे इन्द्र ! आ याहि । हे देव ! चित्रेण राधसा मत्स्व । सपीतिभिः सोमेभिः उरु स्फिरं उदरं सरः न आ प्रासि ॥२३॥ हे इन्द्र ! त्वा शतं सहस्रं हिरण्यये रथे युक्ताः, ब्रह्मयुजः, केशिनः हरयः सोमपीतये आ आ वहन्तु ॥२४॥ हिरण्यये रथे मयूरशेप्या शितिपृष्ठा हरी मध्वः अन्धसः विचक्षणस्य पीतये त्वा आ वहताम् ॥२५॥ हे गिर्वणः ! पूर्वपा इव, अस्य सुतस्य पिब तु । परिष्कृतस्य रसिनः इयं आसुतिः चारुः मदाय पत्यते ॥२६॥ यः एकः दंसना महान् उग्रः व्रतैः अभि अस्ति । स शिप्री आ गमत् । स न योषत् । इवं आ गमत्, न परि वर्जति ॥२७॥ हे इन्द्र ! त्वं शुष्णस्य चरिष्णुं पुरं वधैः सं पिणक् । अध त्वं भाः अनु चरः । यत् द्विता हव्यः भुवः ॥२८॥ सूर्ये उदिते मम स्तोमासः त्वा आ अवृत्सत । दिवः मध्यं दिने मम, हे वसो ! प्रपित्वे अपिशर्वरे मम (स्तोमासः आ अवृत्सत)॥२९॥

[आसङ्गः प्लायोगिः]- हे मेध्यातिथे ! स्तुहि स्तुहि इत् । एते च मघोनां ते मघस्य मंहिष्ठासः । निंदिताश्वः प्रपथी परमज्याः ॥३०॥ यत् अन्वतः अश्वान् अहं यत् श्रद्धया रथे आरुहम् । उत वामस्य वसुनः चिकेतति । यः यादः पशुः अस्ति ॥३१॥ य ऋज्रा हिरण्यया त्वचा सह मह्यं ममहे । एष आसंगस्य स्वनद्रथः विश्वानि सौभगा अभि अस्तु ॥३२॥ हे अग्ने ! अध प्लायोगिः आसंगः दशभिः सहस्रैः अन्यान् अति दासत् । अध उक्षणः दर्शतः दश, नळाः इव सरसः, मह्यं निः अतिष्ठन् ॥३३॥

[शश्वती आङ्गिरसी ऋषिका]- अस्य पुरस्तात् अनस्थः स्थूर उरुः अव रंबमाणः । अभिचक्ष्य शश्वती नारी आह, अर्य ! सुभद्रं भोजनं बिभर्षि ॥३४॥

अर्थ— [घोर ऋषिका पुत्र, जो कण्वका दत्तक पुत्र हुआ था, वह प्रगाथ ऋषि कहता है]- हे मित्रो ! दूसरे किसी (देवताकी) प्रशंसा न करो । और व्यर्थ दुःखी मत होओ । बलवान् इन्द्रकी ही स्तुति करो । सोमयागमें वारंवार (इन्द्रके) काव्य ही गाओ ॥१॥ नीचे उतरकर लडनेवाला, महाबली, जैसी तरुण गाय (उपकार करनेवाली) या तरुण बैल बलिष्ठ होते हैं वैसे (उपकार कर्ता और) बलिष्ठ शत्रु-सैनिकोंको जीतनेवाला, शत्रुका द्वेष करनेवाला, प्रेमसे सेवा करने योग्य, (शत्रुओंका निग्रह और मित्रोंपर अनुग्रह इन) दोनोंको (यथायोग्य रीतिसे) करनेवाला, बडा उदार, दोनों प्रकारके लोगोंसे (यथायोग्य) आचरण करनेवाला (जो इन्द्र है, उसीका काव्य गायन करो) ॥२॥

[मेधातिथि और मेध्यातिथि ये कण्व गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषि काव्य गाते हैं]- ये सब लोग अपनी सुरक्षाके लिये तुम्हारी नाना प्रकारसे स्तुति करते हैं । हे इन्द्र ! हमारा यह स्तोत्र ही तुम्हारा सदा सब दिनोंमें (यशका) वर्णन करनेवाला हो ॥३॥ हे धनवान् ! (तुम्हारे उपासक) ज्ञानी लोग अनोंकी विपत्तियाँ दूर करते हैं । (अतः हमारे पास तुम) आओ । और बहुत प्रकारका समीपस्थ अन्न हमारी सुरक्षाके लिये (हमारे पास) भर दो ॥४॥ हे पर्वतपर रहने- वाले वीर ! तुम्हें बडे भारी मूल्यमें भी मैं नहीं देऊंगा । हे वज्रधारी वीर! मैं सहस्र और अयुत धनसे भी (मैं तुम्हें

नहीं दूंगा।) हे सैंकडों धनोंसे युक्त वीर ! (तुम्हें मैं) नहीं (दूंगा) ॥५॥ हे इन्द्र ! मेरे पितासे भी (तुम मेरे लिये) अधिक हो। और स्वयं भोग न भोगनेवाले भाईसे (भी तू बडा है)। हे सबको बसानेवाले वीर ! मेरी माता और (तुम) समान हो, अतः मुझे (सुखका) निवास करनेके लिये और (जीवनकी) सिद्धिके लिये आश्रय दो ॥६॥ (तुम) कहां गये थे ? और (तुम) कहां थे ? बहुत स्थानोंमें तुम्हारा मन जाता होगा। हे युद्धमें कुशल वीर ! (तुम) युद्ध करनेमें (प्रवीण) हो। हे शत्रुके कीले तोडनेवाले वीर ! आओ। यहां गायत्र (छन्दमें गान करनेवाले गायक) काव्य गान कर रहे हैं ॥७॥ इस (इन्द्रके लिये) गायत्र (छन्दमें काव्यगान) गाओ। यह शत्रुकी नगरियोंका भञ्जक वीर (काव्य) गायकोंका ही (रक्षक है)। जिन (गानोंके साथ यह इन्द्र) कण्व-पुत्रोंके यज्ञके प्रति गये थे, (और जिन गानोंके साथ) वज्रधारी इन्द्रने (शत्रुकी) नगरियोंका नाश किया था (उनका ही गान करो) ॥८॥ जो तेरे दस, सौ और सहस्रों (घोडे) हैं, जो बलवान् घोडे शीघ्र गतिवाले हैं, उनके साथ (तुम) शीघ्रही हमारे पास आओ ॥९॥ आज उत्तम दूध देनेवाली, सहज दुही जानेवाली, बहुत धारासे दूध देनेवाली गायके समान अलंकृत और गायत्रगानके प्रेमी और अन्य अन्न (देनेवाले) इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ॥१०॥ सूर (नामक गन्धर्व)ने एतश (नामक राजा) को जब कष्ट दिया था, तब वक्रगतिसे चलनेवाले अति शीघ्रगामी (इन्द्रके) दोनों अश्वोंने अर्जुनीके पुत्र कुत्सको ढोया; तब अपराजित गन्धर्वको भी (उसने) परास्त किया ॥११॥ जो (इन्द्र) संधान द्रव्यके बिना ही जोडोंको जोड देता है संधिको मिलाता है, वही धनवान् विविध ऐश्वर्यवाला (इन्द्र) विच्छिन्न अवयवको पुनः जोड देता है ॥१२॥ हे इन्द्र !, तुम्हारी (सहायतासे) हम नीच न बनें। तथा अधोगतिको प्राप्त न हों। वृक्षहीन वनोंकी तरह (हम संतानहीन) न हों। हे पर्वत दुर्गपर रहनेवाले वीर ! न जलनेवाले घरोंमें रहते हुए हम (तुम्हारे यशका) मनन करते रहेंगे ॥१३॥ हे वृत्रनाशक वीर ! हम शीघ्र कार्य न करनेवाले और उग्र वीर न होते हुए भी तुम्हारा ही यश गायेंगे। हे शूरवीर ! एक बार बडा धन प्राप्त होनेपर भी तुम्हारा ही सुन्दर स्तोत्र गायेंगे ॥१४॥ (यह) यदि मेरा स्तोत्र सुने (तो उस) इन्द्रको हमारे पवित्र छाननीसे छाने, शीघ्रगामी और जलोंसे बढाये सोमरस आनन्दित करेंगे ॥१५॥ उपासक मित्रोंके साथ (बैठकर) की हुई स्तुतिको (सुननेके लिये) आज यहां आओ। धनवानोंकी की हुई स्तुति भी तेरे पास ही पहुँचती है। और मैं भी तेरी अधिक स्तुति करना चाहता हूँ ॥१६॥ पत्थरोंसे सोमको (कूटकर) रस निकालो और इसे (अनेक) जलोंमें धोओ। गौओंके चर्मों (गौओंके दूध) से उसे आच्छादित करो (उसमें दूध मिला दो।) पश्चात् नदियोंसे दुहे जल (उसमें मिलाओ) ॥१७॥ अब (इन्द्र) पृथ्वीपरसे, द्युलोकसे अथवा बडे प्रकाशित अन्तरिक्षसे यहाँ आकर इसी विस्तारित हुए मेरे स्तोत्रसे (अपने यशकी) वृद्धि (को सुने)। हे उत्तम कर्म करनेवाले ! उत्पन्न हुए मानवों को पूर्णतया तृप्त करो ॥१८॥ इन्द्रके लिये अत्यंत आनन्द बढानेवाले सोमका रस निकालो। यह सामर्थ्यवाला इन्द्र सब बुद्धिपूर्वक आरंभ किये कर्मोंके कारण आनन्दित होनेवाले बुद्धेच्छुक दल (वीर) को सामर्थ्यसे युक्त करे ॥१९॥ सोमके रस छाननेके समय छाननीके शब्दोंके साथ मैं जब तुम्हारी याचना करूंगा, तब तुम्हें मैं क्रोधित न करूंगा। तुम (जैसा) भरणपोषण करता है (वैसाही) सिंह जैसा (भयंकर भी हैं)। तथापि कौन ऐसा है कि जो प्रभुसे भी याचना न करे ? ॥२०॥ आनन्दित हुए (भक्तने) इच्छा किये हुए, आनन्दयुक्त उग्रवीर, वीरताके बलसे युक्त, सब शत्रुओंका नाश करनेवाले (शत्रुके) गर्वको दूर करनेवाले और हमारे आनन्दका वर्धन करनेवाले (पुत्रको) निःसन्देह (इन्द्रही) देता है ॥२१॥ यज्ञमें अनेक स्वीकार करने योग्य धनोंको (इन्द्र) उदार दाताके लिये देता है। वही सब कार्योंको उत्साहसे करनेवाले वीरोंसे प्रशंसित (इन्द्र) सोम रस निकालने और स्तुति करनेवालेके लिये धन देता है ॥२२॥ हे इन्द्र ! इधर आओ। हे देव ! तुम विलक्षण (सामर्थ्ययुक्त इस सोमरसरूप) धनसे आनन्दित होओ। आप बैठकर किये इस सोमपानसे (तुम अपना) बडा विस्तीर्ण पेट, तालाबके समान, भर दो ॥२३॥ हे इन्द्र ! सैंकडों और सहस्रों, सुवर्ण रथमें जोते, मनोंके साथ चलाये जानेवाले, केसरवाले हरिद्वर्ण घोडे, तुम्हें सोमपानके लिये ले आवें ॥२४॥ सुवर्ण रथमें मयूरके पंखोंके से रंगवाले श्वेत पीठवाले दो घोडे प्रशंसनीय मधुर अन्न (सोमरस) के पानके लिये तुम्हें ले आवें ॥२५॥ हे प्रशंसनीय इन्द्र ! प्रथम (पीनेवाले) के समान, इस सोमरसका पान करो। यह सुसंस्कारसंपन्न रसीले सोमका पान

सुंदर है और यह आनन्द बढानेके लिये है ॥२६॥ जो एक अकेला ही अपने पराक्रमसे बडा वीर है, (वह इन्द्र) अपने वीर्योंसे (शत्रुको) परास्त करता है। वह शिरस्त्राण धारण करनेवाला (यहां) आवे। वह हमसे पृथक् न हो। वह हमारे बुलानेपर आ जावे, हमें कभी न छोड देवे ॥२७॥ हे इन्द्र ! तुमने शुष्ण (असुरके इच्छाके अनुसार संचलन करने वाले) नगर (के कीले) का अनेक आयुधों द्वारा चूर्ण कर डाला और प्रकाशके मार्गका अनुसरण किया। जिससे तुम दोनोंको वन्दनीय हुए हो ॥२८॥ सूर्यके उदय होनेके समयमें मेरे स्तोत्र तेरा यश गाते हैं, दिनके मध्यमें (मेरे स्तोत्र तेरी महिमा गाते हैं), हे सबके बसानेहारे वीर ! सायंकालके समय, तथा रात्रिके समय मेरे (स्तोत्र तेरा ही वर्णन करते हैं) ॥२९॥

[आसङ्ग प्लायोगी राजा कहता है]- हे ऋषे मेध्यातिथे ! इसी तरह (इन्द्रकी) स्तुति करो, स्तुति करो। ये (हम लोग) निःसन्देह धनवानोंमें तुम्हें सबसे अधिक धन देनेवाले हैं। (जिसके उत्तमसे उत्तम घोडे होनेके कारण दूसरोंके) घोडे निंदनीय हो गये हैं, उत्तम मार्गसे जो जाता है और जिसकी धनुष्यकी डोरी उत्तम है (ये वीर प्रशंसनीय हैं) ॥३०॥ धनसे लदे घोडोंको मैंने जब (रथमें जोतकर) उसपर में श्रद्धासे चढ चुका, तब उस सुन्दर धनको (मूल्यको) वही जानता है, कि जो मानवोंमें श्रेष्ठ पशुवाला है (अर्थात् वह बहुमूल्य दान है) ॥३१॥ जो शीघ्रगामी सुवर्णके आच्छादनसे युक्त रथ मुझे (मेध्यातिथिको) दिया, यह आसङ्ग (राजा) का शब्द करनेवाला रथ सब सौभाग्यों को जीतनेवाला होवे ॥३२॥ हे अग्ने ! प्लायोगीके पुत्र आसङ्ग दश सहस्रकी संख्यामें दूसरोंसे अधिक दान कर चुके हैं। अब तेजस्वी दस बैल, तालावसे कमल-दण्डोंके ऊपर आनेके समान, मेरे साथ आकर चलने लगे ॥३३॥

[अङ्गिरसकी पुत्री शश्वती कहती है]- इस (आसंग) के आगे अस्थिरहित स्थूल बडा अवयव लंबायमान दीखता है। यह देखकर उसकी नारी शश्वतीने कहा कि, हे स्वामिन् ! बहुत अच्छा भोगसाधन अब तुम धारण करते हो ॥३४॥

इन्द्रके गुणोंका वर्णन
' आदर्श वीर '

इस सूक्तमें इन्द्रका वर्णन किया गया है। इस वर्णनमें इन्द्रके ये गुण प्रकट हो रहे हैं—

१ वृषा- बलवान्, वीर्यवान्।

२ इन्द्रः- (इन्+द्रः)- शत्रुका नाश करनेवाला, (मं. १)

३ अव-क्रक्षी- ऊपरसे नीचे उतर कर शत्रुपर वेगसे हमला करनेवाला, पहाडके कीलेमें रहता हुआ एकदम नीचे उतरता है और शत्रुपर आक्रमण करता है।

४ वृषभः- बैलके समान हृष्टपुष्ट,

५अ-जुरः- क्षीण न होनेवाला,

६ चर्षणी-सहः- शत्रुके सैनिकोंको जीतनेवाला, शत्रुकी सेनाको परास्त करनेवाला,

७ विद्वेषी- शत्रुका द्वेष तथा तिरस्कार करनेवाला,

८ संवननः- प्रेमसे वश करनेवाला, शक्तिसे सबको वश करनेवाला, विशेष रीतिसे सेवा करने योग्य, सन्मानके योग्य,

९ उभयंकरः- शत्रुका निग्रह और स्वजनोंकी सुरक्षा इन दोनोंको यथायोग्य रीतिसे करनेवाला,

१० मंहिष्ठः- बडा उदार, विशाल-हृदय, प्रशंसायोग्य

११ उभयावी- दोनों प्रकारके लोगोंका सहायक, बलवान् और निर्बल आदि दोनों प्रकारके लोगोंका हित करनेवाला, (मं. २)

१२ मघवा (मघ- वान्)- धनवान्,

१३ विपश्चितः अर्यः जनानां विपः तूर्यन्ते- ज्ञानी लोग जनोंकी विपत्तियाँ दूर करते हैं। इन्द्र भी यही करता है। अतः लोगोंकी आपत्तियोंको दूर करना वीरका कर्तव्य है।

१४ पुरुरूपं नेदिष्ठं वाजं ऊतये आभर- अनेक प्रकारका समीपके स्थानसे मिलनेवाला अन्न (जनोंकी) सुरक्षा के लिये भरपूर ले आ। अन्न अनेक प्रकारका प्राप्त करना चाहिये, तथा जो पासके प्रदेशसे मिल सकता है, वही लाना चाहिये, क्योंकि वह सस्ता मिल सकता है। राजाका यह कर्तव्य है कि वह प्रजाको भरपूर अन्न प्राप्त करा देवे। इन्द्र ऐसाही करता है। (मं. ४)

१५ अद्रिवः (अद्रि+वः)- ' अद्रि ' पद पर्वतका तथा पर्वतपरके कीलेका वाचक है। इन्द्र पर्वतपरके कीलेमें निवास करता है और वहांसे शत्रुके साथ लडता है। इसलिये उसको

' अव क्रक्षी ' ऊपरसे नीचे उतर कर लडनेवाला, पर्वतसे नीच उतर कर लडनेवाला (म २ में) कहा है।

१६ वज्रिवः- वज्रधारी,

१७ शतामघ- सैकडों प्रकारके धन पास रखनेवाला, (म ५)

१८ वसुत्वनाय राधसे छदयन्- लोगोंका निवास उत्तम सुखसे युक्त करनेके लिये आवश्य सिद्धियां देनेवाला, लोगोंको सुखसे बसानेवाला, (म. ६)

१९ युध्मः- युद्ध करनेमें अत्यंत कुशल,

२० खजकृत्- हलचल, कान्ति, युद्ध करनेवाला,

२१ पुरंदर.- (पुर+दर)- शत्रुके नगरोंका, शत्रुके कालोंका विनाश करनेवाला। यहां भूमिदुर्गका भाव ' पुर ' से लेना चाहिये। क्योंकि पुरीके चारों ओर दुर्ग होता था, इतनाही नहीं परंतु पुरीके चारों ओर दुर्गकी सात दीवारें होती थीं। दुर्गकी सात दिवारोंका भेदन करनेपर शत्रु अन्दर आ सकता था। ऐसी शत्रुकी पुरियोंका विनाश करनेवाला इन्द्र था। इससे इन्द्रके शत्रु कोई अनाडी नहीं थे ऐसा साफ प्रतीत होता है। जो दास अदि असुर ऐसी नगरियोंमें बसते थे कि जिन नगरियोंकी जनसंख्या कोलोंमें सुरक्षित रहती थी और इन्द्रको ऐसे कोलोंको तोडना आवश्यक था। शत्रुको परास्त करनेकी ऐसी बडी तैयारी करनी चाहिये, यही बोध इससे मिलता है। (म ७)

२२ वज्री पुरः भिनत्- शस्त्रधारी वीर शत्रुके अनेक पुरोंको, भूमिदुर्गमें रहे नगरोंको छिन्नभिन्न करता है। सब सुखसाधनोंसे जो नगरियां परिपूर्ण होती हैं (पूर्यते इति पुरः) उनको ' पुरि ' कहते हैं। ऐसे शत्रुके नगरोंको और उनके बाह्यवर्ती संरक्षक दुर्गोंको तोडना चाहिये। (म ८)

२३ ते धृषण. रघुद्रुवः अश्वास.- इन्द्रके घोडे अत्यंत वेगवान् और बलवान् थे और ये दसों, सैंकडों और सहस्रों थे। (दशग्विनः, शतिनः, सहस्रिणः सन्तिः)। (म ९)

२४ धेनुः (इन्द्र)- जैसा गौ दूधरूपी अन्न देती है वैसाही इन्द्र अनेक प्रकारके (रूप) अन्न प्रजाको देकर पोषण करता है। (म १०)

२५ शतक्रतुः- सैकडों कर्म कुशलताके साथ करनेवाला,

२६ पद्भ्‍यां यानस्य पर्णिना अस्तृतं स्वरत्- तेढी गतिसे आगे बढकर वायुवेगसे अपराजित वा अजेय शत्रुको भी उखाड देता है। (म ११)

२७ संधि संधाता- जोडोंको जोड देता है। मल्लयुद्धमें पावों और हाथोंके संधि उखड जाते हैं, उनको ठीक यथायोग्य रीतिसे यथास्थान जोडनेकी विद्या जानता है। टूटी हड्डीको जोडनेकी विद्याको जाननेवाला। वीरोंको इसका ज्ञान अवश्य चाहिये।

२८ विह्रुतं पुनः इष्कर्ता- टूटे अवयवको, टूटी हड्डीको फिर से यथायोग्य जोडनेवाला,

२९ अभिश्लिपः ऋते- जोडनेके साधन न होते हुए भी पूर्वोक्त दोनों कार्य करनेवाला। (म. १२)

३० पुरुवसुः-बहुत धन पास रखनेवाला। धनसेही राज्य चलाया जाता है, इसलिये इन्द्र अपने पास बहुतही धन रखता है। (म. १२)

३१ वृत्र हा- शत्रुका नाश करनेवाला,

३२ सुक्रतुः- उत्तम कर्म करनेवाला, कुशलतासे कर्म करनेवाला। (म १८)

३३ शक्रः- समर्थ, सामर्थ्ययुक्त, शक्तिमान् (म १९)

३४ भूर्णि.- भरण पोषण करनेवाला।

३५ ईशानः- प्रभु, स्वामी, अधिपति। (म २०)

३६ शेवारे दाशुषे पुरु वार्या रासते-स्पर्धामें दाताके लिये पर्याप्त धन देता है, उदार पुरुषोंकी सहायता करता है। (म. २२)

३७ हिरण्यये रथे युक्ताः केशिनः वहन्ति- सुवर्णके रथमें संयुक्त हुए घोडे (इन्द्रको जहां जाना हो वहां) ले जाते हैं। (म २४)

३८ मयूरशेप्या शितिपृष्ठा हरी हिरण्यये रथे वहतां- मयूरके पखोंके तुर्रे लगाये श्वेत पीठवाले दो घोडे सुवर्ण रथमें (बैठनेवाले इन्द्रको) ढोते हैं। (म २५)

३९ गिर्वण — प्रशसनीय,

४० दंसना महान् उग्रः— बडे कर्म करनेवाला, बडा शूर,

४१ व्रते. अभि अस्ति-अपने नियमोंके अनुसार शत्रुपर हमला करके उसको परास्त करता है।

४२ शिप्री- शिरपर शिरस्त्राण-लोहेका कवच-धारण करता है। (म २७)

४३ शुष्णस्य चरिष्णुं पुरं वधैः सं पिणक्- शोषक शत्रुके घूमनेवाले कोलेको मारक-शस्त्रोंसे चूर्ण करता है। यहां

(चरिष्णु पूः) हिलनेवाली नगरीका उल्लेख है। हिलनेवाला कीला, चलायमान दुर्ग। शत्रुके इन कीलोंका इन्द्र नाश करता है। अन्यत्र (आयसीः पूः) लोहेके कीलोंका वर्णन है। लोहेके बनाये, हिलने और एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जानेवाले ये शत्रुके कीले हैं। ये आजकलके टैंक (Tanks) जैसे प्रतीत होते हैं। इनका नाश अपने शस्त्रोंसे इन्द्र करता है।

४४ द्विता– दोनों प्रकारके लोगोंका हितकर्ता। धनी, निर्धन आदि दो प्रकारके लोग जनतामें होते हैं, उनका हित यह करता है। (मंत्र २ में **उभयंकर** और **उभयावी** ये पद इसी अर्थके साथ विचार करने योग्य हैं।)

४५ निंदिताश्वः– जिसके पास अत्यंत उत्तम घोडे होनेके कारण दूसरोंके घोडोंकी आपही आप निंदा जिसके कारण होती है। उत्तम घोडोंसे युक्त। इसका अर्थ हीन घोडोंवाला ऐसा नहीं है, यह बात स्मरण रहे।

४६ प्रपथी– उत्तम मार्गसे जानेवाला,

४७ परमज्या– उत्तम धनुष्यकी डोरी जिसके धनुष्यपर होती है। (मं. ३०)

ये इतने इन्द्रका वर्णन करनेवाले पद हैं। ये वीरोंका वर्णन करते हैं। राष्ट्रमें वीर कैसे हों इसका ज्ञान इन पदोंके मननसे हो सकता है। हरएक पाठकको इन गुणोंका मनन करके इनमेंसे जो गुण अपनेमें आसकते हैं, उनको अपनाना चाहिये। जयिष्णु राष्ट्रके अन्दरके तरुणोंको तो ये गुण अपनाने चाहिये। पूर्वोक्त मंत्रोंका अर्थ पढते समय इन पदोंका यह आशय पाठक ध्यानमें धारण करेंगे, तो मंत्रोंसे अच्छा बोध उनके मनमें उतर सकता है।

मेधातिथि और मेध्यातिथि इन दोनों ऋषियोंने यह आदर्श वीर पुरुष जनताके सामने रखा है। यही वीर युवाका वैदिक आदर्श है।

पुत्र कैसा हो ?

पुत्र कैसा उत्पन्न हो, इस विषयमें वेदमंत्रोंमें वारंवार अनेक उत्तम निर्देश आते हैं। उनके साथ इस सूक्तके निम्नलिखित वीर पुत्रके निर्देश ध्यानमें रखने योग्य हैं–

पहिले यह स्मरण रखना चाहिये कि जो इन्द्रका आदर्श पूर्व स्थानमें 'आदर्श वीर पुरुष' के रूपसे रखा है, वैसाही पुत्र निर्माण होना चाहिये। इसी तरह अन्यान्य देवताओंके रूपोंमें जो आदर्श बताया है, वैसा पुत्र उत्पन्न करना वैदिक धर्मियोंके सामने आदर्श रूपसे सदा रहताही है। तथापि इस सूक्तमें निम्नलिखित गुण पुत्रके अन्दर हों ऐसा विशेष रूपसे कहा है—

१ मदेन इषितः– आनन्दसे इच्छा करने योग्य, जिसके गुणोंसे आनन्द होगा, ऐसे गुणोंवाला,

२ मदः– आनंद देनेवाला,

३ उग्रः– उग्र शूर वीर, प्रभावी, पराक्रमी,

४ उग्रेण शवसा युक्तः– प्रभावी बलसे युक्त, विशेष शक्तिमान्,

५ विश्वेषां तरुतारं– सब शत्रुओंका नाश करनेवाला, शत्रुओंके पार ले जानेवाला, शत्रुओंसे पार करनेवाला,

६ मदच्युतं– शत्रुओंके गर्वका नाश करनेवाला, शत्रुको परास्त करनेवाला। (मं. २१)

ऐसा पुत्र इन्द्रकी उपासनासे मिलता है, ऐसा २१ वें मंत्रमें कहा है। इन्द्रके पूर्वोक्त गुणोंका मनन जो स्त्री और पुरुष करेंगे उनको ऐसा पुत्र होगा इसमें कोई आश्चर्यही नहीं है। वैदिकधर्मी स्त्रीपुरुष अपना पुत्र इन गुणोंसे युक्त हो, ऐसा मनका निर्धार करें, मनमें यह बात सदा रखें।

घूमनेवाले कीले

इस सूक्तके २८ वें मंत्रमें '**चरिष्णु पूः**' (घूमनेवाला कीला) वर्णनमें आया है। ये कीले लोहेके होते थे, ऐसा अन्यत्र वर्णन है।

हत्वी दस्यून् पुर आयसीर्नि तारीत्। (ऋ. २।२०।८)

इन्द्रने शत्रुओंका पराभव किया और उन लोहेके कीलोंको तोड दिया। '**शतं पूर्भिरायसीभिः नि पाहि।**' (ऋ. ७।३।७) सैंकडों लोहेके कीलोंसे मेरा संरक्षण करो ऐसे मंत्रोंमें सैंकडों लोहेके कीलोंका वर्णन है। यदि ये लोहेके कीले घूमनेवाले होंगे, तो निःसंदेह रथ जैसेही होंगे। आवश्यकतानुसार छोटे अथवा बडे भी हो सकते हैं। ये युद्धोंमें तोडे जाते हैं, और सैंकडोंकी संख्यामें रहते हैं और सैंकडों तोडे भी जाते हैं।

आजकलके टैंक (Tanks) जैसे ये प्रतीत हो रहे हैं। 'आयसीः पूः' का अर्थ लोहेका कीला, पत्थरका कीला, ऐसा दो प्रकारका है, पर जो घूमनेवाला होगा वह तो लोहेका होनाही युक्तियुक्त है।

दिनमें चार बार आराधना

इस सूक्तके २९ वें मंत्रमें सूर्योदय, माध्याह्न, सायंकाल और रात्रिके समय ऐसी चार बार प्रभुकी आराधना करनेकी बात कही है। यहां मंत्र-पाठसे इन्द्रकी स्तुति करनाही लिखा है।

तीन पुत्र

इस सूक्तके ३० वें मंत्रमें (१) **निंदिताश्व**, (२) **प्रपथी** और (३) **परमज्यः** ऐसे तीन नाम आये हैं। कई अर्थ करनेवालोंके मतसे ये तीन राजपुत्र, आसंग राजाकेही तीन पुत्र हैं। '**एते मघोनो मघस्य मंहिष्ठासः।**' (मं० ३०) इस मंत्रमें 'ये दाताओंमें धनके बडे दाता हैं' ऐसा अनेकवचनी उल्लेख है, ये तीन राजपुत्र येही हैं, ऐसा कईयोंका मत है। ये तीन हैं इस लिये 'मंहिष्ठास.' यह पद बहुवचनमें तीनोंका बोध करनेके लिये यहां आया है, ऐसा उनका कथन है। हमारे मतके अनुसार जो अर्थ योग्य है वह ऊपर दिया है। पाठक अधिक विचार करें।

मं ३१ में 'याद्वः' पद है, 'यादवकुलमें उत्पन्न' ऐसा इसका अर्थ कई मानते हैं। यदु-कुलमें उत्पन्न ऐसा इसका अर्थ है। मानवोंमें प्रसिद्ध ऐसा भी इसका अर्थ होना संभव है। यादवोंकी पशु-पालन-कुशलता पुराणोंमें सुप्रसिद्ध है। संभव है, उस कथाका मूल यहांसे शुरू हुआ होगा।।

सोमपान

इस सूक्तमें सोमपानके लिये अनेकवार इन्द्र देवको बुलाया है। इस प्रसगमें सोमके संबधमें निम्नलिखित बातें दृष्टीगोचर होती हैं—

१ **पवित्रं तिरः सस्रुवांसः आशवः**— पवित्र छाननी मे तिरछी चूनेवाली शीघ्रगामी धाराएं हैं। छाननीसे रस किस तरह नीचे स्रवता है, इसका पता यहां लगता है। (मं. १५)

२ **अद्रिभिः सोमं सोत**— पर्वतोंसे (पर्वतोंपर से लाये पत्थरोंसे) सोमको कूटकर उससे रस निकालो। यहां 'अद्रि' यह पर्वतवाचक पद 'पत्थर' के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसी तरह वेदमें 'गो' पद दूधके लिये और 'नदी' पद जलके लिये प्रयुक्त होता है। उपलक्षित प्रक्रियाके ये उदाहरण हैं।

३ **अप्सु धूतं आ धावत**— अनेक जलोंसे इसको, अनेक बार धोओ। अनेक बार पानी डालकर सोमको धो डालो।

४ **वक्षणाभ्यः नरः निः धुक्षन्**— नदियोंसे मनुष्य जल (दुहते हैं) लाते हैं और इस जलका उपयोग सोमको बार-बार धोनेके कार्यमें किया जाता है।

५ **गव्या वस्त्रा वासयन्त**— गौके वस्त्र सोमपर डाप देते हैं, पहनाते हैं अर्थात् गोदुग्धके साथ सोमरस मिला देते हैं। (मं. १७)

६ **स-पीतिभिः सोमेभिः**— सोमरस अनेक मनुष्य साथ साथ बैठकर पीते हैं। अनेकोंका सहपान होता है (मं. २३)

७ **मध्वः अन्धसः पीतिः**- मधुर अन्नरूप रसका पान। यह रस पीनेके समय मधुर होता है और सत्तु आदि मिलानेसे अन्नमय भी होता है। शहद और दूधके कारण इसमें मधुरता आती है। (मं. २५)

८ **पूर्वपाः**— जिस समय अधिक लोग बैठकर सोम पीने लगते हैं, उस समय उनमें जो विशेष सम्मानके योग्य होगा उसको रसपानका मान प्रथम दिया जाता है, वह प्रथम पीता है। उसका नाम 'पूर्वपाः' वेदमें है। इसके पीनेके बाद अन्य उपस्थित लोग पीते हैं।

९ **परिष्कृतः**-- यह रस अनेक संस्कार करके अधिक उत्तम बनाया जाता है। अनेक बार धोना, अनेक बार छानना, दूध शहद आदि मिलाना ये अनेक संस्कार इसपर किये जाते हैं।

१० **आसुतिः**- रसकी भाप करके उसका फिर जल बनानेका नाम आसुति है। 'आसव' अर्थमें यह शब्द है। शुद्ध करने और अशुद्धि दूर करनेका यह एक साधन है। इसी कारण वृष्टिजल अन्य जलसे अधिक शुद्ध रहता है। सोमरसको यहां आसुति कहा है। इससे सोमरसकी भी भाप करके उसका फिर रस बनाते थे या नहीं, यह एक खोजका विषय है, ऐसा प्रतीत होता है। आसुति या आसव पदसे मद्यका भाव लेनेकी जरूरत नहीं है। क्योंकि साधारण जलकी भाप की जाती है और शुद्धयंत्रसे उसका पुनः जल बनाया जाता है। आसवमें मद्यभाव अति अल्प रहता है, क्योंकि इससे नशा नहीं आती। और शुद्धयंत्रसे साधारण जल भी शुद्ध किया जाता है। इसी तरह सोमरस भी किसीने शुद्ध किया तो उसमें मद्यकी कल्पना करना अयोग्य ही है।

सोमको अनेक जलोंसे धोनेकी बात मंत्र १७ में है। भंग

कितनी भी धनकी लालच मिली, तो भी मैं इन्द्रकी भक्ति नहीं छोडूंगा, यह आशय हमारे मतसे यहां स्पष्ट है । कितना भी धन मिले, परंतु मैं इन्द्रकीहि भक्ति करूंगा । यह भक्ति की दृढता यहां बतायी है ।

परंतु कई लोग यहां ' इन्द्रको बेचने ' की कल्पना करते हैं । इन्द्रकी मूर्तियां थीं, ऐसा इनका मत है और वे मूर्तियां कुछ द्रव्य लेकर बेची जाती थीं, ऐसा इस मंत्रसे वे मानते हैं ।

मंत्रोंके शब्दोंसे यह भाव टपक सकता है, इसमें संदेह नहीं है । ' **शुल्काय न परा देयाम्** ' मूल्य मिलनेपर भी मैं नहीं बेचूंगा । ' शुल्क ' का अर्थ वस्तुमूल्य है । यदि यह बात मानी जायगी, तो देवताओंकी मूर्तियाँ थीं और उनकी पूजा और उनके जलूस होते थे, ऐसा मानना पडेगा । इस मतकी पुष्टिके लिये इन्द्रका रथमें बैठना, वस्त्र पहनना, यज्ञस्थानपर जाना, आदि मंत्रोंका वर्णन उत्सव मूर्तिके जलूस जैसा मानना पडेगा । अग्निके रथमें बैठकर अन्य देव आते हैं, यह भी वर्णन जलूसका होगा । क्योंकि देवताओंकी छोटी छोटी मूर्तियां होंगी, तोही रथमें सब देवोंका बैठना संभव है ।

हमारे मतसे यह वर्णन आध्यात्मिक है । शरीररूपी रथमें सब देवताएं बैठीही हैं । पाठक योग्य और आयोग्यका विचार करें, इसलिये सब मत यहां पाठकोंके सम्मुख रखे हैं ।

इस सूक्तके ऋषि

इस सूक्तके ऋषि निम्न लिखित हैं–

मंत्र १-२ घोर ऋषिका पुत्र प्रगाथ ऋषि, जो कण्वका दत्तक पुत्र बन गया था ।

मं० ३-२९ कण्व गोत्रमें उत्पन्न मेधातिथि और मेध्यातिथि

मं० ३०-३३ प्लायोगीका पुत्र आसंग राजपुत्र

मं० ३४ आंगिरा ऋषिकी कन्या आसंगकी भार्या शश्वती स्त्री ऋषिका ।

' मेध्यातिथि ' ऋषिका नाम मं० ३० में आया है ।

' प्लायोगि आसंग ' नाम मं० ३२ में आया है । केवल ' आसंग ' का नाम मं. ३२ में भी है ।

' शाश्वती ' का नाम मंत्र ३४ में है ।

' काण्व ' का नाम मंत्र ८ में है ।

हीन मानव

मंत्र १३ में ' **निष्टयाः** ' और ' **अरणाः** ' ये पद हैं । ये अन्त्यज हीन लोगोंके वाचक पद हैं । जो नीचे बैठनेका अधिकारी वह ' नि-ष्ट्य ' (निष्टग) और जो अधोगतिको पहुंचा है वह ' अरण ' है ।

आसंगकी कथा

इस सूक्तका ३४ वां मंत्र देखने योग्य है । शश्वती आसंगकी धर्मपत्नी है । आसंग प्लायोग राजाका राजपुत्र है । आसंगका पुरुषत्व नष्ट हुआ था, अनेक उपायोंसे वह उसको पुनः प्राप्त हुआ । यह भाव इस मंत्रमें है, ऐसा कइयोंका कथन है । आसंग स्त्री बना था, वह फिर पुरुष बना, ऐसा कइयोंका मत है । (देखो ऋ. ८।३३।१९)

---

(१४) वीरका काव्य

(ऋ. मं. ८।२) १–४० मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः, ४१–४२ मेधातिथिः काण्वः ।
इन्द्रः, ४१–४२ विभिन्दुः । गायत्री, २८ अनुष्टुप् ।

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।	अनाभयिन्ररिमा ते	१
नृभिर्धूतः सुतो अश्नैरव्यो वारैः परिपूतः ।	अश्वो न निक्तो नदीषु	२
तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः ।	इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे	३
इन्द्र इत्सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः ।	अन्तर्देवान्मर्त्यांश्च	४
न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्रा उरुव्यचसम् ।	अपस्पृण्वते सुहार्दम्	५

गोभिर्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न व्रा मृगयन्ते । अभित्सरन्ति धेनुभिः ६
त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य । स्वे क्षये सुतपाव्नः ७
त्रयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश्चम्व१ः सुपूर्णाः । समाने अधि भार्मन् ८
शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः । दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ९
इमे त इन्द्र सोमास्तीव्रा अस्मे सुतासः । शुक्रा आशिरं याचन्ते १०
ताँ आशिरं पुरोळाशमिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि । रेवन्तं हि त्वा शृणोमि ११
हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् । ऊधर्न नग्ना जरन्ते १२
रेवाँ इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः श्रुतस्य १३
उक्थं चन शस्यमानमगोररिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानं १४
मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः । शिक्षा शचीवः शचीभिः १५
वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते १६
न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत १७
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः १८
ओ षु प्र याहि वाजेभिर्मा हृणीथा अभ्य१स्मान् । महाँइव युवजानिः १९
मो ष्व१द्य दुर्हणावान्त्सायं करदारे अस्मत् । अश्रीरिव जामाता २०
विद्मा ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिम् । त्रिषु जातस्य मनांसि २१
आ तू षिञ्च कण्वमन्तं न घा विद्म शवसानात् । यशस्तरं शतमूतेः २२
ज्येष्ठेन सोतरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय । भरा पिबन्नर्याय २३
यो वेदिष्ठो अव्यथिष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः । वाजं स्तोतृभ्यो गोमन्तम् २४
पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय २५
पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् । नि यमते शतमूतिः २६
एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् । गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम् २७

स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि ।
शिप्रिन्नृषीवः शचीवो नायमच्छा सधमादम् २८

स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय । इन्द्र कारिणं वृधन्तः २९
गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि । सत्रा दधिरे शवांसि ३०
एवेदेष तुविकूर्मिर्वाजाँ एको वज्रहस्तः । सनादमृक्तो दयते ३१
हन्ता वृत्रं दक्षिणेनेन्द्रः पुरू पुरुहूतः । महान्महीभिः शचीभिः ३२
यस्मिन्विश्वाश्चर्षणय उत च्यौत्ना ज्रयांसि च । अनु घेन्मन्दी मघोनः ३३
एष एतानि चकारेन्द्रो विश्वा योऽति शृण्वे । वाजदावा मघोनाम् ३४
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरः (प्रभर्ता रथं गव्यन्तमपाकाच्चिद्यमवति) । इनो वसु स हि वोळ्हा ३५
सनिता विप्रो अर्वद्भिर्हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः । सत्योऽविता विधन्तम् ३६
यजध्वैनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा । यो भूत्सोमैः सत्यमद्वा ३७
गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानम् । कण्वासो गात वाजिनम् ३८
य ऋते चिद्गास्पदेभ्यो दात्सखा नृभ्यः शचीवान् । ये अस्मिन्काममश्रियन् ३९
इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम् । मेषो भूतोऽभि यन्नयः ४०

शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत् । अष्टा परः सहस्रा ॥ ४१
उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या । जनित्वनाय मामहे ॥ ४२

अन्वयः— [मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्च आङ्गिरसः]- हे वसो ! इदं अन्धः सुतं सुपूर्णं उदरं पिब । अनाभयिन्! ते ररिम ॥१॥ नदीषु निक्तः अश्वः न, नृभिः धूतः, अश्नैः सुतः, अव्यः वारैः परिपूतः ॥२॥ हे इन्द्र ! ते तं, यथा यवं, गोभिः श्रीणन्तः स्वादुं अकर्म, अस्मिन् सधमादे त्वा (पातुं आह्वयामः) ॥३॥ इन्द्रः इत् एकः मर्त्यान् देवान् च अन्तः इन्द्रः विश्वायुः सोमपाः सुतपाः ॥४॥ उरुव्यचसं सुहार्दं यं शुक्रः न अप स्पृण्वते, दुराशीः न, तृप्राः न ॥५॥ यत् अस्मत् अन्ये ईं गोभिः मृगयन्ते, यः मृगं न, (ये च) धेनुभिः अभिक्षरन्ति ॥६॥ सुतपाम्नः देवस्य इन्द्रस्य स्वे क्षये त्रयः सोमाः सुतासः सन्तु ॥७॥ त्रयः कोशासः श्चोतन्ति । तिस्रः चम्वः सुपूर्णाः, समाने भार्मन् अधि ॥८॥ (हे सोम ! त्वं) शुचिः असि, पुरुनिष्ठाः, मध्यतः क्षीरैः दध्ना (च) आशीतः, शूरस्य मन्दिष्ठः (भव) ॥९॥ हे इन्द्र ! ते इमे सोमाः तीव्राः सुतासः शुक्राः अस्मे आशिरं याचन्ते ॥१०॥ हे इन्द्र ! तान् आशिरं श्रीणीहि । पुरोळाशं इमं सोमं (श्रीणीहि) । त्वा रेवन्तं शृणोमि ॥११॥ सुरायां दुर्मदासः न युध्यन्ते, पीतासः हृत्सु (युध्यन्ते), नग्ना, ऊधः न जरन्ते ॥१२॥ हे हरिवः ! रेवतः स्तोता रेवान् इत् स्यात् । त्वावतः मघोनः श्रुतस्य प्र इत् उ (स्यात्) ॥१३॥ अगोः अरिः, शस्यमानं उक्थं चन आ चिकेत । गीयमानं गायत्रं न ॥१४॥ हे इन्द्र ! पीयत्नवे नः मा परा दाः । शर्धते (च) मा (परा दाः)। हे शचीवः! शचीभिः शिक्ष ॥१५॥ हे इन्द्र ! त्वायन्तः वयं सखायः तदिदर्थाः कण्वाः उक्थेभिः त्वा जरन्ते ॥१६॥ हे वज्रिन् ! अपसः तव नविष्ठौ अन्यत् न घ ईं आ पपन । तव इत् उ स्तोमं चिकेत ॥१७॥ देवाः सुन्वन्तं इच्छन्ति, स्वप्नाय न स्पृहयन्ति । अतन्द्राः प्रमादं यन्ति ॥१८॥ वाजेभिः अस्मान् अभि सु प्र ओ याहि । मा हृणीथाः । युवजानिः महान् इव ॥१९॥ दुर्हणावान् अस्मद् आरे (आगच्छतु) । मार्यं सु मो करत् । अध्रीरः जामाता इव ॥२०॥ अस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिं विद्म हि । त्रिषु जातस्य मनांसि (विद्म) ॥२१॥ कण्वमन्तं तु आ सिंच । शवसानात् शतमूतेः यशस्तरं न घ विद्म ॥२२॥ हे सोतः ! वीराय नर्याय शक्राय इन्द्राय ज्येष्ठेन सोमं भर पिबत् ॥२३॥ यः अव्यथिषु वेदिष्ठः जरितृभ्यः स्तोतृभ्यः अश्वन्तं गोमन्तं वाजं (ददाति) ॥२४॥ हे सोतारः ! मद्याय वीराय शूराय पन्यं पन्यं इत् आ धावत ॥२५॥ सुतं पाता वृत्रहा आ गमत् घ । अस्मत् आरे शतमूतिः नियमते ॥२६॥ ब्रह्मयुजा शग्मा हरी इह गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसं सखायं आ वक्षतः ॥२७॥ हे शिप्रिन् ! हे ऋजीषिन् शचीवः ! सोमाः स्वादवः । आ याहि । सोमाः श्रीताः आ याहि । न (अयं) सधमादं अच्छ ॥२८॥ हे इन्द्र ! कारिणं वृधन्तः स्तुत , याः (स्तुतयः) च, त्वा महे राधसे नृम्णाय वर्धन्ति ॥२९॥ हे गिर्वाहः ! ते गिरः याः च उक्था तुभ्यं च तानि सत्रा शवांसि दधिरे ॥३०॥ एषः एव तुविकूर्मिः इत्, एकः वज्रहस्तः सनात् अमृक्तः वाजान् दयते ॥३१॥ इन्द्रः दक्षिणेन वृत्रं हन्ता, पुरु पुरुहूतः महीभिः शचीभिः महान् ॥३२॥ विश्वाः चर्षणयः यस्मिन्, उत च्यौत्ना ज्रयांसि, मघोनः अनुमंदी घ इत् च ॥३३॥ एषः इन्द्रः एतानि विश्वा चकार । मघोनां वाजदावा यः अति शृण्वे ॥३४॥ प्रभर्ता गव्यन्तं रथं यं अपाकात् चित् अवति, स इनः वसु वोळ्हा हि ॥३५॥ विप्रः अर्वद्भिः सनिता, शूरः नृभिः वृत्रं हन्ता, सत्यः विधन्तं अविता ॥३६॥ हे प्रियमेधाः ! सत्राचा मनसा एनं इन्द्रं यजध्व । यः सोमैः सत्यमद्वा भूत् ॥३७॥ हे कण्वासः ! गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानं वाजिनं गात ॥३८॥ पदेभ्यः ऋते चित् यः शचीवान् सखा नृभ्यः गाः दान, ये अस्मिन् कामं अश्रियन् ॥३९॥ हे अद्रिवः ! इत्था धीवन्तं काण्वं मेध्यातिथिं मेषः भूतः अभि यन् अयः ॥४०॥

[मेधातिथिः काण्वः]- हे विभिन्दो ! अस्मै चत्वारि अयुता शिक्ष, परः अष्ट सहस्रा ददत् ॥४१॥ उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या जनित्वनाय मामहे ॥४२॥

अर्थ- [कण्वपुत्र मेधातिथि और अङ्गिरापुत्र प्रियमेध ये दो ऋषि]- हे सबके निवास करानेवाले वीर ! इस अन्नरूप सोमरसका पेट भरकर पान करो । हे न डरनेवाले वीर ! तुम्हें (हम सोमरस) देते हैं ॥१॥ नदियोंमें नहाये घोडेकी तरह, नेताओंद्वारा धोया गया, पत्थरोंसे (कूटकर) निचोडा, भेडीके बालों (के बने कम्बलसे) छाना यह सोमरस

परिशुद्ध हुआ है ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे लिये इस (सोमको), जौ की तरह, गौओंका (दूध) मिलाकर मीठा बनाया है, (इसलिये) इस साथ (साथ बैठकर) पान करनेके स्थानमें (रसपानके लिये तुम्हें बुलाता हूँ) ॥३॥ इन्द्र ही अकेला मानवों और देवोंके मध्यमें प्रभु है, जो सब आयु भर प्रथम सोमपान करनेका अर्थात् सोमरसका अधिकारी है ॥४॥ विशेष व्यापक उत्तम हृदयवाले जिस (इन्द्र) को वीर्यवर्धक (सोम कभी) अप्रसन्न नहीं करता, दुर्लभ (पदार्थों) को मिलाकर किया सोम और पुरोडाश भी उसको कभी अप्रसन्न नहीं करते ॥५॥ जो हमसे भिन्न लोग हैं, वे इस (इन्द्र) को गौओं (का दूध मिलाये सोमरस) के साथ ढूंढते हैं, जैसे व्याध हिरनको ढूंढते हैं, (तथा और कोई) गौओंके (दूध के साथ उसके पास) जाते हैं ॥६॥ सोमरसका पान करनेवाले इन्द्र देवके अपने स्थानमें ये तीनों सोमरस (प्रातः दोपहर और सायंकाल) निचोडकर (तैयार हुए ये उनके लिये ही) हों ॥७॥ ये तीन कोश (सोमरसको) स्रव रहे हैं। तीन कलश (सोमरससे) भरपूर भरे हैं, (यह सब) समान पान-स्थानमें (तैयार रखा है) ॥८॥ (यह सोमरस) पवित्र है, अनेक पात्रोंमें रखा है और इसके बीचमें दूध और दही मिला दिया है। (यह रस) शूरको आनन्द देनेवाला (हो) ॥९॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे लिये ये सोमरस तीव्र हैं, रस निकालनेपर शुद्ध किये (ये रस) हमारे पाससे दूध आदि मिलाने की ही अपेक्षा करते हैं ॥१०॥ हे इन्द्र ! उन (सोमरसोंमें) दूध आदि मिलाओ। पुरोडाश और इस सोमको (साथ साथ) मिलाकर सेवन करो। तू धनसंपन्न (है ऐसा मैं) सुनता हूँ ॥११॥ सुरापान करनेपर जिस तरह दुष्ट नशासे उन्मत्त हुए (लोग जगत्में) लडते हैं, उसी तरह ये सोमरस (पीनेवालेके) हृदय-स्थानोंमें (ही युद्ध करते हैं, अर्थात् उत्साह बढाते हैं, अतः) स्तोता लोग, गौके स्तनोंके समान, (तेरी सोमपानके बाद) प्रशंसा करते हैं ॥१२॥ हे उत्तम घोडोंसे युक्त वीर ! धनवान्की प्रशंसा करनेवाला धनवान् ही हो जाता है। (इसी नियमके अनुसार) तुम्हारे जैसे धनवान् और बहुश्रुतका (मित्र तुम्हारे जैसा ही होगा) यह निःसंदेह ही है ॥१३॥ अभक्तका शत्रु (इन्द्र है जो) गाया जानेवाला काव्य जानता ही है, तथा गाया जानेवाला गायत्र गान तत्काल ही (जानता है) ॥१४॥ हे इन्द्र ! घातक शत्रुके पास हमें न छोडना। हिंसकके हाथमें भी (हमें न देना)। हे समर्थ वीर! अपनी शक्तियोंसे (हमें योग्य) सहायता कर ॥१५॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी प्रीतिकी इच्छा करनेवाले तुम्हारे मित्र तुम्हारीहि कामना करते हुए कण्व गोत्रमें उत्पन्न हम ऋषि स्तोत्रोंसे तुम्हारा ही यश गाते हैं ॥१६॥ हे वज्रधारी वीर ! कर्मप्रवीण तुम्हारे जैसेके यज्ञमें हम दूसरे किसी (स्तोत्र) को नहीं कहेंगे। केवल तुम्हारे ही स्तोत्रको हम जानते हैं ॥१७॥ देवता कर्मशील मानवको ही चाहते हैं। सुस्तको चाहते नहीं। आलस्यरहित (कर्मशील मनुष्य) विशेष आनन्दको प्राप्त करते हैं ॥१८॥ अश्वोंके साथ हमारे पास आओ। संकोच न करो। जिस तरह तरुण स्त्रीका पति बडा वीर (तरुणीके पास जाता है, वैसे ही तुम नि.संकोच हो हमारे पास आओ) ॥१९॥ शत्रुओंको असह्य होनेवाला वीर हमारे पास (आवे। बुलानेपर) सायंकाल न करे। जिस तरह निर्धन दामाद (समयपर नहीं आता, वैसा न करे) ॥२०॥ इस वीरकी बहुत धन देनेवाली उत्तम बुद्धिको हम जानते हैं। तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध (इस वीरके) मनोभावोंको (हम जानते हैं) ॥२१॥ कण्व जिसकी (भक्ति करते हैं, उस वीरके लिये) सोमरस दो। बलवान् और सैंकडों प्रकारोंसे रक्षा करनेवाले (इन्द्रसे) अधिक यशस्वी वीरको हम जानते ही नहीं ॥२२॥ हे सोमरस निकालनेवाले ! वीर, मानवोंके हितकारी, समर्थ इन्द्रके लिये प्रथम सोम दो, वह प्रथम पीवे ॥२३॥ जो कष्ट न देनेवालोंमें (अच्छे मानवोंको) जानता है, तथा वह उपासना और प्रार्थना करनेवालोंको घोडों और गौओंसे युक्त अन्न (देता है) ॥२४॥ हे सोमरस निचोडनेवालो ! आनन्दित होनेवाले शूर वीर (इन्द्र) के लिये स्तुतियोग्य सोमरस बारंबार दो ॥२५॥ सोमका रक्षक और वृत्रका नाशक (इन्द्र) यहां आ जावे। हमारे पास (आकर) सैंकडों रीतियोंसे सुरक्षा करनेवाले (इन्द्र) शत्रुओंको अपने अधीन करे ॥२६॥ मंत्रोंके साथ जोते जानेवाले सुखदायी दोनों घोडे यहां मंत्रोंद्वारा प्रशंसित मित्र इन्द्रको ले आवें ॥२७॥ हे शिरस्त्राणधारी वीर ! हे ऋषियोंके साथ रहनेवाले शक्तिवाले वीर (इन्द्र) ! ये सोमरस मधुर हैं। आओ। सोम (दूध आदिमें) मिलाये हैं। आओ। अभी यह (स्तोता) साथ साथ रसपान करनेके स्थानमें समीप (रह कर स्तुति करता है।) ॥२८॥ हे इन्द्र ! (तुम जैसे) कारीगरके यशका वर्णन करनेवाले ये स्तोता और उनकी स्तुतियाँ, तुम्हें

बडे धनके लिये और बलके लिये बढाते हैं ॥२९॥ हे स्तुति-योग्य वीर ! तुम्हारे लिये जो स्तोत्र और काव्य हैं वे तुम्हारे ही उन (प्रशंसनीय तथा तुम्हारेही) साथ रहनेवाले बलोंको धारण करते हैं ॥३०॥ यह (इन्द्र) निश्चयसे अनेक कर्मोंको करनेवाला है, यह एकही वज्रधारी और सदासे अजेय है, वही बलोंको देता है ॥३१॥ इन्द्रने दाहिने हाथसे वृत्रका वध किया है, वह अनेक स्थानोंपर बहुत बार बुलाया जाता है। यह महती शक्तियोंके कारण बडाही (वीर) है ॥३२॥ सारी प्रजाएं जिसके अधीन रहती हैं, जिसमें सब सामर्थ्य और विजयी प्रयत्न हैं, वही धनवान् इन्द्र भक्तको (सत्कार्यमें) अनुमोदन करता है ॥३३॥ इसी इन्द्रने ये सारे (विश्व) बनाये हैं। वही यज्ञकर्ताओंको बल देता है और वही सर्वत्र विश्रुत है ॥३४॥ (सबका) भरण पोषण करनेवाला (यह इन्द्र) गौओंकी इच्छा करनेवाले रथी (भक्तको) जो अपवित्र शत्रुसे भी बचाता है, वह (सबका) स्वामी धनको ढोकर (भक्तको) देता है ॥३५॥ वह ज्ञानी, घोडोंसे (जहां चाहिये वहां) जानेवाला, शूर, वीरोंके साथ (रहनेवाला), वृत्रका वध करनेवाला, सत्य-पालक, (इन्द्र) कर्म करनेवालोंका संरक्षक है ॥३६॥ हे प्रियमेध ऋषि ! एकाग्र मनसे इस इन्द्रके लिये यज्ञ करो। जो सोम-रस (प्राप्त करके) सत्य आनन्द देनेवाला होता है ॥३७॥ हे कण्वो ! गाथाओंमें जिसका यश वर्णन किया है, सत्यके रक्षक, यशके इच्छुक, अनेक स्थानोंमें रहनेवाले, बलवान् इन्द्रका (काव्य) गाओ ॥३८॥ पदोंके चिह्न न रहनेपर भी जिस सामर्थ्यवान् मित्र (इन्द्रने) मनुष्योंको (ढूंढकर उनकी) गौएं वापस कर दीं, उन लोगोंने उसी (इन्द्र) से सब कामनाओंको प्राप्त किया ॥३९॥ हे पर्वत पर (के किलेमें) रहनेवाले वीर ! इस तरह बुद्धिमान् कण्वपुत्र मेध्यातिथिके पास मेषके रूपसे आगे हो कर गया था ॥४०॥

[कण्वका पुत्र मेधातिथि ऋषि]- हे विभिन्दु ! (हे राजन् !) इस (ऋषि) को तुमने चालीस हजार धन दिया, पश्चात् आठ हजार और दिया ॥४१॥ अतः उन (गौमें) वृष्टिकी वृद्धि करनेवाली, (धन) निर्माण करनेवाली, आनन्द बढानेवाली (दोनों द्यावा-पृथिवीकी) प्रजजनके लिये हम प्रार्थना करते हैं ॥४२॥

इन्द्रका सामर्थ्य

इस सूक्तमें पुनः इन्द्रके प्रचण्ड सामर्थ्यका वर्णन किया है, पाठक इसका अब विचार करें—

१ **वसु**- सबका निवास करनेवाला,

२ **अनाभयी**- (अन् आ-भयिन्) निर्भय, भयरहित, (मंत्र १)

३ **मर्त्यान् देवान् अन्तः इन्द्रः**- मानवों और देवोंका प्रभु,

४ **विश्वायुः**- सब आयु, सब मानव जिसमें हैं, सर्वदा, (मं. ४)

५ **उरुव्यचाः**- अत्यंत व्यापक, विशेष विस्तीर्ण, सर्वत्र व्यापक (मं ५)

६ **सुहार्दः**- उत्तम हृदयवाला, मनसे कोमल, सहानुभूति रखनेवाला, (मं. ५)

७ **शुचिः**- पवित्र, (मं. ९)

८ **हरिवः**- घोडे जिसके पास हैं, (मं. १३)

९ **अगोः अरिः**- ज्ञानहीनका शत्रु, प्रगति न करनेवालेका शत्रु, (मं. १४)

१० **शचीवः**- सामर्थ्यवान, (मं. १५)

११ **दुर्हनावान्**- जिसका हमला भयंकर होता है, (मं.२०)

१२ **भुरिदावरी सुमतिः**- बडे दान करनेकी बुद्धि (रखनेवाला), (मं. २१)

१३ **शवसानः**- बलवान्,

१४ **शतः ऊतिः**- सैंकडों सामर्थ्योंसे संरक्षण करनेवाला, (मं. २२)

१५ **वीरः**- शूर वीर,

१६ **नर्यः**- मानवोंका हित करनेवाला, जनताका कल्याण करनेकी इच्छावाला,

१७ **शग्मः**- समर्थ, सामर्थ्यवान्, (मं. २३)

१८ **मद्यः वीरः शूरः**- आनंदित शूर वीर। (यहां मद्य का अर्थ आनंद देनेवाला अथवा आनंदयुक्त है। यह अर्थ न लिया जाय तो ' मद्य '-(शराब) अर्थ होगा और अनर्थ बनेगा। पाठक इस अर्थका स्मरण रखें।) (मं. २५)

१९ **पाता**- संरक्षण करनेवाला,

२० नियमते- शत्रुको अधीन करके नियमोंमें रखता है। (मं. २६)

२१ ऋषिवः- ज्ञानियोंके साथ रहनेवाला, (मं. २८)

२२ कारी- कर्म करनेमें कुशल, कारीगर, (मं. २९)

२३ तुविकूर्मिः- अनेक प्रशंसनीय कर्म करनेवाला,

२४ वज्रहस्तः- शस्त्र हाथमें लेनेवाला वीर,

२५ सनात् अमृक्तः- सदा विजयी, (मं ३१)

२६ विश्वा चर्षणयः यस्मिन्- सब मानव जिसका आश्रय करते हैं।

२७ ज्यौत्ना ज्रयांसि यस्मिन्- सब बल और प्रभाव जिसमें हैं, (मं. ३३)

२८ वाजदावा- अन्न का दान करता है, (मं. ३४)

२९ प्रभर्ता- विशेषरूपसे भरण पोषण करनेवाला,

३० अपाकात् अचाति- दुष्ट शत्रुसे बचाता है,

३१ इनः- स्वामी, प्रभु, मालिक है, (मं. ३५)

३२ विप्रः- ज्ञानी,

३३ अर्वद्भिः सनिता- घोडोंसे जानेवाला,

३४ सत्यः- सत्य-प्रतिज्ञ, सत्यपालक,

३५ विधन्तं अविता- प्रयत्नशीलकी सुरक्षा करनेवाला, (मं. ३६)

३६ सत्यमद्वा- सत्य आनन्द देनेवाला, (मं. ३७)

३७ सत्पतिः- सत्यका पालन करनेवाला,

३८ वाजी- बलवान्, अन्नवान्,

३९ श्रवस्कामः- यशका इच्छुक, (मं. ३८)

इन्द्रके ये गुण इस सूक्तमें वर्णन किये गये हैं। पूर्व सूक्तमें आये कई पद यहां पुनः नहीं रखे हैं। पाठक उनका अर्थ विचार करते समय मनमें ले सकते हैं। इस प्रकार इस सूक्तमें जो आदर्श वीर मनुष्योंके सामने रखा है, वह इन पदोंसे वर्णित होता है। इस आदर्शकी कल्पना पाठक करें और उसको अपने सामने रखें और स्वयं वैसा बननेका यत्न करें। यही मनुष्यकी उन्नतिका अनुष्ठान है।

सोम-रस-पान

इस सूक्तमें भी सोमरसपानका बहुत वर्णन है। इस वर्णनमें निम्नलिखित बातें मननीय हैं-

१ सुतं अन्धः- यह सोमरस अन्न है, प्राणधारण करनेका सामर्थ्य (अन्-धः) इस रसमें है।

२ सुपूर्ण उदरं पिब- सोमरस पेटभर पाया जा सकता है (अर्थात् पेटभर पीनेसेभी हानि नहीं होगी) (मं १)

३ नदीमें घोडेको धोते हैं, वैसा यह (धूतः) जलोंसे धोया जाता है,

४ अद्रिभिः सुतः- पत्थरोंसे कूटकर रस निकालते हैं,

५ अव्यः वारैः परिपूतः- भेडीके बालोंसे बने कंबलसे छाना जाता है, (मं. २)

६ गोभिः श्रीणन्तः स्वादुं अकर्म- गौओंके दूध मिलानेसे यह रस मीठा होता है।

७ सधमादे (पातु)- साथसाथ अनेक वीर बैठकर पीते हैं, (मं. ३)

८ दुराशीः- (दुः-आशीर्)- बहुत प्रयत्नोंसे जिसमें अनेक मसाले मिलाये जाते हैं, (मं. ५)

९ गोभिः मृगयन्ते- गौवें पास होनेपरही जिस (सोमकी) खोज करते हैं। अर्थात् जिसके पास गौवें न हों, वे सोमरस पी नहीं सकते, क्योंकि वह बड़ा तीक्ष्ण होता है। (मं. ६)

१० शुचिः- सोमरस पवित्र है।

११ पुरुनिष्ठाः- सोमरस अनेक पात्रोंमें रखा जाता है।

१२ मध्यतः क्षीरैः दध्ना च आशीर्तः- बीचमें दूध और दही मिलाया जाता है। (मं. ९)

१३ सोमाः तीव्राः- सोमरस तीक्ष्ण (तीखा) होता है इसलिये,

१४ आशिरं याचन्ते- उसमें (दूध आदि) मिलानेकी अपेक्षा रहती है (मं. १०)

१५ आशिरं, पुरोळाशं सोमं श्रीणीहि- दूध, दही तथा पुरोळाशके साथ सोमको मिलाओ। पुरोळाश एक प्रकारकी मोटी रोटीसी होती है, उसके साथ सोम पाते हैं। (मं. ११)

१६ पीतासः (सोमः) हृत्सु (युध्यन्ते)- पीये गये सोमरस हृदयोंमें, मानसिक क्षेत्रमें, विचारोंमें हलचल मचाते हैं, अधिक उत्साह उत्पन्न करते हैं।

सोमरसका यह वर्णन पूर्व सूक्तके वर्णनके साथ देखें। इसमें कुछ वर्णन अधिक है। जैसा घोडा बार बार पानीसे धोया जाता है वैसा सोम धोया जाता है। जितना धोया जाय उतना अच्छा होता है। अनेक दुष्प्राप्य पदार्थ इसमें मिलाते हैं। (संभवतः) बादाम आदि पदार्थ होंगे, क्योंकि दूध दही आदि ये तो (दु आशीर्) दुष्प्राप्य नहीं थे। केवल

इन्द्र मघ-वान् है। धनवान् है, वीर है, इसलिये उसकी स्थिति निर्धन दाक्काद जैसी नहीं है। वह बुलानेपर सत्वर आता है और प्रतिष्ठा पाता है। ऐसे सब लोग बनें। यह बात इस उदाहरणसे बतायी है।

घोडोंको धोना

'नदीमें ले जाकर घोडोंको अच्छी तरह धोया जाता था और बार बार धोया जाता था।' (मं. १) इस तरह धोनेसे घोडोंका सौंदर्य और स्वास्थ्य अच्छा रहता है। यह बात इस सूक्तमें देखने योग्य है। इन्द्र और अश्वी घोडे पालनेके लिये प्रसिद्ध हैं। इन्द्र तो सहस्रों घोडोंको अपनी अश्वशालामें पालता था। इसलिये घोडोंका सौंदर्य और स्वास्थ्यके विषयमें कुछ न कुछ प्रबंध वैदिक समयमें होना स्वाभाविक है। हमेशा जो धन मांगा है, वह गौएं और घोडोंके साथ मांगा है। 'अत्य' नामक घोडा घुडदौडके लिये वेदमें सुप्रसिद्ध है। प्रायः घरमें गौवें, घोडे रहतेही थे। इसलिये उनकी सुंदरता अधिक आकर्षक करनेके लिये उसको बारबार अच्छी तरह धोया जाता था। नदी न हो, तो अन्य जलसे भी घोडेका धोना मुख्य और आवश्यक बात है।

कर्मण्य और सुस्त

'देव कर्मण्य या कर्मशीलको चाहते हैं। सुस्तका तिरस्कार करते हैं। कर्मशील मानव अधिक आनंद प्राप्त करता है।' (मं. १८) यहां कर्मशीलकी प्रशंसा है और आलसीकी निंदा है। आलसीके लिये सुखका स्थान नहीं है। उद्यमशीलके लियेही उन्नतिकी आशा हो सकती है। मंत्रमें 'सुन्वन्' पद है। सोमसे रस निकालना आदि इसके अर्थ हैं। यज्ञ करना इसका तात्पर्य है। कर्मण्य इसका भाव है।

ईश्वर = इन्द्र

इस सूक्तके कई मंत्रोंमें 'इन्द्र' पद 'ईश्वर, प्रभु, परमेश्वर' के लिये आया है।

१ इनः-स्वामी, प्रभु, मालिक, अधिपति। (मं. ३५)

२ एष इन्द्रः एतानि विश्वा चकार- इस इन्द्रने ये सब भुवनान्तर लोकलोकान्तर बनाये। (मं. ३४)

३ प्रभर्ता- विशेष रीतिसे सबका भरणपोषण वही करता है। (मं. ३५)

४ विश्वा चर्षणयः यस्मिन्ः- सब मानव इसीमें आश्रय लेते हैं, इसीमें हैं।

५ सत्राचा मनसा इन्द्रं यजस्व- एकाग्र मनसे इसका पूजन कर

इस तरह इन्द्र पदसे परमात्माका वर्णन यहां हुआ है। इसके कई विशेषण इस सूक्तमें फुटकर रूपमें ईश्वरपरक आये हैं।

पर्वतवाला इन्द्र

'अद्रि-वः' पद इन्द्रके लिये कई मंत्रोंमें आता है। अद्रि का अर्थ 'मेघ' मानकर मेघोंमें दीखनेवाले सूर्यपरक अथवा मेघोंमें चमकनेवाले बिजलीके प्रकाशपरक इसका अर्थ करनेकी परिपाठी है। पर राज्यशासन विषयक अर्थ देखने और मानवी जीवनमें इसको ढालनेके समय इसका अर्थ 'पर्वतपर रहनेवाला' ऐसा करना योग्य है। पर्वतपर जो दुर्ग होते हैं उनमें रहकर शत्रुके साथ लडनेवाला, ऐसा इसका अर्थ हम समझते हैं।

सूक्तमें ऋषिनाम

इस सूक्तमें निम्नलिखित ऋषिनाम आये हैं-

'कण्वाः (मं. १६), प्रियमेधाः (मं. ३७), कण्वासः (मं. ३८), काण्वः मेध्यातिथिः (मं. ४०) ये ऋषि वाचक पद मंत्रोंमें आये हैं और येही इस सूक्तके ऋषि हैं। 'विभिन्दुः' (मं. ४१) नाम एक राजाका इसमें आया है, जिसने प्रियमेधको दिये दानका उल्लेख है।

बडा दान

'विभिंदु राजाने प्रियमेधके लिये चालीस हजार और आठ हजार दान दिया।' (मं. ४१) यह संख्या गौओंकी है या सुवर्ण मुद्राओंकी है अथवा किसी अन्य पदार्थकी है, इसका पता नहीं चलता। (ऋ. १।१२६।२) में 'शतं निष्कान्' सौ निष्क दक्षिणामें मिलनेका उल्लेख है। 'निष्क' सवा तोला सुवर्णसे बनता है। सवा तोलेका मूल्य ५ वर्ष पूर्व २५) रु. और आज १००) रु. है। 'सुवर्ण' नामका एक सिक्का या मुद्रा प्रसिद्ध है। उसका वजन और मूल्य निष्क जैसाही है। वेदमंत्रोंमें निष्कका उल्लेख है। 'सुवर्ण' का सिक्केके अर्थमें है या नहीं यह खोज करनेकी बात है।

ऊपर अडतालीस हजारका जो दान है वह किस चीजका है इसका ठीक पता नहीं लगता।

विभिन्न लोग

(**अस्मत् अन्ये गोभिः ईं मृगयन्ते**) हमसे भिन्न जो दूसरे लोग हैं वे भी इस इन्द्रको गौओंका दूध निकालकर उसको अर्पण करनेके लिये ढूढते हैं (मं ६)। यहा हमसे भिन्न दूसरे लोग वे हैं कि जो इन्द्रकी उपासना करनेवाले नहीं हैं, पर दूसरे किसीकी भक्ति करते हैं, परंतु इन्द्रके पास भी आनेके इच्छुक हैं।

उपासनासे ' हम ' और ' अन्य ' ये भेद यहा माने हैं।

' **अगोः अरिः** ' (मं. १४) उपासना न करनेवालेका शत्रु इन्द्र है, अर्थात् भक्त या उपासकका वह मित्र या सखा है।

' **तव इत् स्तोमं चिकेत** ' (मं १७)- हे इन्द्र! तेराही स्तोत्र हम जानते हैं, किसी दूसरे देवका स्तोत्र हम जानतेही नहीं, इतनी एकाग्रतासे हम तुम्हारी उपासना करते हैं।' यह एकाग्र उपासनाका वर्णन है।

---

(१५) प्रभुका महत्त्व

(ऋ. मं. ८, सू. ३) १-२४ मेध्यातिथि काण्व। इन्द्रः, २१-२४ पाकस्थामा कौरयाण। प्रगाथ =(विषमा बृहती, समा सतोबृहती), २१ अनुष्टुप्, २२-२३ गायत्री, २४ बृहती।

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः। आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधेऽस्माँ अवन्तु ते धियः　१
भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये। अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय २
इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम। पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत　३
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे। सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये　४
इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये　५
　　इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
　　इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः　६
अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः। समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्　७
　　अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि।
　　अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा　८
तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद्ब्रह्म पूर्वचित्तये। येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ　९
　　येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।
　　सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे　१०
शग्धी न इन्द्र यत्त्वा रयिं यामि सुवीर्यम्। शग्धि वाजाय प्रथमं सिषासते शग्धि स्तोमाय पूर्व्य　११
　　शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ धिय इन्द्र सिषासतः।
　　शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपमिन्द्र प्रावः स्वर्णरम्　१२
कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः। नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः　१३
　　कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते।
　　कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः　१४
उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते। सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव　१५

सोमरस पीया नहीं जाता, क्योंकि वह बडा तीखा रहता है। यह हृदयमें उत्साह उत्पन्न करता है।

क्या सोमपानसे नशा होती है ?

इस सूक्तमें पता चलता है कि पेटभर पीनेसेभी नशा नहीं होती। सोमरस पेटभर पीयाही जाता था। पेटभर जो रस पीया जाता था, वह नशा करनेवाला नहीं हो सकता। इस विषय में वेदका मंत्रही देखिये—

(१) हृत्सु पीतासो युध्यन्ते
(२) दुर्मदासो न सुरायाम्।
(३) ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥ (ऋ. ८।२।१२)

१ (पीतासः) पीये हुए सोमरस (हृत्सु) हृदय-स्थानोंमें (युध्यन्ते) स्पर्धा करते हैं, हलचल करते हैं, उत्साह उत्पन्न करते हैं। यह हृदय-स्थानमें होनेवाला विचारोंका युद्ध है, इससे (सुमदासः) उत्तम आनन्द और उत्साहका संवर्धन वह सकते हैं।

२ (सुरायां) सुरा पीकर (दुर्मदासः) दुष्ट नशासे भ्रान्त बने हुए लोग (न) जैसे जगत्में आपसमें परस्पर लडते हैं, [वैसा सोमपानसे नहीं होता, क्योंकि सोमरस हृदयस्थानमेंहि ... युद्ध करते रहते हैं।]

३ (न-ग्नाः) स्त्रियोंके साथ संबंध न रखनेवाले ब्रह्मचारी, अथवा (नग्नाः— नजति इति) उपासक भक्त स्तोता (ऊधः न) जिस तरह गौके दूधकी (जरंते) प्रशंसा करते हैं, [वैसे ही वे सोमरसकी तथा सोमरस पीनेवाले इन्द्रकी प्रशंसा करते हैं।]

यहां सोमरस पेटभर पीनेसे मनमें उत्साहकी ऊर्मियां खलबली मचाते हैं, विचारोंमें युद्ध उत्पन्न करते हैं, यह सब विचार के क्षेत्रमेंही होता है, ऐसा कहा है। इसके विरुद्ध सुरापानकी स्थिति है। सुरापानसे ' दुर्मद ' (बुरी नशा) उत्पन्न होती है और उस बेहोशीमें जगत्में युद्ध होते हैं। सुरापानका युद्ध नशाका, ' दुर्मद ' अवस्थाका जगत्के बाह्य क्षेत्रमें है, और सोमपानसे होनेवाला युद्ध उत्तम उत्साहपूर्ण अवस्थामें होनेवाला हृदयके विचारोंके क्षेत्रमें है, यह दोनोंका भेद ध्यानमें धारण करना चाहिये। अब सुरापान और सोमपानके परिणामका विचार करना आवश्यक है—

सुरापानं	सोमपानं
दुर्मदासः	सुहार्द्
	सुमतिः
	शुचिः
	शुक्रः
	मद्यः
	मदः
	मन्दितमः

सुरापान से मनुष्य **'दुर्मद'** होता है, दुष्ट अर्थात दोषयुक्त नशासे बेहोश होता है। इससे जो दुष्कृत्य हो सकते हैं, उनकी कल्पना पाठक कर सकते हैं।

सोमपान से **सुहार्द्** उत्तम हृदय बनता है, **' सुमति '** बुद्धि उत्तम होती है, **'शुचिः'** शुचिता आती है, **' शुक्रः '** वीर्य वृद्धि होती है, **'मद, मद्य मंदितम '** आनन्द उल्हास और विलक्षण स्फूर्ति होती है। इसके पीनेसे इन्द्रके जो गुण पूर्व स्थानोंमें वर्णन किये हैं, वे शरीरमें संवर्धित होते हैं। वह एकही हाथसे शस्त्र फेंककर वृत्रका वध करता है (मं. ११)। सोमरस पेटभर पीया जाता है (मं. १)। वह प्राणोंकी धारणा करनेवाला एक उत्तम अन्न है, सुरा कदापि अन्न नहीं कहा जा सकता। सोमपानसे शरीरका भरण पोषण हो सकता है, वैसा सुरापानसे नहीं होता। सोमपानसे सैंकडो कर्म करनेकी स्फूर्ति उत्पन्न होती है, सुरापानसे बेहोशी और गलितगात्रता होती है। पेटभर सोमपान करनेपर भी मनुष्य बेहोश नहीं होता, परंतु उत्साहसे अपना कार्य ठीक तरह कर सकता है। इस तरह सोमपान और सुरापानके परिणाम परस्परविभिन्न हैं। सोमपानकी ऋषिमुनि स्तुति करते हैं, वेदमें सर्वत्र सोमपानकी प्रशंसा है, वैसी सुरापानकी कहीं भी प्रशंसा नहीं है।

' मद 'के अर्थ कोशमें ये हैं- (१) मतवालापन, उन्मत्तता, उन्माद, नशा, बेहोशी। (२) हाथीके गण्डस्थलसे चूनेवाला रस। (३) प्रेम, प्रीति, गर्व, आनंद, हर्ष, उत्साह। (४) शहद, कस्तूरी। (५) (पुरुषका) वीर्य। (६) मद्य, सोम। (७) सुंदर वस्तु। (८) नदी, जल-प्रवाह। इन अर्थोंमें ' मद ' पद आता है। ' सुरा ' का परिणाम ' उन्मत्तता, उन्माद, नशा और बेहोशी ' हैं और ' सोम 'का परिणाम ' प्रेम आनंद, हर्ष और उत्साह ' हैं। पूर्वोक्त विवरणका तात्पर्य यह है।

सोमरसके लिये 'आसुति' कहा है। यदि इससे इसको ' आसव ' माना जा सकता है, तब तो इसमें नशाके गुणधर्म नहींके बराबरही होना संभव है, क्योंकि सोमरस दिनमें

तीन वार निकाला जाता है और तीन वारही पीया जाता है। इसलिये नशा उत्पन्न होनेवाली सडानसे उत्पन्न होनेवाली वस्तु उसमें नहीं उत्पन्न हो सकती। यहां प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि शराबके समान नशावाली वस्तु इसमें न हो, पर भंग जैसी होगी या नहीं? इस विषयमें बात यह है कि, वैसी भी नहीं, क्योंकि भंग पीनेसे भी मनुष्य कर्तृत्ववान् नहीं होता, पर यहां सोमपानसे कर्तृत्ववान् होता है। अतः सोमपानमें भंगके समान नशा उत्पन्न नहीं होता।

' मद, मद्य, प्रमद, संमद, मदिंतम ' इन पदोंमें मद ' है और 'दुर्मद' में भी 'मद' है। मदका दुर्मद ना बुरा है। मद बुरा नहीं है, वह आनंद और उत्साहका नक है। पेटभर सोमरस पीनेपर भी ' दुर्मद' अवस्था नहीं ती, जो सुरापानसे और भंगपानसे होती है। यह बात ठीक रह समझमें आनेसे सोमपानकी निर्दोषता सिद्ध हो सकती है। दमें ' दुर्मद ' अवस्था सुरापानसे होती है, ऐसा कहा है और ोमपानसे ' मदिन्तम ' अवस्था आती है । 'सु' और 'दुर्' ं बहुतही फर्क है ।

सोम	सुरा
सुमद	दुर्मद
सुमति	दुर्मति
सुहार्द	दुर्हार्द

होता है, वैसाही सोमरसका होगा। सोममें ' दुर्मद ' होनेकी संभावनाही नहीं है। सोमरस तो पेटभर पीया जाता है, गौओंको खिलाया जाता है, पेटकी दोनों बाजूएं बाहरसे पूरी भरी दीखनेपर भी ' दुर्मद ' अवस्था नहीं होती, यह सोमरसकी विशेषता है। सोमरस पेटभर पीनेपर भी सुमति स्थिर रहती है।

सोमरस अन्न होनेसे केवल सोमरस पीकर भी मनुष्य जीवित रह सकता है, वैसी केवल सुरा पीनेसेही मनुष्य जीवित नहीं रह सकेगा। केवल निरा सोमरस बहुत तीखा होनेके कारण पीना अशक्य है वैसीहि सुराभी सर्वसाधारणके लिये केवल पीना अशक्य है। परंतु जो नशाबाज हैं, वेही केवल सुरा पी सकते हैं। सुरामें आम्लत्व रहता है, अतः उसमें दूध फट जायगा। सोममें वैसा नहीं होता। सोममें मिलाया दूध फटता नहीं, इसलिये सोमरसमें सुरापन नहीं है। और भंग जैसी मस्तिष्क बिगडनेकी भी संभावना नहीं है। पेटभर भंग पीनेवालेके मस्तिष्क बिगडे दीखते हैं। सोमरससे वैसा बिगाड नहीं होता।

सोमरसका विचार और आगे होगा। जैसे जैसे सूक्त हमारे सामने आ जायगे, वैसा वैसा सोमरसका स्वरूप हमारे सामने खुलता जायगा। अतः इस विषयमें हम जो विचार करेंगे, वह वेद मंत्रके प्रतीक सामने रखकरही करेंगे जैसा इस समयतक किया है।

कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिद्धीतमानशुः। इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् १६
युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः। अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि १७
इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया विप्रासो मेधसातये।
स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो वेनो न शृणुधी हवम् १८
निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः। निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः १९
निरग्नयो रुरुचुर्निरु सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः। निरन्तरिक्षादधमो महामहिं कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् २०
यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः। विश्वेषां त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमानम् २१
रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्राम्। अदाद्रायो विबोधनम् २२
यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः। अस्तं वयो न तुग्र्यम् २३
आत्मा पितुस्तनूर्वास ओजोदा अभ्यञ्जनम्। तुरीयमिद्रोहितस्य पाकस्थामानं भोजं दातारमब्रवम् २४

अन्वय – हे इन्द्र! नः रसिनः गोमतः सुतस्य पिब, मत्स्व (च)। सधमाद्यः आपिः नः वृधे बोधि। ते धियः अस्मान् अवन्तु ॥१॥ ते सुमतौ वयं वाजिनः भूयाम। अभिमातये नः मा स्तः। चित्राभिः अभिष्टिभिः अस्मान् अवतात्। नः सुम्नेषु आ यामय ॥२॥ हे पुरूवसो! मम याः इमाः गिरः (ताः) त्वा उ वर्धन्तु। (तथा) पावकवर्णाः शुचयः विपश्चितः स्तोमैः अभि अनूषत ॥३॥ अयं (इन्द्रः) ऋषिभिः सहस्रं सहस्कृतः समुद्रः इव पप्रथे। अस्य सत्यः शवः सः महिमा यज्ञेषु विप्रराज्ये गृणे ॥४॥ देवतातये इन्द्रं इत्, अध्वरे प्रयति इन्द्रं, समीके वनिनः इन्द्रं, धनस्य सातये (च) इन्द्रं हवामहे ॥५॥ इन्द्रः शवसा मह्ना रोदसी पप्रथत्, इन्द्रः सूर्यं अरोचयत्, इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे, सुवानासः इन्दवः इन्द्रे (येमिरे) ॥६॥ हे इन्द्र! आयवः स्तोमेभिः त्वा पूर्वपीतये अभि (स्तुवन्ति)। समीचीनासः ऋभवः सं अस्वरन्, रुद्राः पूर्व्यं गृणन्त ॥७॥ अस्य इत् सुतस्य विगवि मदे वृष्ण्यं शवः इन्द्रः वावृधे, अस्य तत् महिमानं आयवः पूर्वथा अद्य अनु स्तुवन्ति ॥८॥ तत् सुवीर्यं त्वा यामि। तत् ब्रह्म पूर्वचित्तये (त्वा यामि)। धने हिते यतिभ्यः भृगवे येन, येन (च) प्रस्कण्वं आविथ ॥९॥ हे इन्द्र! समुद्रं महीः अपः अभ्रृज। ते यत् शवः वृष्णि। अस्य सः महिमा सद्यः न सशे, यं क्षोणी अनुचक्रदे ॥१०॥ हे इन्द्र! यत् सुवीर्यं रयिं त्वा यामि (तत्) नः शग्धि। (तथा) सिषासते वाजाय प्रथमं शग्धि। हे पूर्व्य! स्तोमाय शग्धि ॥११॥ हे इन्द्र! धियः सिषासतः नः अस्य (तत् धनं) शग्धि यत् ह पौरं आविथ। हे इन्द्र! (तथा) शग्धि, यथा रुशमं श्यावकं कृपं (आविथ), तथा स्वर्णरं प्र आव ॥१२॥ नवसीनां तुरः मर्त्यः नव्यः कत् गृणीत? नु स्वः गृणन्तः अस्य इन्द्रियं महिमानं नहि आशुः ॥१३॥ हे इन्द्र! स्तुवन्तः कत् उ देवताः ऋतयन्तः, ऋषिः विप्रः कः ओहते? हे मघवन् इन्द्र! कदा सुन्वतः हवं आ गमः? कत् उ स्तुवतः (आगमः)? ॥१४॥ त्ये मधुमत्तमाः गिरः स्तोमासः उत् उ ईरते। सत्राजितः धनसाः अक्षितोतयः वाजयन्तः रथाः इव ॥१५॥ कण्वाः इव, सूर्याः भृगवः इव धीतं विश्वं इत् आनशुः। प्रियमेधासः आयवः स्तोमेभिः इन्द्रं महयन्तः अस्वरन् ॥१६॥ हे वृत्रहन्तम इन्द्र! हरी युक्ष्व हि। हे मघवन्! उग्र सोमपीतये ऋष्वेभिः परावतः अर्वाचीनः आ गहि ॥१७॥ हे इन्द्र! इमे कारवः विप्रासः धिया मेधसातये ते वावशुः हि। हे मघवन्! गिर्वणः सः त्वं नः हवं, वेनः न, शृणुधि ॥१८॥ हे इन्द्र! वृत्रं बृहतीभ्यः धनुभ्यः निः अस्फुरः। मायिनः अर्बुदस्य मृगयस्य पर्वतस्य गाः निः आजः ॥१९॥ हे इन्द्र! महां अहिं अन्तरिक्षात् निः अधमः, तत् पौंस्यं कृषे। अग्नयः निः रुरुचुः। सूर्यः निः उ। इन्द्रियः रसः सोमः निः ॥२०॥ इन्द्रः मरुतः (च) यं मे दुः, कौरयाणः पाकस्थामा (अदात्) विश्वेषां त्मना शोभिष्ठं दिवि उप धावमानं इव ॥२१॥ पाकस्थामा मे सुधुरं, कक्ष्यप्रां, रोहितं, रायः विबोधनं अदात् ॥२२॥ यस्मै धुरं अन्ये दश वह्नयः प्रति वहन्ति। अस्तं वयः तुग्र्यं न ॥२३॥ (अयं) आत्मा पितुः तनूः वासः ओजोदाः अभ्यञ्जनं दातारं, पाकस्थामानं तुरीयं भोजं इत् अब्रवम् ॥२४॥

अर्थ– हे इन्द्र! हमारे रसीले गोदुग्धमिश्रित छाने हुए सोमरसको पीओ और आनन्दित हो जाओ। साथ आनन्द देनेवाले भाईके समान हमारी वृद्धि (के अनेक विषयोंमें) सोचो। तेरी बुद्धियाँ हमारी सुरक्षा करें ॥१॥ तेरी सुबुद्धि (की

छायामें रहकर) हम बलवान् बनें। (हमारे) शत्रुके लिये हमारी हिंसा न हो। अनेक विलक्षण अद्भुत सहायताओंसे हमें बचाओ। हमें सुखोंके अन्दर योग्य रीतिसे पहुचा दो ॥२॥ हे बहुत धनसे युक्त वीर ! मेरी जो ये वाणियाँ हैं वे तेरे (यशको) बढा देवें। (तथा) तेजस्वी पवित्र विद्वान् लोग स्तोत्रोंसे तुम्हारी प्रशसा गाये ॥३॥ यह (इन्द्र) ऋषियोंके द्वारा सहस्रगुणित बलवान् बननेके कारण समुद्र जैसा विस्तीर्ण (यशवाला) हुआ है। इसका वह सत्य बल, और वह महिमा यज्ञोंके विप्रोंके राज्यमें गाते हैं ॥४॥ देवत्वका विस्तार करनेके लिये इन्द्रको (हम बुलाते हैं), कुटिलतारहित कार्य करनेके समय इन्द्रको (हम बुलाते हैं), युद्धमें विजयप्राप्ति करनेके लिये इन्द्रको ही (हम बुलाते हैं) और धनकी प्राप्तिके लिये भी हम इन्द्रको ही बुलाते हैं ॥५॥ इन्द्रने अपने बलकी महिमासे द्युलोक और पृथ्वीको इतना विस्तृत बनाया है। इन्द्रने सूर्यको प्रकाशित किया। इन्द्रमें ही सब भूत (रहनेके कारण) नियमसे चल रहे हैं। (और ये) सोमरस भी इन्द्रमें ही पहुचते हैं ॥६॥ हे इन्द्र ! मनुष्य स्तोत्रोंसे तुम्हारी ही प्रथम सोमपान करनेके लिये प्रशसा करते हैं। इकट्ठे हुए ऋभु (ऋभु, विभु और वाज ये तीनों) उच्च स्वरसे (तुम्हारा ही काव्य) गाते है और रुद्रवीर (मरुत् वीर) तुझ पुराण पुरुषकी ही प्रशसा गाते हैं ॥७॥ इस सोमरसका उत्साह (सब शरीरमें) व्याप्त होनेपर (हमारा) वीर्य और बल भी इन्द्र बढाता है। इस (इन्द्र) की वह महिमा सब लोग पूर्व समयके समान आज भी गा रहे हैं ॥८॥ मैं उस उत्तम वीर्यको तुम्हारे पाससे मागता हूँ। वह ज्ञान भी (तेरा) पहिले ही चिंतन किया जाय इसलिये (मैं मागता हू), युद्ध छिड जानेपर यतियों और भृगुके लिये जिससे (तुमने सहायता की थी), और जिससे प्रस्कण्वकी सुरक्षा की थी (वह बल भी मुझे चाहिये) ॥९॥ हे इन्द्र ! (जिस बलसे तुमने) समुद्र के लिये बडे जलप्रवाह प्रवाहित किये, वह बल तुम्हारा ही है। इसकी वह महिमा तत्काल ही नष्ट नहीं की जा सकती, जिस (महिमासे) पृथ्वी अनुकूलतासे गति करती है ॥१०॥ हे इन्द्र ! जिस उत्तम वीर्य बल और धनको तुमसे मागता हू, वह हमें दो। (तथा) भक्ति और बल चाहनेवाले (मुझे) प्रथम (यह) दो। हे पुराण पुरुष ! (तेरा यश) गानेकी शक्ति मुझे दे ॥११॥ हे इन्द्र ! बुद्धियोंकी उन्नति चाहनेवाले हमको (वह बल) दो कि जिससे पुरुके पुत्रकी रक्षा की थी। (तथा) हे इन्द्र ! रुशम, श्यावक और कृप (इन राजाओं) की (रक्षा की थी), उस तरह शुभ गति प्राप्त करने वाले मनुष्यकी विशेष रीतिसे सुरक्षा कर ॥१२॥ प्रयत्नशील मानवोंमें कौन भला फूर्तिला नया मनुष्य (इन्द्रकी यथार्थ) स्तुति कर सकता है ? उत्तम उपासक भी इस इन्द्रकी शक्ति और महिमाको (यथार्थत) नहीं जान सकते ॥१३॥ हे इन्द्र ! उपासकोंमें कौन भला (ऐसा है कि जो) देवताओंमेंसे (तुझे ही) ऋत स्वरूप जानते हैं ? कौन ऋषि और कौन विप्र तुम्हारी (ठीक ठीक) प्रशसा कर सकता है ? हे धनवान् इन्द्र ! कब सोमयाग करनेवालेकी प्रार्थना सुनते ही तुम आवोगे ? (और) कब स्तोता उपासकके पास पहुचते हो ? ॥१४॥ ये अत्यत मधुर वाक्य और स्तोत्र कहे जा रहे हैं। जो विजयशील, धनदायी, अक्षय सुरक्षा करनेवाले, बल बढानेवाले रथों (में बैठनेवाले वीरों) की तरह है ॥१५॥ कण्वोंके समान ही, सूर्यके समान तेजस्वी भृगुओंको ध्यानका सपूर्ण (फल) प्राप्त हुआ था। प्रियमेध नामक (विद्वान्) मनुष्योंने स्तोत्रोंसे इन्द्रका यश बढाते हुए उच्च स्वरसे गायन किया था ॥१६॥ हे वृत्रका वध करनेवाले इन्द्र ! (अपने रथको) दो घोडे जोतो। हे धनवान् वीर ! तुम उग्र वीर सोमपानके लिये दर्शनीय मरुत् वीरोंके साथ दूर स्थानसे भी हमारे समीप आओ ॥१७॥ हे इन्द्र ! ये कारीगर और ज्ञानी जन मेधाकी वृद्धि करनेके लिये तुम्हें ही बारबार चाहते हैं। हे धनवान् स्तुत्य वीर ! वह तुम ज्ञानीके समान हमारा भाषण सुनो ॥१८॥ हे इन्द्र ! तुमने वृत्रको बडे धनुष्योंसे मारकर दूर फेंक दिया। कपटी अर्बुद और मृगयक पर्वत (परके दुर्ग) का भेदन करके गौओंको बाहर निकाल दिया ॥१९॥ हे इन्द्र ! (जब तुमने) बडे अहिको अन्तरिक्षसे नीचे हटाया, तब बडा सामर्थ्य (प्रकाशित) किया। (उस समय) सारे अग्नि प्रकाशित हुए, सूर्य भी प्रकाशित हुआ। इन्द्रको अर्पण करनेयोग्य सोमरस भी (तैयार हुआ)॥२०॥ इन्द्र और मरुतोंने जो मुझे दिया, कुरुयाणके पुत्र पाकस्थामाने भी (वैसा ही दान मुझे) दिया, (यह धन) सब (धनों) में स्वय अधिक शोभायमान द्युलोकमें चलनेवाले (सूर्य) के समान (दैदीप्यमान हैं) ॥२१॥ पाकस्थामाने मुझे उत्तम धुरामें लगाने योग्य, दोनों कक्ष्यामें भरने योग्य (हृष्टपुष्ट), लाल रगवाला और धनोंको दर्शानेवाला (एक

घोडा) दिया ॥२२॥ जिसकी धुराको दूसरे दस घोडे ढोते हैं। जैसा घरके प्रति पक्षी (सदा उडनेवालों) ने तुग्रपुत्र (भुज्यु) को लाया था ॥२३॥ (यह पाकस्थामा) अपने पिताके शरीरसे उत्पन्न हुए (औरस और सुयोग्य) पुत्र हैं। इमने वसने योग्य स्थान (या घर), बल देनेवाला (अन्न), और अशन (ये तीन दान) दिये थे, (और) चौथा दान (इस घोडेका) दिया, (इसलिये मैंने) इस दाता पाकस्थामाका (यहां) वर्णन किया है ॥२४॥

इन्द्र- ईश्वर

इस सूक्तमें इन्द्रको परमेश्वरके रूपमें अधिक स्पष्ट वर्णन किया है, वे मन्त्र भाग यहाँ देखिये—

१ अयं (इन्द्रः) ऋषिभि सहस्रं सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे- इस प्रभुकी सहस्रों शक्तियोंका वर्णन अनेक ऋषियोंने किया है, वह प्रभु समुद्रके समान फैला है, अर्थात् वह अथाग गहरा है, सर्वत्र एकरस भरपूर भरा है और शांत तथा गम्भीर है। (मं ४)

२ इन्द्रः शवः मह्ना रोदसी पप्रथत्- प्रभुने अपनी महती शक्तिसे पृथ्वी और द्यौको फैला दिया है। (मं. ६)

३ इन्द्रः सूर्यं अरोचयत्- प्रभुने सूर्यको प्रकाशित किया है। (मं ६)

४ इन्द्रे ह विश्वा भूतानि येमिरे- प्रभुके द्वारा सभी भूत (स्थावर और जगम) नियमसे चलाये जा रहे हैं। (मं.७) सबका सचालक वही प्रभु है।

५ अस्य महिमानं आयवः पूर्वथा अद्य अनुस्तुवन्ति- इस प्रभुकी महिमाको प्राचीन और आधुनिक (कवि) वर्णन करते हैं। (मं ८)

६ (तस्य) पूर्वचित्तये ब्रह्म- उसका प्रथम चिंतन करनेके लिये ज्ञान (ब्रह्मका ज्ञान) चाहिये। (मं ९)

७ समुद्रं मही: अपः असृतः- इसीने बडी नदियोंके जल-प्रवाह समुद्रतक बहा दिये हैं। (मं. १०)

८ ते शवः वृष्णि- उसीका बल प्रतापवर्धक है। (मं १०)

९ यं क्षोणीः अनु चक्रदे, स अस्य महिमा सद्यः न सनशे- जिसके (नियमके) अनुकूल पृथ्वी (आदि सब लोक) शब्द करते हुए (घूम रहे हैं), उसका वह महिमा कभी नाश नहीं होता। (मं. १०) प्रभुका महिमा अखण्ड है।

१० पूर्व्यः- प्रभु सबसे प्राचीन, पुराण पुरुष, सबसे प्रथम उपस्थित, सबका आदि है। (मं ११)

११ स्वः-नरं प्र आवः- आत्मविकासका जो प्रयत्न करते हैं, उनकी सुरक्षा वह प्रभु करता है। (मं. १२)

१२ अस्य इंद्रियं महिमानं नहि आनशुः- इस प्रभुकी जो महिमा है, वह किसी मनुष्यको पूर्णतया समझमें नहीं आ सकती। (मं. १३)

१३ मघाजितः धनसाः अक्षितोतयः वाजयन्तः- उसके सतत विजय हैं, धनदान (उससे मिल रहे हैं), उसकी रक्षणकी शक्तियाँ अटूट हैं, उससे अनन्त बल मिलते हैं। (मं. १५)

१४ आयवः इन्द्रं महयन्तः अस्वरन्- मनुष्य इस प्रभुकी महिमाका वर्णन करते हुए उच्च स्वरसे गान करते हैं। (मं. १६)

१५ कारवः विप्रासः मेधसातये धिया ते वावशुः- कारीगर (कवि) ज्ञानी मेधाबुद्धिकी वृद्धि करनेके लिये अपनी बुद्धिसे उसी प्रभुकी प्राप्ति करना चाहते हैं। (मं. १८)

१६ महां अहिं अन्तरिक्षात् निः अधमः तत् पौंस्यं— बडे मेघको अन्तरिक्षसे (पर्जन्य-रूपमें) नीचे गिराया यह बल (उस प्रभुकाही) है। (मं. २०)

१७ अग्नयः निः रुरुचुः, सूर्यः निः- अग्नि जलते हैं, सूर्य प्रकाशता है (यह सब महिमा उस प्रभुकी ही है)। (मं २०)

१८ विश्वेषां शोभिष्ठं स्वयं दिवि आद्रवन्तं- सब विश्वमें विशेष शोभासे युक्त और स्वयं द्युलोकमें दौडता जैसा दीखनेवाला (सूर्य है, यह भी उसकी महिमा) है। (मं. २१)

ये सब मंत्र इन्द्रका वर्णन कर रहे हैं, तथा ये प्रभु, ईश्वर, परमेश्वरकेही वर्णन हैं। इसका अधिक स्पष्टीकरण करनेकी जरूरत नहीं है। क्योंकि ये मत्र अत्यंत स्पष्ट हैं।

स्मरण करने योग्य मंत्रभाग

इस सूक्तमें स्मरण रखनेयोग्य मन्त्र-भाग ऊपर ईश्वरविषयक जो दिये हैं, वे हैं, पर साथ साथ निम्नलिखित मंत्र-भाग भी माननीय हैं-

१ सधमाद्यः आपिः नः वृधे बोधि- (हमारे) साथ

साथ आनंद करनेके समय बैठनेवाला (मित्र या) बंधु हमारी उन्नति करनेका भी विचार करे। (मं. १) परस्पर एक दूसरेकी उन्नति करनेका विचार करना परस्परका कर्तव्य है। ऐसा कभी न हो कि आनन्दके समय तो सब आजायँ और सहायता करनेके समय कोई उपस्थितही न हो।

२ **धियः अस्मान् अवन्तु**- बुद्धियां हमारी सुरक्षा करें। (मं. १) ऐसा न हो कि विचार-प्रवाहही हमारे घातक हो जायँ।

३ **वयं वाजिनः भूयाम**- हम बलवान् बनें। (मं २)

४ **अभिमातये नः मा स्त**- हमारे शत्रुके अधीन हम कदापि न हो जायँ। (मं.२)

५ **सुम्नेषु नः आ यामय**- सुखोंमें हमारी प्रगति हो। (मं. २)

६ **विपश्चितः शुचयः पावकवर्णाः**- विद्वान् पवित्र और तेजस्वी हों। (मं. ३)

७ **समीके वनिनः**- युद्धके समय विजयकी प्राप्ति की इच्छा करें। (मं. ५)

८ **सुवीर्यं यामि**- उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति चाहिये। (मं. ९)

९ **सुवीर्यं रयिं यामि**- उत्तम शौर्यके साथ रहनेवाला धन चाहिये। (मं. ११)

१० **पौरं आविथ**-नगरवासियोंकी सुरक्षा करो। (मं.१२)

११ **अतसीनां तुरः नव्य मर्त्यः कत् ?** -- प्रयत्नशील, फुर्तीसे कार्य करनेवाला नया (तरुण) मानव कौन है ? (मं.१३) इसकी अपने समाजमें खोज करो।

१२ **मायिनः निः अस्फुरः**-कपटी शत्रुको दूर हटा दो। (मं. १९)

१३ **(अयं पुत्रः) पितुः आत्मा तनूः**—पुत्र पिताका आत्मरूप शरीरही है। औरस पुत्र पिताका आत्मीय शरीर है। (मं. २४)

पंडितोंका राज्य

(यज्ञेषु विप्रराज्ये) यज्ञ-क्षेत्र यह पंडितोंका राज्य है। यज्ञसे सब जगत् का कल्याण होता है। इन यज्ञोंका वर्णन वेदोंमें सर्वत्र है और यह विद्वान् पंडितोंकाही कार्यक्षेत्र है।

ऋषिनाम और अन्य नाम

इस सूक्तमें निम्नलिखित ऋषिनाम आये हैं- **कण्वाः, भृगवः, प्रियमेधासः (मं. १६), कौरयाणः पाकस्थामा (मं. २१), पाकस्थामा (मं. २२-२४), भृगुः प्रस्कण्वः (मं. ९), ऋभुः (मं. ८)** इनमें काण्व गोत्रका इस सूक्तका ऋषि भी है, तथा कुरयाण-पुत्र पाकस्थामा राजाके दानका वर्णन (मं. २१-२२) में है।

पौर (पुरु राजाका पुत्र), रुशम, श्यावक, कृप (मं. १२) ये नाम भी इस सूक्तमें आये हैं।

इस तरह इस सूक्तका विषय बडा मननीय और बोधप्रद है।

---

(१६) वीरकी शक्ति

(ऋ. मं. ८, सू. ३२) १-३० मेधातिथिः काण्वः। इन्द्रः। गायत्री।

प्र कृतान्यृजीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया । मदे सोमस्य वोचत ॥ १
यः सृबिन्दमनर्शनिं पिप्रुं दासमहीशुवम् । वधीदुग्रो रिणन्नपः ॥ २
न्यर्बुदस्य विष्टपं वर्ष्माणं बृहतस्तिर । कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥ ३
प्रति श्रुताय वो धृषत्तूर्णाशं न गिरेरधि । हुवे सुशिप्रमूतये ॥ ४
स गोरश्वस्य वि व्रजं मन्दानः सोम्येभ्यः । पुरं न शूर दर्षसि ॥ ५
यदि मे रारणः सुत उक्थे वा दधसे चनः । आरादुप स्वधा गहि ॥ ६
वयं घा ते अपि ष्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः । त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ७

उत न पितुमा भर सरराणो अविक्षितम् । मघवन्भूरि ते वसु ८
उत नो गोमतस्कृधि हिरण्यवतो अश्विन । इळाभि स रभेमहि ९
बृबदुक्थ हवामहे सृप्रकरस्नमूतये । साधु कृण्वन्तमवसे १०
य संस्थे चिच्छतक्रतुरादीं कृणोति वृत्रहा । जरितृभ्य पुरूवसु ११
स नः शक्रश्चिदा शकद्दानवा अन्तराभर । इन्द्रो विश्वाभिरूतिभि १२
यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वत सखा । तमिन्द्रमभि गायत १३
आयन्तार महि स्थिर पृतनासु श्रवोजितम् । भूरेरीशानमोजसा १४
नकिरस्य शचीना नियन्ता सूनृतानाम् । नकिर्वक्ता न दादिति १५
न नून ब्रह्मणामृण प्राशूनामस्ति सुन्वताम् । न सोमो अप्रता पपे १६
पन्य इदुप गायत पन्य उक्थानि शसत । ब्रह्मा कृणोत पन्य इत् १७
पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृत । इन्द्रो यो यज्वनो वृध १८
वि षू चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुव । इन्द्र पिब सुतानाम् १९
पिब स्वधैनवानामुत यस्तुग्र्ये सचा । उतायमिन्द्र यस्तव २०
अतीहि मन्युषाविण सुषुवासमुपारणे । इम रात सुत पिब २१
इहि तिस्रः परावत इहि पञ्च जनाँ अति । धेना इन्द्रावचाकशत् २२
सूर्यो रश्मिं यथा सृजा त्वा यच्छन्तु मे गिर । निम्नमापो न सध्र्यक् २३
अध्वर्यवा तु हि षिञ्च सोम वीराय शिप्रिणे । भरा सुतस्य पीतये २४
य उद्न फलिग भिनन्न्यक्सिन्धूँरवासृजत् । यो गोषु पक्व धारयत् २५
अहन्वृत्रमृचीषम और्णवाभमहीशुवम् । हिमेनाविध्यदर्बुदम् २६
प्र व उग्राय निष्टुरेऽषाळ्हाय प्रसक्षिणे । देवत्त ब्रह्म गायत २७
यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अन्धस । इन्द्रो देवेषु चेतति २८
इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या । वोळ्हामभि प्रयो हितम् २९
अर्वाञ्च त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षत ३०

अन्वय — हे कण्वा ! ऋजीषिण इन्द्रस्य सोमस्य मदे कृतानि गाथया प्र वोचत ॥१॥ य उग्र (स) अप रिणन् नर्विन्द्र अनर्शनि पिप्रु अहीशुव दास वधीत् ॥२॥ हे इन्द्र ! बृहत अर्बुदस्य वष्मणि विष्टप नि तिर । तत् पौंस्य कृधे ॥३॥ न श्रुताय ऊतये धषा सुशिप्र प्रति हुवे । तूर्णाश न गिरे अधि ॥४॥ हे शूर ! स (त्व) मन्दान गो अश्वस्य व्रज सोम्येभ्य पुर न, वि दर्षसि ॥५॥ मे सुते उक्थे वा यदि रारण, चन दधसे, (तर्हि) आरात् स्वधा उप आ गहि ॥६॥ हे गिर्वण ! इन्द्र ! ते अपि वय घ स्तोतार स्मसि । हे सोमपा ! त्व न जिन्व ॥७॥ हे मघवन् ! उत स रराण अविक्षित पितु न आ भर । ते वसु भूरि ॥८॥ उत न गोमत हिरण्यवत अश्विन कृधि । इळाभि स रभेमहि ॥९॥ ऊतये सृप्र-करस्न अवसे साधु कृण्वन्त, बृबदुक्थ हवामहे ॥१०॥ य संस्थे शतक्रतु , वृत्रहा, आत् ईं कृणोति चित् जरितृभ्य पुरूवसु ॥११॥ स शक्र न चित् आ शकत् । इन्द्र दानवान् विश्वाभि ऊतिभि अन्तराभर ॥१२॥ य राय अवनि महान् सुपार सुन्वत सखा त इन्द्र अभि प्र गायत ॥१३॥ आयन्तार महि पृतनासु स्थिरं, श्रवोजित, ओजसा भूरे ईशान (अभि प्र गायत) ॥१४॥ अस्य सूनृताना शचीनां नियन्ता नकि । न दात् इति वक्ता नकि ॥१५॥ सुन्वता प्राशूनां ब्रह्मणां ऋण न नून अस्ति । अप्रता सोम न पपे ॥१६॥ पन्ये इत् उप गायत पन्ये उक्थानि शसत, पन्ये इत् ब्रह्म कृण्वत ॥१७॥ य वाजी शता सहस्रा आ ददिरत्, (स अय) इन्द्र अवृत पन्य यज्वन वृध ॥१८॥ हे इन्द्र ! अनु आहुव कृष्टीना स्वधा अनु सु वि चर, सुताना पिब ॥१९॥ हे इन्द्र ! स्व-धैनवानां, उत य तुग्र्ये सचा, उत

शिरस्त्राणधारी वीरके लिये सोमरस शीघ्रही अर्पण करो और सोमरस पीनेके लिये (पात्रमें) भर दो ॥ २४ ॥ जिसने जलके लिये मेघको छिन्नभिन्न किया और नदियोंको नीचेकी ओरसे बहने दिया, तथा जिसने गौओंमें परिपक्व दूध धारण किया ॥ २५ ॥ सर्वत्र समान भावसे जिसकी प्रशंसा होती है, (उस इन्द्रने) वृत्र, और्णवाभ, अहीशुवका वध किया और अर्बुदको हिमसे विद्ध किया ॥ २६ ॥ (हे गायको !) उग्र वीर, त्वरासे कार्य करनेवाले, शत्रुका पराभव करनेवाले, नित्य साथ रहनेवाले आपके इन्द्रके लिये देवोंको प्रसन्न करनेवाला गान गाओ ॥ २७ ॥ अन्नरूप सोमसे उत्साह बढनेपर सारे कर्मोंका ज्ञान यह इन्द्र देवोंमें जगाता है ॥२८॥ वे साथसाथ उत्साह बढानेवाले, सुवर्ण जैसे बालोंवाले, दोनों घोडे हितकारक अन्नको ढोकर यहां ले आवें ॥ २९ ॥ हे अनेकों द्वारा प्रशंसित ! तुम्हें, प्रियमेधद्वारा जिनकी प्रशंसा हुई है, ऐसे दोनों घोडे सोमपानके लिये हमारे सम्मुख ले आवें ॥ ३० ॥

स्मरण रखने योग्य मंत्रभाग

१ सोमस्य मदे इन्द्रस्य कृतानि गाथया प्रवोचत– सोमपानसे बढे हुए उत्साहमें इन्द्रने जो पराक्रम किये उनकी गाथाओंका गायन करो । (मं. १) **अन्धसः सोमस्य मदे विश्वानि व्रता**– अन्नरूप सोमके उत्साहमें अनेक शुभ कार्य किये जाते हैं । (मं. २८) इससे सिद्ध होता है कि सोमपान करनेके पश्चात् जो उत्साह आता है, उससे होनेवाले पराक्रम काव्यगायनके लिये योग्य समझे जाते हैं । अर्थात् सोमपानसे बेहोशी या नशा नहीं आती, मनुष्य सावध रहता है और अच्छे पराक्रम करता है ।

२ ऊतये धृषत् सुशिप्रं हुवे।– सुरक्षाके लिये शिरस्त्राणधारी शूरवीरको बुलाते हैं । (मं. ४) शूरसेही सुरक्षा हो सकती है ।

३ मन्दानः पुरं वि दर्षसि– सोमपानसे आनन्दित हुआ तू शत्रुके किलेको तोड देता है । (मं. ५) यह भी सोमपानके बाद होनेवाला पराक्रम है । ऐसे कार्यके लिये विचार करने योग्य मन रहना आवश्यक है ।

४ अपिक्षितं पितु नः आभर– अक्षय अन्न हमारे लिये ले आ । (मं. ८) नीरोग अन्न लेना चाहिये ।

५ नः गोमतः अश्विनः हिरण्यवतः कृधि– हमें गौवों, घोडों और सुवर्णादि धनोंसे युक्त कर । (मं. ९) यहां 'हिरण्य' पद सुवर्णके सिक्केका वाचक है । 'सुवर्ण' तथा 'निष्क' ये पद भी सिक्केके वाचक हैं ।

६ इष्टाभिः सं रभेमहि– अन्न प्राप्त होनेपर हम सब इकट्ठे होकर कार्य करेंगे । (मं. ९)

७ ऊतये प्रत्न-कर्त्नं हवामहे– सुरक्षाके लिये हम प्राचीन पराक्रमी काम आगे बढानेवाले (वीर) को बुलाते हैं । (मं. १०)

८ अवसे साधु कृण्वन्तं हवामहे– सुरक्षाके लिये शुभ कार्य करनेवाले (वीर) को बुलाते हैं । (मं. १०)

९ शतक्रतुः संस्थे ईं कृणोति चित्– सैंकडों प्रशस्त कर्मोंको करनेवाला अपनी संस्थामें निःसंदेह (शुभ कार्य) करता है । (मं. ११) किसी संस्थाको उन्नत करनेके लिये ऐसेही पुरुषकी आवश्यकता होती है ।

१० शक्रः नः आशकत— जो स्वयं समर्थ होता है, वह हमें भी सामर्थ्यवान् कर सकता है । (मं. १२)

११ दानवान् विश्वाभिः ऊतिभिः अन्तराभर– दाता वीर अपनी अनेक संरक्षक शक्तियोंसे हमारे अन्दरके छिद्र दूर कर सकता है । (मं. १२) वीर तथा दूसरोंका भला करनेके लिये आत्मार्पण करनेवाला शूर पुरुषही ठीक तरहसे अपने सामर्थ्योंसे दूसरोंके दोष दूर कर सकता है और वहांकी न्यूनताओंको परिपूर्ण कर सकता है ।

१२ रायः अवनिः सुपारः महान् सखा– जो धनकी ठीक तरह रक्षा कर सकता है, वह दुःखोंसे पार करनेवाला बडा मित्रही है । (मं. १३) धन हरएक स्थानमें सहायता करता है, इसलिये धनका रक्षक बडा सहायक है । यहां 'धन' पदसे सब प्रकारका धन लेना उचित है ।

१३ पृतनासु स्थिरं, आयन्तारं, श्रवोजितं, ओजसा भूरेः ईशानं (प्रगायत)— युद्धोंमें अपने स्थानमें स्थिर रहकर लडनेवाले, *सबको नियमोंमें रखनेवाले*, *यशस्वी*, विजयी, अपनी शक्तिसे महान् अधिपति वीरके काव्यका गान करो । (मं. १४) ऐसे वीरोंके काव्योंका गान करना चाहिये ।

१४ अस्य सूनृतानां शचीनां नियंता नकिः– इस

वीरका सची शक्तियोंको नियमनमें रखनेवाला दूसरा कोई नहीं है। (मं. १५)

१५ सुन्वतां ब्रह्मणां ऋणं न- यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण ऋणरहित होते हैं। (मं. १६) 'यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।' (गी. ३।९) यज्ञसे भिन्न कर्म मानवोंको बंधनमें डालते हैं। यह गीतावचन इस मंत्र-भागके साथ तुलना करने योग्य है।

१६ वाजी सहस्रा आदर्दिरत्, अवृतः, वृधः- बलवान् वीर सहस्रों शत्रुओंका नाश करता है, (स्वयं) घेरा नहीं जाता और (अपने लोगोंको) बढाता भी है। (मं. १८)

१७ कृष्टीनां स्व-धा अनु सुविचर- प्रजाजनोंकी निज धारणा-शक्तिको बढानेके लिये अनुकूल चालचलन करो।(मं.१९)

१८ मन्यु-साविनं, उपारणे सु-सुवांसं अति इहि- क्रोधसे यज्ञ करनेवाले, निंदित हीन स्थानमें कार्य करनेवाले, इन दोनोंको दूर करो। (मं. २१) अर्थात् शुभ कार्य मनकी प्रसन्नतासे करने चाहिये और सुयोग्य स्थानमें करने चाहिये।

१९ उग्राय निष्टुरे अषाळ्हाय प्रसक्षिणे ब्रह्म गायत- उग्र वीर, शीघ्रतासे कार्य करनेवाले, शत्रुपर प्रचण्ड आक्रमण करनेवाले, सदा सज्ज रहनेवाले वीरका काव्य गाओ। (मं. २७)

ये सब मंत्रभाग विचार करने योग्य हैं।

शत्रुके नाम

इस सूक्तमें निम्नलिखित नाम इन्द्रके शत्रुओंके आये हैं- सृबिंद, अनर्शनि, पिप्रु, अहीशुव, दास (मं. २), अर्बुद, (मं. ३), वृत्र, और्णवाभ (मं. २६)

ऋषि-नाम

'प्रियमेध' यह एक ऋषिनाम इस सूक्तके मं. ३० वें मंत्रमें आया है। यह आंगिरस गोत्रमें उत्पन्न ऋषि है। इसके मंत्र ऋचा ८।२ (मं. ४०); ८।६८ (मं. १९); ८।६९ (मं.१८); ८।८७ (मं.६); ९।२८ (मं. ६) में हैं (कुल मंत्र ८९) ८।२।१-४० इस सूक्तका अर्थ इसी पुस्तकमें आ चुका है।

मंत्र करना

इस सूक्तके १७ वें मंत्रमें 'पन्ये ब्रह्म कृणोत' अर्थात् 'प्रशंसनीय (देवता)का मंत्र या स्तोत्र करो,' ऐसा कहा है। वेदके 'मंत्रपति, मंत्रकृत् और मन्त्रद्रष्टा' ऋषि होते हैं। इनमेंसे 'मंत्रकृत्' ऋषियोंका यह मंत्र स्पष्टीकरण करता है।

---

(१७) सत्यबली वीर

(ऋ. मं. ८, सू. ३३) १-१९ मेध्यातिथिः काण्वः। इन्द्रः। बृहती, १६-१८ गायत्री, १९ अनुष्टुप्।

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः। पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते १
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः। कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः २
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम्। पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ३
पाहि गायान्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे। यः संमिश्लो हर्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः ४
यः सुषव्यः सुदक्षिण इनो यः सुक्रतुर्गृणे। य आकरः सहस्रा यः शतामघ इन्द्रो यः पूर्भिदारितः ५
यो धृषितो योऽवृतो यो अस्ति श्मश्रुषु श्रितः। विभूतद्युम्नश्च्यवनः पुरुष्टुतः क्रत्वा गौरिव शाकिनः ६
क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे। अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ७
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे। नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा ८
य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः। यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ९
सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवृतः। वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः १०

वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी । वृषा रथो मघवन्वृषणा हरी वृषा त्वं शतक्रतो ११
वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्नृजीपिन्ना भर । वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्वा तुभ्यं स्थातर्हरीणाम् १२
एन्द्र याहि पीतये मधु शविष्ठ सोम्यम् । नायमच्छा मघवा शृणवद्गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतु १३
वहन्तु त्वा रथेष्ठामा हरयो रथयुजः । तिरश्चिदर्यं सवनानि वृत्रहन्नन्येषां या शतक्रतो १४
अस्माकमद्यान्तमं स्तोमं धिष्व महामह । अस्माकं ते सवना सन्तु शंतमा मदाय द्युक्ष सोमपाः १५
नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति । यो अस्मान्वीर आनयत् १६
इन्द्रश्चिद्घा तदब्रवीत्स्त्रिया अशास्यं मनः । उतो अह क्रतुं रघुम् १७
सप्ती चिद्घा मदच्युता मिथुना वहतो रथम् । एवेद्धूर्वृष्ण उत्तरा १८
अधः पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर । मा ते कशप्लकौ दृशन्स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ १९

अन्वय.- हे वृत्रहन् ! सुतवन्तः आपः न, पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृक्तबर्हिषः, वयं घ स्तोतारः त्वा परि उपासते ॥१॥ हे वसो इन्द्र ! सुते निरेकं उक्थिनः नरः त्वा स्वरन्ति । सुतं तृषाणः, स्वब्दी इव वंसगः, कदा ओकः आ गमः ? ॥२॥ हे धृष्णो ! कण्वेभिः सहस्रिणं वाजं आ दर्षि । हे मघवन् विचर्षणे ! पिशङ्गरूपं गोमन्तं क्षुमन्तं मक्षु ईमहे ॥ ३ ॥ हे मेध्यातिथे ! पाहि । अन्धसः मदे इन्द्राय गाय । यः हर्योः संमिश्लः, यः च सुते सचा, वज्री, (यस्य) हिरण्ययः रथः ॥ ४ ॥ यः सुसव्यः सुदक्षिणः इनः, यः सुक्रतुः, यः सहस्रा आकरः, यः शतामघः, यः पूर्भित्, आरितः, (सः) इन्द्रः गृणे ॥ ५ ॥ यः धृषितः, यः अवृतः, यः श्मश्रुषु श्रितः अस्ति । (यः) विभूतद्युम्नः, च्यवनः, पुरुष्टुतः, क्रत्वा गौः इव शाकिनः (भवति) ॥ ६ ॥ सुते सचा पपिवांसं कः वेद ? कत् वयः दधे ? यः अयं इन्द्रः शिप्री, अन्धसः मन्दानः, ओजसा पुरः विभिनत्ति ॥ ७ ॥ दाना, वारणः मृगः न पुरुत्रा चरथं दधे । त्वा नकिः नि यमत् । सुतं आ गम । महान् ओजसा चरसि ॥८॥ यः उग्रः सन् अनिष्टृतः स्थिरः रणाय संस्कृतः (सः) मघवा इन्द्रः यदि स्तोतुः हवं शृणवत्, न योषत् । आ गमत् ॥ ९ ॥ हे उग्र ! (त्वं) सत्यः इत्था वृषा इत् असि । वृषजूतिः न अवृतः । वृषा हि शृण्विषे । परावति वृषा अर्वावति (वृषा एव) श्रुतः ॥१०॥ हे मघवन् ! ते अभीशवः वृषणः, हिरण्ययी कशा वृषा । रथः वृषा, हरी वृषणा, हे शतक्रतो ! त्वं वृषा ॥११॥ हे वृषन् ! सोता वृषा ते सुनोतु । हे ऋजीषिन् ! आ भर । हे हरीणां स्थातः ! तुभ्यं नदीषु वृषणं वृषा दधन्वे ॥ १२ ॥ हे शविष्ठ इन्द्र ! सोम्यं मधु पीतये आ याहि । अयं मघवा सुक्रतुः गिरः ब्रह्म उक्था च न अच्छ शृणवत् ॥१३॥ हे वृत्रहन् शतक्रतो ! रथे-स्थाः अर्यं त्वा रथयुजः हरयः अन्येषां याः सवनानि तिरः चित् आ वहन्तु ॥ १४ ॥ हे महामह ! अद्य अन्तमं अस्माकं स्तोमं धिष्व । हे द्युक्ष सोमपाः ! ते मदाय अस्माकं सवना शंतमा सन्तु ॥ १५ ॥ यः वीरः अस्मान् आ अनयत्, सः (इन्द्रः) तव शास्त्रे नहि रण्यति । मम नो रण्यति ! अन्यस्य अपि न रण्यति ॥ १६ ॥ इन्द्रः चित् घ तत् अब्रवीत् स्त्रियाः मनः अशास्यं, उतो अह क्रतुं रघुम् ॥ १७ ॥ मदच्युता सप्ती रथं मिथुना चित् घ वहतः एव इत् । वृष्णः धूः उत्तरा ॥ १८ ॥ अधः पश्यस्व, मा उपरि । पादकौ संतरां हर । ते कशप्लकौ मा दृशन् । हि ब्रह्मा स्त्री बभूविथ ॥ १९ ॥

अर्थ- हे वृत्रवधकर्ता ! सोमका रस निकालकर जलप्रवाहके (पास बटनेके) समान पवित्र छाननीसे नीचे स्रवनेवाले (सोमरसकी धाराओंके पास) आसनोंको फैलाकर, हम उपासक तुम्हारे चारों ओर बैठते हैं ॥१॥ हे निवासक इन्द्र ! सोमरसके (छाननीसे) नीचे उतरनेके समय गायक नेताजन तुम्हारा ही यशगान करते हैं। सोम पीनेके लिये तृषित होकर शब्द करते हुए (आनेवाले) बैलके समान, कब (तुम हमारे) घर आवोगे ? ॥२॥ हे शत्रुका धर्षण करनेवाले ! कण्वोंने सहस्रगुणित सामर्थ्य (मांगा था, वह तुम उनको) दो। हे धनवान् दूरदर्शी इन्द्र ! शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ, पीले रंगवाला (सुवर्णादि धनसे युक्त), गौओंसे युक्त, अन्न (वाला सामर्थ्य) हमें शीघ्र मिलना चाहिये ॥३॥ हे मेध्यातिथे ! सोमपान करो। इस अन्नरूप सोमके उत्साहमें इन्द्रका स्तोत्र गाओ। वह (इन्द्र) दो घोडे (अपने रथको) जोतते हैं, जो सोमयागमें साथ रहते हैं, वज्र (अपने हाथमें) धारण करते हैं और (जिसका) सुवर्णका रथ है ॥४॥ जिसका बायां हाथ उत्तम है और दाहिना हाथ भी उत्तम (कार्यक्षम) है, जो स्वामी है, जो उत्तम कर्म करने

हैं, जो सहस्रों (शुभ गुणों) की खान हैं, सैंकडो धनोंसे युक्त हैं, जो शत्रुके कीलोंको तोडते हैं और जो (यज्ञोंमें) जाते हैं, (उस) इन्द्रकी स्तुति करो ॥५॥ जो (शत्रुओंका) धर्षण करते हैं, जो (शत्रुओं द्वारा) कभी घेरे नहीं जाते, जो दाढीमूछियोंवाले (शत्रुओंमें) घुसकर (युद्ध करते रहते) हैं। जो अनेक धनोंसे युक्त, शत्रुको हिलानेवाले, अनेकों द्वारा प्रशंसित (हैं, वे) प्रयत्न करनेवाले, शक्तिमानोंके लिये गौके समान (होते हैं) ॥६॥ सोमरस (तैयार होनेपर) साथ साथ बैठकर पीनेवाले (इन्द्रको) कौन जानता है ? कौन उसको अन्नका अर्पण करता है ? जो यह इन्द्र शिरस्त्राण धारण करनेवाले, अन्नरूप सोमरससे उत्साहित होनेवाले और अपने बलसे शत्रुके कीलोंको तोडनेवाले हैं ॥७॥ मदकी धाराओंका धारण करनेवाला हाथी जैसा अपने शत्रुको ढूंढता फिरता है, वैसा (इन्द्र सोमका मद-उत्साह धारण करके सोम-यज्ञकी खोज करनेके लिये) अनेक स्थानोंमें जाता है। (हे इन्द्र !) तुम्हें कोई अपने शासनमें नहीं रख सकता। सोमरस (के पान) के समय पधारो। (तुम) बडे बलके साथ संचार करते हो ॥८॥ जो उग्र (वीर होने) के कारण (जिसको युद्धसे) निवृत्त कोई नहीं कर सकता, जो सदा युद्धमें स्थिर रहते हैं, जो युद्धके लिये (शस्त्रोंसे) अलंकृत होकर (तैयार रहते हैं), यह धनवान् इन्द्र यदि स्तोताका शब्द सुनते हैं, तब तो वह अन्यत्र नहीं जाते, (परंतु वहीं) आते हैं ॥९॥ हे उग्र वीर ! तुम सचमुच ऐसे ही महा बलवान् हो, बलवानोंके पास आकर्षित होते हो और हमारे (शत्रुओंसे) कभी घेरे नहीं जाते। बलवान् (करके तुम) सुने जाते हैं। तुम (जैसे) दूरके स्थानमें बलवान् हैं वैसे ही समीपके स्थानमें (भी बलवान् करके) विख्यात हो ॥१०॥ हे धनवान् वीर ! तेरे घोडेकी रस्सियाँ बलवान् हैं, तुम्हारी सोनेकी चाबुक बलवान् है, तुम्हारा रथ बलवान् है, घोडे बलवान् हैं और हे सौ कर्म करनेवाले वीर ! तुम भी बलवान् हो ॥११॥ हे बलशालिन् ! सोमरस निचोडनेवाला बलवान् (याजक) तुम्हारे लिये सोमरस निकाले। हे सीधे आगे बढनेवाले वीर ! (धन यहां) भर दो। हे घोडोंके (रथमें) खडे होनेवाले वीर ! तुम्हारे लिये नदियों (के जल-प्रवाहों) में बलवर्धक सोमको बलवान् (याजक धोनेके लिये) धारण करते हैं ॥१२॥ हे बलवान् इन्द्र ! सोमका मधुर रस पीनेके लिये आओ। (न आया तो) यह धनवान् उत्तम कर्म करनेवाला हमारी वाणी, स्तोत्र और गानको नहीं सुन सकता ॥१३॥ हे वृत्रवधकर्ता, सैंकडो कर्मोंको करनेवाले वीर ! रथमें बैठनेवाले तुझ स्वामीको, रथके साथ जोते दोनों घोडे अन्योंके यज्ञोंका तिरस्कार करते हुए यहां (हमारे यज्ञमें) ले आवें ॥१४॥ हे परम पूजनीय वीर ! आज हमारे पासके इस स्तोत्रका धारण (श्रवण) करो। हे तेजस्वी सोमपान करनेवाले वीर ! तुम्हारे आनन्दके लिये किये हमारे सोमसवन (हमारे लिये) सुखदायी हों ॥१५॥ जो वीर (इन्द्र) हमारे नेता हुए हैं, वह (इन्द्र) न तुम्हारे शासनमें (रहना) पसन्द करते हैं, न मेरे (शासनमें रहना) पसंद करते हैं। और न किसी दूसरेकी शासनमें (रहना) पसंद करते हैं ॥१६॥ इन्द्रने ही निश्चयसे कहा था कि स्त्रीके मनको स्वाधीन रखना अशक्य है। और उसकी (बुद्धि तथा) कर्म-शक्ति छोटी होती है ॥१७॥ मदमत्त दो घोडे (इन्द्रके) रथको ले जाते हैं। उस बलवान् (इन्द्रके रथकी) धुरा अधिक उत्तम है ॥१८॥ (हे स्त्री !) तुम नीचे देखा करो, ऊपर नहीं। पैरोंको पास रखते (हुए) चलो। तुम्हारे शरीरके दोनों भाग-गुह्य और पिंडरियां- कोई न देख सके (ऐसा कपडा पहनो)। क्योंकि तू (पहिले) ब्रह्मा (का कार्य करनेवाला पुरुष) था, उसकी स्त्री बनी है ॥१९॥

स्मरण रखने योग्य मन्त्रभाग

इस सूक्तमें निम्न लिखित मंत्र-भाग स्मरण योग्य हैं—

१ सहस्रिणं वाजं आ दर्षि- सहस्रों प्रकारका बल, (अन्न या वीर्य) दो। (मं. ३)

२ उत्सु पिशंगरूपं गोमन्तं वाजं ईमहे- चतुर हुए हरेकका सामर्थ्य बढानेवाला, सुवर्णके रूपमें विद्यमान, गौएं जिसके साथ रहती हैं, ऐसा सामर्थ्य हम चाहते हैं। (मं. ३)

३ सुसव्यः सुदक्षिणः इनः- जिसके बायां और दाहिना ये दोनों हाथ उत्तम कार्य करते हैं, वह स्वामी योग्य है। (मं ५) दोनों हाथोंसे उत्तम कार्य करना आवश्यक है।

४ सुक्रतुः, सहस्रा आकरः, पूर्भित्— उत्तम कर्म करनेवाला, सहस्रों गुणोंकी खान, शत्रु नगरोंको तोड डालने-

वला वीर उत्तम है। (मं ५)

५ विभूतद्युम्नः, च्यवनः, पुरुस्तुतः- बहुत धनवाला, शत्रुको स्थानभ्रष्ट करनेवाला, अनेकोंद्वारा प्रशंसित वीर उत्तम है। (मं. ६)

६ घृषितः अवृतः-शत्रुओंपर जोरदार हमला करनेवाला, परंतु शत्रुओंसे कभी घेरा नहीं जाता, ऐसा बडा पराक्रमी वीर प्रशंसाके योग्य है। (मं. ६)

७ ओजसा पुरः विभिनत्ति- अपने बलसे शत्रुके कीले तोड देता है। (मं. ७)

८ मृगः पुरुत्रा चरथं दधे- (शत्रुको) ढूंढनेवाला वीर चारों ओर भ्रमण करता है। (मं. ८)

९ नकिः नियमत्- कोई (शत्रु इस वीरको अपने) शासनमें नहीं रख सकता। (मं. ८) अर्थात् यह कभी पराहत नहीं होता।

१० ओजसा महान् (भूत्वा) चरसि- निज बलके कारण बडा होकर विचरता है। (मं. ८)

११ उग्रः अनिष्टृतः स्थिरः रणाय संस्कृतः- उग्र प्रचण्ड वीर पराजित न होता हुआ, युद्धमें स्थिर रहता है, यह युद्धकी शिक्षा लेकर (सब शस्त्रास्त्रोंसे) सुसज्जित हुआ होता है। (मं. ९) यहांका 'संस्कृतः युद्धाय' ये पद बडे महत्वके हैं। युद्ध-शिक्षा लेकर जो उत्तीर्ण होता है, वह 'रणाय संस्कृतः' है। इस तरह युद्धकी शिक्षा दी जाती थी, यह इससे प्रतीत होता है। युद्धके संस्कारोंसे वीरोंको युक्त करना चाहिये, यह बात यहां स्पष्ट होती है।

१२ 'सत्य बली वीर' वे हैं कि जिसके रथ, घोडे, लगाम, चाबुक, आदि सब युद्ध साहित्य उत्तम और श्रेष्ठ बलसे युक्त हो, किसीमें किसी तरहकी न्यूनता न हो। और जो अपने देशमें और दूर देशमें भी बलवान् सिद्ध हो सकते हैं। (मं १०-११)

१३ जो 'सच्चा वीर' है वह किसी दूसरेकी पराधीनतामें नहीं रहता। (मं. १६)

१४ वृष्णः धूः उत्तरा- बलवान्की धुरा सदा ऊपर रहती है। (मं. १८)

स्त्रियोंके विषयमें

इस सूक्तमें स्त्रियोंके विषयमें आदेश आये हैं-

१ स्त्रियाः मनः अशास्यं- स्त्रियोंके मनको संयममें रखना कठिन है। स्त्रियोंके मनपर काबू करना अशक्य है। (मं. १७)

२ स्त्रियाः क्रतुः रघुः- स्त्रियोंके कर्म छोटे होते हैं, उनका सामर्थ्य कम होता है, उनकी बुद्धि छोटी होती है। (मं. १७)

३ हे स्त्री ! (अधः पश्यस्व) नीचेकी ओर देखती हुई खडी रह। (मा उपरि) ऊपर न देखो। (पादकौ संतरां हर) पांव पासपास रखकर चलो। (ते कशप्लकौ मा दृशन्) तेरे शरीरके गात्र किसीको न दीखें, विशेषतः ओठ और पिंडरीयाँ ढंकी रहें अर्थात् सब शरीर कपडेसे अवगुंठित रहे। (मं. १९)

इस तरह इस सूक्तमें वचन हैं, जो स्मरण रखने योग्य हैं।

स्त्रीका पुरुष बनाना

इस सूक्तके अन्तिम मंत्रमें (ब्रह्मा स्त्री बभूविथ) ब्रह्माका कार्य करनेवाला पुरुष स्त्री बनी थी, ऐसा कहा है। इस औंध नगरीमें 'कुमारी गोदावरी' नामकी एक कुमारी थी। उसकी एक तरुणके साथ शादी हो चुकी। स्त्री-पुरुषोंका मेल होनेसे पता लगा कि श्रीमती गोदावरीके अवयव ठीक स्त्रीके समान नहीं हैं। अन्तमें डाक्टरोंने शस्त्रप्रयोगसे ऊपरका भाग काटकर फेंक दिया, तब पता लगा कि वह अन्दरसे उत्तम पुरुष है। तब उस पुरुषकी शादी किसी दूसरी कुमारीसे हुई, प्रथम विवाह रद्द हुआ। यह परिवार अबतक जीवित है और बालबच्चोंके साथ आनंदमें है।

जन्मके १८ वर्षतक स्त्री रही हुई मानवीका इस तरह पुरुष हुआ। उक्त मंत्रमें पहिले पुरुष था, उसकी स्त्री बनी और पश्चात् वह पुरुष बना होगा। यह कैसा हुआ इसका पता लगाना चाहिये। (ऋ. ८।११२८ मंत्र देखो, वहां पुनः पुरुषत्व की प्राप्ति होनेका विधान है।)

यहां मेधातिथिका दर्शन समाप्त हुआ।

नवम मण्डल

(१८) सोम देवता

(ऋ. मं. ९, सू २) १-१० मेधातिथिः काण्वः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या । इन्द्रमिन्दो वृषा विश १
आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः । आ योनिं धर्णसिः सदः २
अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः । अपो वसिष्ट सुक्रतुः ३
महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ४
समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ५
अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण रोचते ६
गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भसे ७
तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तयो महीः ८
अस्मभ्यमिन्दविन्द्रयुर्मध्वः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाँइव ९
गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः १०

अन्वयः- हे सोम ! देववीः, रंह्या पवित्रं अति पवस्व । हे इन्दो ! वृषा इन्द्रं आ विश ॥१॥ हे इन्दो ! महि वृषा, द्युम्नवत्तमः, धर्णसिः, प्सरः आ वच्यस्व । योनिं आ सदः ॥२॥ सुतस्य वेधसः धारा प्रियं मधु अधुक्षत । सुक्रतुः अपः वसिष्ट ॥३॥ यत् गोभिः वासयिष्यसे, (तत्) महान्तं त्वा सिंधवः महीः आपः अनु अर्षन्ति ॥४॥ समुद्रः विष्टम्भः दिवः धरुणः अस्मयुः सोमः पवित्रे अप्सु ममृजे ॥५॥ वृषा, हरिः, महान्, मित्रः न दर्शतः, अचिक्रदत्, सूर्येण सं रोचते ॥६॥ हे इन्दो ! ते ओजसा अपस्युवः गिरः मर्मृज्यन्ते, याभिः (त्वं) मदाय शुम्भसे ॥७॥ तव प्रशस्तयः महीः । घृष्वये उ लोककृत्नुं मदाय ईमहे ॥८॥ हे इन्दो ! इन्द्रयुः मध्वः धारया, वृष्टिमान् पर्जन्यः इव, अस्मभ्यं पवस्व ॥९॥ हे इन्दो ! यज्ञस्य पूर्व्यः आत्मा, गोषाः, नृषाः, अश्वसाः उत वाजसाः असि ॥१०॥

अर्थ— हे सोम ! (तुम) देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करता हुआ, वेगसे, इस पवित्र (छाननीसे) नीचे गिरो। हे सोम ! तुम बल बढानेके लिये इन्द्रके पास प्राप्त हो ॥१॥ हे सोम ! तुम महान् बलवान, तेजस्वी और धारण शक्तिसे युक्त हो, (हमारे लिये) रसको प्रवाहित करो । और तुम अपने स्थानपरहि रहो ॥२॥ रस निचोडे बलदाता (सोम) की धारा प्रिय मधुर रसको दुहती है । उत्तम कर्मका करनेवाला (यह सोम) जल (रूप वस्त्र) पहनता है ॥३॥ जब (तुम) गौओंके (दूधके द्वारा) ढंक जाते हो, (तब) बडे होनेवाले तुमको नदियोंके जल आते हैं (जल तुम्हारेमें संमिलित होते हैं) ॥४॥ (यह सोमरस) समुद्र जैसा है, सबका स्तंभन करनेवाला, द्युलोकका धारण करनेवाला, हमारे (यज्ञमें) आनेवाला सोम इस पवित्र छाननीपर जलोंमें शुद्ध किया जाता है ॥५॥ बलवर्धक, हरे रंगवाला, बडा मित्रके समान दर्शनीय (यह सोम) शब्द करता है और सूर्य-प्रकाशके साथ प्रकाशित होता है ॥६॥ हे सोम ! तुम्हारे बलसे कर्मकी प्रेरणा करनेवाली वाणियाँ शुद्ध होती हैं, जिनसे कि तुम आनन्दित होकर शोभते हो ॥७॥ तुम्हारी बडी प्रशंसायें हैं। शत्रुका घर्षण करनेके लिये उत्तम स्थानकी निर्मिति करनेवाले हम तुम्हें आनन्द प्राप्त करनेके लिये चाहते हैं ॥८॥ हे सोम ! इन्द्रको प्राप्त करनेकी इच्छा करता हुआ मधुर धारासे, वृष्टि करनेवाले मेघके समान हमारे सामने रस-रूपसे शुद्ध होते रहो ॥९॥ हे सोम ! तुम यज्ञका प्राचीन आत्माही है, तुम गौ, वीर पुत्र, घोडे और अन्नका प्रदान करते हैं ॥१०॥

(१९)

(ऋ. मं. ९, सू. ४१) १-६ मेध्यातिथिः काण्वः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ १
सुवितस्य मनामहेऽति सेतुं दुराव्यम् । साह्वांसो दस्युमव्रतम् ॥ २
शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३
आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् । अश्वावद्वाजवत्सुतः ॥ ४
स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण । उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५
परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः । सरा रसेव विष्टपम् ॥ ६

अन्वयः— ये (सोमाः) गावः न, भूर्णयः त्वेषाः अयासः कृष्णां त्वचं अपघ्नन्तः प्र अक्रमुः ॥१॥ सुवितस्य सेतुं, अव्रतं दस्युं साह्वांसः, दुराव्यं अति मनामहे ॥२॥ पवमानस्य शुष्मिणः स्वनः वृष्टेः इव शृण्वे, दिवि विद्युतः चरन्ति ॥३॥ हे इन्दो ! सुतः गोमत् हिरण्यवत् अश्ववत् वाजवत् महीं इषं आ पवस्व ॥४॥ हे विचर्षणे ! सूर्यः रश्मिभिः उषाः न, स (त्वं) पवस्व, मही रोदसी आ पृण ॥५॥ हे सोम ! नः शर्मयन्त्या धारया, रसा विष्टपं इव, विश्वतः परि सर ॥६॥

अर्थ— जो (सोमरस) गायोंके समान, वनमें जानेवाले तेजस्वी और गतिशील हैं, वे (अपनी) काली चमडीका नाश करते हुए, आगे बढते हैं ॥१॥ उत्तम कर्मोंके सेतु जैसे, तथा व्रतपालन न करनेवाले दुष्टोंको दबानेवाले, दुष्टमति शत्रुको परास्त करनेवाले (इस सोमकी) हम प्रशंसा करते हैं ॥२॥ सोमरस निकालनेके समय बलवर्धक (सोम) का शब्द मैं, वृष्टिके शब्दके समान, सुनता हूं । अन्तरिक्षमें इसकी दीप्तियाँ विचर रहीं हैं ॥३॥ हे सोम ! रस निकालनेपर गौवों, सुवर्ण, घोडों और बलोंसे युक्त बडा सामर्थ्यवान् अन्न (हमारे पास) भेजो ॥४॥ हे विशेष देखनेवाले (सोम) ! जैसा सूर्य किरणोंसे उषाओंको (भर देता है), वैसे ही तुम प्रवाहित होकर द्यावा-पृथिवीको पूर्ण करो ॥५॥ हे सोम ! हमें सुख बढानेवाली धारासे, नदी भूमिको भर देती है वैसे, चारों ओरसे प्रस्रित करो ॥६॥

(२०)

(ऋ. मं. ९, सू. ४२) १-६ मेध्यातिथिः काण्वः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

जनयन्रोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यम् । वसानो गा अपो हरिः ॥ १
एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि । धारया पवते सुतः ॥ २
वावृधानाय तूर्वये पवन्ते वाजसातये । सोमाः सहस्रपाजसः ॥ ३
दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यते । क्रन्दन्देवाँ अजीजनत् ॥ ४
अभि विश्वानि वार्याभि देवाँ ऋतावृधः । सोमः पुनानो अर्षति ॥ ५
गोमन्नः सोम वीरवदश्वावद्वाजवत्सुतः । पवस्व बृहतीरिषः ॥ ६

अन्वयः— (अयं) हरिः, दिवः रोचना जनयन्, अप्सु सूर्यं जनयन्, गाः अपः वसानः (पवते) ॥१॥ एषः देवः सुतः, प्रत्नेन मन्मना देवेभ्य धारया परि पवते ॥२॥ सहस्रपाजसः सोमाः, वावृधानाय तूर्वये वाजसातये, पवन्ते ॥३॥ प्रत्नं इत् पयः दुहानः पवित्रे परिषिच्यते । क्रन्दन् देवान् अजीजनत् ॥४॥ सोमः पुनानः विश्वानि वार्या, अभि (अर्षति), ऋतावृधः देवान् अभि अर्षति ॥५॥ हे सोम ! सुतः (त्वं) नः गोमत् वीरवत् अश्ववत् वाजवत् बृहतीः इषः पवस्व ॥६॥

अर्थ— यह हरा सोम, द्युलोकका प्रकाश उत्पन्न करता हुआ, जलोंमेंसे सूर्यको प्रकट करता है और गोदुग्ध और जलसे ढंका जाता है ॥१॥ यह सोमदेव रस निकालनेके बाद, प्राचीन मननीय स्तोत्रसे (प्रशंसित होकर), देवोंके लिये (अर्पण होनेके लिये) धारासे प्रवाहित होता है ॥२॥ सहस्रों प्रकारके बल बढानेवाले ये सोमरस, बल बढानेवाला अन्न देनेके लिये, छाने जा रहे हैं ॥३॥ पूर्वके समानही दूध जिसके लिये दुहा जाता है, वह सोम (इस समय) पवित्र छाननीपर सींचा जा रहा है। यह शब्द करता हुआ देवोंको प्रकट करता है ॥४॥ यह सोम छाना जानेपर संपूर्ण वरणीय वस्तुओं को (हमारे पास) भेजता और सत्यका संवर्धन करनेवाले देवोंको भी सामने लाता है ॥५॥ हे सोम ! रस निकालनेपर (तुम) हमें गौवें, वीरों, अश्वों और बलोंसे युक्त बहुत अन्न दो ॥६॥

(२१)

(ऋ. मं. ९, सू. ४३) १–६ मेध्यातिथिः काण्वः। पवमानः सोमः। गायत्री।

यो अत्यइव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः	तं गीर्भिर्वासयामसि	१
तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुम्भन्ति पूर्वथा	इन्दुमिन्द्राय पीतये	२
पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः	विप्रस्य मेध्यातिथेः	३
पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम्	इन्दो सहस्रवर्चसम्	४
इन्दुरत्यो न वाजसृत्कनिक्रन्ति पवित्र आ	यदक्षारति देवयुः	५
पवस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे	सोम रास्व सुवीर्यम्	६

अन्वयः- यः हर्यतः (सोमः) अत्यः इव, गोभिः मदाय मृज्यते। तं गीर्भिः वासयामसि ॥१॥ तं इन्दुं इन्द्राय पीतये, नः विश्वाः अवस्युवः गिरः, पूर्वथा शुम्भन्ति ॥२॥ पुनानः, हर्यतः सोमः विप्रस्य मेध्यातिथेः गीर्भिः परिष्कृतः, याति ॥३॥ हे पवमान इन्दो सोम ! अस्मभ्यं सुश्रियं सहस्रवर्चसं रयिं विदाः ॥४॥ इन्दुः अत्यः न, वाजसृत्, पवित्रे आ कनिक्रन्ति, यत् देवयुः अति अक्षाः ॥५॥ हे सोम ! गृणतः विप्रस्य वृधे वाजसातये पवस्व। सुवीर्यं रास्व ॥६॥

अर्थ— जो प्रवाहित (सोमरस), चपल घोडेके समान, गो (दुग्ध) के साथ आनन्दवर्धन करनेके लिये शुद्ध किया जाता है, उसको स्तुतियोंसे हम आच्छन्न करते हैं ॥१॥ उस सोमरसको, इन्द्रके पीनेके लिये, हमारी सब सुरक्षा चाहनेवाली वाणियाँ, पहिलेके समान, सुशोभित करती हैं ॥२॥ छाना जाकर, प्रवाहित हुआ सोमरस, विद्वान् मेध्यातिथिके लिये, स्तुतियोंसे परिष्कृत होकर (कलश पात्रकी ओर) जाता है ॥३॥ हे पवित्र होनेवाले चमकदार सोमरस ! हमारे लिये उत्तम शोभायुक्त, सहस्रों बलोंसे युक्त धन दो ॥४॥ यह सोमरस, चपल घोडेके समान, बलवान्, पवित्र छाननीमेंसे शब्द करता हुआ, तथा देवोंको प्राप्त होनेकी इच्छासे युक्त, नीचे चू रहा है ॥५॥ हे सोम ! स्तुति करनेवाले ज्ञानीकी वृद्धि करनेवाला अन्न देनेके लिये प्रवाहित होओ और उत्तम वीर्य भी दो ॥६॥

सोमरसका पान

सोमदेवताके चार सूक्त यहां हैं। पहिला मेधातिथिका है और बाकीके तीन मेध्यातिथिके हैं। ये दोनों काण्व गोत्रमें उत्पन्न, कण्वके पुत्र ही हैं। अष्टम मण्डलका प्रथम सूक्त इन दोनोंका देखा हुआ है और ये दोनों साथ साथ आते हैं, इसलिये इनके सूक्त यहां इकट्ठे लिये हैं।

नवम मण्डलमें	ऋषि	मंत्रसंख्या
सूक्त २	मेधातिथि	१० (एक सूक्त)
४१-४३	मेध्यातिथिः	१८ (तीन सूक्त)
		२८ कुल मंत्र-संख्या

इन चार सूक्तोंमें अठाईस मंत्र हैं। इनमें सोमका वर्णन इस तरह किया गया है—

लिये छानना आवश्यक रहता है। रस छाननेपर जो शेष रहता है उसपर और भी जल छिडकाया जाता और अधिक रस निकाला जाता है। इस तरह छाननेकी रीति रहती है। इस छाननीको 'पवित्र' कहा है क्योंकि इससे शुद्ध रस चूता हुआ नीचे उतरता है। इस विषयमें देखिये-

१ पवित्रं अति पवस्व (मं. २।१)- पवित्र छाननीसे, हे सोमरस, तू नीचे जा, छाना जा।

२ पवित्रे सोमः अप्सु मर्मृजे- पवित्र छाननीपर सोमके साथ जल मिलाकर शुद्ध किया जाता है। छाना जाता है। (मं. २।५)

३ अचिक्रदत्- छाननीसे नीचे उतरनेका शब्द होता है। नीचेके पात्रमें रहे रसमें ऊपरसे चूनेवाले रसकी धाराका यह शब्द है। (मं. २।६)

४ मर्मृज्यन्ते अपस्युवः- कर्म करनेमें कुशल लोग इसे छानते हैं। (मं. २।७)

५ पवमानस्य स्वनः- छाने जानेवाले रसका शब्द। जब ऊपरकी छाननीसे नीचेके पात्रमें रस टपकता है उस समय उसके टपकनेका एक मान्तीसा शब्द सुनाई देता है। (वृष्टेः इव स्वनः) जैसा वृष्टीका शब्द होता है वैसाही यह शब्द सुनाई देता है। (मं. ४१।३)

६ मन्द्रन्- सोम (छाननेके समय) शब्द करता है। टपकनेका शब्द होता है। (मं. ४२।४)

७ पवित्रे आ कनिक्रन्ति- पवित्र छाननीपर सोम छाना जानेके समय शब्द करता है। (मं. ४३।५)

नीचे एक बर्तन रखा है जिसमें रस छानकर लेना है, उसपर कंबलकी छाननी रखी है। उस कंबलपर सोम कूटकर रखा है। हाथों और अंगुलियोंसे दबाया और बारबार जलसे तर किया जाता है और जो रस आता है वह इस छाननीसे छानकर नीचे उतरता है। जब वह धारारूपसे या बूंदोंके रूपमें नीचे टपकेगा या चूएगा, तब उसका एक प्रकारका शब्द होगाही। उस शब्दका यह वर्णन है।

रस छाना जानेपर भी जल, दूध, दही, शहद या सत्तू आदि रुचीके अनुसार उसमें मिलाकर वह रस पीनेके योग्य बनाया जाता है जो देवोंको देकर पश्चात् पीते हैं।

सोमकी देवता प्राप्ति

सोमरस देवताओंके पान करनेके हेतुसे उनको दिया जाता है। यही सोमकी देवत्व प्राप्ति है। देखिये—

१ (सोमः) देववीः- देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छा सोम करता है, देवताके पेटमें जानेसे अपनी कृतकृत्यता हुई ऐसा सोम मानता है। (मं. २।१)

२ इन्दो, इन्द्रं विश- हे सोम तू इन्द्रमें घुस जा।

३ इन्द्रयुः- इन्द्र देवताकी प्राप्ति करनेका इच्छुक।

४ देवः सुतः धारया देवेभ्यः परिपवते- यह सोमदेव निचोडा जानेपर धारासे देवोंके लिये अर्पित होनेके लिये छाना जाता है। (मं. ४२।२)

५ देवान्- अजीजनत्- देवोंको जन्म देता है। देवोंको प्रकट करता है। सोमपानके लिये देव आते हैं। (मं.४२।४)

६ पुनानः सोमः ऋतावृधः देवान् अभि अर्षति- पवित्रपरसे छाना जानेवाला सोम सत्यमार्गको बढानेवाले देवोंको प्राप्त करता है। (मं. ४२।५)

७ देवयुः इन्दुः- देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला सोमरस। (मं. ४३।५)

प्रथम देवोंको अर्पण करके पश्चात् ऋत्विज और यज्ञमें उपस्थित लोग सोमपान करते हैं।

सोमके गुणधर्म

इन सूक्तोंमें सोमके निम्नलिखित गुणधर्म कहे हैं—

१ वृषा- सोमरस बलका संवर्धन करता है, बल बढाता है। (मं. २।१)

२ इन्दुः- (इन्द् ऐश्वर्ये)- सोम तेजस्वी है, अन्धेरेमें चांद जैसा प्रकाशता है। (मं. २।२)

३ द्युम्नत्तमः- सोम अत्यंत तेजस्वी है।

४ धर्णसि- धारणशक्ति देता है, शरीरमें ओज बढाता है।

५ वेधाः- विशेष उत्साह बढाता है, कर्मशक्ति बढाता है। (मं. २।३)

६ प्रियं मधु- यह रोचक प्रिय और मधुर रस है।

७ सुक्रतुः- उत्तम कर्मशक्ति बढाता है।

८ धरुणः- धारण शक्ति देनेवाला सोम है, शक्तिवर्धक है।

९ **विष्टम्भः**- विशेष रीतिसे स्तंभक गुण सोममें है, वीर्यको अधिक स्थिर करता है। शौचका अवष्टंभ करता है। (क्या इसे कब्जी करनेवाला कहा जाय ? इसका विचार वैद्योंको करना चाहिये।)

१० **हरिः**- सोमका रंग हरा है।

११ **दर्शतः**- सोमका रंग दर्शनीय मनोरम है।

१२ **सूर्येण सं रोचते**- सूर्य-प्रकाशसे अधिक चमकता है।

१३ **मदाय शुम्भसे**-आनन्दके लिये शोभता है। सोमरस आनन्दवर्धक है। (मं. २।७)

१४ **ओजसा (युक्तः)**- सोमरस ओजसूसे युक्त है। *सोमरसका यह रस ओज बढानेवाला है।* (मं. २।७)

१५ **घृष्विः**- घर्षण सहन करनेवाला, जो अच्छा कूटा जा सकता है। शत्रुको कूटकर विनष्ट करनेका बल बढानेवाला। (मं. २।८)

१६ **मध्वः धारया पवस्व**- मधुर रसकी धारासे छाना जा। दूध मिलानेसे रसमें मधुरता आती है।

१७ **त्वेषाः**- तेजस्वी (मं. ४१।१)

१८ **अयासः**- गतिशील, प्रवाही,

१९ **भूर्णिः**- वन, भूमि, वनमें उत्पन्न होनेवाला,

२० **सुवितः**- उत्तम रीतिसे प्राप्त, शोभन, सुविधायुक्त, उत्तम कर्ममें उपयोगी।

२१ **विद्युतः दिवि चरन्ति**- इसकी किरणें द्युलोकतक जाती हैं, यह चमकता है। (मं. ४१।३)

२२ **सूर्यो रश्मिभिः उषाः न रोदसी आ पृण**- सूर्य जैसा उषाओंको अपने किरणोंसे भर देता है, वैसा सोम दोनों लोकोंको अपने तेजसे भर देवे, चमकता रहे। (मं. ४१।५)

२३ **विचर्षणिः**- विशेष दीप्तिमान्, विशेष देखनेवाला,

२४ **शर्मयन्त्या धारया परि स्रव**- सुख देनेवाली धारासे आओ। सोमरस सुख देता है। (मं. ४१।६)

२५ **जनयन् रोचना दिवः**- सोम द्युलोकका तेज बढाता है। सोम प्रकाशमान है। (मं. ४२।१)

२६ **सहस्रपाजसः**- सहस्रों प्रकारके बल बढानेवाला सोम है। (मं. ४२।३)

२७ **सोमः वाजसातये तूर्वये पवन्ते**- सोमरस बल बढानेवाला अन्न प्राप्त हो इसलिये छाने जाते हैं। (मं. ४२।३)

२८ **इन्दुः वाजसृत्**- सोमरस बल बढाता है, अन्न देता है। (मं. ४३।५)

सोमके ये गुण हैं। यह बल बढाता है, उत्साह बढाता है। शक्ति बढनेसे *शारीरिक सुख भी मिलता है।* यहां कई लोग 'मद' का अर्थ उन्माद, बेहोशी, अथवा नशा मानते हैं और सोम नशा लाता है, ऐसा समझते हैं। पर यहां नशा उत्पन्न होनेका समयही नहीं है। सवेर, दोपहर और शाम ऐसा तीनवार सोमका सवन होता है। सवनका अर्थ रस निकालना है। तीनवार रस निकालते हैं और देवताओंको तीनवार अर्पण करते हैं और तीनवार पीते हैं। इसमें नशा उत्पन्न करनेके लिये सडान होनेकी संभावनाही नहीं है। भंगके समान यह स्वयं न सडते हुए नशा करता है, ऐसाभी कई मानते हैं। पर 'सुक्रतु' (उत्तम कर्म करनेवाला) यह इसका वर्णन विशेष स्पष्टताके साथ बता रहा है कि मस्तिष्क बिगडनेसे होनेवाला दुष्कर्म इससे नहीं होता। इसीलिये यह 'सुक्रतु' है। इस कारण नशाकी कल्पना असंगत प्रतीत होती है।

सोमसे प्राप्त दान

सोम निम्नलिखित पदार्थ देता है—

१ **गोवः**- गौवें देता है। सोमरस निचोडनेवालेके पास दुधारू गौवें अवश्य चाहिये। क्योंकि उसमें गौका दूध अधिक प्रमाणें मिलाना अवश्यक होता है। (मं. २।१०)

२ **नृपाः**- वीर पुत्र देता है। क्योंकि सोमरससे वीर्य-वृद्धि होती है, जिससे वीर संतान उत्पन्न होती है।

३ **अश्वसाः**- सोम घोडे देता है। वीरोंके पास घोडे रहना स्वाभाविक है।

४ **वाजसाः**- बल और अन्न देता है। सोम स्वयं अन्नही है। (मं. २।१०)

५ **गोमत् हिरण्यवत् अश्वावत् वाजवत् मह्रीं इषं आ पवस्व**- गाईयाँ, सुवर्ण, घोडे और बलके साथ रहनेवाला अन्न दो। (मं. ४१।४)

६ **गोमत् वीरवत् अश्वावत् वाजवत् बृहतीः इषः पवस्व**- गाइयाँ, वीर पुत्र, घोडे, बल देनेवाले अनेक अन्न दो। (मं. ४२।६)

७ **सोम ! सहस्रवर्चसं सुश्रियं रयिं विदाः**- हे सोम ! तू सहस्रों बलोंसे युक्त उत्तम शोभादायक धन दे। (मं. ४३।४)

सोमसे बल बढता है और बलसे सब प्रकारके धन प्राप्त किये जा सकते हैं, यही आशय यहां है।

मनुष्यके लिये बोध

सोमके वर्णनमें मनुष्यके लिये आचरणमें लाने योग्य बोध मिलता है, इसके सूचक पद ये हैं—

१ देववीः, देवयुः- दैवी शक्ति, देवत्वकी प्राप्ति करना चाहिये। नरका नारायण बननेकी इच्छा धारण करो। (मं.२।१)

२ वृषा- बलवान् बनो।

३ रंहा पवित्रं अति पवस्व- वेगसे पवित्रताकी कसौटी के पार जाओ, शीघ्र पवित्र बनो।

४ द्युम्नवत्तमः- तेजस्वी बनो।

५ धर्णसिः योनिं आसीद्- धारण-शक्तिसे युक्त होकर अपने स्थानमें स्थिर रहो। इतना सुदृढ बनो कि कोई शत्रु तुम्हें स्थानभ्रष्ट न कर सके।

६ सुक्रतुः- उत्तम कर्म कर। (मं. २।३)

७ दर्शतः- दर्शनीय बन।

८ शुम्भसे- शोभायुक्त बन।

९ ओजसा अपस्युः- बलसे कार्य करो। बलवान् बनो और बडे कार्य करो।

१० लोककृत्नुः- बडा कार्यक्षेत्र बनाओ। (मं. २।८)

११ अयासः- गतिमान्, प्रगतिशील बनो। (मं. ४१।१)

१२ त्वेषाः- तेजस्वी बनो।

१३ सुवितस्य सेतुः- दुःखसे पार जानेके लिये समर्थ हो जाओ।

१४ दुराव्यं अव्रतं दस्युं साह्वांसः- दुष्ट व्रतहीन दस्युका पराभव करो। (मं. ४१।२)

१५ शुष्मी- बलवान् बनो।

१६ हिरण्यवत्- सुवर्णादि धन प्राप्त करो।

१७ गोमत्, अश्ववत्, वाजवत्- गौवें, घोडे और अन्न प्राप्त करो। (मं. ४१।४)

१८ विचर्षणिः- विशेष दूरदृष्टि प्राप्त करो।

१९ विश्वतः विष्टपं शर्मन्त्या धारया परिस्रव- चारों ओरसे भूमिपर सुखवर्धक विचार-धाराके साथ भ्रमण करो। (मं. ४१।६)

२० वावृधानः- बढते जाओ। (मं. ४२।३)

२१ वाजसातिः- अन्नका दान करो।

२२ सहस्रपाजसः- सहस्र प्रकारका सामर्थ्य प्राप्त करो।

२३ विश्वानि वार्या अभि अर्षति- सब स्पृहणीय धन प्राप्त करो। (मं. ४२।६)

२४ अवस्युवः गिरः शुम्भन्तु- अपना संरक्षण करनेका भाषण तेरी शोभा बढावे। (मं. ४१।६)

२५ सुवीर्यं रास्व- उत्तम पराक्रम करो। (मं. ४३।६)

२६ सहस्रवर्चसं सुश्रियं विदाः-सहस्रों बलोंसे युक्त उत्तम धनका दान करो।

इस तरह उक्त सूक्तोंका सोमका वर्णन यद्यपि वह सोमकाही वर्णन कर रहा है, तथापि उस वर्णनके शब्द उक्त बोध मानवोंको भी पूर्वोक्त प्रकार देते हैं। इसी तरह वेदके देवताके वर्णनसे मानवधर्म सिद्ध होता है। पाठक इस तरह मंत्रोंका अधिक विचार करके जितना बोध मिल सकता है, उतना ले सकते हैं।

यहां मेधातिथिका दर्शन

समाप्त

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(३)

शुनःशेप ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका षष्ठ अनुवाक)

लेखक

भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि॰ सातारा)

संवत् २००२

मूल्य १) रु०

शुनःशेप ऋषिका तत्त्वज्ञान

ऋग्वेदमें शुनःशेप ऋषिके तत्त्वज्ञानके १०५ मंत्र हैं। इनका ब्योरा यह है—

प्रथम मण्डलमें				देवतानुसार	मंत्र-संख्या
षष्ठ अनुवाक			मंत्रसंख्या	१ वरुणः	३१
सूक्त २४				२ इन्द्रः	२७
	कः	१		३ अग्निः	२३
	अग्निः	१		४ सोमः	१०
	सविता	३		५ सविता	३
	वरुणः	१०	१५		
,, २५	वरुणः		२१	६ अश्विनौ	३
,, २६	अग्निः		१०	७ उषाः	३
,, २७	,,	१२		८ उलूखलं	२
	देवाः	१	१३	९ उलूखलमुसले	२
,, २८	इन्द्रः	४		१० देवाः	१
	उलूखलं	२		११ कः	१
	,, मुसले	२		१२ प्रजापतिः	१
	प्रजापति-				१०७
	हरिश्चन्द्रः	१			
	(चर्म सोमो वा)		९		
,, २९	इन्द्रः		७		
,, ३०	इन्द्रः	१६			
	अश्विनौ	३			
	उषाः	३	२२		
नवम मण्डलमें					
सूक्त ३	सोमः		१०		
	कुल मंत्रसंख्या १०७				

शुनःशेपके १०७ मंत्र हैं। इनमें इस ऋषिका तत्त्वज्ञान है अतः इन मंत्रोंका विचार करनेसे इसके तत्त्वज्ञानका पता लग सकता है।

शुनःशेपकी कथा

शुनःशेपकी कथा ऐतरेय ब्राह्मणमें है। वह विशेष विस्तारके साथ इस ग्रंथके अन्तमें उद्धृत की है और आवश्यक अनुवाद भी वहां दिया है। पाठक इसका विचार करें। इसका संक्षिप्त वृत्त ऐसा है—

'वेधसपुत्र हरिश्चन्द्रको सौ धर्मपत्नियाँ थीं, तथापि इसको पुत्र नहीं हुआ। नारदने कहा कि वरुणकी उपासना करो। तब राजा हरिश्चन्द्र वरुणकी उपासना करने लगा। पुत्र होनेपर उसका वरुणके लिए समर्पण करूंगा, ऐसा उसने कहा। वह वरुणने माना। पश्चात् हरिश्चन्द्रको पुत्र हुआ, उसका नाम रोहित रखा गया। वरुणने पुत्रकी मांग की, पर हरिश्चन्द्र टालने लगा। तब क्रुद्ध होकर हरिश्चन्द्रके पेटमें वरुणने उदररोग उत्पन्न किया। तब रोहित अजीगर्त ऋषिके पास आया। इस ऋषिके तीन पुत्र थे। उनमेंसे बीचका पुत्र शुनःशेप था। सौ गौवें देकर शुनःशेपको उसके पितासे रोहितने खरीद लिया। पश्चात् इसका वरुणके लिए बली देनेके लिए यज्ञ शुरू हुआ। उस यज्ञमें होता विश्वामित्र था, अध्वर्यु जमदग्नि था, ब्रह्मा वसिष्ठ था और उद्गाता अयास्य था।

हरिश्चन्द्रने वरुणसे कहा कि बली लाया है, उसने क्षत्रिय पुत्रके स्थानपर ब्राह्मणपुत्रका बलि हो रहा है यह देखकर आनंद माना।

शुनःशेपको यूपके साथ बांधनेके लिए और सौ गायें लेकर उस का पिता तैयार हुआ। और सौ गायें लेकर वही पिता शुनःशेप का वध करनेके लिए सिद्ध हुआ। जब अपना पिताही अपने गले-पर छुरी चलानेको तैयार हुआ तब शुनःशेप देवताओंकी प्रार्थना करने लगा। प्रजापतिसे प्रारंभ करके उषा देवतातक प्रार्थना की, तब उसके पाश टूटने लगे और हरिश्चन्द्रका उदररोग भी कम होने लगा। अन्तमें शुनःशेप छोड दिया गया और हरिश्चन्द्र भी रोगमुक्त हुआ।'

इस तरह यह यज्ञ पूर्ण हुआ। शुनःशेप अपने पितापर असं-तुष्ट हुआ और विश्वामित्रको दत्तक हुआ। विश्वामित्रने उसका नाम 'देवरात' रखा। पर ये सूक्त शुनःशेपकी बद्ध अवस्थामें गाये होनेके कारण इनका ऋषि शुनःशेपही है। देवरात तो उसका

नाम बहुत पीछेसे हुआ है। सूक्त गानेके समय वह 'शुन.शेप' ही था।

यह कथा असत्य है

यह कथा काल्पनिक और असत्य है। इस कथाके असत्य होनेके अनेक कारण हैं—

१ सूक्तके प्रारंभिक (ऋ. १।२४।१-२) दो मन्त्रोंमें ही पिता-माताके दर्शन करनेके विषयमें शुन.शेप बडा उत्सुक दीखता है। यदि तीन सौ गौवें लेकर पुत्रका वध करनेवाला पिता होगा, तो उसके दर्शन करनेकी उत्सुकता पुत्रमें होनेकी सभावना नहीं हो सकती। इसलिए सूक्त २४ के पहिले दो मंत्र इस कथाका असत्यत्व बता रहे हैं।

२ शुन.शेप एक ही युवा था। पर इन सूक्तोंमें वह अपने आपको ' मैं ' ऐसा न कहता हुआ ' हम सब ' ऐसे शब्द प्रयुक्त करता है। प्रथम (ऋ.१।२४) सूक्तमें ११ वार, द्वितीय (ऋ १।२५) सूक्तमें ६ वार, तृतीय (ऋ. १।२६) सूक्तमें १० वार, चतुर्थ (ऋ. १।२७) सूक्तमें ९ वार इस तरह ३६ वार बहुवचनमें प्रयोग हुए हैं। यहां सर्वत्र ' हम सब ' ऐसा अर्थ है। एक दो उदाहरण देखिये-

(अ) नः आयुः मा प्रमोषीः (ऋ. १।२४।११)= हम सबकी आयु मत कम करो।

(आ) वरुणः अस्मान् मुमोक्तु (ऋ १।२४।१२)= वरुण हम सबको मुक्त करे।

(इ) अस्मत् पाशं उच्छ्रथाय (ऋ. १।२४।१५)= हम सबसे पाश दूर हों।

इस तरहके वाक्य बता रहे हैं कि इन सूक्तोंका आशय किसी एक मानवको यूपसे छुडाना इतना ही नहीं है, प्रत्युत संपूर्ण जनताके बध दूर करना ही इनका मन्तव्य है। अतः इन सूक्तोंको किसी एक ऋषिपुत्रपर घटाना योग्य नहीं है। इन सूक्तोंमें एक वचनके प्रयोग भी हैं। अतः केवल बहुवचन प्रयोग कहनेकी प्रथा ही उस समय थी ऐसा नहीं कहा जा सकता।

३ शुन.शेपका पिता अजीगर्त था। उसने ३०० गौवें लेकर उसको बेचा, वधस्तभके साथ बांधा और उसके गलेपर छुरी ... लिये सिद्ध हुआ, ऐसा माननेके लिये इन सूक्तोंमें कोई ... नहीं है।

४ यह हरिश्चन्द्र कपटी, मिथ्यावचनी व स्वार्थी दीखता है। यह अपने पुत्रके संरक्षण करनेके लिये ब्राह्मणकुमारका बली देनेके लिये तैयार हुआ। सत्य-प्रतिज्ञ पौराणिक हरिश्चन्द्रकी कथा इससे शतगुणा अधिक अच्छी है। इन सूक्तोंमें इस राजाका कोई संबंध दीखता नहीं है।

इस तरह विचार करनेपर यह कथा कपोलकल्पित और असंबद्ध सी प्रतीत होती है। इसलिये यह विश्वास पात्र नहीं है।

५ शतपथ ब्राह्मणमें नरमेधमें बलिको मुक्त करके छोड देना लिखा है। अर्थात् नरमेधमें किसीका वध होनेकी संभावना ही नहीं दीखती, फिर यदि शुन शेप यूपके साथ बंधा गया होगा, तो भी उसका वध होनेकी संभावना ही नहीं थी। अतः मुक्त होनेके लिये प्रार्थना करनेकी आवश्यकता ही नहीं है। शतपथके साथ यह कथा इस तरह टकराती है। (देखो शतपथ ब्रा. १३।६।२।१३)

इस कारण ये सूक्त सर्व साधारण मानवोंके बंधनसे छूटनेका विचार कर रहे हैं ऐसा मानना योग्य है। पाठक इस दृष्टीसे इनका विचार करें।

एक देवताकी भक्ति

पूर्वोक्त कथामें कहा है कि एक देवताने कहा कि दूसरे देवताकी उपासना करो। इस तरह शुनःशेप एकसे दूसरे और दूसरेके बाद तीसरे देवताकी भक्ति करने लगा। कथाका तथा भाष्यकारोंका यह कथन सत्य नहीं है। क्योंकि एक ही सूक्तमें एक ही देवताके लिये अनेक नाम लगाये हैं और बताया है कि ' अनेक नामोंसे उद्दिष्ट देवता एक ही है। '

प्रथम (ऋ १।२४) सूक्तमें अग्नि, वरुण, सविता, आदित्य, आदि नाम एकही उपास्य देवके आये हैं। इसी तरह सर्वत्र समझना उचित है। इसलिए पहिली देवताको छोड दिया और दूसरी देवताकी भक्ति करने लगा, यह कल्पना अयोग्य है। सब देवताएं सूर्यके विविधरूप, कालभेदसे दिखाई देनेवाले रूप माननेकी अवस्थामें भी एकही सूर्य देव अन्य सब काल्पनिक विभिन्न देवोंके अधिष्ठानमें रहनेके कारण एकही उपास्य देव है यही सिद्धान्त स्थिर होता है। इसलिए उक्त कथामें कही हुई कल्पना विश्वास योग्य नहीं है

यह कथा पुराणोंमें है

यह शुनःशेपकी कथा अनेक पुराणोंमें है। वाल्मीकीय रामा-

यण बालकाण्ड सर्ग ६१-६२ में, विष्णुपुराण ४।७ में, महाभारत अनुशासन पर्व ३ में, देवी भागवत ७।१६-१७ में, श्रीमद्भागवत ९।७;१६में, महाभारत शान्तिपर्व २९४, हरिवंश १।२७; ब्रह्मपुराण १० इतने स्थानोंमें यह कथा है। ऐतरेय ब्राह्मण ७।२ मे तथा शांख्यायन श्रौतसूत्रमें १५।२०-२१; १६।११,२ यह कथा है। इतने स्थानोंमें यह कथा होनेसे इस कथाके लिए बडाही महत्त्व प्राप्त हुआ है।

उत्तरीय ध्रुवमें दीर्घ रात्रीके पूर्व अस्त होनेवाले सूर्यपर यह रूपक है ऐसा कईयोंका मत है। गौवोंके मोलमें पुत्रका विक्रय करनेका अर्थ सूर्यकिरणोंकी संख्या कम होना है। इत्यादि बातें यहां घट सकती हैं।

शरीरमें रोहितकी कथा

शरीरमें रोहितकी कथा कई घटाते हैं। रोहित पद 'लोहित' बनता है और यह 'रक्त, रुधिर, खून' का वाचक है। शरीरमें खूनका सर्वत्र दौरा होता है और उसमें लोह (लोह-इत) रहता है इस कारण उसको लोहित कहते हैं। यह रोहित हरिश्चन्द्रका पुत्र है अर्थात् 'हरित्-चन्द्र' हरे रंगसे युक्त बने रक्तके परिवर्तनसे लोहित बनता है। शरीरमें घूमकर आया रक्त हरे रंगका रहता है, वही 'हरित्-चन्द्र' है। इसमें शुद्ध वायु मिलनेसे वही लाल रंगका बनता है। यही हरित्-चन्द्रका (हरिश्चन्द्रका) लोहित बनना है, शरीरमें यह घटना बनती है। हरएक रक्तके दौरेमें हरे रंगका खून बनता है और वह फेंफडोंमें पुनः शुद्ध होकर लालरंगका बन जाता है। प्रत्येक दौरेमें खूनका यह रूपान्तर होता रहता है।

अब रोहितके लिए अजीगर्त पुत्रका कुर्बानि होना यहां विचारणीय है। 'अजी-गर्त' यह 'अ-जीर्ण-गर्त' है, जहां अपचित अन्न रहता है, वह अजीर्ण हुए अन्नका गढा, पेटही है। इस पेटमें अन्न पकता और उसका रस होता रहता है। यह रसही उस अन्नका अथवा अजीर्ण-गर्तका पुत्र है। इस अन्नरसका एक एक अणु रक्तके रूपमें परिवर्तित होता जाता है, यही अजीगर्त पुत्रकी रोहितकी वृद्धिके लिए कुर्बानी अथवा बलिदान है।

इस तरह यह कथा मूल रूपमें शारीरिक घटनापर रची गयी है। पाठक इसका भी विचार करें।

शुनःशेपका गोत्र
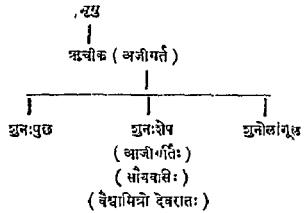
भृगुके कुलमें ऋचीकका जन्म हुआ। इस ऋचीकका बीचका पुत्र शुनःशेप है। ऋचीकका ही प्रायः नाम अजीगर्त है। इस शुनःशेपके भाई शुनःपुच्छ और शुनोलांगूल थे। इसका वंश ऐसा है-

विश्वामित्रने इसे दत्तक पुत्र माना इसलिये इसका गोत्र 'वैश्वामित्र' हुआ अतः इसका नाम ऐसा लगता है- **'आजीगर्तिः शुनःशेपः, स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः'** अर्थात् अजीगर्तका पुत्र शुनःशेप था, वही दत्तक होनेके कारण विश्वामित्रका पुत्र देवरात हुआ।

शुनःशेपका मंत्रोंमें उल्लेख

'शुनःशेप' नाम वेदमंत्रोंमें आया है, देखिये वे मंत्र ये हैं-

१ शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु। (ऋ. १।२४।१२)= बंधनमें पडे शुनःशेपने जिसकी प्रार्थना की थी, वह राजा वरुण हम सबको बंधनसे मुक्त करे।

२ शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतः त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः। (ऋ. १।२४।१३)-तीन स्थानोंमें बंधा हुआ शुनःशेप आदित्यकी प्रार्थना करने लगा।

पहिले मंत्रभागसे ऐसा प्रतीत होता है कि यह मंत्र कोई और ही ऋषि कह रहा है। 'शुनःशेपने जिसकी प्रार्थना की थी वह वरुण हमें मुक्त करे। (१२)' इससे मुक्त होनेवाले शुनःशेपसे ऋषि भिन्न है ऐसा प्रतीत होता है। दूसरे मंत्रमें भी यही बात दीखती है— 'तीन स्थानोंमें बन्धे शुनःशेपने जिसकी प्रार्थना की थी वह इसके पाशोंको खोले और इसे मुक्त करे। (१३)' इसमें भी बोलनेवाला शुनःशेपसे भिन्न है अथवा शुनःशेप ही अपने आपको विभिन्न मानकर ऐसा बोल रहा होगा। इन दोनोंमें से कोई एक कल्पना यहां करनी चाहिये। शुनःशेपके सूक्तोंमें दोही बार इस ऋषिका नाम आया है। और एक स्थानपर

ऋग्वेदमें इसका नाम आता है वह मंत्र यह है-

> शुनश्चित् शेपं निदितं सहस्रात् यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः। एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान् होतः चिकित्व इह तू निषद्य। (ऋ. ५।२।७)

' बंधनमें पडे शुनःशेपको, हे अग्ने! तुमने सहस्रोंमेंसे एक यूपसे छुडा लिया था, निःसन्देह उसने बडे ही कष्ट सहे थे। इसी तरह बंधनोंसे हम सबको मुक्त करो।'

यहां दिया मंत्र अत्रिगोत्रके कुमार ऋषिका अथवा जनगोत्रीय वृष ऋषिका है। यहां 'सहस्रात् यूपात्' कहा है। इसके अनेक अर्थ संभवनीय हैं। (१) सहस्रों यूपोंसे, (२) सहस्ररूपवाले यूपसे, (३) सहस्रवार बंधे यूपसे, (४) सहस्र प्रकारसे बंधे यूपसे इ० कोई भी अर्थ लिया जाय, तो सहस्रवार बंधन होनेकी ध्वनि इससे निकलती है। 'अनेकजन्मससिद्धः' (गी. ६।४५), 'बहूनां जन्मनां अन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।' (गीता ७।१९) अनेक जन्मोंके तपसे सिद्धिको प्राप्त होता है। अर्थात् अनेक जन्मतक बंधनका अनुभव करता है, उन बंधनोंके निवारणका यत्न करता है और पश्चात् बन्धनसे मुक्त होता है। यह भाव 'सहस्र यूप' पदोंमें स्पष्ट दीखता है। 'यूप' बंधनका चिन्ह है और वह सहस्रगुणित या सहस्र प्रकारका है। इस रीतिसे शुनःशेपके बंधन सहस्रों थे, केवल वह एक ही यूपको और हरिश्चन्द्रके यज्ञमें बंधा गया था, ऐसी बात नहीं है।

> उदुत्तमं वरुण पाशमस्मादिति शुनःशेपो वा एतामाजीगर्तिः वरुण-गृहीतोऽपश्यत्। तया वै स वरुणपाशादमुच्यत वरुणपाशमेवैतया प्रमुञ्चते। (काठक सं. १९।११।२७)

'उदुत्तमं' यह मंत्र आजीगर्त शुनःशेप ऋषिने देखा। इस मंत्रके पाठसे वरुणपाशसे उसकी मुक्तता हुई। जो इस मंत्रका पाठ करेगा वह पापसे मुक्त होगा।' इसके अतिरिक्त चारों वेदोंके मंत्रोंमें शुनःशेपका नाम नहीं है।

अथर्ववेदमें शुनःशेपके मंत्र

ऋग्वेदके इन्हीं सूक्तोंके थोडेसे मंत्र अथर्ववेदमें लिए हैं। वे नीचे दिए हैं और उनका पाठभेद भी वहां दिया है—

ऋग्वेदमंत्र (शुनःशेप ऋषिः)	अथर्ववेदमंत्र (शुनःशेप ऋषिः)
	६।२५।१-३ (न ऋग्वेदीयाः)
	७।८३।१-२ (न ऋग्वेदीयाः)
उदुत्तमं० (ऋ. १।२४।१५)	उदुत्तमं. ३
	४ (न ऋग्वेदीयः)
१।३०।७-९	२०।२६।१-३
१।३०।४-६	२०।४५।१-३
१।२९।१-७	२०।७४।१-७
१।३०।११-१५	२०।१२२।१-३

अथर्ववेदमें २३ मंत्र शुनःशेपके हैं। इनमेंसे १७ मंत्र ऋग्वेदके हैं। शेष ६ मंत्र इस समय ऋग्वेदमें नहीं मिलते हैं। जो ऋग्वेदमें नहीं हैं उन ६ मंत्रोंका अर्थ इस पुस्तकके अन्तमें दिया है। अथर्ववेदके मंत्रोंसे तो यह बात अतिस्पष्ट हो रही है कि ये सूक्त शुनःशेपके यूपसे छुटकारेका वर्णन नहीं करते, प्रत्युत (अथर्व० ६।२५) गण्डमालासे निवृत्त होनेका उपाय बताते हैं और (अथर्व० ७।८३) सर्व साधारण पापसे, दुष्ट स्वप्नसे तथा नाना प्रकारके अन्यान्य कष्ट दूर करनेका उपाय सोच रहे हैं। तथा सामुदायिक उपासना द्वारा सबके पुण्यलोकगमनका मार्ग बताते हैं। केवल शुनःशेपके ही बंधनसे निवृत्तिका यहां विषय नहीं है, प्रत्युत सर्व सामान्य मानवोंके बन्धनोंकी निवृत्तिका विचार इन मंत्रोंमें है, अतः इन मंत्रोंका विचार सर्व सामान्य दृष्टीसेही करना चाहिये। आशा है कि पाठक इन सूक्तोंका विचार इस दृष्टीसे करेंगे और अपनी सर्व साधारण बन्धन-निवृत्तिका मार्ग जानकर उससे अपना लाभ उठावेंगे।

निवेदक

१५ फाल्गुन सं. २००२

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
अध्यक्ष स्वाध्याय मण्डल
औंध (जि. सातारा).

शुनःशेप ऋषिका दर्शन

ऋग्वेदमें षष्ठ अनुवाक

(१) नामस्मरण

(ऋ. १।२४) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । १ कः (प्रजापतिः); २ अग्निः, ३-५ सविता, ५ भगो वा, ६-१५ वरुणः । १,२,६-१५ त्रिष्टुप्, ३-५ गायत्री ।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च — १
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च — २
अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम् । सदावन् भागमीमहे — ३
यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः । अद्वेषो हस्तयोर्दधे — ४
भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा । मूर्धानं राय आरभे — ५
नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः ।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् — ६
अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः ।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः — ७
उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् — ८
शतं ते राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् — ९
अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृशे कुह चिद् दिवेयुः ।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति — १०
तत् त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः — ११

तदिन्नक्तं तद् दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।
शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ॥ १२

शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः ।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥ १३

अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥ १४

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ १५

अन्वय—(वयं) अमृतानां कतमस्य नूनं कस्य देवस्य चारु नाम मनामहे ? कः नः मह्यै अदितये पुनः दात्, (तेन) पितरं च मातरं च दृशेयम् ॥ १ ॥

अर्थ-(हम) अमर देवोंमेंसे किस देवके शुभनामका मनन करें ? कौन (देव भला) हमें बडी अदितिके पास पुनः देगा, (जिससे मैं) पिताको और माताको देख सकूं ॥१॥

वयं अमृतानां प्रथमस्य अग्नेः देवस्य चारु नाम मनामहे । सः नः मह्यै अदितये पुनः दात्, (तेन) पितरं च मातरं च दृशेयम् ॥ २ ॥

हम अमर देवोंमें पहले अग्नि देवके शुभनामका मनन करेंगे । वह हमें बडी अदितिके पास पुनः देगा, (जिससे मैं) पिताको और माताको देख सकूंगा ॥२॥

हे सदा अवन् सवितः देव ! वार्याणां ईशानं त्वा भागं अभि ईमहे ॥ ३ ॥

हे सर्वदा सुरक्षा करनेवाले सविता देव ! (तुम) स्वीकार करने योग्य धनोंका स्वामी हो, (इसलिये) तुम्हारे पास उपभोग के योग्य धनको हम मांगते हैं ॥३॥

यः हि चित् इत्था शशमानः, पुरा निदः अद्वेषः, भगः ते हस्तयोः दधे ॥ ४ ॥

जो इसतरहसे प्रशंसायोग्य, निंदकोंसे दूर रहनेवाला और शत्रु जिसके पास नहीं पहुंचते, ऐसा भाग्य तुमने अपने दोनों हाथोंसे धारण किया है ॥४॥

ते वयं, भगभक्तस्य तव अवसा उदशेम, रायः मूर्धानं आरभे ॥ ५ ॥

वे हम, (तुम) भाग्यका बंटवारा करनेवाले (हो, अतः) तुम्हारी सुरक्षासे उन्नतिको प्राप्त करेंगे, तथा धनके शिखरपर (जाकर बडे कर्तव्योंका) आरंभ करेंगे ॥५॥

(हे वरुण !) पतयन्तः अमी वयः चन ते क्षत्रं नहि आपुः, सहः न, मन्युं (अपि) न (आपुः)। अनिमिषं चरन्तीः इमाः आपः न (आपुः), ये वातस्य अभ्वं प्रमिनन्ति (ते अपि) न (आपुः) ॥ ६ ॥

(हे वरुण देव !) ये उडनेवाले पक्षी कदापि तेरे पराक्रम (का ज्ञान) नहीं प्राप्त करते, तथा तेरा बल, तथा उत्साह भी नहीं (प्राप्त कर सकते)। सतत गमन करनेवाले ये जलप्रवाह नहीं (तेरी गतिको जान सकते), और जो वायुके वेगको रोकते हैं, (वे भी तेरे सामर्थ्यको लांघ) नहीं सकते ॥६॥

पूतदक्षः राजा वरुणः वनस्य स्तूपं अबुध्ने ऊर्ध्वं ददते । नीचीनाः स्थुः, एषां बुध्नः उपरि, अस्मे अन्तः केतवः निहिताः स्युः ॥ ७ ॥

पवित्र कार्यके लिये अपना बल लगानेवाला राजा वरुण वनके स्तंभको आधाररहित (आकाश)में ऊपर ही ऊपर धारण करते हैं । (इसकी शाखाएं) नीचे होती हैं, इनका मूल ऊपर है, इसके मध्यमें किरण (फैले) रहते हैं ॥७॥

राजा वरुणः सूर्याय पन्थां अनु-एतवै उ उरुं चकार हि । अपदे पादा प्रतिधातवे अकः । उत हृदया-विधः चित् अप-वक्ता ॥ ८ ॥

राजा वरुणने सूर्यके मार्गको (उसके) गमनके लिये विस्तृत बनाया है । स्थानरहित (अन्तरिक्षमें) पांव रखनेके लिये (स्थान भी) बना दिया है । निःसन्देह हृदयको कष्ट पहुंचानेवाले (शत्रुओं) को (वह देव) निषेध करता हुआ (सचेत करता है, वैसा न करनेकी आज्ञा देता है) ॥८॥

हे राजन् ! ते शतं सहस्रं भिषजः । ते सुमतिः उर्वी गभीरा अस्तु (निर्ऋतिं पराचैः दूरे बाधस्व । कृतं चित् एनः अस्मत् प्र मुमुग्धि ॥ ९ ॥

हे राजन् ! तेरे पास सैकडों और हजारों औषधियाँ हैं । तेरी सुमति बडी गम्भीर है । दुर्गतिको नीचे मुख करके दूर प्रतिषिद्ध धर्में रखो । किये हुए पापसे हमें मुक्त करो ॥९॥

अमी ऋक्षाः उच्चा निहितासः, ये नक्तं ददृशे, दिवा कुह चित् ईयुः ? वरुणस्य व्रतानि अदब्धानि, विचाकशत् चन्द्रमाः नक्तं एति ॥ १० ॥

ये नक्षत्र (सप्तऋषि) ऊपर (आकाशमें उच्च भागमें) रखे हैं, ये रात्रीके समय दीखते हैं, (पर ये) दिनमें कहां भला जाते हैं, वरुण राजाके नियम अटूट हैं, विशेष चमकता हुआ चन्द्रमा रात्रिमें आता है ॥१०॥

हे वरुण ! ब्रह्मणा वन्दमानः तत् त्वा यामि, यजमानः हविर्भिः तत् आशास्ते । अहेळमानः बोधि । हे उरुशंस! नः आयुः मा प्रमोषीः ॥ ११ ॥

हे वरुण देव ! मन्त्रके अनुसार (तुम्हें) वन्दन करता हुआ (मैं) वही (दीर्घ आयु) तुम्हारे पास मागता हूँ, (जो) यज्ञ करनेवाला हविर्द्रव्य (के अर्पण) से चाहता है, निरादर न करता हुआ (तुम हमारी इस प्रार्थनाको) समझो । हे बहुतों द्वारा प्रशंसित हुए देव ! हमारी आयुको मत घटाओ ॥११॥

तत् इत् नक्तं, तत् दिवा, मह्यं आहुः । हृदः अयं केतः तत् आ वि चष्टे, गृभीतः शुनःशेपः यं (वरुणं) अह्वत्, सः राजा वरुणः अस्मान् मुमोक्तु ॥ १२ ॥

वही निश्चयसे रात्रीमें, (और) वही दिनमें (ज्ञानियोंने) मुझे कहा था, (मेरा) हृदय (-स्थानमें रहनेवाला) यह ज्ञान भी यही कह रहा है, (कि) बन्धनमें पडे शुनःशेपने जिस (वरुण देव)की प्रार्थना की थी, वही राजा वरुण हम सबोंको मुक्त करें ॥१२॥

त्रिषु द्रुपदेषु बद्धः गृभीतः शुनःशेपः आदित्यं अह्वत् हि, विद्वान् अदब्धः राजा वरुणः पाशान् वि मुमोक्तु, एनं अव ससृज्यात् ॥ १३ ॥

तीन स्तंभोंमें बन्धे, (अतः) बन्धनमें पडे शुनःशेपने आदित्य (वरुण) देवकी प्रार्थना की थी कि ज्ञानी न दब जानेवाला राजा वरुण इसके पाशोंको खोल देवे और इसको मुक्त करे ॥१३॥

हे वरुण ! ते हेळः नमोभिः अव ईमहे । हविर्भिः यज्ञेभिः अव (ईमहे) । हे असुर प्रचेतः राजन् ! (अत्र) अस्मभ्यं क्षयन्, कृतानि एनांसि शिश्रथः ॥ १४ ॥

हे वरुण ! तेरे क्रोधको (हम अपने) नमस्कारोंसे दूर करते हैं । हविर्द्रव्योंके द्वारा (किये) यज्ञोंसे भी (तुम्हारे क्रोधको हम) दूर (हटाते हैं) । हे जीवनशक्तिका प्रदान करनेवाले ज्ञानी राजन्! (यहां) हमारे (कल्याण करनेके लिये) निवास करते हुए तुम (हमारे) किये पापोंको शिथिल कर (के विनष्ट करो)॥१४॥

हे वरुण ! उत्तमं पाशं अस्मत् उत् श्रथाय । अधमं अव (श्रथाय) । मध्यमं वि (श्रथाय)। हे आदित्य ! अथ वयं तव व्रते अदितये अनागसः स्याम ॥ १५ ॥

हे वरुण ! (हमारे इस) उत्तम पाशको हमसे ऊपर (उठाकर) शिथिल करो । (हमारे इस) अधम (पाशको) नीचे (करके शिथिल करो)। (हमारे इस) मध्यम (पाशको) विशेष (ढीला कर दो) । हे अदितिपुत्र वरुण देव ! अब हम तुम्हारे व्रतमें (रहते हुए) आदितिके लिये (समर्पित होकर) पापरहित हो जायेंगे ॥१५॥

ईश्वरके सुन्दर नामका मनन

इस सूक्तके प्रारंभिक दो मन्त्रोंमें **'नाम मनामहे'** नामका मनन करनेका विषय आया है । **'देवस्य चारु नाम मनामहे ।'** ईश्वरके सुन्दर नामका मनन करेंगे । यहां ईश्वरका नाम सुन्दर है, और उस सुन्दर नामका मनन मुक्ति पानेकी इच्छा करनेवाले मुमुक्षुको करना आवश्यक है ऐसा कहा है । यहां नाम की सुन्दरता मननसे प्रतीत होनेवाली है, यह मानसिक सौंदर्य है, आंखसे प्रतीत होनेवाला नहीं है । इसके अतिरिक्त यहां **'नाम मनामहे'** नामका मनन कहा है, केवल नामके अक्षरोंका जाप ही नहीं कहा है । आजकल मजिरोंसे ध्वनीके साथ

ईश्वरके नामका बारबार जाप भक्त लोक करते रहते हैं, परंतु यहाँ तो ' नामका मनन ' लिखा है। योगदर्शनमें भी ' तज्ज-पस्तदर्थभावनं ' सूत्रमें बताया है कि जप उसके अर्थपर अपनी भावना स्थिर करनेका नाम है। केवल अक्षर जपसे मन एकाग्र होनेमें कुछ न कुछ सहायता होती है, परंतु मनपर शाश्वत टिकनेवाला परिणाम होनेके लिये ' नामका मनन ' करना आवश्यक है। नामके मननका आशय यह है कि नामके अर्थका मनन। ईश्वरके नाम सार्थ अर्थात् अर्थवान् होते हैं, अतः उनके अर्थका मनन करके उस अर्थको मनमें ढालना आवश्यक है। जैसा 'अग्नि ' ईश्वरका नाम है, इसका अर्थ (अगति) ' गति-मान्, प्रकाश दाता और (अग्र नी) अन्ततक पहुंचानेवाला ' है। प्रगति करना, मार्ग दर्शाना और हाथमें लिये कामको अन्त-तक समाप्त करना ये इसके भाव मननके विषय हैं। मनन द्वारा ये अपने जीवनमें योग्य रीतिसे ढाले जाने चाहिये। ईश्वरके मंगल नामोंका यही मनन है।

'अमृतानां कतमस्य नाम मनामहे ?' अमरदेवोंमेंसे किस देवके नामका हम मनन करें ? देव तो अनेक हैं। उनमें किस एक देवका नाम मननके लिये लिया जाय ? यह सचमुच साधकके लिये महत्वका विषय है। इसका उत्तर यह है—

'अमृतानां प्रथमस्य देवस्य नाम मनामहे ।' अनेक अमरदेवोंमें जो सबसे मुख्य और प्रथम उपास्य है, जो श्रेष्ठ देव है उसके नामका मनन करना चाहिये, और उस नाम (चारु नाम) की सुन्दरताका पता विश्वव्यवहारमें लग जाय, ऐसी अवस्था आनेतक यह मनन होना चाहिये। नामकी चारु-ताका पता लगनेका नाम उसमें 'रस' मिलना है। अधिक मन-नसेही सिद्ध होनेवाली यह बात है। जबतक नामके मननसे 'रस' नहीं आयेगा, तब तक समझना चाहिये कि अपना नाम-मनन ठीक नहीं हुआ !

यहां 'प्रथमस्य अग्नेः देवस्य चारु नाम मनामहे ।' 'सब देवोंमें अग्निदेव प्रथम है अतः उसके सुंदरनामका मनन करेंगे' ऐसा कहा है। और उपासनाके लिये अग्निको ही सबसे प्रथम लिया है। यह अग्नि 'आग' है जो हमारा भोजन पकाता है ऐसा प्रथम मालूम होता है, पर जब बिजली गिरनेसे आग लगती है और सब जलने लगता है, तब प्रतीत होता है कि यह आग और विद्युत् एकही है और इसके पश्चात् सूर्यकान्तमणिमेंसे आये सूर्य किरण आग उत्पन्न करते हैं यह देखते ही, पता लगता है कि सूर्य-विद्युत्-आग ये तीन एकही अग्निके रूप हैं। इसतरह यह अग्नि पृथ्वीपर, अन्तरिक्षमें विद्युत् रूपसे और द्युलोकमें सूर्य रूपसे है, इतनाही नहीं परंतु विद्युद्रूपसे संपूर्ण ब्रह्माण्डमें है यह बात मननसे स्पष्ट होती है और इसकी सर्वव्यापकता स्पष्ट होती है। हरएक वस्तुमें यह अग्निदेव है और उस वस्तुको रूप देता है अतः वस्तु दीखती है। विश्वका रूप दीख रहा है वह अग्निका रूप है ऐसा इस समय पता लगता है। इस समय उपासकके सामने 'विश्वरूप अग्नि' आता है और इसके संकुचित भाव दूर होते हैं।

यही पहिला (प्रथम अग्नि) है जिसका नाम जप यहां कहा है। मनन करते करते 'आग' के रूपसे विश्वव्यापक अग्नि-तक उपासक पहुंचता है और विश्वके सभी रूप एकही मूलतत्त्व के हैं यह बात स्पष्ट हो जाती है। इसतरह विश्वरूप देवका साक्षात्कार उपासकको होता है।

नामके मननका फल क्या है ? यह प्रश्न यहां उत्पन्न होता है। इसके उत्तरके लिये 'सः नः मह्यै अदितये दात् ।' वह उपास्य देव हम सब उपासकोंको बडी अदितिके पास पहुंचाता है। यह नामके मननका फल है। अदिति कौन है ? 'दिति' और 'अ-दिति' ऐसे दो भाव इस विश्वमें है। 'दिति' का अर्थ टुकडा, भाग, खण्ड है और 'अ-दिति' का अर्थ 'अटूट, अभिन्न और अखण्ड सत्ता' है। अखण्ड सत्ता और खण्डित सत्ता ये दो भाव यहां है। अखण्डभाव विस्तारका द्योतक और खण्डभाव संकोचका द्योतक है। जैसा ऊपर 'अग्नि' का विचार करते हुए हमने देखा कि अग्निको केवल आग, केवल विद्युत् अथवा केवल सूर्य मानना खण्डित भावका दर्शन करना है। यह 'दिति'का क्षेत्र है। तथा सब विश्वमें एकही अग्नितत्त्व है और वही एक तत्त्व विश्वरूप बना है ऐसा अटूट, अखण्ड और अनन्तभावका दर्शन करना इसका नाम 'अदिति' का क्षेत्र है।

अग्निको केवल आगही समझना खण्डका अनुभव करना है, इसमें आंशिक सत्य है, संपूर्ण सत्य नहीं है, इसलिये यह अज्ञान है, और अग्निको विश्वव्यापक सत्त्वके रूपमें अनुभव कर-नेका नाम संपूर्ण अखण्ड, अटूट और अनंत सत्यका दर्शन करना है। यही ज्ञान कहलाता है। पूर्वोक्त नामका मनन अदितितक अर्थात् सर्वव्यापक तत्त्वतक पहुंचा देता है। खण्ड-भावसे बंधन और अखण्डभावसे बंधनसे छुटकारा अर्थात्

मुक्ति होना संभव है। इसीलिये 'अमर देवताके नामका मनन' करना है। यही मनुष्यका साध्य है।

'पुनः दात्' अदितिके लिये 'पुनः देता है' अर्थात् अदिति नामक जो भूमा अवस्था है उसको प्राप्त होनेके लिये वारंवार जन्म लेना आवश्यक है। एकही जन्मसे निःसंदेह साध्य होनेवाली यह अवस्था नहीं है। कदाचित् एक जन्ममें साध्य होगी, अथवा अनेक जन्मोंसे यह साध्य हो सकेगी। यह अन्तिम सिद्धि है इसमें संदेह नहीं है।

'पिता और माताका दर्शन होगा' ऐसा दोनों मंत्रोंमें कहा है। अदितिकी भूमावस्थाको प्राप्त होनेतक जितने जन्म लिये जाते हैं उनमेंसे प्रत्येक जन्ममें पिता और माताका दर्शन होता ही है। यह आवश्यकही है, और यह उन्नतिका साधनही है इसलिये यह आनंदका विषय है।

अदितिके प्राप्तिके लिये जितना मार्ग चलना है, उस मार्गमें बीचबीचमें मुकाम करनेके लिये पिता और माताका दर्शन करना आवश्यक ही है। यहां ' पिता-माता ' ऐसा क्रम कहा है और यह योग्य ही है। जीव प्रथम अन्नमें रहता है, वहांसे पिताके देहमें वीर्य रूपमें जन्म लेता है, पश्चात् गर्भाधानसे माताके उदरमें प्रविष्ट होता है, वहांसे जन्म लेता है। इस तरह प्रथम पितामें और पश्चात् मातामें यह निवास करता है। इसलिये ' पिता-माता ' यह क्रम शास्त्रशुद्ध है।

यहां बन्धनसे मुक्ति पानेका साधन ' ईश्वरके नामका मनन ' कहा है, यह मनन उसमें रस आनेतक, उसका सौंदर्य विश्वरूपमें दीखनेतक करना चाहिये, बीचमें अनेकवार और पुनःपुनः जन्म लेना पडे तो वह उन्नतिके लिये आवश्यक ही है, इसलिये जन्मको घृणाकी दृष्टीसे देखना नहीं चाहिये, तथा जन्म देनेवाली स्त्रीको भी घृणासे देखना नहीं चाहिये। माताके विषय में सदा आदर रहना चाहिये इतना उपदेश पहिले दो मंत्रोंसे प्रतीत हुआ।

बहुवचनी पद

यह सूक्त एक मानवके लिये है अथवा सब मानवजातीके लिये है यह बडा ही विचार करनेयोग्य प्रश्न है। एक शुनःशेप बंधनमें पडा था, उसने अपनी मुक्तिके लिये प्रार्थना की ऐसी कथा है। यदि यह कथा सत्य मानी जाय तो शुनःशेप अपने लिये ' अहं ' (मैं) ऐसा पद प्रयुक्त करता। परंतु यहां बहुवचनके प्रयोग हैं देखिये-

१ **वयं मनामहे** (मं.१,२)-हम मनन करेंगे,
२ **त्वा भागं अभि ईमहे**(३)-तुमसे हम धन मांगते हैं,
३ **वयं उद्शेम** (५)- हम उन्नत होंगे,
४ **एनः अस्मत् प्रमुमुग्धि** (९)- पाप हमसे दूर कर।
५ **नः आयुः मा प्रमोषीः** (११)- हमारी आयु मत् कम करो,

६ **वरुणः अस्मान् मुमोक्तु**(१२)-ईश्वर हमें मुक्त करे,
७ **ते हेळः नमोभिः अव ईमहे** (१४)- तेरे क्रोधको नमस्कारोंसे हम दूर करते हैं,

८ **यज्ञेभिः अव ईमहे** (१४)- यज्ञोंसे तेरे क्रोधको दूर करते हैं,

९ **अत्र अस्मभ्यं एनांसि शिश्रथः** (१४)-यहां हम सबके पापोंको दूर कर

१० **पाशं अस्मत् उत् श्रथाय** (१५)-हमसे पाशको दूर कर (तीनवार)

११ **वयं तव व्रते अनागसः स्याम** (१५)-हम सब तेरे नियममें रहते हुए निष्पाप होंगे।

इस तरह ' हम सब ' ऐसा प्रयोग इस सूक्तमें ग्यारह वार आया है। अतः यह सूक्त किसी एक भक्तकी मुक्तिके लिये ही है ऐसा मानना अयोग्य है। तथापि इस सूक्तमें एकवचनके प्रयोग भी हैं, वे अब देखिये

एकवचनी प्रयोग

इस सूक्तमें ऊपर दिये समान बहुवचनी प्रयोग हैं जो बहुसंख्याके वाचक हैं, सब समाजके वाचक हैं। वैसे एकवचनके भी प्रयोग हैं जो एक ही आदमीके वाचक हैं। इसके उदाहरण देखिये-

१ **पितरं च मातरं च दृशेयम्** (मं.१, २)-पिता और माताका दर्शन करूंगा,

२ **रायः मूर्धानं आरभे** (५)-ऐश्वर्यके शिखरपर चढकर बडे कार्योंका प्रारंभ करूंगा,

३ **तत् त्वा यामि** (११)—यह दीर्घायु तुम्हारे पास मांगता हूं,

इतने वचन एक वचनमें है। एक आदमीके, एक व्यक्तिके

ये कर्म हैं। मातापिताको देखनेका मतलब है जन्म धारण करना, दीर्घ आयु प्राप्त करना और ऐश्वर्यके शिखरपर पहुंचकर बडे कार्योंका प्रारंभ करना, ये सब कार्य प्रत्येक व्यक्तिके करनेके हैं। प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र रीतिसे जन्मती है, प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र-रूपसे दीर्घ आयु चाहती है और ऐश्वर्यके शिखरपर चढकर बडे बडे पुरुषार्थ करके पराक्रम करना भी व्यक्तिकी बुद्धिसे बननेवाले कार्य हैं।

इस सूक्तमें केवल तीन ही निर्देश व्यक्तिके हैं, और ग्यारह निर्देश संघके लिये हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह सूक्त एक व्यक्तिके मुक्त होनेके लिये नहीं है, परंतु सामाजिक बंधन निवृत्ति के लिये हैं। सामाजिक जीवनका विचार करनेमें भी कुछ कार्य व्यक्तिके करनेके होते हैं, अर्थात् शिक्षा पाना, शरीर पोषण करना, स्नानादि करना, योगसाधन करना इत्यादि। व्यक्तिके स्वास्थ्यके लिये इनकी आवश्यकता रहती है, अतः ये कर्म करके व्यक्ति सामाजिक कार्य करनेके लिये समर्थ बने। समर्थ बनकर सामाजिक कार्य करके विश्व सेवा करे।

सामाजिक उन्नतिके लिये (१) सब मिलकर ईश्वरके पवित्र नामोंका मनन करें और उससे अपने कर्तव्योंका बोध प्राप्त करें, (२) सामाजिक तथा राष्ट्रीय उन्नतिकी साधना करें, (३) मिलकर यत्न करके भाग्य प्राप्त करें, ऐश्वर्यकी वृद्धि करें, (४) अपने सामाजिक पाप दूर करें, समाजके दोष दूर करें, (५) धर्म-नियमोंमें रहें (६) यज्ञ करें। इस तरहके नानाविध कार्य मनुष्य करें। ये कार्य संघद्वारा ही हो सकते हैं क्योंकि सब समाजकी उन्नतिके साथ इनका संबंध है। 'अस्मान् मुमोक्तु' (मं. १२) हम सबकी बंधनसे मुक्तता करे इस मंत्रसे वैदिक मुक्ति संघमुक्ति है, वैयक्तिक मुक्ति नहीं है, इस बातका पता लगता है। समाजका समाज सुधरना चाहिये, तब ही इस भूमिपर स्वर्गधाम स्थापित हो सकता है। यह ध्येय है जो इस सूक्तके द्वारा ऋषि शुनःशेपने घोषित किया है।

ईश्वरका स्वरूप

यहां अग्नि, वरुण, सविता, आदित्य, अमृतानां प्रथमः, राजा, विद्वान, असुर, प्रचेतः, देव इतने नाम इस सूक्तमें ईश्वरके वाचक आगये हैं। कई लोग इनसे विभिन्न देवोंका बोध होता है, ऐसी कल्पना करते हैं, परंतु हमारे मतमें वह सत्य प्रतीत नहीं होती। क्योंकि प्रथम मंत्रमें हि 'अनेक अमर देवोंमें किस एक मुख्य देवके नामका हम मनन करें?' ऐसा प्रश्न पूछा है और द्वितीय मंत्रमें 'अनेक अमर देवोंमें सबसे मुख्य अग्नि देवके नामका हम मनन करेंगे' ऐसा कहा है। अतः आगे तृतीय मंत्रसे 'सविता' आदि पद उसी एक अग्नि देवके वाचक मानना योग्य हैं। क्योंकि एक देवके नामका मनन करनेकी प्रतिज्ञा द्वितीय मंत्रमें करनेके पश्चात् तृतीय मंत्रसेही दूसरे देवकी भक्ति करनेका कोई कारण सूक्तमें नहीं दीखता है। एकही देवकी भक्ति करनेकी प्रतिज्ञा है, अनेक देवोंकी नहीं। अतः सब नाम उसी एक देवके हैं ऐसा मानना ही युक्तियुक्त और पूर्वापर संबंधके अनुकूल है। वैसाही हमने माना है।

कई विद्वान् पृथक् पृथक् देवोंकी भक्ति करनेकी बात इन मंत्रोंमें देखते हैं, और अग्निको छोडकर वरुणकी उपासना की, वरुणके बाद आदित्यकी, ऐसी कल्पना करते हैं, यह कल्पना प्रथम तो प्रारंभिक दोनों मंत्रोंके विधानसे सर्वथा विरुद्ध है। और 'एक, सत् है जिसको ज्ञानीजन अग्नि, वरुण, इन्द्र आदि कहते हैं' (ऋ. १.१६४।४६) ऐसा जो वेदमें अन्यत्र एक-सत्तावाद कहा है, उस वैदिक सिद्धांतके भी विरुद्ध है। इसलिये इस सूक्तमें जो अग्नि, वरुण, सूर्य, सविता आदि नाम हैं, वे एक मूल मुख्य आत्मतत्त्वके वाचक हैं, इसलिये उसीके अनेक नामोंका मनन इस सूक्तमें किया गया है ऐसा मानना युक्तियुक्त है। इसके गुणधर्म ये हैं—

१ **सदा-अवन्**– वह सदा सबकी सुरक्षा करता है,

२ **सविता** (प्रसविता)– वह अपने अन्दरसे सब विश्वका प्रसव करता है,

३ **देवः**– वह प्रकाशमान है, सब सुखोंका दाता है,

४ **सः (यः) भगः दधे**– वह सब ऐश्वर्योंका आधार है,

५ **वार्याणां ईशः**– सब श्रेष्ठ धनोंका स्वामी है, (३)

६ **भगभक्तः**– धनका बंटवारा योग्य प्रमाणसे करता है, (५)

७ **वरुणः**– वरिष्ठ देव, श्रेष्ठ प्रभु है,

८ **पूत दक्षः**– पवित्र कार्योंमेंही अपने बलका उपयोग वह करता है,

९ **राजा**– वह सब विश्वका राजा है,

१० ईश्वरके बल, पराक्रम और उत्साहकी कोई न जान सकता, और न कोई लांघ सकता है। (६)

११ ईश्वरने एक वृक्ष विना आधार आकाशमें टांग दिया है, जिसकी शाखाएं नीचे फैली हैं, इनकी जडे ऊपर हैं, और सब जगह किरण फैलाये हैं। (७) [गीतामें 'ऊर्ध्वमूलं अध-शाखं' ऐसा जिसका वर्णन (अ. १५ में) किया है वैसाही यह वृक्ष दीखता है।]

१२ ईश्वरने सूर्यके लिये विस्तृत मार्ग बनाया है, अन्तरिक्षमें बडा स्थान उत्पन्न किया है और यही सबके अन्त करणोंके कष्टोंको दूर करता है। (८)

१३ ईश्वरने सहस्रों रोगनिवारक औषधियां निर्माण की हैं। इसकी शुभ मति सबपर समान है। यही सबकी आपत्तिको दूर हटा सकता है और पापसे बचा सकता है। (९)

१४ ईश्वरने ये नक्षत्र आकाशमें बडे ऊंचे स्थानपर रखे हैं, ये रात्रीमें दीखते हैं, पर दिनमें दीखते नहीं। इसके नियमोंको कोई लांघ नहीं सकता। इसीकी योजनासे चमकता हुआ चन्द्रमा रात्रीमें प्रकाशित होता है। (१०)

१५ ईश्वरके पास हम दीर्घ आयु मांगते हैं। (११)

१६ **सः अस्मान् मुमोक्तु**– सब यही कहते हैं कि वही प्रभु हम सबको बंधनसे मुक्त करनेवाला है। (१२)

१७ **विद्वान्**– वह ज्ञाता है,

१८ **अदब्धः**– न दबनेवाला, जिसपर किसी दूसरेका अधिकार नहीं चलता,

१९ **वरुणः पाशान् वि मुमोक्तु**– प्रभु पाशोंसे हमें मुक्त करें,

२० **एन अव सृज्यात्**– इस (जीव) को खुला करे, बंधनसे छुडावे, (१३)

२१ **असुरः** (असु-र)-जीवनशक्ति देनेवाला, जिसकी जीवनशक्तिसे सब सजीव हुए हैं, जीवनका आधार,

२२ **प्रचेतः**– विशेष ज्ञानी, (१४)

२३ **आदित्य**– (अ दिति) अखण्ड, अनन्त, अटूट, स्वतंत्र, (आदानात्) जो सबको पकड रखता है, सबका नियामक,

२४ **तव व्रते अनागसः स्याम**– प्रभुके नियमोंके अनुसार वर्ताव करनेसे भक्त निष्पाप होता है। (१५)

इस सूक्तमें यह इस तरह ईश्वरका वर्णन किया है। यही प्रभुका नाम है। नामका अर्थ केवल नामही नहीं है, प्रत्युत नामका अर्थ वर्णन, गुणवर्णन, सामर्थ्यका वर्णन है। इसीका मनन करना चाहिये। यह मनन मनुष्यकी उन्नति करनेके लिये उत्तम मार्ग दर्शन कर सकता है।

एकके अनेक नाम

इस सूक्तमें एक प्रभुके अनेक नाम हैं यह बात सूचित की है देखिये—

१ प्रथम और द्वितीय मंत्रमें अनेक 'देवोंमें किसी एक देवके नामका मनन' करनेकी इच्छा प्रकट हुई है।

२ आगेके मंत्रोंमें मननीय देवका वर्णन अनेक नामोंसे किया है। इससे सिद्ध होता है कि वे नाम एकही देवके हैं जिसकी उपासना करनी है।

३ तृतीय मंत्रमें ' **सविता और ईश** ' ये नाम उसी एक प्रभुके आये हैं, ये दो देवोंके नहीं हैं, पर एक ही देवके ये दो नाम हैं।

४ सप्तम मंत्रमें ' **पूतदक्ष, राजा, वरुण** ' ये तीन नाम प्रभुके लिये ही हैं। राजा और वरुण ये नाम आगेके मंत्रोंमें भी आये हैं।

५ तेरहवें मंत्रमें **आदित्य, विद्वान्, अदब्ध, राजा, वरुण**, ये उसीके नाम हैं।

६ चौदहवें मंत्रमें ' **असुर** ' नाम ईश्वरके लिये ही है। इस तरह यह सूक्त अनेक नामोंसे एक ही देवताका वर्णन होता है, यह बात स्पष्ट रूपसे बताता है।

तीन पाश

पंद्रहवें मंत्रमें **उत्तम, मध्यम** और **अवम** ऐसे तीन पाश हैं, उनको ढीला करो ऐसी प्रभुसे प्रार्थना है। हरएक मनुष्य तीन पाशोंसे बंधा है, ये तीन बंधन मानवपर हैं। पितृऋण ऋषिऋण और देवऋण ये तीन ऋण मनुष्यपर हैं। उत्तम संतान उत्पन्न करनेसे पितृऋण दूर होता है, ज्ञान प्राप्त करके ज्ञानका प्रसार करनेसे ऋषिऋण दूर होता है, और यज्ञीय जीवनसे देवऋण दूर होता है।

यहां भी तीन ऋण उतारनेका अर्थ तीन बन्धनोंसे मुक्त होना ही है। तामस, राजस और सात्त्विक आकांक्षाओंसे तीन बंधन मनुष्यको बांध देते हैं, इनको दूर करके त्रिगुणातीत होना ही तीनों पाशोंसे मुक्त होना है। इस तरह तीन पाशोंका विचार पाठक कर सकते हैं। और उनसे छुटकारा पानेका विचार भी कर सकते हैं।

मनुष्यके लिये बोध

इस सूक्तसे मनुष्यके लिये प्रतिदिनके आचारविचारके लिये बडा बोध मिल सकता है। इसका थोडासा नमूना यहा देते हैं—

१ अमृतानां कस्य देवस्य चारु नाम मनामहे– अमर देवोंमें जो अधिक सुख देनेवाला है, उसके अनंत नामोंमें जो नाम मंगलकारक है उसीका मनन करना योग्य है। अर्थात् जो नाशवान् हैं, अमंगल हैं, हीन हैं उनके नाम या स्तक: कदापि मनन करना योग्य नहीं है। जो सबसे अधिक (कः) सुखदायी है उसीका नाम स्मरणके लिये लेना योग्य है। नाम अनंत हैं, पर उनमें जो (चारु) सुंदर, रमणीय, मंगल हैं उनका ही आलंबन करना चाहिये। (मं १, २)

२ अदितये पुनः दात्– अखंडित, सर्वतंत्र स्वतंत्र शक्ति-की सिद्धिके लिये पुनः पुनः दान दो, आत्मसमर्पण करते रहो। [जीव अंश हैं अत; वह एक 'खण्ड' है, अल्प है। उसको अखण्ड, पूर्ण बनाना है। नरका नारायण होना है, इसलिये खण्डभावका समर्पण ही एकमात्र साधन है।](१-२)

३ सदा-अवन्– सदा निर्बलोंकी सुरक्षा करते रहो (२)
४ देवः–(दानात्) दान करते रहो, (३) ,
५ अ-द्वेषः– द्वेष न करो,
६ पुरा निदः– निन्दा न करो, (४)
७ भगभक्त– अपनी संपत्तिको सत्पात्रमें बाटो,
८ अयसा उद्शेम– अपने बलसे उन्नतिको प्राप्त करो,
९ रायः मूर्धानं आरभे– ऐश्वर्यके शिखरपर चढो और वहां अनेक शुभ कर्मोंको आरंभ करो, (५)

१० क्षत्र सहः मन्युं न आपुः– अपना प्रताप, बल और उत्साह इतना बढाओ कि जिसको कोई लांघ न सके (६)

११ पूतदक्षः– पवित्र कर्मोंमें अपनी शक्तिको लगा दो,(७)

१२ हृदया-विधः अपवक्ता– हृदयको कष्ट देनेवाले भावोंका निषेध करो, (८)

१३ सुमतिः उर्वी गभीरा– तुम्हारी सुमति विशाल और गंभीर रहे (९)

१४ निर्ऋतिं दूरे बाधस्व– अपनी दुरवस्थाको दूर हटा दो, ऐसा प्रबंध करो कि कभी तुम्हारी दुर्गति न हो सके(९)

१५ आयुः मा प्रमोषीः– जिससे आयु क्षीण होगी ऐसा कोई कार्य न करो, (११)

१६ हृदः केतः वि चष्टे– अपने अन्तरात्माका क्या कहना है वह देखो, अपना हृदयका ज्ञान क्या कहता है वह सुनो, (१२)

१७ विद्वान् अदब्धः– ज्ञानी बनो, किसी दुष्टके दबावके नीचे न दब जाओ, (१३)

१८ पाशान् मुमोक्तु– अपने पाशों को तोड दो, बंध-नोंसे मुक्त हो जाओ (१३)

इस तरह इस सूक्तमें मानवधर्मका बोध करनेवाले कई पद और वाक्य हैं। 'देवता जैसा करता है वैसा मानव करे।' इस सूत्रको ध्यानमें धारण करके सूक्तका मनन करनेसे सूक्तके मंत्रोंसे तथा मंत्रके अवयवोंसे मानव धर्मका बहुत उपदेश मिल सकता है। अब आगेका सूक्त देखो—

(२) विश्वका सम्राट्

(ऋ. १-२५) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। वरुणः। गायत्री।

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् । मिनीमसि द्यविद्यवि १
मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः । मा हृणानस्य मन्यवे २
वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम् । गीर्भिर्वरुण सीमहि ३
परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्य इष्टये । वयो न वसतीरुप ४
कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे । मृळीकायोरुचक्षसम् ५
तदित् समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः । धृतव्रताय दाशुषे ६
वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् । वेद नावः समुद्रियः ७

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः । वेदा य उपजायते ८
वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः । वेदा ये अध्यासते ९
नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः १०
अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति । कृतानि या च कर्त्वा ११
स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत् । प्र ण आयूंषि तारिषत् १२
बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम् । परि स्पशो नि षेदिरे १३
न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् । न देवमभिमातयः १४
उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या । अस्माकमुदरेष्वा १५
परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु । इच्छन्तीरुरुचक्षसम् १६
सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् । होतेव क्षदसे प्रियम् १७
दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि । एता जुषत मे गिरः १८
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय । त्वामवस्युरा चके १९
त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि । स यामनि प्रति श्रुधि २०
उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत । अवाधमानि जीवसे २१

अन्वयः— हे वरुण देव ! यथा विशः, ते यत् चित् हि व्रतं, द्यवि द्यवि प्र मिनीमसि ॥ १ ॥

जिहीळानस्य हत्नवे वधाय नः मा रीरिधः। हृणानस्य मन्यवे मा (रीरिधः) ॥ २ ॥

हे वरुण! रथीः संदितं अश्वं न मृळीकाय ते मनः गीर्भिः वि सीमहि। ॥ ३ ॥

वयः वसतीः उप (पतन्ति) न मे विमन्यवः वस्यइष्टये हि परा पतन्ति, ॥ ४ ॥

क्षत्रश्रियं नरं उरुचक्षसं वरुणं कदा मृळीकाय आ करामहे ? ॥ ५ ॥

धृतव्रताय दाशुषे वेनन्ता समानं तत् इत् आशाते, न प्र युच्छतः ॥ ६ ॥

अन्तरिक्षेण पतताम् वीनां पदं यः वेद । समुद्रियः नावः वेद ॥ ७ ॥

धृतव्रतः प्रजावतः द्वादशमासः वेद, यः उपजायते (तं) वेद ॥ ८ ॥

अर्थ— हे वरुण देव ! जैसे अन्य मनुष्य (प्रमाद करते हैं, वैसे) तेरे जो भी नियम (हैं, उनके करनेमें) प्रति दिन (हम भी) प्रमाद करते ही हैं ॥ १ ॥

(तेरा) निरादर करनेवालेका वध करनेके लिए (ऊपर उठाये तेरे) शस्त्रके सामने हमको मत खडा रख । (तथा) क्रुद्ध हुए (तेरे) क्रोधके सामने (हमें) मत (खडा रख) ॥ २ ॥

हे वरुण ! जिस प्रकार रथी वीर अपने थके हुए घोडोंको (शान्त करता है, उस तरह) सुख देनेवाले तेरे मनको स्तोत्रोंद्वारा हम विशेष प्रसन्न करते हैं ॥ ३ ॥

जिस तरह पक्षी अपने घोंसलोंकी ओर (दौडते हैं, उस तरह) मेरी विशेष उत्साहित बुद्धियाँ धनकी प्राप्तिके लिये दूर दूर दौड रही हैं ॥ ४ ॥

पराक्रमके कारण शोभायमान नेता विशेष द्रष्टा वरुणको हम यहां कब सुखप्राप्तिके लिये बुलावेंगे ? ॥ ५ ॥

व्रत धारण करनेवाले दाताके लिये (सुखकी) इच्छा करनेवाले (ये मित्र और वरुण) समान भावसे वही (हविष्यान्न) चाहते हैं, (वे कभी उसका) त्याग नहीं करते ॥ ६ ॥

अन्तरिक्षमें उडनेवाले पक्षियोंका मार्ग वह जानते हैं । (तथा जो) समुद्रमें संचार करनेवाली नौकाओंका मार्ग भी जानते हैं ॥ ७ ॥

नियमानुसार चलनेवाला (वरुण देव) प्रजाकी वृद्धि करनेवाले बारह महिनोंको जानते हैं, और जो (तेरहवाँ महिना बीचमें) उत्पन्न होता है (उसको भी) जानते हैं ॥ ८ ॥

उरोः ऋष्वस्य बृहतः वातस्य वर्तनिं वेद । ये अध्यासते (तान्) वेद ॥ ९ ॥

विशाल महान और बडे वायुके मार्गको (भी जो) जानते है तथा जो अधिष्ठाता होते हैं (उनको भी) जानते हैं ॥ ९ ॥

धृतव्रतः सुक्रतुः वरुणः पस्त्यासु साम्राज्याय आ नि ससाद ॥ १० ॥

नियमके अनुसार चलनेवाले, उत्तम कर्म करनेवाले वरुण देव प्रजाओंमें साम्राज्यके लिये आकर बैठते हैं ॥ १० ॥

अतः विश्वानि अद्भुता चिकित्वान्, या कृतानि, (या)च कर्त्वा, अभि पश्यति ॥ ११ ॥

इस लिये सब अद्भुत कर्मोंको (करनेकी विधि) जाननेवाले (यह वरुण देव), जो किया है, (और जो) करनेका है, (उस सबको) पूर्णतासे देखते हैं ॥ ११ ॥

सुक्रतुः सः आदित्यः विश्वाहा नः सुपथा करत् । नः आयूंषि प्र तारिषत् ॥ १२ ॥

उत्तम कर्म करनेवाले वे अदिति पुत्र (वरुण देव) सर्वदा हमें सुपथसे चलनेवाले करे । और हमारी आयु बढावें ॥ १२ ॥

हिरण्ययं द्रापिं बिभ्रत् वरुणः निर्णिजं वस्त । स्पशः परि निषेदिरे ॥ १३ ॥

सुवर्णमय चोगा धारण करनेवाले वरुण देव (उसपर और) तेजस्वी वस्त्र धारण करता है। उसके दूत (किरण) चारों ओर ठहरे हैं ॥ १३ ॥

दिप्सवः यं न दिप्सन्ति । जनानां द्रुह्वणः (यं) न (")। अभिमातयः देवं न (दिप्सन्ति) ॥१४॥

घातक दुष्ट लोग जिसकी दुष्टता नहीं करते । लोगोंका द्रोह करनेवाले जिसका नहीं द्रोह करते । शत्रु उस देवको नहीं (पीडा देते) ॥ १४ ॥

उत यः मानुषेषु यशः आ चक्रे । असामि आ (चक्रे) उदरेषु आ (चक्रे) ॥१५॥

और जिन्होंने मनुष्योंमें यश फैलाया है । संपूर्णतया (सब-कुछ) किया है । हमारे पेटोंमें भी (सुंदर रचना उसीने) की है ॥ १५ ॥

उरुचक्षसं इच्छन्ती. मे धीतयः, गावः न गव्यूतीः अनु, परा यान्ति ॥ १६ ॥

उस सर्वसाक्षी (प्रभुकी) इच्छा करनेवाली मेरी बुद्धियाँ, गौवें गोचर भूमिके पास जानेके समान, (उन्ही के पास) दूर-तक जाती हैं ॥ १६ ॥

यत मे मधु आभृतं, होता इव प्रियं क्षदसे, पुनः नु सं वोचावहै ॥१७ ॥

जो मैंने यह मधु भरकर लाया है, हवनकर्ताके समान इस प्रिय (मधुर रसका तुम) भक्षण करो । फिर हम दोनों मिल-कर बातें करेंगे ॥ १७ ॥

विश्वदर्शत दर्श नु । क्षमि रथं अधि दर्शम् । एता मे गिर. जुषत ॥ १८ ॥

विश्वरूपमें दर्शनीय (देवको) नि.संदेह मैंने देख लिया है । भूमिपर उसके रथको मैंने देखा है । ये मेरी स्तुतियां उन्होंने स्वीकार की हैं ॥ १८ ॥

हे वरुण ! इमं मे हवं श्रुधि । अद्य मृळय च । अवस्युः त्वां आ चके ॥ १९ ॥

हे वरुण ! मेरी यह प्रार्थना सुनो । आज मुझे सुखी करो । सुरक्षाकी इच्छा करनेवाला मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं ॥ १९ ॥

हे मेधिर ! त्वं दिवः च ग्मः च विश्वस्य राजसि । सः (त्वं) यामनि प्रति श्रुधि ॥ २० ॥

हे बुद्धिसे प्रकाशित होनेवाले देव ! तुम द्युलोक, भूलोक और सब विश्वपर राज्य करता है । वह (तुम हमारी) प्रार्थना-के पश्चात् उसका उत्तर दो ॥ २० ॥

नः उत्तमं पाशं उत् मुमुग्धि, मध्यमं वि चृत, जीवसे अधमानि अव (चृत) ॥ २१ ॥

हमारे उत्तम पाशको खुला करो, हमारे मध्यम पाशको ढीला करो और दीर्घ जीवनके लिये मेरे अधम पाशोंको भी खोल दो ॥ २१ ॥

प्रभो! मेरे प्रमादोंकी क्षमा करो

इस सूक्तके पहिले दो मंत्रोंमें प्रभुसे प्रार्थना की है, कि 'वह श्रेष्ठ प्रभु हमारे प्रमादोंकी हमें क्षमा करें।' क्योंकि हम मानव प्रमादशील ही हैं, कितनी भी सावधानी रखी तो भी प्रमाद हमसे होतेही रहेंगे। ऐसी अवस्थामें यदि प्रत्येक प्रमादके लिये कठोर दण्ड देना ही प्रभुको मन्जूर हुआ, तो फिर वध आदि दण्डसे छुटकारा पाना मनुष्योंके लिये सर्वथा असंभवही है। यदि प्रभुही क्षमाशील न होते हुए कठोर दण्ड देनेवाला क्रोधी हुआ, तो मानव किसकी शरण जायगें? इसलिये इस सूक्तके प्रारंभिक दो मंत्रोंमें प्रभुकी ऐसी प्रार्थना की है कि वह हमपर दया करे, कृपा करे, और हमारे अपराधोंकी हमें अपनी अगाध कृपासे क्षमा करें। उनकी सहस्रों आंखोंके सामने हम कहां छिप जाये? इसलिये हम प्रभुकी दयाकी हि शरण लेते हैं।

इन दो मन्त्रोंमें जो विनम्रभाव है वह प्रभुभक्तिके लिये अत्यंत आवश्यक है। अतः इस विनम्रभावसे उपासक भक्त प्रभुकी प्रतिदिन ऐसी प्रार्थना करें कि, 'हे प्रभो! जैसे सब अन्य मानव सदा प्रमाद करते रहते हैं, वैसे हमारे हाथसे भी प्रतिदिन अनेक प्रमाद होते रहते है, इसलिये हमारे प्रत्येक प्रमादके लिये तुम क्रोधित होकर हमें दण्ड न करो। दयाकी दृष्टि हमारे ऊपर रखो।' (१-)२

तेरी दयाका आश्रय

आगे तीसरे मन्त्रमें कहा है कि 'हे प्रभो! जैसे थके घोडेपर उसका मालिक दया करके उसको विश्राम देता है, उस प्रकार मैं इस संसारमें त्रस्त और दुःखी हुआ हूं, इसलिये तुम्हारी प्रार्थना करता हूं कि स्वामीकी तरह तुम मुझपर दया करो और मुझे अपनी अतुल दयासे सुखी करो। मेरे योग्य कर्म न भी हों, तथापि तुम अपनी दया प्रकट करके मुझे सुखी करो। मैं तुम्हारी प्रार्थना ही कर सकता हूं।' प्रमादशील होनेके कारण मुझसे सुयोग्य कर्म होंगे ही, ऐसा नियम नहीं है, तथापि तुम्हारी दयाका ही मैं पात्र बना रहूंगा, यही मेरी प्रार्थना है। (मं. ३)

चौथे मंत्रका आशय यह है कि-' जिस तरह पक्षी दिनभर इधर उधर घूमघाम कर शामको विश्रामके लिये अपने अपने घोंसले की ओर ही जाते हैं, और वहां विश्राम पाते हैं, उसी तरह मेरी बुद्धियाँ और मेरी विचारधाराएं इस विश्वमें इधर उधर घूमती रहती हैं, परंतु चिर शान्तिकी और शाश्वत सुखकी इच्छासे तुम्हारे ही आश्रयमें आती हैं और वहीं शान्ति सुख और आनन्द पाती हैं।' (मं. ४) इस मंत्रका कथन कितना हृदयस्पर्शी है इसका अनुभव पाठक करें।

पांचवे मंत्रमें हृदयकी उत्कट इच्छा यह प्रकट हुई है कि 'जो प्रभु सबकी सुरक्षितता करनेका सामर्थ्य रखता है, जो विश्वका नेता और संचालक है, जो चारों ओर विशाल दृष्टीसे सबको याथातथ्य रीतिसे देखता है, जो सबसे श्रेष्ठ है, उस सुखदायी प्रभुकी हम सब मिलकर कब उपासना करेंगे? कब वह हमारे सामने साक्षात् दर्शन देगा? हम आतुर हुए हैं उसकी भक्ति करनेके लिये, अतः चाहते हैं कि उसके साक्षात्कारका समय शीघ्र प्राप्त हो और हम उस प्रभुकी आनन्दकी प्राप्ति होनेतक यथेच्छ उपासना करें। (मं. ५)

'ये मित्र और वरुण ऐसे हैं कि जो व्रती और दाता पुरुषकी उन्नति करना चाहते हैं, वे कभी अपने भक्तका त्याग करते नहीं।' (मं. ६) यह दृढविश्वास इस मंत्रमें व्यक्त हुआ है। भक्तके प्रयत्न व्यर्थ कभी नहीं जायगे यह विश्वास यहां व्यक्त हुआ है। हरएक उपासकके अन्तःकरणमें ऐसा विश्वास अवश्य होना चाहिये।

प्रभु सर्वज्ञ है

आगेके तीन मंत्रोंमें प्रभुकी सर्वज्ञताका उत्तम वर्णन है-' वह प्रभु आकाशमें उडनेवाले पक्षीयोंकी गति जानता है, कौनसा पक्षी कहासे उडा है और कहां जायगा यह सब उसको पता है, समुद्रमें इतस्ततः घूमनेवाली नौकाएँ किस गतिसे घूम रही हैं, उनमेंसे कौनसी नौका अपने स्थानको ठीक तरह पहुंचेगी और कौनसी नहीं यह सब उस प्रभुको पता है। वर्षके बारह महिनों में और (तीसरे वर्ष आनेवाले) तेरहवें पुरुषोत्तम मासमें क्या उत्पन्न होता है और उससे प्रजाकी उन्नति कैसी होती है यह सब उस प्रभुको पता है। चारों ओर संचार करनेवाले महान सर्व प्राण वायुकी गति कैसी होती है यह भी उसको पता है और इन सबपर जिनकी निगरानी है उन सब अधिष्ठाता देवताओंका भी यथायोग्य ज्ञान उस प्रभुको है।' (७-९) इस तरह वह प्रभु सर्वज्ञ है।

प्रभुका विश्वव्यापी साम्राज्य

इसी तरह 'वह प्रभु अपने नियमोंके अनुसार सब कार्य यथायोग्य रीतिसे, करता है, जो करता है वह उत्तम रीतिसे करता है, ऐसा वह सर्वश्रेष्ठ प्रभु सब प्रजाओंमें बैठता है और

अपना साम्राज्य चलाता है। वहां रहकर विश्वमें क्या हो रहा है, क्या किया गया है और क्या करना चाहिये इसका यथायोग्य निरीक्षण करता है। यही उत्तम कार्य करनेवाला प्रभु सबको बंधनसे छुटकारा करा देनेके लिये सब मानवोंको उत्तम मार्गसे चलावे और सबसे उत्तम कर्म होनेके लिये उनको दीर्घ आयुभी देवे।' (मं. १०-१२) यहां प्रभुके अतुल सामर्थ्यका भी वर्णन है, और उनकी सहायताकी भी प्रार्थना है।

सुवर्णके वस्त्रका आच्छादन

'उस प्रभुके ऊपर सुवर्णके वस्त्रका आच्छादन है, मानो वह प्रभु जरतारीके कपडे पहनकर और ऊपर वैसाही दुपट्टा लेकर खडा है। इसके दूत चारों ओर संपूर्ण विश्वमें उसीका कार्य करनेके लिये घूम रहे हैं। वे हम सबके चालचलनको देख रहे हैं। दुष्ट शत्रु या द्रोही इस प्रभुको किसीतरह कष्ट नहीं दे सकते इतना इसका सामर्थ्य है।' (मं. १३-१४)

'उस प्रभुनेही मानवोंमेंसे कईयोंको यशस्वी किया है। वह जो करता है वह कभी अधूरा नहीं करता, जो करता है वह यथायोग्य, यथातथ्य परिपूर्ण करता है अतः उसमें कभी त्रुटी नहीं होती। मनुष्यके पेटमेंही देखिये उसने कैसी उत्तम रचना की है कि जिससे खाये अन्नसे अन्दरही अन्दरसे शरीरका पोषण होता रहता है। ऐसाही सब विश्वभरमें हो रहा है।' (१५)

जैसी गौवें घासकी भूमिके पास दौंडती हुई जाती है, वैसी ही मेरी बुद्धियाँ इसी प्रभुके पास दौड रही हैं। इस प्रभुको अर्पण करनेके लिये जो भी मधुरतायुक्त रस मुझे मिला है वह सब मैंने उसको अर्पण करनेके लिये इकट्ठा करके रखा है। उसका वह स्वीकार करे और पश्चात् उस प्रभुसे मेरा दिल खोलकर वार्तालाप होता रहे।' (मं १६-१७)

ईश्वरका साक्षात्कार

आहा कितनी आनंदकी बात है कि— 'मैंने उस विश्वरूपमें दिखाई देनेवाले प्रभुका साक्षात् दर्शन किया है। जैसा पृथ्वीपर खडा रहा रथ दीखता है, वैसाही यह प्रभु मेरे सन्मुख खडा है। वह अब मेरी प्रार्थना सुने। हे प्रभो! मेरी प्रार्थना सुनो! आजही मुझे सुखी करो। अपनी सुरक्षा होनेके लिये मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूं। अतः हे प्रभु मुझे आनन्दमय बनाओ। हे बुद्धिप्रदाता प्रभो! तुम्हारा साम्राज्य आकाशसे पृथ्वीतक सर्वत्र अखण्ड है। वह हमारी प्रार्थनाओंका श्रवण करके उनकी पूर्णता करे और हमें पूर्ण आनन्दके भागी बनावे।' (मं. १८-२०)

बंधका नाश

'हे प्रभो! ऊपरके उत्तम मध्यम और कनिष्ठ ऐसे तीनों पाश ढिले करो और मुझे मुक्त करो।' (मं. २१)

यह सूक्त अत्यंत हृदयस्पर्शी है और बहुत ही भक्तिरससे भरपूर भरा है। पाठक इसका वारंवार पाठ करें, और मंत्रोंका जो आशय ऊपर दिया है उसका मनन करें। और प्रभु भक्तिसे अपने मनको ओत प्रोत भर दें।

आदर्श पुरुष

इस सूक्तने वरुणको आदर्श पुरुष बताया है 'यह आदर्श दर्शानेवाले पद ये हैं-

१ **मृळीकः**—जनोंको सुख देनेहारा, (मं. ३)

२ **क्षत्रश्रीः**—पराक्रमसे शोभनेवाला, शत्रुको परास्त करनेकी शक्ति जिसमें अत्यधिक है,

३ **नरः**—नेता, समाजको चलानेवाला,

४ **उरु-चक्षाः**—विस्तृत दृष्टीसे देखनेवाला, विशाल दृष्टीवाला, सर्व द्रष्टा, (मं. ५)

५ **धृत-व्रतः**—व्रतोंको *धारण करनेवाला, नियमोंका पालन* करनेवाला, (मं. ८,१०)

६ **सुक्रतुः**—उत्तम कर्म करनेवाला, कर्मोंको उत्तम रीतिसे करनेवाला,

७ **पस्त्यासु नि षसाद**—अपनी प्रजाके साथ रहनेवाला (मं. १०)

८ *कृतानि कर्त्वा अभिपश्यति*— *क्या किया है और* क्या करना है, इसको ठीक तरह देखनेवाला (मं. ११)

९ आदित्यः (अ-दितेः अयं)– स्वतंत्रताके लियेही जो रहता है, (**आ दाता**) सबोंका जो स्वीकार करता और उनका जो हित करता है,

१० *विश्वाहा नः* **सुपथा करत्**– सदा जनताको शुभ मार्गसे ले जाता है।

११ आयूंषि प्र तारिषत्– दीर्घ आयुष्य करता है, (मं १२)

१२ **दिप्सवः द्रुह्वाणः अभिमातयः यं न दिप्सन्ति** शत्रु घातक और द्रोही जिसको किसी तरह हानि नहीं पहुंचा

सकते, (मं. १४)

१३ मानुषेषु असामि यशः चक्रे-- मनुष्योंमें जो विशेष यश प्राप्त करता है, (मं. १५)

१४ विश्वदर्शतः-- विश्वमें दर्शनीय, विश्वमें शोभावान्, विश्वरूपमें देखने योग्य, (मं. १८)

१५ मेधिरः-- उत्तम मंत्रणा देनेवाला, बुद्धिवान्

ये गुण धारण करनेसे मनुष्य उच्च हो सकता है इसमें कोई संदेहही नहीं है। इसलिये शुनःशेपऋषिने यह आदर्शपुरुष जनताके सामने इस सूक्त द्वारा रखा है। पाठक इन गुणोंका मनन करें।

तीन पाश

तीन पाशोंके विषयमें पूर्व सूक्तमें विवेचन किया है वही यहां देखने योग्य है।

बहुवचनके प्रयोग

इस सूक्तमें भी बहुवचनके प्रयोग बहुत हैं, देखिये--

१ प्र मिनीमसि--हम प्रमाद करते हैं, (मं. १)

२ नः *वधाय मा रीरिधः* -हमारे वधके लिये सिद्धता मत कर, (मं. २)

३ गीर्भिः वि सीमहि--हम स्तुति करते हैं, (मं. ३)

४ कदा आ करामहे प्रभुको हम कब बुलायेंगे ? (मं.५)

५ नः आयूंषि प्र तारिषत--हमारे आयुष्य बढावें,(मं.१२)

६ नः पाशं उत् मुमुग्धि--हमारा पाश खोल दो (मं.१२)

ये बहुवचनके प्रयोग पूर्व सूक्तके समान ही ' हम सब मानव ' ऐसा भाव बता रहे हैं। यहां एक मानवके बंधे जानेका संबंध ही दीखता नहीं। जिस अन्तिम मन्त्रमें पाश खोलनेकी बात कही है वहां भी ' नः पाशं ' हमारे पाशको खोल दो, अर्थात् हम सबके पाशोंको खोलो ऐसा ही कहा है इसलिये किसी एक मानव के बंधसे मुक्त होनेके लिये यह सूक्त है ऐसा कहना कठिन है। अब इस सूक्तमें जो एकवचनमें प्रयोग हैं उनको देखिये--

एकवचनके प्रयोग

इस सूक्तमें निम्नलिखित मंत्रोंमें एकवचनके प्रयोग हैं —

१ मे विमन्यवः परा पतन्ति- मेरे उत्साही विचार-प्रवाह दूरतक भागते हैं, (मं. ४)

२ मे धीतयः परा यन्ति- मेरी बुद्धियाँ दूर जाती हैं, (मं. १६)

३ मे मधु आभृतं- *मेरा मधुररस भरा पडा है, (मं.१७*

४ मे गिरः जुषत— मेरी स्तुतिका सेवन करो, (मं.१८)

५ मे हवं श्रुधि— मेरी प्रार्थना सुन, (मं. १९)

६ अवस्युः त्वां आ चके— सुरक्षा चाहनेवाला मैं *तुम्हारी स्तुति करता हूं।(मं. १९)*

उपासकके विषयमें एकवचनी प्रयोग ये हैं। उपासना करनेवाला वैयक्तिक भाव बोलता है यह ठीकही है, पर जिस समय वह बंधनसे मुक्त होनेकी बात कहता है, उस समय **'नः पाशं उन्मुमुग्धि।'** (मं. २१) हम सबके पास खोल दो ऐसा कहता है। वैदिक मुक्ति साधिक है यह इससे स्पष्ट हो जाता है। कुछ पाश व्यक्तिके भी होते हैं, उसका विचार जहां वैसा भाव आ जायेगा वहां किया जायगा। इस सूक्तमें सामुदायिक बंधन निवृत्तिकी प्रार्थना है यह विशेष देखने योग्य है।

(३) प्रिय प्रजापति

(ऋ. १।२६) *आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। अग्निः। गायत्री।*

वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते	। सेमं नो अध्वरं यज	१
नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः	। अग्ने दिवित्मता वचः	२
आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये	। सखा सख्ये वरेण्यः	३
आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा	। सीदन्तु मनुषो यथा	४
पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च	। इमा उ षु श्रुधी गिरः	५
यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे	। त्वे इद्धूयते हविः	६
प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः	। प्रियाः स्वग्नयो वयम्	७

स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः	स्वग्नयो मनामहे	८
अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम्	मिथः सन्तु प्रशस्तयः	९
विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः	चनो धाः सहसो यहो	१०

अन्वयः- हे मियेध्य ऊर्जां पते ! वस्त्राणि वसिष्व हि। सः नः इमं अध्वरं यज ॥ १ ॥

अर्थ- हे पवित्र और बलोंके स्वामी ! वस्त्रोंको पहनो। और वह (तू) हमारे इस यज्ञका यजन करो ॥१॥

हे सदा यविष्ठ अग्ने ! नः वरेण्यः होता मन्मभिः दिविमता वचः नि (सीद) ॥ २ ॥

हे सदा तरुण अग्नि देव ! (तू) हमारा श्रेष्ठ होता है, (वह तू हमारे) मननीय दिव्य वचन (सुननेके लिये इस यज्ञमें आकर यहां) बैठो ॥२॥

वरेण्यः पिता सूनवे, आपिः आपये, सखा सख्ये आ यजति स्म ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ पिता अपने पुत्रको, बन्धु अपने बन्धुको, और मित्र अपने मित्रको (वैसा यह अग्निदेव हमें) सहायता देवे ॥३॥

रिशादसः वरुणः मित्रः अर्यमा नः बर्हिः आ सीदन्तु, यथा मनुषः ॥ ४ ॥

शत्रुनाशक वरुण मित्र और अर्यमा हमारे आसनोंपर बैठें जैसे मनुष्य बैठते हैं (अथवा जैसे मनुके यज्ञमें बैठे थे) ॥४॥

हे पूर्व्यः होतः ! नः अस्य सख्यस्य च मन्दस्व । इमाः गिरः उ सु श्रुधि ॥ ५ ॥

हे प्राचीन होता ! हमारे इस मित्रभावसे (तुम) प्रसन्न हो ! (और हमारा) यह भाषण उत्तम रीतिसे सुनो ॥५॥

यत् चित् हि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे, (तत्) हविः त्वे इत् हूयते ॥ ६ ॥

जिस तरह शाश्वत कालसे और सनातन रीतिसे प्रत्येक देवका हम यजन करते आये हैं, (वही) हवि तुम्हें दिया जा रहा है ॥६॥

विश्पतिः, होता, मन्द्रः, वरेण्यः, नः प्रियः अस्तु । वयं स्वग्नयः प्रियाः (भूयास्म) ॥ ७ ॥

प्रजाओंका पालक, हवनकर्ता, आनन्दित और श्रेष्ठ (यह अग्नि) हमारे प्रिय हो। हम भी उत्तम अग्निसे युक्त होकर उसके प्रिय बने ॥७॥

स्वग्नयः देवासः नः वार्यं दधिरे । स्वग्नयः च मनामहे ॥८॥

उत्तम अग्निसे युक्त देवोंने हमारे लिये श्रेष्ठ ऐश्वर्य धारण कर रखा है । (इसलिये हम) उत्तम अग्निसे युक्त होकर (इस देवके नामका) मनन करते हैं ॥८॥

हे अमृत ! अथ मर्त्यानां नः उभयेषां मिथः प्रशस्तयः सन्तु ॥ ९ ॥

हे अमर देव ! (तुम अमर हो) और हम मर्त्य हैं (अतः) हम दोनोंके परस्पर प्रशंसायुक्त भाषण होते रहें ॥९॥

हे सहसः यहो अग्ने ! विश्वेभिः अग्निभिः इमं यज्ञं इदं वचः चनः धाः ॥ १० ॥

हे बलके साथ प्रकट होनेवाले अग्निदेव ! सब अग्नियोंके साथ यहां इस यज्ञका और इस स्तोत्रका (स्वीकार करके हमारे लिये पर्याप्त) अन्नका प्रदान करो ॥१०॥

प्रिय प्रभुकी उपासना

सब वस्तुओंसे प्रभुही अत्यंत प्रिय है इसलिये भक्तजन उसकी इस तरह प्रार्थना करें—

'हे सबसे अत्यंत पवित्र और सब प्रकारका बल देनेवाले प्रभो! तुम अपने प्रकाशरूपी वस्त्रोंको पहनकर प्रकट हो जाओ और हम जिस यज्ञका प्रारंभ कर रहे हैं उसको यथायोग्य रीतिसे संपन्न करो। (१) हे प्रभो ! तुम सदा तरुण हो, (बाल्य और वार्धक्य ये अवस्थाएं तुम्हारे लिये नहीं हैं,) तुमही हमारे श्रेष्ठ सहायक हो, इसलिये आओ, यहां विराजमान होकर हमारा काव्यगायन सुनो (२) जैसा पिता प्रेमसे अपने पुत्रकी सहायता करता है, भाई अपने भाईको हर प्रकारकी मदद पहुंचाता है, और मित्र अपने मित्रका सदा हित ही करता है, वैसाही (तुम हमारे पिता, बन्धु और मित्र हैं अत. उस भावसे हम सबकी सहायता करो। (३) जैसे मनुष्य (अपने मित्रके घरमें जाकर वहां प्रेमसे बैठते हैं वैसे) ही) तुम मित्रभावसे आकर हमारे यहां बैठो (और हमारे सहायक बनो)। (४) तुम सनातन यज्ञकर्ता हो। मित्रभावसे

किये इस हमारे आदरातिथ्यसे तुम आनन्द प्रसन्न हो जाओ और हमारा भाषण सुनो। (५) जैसी सनातन समयसे देवताओंका सत्कार करनेकी रीति चली आ रही है, उसी पद्धतिके अनुसार हम तुम्हारा हविष्यान्न अर्पण द्वारा पूजन कर रहे हैं। (६) तुमही हम सबका सच्चा पालनकर्ता हो, तुम ही सबका याजक हो, तुम ही सबका हर्ष बढानेवाले हो, तुम ही सबसे श्रेष्ठ हो। हमारे लिये तुम ही अत्यंत प्रिय हो। हम भी इस शुभ कर्म द्वारा तुम्हारे लिये प्रिय होकर रहें। (७) उत्तम तेजस्वी देवोंने अनेक प्रकारसे उत्तमसे उत्तम धन ऐश्वर्य आदि हमारे हितके लिये यहां धारण करके रख दिया है, हम भी तेजस्वी बनकर उसका अच्छीतरह मनन करते हैं। (८) हे देव! तुम अमर हो और हम मरणधर्मा हैं। हम और तुम मिलकर परस्पर सहायक हो जाय और अपूर्व यश निर्माण करनेवाले बने। (९) हे बलके साथ प्रकट होनेवाले प्रभो! सब अपने तेजस्वी सामर्थ्योंके साथ प्रकट होकर हमारे इस यज्ञकर्मको सफल बनाओ और हमारा स्तोत्र सुनकर, हमें सब प्रकारका अन्न धन आदि उत्तम प्रकारसे प्रदान करो जिससे हम सुखी बनें। (१०)

इस सूक्तके आधारसे इसतरह पाठक उपासना करें, यह संपूर्ण सूक्त उपासनाके लिये अत्यंत उत्तम है और इसमें 'सख्य भक्ति' अत्यंत उत्कट रूपसे है।

बहुवचनमें प्रयोग

इस सूक्तमें निम्नलिखित प्रयोग बहुवचनमें हैं—

१ नः अध्वरं यज— हमारे यज्ञका यजन कर (मं. १)

२ नः वचः— हमारा भाषण, हमारी प्रार्थना, (मं. २)

३ नः बर्हिः आ सीदन्तु— हमारे आसनोंपर बैठें, मं. ४)

४ नः गिरः सु श्रुधी— हमारा भाषण सुनो, (मं.५)

५ देवं यजामहे— देवताका यजन हम करते हैं, (मं ६)

६ विश्पतिः नः प्रियः अस्तु— प्रजाका पालन करनेवाला प्रभु हमारे लिये प्रिय हो, (मं .७)

७ वयं प्रियाः— हम प्रिय बनें, (मं. ७)

८ देवासः नः वार्यं दधिरे— देवोंने हमारे लिये धन दिया है, (मं. ८)

९ मनामहे— हम मनन करेंगे, प्रभुके गुणोंका मनन करेंगे, (मं. ८)

१० नः मिथः प्रशस्तयः सन्तु— हमारे परस्पर भाषण आदरपूर्वक होते रहें, (मं. ९)

इस तरह इस सूक्तके सभी वचन बहुवचनमें है। यह एक भी वचन ऐसा नहीं है कि जो एकवचनमें हो। अतः यह संपूर्ण सूक्त सामुदायिक उपासनाके लिये अत्यंत उपयोगी सूक्त है ऐसा हम कह सकते हैं। एक व्यक्तिके हितके लिये यह एक भी निर्देश नहीं है, और सबके सब निर्देश सामूहिक जीवनके निदर्शक हैं।

मर्त्य और अमर

नवम मंत्रमें बडे महत्त्वकी प्रार्थना है। 'हम उपासकजन मर्त्य हैं और हमारा उपास्य अमर है। हमारा यह संबंध उपासक उपास्यका है, जो मर्त्य और अमरका संबंध है। हम परस्परकी सहायता करेंगे और परस्परका हित करेंगे।' यही गीताके वचन जैसाही वाक्य है।

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परं अवाप्स्यथ ॥
(गी. ३।११)

यज्ञसे देवोंकी संभावना करो, और देव तुम्हारी संभावना करें। तुम और देव ये दोनों परस्परोंकी संभावना करते हुए परस्पर श्रेय संपादन करो।' इसीतरह यहाँ कहा है कि 'मर्त्य और अमर परस्परकी सहायता करें।'

आदर्श पुरुष

इस सूक्तद्वारा निम्नलिखित प्रकार आदर्श पुरुष जनताके सामने रखा गया है—

१ मियेध्यः— पवित्र,

२ ऊर्जां पतिः—नानाप्रकारके बलोंको धारण करनेवाला,

३ अ-ध्वरं यज— अकुटिल अथवा हिंसारहित कर्मोंको करनेवाला, (मं. १)

४ यविष्ठः— तरुण (वृद्ध होनेपर भी तारुण्यके उत्साहसे युक्त),

५ वरेण्यः— श्रेष्ठ, वरिष्ठ, (मं. २-३)

६ पिता, आपिः, सखा— पितृवत्, बन्धुवत् और मित्रवत् आचरण करनेवाला, (मं ३)

७ रिशादस (रिश्-अदस्)— शत्रुका नाश करनेवाला, (मं. ४)
८ विश्पतिः (विश्-पतिः)— प्रजापालक, प्रजारक्षक,
९ मन्द्रः— आनंदित, प्रसन्नचित्त,
१० प्रियः—सबको प्रिय, (मं. ७)
११ सहसः यहुः— बलसे प्रकट होनेवाला, प्रकट होते ही बल दिखानेवाला, (मं. १०)

ये शुभ गुण धारण करनेवाला वीर जैसा दीखेगा, वैसा आदर्श पुरुष इस सूक्तने पाठकोंके सन्मुख रखा है।

(४) श्रेष्ठ देवकी भक्ति

(ऋ.१।२७) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। १-१२ अग्निः, १३ देवाः १-१२ गायत्री, १३ त्रिष्टुप्।

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् १
स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् २
स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः । पाहि सदमिद् विश्वायुः ३
इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ४
आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ५
विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुषे क्षरसि ६
यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ७
नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाय्यः ८
स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ९
जराबोध तद् विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् १०
स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः । धिये वाजाय हिन्वतु ११
स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः । उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः १२
नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः ।
यजाम देवान् यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः १३

अन्वयः— वारवन्तं अश्वं न अध्वराणां सम्राजन्तं अग्निं नमोभिः वन्दध्यै ॥ १ ॥

अर्थ—बालोंवाले-अयालवाले सुंदर घोडेके समान, अहिंसा-युक्त यज्ञकर्मको निभानेवाले, (ज्वालाओंसे) प्रदीप्त हुए अग्निको हम नमस्कारोंसे सुपूजित करते हैं ॥१॥

शवसा सूनुः, पृथुप्रगामा, सः घा नः सुशेवः, अस्माकं मीढ्वान् बभूयात् ॥ २ ॥

बलके लियेहि उत्पन्न हुए, सर्वत्र गमन करनेवाले वह अग्निदेव निश्चयसे हमारे लिये सुखसे सेवा करनेयोग्य, तथा हमारे लिये सुख देनेवाले हों ॥२॥

विश्वायुः स दूरात् च आसात् च अघायोः मर्त्यात् नः, सदं इत्, नि पाहि ॥ ३ ॥

हे संपूर्ण आयुके प्रदाता ! वह (तुम) दूरसे पाससे पापी मनुष्यसे हम सबको, सदाके लिये सुरक्षा करो ॥३॥

हे अग्ने ! त्वं अस्माकं इमं उ सु सनिं, नव्यांसं गायत्रं देवेषु प्रवोचः ॥ ४ ॥

हे अग्निदेव ! तुम हमारे इस दानको, और नवीन गायत्री छन्दके स्तोत्र की बात देवोंसे कहो ॥४॥

परमेषु वाजेषु नः आ भज । मध्यमेषु आ (भज) । अन्तमस्य वस्वः शिक्ष ॥ ५ ॥

उच्च कोटीके बल हमें दो। मध्यम कोटीके(बल भी हमें दो)। तथा पाससे मिलनेवाले धन भी हमें प्रदान करो ॥५॥

हे चित्रभानो ! सिन्धोः उपाके ऊर्मी (इव), विभक्ता असि, दाशुषे सद्यः क्षरसि ॥ ६ ॥

हे विलक्षण तेजस्वी देव ! सिन्धुके पास तरङ्ग (की तरह, तुम) धनोंका बंटवारा करनेवाला हो; दाताको तो तुम तत्काल-ही (धन) देता है ॥६॥

हे अग्ने ! पृत्सु यं मर्त्यं अवाः, यं वाजेषु जुनाः, स. शश्वतीः इषः यन्ता ॥ ७ ॥

हे अग्निदेव ! युद्धमें जिस मनुष्यकी तुम सुरक्षा करते हो, जिसको तुम रणोंमें जानेके लिये उत्साहित करते हो, वह शाश्वत अन्नोंका नियामक होता है ॥७॥

हे सहन्त्य ! अस्य कयस्य चित् पर्येता नकिः, (अस्य) वाजः श्रवाय्यः अस्ति ॥ ८ ॥

हे शत्रुके दमनकर्ता ! इसको घेरनेवाला कोई भी नहीं है, (क्योंकि इसकी) शक्ति प्रशंसनीय है ॥ ८ ॥

विश्वचर्षणिः सः अर्वद्भिः वाजं तरुता अस्तु, विप्रेभिः सनिता अस्तु ॥ ९ ॥

सर्व मानवोंका (हित करनेवाला) वह (देव हमें) घोडोंके साथ युद्धसे पार करनेवाला होवे, (तथा) ज्ञानियोंके साथ (धनका) प्रदानकर्ता हो जावे ॥ ९ ॥

हे जराबोध ! विशे विशे यज्ञियाय, तत् रुद्राय दृशीकं स्तोमं विविड्ढि ॥ १० ॥

हे प्रार्थना सुननेके लिये जाग्रत रहनेवाले देव ! प्रत्येक मनुष्यके (कल्याणके लिये चलाये इस) यज्ञमें रुद्र देवके प्रीतिके लिये सुन्दर स्तोत्र, (गाया जाता है अतः यहां तुम) प्रवेश करो ॥ १० ॥

सः महान् अनिमानः धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः नः धिये वाजाय हिन्वतु ॥ ११ ॥

वह बडा अपरिमेय धूमके झण्डेवाला अत्यंत तेजस्वी देव हमें बुद्धि और बल (की वृद्धि) के लिए प्रेरित करे ॥ ११ ॥

सः दैव्यः केतुः, विश्पतिः बृहद्भानुः अग्निः, रेवान् इव, उक्थैः नः शृणोतु ॥ १२ ॥

वह प्रजापालक, दिव्यसामर्थ्यका झण्डा जैसा, तेजस्वी अग्नि देव, धनवानोंकी तरह, स्तोत्रोंके साथ हमारी (प्रार्थनाको) सुनें ॥ १२ ॥

महद्भ्यः नमः, अर्भकेभ्यः नमः, युवभ्यः नमः, आशिनेभ्यः नमः । यदि शक्नवाम, देवान् यजाम । हे देवाः ! ज्यायसः आशंसं मा वृक्षि ॥ १३ ॥

बडोंके लिये नमस्कार, बालकोंके लिय प्रणाम, तरुणोंके लिये नमन, और वृद्धोंके लिये भी हम वन्दना करते हैं। जितना सामर्थ्य होगा, (उतनेसे हम) देवोंका यजन करेंगे । हे देवो (उस एक) श्रेष्ठ देवकी प्रशंसा करनेमें (हमसे) त्रुटी न हो ॥ १३ ॥

श्रेष्ठ प्रभुकी उपासना

जिस तरह अयालवाला घोडा सुंदर दीखता है, वैसाही ज्वाला (रूपी अयाल) से युक्त प्रदीप्त अग्नि (रूपी घोडा) अति सुंदर दीखता है। इस यज्ञवेदीपर प्रदीप्त हुए इस अग्निको हम नमस्कार करते हैं। (१) यह देव बलके विविध कार्य करनेके लियेही प्रकट हुआ है, वह सर्वत्र गमन भी करता है अतः वह हमें सुख देवे। (२) यह देव हमें दीर्घ आयु देता है, वह सब स्थानोंसे (अर्थात् पाससे और दूरसे) पापी मनुष्योंके कपट जालसे हमें बचावे। (३) हमें उच्च, मध्यम आदि सब प्रकारके बल दो, तथा उन बलोंसे हमें सब प्रकारके धन पास होनेके समान प्राप्त हों। (५)जिस तरह समुद्र तरङ्गोंके कारण उछलता है वैसा तुम प्रेमसे उछलो और हमें सब धन दो। (६) जिसपर तुम्हारी दया है उसको अक्षय धन प्राप्त होते हैं। और वह नियामक होता है। (७)उसको घेरनेवाला कोई नहीं रहता, इतनी उसकी विशाल शक्ति होती है। वह संपूर्ण रूपसे शत्रुका दमन करता है। (८) वह देव सब मानवोंका हित करता है वह हमें युद्धोंमें विजय देवे और ज्ञानियोंके साथ रखे। (९)वह अपरिमित बलसे युक्त देव हमें बुद्धि और बल बढानेके कार्योंमें प्रेरित करे। (११)वह प्रजापालन करता है, दिव्य सामर्थ्यसे युक्त है, वह हमारी

प्रार्थना सुनें। (१२) बालक, तरुण, बडे और वृद्ध जो भी पुरुष हैं (वे सब इसी प्रभुके रूप हैं,) अतः उनको नमन करते हैं। जहांतक हमारी शक्ति रहेगी तबतक उन सब देवों के लिये हम यज्ञ करते रहेंगे, इसमें हमसे त्रुटी न हो। (१३)

इस तरह पाठक उपासना करें। यह सूक्त उपासनेके लिये बडाही अच्छा है। और इसम विश्वरूप प्रभुकी भक्ति उत्तम रीतिसे करनेकी विधि बतायी है। प्रारंभ अग्निके नामसे करके अन्तिम मंत्रमें छोटे बडे सभी रूपोंमें प्रकट होनेवाले प्रभुकी उपासना कही है।

विश्वरूपकी उपासना

(अर्भक) बालक, (युवा) तरुण, (महान्) बडे और (आशीन) वृद्ध इन चार अवस्थाओंमें सब प्राणी रहते हैं। प्रभु इन चार अवस्थाओंमें रहनेवाले प्राणियोंके रूपमें इस विश्वमें हैं। यहाँ अग्नि अथवा रुद्र इन रूपोंमें प्रकट हुआ है ऐसा कहा है। यह मंत्र यहां अग्नि सूक्तमें है। रुद्र सूक्तमें इसका रूप विभिन्न है, देखिये—

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च॥ (वा. यजु. १६।३२)

'ज्येष्ठ, कनिष्ठ, पूर्वज, अपरज, मध्यम, अपगल्भ, जघन्य, बुध्न्य इन सब रुद्र रूपोंके लिये नमन है।' यहां आठ पद हैं, परंतु तात्पर्य एकही है। जितने भी रूप दिखाई देते हैं वे सबके सब रुद्र देवताके रूप हैं। यहां अग्निके हैं। अग्नि और रुद्र एकही देवके दो नाम है, अग्निके उद्देश्यसे उपनिषदमें कहा है-

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ (कठ उ. २।५।९)

'अग्नि जैसा भुवनमें प्रविष्ट होकर प्रत्येक रूपमें उसके आकारवाला होकर रहा है, वैसा एकही सर्व भूतोंका अन्तरात्मा है जो प्रत्येक रूपमें प्रतिरूप हुआ है और बाहर भी है।' अग्नि सब पदार्थोंमें है, और सबके रूपोंका धारण करके रहता है, वैसा ही सर्वभूतान्तरात्मा है। रुद्र भी वैसाही है। यहां बत इस तेरहवें मंत्रमें कही है। छोटे, बडे, जवान, बालक और वृद्धमें संपूर्ण जगत् समाया है। यह सब एकही देवताका रूप है। जिसके साथ मनुष्यका संबंध आता है वह बालक, तरुण, मध्यम, वृद्ध, जीर्ण, पूर्वज, वंशज आदिमेंसे कोई एक अवश्य होता है। इनमेंसे प्रत्येक प्रभुका रूप है और वह प्रभुके समान संमानके योग्य है। अतः किसीके साथ व्यवहार करना हो तो प्रभुके साथ व्यवहार करनेके समान परम आदरसे करना चाहिये। ऐसा व्यवहार करनाही जीवनसाफल्यका अनुष्ठान है। जो करेंगे वेही सफल हो सकते हैं।

तेरहवें मंत्रका उत्तरार्ध कहता है कि— 'जबतक शरीरमें शक्ति है तबतक हम इस प्रभुके विश्वरूपकी सेवा करेंगे, सब विश्वरूपमें सुव्यवस्थित रहे इस श्रेष्ठ प्रभुकी उपासना करनेकी विधिमें हमसे किसीतरह कोई त्रुटी न हो।' अर्थात् हमसे विश्वरूपकी योग्य सेवा होती रहे।

आदर्श पुरुष

इस सूक्तमें जो आदर्श पुरुष वर्णन किया है उसके ये गुण हैं—

१ **अध्वराणां सम्राट्**- अकुटिल कर्मोंका सम्राट्, हिंसारहित कर्मोंसे प्रकाशमान, (मं. १)

२ **शवसा सूनुः**- बलसे उत्पन्न होनेवाला, बलके साथ प्रकट होनेवाला, बलके प्रचण्ड कार्य करनेके लिये उत्पन्न (मं. २)

३ **पृथु-प्रगामाः**- विशेष गतिशील, सर्वत्र गतिमान, सर्वत्र गमन करनेवाला,

४ **सुशेवः**- सेवा करनेयोग्य,

५ **मीढ्वान्**- सुखदायी, इष्ट सुख देनेवाला, (मं. २)

६ **विश्वायुः**- पूर्णायु, पूर्ण आयुतक कार्य करनेवाला,

७ **अघायोः पाहि**- पापीसे बचानेवाला, (मं. ३)

८ **परमेषु मध्यमेषु वाजेषु भजकः**- परम और मध्यम ऐसे सब बल बढानेवाला,

९ **अन्तमस्य वस्वः शिक्षकः**- पासका धन देनेवाला, (मं. ५)

१० **पृत्सु अवाः**- युद्धोंमें सुरक्षा करनेवाला,

११ **इषः यन्ता**- धनों और अन्नोंका नियामक, (मं. ७)

१२ **अस्य पर्येता नाकिः**- इसको घेरनेवाला कोई नहीं है,

१३ **श्रवाय्य वाजः**- यशस्वी बलसे युक्त, (मं. ८)

१४ **विश्वचर्षणिः**- सब मानवोंका हितकारी,

१५ **तरुता**- संकटोंसे पार करनेवाला,

१६ **विप्रेभिः सानिता**- ज्ञानियोंके साथ रहनेवाले, (मं. ९)

१७ जराबोध- प्रार्थना सुननेके लिये जागनेवाला

१८ विशेविशे यज्ञियाय तत्— प्रत्येक पूजनीय मनुष्यके लिये वह सुख देनेवाला, (मं. १०)

१९ महान् अनिमानः— अत्यंत अप्रतिम,

२० पुरुश्चन्द्रः— तेजस्वी,

२१ धिये वाजाय— बुद्धि और बलके लिये यत्नशील, (मं. ११)

२२ रेवान्— धनवान्,

२३ विश्पतिः— प्रजापालक,

२४ बृहद्भानुः— अत्यंत तेजस्वी, (मं. १२)

ये विशेषण आदर्श पुरुषका सामर्थ्य बता रहे हैं। इनसे व्यक्त होनेवाले गुणोंका मनन करके पाठक इन गुणोंको अपनेमें ढालनेका यत्न करें।

बहुवचनके प्रयोग

इस सूक्तमें निम्नलिखित प्रयोग बहुवचनमें हैं—

१ नः सुशेवः— हमारे लिये सेवा करने योग्य,

२ अस्माकं मीळ्हान्— हमें सुख देनेवाला, (मं. ३)

३ नः पाहि— हमें सुरक्षित रख,

४ अस्माकं नव्यांसं— हमारा नया स्तोत्र, (मं. ४)

५ नः भज परमेषु— हमें परमश्रेष्ठ बलोंमें रख, (मं. ५)

६ नः वाजाय हिन्वतु— हमारे बलके लिये प्रेरित करे (मं. ११)

७ नः शृणोतु— हमारा भाषण सुने, (मं. १२)

८ देवान् यजाम— हम देवोंकी पूजा करें,

९ यदि शक्नवाम— यदि हममें शक्ति हो,

इतने प्रयोग इस सूक्तमें बहुवचनमें हैं। इससे बहुत मानवोंके हितका संबंध इस सूक्तके साथ है, किसी एक व्यक्तिके हितका नहीं, यह स्पष्ट है। एकवचनके प्रयोग इस सूक्तमें नहीं है। अर्थात् किसी एक मनुष्यके बंधनकी निवृत्ति करनेका यहां उल्लेख नहीं है, परंतु मानवसमाजके सुखका विचार यहां है।

(५) यज्ञकी तैयारी

(ऋ. १।२८) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। १-४ इन्द्रः। ५-६ उलूखलं, ७-८ उलूखलमुसले, ९ प्रजापतिर्हरिश्चन्द्रः, (अभिषवण-) चर्म सोमो वा। १-६ अनुष्टुप्, ७-९ गायत्री।

यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ १ ॥
यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ २ ॥
यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ३ ॥
यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन् यमितवा इव । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ४ ॥
यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे । इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥ ५ ॥
उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित् । अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥ ६ ॥
आयजी वाजसातमा ता ह्युच्चा विजर्भृतः । हरी इवान्धांसि बप्सता ॥ ७ ॥
ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः । इन्द्राय मधुमत् सुतम् ॥ ८ ॥
उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज । नि धेहि गोरधि त्वचि ॥ ९ ॥

अन्वयः- हे इन्द्र ! यत्र सोतवे पृथुबुध्नः ग्रावा ऊर्ध्वः भवति, (तत्र) उलूखलसुतानां अव इत् जल्गुलः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! यत्र अधिषवण्या द्वौ जघना इव कृता० ॥ २ ॥

अर्थ- हे इन्द्र ! जहां सोमरस चुआनेके लिये बडे मूलवाला पत्थर ऊपर उठाया जाता है, (वहां) ओखलमें निचोडा गया सोमरस पास जाकर पान करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जहां सोम कूटनेके दो फलक दो जघाओंकी तरह विस्तृत रखे होते हैं० ॥ २ ॥

यत्र नारी अपच्यवं उपच्यवं च शिक्षते० ॥ ३ ॥

जहां (यजमान की) पत्नी दूर होने और पास जानेकी शिक्षा पाती है० ॥ ३ ॥

यत्र मन्थां, रश्मीन् यमितवै इव, विबध्नते० ॥ ४ ॥

जहां मन्थन दण्ड, लगाम पकडनेके समान, बांधा जाता है, वहां ओखलसे निचोडे सोमरसको पास जाकर पान करो ॥४॥

हे उलूखलक ! यत् चित् हि त्वं गृहेगृहे युज्यसे, इह, जयतां इव दुन्दुभिः, द्युमत्तमं वद ॥ ५ ॥

हे ओखल ! यद्यपि घरघरमें तुमसे काम लिया जाता है, (तथापि) यहां विजयी लोगोंके ढोलकी तरह, तुम बडा ध्वनि कर ॥ ५ ॥

हे वनस्पते ! उत ते अग्रं इत् वातः वि वाति स्म । हे उलूखल ! अथो इन्द्राय पातवे सोमं सुनु ॥ ६ ॥

हे वनस्पते ! तुम्हारे सामने वायु बहता है। हे ओखल ! अब इन्द्रके पानके लिये सोमका रस निचोडो ॥ ६ ॥

आ यजी, वाजसातमा, ता हि, अन्धांसि बप्सता हरी इव, उच्चा विजर्भृतः ॥ ७ ॥

यज्ञके साधन, अन्न देनेवाले, वे दोनों (पत्थर) खाद्य खानेवाले इन्द्रके दोनों घोडोंकी तरह, उच्चस्वरसे विहार करते हैं ॥ ७ ॥

अद्य वनस्पती ता ऋष्वेभिः सोतृभिः ऋष्वौ इन्द्राय मधुमत् नः सुतम् ॥ ८ ॥

आज वृक्षसे उत्पन्न (ये दोनों) फलक दर्शनीय स्तोताओंके साथ दर्शनीय (बने तुम दोनों ओखल और मूसल) इन्द्रके लिये मीठा सोमरस हमारे (यज्ञमें) निकालो ॥ ८ ॥

चम्वोः शिष्टं उत् भर । सोमं पवित्रे आ सृज । गोः त्वचि अधि नि धेहि ॥ ९ ॥

दोनों पात्रोंसे अवशिष्ट रस उठालो । सोमको छाननीके ऊपर रखो, गोचर्म पर रखो ॥ ९ ॥

यज्ञकी तैयारी करना

इस सूक्तमें यज्ञकी तैयारी करनेकी विधि लिखी है। ओखल और मूसल ये दो साधन कूटनेके लिये हैं । इसमें चावल कूटकर साफ किये जाते हैं। (**अन्धांसि बप्सता**) अन्न चबाया जाता है वैसा धान कूटा जाता है । (मं ७) (**आ- यजी वाजसाता**) वे ऊखल और मूसल ये दोनों यज्ञके साधन हैं और ये धान-चावल तैयार करके देते हैं। (**उच्चा विजर्भृतः**) उच्च स्वरसे शब्द करते हुए मूसल यहां नाचते हैं, विहार करते हैं (मं ७)। धान कूटनेके पश्चात् वह छजमें रखकर थोडा थोडा नीचे फेंका जाता है, इस समय (**वनस्पते ! अग्रं वात वाति** । म. ६) वनस्पतिसे उत्पन्न हुए ओखलके सामनेके स्थानमें वायु चलता है, वहां उस वायुसे भूंसा पृथक् किया जाता है और शुद्ध चावल पृथक् होते हैं । छजसे टूटे चावल वायुमें थोडे थोडे छोड देनेसे भूंसा और चावल अलग अलग होकर भूमिपर गिरते हैं। इस तरह यज्ञके चावल तैयार होते हैं। ऐसे चावलोंमें मिलोंमें साफ किये चावलोंसे जीवन सत्व अधिक रहता है।

दहीमें मन्थन दण्डसे बिलोनेसे मक्खन ऊपर आता है। इस कार्यके लिये (**नारी अपच्यवं उपच्यवं शिक्षते** । (म. ३) यजमान पत्नी अपने हाथोंको आगेपीछे करती रहती हैं जिससे (**मन्थां विबध्नते** । मं. ४) मथनेका दण्ड रस्सीसे बांधा जाता है और इस रस्सीको आगेपीछे करनेसे दही मथा जाता है और मक्खन ऊपर आता है। इसको तपानेसे उत्तम सुमधुर घी बनता है । यह यजमानपत्नीका कार्य है। कलके निकाले दूधसे आज घी बनता है, वह सबसे उत्तम और स्वादु होता है । यह यज्ञमें बर्ता जाता है ।

सोम कूटनेके लिये (**सोतवे पृथुबुध्नः ग्रावा भवति** मं. १)
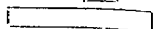
सोमरस निकालनेके लिये बडे मूलवाला पत्थर आवश्यक होता है। ऐसे पत्थरसे सोम कूटा जाता है। (**द्वा जघना अधिषवण्या कृता** । मं. २) दो जांघोंके समान दो अधि-

पवण फलक होते हैं। इनपर सोमको रखते हैं और कूटते हैं। पत्थरोंका कूटनेका शब्दभी एक भांतीका शब्द होता है, इसका वर्णन नाचनेके शब्दसे वेदमें किया गया है। 'ओखल और मूसलका उपयोग तो घरघरमें किया जाता है।' (५) पर यहां वह सोम कूटनेके लिये तथा चावल स्वच्छ करनेके लिये किया जाता है। सोम कूटनेके लिये नीचे पत्थरका अथवा लकडीका फट्टा अथवा ओखल रखते हैं उसपर कूटा करते हैं।

सोम अच्छीतरह कूटा जानेपर उससे हाथोंसे और अंगुलियोंसे पकड कर रस निकालते हैं, और उस रसको (**पवित्रे सोमं आ सृज।** मं ९) छननीपर पर रखते और छानते हैं और उस रसको (**चम्वोः आ भर।** मं. ९) कलशोंमें भर देते हैं। सोमरसपान करनेपर भी जो (**उच्छिष्टं चम्वोः भर।** मं. ९) अवशिष्ट रहता है उसको भी कलशोंमें भर देते हैं।

यह सब यज्ञकी तैयारीका वर्णन है, जो पाठक विचारपूर्वक जान सकता हैं।

गोचर्म

इस सूक्तके नवम मंत्रमें '**गोचर्म**' पर सोम रखो ऐसा कहा है। बहुत विद्वानोंने इसका अर्थ गौके चमडेपर ऐसा अर्थ माना है, पर गौके चर्मपर यह सब रहना कठीण है ऐसा प्रतीत होता है। गौका वध करके उसका चर्म प्राप्त करना असंभवसा प्रतीत होता है क्योंकि गौके नामोंमें '**अ-घ्न्या**'= (*अ-वध्य*), '*अ-दीना*'= (*टुकडे करनेके लिये अयोग्य*, जिसको काटा नहीं जाता), '*अ-दिति*'= (जिसको काटा नहीं जाता) ये नाम हैं। ये नाम गौकि अवध्यता सिद्ध करते हैं।

मुग्धा देवा उत शुना यजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधा यजन्त
(अथर्व. ७।५।५)

'मूढ याजकही कुत्तेके मांससे और गौके टुकडे करके उनसे हवन करते हैं।' ऐसा कहनेसे गौके वधका निषेधही वेदने किया है। यहां कई कहेंगे कि मृतगौका चर्म लिया जाय तो क्या हर्ज है। पर एक तो मृत पशुका चर्म अपवित्र है वह सोम जैसे पवित्र वस्तुके यजनके स्थानमें लेना अयोग्यही है, यज्ञमें भी वह नहीं लाया जायगा, फिर सोमके रखनेके लिये उसका उपयोग तो कठिनही प्रतीत होता है और जीवित गौका वध तो वेदके मंत्रोंने निषिद्धही माना है फिर इसका विचार कैसा किया जाय यह एक विचारणीय समस्या है।

'गोचर्म' का अर्थ 'कोशोंमें सौ गायोंके रहनेके लिये जितना *स्थान आवश्यक है उतना स्थान' ऐसा दिया है। ऐसे विस्तृत* स्थानपर सोमको रखना, कूटना, छानना और अनेक ऋत्विजोंका रहना हो सकता है। इसलिये ऐसे विशेष लंबे चौडे *स्थानपर सोमरस निकालने की व्यवस्था की जाती थी ऐसा मानना* योग्य है। देखो—

दशहस्तेन वंशेन दशवंशान् समंततः।
पञ्च चाभ्यधिकान् दद्यात् एतद् गोचर्म चोच्यते॥
(वसिष्ठ स्मृति)

इस परिमाणकी भूमिका नाम गोचर्म है। विचार करना *चाहिये कि जिस गोचर्मपर सोम रखना आदि लिखा है वह गौका चमडा है या उक्त परिमाणकी भूमी है, यह प्रश्न है।*

(६) गौवें और घोडे

(ऋ. १।२९) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। इन्द्रः। पंक्तिः।

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ १
शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ २
नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ३
ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ४

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५ ॥
पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ६ ॥
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ ॥

अन्वयः- हे सत्य सोमपाः ! यत् चित् हि, अनाशस्ता इव स्मसि । हे तुवीमघ. इन्द्र ! सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु नः आ शंसय ॥ १ ॥

हे शचीवः शिप्रिन् वाजानां पते ! तव दंसना (सर्वथा वर्तते०) ॥ २ ॥

मिथूदृशा निष्वापय, अबुध्यमाने सस्ताम्० ॥ ३ ॥

हे शूर ! त्या अरातयः ससन्तु । रातयः बोधन्तु० ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! अमुया पापया नुवन्तं गर्दभं सं मृण० ॥ ५ ॥

वातः कुण्डृणाच्या वनात् अधि दूरं पताति० ॥ ६ ॥

सर्वं परिक्रोशं जहि । कृकदाश्वं जम्भय० ॥ ७ ॥

अर्थ- हे सत्य स्वरूप सोमपान करनेवाले इन्द्र ! जो भी हो, हम बहुत प्रशंसित जैसे नहीं है (यह सत्य है)। तथापि, हे बहुधनवाले इन्द्र ! उत्तम सहस्रों गायें और घोडे हमें मिलें (ऐसा) हमें आशीर्वाद दो ॥ १ ॥

हे सामर्थ्यवान्, शिरस्त्राणधारी और सब बलोंके स्वामी इन्द्र ! तेरे कर्म (अद्भुत हैं)० ॥ २ ॥

(दोनों दुर्गतियाँ) परस्परकी ओर ताकती हुई सो जांय, वे कभी न जागती हुई बेहोश पडी रहें (अर्थात् हमें उनसे उपद्रव न हो)०॥ ३ ॥

हे शूर वीर ! हमारे शत्रु सोये रहें और मित्र जागते रहें० ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! इस पाप विचारमयी वाणीसे बोलनेवाले (शत्रु-रूप) गधेका वध करो० ॥ ५ ॥

विध्वंस करनेवाला झंझावात दूरके वनमें चला जाय० ॥ ६ ॥

आक्रोश करनेवाले सब शत्रुओंका नाश करो । और हिंसकोंका संहार करो । हे बहु धनवाले इन्द्र ! सर्वोत्तम सहस्रों गायें और घोडे हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥ ७ ॥

गौवें और घोडे हमें मिलें

हमें गायें और घोडे मिलें यह इच्छा इस सूक्तमें मुख्य है । इस सूक्तके सभी मंत्रोंमें 'नः आ शंसय' हमें आशीर्वाद मिले, यह बहुवचनमें प्रयोग है, इसलिये केवल किसी एक की भलाईकी इच्छा इसमें नहीं है अपितु सबकी भलाईकी इच्छा इसमें स्पष्ट है ।

आदर्श वीर पुरुष

इस सूक्तमें जो आदर्श पुरुष बताया है वह वीर निम्नलिखित गुणोंसे युक्त है-

१ सत्यः- सत्यका पालन करनेवाला, जिसका जीवन सत्यमय है,
२ तुवी-मघः- बहुत धनोंसे युक्त, (१)
३ शचीवः- सामर्थ्यवान्,
४ शिप्री- शिरस्त्राण और कवच धारण करनेवाला,
५ वाजानां पतिः- बलों, अन्नों और धनोंका स्वामी, (२)
६ शूरः- शूरवीर, (४)

ये गुण जिसमें विराजते हों ऐसे वीरकी कल्पना पाठक कर सकते हैं, यह वीर इस सूक्तका आदर्श पुरुष है ।

(७) उत्तम रथ

(ऋ. १।३०) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । १-१६ इन्द्रः, १७-१९ अश्विनौ, २०-२२ उषाः । १-१०, १२-१५, १७-२२ गायत्री, ११ पादनिचृद्गायत्री, १६ त्रिष्टुप्।

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः १
शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् । एदु निम्नं न रीयते २
सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे । समुद्रो न व्यचो दधे ३
अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ४
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ५
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ६
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ७
आ घा गमद्यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ८
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ९
तं त्वा वयं विश्ववाराऽऽशास्महे पुरुहूत । सखे वसो जरितृभ्यः १०
अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम् । सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ११
तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु । यथा त उश्मसीष्टये १२
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम १३
आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः १४
आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः १५
शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् १६
आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया । गोमद् दस्रा हिरण्यवत् १७
समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः । समुद्रे अश्विनेयते १८
न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः । परि द्यामन्यदीयते १९
कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये । कं नक्षसे विभावरि २०
वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात् । अश्वे न चित्रे अरुषि २१
त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः । अस्मे रयिं नि धारय २२

अन्वयः- वाजयन्तः (वयं) वः शतक्रतुं मंहिष्ठं इन्द्रं, यथा क्रिविं, आ सिञ्चे ॥ १ ॥

अर्थ— सामर्थ्यकी इच्छा करनेवाले (हम) तुम्हारे (कल्याणके) लिये सैकडों पराक्रम करनेवाले महान् इन्द्रको, जैसे हौजको (पानीसे भरते हैं वैसे सोमरससे) भर देते हैं॥ १॥

यः शुचीनां शतं वा, समाशिरां सहस्रं वा, निम्नं न, आ इत् उ रीयते ॥ २ ॥

जो शुद्ध सोमरसोंके सैकडों, तथा दुग्धमिश्रित रसोंके सहस्रों प्रवाहोंके पास, जल निम्न स्थलके पास जाता है (उस तरह) जाता है॥ २॥

यत् शुष्मिणे मदाय पूना हि अस्य उदरे, समुद्रः न, व्यचा सं दधे, ॥ ३ ॥

जो सोमरस बलवान् इन्द्रके आनन्द बढानेके लिये इसके उदरमें, समुद्रमें जैसा (जल इकट्ठा होता है वैसा), इकट्ठा होता है ॥ ३ ॥

अयं उ ते कपोतः गर्भधिं इव सं अवसि, तत् चित् नः वचः ओहसे ॥ ४ ॥

यह (सोमरस), कपोत गर्भिणी कपोतीके साथ (जैसा रहता है वैसा) तेरे लिये है, इसका तुमसे महकार होता है। तब तुम हमारी प्रार्थनाका विचार करो ॥ ४ ॥

हे राधानां पते गिर्वाहः वीर ! यस्य ते स्तोत्रं विभूतिः सूनृता अस्तु ॥ ५ ॥

हे धनोंके स्वामिन् स्तुतियोग्य वीर ! यह स्तोत्र तुम्हारी विभूतिका सत्य सत्य (वर्णन करनेवाला) हो ॥ ५ ॥

हे शतक्रतो ! अस्मिन् वाजे नः ऊतये ऊर्ध्वः तिष्ठ । अन्येषु सं ब्रवावहै ॥ ६ ॥

हे सैंकडों कर्म करनेवाले ! इस युद्धमें हमारी सुरक्षाके लिये खडा रह । अन्य कार्यके विषयमें (पीछेसे) संभाषण करेंगे ॥ ६ ॥

योगेयोगे वाजेवाजे तवस्तरं इन्द्रं ऊतये, सखायः, हवामहे ॥ ७ ॥

प्रत्येक कर्ममें और प्रत्येक युद्धमें बलशाली इन्द्रको (हम अपनी) सुरक्षाके लिये, (उसके) मित्रोंकी तरह, बुलाते हैं ॥ ७ ॥

यदि नः हवं श्रवत् सहस्रिणीभिः ऊतिभिः वाजेभिः च उप आगमत् ॥ ८ ॥

यदि वह हमारी पुकार सुनेंगे तो (अपनी) सहस्रों प्रकारकी सुरक्षा करनेवाले बलोंके साथ (हमारे पास निःसन्देह) आवेंगे ॥ ८ ॥

प्रत्नस्य ओकसः तुविप्रतिं नरं अनु हुवे । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥

(अपने) पुरातन स्थानसे अनेक (भक्तों) के पास पहुंचनेवाले वीर (इन्द्र) को मैं बुलाता हूँ । जिस तुमको पहिले (मेरे) पिता बुला चुके थे ॥ ९ ॥

हे विश्ववार पुरुहूत सखे वसो ! तं त्वा जरितृभ्यः वयं आ शास्महे ॥ १० ॥

हे इस विश्वमें वरणीय श्रेष्ठ बहुतोंद्वारा प्रशंसित मित्र और धनपति (इन्द्र) ! उस तुमसे स्तोताओंका (कल्याण करनेके लिये) हम आशीर्वाद मागते हैं ॥ १० ॥

हे सोमपाः सखे वज्रिन् ! सखीनां प्रियाणां सोमपान्नां अस्माकं शिप्रिणीनां (गवां व्रजः अस्तु) ॥ ११ ॥

हे सोम पीनेवाले मित्र वज्रधारी वीर ! मित्र प्रिय और सोम पीनेवाले हमारे पास उत्तम नासिकावाली (गौवोंके झुण्ड हों) ॥ ११ ॥

हे सोमपाः सखे वज्रिन् ! इष्टये ते यथा उश्मसि, तथा कृधु, तत् तथा अस्तु ॥ १२ ॥

हे सोम पीनेवाले मित्र वज्रधारी वीर ! (हमारी) अभिलाषा (पूर्ण करने) के लिये तेरी (प्राप्तिकी हम) जिस तरह इच्छा करेंगे, वैसा करो, वह वैसाही हो ॥ १२ ॥

द्युमन्तः याभिः मदेम, इन्द्रे सधमादे, नः रेवतीः तुविजाताः सन्तु ॥ १३ ॥

अन्नसे युक्त होकर (हम) जिनसे आनन्दित होंगे, वैसी इन्द्रके हमारे ऊपर प्रसन्न होनेपर, हमारे दूध देनेवाली और शक्तिसम्पन्न गायें हों ॥ १३ ॥

हे धृष्णो ! त्वावान् त्मना आप्तः, स्तोतृभ्यः इयानः च, चक्रयोः अक्षं न, आ ऋणोः ॥ १४ ॥

हे शत्रुका पराभव करनेवाले इन्द्र ! तुम्हारे समान तुमही आप्त हो, जो तुम, स्तोताओंके पास चक्रोंके अक्षकी तरह, पहुंचता है ॥ १४ ॥

हे शतक्रतो ! यत् दुवः आ कामे जरितॄणां शचीभिः अक्षं न, आ ऋणोः ॥ १५ ॥

हे सैंकडों प्रशस्त कर्म करनेवाले ! जो धन इच्छाके अनुसार स्तोताओंके पास, शक्तियोंसे रथका अक्ष चलानेके समान, तुम पहुंचाते हो ॥ १५ ॥

इन्द्रः शश्वत् पोप्रुथद्भिः जानद्भिः श्वासद्भिः धनानि जिगाय। दंसनावान् सः सनिता नः सनये हिरण्यरथं अदात्॥ १६॥

इन्द्र हमेशा फरफराते, हिनहिनाते तथा जोरसे श्वास लेते हुए (घोडोंके द्वारा) धनोंको जीतता है। कर्मकुशल उस दाता (इन्द्र) ने हमारे उपयोगके लिये सोनेका रथ दिया है ॥ १६॥

हे अश्विनौ ! अश्वावत्या शवीरया इषा आ यातम्। हे दस्रा ! गोमत् हिरण्यवत् (अस्मत् गृहं अस्तु) ॥ १७॥

हे अश्वि देवो ! अनेक घोडोंसे युक्त शक्ति देनेवाले अन्नके साथ आओ। हे शत्रुनाशको ! हमारे घरमें गायें और सुवर्ण होवे ॥ १७॥

हे दस्रौ ! वां रथः समानयोजनः अमर्त्यः हि समुद्रे ईयते ॥ १८॥

हे शत्रुनाशको ! तुम दोनोंका एक साथ जोतनेवाला विनाशरहित रथ है, जो समुद्रमें भी जाता है ॥ १८॥

अघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं नि येमथुः, अन्यत् परि द्याम्॥१९॥

(तुमने अपने रथका) पर्वतके शिखरके मूलमें एक चक्र रखा है और दूसरा द्युलोकमें रखा है ॥ १९॥

हे कथप्रिये अमर्त्ये विभावरि उषः ! भुजे मर्तः कः ? कं नक्षसे ? ॥ २०॥

हे स्तुतिप्रिय अमर शोभावाली उषा देवी ! तुम्हें भोजन देनेवाला मानव कौन है ? किसे तुम प्राप्त होना चाहती है ॥ २०॥

हे अश्व्ये चित्रे अरुषि ! आ अन्तात् आ पराकात् वयं ते न अमन्महि ॥ २१॥

हे अश्वयुक्त विचित्र प्रकाशवाली उषा देवी ! दूरसे या पास से हम तुम्हें नहीं जान सकते ॥ २१॥

हे दिवः दुहितः ! तेभिः वाजेभिः त्वं आ गहि, अस्मे रयिं नि धारय ॥ २२॥

हे द्युलोककी पुत्री ! उन बलोंके साथ तुम आओ, और हमें धन प्रदान करो ॥ २२॥

अश्विदेवोंका रथ

इस सूक्तके मंत्र १७-१९ तकके तीन मंत्रोंमें अश्विदेवोंके रथका वर्णन है। यह रथ दोनों अश्विनीकुमारोंके लिये **(समान-योजनः)** एकही समय जोडा जाता है। अर्थात् रथ सिद्ध होते ही दोनों अश्विदेव उसमें इकट्ठे ही बैठते हैं। यह रथ **(समुद्रे ईयते)** समुद्रमें भी जाता है। भूमिपर तो जाताही है और यह (अमर्त्यः) अमर होनेसे आकाशमें भी भ्रमण करता है, अर्थात् जल, स्थल और आकाशमें इसका रथ जाता है। एकही वाहन विमान जैसा आकाशमें जाय, रथ जैसा भूमिपर भी चले और नौकाके समान समुद्रमें भी जाय, यह निःसन्देह उत्तम कारीगरीसे बनाया रथ होगा।

इस रथका एक चक्र (अन्यत् परि द्यां) आकाशमें संचार करता है और दूसरा (अघ्न्यस्य मूर्धनि) पर्वत की मूर्धामें घूमता है। यहां मूर्धा पदका अर्थ मूल या जड ऐसा किया जाय तो यह वर्णन उत्तरीय ध्रुवके पासका वर्णन बनेगा। अश्विदेवोंका यह द्विचक्र रथ है।
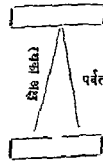
ऐसा रथ घूम रहा है। ऐसी कल्पना की जाय तो यह कल्पना उत्तरीय ध्रुवके पास ही दीख सकती है। यहां इस भारतभूमीमें ग्रहतारा और नक्षत्र पूर्वसे उदय होकर आकाश मध्यतक ऊपर चढते हैं और पश्चात् पश्चिममें अस्त होते हैं। उत्तरीय ध्रुवमें ये सब ग्रहतारा और नक्षत्र प्रदक्षिण गतिसे पर्वतके इर्दगिर्द घूमनेके समान चक्र गतिसे घूमते हैं अर्थात् देखनेवालेको प्रदक्षिणा करते हैं। अतः यहां रथचक्रकी उक्त गति और पर्वतको अघ्न्य कहना सार्थ हो सकता है।

यहां अडचन एकही है वह ' मूर्धा ' पदकी है। मूर्धाका अर्थ ' मूल, जड ' ऐसा करनेपर ही उक्त बातकी सिद्धि

(९)

शुनःशेप ऋषिके अथर्ववेदमें आये मंत्र

(अथर्व ६।२५।१-३) गण्डमाला विनाशन

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि । इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥१॥
सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि । इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥२॥
नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि । इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥३॥

अर्थ— जो पांच और पचास पीडाएं (मन्या अभि संयन्ति) गलेके चारों ओर मिलकर होती हैं० ॥ १ ॥ जो सात और सत्तर पीडाएं (ग्रैव्या अभि संयन्ति) कण्ठके भागमें मिलकर होती हैं ॥ २ ॥ जो नौ और नव्वे पीडाएं स्कंधदेशमें साथ साथ होती हैं, (ताः) वह सब (नश्यन्तु) नष्ट हों, दूर हों, (अपचितां वाका इव) अपरिपक्व मनुष्योंके भाषण जैसे विनष्ट होते हैं, अथवा कृमियोंके शब्द जैसे क्षणभरमें विनष्ट होते हैं अथवा गण्डमाला की बाधा जैसी दूर होती है ॥ ३ ॥

'अपचित' का अर्थ 'अपरिपक्व, अनाडी, कृमि जो शरीरमें काटनेसे सूजन होती है और गण्डमाला' है। यहां गला, गर्दन कण्ठभाग और स्कंधदेशमें होनेवाले फोडे फुन्सी आदिके दूर करनेकी प्रार्थना है। विशेष कर गण्डमालाके दूर करनेका विषय मुख्य है। गण्डमाला दूर करनेके लिये इसका पाठ किया करते हैं। ऋषि इस सूक्तमें रोग दूर करनेकी प्रार्थना करता है। यूपसे शुनःशेपके बन्धन ढीले करनेकी बात यहां नहीं है।

(१०)

(अथर्व ७।८३।१-४)

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः । ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥१॥
धाम्नोधाम्नो राजन्नितो वरुण मुञ्च नः । यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च ॥२॥ उदुत्तमं वरुण० ॥३॥ (ऋ १।२४।१५)
प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥४॥

अर्थ- हे वरुण राजन् ! (ते हिरण्यय गृहः अप्सु) तुम्हारा सुवर्णमय घर जलोंमें बनाया है। वहांसे नियमोंका धारण करनेवाला राजा सब धामोंको मुक्त करे ॥१॥

हे राजा वरुण ! प्रत्येक स्थानसे तथा इससे (नः मुञ्च) हम सबको मुक्त करो। 'हे अदूषणीय जलो ! हे वरुण !' ऐसी (यत् ऊचिम) जो हमने आपकी प्रार्थना की, इससे, हे वरुण ! (नः मुञ्च) हम सबको मुक्त करो ॥२॥

(उदुत्तमं० का अर्थ ऋ. १।२४।१५ स्थानपर, इस पुस्तकके प्रथम सूक्तमें पृ० ९ देखो) ॥३॥

हे वरुण ! (अस्मत् सर्वान् पाशान् प्र मुञ्च) हम सबसे सब पाशोंको दूर करो। (ये उत्तमाः अधमा ये वारुणाः) जो उत्तम, अधम, और जो वरुणसंबंधी पाश हैं वे दूर हों, तथा (दुष्वप्न्यं) दुष्ट स्वप्न और (दुरितं) पाप (अस्मत् नि स्व) हमसे दूर हो (सुकृतस्य लोकं गच्छेम) और हम निर्दोष होकर पुण्यलोकको पहुंचेंगे ॥४॥

इस सूक्तमें (१) **सर्वा धामानि मुञ्चतु**--सब धामोंको मुक्त करो, (२) **धाम्नोधाम्नो नः मुञ्च** - प्रत्येक धामसे हमें मुक्त करो, (३) यत् ऊचिम--जो हम प्रार्थना कर चुके, (४) **अस्मत् सर्वान् पाशान् प्र मुञ्च**--हम सबसे सब पाशोंको दूर करो, (५) **सुकृतस्य लोकं गच्छेम**--पुण्यलोकको हम सब प्राप्त होंगे। इन मंत्रोंमें बहुतोंके मुक्त होनेकी ही बात है। हम सब अलग अलग (धाम्नोधाम्नः) स्थानोंमें रहते हैं, पृथक् पृथक् (धामानि) घरोंमें रहते हैं, इकट्ठे होकर (ऊचिम) प्रार्थना करते हैं, हम सबको सब प्रकारके (सर्वान् पाशान् अस्मत् प्रमुच) पाशोंसे पृथक् करो जिससे हम सब पुण्यलोकको प्राप्त होंगे। ये सब मंत्र सामुदायिक उपासनाका महत्त्व बता रहे हैं। सब लोग मिलकर प्रार्थना करें और सब मिलकर मुक्त हों। यह सामुदायिक मुक्ति है। सबका सब समाज उच्च आचार-विचारसे परिशुद्ध होता हुआ मुक्त हो सकता है। यह विचार विशेषतया यहां बताया है।

उत्तम अधम पाशोंका स्वरूप तो पहिले बताया जा चुका है। यहां मध्यम पाशोंको 'वारुण' कहा है, यह विशेष है। इस सूक्तमें दुष्ट स्वप्न और पाप दूर होनेकी बात विशेष है। पुण्य-लोकमें पहुंचनेकी बात भी मननीय है। यदि शुनःशेप यूपसे ही अपना छुटकारा चाहनेवाला माना जाय, तो दुष्ट स्वप्नसे और पापसे दूर होकर पुण्यलोकको प्राप्त होनेकी जो बात है, वह यूपसे छुटकारा पानेके साथ संबंध नहीं रख सकती। इसलिये शुनःशेपकी जो कथा ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखी है वह विश्वास रखने योग्य प्रतीत नहीं होती और शुनःशेप ऋषिके सूक्तोंमें जो 'बन्धनसे निवृत्ति' का विचार है वह सर्व साधारण मानवोंके बंधनोंसे मुक्तता का ही विचार है इसमें संदेह नहीं है।

(११)

ऐतरेय ब्राह्मणमें शुनःशेपकी कथा

ऐतरेय ब्राह्मणमें जो शुनःशेपकी कथा लिखी है वह निम्नलिखित स्थानमें दी है, साथ अनुवाद भी दिया है—

मूल कथा	अनुवाद
१ हरिश्चन्द्रो ह वैधस ऐक्ष्वाकोऽपुत्र आस। तस्य ह शतं जाया बभूवुः। तासु पुत्रं न लेभे। तस्य ह पर्वत नारदौ गृह ऊषतुः। स ह नारदं पप्रच्छ... किं स्वित्पुत्रेण विन्दते तन्म आ चक्ष्व नारदेति।	१ हरिश्चन्द्र राजा इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए वेधस राजाका पुत्र था, वह पुत्रहीन था। उसकी सौ स्त्रियां थीं। पर उसे एक भी स्त्रीसे पुत्र न हुआ। उसके घरमें पर्वत और नारद ये दो ऋषि आकर रहे थे। उस राजाने नारदसे पूछा कि पुत्र प्राप्तिसे क्या लाभ होते हैं वे मुझे कहो।
२ पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम्। तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते। तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः।	२ पति वीर्यरूपसे धर्मपत्नीमें प्रविष्ट होता है। वहां नया होकर दसवें महिनेमें जन्म लेता है। इसलिये स्त्रीका नाम 'जाया' है।
३ देवाश्चैतामृषयश्च तेजः समभरन्महत्। देवा मनुष्यानब्रुवन् एषा वो जननी पुनः॥	३ देवों और ऋषियोंने इस स्त्रीमें बड़ाभारी तेज भर रखा है। देवोंने मानवोंसे कहा कि यह (धर्मपत्नी) तुम्हारी ही फिर जननी (माता) हुई है। (क्योंकि पिता ही स्त्रीके पेटसे पुत्ररूपमें जन्मता है।)
३ नापुत्रस्य लोकोऽस्ति,	३ पुत्रहीनके लिये उच्च गति नहीं है।
४ अथैनमुवाच वरुणं राजानमुप धाव, पुत्रो मे जायतां, तेन त्वा यजेति, तथेति।	४ अब उस ऋषिने उस राजासे कहा कि वरुणकी उपासना करो, पुत्र होनेपर उससे तेरा यजन करूंगा ऐसा कहो। ठीक है, ऐसा उसने कहा।

शुनःशेप ऋषिका दर्शनकी

विषयसूची

BHARATIYA VIDYA BHAVAN
LIBRARY

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(४)

हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन

(उसके पुत्र अर्चन् ऋषिके मंत्रोंके समेत)

(ऋग्वेदका सप्तम अनुवाक)

लेखक

भट्टाचार्य, पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)

संवत् २००३

मूल्य १) रु०

हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन

ऋग्वेदके सप्तम अनुवाकमें हिरण्यस्तूपके ७१ मंत्र हैं, नवम मण्डलमें २० हैं और दशम मंडलमें उसके पुत्र अर्चन् ऋषिके ५ मंत्र हैं। सब मिलकर ९६ मंत्र इसके दर्शनमें हैं। इनका ब्यौरा ऐसा है—

ऋग्वेद-प्रथम मण्डल

सप्तम अनुवाक

हिरण्यस्तूप ऋषिः	देवता	मंत्रसंख्या
सूक्त ३१	अग्निः	१८
३२	इन्द्रः १५	
३३	,, १५	३०
३४	अश्विनौ	१२
३५	सविता	११
		७१

नवम मण्डल

सूक्त ४	पवमानः सोमः	१०
६९	,, ,,	१०
		२०

दशम मण्डल

अर्चन् हैरण्यस्तूपः

सूक्त १४९	सविता ५	५
	कुलमन्त्रसंख्या ९६	

देवतानुक्रमसे मन्त्रसंख्या इस तरह होती है—

१ इन्द्रः	३०
२ सोमः	२०
३ अग्निः	१८
४ सविता	१६
५ अश्विनौ	१२
कुल-मन्त्रसंख्या	९६

पाच देवताओंके मंत्र इन ऋषिके दर्शनमें आये हैं। हिरण्यस्तूपका वर्णन ऐतरेय ब्राह्मणमें इस तरह आता है—

'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचमिति सूक्तं शंसति। तद्वा एतत्प्रियं इन्द्रस्य सूक्तं निष्कैवल्यं हैरण्यस्तूपं, एतेन वै सूक्तेन हिरण्यस्तूप आङ्गिरस इन्द्रस्य प्रियं धाम उपागच्छत्, स परमं लोकमजयत्।'

(ऐ. ब्रा. ३।२४)

अग्निर्देवतानां, हिरण्यस्तूप ऋषीणां, बृहती छन्दसां०॥ (श. ब्रा. ११।६।४।२)

'इन्द्रस्य नु वीर्याणि' यह सूक्त (ऋ. १।३२) है। यह इन्द्रका बडा प्रिय काव्य है, यह अंगिरस गोत्रमें उत्पन्न हिरण्यस्तूप ऋषिका है। इस सूक्तके पाठसे उसने इन्द्रका प्रिय धाम प्राप्त किया, और उससे भी श्रेष्ठ लोक प्राप्त किया।' इस तरह हिरण्यस्तूप ऋषिका यह (ऋ. १।३२ वाँ) सूक्त है ऐसा ऐतरेय ब्राह्मणमें कहा है। शतपथमें ऋषियोंमें हिरण्यस्तूप ऋषि प्रशंसित हुआ है ऐसा कहा है। ब्राह्मण ग्रंथोंमें येही इस ऋषिके नामके उल्लेख हैं। निम्नलिखित मंत्रमें इस ऋषिका नाम आता है—

हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाऽऽङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन्। एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम्॥

(ऋ. १०।१४९।५)

'(मेरे पिता) आंगिरस गोत्रमें उत्पन्न हुए हिरण्यस्तूप ऋषिने सविता देवका जैसा काव्यगान किया था वैसा ही मैं (उसका पुत्र) अर्चन् ऋषि आपकी उपासना करता हूं।'

यहां अर्चन् ऋषिने अपना नाम जैसा कहा है वैसाही अपने पिताका और अपने गोत्रका भी नाम कहा है। इसके अतिरिक्त मंत्र और ब्राह्मण-भागमें इस ऋषिका नाम कहीं भी नहीं है।

सूर्यका आकर्षण

सूर्यके आकर्षणसे पृथ्वी रहती है यह पदार्थ विद्याका नियम बतानेके लिये निम्नलिखित मंत्र पेश किये जाते हैं-

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानः निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
(ऋ. १।३५।२)

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णात्।
(ऋ. १०।१४९।१)

बारंबार ये मंत्र सूर्यका आकर्षण सिद्ध करनेके लिये पेश किये जाते हैं। परंतु इनका अर्थ यह आशय नहीं बताता, यह बात इस स्थानमें दिया अर्थ स्पष्ट रीतिसे सिद्ध करता है। (**कृष्णेन रजसा आ वर्तमानः**) काले अन्धकारसे वेष्टित हुआ, अन्धकारसे युक्त, ऐसा इसका अर्थ है। (**सविता यन्त्रैः पृथिवीं अरम्णात्**) सविता सूर्य देव अपने स्वाधीन रखनेके साधनोंसे पृथ्वीको स्थिर करता रहा। यहां कुछ आकर्षण सा प्रतीत होता है, परंतु इस मंत्रमें आगेही (**सविता अस्कंभने द्यां अदृंहत्**) सविताने निराधार आकाशमें द्युलोकको स्थिर किया। इसमें द्युलोकको स्थिर करनेका भी उल्लेख है। परंतु हम जानते हैं कि द्युलोक करके पृथ्वीके समान कोई स्थान नहीं है। इसलिये यह वचन और पूर्वस्थानमें दिया वचन कोई शास्त्रीय सिद्धान्त प्रकट करनेके लिये नहीं कहे गये हैं। सर्व सामान्य वर्णन ही यहाँ है। इसको गुरुत्वाकर्षण परक लगाना योग्य नहीं है।

इस तरह इस ऋषिके ये सूक्त पाठकोंके सामने रखे जाते हैं। आशा है कि जो ज्ञान इस ऋषिने इन सूक्तोंसे पाया, वह पाठक भी प्राप्त करेंगे।

निवेदन-कर्ता
चैत्र शु. १५, सं. २००३ **श्री० दा० सातवळेकर**
स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि. सातारा)

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन

(उसके पुत्र अर्चन् ऋषिके मंत्रोंके समेत)

[ऋग्वेदका सप्तम अनुवाक]

(१) सबका परम पिता परमात्मा

(ऋ. १।३१) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । अग्निः । जगती; ८,१६,१८ त्रिष्टुप् ।

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा ।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ १ ॥

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम् ।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे ॥ २ ॥

त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते ।
अरेजेतां रोदसी होतृवूर्येऽसघ्नोर्भारमयजो महो वसो ॥ ३ ॥

त्वमग्ने मनवे द्यामवाशयः पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तरः ।
श्वात्रेण यत् पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः ॥ ४ ॥

त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतस्रुचे भवसि श्रवाय्यः ।
य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिमेकायुरग्रे विश आविवाससि ॥ ५ ॥

त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन् पिपर्षि विदथे विचर्षणे ।
यः शूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित् समृता हंसि भूयसः ॥ ६ ॥

त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे ।
यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये ॥ ७ ॥

त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ ८ ॥

त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः ।
तनूकृद् बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे ॥ ९ ॥

त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पिताऽसि नस्त्वं वयस्कृत् तव जामयो वयम् ।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य १०
त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्पतिम् ।
इळामकृण्वन् मनुषस्य शासनीं पितुर्यत् पुत्रो ममकस्य जायते ११
त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते १२
त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरोऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे ।
यो रातहव्योऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन् मन्त्रं मनसा वनोषि तम् १३
त्वमग्न उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद् रेक्णः परमं वनोषि तत् ।
आध्रस्य चित् प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्र दिशो विदुष्टरः १४
त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः ।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः १५
इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन् मर्त्यानाम् १६
मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत् सदने पूर्ववच्छुचे ।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् १७
एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत् ते चकृमा विदा वा ।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या १८

अन्वयः- हे अग्ने ! त्वं प्रथमः अङ्गिरा ऋषिः, देवानां देवः, शिवः सखा अभवः । तव व्रते कवयः, विद्मना-अपसः भ्राजत्-ऋष्टयः मरुतः अजायन्त ॥ १ ॥

अर्थ- हे अग्ने ! तुम पहिले अङ्गिरा ऋषि थे । तुम देवोंके देव और शुभ मित्र थे । तुम्हारा ही कार्य करनेके लिये ज्ञानी, कार्य पद्धति जाननेवाले मरुद्गण तेजस्वी शस्त्र लेकर प्रकट हुए थे ॥१॥

हे अग्ने ! त्वं प्रथमः आङ्गिरस्तमः कविः देवानां व्रतं परि भूषसि । विश्वस्मै भुवनाय विभुः, मेधि-रः, द्विमाता, आयवे कतिधा चित् शयुः ॥ २ ॥

हे अग्ने ! तुम पहिले अङ्गिरसोंमें मुख्य कवि (होकर) देवोंका कार्य सुशोभित करते हो। तुम सब भुवनोंमें विभु हो, तुम बुद्धिमान और द्विज रूप (दो माताओंसे उत्पन्न, एक जन्मदात्री माता और दूसरी सरस्वती विद्यामाता, इनसे उत्पन्न) होकर, मनुष्यमात्रके (हितके) लिये कई प्रकारोंसे सर्वत्र वर्तमान रहते हो ॥२॥

हे अग्ने ! त्वं प्रथमः, सुक्रतुया विवस्वते मातरिश्वने आविः भव । हे वसो ! रोदसी अरेजेताम् । होतृवूर्ये भारं अमृणोः । महः अयजः ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तुम (विश्वमें) पहिले हो, उत्तम कर्म करनेकी कुशलताके साथ सूर्य और वायुके लिये (सामर्थ्य बढानेके लिये) प्रकट हुए हो। हे सबके निवासकर्ता देव! (तुम्हारी शक्ति देखकर भयसे) द्युलोक और पृथिवी भी काप उठती हैं । (यज्ञमें) होताके वरण करनेके समय तुम ही (सब यज्ञका) भार उठाते हो। (और तुमने) महनीय (देवों) के लिये यजन किया है ॥३॥

हे अग्ने ! त्वं मनवे द्यां अवाशयः । सुकृते पुरूरवसे सुकृत्तरः । यत् पित्रोः श्वात्रेण परि मुच्यसे, (तत्) त्वा पूर्वं आ अनयन्, पुनः अपरं आ (अनयन्) ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! तुमने मनुष्यमात्रके हितके लिये द्युलोकको निनादित (शब्दमय) किया । पुण्य कर्म करनेवाले पुरूरवाके लिये तुमने अधिक शुभ कर्म किया था । जब मातापिताओंसे शीघ्रः ही तुम मुक्त (दूर) हुए, (तब) तुम्हें पूर्व (ब्रह्मचर्य आश्रममें पहिले) ले गये, पश्चात् दूसरे (गृहस्थ आश्रम)में ले गये थे॥४॥

हे अग्ने ! त्वं वृषभः पुष्टिवर्धनः उद्यतस्रुचे श्रवाय्यः भवसि । यः वषट्कृतिं आहुतिं परि वेद, (सः त्वं) एकायुः विशः अग्रे आविवासयसि ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! तुम बडा बलिष्ठ और (सबका) पोषण करनेवाला हो । तुम यज्ञ करनेवालेके लिये स्तुति करने योग्य हो। जो वषट्कारपूर्वक आहुति देना जानता है (उसके लिये तुम) संपूर्ण आयु देते हो और सब प्रजाओंमें प्रथम स्थानमें उसको निवास कराते हो ॥५॥

हे विचर्षणे अग्ने ! त्वं वृजन-वर्तनिं नरं सक्मन् विदथे पिपर्षि । यः परितक्म्ये धने शूरसाता दभ्रेभिः चित् समृता भूयसः हंसि ॥ ६ ॥

हे विज्ञानवान् अग्ने ! तुम दुराचारमें रहनेवाले मनुष्यको भी (अपने) साथ रहनेपर युद्धमें बचाते हो । जो (वह तुम) चारों ओरसे छिडनेवाले और जहाँ केवल शूरोंका ही काम है ऐसे घोर युद्धमें अल्पसंख्य और वीरताहीन मानवोंसे युद्धके लिये मिले हुए बहुसंख्य शत्रुओंका भी वध करते हो ॥६॥

हे अग्ने ! त्वं तं मर्तं दिवेदिवे श्रवसे उत्तमे अमृतत्वे दधासि । य. उभयाय जन्मने तातृषाण , (तस्मै) सूरये मयः प्रयः च आ कृणोषि ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! तुम उस (भक्त) मनुष्यको प्रतिदिन यशस्वी बनाते हुए उत्तम अमरपदपर चढाते हो । जो (द्विजत्व सिद्धिके) दोनों जन्मोंमें (यशस्वी होनेके लिये) पिपासु रहता है, (उस) ज्ञानीके लिये तुम समृद्धि और श्रेय देते हो ॥७॥

हे अग्ने ! स्तवानः त्वं नः धनाना सनये यशसं कारुं कृणुहि । नवेन अपसा कर्म ऋध्याम । हे द्यावापृथिवी ! देवैः नः प्र अवतम् ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! (तुम्हारी) स्तुति करनेपर तुम हमारे लिये धन दान यश और कारीगरी प्राप्त करा दो । (हम) नूतन कर्मसे (पूर्व) कर्मकी वृद्धि करेंगे । हे द्यावा पृथिवी ! देवोंकी शक्तियोंके (साथ) हमारी सुरक्षा करो ॥८॥

हे अनवद्य अग्ने ! देवेषु जागृविः, त्वं पित्रोः उपस्थे नः तनूकृत् आ बोधि । हे कल्याण ! कारवे प्रमतिः, त्वं विश्वं वसु आ वपिषे ॥ ९ ॥

हे निर्दोष अग्ने ! तुम सब देवोंमें जागरूक (अर्थात् सावध) हो, तुम हमारे मातापिताओंके समीपमें हमारे शरीर निर्माण करते हो । हे कल्याण करनेवाले ! कारीगरके लिये विशेष बुद्धि देकर, तुम (उसको) सब धन देता है ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! त्वं प्रमतिः, त्वं नः पिता असि । त्वं वयस्कृत् वयं तव जामयः । हे अदाभ्य ! सुवीरं व्रतपा त्वा शतिनः सहस्रिणः रायः सं सं यन्ति ॥ १० ॥

हे अग्ने ! तुम विशेष बुद्धिमान हो, तुम हमारे पिता हो, तुम हमें आयु देता है, हम तेरे बन्धु हैं । हे न दबनेवाले देव ! उत्तम वीरोंके साथ रहनेवाले और नियमोंका पालन करनेवाले तुम्हारे पास सैकडों और सहस्रों धन पहुचते हैं ॥ १० ॥

हे अग्ने ! देवा आयवे प्रथमं आयुं नहुषस्य विश्पतिं अकृण्वन् । मनुषस्य शासनीं इळा अकृण्वन् । यत् ममकस्य पितुः पुत्रः जायते ॥ ११ ॥

हे अग्ने ! देवोंने मानवके लिये सबसे प्रथम आयु (दी, पश्चात् उन्होंने) मानवोंके लिये प्रजापालक राजा निर्माण किया । तब मनुष्योंके शासन (व्यवस्था)के लिये (धर्म) नीतिको भी निर्माण किया । जैसा पितासे ममत्वरूप (औरस) पुत्रका जन्म होता है (वैसा आत्मीयतासे राजा प्रजाका पुत्रवत् पालन करे) ॥ ११ ॥

हे वन्द्य अग्ने देव ! त्वं तव पायुभिः, मघोनः नः तन्वः च रक्ष। तव व्रते अनिमेषं रक्षमाणः, तोकस्य तनये गवां त्राता असि ॥ १२ ॥

हे वन्दनीय अग्नि देव ! तुम अपनी संरक्षक शक्तियोंसे हमें धनवान बना कर, हमारे शरीरोंकी सुरक्षा करो। तुम्हारे नियमोंमें निरन्तर रहनेवाला (हमेशाही) सुरक्षित रहता है, (हमारे सब) बाल बच्चोंकी तथा गौओंकी (सदा) सुरक्षा करो ॥१२॥

हे अग्ने ! त्वं यज्यवे पायुः। अनिषङ्गाय अन्तरः चतुः-अक्षः इध्यसे। अवृकाय धायसे यः रातहव्यः, कीरेः चित् तं मन्त्रं मनसा वनोषि ॥ १३ ॥

हे अग्ने ! तुम यज्ञ करनेवालेके संरक्षक हो। संगरहित (होकर कार्य करनेवाले)के हितके लिये पास रहकर चारों ओर अपनी आंखें रखते हुए तुम तेजस्वी (होकर उसके रक्षक) होते हो। अहिंसक और पोषकके लिये जो अन्नदान करता है, उस कविके उस मन्त्रको तुम मनसे स्वीकार करता है ॥ १३ ॥

हे अग्ने ! त्वं उरुशंसाय वाघते स्पार्हं परमं यत् रेक्णः तत् वनोषि। आध्रस्य चित् प्रमतिः पिता उच्यसे। विदुष्टरः, पाकं दिशः (च) प्र प्र शास्सि ॥ १४ ॥

हे अग्ने ! तुम बहुत प्रशंसा करनेवाले भक्तके लिये जो जो इच्छा करनेयोग्य धन है, वह सब इकट्ठा करते हो (और उसको देते हो)। दुर्बलके लिये भी उत्तम बुद्धि (प्रदान) करनेके कारण (तुम्हें सब) पिता कहते हैं। तुम अधिक ज्ञानवान् हो, (अतः तुम) अज्ञानीको (सब कार्योंकी) दिशाएँ दर्शाते हो ॥ १४ ॥

हे अग्ने ! *त्वं प्रयत-दक्षिणं नरं*, स्यूतं वर्म इव, विश्वतः परि पासि। स्वादु-क्षद्मा, वसतौ स्योनकृत्, यः जीवयाजं यजते, सः दिवः उपमा (भवति) ॥ १५ ॥

हे अग्ने ! *प्रयत्नशील मानवके लिये दान देनेवाले नेताको*, ठीक तरह सीये हुए कवचके समान, सब ओरसे तुम सुरक्षित रखते हो। मीठा अन्न तैयार करके, अपने घरमें (अतिथियोंकी तृप्ति करनेद्वारा) जो उनको सुख देता है, और जीवोंके (हित के) लिये जो यज्ञ करता है, वह स्वर्गकी उपमा (देने योग्य है) ॥ १५ ॥

हे अग्ने ! (त्वं) नः इमां शरणिं *मीमृषः*। दूरात् यं इमं अध्वानं अगाम। सोम्यानां मर्त्यानां आपिः पिता प्रमतिः, भृमिः, ऋषिकृत् असि ॥ १६ ॥

हे अग्ने ! (तुम) हमारी इस त्रुटीको *क्षमा करो*। क्योंकि हम दूर (इस समयतक भटकते रहे थे, पर अब) इस धर्ममार्गपर आगये हैं। तुम शान्त स्वभाववाले मानवोंके बन्धु पिता, सुबुद्धि देनेवाले, शीघ्रतासे कार्य करनेवाले और ऋषियोंको निर्माण करनेवाले हो ॥ १६ ॥

हे शुचे अङ्गिरः अग्ने ! मनुष्वत्, अङ्गिरस्वत्, ययातिवत् पूर्ववत् सदने अच्छ याहि। (तत्र) दैव्यं जनं आ वह, बर्हिषि आ सादय। प्रियं यक्षि च ॥ १७॥

हे शुद्ध अङ्गिरा अग्ने ! तुम मनु, अङ्गिरा, ययाति आदि पूर्व पुरुषोंके समान यज्ञ स्थानमें जाओ। (वहां) दिव्य जनोंको ले आओ। (उनको) आसनोंपर बिठलाओ। और प्रिय अन्न देओ ॥ १७ ॥

हे अग्ने ! एतेन ब्रह्मणा वावृधस्व। शक्ती वा विद्या वा यत् ते चकृम, उत अस्मान् वस्यः प्र णेषि। नः वाजवत्या सृज ॥ १८ ॥

हे अग्ने ! इस स्तोत्रसे (तुम्हारा यश) बढता रहे। अपनी शक्तिसे और ज्ञानसे जो यह तुम्हारा (पूजन हमने) किया है, (उससे) हमें धनके पास पहुंचाओ। और हमें बल बढानेवाले अन्नसे युक्त करके शुभ मतिसे भी संयुक्त करो॥ १८ ॥

परम पिताका यशगान

इस सूक्तमें परम पिताका यश गाया है। वह मनन करने योग्य है। इस सूक्तमें परम पिता परमात्माका अग्निरूप दर्शा कर, उसीका वर्णन करते करते परमात्माका भी वर्णन किया है। इस अग्निके वर्णनमें जो परमात्म-स्वरूपको दर्शानेवाले पद और वाक्य हैं, वे नीचे देते हैं—

१ अङ्गिराः अग्निः देवः— प्रत्येक अङ्ग और अवयवमें रसरूप (अङ्ग-रस्) से रहनेवाला, जैसा जलोंमें रस, अग्निमें तेज, बलवानोंमें बलके रूपमें दीखनेवाला देव (गीता अ० ७।८-११) (मं. १)

२ प्रथमः ऋषिः देवानां शिवः सखा— पहिला ज्ञानी और देवोंका शुभ मित्र।

३ व्रते कवयः विद्मनापसः— उसके नियमानुसार जो चलते हैं, वे अतींद्रिय ज्ञानी बनकर सब कार्य विधिपूर्वक करते हैं।

४ देवानां व्रतं परिभूषसि— देवोंके व्रतोंको सुशोभित करता है। (मं २)

५ विभुः— सर्वव्यापक,.

६ विश्वस्मै भुवनाय मेधिरः— सब प्राणियोंका बुद्धिका दान करता है।

७ आयवे कतिधा चित् शयुः—मनुष्यके हितके लिये कई प्रकारोंसे सर्वत्र अवस्थित है।

८ सुकृतुया विवस्वते आविर्भव— उत्तम कर्मके द्वारा विशेष रीतिसे मानवोंका निवास (विवस्वते) करानेवाले के हित करनेके लिये प्रकट होते हैं। (मं. ३)

९ रोदसी अरेजेतां-इसके भयसे सब आकाश और पृथिवी काप उठती है। (भयात्तपति सूर्यः-) भयसे सूर्य तपता है। (कठ उ. ६।३)

१० महः वसुः-सबका बडा निवासक, बडे देवोंका भी निवासक यह है।

११ मनवे द्यां अ-वाशयः-मनुष्यके हितके लिये आकाशको शब्द गुणयुक्त बनाया है। द्युलोकको शब्दमय बनाया। (मं. ४)

१२ पुरू-रवसे सुकृते सुकृत्तरः- बहुज्ञानी शुभ कर्म करनेवालेके हित करनेके लिये यह अधिक शुभ करता है। (पुरू-रवा.=बहु-शब्दवान्, बहुत ज्ञानी, बहुत व्याख्यान करनेवाला)

१३ वृषभः, पुष्टिवर्धनः, श्रवाय्यः-बलवान्, पुष्टिकर्ता और कीर्तिमान्, (मं. ५)

१४ पक्वायुः विशः आ विवासति-पूर्ण आयु देकर प्रजाओंका निवास कराता है।

१५ वृजिन वर्तनिं नरं सक्मन् विदथे पिपर्षि-पापी मनुष्यको भी विद्वानोंके साथ रखकर जीवनयुद्धमेंसे बचाकर पार करता है। (म. ६)

१६ शूरसातौ परितक्म्ये धने दभ्रेभिः चित् समृतौ भूयसः हंसि-- जहा शूर पुरुष ही कार्य करते हैं, ऐसे चारों ओरसे हमला करनेके योग्य महायुद्धमें निर्बलोंसे भी तुम बहुत शूर शत्रुओंका वध करते हैं।

१७ मर्तं दिवेदिवे श्रवसे, उत्तमे अमृतत्वे दधासि-मनुष्यको तुम प्रतिदिन अन्न देकर पुष्ट करते हैं वा यशस्वी करते हैं, और उत्तम अमर पदमें स्थिर करते हैं। (मं. ७)

१८ उभयाय जन्मने तात्पाणः, सूरये मयः प्रयः च कृणोषि-- (ब्रह्मचर्य और गृहस्थ इन) दोनों जीवनोंमें (उन्नति होनेकी इच्छा करनेवाले,) पिपासित हुए को, ज्ञानीके योग क्षेमका प्रबंध करते हैं। (मयः--सुख, प्रयः-- अन्न, प्रयत्नसे प्राप्तव्य)

१९ कारुं धनानां सनये यशसं कृणुहि-- कारीगरको धनोंकी प्राप्तिके लिये यशस्वी करो। (मं. ८) जिसको धन देनेकी तुम्हारी इच्छा होती है उसको कारीगरीमें, विद्यामें यशस्वी बनाते हैं।

२० देवेषु जागृविः देव--देवोंमें जागनेवाला देव है(म. ९)

२१ पित्रोः उपस्थे तनूकृत्-- मातापिताओंसे पुत्रका शरीर निर्माण करता है। पितासे मातामें वीर्यरूप, मातामें गर्भरूप और मातासे पुत्ररूपमें शरीर निर्माण करता है।

२२ कारवे प्रमतिः--कारीगरके लिये उत्तम बुद्धि देते हैं, हरएक प्रयत्नशीलको प्रवीण कर देते हैं।

२३ कल्याण ! विश्वं वसु ओषिषे--वह कल्याण करनेवाला है और मनुष्योंको सब धन देता है, निवास करनेकी सुविधारूप धन देता है।

२४ नः पिता, वयं जामयः--तू हमारा पिता है और हम भाई हैं (मं. १०)

२५ त्वां व्रतपां सुवीरं शतिनः सहस्रिणः रायः यन्ति-व्रतपालक उत्तम वीर ऐसे प्रभुके पास सैकडों और सहस्रों धन पहुंचते हैं।

२६ अ-दाभ्यः-प्रभु किसीसे न दबनेवाला है।

२७ देवाः आयवे आयुं अकृण्वन्-देवोंने मानवोंके लिये आयु बनायी है (वह प्रभुकी ही शक्ति है।) (मं. ११)

२८ विश्पतिं अकृण्वन्— प्रजाके पालनकर्ताको भी देवोंने निर्माण किया (राजा प्रभुकाही रूप है। नराणां च नराधिपं। गी. अ. १०।२७)

२९ तव पायुभिः मघोनः तन्वः च रक्ष— तेरी शक्तियोंसे हमें धनवान् बनाकर हमारे तथा हमारे बालबच्चोंके शरीरोंकी सुरक्षा करो। (मं. १२)

३० अनिमेषं रक्षमाणः तोकस्य तनये गवां त्वं त्राता— सतत, आंखकी पलकें न मूंदते हुए, वह सबकी रक्षा करता है, बालबच्चोंकी और गाइयोंकी भी रक्षा करता है।

३१ यज्यवे पायुः— यज्ञ करनेवालेकी रक्षा करता है। (मं. १३)

३२ अ-नि-षङ्गाय चतुरक्षः इध्यसे— संगरहित होकर जो कर्म करते हैं, उनकी सुरक्षाके लिये चारों ओर आंखें खोलकर रखता हुआ प्रकाशित होता रहता है।

३३ अ-वृकाय धायसे रातहव्यः— किसीकी हिंसा न करनेवालेको और दूसरोंका पोषण करनेवालेको अन्न देता है।

३४ कीरेः मन्त्रं मनसा वनोषि- भक्तकी की हुई प्रार्थनाको मनसेही जानता है।

३५ उरुशंसाय वाघते परमं स्पार्हं रेक्णः वनोषि- भक्तको देनेके लिये परम श्रेष्ठ धन लेता है। (मं. १४)

३६ आध्रस्य प्रमतिः- अज्ञानीके लिये उत्तम बुद्धि देता है।

३७ पिता उच्यसे- (उस प्रभुको) सब लोग पिता कहते हैं।

३८ विदुष्टरः पाकं दिशः प्र शास्सि— तू अधिक ज्ञानी है, इसलिये अज्ञानीको उन्नतिकी दिशाएं बताता है।

३९ प्रयत-दक्षिणं नरं विश्वतः परि पासि- प्रयत्नसे उत्तम कर्म करनेवालेके लिये जो योग्य दक्षिणा देता है, उस नेताकी अथवा उस मनुष्यकी तू चारों ओरसे सुरक्षा करता है। (मं.१५) (प्र-यतः- प्रयत्न करनेवाला, उन्नतिके लिये कार्य करनेवाला)

४० नः शरणि मीमृषः- हमारी त्रुटीकी क्षमा करो। (१६)

४१ सोम्यानां मर्त्यानां आपिः, पिता, प्रमतिः, भूमिः, ऋषिकृत् असि- शान्त मनवाले मानवोंके लिये प्रभु भाई, पिता, सद्बुद्धिदाता, संचालक और द्रष्टा बनानेवाला है। अर्थात् प्रभु सबके साथ भाई, पिता, उत्तम मंत्रणा देनेवाला, चालक और अतींद्रिय दृष्टि देनेवाला होनेके समान बर्ताव करता है। वह प्रभु भाईके समान सबका हित करता है, पिताके समान सबका जनक है, आचार्यके समान शुभ मति प्रदान करता है, नेताके समान सुयोग्य मार्गसे सबका संचालन करता है, सद्गुरुके समान अतीन्द्रिय दृष्टि देकर ऋषि भी बनाता है।

४२ दैव्यं जनं आवह- दिव्य जनको आगे बढाओ। (मं. १८)

इस तरह इस सूक्तमें परमात्माकी प्रार्थना उपासना आदि करते हुए प्रभुका वर्णन किया है। पाठक इन वचनोंका विचार, मनन और निदिध्यासन करके स्वयं उपासना करते हुए इन गुणोंका अनुभव लें। इन वचनोंका मानवधर्मकी दृष्टिसे और भी विचार किया जा सकता है, जैसा- शिवः सखा (१)- मित्र शुभ हो, शुभ कार्यकी सलाह देवे। विद्मनापसः- विधिका ज्ञान प्राप्त करके कर्म करें। मेधि-रः (२)- उत्तम मंत्रणा देवें। सुकृते सुकृत्तरः (४)- शोभन कर्म करनेवालेके लिये उससे भी अधिक उत्तम कर्म करानेकी सहायता करना योग्य है। वृजिनवर्तनिं नरं विदथे पिपर्षि (६)- पापी मनुष्यको भी कठिन समयमें सहायता करो। वृध्रेभिः भूयसः हंसि- निर्बलोंसे भी सबलोंका नाश करो, ऐसी युक्ति करो कि जिससे निर्बल सज्जन भी बलवान् शत्रुका नाश कर सकें। मयः प्रयः कृणोषि (७)- सुख और अन्नका प्रबंध करो। जागृविः (९)- सदा सावध रहो। कारवे प्रमतिः- कारीगरको सद्बुद्धि दो, इस तरह सामान्य बोध ये ही वाक्य देते हैं। इनका विचार पाठक शान्तिपूर्वक करें और जो बोध मिलेगा, उसे अपना लें। इसी तरह—

१ नवेन अपसा कर्म ऋध्याम (मं.८)- नवीन प्रयत्न करके कर्मकी सिद्धि प्राप्त करेंगे। प्रयत्न करनेसेही सिद्धि होती है।

२ मनुषस्य शासनीं इळां अकृण्वन्। (मं. ११)- मानवोंके राज्यशासनके लिये नीति नियम बनाये। ' इळा ' नाम वाणीका है। इ-ला (the Law, e-law) मानवोंकी शासनसंबंधी जो नियमावली है, उसका नाम ' इ-ला ' है।

३ पितुः यत् पुत्रः जायते, (सः) ममकस्य (म ११)- पिताका जो पुत्र होता है, उसपर उसका ममत्व रहता है, इसीलिये पिताकी सपत्तिका दायभाग उसे मिलता है।

४ य स्वादुक्षद्मा वसतौ स्योनकृत्, (य च) जीवयाजं यजते, सः दिवः उपमा (मं १५)- जो अपने घरमें माठे अन्न पकाकर अपने घर आये अतिथियोंको प्रसन्न करता है, (और जो) जीवोंके लिये यज्ञ करता है, उसको स्वर्गकी उपमा है, वह मूर्तिमान् स्वर्ग ही है, वह स्वर्गका धाम है। यहां अतिथियज्ञ और भूतयज्ञ करनेका उपदेश है। 'जीवयाज' पद 'भूत यज्ञ' के लिये आया है और 'वसतौ स्योनकृत्' ये पद 'गृहयज्ञ' अथवा 'अतिथि-यज्ञ' किंवा 'नृयज्ञ' के लिये हैं। ये यज्ञ हिंसारहित और सुखकारी हैं।

५ न शरणि मीमृष (म १६)-हमसे यदि हिंसा हुई तो उसकी क्षमा करो। इस वचनसे स्पष्ट होता है कि हिंसा न करते हुए ही सब कर्म करने चाहिये। कई लोग म १५ के 'जीव याज' पदसे जीव-हिंसा अर्थ करते हैं और यज्ञमें जीवहिंसा करनेका समर्थन करते हैं। परतु इसी मन्त्रमें हिंसा हुई तो क्षमा की प्रार्थना की है। इससे सिद्ध होता है कि हिंसा नहीं होनी चाहिये। 'शरणि' का अर्थ हिंसा, दोष, त्रुटी, प्रमाद, घात पात है।

६ दूरात् इम अध्वानं अगाम (म १६)- दूरसे इस मार्गको हम प्राप्त हुए हैं। अर्थात् हम प्रथम इधर उधर भटकते रहे, पर अनेक मार्गोको देखकर अन्तमें इस वैदिक धर्मके मार्ग पर हम आ पहुचे हैं। यह शुभ परिवर्तन हुआ है। अब हम इसी मार्गपर रहेंगे। इस मन्त्रभागसे पता लगता है कि अनेक मतमतांतरोंको छोडकर वैदिक धर्ममें प्रविष्ट होनेका सौभाग्य प्राप्त करनेका आनद मिलनेका यह वर्णन है। विश्वको आर्य बनानेका यत्न करनेसे ऐसा होना स्वाभाविक ही है। ऋ १।४।५ मन्त्रकी टीका देखो (मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन पृ १५) इन्द्रकी उपासनाकी दीक्षा लेनेका वहां वर्णन है। उस मन्त्रका साम्य इस मन्त्रके साथ तुलना करने योग्य है।

सूक्तका कर्तृत्व

इस सूक्तमें सूक्तके निर्माण करनेका उल्लेख है, ऐसा कई विचारकोंका मत है। 'शक्ती वा विद्मा वा यत् ते चकृम, एतेन ब्रह्मणा, हे अग्ने! वावृधस्व (म.१८)-हमारी शक्तिसे और हमारे ज्ञानसे जो यह तुम्हारा सूक्त हमने किया है, इस सूक्तसे, हे अग्ने! तुम्हारा यश बढे। यहां सूक्तकी रचना करनेवालेका बोध होता है। यहां इस ऋषिका नाम नहीं है। 'हिरण्यस्तूप आंगिरस' ऋषिका नाम ऋ. १०।१४९।५ में इसीके 'अर्चन्' नामक पुत्रके सूक्तमें आता है।

हमने यहां यह मन्त्र रचनाकर्ताकी सूचना देता है ऐसा कई-योंका मत है ऐसा लिखा है, इसका कारण यह है कि इस मन्त्रके 'शक्ती वा विद्मा वा यत् ते चकृम।' (म १८)-शक्तिसे अथवा ज्ञानसे जो तेरा (पूजन) हमने किया है, ऐसा भी इसका अर्थ होता है, क्योंकि 'यत्' पदसे 'स्तोत्र' का ही अध्याहार करना चाहिये ऐसा नहीं। परतु 'यत्' पदसे उसी मन्त्रमें 'ब्रह्म' पद है, उसका अध्याहार करना युक्तियुक्त है और ब्रह्म पदका अर्थ स्तोत्र होता है। अस्तु। यहां दोनों पक्ष पाठकोंके सामने हमने रखे हैं। इसका विचार विशेष होना चाहिये।

आदर्श मानव

इस सूक्तमें आदर्श मानवके निम्न लिखित गुण वर्णन किये हैं-(प्रथम) पहिला हो, सबसे प्रथम स्थानमें रहनेवाला हो, (ऋषि) अतींद्रियदर्शी हो, (शिव सखा) शुभ मित्र हो, [म १] (कवि) ज्ञानी, (मेधिर) बुद्धि प्रदाता, सलाहगार, (विभु) विशेष प्रभावी, [म २] (सुकृत्तर) अधिक उत्तम कर्म करनेवाला, [म ४], (वृषभ) बलिष्ठ, (पुष्टिवर्धनः) पुष्टि करनेवाला, (श्रवाय्य) कीर्तिमान् [म ५], (विचर्षणि) विशेष ज्ञानी, सूक्ष्मदर्शी, [म ६] (अनवद्य) अनिंद्य, (जागृवि) जागनेवाला, सावध, (प्रमति) विशेष बुद्धिमान् [म ९] (अदाभ्य) न दबनेवाला, (सुवीर) उत्तम वीर, (व्रतपा) नियमोंका पालक, [म १०] (विदुष्टर) विशेष ज्ञानी [म १४]

इस तरह अनेक शुभ गुणोंसे युक्त जो मानव होगा वह आदर्श मानव इस सूक्तके द्वारा जनताके सामने रखा गया है। इस सूक्तके अनेक वाक्य भी इस तरह जोडकर आदर्श मानव कैसा होगा, इसकी कल्पना पाठक कर सकते हैं।

*

(२) क्षात्रधर्म

(ऋ. १।३२) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥ १ ॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ २ ॥
वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥
यदिन्द्राहन् प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।
आत् सूर्यं जनयन् द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥ ४ ॥
अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाऽहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥ ५ ॥
अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥
अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः ॥ ७ ॥
नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत् तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥ ८ ॥
नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद् दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥ १० ॥
दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन् निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद् ववार ॥ ११ ॥
अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत् त्वा प्रत्यहन् देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥ १२ ॥
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद् ह्रादुनिं च ।
इन्द्रश्च यद् युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥ १३ ॥
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत् ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन् नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥ १४ ॥
इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान् न नेमिः परि ता बभूव ॥ १५ ॥

अन्वयः- वज्री यानि प्रथमानि वीर्याणि चकार, (तानि) इन्द्रस्य (वीर्याणि) नु प्र वोचम्। अहिं अहन्, अनु अपः ततर्द। पर्वतानां वक्षणा प्र अभिनत् ॥ १ ॥

अर्थ— वज्रधारी इन्द्रने जो पहिले पराक्रम किये थे, इन्द्रके उन्हीं (पराक्रमोंका) हम वर्णन करते हैं। (उसने) अहिका वध किया। पश्चात् जलप्रवाहोंको खुला कर दिया और पर्वतोंमेंसे नदियोंका मार्ग खोद (कर विशाल कर) दिया ॥ १ ॥

पर्वते शिश्रियाणं अहिं अहन् । त्वष्टा अस्मै स्वर्यं वज्रं ततक्ष । धेनवः वाश्राः इव, स्यन्दमानाः आपः समुद्रं अञ्जः अव जग्मुः ॥ २ ॥

वृषायमाणः (इन्द्रः) सोमं अवृणीत । त्रिकद्रुकेषु सुतस्य अपिबत् । मघवा सायकं वज्रं आ अदत्त । अहीनां प्रथमजां एनं अहन् ॥ ३ ॥

उत हे इन्द्र ! यत् अहीनां प्रथमजां अहन्, आत् मायिनां मायाः प्र अमिनाः । आत् द्यां उषसं सूर्यं जनयन्, तादीत्ना शत्रुं न विवित्से किल ॥ ४ ॥

इन्द्रः महता वधेन वज्रेण वृत्रतरं वृत्रं, व्यंसं, अहन्, कुलिशेन विवृक्णा स्कन्धांसि इव, अहिः पृथिव्याः उपपृक् शयते ॥ ५ ॥

दुर्मदः अयोद्धा इव महावीरं तुविबाधं ऋजीषं (इन्द्रं) आ जुह्वे हि । अस्य वधानां समृतिं न अतारीत् । इन्द्रशत्रुः रुजानाः सं पिपिषे ॥ ६ ॥

अपात् अहस्तः (वृत्रः) इन्द्रं अपृतन्यत् । अस्य सानौ अधि वज्रं आ जघान । वध्रिः वृष्णः प्रतिमानं बुभूषन् वृत्रः पुरुत्रा व्यस्तः अशयत् ॥ ७ ॥

अमुया शयानं, भिन्नं नदं न, मनः रुहाणाः आपः अति यन्ति । वृत्रः महिना याः चित् (अपः) पर्यतिष्ठत्, तासां पत्सुतःशीः अहिः बभूव ॥ ८ ॥

वृत्रपुत्रा नीचावयाः अभवत्, इन्द्रः अस्याः वधः अव जभार । सूः उत्तरा, पुत्रः अधरः आसीत् । सहवत्सा धेनुः न, दानुः शये ॥ ९ ॥

पर्वतपर आश्रय करनेवाले अहिका वध (इन्द्रने) किया। त्वष्टा कारीगरने उसके लिये (शत्रुपर) उत्तम रीतिसे फेंकने योग्य (दूरसे वेध करनेवाला) वज्र बनाया था। तब गौवें जैसी हम्बारव करती हुई (अपने बच्चेकी ओर दौडती हैं वैसेही), दौडनेवाले जल-प्रवाह समुद्रके पास वेगसे जाने लगे ॥ २ ॥

बलवान् (इन्द्रने) सोमका स्वीकार किया। तीन पात्रोंमें रखे रसका पान किया। धनवान् (इन्द्रने) बाण और वज्रको (हाथमें) पकडा और अहियोंमेंसे इस मुखियाका वध किया ॥ ३ ॥

और हे इन्द्र ! जब अहियोंमेंसे प्रमुख वीरका वध किया, तब कपटियोंके कपटमय षड्यंत्रोंका भी विनाश किया। पश्चात् आकाशमें उषा और सूर्यको प्रकट किया; तब (तुम्हारे लिये कोई) शत्रु निःसंदेह नहीं रहा ॥ ४ ॥

इन्द्रने बडे घातक शस्त्रसे बडे घेरनेवाले वृत्रका, उसके बाहु काटनेके पश्चात् वध किया, कुल्हाडेसे छेदे गये वृक्षकी शाखाओंकी तरह, वह अहि पृथ्वीके ऊपर पडा हुआ है ॥ ५ ॥

महा घमण्डी (और अपनेको) अप्रतिम योद्धा माननेवाले (वृत्रने) महावीर, बहुत शत्रुओंका प्रतिबंध करनेवाले शत्रुनाशक (इन्द्र) को आह्वान देकर (युद्धके लिये) बुलाया। (पर पश्चात्) इस (इन्द्र) के आघातोंका सामना वह कर नहीं सका। (पश्चात्) इन्द्रके शत्रु (वृत्र) ने नदियोंको भी (स्वयं गिरते गिरते) तोड डाला ॥ ६ ॥

पांव और हाथ कट जानेपर भी (वृत्रने) इन्द्रसे युद्ध करना चाहा। (इन्द्रने) इसके कन्धेपर वज्र मारा। वीर्यहीन मनुष्यके बलशाली वीरके साथ सामना करनेके समान वह वृत्र अनेक स्थानोंपर शस्त्रके आघात सहकर (पृथ्वीपर) गिर पडा ॥ ७ ॥

इस (पृथ्वीके साथ) सोनेवाले (वृत्रको लांघकर), (महापूरसे तटको छिन्न)भिन्न करके बहनेवाली नदीके समान, मनोहारी जलप्रवाह बहने लगे। वृत्रने अपनी महिमासे जिन (जलों) को बद्ध कर रखा था, उनके पांवोंके नीचे सोनेवाला ही (अब वही) अहि बन गया ॥ ८ ॥

वृत्रकी माताकी संरक्षण करनेकी शक्ति कम हो गयी। (वह माता पुत्रके ऊपर सो गयी, पर) इन्द्रने उस (माताके) नीचेसे (वृत्रपर) प्रहार किया। (उस समय) माता ऊपर और पुत्र नीचे था। बछडेके साथ जैसी धेनु (सोती है), वैसीही वह दानु (वृत्रमाता पुत्रके ऊपर) सो गयी थी ॥९॥

अतिष्ठन्तीनां अनिवेशमानानां काष्ठानां मध्ये वृत्रस्य निण्यं शरीरं निहितं, आपः वि चरन्ति । इन्द्रशत्रुः दीर्घं तमः आशयत् ॥ १० ॥

स्थिर न रहनेवाले और विश्राम न करनेवाले जलप्रवाहोंके बीचमें वृत्रका शरीर छिपकर पड़ा रहा था और उसपरसे जलप्रवाह चल रहे थे। इन्द्रके शत्रु (वृत्र) ने बड़ा ही अन्धकार फैला दिया था ॥ १० ॥

पणिना गावः इव, दासपत्नीः अहिगोपाः आपः निरुद्धाः अतिष्ठन्। अपां यत् बिलं अपिहितं आसीत्, तत् वृत्रं जघन्वान्, अप ववार ॥ ११ ॥

पणी नामक (असुर)ने जैसी गौवें (गुप्त रखी थीं), उस तरह दास (वृत्र) के द्वारा पालित और अहिद्वारा सुरक्षित जलप्रवाह रुके पड़े थे (अर्थात् स्थिर हो गये थे)। जलका जो द्वार बन्द था, वह वृत्रके वधके पश्चात्, खोल दिया गया (अर्थात् जलप्रवाह बहने लगे) ॥ ११ ॥

सृके यत् एकः देवः त्वा प्रत्यहन्, तत् अश्व्यः वारः अभवः। गाः अजयः। हे शूर इन्द्र! सोमं अजयः। सप्त सिन्धून् सर्तवे अव असृजः ॥ १२ ॥

(इन्द्रके) वज्रपर जब एक अद्वितीय युद्धकुशल (वृत्र) ने, मानो तुमपरही प्रहार किया, तब घोड़ेकी पूँछकी तरह (तुमने उसका) निवारण किया। और गौओंको प्राप्त किया। हे शूर वीर इन्द्र! सोमको (तुमने) प्राप्त किया और सात सिन्धुओंके प्रवाहोंको गतिमान् करके खुला छोड दिया ॥ १२ ॥

अस्मै विद्युत् न सिषेध। तन्यतुः, यां मिहं अकिरत्, न (सिषेध)। ह्रादुनिं च (न सिषेध)। इन्द्रः च अहिः च यत् युयुधाते, उत मघवा अपरीभ्यः वि जिग्ये ॥ १३ ॥

(जब इन्द्र युद्ध करने लगा तब) इस (इन्द्र)को बिजली प्रतिबंध न कर सकी, मेघगर्जना और जो हिमवृष्टि हुई (वह भी उसका प्रतिबंध) न (कर सकी)। गिरनेवाली विद्युत भी (इस इन्द्रको न रोक सकी)। इन्द्र और अहि परस्पर युद्ध करते थे, उस समय धनवान् (इन्द्र) ने अन्यान्य (शत्रुप्रेरित कपट प्रयोगोंको भी) जीत लिया ॥ १३ ॥

हे इन्द्र! जघ्नुषः ते हृदि यत् भीः अगच्छत्, अहेः यातारं कं अपश्यः? यत् नव च नवतिं च स्रवन्तीः रजांसि, भीतः श्येनः न, अतरः ॥ १४ ॥

हे इन्द्र! (वृत्रका) वध करते समय तुम्हारे हृदयमें यदि भय उत्पन्न हो जाता, (तब तुमने) अहिका वध करनेके लिये किस दूसरे (वीर)को देखा होता? (अर्थात् तुम्हें छोडकर दूसरा कोई वीर मिलना संभवही नहीं था।) तुमने तो नौ और नब्बे जल-प्रवाहोंको, अन्तरिक्षमें भयभीत श्येनकी तरह, पार कर दिया ॥ १४ ॥

वज्रबाहुः इन्द्रः यातः अवसितस्य, शमस्य शृङ्गिणः च, । । स इत् उ चर्षणीनां राजा क्षयति। अरान् नेमिः न, परि बभूव ॥ १५ ॥

वज्रबाहु इन्द्र जङ्गम और स्थावरों, शान्त और क्रूरों (सींगवालों) का राजा है। वही मनुष्योंका भी राजा (होकर) रहा है। आरोंको जिस तरह चक्रकी नेमि (धारण करती है, उस तरह) वे सब (उसके) चारों ओर रहते हैं (अर्थात् वही सबका धारण करता है) ॥ १५ ॥

ईश्वर-स्वरूपका विचार

इस सूक्तका अन्तिम मंत्र ईश्वरस्वरूपकी स्पष्ट कल्पना दे रहा है। इस मन्त्रमें निम्नलिखित चार कल्पनाएं स्पष्ट हैं—

१ **इन्द्रः यातः अवसितस्य राजा**— इन्द्र जंगम और स्थावरोंका राजा है।

२ **वज्रबाहुः शमस्य च शृंगिणः राजा**— वज्रधारी इन्द्र शान्त और क्रूरों, सींगवालों अथवा शस्त्रधारियोंका राजा है।

३ सः चर्षणीनां राजा क्षयति - वह सब प्रजाओंका राजा होकर रहता है।

४ ताः (प्रजाः), अरान् नेमिः न, (सः) परि बभूव- वे प्रजाजन, चक्रके आरे चक्रकी नेमिके चारों ओर रहते हैं वैसे, उसके चारों ओर रहते हैं। (मं. १)

परमात्मा नाभी। चार वर्ण और निषाद चण्डाल ये आरे और ब्रह्माण्ड चक्र। यहांका चित्र पिण्डका है।

चक्रकी नेमि ईश्वर है और उस प्रभुके आधारपर सब विश्व रहा है, जिस तरह चक्रनेमीके आधारसे चक्रके आरे रहते हैं। सर्वाधार ईश्वरकी कल्पना यहां स्पष्ट हुई है। दूसरा उदाहरण वृक्षके आधारसे वृक्षकी शाखाएं रहती हैं, यह वेदने अन्यत्र दिया है। स्थावर-जंगम, शान्त-क्रूर, सींगवाले-सींगसे रहित ये सब द्वन्द्व हैं। इससे विभिन्न अन्य द्वन्द्वोंकी भी कल्पना यहां पाठक कर सकते हैं, जड-चेतन, प्राणी-अप्राणी, पशु-पक्षी, मनुष्य-मनुष्येतर, राजा-प्रजा, धनी-निर्धन, ज्ञानी-अज्ञानी, मालिक-मजदूर इत्यादि अनेक द्वन्द्व इस विश्वमें हैं। इन सबका राजा इन्द्र है, अर्थात् प्रभुही है। सबका चालक और अधिपति वही एक ईश्वर है। सब मानवोंका वही प्रभु है, इसलिये सबको उसी एक प्रभुकी उपासना करना योग्य है।

इस सूक्तमें विद्युत् प्रवाह रूपमें इस प्रभुका साक्षात्कार किया गया है और क्षात्रधर्मका उपदेश किया है। देखिये-

क्षात्रधर्म

१ पर्वते शिश्रियाणं अहिं अहन्- पर्वतपर रहनेवाले अहि नामक शत्रुका वध इन्द्रने किया, पर्वतपरके दुर्गका आश्रय करके यह अहि रहता था, उसपर हमला करके इन्द्रने उस शत्रुका पराभव किया और उसका वध भी किया। (मं २)

२ अहीनां प्रथमजां एनं अहन्- अहि नामक शत्रुके अनेक वीर लडनेके लिये आये थे, उनमें जो प्रमुख मुखिया वीर था, उसका वध इन्द्रने किया, जिससे बाकी रहे सबोंका पराभव हुआ। यहां प्रथम मुखियाका वध करना चाहिये, यह युद्धनीतिकी बात प्रकट हो रही है। (मं. ३,४)

३ मायिनां मायाः अमिनाः- कपटी शत्रुओंके सब कपटपूर्ण षड्यन्त्रोंका इन्द्रने नाश किया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि, स्वयं सावध रहकर शत्रुकी कपट युक्तियोंको जानना चाहिये और उनका नाश करना चाहिये अथवा उनको विफल करना चाहिये। (मं. ४)

४ शत्रुं न चिवित्से-एक भी शत्रु किसी स्थानपर न दीखे, ऐसी स्थिति आनेतक युद्ध करके शत्रुका नाश करना चाहिये। (मं. ४)

५ दासपत्नीः अहिगोपाः आपः निरुद्धाः आसन्। वृत्रं जघन्वान्, अपां बिलं निहितं आसीत्, तत् अप ववार- शत्रुने जलप्रवाहोंपर अपना कब्जा किया था, सब जलप्रवाह रोक रखे थे। इन्द्रने इनका वध किया और जो जलोंका द्वार बंद किया था, उसे खोलकर सबके हितके लिये जलप्रवाह खुले किये। (मं. ११)

शत्रुकी युद्धनीति यह रहती है कि जलस्थान अपने अधिकारमें रखना और प्रतिपक्षीको जल न देनेसे तंग करना। इस कारण इन्द्रकी नीति यह रहती है कि शत्रुवीरोंको परास्त करके उन जलप्रवाहोंको सबके लिये खुला करना।

६ नव च नवतिं च स्रवन्तीः रजांसि अतरः-नौ और नव्वे जलप्रवाहों और प्रदेशोंको प्राप्त किया और उससे भी परे चला गया। यह इन्द्रका पराक्रम है। इतनी नदियां और इतने बीचके प्रदेश इन्द्रने शत्रुसे मुक्त किये और अपने अधिकार में लाये। (मं. १४)

७ त्वष्टा अस्मै स्वर्यं वज्रं ततक्ष— कारीगरने इस इन्द्र के लिये (सु+अर्य) उत्तम रीतिसे जो शत्रुपर फेंका जाता है ऐसा वज्र तैयार करके दिया। (मं. २) देशवासी कारीगरोंको उचित है कि वे अपने देशके वीरोंको शस्त्रास्त्र निर्माण करनेकी

सहायता देवें, जिससे अपने वीरोंको उत्तेजना मिले और शत्रु परास्त हो जाय।

८ मघवा सायकं वज्रं आ अदत्त- इन्द्रने अपने पास बहुत धन इकट्ठा किया, उससे उसको शस्त्रास्त्र प्राप्त हुए। (मं. ३) और उन शस्त्रास्त्रोंसे उसने शत्रुका पराभव किया।

९ दुर्मदः अयोद्धा (इन्द्रं) आ जुह्वे- घमण्डी और अपनेको अजिंक्य समझनेवाले वृत्रने इन्द्रको लडनेके लिये आह्वान दिया। उस शत्रुने यह समझा था कि अपनी शक्ति अधिक है और इन्द्रकी कम है, इस घमण्डमें वह था और उसने आह्वान दिया था। (मं. ६)

१० वृत्रतरं वृत्रं अहन्— वृत्र नामक शत्रु (वृत्रतरः) चारों ओरसे घेरकर रहा था। उसका विचार था कि इन्द्रकी सेनाको चारों ओरसे घेरकर मारना, परंतु यह कपट इन्द्रने जान लिया और उसीका वध किया। (मं. ५)

११ अस्य वधानां समृतिं न अतारीत्— इन्द्रके द्वारा हुए अनेक आघातोंको वह वृत्र न सह सका। शत्रुपर ऐसे ही हमले करने चाहिये। (मं. ६)

१२ विद्युत् , तन्यतुः, मिहं, ह्रादुनिः अस्मै न सिषेध— बिजलियाँ, मेघगर्जनाएं, बडी वृष्टि, बर्फकी वर्षा, बिजलियोंका गिरना आदि आपत्तियाँ इन्द्रको न रोक सकीं। इन्द्र जिस समय शत्रुपर हमला करने लगा था, उस समय ये विघ्न होने लगे थे, पर इन्द्रका हमला होता रहा। शत्रु परास्त होने-तक इन्द्रने विघ्नोंकी पर्वाह न करते हुए हमला किया और अन्तमें विजय पाया। (म. १३)

१३ यत् जघ्नुषः हृदि भीः अगच्छत्, अहेः यातारं कं अपश्यः ?— जब इस हमला करनेवाले इन्द्रके हृदयमें भय उत्पन्न होता, तो उस युद्धके समय कौन दूसरा सहायक मिलता ? अर्थात् कोई नहीं। इस कारण न डरते हुए। चढाते रहना चाहिये। (मं. १४)

१४ इन्द्रः महता वधेन वृत्रं व्यंसं अहन्, अहिः पृथिव्याः उपपृक् शयते— इन्द्रने अपने बडे प्रभावी शस्त्रसे वृत्रके हाथ काट दिये और उसका वध किया, तत्पश्चात् वह वृत्र पृथ्वीके ऊपर गिर पडा। (मं. ५) यहां वृत्र और अहि ये एकके ही वाचक दो पद हैं।

१५ इन्द्रशत्रुः रुजानाः सं पिपिषे— वृत्र जो इन्द्रका शत्रु था, वह मरकर जब गिरा, तब उससे पृथ्वी चूर्ण हुई (मं. ६)

१६ अपात् अहस्तः वृत्रः इन्द्रं अपृतन्यत्— हाथ पांव टूट जानेपर भी सेनाके साथ वृत्र युद्ध कर ही रहा था। (मं. ७)

१७ अस्य सानौ अधि वज्रं आ जघान वृत्रः पुरुत्रा व्यस्तः अशयत्— वृत्रके सिरपर जब वज्रका प्रहार किया, तब वह बहुत जगह घायल होकर अस्तव्यस्त होकर भूमिपर गिर गया। (मं. ७)

१८ वध्रिः वृष्णः प्रतिमानं बुभूषन्— नपुंसक, जैसा पौरुषशक्तिसंपन्न वीरसे स्पर्धा करे, वैसी स्पर्धा वृत्रने इन्द्रके साथ की। (मं. ७)

१९ वृत्रः महिना पर्यतिष्ठत्, अहिः तासां पत्सुतःशीः बभूव- वृत्र अपनी शक्तिसे जिनके सिरपर नाचता था, उनकेही पांवोंके तले अब वह गिर पडा है। (मं. ८)

२० सूः उत्तरा, पुत्रः अधरः आसीत्, अस्याः अव वधः जभार— माता ऊपर और पुत्र नीचे पडा था, माता अपने पुत्रकी सुरक्षा करनेकी इच्छासे उसपर गिर गयी थी, पुत्र बचे और उसके बदलेमें मैं मर जाऊंगी, ऐसी उसकी इच्छा थी, पर इन्द्रने नीचेसे वज्र फेंककर वृत्रको मार दिया। (मं. ९)

इस तरह इस सूक्तमें युद्धनीतिका उपदेश है, जो पाठक मंत्रार्थ देखकर तथा आगे पीछेके मंत्रभागोंकी संगति लगाकर जान सकते हैं। यहां कुछ मंत्रभाग नमूनेके लिये बताये हैं। इससे अधिक विवरण करनेकी यहां आवश्यकता नहीं है।

अलंकार

यह कथा आलंकारिक है। वृत्र, अहि आदि पद मेघवाचक हैं ऐसा भाष्यकार, निरुक्तकार और निघंटुकारका मत है। इस समयतक सब ऐसा ही मानते आये हैं। पर यह ठीक प्रतीत नहीं होता। इसके कारण यहां देते हैं—

१ द्यां उषसं सूर्यं जनयन्, शत्रुं तावीत्ना न विविःत्से किल (मं ४)– द्युलोकमें उषा चमक उठी, सूर्यका उदय हुआ, इसके बाद एक भी शत्रु न रहा। सूर्यका उदय होनेसे शत्रुका न होना, यदि मेघरूप शत्रु वृत्र, अहि आदि मेघ ही हैं ऐसा माना जाय तो, मेघरूप शत्रुका नाश होना संभव नहीं है। सूर्य उदय होनेसे मेघ पिघलते नहीं। सूर्य प्रकाशित होनेपर भी मेघ आकाशमें रहते हैं। अतः अहि वृत्ररूप शत्रु ऐसा होना चाहिये कि जो सूर्य आते ही विनष्ट होता जाय और उससे जल बहता जाय। मेघसे तो ऐसा नहीं होता। पहाडोंपर पडे बर्फका

सूर्य-किरणोंसे पिघलना संभव है। किरणोंसे पहाडों और भूमिपर पडा बर्फ पिघलता है, यह हम देखते हैं। वैसे मेघ सूर्य आनेसे अथवा प्रकाशसे पिघलते नहीं हैं, इसलिये सूर्यका उत्पन्न या उदय होना और शत्रुका नाश होना, मेघके विषयमें सत्य नहीं है, परंतु बर्फके विषयमें सत्य है।

२ अहिं अहन्, अपः ततर्द, पर्वतानां वक्षणाः प्र अभिनत् (मं. १) अहिको मारा, पानी बहाया, पर्वतोंसे नदियां बहायीं। पर्वतोंपरका बर्फ पिघलनेसे सिंधु, गंगा आदि नदियोंका बहना, बडा पूर आकर भरपूर भरना, प्रत्यक्ष दीखता है।

३ पर्वते शिश्रियाणं अहिं अहन्। आपः समुद्रं अवजग्मुः (मं २)-पर्वत पर रहे अहिको मारा और जल समुद्र तक बहता गया। पर्वतपरका बर्फ पिघलनेसे नदियोंमें महापूर आगया, जिससे पानी समुद्रतक पहुंचा। गंगा आदि नदियों को बर्फ पिघलनेसे ही गर्मियोंके दिनोंमें महापूर आते हैं।

४ अहिः पृथिव्याः उप पृक् शयते (मं. ५)-अहि पृथ्वी पर लेटता हुआ सोता है। पृथ्वीपर अहि अथवा वृत्रका सो जाना, उसको बर्फ की दशामें स्वीकार करनेसे ही, हो सकता है। मेघ कभी मेघ-दशामें पृथ्वीपर सोता नहीं। इस लिये अहो अथवा वृत्र ये पद बर्फके वाचक मानना युक्तियुक्त है। बर्फ तो पहाडोंपर भी गिरता है और भूमिपर भी। वहां सूर्य-किरणोंसे पिघलता है और उसके पानीसे नदियां महापूरसे भरपूर भरती हुई समुद्रतक जाती हैं।

५ इन्द्रशत्रुः रुजानाः सं पिपिषे (मं. ६)-इंद्रशत्रु वृत्र नदियोंको तोड देता है। इन्द्र-शत्रु सूर्य-किरणोंका शत्रु यहां बर्फ लीजिये। सूर्यके प्रकट होनेसे वह पिघलकर पानीका महापूर आया, उससे नदियोंके तीर टूट गये और नदियाँ बढकर बहने लगीं। वृत्रको मेघ माननेकी अपेक्षा हिम-बर्फ-माननेसे यह वर्णन युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

६ अमुया शयानं आपः अतियन्ति (मं. ८)-इस भूमिके साथ सोनेवाले (इस वृत्र परसे) जल-प्रवाह लांघकर जाते हैं। यहां **'अमुया शयानं'** ये पद वृत्र पृथ्वीके साथ सोया पडा था यह भाव स्पष्ट बताते हैं। मेघकी अपेक्षा हिमकालका बर्फ ही पृथ्वीपर सोया पडा रहता है और पानी भी उससे चूता रहता है, विशेष कर सूर्य-किरणोंसे पानीके प्रवाह उससे बहते रहते हैं, यह बात स्पष्ट है।

७ काष्ठानां मध्ये वृत्रस्य शरीरं निण्यं निहितं, आपः विचरन्ति, इन्द्रशत्रुः दीर्घं तमः आशयत् (मं. १०)— प्रवाहोंके बीचमें वृत्रका शरीर छिपा पडा, उससे जल-प्रवाह बहने लगे, इन्द्र शत्रु इस वृत्रने बडा दीर्घ अन्धकार छा दिया। जल-प्रवाहोंमें वृत्रका शरीर छिपा पडा यह बात वृत्रके बर्फ होनेसेही ठीक सिद्ध हो सकती है। क्यों कि पृथ्वीपरका बर्फ पिघलने लगा और भूमिपर महा पूर आया तो बीचमें बर्फके ऊपरसे भी जल-प्रवाहोंका बहना स्वाभाविक है। मेघके विषयमें यह नहीं हो सकता। 'वृत्र' आवरकको कहते हैं। यह बर्फ भूमिपर गिरनेसे वह भूमिपर आच्छादनसा पडता है, इसलिये भूमि तथा पहाडोंपर गिरनेवाले बर्फको वृत्र नाम आवरक होनेसे ठीक प्रतीत होता है। 'अही' (अ-ही) उसको कहते हैं कि जो कम न हो, अर्थात् हिम-कालमें बर्फ गिरता जाता है और वह बढता जाता है, इसलिये उसको यह नाम है। यह दीर्घ अन्धेरा पृथ्वीपर फैलाता है। दीर्घ अन्धेरा मेघ नहीं फैलाते, दिनके समय मेघ आनेसे सूर्य-दर्शन नहीं होता पर अन्धेरा नहीं होता। बर्फका गिरना और दीर्घ रात्रिके अन्धेरेका होना यह बात उत्तरीय ध्रुव प्रदेशमेंही होनेवाली है। दीर्घ अन्धेरा मेघोंसे नहीं होता, न प्रतिदिनकी रात्रिका होता है, दीर्घ तम तो वही है जो छः मासकी प्रदीर्घ रात्रि उत्तरीय ध्रुवमें होती है, उसमें होता है। वेदमें 'दीर्घ तम' इसी प्रदीर्घ रात्रिके अन्धेरेको कहा है। रात्रिका प्रारंभ, (दीर्घं तमः) प्रदीर्घ अन्धकारका प्रारंभ, बर्फ गिरनेका प्रारंभ, उस बर्फसे भूमिका (वृत्र) आवरण होना, वह बर्फका आच्छादन (अ-हि) कम न होना, इस समय विद्युत्प्रकाश (इन्द्र) का होना, छः मासोंके बाद आकाशमें उषाका होना, अनेक उषाओंके बाद सूर्यका आना, इन्द्रके द्वारा सूर्यको ऊपर आकाशमें चढाना, सूर्य आनेपर बर्फ (वृत्र) का नाश होनेका प्रारंभ होना, पश्चात् जल-प्रवाहोंके महापूरोंसे नदियोंका भरना इत्यादि सब बातें उसी उत्तरीय प्रदेशोंमें प्रत्यक्ष दीखनेवाली हैं। प्रतिवर्ष वैसीही होनेके कारण ये घटनाएं सनातन भी हैं। यह वर्णन ऐसाही प्रतिवर्ष होता रहेगा। इसलिये इस सनातन घटनापर किये रूपक मानव के लिये सनातन बोध देंगे इसमें संदेह नहीं है।

८ आपः निरुद्धाः आसन्, अपां बिलं अपिहितं आसीत्, तत् वृत्रं जघन्वान् अप ववार (मं. ११)— जल-प्रवाह रुके थे, जलोंका द्वार (बहना) बंद था, वह

वृत्रका वध करके खोल दिया गया। सब जानते हैं कि 'बर्फ' ही जलके प्रवाहित रूपकी प्रतिबंधक स्थितिका नाम है। मेघमें भाप रहती है, जल नहीं। परंतु बर्फमें रुका हुआ जलही रहता है। सूर्य-किरण लगतेही वही रुका, जमा हुआ, जल पिघलकर बहने लगता है। इसलिये वृत्र-वध और जल-प्रवाह साथही साथ होनेवाली बात है।

इस तरह इन्द्र×वृत्र-युद्ध किरण×बर्फ-युद्धही है। सूर्य-किरणसे बर्फका वध निःसंदेह होताही है। मेघोंके साथ यह घटना हमेशाही होगी, ऐसी बात नहीं है। निरुक्तकारने 'पर्वत' का भी अर्थ 'मेघ' किया है, पर पर्वतका अर्थ 'बर्फाच्छादित पर्वत' समझनेपर वहां सूर्य-किरणोंसे वृत्रनाश होना और पर्वतोंसे नदियोंका बहना प्रत्यक्ष दीख सकता है। इसलिये 'पर्वत' पदका अर्थ 'मेघ' करनेकी अपेक्षा बर्फाच्छादित पर्वत-शिखर करना युक्ति युक्त है।

९ **वृत्रं जघन्वान् (मं.११) सोमं अजयः-गा अजयः सप्त सिन्धून् सर्तवे अव असृजः (मं. १२)**— वृत्रका वध किया, सोमादि वनस्पतियाँ प्राप्त कीं, गौवें प्राप्त कीं, और सातों सिन्धु नदियोंका जल प्रवाहित कर दिया, सातों नदियाँ महापूरसे भर कर बहने लगी। वृत्र-वधके पश्चात् सोमादि वनस्पतियोंकी प्राप्ति होनेका वर्णन पर्वतशिखर पर जो बर्फ रहता है, वह पिघलनेपर वहांकी सोमवनस्पतिकी प्राप्ति होना संभव है। बर्फके पिघलनेसे सप्त सिन्धुओंका महापूर आज भी प्रसिद्ध है और प्रत्यक्ष दीखनेवाला चमत्कार है। उत्तम जातकी सोमवल्ली बर्फानी शिखरोंपर होती है, १५००० फीट ऊंचाईपर बर्फ स्थानमें ही उत्कृष्ट सोम उगता है। वह बर्फ पडनेसे बर्फाच्छादित होता है, बर्फ पिघलनेपर सोम मिलता है। बर्फके रूपमें वृत्रवध इस तरह सत्य है, मेघ-रूपमें ये घटनाएं वैसी प्रत्यक्ष नहीं हैं।

इस तरह सूक्तके सबके सब वर्णन बर्फके रूपमें जैसे घटते हैं, वैसे मेघके रूपमें सबके सब घटते नहीं, इसलिये वृत्रको बर्फ मानना योग्य है। इसका विचार आगे भी होगा। पाठक इसका अनुसंधान रखें।

वेदका धर्म रूपकालंकारसे प्रकट होता है। यह युद्ध-धर्म इस सूक्तसे प्रकट हुआ है, वह सनातन उपदेश है। इसी सूक्तमें वीरके गुण भी वर्णन किये हैं। पाठक इनको मंत्रोंमें देखें।

(३) युद्धविद्या

(ऋ. १।३३) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥ १ ॥
उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥ २ ॥
नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥ ३ ॥
वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र।
धनोरधि विषुणक् ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥
परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्राऽयज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः।
प्र यद् दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥
अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥ ६ ॥
त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ७ ॥

चक्राणास॑ः परीण॒हं॑ पृथि॒व्या हिर॑ण्येन म॒णिना॒ शुम्भ॑मानाः ।
न हि॑न्वा॒नास॑स्तितिरु॒स्त इन्द्रं॒ परि॒ स्पशो॑ अदधा॒त् सूर्ये॑ण ८
परि॒ यदि॑न्द्र॒ रोद॑सी उ॒भे अबु॑भोजीर्महि॒ना वि॒श्वत॑ः सीम् ।
अम॑न्यमानाँ अ॒भि मन्य॑मानै॒र्निर्ब्र॒ह्मभि॑रधमो॒ दस्यु॑मिन्द्र ९
न ये दि॒वः पृ॑थि॒व्या अन्त॑मा॒पुर्न मा॒याभि॑र्धन॒दां प॒र्यभू॑वन् ।
युजं॒ वज्रं॑ वृष॒भश्च॑क्र॒ इन्द्रो॒ निर्ज्योति॑षा॒ तम॑सो॒ गा अ॑दुक्षत् १०
अनु॑ स्व॒धाम॑क्षर॒न्नापो॑ अ॒स्याव॑र्धत॒ मध्य॒ आ ना॒व्या॑नाम् ।
स॒ध्री॒चीने॑न॒ मन॑सा॒ तमिन्द्र॒ ओजि॑ष्ठेन॒ हन्म॑नाहन्न॒भि द्यून् ११
न्या॑विध्यदिली॒बिश॑स्य दृ॒ळ्हा वि शृ॒ङ्गिण॑मभिन॒च्छुष्ण॒मिन्द्रः॑ ।
याव॒त्तरो॑ मघव॒न् याव॒दोजो॒ वज्रे॑ण॒ शत्रु॑मवधीः पृत॒न्युम् १२
अ॒भि सि॒ध्मो अ॑जिगादस्य॒ शत्रू॒न् वि ति॒ग्मेन॑ वृष॒भेणा॒ पुरो॑ऽभेत् ।
सं वज्रे॑णासृजद् वृ॒त्रमिन्द्रः॒ प्र स्वां म॒तिम॑तिर॒च्छाश॑दानः १३
आवः॒ कुत्स॑मिन्द्र॒ यस्मि॑ञ्चा॒कन् प्रावो॒ युध्य॑न्तं वृष॒भं दश॑द्युम् ।
श॒फच्यु॑तो रे॒णुर्न॑क्षत॒ द्यामुच्छ्वै॑त्रे॒यो नृ॒षाह्या॑य तस्थौ १४
आवः॒ शमं॑ वृष॒भं तुग्र्या॑सु क्षेत्रजे॒षे म॑घव॒ञ्छ्वित्र्यं॒ गाम् ।
ज्योक् चि॒दत्र॑ तस्थि॒वांसो॑ अक्रञ्छत्रूय॒ताम॑ध॒रा वेद॑नाकः - १५

अन्वयः- आ इत गव्यन्तः (वयं) इन्द्रं उप अयाम । अनामृणः (इन्द्रः) अस्माकं प्रमतिं सु ववृधाति ! आत् अस्य रायः गवां परं केतं नः कुवित् आवर्जते ॥१॥

जुष्टां वसतिं श्येनः न (तं) धनदां अप्रतीतं इन्द्रं अहं उपमेभिः अर्कैः नमस्यन् उप इत् पतामि। यः स्तोतृभ्यः यामन् हव्यः अस्ति ॥ २ ॥

सर्वसेनः इषुधीन् नि असक्त, अर्यः यस्य वष्टि गाः सं अजति । हे प्रवृद्ध इन्द्र ! भूरि वामं चोष्कूयमाणः, अस्मत् अधि पणिः मा भूः ॥ ३॥

हे इन्द्र ! उप शाकेभिः एकः चरन् धनिनं दस्युं घनेन वधीः हि । धनोः अधि विषुणक् ते वि आयन्। अयज्वनः सनकाः प्र-इतिं ईयुः ॥ ४ ॥

अर्थ— आओ ! गायें प्राप्त करनेकी इच्छासे (हम) इन्द्र के पास जायेंगे । जिसका कभी पराजय नहीं होता (ऐसा यह इन्द्र) हमारी बुद्धि उत्तम रीतिसे बढायेगा । निःसंदेह इसकी (भक्ति) धनों और गायोंकी प्राप्तिका श्रेष्ठ ज्ञान हमें प्रदान करेगी ॥ १ ॥

जैसा श्येन पक्षी अपने रहनेके घोसलेके पास दौडता है, वैसा (उस) धनदाता और अपराजित इन्द्रके पास, मैं उपासनाके योग्य स्तोत्रोंसे नमन करता हुआ, जा पहुंचता हूँ, यह (इन्द्र) भक्तोंके लिये युद्धके समय (सहायार्थ) बुलाने योग्य है ॥ २ ॥

सब सेनाओंके (सेनापति इन्द्र हैं, वे) तर्कसोंको (अपने पीठपर) धारण करते हैं, वे स्वामी (इन्द्र) जिसको (देना) चाहते हैं उसके पास गायें भेजते हैं । हे श्रेष्ठ इन्द्र ! हमें बहुत श्रेष्ठ धन देनेकी इच्छा करते हुए हमारे साथ बनिया जैसा व्यवहार न करना ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! शक्तिशाली वीरोंके साथ हमला करते हुए भी (अन्तमें तुम) अकेलेने ही चढाई करके धनी दस्यु (वृत्रका अपने) प्रचण्ड वज्रसे वध किया । तब (तुम्हारे) धनुष्यके ही ऊपर विशेष नाश होनेके लियेही मानो, वे सब चढाई करने लगे । (अर्थात् अन्तमें वे) यज्ञ न करनेवाले दानव मृत्युकोही प्राप्त हुए ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! अयज्वनः यज्वभिः स्पर्धमानाः ते शीर्षा परा चित् ववृजुः । हे हरिवः स्थातः उग्र ! यत् दिवः रोदस्योः अव्रतान् निः प्र अधमः ॥ ५ ॥

अनवद्यस्य सेनां अयुयुत्सन्, नवग्वाः क्षितयः अयातयन्त । वृषायुधः वध्रयः न निरष्टाः प्रवद्भिः चितयन्तः, इन्द्रात् प्रवद्भिः आयन् ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! त्वं रुदतः जक्षतः च एतान् रजसः पारे अयोधयः । दस्युं दिवः आ उच्चा अव अदहः सुन्वतः स्तुवतः शंसं प्र आवः ॥ ७ ॥

हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः पृथिव्या परिणहं चक्राणासः हिन्वानासः ते इन्द्रं न तितिरुः । स्पशः सूर्येण परि अदधात् ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! यत् उभे रोदसी महिना विश्वतः सीं परि अबुभोजीः । हे इन्द्र ! अमन्यमानान् अभि मन्यमानैः ब्रह्मभिः दस्युं निः अधमः ॥ ९ ॥

ये दिवः पृथिव्याः अन्तं न आपुः । धनदां मायाभिः न पर्यभूवन् । वृषभः इन्द्रः वज्रं युजं चक्रे । ज्योतिषा तमसः निः अधुक्षत् ॥ १० ॥

आपः अस्य स्वधां अनु अक्षरन् । नाव्यानां मध्ये आ अवर्धत । इन्द्रः सध्रीचीनेन मनसा तं ओजिष्ठेन हन्मना अभि द्यून् अहन् ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! स्वयं यज्ञ न करनेवाले (वे शत्रु) याचकोंके साथ स्पर्धा करनेके कारण अपना सिर घुमा कर दूर भगाये गये । हे घोडोंसे जोतनेवाले, युद्धमें स्थिर उग्र वीर इन्द्र ! (तुमने) द्युलोक अन्तरिक्ष और पृथ्वीसे धर्मव्रत-हीन दुष्टोंको भगा दिया है ॥ ५ ॥

निर्दोष (इन्द्र) की सेनाके साथ युद्ध करनेकी इच्छा (उन शत्रुओंने) की, तब नवीन गतिसे मानवोंने (उन सैनिकोंने उस शत्रुपर) चढाई की । बलिष्ठ शूर पुरुषोंके साथ (युद्ध करनेसे जो गति) नपुंसककी होती है, वैसीही, वे पराजित होकर (उनकी हो गयी और वे अपनी निर्बलता) मानकर, इन्द्रसे दूर भागते गये ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुमने रोनेवाले या हंसनेवाले इन शत्रुओंको रजोलोकके परे युद्ध करके (भगा दिया) । इस दस्यु (वृत्र) को द्युलोकसे खींच कर (नीचे लाकर) अच्छी तरह जला दिया और सोम-याजकों तथा स्तोताओंकी स्तुतियोंकी उत्तम रक्षा की ॥ ७ ॥

सुवर्णों और रत्नोंसे (अपने आपको) शोभायमान करके पृथ्वीके ऊपर अपना प्रभाव (शत्रुओंने) जमाया था, (वे) बढतेही जाते थे, (पर) वे इन्द्रके साथ (युद्धमें) न ठहर सके । (अन्तमें शत्रुके) अनुचारोंको सूर्यके द्वारा पराभूत होना पडा ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! जब दोनों द्यु और भू लोकोंका अपनी महिमासे चारों ओरसे सब प्रकार (तुमने) उपभोग लिया, तब हे इन्द्र ! न माननेवालोंको (अर्थात् नास्तिकोंको भी) माननेवालोंके (आस्तिकोंके) द्वारा ज्ञान (पूर्वक की गयी अनेक योजनाओं) से शत्रुको परास्त किया ॥ ९ ॥

जो द्यु लोकसे पृथ्वीतकके (अवकाशका) अन्तिम परिमाण न जान सके । जो धनदाता (इन्द्र) का कपट युक्तियोंसे भी पराभव न कर सके । (तब) बलवान् इन्द्रने वज्र ठीक तरह पकड लिया और प्रकाश द्वारा अन्धकारमेंसे गौओंको निकाल (कर प्राप्त करके, उसने-उनका) दोहन किया ॥ १० ॥

जल-प्रवाह इसके अन्नके अनुसार- (खेतमेंसे) चलने लगे ! (परंतु वृत्र) नौकाओंद्वारा प्रवेश करने योग्य (नदियोंके) बीच बढ रहा था । इन्द्रने धैर्ययुक्त मनसे उस (शत्रु) को बलवान् घातक (वज्र) से कुछ एक दिनोंकी (अवधि) में मार दिया ॥ ११ ॥

इळी-विशस्य दृळ्हा इन्द्रः नि अविध्यत्। शृङ्गिणं शुष्णं वि अभिनत्। हे मघवन्! यावत् तरः, यावत् ओजः पृतन्युं शत्रुं वज्रेण अवधीः ॥ १२ ॥

भूमिपर सोनेवाले (वृत्र) के सुदृढ (सैन्यों वा किलोंका) इन्द्रने वेध किया। और सींगवाले शोषक (वृत्र) को छिन्नभिन्न किया। हे धनवान् इन्द्र! (तुम्हारा) जितना वेग और जितना बल था, (उतनेसे तुमने) सेनाको साथ रखकर लडनेवाले शत्रुका वज्रसे वध किया ॥१२॥

अस्य सिध्मः शत्रून् अभि अजिगात्। तिग्मेन वृषभेण वज्रेण पुरः वि अभेत्। इन्द्रः वज्रेण सं असृजत्। शासदानः स्वां मतिं प्र अतिरत्॥ १३ ॥

इस (इन्द्र) का वज्र शत्रुओंके ऊपर आक्रमण करने लगा। तीक्ष्ण और बलशाली वज्रसे (उस इन्द्रने शत्रुके) नगरोंको तोड डाला। इन्द्रने वज्रसे (शत्रुपर) सम्यक् प्रहार किया। (तब) शत्रुनाशक (इन्द्रने) अपनी उत्तम विशाल बुद्धि प्रकट की॥१३॥

हे इन्द्र! यस्मिन् चाकन् कुत्सं आवः। युध्यन्तं वृषभं दशद्युं प्र आवः। शफच्युतः रेणुः द्यां नक्षत। श्वैत्रेयः नृसह्याय उत् तस्थौ ॥ १४ ॥

हे इन्द्र! जिसमें (तुमने अपनी कृपा) रखी, उस कुत्सकी (तुमने) सुरक्षा की। युध्यमान बलवान् दशद्युकी (भी तुमने) रक्षा की। (उस समय तुम्हारे घोडोंके) खुरोंसे उडी धूली द्युलोक तक फैल गयी थी। श्वैत्रेय भी सब मानवोंमें अधिक समर्थ होनेके लिये (तुम्हारी कृपासे) ऊपर उठ गया॥१४॥

हे मघवन्! क्षेत्रजेषे शर्मं वृषभं तुग्र्यासु गां श्विन्त्यं आवः। अत्र ज्योक् चित् तस्थिवांसः अक्रन्, शत्रूयतां अधरा वेदना अकः ॥ १५ ॥

हे धनवान् इन्द्र! क्षेत्र-प्राप्तिके युद्धमें शान्त बलवान् परंतु जलप्रवाहोंमें डूबनेवाले श्विन्त्यकी (तुमने) रक्षा की। यहां बहुत समय तक ठहरे हुए (हमारे शत्रु हमसे युद्ध) कर रहे थे, उन शत्रुओंको नीचे गिराकर (तुमने) ही दुःख दिया ॥१५॥

युद्धकी नीति

इस सूक्तमें भी युद्ध करनेकी नीतिका उल्लेख विचार करने योग्य है।

१ अनामृणः (मं.१) (अन+आ+मृण.)-मृणः=हिंसित; आमृणः=चारों ओरसे विनष्ट; अनामृणः = किसी तरह हिंसित न हुआ। वीर ऐसा हो।

२ सर्वसेनः इषुधीन् नि असक्त (मं. ३)-सब सेना तथा उसके सेनापति अपने शस्त्रास्त्रोंसे सज्ज हों।

३ उपशाकेभिः चरन् एकः दस्युं घनेन वधीः (मं.४) सैनिकोंके साथ चलनेवाले सेनापतिने प्रसंगविशेषमें अकेलेने भी अपने शस्त्रास्त्र चलाकर शत्रुका वध करना उचित है।

४ धनोः अधि, विषुणक्, ते व्यायन्, सनकाः प्रेतिं ईयुः (मं ४)-धनुष्यादि शस्त्रसंग्रह पर, अपना नाश कर लेनेके लिये हि मानो, वे शत्रु-सैनिक चढाई करके आये, पर उन शत्रुओंका विनाशही हुआ। यहां शत्रु-सैनिक अपनी असावधानीसे लाभ उठाना चाहते हैं, उस समय स्वयं सावधान रह कर उनका नाश करना उचित है, यह तात्पर्य है। इन्द्रके धनुष्यपर अथवा शस्त्रागारपर शत्रुओंने हमला किया (वि-षु-नश्, नक्) विशेष नाश ही उसका परिणाम हुआ। ऐसा ही होना चाहिये। 'सनक' का अर्थ यहां 'दानव, असुर, दस्यु, शत्रु' ऐसा है। '**दानव**' का मूल अर्थ 'दाता' ऐसा है, वैसा ही '**सनक**' का अर्थ 'दाता' है। पर ये पद विशेष प्रसंगमें शत्रुवाचक बने हैं। '**असुर**' शब्द भी देववाचक और राक्षसवाचक प्रसिद्ध है। जो शत्रु हमला करेंगे, उनका पूर्ण नाश होना चाहिये।

५ स्पर्धमानाः शीर्षा परा ववृजुः। (मं. ५)-हमसे स्पर्धा करनेवाले हमारे शत्रु सिर नीचा करके दूर भाग गये। यह हरएक वीरका साध्य है। शत्रुके साथ युद्ध करनेकी तैयारी करनेके पूर्व अपनी ऐसी शक्ति बढानी चाहिये।

६ स्थाता उग्रः अव्रतान् निः प्र अधमः। (मं. ५) युद्धमें स्थिर रहनेवाला उग्र वीर अनियमसे चलनेवाले दुष्ट शत्रुओंको निःशेष करे और दूर भगा देवे। यह है युद्ध की पद्धति और युद्ध की नीति। शत्रुको परास्त करनेके कार्यसे पीछे नहीं

हटना चाहिये ।

७ अनवद्यस्य सेनां अयुयुत्सन्, नवग्वाः क्षितयः अयातयन्त (मं. ६)-निर्दोष उग्रवीर की सेनाके साथ युद्ध करनेकी इच्छा करनेवाले शत्रुओंपर, नूतन युद्धकी गतिमें प्रवीण हुए सैनिक ही हमला करें । यहां 'नव-ग्वाः' और 'क्षितिः' ये पद बडे महत्त्वके हैं । 'नव-ग्वाः' का अर्थ 'नव-गतयः' अर्थात् नवीन गतिसे शत्रुपर हमला करनेमें चतुर, युद्ध-पद्धतिमें जिन्होंने नयी प्रगति की है, 'क्षितयः' का अर्थ 'देशके निवासी, मानव, सैनिक' है । 'नव-ग्वः' के अनेक अर्थ हैं, नौ गौवोंका पालन करनेवाला, नौ मासोंमें यज्ञ समाप्त करनेवाला, तथा नवीन गतिसे युक्त ।

८ वृषायुधः, वध्रयः न (मं. ६)-अपने सैनिक प्रखर शस्त्र बर्तनेवाले शूरवीरोंके समान हों, और शत्रुके सैनिक उनके सामने शक्तिहीन नपूंसक जैसे हों ।

९ निरष्टाः चितयन्तः प्रवद्भिः आयन् (मं. ६)— शत्रुके सैनिक पराजित होते हुए अपना पराभव मानकर नीचे के मार्गसे दूर भाग जावें ।

१० रुदतः जक्षतः रजसः पारे अयोधयः, दस्युं आ अव अदहः (मंत्र. ७)-शत्रु रोते रहें या आनन्दमें रहें, उनको अपने स्थानसे युद्ध करके दूर भगा दो, शत्रुको जला दो।

११ हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः पृथिव्याः परिणहं चक्राणासः हिन्वानासः ते (नः) न तितिरुः (मं. ८)-सुवर्णके और रत्नोंके आभूषण धारण करते हुए हमारे शत्रु इसी पृथ्वीपर बडा ऊंचा सिर करके बडी आढ्यतासे चारों ओर भ्रमण कर रहे हैं, वे बढते ही जा रहे हैं, पर वे (हमारे वीरोंको) पार नहीं कर सकते। इसका तात्पर्य यही है कि अपनी तैयारी शत्रुसे बढकर करनी चाहिये, तब विजय होगा ।

१२ स्पशः परि अदधात् (मं. ८)-शत्रुके गुप्तचरोंको चारों ओरसे पकडना चाहिये । स्पशः-शत्रुके गुप्तचर। ये बडा घात करते हैं, सब गुप्त ज्ञान शत्रुको पहुंचाते हैं । इसलिये इनको चारों ओरसे घेर कर पकडकर रखना चाहिये । अपने देशमें शत्रुके गुप्तचर पूर्ण स्वतंत्रतासे न घूम सके इस विषयका संपूर्ण यत्न करना चाहिये।

१३ अमन्यमानान् दस्युं मन्यमानैः नि अधमः (मं. ९)-अपना कथन न माननेवाले शत्रुओंको अपना कथन माननेवाले मित्रोंसे दूर करना चाहिये । पहले किये संधिको न मान कर जो विनाकारण आक्रमण करते है वे शत्रु हैं, उनके साथ लडनेके लिये पूर्व की संधि माननेवाले मित्र सैनिकोंको नियुक्त करना चाहिये । युद्ध छिडनेके समय ऐसे शत्रु मित्रोंको व्यवस्थित रीतिसे निश्चित करना चाहिये ।

१४ मायाभिः न पर्यभूवन् (मं. १०)— कपट युक्तियोंसे भी जो शत्रु पराभव नहीं कर सकते । अपनी शक्ति इतनी बढानी चाहिये कि जो शत्रुके कपट प्रयोगोंसे भी कभी पराजित न हो सके ।

१५ आपः स्वधां अनु अक्षरन् (मं. ११)—जल-प्रवाह अन्नके बढानेके अनुकूल चलते रहें । जलोंके नहरोंसे अन्नकी उपज अधिक करनी चाहिये । यह एक अन्तर्गत सुस्थिति रखनेका मुख्य कार्य है ।

१६ सध्रीचीनेन मनसा ओजिष्ठेन हन्मना तं अहन् (मं. ११)— (अपने वीरोंको उचित है कि वे) धैर्ययुक्त मनसे, शान्तचित्तसे, परंतु अधिक प्रबल शस्त्रसे शत्रु पर हमला करें । युद्धके समय अपना मन मित्रभावयुक्त शान्त रहे, अशान्त न हो, परंतु शत्रु पर अधिकसे अधिक शस्त्र चलाया जावे । अपनी घबराहट न होवे, परंतु शत्रुकी घबराहट हो जाय ।

१७ इलीबिशस्य दृळ्हा नि अविध्यत् । शृङ्गिणं शुष्णं वि अभिनत् । यावत् तरः, यावत् ओजः पृतन्यु शत्रुं वज्रेण अवधीः (मं. १२)— अपनी मातृ-भूमिपर घर किये शत्रुके सुदृढ किलोंको तोड दो । तीक्ष्ण शस्त्रोंसे बलवान् बने शत्रुको छिन्नभिन्न करो । जहांतक अपना वेग बढ सकेगा और जहांतक अपनी शक्ति बढ सकेगी, वहांतक यत्न करके अपने शत्रुको अपनेही शस्त्रसे विनष्ट करो ।

१८ तिग्मः शत्रून् अभि अजिगात् । पुरः वि अभेत् । (मं. १३)— हमारे शस्त्र शत्रुका नाश करें, शत्रुके नगरोंको छिन्नभिन्न करो ।

१९ शासदानः स्वां मतिं अतिरत् । (मं. १३)- शत्रुका नाश करनेकी इच्छा करनेवाला वीर अपनी मतिको शत्रुसे अधिक सामर्थ्यवान् बनावे । शत्रुकी मतिको अपनी मति पा कर सके ।

२० शत्रूयतां वेदना अधरा अकः (मं. १५)-शत्रु का ज्ञान कम करो, अर्थात् अपना ज्ञान उनसे बढा दो अथवा शत्रुको हीन प्रकारके-वेदना-दुःख हों ऐसा करो । वेदना-ज्ञान, दुःख ।

इतने मंत्र-भागोंमें युद्धनीतिका बहुत वर्णन है। पाठक इस दृष्टिसे इन मंत्रोंका विचार करके युद्धनीतिका ज्ञान प्राप्त करें।

वृत्रका स्वरूप

इस सूक्तमें वृत्रका स्वरूप बतानेवाला यह वाक्य है—

१ नाव्यानां मध्ये आ अवर्धत (मं. ११)— नदियोंके बीचमें (वृत्र) बढ रहा था। अर्थात् यह वृत्र मेघ नहीं हो सकता, क्यों कि नदियोंमें मेघ नहीं होता, नदियोंमें बर्फ होता है। सर्दीके दिनोंमें कई नदियोंके जल बर्फ बनकर सख्त पत्थर जैसे होते हैं। रूसमें ऐसी नदियाँ बहुत हैं, जिनके जल-प्रवाह भूमि जैसे सख्त होते हैं। और उसपरसे मनुष्य तथा यान भी जा सकते हैं। यही नदियोंमें वृत्रका बढना है। इससे स्पष्ट होता है कि वृत्र मेघ नहीं है, परंतु बर्फ है।

यह सूक्त युद्धविषयक ज्ञान अति स्पष्ट रूपसे देता है, इस लिये क्षात्र विद्याका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये इसका विशेष मनन होना योग्य है। शेष बातें मंत्रोंके अर्थमेंही स्पष्ट हैं।

(४) आरोग्य और दीर्घायु

(ऋ. १।३४) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। आश्विनौ। जगती; ९,१२ । त्रिष्टुप्।

त्रिश्चिन् नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥ १
त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद् विदुः।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥ २
समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम्।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ॥ ३
त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम्।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥ ४
त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस् त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद् रथम् ॥ ५
त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥ ६
त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम्।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ॥ ७
त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस् त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम्।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ॥ ८
क्व१ त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व१ त्रयो वन्धुरो ये सनीळाः।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ॥ ९
आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥ १०
आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ११
आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनाऽर्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम्।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ १२

अन्वयः- हे नवेदसा अश्विना! त्रिः चित् अद्य नः भवतम्। वां यामः विभुः उत रातिः (विभुः)। युवोः यन्त्रं हि, वाससः हिम्या इव। मनीषिभिः अभ्यायंसेन्या भवतम् ॥ १ ॥

अर्थ- हे ज्ञानी अश्विदेवो! तीन वार आज हमारे (यहां) आओ। आपका मार्ग बडा है और (आपका) दान (भी बडा है)। तुम दोनोंका संबंध, दिन और रात्रिके समान है। बुद्धिमानोंके साथ नित्य संबंध रखनेवाले हो जाओ ॥ १ ॥

मधुवाहने रथे पवयः त्रयः। इत् विश्वे सोमस्य वेनां अनु विदुः। स्कम्भासः त्रयः स्कभितासः आरभे। हे अश्विना! नक्तं त्रिः यायः, दिवा त्रिः उ ॥ २ ॥

तुम्हारे मधुर अन्न लानेवाले रथमें चक्र तीन हैं। उन्हें सबने सोमका वेनाके (साथ विवाह संबंध होनेके समय) जाना था। उस (रथमें) तीन स्तम्भ आश्रयके लिये रखे हैं। हे अश्विदेवो! (इस रथसे तुम दोनों) रात्रीमें तीन वार और दिनमें तीन वार जाते हैं ॥ २ ॥

हे अश्विना! युवं समाने अहन् त्रिः अवद्यगोहना (भवतं)। अद्य यज्ञं मधुना त्रिः मिमिक्षतम्। दोषाः उषसः च वाजवतीः इषः त्रिः अस्मभ्यं पिन्वतम् ॥ ३ ॥

हे अश्विदेवो! तुम एकही दिनमें तीन वार पापसे बचानेवाले (हो)। आज हमारे यज्ञपर मधुर रसकी तीन वार वृष्टि करो। रात्रिमें और उषाके (पश्चात् आनेवाले दिनमें) बलवर्धक अन्नसे तीन वार हमारा पोषण करो ॥ ३ ॥

हे अश्विना! युवं त्रिः वर्तिः यातं। अनुव्रते जने त्रिः (गच्छतं)। सुप्राव्ये त्रिः। त्रेधा इव शिक्षतम्। नान्द्यं त्रिः वहतम्। अस्मे, अक्षरा इव, पृक्षः त्रिः पिन्वतम् ॥ ४ ॥

हे अश्विदेवो! तुम तीन वार निवासस्थानके पास जाओ। अनुकूल कार्य करनेवाले मनुष्यके पास तीनवार जाओ। सुरक्षाके लिये तीन वार जाओ। तीन वार शिक्षा दो। आनन्द देनेवाला फल (हमें) तीन वार लेते आओ। हमें, जलके समान अन्न भी तीन वार दो ॥ ४ ॥

हे अश्विना। युवं नः रयिं त्रिः वहतम्। देवताता त्रिः उत धियः त्रिः अवतम्। सौभगत्वं त्रिः, उत श्रवांसि नः त्रिः (वहत)। वां त्रिचक्रं रथं सूरे दुहिता आरुहत् ॥ ५ ॥

हे अश्विदेवो! तुम हमारे लिये धन तीन वार ले आओ। देवताओंके यज्ञमें तीन वार आओ और हमारी बुद्धियोंकी सुरक्षा तीन वार करो। सौभाग्य तीन वार दो और यश हमें तीन वार (दो)। तुम्हारे तीन चक्रवाले रथपर सूर्यकी पुत्री चढी है ॥ ५ ॥

हे अश्विना! नः दिव्यानि भेषजा त्रिः, पार्थिवानि त्रिः, अद्भ्य. उ त्रिः दत्तम्। शंयो. ओमानं ममकाय सूनवे (दत्तम्)। हे शुभस्पती! त्रिधातु शर्म वहतम् ॥ ६ ॥

हे अश्विदेवो! हमें दिव्य औषधि तीन वार दो, पार्थिव औषधि तीन वार दो और जलोंसे (अन्तरिक्षसे) तीन वार दो। शंयुकी (जैसी) सुरक्षा (की थी वैसी) मेरे पुत्रके लिये (सुरक्षा दो)। हे शुभके रक्षको! तीन धातुओं (की सुरक्षासे हमें) सुख दो ॥ ६ ॥

हे अश्विना! दिवे दिवे यजत्रा न. पृथिव्यां परि त्रिधातु त्रि. अशायतम्। हे रथ्या नासत्या! परावतः तिस्रः, स्वसराणि आत्मा इव, गच्छतम् ॥ ७ ॥

हे अश्विदेवो! प्रतिदिन यज्ञ करनेवाले हम जैसोंके पास पृथ्वीपर तीन धातुओंकी शक्ति देते हुए तीन वार आकर विश्राम करो। हे रथी वीरो! हे सत्य-पालको! दूर देशसे तीन वार, शरीरोंमें आत्मा घुसनेके समान, आओ ॥ ७ ॥

हे अश्विनाः सप्त मातृभिः सिन्धुभिः त्रिः, आहावा त्रय., त्रेधा हविः कृतम्। तिस्रः पृथिवीः उपरि प्रवा दिवा द्युभिः अक्तुभिः हितं नाकं रक्षेथे ॥ ८ ॥

हे अश्विदेवो! माताओंके समान सात नदियों (के जल) से तीन (पात्र भर दिये हैं, यहां) रस पात्र तीन हैं, तीन प्रकार का हवि किया है। तीन पृथ्वी (के भागों) पर दिनमें जाकर दिनों और रात्रियोंसे रखे सूर्यकी सुरक्षा तुमने की थी ॥ ८ ॥

हे नासत्या ! त्रिवृतः रथस्य त्री चक्रा क्व ? ये सनीळाः वन्धुरः त्रयः क्व ? वाजिनः रासभस्य योगः कदा ? येन यज्ञं उपयाथः ॥ ९ ॥

हे सत्यके रक्षको ! तुम्हारे त्रिकोणाकृति रथके तीन चक्र कहां हैं ? जो बैठनेकी अच्छी बंधी बैठकें तीन हैं, वे कहां हैं ? बलवान् गर्दभको जोडना कब होगा, जिससे तुम इस यज्ञमें आते हो ? ॥ ९ ॥

हे नासत्या ! आगच्छतं, हविः हूयते । (युवां) मधुपेभिः आसभिः मध्वः पिवतम् । सविता उषसः पूर्वं युवोः चित्रं घृतवन्तं रथं ऋताय इष्यति हि ॥ १० ॥

हे सत्यके पालको ! आओ, (यहां) हवन किया जाता है । (तुम दोनों) मधुर रसं पीनेवाले (अपने) मुखोंसे इस मधुर रसका पान करो । सविताने उषाके पूर्वही तुम्हारे सुन्दर घीसे भरपूर भरे रथको सत्यके मार्गसे प्रेरित किया है ॥ १० ॥

हे नासत्या अश्विना ! त्रिभिः एकादशैः देवेभिः मधुपेयं इह आ यातम् । आयुः प्र तारिष्टं, रपांसि नि मृक्षतं, द्वेषः सेधतं, सचाभुवा भवतम् ॥ ११ ॥

हे सत्यके रक्षक अश्विदेवो ! तीन वार ग्यारह (अर्थात्) तैंतीस देवोंके साथ मधुर रसका पान करनेके लिये यहां आओ । हमारी आयुको बढाओ, दोषोंको दूर करो, द्वेषियोंको रोक दो और (तुम) हमारे साथ रहो ॥ ११ ॥

हे अश्विना ! त्रिवृता रथेन नः अर्वाञ्चं सुवीरं रयिं आ वहतम् । शृण्वन्ता, अवसे वां जोहवीमि । वाजसातौ नः वृधे च भवतम् ॥ १२ ॥

हे अश्विदेवो ! त्रिकोण रथसे हमारे पास उत्तम वीरोंसे युक्त धन ले आओ । (तुम) सुनो, हमारी सुरक्षाके लिये हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं । बलकी वृद्धिके लिये किये हमारे (प्रयत्नमें) हमारी वृद्धि करनेके लिये (यत्नवान्) हो जाओ ॥ १२ ॥

औषधि-प्रयोग

अश्विदेवोंके औषधि प्रयोगोंके विषयमें सब जानते हैं । इस सूक्तके ग्यारहवें मंत्रमें जो बातें कहीं हैं उनका विचार कीजिये, जिससे सूक्तके मुख्य विषयका पता लग जायगा। ग्यारहवें मंत्र- के विचारणीय विभाग ये हैं–

१. **आयुः प्र तारिष्टं**–हमारी आयुको विशेष बढाओ,

२. **रपांसि नि मृक्षतं**-दोषों, पापों और घावोंको निःशेष शुद्ध करके दूर करो । '**रपस्**'=दोष, पाप, घाव । '**मृक्षतं**' =शुद्ध करो । शुद्धता करके दोषोंको, पापोंको और घावोंको दूर करो ।

३. **द्वेषः सेधतं**–द्वेष करनेवाले वैरियोंको दूर भगा दो, द्वेष करने योग्य रोगोंका प्रतिबंध करो, रोग आनेके पूर्वही उनका प्रतिबंध करो ।

४. **त्रिभिः एकादशैः देवेभिः आ यातं**–तैंतीस देवोंके साथ आ जाओ ।

यहां दीर्घ आयुको प्राप्त करना, उसके लिये शरीरको दोषरहित अर्थात् शुद्ध करना, मनको निष्पाप बनाना और व्रण आदि हुआ तो उसको शुद्धता करके ठीक करना चाहिये । इसीका नाम आरोग्य है । ' रपः ' के जो तीन अर्थ हैं, वे मन और शरीरके दोषोंको बता रहे हैं । पाप मनका दोष है, पापभावयुक्त मनसे शरीर दोषयुक्त बनता है और रोग होते हैं, जिससे आयुकी क्षीणता होती है । इसलिये यदि दीर्घ आयु चाहिये, तो मन शुद्ध रहना चाहिये अर्थात् मन निष्पाप बनाना चाहिये । शरीरके दोष दो हैं, एक आन्तरिक मल जो शरीरके अन्तर्भागमें संचित होकर अन्दर और बाहर रोग उत्पन्न करते हैं और दूसरे शरीरपर होनेवाले घाव आदि है । ये दोनों स्वच्छता तथा पवित्रता करनेसे दूर होते हैं । ' रपः ' पदके तीनों अर्थोंके साथ आरोग्यका इस तरह संबंध है और यह संबंध ध्यानमें धारण करनेसे ही सूक्तका जो ध्येय आरोग्य है, उसका ज्ञान हो सकता है ।

आयुको अति दीर्घ करना चाहिये । अल्पायुमें कोई न मरे । मूल आयु १०० वर्षोंकी है, पर यह पुरुषार्थकी आयु है । '**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः ।**' (वा. य. ४०।२, ईश उ. २)= कर्मोंको करते हुए सौ वर्ष जीवित रहनेकी इच्छा मनुष्य करे । अर्थात् इससे पूर्व कर्म करनेकी योग्यता मनुष्यको प्राप्त करना चाहिये । आठ वर्षका बाल्य और १२ वर्षोंका ब्रह्मचर्य मिलकर बीस वर्षोंमें उक्त योग्यता मनुष्य प्राप्त कर सकता है । इसके बाद ही वह सौ वर्ष

शुभ कर्म करते हुए जीवित रहनेकी इच्छा कर सकता है। १००+२०=१२० एक सौ बीस वर्षोंकी आयु इस तरह सर्व-साधारण नागरिक की है। आजकलकी जन्मपत्रिकाएँ १२० वर्षोंकी आयु मानकर ही की जाती हैं। ' **आयुः प्र तारिषं** ' में आयु की प्रकर्षसे वृद्धि करनेकी जो बात मंत्रमें कही है वह सिद्ध करती है कि पुरुषार्थ प्रयत्नसे मानवकी आयु १२०वर्षों से भी अधिक बढाई जा सकती है। इसी कार्यके लिये इस मंत्रमें शारीरिक और मानसिक दोषोंको दूर करनेका उपाय लिखा है।

तैंतीस देवोंके साथ अश्विदेवोंका आना आरोग्यके लिये अत्यंत उपयोगी है। तैंतीस देवोंकी सहायतासे ही औषधि-प्रयोग किये जाते हैं। मृत्तिकाचिकित्सा, जलचिकित्सा, अग्नि-सूर्य-विद्युच्चिकित्सा, औषधिचिकित्सा, वायुचिकित्सा, प्राणायामचिकित्सा इनमें तैंतीस देवोंका ही उपयोग किया जाता है। औषधियोंको तैयार करनेमें कई देवताओंका उपयोग किया जाता है। इस तरह विचार करनेसे सहज ही से पता लग सकता है कि इन तैंतीस देवताओंकी सहायतासे ही मानवको दीर्घ जीवन प्राप्त करनेकी संभावना है।

यह सब विचार करने योग्य विषय है और इसका परिणाम सुखपूर्ण दीर्घायु ही है। ' द्वेषोंको रोकने ' का भाव यह है कि प्रथम अपने मनके विद्वेषके भाव दूर करना, समाजके द्वेषणीय शत्रुओंको दूर करना, तथा द्वेष करने योग्य जो अनिष्ट परिस्थिति है उसको पूर्णतया दूर करना चाहिये। दीर्घ आयु होनेके लिये समाज भी उत्तम सुसंस्कृत और निर्दोष होना आवश्यक है। यह सब पाठक मनन करके जान सकते हैं।

छठे मंत्रमें औषधोंका उल्लेख है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, जल और आकाशमें औषधियां रहती हैं, (**पार्थिवानि, अद्भ्यः, दिव्यानि भेषजा दत्त**। (मं.६) पृथ्वीपर उत्पन्न होनेवाली, जलमें उत्पन्न होनेवाली और आकाशमें उत्पन्न होनेवाली औषधियाँ अनेक हैं। पृथ्वीपर वृक्ष वनस्पतियां तथा खनिज पदार्थ औषधोंमें बर्ते जाते हैं। जलमें, पर्वतपर तथा आकाशमें वायु सूर्य आदि पदार्थ हैं। इनमें दैवी सामर्थ्य है जिससे रोग दूर होते हैं।

५. ' **शंयोः ओमानं** ' इसी छठे मंत्रमें कहा है। '**ओमानं**' =रक्षण, संरक्षण; '**शं**' = कल्याण, सुख, शान्ति और '**यु**'= वियुक्त करना और संयुक्त करना, अर्थात् विपरीत भावोंसे वियुक्त और अनुकूल भावोंसे संयुक्त करना। रक्षणका यही अर्थ है। दीर्घायु प्राप्त करनेके लिये जिनसे मेल होना उचित है उनसे मेल करना और जिनसे वियुक्त होना योग्य है उनसे दूर होना और शान्तिसुख प्राप्त करना। यह एक बडा भारी पथ्य है।

६ ' **त्रिधातु शर्म वहतं** ' (मं. ६)= शरीरमें कफ, पित्त, वात ये तीन धातु हैं, स्वास्थ्य और आरोग्यके लिये इनकी समताकी स्थापना करना आवश्यक है। इसीका नाम ' शर्म ' या सुख है। यह प्राप्त करना चाहिये। वैद्योंका यही कर्तव्य है कि वे शरीरके तीनों धातुओंका वैषम्य दूर करके साम्य स्थापन करें।

७ **अवद्य-गोहना** (मं. ३)= निंदा करनेयोग्य जो रोग आदि परिस्थिति है, उसका नाश करनेवाले ये वैद्य हैं। रोगादिकी परिस्थिति अत्यंत निंदनीय है, इसलिये उसको दूर करना चाहिये।

८ '**वाजवतीः इषः अस्मभ्यं पिन्वतं** (मं. ३)= बलवर्धक अन्न देकर हम सबको हृष्ट-पुष्ट करो। कई अन्न बलवर्धक होते हैं और कई बलनाशक होते हैं। अतः बलवर्धक अन्नोंकाही सेवन करना चाहिये और क्षीणता करनेवाले पदार्थोंसे दूर रहना चाहिये।

९ '**पृक्षः त्रिः पिन्वतं** (मं. ४) = अन्न तीन बार दो। रोगीको थोडा थोडा अन्न तीन बार देकर पुष्ट करना चाहिये।

१० **रयिं, धियः, सौभाग्यं, श्रवांसि वहतं** (मं.५) = धन, बुद्धियां, सौभाग्य और यश हमें दे दो। ये ही तो मनुष्यको चाहिये। इन्हींसे मानवी जीवनकी सफलता होती है।

११ **मध्वः पिबतं** (मं.१०) = मधुर रसका पान करो। फलोंके तथा सोमादि वनस्पतियोंके मधुर रसका पान करो। यह रस रोगनिवारक, उत्साहवर्धक और बलवर्धक है।

१२ **सुवीरं रयिं आ वहतं** (मं. १२)= उत्तम वीर जिसके साथ रहते हैं, ऐसा धन हमें ले आओ। अर्थात् धन भी चाहिये और उसकी सुरक्षा करनेके लिये वीरता भी चाहिये।

इस सूक्तके ये निर्देश मनन करनेयोग्य हैं। शेष भाग काव्यमय है, जो मननद्वारा पाठक अच्छी तरह जान सकते हैं।

(५) सविता देव

(ऋ. १।३५) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । १ (पादानां क्रमेण) अग्निः, मित्रावरुणौ, रात्रिः, सविता च।
२-११ सविता । त्रिष्टुप् १, ९ जगती ।

ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे ।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये ॥ १
आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽ देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ २
याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।
आ देवो याति सविता परावतोऽप विश्वा दुरिता बाधमानः ॥ ३
अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद् रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः ॥ ४
वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन् रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।
शश्वद् विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ ५
तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट् ।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥ ६
वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद् गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।
क्वेदानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ॥ ७
अष्टौ व्यख्यत् ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद् दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥ ८
हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ९
हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन् रक्षसो यातुधानानस्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १०
ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ ११

अन्वयः— स्वस्तये प्रथमं अग्निं ह्वयामि । इह अवसे मित्रावरुणौ ह्वयामि । जगतः निवेशनीं रात्रीं ह्वयामि । ऊतये सवितारं देवं ह्वयामि ॥ १ ॥

कृष्णेन रजसा आ वर्तमानः, अमृतं मर्त्यं च निवेशयन्, सविता देवः भुवनानि पश्यन्, हिरण्ययेन रथेन आ याति ॥ २ ॥

*

अर्थ— कल्याणके लिये प्रथम अग्निकी मैं प्रार्थना करता हूं। यहां सुरक्षितताके लिये मित्र और वरुणको मैं बुलाता हूं। जगत् को विश्राम देनेवाली रात्रिकी मैं प्रार्थना करता हूं और अपनी सुरक्षाके लिये सविता देवका आवाहन मैं करता हूं ॥ १ ॥

अन्धकारसे युक्त अन्तरिक्षलोकमेंसे परिभ्रमण करनेवाले, अमर्त्य और मर्त्यका निवेश करनेवाले, सविता देव सब भुवनों को देखते हुए, सुवर्णके रथसे आते हैं ॥ २ ॥

देवः सविता प्रवता याति, उद्वता याति, यजतः शुभ्राभ्यां हरिभ्यां याति। सविता देवः विश्वा दुरिता अपबाधमानः परावतः आ याति ॥ ३ ॥

सविता देव (प्रथम) ऊंचाईके मार्गसे (ऊपर चढकर) जाते हैं, (और पश्चात्) अधोगामी मार्गसे (नीचे उतरते हुए) चलते हैं। पूजाके योग्य (ये सूर्यदेव) सफेद घोडोंसे गमन करते हैं। ये सविता देव सब पापोंको रोकनेके लिये दूर देशसे आते हैं॥ ३ ॥

अभिवृतं, कृशनैः विश्वरूपं, हिरण्यशम्यं बृहन्तं रथं, यजतः चित्रभानुः, कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः सविता आ अस्थात् ॥ ४ ॥

सतत गतिशील, सुवर्णादिके कारण सुंदर नानारूपवाले, सुवर्णकी रस्सीयोंसे (किरणोंसे) युक्त बडे रथपर, पूजनीय चित्रविचित्र किरणोंवाले और अन्धकारका नाश करनेवाले प्रकाशको धारण अपने बलसे करनेवाले सविता देव चढ बैठे हैं॥ ४ ॥

श्यावाः शितिपादः, हिरण्यप्रउगं रथं वहन्तः, जनान् वि अख्यत्। शश्वत् विश्वा भुवनानि विशः दैव्यस्य सवितुः उपस्थे तस्थुः ॥ ५ ॥

सूर्यके घोडे सफेद पैरोंवाले (हैं, वे) सुवर्णके युगवाले रथको ढोते (हैं, जो) मानवोंके लिये प्रकाश देते हैं। सर्वदा सभी भुवन और सब प्रजाजन दिव्य सविता देवके समीप उपस्थित होते हैं ॥ ५ ॥

द्यावः तिस्रः, द्वा सवितुः उपस्था, एका यमस्य भुवने विराषाट्। रथ्यं आणिं न, अमृता अधि तस्थुः। यः तत् चिकेतत् उ, (सः) इह ब्रवीतु ॥ ६ ॥

तीन दिव्य लोक हैं, (उनमेंसे) दो (लोक) सविता देवके पास हैं और तीसरा लोक यमके भुवनमें वीरोंके लिये रहनेका स्थान देता है। रथके अक्षमें रहनेवाली खीलके समान, (सब) अमर (देव सूर्यपर) अधिष्ठित हैं। जो यह जानता है, (वह) यहां आकर कहे ॥ ६ ॥

गभीरवेपाः, असुरः, सुनीथः, सुपर्णः, अन्तरिक्षाणि वि अख्यत्। सुनीथः सूर्यः इदानीं क ? कः चिकेत ? अस्य कतमां द्यां आ ततान ? ॥ ७ ॥

गम्भीर गतिसे युक्त, प्राणशक्तिका दाता, उत्तम मार्गदर्शक, उत्तम प्रकाश देनेवाला (सूर्यदेव) अन्तरिक्षादि तीनों लोकोंको प्रकाशित करता है। इस समय (रात्रिके समय) कहां है ? कौन जानता है ? उस (सूर्य) का किरण किस द्युलोकमें फैला होगा ? ॥ ७ ॥

पृथिव्याः अष्टौ ककुभः, योजना धन्व त्रिः, सप्त सिन्धून् (सविता) वि अख्यत्। हिरण्याक्षः सविता देवः, दाशुषे वार्याणि रत्ना दधत्, आ गात् ॥ ८ ॥

पृथ्वीकी आठों दिशाएं, (परस्पर) संयुक्त हुए तीनों लोक और सात सिन्धु (नदियां, सविता देवने) प्रकाशित की हैं। सुवर्णके समान तेजस्वी किरणवाला यह सविता देव, दाताके लिये स्वीकार करनेयोग्य रत्नोंको देता हुआ, समीप आया है ॥ ८ ॥

हिरण्यपाणिः विचर्षणिः सविता उभे द्यावापृथिवी अन्तः ईयते। अमीवां अप बाधते, सूर्यं वेति, कृष्णेन रजसा द्यां अभि ऋणोति ॥ ९ ॥

सुवर्णके समान किरणवाला सर्वत्र संचार करनेवाला सविता देव दोनों द्यावापृथिवीके बीचमें संचार करता है, रोगोंको दूर करता है, (इसीको) सूर्य कहते हैं, प्रकाश हीन अन्तरिक्ष लोकसे द्युलोक तक प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

हिरण्यहस्तः असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववान् अर्वाङ् यातु। देवः प्रतिदोषं गृणानः, रक्षसः यातुधानान् अपसेधन्, अस्थात् ॥ १० ॥

सुवर्ण जैसे किरणवाला, प्राणशक्तिका दाता, उत्तम नेता, सुख-दाता, निज शक्तिसे संपन्न (सविता देव) यहां आवे। यह (सविता) देव प्रत्येक रात्रिमें स्तुति किया जानेपर राक्षसों और यातना देनेवालोंको दूर करता हुआ, यहां आवे ॥ १० ॥

हे सवितः! ये ते पन्थाः पूर्व्यासः अरेणवः अन्तरिक्षे सुकृताः, सुगेभिः तेभिः पथिभिः अद्य नः रक्ष च, हे देव! नः अधि ब्रूहि च ॥ ११ ॥

हे सविता देव! जो तुम्हारे मार्ग पहिलेसे निश्चित हुए, धूलिरहित और अन्तरिक्षमें उत्तम निर्माण किये हैं, उत्तम जानेयोग्य उन मार्गोंसे आज हमारी सुरक्षा करो और हे देव! हमें आशीर्वाद दो ॥ ११ ॥

विना धूलिके मार्ग

इस सूक्तमें विना धूलिके मार्गोंका उल्लेख है। ये (पन्थाः पूर्व्यासः अरेणवः) मार्ग पहिलेसे बने हैं और धूलिरहित हैं। ये (सु-कृताः) उत्तम रीतिसे बनाये हैं, कुशलतासे बनाये हैं। (सुगेभिः पथिभिः) ये मार्ग चलनेके लिये सुगम हैं, चलनेवालोंको किसी तरह कष्ट नहीं होते। (प्रवता) चढाईका मार्ग और (उद्वता) उतराईका मार्ग ऐसे दो भेद हैं। इस वर्णनसे पता चलता है कि इस सूक्तमें उत्तमसे उत्तम मार्गकी कल्पना है।

रथ उत्तम हों, उनपर सुवर्णकी सजावट हो, उत्तम घोडे जोते जायँ और ऐसे रथ धूलिरहित मार्गसे चलते रहें, यह दृश्य वैदिक समयका यहां दीख रहा है। ऐसे रथोंमें वीर आरोहण करें और राक्षसों और यातना देनेवाले दुष्टोंका नाश करके जनताका सुख बढावें। (मं. १०)

सूर्यका प्रभाव

सूर्यदेवका प्रभाव इस सूक्तमें वर्णन किया है, वह देखने योग्य है—

१ स्वस्ति, ऊति। (मं. १)- कल्याण और सुरक्षा इनका साधन सूर्यदेव करता है, (सु-अस्ति) उत्तम अस्तित्व होना सर्वथा सूर्यकिरणोंपर निर्भर है। यहांका प्राणिमात्रका अस्तित्व सूर्यकिरणोंके कारणही होता है। सूर्यकिरण सब रोगबीजोंको हटाते और प्राणियोंको सुख होनेयोग्य वायु निर्माण करते हैं।

२ अमृतं मर्त्यं च निवेशयन् (मं. २)- अमर और मर्त्य ऐसे दो पदार्थ इस विश्वमें हैं, इन दोनोंका निवास सर्वथा सूर्यदेवके किरणोंपर निर्भर है। बरसातके दिनोंमें जब एक दो मास तक सूर्यकिरण नहीं मिलते, उन दिनोंमें मनुष्योंका स्वास्थ्य बिगडता है, रोग बढते हैं, मृत्युसंख्या विशेष रीतिसे बढ जाती है। इसका विचार करनेसे सूर्यकिरणोंके साथ आरोग्य का कितना घनिष्ट संबंध है, यह बात स्पष्ट हो जाती है।

३ सविता देवः विश्वा दुरिता अपबाधमानः। (मं. ३)- सूर्यदेव सब दुरितोंका नाश तथा प्रतिबंध करता है। (दुः-इतं) जो रोगबीज बाहरसे शरीरके अन्दर या मनके अन्दर घुसता है उसको दुरित कहते हैं। सूर्यकिरणोंसे इन सब का नाश होता है।

४ तविषीं दधानः (मं. ४)- सूर्यही बल धारण करता है। सब बलोंका आधार सूर्यही है।

५ अमीवां अपबाधते। (मं. ९)— रोगबीजोंको दूर करता है। सूर्यसे ही सब रोगबीज दूर होते हैं। (अम-वान्) अपचित अन्नको 'आम' कहते हैं, इस आमसे जो होता है, वह 'आमवान्' अथवा 'अमीव' कहलाता है। इन रोगबीजोंका नाश सूर्य करता है। सूर्यसे पचनशक्ति बढती है और रोगबीज सूर्यकिरणोंसे दूर होते हैं।

६ रक्ष (मं. ११)- सूर्यदेव उक्त प्रकार रोगबीज दूर करने, बल बढाने, दुरित दूर करने और सबका सुखसे निवास करने द्वारा सबकी सुरक्षा करता है।

इस रीतिसे प्राणिमात्रपर तथा संपूर्ण विश्वपर अर्थात् मर्त्य और अमर वस्तुजातपर सूर्यका प्रभाव है। सूर्यके कारणही सब का निवास सुखसे होता है।

तीन द्युलोक

आकाशका नाम द्युलोक है। क्योंकि आकाश सदासर्वदा प्रकाशयुक्त रहता है। इस द्युलोकके तीन विभाग हैं। दो विभाग (द्वा सवितुः उपस्थे) सूर्यके पास रहते हैं और (एका यमस्य भुवने विराषाट्। मं. ६) एक विभाग यमके भुवनमें (वीर-साह) वीरोंके रहनेका स्थान है। अर्थात् वीर मरनेके बाद वहां जा कर रहते हैं। वह यमलोक नामसे प्रसिद्ध है। परंतु उस लोकमें यह एक ऐसा स्थान है कि जिसमें केवल वीरोंके जीवही रहते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यमके भुवनमें जैसा वीरोंके लिये उत्तम स्थान होगा, वैसा दूसरे जीवोंके लिये भी स्थान होता हो।

उपरोक्त मंत्रमें आकाशके तीन विभाग माने हों ऐसे दो ही विभागोंमें सूर्य रहता है, बीचके मध्य विभागमें सूर्य अन्तरही

नहीं। इस तरह आकाशके तीन विभाग माननेसे तीन द्युलोकोंकी व्यवस्था इस तरह हो सकती है-

अथर्ववेदमें निम्नलिखित मंत्र इस विषयका विचार करनेके समय मनन करनेयोग्य है—
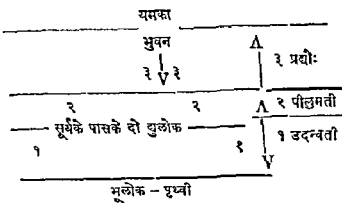
उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥४८॥
ये अग्नयः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यन-पत्यवन्तः।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः ॥४७॥ (अथर्व. १८।२)

" जलवाला द्युलोक पहिला है, प्रफुल्लित द्युलोक दूसरा है, तीसरा श्रेष्ठ द्युलोक है जहां पितर रहते हैं। जो अग्रगामी वीर द्वेष न करते हुए प्रशंसित कार्योंको करते हैं, वे अपत्यहीन मरनेपर भी तेजस्वी होकर, द्युलोकके पीठपर चढकर, वहां अपने स्थानको प्राप्त करते हैं।'' यहां तीनों द्युलोकोंके नाम दिये हैं। (नाकस्य पृष्ठे) आकाशके पीठपर वा पृष्ठभागपर चढते हैं, यह पृष्ठभाग मध्य आकाशही है। जलवाला द्युलोक पहिला है, इसकी व्याप्ति मेघोंतक माननी उचित है। दूसरा प्रफुल्लित द्युलोक है। जिसमें विविध रंगोंकी चमकाहट होती है, जहां सूर्य उत्तरीय पक्षमें पहुंचा दीखता है। यह स्थान १० बजे सूर्य जहां आता है, वहांतक समझिये। यहांतकही यह दूसरा द्युलोक है। (आजकल हमारे देशमें) ८॥ बजेतकका सूर्य आनेतकका आकाश पहिली 'उदन्वती' द्यु है, १० बजेतकका सूर्य चढनेतकका आकाश दूसरी 'पीलुमती' द्यु है और शेष रहा आकाश 'प्रद्यौ' है, जो मध्य आकाश अथवा (**नाकस्य पृष्ठं**) आकाशका पृष्ठभाग कहा गया है। यहीं पितर रहते हैं। वीरोंके मरणोत्तर निवासका यही स्थान है। ऋग्वेदके मंत्रका विचार अथर्वमंत्रके साथ करनेसे अर्थका स्पष्टीकरण ऐसा हो जाता है।

७ असु-रः अन्तरिक्षाणि वि अख्यत्। (मं.७)—जीवनकी शक्ति देनेवाला सूर्य तीन अन्तरिक्षोंको प्रकाशित करता है। ये तीन अन्तरिक्ष 'भूः, भुवः, स्वः' अथवा 'पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु' किंवा पूर्वोक्त तीन द्युलोक हो सकते हैं। हमारे मतसे पृथ्वी–अन्तरिक्ष–द्यु ये ही यहां लेनेयोग्य हैं।

८ पृथिव्याः अष्टौ ककुभः(मं.८)-पृथ्वीकी आठों दिशाओंको सूर्य प्रकाशित करता है। पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर ये चार मुख्य दिशाएं और इनके बीचकी चार उपदिशाएं मिलकर आठ दिशाएं होती हैं। सूर्यका उदय होनेपर ये आठों दिशाएं प्रकाशित होती हैं।

सूर्यकी गति

सविता देवः भुवनानि पश्यन् आ याति। (मं.२)

सूर्यदेव भुवनोंको देखता हुआ आता है। यहां सूर्यकी गतिका जो उल्लेख है वह भासमान गति है। वास्तव गतिका नहीं। हमारा यह सूर्य अपनी ग्रहमालिकाके साथ एक महा सूर्यके चारों ओर घूम रहा है, वह गति इससे भिन्न है। यहां जो गति वर्णन की गयी है, वह उदयसे भासमान होनेवाली ही गति है। यह गतिका केवल भासही है।

'रथ' पदकी सिद्धि निरुक्तकार **'स्थिरतेर्वा विपरीतार्थस्य'** अर्थात् स्थिर होनेपर भी जो विपरीत (वा गतिमान्) दीखता है, वह रथ है। अर्थात् सूर्य स्थिर है, तथापि वह गतिमान् दीखता है। यह सूर्यवाचक रथका अर्थ है।

शेष बातें सूक्तके अर्थसे पता लग सकती हैं। सूर्यके वर्णनके लिये जो पद और वाक्य इस सूक्तमें प्रयुक्त हुए हैं, वे शूर वीरका वर्णन करनेवाले हैं। उनका विचार करनेसे वीर कैसा होना चाहिये, इसका ज्ञान हो सकता है। पाठक इसका अवश्य मनन करें।

(नवम मण्डल)

(६) सोमरस

(ऋ. ९।४) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः । अथा नो वस्यसस्कृधि १
सना ज्योतिः सना स्व१र्विश्वा च सोम सौभगा । अथा नो वस्यसस्कृधि २
सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ३
पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ४
त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ५
तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्यम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ६
अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ७
अभ्य१र्षानपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ८
त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ९
रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर । अथा नो वस्यसस्कृधि १०

अन्वयः- हे महिश्रवः पवमान ! सन च । जेषि च । अथ नः वस्यसः कृधि ॥ १ ॥

अर्थ— हे महान् यशस्वी सोम ! प्रेम करो, विजय करो और हमें यशसे युक्त करो ॥ १ ॥

हे सोम ! ज्योतिः सन । स्वः सन । विश्वा सौभगा च (सन)। ० ॥ २ ॥

हे सोम ! हमें ज्योति दो । प्रकाशका प्रदान करो । और सब प्रकारके सौभाग्य हमें दो। ० ॥ २ ॥

हे सोम ! दक्षं सन । उत क्रतुं सन । मृधः अप जहि० ॥ ३ ॥

हे सोम ! हमें बल दो और कर्म करनेकी शक्ति दो । हिंसकोंका नाश करो । ० ॥ ३ ॥

हे पवीतारः ! इन्द्राय पातवे सोमं पुनीतन । ० ॥ ४ ॥

हे सोमरस निकालनेवालो ! इन्द्रके पीनेके लिये सोमका रस निकालो । ० ॥ ४ ॥

त्वं तव क्रत्वा तव ऊतिभिः नः सूर्ये आ भज । ० ॥ ५ ॥

तुम अपने कर्मों और सुरक्षाओंसे हमें सूर्यकी प्राप्ति कराओ । ० ॥ ५ ॥

तव क्रत्वा, तव ऊतिभिः सूर्यं ज्योक् पश्येम । ० ॥ ६ ॥

तुम्हारे कर्मों और सुरक्षाओंसे चिरकालतक हम सूर्यका दर्शन करेंगे । ० ॥ ६ ॥

स्वायुध सोम ! द्विबर्हसं रयिं अभि अर्ष । ० ॥ ७ ॥

हे उत्तम शस्त्रवाले सोम ! दोनों शक्तियोंसे युक्त धनकी हमपर वृष्टि करो । ० ॥ ७ ॥

समत्सु अपच्युतः सासहिः रयिं अभि अर्ष । ० ॥ ८ ॥

युद्धोंमें परास्त न होते हुए, शत्रुको परास्त करके हमें धन प्रदान करो । ० ॥ ८ ॥

हे पवमान ! त्वां यज्ञैः विधर्मणि अवीवृधन् । ० ॥ ९ ॥

हे सोम ! तुम्हें अनेक यज्ञोंके द्वारा अनेक कर्मोंमें (याजक लोग) संवर्धित करते हैं । ० ॥ ९ ॥

हे इन्दो ! चित्रं अश्विनं विश्वायुं रयिं नः आ भर । ० ॥ १० ॥

हे सोम ! नाना प्रकारके अश्वोंसे युक्त, संपूर्ण आयुतक रहनेवाला धन हमें दो और हमें यशसे युक्त करो ॥ १० ॥

बोध

यह सोमका सूक्त है। इसमें निम्नलिखित बोध मिलता है- (मं. १) **सन**- प्रेम करो, पूजा करो, भक्ति करो, प्राप्त करो, संमान करो, दान दो। **जेषि**-विजय प्राप्त करो। **नः वस्यसः कृधि**- हमें धनयुक्त, यशस्वी, कीर्तिमान् और अन्नसे युक्त करो। (मं. २) **ज्योतिः सन**- प्रकाश बताओ, मार्ग बताओ, सन्मार्ग दर्शाओ। **स्वः सन**- आत्मिक प्रकाश दो, आत्मतेज बढाओ। **विश्वा सौभगा सन**- सब सौभाग्य, सब मंगल प्रदान करो। (मं. ३) **दक्षं सन**- हमें बल दो, शक्ति दो। **क्रतुं सन**- प्रशस्त कर्म करनेकी शक्ति दो। **मृधः अप जहि**- घातक शत्रुओंका नाश करो, हमारे शत्रुओंको दूर करो। (मं. ५) **क्रत्वा ऊतिभिः नः आ भज**- कर्मप्रवीणता और सुरक्षासे हमारी उन्नति करो। (मं. ७) **द्विबर्हसं रयिं अभि अर्ष**- दो प्रकारकी शक्तियोंसे अर्थात् आत्मिक और भौतिक शक्तियोंसे युक्त धन हमें मिले। यही धन सच्चा सुख देता है। (मं. ८) **समत्सु अपच्युतः सासहिः**- समरोंमें स्थिर रहकर लडनेकी शक्ति तथा शत्रुको परास्त करने की शक्ति हमें चाहिये। (मं. १०) **विश्वायुं रयिं आ भर**- संपूर्ण आयु देनेवाला धन हमें चाहिये।

इस सूक्तमें ये वाक्य बडे बोधप्रद हैं। पाठक मनन करके इन वाक्योंसे उचित बोध प्राप्त करें।

(७) सोमरस

(ऋ. ९।६९) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। पवमानः सोमः। जगती, ९-१० त्रिष्टुप्।

इषुर्न धन्वन्प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते १
उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि।
पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्षति २
अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते।
हरिरक्रान्यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ३
उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम्।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ४
अमृक्तेन रुशता वाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत।
दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम् ५
सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ६
सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽस्मे वाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ७
आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवदश्वावद्गोमद्यवमत्सुवीर्यम्।
यूयं हि सोम पितरो मम स्थन दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः ८
एते सोमाः पवमानास इन्द्रं रथा इव प्र ययुः सातिमच्छ।
सुताः पवित्रमति यन्त्यव्यं हित्वी वव्रिं हरितो वृष्टिमच्छ ९
इन्दविन्द्राय बृहते पवस्व सुमृळीको अनवद्यो रिशादाः।
भरा चन्द्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः १०

अन्वयः— इषुः धन्वन् न, (अस्मिन्) मतिः प्रति धीयते, मातुः ऊधनि वत्सः न, (इन्द्रे) उप सर्जि । उरुधारा इव अग्रे आयती दुहे । अस्य व्रतेषु अपि सोमः इष्यते ॥ १ ॥

अर्थ— बाण धनुष्यपर जैसा (रखते हैं, उस तरह इस इन्द्रमें हमारी) बुद्धि रखी जाती है। जिस तरह माताके स्तनोंकी ओर बछडा (जाता है वैसे ही हम इन्द्रकी ओर) जाते हैं। बहुत दूध देनेवाली (गौ) जैसी (बछडेके) अग्रभागमें जाती और उसको दूध देती है (वैसाही इन्द्र हमें इष्ट सुख देता है ।) इस (इन्द्र) के सभी कर्मोंमें सोम दिया ही जाता है ॥१॥

मतिः उपो पृच्यते । मधु सिच्यते । मन्द्राजनी आसनि अन्तः चोदते। पवमानः मधुमान् द्रप्सः वारं अर्षति, प्रघ्नतां इव संततिः ॥ २ ॥

(हमारी) बुद्धि (इन्द्रकी) ओर (स्तुति करनेके लिये) जा रही है । सोम सींचा जाता है । मधुर रसका आस्वाद लेनेवाली (जिह्वा) मुखके बीचमें (रसपानके लिये) प्रेरित हो रही है । छाना जानेवाला मीठा सोमरस बालोंकी छाननीपर जाता है, जैसे आघात करनेवाले योद्धाओंके शस्त्र (परस्पर संघर्षित होते हैं)॥२॥

वधूयुः अव्ये त्वचि परि पवते । अदितेः नप्तीः ऋतं यते अमीते । हरिः, यजतः, संयतः, मदः अक्रान् । नृम्णा शिशानः, महिषः न, शोभते ॥ ३ ॥

स्त्रीकी प्राप्तिके लिये उत्सुक हुआ (वर जैसा वधूके पास जाता है, वैसाही सोम) मेढीकी (बालोंसे बनी) छाननीपरसे छाना जाता है। पृथ्वीकी नातियाँ (औषधियाँ) यज्ञके पास जानेवालेके लिये कूटकर ढीली की जा रही हैं। हरिद्वर्ण, पूज्य, इकट्ठा किया, आनंदवर्धक सोम आक्रमण कर रहा है । जो पौरुषसे तेजस्वी और भैंसेके समान बलिष्ठ (वीरके समान) शोभता है ॥३॥

उक्षा मिमाति, धेनवः प्रति यन्ति। देवस्य निष्कृतं देवीः उप यन्ति । (सोमः) अर्जुनं अव्ययं वारं अति अक्रमीत् । सोमः, निक्तं अत्कं न, परि अव्यत ॥ ४ ॥

बलिष्ठ (सोम) शब्द कर रहा है, (उसके साथ) गौवें जाती हैं। देवके सजाये स्थानपर देवियाँ जाती हैं । (सोमरस) श्वेत रंगवाले मेढीके बालोंसे बनी छाननीको लांघ रहा है । सोम, स्वच्छ कवचके समान, (दुग्धसे) ढंका जाता है ॥४॥

अमर्त्यः हरिः निर्णिजानः अमृक्तेन रुशता वाससा परि व्यत । दिवः पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृत । चम्वोः उपस्तरणं नभस्मयम् ॥ ५ ॥

अमर और हरे रंगका (सोमरस) शोधित होता हुआ, अहिंसित तेजस्वी (दुग्धरूप) वस्त्रसे आच्छादित होता है। (उस सोमने) द्युलोकका पृष्ठभाग अपने तुरेसे स्वच्छ किया था। और पात्रोंपर रखनेका आच्छादन तेजस्वी बना दिया था ॥५॥

सूर्यस्य इव रश्मयः, द्रावयित्नवः, मत्सरासः प्रसुपः, आशवः सर्गासः ततं तन्तुं साकं परि ईरते। इन्द्रात् ऋते किं चन धाम न पवते ॥ ६ ॥

सूर्यके किरणोंके समान, गमनशील, आनन्दवर्धक और (शत्रुको) निद्रा लानेवाले, प्रवाही और छाने गये (सोमरस) फैले हुए (यज्ञके) चारों ओर फैलते हैं । क्योंकि इन्द्रको छोडकर कोई भी दूसरे स्थानको वे नहीं पहुंचते ॥६॥

वृषच्युताः आशवः मदासः, सिन्धोः इव प्रवणे, निम्ने गातुं आशत। हे सोम ! नः निवेशे द्विपदे चतुष्पदे शं, अस्मे वाजाः कृष्टयः तिष्ठन्तु ॥ ७ ॥

बलवर्धक सोमसे निकले प्रवाही रस, नदियाँ निम्न भागमें (जाकर समुद्रको) जैसी (मिलती हैं), वैसे (इन्द्रके ही) मार्गको पकडते हैं । हे सोम ! हमारे घरमें द्विपाद और चतुष्पादके लिये सुख मिले । हमारे साथ अनेक बल और मानवसंघ रहें ॥७॥

हे सोम ! (त्वं) वसुमत् हिरण्यवत् अश्ववत् गोमत् यवमत् सुवीर्यं नः आ पवस्व । यूयं हि दिवः मूर्धानः प्रस्थिताः, वयस्कृतः मम पितरः स्थन ॥ ८ ॥

हे सोम ! (तुम) धन, सुवर्ण, घोडे, गौवें और जौसे युक्त उत्तम वीर्य हमें दो । तुम निःसंदेह द्युलोकके उच्च स्थानपर अवस्थित, अन्नके कर्ता मेरे पितर ही हो ॥८॥

पवमानासः एते सोमाः सार्ति इन्द्रं अच्छ, रथा इव, प्र ययुः। सुताः अव्यं पवित्रं अति यन्ति। (ते) हरितः वव्रिं हित्वी, वृष्टिं अच्छ ॥ ९ ॥

छाने जानेवाले ये सोमरस दाता इन्द्रके पास, रथ (युद्धस्थलके समीप जाने) के समान, जाते हैं। (सोमसे) निकाले रस भेडोंके बालोंकी छाननीको लांघकर छाने जा रहे हैं। (वे) हरे रंगवाले (सोम) अपने आच्छादनका त्याग करके, (मेघोंसे) वृष्टि होनेके समान, (रसकी वृष्टि करते हैं)॥९॥

हे इन्दो ! (त्वं) सुमृळीकः अनवद्य. रिशादाः बृहते इन्द्राय पवस्व। गृणते चन्द्राणि वसूनि भर। हे द्यावापृथिवी ! (युवा) देवैः नः प्र अवतम् ॥ १० ॥

हे सोम ! (तुम) उत्तम सुख देनेवाले, अनिन्द्य और शत्रुका नाश करनेवाले (हो, वह तुम) बडे इन्द्रके लिये तैयार रहो। प्रशंसा करनेवालेके लिये आह्लाददायक धन दो। हे द्यावापृथिवी ! (तुम दोनों) सब देवोंके साथ हमारी सुरक्षा करो॥१०॥

सोमका काव्य

यह सूक्त काव्यका एक उत्तम नमूना है। सोमरस तैयार करनेकी रीति तो इसमें हैही, पर काव्यकी प्रौढता भी यहां स्पष्ट दिखाई देती है। इसकी स्पष्टताके लिये उक्त मंत्रका आशय हम विशेष स्पष्ट कर देते हैं। अर्थके प्रत्येक वाक्यका आवश्यक स्पष्टीकरण यहां पाठक देखेंगे। मंत्रोंके क्रमसेही यह स्पष्टीकरण दिया जाता है—

"जिस तरह बाण धनुष्यपर रखा जाता है, उसी तरह हमारी बुद्धि इन्द्रपर स्थिर रहती है, अर्थात् इन्द्रकी स्तुति करनेमेंही हमारी मति तत्पर हो जाती है। जैसा छोटा बच्चा माताके स्तनके पास जाता है, उसी तरह हम भी इन्द्रके पास जाते हैं, अर्थात् हम इन्द्रको छोडही नहीं सकते, इतनी हमारी भक्ति इन्द्रपर स्थिर रूपसे रहती है। जैसी दुधारू गाय बच्चेके पास प्यार करती हुई आती है और उसको दूध पिलाती है, वैसा इन्द्र भी हमारे ऊपर कृपा करता है और हमें इष्ट सुख देता है। इसलिये हम भी इन्द्रको सोमरसका अर्पण करते हैं। (१) हमारी बुद्धि केवल इन्द्रकीही भक्ति करती है। हम सोमवल्लिको प्रथम अच्छी तरह धोते हैं। इस धोनेके समयही मधुर सोमरस पीनेकी इच्छा करनेवाली जिह्वा रसपानके लिये उत्सुक होती है। जैसे परस्पर युद्ध करनेवाले वीरोंके शस्त्र एक दूसरेपर आघात करते हैं, उसी तरह सोम कूटा जाता है और उनकी छाननीसे छाना जाता है। (२) जैसा तरुण तरुणी स्त्रीके पास उत्सुकतासे जाता है, उसी तरह सोमरस छाननीके ऊपर चढता है और वहाँ निचोडा जाता है। पृथ्वीसे उत्पन्न हुई औषधिया —सोमवल्लियाँ— यज्ञके अन्दर समर्पित होनेके लिये कूट कूटकर ढिली की जाती हैं। उनसे रस निकाला जाता है, जो हरे रंगका, यजनके लिये योग्य, इकट्ठा रखा, आनन्द बढानेवाला रस छाननीमेंसे नीचे चूता है। यह पौरुष बढाता, बल बढाता, है और पात्रोंमें संमहित होनेपर बडा शोभायमान दीखता है। (३) बल बढानेवाला सोमरस छाननीसे नीचे उतरते समय शब्द करता है, उस रसके साथ गाइयोंका (दूध साथ साथ मिलाया) जाता है। यज्ञके सजाये स्थानपर जहा देवताओंका आवाहन होता है, वहा ये औषधियाँ हवन होनेसे लिये जाती हैं। सोमरस बालोंकी छलनीसे छाना जाता है और उसमें दूध मिलाया जाता है। (४) हरे रंगका सोमरस छाना जातेही उसमें दूध मिलाया जाता है, दूधका श्वेत रंग दीखनेतक यह मिलाया जाता है। इस सोमवल्लिने अपने तुरेंसे द्युलोकको, मानो, स्वच्छ किया था। इस कारण जिन पात्रोंमें सोमरस रखा जाता है, उनपर स्वच्छ किये ढक्कन रखे जाते हैं। (५) सूर्यकिरणोंके समान तेजस्वी, प्रवाही, आनन्दवर्धक, शत्रुको स्थायी निद्रामें सुलानेवाले छाने गये ये सोमरसके प्रवाह यज्ञमें इन्द्रको प्राप्त करनेके लिये जाते हैं। (६) जैसी नदियां समुद्रसे मिलती हैं, उसी तरह ये बल बढानेवाले सोमरस इन्द्रके पास पहुंचानेवाले मार्गको पहुंचते हैं। सोमसे हमारे द्विपादों और चतुष्पादोंका कल्याण हो। सोमसे हमारे बल बढे और मानवोंके सेवोंकी सहायता हमें इससे प्राप्त होवे (७) सोमसे हमें धन, सुवर्ण, घोडे, गौवें और जौ आदि अन्न मिले, इससे हमारा वीर्य बढे। सोमही द्युलोकसे आकर हमारा पितृवत् पालन करता है। (८) जैसे रथ युद्धभूमिके पास पहुंचते हैं, वैसे ये सोमरस इन्द्रको प्राप्त करते हैं। जिस तरह मेघोंसे वृष्टि होती है, वैसेही रसके प्रवाह छाननीके ऊपर रखे सोमसे नीचे चूते हैं। (९) सोमरस-पानसे सुख मिलता है, निन्द्य कर्म नहीं होते, शत्रुका नाश करनेका बल बढ जाता है। यह सोमरस इन्द्रको देनेके लिये तैयार किया जाता है। इस सोमरससे हमारे आनन्दकी वृद्धि हो और सब देवताएँ हमें सुरक्षित रखें। (१०)

क्या सोमरससे निद्रा आती है ?

'प्र-सुपः आशवः'— विशेष निद्रा लानेवाले ये सोमरस हैं। सायनाचार्य कहते हैं कि 'प्रसुपः' का अर्थ (**शत्रूणां प्रस्वापयितारः हन्तारः**) 'शत्रुओंको सुलानेवाले अर्थात् शत्रुका हनन करनेवाले' ऐसा यहां है। शत्रुकोही सुलानेका गुण सोममें है, अथवा जो पीता है उसको निद्रा लानेका गुण इसमें है, इसका विचार करना चाहिये। यदि सोमरसपानके पश्चात् पीनेवालेको निद्रा आयेगी, तो वीर शत्रुका पराजय सोमरस-पानके पश्चात् नहीं कर सकेंगे। परंतु वेदमंत्रोंमें अनेक स्थानों-पर कहा है कि सोम पीनेसे बल और उत्साह बढता है और सोमरसपानके बाद वीर शत्रुका पराभव करते हैं। इसलिये सोमरसपानसे नींद नहीं आ सकेगी। इसी कारण 'प्र-सुपः' का अर्थ 'शत्रुको सुलानेवाला' करना योग्य है। वीर सोमरस-पान करते हैं, उससे उत्साहित होते हैं, शत्रुसे बहुत लडते हैं और शत्रुका वध करके उसको स्थायी नींदमें सुलाते हैं। इस-लिये सोमरसपानसे निद्रा, सुस्ती अथवा बेहोशी नहीं आती, परंतु उत्साह और आनंद बढता है।

अस्तु, इस सूक्तमें उपमाएं तथा अन्यान्य वर्णन बडा मनो-रंजक और बोधप्रद है।

१ सोम लाना, २ सोमका धोना, ३ सोमको कूटना, ४ छननीपरसे छानना, ५ उसमें दूध मिलाना, ६ सोमपानसे बल-का बढना और शत्रुका नाश होना, ये बातें इस सूक्तमें हैं।

१ **उक्षा मिमाति, धेनवः प्रति यन्ति।** (मं. ४)- बैल शब्द करता है, गौवें साथ जाती हैं। इसका अर्थ सोम छाननेके समय शब्द करता हुआ नीचेके वर्तनमें उतरता है और उसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है, ऐसा है।

२ **हरिः रुशता वाससा परि व्यत।** (मं. ५)- हरे रंगवालेपर श्वेत वस्त्र पहनाया जाता है, अर्थात् हरे सोमरसमें श्वेत दूध मिलाया जाता है।

(ऐसे आलंकारिक प्रयोग इस सूक्तमें बहुत हैं। पाठक उनका अर्थ इस तरह समझें।)

३ **दिवः पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृत।** (मं. ५)- द्युलोक के पीठको सोम अपने तुर्रेसे सुशोभित या स्वच्छ करता है। अथवा द्युलोकके पृष्ठभागको वह अपने ओढनेके लिये करता है। सोमवल्लि हिमालयके शिखरपर होती है। उस वल्लिको मोरके तुर्रेके समान तुर्रे आते हैं, मानो वे द्युलोकको सुंदर बनाते, स्वच्छ साफसुथरा करते, अथवा द्युलोककोही ओढ लेते हैं। यह भी एक आलंकारिक वर्णन है।

४ छाननीसे सोमरसकी धाराएं नीचे उतरती है इसको (वृष्टि अच्छ) वृष्टिकी उपमा दी है। (मं० ८) छाननीसे उतरने-वाली धाराएं वृष्टिकी धाराएं हैं, सोम कूटा हुआ जो छाननीपर रख जाता है, वह मेघ है और नीचेका पात्र पृथ्वी है। इस तरह मेघकी उपमा सोमके लिये सार्थ होती है।

५ '**कृष्टयः**' पद ७ वें मंत्रमें है। वह मानवोंके समुदाय का सूचक है। समूह-रूपसेही मानव अमर है, व्यक्ति-रूपमें मर्त्य है। 'आर्य' जाति सदा जीवित रहेगी, पर एक व्यक्ति मरेगी।

६ सोमके लिये बलवर्धक अर्थमें महिषकी उपमा दी है। (मं. ३) बडा अन्न होनेका अर्थ (महा-इष्) में भी यह पद है। सोमरस उत्तम बल बढानेवाला अन्न है, यह प्रसिद्ध ही है।

यहां सोमके दोनों सूक्तोंका विवरण समाप्त होता है।

(दशम मण्डल)

(८) सविता देव

(ऋ. १०।१४९) अर्चन् हैरण्यस्तूपः । सविता । त्रिष्टुप् ।

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ॥ १ ॥
यत्रा समुद्रः स्कभितो व्यौनदपां नपात्सविता तस्य वेद ।
अतो भूरत आ उत्थितं रजोऽतो द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ २ ॥
पश्चेदमन्यदभवद्यजत्रममर्त्यस्य भुवनस्य भूना ।
सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गरुत्मान्पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्म ॥ ३ ॥
गाव इव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान्वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना ।
पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ॥ ४ ॥
हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन् ।
एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम् ॥ ५ ॥

अन्वयः— सविता यन्त्रैः पृथिवीं अरम्णात् । सविता अस्कम्भने द्यां अदृंहत् । अश्वं इव, अतूर्ते धुनिं अन्तरिक्षं बद्धं समुद्रं अधुक्षत् ॥ १ ॥

यत्र स्कभितः समुद्रः वि औनत् । हे अपां नपात् ! तस्य (स्थानं) सविता वेद । अतः भूः, अतः उत्थितं रजः आः, अतः द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ २ ॥

अमर्त्यस्य भुवनस्य भूना अन्यत् इदं यजत्रं पश्चा अभवत् । हे अंग ! सः सुपर्णः गरुत्मान् सवितुः पूर्वः जातः । अस्य धर्म अनु उ ॥ ३ ॥

गावः इव ग्रामं, यूयुधिः इव अश्वान्, सुमनाः दुहाना वाश्रा इव वत्सं, पतिः इव जायां, विश्ववारः दिवः धर्ता सविता नः नि एतु ॥ ४ ॥

अर्थ—सविताने यन्त्रोंसे पृथ्वीको सुखसे सुस्थिर किया है। उसी सविताने विना स्तम्भोंका आधार दिये द्युलोकको (ऊपरही ऊपर) सुदृढ रखा है। (हिनहिनानेवाले) घोडेके समान कंपायमान होनेवाले अन्तरिक्षसे गतिहीन अवस्थामें बंधे समुद्रको दुह लिया (अन्तरिक्षमें मेघका दोहन करके समुद्र बनाया)॥१॥

जहांसे स्तंभित हुआ समुद्र (मेघ) जलकी वृष्टि करता है। हे जलको न गिरानेवाले (अथवा हे जलोंके पोते वैद्युत् अग्ने)! उसका स्थान सविता देव जानता है। उस (सविता) से भूमि, उससे ऊपर फैला अन्तरिक्ष और उसीसे द्युसे पृथ्वी (तकके सब पदार्थ) फैले हैं ॥२॥

अमर्त्य भुवनके बननेके नंतर दूसरा यह यजनीय (संपूर्ण यज्ञसाधन) पीछेसे उत्पन्न हुआ। हे प्रिय ! वह सुंदर पंखवाला (किरणवाला) महा सामर्थ्यवान् (उषाका प्रकाश) सूर्यके पूर्वही उत्पन्न हुआ था। इस (सविता) के धर्मके अनुकूल ही (वह प्रकाशता रहा) ॥३॥

गौवें जैसी (शामको उत्सुकतासे) ग्रामकी ओर (आती हैं), योद्धा वीर जैसे घोडोंके पास (जाते हैं), उत्तम मनवाली दूध देनेकी इच्छा करती हुई, हम्बारव करनेवाली धेनु जैसी बछडेके पास (जाती है), पति जैसा स्वस्त्रीके पास (जाता है), (वैसा ही) सबको सेवनीय द्युलोकका आधार सविता-देव हमारे पास आ जाय ॥४॥

हे सवितः ! आंगिरसः हिरण्यस्तूपः अस्मिन् वाजे यथा त्वा जुह्वे। एव त्वा अर्चन् अहं अवसे वन्दमानः, सोमस्य इव अंशुं, प्रति जागर ॥ ५ ॥	हे सविता ! आंगिरस–गोत्रीय हिरण्यस्तूप ऋषिने ऐसे बलवर्धन करनेके कर्ममें जिस तरह तुम्हें बुलाया था, वैसे ही तुम्हें अर्चन् (नामक) मैं (भी अपनी) सुरक्षाके लिये वन्दन करता हुआ, सोमके रसकी (सुरक्षाके लिये जैसे जागते हैं वैसे) जागता हूं (सतत सावधानतासे तुम्हारा भजन करता हूं) ॥५॥

इस सूक्तका विचार अर्चन्के पिता हिरण्यस्तूप ऋषिके ऋ. १।३५ सविता-देवके सूक्तके साथ करना उचित है। पिता हिरण्यस्तूप और पुत्र अर्चन् इन दोनोंके सवितृदर्शनके ये मंत्र हैं। ऋ. १०।१४९ का ऋषि अर्चन् है। इस सूक्तके *अन्तिम मंत्रमें* ' हिरण्यस्तूप आंगिरस ' यह पिताका नाम है और ' अर्चन् ' ऋषि उसका पुत्र है। पुत्रका भी नाम उसी मंत्रमें है। पिता-पुत्रका तथा गोत्रका नाम इकट्ठा एकही मंत्रमें आनेसे स्पष्टता अधिक हुई है।

सविताने पृथ्वीका धारण किया है, द्युलोकको ऊपर किसी *आधारके बिना स्थिर किया है। अन्तरिक्षका दोहन करके उसका* समुद्र बनाया है (१)। स्तब्ध हुआ समुद्र मेघरूप बनकर आकाशमें रहता है, समुद्रके जलकी भाप होकर उसके मेघ बनते हैं, इसकी वृष्टिसे फिर समुद्रमें नदियों द्वारा जल पहुंचता है। ' *अपां न-पात्* ' यह *नाम* वैद्युत् *अग्निका है*। मेघमें जो जल है उसको न गिरा देना इसका कार्य है। जलोंसे मेघ, मेघकी विद्युत्, इस तरह यह जलोंके पुत्रका पुत्र है। अतः उसे ' अपां नपात् ' कहते हैं। भूमि, अन्तरिक्ष, द्यु तथा बीचके सभी पदार्थ सवितासे ही बनते हैं।

सविता		
भूः	अन्तरिक्ष	द्यु
वृक्षवनस्पति पशुपक्षी आदि	वायु, मेघ विद्युत् आदि	सूर्य प्रकाश आदि

साथवाले चित्रमें बताये अनुसार सवितासे त्रिलोकीका सब कुछ पदार्थ मात्र बनता है। इस त्रिलोकीमें जो भी है वह सब सवितासे ही बना है। सविताकी शक्तिका यह विस्तार है। सविता बीज है, उस बीजका यह विस्तार है, उस बीजका यह वृक्ष है। (२)

सूर्य अमर है, उससे यह मर्त्य पदार्थजात बना है। भूमि होनेके पश्चात् यज्ञद्रव्य, समिधा, अन्न, सत्तु, चावल, दूध, घी आदि सब बना है। पहिले सूर्यसे किरण फैले हैं, उससे उषा बनी, उससे सूर्य हुआ, सूर्यसे सब कुछ बना है। (३)

सविता देव बडी उत्सुकतासे हमारे पास आता है, क्योंकि हम उसी की उपासना करते हैं। (यह उत्सुकता बतानेके लिये चार उदाहरण दिये हैं, वे मूल अर्थमें देखिये)। (४)

अन्तिम मंत्रमें कहा है कि जैसी मेरे पिता आंगिरस् कुलमें उत्पन्न हिरण्यस्तूपने तुम्हारी प्रार्थना बल बढानेके लिये की थी, वैसी ही मैं कर रहा हूं। जैसी तुमने मेरे पितापर कृपा की थी वैसी ही मुझपर करो ' यह इसका तात्पर्य है।

इस सूक्तका विचार करके पाठक सूर्यका विज्ञान जानें।
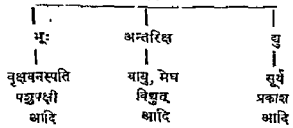
हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन
समाप्त

हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन

विषयसूची

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(५)

कण्व ऋषिका दर्शन

(कण्वपुत्र प्रस्कण्वके मंत्रोंके समेत)

(काण्व दर्शनोंमें द्वितीय विभाग)

(ऋग्वेदका अष्टम और नवम अनुवाक)

लेखक

भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)

संवत् २००३

मूल्य २) रु०

काण्व-दर्शन

१ प्रथम विभाग = मेधातिथिका दर्शन
२ द्वितीय " कण्व " "

मुद्रक और प्रकाशक
व॰ श्री॰ सातवळेकर, B. A., भारतमुद्रणालय, औंध (सातारा)

कण्व ऋषिका तत्त्वज्ञान

कण्व ऋषिके मन्त्र ऋग्वेदमें १०१ हैं, इनका सूक्तवार क्रम इस तरह है—

सूक्तानुसार मंत्रसंख्या

ऋग्वेद-प्रथम मण्डल

कण्व ऋषि

अष्टमअनुवाक		देवता		मन्त्रसंख्या
सूक्त	३६	अग्निः		२०
	३७	मरुतः	१५	
	३८	,,	२५	
	३९	,,	१०	४०
	४०	ब्रह्मणस्पतिः		८
	४१	मित्रवरुणार्यमणः		६
		आदित्याः		३
	४२	पूषा		१०
	४३	रुद्रः		६
		सोमः	३	९६

ऋग्वेद-नवम मण्डल

९४	पवमान सोमः	५	५

कुल मंत्र-संख्या १०१

अथर्ववेदमें कण्व ऋषिके मंत्र तीन सूक्तोंमें विभक्त हैं। देखिये—

अथर्व. कां.	२ । ३१	मंत्र	५
,,	३२	,,	६
,,	५ । २३	,,	१३
		कुल मंत्र	२४

अर्थात् ऋग्वेद-अथर्ववेदके कुल मंत्र १२५ हुए।

कण्वऋषिके देवतानुसार मंत्र ऐसे हैं। पूर्वोक्त मंत्रही देवतानुसार ऐसे होते हैं—

देवतानुसार मंत्रसंख्या

१ मरुतः	४०
२ अग्निः	२०
(यूपः २)	
३ पूषा	१०
४ आदित्याः	९
(मित्रवरुणअर्यमणः ५)	
५ ब्रह्मणस्पतिः	८
६ रुद्रः	५
७ पवमानः सोमः	५
८ सोमः	३
९ रुद्रः, मित्रावरुणौ	१
कुल मंत्र-संख्या	१०१
कृमिनाशन	२४
	१२५

कण्वगोत्रमें उत्पन्न प्रस्कण्व ऋषिके मंत्र सूक्तानुसार ये हैं—

ऋग्वेद-प्रथम मण्डल

प्रस्कण्व ऋषि

नवमअनुवाक		देवता		मंत्रसंख्या
सूक्त	४४	अग्निः	१४	
	४५	,,	१०	२४
	४६	अश्विनौ	१५	
	४७	,,	१०	२५
	४८	उषा	१६	
	४९	,,	४	२०
	५०	सूर्यः		१३

अष्टम मण्डल

४९	इन्द्रः	१०

नवम मण्डल

९५	पवमानः सोमः ५	९७

प्रस्कण्वके अथर्ववेदमें मंत्र ११

कुल मंत्र-संख्या १०८

प्रस्कण्व ऋषिके मंत्रोंकी देवतावार मंत्रसंख्या—

१ अश्विनौ	२५
२ अग्निः	२४
(यूपः २)	
३ उषा	२०
४ सूर्यः	१३
५ इन्द्रः	१०
६ पवमानः सोमः	५
कुल मंत्र-संख्या	९७

अथर्ववेदमें—		
सरस्वान्	२	
श्येनः	२	
सोमारुद्रौ	२	
ईर्ष्यापनयनं	२	
आपः	१	
वाक्	१	
इन्द्रः विष्णुः	१	११
		१०८

ऋषिनामों तथा राजाओंके नामोंका मंत्रोंमें उल्लेख इनके सूक्तोंमें निम्नलिखित प्रकार आया है—

[ऋ. १।३६के] मंत्र १० में '**मेध्यातिथिः काण्वः**' तथा मंत्र ११ और १७ में भी मेध्यातिथिके नाम हैं। इसके अतिरिक्त **धनस्पृत** (मं. १०); **उपस्तुत** (मं. १० और १७); **तुर्वश, यदु, उग्रदेव, नववास्त्व, बृहद्रथ, तुर्वीति** (मं. १८) ये नाम भी इसी सूक्तमें हैं। ये नाम कण्वके सूक्तमें हैं। अब प्रस्कण्वके सूक्तोंमें ऋषिनाम देखिये—

ऋ. १।४५ के मंत्र ३ में **प्रस्कण्वका** नाम आया है। इसके अतिरिक्त **प्रियमेध, अत्रि, विरूप, अंगिराः** ये नाम भी इसी मंत्रमें हैं। '**प्रियमेध**' का नाम पुनः मं. ४ में आया है। इसी सूक्तके ५ वें मंत्रमें ऋषिने अपने गोत्रका नाम '**कण्व**' कहा है।

ऋ. १।४६ के नवम मंत्रमें '**कण्वासः**' पद है, यह इस का गोत्रनाम है। ऋ. १।४७ के मंत्र २ में '**कण्वासः**' पद है। यही पद मंत्र ४;५; १० में भी है।

ऋ. १।४९ के मंत्र ४ में '**कण्वाः**' पद है, यह ऋषिका गोत्रनाम है। ऋ. ८।४९ के मंत्र ५ और ११ में '**कण्व**' नाम है। इसी सूक्तके मं ९ और १० में '**मेध्यातिथि, नीपातिथि, कण्व, त्रसदस्यु, पक्थ, दशव्रज, गोशर्य, ऋजिश्वा**' ये नाम हैं।

इस तरह कण्व और प्रस्कण्व तथा अन्य ऋषियोंके तथा राजाओंके नाम इन सूक्तोंमें आये हैं।

सूक्तोंके विषय

इन सूक्तोंमें शक्तिको बढाना, शक्तिका संगठन करना, वीरताकी वृद्धि, शस्त्रास्त्रोंकी योजना, शत्रुका पराभव करना, क्षात्रबलको बढाना, क्षात्रधर्मको संगठित करना, शत्रुका पूर्ण नाश करना, जलचिकित्सासे रोग दूर करना, सुवीर्यकी वृद्धि करना, ३३ देव, यज्ञ, सूर्य किरणसे नीरोगता, सोमरसपान इत्यादि अनेक विषय हैं। राज्यका बल बढानेके लिये इनकी आवश्यकता रहती है।

इससे प्रतीत होता है कि कण्व ऋषिके उपदेशका राज्यशासनसे घनिष्ठ संबंध है। कण्व ऋषिके संबंधमें अन्य ग्रन्थोंमें निम्नलिखित इतिहास मिलता है—

घोरपुत्र कण्व

प्रथम कण्व

कण्व शब्दको नीलकण्ठ भट्ट 'सुखमय' इस अर्थसे ग्रहण करते हैं। बृहद्देवतामें कण्वके विषयमें जो उल्लेख पाया जाता है, उसमें लिखा है कि, घोरनामा ऋषिके कण्व और प्रगाथ ये दो पुत्र थे। जब कि ये दोनों पुत्र अरण्यमें रहा करते थे, तब प्रगाथके द्वारा कण्वपत्नीके संबंधमें कुछ अविनयपूर्ण व्यवहार हुवा। कण्व प्रगाथको शाप देनेके लिये उद्युक्त हुवे। तब प्रगाथने उनकी क्षमा मांगकर कण्व और कण्वपत्नी इन दोनोंको मातापिता मान लिया। आगे चलकर कण्व तथा उनके वंशज इन्होंने मिलकर ऋग्वेदके अष्टम मण्डलकी रचना की।

संभव है कि कण्वका कुल यदु और तुर्वश इनका पौरोहित्य करता होगा। ऋग्वेदमें कण्वकुलोत्पन्न देवातिथि इन्द्रकी प्रार्थना करता हुवा दिखाई देता है कि 'तेरी कृपासे **यदु** और **तुर्वश** ये सुखी हो गये हुवे मुझे दिखाई दें। '—

महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम्॥
(ऋ. ८।४।७)

कई ग्रंथोंमें तथा ऋग्वेदमें इस पुरातन ऋषिका नामोल्लेख किया हुवा पाया जाता है। उदाहरणार्थ—

भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु॥
(ऋ. १।३६।८)

यामस्य कण्वो अदुहन् प्रपीनाम्॥
(अथर्व. ७।१५।१)

कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः॥
(अथर्व. १८।३।१५)

यामस्य कण्वोऽअदुहत्प्रपीनाम्॥
(वा. य. १७।७४)

कण्वो हैतान्नृतुप्रैपान्ददर्श॥ (शांख्यायन ब्रा. २८.८)
कण्व स्वयं सूक्तद्रष्टा भी थे। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ३६ से ४३ तक आठ सूक्त घोरपुत्र कण्वके नामसे पहिचाने जाते हैं।

कण्वके पुत्र तथा वंशज भी कई जगह उल्लेखित किये गये हैं। कहींकहींपर कण्वके वंशजका नामनिर्देश कण्व इस पैतृक नामसे किया हुवा पाया जाता है।

कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर॥
(ऋ. १।४४।८)

दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे।
(ऋ. १।४६।९)

कहींपर कण्व नार्षद ऐसा भी उसका उल्लेख किया गया है।

कण्वाय। प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय।
(ऋ. १-११७-८)

कुछ स्थानोंमें उस कण्वके वंशजको कण्व श्रायस इस नामसे संबोधित किया गया है।

कण्व एव श्रायसोऽवेत्। (तै. सं. ५।४।७।१६)
कण्वः श्रायय रे सो। (मैत्रा. सं. ३।३।९।११)

कण्वाः सौश्रवसाः ऐसा इन वंशजोंका बहुवचनी उल्लेख भी किया गया है।

तामेतां कण्वास्सौश्रवसा विदुः।
(काठक. सं. १३।१२)

अथर्ववेदमें कण्व यह शब्द रोगबीजोंका प्रतिशब्द इस अर्थसे पाया जाता है।

गर्भादं कण्वं नाशय। (अथर्व. २.२५.३)

क्षत्रियोंके गायत्रीमंत्रमें कण्वका उल्लेख बडे ही गौरव पूर्ण शब्दोंमें किया गया है। वहाँपर प्रार्थना की गई है कि कण्वने भगवान् सूर्यसे जो विश्व-कल्याणकरी बुद्धि प्राप्त करा ली थी, वह मुझे मिले।

यामस्य कण्वोऽअदुहन् प्रपीनां सहस्रधारां पयसा महीं गाम्। (वा. य. १७।७४)

ऋग्वेदमें नार्षद कण्वके विषयमें मनोरंजक उल्लेख है।

विष्णुपुराणका मत है कि ब्रह्मरातपुत्र याज्ञवल्क्यके पंद्रह शिष्योंमेंसे कण्व एक था। भागवत इस याज्ञवल्क्यको देवरात-पुत्र कहता है। आगे चलकर कण्वने यजुर्वेदमें अपनी शाखा निर्माण की और उसके ग्रंथ भी बनाये।

यजुर्भिरकरोच्छाखा दशपञ्चशतैर्विभुः॥
जगृहुर्वाजसन्यस्ताः कण्वमाध्यन्दिनादयः॥
(भागवत. १२.६. ७४)

वे ग्रन्थ वर्द्धंशमें याज्ञवल्क्यके विरुद्ध हैं। कण्व एक गोत्रके प्रवर्तक भी हैं।

कण्व स्वयं आंगिरस गोत्रोत्पन्न हैं। इस कुलकी उत्पत्ति पुरु-वंशसे हुई। कुछ स्थानोंपर ऐसा उल्लेख किया है कि कण्व मति-नारपुत्र अप्रतिरथसे पैदा हुवे।

अप्रतिरथस्य कण्वः पुत्रोऽभूत्।
(विष्णु. ४.१९.५-)

परन्तु एक जगह कण्वको अजमीढपुत्र बताया है।

आजमीढस्य केशिन्यां कण्वः समभवत्किल।
(मत्स्य. ४९.४६)

इन दोनों विधानोंमें कालकी दृष्टिसे असंगति प्रतीत होती है।

अप्रतिरथ और अजमीढ समकालीन नहीं थे। प्रगाथ काण्व यह दुर्गहके पौत्रोंका समकालीन था। वह जिस सूक्तका ऋषि है उस सूक्तमें उन पौत्रोंका उल्लेख है।

नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः।
(ऋ. ८।६५।१२)

कण्व गोत्रोत्पन्नोंको दक्षिणा देनेका सत्याषाढ श्रौतसूत्रमें निषेध किया हुवा है। गोपीनाथ भट्ट अपने भाष्यमें उसका कारण बताते हैं कि—

कण्वं तु बधिरं विद्यात्।

कण्व ब्रह्मदेवके पुष्करक्षेत्रमें किये हुवे यज्ञमें विद्यमान थे। आप एक धर्मशास्त्रकार हैं। स्कंदने एक प्रश्न उपस्थित किया है कि किसके दिये हुवे अन्नका ग्रहण किया जाय और इसका उत्तर देते समय उसने कण्वके एक वचनका उल्लेख किया है जिसमें कि कहा है, "किसीने भी आदरपूर्वक दिया हुवा अन्न मान्यही है।" स्मृतिचंद्रिकामें आधारके लिये कण्वके ग्रन्थोंमेंसे आह्निक और श्राद्ध इस विषयमें कई प्रमाण लिये गये हैं। मिताक्षरामें भी कण्वके ग्रन्थोंका आधार कई जगह लिया गया है।

कण्वनीति, कण्वसंहिता, कण्वोपनिषद्, कण्वस्मृति ऐसे चार ग्रन्थ कण्वके नामपर पाये जाते हैं। कण्वस्मृतिका उल्लेख हेमाद्रि, मध्वाचार्य आदिने किया हुवा है।

द्वितीय कण्व

कश्यप गोत्रोत्पन्न एक ऋषि। मेधातिथि ऋषिके आप पुत्र हैं।

ऋषिर्मेधातिथेः पुत्रः कण्वो बर्हिषदस्तथा।
(महा. अ. २५५.३१)

मालिनी नदीके तटपर आपका आश्रम था। आपही इतिहास-प्रसिद्ध कण्व हैं जिन्होंने कि भरत-जननी शकुंतलाका पालन किया था। आगे चलकर उनके अनुपस्थितिमें जब दुष्यंत और शकुंतला इनका ब्याह हुवा, तब आपहीने उसे संमति दी।

न भयं विद्यते भद्रे मा शुचः सुकृतं कृतम् ॥

(म. आ. ९४.५९)

आप एकबार गौतमाश्रमको गये। उस आश्रमकी समृद्धता देखकर आपके मनमें इच्छा निर्माण हुई कि 'मेरे आश्रममें भी ऐसी ही समृद्धता निर्माण हो।' तब आपने तप करके गंगा और क्षुधा इन्हें प्रसन्न करा लिया और उनसे आयुष्य, द्रव्य और भुक्ति-मुक्तिका वर मांग लिया। दूसरे वरसे आपने यह मांगा कि 'मैं तथा मेरे वंशज इन्हें कभी भी क्षुधासे पीडा न हो।' आपको ये दोनो वर मिले। जिस तीर्थपर आपने तपश्चर्या की थी, वह कण्वतीर्थ इस नामसे पहिचाना जाने लगा। बादमें जब महाराजा भरत यज्ञ करते रहे तब कण्व उस यज्ञके मुख्य ऋत्विज थे।

याजयामास तं कण्वो दक्षवद्भूरिदक्षिणम् ॥

(म. आ. १०१।४).

इस यज्ञमें भरतजीने आपको एक सहस्र पद्म भार शुद्ध जाम्बूनद सुवर्णका दान किया।

सहस्रं यत्र पद्मानां कण्वाय भरतो ददौ।
जाम्बूनदस्य शुद्धस्य कनकस्य महायशाः ॥

(म. द्रो. ६८.११)

संभव है कि भरतजीके इस यज्ञमें आप उपस्थित हों या आपके पुत्र। इन्होंने दुर्योधनको मातलिकी कथा सुनाई। परन्तु उस बोधप्रद कथाको सुनकर भी जब उसने न माना, तब आपने उसे शाप दिया कि तेरी मृत्यु जांघ टूटनेसे हो जायगी।

यस्मादूरुं ताडयसि ऊरौ मृत्युर्भविष्यति ॥

(म. उ. १०५.४२)

कालका विचार किया जाय तो यह कण्व भी मूल कण्वका एकाद वंशज होगा।

तृतीय कण्व

कश्यपके पुत्र। कलियुगारंभके बाद सहस्र वर्षोंसे आप भरत-भूमिमें जन्म पा चुके। देवकन्या आर्यावतीसे आपका विवाह हुवा। उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्डेय, चतुर्वेदी ये सब आपके पुत्रोंके उप नाम हैं। आपने आपकी मधुर प्रवचनशैलीके द्वारा मिश्रदेशवासी दशसहस्र म्लेच्छोंको वश करा लिया। और उन्हें शुद्धिविधि करके आर्यधर्ममें प्रविष्ट करा लिया। इन शुद्धिकृत म्लेच्छोंमेंसे दो सहस्रकी योजना आपने वैश्योंमें की। उन दो सहस्रोंमेंसे पृथुनामक कश्यपका सेवक कण्वका कृपापात्र बना। इसलिये उसे क्षत्रियपद देकर कण्वने उसे राजपुत्र नगर दे दिया।

सरस्वत्याज्ञया कण्वो मिश्रदेशमुपाययौ।
म्लेच्छान्संस्कृतमाभाष्य तदा दशसहस्रकान् ॥
वशीकृत्य स्वयं प्राप्तो ब्रह्मावर्ते महोत्तमे ॥

(भविष्य. प्र. प. २१ अ.)

प्रस्कण्व

भागवतमतानुसार यह मेधातिथिका पुत्र है। आगे चलकर प्रस्कण्वादिक द्विजत्वको प्राप्त हुवे।

तस्य मेधातिथिस्तस्मात्प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः।

(भा. ९.२०.७)

प्रस्कण्व काण्व

यह ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके चवालीसवे लेकर पचासतकके सूक्तोंका तथा अष्टम मण्डलके उनपचासवे सूक्तका द्रष्टा है। शांख्यायन श्रौतसूत्रमें कहा है कि इसने पृषध्र, मेध्य और मातरिश्वन् इनसे द्रव्य पाया था।

यहां तीन कण्वों और दो प्रस्कण्वोंका उल्लेख है। तीसरा कण्व नि.सन्देह आधुनिक है। हमारे मतसे पहिला कण्व ही सूक्तद्रष्टा ऋषि है, दूसरा और तीसरा ये दोनों अर्वाचीन हैं। प्रस्कण्व ऋषिके विषयमें कोई ऐसे भिन्न चरित्र उपलब्ध नहीं हैं।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'कण्व' अनेक हुए हैं, तथापि सूक्तद्रष्टा एकही ऋषि है। जिस कण्व ऋषिके मंत्र यहां दिये हैं वह सूक्तद्रष्टा कण्व है। इसके इतिहासके विषयमें अधिक खोज करनेकी आवश्यकता है।

प्रत्येक ऋषिके मंत्रोंमें अग्नि, इन्द्र, अश्विनौ, सोम आदि देवताओंके मंत्र हैं। पाठक इनमें ऐसी तुलना करें कि एक ऋषिके मंत्रोंमें एक देवताके वर्णनमें जो विशेषण आये हैं, उस वर्णनमें और अन्य ऋषिके मंत्रोंमें क्या भेद है ! ऋषिका स्फुरणही मंत्र है, यह स्फुरण कहनेमात्रसेही मन्त्रकी उत्पत्ति अध्यात्मभावसे-आत्मिक स्फूर्तिसे-सिद्ध है। देखना यह है कि उसके अविष्कारमें, प्रत्येकके स्फुरणमें, भाव व्यक्त करनेमें क्या क्या हेरफेर हैं। जितना सूक्ष्म अध्ययन किया जाय उतना इस विषयमें इस समय थोडाही होगा।

स्वाध्याय-मण्डल
औंध (जि. सातारा)
१ वैशाख सं० २००३

निवेदनकर्ता
श्री० दा० सातवळेकर

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

कण्व ऋषिका दर्शन

कण्वपुत्र प्रस्कण्वके मंत्रोंके समेत

(काण्व-दर्शनोंमें द्वितीय विभाग)

(१) शक्ति बढानेवाला अग्नि

(ऋ. १।३६) कण्वो घौरः । अग्निः, १३-१४ यूपो वा । प्रगाथः- विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः

(१३ उपरिष्टाद्बृहती । ऐ० ब्रा० २।२ चरणच्छेदः)

प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईळते   १
जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते ।
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य   २
प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः   ३

अन्वयः- देवयतीनां पुरूणां विशां वः यह्वं अग्निं सूक्तेभिः वचोभिः प्र ईमहे । अन्ये इत् य सीं ईळते ॥१॥

जनासः सहो-वृधं अग्निं दधिरे । हविष्मन्तः (वयं) ते विधेम । वाजेषु सन्त्य ! सः त्वं अद्य इह नः सुमना अविता भव ॥ २ ॥

होतारं विश्व-वेदसं, त्वा दूतं प्र वृणीमहे । महः सतः ते अर्चयः वि चरन्ति । भानवः दिवि स्पृशन्ति ॥ ३ ॥

अर्थ— देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले बहुसंख्य तुम (सब) प्रजाजनोंके लिये महासामर्थ्यवान् अग्निकी सूक्तों और वाक्योंद्वारा (हम) प्रार्थना करते हैं । (इसी तरह) अन्य भी उसीकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

मानवोंने बलको बढानेवाले अग्निको धारण किया है । (हे अग्ने) हवि लेकर (हम) तुम्हारी पूजा करते हैं । हे बलके कार्योंके लिये दान देनेवाले ! वह तुम आज यहां हमारे ऊपर प्रसन्नचित्त होकर हमारे रक्षक बनो ॥ २ ॥

(तुम देवोंको) बुलाते हैं और सर्वज्ञानी भी हैं, (हम) तुम्हें दूत करके वरण करते हैं । महान् और सत्यस्वरूप ऐसे तुम्हारी ज्वालाएं फैल रहीं हैं । (तुम्हारे) किरण आकाशतक पहुंचते हैं ॥ ३ ॥

देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ४
मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ५
त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्सुवीर्या ६
तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ७
घ्नन्तो वृत्रमतरन् रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे ।
भुवत् कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ८
सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ९

हे अग्ने ! वरुणः मित्रः अर्यमा देवासः त्वा प्रत्नं दूतं सं इन्धते । यः मर्त्यः ते ददाश, सः त्वया विश्वं धनं जयति ॥४॥

हे अग्ने ! वरुण मित्र और अर्यमा ये देव तुम प्राचीन दूतको प्रकाशित करते हैं । जो मानव तुम्हारे लिये दान देता है, वह तुम्हारी (सहायतासे) सब धन जीत कर प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! (त्वं) मन्द्रः होता विशां गृहपतिः दूतः असि । त्वे विश्वा व्रता संगतानि, यानि देवाः ध्रुवा अकृण्वत ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! (तुम) हर्षवर्धक दाता प्रजाजनोंके घरोंके रक्षक (और देवोंके) दूत हो । तुम्हारे अन्दर वे सब व्रत संगत होते हैं, कि जो ये देव दृढतापूर्वक करते हैं ॥ ५ ॥

हे यविष्ठ्य अग्ने ! सुभगे त्वे इत् विश्वं हविः आ हूयते । स त्वं नः सुमनाः, अद्य उत अपरं सुवीर्या देवान् यक्षि ॥ ६ ॥

हे युवक अग्ने ! उत्तम भाग्यसंपन्न ऐसे तुम्हारे अन्दरही सब प्रकारका हवि अर्पण किया जाता है । वह तुम हमारे ऊपर आनन्द-चित्त होकर, आज (और वैसेही) दूसरे दिन भी प्रभावशाली देवोंका अर्चन करो ॥ ६ ॥

नमस्विनः स्व-राजं तं घ ईं इत्था उप आसते । स्रिधः अति तितिर्वांसः मनुषः होत्राभिः अग्निं सं इन्धते ॥ ७ ॥

नमस्कार करनेवाले उपासक स्वयंप्रकाशी इस (अग्नि) की इस तरह उपासना करते हैं । शत्रुओंको पार करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य हवन करनेवालोंके द्वारा अग्निको प्रकाशित करते हैं ॥ ७ ॥

घ्नन्तः वृत्रं अतरन्, रोदसी अपः क्षयाय उरु चक्रिरे । वृषा द्युम्नी आहुतः कण्वे भुवत्, (यथा) गविष्टिषु अश्वः क्रन्दत् ॥ ८ ॥

प्रहार करनेवाले वीरोंने वृत्रका वध किया और अन्तरिक्षको जलोंके रहनेके लिये बहुत विस्तृत किया है । बलवान् और प्रकाशित (अग्नि) आहुतियाँ प्राप्त करके कण्वके लिये (धन-दाता) हुआ, (जैसा) गौओंकी प्राप्तिके युद्धोंमें हिनहिनाने-वाला घोडा (यशदायी होता है) ॥ ८ ॥

सं सीदस्व, महान् असि । देव-वी-तमः शोचस्व । हे मियेध्य प्रशस्त अग्ने ! अरुषं दर्शतं धूमं वि सृज ॥ ९ ॥

(हे देव) बैठ जाओ, तुम बडे हो, देवोंकी कामना करते हुए प्रकाशित होओ । हे पवित्र और प्रशंसित अग्ने ! वेगवान् दर्श-नीय धूम उत्पन्न करो ॥ ९ ॥

यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः १०

यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि ११

रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि १२

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे १३

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः १४

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य १५

हे हव्यवाहन ! मनवे देवासः यजिष्ठं यं त्वा इह दधुः। मेध्यातिथिः कण्वः यं (त्वां) धनस्पृतं (दधे); वृषा यं (च) उपस्तुतः यं (त्वां दधे) ॥ १० ॥

हे हव्य पहुंचानेवाले (अग्ने) ! मानवोंके (हितके) लिये सब देवोंने यजनीय ऐसे तुमको यहां (इस यज्ञमें) धारण किया है । मेध्यातिथि कण्वने धन देनेवाले तुम्हें (धारण किया है), बलको बढानेवाले (वीरने और) उपस्तुतने भी तुम्हें धारण किया है ॥ १० ॥

मेध्यातिथिः कण्वः ऋतात् अधि यं अग्निं ईधे, तस्य इषः प्र दीदियुः , यं इमा ऋचः (वर्धयन्ति, वयं) तं अग्निं वर्धयामसि ॥ ११ ॥

मेध्यातिथि कण्वने सूर्यसे (उत्पन्न करके) इस अग्निका धारण किया है, उसके किरण चमकने लगे हैं, उस (अग्निका यश) ये ऋचाएं (बढाती हैं, हम भी) उसी अग्निको बढाते हैं ॥ ११ ॥

हे स्व-धावः ! रायः पूर्धि । हे अग्ने ! देवेषु ते आप्यं अस्ति हि । त्वं श्रुत्यस्य वाजस्य राजसि । सः (त्वं) नः मृळ, महान् असि ॥ १२ ॥

हे अपनी धारक शक्तिवाले (अग्ने) ! (हमें) धन भरपूर दो । हे अग्ने ! देवोंमें तेरी नि:संदेह मित्रता है । तुम प्रशंसनीय बलके प्रकाशक हो । वह (तुम) हमें सुखी करो, तुम बडे हो ॥ १२ ॥

नः ऊतये ऊर्ध्वः सु तिष्ठ, सविता देवः न। ऊर्ध्वः वाजस्य सनिता, यत् अञ्जिभिः वाघद्भिः विह्वयामहे ॥ १३ ॥

हमारी सुरक्षाके लिये उच्च होकर ठहरो, जैसा सूर्य देव (उच्च स्थानमें) है । उच्च होकर अन्नके दाता (बनो), अब सु-अलंकृत याजकोंके साथ (हम तुम्हें) बुला रहे हैं ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वः केतुना नः अंहसः नि पाहि । विश्वं अत्रिणं सं दह। चरथाय जीवसे नः ऊर्ध्वान् कृधि । नः दुवः देवेषु विदाः ॥ १४ ॥

ऊंचा होकर ज्ञानसे हमें पापसे बचाओ । सब राक्षसों (रोगबीजों) को जला दो । (हमारी) प्रगति और दीर्घ जीवनके लिये हमें उच्च बनाओ। (यह) हमारी प्रार्थना देवोंतक पहुंचाओ ॥ १४ ॥

हे बृहद्भानो यविष्ठ्य अग्ने! नः रक्षसः पाहि । अ-राव्णः धूर्तेः पाहि । रिषतः उत वा जिघांसतः पाहि ॥ १५ ॥

हे महातेजस्वी बलवान् अग्ने ! हमें राक्षसोंसे बचाओ । कञ्जूस धूर्तोंसे बचाओ । हिंसकों और घातकोंसे हमें सुरक्षित रखो ॥ १५ ॥

घनेव विष्वग्वि जह्यराव्णस्तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत १६
अग्निर्वव्ने सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम् ।
अग्निः प्रावन्मित्रोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् १७
अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे।
अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः १८
नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः १९
त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये।
रक्षस्विनः सदमिद् यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह २०

हे तपुर्जम्भ ! अराव्णः विष्वक्, घना इव, वि जहि। यः अस्म-ध्रुक्, यः मर्त्यः अक्तुभिः अति शिशीते, सः रिपुः नः मा ईशत ॥ १६ ॥

हे अपनी गर्मीसे (रोगबीजोंके) नाश करनेवाले ! कञ्जूसोंको चारों ओरसे, गदासे (नाश करनेके) समान, विनष्ट करो। जो हमारा द्रोह करता है, जो रात्रियोंमें (जागता हुआ हमारे) नाशका प्रयत्न करता है, वह शत्रु हमपर कभी प्रभुत्व न करे ॥ १६ ॥

अग्निः सुवीर्यं वव्ने । अग्निः कण्वाय सौभगं, अग्निः मित्रा प्र आवत् । उत अग्निः मेध्यातिथिं, उपस्तुतं सातौ (प्र अवत्) ॥ १७ ॥

अग्नि उत्तम वीर्य देता है । अग्निने कण्वको उत्तम भाग्य दिया, अग्निने हमारे मित्रोंका बचाव किया है । इसी तरह अग्निने मेध्यातिथि और उपस्तुतका विनाश होनेके समय (बचाव किया) ॥ १७ ॥

अग्निना तुर्वशं यदुं उग्रदेवं हवामहे । दस्यवे सहः अग्निः नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं नयत् ॥ १८ ॥

अग्निके साथ हम तुर्वश, यदु और उग्रदेवको बुलाते हैं। दुष्टोंका दमन करनेका बल (देनेवाले) अग्निदेव नववास्त्व, बृहद्रथ और तुर्वीतिको ठीक रीतिसे चलाते हैं ॥ १८ ॥

हे अग्ने। ज्योतिः त्वां शश्वते जनाय मनुः नि दधे । ऋत-जातः उक्षितः कण्वे दीदेथ । यं कृष्टयः नमस्यन्ति ॥ १९ ॥

हे अग्ने ! ज्योतिस्वरूप तुमको शाश्वत कालसे मानवोंके हितके लिये मनुने स्थापन किया। यज्ञमें प्रकट होकर और (यज्ञमें) तृप्त होकर (तुमने) कण्वको यश दिया। (अतः) जिसको सब मनुष्य नमन करते हैं ॥ १९ ॥

अग्नेः अर्चयः त्वेषासः अमवन्तः भीमासः प्रति-इतये न (शक्याः) । रक्षस्विनः यातु-मावतः सदं इत् सं दह । विश्वं अत्रिणं सं दह ॥ २० ॥

अग्निकी ज्वालाएँ प्रकाशित, बलशाली, और भयंकर हैं उनका विरोध नहीं (किया जा सकता) । राक्षसों और यातना देनेवालोंको जला दो । सर्व भक्षकोंको जला दो ॥ २० ॥

शक्तियोंका संगठन करनेवाला अग्नि

इस सूक्तमें शक्तियोंका संगठन करनेका अग्निका गुणधर्म विशेष प्रमुखतासे वर्णन किया है। प्रथम शरीरमें देखिये, शरीरमें गर्मी यह अग्निका गुण रहनेतक ही जीवनका होना संभव है। गर्मी चली गयी, शरीर ठण्डा हो गया, तो जीवन समाप्त हो जाता है। शरीर यह एक उत्तम संगठन ही है, वैदिक दृष्टिसे देखा जाय, तो यहां तेंतीस देवताओंकी शक्तियोंका संगठन ही हुआ है, परस्पर विरुद्ध गुणधर्मवाली देवताएँ यहां हैं। जल और अग्निका परस्पर विरोध प्रसिद्ध है। जल अग्निका नाश करता है और अग्नि, सूर्य तथा वायु जलको सुखाकर नष्ट करते हैं। इस तरह इनका परस्पर विरोध है। वनस्पति और अग्निका भी विरोध है, अग्नि वनस्पतियोंको खा जाता है और उस समय

वायु अग्निकी साथ करता है। इस तरह वायु और मेघका भी परस्पर वैर है, वायु मेघोंको तितरबितर करता है और इकठ्ठा भी करता है। ऐसे ये देव परस्परका विद्वेष करते हैं, पर इस शरीरके संगठनमें ये परस्परकी सहायता कर रहे हैं !! शरीरमें गर्मी—अग्नि-रहनेतक ही मे सब देवतायें संगठनमें रहती हैं। गर्मी चली गयी तो यह संगठन टूट जाता है, इसलिये अग्नि संगठन करनेवाला है।

राष्ट्रमें भी अग्निसे होनेवाले यज्ञ जनताका संगठन करते हैं। राजसूय, अग्निष्टोम, ज्योतिष्टोम आदि अनेकविध यज्ञ जनताका संगठन करते हैं, नरमेधमें सब जातियोंके मानवोंका संगठन होता है। अग्निसे यज्ञ होते हैं और यज्ञोंसे जनताका संगठन होता है, इसलिये अग्निको संगठनका देव माना है वह योग्य ही है। अग्नि सब देवोंके पास पहुंचता है, उनको एकत्रित करता है, यज्ञके लिये उनको निमंत्रण देता है और अपने रथपर उनको बिठलाकर यज्ञस्थानमें लाता है और उनको संगठित करके उनसे यज्ञ कराता है। पाठक इस सूक्तमें अग्निके इस कार्यका वर्णन देख सकते हैं।

जनताका संगठन भी इसी रीतिसे करना चाहिये। किसी महत्त्वपूर्ण कार्यका जोश, विचारोंकी आग, सद्भावनाकी गर्मी जनतामें उत्पन्न करनी चाहिये। और नाना जातियों और नाना धंधोंमें विभक्त हुई जनताको संगठित करना चाहिये। यज्ञके केन्द्रसे जनताके संगठनका यह विधि है। इस तरह विचार करने से अग्निद्वारा व्यक्तिमें, राष्ट्रमें और विश्वमें शक्तियोंका संगठन किस तरह होता है, इसका ज्ञान पाठक प्राप्त कर सकते हैं।

देवत्वकी प्राप्ति

१ देवयतीनां पुरूणां विशां यह्वं अग्निं वचोभिः प्र ईमहे—देवत्वकी प्राप्ति करनेकी इच्छावाली, सब उन्नति-साधनोंसे भरपूर ऐसी प्रजाओंके सामर्थ्यका संवर्धन करनेवाले अग्निकी हम प्रशंसा करते हैं। इसमें प्रत्येक पदका महत्त्व अत्यंत है इसलिये इन पदोंका महत्त्व प्रथम देखिये-

२ देवयती—अपने अन्दर देवत्व स्थापित हो और वह देवत्व बढे, ऐसी इच्छा करनेवाली प्रजाका यह नाम है। मनुष्योंमें राक्षस-मानव, पशु मानव, जन-मानव, नर-मानव, देव-मानव ऐसे भेद हैं। इन नामोंसे ही इनके लक्षणोंका ज्ञान हो सकता है। मनुष्यको अपने अन्दरके राक्षसपन या पशुपनका त्याग करके अपने अन्दर देवभाव स्थापन करना चाहिये। इसीलिये धर्म है। अर्थात् इस तरह मानवोंमें राक्षस और देव ऐसे दो विभेद रहते हैं। इस मंत्रमें देव मानवोंका ही विचार किया है। सब मानवोंका संगठन नहीं हो सकेगा, परन्तु जो अपने अन्दर देवत्वका विकास करना चाहते हैं, उनका ही संगठन हो सकता है। और जो मानवोंका संगठन करना चाहते हैं, उनको सबसे प्रथम देवत्वकी प्राप्तिके इच्छुक कौन हैं और कौन राक्षसगणके लोग हैं, इनका विवेक करना चाहिये। समान विचारोंका संगठन होगा। कमसे कम अपने विरोधी भावोंको दबाना और सर्वसाधारणके हितके कार्य करनेकी इच्छा करना इतना तो आवश्यक ही है। अर्थात् अपने अन्दर देवभाव उत्पन्न करना यह मानवका पहिला साध्य है। भगवद्गीतामें १६ वे अध्यायमें प्रारंभमेंही दैवी संपत्तिके लक्षण दिये है। ब्राह्मी स्थिति भी जो गीतामें कही वह यहां पाठक देखें।

३ पुरु.— पुर्, पूः (नगर), पुरी (नगरी), पुरु (नागरिक), पूरवः, पौराः (नागरी जनता), इन सबमें 'पुर्' पद है। इसका यौगिक अर्थ 'परिपूर्ण, सब सुख साधनोंसे, उन्नतिके साधनोंसे भरपूर भरे हुवे' यह है। जिस नगरीमें उन्नतिके और उपभोगके सब साधन भरपूर रहते हैं, वह 'पुर्, पूः, पुरी' है; और जिन लोगोंके पास वे साधन भरपूर रहते हैं उनका नाम 'पूरु, पूरवः, पौराः' है। इस मंत्रमें 'पुरु' पद है, इसका भी यही अर्थ है, इनकी संगठना होनी चाहिये। उन्नतिके और सुखके सब साधन नगरमें संग्रहित करना और उनका उपयोग सबको करनेका अवसर मिलना, यह नागरिकोंका कर्तव्य है।

४ विश्, विट्- प्रजा, जनता, जो घरबार करके स्थायी-रूपसे एक स्थानपर रहती है। खेती-बाडी, व्यापार-व्यवहार, लेनदेन करनेवाली जनता। इनका संगठन करना आवश्यक है। प्रत्येक व्यापार-व्यवहारके कार्यकर्ताओंका संगठन करके पश्चात् सब संघोंका संगठन करना योग्य है। इसीका नाम 'गण-व्यवस्था' है। गण, व्रात, संघ, गणमंडल, गणमहामण्डल ये इनके छोटे बडे गणोंके नाम हैं। इनके मुखियाको गणेश, गणप, गणपति, गणमण्डलेश, गणमहामण्डलाधिप आदि नाम हैं। इनसे छोटे बडे संगठनकी संस्थाओंका बोध हो सकता है।

५ देवयतीनां पुरूणां विशां (गणः)- अपने अन्दर देवत्वका संवर्धन करनेवाले साधनसंपन्न प्रजाजनोंके गणोंकी रचना करना संगठनका साध्य है। इसमें छोटे मोठे संघ होंगे।

६ यहः अग्निः- सामर्थ्य बढानेवाला शक्तिरूप अग्नि। इसको जनतामें प्रज्वलित करना चाहिये। व्यक्तिमें यह उत्साह-रूप है, जनतामें यज्ञस्थलमें प्रदीप्त होनेवाला है। 'यह्व' का अर्थ- 'बडा, महान्, समर्थ, शक्तिमान्, फुर्तीला, प्रयत्नशील, कार्यतत्पर, सतत प्रयत्नशील' यह है।

७ प्र ईमहे- पूर्वोक्त मानवोंके सतत प्रयत्न करनेके उत्साह-रूप अग्निकी हम प्रशंसा करते हैं। अर्थात् इसकी प्रशंसा होना योग्य है। 'प्र-ई' का अर्थ 'प्रगति,' उच्च गति, उत्कर्षकी ओर जाना है। पूर्वोक्त प्रकारके मानवोंकी प्रगति उनके सतत यत्न करनेके उत्साहसे निःसन्देह होगी।

८ अन्ये सीं ईळते- दूसरे भी इसकी स्तुति गाते हैं। क्योंकि यह प्रशंसा योग्य है। 'ईळ्, ईड्, ईर्' ये धातु सदा अन्नके साथ संबन्ध रखते हैं। 'इला, इरा, इडा' ये पद वेदमें भूमिके और अन्नके वाचक हैं। भूमिसे ही अन्न होता है और अन्न उसीको मिलता है जो कि पूर्वोक्त प्रकार उत्साहसे कार्य करते हैं। (मं. १)

९ जनासः सहोवृधं अग्निं दधिरे- लोग बलवर्धक अग्निको अपने अन्दर धारण करते हैं। 'सहः, सहस्' का अर्थ है 'कष्ट सहन करनेका बल'। जिसके पास कष्ट सहन करनेकी शक्ति होगी वही प्रयत्नसे उन्नतिको प्राप्त होगा। जिसमें परिश्रमकी शक्ति नहीं है वह कुछभी कर नहीं सकता।

१० सुमनाः अविता भव- उत्तम मनवाला संरक्षक हो। रखवालीका कार्य करनेवाला उत्तम मनवाला चाहिये, नहीं तो वही बुरे पापी मनवाला हुआ तो रक्षण करनेके स्थानपर भक्षण करेगा और रक्षकका राक्षस बनेगा। (मं. २)

११ होतारं विश्ववेदसं दूतं वृणीमहे—दाता, सब जाननेहारा ऐसे दूतका हम स्वीकार करते हैं। दूत दाता हो और वह अच्छा ज्ञानी, समझदार हो। राजदूतके भी येही लक्षण हैं।

१२ महः सतः अर्चयः विचरन्ति, भानवः दिवि स्पृशन्ति—जो महात्मा सत्यनिष्ठ होते हैं, उनका तेज चारों ओर फैलता है और उनका प्रकाश आकाशतक पहुंचता है। सत्यपालनकी यह महिमा है। (मं. ३)

१३ यः ददाश, सः विश्वं धनं जयति—जो दान देता है, वह सब धन विजय करके प्राप्त करता है। जो अपने पासके धनादि शक्तियोंका यज्ञ करता है, वह सर्वत्र विजय पाता है। (मं. ४)

१४ देवाः यानि ध्रुवा अकृण्वत, ता विश्वा व्रता त्वे संगतानि—सब अन्य देव जो स्थायी व्रत करते हैं, उन सब व्रतोंका संबंध तुम्हारे पास पहुंचता है अर्थात् ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो कि मुख्य देवकी शक्तिके विना हो सकता हो। 'सर्वदेव-नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति'= सब देवोंको किया नमस्कार विष्णुको पहुंचता है, तथा —

> येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
> तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥
> (गी. ९।२३)

'अन्य देवताओंके उद्देश्यसे किया हुआ यजन विष्णुकाही यजन होता है।' इन वचनोंके सदृश यह मन्त्रभाग है। (मं. ५)

१५ सुमनाः सुवीर्या यक्षि—उत्तम मन रखते हुए उत्तम पराक्रमी वीरोंका पूजन करो। जो उत्तम पराक्रमी वीर हैं, उनका ही सत्कार करना चाहिये। (मं. ६)

१६ नमस्विनः स्वराजं उपासते—(नमस्) अन्न पास रखनेवाले अपने तेजसे चमकनेवाले वीरका सत्कार करते हैं। यहां 'नमस्-विन्' का अर्थ 'अन्न-वान्' किया है।

१७ स्रिधः अतितितीर्षवः मनुषः—मनुष्य घातपात और हिंसा करनेवाले शत्रुओंको परास्त करनेकी इच्छा करें। (मं. ७)

१८ घ्नन्तः वृत्रं अतरन्— प्रहार करनेवाले वीरोंने चारों ओरसे घेरनेवाले शत्रुका पराभव किया।

१९ रोदसी क्षयाय उरु चक्रिरे-पृथ्वी और अन्तरिक्षमें (मनुष्योंके) रहनेके लिये बहुत स्थान बनाया। यह वीरताका कार्य है। मानवोंको उचित है कि वे अपने रहनेके लिये विस्तृत स्थान बनावें। अपना निवास अतिसंकुचित स्थानमें न होने दें। (मं. ८)

२० स्व-धा-वः रायः पूर्धि- अपनी शक्तिसे युक्त वीर (हमें) धनोंसे भरपूर भर देवें। मनुष्य अपनी शक्तिसे धनादि कमावे।

२१ देवेषु आप्यं- दिव्य विबुधोंमें (मनुष्य अपनी) मित्रता रखे। देवोंके साथ मित्रता करनेयोग्य अपनी उन्नति मनुष्य करे। मनुष्यमें देवत्वकी-दैवी-संपत्तिकी-स्थापना हुए विना देवोंकी मित्रता होना असंभव है।

२२ श्रुत्यस्य वाजस्य राजसि- प्रशंसीय बलसे तेजस्वी बनो। ऐसे श्रेष्ठ पराक्रम करो कि जिससे तुम्हारी कीर्ति चारों ओर फैले। (मं. १२)

२३ नः ऊतये ऊर्ध्वः तिष्ठ- हमारी सुरक्षाके लिये उच्च बनो। स्वयं उच्च बनकर हमारी रक्षा करो। स्वयं उच्च बनना और पश्चात् दूसरोंकी सुरक्षाका यत्न करना मनुष्यको योग्य है। (मं. १३)

२४ केतुना नः अंहसः निपाहि— ज्ञान देकर हमें पापसे बचाओ। मनुष्य ज्ञानसे ही पापसे अपनी सुरक्षा कर सकते हैं।

२५ विश्वं अत्रिणं सं दह— सब भकोसनेवालोंका नाश करो। सब रोगबीजोंको अग्निकी ज्वालासे जला दो। अत्रिन्=खानेवाला, भकोसनेवाला, रक्त खानेवाला कृमि, रोग बीज, राक्षस।

२६ चरथाय जीवसे नः ऊर्ध्वान् कृधि— *उत्तम चाल चलन और दीर्घ जीवनके लिये हम सबको उच्च बनाओ।* उत्तम श्रेष्ठ बननेसे उत्तम आचार होगा और दीर्घ जीवन प्राप्त होगा। (मं. १४)

२७ रक्षसः अराव्णः धूर्तेः रिषतः जिघांसतः नः पाहि— राक्षसों, कंजूसों, धूर्तों, घातकों और हिंसकोंसे हमें बचाओ। *ये पद रोगबीजोंके भी वाचक हैं।* (मं. १५)

२८ अराव्णः विष्वक् विजहि— कंजूसोंको चारों ओरसे दूर करो।

२९ यः अस्म-ध्रुक् मर्त्यः अक्तुभिः अति शिशीते सः रिपुः नः मा ईशत— जो द्रोह करनेवाला हमारा शत्रु रातोंरात जागता हुआ हमारे घातपातका विचार करता हो, उसका शासन हमारे ऊपर न हो। अर्थात् ऐसे शत्रुका सर्वतोपरि नाश हो जाय। (मं. १६)

३० सुवीर्यं वसे, सौभगं (ददाति), मित्राणि प्रावत्— वह उत्तम पराक्रम करता है, सौभाग्य देता है और मित्रोंकी सुरक्षा करता है। (मं. १७)

इस तरह मानवधर्मका सर्व सामान्य बोध करानेवाले मन्त्रभाग इस सूक्तमें विशेष स्मरण रखनेयोग्य हैं। पाठक इस रीतिसे विचार करेंगे, तो उनको किसी देवताके वर्णन करनेवाले मंत्रोंसे मानवधर्मका उपदेश कैसा प्राप्त करना चाहिये, इसका बोध हो सकता है।

ऋषियोंके नाम

इस सूक्तमें निम्नलिखित ऋषियोंके नाम आये हैं-

१ मेध्यातिथिः कण्वः (त्वां) दधे। —कण्व गोत्रके मेध्यातिथि ऋषिने अग्निकी उपासनाविधिका स्वीकार किया है। (मं. १०)

२ मेध्यातिथिः कण्वः ऋतात् अधि अग्निं ईधे- कण्वगोत्रके मेध्यातिथि ऋषिने यज्ञमें अग्निको प्रदीप्त किया। '**तं इमाः ऋचः**' उसका वर्णन ये ऋचाएं करती हैं। यहां इस सूक्तकी ऋचाओंका निर्देश है अथवा दूसरे मंत्रोंका निर्देश है इसकी खोज होनेयोग्य है। (मं. ११)

३ अग्निः कण्वाय सौभगं, मेध्यातिथिं प्रावत्- अग्नि ने कण्वको सौभाग्य दिया, मेध्यातिथिकी सुरक्षा की। (मं.१७)

यह सूक्त घोरपुत्र कण्व ऋषिका है। मेधातिथि और मेध्यातिथि ये दोनों ऋषि कण्वगोत्रके हैं, जिनके नामोंमेंसे मेध्यातिथिका नाम इस सूक्तमें पूर्वोक्त मंत्रोंमें आया है। इसके अतिरिक्त **धनस्पृत** (मं. १०), **उपस्तुत** (मं. १०;१७), **तुर्वश, यदु, उग्रदेव, नववास्त्व, बृहद्रथ, तुर्वीति** (मं. १८) ये नाम भी आये हैं। इनमें तुर्वश आदि नाम राजाओंके होंगे। यदु और तुर्वश वेदमंत्रोंमें बहुत वार आये हैं। कई भाष्यकार इन पदोंको गुणबोधक मानते हैं। जैसे (तुर्- वश) त्वरासे शत्रुको वश करनेवाला, (बृहत्- रथ) बडे रथवाला, (नव- वास्त्व) नवीन घरमें रहनेवाला इस तरह इनके गुणबोधक अर्थ होते हैं।

रोगबीजोंका नाश करना

इस सूक्तमें कहा है कि अग्नि रोगबीजोंका नाश करता है।

१ विश्वं अत्रिणं सं दह— *सब भक्षक कृमियोंको जला दो।* '**अत्रिन्**' वह रोगबीज है, कि जो शरीरके खून और मांसको खा जाता है और शरीरको कृश करता है। (मं १४, २०)

२ रक्षसः पाहि- राक्षसोंसे बचाओ। यहां रक्षस् पद क्षुद्र कृमियोंका वाचक है, ये रोग बढानेवाले कृमि हैं। (मं.१५)

३ रक्षस्विनः यातु-मावतः सं दह- यातना देनेवाले राक्षसोंको जला दो। जिनसे शरीरमें यातना या पीडा होती है, वे रोगबीज ये हैं।

अग्निकी ज्वालाएं इन रोगबीजोंको जलाकर नष्ट भ्रष्ट कर देती हैं। इसीलिये यज्ञसे आरोग्य प्राप्त होता है।

सजे हुवे ऋत्विज्

' अञ्जिभिः वाघद्भिः विद्ध्यामहे ' (मं. १३)- अलंकारों, वस्त्रों, चन्दनादि विलेपनोंसे ऋत्विज अपने शरीरोंको सजाते थे ऐसा इस मंत्रसे प्रतीत होता है। 'अञ्जि'= अंगलेप, विलेपन, उबटना, चमकनेवाला लेपन, चन्दन, चन्दनका विलेपन, तिलक, रंगोंवाला विलेपन।

(२) वीर काव्य

(ऋ. १।३७) कण्वो घौरः। मरुतः। गायत्री।

क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम्। कण्वा अभि प्र गायत १
ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः। अजायन्त स्वभानवः। २
इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद् वदान्। नि यामञ्चित्रमृञ्जते ३
प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे। देवत्तं ब्रह्म गायत ४
प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम्। जम्भे रसस्य वावृधे ५
को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः। यत् सीमन्तं न धूनुथ ६
नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे। जिहीत पर्वतो गिरिः ७

अन्वयः- हे कण्वाः! वः मारुतं क्रीळं अनर्वाणं रथे शुभं शर्धं अभि प्र गायत ॥ १ ॥

अर्थ— हे कण्वो! तुम्हारे (उपास्य देव) मरुतोंके सामूहिक रहनसहनसे उत्पन्न, क्रीडा कुशलतासे युक्त, आपसके कलहोंसे रहित, रथमें सुहानेवाले बलका (काव्य-) गायन करो॥ १ ॥

हे स्व-भानवः! पृषतीभिः ऋष्टिभिः वाशीभिः अञ्जिभिः साकं अजायन्त ॥ २ ॥

अपने तेजसे युक्त, (मरुत् वीर) धब्बोंवाली हिरनियोंके साथ भालों और कुल्हाडों तथा वीर भूषणोंके साथ साथ प्रकट हुए हैं॥ २ ॥

एषां हस्तेषु कशाः यत् वदान् इह इव शृण्वे, यामन् चित्रं नि ऋञ्जते ॥ ३ ॥

इनके हाथोंमें रहनेवाले कोडे, जब शब्द करने लगते हैं, (तब उस शब्दको मैं) यहीं रहकर सुनता हूँ। इसकी युद्धभूमिमें विलक्षण (शूरता) प्रकट होती है ॥ ३ ॥

वः शर्धाय, घृष्वये, त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे, देवत्तं ब्रह्म प्र गायत ॥ ४ ॥

तुम्हारा बल बढानेके लिये, शत्रुदलका विनाश करनेके लिये और तेजस्वी सामर्थ्य प्राप्त करनेके लिये देवताविषयक ज्ञान(-मय स्तोत्रका) गान करो ॥ ४ ॥

यत् गोषु क्रीळं मारुतं रसस्य जम्भे ववृधे, (तत्) अघ्न्यं शर्धः प्र शंस ॥ ५ ॥

जो बल गौओंमें पाया जाता है, जो खिलाडीपनसे मरुतोंके संघोंमें प्रकट होता है, जो (गो-)रसके सेवनसे बढता है, उस विनाश न करनेवाले सामर्थ्यकी प्रशंसा करो॥ ५ ॥

हे नरः! दिवः च ग्मः च धूतयः, वः आ वर्षिष्ठः कः? यत् सीं अन्तं न धूनुथ? ॥ ६ ॥

हे नेताओं! द्युलोकको और भूलोकको भी तुम कम्पित करनेवाले हो, ऐसे तुममें भला श्रेष्ठ कौन है, जो सदा वृक्षोंके अग्रभाग (को हिलाने) के समान शत्रुदलको न हिला सकता हो? ॥ ६ ॥

वः उग्राय मन्यवे यामाय मानुषः नि दध्रे, पर्वतः गिरिः जिहीत ॥ ७ ॥

तुम्हारे भयानक आवेशसे युक्त आक्रमणसे डरकर मानव (तो किसी न किसीके सहारे) रहताही है, (क्योंकि) पर्वत और पहाड (को भी तो तुम) हिला देते हो॥ ७ ॥

येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः । भिया यामेषु रेजते ८
स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे । यत् सीमनु द्विता शवः ९
उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत । वाश्रा अभिज्ञु यातवे १०
त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् । प्र च्यावयन्ति यामभिः ११
मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन । गिरीँरचुच्यवीतन १२
यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना । शृणोति कश्चिदेषाम् १३
प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः । तत्रो षु मादयाध्वै १४
अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम् । विश्वं चिदायुर्जीवसे १५

येषां यामेषु अज्मेषु पृथिवी, जुजुर्वान् इव विश्पतिः, भिया रेजते ॥ ८ ॥

जिनके आक्रमणोंके अवसरपर और चढाईके समयमें यह भूमि, दुर्बल राजाके समान, भयसे कांपने लगती है ॥ ८ ॥

एषां जानं स्थिरं हि, मातुः वयः निः एतवे यत् शवः सीं द्विता अनु ॥ ९ ॥

इनकी जन्मभूमि स्थिर है । जैसे मातासे पक्षी दूर जानेका यत्न करते हैं, (तो भी माताके पास उनका मन रहता है,) उसी तरह इनका बल सदैव दोनों (मातृभूमि और विजय-स्थानमें) विभक्तसा हो जाता है ॥९॥

त्ये गिरः सूनवः अज्मेषु काष्ठाः, वाश्राः अभि-ज्ञु यातवे, उत् उ अत्नत ॥ १० ॥

उन वाणीके पुत्र (वक्ता मरुतोंने) शत्रुपर करनेके आक्रमणोंमें अपनी (अन्तिम) सीमाएं ही पकड ली हैं, जैसा कि गौओंको घुटनेतकके पानीमें जाना सुगम होता है, उसी तरह (वे सुगमतासे चारों ओर) पहुंचते हैं ॥ १० ॥

त्यं चित् घ दीर्घं पृथुं अ-मृध्रं मिहः न-पातं यामभिः प्र च्यवयन्ति ॥ ११ ॥

उस बडे लंबेचौडे, फैले हुवे, विनष्ट न होनेवाले, जल वृष्टि न करनेवाले मेघोंको (भी अपने) हमलोंसे (वे) हिला देते हैं ॥ ११ ॥

हे मरुतः ! यत् ह वः बलं जनान् अचुच्यवीतन, गिरीन् अचुच्यवीतन ॥ १२ ॥

हे मरुतों ! जो सचमुच तुम्हारा बल लोगोंको हिला देता है, वह पर्वतोंको भी कंपाता है ॥ १२ ॥

यत् ह मरुतः यान्ति अध्वन् आ सं ब्रुवते ह, एषां कः चित् शृणोति ? ॥ १३ ॥

जिस समय सचमुच मरुत् संचार करते हैं, तब वे मार्गमेंही मिलकर बोलते हैं, इनका शब्द (कौन दूसरा) सुनता है ? (कोई नहीं ।) ॥ १३ ॥

आशुभिः शीभं प्र यात, कण्वेषु वः दुवः सन्ति, तत्रो सु मादयाध्वै ॥ १४ ॥

तीव्र गतिसे वेगपूर्वक चलो, कण्वोंके मध्यमें आपका सत्कार (होनेवाला) है । वहां तुम भली भान्ति तृप्त होवो ॥ १४ ॥

वः मदाय अस्ति हि स्म, विश्वं चित् आयुः जीवसे, एषां वयं स्मसि स्म ॥ १५ ॥

तुम्हारी तृप्तिके लिये (यह हमारा अर्पण) है, सुखपूर्वक संपूर्ण आयु बितानेके लिये हम इनके (अनुयायी होकर) रहेंगे ॥ १५ ॥

मरुत् देवोंका गण

' मरुत् ' (मर्+उत्) मरनेतक उठकर लडनेवाले बडे भारी वीर हैं । ये समुदायसे रहते हैं । सब मिलकर एकही बडे भारी घरमें रहते हैं। साथ साथ शत्रुपर हमला करते हैं, सबका पोशाक एक जैसा रहता है, खानपान समान होता है, सबके पास शस्त्रास्त्र समान रहते हैं । इनकी कतार सातोंकी मिलकर एक होती है, प्रत्येक कतारके दोनों ओर दो वीर रहते हैं। इनको ' पार्श्व-रक्षक ' अर्थात् दोनों बाजुओंसे होनेवाले हमलोंसे बचानेवाले वीर कहते हैं । इस तरह १+७+१=९ नौ वीरोंकी एक कतार होती है, ऐसी इनकी ७ कतारें होती हैं । अर्थात् ७ कतारोंमें मिलकर (९×७=) ६३ सैनिक होते हैं। इनके

संख्याके अनुसार संघके नाम होते हैं—

१ **शर्ध**— ७वीरोंकी एक पंक्ति, २ पार्श्वरक्षक, मिलकर ९ वीर हुए। (१+७+१=) ९×७ कतारें=६३ वीरोंका एक शर्ध होता है। इसमें (७×७=) ४९ सैनिक और (७×२=) १४ पार्श्वरक्षक मिलकर ६३ वीर रहते हैं। इसका नाम '**शर्ध**' है।

२ **व्रात**— (६३×७=) ४४१ सैनिकोंका एक व्रात कहलाता है।

३ **गण**— (६३×१४=) ८८२ सैनिकोंका, अथवा १४ व्रातोंका एक गण कहलाता है।

४ **महागण**— (६३×६३=) ३९६९ सैनिकोंका महागण कहलाता है।

इस तरह सातोंके विविध अनुपातोंमें इनके अनेक छोटे मोटे सैनिक विभाग होते हैं। इससे भी '**महागणमंडल**' आदि अनेक विभागोंके नाम हैं।

शस्त्रास्त्र

इनके शस्त्रास्त्र ये हैं। **ऋष्टि** = भाला, **वाशी**= कुल्हाडा, शस्त्र और अग्नि— गणवेश भी सबका समानही रहता है। न्यत्र अन्य शस्त्रोंका भी वर्णन है। तलवार, वज्र आदि भी बर्तते थे और लोहेके शिरस्त्राण भी ये बर्तते थे।

बल

मरुतोंका बल संघके कारण है। समूहमें रहना, समूहमें जाना, समूहसे क्रीडा करना आदिके कारण जो इनका संगठन है उसका यह बल है। इस सूक्तका मंत्रवार आशय ऐसा है–

१ ऋषि कण्वोंसे कहता है कि मरुतोंके काव्यका गान करो क्योंकि उनका बल संघसे उत्पन्न हुआ है तथा ये आपसमें कभी लडते नहीं, रथोंमें बैठकर वीरताको प्रकट करते हैं। अर्थात् इनके काव्यका गान करनेसे मानवोंमें संगठनका बल बढेगा, खेलोंमें रुचि बढनेसे वृत्ति आनन्दयुक्त बनेगी, और उससे उत्साह बढेगा। इसलिये मरुतोंके काव्यका गान करना वीरताको बढानेवाला है।

२ ये वीर भाले, बर्छियां, कुल्हाडें तथा अपना अन्य पोषाख समसमानही धारण करते हैं और जब बाहर आते हैं, तब सजे सजाये साथ साथ प्रगट होते हैं। ये कभी अकेले नहीं रहते। इनका सबही रहना सहना सांघिक होता है।

३ ये हाथोंमें चाबूक लेकर अपने घोडोंको दौडाते हुए आते हैं। उस समय इनके कोडोंका शब्द दूरसे भी सुनाई देता है। युद्धके समय तो इनकी वीरता विशेषही प्रकट होती है।

४ वीरोंके संघका बल बढानेके लिये, शत्रुपर हमला करनेके लिये और प्रतापका सामर्थ्य वृद्धिंगत करनेके लिये इन वीरोंके काव्योंका गान करते जाओ। वीरोंके काव्य गानेसे सुननेवालोंमें वीरता बढ जाती है। यह है वीरोंके काव्यका महत्त्व।

५ गौके दूध आदि गोरसमें एक बडाभारी सामर्थ्य है। संघमें रहनेसे और एक बल बढता है। पहिला बल गोरस पीनेसे बढता है और दूसरा सांघिक जीवनसे बढता है, इस सब प्रकारके बलकी वृद्धि करनी चाहिये। कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये कि जिससे शक्तिका नाशही हो जाय।

६ ये वीर भूमि और आकाशको हिला छोडते हैं। ये सब समान होनेके कारण इनमें कोई भी छोटा या बडा नहीं होता। इनमें एक भी वीर ऐसा नहीं है कि जो शत्रुको समूल हिलाता न होगा।

७ इनका हमला शत्रुपर होने लगा, तो साधारण मानव किसीके आश्रममें जाकर रहते हैं, क्योंकि ये वीर पहाडोंको भी उखाड देते हैं। अर्थात् इनके हमलोंसे सभी भयभीत होते हैं।

८ इनके हमलोंके समय भूमि भी कांप उठती है, और मरियल पालकके समान सभी भयभीत होते हैं।

९ इनका जन्मस्थान सुस्थिर है, पर ये दूर दूर हमला करनेके लिये दौडते हैं। जिस तरह पक्षीके छोटे बच्चे भक्ष्यके लिये दूर जाते हैं तो भी अपनी मातापर उनका ध्यान रहता है; वैसाही ये वीर दूर हमलेके लिये गये तो भी मातृभूमिपर उनका ध्यान रहताही है।

१० ये बडे वक्ता हैं, ये अपने पराक्रममें अपनी पराकाष्ठा करते हैं। जिस तरह घुटने जितने पानीमें गौवें घूमती हैं, उसी तरह सर्वत्र ये वीर घूमते हैं और पराक्रम करते रहते हैं।

११ ये (वायुरूपमें) बडे भारी मेघोंको तितरबितर करते हैं। वैसेही ये वीर शत्रु कितना भी प्रबल हुआ, तो भी उसको उखाडही देते हैं।

१२ जो उनका बल शत्रुओंको हटाता है वही बल पर्वतोंको भी लांघता है।

१३ ये वीर जब कतारोंमें मार्गपरसे चलते हैं, तब वे आपसमें इतनी छोटी आवाजसे बोलते हैं, कि इस समय इनका शब्द तीसरा आदमी सुन नहीं सकता। दो वीर आपसमें बात करने लगे तो तीसरा सुन नहीं सकता।

१४ वीरो! शीघ्र आगे बढो, उपासकोंको आशीर्वाद दो, उपासकोंके स्थानपर तुम हो जाओ।

१५ वीरोंकी तृप्ति करनेके लियेही हम उनके लिये यह अर्पण कर रहे हैं। हमें दीर्घ आयु प्राप्त हो और इस आयुमें हम इन वीरोंके ही होकर रहेंगे।

यह है इस सूक्तका आशय। मरुतोंका काव्य वीरता बढानेवाला है। '**आशुभिः शीभं प्रयात**' अथवा '**शीभं प्रयात**' (Quick march) शीघ्र गतिसे या शीघ्र गतिवाले वाहनोंसे आगे बढो' अथवा 'शीघ्रतासे बढो' यह सैनिकीय आदेश यहां है।

(३) वीर-काव्य

(ऋ. १। ३८) कण्वो घौरः। मरुतः। गायत्री।

कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः। दधिध्वे वृक्तबर्हिषः। १
क्व नूनं कद् वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः। क्व वो गावो न रण्यन्ति २
क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता। क्वो३ विश्वानि सौभगा ३
यद् यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन। स्तोता वो अमृतः स्यात् ४
मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः। पथा यमस्य गादुप ५
मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्। पदीष्ट तृष्णया सह ६

अन्वयः- हे कध-प्रियः वृक्त-बर्हिषः! पिता पुत्रं न, हस्तयोः कद् ह नूनं दधिध्वे ? ॥ १ ॥

नूनं क्व ? वः कत् अर्थम् ? दिवः गन्त, न पृथिव्याः, वः गावः क्व न रण्यन्ति ॥ २ ॥

हे मरुतः! वः नव्यांसि सुम्ना क्व? सुविता क्व? विश्वानि सौभगा क्वो ? ॥ ३ ॥

हे पृश्निमातरः! यूयं यद् मर्तासः स्यातन, वः स्तोता अ-मृतः स्याद् ॥ ४ ॥

मृगः यवसे न, वः जरिता अ-जोष्यः मा भूद, यमस्य पथ्या (मा) उप गाद् ॥ ५ ॥

परापरा दुर्हना निर्ऋतिः नः मो सु वधीत्, तृष्णया सह पदीष्ट ॥ ६ ॥

१ (कन्व) -

अर्थ- हे स्तुतिसे प्रसन्न होनेवाले और आसनोंपर विराजमान मरुतों! पिता पुत्रको जैसे अपने हाथोंसे (उठाता है, उस तरह तुम हमें) कब भला उठाओगे ? ॥१॥

(भला तुम) किधर (जाओगे)? तुम्हारा उद्देश्य क्या है? तुम भलेही द्युलोकसे प्रस्थान करो, लेकिन इस भूलोकसे कभी न चले जाओ। आपकी गौवें भला कहां नहीं रम्भाती हैं? ॥२॥

हे मरुत् वीरो! तुम्हारी नवीन सुख बढानेवाली (आयोजनाएँ) कहाँ हैं? तुम्हारी सुविधाएँ कहां हैं? तुम्हारे सभी सौभाग्य कहां हैं? ॥३॥

हे मातृभूमिके वीरो! तुम यद्यपि मरण-धर्मशील हो, तथापि तुम्हारा स्तोता भक्त निःसन्देह अमर होगा ॥ ४ ॥

हिरन जैसा तृणको (असेवनीय नहीं समझता), वैसा ही तुम्हारी स्तुति करनेवाला भक्त तुम्हारे लिये अप्रिय न होवे, और वैसेही वह यमके मार्गसे भी न चला जावे (उसकी अपमृत्यु न होने पावे) ॥५॥

पराकाष्ठाकी, हटानेके लिये कठिन दुर्दशा भी हमारा नाश न करे, तृष्णाके साथही उस दुर्दशाका विनाश हो जाए ॥६॥

सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः । मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥ ७
वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति । यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥ ८
दिवा चित् तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन । यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ ९
अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम् । अरेजन्त प्र मानुषाः ॥ १०
मरुतो वीळुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरनु । यातेमखिद्रयामभिः ॥ ११
स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम् । सुसंस्कृता अभीशवः ॥ १२
अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम् । अग्निं मित्रं न दर्शतम् ॥ १३
मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः । गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥ १४
वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् । अस्मे वृद्धा असन्निह ॥ १५

धन्वन् चित्, त्वेषाः अम-वन्तः रुद्रियासः, अ-वातां मिहं आ कृण्वन्ति, सत्यम् ॥ ७ ॥

यत् एषां वृष्टिः असर्जि, वाश्रा इव, विद्युत् मिमाति, माता वत्सं न, सिसक्ति ॥ ८ ॥

यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति उद-वाहेन पर्जन्येन दिवा चित् तमः कृण्वन्ति ॥ ९ ॥

मरुतां स्वनात् अधः पार्थिवं विश्वं सद्म आ (अरेजत), मानुषाः प्र अरेजन्त ॥ १० ॥

हे मरुतः! वीळुपाणिभिः चित्राः रोधस्वतीः अनु अ-खिद्र-यामभिः यात ईम् ॥ ११ ॥

एषां वः रथाः, नेमयः, अश्वासः, अभीशवः, स्थिराः सुसंस्कृताः सन्तु ॥ १२ ॥

ब्रह्मण-पतिं अग्निं, दर्शतं मित्रं न, जरायै तना गिरा अच्छ वद ॥ १३ ॥

आस्ये श्लोकं मिमीहि, पर्जन्यः इव ततनः, गायत्रं उक्थ्यं गाय ॥ १४ ॥

त्वेषं पनस्युं अर्किणं मारुतं गणं वन्दस्व, इह अस्मे वृद्धाः असन् ॥ १५ ॥

मरु देशमें भी तेजस्वी और बलिष्ठ मरुत् वीर वायुरहित अवस्थामें भी वृष्टि करते हैं, यह सत्य है ॥७॥

जब इन (मरुतोंकी सहायतासे) वृष्टि होती है, तब रंभानेवाली गौके समान, बिजली बड़ा शब्द करती है और माता बालक(को अपने पास रखने)के समान (मेघोंमेंही) रहती है।८

(ये वीर) जब भूमिको भिगाते हैं, तब जलसे भरे मेघोंसे दिनके समयमें भी अन्धेरा किया जाता है ॥ ९ ॥

मरुतोंकी गर्जनासे नीचेवाला पृथ्वीरूपी संपूर्ण घर हिलने लगता है और मानव भी कांप उठते हैं ॥ १० ॥

हे मरुत् वीरों! बलवाले बाहुओंके साथ सुन्दर नदियोंके तटोंपरसे विना थकावट तुम गमन करते हो ॥ ११ ॥

ये तुम्हारे रथ, रथके आरे, घोडे, लगाम सभी सुदृढ और शुभसंस्कारवाले हों ॥ १२ ॥

ज्ञानके पति अग्निके विषयमें, सुन्दर मित्रके समान, स्तुति करनेके लिये सतत अपनी वाणीसे(स्तुतिके वाक्य) बोलो॥१३॥

मुखमें ही प्रथम श्लोकको (अक्षरोंके प्रमाणसे) बनाओ, उसका पर्जन्यके समान फैलाव करो और गायत्री छन्दमें रचे काव्यका गायन करो ॥ १४ ॥

तेजस्वी, स्तुतियोग्य, पूज्य मरुतोंके दलका वन्दन करो, यहां हमारे वृद्ध हमारे समीप ही रहें ॥ १५ ॥

मर्त्य और अमर

यूयं मर्तासः स्यातन, वः स्तोता अ-मृतः स्यात् । (मं. ४)

मरुत् स्वयं मर्त्य हैं, पर उनके पराक्रम ऐसे हैं कि उनके पराक्रमोंके काव्योंका गायन करनेवाले अमर हो जायँ। यह चतुर्थ मंत्रमें कहा है। ऋभुदेवोंके विषयमें भी वेदमन्त्रमें ऐसाही कहा है—

मर्तासः सन्तो अमृतत्वं आनशुः ॥ (ऋ. १।११०।४)

(सायनभाष्य) एवं कर्माणि कृत्वा मर्तासो मनुष्या अपि सन्तः अमृतत्व देवत्वं आनशुः आनशिरे । कृतैः कर्मभिः लेभिरे ॥

ऋभुदेव प्रथम मनुष्य थे। पर शुभकर्म करनेसे वे देवत्व प्राप्त कर सके। सभी मनुष्य इस बातका स्मरण रखें। नरका नारायण बननेका भाव यहां है। मरुत् देव स्वयं मर्त्य हैं, पर उनका उपासक अमर होगा ऐसा कहा है, इसमें मरुत् भी देवत्वकी प्राप्ति कर चुके थे, यह बात मानी गयी है। क्योंकि अब मरुत् स्वयं देवही हैं और इन्द्रादि देवोंकी पंक्तिमें बैठनेके अधिकारी हैं। ऋभुदेवोंकी बात भी ऐसी ही है। यहां मनुष्योंको देवत्वकी प्राप्ति होनेकी बात स्पष्ट हुई है, जैसे मरुत् और ऋभु प्रथम मानव होते हुए पश्चात् शुभकर्मोंके कारण देव बने, वैसे ही अन्य मनुष्य भी बन सकते हैं।

तृष्णाके साथ दुर्गतिका नाश

' निर्ऋतिः तृष्णया सह पदीष्ट ' (मं. ६) विपदा तृष्णाके साथ विनष्ट हो जाय। सब विपत्तियोंकी जडमें अतितृष्णा है। सब जगत्के झगडे अतितृष्णासे होते हैं। इसलिये दुर्दशाका नाश तब होगा जब कि तृष्णाका नाश होगा। यह भाव हरएकको यहां देखनेयोग्य है।

सूक्तका भाव

जिस तरह पिता अपने निज पुत्रका प्रेमसे पालन करता है, उसी तरह वीर राष्ट्रके लोगोंका पालन करें (१), विना उद्देश्यके कभी किसी जगह न जाओ। वीर हमारे स्थानपर अवश्य रहें, हम से दूर न हों। अपनी गौवें कहां चरती हैं, कौनसा पानी पीती हैं, क्या खाती हैं इसका ध्यान रखो (२), सुख और आनन्द बढाने के लिये नयी नयी आयोजनाएं करते रहो (३), ऐसा पुरुषार्थ करो कि जिसका वर्णन करने और सुननेवाले अमर बनें (४), प्रभुका भक्त प्रभुको प्रिय होता है और वह मृत्युके पास भी नहीं जाता (५), हम प्रभुके भक्त होनेके कारण हमारे पास कभी किसीतरह की दुर्दशा नहीं आवेगी, क्योंकि हमने तृष्णा छोड दी है इस कारण दुर्दशा भी हमसे दूर ही रहेगी (६), मरुदेशमें भी वृष्टि करनेवाले ये मरुत् देव (वायु) हैं (७), जब वृष्टि होती है तब मेघोंमें बिजली चमका करती है (८), जब बडी वृष्टि होती है तब बडे मेघ आकाशमें आनेके कारण दिनमें भी अन्धेरा होता है (९), मेघगर्जनासे पृथ्वीपरका सब कुछ, मानव भी कांपते हैं (१०), वृष्टि होनेके समय वेगसे वायु बहते हैं, नदियां भी बढती हैं (११), वीरोंके रथ, आरे, घोडे, लगाम आदि सब उत्तम और सुदृढ हों, (१२) ज्ञानीकी सदा प्रशंसा करो (१३), काव्य करनेके समय पहिले मनही मनमें श्लोककी रचना अक्षरोंके प्रमाणसे करो और पश्चात् उसको प्रकट रूपमें कहो (१४), तेजस्वी वीरोंके संघको वन्दन करो। (१५)

मरुत् वीर मूलतः आधिदैविक जगत्में वायु हैं, अतः इनमें से कई मंत्र वायुपरक हैं। वायु वृष्टि करता है, इसलिये वृष्टिका भी वर्णन यहां है। शेष वर्णन वीरोंका है। अधिदैवतमें वायु, अधिभूतमें शूरवीर, और अध्यात्ममें प्राण ये मरुतोंके रूप हैं।

(४) वीर-काव्य

(ऋ. १।३९) कण्वो घौरः। मरुतः। प्रगाथः= विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः।

प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ।
कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्पसा कं याथ कं ह धूतयः ॥ १ ॥

अन्वयः- हे धूतयः मरुतः ! यत् मानं परावतः इत्था शोचिः न प्र अस्यथ, कस्य क्रत्वा, कस्य वर्पसा, कं याथ, कं ह ? ॥ १ ॥

अर्थ— हे शत्रुओंको जडसे उखाडनेवाले वीर मरुतों! जब तुम अपना बल अत्यंत दूर स्थानसे बिजलीकी भांति यहांपर फेंकते हो, तब भला यह किस उद्देश्यसे, किस आयोजनासे, कहां जानेके लिये, या किसके निकट पहुंचनेके लिये (फेंकते हो) ? ॥ १ ॥

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २ ॥
परा ह यत् स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु ।
वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥ ३ ॥
नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥ ४ ॥
प्र वेपयन्ति पर्वतान् वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ॥ ५ ॥
उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥ ६ ॥
आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥ ७ ॥

वः आयुधा पराणुदे स्थिरा, उत प्रतिष्कभे वीळू सन्तु, युष्माकं तविषी पनीयसी अस्तु, मायिनः मर्त्यस्य मा ॥२॥

तुम्हारे हथियार शत्रुदलको हटानेके लिये सुदृढ रहें, और (शत्रुको) प्रतिबंध करनेके लिये बलवाले भी हों। तुम्हारी शक्ति प्रशंसनीय हो। पर कपटी शत्रुका बल कभी न (बढे) ॥ २ ॥

हे नरः! यत् स्थिरं परा हत, गुरु वर्तयथ, पृथिव्याः वनिनः वि याथन, पर्वतानां आशाः वि (याथन) ह ॥३॥

हे नेता वीरों! जब तुम सुस्थिर शत्रुको भी उखाडकर दूर फेंकते हो, बलिष्ठ शत्रुको भी हिला देते हो, पृथ्वीपरके वनोंका भी नाश करते हो, तब तुम पर्वतोंके चारों ओर तो सुगमतासे ही निकल जाते हो ॥ ३॥

हे रिशादसः! अधि द्यवि वः शत्रु नहि विविदे, भूम्यां न, हे रुद्रासः! युष्माकं युजा आधृषे तविषी नू चित् तना अस्तु ॥ ४ ॥

हे शत्रुका विनाश करनेवाले वीरों! द्युलोकमें तो तुम्हारे लिये शत्रु नहीं है, भूमिपर भी नहीं है। हे शत्रुको रुलानेवाले वीरों! तुम्हारे साथ रहनेसे शत्रुपर हमला करनेकी मेरी शक्ति शीघ्रही बढ जाय ॥ ४ ॥

हे देवासः मरुतः! दुर्मदा इव, पर्वतान् प्र वेपयन्ति, वनस्पतीन् वि विञ्चन्ति, सर्वया विशा प्रो आरत ॥५॥

हे देववीर मरुतों! शक्तिके कारण मतवाले होनेके समान तुम्हारे वीर पर्वतोंको हिला देते हैं, वृक्षोंको उखाड देते हैं। ऐसे शक्तिवाले तुम सब जनताको प्रगति करनेके लिये सहायक होओ ॥ ५ ॥

रथेषु पृषतीः उपो अयुग्ध्वं, रोहितः प्रष्टिः वहति, वः यामाय पृथिवी चित् आ अश्रोत्, मानुषा अबीभयन्त ॥६॥

तुम अपने रथोंमें धब्बोंवाली हिरनियां जोडते हो और लाल रंगवाला बडा हिरन धुरावो खींचता है। तुम्हारे जानेका शब्द भूमि (पर) सुनाई देता है,(जिससे) मानव भयभीत होते हैं॥६॥

हे रुद्राः! तनाय कं मक्षु वः अवः आ वृणीमहे, यथा पुरा बिभ्युषे कण्वाय नूनं गन्त, इत्था अवसा नः (गन्त) ॥ ७ ॥

हे शत्रुको रुलानेवाले वीरों! हमारे बालबच्चोंका कल्याण होनेके लिये शीघ्रही तुम्हारा संरक्षण हमें मिल जाय, ऐसा वर हम चाहते हैं। जैसे पहिले भयभीत कण्वकी ओर तुम शीघ्र जा चुके थे, वैसेही हमारे पास अपनी रक्षक शक्तिके साथ आओ ॥ ७ ॥

युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते ।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ८
असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः ।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ९
असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् १०

हे मरुतः ! यः अभ्वः युष्मा इषितः मर्त्य-इषितः नः आ ईषते, तं शवसा वि युयोत, ओजसा वि (युयोत), युष्माभिः ऊतिभिः वि (युयोत) ॥८॥

हे वीर मरुतों ! जो घातपात करनेवाला हथियार तुमने फेंका अथवा किसी मानवने फेंका हमपर गिरता हो, तो उसे अपने बलसे हटा दो, अपने सामर्थ्यसे उसे दूर करो, तुम्हारी संरक्षक योजनाद्वारा उसे विनष्ट करो ॥ ८ ॥

हे प्रयज्यवः प्रचेतसः मरुतः ! कण्वं असामि हि दद, अ-सामिभिः ऊतिभिः, विद्युतः वृष्टिं न, नः आ गन्त ॥९॥

हे पूजनीय और ज्ञानी मरुद्वीरों ! कण्वको जैसा तुमने संपूर्ण रूपसे आश्रय दिया था, वैसेही संपूर्ण संरक्षक शक्तियोंके साथ, बिजलियां वृष्टिके साथ जातीं हैं वैसे, तुम हमारे पास आओ ॥ ९ ॥

हे सुदानवः ! असामि ओजः, असामि शवः, बिभृथ, (हे) धूतयः मरुतः ! ऋषि-द्विषे परि-मन्यवे, इषुं न, द्विषं सृजत ॥१०॥

हे उत्तम दाताओं ! तुम संपूर्ण बल और सामर्थ्य धारण करते हो । हे शत्रुको हटानेवाले वीरों! ऋषियोंका द्वेष करनेवाले क्रोधी शत्रुको विनष्ट करनेके लिये बाणके समान, दूसरे शत्रुको ही उसपर छोड दो ॥ १० ॥

शत्रुपर शत्रुको ही छोडना

' परिमन्यवे, इषुं न, द्विषं सृजत । ' (मं. १०) दुष्ट शत्रुका नाश करनेके लिये, जैसे बाण उसपर छोडते हो, वैसेही दूसरे शत्रुको उसपर छोड दो । अपने एक शत्रुपर अपने दूसरे शत्रुको छोडना, जिससे आपसमें लडते हुए दोनों शत्रु एक दूसरेके आघातसेही मर जायंगे और अनायास ही अपना विजय होगा । अतः यह शत्रुका नाश करनेकी युक्ति बडी अच्छी है ।

(धूतयः) जैसा वायु वृक्षोंको कंपाता है, उस तरह शत्रुको कंपानेवाले वीर होने चाहिये । जिसके भयसे शत्रु कांप उठें, वे वीर ये हैं । (मं. १, १०)

(आयुधा स्थिरा वीळु) वीरोंके आयुध सुदृढ और सामर्थ्यवान् हों, शत्रुसे अधिक सामर्थ्यवान् हों । शत्रुके आयुधोंसे कभी कमजोर न हों । (तविषी पनीयसी) शक्ति भी प्रशंसनीय हो, (प्रतिष्कभे वीळु) शत्रुका प्रतिबंध करनेका सामर्थ्य विशेषही संगठित हो । पर ऐसा सामर्थ्य (मायिनः मा) कपटी शत्रुके पास कभी न हो । अपना सामर्थ्य बढे परन्तु कपटी दुष्ट शत्रुका सामर्थ्य कभी न बढे । (मं. २)

(स्थिरं परा हत, गुरु वर्तयथ) स्थिर शत्रुको उखाडकर दूर फेंक देते, और बलिष्ठ शत्रुको भी हटा देते हैं वे वीर हैं । (यहां वीरोंका कर्तव्य बताया है, वह सबको स्मरण रखनेयोग्य है ।) (मं. ३)

(रिश-अदसः) शत्रुको खानेवाले वीर हों, शत्रुका संपूर्ण नाश करनेका तात्पर्य यहां है । (रुद्रासः) शत्रुको रुलानेवाले ये वीर हैं । (आवृधे तविषी तना अस्तु) शत्रुपर हमला करनेकी शक्ति बहुतही बढाई जाय । वीरोंको ऐसा करना योग्य है । (मं. ४)

(सर्वथा विशः प्रो आरत) वीर सब प्रजाजनोंके साथ रहें और उनकी प्रगतिके लिये यत्न करते जायँ । (मं. ५)

(व. यामाय मानुषा अबीभयन्) आपके हमलोंके कारण मनुष्य डरते हैं । अर्थात् वीर शत्रुपर ऐसा हमला करें कि जिसको देखकर सब लोग भयभीत हो जायँ (मं. ६)

(यः अ-भ्वः, तं शवसा ओजसा वि युयोत) जो अपूर्व मारक शस्त्र है, उनको बलसे और सामर्थ्यसे हटा दो । (मं. ८)

(अ-साभि ओजः शवः च बिभृप) बड़ा सामर्थ्य और बल शूरवीर धारण करें और शत्रुको उखाडकर फेंक दें। (मं. १०)

इस तरह इन वीर काव्योंमें वीरोंके लिये बड़ी आवश्यक सूचनाएं दी हैं। पाठक इनको अपनावें।

(५) क्षात्रबलका संवर्धन

(ऋ. १।४०) कण्वो घौरः । ब्रह्मणस्पतिः । प्रगाथः= विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः ।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे । उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा १
त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते । सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके २
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ३
यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः । तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ४
प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् । यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ५
तमिद्वोचेमा विदथेषु शंभुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ६

अन्वयः— हे ब्रह्मणस्पते ! उत्तिष्ठ, देवयन्तः (वयं) त्वा ईमहे । सुदानवः मरुतः उप प्र यन्तु । हे इन्द्र ! सचा प्राशुः भव ॥ १ ॥

हे सहसः पुत्र ! मर्त्यः हिते धने त्वां इत् उपब्रूते हि । हे मरुतः ! यः वः आचके, (सः) स्वश्व्यं सुवीर्यं आ दधाति ॥ २ ॥

ब्रह्मणस्पतिः प्र एतु । सूनृता देवी प्र एतु । देवाः नर्यं पङ्क्तिराधसं वीरं यज्ञं नः अच्छ नयन्तु ॥ ३ ॥

यः वाघते सूनरं वसु ददाति, सः अक्षिति श्रवः धत्ते । तस्मै सुवीरां सुप्रतूर्तिं अनेहसं इळां आ यजामहे ॥ ४ ॥

ब्रह्मणस्पतिः उक्थ्यं मंत्रं नूनं प्र वदति, यस्मिन् (मन्त्रे) इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा देवाः ओकांसि चक्रिरे ॥५॥

हे देवा ! तं इत् शंभुवं अनेहसं मन्त्रं विदथेषु वोचेम । हे नरः ! इमां वाचं प्रतिहर्यथ च । विश्वा इत् वामा वः अश्नवत् ॥ ६ ॥

अर्थ— हे ज्ञानके स्वामिन् ! उठो । देवत्वकी इच्छा करनेवाले (हम) तुम्हारी प्रार्थना करते हैं । उत्तम दानी मरुद् वीर साथ साथ रहकर (कतारमें) यहां आ जायँ । हे इन्द्र ! सबके साथ रहकर इस सोमरसका पान कर ॥ १ ॥

हे बलके लिये उत्पन्न होनेवाले वीर ! मनुष्य युद्ध छिड जानेपर तुम्हेंही सहायतार्थ बुलाता है । हे मरुतों ! जो तुम्हारे गुण गाता है, (वह) उत्तम घोडोंसे युक्त और उत्तम वीरतावाला धन पाता है ॥ २ ॥

ज्ञानी (ब्रह्मणस्पति) हमारे पास आ जावे । सत्यरूपिणी देवी भी आवे । सब देव मनुष्योंके लिये हितकारी, पंक्तिमें संमानयोग्य, उत्तम यज्ञ करनेवाले वीरको हमारे पास ले आवें ॥३॥

जो यज्ञकर्ताको उत्तम धन देता है, वह अक्षय यश प्राप्त करता है । उसके हितार्थ हम उत्तम वीरोंसे युक्त, शत्रुका हनन करनेवाली, अपराजित- मातृभूमि (इळा देवी) की प्रार्थना करते हैं ॥ ४ ॥

ब्रह्मणस्पति पवित्र मंत्रका अवश्यही उच्चारण करता है। जिस (मंत्र) में इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा देवोंने (अपने) घर बनाये हैं ॥ ५ ॥

हे देवों ! उस सुखदायी अविनाशी मंत्रको हम यज्ञमें बोलते हैं । हे नेता लोगों ! इस (मंत्ररूप) वाणीकी यदि प्रशंसा करोगे, तो सभी सुख तुम्हें मिलेंगे ॥ ६ ॥

को देवयन्तमश्नवज्जनं को वृक्तबर्हिषम् । प्रप्र दाश्वान् पस्त्याभिरस्थितान्तर्वावत् क्षयं दधे ७
उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिर्भये चित् सुक्षितिं दधे।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने नार्भे अस्ति वज्रिणः ८

देवयन्तं जनं कः अश्नवत्? वृक्तबर्हिषं कः (अश्नवत्)? दाश्वान् पस्त्याभिः प्रप्र अस्थित । अन्तर्वावत् क्षयं दधे ॥ ७ ॥

देवत्वकी इच्छा करनेवाले मनुष्यके पास (ब्रह्मणस्पतिको छोडकर) कौन भला दूसरा आवेगा ? आसन फैलानेवाले उपासकके पास कौन (दूसरा आवेगा)? दाता अपनी प्रजाके साथ प्रगति करता है । संतानोंवाले घरका आश्रय करते हैं ॥ ७ ॥

(ब्रह्मणस्पतिः) क्षत्रं उप पृञ्चीत । राजभिः (शत्रून्) हन्ति । भये चित् सुक्षितिं दधे । वज्रिणः अस्य महाधने न वर्ता अस्ति, न तरुता, न अर्भे (अपि अस्ति) ॥ ८ ॥

(ब्रह्मणस्पति) क्षात्रबलको संचय करता है । इस वज्रधारीके साथ होनेवाले बडे युद्धमें (कोई भी) इसका निवारण करनेवाला, पराजय करनेवाला नहीं है। और छोटे युद्धमें भी कोई नहीं है ॥ ८ ॥

क्षात्रधर्म

इस सूक्तका मुख्य उपदेश यह है कि **(क्षत्रं उप पृञ्चीत)** क्षात्रशक्तिको संगठित करो, उसे संग्रहित करके बढाओ, क्षात्रशक्तिका संवर्धन करो। यह क्षात्रशक्ति इतनी बढे कि जिससे **(अस्य वज्रिणः महाधने अर्भे [वा] वर्ता तरुता न अस्ति)** इस शूर वीरके साथ होनेवाले बडे अथवा छोटे संग्राममें इसको परास्त करनेवाले कोई न रहे। यह है क्षात्रशक्तिकी पराकाष्ठा । यह वीर अपने **(राजभिः शत्रून् हन्ति)** माण्डलिकोंको साथ लेकर शत्रुओंपर हमला करता है, और उनको विनष्ट कर देता है । सबको काट देता है । (मं. ८) ये वीर (**सहसः पुत्रः**) बलके कार्यके लियेही उत्पन्न हुए सुपुत्र हैं । बलसे होनेवाला हरएक कार्य ये आनंदसे करते हैं। **(मर्त्यः धने हिते तं इत् उपब्रूते)** मनुष्य युद्ध छिड जानेपर उस वीरको ही अपनी सहायतार्थ बुलाते हैं। उसकी शक्तिका यह प्रभाव अन्य मनुष्योंपर रहता है । **(सः स्वश्व्यं सुवीर्यं आदधीत)** वह अपने पास उत्तम घोडे रखता है और वह वीर्यवान् पराक्रम करनेवाला शूर वीर भी होता है । (मं. २)

इस शूरका उद्देश यही होता है कि वह **(नर्यं**=नरेभ्यः हितं) सब मानवोंका हित करनेके लिये तत्पर रहे, (वीरं वीरयति अमित्रान्) शत्रुओंको अपनी वीरतासे दूर करे, (यज्ञं) यजन याजन करे करावे, श्रेष्ठोंका सत्कार करे, मध्यमोंका संगठन करे और जो हीनदीन हों उनकी सहायता करे। यही कार्य वह करता है। ऐसा पवित्र कार्य करनेसे वह (पंक्ति-राधसं) पंक्तिकी सम्यक् सिद्धि करे, इसके आगमनसे पंक्तिकी शोभा बढे। पंक्तिका यश बढानेवाला यह हो। ऐसा वीर पुत्र ईश्वरकी कृपासे हमें मिले, यही सबकी इच्छा रहनी चाहिये । (मं. २)

इसी वीरके लिये **(सुवीरं सुप्रतूर्तिं अनेहसं इळां आ यजामहे** । मं. ४) सुवीर प्रसवनेवाली, शत्रुओंका नाश करानेवाली, कभी पराजित न हुई जो अन्नदात्री (मातृभूमि है, उसकी) हम प्रार्थना करते हैं । मातृभूमिके लिये हम अपने सर्वस्वका यज्ञ करते हैं ।

'इळा' के अर्थ 'वाणी, गौ, भूमि, अन्न' आदि अनेक हैं ।

ज्ञानी राष्ट्रमें वीरताका क्षात्रतेज बढानेका कार्य करे । वही **'ब्रह्मणः -पति'** है । ज्ञानका पति, ज्ञानका स्वामी, ज्ञानका देव, ज्ञानीही है । **(ब्रह्मणस्पते उत्तिष्ठ** । मं. १) हे ज्ञानी उठो और राष्ट्रमें क्षात्रवृत्तिको जगाओ। जो देवत्वका भाव अपने अन्दर बढानेके इच्छुक हैं, उनकी संगठना की जाय । उत्तम दान अर्थात् आत्मसमर्पण करनेवाले वीर (उप प्र यन्तु) समीप आकर प्रगति करनेके लिये आगे बढें । यही वीरता बढानेवाला महामंत्र है ।

(ब्रह्मणस्पतिः प्र एतु । मं. ३) ज्ञानी राष्ट्रकी प्रगति करे । **(सूनृता देवी प्र एतु)** सत्यताकी प्रगति हो। सब लोग सत्यका आश्रय करके अपने व्यवहार करते रहें ।

सत्य पालनसेही मानवधर्म सिद्ध हो सकता है।

(यः वसु ददाति सः अक्षिति श्रव धत्ते । मं. ४) जो धनका दान करता है वह अक्षय यश कमाता है । राष्ट्रके उत्थानमें इस दानका महत्त्व अत्यधिक है।

(ब्रह्मणस्पतिः मंत्रं वदति । मं. ५) वह ज्ञानी एक शुभ मंत्र बोलता है, वह मंत्र (शंभुवं अनेहसं मंत्रं विदथेषु वोचेम । मं. ६) सबका कल्याण करनेवाला, पराभव और विनाशसे बचानेवाला रहता है, इसीलिये यह युद्धके समय बोला जाता है।

इस तरह राष्ट्रमें ज्ञानी क्षात्रवृत्तिको बढावे और राष्ट्रमें क्षत्रिय वीर उन्नत हों। इसीसे राष्ट्रका उत्कर्ष होता है। पाठक इस सूक्तके एक एक पदका विशेष मनन करें। यह क्षात्रविद्याका उत्तम सूक्त है।

(६) शत्रुका निवारण

(ऋ. १।४१) कण्वो घौरः । वरुणमित्रार्यमणः, ४-६ आदित्याः । गायत्री ।

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा । नू चित् स दभ्यते जनः ॥ १
यं बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः । अरिष्टः सर्व एधते ॥ २
वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजान एषाम् । नयन्ति दुरिता तिरः ॥ ३
सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ॥ ४
यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा । प्र वः स धीतये नशत् ॥ ५
स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना । अच्छा गच्छत्यस्तृतः ॥ ६

अन्वयः- प्रचेतसः वरुणः मित्रः अर्यमा (देवाः) यं रक्षन्ति, सः जनः नू चित् दभ्यते ? ॥ १ ॥

(देवाः) यं बाहुता इव पिप्रति, (यं) मर्त्यं रिषः पान्ति, (सः) सर्वः अरिष्टः एधते ॥ २ ॥

राजानः (देवाः) एषां पुरः दुर्गा वि घ्नन्ति, द्विषः वि (घ्नन्ति), दुरिता तिरः नयन्ति ॥ ३ ॥

हे आदित्यासः ऋतं यते पन्थाः सुगः अनृक्षरः । अत्र वः अवखादः न अस्ति ॥ ४ ॥

हे नरः आदित्याः ! यं यज्ञं ऋजुना पथा नयथ, सः वः धीतये प्र नशत् ? ॥ ५ ॥

सः मर्त्यः अस्तृतः रत्नं विश्वं वसु अच्छ गच्छति, उत त्मना तोकं (गच्छति) ॥ ६ ॥

अर्थ— उत्तम ज्ञानी वरुण, मित्र, अर्यमा ये देव जिसकी सुरक्षा करते हैं, उस मानवको कौन भला दबा सकता है ? ॥ १ ॥

(ये देव) जिसका अपने बाहुबलसे जैसा (हो वैसा) पोषण करते हैं और (जिस) मानवको हिंसक शत्रुसे बचाते हैं, (वह) सब प्रकारसे अहिंसित होता हुआ बढताही है ॥ २ ॥

राजा (के समान ये देव) शत्रुओंके नगरों और किलोंका नाश करते हैं, द्वेष करनेवालोंका भी नाश करते हैं और पापोंसे परे पहुंचाते हैं ॥ ३ ॥

हे अदितिके पुत्रों ! सत्य मार्गसे जानेवालेके लिये मार्ग सुगम और कण्टकरहित होता है । इससे यहां तुम्हारे लिये बुरा खाद्य कभी नहीं मिलता ॥ ४ ॥

हे नेता, अदितिके पुत्रों ! जिस यज्ञको तुम सरल मार्गसे चलाते हो, वह (यज्ञ) आपके ध्यानमें कैसा भला नष्ट होगा ? ॥ ५ ॥

वह मनुष्य विनष्ट न होता हुआ रत्न आदि सब धन सहजहीसे प्राप्त करता है, और अपने लिये पुत्र भी (प्राप्त करता है) ॥ ६ ॥

कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः । महि प्सरो वरुणस्य ७
मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् । सुम्नैरिद् व आ विवासे ८
चतुरश्चिद् ददमानाद् बिभीयादा निधातोः । न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ९

हे सखायः ! मित्रस्य अर्यम्णः वरुणस्य महि प्सरः स्तोमं कथा राधाम ? ॥ ७ ॥

हे मित्रो ! मित्र, अर्यमा और वरुणके महत्त्वके अनुरूप स्तोत्र हम किस तरह सिद्ध करेंगे ? ॥७॥

देवयन्तं घ्नन्तं वः मा प्रति वोचे, शपन्तं मा (प्रति वोचे)। सुम्नैः इत् वः आ विवासे ॥८॥

देवत्व-प्राप्तिके इच्छुकका जो नाश करता है, आपसे (हम कहते हैं कि) उससे हमारा भाषण भी न होवे, (उसी तरह) गाली देनेवालेके साथ भी (न भाषण होवे)। शुभ संकल्पोंके द्वाराही आपको हम तृप्त करेंगे ॥ ८ ॥

दुरुक्ताय न स्पृहयेत् । चतुरः ददमानात् आ निधातोः बिभीयात् ॥ ९ ॥

दुष्ट भाषण करनेकी इच्छा कोई न करे । चारों पुरुषार्थोंका जो धारण करता है, उससे विरोध करनेवालेसे मनुष्य डरे ॥९॥

शत्रुका निवारण

शत्रुका निवारण करना चाहिये । शत्रुके निवारण करनेका मुख्य साधन ' ज्ञान और विज्ञान ' है इसलिये कहा है, कि **(प्र-चेतसः यं रक्षन्ति, स जनः न दभ्यते । मं. १)** *ज्ञानी लोग जिसकी सुरक्षा करते हैं, वह मनुष्य दबाया नहीं* जा सकता । जिसके पीछे ज्ञानकी शक्ति है, वह मनुष्य पराधीन नहीं होगा । यह ज्ञानका महत्त्व है । यहां कहा है कि केवल सुरक्षाही मुख्य नहीं है, परंतु ज्ञानपूर्वक ज्ञानविज्ञानद्वारा होनेवाली सुरक्षा मुख्य है ।

(प्रचेतसः यं पिप्रति, रिषः पान्ति, सः अरिष्टः एधते । मं. २) ज्ञानी जिसकी पालना करते हैं, ज्ञानी जिसको विद्वेषक शत्रुओंसे बचाते हैं, वह विनाशको प्राप्त नहीं होता । इतनाही नहीं, अपि तु वह बढता जाता है । पूर्व मंत्रसे **'प्रचेतसः'** (*ज्ञानी*) *यह पद इस मंत्रमें तथा अगले* मंत्रोंमें लेना योग्य है । ज्ञानी जिसकी पोषणा करते हैं और जिसको हिंसकोंसे सुरक्षित रखते हैं, वह न केवल विनष्ट नहीं होता, *परंतु वह वृद्धिंगत होता है । ज्ञानीकी सहायतासे* यह लाभ है ।

(प्रचेतसः राजानः एषां (शत्रूणां) पुरः दुर्गा बिभ्रन्ति, (एषां) द्विषः विघ्नन्ति, दुरिता तिरः नयन्ति । मं. ३) ज्ञानी क्षत्रिय वीर राजपुरुष इनके शत्रुओंके नगरों और किलोंको तोड देते हैं, इनके विद्वेषक वैरियोंका नाश करते हैं और इनको पापोंसे बचाकर दूर पहुंचा देते हैं । इस तरह सब प्रकारसे ज्ञानियोंकी सहायता लाभकारी होती है । यहां शत्रुके किलों दुर्गों और नगरियोंका नाश करके शत्रुसे बचानेका कार्य विज्ञानियोंको करना चाहिये, ऐसा स्पष्ट सूचित किया है । द्वेषिओं और पापोंको सदाके लिये दूर करना चाहिये ।

(ऋतं यते पन्थाः सुगः अनृक्षरः च । मं. ४) *सत्य मार्गसे जानेवालेके लिये इस विश्वमें सुगम और कण्टक-* रहित मार्ग मिलता है । एक बार सत्य मार्गसे जानेका निश्चय करना चाहिये । यह हो जाय तो आगेका मार्ग सरल है । **(अत्र अवखादः नास्ति । मं. ४)** इसके *लिये अयोग्य निंद्य भोजन कभी नहीं मिलेगा । सदा उत्तमोत्तम भोजनही* इसको मिलता रहेगा । क्योंकि जो सन्मार्गसे जाता है, उसका विनाश कभी नहीं होगा । यह दर्शानेके लिये ही अगले मंत्रमें कहा है कि **(यं ऋजुना पथा नयथ, सः (कथं) प्र नशत् । मं. ५)** जिसको सरल मार्गसे चलाया जाता है वह (कैसे) विनष्ट होगा ? अर्थात् उसका विनाश कभी नहीं होगा । **(सः अस्तृतः विश्वं वसु त्मना तोकं च गच्छति । मं. ६)** वह कभी विनष्ट नहीं होता, वह सब धन प्राप्त करता है और उत्तम औरस संतान भी प्राप्त करता है ।

सुरक्षाका पथ्य

पूर्वोक्त सुरक्षाका जो मार्ग कहा है, उसका थोडासा पथ्य है। वह ऐसा है—

(देवयन्तं घ्नन्तं मा प्रतिवोचे । मं. ८) देवत्वकी प्राप्तिका अनुष्ठान करनेवालेका जो नाश करता है ऐसे दुष्टके साथ बोलना भी नहीं चाहिये । उसके पूछनेपर भी उसके साथ बोलना नहीं चाहिये। स्वयं ऐसे दुष्टसे कोई व्यवहार कभी करना नहीं चाहिये, इतनाही नहीं, परन्तु वह आकर बोलने लगे तो उत्तरतक नहीं देना चाहिये । उसपर संपूर्ण बहिष्कार डालना चाहिये । (शपन्तं मा प्रति वोचे । मं. ८) शाप गालीगलोच देनेवालेसे भी बोलना नहीं चाहिये। तथा (सु-म्नैः आ विवासे। मं. ८) उत्तम मनके शुभ संकल्पोंसे ही ईश्वरकी सेवा करते रहना चाहिये। दूसरोंने गाली दी तो उसका जवाब गालीसे नहीं देना चाहिये । यह एक आचारका उत्तम नियम है । इसी तरह (दुरुक्ताय न स्पृहयेत् । मं. ९) दुष्ट भाषण करनेवालेको अपने सम्मुख उपस्थित भी नहीं होने देना चाहिये । बुरा भाषण करनेवालेको अपने सम्मुख नहीं चाहना चाहिये । (चतुरः वदमानात् आ निधातोः बिभीयात् । मं. ९) चारों पुरुषार्थ करनेका सामर्थ्य धारण करनेवालेको जो नीचे दबाता है, उससे डरना चाहिये, क्योंकि वह कब किसका घात करेगा, इसका पता नहीं है । इसलिये इसके संपर्कसे दूर रहना चाहिये। आचारका यह पथ्य है ।

इस तरहके जो सुवीर हैं, उनके (महि प्सरः स्तोमं कथा राधामः । मं. ७) बडे यशका स्तोत्र हम किस तरह रचें और कैसा गायें ? क्योंकि यही कार्य गाने योग्य है । ये वीर (वरुणः=वरिष्ठ) श्रेष्ठ वीर, (मित्रः) मित्रवत् व्यवहार करनेवाला वीर, (अर्यमा) श्रेष्ठ कौन है इसका विचार करनेवाला, ये (देवाः) देववीर हैं। ये (प्रचेतसः) ज्ञानी हैं और येही सबकी सुरक्षा करते हैं । मानवोंको उचित है कि वे अपनेमें इन गुणोंकी धारणा करें और अपनेमें देवत्वका परम उत्कर्ष करें ।

(७) बटमारका नाश

(ऋ. १।४२) कण्वो घौरः । पूषा । गायत्री ।

सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात् । सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः १
यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति । अप स्म तं पथो जहि २
अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् । दूरमधि स्रुतेरज ३
त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्य चित् । पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ४
आ तत् ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे । येन पितॄनचोदयः ५

अन्वयः— हे विमुचो नपात् पूषन् ! (अस्मान्) अध्वनः सं तिर । अंहः वि (तिर) । हे देव ! नः पुरः प्र सक्ष्व ॥ १ ॥

हे पूषन् ! यः अघः वृकः दुःशेवः नः आदिदेशति, तं पथः अप जहि स्म ॥ २ ॥

त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितं स्रुतेः दूरं अधि अप अज ॥ ३ ॥

त्वं कस्य चित् तस्य द्वयाविनः अघशंसस्य तपुषिं पदा अभि तिष्ठ ॥ ४ ॥

हे मन्तुमः दस्र पूषन् ! ते तत् अवः आ वृणीमहे, येन पितॄन् अचोदयः ॥ ५ ॥

अर्थ— हे मुक्त करनेवाले पूषा ! (हमें) मार्गके पार पहुंचा दो । (हमें) पापके परे (कर दो) । हे देव ! हमें आगे बढाओ ॥ १ ॥

हे पूषा ! जो कोई पापी, क्रूर और सेवाके अयोग्य शत्रु हमें आदेश करता हो, उसको मार्गसे दूर करो ॥ २ ॥

उस बटमार चोर कपटीको मार्गसे दूर करके विनष्ट करो ॥ ३ ॥

तू किसी भी उस दुरंगे पापीके शरीरपर अपने पांवसे दबाकर खडा रह ॥ ४ ॥

हे शत्रुका दमन करनेवाले ज्ञानी पूषा ! तुम्हारा वह रक्षा-सामर्थ्य हम चाहते हैं कि जिससे तुमने पितरोंको उत्साह दिया था ॥ ५ ॥

अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुषणा कृधि ६
अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु । पूषन्निह क्रतुं विदः ७
अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने । पूषन्निह क्रतुं विदः ८
शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् । पूषन्निह क्रतुं विदः ९
न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि । वसूनि दस्ममीमहे १०

हे विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम ! अध नः धनानि सुषणा कृधि ॥ ६ ॥

हे विश्वमें सौभाग्ययुक्त और सुवर्णके अलंकारोंसे युक्त ! अब हमें धनोंको और उत्तम दानोंको (अर्पण) करो ॥ ६ ॥

सश्चतः नः अति नय, नः सुगा सुपथा कृणु । हे पूषन् ! इह क्रतुं विदः ॥ ७ ॥

बाधा करनेवाले दुष्टोंसे हमें पार ले जाओ । हमें सुगम उत्तम मार्गसे ले चलो । हे पूषन् ! तुम्हें यहाके कर्तव्यका ज्ञान है ॥ ७ ॥

हे पूषन् ! सुयवसं (नः) अभि नय । अध्वने नवज्वारः न (भवतु) । हे पूषन्० ॥८॥

हे पूषन् ! उत्तम जौंवाले देशमें (हमें) ले चलो । मार्गमें नवीन संताप न (होने पावे) । हे पूषन् ! तुम्हें यहाके कर्तव्यका पता है ॥ ८ ॥

हे पूषन् ! शग्धि, पूर्धि, प्र यंसि, शिशीहि । उदरं प्रासि० ॥ ९ ॥

हे पूषन् ! हमें सामर्थ्यवान् बनाओ, (हमें धनधान्यसे) संपन्न करो, (हमें) संपत्तिमान् करो, (हमें) तेजस्वी करो, (हमारे) पेटको भर दो । हे पूषन् ! तुम्हें यहाके कर्तव्यका ज्ञान है ॥ ९ ॥

पूषणं न मेथामसि । सूक्तैः अभि गृणीमसि । दस्मं वसूनि ईमहे ॥ १० ॥

हम पूषाको भूल नहीं सकते । सूक्तोंसे उनकी स्तुति करते हैं । दर्शनीय धनोंको हम चाहते हैं ॥ १० ॥

वेदकी आज्ञाएँ

इस सूक्तमें अनेक आज्ञाएं हैं । यद्यपि ' पूषा ' देवताके उद्देश्यसेही ये प्रार्थनाएं हैं, तथापि मानवोंका सर्वसामान्य धर्म बतानेके लिये और मानवोंको विशेष आदेश देनेके लिये भी इन प्रार्थनाओंका उपयोग आदेशोंके समान किया जा सकता है, यही नयी बात यहां बतानी है । ऐसी स्थितिमें ' पूषा ' का अर्थ ' अपना पोषण करनेवाला ' होगा । देखिये, इन प्रार्थनाओंका रूपान्तर मानवधर्मकी आज्ञाओंमें किस तरह हो सकता है—

१ **पूषन्**= जो पुष्टि चाहता है, पुष्टि करता है ।

२ **विमुच न-पात्**= विमुक्त होनेकी आयोजनासे न गिरनेवाला । अपनी मुक्तिकी, बंधननिवृत्तिकी आयोजनामें दत्तचित्त रहनेवाला ।

३ **अध्वनः सं तिर**- इस मार्गको तैरकर परे पहुंच जा । तैरकर इसके पार हो जा । अपने प्रयत्नसे दुःखसे परे हो जा । दुःख दूर कर । अपना उन्नतिका मार्ग निष्कंटक कर ।

४ **अंहः वि तिर**- पापसे विशेष कर तैरकर पार हो जा । पापसे दूर हो । पापसे अपने आपको बचाओ ।

५ **पुरः प्र सक्ष्व**— आगे बढो, प्रगति करो । (मं. १)

६ **यः अघः वृकः दुःशेवः आदिदेशति, तं पथः अप जहि**— जो पापी क्रूर सेवाके अयोग्य हुकुमत करता हो, उसको मार्गसे हटा दो, उसको दूर कर दो । दुष्टकी आज्ञा कोई न माने । अघः=पापी; वृकः=भेडिया, क्रूर, हिंसक, घातकी; दुःशेवः=सेवा करने अयोग्य । (मं. २)

७ **परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितं स्रुतेः दूरं अधि अप अज**— बटमार चोर कपटीको अपने मार्गसे दूर करके विनष्ट करो । परि+पन्थी— मार्गपर रहकर लूट करनेवाला; मुषीवाणः- सदा चोरीका कार्य करनेवाला; हुरः+चित् = कुटिल कपटी लोगोंको बारंबार उत्साहित करके बुरे कार्योंमें प्रवृत्त करनेवाला, स्रुतिः = मार्ग । (मं. ३)

८ **द्वयाविनः अघशंसस्य तपुषिं पदा अभि तिष्ठ**- दुरंगे पापीके शरीरको अपने पांवके नीचे दबा दे । (मं. ४)

९ पितॄन् अचोदय— रक्षकोंको (सत्कर्ममें) प्रेरित करो। पिता = जनक, उत्पादक, संरक्षक। (मं.५)

१० धनानि सुषणा कृधि— धनोंको सेवन करनेयोग्य करो। सुखसाधन सबको सुखसे प्राप्त हों। (मं. ६)

११ स्रश्चतः अति नय— बाधा करनेवाले दुष्टोंको दूर हटा दो। (मं. ७)

१२ सुगा सुपथा कृणु— सुखसे जानेयोग्य उत्तम मार्ग तैयार करो।

१३ इह क्रतुं विदः— यहांके कर्तव्यको जानो। (मं.७)

१४ सुयवसं नय— उत्तम धान्यवाले प्रदेशके प्रति ले जा। जो भूमि उपजाऊ नहीं है, वहां न जा। (मं. ८)

१५ अध्वने नवज्वारः न भवतु— मार्गमें नया ज्वर, नया कष्ट, नया संताप न हो। (मं. ८)

१६ शग्धि, पूर्धि, प्र यंसि, शिशीहि, उदरं प्रासि- समर्थ बनो, पूर्ण करो (अधूरा न छोडो), संयम बनो, तेजस्वी बनो, उदर भर दो। शक् = समर्थ बनना, शक्तिका संपादन करना; पॄ = भरपूर भरना, समाधान प्राप्त करना, परिपूर्ण होना; प्र-यम् = देना, संयम करना, स्वाधीन करना; शि = तीक्ष्ण करना, शस्त्री धाराको तीक्ष्ण करना, पतला करना, उत्साहित करना। (मं. ९)

१७ पूषणं न मेधामसि = पोषणकर्ताको न भूलें। (मं. १०)

इस तरह मूल प्रार्थना-वाक्योंसे ही कर्तव्यके आदेश बनते हैं। 'हे पिता! हमें अन्न दो' इसमें पुत्र पिताकी प्रार्थना करता है और अन्न मांगता है। पर इसीमें 'अन्न दो, अन्नका दान करो' यह अन्नदानकी आज्ञा भी है। तथा ' (अग्ने! अस्मान् सुपथा राये नय) हमें उत्तम मार्गसे धनके पास ले जाओ, इसमें प्रभुकी प्रार्थना ही है, परंतु (सुपथा राये नय) धन प्राप्त करनेके लिये उत्तम मार्गसे चलो, कभी बुरे मार्गसे न जाओ, यह आदेश भी सर्वसाधारण जनताके लिये है। इस तरह प्रार्थना होते हुए भी वेदमंत्रोंके टुकडे अनेक प्रकारसे मनुष्यको धर्मका उपदेश करते हैं। पाठक इसका अधिक मनन करें और इस तरह मानवधर्मका बोध जानें।

(८) जलचिकित्सक

(ऋ. १।४३) कण्वो घौरः। रुद्रः, ३ रुद्रः मित्रावरुणौ च, ७-९ सोमः। गायत्री, ९ अनुष्टुप्।

कद् रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शंतमं हृदे ॥ १
यथा नो अदितिः करत् पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम् ॥ २
यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विश्वे सजोषसः ॥ ३
गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम् । तच्छंयोः सुम्नमीमहे ॥ ४

अन्वयः— प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे रुद्राय हृदे कत् शंतमं वोचेम ? ॥१॥

अदितिः नः रुद्रियं यथा करत्, यथा पश्वे नृभ्यः गवे, यथा तोकाय (करत्) ॥२॥

मित्रः वरुणः नः यथा चिकेतति, रुद्रः यथा चिकेतति, सजोषसः विश्वे (देवाः चिकेतन्ति) ॥३॥

गाथपतिं मेधपतिं जलाषभेषजं रुद्रं शंयोः तत् सुम्नं ईमहे ॥४॥

अर्थ— विशेष ज्ञानी, अत्यंत सुखदायी महान् रुद्रके लिये हृदयसे कब (हम) शान्तिपाठकके स्तोत्र बोलेंगे ? ॥ १ ॥

अदिति हमारे लिये (रोग दूर करनेका चिकित्साका) उपाय जैसा करे, वैसाही पशु, मानव, गाय और बालबच्चोंके लिये भी करे ॥ २ ॥

मित्र और वरुण हमारे लिये (हित करना) जैसा जानता है, रुद्र जैसा जानता है, (वैसाही) सब उत्साही (देव जानते हैं) ॥ ३ ॥

गाथाओंके स्वामी, यज्ञोंके प्रभु जलचिकित्सक रुद्रके पाससे (हम) शान्ति (की प्राप्ति और अनिष्टको) दूर (करनेसे मिलनेवाला) वह सुख हम प्राप्त करना चाहते हैं ॥ ४ ॥

यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते । श्रेष्ठो देवानां वसुः ५
शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये । नृभ्यो नारिभ्यो गवे ६
अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् । महि श्रवस्तुविनृम्णम् ७
मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त । आ न इन्दो वाजे भज ८
यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामन्नृतस्य ।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ९

यः शुक्रः इव सूर्यः, हिरण्यं इव रोचते, (सः) देवानां श्रेष्ठः वसुः ॥५॥

जो सामर्थ्यवान् होनेसे सूर्यके समान तथा सुवर्णके समान प्रकाशता है, (वह) देवोंमें वैभववान् है ॥ ५ ॥

नः अर्वते मेषाय मेष्ये नृभ्यः नारिभ्यः गवे सुगं शं करति ॥६॥

हमारे घोडे, मेढे, मेढी, पुरुषों, नारियों और गौके लिये वह (रुद्र देव) सुख प्रदान करता है ॥ ६ ॥

हे सोम ! नृणां शतस्य महि तुविनृम्णं श्रवः श्रियं अस्मे अधि नि धेहि ॥७॥

हे सोम ! (हमें) सैकडों मानवोंके लिये पर्याप्त होनेवाला महान् तेजस्वी अन्न (बल या धन) देदो ॥ ७ ॥

सोमपरिबाधः नः मा जुहुरन्त, अरातयः मा। हे इन्दो ! वाजे नः आ भज ॥८॥

सोममें विघ्न करनेवाले शत्रु हमारा घातपात न करें। दुष्ट कंजूस भी (हमें) न (सतावे)। हे सोम ! हमारा बल बढाओ ॥ ८ ॥

हे सोम ! परस्मिन् धामन् ऋतस्य अमृतस्य ते याः आभूषन्तीः प्रजाः मूर्धा नाभा वेनः वेद ॥९॥

हे सोम ! श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले, सत्य और अमृतसे युक्त, ऐसे तेरी पूजा करनेवाली यह प्रजा उच्च स्थानमें अपनेही घरमें विराजे ॥ ९ ॥

वैद्यके लक्षण

१ रुद्र देवताके अनेक रूप हैं, जो रुद्रसूक्तमें वर्णन किये हैं। इनमें 'वैद्य' भी एक रूप है जिसका वर्णन इस सूक्तमें है। रुद्र नाम प्रभुका है और प्रभु विश्वरूप है और उस विश्वरूपमें वैद्य भी एक है। यहांका वैद्य, (जलाष-भेषजः) जलचिकित्सक है। जलं= जल, उदक, पानी; अष = सेवन करना, प्रयुक्त करना, खाना; भेषजः= जलके प्रयोग करनेद्वारा वैद्य जो रोगोंको दूर करता है, वह (जलाष-भेषजः) जलचिकित्सक वैद्य है। इसका वर्णन यहां है। इसका और वर्णन देखिये—

२ **प्रचेताः**– विशेष ज्ञानी, प्रबुद्ध, ज्ञानविज्ञानवान्,

३ **मीळ्हुष्टमः**= अत्यंत सुख देनेवाला, रोग दूर करके आनन्द बढानेवाला,

४ **तव्यस्**— बल बढानेवाला, आयु बढानेवाला, शक्ति बढानेवाला, रोग दूर करके सामर्थ्यकी वृद्धि करनेवाला,

५ **रुद्रः** (रुद्-द्रः)– रोनेके कारणका नाश करनेवाला, रोग दूर करनेवाला। (मं. १)

६ **अदितिः** (अदनात् अदितिः)— खानपानका प्रबंध करनेवाली रुग्णपरिचारिका। खाने, पीने, दवा देने आदिका प्रबंध करनेवाली देवमाता जैसी देवी।

७ **अदितिः रुद्रियं करत**— खानपान यथायोग्य रीतिसे यथासमय करनेवाली जो होती है, वही रोग दूर करनेका औषध सचमुच करती है। क्योंकि पथ्यकी सुव्यवस्थासे ही रोग दूर होते हैं। (मं २)

८ मनुष्य, पशु, गायें, बालबच्चे इन सबके लिये यह खानपानका पथ्य आवश्यक है। (मं. २)

९ मित्र (सूर्य), वरुण (जलदेव), रुद्र तथा सब अन्य देव रोग दूर करते हैं। सूर्यकिरणोंसे, औषधिके रसोंसे, जलसे, विद्युत्से, इस तरह सब अन्य देवोंके सामर्थ्यसे रोग दूर होते हैं। मानवी जीवन सुखमय करना यह सब इन देवोंके सामर्थ्यपरही पूर्णतया अवलंबित है। (मं. ३)

१० **गाथपतिः**— वैद्य गाथाओंको जाने, पूर्वकालके लोगोंके अनुभव गाथामें लिखे रहते हैं। उनको जानना चाहिये। (मं. ४)

११ मेथपतिः— (मिथ्–मेथ्–संगमने) औषधियोंके परस्पर मेलमिलाप, अनेक औषधियोंका मिश्रण करनेका नाम 'मेथ' है। किन औषधियोंका मेल करनेसे क्या लाभ होते हैं, यह जाननेवाला वैद्य चाहिये। इसीका नाम 'संगति-करण' है, जो यज्ञका विषय है।

१२ जलाष-भेषजः = जलचिकित्सक।

१३ शं-योः सुम्नं = शान्ति देनेवाले, रोगको शान्त करनेवाले उपायका नाम 'शं' है और रोग बीज तथा अनिष्ट भावको दूर करनेका नाम 'यु' है। इसीसे 'सु-मनः (सु-म्नं)' सुख होता है। प्रसन्न मन होता है। वैद्यका यही कर्तव्य है। (मं. ४)

१४ सूर्य- शुक्रः– सूर्य वीर्यवर्धक है।

१५ हिरण्यं रोचते = सुवर्ण तेजस्विता बढानेवाला है।

१६ देवानां वसुः– देवताओंमें जो मूल सत्त्व हैं, ये सब मनुष्योंको लाभ देनेवाले हैं। (मं. ५)

१७ घोडे, मेष, मेषी, पुरुष, स्त्रियाँ, गायें आदिको (के रोग दूर होकर इनको इनसे ही) सुख मिलता है। (मं.३;६)

१८ सोम (आदि औषधियाँ) सैकडों मानवोंको पुष्टि करनेवाला अन्न देती हैं। यहां वनस्पतियोंके अन्नका ही उल्लेख है। (हे सोम! तुवि-नृम्णं श्रवः अस्मे नि धेहि) हे सोम! तू विशेष सामर्थ्य बढानेवाला अन्न हमें दो। यह अन्न वनस्पतिसे उत्पन्न ही है। तुवि-नृ-मनः (म्नं) बहुत सामर्थ्य मानवोंमें उत्पन्न करनेवाला (श्रवः) अन्न, यहां 'म्नः मनः' पद मानसिक सामर्थ्यका वाचक है। जिसका मन समर्थ है, उसका शरीर भी समर्थ होता है। (मं. ७)

१९ सोम-परिबाधः— सोमादि वनस्पतियोंसे मिलनेवाले अन्नमें जो बाधा डालते हैं वे मानवोंके शत्रु हैं। वे (नः मा जुहुरन्त) हमें प्रतिबंध न करें अर्थात् वनस्पतियां हमें पर्याप्त प्रमाणमें मिलती रहें। (अ-रातयः मा) कंजूस लोग भी हमें विघ्न न करें। इस तरह औषधियोंसे हम दीर्घायु और बलवान् बनें। (मं. ८)

२० हे इन्दो! नः वाजे आ भज– सोमका रस हमारा बल बढावे। अर्थात् यह रस बल बढाता है। (मं. ८)

२१ ऋतस्य अमृतस्य वेनः– यही सोमरस अमृत अर्थात् अपमृत्युको दूर करनेवाला है, वह सेवनके योग्य है। (मं. ९)

इस तरह वैद्यकीय ज्ञान इस सूक्तमें है। वह मननपूर्वक पाठक जानें।

(नवम मण्डल)

(९) सोम

(ऋ. ९।९४) कण्वो घौरः। पवमानः सोमः। त्रिष्टुप्।

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशः।
अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥१॥

अन्वयः– वाजिनी इव शुभः, सूर्ये न विशः, यत् अस्मिन् धियः अधि स्पर्धन्ते। अपः वृणानः कवीयन् पवते, व्रजं न, पशुवर्धनाय मन्म ॥१॥

अर्थ– ओजस्विनी सेनाके समान शुभ सूर्य (की प्रतीक्षा) में जैसे प्रजाजन (रहते हैं, वैसे) जब इस (सोमके वर्णन) में (कवियोंकी) बुद्धियाँ स्पर्धा करती हैं। (तब) जलके साथ मिलता हुआ (और) कवियोंकी (काव्य बनानेके लिये) इच्छा करता हुआ, (सोम) पशुवर्धन करनेवाले संरक्षक व्रजके समान, स्तोत्र (निर्माण कराता है) ॥ १ ॥

द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त ।
धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम् ॥ २
परि यत्कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा ।
देवेषु यशो मर्ताय भूषन्दक्षाय रायः पुरुभूषु नव्यः ॥ ३
श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ॥ ४
इषमूर्जमभ्य१र्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।
विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून् ॥ ५

अमृतस्य धाम द्विता व्यूर्ण्वन्! स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त। धियः ऋतायन्तीः इन्दुं पिन्वानाः गावः न स्वसरे अभि वावश्रे ॥२॥

अमृतके स्थानको (सोम) दोनों ओरसे खुला करता है। आत्मज्ञानी (सोम) के लिये सब भुवन विस्तृत होते हैं। सरल-भावसे चलनेवाली (कविकी) बुद्धियाँ, सोमरसको (दुग्ध आदिसे मिला कर) बढाती हुई, गौवें जैसी अपनी गोशालामें शब्द करती हैं, (वैसी काव्यगानका शब्द करती हैं) ॥ २ ॥

कविः काव्या यत् परि भरते, शूरः न रथः विश्वा भुवनानि (परि याति)। देवेषु यशः, मर्ताय भूषन्, दक्षाय रायः, पुरुभूषु नव्यः (भवति) ॥३॥

कवि (को स्फूर्ति देनेवाला सोम) काव्योंमें जैसा सब ओरसे भरा रहता है, वैसा शूरका रथ सब भुवनोंमें (भ्रमण करता है। यह सोम) देवोंमें यश, मनुष्यके लिये भूषण और दक्षके लिये संपत्ति (देता हुआ), बहुतसी भूमियोंमें नया (होता है, उत्पन्न होता है) ॥ ३ ॥

श्रिये जातः, श्रिये आ निः इयाय, जरितृभ्यः श्रियं वयः दधाति । श्रियं वसानाः अमृतत्वं आयन् । मितद्रौ समिथा सत्या भवन्ति ॥४॥

संपत्ति (बढाने) के लिये जो उत्पन्न हुआ है, संपत्ति (बढाने) के लिये जो प्रकट हुआ है, वह (सोम) स्तोताओंके लिये दीर्घायु देता है। संपत्तिको प्राप्त करते हुए (उपासक), अमृतत्वको पहुंचते हैं। (इस) सोमके प्रभावमें युद्ध सत्य (यशस्वी) होते हैं ॥ ४ ॥

हे सोम ! इषं ऊर्जं अभि अर्ष । अश्वं गां उरु ज्योतिः कृणुहि । देवान् मत्सि । तुभ्यं तानि विश्वानि हि सुसहा । हे पवमान सोम ! शत्रून् बाधसे ॥५॥

हे सोम ! अन्न और बल (हमें) दो। घोडे, गौवें तथा महान् तेज (हमारे लिये) कर दो। देवोंको तृप्त करो। तुम्हारे लिये वे सभी (राक्षस) पराजय करनेयोग्य हैं। हे छाने जानेवाले सोम ! (तू सारे) शत्रुओंको पराभूत करो ॥ ५ ॥

सोम, सोमरस और अन्न

यह सोमका सूक्त है। हरएक ऋषिका प्रायः कुछ न कुछ काव्य सोमपर है। (अपः वृणानः । मं. १) यह सोम जलको वरता है, जलको अपने अन्दर स्वीकारता है। अर्थात् जल सोमरसमें मिलाया जाता है। यह सोम (इषं ऊर्जं । मं. ५) अन्न और बल देता है अर्थात् सोमरस यह एक बल बढानेवाला अन्न है। इससे (मत्सि) तृप्ति होती है और आनन्द तथ उत्साह बढता है, जिससे ' विश्वा रक्षांसि सुषहा । शत्रून् बाधसे (मं. ५)' सब राक्षसों और सब शत्रुओंका पराभव किया जाता है। अर्थात् वीर सोम पीते हैं, उससे उनका उत्साह बढता है, जिससे उनके शत्रु परास्त होते हैं।

यह सोम (श्रिये) शोभा, ऐश्वर्य और यश बढानेके लिये उत्पन्न हुआ है, वह (वयः) दीर्घायु देनेवाला अन्न है। इस-लिये इसके उत्साहसे (सत्या समिथा भवन्ति । मं. ४) युद्ध यशस्वी होते हैं, कभी पराभव नहीं होता। सोम पीकर वीर यशके भागी होते हैं।

यह सोम (कवीयन्) काव्यकी स्फूर्ति देता है, इस रस-को पीकर कविकी स्फूर्ति बढती है और वे काव्य करते हैं। यह सोम कविको स्फूर्ति देनेके कारण कविही है, क्योंकि यदि यह कवि न हो तो दूसरोंको काव्यकी स्फूर्ति कैसे देगा ? इसी तरह यह सोम शूरवीर भी है, इसीलिये इसके सेवन करनेसे वीरोंकी वीरता बढती है और वे शत्रुओंको परास्त करते हैं। (मं. १)

इस तरह पाठक इस काव्यमय सूक्तका अच्छी तरह मनन करें।

अथर्ववेदमें कण्व-ऋषि

अथर्ववेदमें कण्वऋषि रोगजन्तुओंकी खोज करने और उनके नाशका उपाय ढूंढनेवाले दीखते हैं। कृमिनाशनमें इस ऋषिकी विद्याका स्थान बडा श्रेष्ठ है। अथर्ववेदमें कण्वके ३ सूक्त हैं—

अथर्व काण्ड २	सूक्त ३१	मंत्र ५
	,, ३२	६
,, ,, ५	,, २३	१३
	कुल मंत्रसंख्या	२४ हैं

तीनों सूक्त कृमिनाशकादी विचार कर रहे हैं। इनका अर्थ देखिये —

(१०) क्रिमिजम्भनम्

(अथर्व. २।३१) कण्वः। मही, चन्द्रमाः। अनुष्टुप्; २,४ उपरिष्टाद्विराड् बृहती; ३,५ आर्षी त्रिष्टुप्।

इन्द्रस्य या मही दृषत्क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी।
तया पिनष्मि सं क्रिमीन्दृषदा खल्वाँ इव ॥ १ ॥
दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम्।
अल्गण्डून्त्सर्वाञ्छलुनान्क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि ॥ २ ॥
अल्गण्डून्हन्मि महता वधेन दूना अदूना अरसा अभूवन्।
शिष्टानशिष्टान्नि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां नकिरुच्छिषातै ॥ ३ ॥
अन्वान्त्र्यं शीर्षण्य१मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन्।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि ॥ ४ ॥

अर्थ- (इन्द्रस्य या मही दृषत्) इन्द्रकी जो बडी शिला है वह (विश्वस्य क्रिमेः तर्हणी) सब प्रकारके कृमियोंका नाश करनेवाली है। (तया क्रिमीन् सं पिनष्मि) उससे मैं सब प्रकारके क्रिमियोंका नाश करता हूं, (दृषदा खल्वान् इव) जिस तरह पत्थरसे चणोंको पीसते हैं ॥ १ ॥

दृष्ट और अदृष्ट क्रिमीका नाश मैं करता हूं। भूमिपर (कु-रूरुम्) रेंगनेवाले क्रिमियोंका मैं नाश करता हूं। सब (अल्गण्डून् शलुनान्) इधरउधर चलनेवाले क्रिमियोंका मैं नाश करता हूं। इन क्रिमियोंका (वचसा नाशयामसि) वचाद्वारा नाश करता हूं ॥ २ ॥

अल्गण्डूओंको मैं बडे घातक उपायसे मारता हूं। चलनेवाले न चलनेवाले किमी सब सारहीन हो जायँ। शेष रहे और न रहे क्रिमियोंको मैं वचासे नष्ट करता हूं, इससे इनमेंसे कोई नहीं बचेगा ॥ ३ ॥

(अन्वान्त्र्यं) आंतोंमें रहनेवाले, (शीर्षण्यं) सिरमें रहनेवाले, (पार्ष्टेयं क्रिमीन्) और पसलियोंमें होनेवाले क्रिमियोंको (अवस्कवं व्यध्वरं) बुरे स्थानमें उत्पन्न होनेवाले, यज्ञ न होनेसे उत्पन्न होनेवाले क्रिमियोंको मैं वचासे नष्ट करता हूं ॥ ४ ॥

ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः ।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम् ५

जो पर्वतोंपर, जो वनोंमें और औषधियोंपर रहते हैं तथा जो पशुओं और जलोंमें होते हैं, जो हमारे शरीरोंमें घुसते हैं, उन सब रोगक्रिमियोंका मैं नाश करता हूं ॥ ५ ॥

क्रिमियोंकी उत्पत्ति

रोगोत्पादक क्रिमियोंकी उत्पत्ति ' पर्वत, वन, औषधि, पशु और जलके बीचमें होती है' ऐसा यहां कहा है, अर्थात् यदि इन स्थानोंकी पूर्णतासे स्वच्छता की जाय तो रोगक्रिमि उत्पन्न-ही नहीं होंगे ऐसी यहां सूचना मिलती है। ये क्रिमी उत्पन्न होकर—

अस्माकं तन्वं आविविशुः । (मं. ५)

हमारे शरीरमें घुसते हैं और हमें पीडा देते हैं, इसलिये इनके नाशका उपाय ढूंढकर निकालना चाहिये' उक्त स्थानोंमें सडावट न हो ऐसा प्रबंध करना चाहिये। ये मानवी शरीरमें सिरमें, पसलियोंमें, आंतोंमें तथा अन्यान्य स्थानोंमें उत्पन्न होते हैं, अथवा घुसकर व्यथा उत्पन्न करते हैं।

इनके नाशका उपाय

' **वचा** ' यह एक वनस्पति है। इसको ' वच ' बोलते हैं। इसकी बू (*गन्ध*) बडी उग्र होती है। *क्रिमिनाशक* औषधियोंमें यह बडे महत्त्वकी औषधि है। इसका चूर्ण, इसका धूप, इसके टुकडोंकी माला, घोलकर पीनेसे तथा अन्य प्रकारके सेवनसे क्रिमी दूर होते हैं।

' **इन्द्र-शिला** ' (इन्द्रस्य मही दृषत्।) इन्द्रका बडा पत्थर। यह क्या वस्तु है, अभीतक समझमें नहीं आया। ' मनः शिला ' जैसा कोई पदार्थ होगा। मन.शिला विषनाशक है। इसी तरह यह कोई औषधि वस्तु होगी। यह वस्तु खोज करनेयोग्य है।

(११) क्रिमिनाशनम्

(अथर्व. २।३२) कण्वः । आदित्यः । अनुष्टुप्, १ त्रिपाद्भुरिग्गायत्री, ६ चतुष्पान्निचृदुष्णिक् ।

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन्हन्तु निम्रोचन्हन्तु रश्मिभिः । ये अन्तः क्रिमयो गवि १
विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् । शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः २
अत्रिवद्वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् । अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ३
हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः । हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ४
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः । अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ५
प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि । भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ६

अर्थ— उदय होता हुआ सूर्य क्रिमियोंका नाश करे, अस्तको जाता हुआ सूर्य अपने किरणोंसे, क्रिमियोंका नाश करे। जो भूमिपर क्रिमि हैं ॥ १ ॥

अनेक रूपवाले, चार आंखवाले, सारंग और श्वेत वर्णवाले क्रिमी हैं। इसकी हड्डियोंको और सिरको तोडता हूं ॥२॥

अत्रि, कण्व, जमदग्निके समान मैं क्रिमियोंका नाश करता हूं। अगस्तिकी विद्यासे मैं क्रिमियोंका नाश करता हूं ॥३॥

क्रिमियोंका राजा और उनका स्थान पालक मारा गया। इन क्रिमियोंके मातापिता भाई बन्धुबांधव सब मारे गये ॥४॥

इन क्रिमियोंके साथ रहनेवाले परिचारक, सेवक तथा जो अन्य क्षुल्लक क्रिमि हैं वे भी मारे गये हैं ॥५॥

क्रिमीके सींग, विषस्थान आदि सब टूट गया है। जिससे यह काटता है वह उसका साधन भी टूट चुका है ॥६॥

सूर्य-किरणका प्रभाव

सूर्य किरणका प्रभाव ऐसा है कि जिससे सब प्रकारके रोग-जन्तु विनष्ट होते हैं। यह प्रथम मंत्रकी बातही यहां मुख्य है। जहां सूर्यकिरण पहुंचते है वहां रोगजन्तुओंका नाश होता है, अतः घर ऐसे बनाने चाहिये कि, जिनमें अच्छी तरह सूर्यकिरण पहुंचते रहें।

(१२) क्रिमिघ्नम्

(अथर्व. ५।२३) कण्वः। इन्द्रः। अनुष्टुप्, १३ विराट्।

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती। ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति ॥१॥
अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन्धनपते जहि। हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम ॥२॥
यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति। दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि ॥३॥
सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ। बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ॥४॥
ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः। ये के च विश्वरूपास्तान्क्रिमीञ्जम्भयामसि ॥५॥
उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा। दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन्क्रिमीन् ॥६॥
येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः। दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् ॥७॥
हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत। सर्वान्नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँ इव ॥८॥
त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम्। शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥९॥
अत्रिवद्वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्। अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥१०॥
हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः। हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥११॥
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः। अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥१२॥
सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम्। भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ॥१३॥

अर्थ— द्यावापृथिवी, देवी सरस्वती, इन्द्र, अग्नि ये सब परस्पर मिले जुले हैं, ये मिलकर क्रिमियोंका नाश करें ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! इस कुमारके क्रिमियोंका नाश कर। मेरे पासके उग्र गंधि वचासे सब शत्रुभूत क्रिमि विनष्ट हुए हैं ॥२॥

जो क्रिमि आंख नाक और दांतोंमें घूमता है उसका नाश करते हैं ॥३॥

दो समान रूपवाले, दो विभिन्न रूपवाले, दो काले और दो लाल, एक भूरा और दूसरा भूरे कानवाला, गीध और भेडियेके समान जो क्रिमि हैं, वे मारे गये हैं ॥४॥

जो श्वेतकोखवाले, जो काले काली भुजावाले, जो अनेक रंगरूपवाले रोग क्रिमी हैं, उनका नाश करते है ॥५॥

यह सूर्य आगे उदयको प्राप्त हो रहा है, जो सबको देखनेवाला और अदृष्ट दोषको दूर करनेवाला है, वह सब दृष्ट तथा अदृष्ट क्रिमियोंका नाश करे ॥६॥

येवाष, कष्कष, एजत्क, शिपिवित्नुक ये क्रिमि हैं, ये दृष्ट हों वा अदृष्ट हों, ये सब नाश करनेयोग्य हैं ॥७॥

जिस तरह पत्थरोंसे चनोंको पीसते हैं, उस तरह इन सब क्रिमियोंका नाश करना चाहिये ॥ ८ ॥

तीन सिरोंवाले, तीन कुदानवाले सारंग और श्वेत क्रिमिका नाश करता हूं। इसकी पसुलियों और सिरको तोडता हूं ॥९॥

अत्रि, कण्व, जमदग्निके समान, अगस्त्यकी विद्यासे इन क्रिमियोंका नाश मैं करता हूं। (अथर्व २।३२।३,४,५ का अर्थ यहां है। येही वे मंत्र हैं। अर्थ पूर्वस्थान पृष्ठ ३३पर देखो। (१०;११;१२)

सब क्रिमियोंका सिर पत्थरसे तोड देता हूं और मुख अग्निसे जला देता हूं ॥१३॥

रोगक्रिमियोंका नाश

सूर्यकिरणसे रोगक्रिमियोंका नाश होता है यह बात यहां स्पष्ट है। क्रिमियोंके वर्णन आदि तथा उनके उपशमके उपायमें खोज करनेके विषय हैं।

कण्व ऋषिके मंत्र समाप्त।

(ऋग्वेद, प्रथम मण्डल)

प्रस्कण्व ऋषिके मन्त्र

(१३) सुवीर्य चाहिये

(ऋ. १।४४) प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः, १-२ अग्निः, अश्विनौ, उषाश्च । प्रगाथः= विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः ।

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ १ ॥
जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ २ ॥
अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।
धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ॥ ३ ॥
श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥ ४ ॥
स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥
सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥ ६ ॥

अन्वयः- हे अमर्त्य जातवेदः अग्ने! त्वं उषसः विवस्वत् चित्रं राधः दाशुषे आ वह, अद्य उषर्बुधः देवान् (आ वह) ॥ १ ॥

हे अग्ने ! जुष्टः दूतः हव्यवाहनः अध्वराणां रथीः असि हि । अश्विभ्यां उषसा सजूः सुवीर्यं बृहत् श्रवः अस्मे धेहि ॥ २ ॥

अद्य दूतं वसुं पुरुप्रियं धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानां अध्वरश्रियं अग्निं वृणीमहे ॥ ३ ॥

व्युष्टिषु देवान् अच्छ यातवे श्रेष्ठं यविष्ठं अतिथिं स्वाहुतं दाशुषे जनाय जुष्टं जातवेदसं अग्निं ईळे ॥ ४ ॥

हे अमृत विश्वस्य भोजन हव्यवाहन मियेध्य अग्ने त्रातारं अमृतं यजिष्ठं त्वां अहं स्तविष्यामि ॥ ५ ॥

हे यविष्ठ्य ! गृणते सुशंसः मधुजिह्वः स्वाहुतः बोधि । प्रस्कण्वस्य जीवसे आयुः प्रतिरन् दैव्यं जनं नमस्य ॥ ६ ॥

अर्थ— हे अमर ज्ञानी अग्निदेव ! तुम उषाके साथ अनेक प्रकारका तेजस्वी धन दाताको देनेके लिये ला दो, आज उषःकालमें जागनेवाले देवोंको (यहां ले आओ) ॥ १ ॥

हे अग्ने ! (तुम देवोंके द्वारा) सेवित दूत हव्य लानेवाला और हिंसारहित कर्मोंको निभानेवाला हो। अश्विदेवों और उषाके साथ उत्तम वीर्य बढानेवाला बडा धन हमें ला दो ॥ २ ॥

आज (हम) दूतकर्म करनेवाले सबके निवास हेतु, सबके प्रिय, धूमही जिसका चिन्ह है, ऐसे ज्वालाओंसे अलंकृत, उषःकालोंमें अहिंसक यज्ञकर्मोंके कर्ता (है उस) अग्निका हम स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

उषःकालोंमें देवोंको प्राप्त करनेके लिये, श्रेष्ठ तरुण गतिमान्, उत्तम रीतिसे बुलाये गये, दाता मनुष्यके लिये सेवाके योग्य, सर्वज्ञ अग्निकी मैं स्तुति करता हूं ॥ ४ ॥

हे अमर, सबको भोजन देनेहारे, हविको पहुंचानेवाले पवित्र अग्निदेव ! (तुम) सबके तारक, अमर पूज्य हो, (अतः) तुम्हारी मैं प्रशंसा करता हूं ॥ ५ ॥

हे तरुण ! स्तुतिकर्ताको तुम स्तुति करनेयोग्य हो, मीठी जबानवाला तुम उत्तम हवन होनेके पश्चात् (हमारे अभिप्रायको) समझ लो । प्रस्कण्वकी दीर्घ आयुके लिये आयु बढाता हुआ दिव्य मानवको सम्मान दो ॥ ६ ॥

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ७
सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ८
पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि ।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ९
अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्ववता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः १०
नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद् देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ११
यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः १२
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् १३

होतारं विश्ववेदसं त्वा विशः सं इन्धते हि । हे पुरुहूत अग्ने ! सः (त्वं) प्रचेतसः देवान् इह द्रवत् आ वह ॥७॥

हे स्वध्वर ! क्षपः व्युष्टिषु सवितारं उषसं अश्विना भगं अग्निं (आ वह) । सुतसोमासः कण्वासः हव्यवाहं त्वा इन्धते ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! विशां अध्वराणां पतिः दूतः असि हि । उषर्बुधः स्वर्दृशः देवान् अद्य सोमपीतये आ वह ॥ ९ ॥

हे विभावसो अग्ने ! विश्वदर्शतः पूर्वाः उषसः अनु दीदेथ । ग्रामेषु अविता असि । यज्ञेषु मानुषः पुरोहितः असि ॥१०॥

हे अग्ने देव ! मनुष्वत् त्वा यज्ञस्य साधनं, होतारं ऋत्विजं, प्रचेतसं जीरं अमर्त्यं दूतं नि धीमहि ॥ ११ ॥

हे मित्रमहः ! यत् पुरोहितः अन्तरः देवानां दूत्यं यासि, सिन्धोः प्रस्वनितासः ऊर्मयः इव, अग्नेः अर्चयः भ्राजन्ते ॥ १२ ॥

हे श्रुत्कर्ण अग्ने ! श्रुधि । मित्रः अर्यमा प्रातर्यावाणः (तैः) सयावभिः वह्निभिः देवैः अध्वरं बर्हिषि आ सीदन्तु ॥१३॥

हवन करनेवाले सर्वज्ञानी ऐसे तुमको सब प्रजाएँ प्रदीप्त करती हैं । हे बहुतों द्वारा हवन किये गये अग्निदेव ! वह (तुम) ज्ञानी देवोंको यहां दौडते हुए ले आओ ॥ ७ ॥

हे उत्तम अहिंसक कर्मके कर्ता ! रात्रीके नंतर उषःकालोंमें सविता, उषा, दोनों अश्विदेवों, भग और अग्निको (यहां ले आओ) । सोमका रस निकालकर ये कण्व हविका हवन करते हुए तुम्हें प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तुम प्रजाओंका तथा अहिंसक कर्मोंका पालन करनेवाला हो । उषःकालमें जागनेवाले आत्मदर्शी देवोंको आज सोमपान करनेके लिये ले आओ ॥ ९ ॥

हे विशेष प्रभावान् अग्ने ! विश्वमें दर्शनीय ऐसा तुम उषाके पश्चात् प्रदीप्त होते हो । तुम ग्रामोंके रक्षक हो । और यज्ञोंमें मनुष्योंमें अग्रगामी नेता हो ॥ १० ॥

हे अग्निदेव ! हम मनुष्यकी तरह तुम्हें यज्ञके साधन, होता, याजक, ज्ञानी, वृद्ध, अमर दूत करके यहां स्थापन करते हैं ॥ ११ ॥

हे मित्रोंमें पूजनीय! जब यज्ञके पुरोहित करके देवोंके बीचमें दूतकर्म करनेके लिये जाते हो, तब समुद्रका प्रचण्ड ध्वनि करनेवाली लहरोंके समान, अग्निकी ज्वालाएँ प्रदीप्त होती हैं ॥१२॥

हे सुननेवाले अग्ने ! (हमारा कथन) सुन लो । मित्र, अर्यमा तथा और जो प्रातःकालमें जानेवाले हैं उन देवोंके साथ (सब देव) अहिंसक कर्मके पास आसनपर बैठें ॥ १३॥

शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः १४

सुदानवः अग्निजिह्वाः ऋतावृधः मरुतः स्तोमं शृण्वन्तु। धृतव्रतः वरुणः अश्विभ्यां उपसा सजूः सोमं पिबतु ॥१४॥

उत्तम दानी अग्निरूप जिह्वावाले, यज्ञकर्मका वर्धन करनेवाले मरुत् वीर इस स्तोत्रको सुनें। व्रतपालन करनेवाला वरुण अश्वि-देवोंके और उषाके साथ सोमरसका पान करे ॥ १४ ॥

उषःकालमें जागनेवाले देव

इस स्तोत्रमें तथा अन्यत्र भी देवोंको उषःकालमें जाग-नेवाले कहा है-

१ **उषर्बुधः देवाः** (१;९) -उषःकालमें जागनेवाले,

२ **व्युष्टिषु देवान् यातवे** (४)- विशेष प्रातः उषः-कालमें देवोंको बुलाना चाहिये,

३ **क्षपः व्युष्टिषु उषसं सवितारं अश्विना भगं अग्निं आ वह** (८)- रात्री रहनेके समयही प्रातः की उषा-ओंमें उषा, सविता, अश्विदेव, भग और अग्निको बुलाओ,

४ **प्रातर्यावाणः देवाः** (१३)- प्रातःकालमें उठकर कार्य करनेके लिये जानेवाले देव होते हैं।

इस तरह अनेक वार वर्णन वेदमंत्रोंमें होता है। इससे स्पष्ट होता है कि देव बडी प्रभातमें, जब कि बहुतसी रात भी होती है, तब उठते हैं और अपने कार्यमें लगते हैं। इसीका नाम ब्राह्म मुहूर्त है। (**क्षपः व्युष्टिषु**) रात्रीके अवशिष्ट भागके उष.कालमें उठना चाहिये यह वैदिक कालसे चली आयी परिपाठी है। आर्योंके घरोंमें कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं होना चाहिये कि जो उष.कालमें सोया रहता हो। ब्राह्ममुहूर्तमें उठनेकी स्मृतियोंकी आज्ञा इन वैदिक मन्त्रभागोंपर आश्रित है।

धन कैसा हो ?

धन अन्न आदि कैसा हो इस विषयमें इस सूक्तके आदेश ऐसे हैं-

१ **विवस्वत् चित्रं राधः** (१)- तेजस्वी धन हो, जो निवासका हेतु बने, सिद्धितक पहुंचावे और तेजस्विता बढावे,

२ **सुवीर्यं बृहत् श्रवः अस्मे धेहि** (२)- उत्तम वीर्य, सामर्थ्य और पराक्रम बढानेवाला धन, अन्न और यश हमें मिले,

ऐसा धन या अन्न नहीं चाहिये कि जो वीर्यको घटावे पराक्रम-की शक्ति कम करे और यशमें बाधक हो।

अहिंसक कर्म

अहिंसक कर्म करने चाहिये। कर्म ऐसे करने चाहिये कि जिनमें हिंसा न हो, कुटिलता न हो, कपट या टेढापन न हो, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखनेयोग्य हैं-

१ **अध्वरः** (अ+ध्वरः)- अहिंसायुक्त कर्म, हिंसारहित कर्म, कुटिलतारहित कर्म, ऐसे कर्म कि जिनमें टेढापन या कपट नहीं है। (मं. २;३;८;१३) अध्वरका दूसरा अर्थ (अध्व+रः) मार्ग बतानेवाला, सन्मार्गदर्शक है। अध्वरका अर्थ यज्ञ है, परन्तु यज्ञ वह कि जिसमें हिंसा नहीं होती।

देवताओंके लक्षण

इस सूक्तमें देवताओंके अनेक लक्षण कहे हैं, उनका विचार इस तरह है-

१ **उषर्बुधः**- उषःकालमें उठनेवाले, (१)

२ **जुष्टः**- प्रीतिसे सेवा करनेयोग्य, (२)

३ **अध्वराणां रथीः**- हिंसा, कुटिलता, कपट आदिसे रहित कर्मोंको करनेवाला,

४ **वसुः**- मनुष्योंका निवास सुखमय करनेवाला, (३)

५ **पुरुप्रियः**- बहुतोंको प्रिय,

६ **भा-ऋजीकः**- प्रभासे युक्त, तेजस्वी,

७ **मियेध्यः**- पवित्र, (५)

८ **त्राता**- संरक्षक,

९ **मधुजिह्वः**- मीठा भाषण करनेवाला, मधुरभाषी (६)

१० **दैव्यः**- दिव्यभावयुक्त,

११ **विश्ववेदाः**- सब जाननेवाला, (५)

१२ **जातवेदाः**- जो बना है उसको यथावत् जानने-वाला (४)

१३ **प्रचेताः**- विशेष ज्ञानी, मननशील (७;११)

१४ **स्वर्दृक्**- आत्मज्ञानी. (९)

१५ विश्वदर्शतः- विश्वको दिखानेवाला, सबमें दर्शनीय, (१०)

१६ सुदानुः— उत्तम दाता, (१४)

१७ अग्निजिह्वः- तेजस्वी भाषण करनेवाला,

१८ ऋतावृधः— सत्य, यज्ञकी वृद्धि करनेवाला,

१९ धृतव्रतः- नियमका योग्य पालन करनेवाला,

२० विभावसुः- तेजस्वी, विशेष तेजस्वी । (१०)

देवत्वकी प्राप्ति इन गुणोंसे होती है, अतः ये गुण अपनाना मनुष्यके लिये योग्य है ।

कुछ कर्तव्य

निम्नलिखित मंत्रभाग मानवोंके कुछ कर्तव्य बताते हैं, उनका अब विचार करेंगे—

१ त्रातारं अहं स्तविष्यामि— दूसरोंकी रक्षा करनेवाले वीरकी मैं प्रशंसा करता हूं (५), अर्थात् जो दूसरोंकी सुरक्षा नहीं करता वह स्तुतिके योग्य नहीं है ।

२ आयुः प्रतिरन्- आयुको बढाओ (६), आयु जिससे घटे ऐसा कोई कर्म नहीं करना चाहिये ।

३ दैव्यं जनं नमस्य- दिव्य गुणवालोंको ही प्रणाम कर (६) जिसमें शुभगुण नहीं होंगे वह सत्कारके योग्य नहीं है ।

४ ग्रामेषु अविता असि- ग्रामोंमें सुरक्षा करनेवाला हो । (१०)

५ यज्ञेषु पुरोहितः असि- प्रशस्त कर्मोंमें अग्रगामी हो,

६ श्रुत्कर्ण ! श्रुधि- एकाग्र चित्तसे सुन । (११)

७ स्तोमं शृण्वन्तु- प्रशंसायोग्य वर्णन सुनो । (१४) दूसरोंकी निंदा आदि न सुनो ।

८ विश्वस्य भोजन— सबको भोजन दो (५)

इस तरह कर्तव्यबोधक वाक्योंसे मानवधर्म सिद्ध होता है । इन वाक्योंसे विधि और निषेध किस तरह समझना चाहिये यह ऊपर बताया है ।

सोमपान

सोमपानका विषय इस सूक्तमें अनेक बार आया है उसके सूचक वाक्य ये हैं—

१ सुतसोमासः- मिलकर सोमरस निकालना (८)

२ सोमपीतये देवान् आ वह- सोमपानके लिये देवोंको ले आओ, (९)

३ बर्हिषि आ सीदन्तु— वे देव आकर आसनोंपर बैठें, (१३)

४ वरुणः सोमं पिबतु— वरुण सोम पीवे । (१४)

इस सूक्तके १४ मंत्रोंमेंसे चार मंत्रोंमें सोमका उल्लेख है । इस तरह यह सूक्त सुवीर्यवर्धक उत्तम उपदेश देता है ।

(१४) तैंतीस देवता

(ऋ. १।४५) प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः, १० (उत्तरार्धस्य) देवाः । अनुष्टुप् ।

त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत । यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ १

श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः । तान् रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥ २

अन्वयः— हे अग्ने ! त्वं इह वसून् रुद्रान् आदित्यान् यज । उत स्वध्वरं घृतप्रुषं मनुजातं जनं आ यज ॥ १ ॥

हे अग्ने ! विचेतसः देवाः दाशुषे श्रुष्टीवानो हि । हे रोहिदश्व गिर्वणः ! त्रयस्त्रिंशतं तान् आ वह ॥ २ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! तुम यहां वसुओं, रुद्रों और आदित्योंके (सन्तुष्टिके लिये) यज्ञ कर ॥ तथा उत्तम यज्ञ करनेवाले और घृताहुति देनेवाले मनुसे उत्पन्न हुए मानवोंकी (सन्तुष्टिके लिये भी) यज्ञ कर ॥ १ ॥

हे अग्ने ! विशेष ज्ञानसंपन्न देव सदाही दाताके लिये उत्तम फल देतेही हैं । हे लाल रंगोंके घोडे (जोतने)वाले स्तुतियोग्य (अग्ने) ! उन तैंतीस देवोंको तुम यहां ले आ ॥ २ ॥

प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत्	।	अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम्	३
महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत	।	राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा	४
घृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः	।	याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा	५
त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः	।	शोचिष्केशं पुरुप्रियाऽग्ने हव्याय वोळ्हवे	६
नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम्	।	श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु	७
आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः	।	बृहद्भा बिभ्रतो हविरग्ने मर्ताय दाशुषे	८
प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य	।	इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो	९
अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः	।	अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरोअह्न्यम्	१०

हे महिव्रत जातवेदः ! प्रियमेधवत् अत्रिवत् विरूपवत् अंगिरस्वत् प्रस्कण्वस्य हवं श्रुधि ॥ ३ ॥

हे महान् कर्म करनेवाले ज्ञानी (अग्ने) ! (तुमने) जैसी प्रियमेध, अत्रि, विरूप, और अंगिरसकी प्रार्थनाएं सुनी थीं, वैसी प्रस्कण्वकी भी प्रार्थना सुनो ॥ ३ ॥

महिकेरवः प्रियमेधाः अध्वराणां शुक्रेण शोचिषा राजन्तं अग्निं ऊतये अहूषत ॥ ४ ॥

महान् कर्म करनेवाले प्रियमेध (ऋषियोंने) यज्ञोंके मध्यमें पवित्र प्रकाशसे तेजस्वी हुए अग्निकी (सबकी) सुरक्षाके लिये प्रार्थना की थी ॥ ४ ॥

हे घृताहवन सन्त्य ! इमा उ गिरः सु श्रुधि । कण्वस्य सूनवः याभिः अवसे त्वा हवन्ते ॥ ५ ॥

हे घृतकी आहुतियां लेनेवाले दाता (अग्ने) ! ये प्रार्थनाएं सुनो । कण्वके पुत्र जिन (प्रार्थनाओं)से (सबकी) सुरक्षाके लिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥

चित्रश्रवस्तम पुरुप्रिय अग्ने ! शोचिष्केशं त्वां हव्याय वोळ्हवे विक्षु जन्तवः हवन्ते ॥ ६ ॥

हे विलक्षण यशवाले और सबको प्रिय अग्ने ! तेजस्वी किरणवाले तुम्हें हविको ले जानेके लिये प्रजाओंमें ये लोग बुलाते हैं ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! विप्राः दिविष्टिषु होतारं ऋत्विजं वसुवित्तमं श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा नि दधिरे ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! ज्ञानी लोग यज्ञोंमें, (देवोंको) बुलानेहारे ऋतुके अनुकूल यज्ञ करनेवाले, बहुत धनके दाता, प्रार्थना सुननेमें तत्पर और सर्वत्र प्रसिद्ध ऐसे तुम्हें स्थापित करते हैं ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! दाशुषे मर्ताय हविः बिभ्रतः सुतसोमाः विप्राः प्रयः अभि बृहत् भाः त्वा आ अचुच्यवुः ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! दाता मानवोंके लिये अन्न देनेवाले और जिन्होंने सोमरस तैयार किया है ऐसे ज्ञानी लोगोंने (हविरूप) अन्नके पात्र (रहनेवाले) अत्यंत तेजस्वी तेरा (मन अपनी)ओर खींच लिया है ८

हे सहस्कृत सन्त्य वसो ! इह अद्य सोमपेयाय प्रातर्याव्णः दैव्यं जनं बर्हिः आ सादय ॥ ९ ॥

हे बलके उत्पादकर्ता दानशील (तथा सबके) निवासक (अग्ने) ! यहां आज सोमपानके लिये प्रातःकालहीमें आनेवाले दिव्य विबुधोंको (इन) आसनोंपर (लाकर) बिठलाओ ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! अर्वाञ्चं दैव्यं जनं सहूतिभिः यक्ष्व । हे सुदानवः अयं सोमः, तं तिरोअह्न्यं पात ॥ १० ॥

हे अग्ने ! पास आये दिव्य जनोंका उत्तम भावनाके साथ आदरपूर्वक यजन कर । हे दानशीलो ! यह सोमरस है, इसको एकही दिन हुआ है, उसका पान करो ॥ १० ॥

तैंतीस देवताओंका सत्कार

' वसु ' आठ हैं, ' वसु ' का अर्थ— धन, शुभ, धनी, शुभकर्मकर्ता, रत्न, सुवर्ण, जल, नमक, ' वृद्धि ' नामक औषधि, प्रकाश-किरण, अग्नि, सूर्य, प्रकाश यह है। वसु आठ है—

धरो ध्रुवश्च सोमश्च अहश्चैवानिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टाविति स्मृताः ॥

' धर, ध्रुव, सोम, दिन, वायु, अग्नि, प्रत्यूष, प्रभास ये आठ वसु हैं। ' शतपथमें पृथ्वी, तेज, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य द्यौः, नक्षत्र और चन्द्रमा ये वसु हैं ऐसा कहा है।

अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एते हीदं सर्वं वासयन्ति ॥ (श. ब्रा. ११।६।३।६)

ये सबका निवास कराते हैं, इनके आधारसे सब स्थावर जंगम विश्व रहा है। इसलिये इनका नाम वसु है।

' रुद्र ' नाम ग्यारह प्राणोंका है। इसी तरह वायुका भी नाम रुद्र है, क्योंकि वायु प्राणोंका पोषक है। ये रुद्र ११ हैं।

' आदित्य ' नाम १२ महिनोंका है। बारह महिनोंमें सूर्यका तेज न्यूनाधिक होता है। चैत्रका सूर्य और पौषका सूर्य इनमें प्रकाशकी तीव्रताका अन्तर है। यही प्रकाशकी न्यूनाधिकताका भेद एक आदित्यके १२ सूर्य बना देता है।

८ वसु+११रुद्र+१२ आदित्य=' मिलकर ३१ देव होते हैं, यज्ञ और प्रजापति मिलकर ३३ देव हैं। इनका उल्लेख " गिर्वणसः त्रयस्त्रिंशतं " (मं. २) इस मंत्रमें किया है। अग्निदेव अपने रथपर इन तैंतीस देवोंको बिठलाकर यज्ञभूमिमें लाता है।

जैसे विश्वमें ये ३३ देवताएं हैं वैसीही अंशरूपसे प्रत्येक शरीरमें भी येही देवताएं हैं। यह शरीररूपी अग्निका रथ है, इसको इन्द्रियरूप घोडे जोते हैं। इस शरीररूपी रथमें ३३ देवताओंको बिठलाकर यह अग्नि इस विश्वरूपी यज्ञभूमिमें लाता है। और इस तरह मनुष्यकी पूर्ण आयुतक यह यज्ञ चलता है। रोगरूपी असुर इस यज्ञका नाश करते हैं और देव इसकी सुरक्षा चाहते हैं, संक्षेपसे यह रूपक यहां है।

देवोंके लिये यज्ञ

वसून्, रुद्रान्, आदित्यान् इह यज। (मं. १) वसु, रुद्र और आदित्योंके लिये यहां यजन कर। अर्थात् इनकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ करनेकी यहां आज्ञा है। प्रसन्नताका अर्थ संतुष्टि, संतोष, खुशी, प्राप्ति है। जल वायु प्रसन्न है इसका अर्थ जलवायु रोगरहित, उपद्रवरहित हैं। यही अर्थ यहां अभीष्ट है। पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, सूर्यप्रकाश, चन्द्रप्रकाश, औषधियां, अन्न, प्राण, दिन, रात ये सब प्रसन्न रहेंगे तोही मनुष्यको सुख मिल सकता है। यज्ञ इसीलिये किये जाते हैं।

तथा जनं यज। (मं. १) मनुष्यमात्रके हितके लिये यज्ञ कर। यज्ञका मुख्य उद्देश्य मानवका हित ही है। मानव यहां न हो, तो यज्ञ कोई करेगाही नहीं। मनुष्य सुखी होनेके लियेही ये सब यज्ञ हैं, और इसीलिये वेद आदि शास्त्र हैं और सब जपतप आदि इसीलिये है [धर्म इसीके लिये है। इसलिये यहां कहा है ' मनुके वंशजों अर्थात् मानवोंके हित करनेके लिये यज्ञ करना चाहिये। ' (मं. १) मनुष्य सदा आनन्द प्रसन्न रहे, वह उन्नत होता रहे, उसके अन्दरके दिव्यभाव प्रकट होते रहें, वह नरका नारायण बने, जीवका शिव बने, देवका महादेव बने, इन्द्रका महेन्द्र बने, इसके लिये यज्ञ आवश्यक है।

दातृत्व-भाव

मनुष्यमें दातृत्वका भाव रहे। ' अ-दाता ' को शत्रु माना है। अ-राति (अ-दाता)का अर्थ वेदमें चोर, शत्रु, डाकू है। यह समाजका दुश्मन् है। इसीको समाजका शत्रु कहते हैं; ' दाता ' ही समाजका संगठन करता है, दाताही यज्ञ करता है और यज्ञसे ' देवपूजा, संगतिकरण (संगठन) और दान ' होता है। इसमें दान मुख्य है। दान न होगा, तो यज्ञ नहीं होगा। दानही यज्ञका जीवन है। इसीलिये कहा है कि—

विचेतसः दाशुषे श्रुष्टीवानो हि। (मं.-२)

' विशेष ज्ञानी दाताकी सहायता हरप्रकारसे करते हैं। ' विशेष ज्ञानी वे हैं कि जो समाजकी संगठना किस तरह सुदृढ होती है, इसका शास्त्र जानते हैं। ' श्रुष्टिः ' का अर्थ ' सहायता, मदत, उन्नति, प्रगति ' है। दाता जो होते हैं उनकी सहायता तथा उन्नति विज्ञानी करते हैं। इसका कारण यह है कि दाताके दानसेही समाज बलवान् और समर्थ होता है, इसलिये उसकी सहायता करना ज्ञाताओंका कर्तव्यही है।

सूक्तका द्रष्टा प्रस्कण्व

इस सूक्तका द्रष्टा प्रस्कण्व ऋषि है। इसका नाम तृतीय मन्त्रमें है। (**प्रस्कण्वस्य श्रुधि हवं श्रुधि** । मं. ३) प्रस्कण्व ऋषिकी प्रार्थना सुनो, ऐसा अग्निसे कहा है। इस मन्त्रमें प्रस्कण्वके पूर्व समयके चार ऋषियोंका उल्लेख है। प्रियमेधा, अत्रि, विरूप और अङ्गिरा इन ऋषियोंकी प्रार्थना जैसी सुनी थी, वैसी प्रभु मेरी (प्रस्कण्वकी) प्रार्थना सुने, यह इस मन्त्रका आशय है।

प्रियमेध (आंगिरसः) ऋ. ८।२।१-(४०); ६८-(१९); ६९-(१८); ८७-(६); ९।२८-(६) कुलमन्त्र ८९

अत्रिः (भौमः) ऋ. ५।२७-(६); ३७-४३-(७९); ७६-(५); ७७-(५); ८३-८६-(२७); ९।६७।१०-१२ (३); ८६।४१-४५ (५) कुलमंत्र १३०

विरूप (आङ्गिरसः) ८।४३-(३३); ४४-(३०); ७५-(१६), कुलमंत्र ७९

अङ्गिराः-अङ्गिरा ऋषिके मंत्र अथर्ववेदमें बहुत हैं, इसलिये अथर्ववेदका नाम ' अङ्गिरोवेदः ' ऐसा हुआ है।

ये चार ऋषि प्रस्कण्वके पूर्व समयके प्रतीत होते हैं। क्यों कि ' जैसी इनकी प्रार्थना सुनी गयी थी, वैसी मेरी सुनो ' ऐसा इस मंत्रमें कहा है।

मं. ४ में ' **प्रियमेध** ' ऋषिका नाम पुनः आया है। '**महि-केरवः**' अर्थात् उत्तमसे उत्तम बडे बडे यज्ञकर्म करनेवाले, महान् शुभकर्म करनेवाले प्रियमेध ऋषि जिस तरह (**अग्निं ऊतये अहूषत** । मं. ४) अग्निदेवकी सबकी सुरक्षाके लिये प्रार्थना करते थे, उसी तरह मैं प्रस्कण्व भी उसी प्रभुकी प्रार्थना कर रहा हूं, इसलिये मेरी प्रार्थना सुननी चाहिये, ऐसा इसका कथन है।

सबकी सुरक्षा, सबकी उन्नति ही प्रार्थनाका विषय होता है। इसमें ' **ऊति** ' शब्द ही प्रमाण है। इसका अर्थ— बुनना, सीना, संरक्षण, सुरक्षा, आनंद, मर्दानी खेल, प्रीति, सहायता, इच्छा, कामना, भला करना, शुभ कार्य, उत्साह यह है। इसमें सबकी सुरक्षा, सबकी उन्नति, सबकी भलाईही मुख्य है; क्योंकि यज्ञके लियेही यह सब है और यज्ञ तो संगठन करनेके लियेही होता है। इसलिये वेदमें जहां ' ऊति ' पद आयेगा वहां ' सबकी संगठनपूर्वक सुरक्षा ' ऐसाही अर्थ लेना चाहिये।

पांचवे मन्त्रमें प्रस्कण्व ऋषि अपना गोत्र कहता है, (**कण्वस्य सूनवः** । मं. ५) कण्वके पुत्र जिन मंत्रोंसे तुम्हारी प्रार्थना करते थे, वे ही ये मंत्र हैं। (**याभिः हवन्ते इमा गिरः**) जिन वाक्योंसे कण्वके पुत्र प्रभुकी प्रार्थना करते थे, वेही ये मन्त्र हैं। वैसीही प्रार्थनाएं हम करते हैं, इसलिये इनको सुनो। यहां बताया है कि हमने परंपरा नहीं छोडी है, जैसी प्रार्थनाकी परंपरा चली आयी है, वैसीही हमने रखी है। परंपरासे सभ्यता सुरक्षित रहती है, इसलिये परंपराका आदर करना चाहिये। इस मन्त्रमें ' **अवसे** ' पद है, जिसका अर्थ पूर्वोक्त ' ऊति ' के समानही सबकी सुरक्षा, सबकी भलाई, सबकी उन्नति है। इसलिये जैसी प्रार्थना करनेकी रीति पहिलेसे चली आती है वैसीही प्रार्थना हम कर रहे हैं। इसलिये हे प्रभो ! तुम हमारी प्रार्थना सुनो, अर्थात् सबको उन्नत करो।

(**विप्रु जन्तवः हवन्ते** । मं. ६) बडे जनसंमर्दमें बैठे ज्ञानी लोग तेरी प्रार्थना करते हैं। *यहां यह मंत्रभाग* सामुदायिक उपासनाका वर्णन कर रहा है। (**विप्रु-प्रजासु**) प्रजाजनोंमें, सभामें, बडी परिषदमें बैठे (जन्तवः) ज्ञानीजन (हवन्ते) प्रभुकी प्रार्थना करते हैं, (अवसे) सबकी सुरक्षा तथा उन्नतिके लिये वैसीही प्रार्थना सब करते जायँ।

इस सूक्तका सर्वसाधारण उपदेश यह है।

' *दैव्यं जनं बर्हिः आसादय* । (मं. ९) यक्ष्व । (मं. १०) *दिव्य विबुधोंको आसनोंपर बिठलाओ और उनका सत्कार करो। यह एक बडा भारी, अच्छा आदेश इस सूक्तमें दोवार दिया है। सर्व साधारण जनोंकी पूजा नहीं कही, परन्तु दिव्य जनोंकी अर्थात् दैवी संपत्तिसे युक्त* ज्ञानियोंकीही पूजा यहां कही है। सज्जनोंकी ही पूजा समाजमें होनी चाहिये। जहां दुर्जन पूजे जायंगे, वहां अधोगति होगी इसमें संदेह ही नहीं है।

आदर्श पुरुष

इस सूक्तमें जिस आदर्श पुरुषका वर्णन हुआ है, वह निम्नलिखित विशेषणोंसे यहां वर्णित हुआ है—

१ रोहिदश्वः– लाल रंगके घोडोंपर सवार होनेवाला, लाल रंगके घोडे जिसके रथको जोते हैं,

२ गिर्वणाः– स्तुतिके योग्य, प्रशंसनीय, भाषाका ज्ञानी (मं. २)

३ महिव्रतः– महान् व्रतोंका पालन करनेवाला, बडे, बडे कर्म करनेवाला, प्रचण्ड कर्म करनेवाला, (मं. ३)

४ महिकेरः– महान् कारीगर, कुशल कारीगर, हरएक कार्य कुशलतापूर्वक करनेवाला,

५ शुक्रेण शोचिषा राजन्– पवित्र तेजसे तेजस्वी, बलवर्धक प्रकाशसे प्रकाशनेहारा, (मं. ४)

६ सन्यः– दाता, (मं. ५, ९)

७ चित्रश्रवस्तमः— जिसका यश चारों ओर फैल रहा है।

८ पुरुप्रियः— बहुतोंके लिये प्रिय,

९ शोचिष्केशः– शुद्ध प्रकाशसे युक्त (मं. ६)

१० ऋत्विज् (ऋतु-यज्)– ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेहारा,

११ वसुवित्तमः— अत्यंत धनवान्,

१२ श्रुत्कर्णः— जो प्रार्थना सुनता है, अर्थात् जो सुनकर वैसा करता है,

१३ सप्रथस्तमः— सर्वत्र अत्यंत प्रसिद्ध, (मं. ७)

१४ बृहत् भाः — अत्यंत तेजस्वी, (मं. ८)

१५ सहस्कृतः — शक्तिका निर्माण करनेवाला, बल उत्पन्न करनेवाला,

१६ वसुः– सबको बसानेवाला, (मं. ९)

अन्य पद जो इनके साथ मनन करनेयोग्य हैं—

१७ रुद्रः– जो शत्रुओंको रुलाता है, प्रबल वीर,

१८ आदित्यः— जो स्वीकार करता है, अपनी ओर खींचता है। (मं. ३)

अन्य पद भी यहां विचार करने योग्य हैं। इन गुणोंसे अग्रे पुरुषका बोध होता है, यह इस सूक्तका आदर्श पुरुष है।

सूचना

इस सूक्तके मन्त्र ३,४ और ५ में वैदिक ऋषियोंके नाम आये हैं ऐसा हमारा मत है। ' प्रियमेधाः, अत्रिः, विरूपः, अङ्गिराः, प्रस्कण्वः, प्रस्कण्वस्य सूनवः ' ये पद ऋषियोंके सूचक हैं। तथापि कई लोग इन पदोंका अर्थ इनको विशेषण रूपमें मानकर करते हैं, उनके मतसे इनका अर्थ ऐसा होता है—

१ प्रियमेधाः— बुद्धिके कार्य करना जिसे प्रिय है,

२ अत्रिः (अतति)– जो भ्रमण करता है, (अत्ति) जो खाता है,

३ विरूपः– विशेष रूपवान्, कुरूप,

४ अङ्गिराः (अग्नि-रस्)– अंगरस-चिकित्सा-विद्याका ज्ञाता, अंगीयरसका चिकित्सक,

५ प्रस्कण्वः (प्र-कण्वः)– विशेष व्याख्याता (कण्-शब्दे), विशेष दुःखके कारण दुःखी होकर कहरनेवाला,

इस तरह अर्थ मानकर ये ऋषिवाचक पद नहीं हैं ऐसा इनका मत ये बताते हैं। हमारे मतसे ये पद ऋषिवाचक हैं। पाठक इसका विचार करें।

(१५) वीर

(ऋ.१।४६) प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ । गायत्री ।

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १

या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥ २

अन्वयः– एषो प्रिया अपूर्व्या उषाः दिवः व्युच्छति। हे अश्विना ! वां बृहत् स्तुषे ॥ १ ॥

अर्थ— यह प्रिय अपूर्व उषा आकाशसे अन्धकारको दूर करती है। हे अश्विदेवों ! आप दोनोंकी (मैं) बहुत बडी स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

या दस्रा सिन्धुमातरा रयीणां मनोतरा धिया वसुविदा देवा (वां स्तुषे) ॥ २ ॥

जो शत्रुमर्दनकर्ता, सिन्धु जिनकी माता है ऐसे, धनोंके दाता, मनोहर, और कर्म करनेवालोंको निवासस्थान देनेवाले दो देव हैं। (उनकी मैं स्तुति करता हूं) ॥२॥

वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि	। यद् वां रथो विभिष्पतात्	३
हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा	। पिता कुटस्य चर्षणिः	४
आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा	। पातं सोमस्य धृष्णुया	५
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः	। तामस्मे रासाथामिषम्	६
आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे	। युञ्जाथामश्विना रथम्	७
अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः	। धिया युयुज्र इन्दवः	८
दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे	। स्वं वव्रिं कुह धित्सथः	९
अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः	। व्यख्यज्जिह्वयासितः	१०
अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया	। अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः	११

वां रथः जूर्णायां अधि विष्टपि यद् विभिः पतात्, वां ककुहासः वच्यन्ते ॥ ३ ॥

आप दोनोंका रथ प्रशंसित स्वर्गधाममें जब पक्षियोंके वेगसे दौडता जाता है, (तब) आपकी उत्कृष्ट स्तुतियां कहीं जाती हैं ॥ ३ ॥

हे नरा ! पपुरिः पिता कुटस्य चर्षणिः अपां जारः हविषा पिपर्ति ॥ ४ ॥

हे नेताओं ! सबको परिपूर्ण करनेवाला, पालक, कृतकर्मका दर्शक, जलोंका शोषक (सूर्यदेव) अन्नसे (आपको) तृप्त करे ॥ ४ ॥

हे मतवचसा नासत्या ! वां मतीनां आदारः सोमस्य धृष्णुया पातम् ॥ ५ ॥

हे स्तुतिप्रिय सत्यपालकों ! आपकी बुद्धियोंका द्वार खोलनेवाले (इस) सोमका (अपनी) शक्तिके अनुसार पान करो ॥५॥

हे अश्विना ! ज्योतिष्मती या तमः तिरः नः पीपरत् तां इषं अस्मे रासाथाम् ॥ ६ ॥

हे अश्विदेवों ! प्रकाश देता हुआ जो हमें अन्धकारके परे पहुंचाता है, वह अन्न हमें प्रदान करो ॥ ६ ॥

हे अश्विना ! पाराय गन्तवे मतीनां नावा नः आयातम् । रथं युञ्जाथाम् ॥ ७ ॥

हे अश्विदेवों ! (दुःखरूप समुद्रके) पार जानेके लिये बुद्धियोंकी नौकाके साथ हमारे पास आइये । अपने रथको भी जोतो ॥ ७ ॥

वां दिवः पृथु अरित्रं सिन्धूनां तीर्थे, रथः (भूमौ), इन्दवः धिया युयुज्रे ॥ ८ ॥

तुम्हारा द्युलोकके (समान) विस्तृत नौकायान नदियोंसे पार होनेके लिये उतारके स्थानपर (खडा है, तुम्हारा) रथ (भूमिपर खडा है । अब तुम) सोमरस (अपनी) बुद्धिसे किये कर्मके साथ संयुक्त करो ॥ ८ ॥

हे कण्वासः ! दिवः इन्दवः सिन्धूनां पदे वसु, स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥ ९ ॥

हे कण्ववंशके उपासकों ! द्युलोकसे (यह) सोमरस (आया है,) सिन्धुओंके स्थानमें (यह) धन (रहा है, अब) अपने देहको, स्वरूपको, कहां रखोगे ? ॥ ९ ॥

भाः उ अंशवे अभूत् उ । सूर्यः हिरण्यं प्रति, असितः जिह्वया व्यख्यत् ॥ १० ॥

(उषाके) किरण सूर्यके लिये (प्रकाशित) हुए हैं । (यह) सूर्य सुवर्णरूप (ही उग रहा है । अब अग्नि) निस्तेज (सा होकर) ज्वालाओंसे प्रकाशितसा दीप्त रहा है ॥ १० ॥

पारं एतवे ऋतस्य पन्थाः साधुया अभूत् उ । दिवः स्रुतिः वि अदर्शि ॥ ११ ॥

(दुःखके) पार जानेके लिये सत्यका मार्ग (अब) निश्चयसे सरल हुआ है । दिव्य प्रकाश भी दीखने लगा है ॥ ११ ॥

तत्तादिद॒श्विनोरवो जरिता प्रति भूषति । मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥ १२
वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा । मनुष्वच्छंभू आ गतम् ॥ १३
युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् । ऋता वनथो अक्तुभिः ॥ १४
उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ १५

सोमस्य पिप्रतोः मदे अश्विनोः तत् तत् इत् अवः जरिता प्रति भूषति ॥ १२ ॥

सोमपानके आनन्दमें (किये हुए) अश्विदेवोंके उन उन (प्रसिद्ध) संरक्षणके कार्योंकी स्तोता लोग वारंवार प्रशंसा करते हैं ॥ १२ ॥

शंभू ! मनुष्वत् विवस्वति ववसाना, सोमस्य पीत्या गिरा आ गतम् ॥ १३ ॥

हे सुखदायी अश्विदेवों ! (आप दोनों) जैसे मनुके यज्ञ-स्थानमें जाकर बैठे थे, (वैसेही) सोमपान करनेके लिये (तथा हमारे द्वारा की गई) स्तुति सुननेके लिये यहां आओ ॥ १३ ॥

परिज्मनोः युवोः श्रियं अनु उषाः उपाचरत् । अक्तुभिः ऋता वनथः ॥ १४ ॥

चारों ओर परिभ्रमण करनेवाले तुम दोनोंकी शोभाके साथ साथ उषा भी आ रही है । रात्रियोंसे सिद्ध किये यज्ञ (के हविष्यान्नका तुम दोनों) स्वीकार करो ॥ १४ ॥

हे अश्विना ! उभा पिबतम् उभा अविद्रियाभिः ऊतिभिः नः शर्म यच्छतम् ॥ १५ ॥

हे अश्विदेवों ! तुम दोनों रसपान करो । तथा तुम दोनों अविच्छिन्न संरक्षणोंसे हमें सुख दो ॥ १५ ॥

आदर्श वीर

इस सूक्तमें आदर्श वीरोंका वर्णन है, उनके ये गुण इस सूक्तमें वर्णित हुए हैं—

१ **दस्रौ**— शत्रुका नाश करनेवाले शूरवीर,

२ **सिन्धु-मातरौ**– सिन्धुदेश, सिंधु नदीका देश अथवा नदी प्रदेशको अपनी मातृभूमि माननेवाले,

३ **रयीणां मनोतरौ**— धनोंकी खोज करनेवाले, धनोंका प्रबंध करनेवाले, धनोंसे सम्मान करनेवाले, धनोंके दाता, धनोंके कारण मनोहर,

४ **धिया वसुविदा**– उत्तम कर्म और बुद्धिके अनुकूल धन या स्थान देनेवाले, (मं. २)

५ **मतवचसौ**– मननपूर्वक मननीय भाषण करनेवाले,

६ **नासत्यौ** (न-अ-सत्यौ)– कभी असत्य भाषण या अयोग्य कर्म न करनेवाले, (मं. ५)

७ **अश्विनौ**– घोडोंकी पालना करनेवाले (मं. ७)

८ **शं-भू**– सुख देनेवाले, (मं. १३)

९ **परि-ज्मानौ**– चारों ओर परिभ्रमण करके सबकी स्थितिका निरीक्षण करनेवाले, (मं. १४)

इनमें '**सिन्धु-मातरौ**' यह पद इन वीरोंके जन्मस्थान-की सूचना देता है। 'सिन्धु' पदसे आजके सिंधदेशकी ही कल्पना करनी चाहिये ऐसी कोई बात नहीं है। यह सिंधुदेश नदीके पासका कोई प्रदेश होगा।

वीरोंके वाहन

इस सूक्तमें अश्विदेवोंके विमानका स्पष्ट उल्लेख है–

१ **वां रथः अधि विष्टपि विभिः पतात्**– आप दोनोंका रथ आकाशमें पक्षियोंसे उडता जाता है। 'विभिः' पदसे तीन या तीनसे अधिक पक्षियोंका बोध होता है। विमानको पक्षी जोते जाते थे, ऐसा इससे पता लगता है। गरुड, गीध आदि पक्षी हैं और उत्तरी ध्रुवके पास इनसे भी बडे प्रतिघण्टेमें ३०० मीलोंके वेगसे उडनेवाले पक्षी हैं। ऐसेही पक्षी जोते जाते होंगे। (मं. ३)

२ **वां दिवः पृथु अरित्रं सिन्धूनां तीर्थे रथः युयुज्रे**– आपका द्युलोकके समान विस्तृत आरोंसे चलाया जानेवाला रथ नदियोंके उतारके स्थानपर सज्ज होकर खडा है। यहांका 'अरित्र' पद बता रहा है कि यह नौका है। अन्य स्थानोंके वर्णनोंसे पता ऐसा लगता है कि अश्विदेवोंका रथ आकाशमें विमानोंके समान, जलमें नौकाके समान तथा भूमिपर रथके समान चल सकता था। जलमें आरोंसे चलाया जाता था, भूमिपर घोडोंसे और आकाशमें वेगवान् पक्षियोंसे। '**तीर्थ**' का अर्थ 'उतारका स्थान' है। (मं. ८)

३ **पाराय गन्तवे नावा नः आयातं** (मं. ७)- पार जानेके लिये नौकाद्वारा हमारे पास आओ। यहां नौकाका उल्लेख है। वेदमें ' रथ ' शब्द विमान, नौका और रथके लिये समानतया प्रयुक्त होता है। आगेपीछेके वर्णनसे यहां कौनसा अर्थ है यह पाठक जान सकते हैं।

सूक्तका ऋषि

मंत्र ९ में ' **कण्वासः** ' पद है। यह मन्त्रद्रष्टा ऋषिका सूचक है। प्रस्कण्व ऋषि कण्व गोत्रोत्पन्न अनेक ऋषियोंको संबोधन करके बुला रहा है। एक गोत्रके लोग मिलकर यज्ञ कर रहे थे ऐसा इससे पता लग सकता है। ' कण्व ' पद दुःखसे कराहनेवालेका भी वाचक है। इस अर्थका स्वीकार करनेसे इसका कण्वगोत्रके साथ संबंध नहीं रहता। यहां दोनों मत वाचकोंके सामने रखे हैं। पाठक विचार करके उचित बोध लेनेका यत्न करें।

सात्त्विक अन्न

छठे मन्त्रमें ' तेजस्वी अन्नका ' वर्णन है। ' **ज्योतिष्मती तमः तिरः, इषं रासाथाम्** । ' (मं. ६) तेजस्वी, तमोगुणसे दूर रहनेवाला, (**पीपरत्**) पुष्टि करनेवाला अन्न हमें चाहिये। यहां अन्नका जो वर्णन है वह निःसंदेह सात्त्विक भोजन है। जिससे तमोगुण दूर रहता है, जो तेजस्विता बढाता है और पुष्टि करता है, वह अन्न सात्त्विकही हो सकता है।

सत्यका मार्ग

ऋतस्य पन्थाः पारं एतवे साधुया अभूत्। (मं. ११) ' सत्यका मार्ग दुःखके पार होनेके लिये साधुताके साथ तैयार हुआ है। ' यह यज्ञका मार्ग अथवा धर्मका मार्ग है। इस सूक्तने यह सीधा यज्ञमार्ग बताया है। इससे जाकर मनुष्य सुख प्राप्त करे।

सोमरस

इस सूक्तमें सोमका जो वर्णन है वह देखनेयोग्य है—

१ **मतीनां आदारः** (मं. ५)- बुद्धियोंको खोलनेवाला, बुद्धिका विकास करनेवाला, मननशक्तिकी वृद्धि करनेवाला,

२ **मतीनां नावा** (मं. ७)- मतियोंकी नौका, सोमका रस मानो बुद्धिकी नौकाही है,

३ **इन्दवः धिया युयुज्रे** (मं. ८)- सोमरस बुद्धिके साथ जुड जाते हैं, बुद्धियोंको उत्तेजना देते हैं,

४ **दिवः इन्दवः सिन्धूनां पदे वसु** (मं. ९)- द्युलोकसे पर्वत शिखरपरसे लाये हुये ये सोमरस नदियोंके तीरोंपर यज्ञोंमें रखे जाते हैं। सोमरसमें जल मिलाकर यज्ञोंमें पान करते हैं।

५ **सोमस्य मदः** (मं. १२)- सोमसे आनन्द मिलता है,

इस सूक्तमें जो अन्य वर्णन है वह मंत्रोंके अर्थोंमें स्पष्ट हो चुका है।

(१६) वीर

(ऋ. १।४७) प्रस्कण्वः काण्वः। अश्विनौ। प्रगाथः- विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः।

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ १
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥ २

अन्वयः— हे ऋतावृधा अश्विना! वां अयं मधुमत्तमः सोमः सुतः तिरोअह्न्यं तं पिबतम्। दाशुषे रत्नानि धत्तम्॥ १॥

हे अश्विना! त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेन आ यातम्। कण्वासः वां अध्वरे ब्रह्म कृण्वन्ति, तेषां हवं सु शृणुतम्॥ २॥

अर्थ— हे सत्यका संवर्धन करनेवाले अश्विदेवों! आप दोनोंके लिये यह अत्यंत मधुर सोमरस निचोडकर कलही रखा है, इसका पान करो। दाताको रत्नोंका दान करो॥१॥

हे अश्विदेवों! तीन आसनोंसे युक्त, त्रिविध वेष्टनोंसे वेष्टित, सुंदर रूपवाले रथसे आओ। कण्वपुत्र आप दोनोंके लिये इस हिंसारहित कर्ममें स्तोत्र कर रहे हैं, उनकी प्रार्थना सुनो॥ २॥

अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥ ३ ॥
त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ॥ ४ ॥
याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्व१स्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥
सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥
यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ७ ॥
अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥ ८ ॥

हे ऋतावृधा ! मधुमत्तमं सोमं पातम् । हे दस्रा अश्विना ! अथ अद्य रथे वसु बिभ्रता दाश्वांसं उप गच्छतम् ॥ ३ ॥

हे विश्ववेदसा ! त्रिषधस्थे बर्हिषि मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् । हे अश्विना ! वां सुतसोमाः अभिद्यवः कण्वासः युवां हवन्ते ॥ ४ ॥

हे अश्विना ! युवं याभिः अभिष्टिभिः कण्वं प्र अवतम् । हे शुभः पती ! ताभिः अस्मान् सु अवतम् । हे ऋतावृधा ! सोमं पातम् ॥ ५ ॥

हे दस्रा अश्विना ! सुदासे रथे वसु बिभ्रता पृक्षः वहतम् । समुद्रात् उत वा दिवः परि पुरुस्पृहं रयिं अस्मे धत्तम् ॥ ६ ॥

हे नासत्या ! यत् परावति स्थः, यत् वा अधि तुर्वशे (स्थः), अतः सूर्यस्य रश्मिभिः साकं सुवृता रथेन नः आ गतम् ॥ ७ ॥

अध्वरश्रियः सप्तयः सवना इत् उप अर्वाञ्चा वां वहन्तु । हे नरा ! सुकृते सुदानवे इषं पृञ्चन्ता बर्हिः आ सीदतम् ॥ ८ ॥

हे सत्यके संवर्धक देवों ! अत्यंत मधुर सोमरसका पान करो । हे शत्रुनाशक अश्विदेवों ! और आज रथपर धन रखकर दाताके पास आओ ॥ ३ ॥

हे सर्वज्ञाता ! तीन स्थानोंमें (फैलाये) कुशासनपर (बैठकर) मधुररससे यज्ञको भरपूर करो । हे अश्विदेवो ! आप दोनोंके लिये सोमरस निकालकर तेजस्वी कण्वपुत्र तुम्हें बुला रहे हैं ॥ ४ ॥

हे अश्विदेवों ! तुम दोनोंने जिन अभीष्ट सुरक्षाके साधनोंसे कण्वकी सुरक्षा की थी, हे शुभके पालनकर्ता ! उनसे हमारी सुरक्षा करो । हे सत्यके रक्षकों ! सोमरस पीओ ॥ ५ ॥

हे शत्रुविनाशक अश्विदेवों ! सुदासके लिये रथमें धन रखकर (तुमने लाया था और) अन्न भी लाया था । समुद्रसे अथवा आकाशसे अत्यंत प्रशंसनीय धन हमारे लिये लाकर दो ॥ ६ ॥

हे सत्यके पालकों ! यदि तुम दूर हो, अथवा तुर्वशके पास (ही हो, वहांसे) सूर्यके किरणोंके साथ अपने सुंदर रथसे हमारे पास आओ ॥ ७ ॥

हिंसारहित कर्मकी शोभा बढानेवाले घोडे सोमयागके पास तुम्हें ले जाँय । हे नेता वीरों ! उत्तम कर्म करनेवाले दाताके लिये अन्न देते हुए (तुम दोनों) आसनोंपर आकर बैठो ॥ ८ ॥

तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ९
उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे ।
शश्वत् कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना १०

हे नासत्या ! सूर्यत्वचा तेन रथेन आ गतम् । येन दाशुषे शश्वत् वसु मध्वः सोमस्य पीतये ऊहथुः ॥९॥

पुरूवसू अवसे उक्थेभिः अर्कैः च अर्वाक् नि ह्वयामहे । हे अश्विना ! कण्वानां प्रिये सदसि शश्वत् कं सोमं पपथुः हि १०

हे सत्यपालकों ! सूर्यके समान तेजस्वी रथसे आओ। जिससे दाताके लिये सदा धन (देनेके लिये और) मधुर सोमरस पीनेके लिये (तुम दोनों) लाये जाते हैं ॥ ९ ॥

बहुत धनवाले (आप दोनोंकी हम अपनी) सुरक्षाके लिये स्तोत्रों और काव्योंसे स्तुति करते हैं । हे अश्विदेवों ! कण्वोंकी प्रिय सभामें सदा आनन्ददायक सोमका पान तुमने किया ही है ॥ १० ॥

सूक्तका-ऋषि

इस सूक्तमें सूक्तकर्ता ऋषिका और उसके पूर्वजोंका वर्णन आया है, वह देखिये—

१ कण्वासः वां ब्रह्म कृण्वन्ति (मं. २)- कण्वपुत्र या कण्वगोत्रमें उत्पन्न ऋषि तुम्हारा स्तोत्र करते हैं। यहां (कृण्वन्ति) 'करते हैं' पद है।

२ सुतसोमाः कण्वासः युवां हवन्ते (मं. ४)- सोमरस निकालकर कण्वगोत्रके ऋषि तुम्हें बुलाते हैं, तुम्हारी प्रार्थना करते हैं।

३ कण्वानां सदसि सोमं पपथुः (मं. १०)- कण्वोंकी सभामें सोमपान तुम दोनोंने किया था।

४ युवं कण्वं प्रावतं (मं. ५)- तुम दोनोंने कण्वकी सुरक्षा की थी।

इस तरह कण्व ऋषिका और कण्वके गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषियोंका उल्लेख इस सूक्तमें है।

वीरोंके गुण

इस सूक्तमें आये हुवे वीरोंके गुणोंका विवरण इससे पूर्व हो चुका है, इसलिये उसके दुहरानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। **ऋतावृधौ**= सत्यको, यज्ञको,फैलानेवाले, **अश्विनौ**= घोडोंको साथ रखनेवाले (मं. १), **शुभस्पती**= शुभ कार्य करनेवाले, (मं.५), **धियंधेदसौ**=सब ज्ञान जाननेवाले, विद्वान्, बहुश्रुत, (मं. ४), **दस्रौ**= शत्रुविनाशक, (मं. ६), **नासत्यौ** = सत्यके पालनकर्ता (मं. ७), **नरौ** = नेता (मं. ८), **पुरूवसू**= बहुतोंको बसानेवाले (मं. १०) ये गुण यहां प्रमुख-स्थान रखते हैं।

सोमरस

' **तिरो-अह्न्यं सोमं पिबतं** ' (मं. १)= कल निचोडा हुआ सोमरस पीओ। इससे पता लगता है कि सोमसे रस निकालकर १२ या २४ घण्टे हो जानेके बाद भी वह पीया जाता था। उसी समय पीया जाता था और कलका आज भी पीया जाता था। ' **मधुमत्तम** ' (मं. १) उसमें = शहद मिलाया जाता था, अति मधुर बनाया जाता था। '**मध्वा यज्ञं मिमिक्षतं** ।' (मं. ४)= इसकी मधुरिमासे यज्ञ भरपूर हो। अर्थात् याजकोंको भरपूर मीठा रस पीनेके लिये मिले और उपस्थित देवोंको भी मिले

रथ

अश्विदेवोंके रथमें (त्रि-वन्धुरः। मं. २) तीन स्थानोंपर तीन बैठकें, तीन वीर बैठनेके लिये तीन स्थान थे। (त्रिवृतः। मं. २) तीन वेष्टनोंसे यह, रथ वेष्टित था। तीन चर्मोंके वेष्टन, अथवा सबसे बाहरका वेष्टन सोने चांदीका भी होता था। गेंडेका चर्म भी अधिक सुरक्षाके लिये बर्ता जाता था। (**सुपेशसा**) उस रथपर सुन्दर चमक दमक रहती थी। (**सुवृतः** । मं. ७) अच्छी तरह कवचसे वेष्टित होनेसे रथ सुरक्षित रहता था। (सप्तयः वहन्तु। मं. ८) रथको घोडे जाते जाते थे। (**सूर्यत्वचा** । मं. ९) सूर्यके समान सुनहरी चमक रथपर रहती थी। इससे स्पष्ट होता है कि यह रथ बडी कारीगरीसे बनाया जाता था।

अध्वरः

यहां यज्ञका नाम ' अ-ध्वर ' आया है जिसमें हिंसा, कुटिलता, कपट, छल, मिथ्याचार, ढोंग न हो वही अध्वर है। इसी यज्ञका वर्णन यहां किया है। अर्थात् हिंसा न होनेवाला ही यज्ञ अध्वर कहलाता है।

(१७) उषा

(ऋ. १।४८) प्रस्कण्वः काण्वः। उषाः। प्रगाथः=विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः।

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥१॥
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ॥२॥
उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम्।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥३॥
उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः।
अत्राह तत् कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥४॥
आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥५॥

अन्वयः— हे दिवः दुहितः उषः ! नः वामेन सह वि उच्छ। हे विभावरि ! बृहता द्युम्नेन सह (वि उच्छ)। हे देवि ! दास्वती राया (वि उच्छ) ॥ १ ॥

अश्वावतीः गोमतीः विश्व-सुविदः (उषाः) वस्तवे भूरि च्यवन्त। हे उषः ! मा प्रति सूनृताः उदीरय। मघोनां राधः चोद ॥ २ ॥

रथानां जीरा, अस्याः आचरणेषु ये दध्रिरे, श्रवस्यवः समुद्रे न, उषाः देवी उवास, च नु उच्छात् ॥ ३॥

हे उषः ! ते यामेषु ये सूरयः दानाय मनः प्र युञ्जते, एषां नृणां तत् नाम कण्वतमः कण्वः अत्र अह गृणाति ॥४॥

वृजनं जरयन्ती उषाः प्रभुञ्जती आ याति घ। सूनरी योषा इव। पद्वत् ईयते, पक्षिणः उत् पातयति ॥ ५ ॥

अर्थ— हे द्युलोककी पुत्री उषा ! हमारे पास सुन्दर धनके साथ प्रकाशित हो। हे तेजस्वी उषा ! बडे प्रकाशके साथ (प्रकाशित हो), हे देवी ! दातृत्व गुणके साथ धन देकर (प्रकाशित हो) ॥ १ ॥

घोडों, गौओं और सब धनोंके साथ (रहनेवाली उषा) सबके उत्तम निवासके लिये बहुत रीतिसे प्रकट होती है। हे उषा ! मेरे लिये सत्ययुक्त होकर उदित हो। धनवानोंके धनको (हमारे पास) प्रेरित कर ॥ २ ॥

रथोंको प्रेरणा करनेवाली (उषा है), अतः इसके आनेपर ये (रथ वैसे) आगे बढाये जाते हैं, जैसे धनके अभिलाषी वीर समुद्रमें नौका छोडते हैं। यह उषा (जैसी पहिले) प्रकाशित होती रही (वैसी भविष्यमें भी) प्रकाशित होती रहेगी ॥ ३ ॥

हे उषा ! तेरे आगमन होनेपर ज्ञानी लोग अपना मन दानमें लगा देते हैं, उन (दानी) मनुष्योंका वह (यशस्वी) नाम कण्वोंमें विद्वान् कण्व ऋषि यहां (उषःकालमेंही) लेता है॥४॥

पापका नाश करनेवाली, उषा देवी, (सबको) खिलाती हुई आती है। जैसी साध्वी स्त्री (घरका पालन करती है)। पांववालोंको चलाती है, और पक्षियोंको उडाती है ॥ ५ ॥

वि या सृजति समनं व्य१र्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ॥ ६

एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥ ७

विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्त्रिधः ॥ ८

उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ९

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥ १०

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥ ११

या समनं वि सृजति, अर्थिनः वि (सृजति), ओदती पदं न वेत्ति । हे वाजिनीवति ! ते व्युष्टौ पप्तिवांसः वयः नकिः आसते ॥ ६ ॥

एषा शतं अयुक्त । सुभगा इयं उषाः परावतः सूर्यस्य उदयनात् अभि मानुषान् अभि रथेभिः वि याति ॥ ७ ॥

विश्वं जगत् अस्याः चक्षसे ननाम । सूनरी ज्योतिः कृणोति । मघोनी दिवः दुहिता उषाः द्वेषः अप उच्छत् स्त्रिधः अप (उच्छत्) ॥ ८ ॥

हे दिवः दुहितः उषः ! चन्द्रेण भानुना दिविष्टिषु भूरि सौभगं अस्मभ्यं आवहन्ती व्युच्छन्ती आ भाहि ॥ ९ ॥

हे सूनरि ! विश्वस्य प्राणनं जीवनं त्वे हि, यत् वि उच्छसि । हे विभावरि ! सा (त्वं) नः बृहता रथेन (आ याहि) । हे चित्रामघे । (नः) हवं श्रुधि ॥ १० ॥

हे उषः ! यः चित्र. मानुषे जने (तं) वाजं हि वंस्व । तेन ये वह्नयः त्वा गृणन्ति (तान्) सुकृतः अध्वरान् उप आ वह ॥ ११ ॥

जो समान (कर्मचारी) को बाहर (कर्म करनेके लिये) निकालती है, धन चाहनेवालोंको (भी बाहर लाती है) । यह जलयुक्त उषा (क्षणभर भी) विश्राम नहीं करती । हे धन-युक्त देवी । तेरे उदय होनेपर उड सकनेवाले पक्षी (अपने घोंसलोंमें) नहीं बैठते ॥ ६ ॥

यह (उषा) सैकडों रथोंको जोतती है । यह धनवाली उषा देवी दूरसे सूर्यके उदयस्थानसे मनुष्योंके पास रथोंके साथ आती है ॥ ७ ॥

सब जगत् इस (उषा)के प्रकाशके लिये प्रणाम करता है । (क्योंकि यही) उत्तम प्रेरणा करनेवाली ज्योति (प्रकाश) करती है । धनवाली द्युलोककी पुत्री उषा द्वेष करनेवालोंको दूर करती है, और हिंसक शोषकोंको भी (दूर भगाती है)॥८॥

हे द्युलोककी पुत्री उषा देवी ! आल्हाददायक प्रकाशके साथ यज्ञोंमें अखण्ड सौभाग्य हमें देती हुई, और अन्धकारको दूर करती हुई प्रकाशित हो ॥ ९ ॥

हे उत्तम नेत्री ! सबका प्राण और जीवन तुम्हारेमेंही है, क्योंकि (तुम) अन्धकारको दूर करती हो । हे तेजस्विनी ! वह (तुम) हमारे पास बडे रथसे (आओ) । हे विलक्षण धनवाली ! (हमारी) प्रार्थना सुनो ॥ १० ॥

हे उषा ! जो विलक्षण (अन्न) मनुष्यके पास है, उसे तुम स्वीकार करो । और जो अग्नि तुम्हें स्वीकारते हैं उनके द्वारा यहां उत्तम रीतिसे किये यज्ञोंको संपन्न करो ॥११॥

विश्वान् देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य१मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥ १२
यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥ १३
ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥ १४
उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥ १५
सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥ १६

हे उषः ! त्वं सोमपीतये अन्तरिक्षात् विश्वान् देवान् आ वह । हे उषः ! सा (त्वं) गोमत् अश्वावत् उक्थ्यं सुवीर्यं वाजं अस्मासु धाः ॥ १२ ॥

यस्याः अर्चयः रुशन्तः भद्राः प्रति अदृक्षत, सा उषाः नः विश्ववारं सुपेशसं सुग्म्यं रयिं ददातु ॥ १३ ॥

हे महि ! त्वां ये चित् हि पूर्वे ऋषयः ऊतये अवसे जुहूरे। हे उषः ! सा (त्वं) राधसा शुक्रेण शोचिषा नः स्तोमान् अभि गृणीहि ॥ १४ ॥

हे उषः ! अद्य यत् भानुना दिवः द्वारौ वि ऋणवः, नः अवृकं पृथु च्छर्दिः प्र यच्छतात् । हे देवि ! गोमतीः इषः प्र (यच्छतात्) ॥ १५ ॥

हे उष. ! नः बृहता विश्वपेशसा राया सं मिमिक्ष्व । इळाभिः आ सं (मिमिक्ष्व)। हे महि ! विश्वतुरा द्युम्नेन सं (मिमिक्ष्व)। हे वाजिनीवति ! वाजैः सं (मिमिक्ष्व) ॥ १६ ॥

हे उषे ! (तुम) सोमपानके लिये अन्तरिक्षसे सब देवोंको ले आओ। हे उषा ! गौओं और घोडोंसे युक्त प्रशंसनीय उत्तम वीर्य बढानेवाले अन्नका हम सबमें धारण करो ॥१२॥

जिसकी ज्योतियां प्रकाशित और कल्याण करनेवाली दीखती हैं, वह उषा हमारे लिये सब प्रकार वरणीय सुरूप और सुखदायी धन देवे ॥ १३ ॥

हे बडी उषा ! तुम्हें जिन प्राचीन ऋषियोंने अपनी सुरक्षाके लिये और पालनाके लिये बुलाया था। हे उषा ! वह तू पवित्र तेजसे युक्त सिद्धिके साथ हमारे स्तोत्रोंकी प्रशंसा कर ॥ १४ ॥

हे उषा ! आज अपने तेजसे द्युलोकके दोनों द्वारोंको खोल दिया है। इसलिये हमें क्रूरतारहित विस्तृत घर प्रदान करो। हे देवी ! गौओंसे युक्त अन्न (हमें दो) ॥१५॥

हे उषा ! हमें बडे अनेक रूपोंवाले धनसे युक्त करो। गौवें हमें (दो)। हे पूजनीय उषा ! सब शत्रुओंका नाशक धन दो। हे बलवाली उषा ! हमें बल दो ॥१६॥

उषाके साथ गौवें

इस सूक्तमें उषाका उत्तम काव्यमय वर्णन है। जो पाठक अर्थज्ञानपूर्वक इसका पाठ करेंगे, वेही इस काव्यकी रमणीयताको जान सकते हैं। उषाके साथ गौवों और घोडोंके होनेका वर्णन इस सूक्तमें है-

१ अश्वावती गोमतीः (मं. २)- घोडों और गौवोंसे युक्त उषा है।

२ रथानां जीरा (मं. ३)— रथोंको प्रेरणा करनेवाली उषा है,

३ पद्वत् ईयते, पक्षिणः उत् पातयति (मं. ५)- पांववाले प्राणियोंको-मनुष्यों और पशुओंको-चलनेके लिये प्रेरित करती है, पक्षियोंको उडनेके लिये उत्साहित करती है।

४ समनं अर्थिनः वि सृजति (मं. ६)— धन चाहनेवाले उद्यमी पुरुषोंको कर्म करनेके लिये प्रेरणा देती है।

५ पतियांसः वयः नकिः आसते (मं. ६)- उड सकनेवाले पक्षी अपने घोसलोंमें नहीं ठहरते।

६ एषा युक्त अयुक्त, रथेभिः वि याति (मं. ७)- यह उषा सैकडों रथोंको जोतती और रथोंके साथ चलती है।

७ गोमत् अश्वावत् वाजं धाः (मं. १२)- गौओं और घोडोंसे युक्त अन्न हमें दो।

८ गोमतीः इषः प्र यच्छतात् (मं. १५)- गौओंसे युक्त अन्न हमें दो।

यहां गौवें, घोडे, रथ, पक्षी, पशु, कर्मचारी ये सब उषाके साथ रहते हैं ऐसा वर्णन है। अर्थात् उषःकालमें गौवें चरनेके लिये गोशालासे खुली की जाती हैं, वे हम्बारव करती हुई नगरसे वनमें जाती हैं, घोडे भी इसी तरह जाते हैं और बैल तथा अन्य पशु भी। पक्षी अपने घोसलोंको छोडकर भक्ष्य ढूंढनेके लिये आकाशमें उडते है, वीर अपने रथोंको जोतकर दूर देशमें अपने कार्य करने जाते हैं, कर्मचारी अपने अपने काम करनेके लिये जानेकी तैयारी करते हैं, इस तरह उषाके साथ सभी विश्व जाग उठता और अपने कर्ममें लग जाता है। हरएक उषःकालमें ऐसाही होता है। यह उषःकालका स्वाभाविक काव्यमय वर्णन है। उषःकालमें उठकर अपने व्यवहार करनेसे सबको धन, रत्न आदि मिलते हैं।

दान धर्म

९ सूरयः मनः दानाय प्रयुञ्जते (मं. ४)- ज्ञानी जन अपना मन दान देनेके कार्योंमें लगाते हैं अर्थात् उषःकालसे दान धर्म और यज्ञ शुरू होते हैं।

नामजप

१० कण्वतमः कण्वः नाम गृणाति (मं. ४)- कण्ववंशजोंमें जो विशेष विद्वान् है, वह श्रेष्ठ पुरुषोंके नामका जप करता है।

यहां 'नामजप' का भी वर्णन है और श्रेष्ठसे श्रेष्ठ कण्व वंशज का भी नाम है। इससे स्पष्ट है कि कण्वगोत्रमें कई ऋषि बडे भारी विद्वान् हुए थे और कई साधारण थे।

उषाको प्रणाम

११ विश्वं जगत् अस्याः चक्षसे ननाम (मं. ८)- सब विश्व इस उषाके दर्शनको नमस्कार करता है, सूर्यको प्रणाम करता है।

सूर्य, उषा आदि देवताओंको उदयके समय नमस्कार करनेकी वैदिक प्रथा यहां दिखाई देती है। आज भी उदयके समय सूर्यको प्रणाम करनेवाले हिंदुओं और पारसियोंमें बहुत हैं। दीप लगातेही दीपको प्रणाम करते हैं। नदी, सागर आदिको प्रणाम करते हैं। इस मंत्रमें उषाको प्रणाम करनेकी रीतिका उल्लेख है।

शत्रुको दूर करना

१२ उषाः द्वेषः स्रिधः अप उच्छत् (मं. ८)- उषा शत्रुओं, हिंसकोंको दूर करती है। अर्थात् रात्रीके समय चोर-डाकू, लुटेरे, घातक घूमते रहते हैं, उषःकाल होतेही वे अपने गुप्त स्थानमें जाकर छिपकर रहते हैं। इस तरह उषा इनको दूर करती है।

पूर्व ऋषि

१३ त्वां (उषसं) पूर्वे ऋषयः जुहूरे (मं. १४)— प्राचीन ऋषियोंने उषाका काव्य किया था; वैसाही काव्य हम कर रहे हैं, अतः—

१४ नः स्तोमान् अभि गृणीहि (मं. १४)- हमारे स्तोत्रोंको भी सुनो और उनकी प्रशंसा करो।

यहां जैसा पूर्व ऋषियोंने उषा देवताका काव्य किया था वैसा हम नूतन ऋषि भी स्तोत्र कर रहे हैं ऐसा कहा है।

इस सूक्तके अन्यभाव मंत्रोंके अर्थमें स्पष्ट हुए हैं।

(१८) उषा

(ऋ. १।४९) प्रस्कण्वः काण्वः। उषाः। अनुष्टुप्।

उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद् रोचनादधि । वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १

अन्वयः- हे उषः भद्रेभिः दिवः चित् रोचनात् आ-गहि। अरुणप्सवः सोमिनः गृहं त्वा उप वहन्तु ॥ १ ॥

अर्थ- हे उषा! कल्याणकारक द्युलोकके तेजस्वी मार्गसे (यहां) आओ। अरुण रंगवाले किरण (घोडे या गौवें) सोमयाजकके घरमें तुम्हें ले आवें ॥ १ ॥

सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उपस्त्वम् । तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः २
वयश्चित् ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि । उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ३
व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् । तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ४

हे उषः ! त्वं यं सुपेशसं सुखं रथं अध्यस्थाः । हे दिवः दुहितः ! तेन अद्य सुश्रवसं जनं प्र अव ॥ २ ॥

हे अर्जुनि उषः ! ते ऋतून् अनु द्विपत् चतुष्पत् पतत्रिणः वयः चित् दिवः अन्तेभ्यः परि प्र अरन् ॥ ३ ॥

हे उषः ! व्युच्छन्ती रश्मिभिः विश्वं रोचनं आ भासि । हि तां त्वां वसूयवः कण्वा गीर्भिः अहूषत ॥ ४ ॥

हे उषा ! तुम जिस सुन्दर सुखदायी रथपर बैठती हो, हे द्युलोककी पुत्री ! उससे आज सुयशवाले जनकी सुरक्षा करो ॥ २ ॥

हे शुभ्र वर्णवाली उषा ! तेरे (आगमनके) समयमें द्विपाद मानव, चतुष्पाद पशु और उडनेवाले पक्षी द्युलोकके अन्ततक गमन करते हैं (और अपने कर्ममें दत्तचित्त होते हैं) ॥ ३ ॥

हे उषा ! अन्धकारको दूर करती हुई अपने किरणोंसे सब जगत्को प्रकाशित करती हो। धनकी इच्छा करनेवाले कण्व अपने स्तोत्रोंसे उस तुम्हारा यश गाते हैं ॥ ४ ॥

ऋषिनाम

इस सूक्तके अन्तिम मंत्रमें ऋषिनामका उल्लेख है- 'कण्वाः गीर्भिः अहूषत (मं. ४)' कण्व ऋषि अपनी वाणियोंसे उषाके काव्य गाते हैं।

' अर्जुनि उषः '(मं. ३)- श्वेत वर्णवाली उषा । प्रातः-कालकी उषाकाही वर्णन है। श्वेतवर्ण दिनका है वह जिसमें क्षण क्षणमें अधिकाधिक मिलता जाता है वह प्रभात समयकी ही उषा है।

इस समय मनुष्य, पशु, पक्षी, अपने अपने कार्यमें लगते हैं। यह भी प्रभात समयही है। इसके विपरीत शामके समयमें होता है। पशु पक्षी घोंसलोंमें आते हैं, मानव घरमें आते हैं, अपने कार्योंसे शामके समय निवृत्त होते हैं।

(१९) सूर्यसे आरोग्य

(ऋ. १।५०) प्रस्कण्वः काण्वः । सूर्यः (११-१३ रोगघ्न्य उपनिषदः, १३ अन्त्योऽर्धर्चः द्विपद्वेषः) । गायत्री, १०-१३ अनुष्टुप् ।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् १
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे २
अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ३

अन्वयः— केतवः त्यं जातवेदसं देवं सूर्यं विश्वाय दृशे उत् उ वहन्ति ॥ १ ॥

त्ये तायवः यथा, नक्षत्रा अक्तुभिः, विश्वचक्षसे सूराय अप यन्ति ॥ २ ॥

अस्य केतवः रश्मयः जनान् अनु वि अदृश्रम्, यथा भ्राजन्तः अग्नयः ॥ ३ ॥

अर्थ— किरण उस वेदके प्रकाशक दिव्य सूर्यको विश्वके दर्शन करानेके लिये ऊपर उठाते हैं ॥ १ ॥

चोरोंके समान, वे नक्षत्र रात्रीके साथ, जगत्प्रकाशक सूर्यका (आगमन होनेपर) दूर भाग जाते हैं ॥ २ ॥

इस (सूर्यके सूचक) किरण लोगोंको अनुकूलतापूर्वक विशेष निरीक्षण करके देखते हैं। वे तेजस्वी अग्नि जैसे दीखते हैं ॥ ३ ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ४
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ५
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ६
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ७
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ८
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ९
उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् १०
उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् । हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ११
शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि १२

हे सूर्य ! (त्वं) तरणिः विश्वदर्शतः ज्योतिष्कृत् असि । रोचनं विश्वं आ भासि ॥ ४ ॥

(त्वं) देवानां विशः प्रत्यङ् उत् एषि । मानुषान् प्रत्यङ्, (तथा) विश्वं स्वः दृशे (प्रत्यङ् उत् एषि) ॥ ५ ॥

हे पावक वरुण ! त्वं जनान् भुरण्यन्तं येन चक्षसा अनु पश्यसि ॥ ६ ॥

हे सूर्य ! (त्वं) पृथु रजः द्यां, अहा अक्तुभिः मिमानः, जन्मानि पश्यन् वि एषि ॥ ७ ॥

हे विचक्षण सूर्य देव ! सप्त हरितः शोचिष्केशं त्वा रथे वहन्ति ॥ ८ ॥

सूरः रथस्य नप्त्यः शुन्ध्युवः सप्त अयुक्त । ताभिः स्वयुक्तिभिः याति ॥ ९ ॥

वयं तमसः परि ज्योतिः, उत्तरं देवत्रा देवं सूर्यं पश्यन्तः, उत्तमं ज्योतिः उत् अगन्म ॥ १० ॥

हे सूर्य मित्रमहः ! अद्य उद्यन्, उत्तरां दिवं आरोहन्, मम हृद्रोगं हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥

मे हरिमाणं शुकेषु रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ॥ १२ ॥

हे सूर्य ! (तू आकाशमें) तैरता है, सबका दर्शन करता है, प्रकाशको फैलाता है। दीप्तिमान् विश्वको भी प्रकाशित करता है ॥ ४ ॥

(तुम) देवोंकी प्रजाके सामने उदित होते हो। मनुष्योंके सामने, (तथा) सब प्रकाशके दर्शन होनेके लिये प्रत्यक्ष उदित होते हो ॥ ५ ॥

हे पवित्रता करनेवाले वरणीय देव ! तुम सब जनोंको और इस गतिमान् जगत्को जिस प्रकाशसे (कृपासे) देखते हो, (वही हम चाहते हैं) ॥ ६ ॥

हे सूर्य ! (तुम) विस्तृत रजोलोकसे और द्युलोकसे, दिवसको रात्रियोंके साथ मापन करते हुए और सबके जन्मोंका निरीक्षण करते हुए जाते हैं ॥ ७ ॥

हे प्रकाशक सूर्य देव ! सात किरणरूप घोडे, शुद्ध किरणवाले तुम्हें रथमें उठाकर ले जाते हैं ॥ ८ ॥

सूर्यने रथको ले जानेवाली, शुद्धि करनेवाली सात (घोडियोंको रथके साथ) जोत दिया है। उन स्वयं जोती हुई (घोडियोंसे सूर्यदेव) जाते हैं ॥ ९ ॥

हम सब अन्धकारसे ऊपर उठी ज्योतिको (देखकर), उससे भी अधिक तेजस्वी देव सूर्यको देखते हुए, अन्तमें उत्कृष्टसे उत्कृष्ट ज्योतिको प्राप्त करते हैं ॥ १० ॥

हे मित्रसदृश महनीय सूर्य ! तू आज उदित होता हुआ, उत्तर दिशाके द्युलोकपर चढता हुआ, मेरे हृदयरोग और पीलक रोगका नाश कर ॥ ११ ॥

तू मेरा हरिमा (पीलक) रोग शुक (तोते) नामक पक्षीमें तथा हारिद्रवोंमें रख देता है। और हरे रंगोंपर मेरे हरिमा रोगको रख देता है ॥ १२ ॥

उद्गादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह । द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम् ११

अयं आदित्यः विश्वेन सहसा सह उत् अगात्। मह्यं द्विषन्तं रन्धयन्, अहं द्विषते मो रधम् ॥ १३ ॥

यह सूर्य सब बलके साथ उदित हुआ है। यह मेरे लिये शत्रुका नाश करे, पर मैं अपने द्वेषीके अधीन कभी न हो जाऊं (ऐसा भी वही करे) ॥ ११ ॥

सूर्यकिरणोंसे रोगोंकी चिकित्सा

इस सूक्तका देवता सूर्य है और सूर्यकिरणोंसे रोग दूर करनेकी सूचना इस सूक्तमें है। विशेष कर हृद्रोग, हृदयकी दुर्बलता और पीलक रोग, पाण्डु रोग आदिको दूर करनेका इसमें निःसंदेह उल्लेख है। ' रोगघ्न्य उपनिषद्‌ ' ऐसा इस सूक्तका संकेत सूत्रकारने दिया है वह योग्यही है। रोग दूर करनेकी यह विद्या है।

मन्त्र १ से ७ तक सूर्यका वर्णन है। आठवें मन्त्रमें ' **शोचिष्‌-केश** ' पद सूर्यका विशेषण है जिसमें सूर्य-प्रकाशमें शुद्धता करनेका गुण है ऐसा सूचित हुआ है। शुद्धता करनेका ही अर्थ रोगबीजोंका नाश करके आरोग्य देना है। सूर्यके किरणोंमें सात रंगोंके किरण होते हैं। सूर्यकिरण श्वेत रंगका है, उसको काचसे विभिन्न किया तो सात रंग स्पष्ट दीखते हैं। इनमें रोग दूर करनेकी शक्ति है। वर्ण-चिकित्साका इस तरह संबंध आता है।

आगे ९ म मन्त्रमें किरणोंका नाम ' शुन्ध्युवः ' है यह भी किरणोंका शोधक गुण बता रहा है। शोधनसेही शुद्धता होकर रोग दूर होते हैं।

मन्त्र ११ और १२ में '**हृद्रोग, हरिमा**' इन रोगोंके दूर करनेका उल्लेख है। हरिमा रोगको शुकों और वृक्षोंमें फेंकनेका भाव यही है कि यह हरिमा यदि किसी स्थानपर रहनाही है तो वह मनुष्योंके शरीरमें न रहे, वृक्षों और तोतोंके शरीरमें रहे। हरिमा, हरापन रहनेके लिये परमेश्वरने प्राणियोंमें तोतोंका शरीर और स्थावरोंमें वृक्ष बनाये हैं। मनुष्यमें हरिमाके लिये स्थान नहीं होना चाहिये। शुद्ध रक्त न होनेसे हरिमा मनुष्य शरीरपर दिखाई देता है, सूर्यकिरणोंसे वह हरिमा दूर होता है और मनुष्य हृष्टपुष्ट और आरोग्यसंपन्न हो जाता है।

सूर्यकिरणमें (**विश्वेन सहसा सह**। मं. १३) सब प्रकारका बल रहता है। सूर्यकिरणसे शरीरको योग्य समयमें तपानेसे वह बल प्राप्त होता है। भोजन पूर्व या उत्तर एक घण्टा सूर्यकिरणोंको शरीरपर रखना योग्य नहीं है। सबेरे शीत जलसे स्नान करके सूर्यकिरणोंमेंही संध्या, उपासना, ध्यान, *गायत्री जप, सूर्योपस्थान आदि घण्टा डेढ घण्टा खुले शरीरसे* करनेसे पर्याप्त प्रमाणमें सूर्यकिरण-स्नान होता है और लाभ भी अच्छा होता है। अतिशीत जहां होता है वहां सूर्यकिरण स्नानके लिये सुबह ९।१० बजेका समय या सायं ३।४ बजेका समय निकालना योग्य होगा। यह शरीरका अभ्यास युक्तिपूर्वक अपने शरीरकी शक्ति देखकर शनैः शनैः करना उचित है।

' मेरे शत्रु मरें, पर मैं शत्रुके अधीन न होऊं, ' यह इस सूक्तका अन्तिम संदेश स्मरण रखनेयोग्य है।

(*अष्टम मण्डल*)

अथ वालखिल्यम्

(२०) प्रभावी वीर

(ऋ. ८।५१) प्रस्कण्वः काण्वः। इन्द्रः। प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति १

अन्वयः— वः सुराधसं इन्द्रं, यथा विदे (तथा), अभि प्र अर्च। यः मघवा पुरूवसुः जरितृभ्यः सहस्रेण इव शिक्षति ॥ १ ॥

अर्थ- आपके लिये उत्तम सिद्धि देनेवाले इन्द्रकी, जिस तरह विधि-प्रसिद्ध है (उस तरह), पूजा करो। जो यह धनवान् इन्द्र बहुतही धनवाला होनेके कारण उपासकोंके लिये सहस्रोंकी संख्यामें (धन) देता है ॥ १ ॥

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २
आ त्वा सुतास इन्दवो मदा य इन्द्र गिर्वणः ।
आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं१ सरः पृणन्ति शूर राधसे ॥ ३
अनेहसं प्रतरणं विवक्षणं मध्वः स्वादिष्ठमीं पिब ।
आ यथा मन्दसानः किरासि नः प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत् ॥ ४
आ नः स्तोममुप द्रवद्धियानो अश्वो न सोतृभिः ।
यं ते स्वधावन्त्स्वदयन्ति धेनव इन्द्र कण्वेषु रातयः ॥ ५
उग्रं न वीरं नमसोप सेदिम विभूतिमक्षितावसुम् ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिञ्चते क्षरन्तीन्द्र धीतयः ॥ ६
यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे यद्वा पृथिव्यामधि ।
अतो नो यज्ञमाशुभिर्महेमत उग्र उग्रेभिरा गहि ॥ ७

धृष्णुया शतानीका इव प्र जिगाति, (यः) दाशुषे वृत्राणि हन्ति । पुरुभोजसः अस्य दत्राणि प्र पिन्विरे, गिरेः रसाः इव ॥ २ ॥

इन्द्र धैर्यसे, सौ सेनाओंका स्वामी होनेके समान, आगे बढता है । वह दाताकी (सुरक्षा करनेके) लिये घेरनेवाले शत्रुओंका वध करता है । अनेकोंको भोजन देनेवाले इस इन्द्रको अर्पण करनेके लिये सोमरस, पर्वतसे निकलनेवाले झरनोंके समान, बढते जाते हैं ॥ २ ॥

हे गिर्वणः इन्द्र ! ये मदाः इन्दवः सुतासः (सन्ति), हे वज्रिन् शूर ! ओक्यं त्वा राधसे आ अनु पृणन्ति, आपः सरः न ॥ ३ ॥

हे स्तुत्य इन्द्र ! जो आनन्दवर्धक सोमरस निचोडकर(तैयार किये हैं वे), हे वज्रधारी शूर ! तेरे घरको तेरी प्रसन्नताके लिये परिपूर्ण करते हैं (तुम्हें समर्पित होते हैं)। जैसे जल-प्रवाह सरोवरको (भर देते हैं) ॥ ३ ॥

प्रतरणं विवक्षणं मध्वः स्वादिष्ठं अनेहसं ईं पिब । मन्दसानः नः यथा आ किरासि, धृषत् त्मना क्षुद्रा इव प्र (ददाति) ॥ ४ ॥

विशेष तारक, वर्णनीय, मधुरताके कारण स्वादिष्ट, और निष्पाप रसका पान करो । जिससे आनन्दित, प्रसन्न होकर तुम हमें बहुत दान दोगे, (क्योंकि तुम्हारे) धैर्यमय उत्साहसे युक्त होकर क्षुद्र स्त्री भी बहुत (दान देती है) ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! नः सोतृभिः स्तोमं आ उप द्रवत्, हियानः अश्वः न । हे स्वधावन् ! ते धेनवः कण्वेषु रातयः यं स्वदयन्ति ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! हमारे स्तोताओंके साथ हमारे यज्ञके पास आओ, जैसा हिनहिनानेवाला घोडा आता है । हे अपनी शक्तिसे युक्त वीर ! तेरी गौवें कण्वोंके (सोमरसके) दानोंमें इस (सोमरसको) स्वादु बना देती हैं ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! विभूतिं अक्षितवसुं वीरं नमसा उप सेदिम, उग्रं न । हे वज्रिन् ! सिञ्चते धीतयः उद्री इव अवतः न, क्षरन्ति ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! विभूतिरूप, अक्षय्य धनवाले वीर (इन्द्र)के पास हम नमस्कारके साथ जाते हैं, जैसे शूरके पास (पहुंचते हैं) । हे वज्रधारी, वृष्टि करनेवाले (तुम्हारे) लिये सब स्तोत्र, प्रवाह हौजको भरनेके समान, प्रवाहित होते हैं ॥ ६ ॥

हे महेमते ! यत् ह नूनं, यत् वा यज्ञे, यत् वा पृथिव्यां अधि (वर्तसे.), अतः उग्रः उग्रेभिः आशुभिः नः यज्ञं आ गहि ॥ ७ ॥

हे महाबुद्धिमान् ! जहां भी तुम हो, यज्ञमें अथवा भूमिपर (हो), वहांसे उग्रवीर होकर अपने उग्र घोडोंके साथ हमारे यज्ञमें आओ ॥ ७ ॥

अजिरासो हरयो ये त आशवो वाताइव प्रसक्षिणः ।
येभिरपत्यं मनुषः परीयसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे ८
एतावतस्त ईमह इन्द्र सुम्नस्य गोमतः ।
यथा प्रावो मघवन्मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने ९
यथा कण्वे मघवन्त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे ।
यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनीन्द्र गोमद्धिरण्यवत् १०

ये ते हरयः, वाता इव, प्रसक्षिणः अजिरासः आशवः, येभिः मनुषः अपत्यं परि ईयसे, येभिः विश्वं स्वः दृशे, (तैः आगहि) ॥ ८ ॥	जो तुम्हारे घोडे, वायुके समान शत्रुभञ्जक, वेगवान् और शीघ्रगामी हैं, जिनसे तुम मनुष्योंके पास पुत्रवत् जाते हो, और जिनसे सब विश्वका निरीक्षण करते हो, (उनसे) तुम आओ ॥ ८ ॥
हे मघवन् इन्द्र ! धने यथा मेध्यातिथिं प्र आवः, यथा नीपातिथिं (प्र आवः), एतावतः ते गोमतः सुम्नस्य ईमहे ॥ ९ ॥	हे धनवान् इन्द्र ! युद्धमें जैसी तुमने मेध्यातिथि ऋषिकी सुरक्षा की थी, जैसी नीपातिथिकी (की थी), वैसी सुरक्षा हमें गौओंके साथ धन (मिलकर) तुमसे मिले ॥९॥
हे मघवन् इन्द्र ! यथा कण्वे गोमत् हिरण्यवत् असनोः । यथा त्रसदस्यवि, यथा पक्थे, दशव्रजे, यथा गोशर्ये, ऋजिश्वनि (असनोः) ॥ १० ॥	हे धनवान् इन्द्र ! जैसा तुमने कण्वके लिये गौवें और सुवर्णमय धन दिया था, जैसा त्रसदस्यु, पक्थ, दशव्रज, गोशर्य, और ऋजिश्वाको दिया था (वैसा हमें दो) ॥ १० ॥

सूक्तमें ऋषियोंके नाम

इस सूक्तके मंत्र ५ और १३ में 'कण्व' का नाम आया है। यह इसी सूक्तके ऋषि प्रस्कण्वका पिता या गोत्रप्रवर्तक है। इस कण्व ऋषिके मंत्र इसी ग्रंथमें प्रारंभमें दिये हैं। 'मेध्यातिथि और नीपातिथि' ये भी कण्वके गोत्रमें ही उत्पन्न हुए ऋषि हैं। मेध्यातिथिके मंत्र ऋ. ८।१। ३-२९ (मंत्र २७), ८। ३ में मंत्र २४ हैं, ८। ३३ में मंत्र १९ है मिलकर ७० मंत्र हुए।

नीपातिथि के मंत्र ऋ. ८।३४।१-१५ कुलमंत्र १५ है। इसके अतिरिक्त त्रसदस्यु, पक्थ, दशव्रज, गोशर्य, ऋजिश्वा ये नाम इस सूक्तके १० वें मंत्रमें हैं। इनके ऋग्वेदमें ये स्थान हैं-

ऋजिश्वा भारद्वाजः— ऋ. ६।४९-५२ (मंत्र ६३); ९।९८ (मं. १२); ९।१०८।६,७ (मं. २) कुलमन्त्र ७७ हैं।

त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः— ऋ. ४।४२ (मं. १०), ५।२७ (मं. ६), ९।११० (मं. १२) कुलमंत्र २८ हैं।

पक्थ, दशव्रज, गोशर्यके मंत्र मिलते नहीं हैं। ये ऋषि प्रस्कण्व ऋषिके पूर्व समयके प्रतीत होते हैं। क्योंकि 'जैसा इनको तुमने दान दिया था वैसा हमें दो। ऐसी प्रार्थना यहां है। इस-लिये इन ऋषियोंका प्रस्कण्वके पूर्व समयमें होना सिद्ध है।

आदर्श पुरुष

इस सूक्तमें इन्द्रको आदर्श पुरुष बताते हुए इस तरह वर्णन किया गया है—

१ सुराधसः— उत्तम धनवान्, उत्तम सिद्धि देनेवाला,
२ मघवा, पुरुवसुः— धनवान्, (मं. १)
३ शतानीकः— सैकडों सेना-विभागोंको तैयार रखनेवाला,
४ दाशुषे वृत्राणि हन्ति— दाताके हित करनेके लिये शत्रुओंका नाश करता है।
५ पुरुभोजाः— बहुत भोजन देनेवाला, (मं. २)
६ मन्दसानः— आनन्द प्रसन्न, (मं. ३)
७ विभूतिः— विशेष प्रभावी,
८ अक्षितवसुः— अक्षय धनवाला,
९ उग्रः— शूरवीर,
१० वज्री— वज्र-धारी, (मं. ६)
११ महेमतिः— महा बुद्धिमान् (मं. ७)

इस सूक्तका आदर्श मानव इन गुणोंसे युक्त है। अन्य गुण सूक्तके अर्थमें पाठक देख सकते हैं।

(नवम मण्डल)

(२१) सोमरस

(ऋ. ९।९५) प्रस्कण्वः काण्वः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः　　१
हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
देवो देवानां गुह्यानि नामाऽऽविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे　　२
अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाऽऽच विशन्त्युशतीरुशन्तम्　　३
तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे　　४

अन्वयः— सृज्यमानः हरिः आ कनिक्रन्ति । पुनानः वनस्य जठरे सीदन् । नृभिः यतः गाः निर्णिजं कृणुते । अतः मतीः स्वधाभिः जनयत ॥ १ ॥

सृजानः हरिः ऋतस्य पथ्यां वाचं इयर्ति, अरिता नावं इव । देवः देवानां गुह्यानि नाम बर्हिषि प्रवाचे आविः कृणोति ॥ २ ॥

अपां इव ऊर्मयः इत् तर्तुराणाः मनीषाः सोमं अच्छ प्र ईरते । नमस्यन्तीः उप यन्ति च सं (यन्ति) च । उशतीः च उशन्तं आ विशन्ति ॥ ३ ॥

मर्मृजानं, महिषं न, सानौ उक्षणं गिरिष्ठां तं अंशुं दुहन्ति। तं वावशानं मतयः सचन्ते । त्रितः वरुणं समुद्रे बिभर्ति ॥४॥

अर्थ— धोया जानेवाला हरेरंगवाला सोम शब्द करता है। शुद्ध होता हुआ (सोम) पात्रके पेटमें जा बैठता है। मनुष्यों-द्वारा तैयार किया गया (सोम) गौ (के दुग्धका) रूप धारण करता है । इसके लिये मनन करनेयोग्य (स्तोत्र) अपनी शक्तिके अनुसार बनाओ ॥ १ ॥

निचोडा जानेवाला हरेरंगका सोम सत्यमार्गके प्रचारकी भाषा बोलता है, जैसे नाविक नौका (चलाता है) । यह सोम देव देवताओंके गुह्य नाम, आसनपर बैठे प्रवचनकारके लिये (उसके प्रवचनमें) प्रकट करता है ॥ २ ॥

जलतरङ्गोंके समान त्वराशील कवियोंकी बुद्धियाँ सोमके पासही (वर्णन करनेके लिये) दौडती हैं । नमन करनेवाली (बुद्धियाँ, सोमके पास) जाती हैं और उस (के वर्णनमें रमती हैं) । इच्छा करनेवाली (मतियाँ) अभीष्ट (सोमके वर्णनमें) प्रविष्ट होती हैं ॥ ३ ॥

धोते हुए, भैंसेके समान, पर्वत-शिखरपर रहनेवाले बैलके (समान बलवर्धक) उस दीप्तिमान् (सोमरसे याजक) दुहते हैं । उस इष्ट (सोम) को (सबकी) बुद्धियाँ चाहती हैं (प्राप्त करती हैं) । तीन स्थानों (में रहकर लडने) वाला (इन्द्र) वरणीय (सोम) को जलमें धारण करता (और धोता है) ॥ ४ ॥

इष्यन्वाचमुपवक्तेव होतुः पुनान इन्दो वि ष्या मनीषाम् ।
इन्द्रश्च यत्क्षयथः सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम

हे इन्दो ! वाचं इष्यन्, होतुः उपवक्ता इव, पुनानः मनीषां वि ष्य । इन्द्रः च यत् क्षयथः, सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ५ ॥

हे सोम ! स्तुतिको चाहनेवाला (तुम), होताके (सहायक) उपवक्ताके समान, शुद्ध होता हुआ (स्तोताओंकी) बुद्धियोंको प्रेरित करो । इन्द्रका जब यजन होगा, (तब हम सब) सौभाग्य-युक्त उत्तम वीर्यके स्वामी हों ॥ ५ ॥

सोमरसकी तैय्यारी

सोमवल्ली पर्वतके शिखरपरसे लायी जाती है, पत्थरोंसे कूटी जाती है, वह चूरा जलसे वारंवार धोया जाता है, फिर वह छाना जाता है, उस रसमें गौका दूध मिलाया जाता है । सोमका रंग हरा रहता है, रसका भी वैसाही रंग होता है, उसमें दूधका श्वेतसा रंग आनेके लिये जितना मिलाया चाहिये उतना दूध मिलाया जाता है । तब देवताओंको अर्पण करके पीया जाता है।

छाना जानेके समय जब वह नीचेके कलशमें गिरता है तब उसका एक भान्तीका शब्द होता रहता है । इस समय कवियों-को काव्यकी स्फूर्ति होती है, सोमपर काव्य किये जाते हैं और गाये भी जाते हैं ।

भैंस जैसी पानीमें बारबार डुबकी लगाती है, वैसाही सोम बारबार जल ले लेकर धोया जाता है । सोमवल्लीमें तथा सोम-रसमें कुछ चमकसी होती होगी, अतः इसका चांदकी चांदनीके समान वर्णन किया जाता है, और चन्द्रमाके सभी नाम इसको दिये होते हैं ।

यह पेय बडाही उत्साह लानेवाला होगा और इसीलिये इससे कवियोंको नानाविध काव्य करनेके लिये प्रेरणा मिलती है । मन्त्रोंके अर्थमें काव्यकी माधुरीका रस पाठक ले सकते हैं।

यहां कण्व-मंत्रोंका यह विभाग
समाप्त होता है ।

प्रस्कण्वके अथर्ववेदमें मन्त्र

अथर्ववेदमें ऋषि प्रस्कण्वके ११ मंत्र हैं । इनके ७ सूक्त हैं । दो दो मंत्रोंके ४ सूक्त हैं और एक एक मंत्रके तीन सूक्त हैं । इस तरह ११ मंत्रोंके सात सूक्त हैं ।

२० वे काण्डमें (अथर्व २०।४७।१३-२१ के ९ मंत्र और २०।५१।१-२ ये २ मंत्र ऐसे कुल) ११ मंत्र प्रस्कण्वके हैं । पर ये ऋग्वेदकेही मंत्र हैं इसलिये इनका विचार पृथक् करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ।

अब ऋग्वेदमें न आये प्रस्कण्वके मंत्रोंका अर्थ देते हैं-

(२२) आपः

(अथर्व. ७।३९) प्रस्कण्वः । आपः, सुपर्णः, वृषभः । त्रिष्टुप् ।

दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तमपां गर्भं वृषभमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तमा नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयाति ॥ १

(२३) सरस्वान्

(अथर्व. ७।४०) प्रस्कण्वः । सरस्वान् । २ भुरिक्, त्रिष्टुप् ।

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः ।
यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हवामहे ॥ १
आ प्रत्यञ्चं दाशुषे दाश्वंसं सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम् ।
रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना इह हुवेम सदनं रयीणाम् ॥ २

(२४) सुपर्णः

(अथर्व. ७।४१) प्रस्कण्वः । श्येनः । १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।

अति धन्वान्यत्यपस्ततर्द श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः ।
तरन्विश्वान्यवरा रजांसीन्द्रेण सख्या शिव आ जगम्यात् ॥ १

(सू. ७।३९।१)= (दिव्यं पयसं सुपर्णं) दिव्य जल धारण करनेवाले उत्तम वर्णवाले, (अपां बृहन्तं वृषभं) जलकी बडी वृष्टि करनेवाले, (ओषधीनां गर्भं) औषधियोंका गर्भ बढानेवाले, (अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तं) सब प्रकारसे वृष्टिसे तृप्ति करनेवाले, मेघके देव (नः गोष्ठे आ स्थापयतु) हमारी गोशालाकी ओर स्थापन करे ।

अर्थात् हमारी गोशालाके चारों ओर अच्छी तरह वृष्टि हो जावे और गाइयोंको हरा घास पर्याप्त प्रमाणमें खानेको मिले।

(सू. ७।४०।१-२)= (सर्वे पशवः यस्य व्रतं यन्ति) सब पशु जिसके नियमानुसार चलते हैं, (यस्य व्रते आपः उपतिष्ठन्त) जिसके नियममें जल रहते हैं, (यस्य व्रते पुष्टपतिः निविष्टः) जिसके नियममें पोषणकर्ता रहता है, (तं सरस्वन्तं अवसे हवामहे) उस रसवान् देवकी हम अपनी सुरक्षाके लिये प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

दाताको प्रत्यक्ष दान देनेवाले, पोषण और पालन करनेवाले, रसवान्, धनदाता, धनके पोषक, यशके दाता, धनका स्थान जैसे इस देवकी हम यहां रहकर प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

यह भी मेघदेवकीही प्रार्थना है । मेघकेही आधारपर पशु जीवित रहते हैं, उसीकी वृष्टिसे नदियाँ बहती हैं, उसीसे धान्य फळफूल उत्पन्न होकर सबकी पुष्टि होता है, यह रसवान् देवही सबका पोषणकर्ता है।

(सू. ७।४१।१-२)= (अवसान-दर्शः, नृचक्षाः श्येनः) अन्तिम अवस्थाको जाननेवाला, मनुष्योंको जाननेवाला, श्येन पक्षी जैसा आकाशमें घूमनेवाला, (धन्वानि अति अपः ततर्द) रेतीले देशोंपर अति वृष्टि करता है, तथा (विश्वानि अवरा रजांसि) सब अवर भूमियोंपर भी वृष्टि होती है, इन्द्र नामक मित्रके साथ (शिवः) कल्याणरूप होकर (तरन्) सबको दुःखोंसे पार करता है और (आ जगम्यात्) सबको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः ।
स नो नि यच्छाद्वसु यत्पराभृतमस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत् २

(२५) पापमोचनम्

(अथर्व. ७।४२) प्रस्कण्वः । सोमारुद्रौ । त्रिष्टुप् ।

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् १
सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मद्विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो असत्तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् २

(२६) वाक्

(अथर्व. ७।४३) प्रस्कण्वः । वाक् । त्रिष्टुप् ।

शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः ।
तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन्तासामेका वि पपातानु घोषम् १

(नृचक्षाः दिव्यः सुपर्णः) मनुष्योंका निरीक्षक, दिव्य सुपर्ण जैसा (सहस्रपात् शतयोनिः) सहस्रों किरणोंसे युक्त और सैकडों प्रकारकी उत्पत्तियोंकी शक्तिसे संपन्न, (वयोधाः श्येनः) अन्न देनेवाला श्येन जैसा आकाशमें संचार करनेवाला, यह मेघ देव श्रेष्ठ धन हमें देवे । हमारे पितरोंको भी यही अन्न देता है ॥२॥

यह सूक्त भी विशेष कर मेघकाही वर्णन करता है । मेघ वृष्टि करके अन्न उत्पन्न करता है, उस अन्नसे सबका पोषण होता है । पिता माता और पुत्र पौत्रोंका भी यही पोषण करता है । यही रेतीली भूमिपर, उर्वरा तथा हीन भूमिपर वृष्टि करता है और सबका पोषण करता है ।

(सू. ७।४२।१-२)= (या अमीवा) जो रोग (नः गयं आ विवेश) हमारे घरोंमें प्रविष्ट हुआ है, उस (विषूचीं वि वृहतं) विषूचिका रोगको दूर करो, (निर्ऋतिं पराचैः दूरं बाधेथां) दुर्गतिको नीचेसे दूर कर दो । (कृतं चित् एनः) हमारा किया पाप (अस्मत् मुमुक्तं) हमसे छुडाओ ॥ १ ॥

(युवं अस्मत् तनूषु) तुम दोनों हमारे शरीरोंमें (एतानि विश्वा भेषजा धत्तं) ये सब औषध धारण करो । (यः नः तनूषु बद्धं एनः असत्) जो हमारे शरीरोंमें बंधा पाप है उससे हमारा (अव स्यत) बचाव करो । हमें उस पापसे छुडाओ ॥ २ ॥

आमसे रोग

यहां ' अमी-वा ' पद है, आम अपचित अन्न है, इससे रोग होते हैं । रोगका यह प्रमुख कारण है । ' रुद्र और सोम ' ये दो देवता इस सूक्तके है । ' सोम ' औषधियोंका प्रतीक है और रुद्र प्राणशक्ति बढानेवाले वैद्यका सूचक है । सब प्रकारकी शुद्धि करनेद्वारा रोग दूर करनेकी सूचना यहां है । शरीरकी दुर्गति न हो, शरीरमें दोष न हों और शरीर नीरोग रहे । इस कार्यके लिये अनेक औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये । नीरोगिताके संपादन करनेमें यह सूक्त बडा उपयोगी है । हरएक पदका पाठक विशेष विचार करें और नीरोगिता प्राप्त करनेका बोध लें ।

(सूक्त ७।४३)— एक प्रकारके शब्द (शिवाः) कल्याण-कारक होते हैं, दूसरे प्रकारके शब्द (अशिवाः) अशुभ होते हैं। (सु-मनस्यमानः) उत्तम शुभ विचारवाला उन सब शब्दोंको धारण करता है । इस पुरुषमें (तिस्रः वाचः) तीन वाणियां, परा पश्यन्ती, मध्यमा ये पुरुषके अन्दर गुप्त रहीं है । उनमेंसे एक वाणी (घोषं अनु वि पपात) घोषणा रूपको धारण करती है।

यह मंत्र ' वाणी ' के विषयमें है । परा, पश्यन्ती, मध्यमा ये वाणियां गुप्त हैं । चौथी वैखरी भाषारूपसे प्रकट बोली है । मनुष्यको जानना चाहिये कि ये शब्द शिव और अशिव रूपमें बोले जाते हैं । अशुभ रूप शब्द उच्चारण करना योग्य नहीं है, जो शुभ शब्द हैं उनकाही प्रयोग मानवोंको करना चाहिये ।

सब प्राणियोंमें वक्तृत्व शक्ति मनुष्यमेंही है । किसी दूसरे प्राणीमें यह शक्ति नहीं है। आत्माकीही यह शक्ति वाणीद्वारा प्रकट होती है । वाणीमें आत्माकी शक्ति है । यदि वाणी व्यर्थ उच्चारी जायगी तो आत्माकी शक्ति व्यर्थ खर्च होगी । इसलिये कहा है कि अशिव शब्दोंका बोलना उचित नहीं है, अनर्थकारी भाषण करना योग्य नहीं है । यह मंत्र बडाही मनन करनेयोग्य है ।

(२७) इन्द्राविष्णू

(अथर्व. ७।४४) प्रस्कण्वः । इन्द्र, विष्णुः । भुरिक् त्रिष्टुप् ।

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् १

(२८) ईर्ष्यानिवारणम्

(अथर्व. ७।४५) प्रस्कण्वः, २ अथर्वा । ईर्ष्यापनयनं, भेषजम् । अनुष्टुप् ।

जनाद्विश्वजनीनात्सिन्धुतस्पर्याभृतम् । दूरात्त्वा मन्य उद्धृतमीर्ष्याया नाम भेषजम् १
अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् । एतामेतस्येर्ष्यामुद्नाग्निमिव शमय २

(सू. ७।४४।१)— दोनों इन्द्र और विष्णु (वि जिग्यथुः) विजय करते हैं । वे कभी (न परा जयेथे) पराजित नहीं होते । इनमेंसे कोई भी पराजित नहीं होता। हे इन्द्र और विष्णो ! जब तुम दोनों (अपस्पृधेथां) शत्रुके साथ स्पर्धा करते हैं तब (तत् सहस्रं)वह शत्रुका सैन्य (त्रेधा वि ऐरयेथां) तीन प्रकारसे भगा देते हैं ।। १ ।।

यहां कहा है कि अपनी तैयारी ऐसी करो कि सदा शत्रुका पराभव और अपना जय होता रहे । शत्रुका बल अनेक विभागोंमें विभक्त होकर तितरबितर होकर भाग जावे ।

(सू. ७।४५।१-२)= (विश्वजनीनात् जनात्) सब जनताके हित करनेवाले जनोंसे (सिन्धुतः परि आभृतं) सिन्धुके भी पारसे यह (ईर्ष्यायाः नाम भेषज) ईर्ष्याका प्रसिद्ध औषध है, दूरसे तुझे लाया है यह मैं जानता हूं ॥ १॥

हे औषधे ! तू इस ईर्ष्याकी अग्निको, इस दावानलको अर्थात् (एतस्य एतां ईर्ष्या) इसके इस ईर्ष्याकी अग्निको (शमय) शान्त कर ॥ २ ॥

ईर्ष्या, स्पर्धा, अर्थात् बुरी स्पर्धाको शान्त करना चाहिये। इस सूक्तमें औषधिका नाम नहीं है । यहां कौनसी औषधि कही है इसकी खोज करनी चाहिये ।

यहां प्रस्कण्वके अथर्ववेदके मंत्र समाप्त हैं ।

कण्व दर्शनका द्वितीय विभाग समाप्त ।

कण्व ऋषिके दर्शनकी

विषय-सूची

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(६)

सव्य ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका दशम अनुवाक)

लेखक

महाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औंध, [जि० सातारा]

संवत् २००२

मूल्य १) रु०

सव्य ऋषिका तत्त्वज्ञान

सव्य ऋषि आङ्गिरस गोत्रमें उत्पन्न हुआ। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलका दशम अनुवाक इसी ऋषिका है। इसमें (ऋ. १। ५१–५७ तकके) सात सूक्त हैं और ७२ मन्त्र हैं। सभी सूक्त तथा सभी मंत्र ' **इन्द्र** ' देवताकेही हैं।

इस ऋषिके ' **पवमान सोम** ' देवताके मंत्र नहीं हैं। तथा ऋग्वेदमें किसी अन्य स्थानपर भी इसके किसी अन्य देवताके मन्त्र नहीं हैं।

- अथर्ववेदमें काण्ड २० सूक्त २१ के सबके सब ११ मंत्र इसी ऋषिके हैं। पर यह सूक्त ऋग्वेद मण्डल १ का सूक्त ५३ वाँ पूराका पूरा अथर्ववेदमें गया है। इसलिये इसका पृथक् विचार करनेका कोई कारण नहीं है।

सव्य ऋषिका पुराणों या ब्राह्मणोंमें किसी स्थानपर कोई वर्णन नहीं मिलता।

इस ऋषिके मन्त्र एकही देवताके हैं। इसलिये इसका विवरण सब सूक्तोंका अर्थ प्रथम देकर अन्तमें इकट्ठाही किया है। इससे पाठकोंको ऋषिका सब भाव समझनेमें सुविधा होगी।

स्वाध्याय-मण्डल
औंध जि. सातारा
१ आषाढ सं. २००३

लेखक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

मुद्रक और प्रकाशक
व० श्री० सातवळेकर, B. A., भारत-मुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

सव्य ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका दशम अनुवाक)

(१) इन्द्र

(ऋ. १।५१) सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती, १४-१५ त्रिष्टुप् ।

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ १ ॥

अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥ २ ॥

त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेन चिद्विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥ ३ ॥

अन्वयः— त्यं मेषं, पुरु-हूतं, ऋग्मियं, वस्वः अर्णवं इन्द्रं गीःभिः अभि मदत। यस्य मानुषा (कर्माणि) द्यावः न वि-चरन्ति, भुजे (तं) मंहिष्ठं विप्रं (इन्द्रं) अभि अर्चत ॥ १ ॥

ऊतयः दक्षासः ऋभवः ईं सु-अभिष्टिं अन्तरिक्ष-प्रां तविषीभिः आ वृतं मद-च्युतं इन्द्रं अभि अवन्वन्, (तं) शत-क्रतुं जवनी सूनृता (च) आ अरुहत् ॥ २ ॥

(हे इन्द्र !) त्वं अङ्गिरः-भ्यः गोत्रं अप अवृणोः, उत अत्रये शत-दुरेषु गातु-वित् (अभूः)। वि- मदाय ससेन चित् वसु अवहः । अद्रिं नर्तयन् आजौ ववसानस्य (रक्षिता अभूः) ॥ ३ ॥

अर्थ- उस युद्धकी इच्छा करनेवाले बहुतोंसे आमंत्रित स्तुतिके योग्य धनके समुद्र इन्द्रको स्तुतियों द्वारा प्रसन्न करो। जिस इन्द्रके कर्मसे मनुष्य-हितकारी कर्म सूर्यकी किरणके समान (सुखकारी होते) हैं । पालनाके लिये उस श्रेष्ठ ज्ञानी इन्द्रकी पूजा करो ॥१॥

रक्षण और कार्यमें दक्ष ऋभुओंने इस अच्छी गतिवाले आकाशमें व्यापक अनेक बलोंसे युक्त (शत्रुके) गर्वको हटाने-वाले इन्द्रका साथ दिया । तब उस सैकडों कर्मोंको करनेवाले इन्द्रके पास प्रेरणा देनेवाली सत्य तथा प्रिय वाणी भी पहुँची। (इन्द्रका वर्णन वाणीने किया) ॥२॥

हे इन्द्र ! तूने अङ्गिरा लोगोंके लिये गौओंकी सुरक्षा करनेवाले बाडेको खुला कर दिया, और अत्रिके लिये सैकडों द्वारोंवाले असुरोंके कीलोंमें मार्ग दिखाया। तूने विमदके लिये अन्न-सामग्रीसे युक्त धन दिया। तथा वज्र नचाते हुए, युद्धमें निवास चाहनेवाले भक्तका रक्षण किया ॥३॥

त्वमपामपिधानावृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥ ४ ॥
त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥ ५ ॥
त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥ ६ ॥
त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥ ७ ॥
वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत् ता ते सधमादेषु चाकन ॥ ८ ॥

(हे इन्द्र !) त्वं अपां अपि-धाना अप अवृणोः । पर्वते दानु मत् वसु अधारयः । (हे) इन्द्र ! यत् अहिं वृत्रं शवसा अवधीः आत् इत् दृशे सूर्यं दिवि आ अरोहयः ॥ ४ ॥

(हे इन्द्र !) त्वं ये स्वधाभिः शुप्तौ अधि अजुह्वत, त्वं (तान्) मायिनः मायाभिः अप अधमः । (हे) नृ-मनः ! त्वं पिप्रोः पुरः प्र अरुजः (तथा च) दस्यु-हत्येषु ऋजिश्वानं प्र आविथ ॥ ५ ॥

(हे इन्द्र !) त्वं शुष्ण- हत्येषु कुत्सं आविथ, अतिथि-ग्वाय शम्बरं अरन्धयः, महान्तं चित् अर्बुदं पदा नि क्रमीः। (त्वं) सनात् एव दस्यु-हत्याय जज्ञिषे ॥ ६ ॥

(हे इन्द्र !) विश्वा तविषी त्वे सध्र्यक् हिता (अस्ति) । तव राधः सोम-पीथाय हर्षते । तव वज्रः बाह्वोः हितः (अस्माभिः) चिकिते । (त्वं) शत्रोः विश्वानि वृष्ण्या अव वृश्च ॥ ७ ॥

(हे इन्द्र ! त्वं) आर्यान् ये च दस्यवः (तान् सर्वान्) वि जानीहि । अव्रतान् शासत् (तान्) बर्हिष्मते रन्धय । शाकी (त्वं) यजमानस्य चोदिता भव । (अहं) ते ता विश्वा इत् सध-मादेषु चाकन ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! तूने जलोंके बाँधोंको खोल दिया। तूने पर्वतमें दान करनेयोग्य धनको सुरक्षित रखा। हे इन्द्र ! जब तूने बढनेवाले वृत्रको अपने बलसे मारा, तब तुरन्तही लोगोंको मार्ग दिखानेके लिये सूर्यको द्युलोकमें चढा दिया, (खडा कर दिया) ॥४॥

हे इन्द्र ! जिन्होंने अपने अन्नोंसे अपनेही मुखमें हवन किया (अर्थात् अपने अन्नका स्वयंही भोग किया) तब तूने उन मायावी असुरोंको अपने नीति-कौशलसे ही नीचे गिरा दिया। हे नेताओंका हित चाहनेवाले ! तूने पिप्रुके गढोंको बुरी तरह तोड दिया और असुरोंके नाशके निमित्त किये गये युद्धमें ऋजिश्वाकी रक्षा की ॥५॥

हे इन्द्र ! तूने शुष्णके युद्धमें कुत्सकी रक्षा की, अतिथि-ग्वके लिये शम्बरको मारा, शक्तिशाला अर्बुदको भी पाँवसे लताड दिया। तू तो सदासेही असुरोंके हननके लिये प्रकट हुआ करता है ॥६॥

हे इन्द्र ! संसारके सम्पूर्ण बल तुझमें रखे हुए हैं। तेरा सामर्थ्य सोम पीनेके लिये ही हर्षित होता है। तेरा वज्र तेरे हाथोंमें रखा हुआ हमें जान पडता है। अतः हे इन्द्र ! तू हमारे शत्रुके सम्पूर्ण बलको काट दे ॥७॥

हे इन्द्र ! तू आर्योंको जान और जो दस्यु हैं (उन सबको यथावत् जान)। मत-हीन धर्म-विरोधियोंको दण्ड देते हुए उन्हें धर्मका व्रत पालनेवालोंके लिये छिन्नभिन्न कर डाल। सर्व समर्थ तू याजकका प्रेरक हो। मैं तेरे उन सारे ही कर्मोंकी साथ साथ मिलकर आनन्द लेनेके स्थानोंमें सहायता चाहता हूँ ॥८॥

अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः ।
वृद्धस्य चिद् वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः ९
तक्षद् यत् त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः । १०
मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसाऽसृजद् वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत् पुरः ११
आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनो ऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि १२
अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत् ता ते सवनेषु प्रवाच्या १३

इन्द्रः अनु-व्रताय अप-व्रतान् रन्धयन्, आऽभूभिः अना-भुवः श्नथयन् (वर्तते)। वृद्धस्य चित् वर्धतः द्यां इनक्षतः (इन्द्रस्य) स्तवानः वम्रः सं दिहः वि जघान ॥ ९ ॥

(हे) नृ- मनः ! यत् उशना ते सहः सहसा तक्षत्, (तथा ते) शवः मज्मना रोदसी वि बाधते, (तदा) मनः-युजः वातस्य (अश्वाः) पूर्यमाणं त्वा श्रवः अभि आ आ अवहन् ॥ १० ॥

यत् इन्द्रः काव्ये उशने सचा मन्दिष्ट (तथा च) वङ्कु-तरा वङ्कू अधि तिष्ठति । (सः) उग्रः ययिं अपः स्रोतसा निः असृजत् (तथा) शुष्णस्य दृंहिताः पुरः वि ऐरयत् ॥ ११ ॥

(हे) इन्द्र ! (त्वं) वृष-पानेषु रथं आ तिष्ठसि स्म । येषु मन्दसे , शार्यातस्य (ते सोमाः) प्र-भृताः । यथा सुत-सोमेषु (सोमं) चाकनः (तथा अस्य) अनर्वाणं श्लोकं दिवि आ रोहसे ॥ १२॥

(हे) सु-क्रतो इन्द्र ! (त्वं) महते वचस्यवे सुन्वते कक्षीवते अर्भां वृचयां अददाः । वृषणश्वस्य मेना अभवः। ते ता विश्वा इत् सवनेषु प्र-वाच्या (सन्ति) ॥ १३ ॥

इन्द्र अनुकूल कर्म करनेवालोंके हित करनेके लिये व्रत-हीनों को मारता है और मातृभूमिके भक्तोंके द्वारा मातृभूमिके विरोधियोंको नष्ट करता है। दानादिमें बढे हुओंके बढानेवाले और द्यौको व्याप्त करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करनेवाले वम्रने सारे शत्रुके समुदायको नष्ट कर दिया ॥९॥

हे नेताओंके हित करनेमें मन रखनेवाले इन्द्र ! जब उशना ने तेरा बल अपने उत्साहसे और बढा दिया और तेरे बलने अपने वेगसे दोनों लोकोंको हिला दिया, तब सकल्प-मात्रसे जुडनेवाले वायु (के समान वेगवान् तेरे घोडोंने) विश्वको भर लेनेवाले तुझे यशकी ओर पहुँचाया था ॥१०॥

जिस समय इन्द्र कविके पुत्र उशनाके यहाँ साथ साथ तृप्त हुआ और उसने अपने वेगसे चलनेवाले घोडे (रथको) जोड लिये, उस समय उस प्रतापी इन्द्रने जलस्तम्भसे जलप्रवाह स्रोतके रूपमें छोड दिये और शुष्णके सुदृढ नगर हिला दिये ॥११॥

हे इन्द्र ! तू सोम पीनेके स्थानोंमें जानेके लिये रथपर चढा करता है । तू जिनमें आनन्द माना करता है, शार्यातके वे सोम अब बन चुके हैं। तू जिस प्रकार, जिसमें सोमरस बनाया जाता है उन यज्ञोंमें प्रीति रखता है उसी प्रकार इस भक्तके स्थिर यशको ऊपर दिव्यलोकमें पहुँचाता है ॥१२॥

हे अच्छे कर्म करनेवाले इन्द्र ! तूने महान् विद्वान् और यज्ञकर्ता कक्षीवान्के लिये जवान वृचया नामक स्त्रीका दान किया । तू वृषणश्वकी कन्या मेना बना । तेरे वे सारेही कर्म यज्ञोंमें वर्णन करनेयोग्य हैं ॥१३॥

इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥ १४
इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत् सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ॥ १५

(२)

(ऋ. १।५२) सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती; १३, १५ त्रिष्टुप् ।

त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १
स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।
इन्द्रो यद् वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥ २
स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः ।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥ ३

इन्द्र निरेके सु-ध्यः अश्रायि (यथा) पज्रेषु दुर्यः यूपः न स्तोमः (स्थितः भवति) । अश्व-युः गव्युः रथ-युः वसु-युः रायः प्र-यन्ता इन्द्रः (सर्वत्र) इत् क्षयति ॥ १४ ॥

(अस्माभिः) इदं नमः वृषभाय स्व-राजे सत्य-शुष्माय तवसे अवाचि । (हे) इन्द्र ! अस्मिन् वृजने (वयं) सर्व-वीराः (स्याम, तथा) तव स्मत् शर्मन् सूरि-भिः स्याम ॥ १५ ॥

शतं सु-भ्वः यस्य साकं ईरते, त्यं मेषं स्वःविदं (इन्द्रं) सु महय । (अहं) इन्द्रं अवसे सुवृक्ति-भिः अत्यं वाजं न हवन-स्यदं रथं आ ववृत्याम् ॥ १ ॥

अन्धसा जर्हृषाण. अर्णांसि उब्जन् इन्द्रः यत् नदी-वृतं वृत्रं अवधीत्, (तदा) धरुणेषु पर्वतः न अच्युतः सहस्रं ऊतिः सः तविषीषु वावृधे ॥ २ ॥

चन्द्र-बुध्नः मनीषि-भिः मद-वृद्धः सः हि द्वरिषु द्वरः, ऊधनि (च) वव्रः (अस्ति) । (यतः) सः हि अन्धसः पप्रिः (अस्ति तस्मात् अहं) तं मंहिष्ठ-रातिं इन्द्रं सु-अपस्यया धिया अह्वे ॥ ३ ॥

इन्द्रका विपत्कालमें सुकर्मी यजमानोंने आश्रय लिया है। इसलिये आंगिरसोंमें, द्वारपर गडे खम्भेके समान, इन्द्रके स्तोत्र रहते हैं। वह घोडों, गायों, रथों और धनोंका दाता तथा ऐश्वर्यका दाता इन्द्र सर्वत्रही (भक्तोंमें) निवास करता है ॥१४॥

हम लोगोंद्वारा यह नमस्कार बलवान्, स्वतः प्रकाशमान, अटूट बलवाले, समर्थ इन्द्रके लिये कहा गया है। हे इन्द्र! तेरी दयासे हम इस युद्धमें सब प्रकारके वीरोंसे युक्त हों और तेरे सुख-पूर्ण गृहमें अनेक प्रकारके विद्वानोंसे सम्पन्न भी हों ॥१५॥

सैकडों ज्ञानी जिसका साथ साथ वर्णन करते हैं उस शत्रुके साथ युद्ध करनेवाले स्वयं तेजस्वी वीर इन्द्रको, महत्त्वका स्थान दो। मैं इन्द्रको, रक्षाके निमित्त अपनी वाणीसे गतिमान् अश्वके समान केवल इशारेसे ही चलनेवाले रथपर, चढा हुआ लाता हूँ ॥१॥

अन्नसे प्रसन्न और जलोंको नीचे प्रवाहित करनेकी इच्छासे इन्द्रने जब नदीके अवरोधक वृत्रको मार दिया, तब जल-प्रवाहमें जैसे पर्वत (अटल रहता है वैसे) युद्धमें अटल, सहस्रों रक्षा-साधनोंसे युक्त वह इन्द्र अपनी सेनाओंमें बढ गया ॥२॥

आनन्दका मूल और बुद्धिमानोंके साथ रहनेसे अत्यंत आनंदित होनेवाला वह इन्द्र घेरनेवाले शत्रुओंपर भी घेरा डालनेवाला और गुप्त स्थानमें रहनेवाला है। वह अन्नको पूर्णतासे देनेवाला है, इस कारण मैं उस श्रेष्ठ दानी इन्द्रको अच्छे कर्म करनेवाले अपने मनसे बुलाता हूँ ॥३॥

आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्व१ः स्वा अभिष्टयः।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः ४
अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः।
इन्द्रो यद् वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद् वलस्य परिधीँरिव त्रितः ५
परी घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत्।
वृत्रस्य यत् प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ६
ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना।
त्वष्टा चित् ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ७
जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ८

सद्म-बर्हिषः सु-भ्वः स्वाः अभिष्टयः यं दिवि, समुद्रं न, आ पृणन्ति, शुष्माः अवाताः अह्रुत-प्सवः ऊतयः वृत्र-हत्ये तं इन्द्रं अनु तस्थुः ॥ ४ ॥

दर्भके आसनपर बैठनेवालोंकी उत्तम प्रकारसे उत्पन्न निजी इच्छायें द्युलोकके संबंधमें, जैसे समुद्रको नदियाँ वैसे, पूर्ण की जाती हैं। तथा बलवती शत्रु-रहित सुन्दर रूपवाली रक्षक शक्तियाँ युद्धमें उसी इन्द्रके पीछे पीछे जाती हैं ॥४॥

ऊतयः अस्य युध्यतः मदे, रघ्वीः- इव प्रवणे, स्व-वृष्टिं अभि सस्रुः। यत् अन्धसा धृषमाणः वज्री इन्द्रः त्रितः परिधीन्-इव वलस्य भिनत् ॥ ५ ॥

रक्षक शक्तियाँ इस युद्ध करनेवाले इन्द्रके साथ आनन्दमें रहकर, जैसे बहनेवाले जलप्रवाह नीचेकी ओर जाते हैं वैसे वे अपनी वृष्टिके जलप्रवाहके समान उसके पास जाती हैं। उस समय उत्तम अन्नद्वारा बलवान् बने वज्रधारी इन्द्रने, त्रितने जैसे अपने ऊपरके घेरेको तोड दिया, वैसेही बलको भी तोडा ॥५॥

यत् (हे) इन्द्र! दुः-गृभिश्वनः प्रवणे वृत्रस्य हन्वोः तन्यतुं नि-जघन्थ (तदा) घृणा ईं परि चरति, शवः तित्विषे। (वृत्रः) अपः वृत्वी रजसः बुध्नं आ अशयत् ॥ ६ ॥

जब, हे इन्द्र! तूने कठिनतासे पकडने योग्य वृत्रको पहाडकी उतराईपर उसके हनुओंपर अपना वज्र मारा, तब तेरा तेज उसके ऊपर छा गया और तेरा बल चमक उठा। उस समय वृत्र जल रोककर भूमिके ऊपर सो रहा था ॥६॥

(हे) इन्द्र! यानि तव वर्धना ब्रह्माणि (सन्ति, तानि) ऊर्मयः ह्रदं न हि त्वा नि-ऋषन्ति। त्वष्टा ते युज्यं चित् शवः ववृधे, अभिभूति-ओजसं (च) वज्रं ततक्ष ॥७॥

हे इन्द्र! जितने तेरे वर्णन करनेवाले स्तोत्र हैं, वे, तरंग जैसे तालाबको पहुंचते हैं, वैसे तेरे पास जाते हैं। त्वष्टाने तेरा साथ देनेवाला बल बढाया और तेरे लिये शत्रुको सब ओर दबानेकी शक्तिसे युक्त वज्रकी रचना की ॥७॥

(हे) संभृत-क्रतो इन्द्र! (त्वं) बाह्वोः आयसं वज्रं अयच्छथाः। मनुषे अपः गातु-यन् हरि-भिः वृत्रं जघन्वान् उ। दृशे सूर्यं दिवि आ अधारयः ॥ ८ ॥

हे अनेक कर्मोंको करनेवाले इन्द्र! तूने अपने हाथोंमें लोहेका सुदृढ वज्र ग्रहण किया। मनुष्यके (पानेके) लिये जलोंको प्रवाहसे बहाते हुए, अपने घोडोंकी सहायतासे, वृत्रको मारा और जगत्को प्रकाश दिखानेके लिये सूर्यको द्युलोकमें चढाया ॥८॥

बृहत् स्वश्चन्द्रममवद् यदुक्थ्य१मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्नु ॥ ९ ॥
द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद् भियसा वज्र इन्द्र ते ।
वृत्रस्य यद् बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाऽभिनच्छिरः ॥ १० ॥
यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।
अत्राह ते मघवन् विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥ ११ ॥
त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसो ऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥ १२ ॥
त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥ १३ ॥
न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥ १४ ॥

यत् (स्तोतारः) भियसा स्व-चन्द्रं, अम-वत्, उक्थ्यं दिवः रोहणं बृहत् अकृण्वत, यत् मानुष-प्रधनाः ऊतयः नृ-साचः मरुतः इन्द्रं स्वः अनु अमदन् ॥ ९ ॥

जब लोगोंने वृत्रके भयसे अन्तःकरणको प्रसन्न करनेवाला बलयुक्त प्रशंसनीय दिवमें चढानेवाला बृहत् साम निर्माण किया; जब प्रजाके हितार्थ युद्ध करनेवाले रक्षक प्रजासे मिलकर रहनेवाले वीरोंने इन्द्रका स्वर्गमें अनुमोदन किया, तब इन्द्रने वृत्रको मारा ॥९॥

(हे) इन्द्र ! यत् ते अम-वान् वज्रः सुतस्य मदे रोदसी बद्बधानस्य वृत्रस्य शिरः शवसा अभिनत्, (तदा) अस्य अहेः स्वनात् भियसा द्यौः चित् अयोयवीत् ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! जब तेरे शक्तिशाली वज्रने सोम-रसके आनंदमें दोनों लोकोंको पीडित करनेवाले वृत्रका शिर बलसे तोड दिया, तब इस वृत्रके शब्दसे भयभीत होकर द्यौ भी काँपने लगी ॥१०॥

(हे) मघ-वन् इन्द्र ! यत् इत् नु पृथिवी दश-भुजिः (स्यात्), कृष्टय विश्वा अहानि ततनन्त, अत्र अह ते सहः वि-श्रुतं (भवेत्)। (ते) बर्हणा शवसा द्यां अनु भुवत् ॥ ११ ॥

हे धनवन्त इन्द्र ! यदि यह पृथिवी दशगुनी बढ जाय और प्रजाएँ सब दिन अपनी शक्तिका विस्तारही करती रहें, तो यहाँ भी तेरा बल उससे अधिकही होगा। तेरी वधकी किया तो अपनी शक्तिसे द्यौका सामना करती है ॥११॥

(हे) धृषत्-मनः ! स्वभूति-ओजाः त्वं अवसे अस्य विश्वोमनः रजसः पारे ओजसः प्रति-मानं भूमिं चकृषे। परि-भूः (त्वं) अपः स्वः दिवं आ एषि ॥ १२॥

हे निडर मनवाले इन्द्र ! स्वयं निज बलवाले तूने हमारी रक्षाके लिये इस व्यापक आकाशके पार तेरे बलकी प्रतिमा, अर्थात् ज्ञान करानेवाली भूमि बनाई है। सर्वत्र व्यापक तू जल अन्तरिक्ष और दिवके साथ रहता है ॥१२॥

(हे इन्द्र !) त्वं पृथिव्याः प्रति-मानं भुवः। ऋष्व-वीरस्य बृहतः पतिः भूः। (त्वं) सत्यं महि-त्वा विश्वं अन्तरिक्षं आ अप्राः। अद्धा त्वा-वान् अन्यः नकिः (अस्ति)॥१३

हे इन्द्र ! तू पृथिवीका दूसरा रूप हुआ है। तूही महान् वीरोंवाले बडे स्वर्गका स्वामी हुआ। तूने सचमुच अपनी विशालतासे आकाशको व्याप लिया। यह भी सच है कि तेरे सदृश दूसरा कोई नहीं है ॥१३॥

द्यावापृथिवी यस्य व्यचः न अनु (आनशाते), रजसः सिन्धवः (अपि यस्य) अन्तं न आनशुः, उत (वृत्रादयः) मदे स्व-वृष्टिं युध्यतः अस्य (अन्तं) न (आनशुः), (सः) एकः अन्यत् विश्वं आनुषक् चकृषे ॥ १४ ॥

द्यौ और पृथिवी जिसके विस्तारको नहीं व्याप सकते, अन्तरिक्षके जल भी जिसका अन्त नहीं पा सकते, और वृष्टिको रोकनेवाले असुर भी लडनेवाले इस इन्द्रकी शक्तिका अन्त नहीं पा सकते, वही एक इन्द्र दूसरे सारे जगत्को सदा बनाता है ॥१४॥

आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।
वृत्रस्य यद् भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ १५

(३)

(ऋ. १।५३) सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।

न्यू३ षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते १
दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि २
शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ३
एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ४

अन्वयः— (हे) इन्द्र ! मरुतः अत्र सस्मिन् आजौ (तदा) आर्चन्, विश्वे देवासः त्वा अनु अमदन्, यत् त्वं भृष्टि-मता वधेन वृत्रस्य आनं प्रति नि जघन्थ ॥१५॥

(वयं) महे इन्द्राय विवस्वतः सदने सु वाचं गिरः नि उ प्र भरामहे । हि नु चित् ससताम्-इव (शत्रूणां) रत्नं अविदत् (तथा च) द्रविणः-देषु दुः-स्तुतिः न शस्यते ॥ १ ॥

(हे) इन्द्र ! (त्वं) अश्वस्य दुरः गोः (च) दुरः असि । यवस्य दुरः, वसुनः इनः पतिः (असि) । शिक्षा-नरः प्र-दिवः अकाम-कर्शनः सखि-भ्यः सखा (असि), तं (इंद्रं) इदं (वयं) गृणीमसि ॥२॥

(हे) शची-वः पुरु-कृत् द्युमत्-तम इन्द्र ! अभितः इदं वसु तव इत् चेकिते । (हे) अभि-भूते ! अतः सं-गृभ्य आ भर, त्वा-यतः जरितुः कामं मा ऊनयीः ॥ ३ ॥

(हे इन्द्रः !) गोभिः अश्विना अमतिं नि-रुन्धानः एभिः द्यु-भिः एभिः इन्दुभिः सु मनाः (भव)। (वयं) इन्दु-भिः इन्द्रेण दस्युं दरयन्त युत द्वेषसः इषा सं रभेमहि ॥ ४ ॥

अर्थ- हे इन्द्र ! वीर मरुतोंने यहां उस, इन-नाशक संग्राममें तेरी पूजा की, विश्वेदेवोंने तेरे पीछे होकर आनन्द प्राप्त किया, जब कि तूने धारवाले वज्रसे इनकी नासिकापर प्रहार किया ॥१५॥

हम पूजनीय इन्द्रके निमित्त, विवस्वानके घरमें अच्छी वाणीवाले काव्य गायन करते हैं; क्योंकि वह इन्द्र शीघ्र ही सोनेवालोंके समान अचेत शत्रुओंका धन छीन लाता है । धन देनेवालोंके विषयमें बुरा वचन कभी अच्छा नहीं लगता ॥१॥

हे इन्द्र ! तू भक्तोंके लिये घोडा देनेवाला और गाय देने-वाला स्वामी है । तूही जौका दाता और धनका स्वामी तथा पालक है । तू दानोंका सञ्चालक, पुराना, कामनाओंका भङ्ग न करनेवाला और मित्रोंका भी मित्र है, उस इन्द्रके सामने हम यह प्रार्थना करते हैं ॥२॥

हे बुद्धिमान् वृद्धिकर्ता और अत्यन्त प्रकाशमान् इन्द्र ! सब ओरसे यह सब धन तेराही जान पडता है । हे शत्रुको परास्त करनेवाले ! तू इसमेंसे कुछ लेकर हमें दे । तू अपने भक्तका अभीष्ट कम मत होने दे ॥३॥

हे इन्द्र ! तू गायों और अश्वोंसे युक्त धनसे बुद्धिहीनको रोककर इन तेजस्वी काव्यों और इन सोम रसोंसे प्रसन्नचित्त बन । हम सोमों और इन्द्रकी सहायतासे दुष्टको विदारण करते हुए द्वेषरहित होकर अन्नद्वारा उत्तमतासे कार्य आरम्भ करें ॥४॥

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ५

ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥ ६

युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥ ७

त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥ ८

त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाऽबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९

त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥ १०

(हे) इन्द्र ! (वयं) राया सं (रभेमहि), इषा सं रभेमहि, पुरु-चन्द्रैः अभिद्युभिः वाजे-भिः सं (रभेमहि), (तथा च) वीर-शुष्मया गो-अग्रया अश्व-वत्या देव्या प्र-मत्या सं रभेमहि ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! हम लोग धनसे उत्तम कार्यका आरम्भ करें, अन्नसे उत्तम कार्यका आरम्भ करें, बहुत सुखयुक्त तेजस्वी बलोंसे उत्तम कार्योंका आरम्भ करें और वैसेही वीरोंके बलसे युक्त, जिसमें गायकी प्रधानता है ऐसी, घोडोंवाली दिव्य गुण युक्त उत्तम बुद्धिसे सम्यक्, कार्यका आरम्भ करें ॥५॥

(हे) सत्-पते ! ते मदाः, तानि वृष्ण्या, ते सोमासः (च) त्वा वृत्र-हत्येषु अमदन्, यत् दश सहस्राणि अप्रति वृत्राणि बर्हिष्मते कारवे नि बर्हयः ॥६॥

हे उत्तम स्वामी इन्द्र ! उन आनन्दित वीरों, उन बलकारी अन्नों और उन सोम-रसोंने तुझे वृत्रोंको मारनेके समय आनन्दित किया जब कि तूने दश सहस्र दुर्धर्ष, वृत्रोंको तेरे भक्त कारीगरके हित करनेके लिये नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ॥६॥

(हे) इन्द्र ! धृष्णु-या (त्वं) युधा युधं उप घ इत् एषि, ओजसा इदं पुरा पुरं सं हंसि । यत् परा-वति नम्या सख्या नमुचिं नाम मायिनं नि-बर्हयः ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! शत्रुका नाश करनेके लिये तू एक युद्धसे दूसरे युद्धको करनेके लिये शत्रुपर हमला करता है और उस समय इस शत्रुके एक नगरके पश्चात् दूसरे नगरको भी तोड देता है। तब दूर स्थानमें शत्रुकी ओर झुकनेवाले मित्र सदृश वज्रद्वारा नमुचि नामके मायावी असुरको नष्ट कर देता है ॥७॥

(हे इन्द्र !) त्वं अतिथि-ग्वस्य तेजिष्ठया वर्तनी करञ्जं उत पर्णयं वधीः । त्वं ऋजिश्वना परि-सूताः वङ्गृदस्य शता पुरः अनानु दः अभिनत् ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! तूने अतिथि-ग्वके लिए अपने तीखे वज्रसे करञ्ज और पर्णयको मारा। और तूने ऋजिश्वासे घेरे हुए वङ्गृदके सौ नगर दुसरेकी सहायताके विनाही तोड दिये ॥८॥

(हे इन्द्र !) श्रुतः त्वं अबन्धुना सु-श्रवसा उप-जग्मुषः एतान् द्विः दश जनराज्ञः षष्टिं सहस्रा नवतिं नव (च) रथ्या दुः-पदा चक्रेण नि अवृणक् ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! सब वीरोंमें प्रसिद्ध तूने असहाय सुश्रवासे लडनेको जानेवाले इन बीस जनपद-राजाओं और उनके साठ सहस्र निन्यानवे अनुचरोंको रथके योग्य कठोर पुट्ठोंवाले चक्रसे कुचल दिया ॥९॥

(हे) इन्द्र ! त्वं तव ऊति-भिः सु-श्रवसं (तथा) तव त्राम-भिः तूर्वयाणं आविथ । त्वं अस्मै महे यूने (सुश्रवसे) राज्ञे कुत्सं अतिथि-ग्वं आयुं अरन्धनायः ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तूने अपने रक्षा-साधनोंसे सुश्रवा और अपनी उन्हीं रक्षाओंसे तूर्वयाण की रक्षाकी । तूने इस महान् जवान सुश्रवा राजाके निमित्त कुत्स, अतिथिग्व और आयुको वशमें किया ॥१०॥

य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः   ११

(४)

(ऋ. १।५४) सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती; ६, ८–९, ११ त्रिष्टुप् ।

मा नो अस्मिन् मघवन् पृत्स्वंहसि नहि ते अन्तः शवसः परीणशे ।
अक्रन्दयो नद्यो३ रोरुवद् वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत   १
अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि ।
यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते   २
अर्चा दिवे बृहते शूष्यं१ वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः ।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः
त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शम्बरं भिनत् ।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि   ४

(हे) इन्द्र ! ये उत्-ऋचि देव-गोपाः, ते (वयं) सखायः शिव-तमाः असाम । त्वया सु-वीराः (सन्तः), द्राघीयः आयुः प्र-तरं दधानाः त्वां स्तोषाम ॥ ११ ॥

(हे) मघ-वन् ! अस्मिन् अंहसि पृत्-सु नः मा (प्रक्षैप्सीः), ते शवसः अन्तः परि नशे नहि । रोरुवत् नद्यः वना (च) अक्रन्दयः, क्षोणीः भियसा कथा न सं आरत ॥ १ ॥

(हे अध्वर्यो !) शाकिने शची-वते शक्राय अर्च । (तं) शृण्वन्तं इन्द्रं महयन् अभि स्तुहि । यः वृषभः वृषा वृष-त्वा धृष्णुना शवसा (च) उभे रोदसी नि-ऋञ्जते ॥२॥

यस्य धृषतः धृषत् मनः स्व-क्षत्रं (अस्ति, तस्मै) बृहते दिवे शूष्यं वचः अर्च । सः बृहत्-श्रवाः असुरः बर्हणा हरि-भ्यां पुरः कृतः वृषभः रथः हि ॥ ३ ॥

(हे इन्द्र) यत् मन्दिनः मायिनः धृषत् मन्दिना शितां गभस्तिं अशनिं पृतन्यसि (तदा) त्वं धृषता त्मना शम्बरं अव भिनत्, बृहतः दिवः सानु कोपयः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! जो अध्ययन होनेपर देवोंसे रक्षित होते हैं, तेरे वे हम मित्र लोग अत्यन्त सुंदर गुणवाले हों। तुझसे उत्तम वीरोंको प्राप्त करते हुए और लम्बे जीवनको अधिक दीर्घ-कालतक धारण करते हुए तेरेही गुण-गान करते रहें ॥११॥

हे धन-सम्पन्न इन्द्र ! तू इस पापमय युद्धोंमें हमें मत डाल, क्योंकि तेरे बलका अन्त कोई प्राप्त कर नहीं सकता। तूने गर्जना करते हुए, नदी और जलोंको शब्दयुक्त, प्रवाहयुक्त किया। फिर ये पृथिवीस्थ प्रजायें तुमसे भयसे युक्त कैसी न हो जायें ? ॥१॥

हे अध्वर्यो ! समर्थ, बुद्धिमान् और शक्तिशाली इन्द्रकी पूजा कर। उस दयालु इन्द्रकी पूजा करते हुए साथ साथ स्तुति भी कर क्योंकि जो शक्तिशाली बलिष्ठ इन्द्र अपने प्रभाव और विमर्दक बलसे दोनों लोक वशमें रखता है ॥२॥

जिस शत्रु-नाशक इन्द्रका निडर मन स्वतः बहुत बलशाली है उस बड़े देवके विषयमें बलवर्धक वचनही बोल। वह इन्द्र बहुत यशवाला, जीवन दाता, शत्रुका निहन्ता, घोडोंसे युक्त, सत्कार-प्राप्त और बलवान् बड़ा रथी ही है ॥३॥

हे इन्द्र ! जब तू झुण्डके झुण्ड करनेवाले मायावी असुरोंके ऊपर निर्भय और प्रबल मनसे सीधा सुन्दर वज्र फेंकता है, तब तू अकम्प आत्मिक-बलसे शम्बरको भेदता और विशाल द्युलोकमें पहुंचे शिखरको फेंक देता है ॥४॥

नि यद्वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद् व्रन्दिनो रोरुवद् वना ।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित् कृणवः कस्त्वा परि ५
त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ६
स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति ।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ७
असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे ।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ८
तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः ।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ९
अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः ।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते १०

(हे इन्द्र !) यत् रोरुवत् वना श्वसनस्य व्रन्दिनः शुष्णस्य चित् मूर्धनि नि वृणक्षि, यत् अद्य चित् बर्हणा-वता प्राचीनेन मनसा कृणवः, त्वा परि कः (अस्ति ?) ॥ ५ ॥

(हे) शत-क्रतो ! त्वं नर्यं तुर्वशं यदुं आविथ, त्वं वय्यं तुर्वीतिं (तथा) त्वं कृत्व्ये धने रथं एतशं (आविथ)। त्वं नवतिं नव पुरः दम्भयः ॥ ६ ॥

यः रात-हव्यः (इन्द्रस्य) शासं प्रति इन्वति, यः वा राधसा उक्था अभि-गृणाति सः घ राजा सत्-पतिः जनः शूशुवत् । दानुः अस्मै दिवः उपरा पिन्वते ॥ ७ ॥

(हे) इन्द्र ! ये ते ददुषः महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च वर्धयन्ति, (ते) नेमे सोम-पाः अपसा प्र सन्तु । (यतः ते) क्षत्रं असमं, मनीषा असमा अस्ति ॥ ८ ॥

(हे इन्द्र !) एते इन्द्र-पानाः अद्रि-दुग्धाः चमू-सदः बहुलाः चमसाः तुभ्य इत् । (त्वं) वि अश्नुहि, एषां (इन्द्रियाणां) कामं तर्पय अथ वसु-देयाय मनः कृष्व ॥९॥

अपां धरुण-ह्वरं तमः अतिष्ठत् वृत्रस्य जठरेषु अन्तः पर्वतः (आसीत्) । इन्द्रः ईं वव्रिणा हिताः प्रवणेषु अनु-स्थाः विश्वाः नद्यः अभि जिघ्नते ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! अब तू गर्जना करता हुआ अपने वज्रको वायुके समान प्रबल शत्रुसमूहयुक्त शुष्णके ऊपर फेंकता है, तथा जो कुछ तूने आजही, तत्कालही अपने शत्रु-नाशक भावनावाले सनातन भावसे युक्त अपने मनसे योग्य कार्य किया उस तुझसे अधिक श्रेष्ठ और कौन है ? ॥५॥

हे अनेकविध कर्म करनेवाले इन्द्र ! तूने मनुष्योंके हित-कारी तुर्वश और यदुकी रक्षा की। तूने वय्य, तुर्वीति और तूनेही शत्रु-हिंसक युद्धमें रथी एतशकी रक्षा की। और तूने शम्बरके निन्यानवे नगर विध्वंस कर डाले ॥६॥

जो अन्नका दान करनेवाला मनुष्य इन्द्रकी आज्ञापर चलता है, अथवा जो मनुष्य धनसे युक्त वक्तृत्व करता हुआ बोलता है, वही मनुष्य राजा और सच्चा पालक होकर बढता है। यह दानी इन्द्र इसीके लिये दिव् लोकसे ऊपर जलोंको सींचता, नीचे गिराता है ॥७॥

हे इन्द्र ! जो लोग तुझ दानीके महान् बल और स्थिर पौरुषको वर्णन करते हैं, वे ये सोमपान कर्ता अपने कर्मसे उत्कृष्ट बनें। क्योंकि तेरे बल और बुद्धि अद्वितीय हैं ॥८॥

हे इन्द्र ! ये तेरे पीनेयोग्य, पत्थरपर कूटकर निकाले हुए पात्रमें स्थित बहुत सोम-रस तेरे लियेही हैं । तू इन्हें सेवनकर और अपने इन इन्द्रियोंकी इच्छाको तृप्त कर दे। और पश्चात् धन देनेके लिये अपना मन कर, इच्छा कर ॥९॥

पहले, जलोंकी धाराओंको रोकनेवाला अन्धकार फैला हुआ था और उस तमोमय वृत्रके पेटमें पर्वत पडा हुआ था। इन्द्र इन, अवरोधक इससे घिरे, और निम्न प्रवाहकी ओर चलनेको तय्यार सारे जलोंको गतिमान् करता है ॥१०॥

स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम् ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन् राये च नः स्वपत्या इषे धाः ११

(५)

(ऋ. १।५५) सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती ।

दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति ।
भीमस्तुविष्माञ्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः १
सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः ।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात् स युध्म ओजसा पनस्यते २
त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि ।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ३
स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम् ।
वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ४

(हे) इन्द्र ! सः (त्वं) शे-वृधं द्युम्नं, महि जनाषाट् तव्यं क्षत्रं (च) अस्मे अधि धाः । नः मघोन. रक्ष सूरीन् च पाहि । नः सु-अपत्यै इषे राये च धाः ॥११॥

अस्य वरिमा दिवः चित् वि पप्रथे, पृथिवी चन इन्द्रं मह्ना न प्रति । भीमः तुविष्मान् चर्षणि-भ्यः आ-तपः (सः) वंसगः न तेजसे वज्रं शिशीते ॥ १ ॥

सः इन्द्रः अर्णवः न समुद्रियः वरीम-भिः वि-श्रिताः नद्यः प्रति गृभ्णाति । सः युध्मः ओजसा सनात् पनस्यते, सोमस्य पीतये वृषायते (च) ॥ २ ॥

(हे) इन्द्र ! उग्रः त्वं तं पर्वतं भोजसे न । (त्वं) महः नृम्णस्य धर्मणां इरज्यसि । देवता (त्वं) वीर्येण अति प्र चेकिते । (त्वं) विश्वस्मै कर्मणे पुरः-हितः ॥ ३ ॥

सः इत् जनेषु इन्द्रियं चारु प्र-ब्रुवाणः नमस्यु-भिः वने वचस्यते । यत् वृषा मघ-वा धेनां क्षेमेण इन्वति (तदा सः) वृषा हर्यतः छन्दुः भवति ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! वह तू सुखमें बडा होनेवाले यश और श्रेष्ठ, शत्रुघाती, वृद्धियुक्त बल हममें दे। हमारे धनवानोंकी रक्षा कर और विद्वानोंको कष्टसे बचा । हमें उत्तम सन्तान, अन्न और ऐश्वर्यप्राप्तिके लिये समर्थ कर ॥११॥

इस इन्द्रका बडापन द्युसे भी विस्तृत है। पृथिवी भी इन्द्रको अपनी विशालतासे नहीं हरा सकती । भयङ्कर ओजस्वी प्रजाओंके लिये तपनेवाला वह इन्द्र, जैसे बैल अपनी सींग रगडता है वैसे, तीक्ष्ण होनेके लिये अपना वज्र रगडता है ॥१॥

वह इन्द्र समुद्रके समान, समुद्रकी ओर जानेवाले, विस्तृत होनेसे सब ओर फैले हुए नदी, जल-प्रवाहोंको अपने अधीन करता है । वह युद्ध करनेवाला इन्द्र अपने प्रतापसे चिर-कालसे स्तुति प्राप्त कर रहा है । वह सोमके पीनेके लिये पराक्रम दिखा रहा है ॥२॥

हे इन्द्र ! शत्रुओंके ऊपर वीरता दिखानेवाले तूने उस पर्वतको भोजनके लिये रखनेके समान रखा है। तू बडे धनके धारकोंका भी स्वामी हुआ है । देवरूप तू अपने पराक्रमसे सबसे अधिक जान पडता है। तू सम्पूर्ण कार्यका आगे रखा हुआ अर्थात् सबका नेता है ॥३॥

वह इन्द्रही मनुष्योंमें अपने पराक्रमको उत्तम रूपसे प्रकट करता हुआ नमन करनेवाले भक्तोंके द्वारा वनमें प्रशंसनीय होता है । जब दाता इन्द्र स्तुतिको अपनी रक्षासे सफल करता है, तब वहही दाता कामनायुक्त उपासकका पालक हो जाता है ॥४॥

स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।
अधा चन श्रद् दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥ ५

स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन् ।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत् ॥ ६

दानाय मनः सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि ।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः ॥ ७

अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥ ८

(६)

(ऋ. १।५६) सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती ।

एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः ।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ॥ १

सः इत् युध्मः मज्मना ओजसा जनेभ्यः महानि सम्-इथानि कृणोति, अध चन त्विषि-मते, वधं वज्रं नि-घनि-घ्नते इन्द्राय (जनाः) श्रत् दधति ॥ ५ ॥

सः हि श्रवस्युः सु क्रतुः (इन्द्रः) क्ष्मया वृधानः ओजसा कृत्रिमा सदनानि वि-नाशयन्, यज्यवे अवृकाणि ज्योतींषि कृण्वन्, सर्तवै अपः अव सृजत् ॥ ६ ॥

(हे) सोम-पावन् वन्दन-श्रुत् इन्द्र ! ते मनः दानाय अस्तु, हरी अर्वाञ्चा आ कृधि । ये ते सारथयः (ते) यमिष्ठासः (सन्तु), केताः भूर्णयः त्वा न आ दभ्नुवन्ति ॥ ७ ॥

(हे) इन्द्र ! (त्वं) हस्तयोः अप्र-क्षितं वसु बिभर्षि । श्रुतः (त्वं) तन्वि अषाळ्हं सहः दधे । कर्तृ-भिः आ-वृतासः अवतासः न ते तनूषु भूरयः क्रतवः (सन्ति) ॥ ८ ॥

भुर्वणिः एषः तस्य पूर्वीः चम्रिषः अत्यः न योषां प्र अव उत् अयंस्त । (सः) हिरण्ययं हरि-योगं ऋभ्वसं रथं आ-वृत्य महे दक्षं पाययते ॥ १ ॥

वही योद्धा इन्द्र अपने पाप-शोधक बलसे प्रजाओंके हितके लिये बडे-बडे युद्ध करता है । तब इस तेजस्वी, तथा मारक वज्रका प्रहार करनेवाले इन्द्रके लिये प्रजाजन बडी श्रद्धा करते हैं ॥५॥

उस धनकी कामनावाले उत्तम कर्मकारी इन्द्रने भूमिके साथ बढते, बलसे शत्रुके निर्माण किये कीलोंको नष्ट करते और यजनशीलके निमित्त क्रूरतारहित प्रकाश फैलाते हुए, बहनेके लिये जलोंको छोड दिया ॥६॥

हे सोम-रस पीनेवाले और स्तुतियोंपर ध्यान देनेवाले इन्द्र ! तेरा मन दानकी इच्छावाला हो। तू अपने दोनों घोडे हमारे समीप कर दे, हमारी ओर आ । जो तेरे सारथी, हैं वे नियन्त्रणमें कुशल हों, जिससे तेरे शिक्षित घोडे तुझे कष्ट न दे सकें ॥७॥

हे इन्द्र ! तू अपने दोनों हाथोंमें क्षय-रहित धन धारण कर रहा है । तूने अपने शरीरमें जिसे सब सुन चुके हैं ऐसा पराजय-रहित बल धारण किया है । निर्माता लोगों द्वारा सुरक्षित कूपोंकी भाँति तेरे शरीरोंमें बहुतसे कर्म आश्रित हैं, सुरक्षित हैं ॥८॥

भोजनकी इच्छा करनेवाला यह इन्द्र उसके अपूर्व, चमसोंमें रखे हुए अन्नोंको, घोडा जैसे घोडीको वैसे, समीप लाता है । यह सुनहरे, जिसमें घोडे जुडे हैं ऐसे बहुत प्रकाश-युक्त रथको अधीन कर बडे कर्मके लिये बलवर्धक सोमको पिलाता है ॥१॥

तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा ॥ २

स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥ ३

देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥ ४

वि यत् तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन् वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ ५

त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः ॥ ६

नेमन्-इषः परीणसः गूर्तयः सनिष्यवः सम्-चरणे समुद्रं न तं (अधि-रोहन्ति । हे स्तोतः !) दक्षस्य विदथस्य पतिं सहः, वेनाः गिरिं न, तेजसा अधि रोह ॥ २ ॥

सः तुर्वणिः महान् (अस्ति । अस्य) अरेणु तुजा शवः गिरेः भृष्टिः न पौंस्ये भ्राजते । आयसः दुध्रः येन मदे मायिनं शुष्णं आभूषु दामनि नि रमयत् ॥ ३ ॥

यः अर्हरि-स्वनिः धृष्णुना शवसा तमः बाधते, बृहत् रेणुं इयर्ति, त्वा-वृधा देवी तविषी यदि इन्द्रं सूर्यः उषसं न ऊतये सिषक्ति ॥ ४ ॥

(हे) इन्द्र ! बर्हणा (त्वं) यत् तिरः धरुणं अच्युतं रजः दिवः आतासु वि अति-स्थिपः, यत् मदे स्वः-मीळ्हे हर्ष्या वृत्रं अहन् (तदा) अपां अर्णवं निः औब्जः ॥ ५ ॥

(हे) इन्द्र ! माहिनः त्वं ओजसा धरुणं दिवः पृथिव्याः सदनेषु धिषे । सुतस्य मदे त्वं अपः अरिणाः, समया पाष्या वृत्रस्य वि अरुजः ॥ ६ ॥

हवि पहुँचानेवाले सब ओरसे समीप पहुँचे हुए स्तोता लोग, धनकी कामनावाले यात्राके लिये जैसे समुद्रको, वैसे, उस इन्द्रको स्वीकार करते हैं, अपनाते हैं। तू भी अन्न और युद्धके रक्षक तेजस्वी इन्द्रको, नदियां पर्वतको प्राप्त होती हैं वैसे, तेजसे प्राप्त हो ॥२॥

वह वीर शत्रुनाशक इन्द्र महान् है। इसका निष्पाप शत्रुनाशक बल पर्वतके शिखरके समान युद्धमें चमकता है। लोहेके शस्त्रसे युक्त दुर्धर इन्द्र जिस बलसे हर्षमें आकर मायावी शुष्णको कारागारमें बेडियां डाल कर रखता है ॥३॥

जो शत्रुओंको रुलानेवाला इन्द्र अपने अजेय बलसे तमोरूप शत्रुको नष्ट करता है और जो उनके ऊपर बडी धूली उडाता है। तुझसे वृद्धिको प्राप्त दिव्य गुणवाली सेना उस इन्द्रका, सूर्य जैसे उषाका, वैसे, रक्षार्थ सेवन करती है ॥४॥

हे इन्द्र ! अपनी शक्तिसे तूने जब द्युमें छिपाये हुए, जगत्के प्राणधारक नीचे न गिरनेवाले स्तंभित जलको दिव् लोकसे लाकर दिशाओंमें स्थापित किया, और जब सोमके आनन्दमें धनकी प्राप्तिके समय हृष्ट शक्तिसे वृत्रको मारा, तब तूने जलोंको सागरतक पहुंचानेके लिये नीचे गिराया ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! महिमावाले तूने बलसे जलको दिव् लोकसे पृथिवी के स्थान-स्थानपर धारण किया, उतारा। सोम-रसके आनन्दमें तूने जलोंको नीचे प्रेरित किया, गिराया और उस समय कठोर, चूर-चूर कर देनेवाले वज्रसे वृत्रका शिर चूर-चूर कर दिया ॥ ६ ॥

(७)

(ऋ. १।५७) सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती ।

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १ ॥
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥ २ ॥
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥ ४ ॥
भूरि त इन्द्र वीर्यं१ तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ ५ ॥

शवसे अप-वृतं यस्य विश्व-आयु राधः, प्रवणे अपां-इव, दुः-धरं (अस्ति), (अहं तस्मै) मंहिष्ठाय बृहते बृहत्-रये सत्य-शुष्माय तवसे मतिं प्र भरे ॥१॥

शक्तिके लिये आवरण-रहित जिस इन्द्रका सम्पूर्ण आयुतक रहनेवाला यश नीचे स्थानमें बहनेवाले जलोंके समान दुर्धर है, अपराजित है। मैं उस श्रेष्ठ, महान्, बडे धन-वाले, सच्चे बलशाली और प्रभावयुक्त इन्द्रके लिये स्तुति करता हूं॥ १ ॥

यत् श्नथिता हिरण्ययः हर्यतः इन्द्रस्य वज्रः पर्वते न सम्-अशीत, अध विश्वं ते इष्टये आपः निम्ना-इव हविष्मतः सवना अनु ह असत् ॥ २ ॥

जब शत्रुनाशक सुनहरा सुन्दर इन्द्रका वज्र वृत्रपर नहीं सोया, उसे मारही दिया तब हे इन्द्र ! सारा जगत् तेरे स्वागतके लिये, जल जैसे नीचे स्थलोंकी ओर जाते हैं वैसे हविवाले यजमानके यज्ञोंकी ओर झुका ॥ २ ॥

(हे) शुभ्रे उषः ! न अध्वरे अस्मै भीमाय पनीयसे नमसा सं आ भर। यस्य धाम हरितः न श्रवसे श्रवसे नाम इंद्रियं ज्योतिः अकारि ॥ ३ ॥

हे सुन्दरि उषा ! इस समय तू यज्ञमें इस शूर प्रशंस-नीय इन्द्रके लिये नमस्कारपूर्वक हवि ले आ, प्रस्तुत कर, जिस इन्द्रका स्थान घोडोंके समान सुरक्षाके लिये और यशके लिये विख्यात सामर्थ्ययुक्त और तेजस्वी बनाया गया है ॥३॥

(हे) पुरु-स्तुत प्रभु-वसो इन्द्र ! ये त्वा आ-रभ्य चरामसि इमे ते ते वयं (स्मः)। (हे) गिर्वणः ! त्वत् अन्यः गिरः नहि सघत्, (त्वं) क्षोणीः-इव नः तत् वचः प्रति हर्य ॥४॥

हे बहुतोंद्वारा प्रशंसनीय और प्रभुतायुक्त धनवाले इन्द्र ! जो तेरा आश्रय लेकर कर्म करते हैं ये तेरे भक्त वे हमही हैं। हे प्रशंसनीय इन्द्र ! तेरे विना दूसरा कोई हमारी प्रार्थनाओंको नहीं पाता। तू प्रजाओंके समान हमारी उस वाणीका स्वीकार कर ॥ ४ ॥

(हे) इन्द्र ! ते वीर्यं भूरि (अस्ति । वयं) तव स्मसि। (हे) मघ-वन् ! (त्वं) अस्य स्तोतुः कामं आ पृण। बृहती द्यौः ते वीर्यं अनु ममे, इयं च पृथिवी ते ओजसे नेमे ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तेरा पराक्रम बहुत है। हम तो तेरे सनातन भक्त हैं। हे धनिक इन्द्र ! तू इस स्तोताकी कामनाको पूर्ण कर। बहुत बडी द्यौने तेरे पराक्रमको मान लिया है, और यह पृथिवी भी तेरे बलके सम्मुख झुक चुकी है ॥ ५ ॥

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ६

(हे) वज्रिन् इन्द्र ! त्वं तं महां उरुं पर्वतं वज्रेण पर्व-शः चकर्तिथ। नि-वृताः अपः सर्तवे अव असृजः। (त्वं) सत्रा विश्वं केवलं सहः दधिषे ॥ ६ ॥

हे वज्रधारी इन्द्र ! तूने उस बहुत विस्तारवाले पर्वतपर आश्रय करनेवाले वृत्रको वज्रसे टुकडे-टुकडे कर दिया। पुनः रुके हुए जलोंको बहनेके लिये छोड दिया, उनका मार्ग खोल दिया। तूनेही सचमुच सारा विशुद्ध बल धारण किया है॥ ६ ॥

इन्द्रका अप्रतिम प्रभाव

यह इन्द्रका काव्य है। सव्य ऋषिका यह काव्य इन्द्रका अप्रतिम प्रभाव प्रकट कर रहा है। ऋषि किसी विशेष हेतुसे देवताकी स्तुति करते हैं, वह हेतु वैयक्तिक आदर्श हो, सामाजिक अथवा राष्ट्रीय ध्येयका प्रकट करना हो अथवा अन्य कुछ हो। पर ऐसा कुछ न कुछ हेतु रहता है और यही हेतु सूक्तका मुख्य विचार-केन्द्र हुआ करता है। यहां इन्द्र देवताकी स्तुति है, इन्द्रके वर्णनके मिषसे यहां आदर्श वीर पुरुषका वर्णन किया गया है। इस वर्णनकी कुछ मुख्य बातें हम यहां संक्षेपसे बताना चाहते हैं। प्रथम वीर विद्यावान्, विद्याप्रवीण तथा बहुश्रुत होना चाहिये। अन्यथा उसकी निरी वीरता कुछ कामकी नहीं रहती, इसलिये वीरके वर्णनमें कविने उग्रकी वीरताके साथ साथ उसकी विद्वत्ता भी बतायी है। देखिये—

वीरकी विद्या-प्रवीणता

इन्द्र जैसा वीर है, लडनेमें चतुर है, वैसाही विद्वान् अर्थात् विद्यामें भी निपुण है, इस विषयका वर्णन देखिये—

(ऋ. १।५१)

१. विप्रः— विशेष प्राज्ञ, विशेष ज्ञानी,

२. ऋग्मी— ऋचाओंका जिसने अध्ययन किया है, ऋचाओं द्वारा जिसका वर्णन होता है, ऋचा जिसके पास रहती हैं अर्थात् ज्ञानी, बहुश्रुत। (मं. १)

(ऋ. १।५२)

३. स्वर्विद्—आत्मज्ञानी, (स्व-र्-वित्) आत्माके प्रकाशको जो यथावत् जानता है, तत्त्ववित्। (मं. १)

४. मनीषिभिः मदवृद्धः- विद्वानोंके साथ रहनेसे आनंदको बढानेवाला। जो स्वयं विद्वान् होनेके कारण विद्वानोंके साथही रहना चाहता है, अपने चारों ओर विद्वान् रहें ऐसा सदा प्रबंध करता है, विद्वानोंके साथ रहनेके कारण जो शुभ वायुमण्डल बनता है उसके आनन्दसे आनन्दित होनेवाला यह वीर है। (मं. ३)

यहां जिसका वर्णन है, वह इन्द्र इतना विद्वान् है। विद्याके साथ इस इन्द्रके पास पर्याप्त धन भी रहता है। इस विषयमें देखिये—

धनवान् इन्द्र

इन्द्र वीर है, ज्ञानी है, युद्ध-कुशल है, देवोंका राजा है, अतः उसके पास धन भी बहुत रहता है। भरपूर खजानाही राजाका बल है। निर्धन राजा कुछ भी कर नहीं सकता। प्रजाका सुधार करनेके लिये राजाके पास पर्याप्त धन चाहिये। वैसा इन्द्रके पास रहता है। देखिये—

(ऋ. १।५१)

१. वस्वः अर्णवः— धनका समुद्र, विपुल धनवाला,

२. भुजे तं अर्चत— उपभोग या प्रजापालनाके लिये इन्द्रकी पूजा करो, वह धनसे अवश्य सहाय्य करेगा।

(ऋ. १।५२)

३. चन्द्रबुध्नः—धन जिसके खजानेमें है, अतः आनन्दका जो मूल है। (मं. ३)

४. अन्धसः पप्रिः— अन्नसे परिपूर्ण है और जो अन्न देकर दूसरोंको परिपूर्ण करता है। (मं. ३)

५. मंहिष्ठारातिं तं इन्द्रं सु-अपस्यया धिया अह्वे- बडे दान देनेवाले उस इन्द्रको मैं उत्तम कर्म करनेवाली बुद्धिसे बुलाता हूं। (मं. १)

(ऋ. १।५२)

६. मघवा— धनवान् (मं. ११)

धार्मिक-अधार्मिक, व्रतपालक-अव्रती, आर्य और दस्यु यह वर्गीकरण करके आर्योंकी सुरक्षा और दस्युओंका दमन करना भी एक बडा भारी जनताका हितकारक कर्म है।

यह कार्य विशेषतः अन्तर्गत राज्यशासनका है, इसके करनेके लिये जैसी चतुरता चाहिये, वैसी वीरताही चाहिये। विद्या-प्रवीणता आदिसे प्राप्त होनेवाली चतुरताके विषयमें इससे पूर्व कहा है, अब इन्द्रकी वीरताके विषयमें कहते हैं—

वीर इन्द्र

वीर इन्द्रके गुण निम्नलिखित शब्दोंद्वारा प्रकट हो रहे हैं। सव्य ऋषिका आदर्श वीर यह है—

(ऋ. १।५१)

१. मेषः– मेढेके समान लडनेवाला (मं.१ ऋ.१।५२।१)

२. मंहिष्ठः– बडा, महान्, श्रेष्ठ (मं. १)

३. तविषीभिः आवृतः— बलोंसे युक्त, सेनाओंसे घेरा हुआ।

४. ऊतयः दक्षासः ऋभवः– संरक्षणका कार्य करनेवाले, सदा दक्ष रहनेवाले, अति तेजस्वी (सैनिक इन्द्रके पास रहते हैं)। (मं. २)

५. विश्वा तविषी ते सध्र्यक् हिता— सब बल तुम्हारे पास रखे हैं।

६. तव वज्रः बाह्वोः हितः— तुम्हारा वज्र तुम्हारे हाथोंमें रखा है। (मं. ७)

७. मनोयुजः वातस्य श्रवः अभि आवहन्—मनके समान वेगवान् और वायुके समान गतिशील घोडे अन्नको ढो लाते हैं। (मं. १०)

८. वृषभः— बलवान्,

९. सत्यशुष्मः— अति बलिष्ठ,

१०. तवस्— शक्तिशाली,

११. स्वराट्— जिसके अधीन स्वराज्य है, जो अति तेजस्वी है।

(ऋ. १।५२)

१२. शचीवः— शक्तिमान्,

१३. पुरुष्टुत्— बहुत बडे कर्म करनेवाला,

१४. द्युमत्तमः— अत्यंत तेजस्वी,

१५. अभिभूतिः— शत्रुका पराभव करनेवाला, (मं. ३)

१६. वृजने सर्ववीराः स्याम– युद्धके समय हम सब वीरोंसे युक्त हों,

१७. सूरिभिः शर्मन् स्याम— विद्वानोंके साथ शान्ति सुखको हम प्राप्त करें (मं. १५)

(ऋ. १।५२)

१८. इन्द्र अवसे रथं आववृत्यां– इन्द्रको हमारी सुरक्षा करनेके लिये रथपर चढनेपर इधर लाते हैं। (मं. १)

१९. शुष्माः अह्रुतप्सवः ऊतयः वृत्रहत्ये तं इन्द्रं अनु तस्थुः— बलवती अकुटिल कर्मवाली संरक्षक शक्तियां वृत्रके वध करनेके समय उस इन्द्रको प्राप्त हुई। (मं.४)

२०. ऊतय अस्यः युध्यतः मदे अभि सश्चुः– संरक्षणकी सब शक्तियां इस इन्द्रके युद्ध करनेके आनंदकारक समयमें इसके पास पहुंचती हैं। (मं. ५)

२१. पृथिवी दशभुजिः, कृष्टयः विश्वा अहानि ततनन्त, ते सहः विश्रुतं, बर्हणा शवसा द्यां अनुभुवत्।— यदि भूमि दस गुना बढ गयी, सब प्रजाएं दिनों दिन बढतीही गयीं, तो भी तेरा सामर्थ्य अधिकही विश्रुत होगा, और तेरा शत्रुमारक बल द्युलोकतक फैल जायगा। (मं. ११)

२२. धृषन्मनः– निडर मनवाला (मं. १२)

(ऋ. १।५४)

२३. शाकी— समर्थ,

२४. शचीवान्– शक्तिमान,

२५. शक्रः– बलिष्ठ,

२६. वृषा, वृषभः– बैल जैसा हृष्टपुष्ट। (मं. २)

२७. धृष्णुना शवसा उभे रोदसी निक्रजाते— धर्षक बलसे दोनों लोकोंको हिला देता है। (मं. २)

२८. धृषत् मनः– शत्रुका मर्दन करनेवाले मनसे युक्त,

२९. स्वक्षत्रः– अपने निजी क्षात्रतेजसे युक्त,

३०. बृहत्-श्रवाः– बहुत यशस्वी,

३१. असुरः– जीवनदाता,

३२ रथः– रथी वीर, रथवान्,

३३. हरिभ्यां पुरस्कृतः— घोडोंसे लाया जानेवाला (मं ३)

३४. शत-क्रतुः– सैकडों कर्म करनेवाला (मं. ६)

३५. ये महिक्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं वर्धयन्ति, (ते) अपसा [illegible]। ते क्षत्रं असमं, ते मनीषा असमा-

तेरे महान् बलको और स्थायी सामर्थ्यको बढाते हैं, वे अपने कर्मसेही बढें। तेरा क्षात्र बल बडा है और तेरी बुद्धि भी अद्वितीय है। (मं. ८)

३६. अपां धरुण-ह्वरं तमः अतिष्ठत्, वृत्रस्य जठरेषु अन्तः पर्वतः। वत्रिणा हिताः प्रवणेषु अनुस्थाः नद्यः अभि जिघ्नते-जलोंको रोकनेवाला अन्धकार था, वृत्रके पेटोंके बीचमें पर्वत था, घेरनेवाले वृत्रने रुकी हुई नदियां गतिमान् कर दीं। (मं. १०)

(ऋ. १।५५)

३७. भीमः तुविष्मान् चर्षणिभ्यः आतपः तेजसे वज्रं शिशीते— भयंकर शक्तिशाली वीर सब प्रजाजनोंकी तेजस्विता बढानेके हेतु अपना वज्र तीक्ष्ण करता है (मं. १)

३८. सः युध्मः ओजसा सनात् पनस्यते— वह युद्धमें कुशल वीर अपने प्रतापसे सदाही स्तुतिके लिये योग्य है। (मं. २)

३९. देवता (त्वं) वीर्येण अति प्रचेकिते— तू देवता अपने वीर्य पराक्रमसे अत्यंत तेजस्वी दीखता है। (मं.३)

४०. विश्वस्मै कर्मणे पुरोहितः— सब कर्मोका नेता तू है। (मं. ३)

४१. सः जनेषु इंद्रियं चारु प्रब्रुवाणः वचस्यते- वह इन्द्र सब मानवोंमें विशेष प्रभाव दिखानेके कारण प्रशंसित होता है। (मं. ४)

४२. वृषा मघवा घेनां क्षेमेण इन्वति, हर्यतः छन्दुः भवति- वह बलवान् इन्द्र जब रक्षा करनेसे स्तुति प्राप्त करता है, तब वह भक्तके लिये प्रिय होता है।

४३. श्रुतः अषाढं सहः तन्वि दधे। कर्तृभिः आवृतासः ते तनूषु भूरयः क्रतवः- प्रसिद्ध और विजयी बल तेरे शरीरमें है। कर्ताओंसे घेरे हुए, तेरे शरीरोंमें अनेक कर्म हैं। (मं. ८)

(ऋ. १।५६)

४४. सः हरियोगं हिरण्ययं ऋभ्वसं रथं आवृत्य महे दक्षं पाययते— वह इन्द्र घोडे जोते हैं ऐसे सोनेके तेजस्वी रथको पास रखकर बडे कार्यके लिये बल प्राप्त करता है। (बलवर्धक सोमरस पीता है) । (मं. १)

४५. दक्षस्य विदथस्य पतिं सदः तेजसा अधिरोह (ति)— बलसे होनेवाले युद्धके अधिपति इन्द्रको शत्रुनाशका सामर्थ्य तेजके साथ प्राप्त होता है (मं. २)

४६. सः तुर्वणिः महान्, अरेणु तुजा शवः, गिरेः भृष्टिः न, पौंस्ये भ्राजते- वह शत्रुनाशक इन्द्र बडा है, उसका निर्मल शत्रुनाशक बल, पर्वतके शिखरके समान, युद्धमें चमकता है। (मं. ३)

४७. आयसः दुध्रः मायिनं शुष्णं आभूषु दामनि नि रमयत्- लोहेका वज्र बर्तनेवाले दुर्धर इन्द्रने कपटी शुष्णको कारागृहमें बेडियोंमें रख दिया। (मं. ३)

(ऋ. १।५७)

४८. शवसे अपवृतं यस्य विश्वायुः राधः दुर्धरं- शक्तिके लिये जिसकी सब आयुभर प्रसिद्धि है, (वह सचमुच) दुर्धर बल है, अजिंक्य सामर्थ्य है। (मं. १)

४९. सत्यशुष्मः- जिसका बल सच्चा सामर्थ्य है। (मं. १)

५०. बृहत्-रयिः- बडे धनवाला।

५१. तवस्- सामर्थ्यवान् (मं. १)

५२. श्रथिता हिरण्ययः वज्रः पर्वते न सं अशीत- शत्रुनाशक सुनहरा वज्र पर्वत-निवासी (वृत्र) पर सोया नहीं (पडा, उसे मारकर कामयाब हुआ।) (मं. २)

५३. यस्य धाम श्रवसे श्रवसे इंद्रियं ज्योतिः अकारि— जिस वीरका स्थान (सब लोगोंकी) सुरक्षाके लिये, अन्नके लिये और बलके लिए एक तेजस्वी ज्योति जैसा बनाया है। (मं. ३)

५४. ते वीर्यं भूरि- तेरा पराक्रम बडा भारी है। (मं.५)

५५. विश्वं केवलं सहः सत्रा (त्वं) दधिषे— सब शुद्ध बल तू अपने साथ धारण करता है। (मं.६)

इन्द्रकी वीरतामें उसका बल, सामर्थ्य, प्रभुत्व, वीर्य, पराक्रम, प्रभाव, शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य आदि सब गुण आगये हैं। अब इन्द्रकी युद्ध-शक्ति देखिये—

इन्द्रकी युद्धविद्या

सव्य ऋषिके ७२ मंत्र हैं और वे केवल इन्द्र देवताकेही हैं। इसमें क्षत्रियकी युद्ध-विद्याका विशेष तरह वर्णन है, देखिये—

(ऋ. १।५१)

१. आजौ अद्रिं नर्तयन्— युद्धमें पर्वतके समान कठोर

(ऋ. १।५३)

७. अभितः इदं वसु तव इत् चेकिते— चारों ओर जो धन दीख रहा है, वह सब तेराही है।

८. संगृभ्य आ भर–उस धनको लेकर हमें दे दो। (मं.३)

इन्द्रका दान

इन्द्रके पास धन है, उसका वह दान करता है और जनताकी उन्नति करता है—

(ऋ. १।५३)

१. अश्वस्य, गोः, यवस्य दुरः, वसुनः इनः पतिः- इन्द्र घोडों, गौओं, जौ आदिका दाता, तथा धनका स्वामी है। (मं. २)

२. शिक्षानरः अकामकर्शनः सखिभ्यः सखा— इंद्र शिक्षा देनेवाला नेता, किसी भक्तकी आशाका भंग न करनेवाला और मित्रोंका भी मित्र (अर्थात् हर प्रकारके दानसे सहायता करनेवाला) है। (मं. २)

(ऋ. १।५५)

३. हस्तयोः अप्रक्षितं वसु बिभर्षि— तू अपने हाथोंमें (दान करनेके लिये) अक्षय धन धारण करता है। (मं. ८)

इन्द्रके पास धन है, उसका व्यय वह अपने भोग बढानेके लिये नहीं करता, परंतु जनताकी भलाईके कार्यमें करता है। वह गौवें बाँटता है, वीरोंको घोडे देता है, धन और अन्न देता है और सब जनताका सुख जिस कार्यसे बढ सकता है, वही कार्य करता है। विशेषतः सब जनताकी सुरक्षा वह करता है, क्योंकि सुरक्षासे ही जनता अपनी हरएक प्रकारकी उन्नति कर सकती है।

अब इन्द्रके कुछ कर्म देखिये—

इन्द्रके मनुष्य-हितकारी कर्म

इन्द्र सब जनताके हित करनेके लिये कर्म करता है। इसके सभी कर्म जनताका हित करनेके लिये होते रहते हैं—

(ऋ. १।५१)

१. यस्य मानुषा (कर्माणि), द्यावः न, विचरन्ति- जिसके मनुष्योंका हित करनेके लिये किये जानेवाले कर्म, सूर्य-किरणोंके समान, चारों ओर फैले हैं। (मं. १)

२. शत-क्रतुः— सैकडों कर्म करनेवाला (मं. २)

३. सुक्रतुः— उत्तम जनताके हितकर कर्म करनेवाला (मं १३)

(ऋ. १।५२)

४. संभृतक्रतुः— अनेक (मनुष्योंके लिये हितकारी) भरण-पोषणके कार्य करनेवाला। (मं. ८)

५. मानुषप्रधनाः ऊतयः नृपाय्यः मरुतः स्वः इन्द्रं अनु अमदन्— मनुष्योंके हितार्थ युद्ध करनेवाले संरक्षक संघटित वीरोंने स्वयं तेजस्वी इन्द्रको अनुकूल शक्ति प्रदान करके आनंदित किया। (मं. ९)

(ऋ. १।५३)

६. त्वं ऊतिभिः सुश्रवसं, त्रामभिः तूर्वयाणं आविथ। त्वं यूने सश्रे कुत्सं आतिथिग्वं आयुं अरन्धयः— तूने सुरक्षाकी साधनोंसे सुश्रवा और तूर्वयाणकी रक्षा की। तूने तरुण सुश्रवा राजाके लिये कुत्स, अतिथिग्व और आयुको वशमें कर दिया। (मं. १०)

इन्द्रने निम्नलिखित कार्य किये, ऐसा इन मंत्रोंमें उल्लेख है–

(ऋ. १।५१)

७. त्वं अंगिरोभ्यः गोत्रं अप वृणोः— तू (इन्द्र)ने अङ्गिरा वंशके लोगोंके लिये गौओंकी सुरक्षाके लिये गोस्थानोंको खुला कर दिया। (मं. ३)

८. अत्रये शतदुरेषु गातुवित्– अत्रिऋषि जब सौ द्वारोंवाले असुरोंके कारागृहमें बंद किया गया था, उस समय उसको छुटकारा होनेका मार्ग बताया। (मं. ३)

९. विमदाय ससेन चित् वसु अवहः– विमदके लिये सस्य-धान्य-के साधन धन दिया। (मं. ३)

१०. वत्रसानस्य आजौ रक्षिता– वत्रसानको युद्धमें सुरक्षित किया। (मं. ३)

११. त्वं अपां अपिधाना अप वृणोः— तू इन्द्रने जलोंके बंधनोंको तोडकर जल-प्रवाह बहनेयोग्य खुले किये। (शत्रुका वध करके उसने जलोंको रोक रखा था, वे जलप्रवाह सब मानवोंके हितके खुले किये, जिससे जल बहने लगा और जनताको पीनेके लिये मिलने लगा।) (मं. ४)

१२. पर्वते दानुमत् वसु अधारयः– पर्वतपर (के किलेमें) दान देनेयोग्य धन रख दिया। (वह इसलिये कि इसका उपयोग जनताके हितके लिये किया जा सके।) (मं. ४)

१३. त्वं पिप्रोः पुरः प्र अरुजः- तू (इन्द्र) ने पिप्रु-नामक शत्रुके नगरोंका नाश किया।

१४. दस्युहत्येषु ऋजिश्वानं प्र आविथ- असुरोंका नाश करनेके युद्धोंमें ऋजिश्वाकी सुरक्षा की। (मं. ५)

१५. त्वं शुष्णहत्येषु कुत्सं आविथ- तू (इन्द्र) ने शुष्ण असुरोंके साथ किये जानेवाले युद्धोंमें कुत्सकी रक्षा की।

१६. अतिथिग्वाय शम्बरं अरन्धयः— अतिथिग्व ऋषिके लिये शंबर असुरका वध किया।

१७. महान्तं अर्बुदं पदा नि क्रमीः- बडे अर्बुद असुरको पांवसेही लताड दिया।

१८. सनात् त्वं दस्युहत्याय जज्ञिषे- तू सदाही असुरोंका वध करनेके लिये यत्न करता है। (मं. ६)

१९. आर्यान् दस्यवः विजानीहि- आर्य और दस्युओंको पहचान।

२०. अव्रतान् शासत् बर्हिष्मते रन्धय—अनियमसे चलनेवालोंको दण्ड देते हुए, संयमी लोगोंके हित करनेके लिये उनको छिन्नभिन्न कर।

२१. शाकी यजमानस्य चोदिता भव- शक्तिमान् होकर यज्ञकर्मकी प्रेरणा कर। (मं. ८)

२२. अनुव्रताय अपव्रतान् रन्धयन्- अनुकूल कर्म करनेवालोंके हितके लिये अपव्रती कुकर्मी दुष्टोंका नाश कर।

२३. आभूभिः अनाभुवः श्नथयन्- मातृभूमिके भक्तोंके द्वारा मातृभूमिके विरोधकोंका नाश कर।

२४ वृद्धस्य चित् वर्धतः स्तवानः- बढनेवालेसे भी अधिक बढनेवालेकी स्तुति कर।

२५. वम्रः संदिहः वि जघान— (तेरे भक्त) वम्रने मिलकर बढनेवाले शत्रुओंको मार दिया। (यह प्रभुकी उपासनाका फल है।) (मं. ९)

२६ ते सहः सहसा तक्षत्- तेरे बलको अपने बलसे बढाया। (परस्परकी संघटनासे बल बढाया।)

२७ ते शवः मज्मना वि बाधते- तेरा बल वेगसे शत्रुको विघ्न करता है। (मं. १०)

२८. इन्द्रः काव्ये उशने सचा मन्दिष्ट- इन्द्र कविपुत्र उशनाके घर साथ बैठकर तृप्त हुआ।

२९ उग्रः ययिं स्रोतसा अपः निः असृजत्— शूरवीरने बर्फके पहाडसे झरनोंद्वारा जलप्रवाह बहा दिये।

३०. शुष्णस्य दृंहिताः पुरः वि ऐरयत्— शुष्ण असुरके सुदृढ नगर तोड दिये। (मं. ११)

३१. वृषपानेषु रथः आतिष्ठसि— बलवर्धक सोमपान करनेके स्थानको पहुंचनेके लिये रथपर चढता है।

३२. शार्यातस्य (सोमाः) प्रभृताः— शर्यातपुत्रके सोमरस (तुम्हारे लिये) भरकर रखे हैं। (मं. १२)

३३. कक्षीवते अर्भां वृचयां अददाः— कक्षीवानको तरुणी वृचयाका प्रदान किया।

३४. वृषणश्वस्य मेना अभवः— वृषणश्वके लिये तू मेना (स्त्री) बना। (मं. १३)

३५. इन्द्रः निरेके सुध्यः अश्रायि— इन्द्रही विपत्कालमें उत्तम बुद्धिमान् लोगोंको आश्रय करनेयोग्य है।

३६. पज्रेषु दुर्यः— अंगिरस कुलवालोंका इन्द्र सहायक है।

३७. इन्द्रः अश्वयुः, गव्युः, रथयुः, वसूयुः, रायः प्रयन्ता क्षयति- इन्द्र घोडे, गायें, रथ, धन और ऐश्वर्यका दाता है। (मं. १४)

३८. त्वं नर्यं तुर्वशं यदुं वय्यं तुर्वीतिं, कृत्व्ये धने रथं एतशं आविथ— तूने मनुष्योंके हित करनेवाले तुर्वश यदु, वय्य तुर्वीति और शत्रुनाशक युद्धमें रथी एतशकी रक्षा की। (मं. ५४।६)

इन मन्त्रभागोंमें अङ्गिरोंकी सहायता की, अत्रिके लिये कारागारमें मदद दी,विमदको धान्य और धन दिया, वत्सानको युद्धभूमिपर सहायता की, ऋजिश्वाको शत्रुनाश करनेमें सहायता दी, कुत्स पिप्रु और अतिथिग्वकी सहायता की, आर्य और दस्युओंका विभाग करके आर्योंको सहायता दी, धार्मिक लोगोंकी सुरक्षा की और अधार्मिकों अपने कुकर्मोंसे रोक दिया, कविपुत्र उशनाको तृप्त किया, कक्षीवान्को अर्भा स्त्रीका दान दिया, इसी तरह वृषणश्वको मेना दी, तुर्वश, नर्य, यदु, वय्य और तुर्वीतिको युद्धमें सहायता देकर विजय प्राप्त कराया।

इस तरह इन्द्रने सैकडों जनताके हितके कर्म किये हैं। *अंगिरस, उशना आदिकोंके बडे बडे गुरुकुल थे, जहां सहस्रों छात्र पढते थे, आंगिरसोंका कुल विद्या-प्रचारके लिये प्रसिद्ध है।* अग्नि प्रदीप्त करनेका आविष्कार आंगिरसोंनेही किया था, आयुर्वेदका विस्तार करनेवाले भी वेही थे। इसलिये इनकी सहायता करनेका अर्थ जनताकी सहायता करनाही है।

वज्रको नचाता रहता है। विविध प्रकारसे शत्रुपर शस्त्र-प्रहार करता है। (मं. १)

२. अहिं वृत्रं शवसा अवधीः— अहि वृत्रको अपने बलसे मारा, वृत्रका वध किया। (मं. ४)

३. त्वं (तान्) मायिनः मायाभिः अप अधमः- तू (इन्द्र) ने उन कपटी शत्रुओंको कपटोंसेही नीचे गिरा दिया। (कपटीके साथ कपटयुक्तियोंसे, कुशल शत्रुसे कुशलता-पूर्वक किये युद्धसे लडना चाहिये।) (मं. ५)

४. शत्रोः विश्वानि वृष्ण्या अव वृश्च- शत्रुके सब बलोंको काट दे। (मं. ७)

(ऋ. १।५२)

५. सः सहस्रं ऊतिः तविषीषु वावृधे— वह इन्द्र सहस्रों रक्षाके साधनोंसे युक्त सेनाओंमें बढता है, उसका पराक्रम बढता है। (मं. २)

६. सः हरिषु हरः- वह इन्द्र घेरनेवाले शत्रुओंको भी घेरनेवाला है। (मं. ३)

७. धृषमाणः वज्री इन्द्रः वलस्य भिनत्, त्रितः परिधीन् इव— शत्रुपर हमला करनेवाले वज्रधारी इन्द्रने बल असुरको मारा, जैसा त्रितने त्रिलेकी दिवारोंको तोड दिया था। (मं. ५)

८. दुर्गृभिश्वनः प्रवणे वृत्रस्य हन्वोः तन्यतुं वि जघान- युद्धमें पकडनेके लिये कठिन वृत्रके हनुपर निम्नभागमेंही वज्र मारा, तब (**घृणा ईं परिचरति**) उस वज्रसे तेजका फैलाव हुआ और (**शवः तित्विषे**) बल भी चमक उठा, पश्चात् (**अपः घृत्वी रजसः बुध्नं आ अशायत्**) जलको रोकनेवाला वह असुर भूमिके ऊपर गिर गया, मर गया। (मं. ६)

९. त्वष्टा ते युज्यं शवः ववृधे, अभिभूति-ओजसं वज्रं ततक्ष- त्वष्टाने तेरे योग्य बल बढाया और शत्रुका पराभव करनेवाला वज्र निर्माण किया। (मं. ७)

१०. मनुषे अपः गातुयन् हरिभिः वृत्रं जघन्वान्- मनुष्यका हित करनेके लिये जलप्रवाहोंको बहाते हुए अपने घोडोंसे- किरणोंसे- वृत्रको मारा। (मं. ८)

११. बाह्वोः आयसं वज्रं अयच्छथाः- हाथोंमें तुमने फौलादका वज्र धारण किया। (मं. ८)

१२. ते अमवान् वज्रः सुतस्य मदे रोदसी बद्बधानस्य वृत्रस्य शिरः शवसा अभिनत्, अस्य अहेः स्वनात् भियसा द्यौः चित् अयोयवीत्- तेरा बलवान् वज्र जब सोमके उत्साहमें, सबको पीडा देनेवाले वृत्रके सिरको बलसे तोडने लगा, तब इस अहि (वृत्र)के शब्दसे भयके कारण आकाश भी कांप उठा। (मं. १)

१३. युध्यतः अस्य (अन्तं) न (अनशुः)- युद्ध करते समय इस इन्द्रकी शक्तिका पार (इसके शत्रु भी पा) नहीं सकते। (मं. १४)

१४. मरुतः आजौ त्वा अनुमदन्— मरुत् वीरोंने युद्धमें तेरे साथ रहकर आनंद पाया, तब (**भृष्टिमता वधेन वृत्रस्य आनं प्रति नि जघन्थ**)- तीक्ष्ण धारवाले वज्रसे वृत्रके मुखपर तुमने प्रहार किया। (मं. १५)

(ऋ. १।५३)

१५. गोभिः अश्विना अमतिं निरुन्धानः एभिः शुभिः एभिः इन्दुभिः सुमना भव— बैलों और घोडोंसे युक्त सैनिकोंद्वारा निर्बुद्ध शत्रुको घेरकर इन तेजस्वी सोमरसोंका पान कर उत्तम उत्साही मनसे युक्त बन।

१६. दस्युं दस्यन्तः युतद्वेषसः इषा संरभेमहि- शत्रुका नाश करनेके बाद हम शत्रुरहित होकर अन्नादि भोगोंकी प्राप्तिके कार्योंका प्रारंभ करेंगे। (मं. ४)

१७. यदा ते मदाः, तानि वृष्ण्या, ते सोमासः त्वा वृत्रहत्येषु अमदन्, (तदा) दश सहस्राणि अप्रति वृत्राणि कारवे नि वर्हयः- जब तेरे आनन्दित वीर बन बलसे होनेवाले कर्मोंको करने लगे, वृत्र-वधके कर्मोंमें जब तुम्हें सोमपानसे आनंद हुआ, तब दस हजार अप्रतिम वृत्रोंको ज्ञानीके हित करनेके लिये नष्ट भ्रष्ट कर दिया। (मं. ६)

१८. धृष्णुया युधा युधं उप एषि, ओजसा पुरं हंसि, परावति नमुचिं मायिनं नम्या नि वर्हयः-वेगसे हमला करते हुए तुम एक युद्धसे दूसरे युद्धको जाते हो, वेगसे शत्रुके नगर या किलेको तोड देते हैं, दूरके स्थानपर रहनेवाले कपटी नमुचि असुरको वज्रसे नष्ट कर देते हैं। (मं. ७)

१९. त्वं अतिथिग्वस्य तेजिष्ठया वर्तनी करञ्जं उत पर्णयं वधीः, त्वं ऋजिश्वना परिसूताः वंगृदस्य

शताः पुरः अनानुदः अभिनत्— तूने अतिथिग्वके हित करनेके लिये तेज वज्रसे करञ्ज और पर्णय नामक शत्रुका वध किया और ऋजिश्वासे घेरे गये वंगृदके सौ नगर या किले विना किसी दूसरेकी सहायताके नष्ट कर दिये। (मं. ८)

(ऋ. १।५४)

२०. यत् मन्दिनः मायिनः धृष्णु मन्दिना शितां गभस्तिं अशनिं पृतन्यसि धृषतामना शम्बरं अव- भिनत्, बृहतः दिवः सानु कोपयः— जब झुण्डके साथ हमला करनेवाले कपटी असुरपर शान्तिके साथ, तीक्ष्ण तेजस्वी वज्र फेंक दिया, तब धैर्यसे स्वयं ही शम्बर असुरको छिन्नभिन्न किया और बडे द्युलोकमें पहुंचे शिखर कोपने लगे। (मं. ४)

२१. यत् रोरुवत् वना शुष्णस्य मूर्धनि नि वृणक्षि— जो तू गर्जना करता हुआ वज्र शुष्णके सिरपर फेंकता है। (मं. ५)

२२. वर्हणावता प्राचीनेन मनसा कृणवः, त्वां परिकः?— शत्रुका नाश करनेकी बुद्धि सदासे रखनेवाले तेरे मनसे (जो तू यह शत्रुनाशका कार्य) करता है, इसलिये तुझसे अधिक श्रेष्ठ और दूसरा कौन है ? (मं. ५)

२३. त्वं नवतिं नव पुरः दम्भयः— तू शत्रुके निन्यानवे नगर अथवा किले तोड दिये। (मं. ६)

(ऋ. १।५५)

२४. स इन्द्रः, अर्णवः न, समुद्रियः नद्यः प्रति गृभ्णाति— वह इन्द्र, महासागरके समान, समुद्रकी ओर जानेवाली नदियोंको अपने अधीन कर लेता है। (मं. २)

२५. उग्रः त्वं तं पर्वतं न महः नृम्णस्य धर्मणां इरज्यसि— तू उग्रवीर उस पर्वतपर बडे पौरुषके कर्मोंके कारण स्वामित्व करता है। (मं. ३)

२६. स युध्मः मज्मना ओजसा जनेभ्यः महानि समिथानि कृणोति, यदा वज्रं नियनिघ्नते त्विषीमते इन्द्राय (जनाः) श्रत् दधति— वह योद्धा इन्द्र अपने शुद्ध बलसे जनताका हित करनेके लिये बडे युद्ध करता है, इसलिये मारक वज्रका प्रहार करनेवाले इन्द्रके ऊपर सब लोग (यह हमारी रक्षा करेगा ऐसी) श्रद्धा रखते हैं। (मं. ५)

२७. सः श्रवस्युः सुक्रतुः दमया वृधानः, ओजसा कृत्रिमा सदना नि वि नाशयन्, अवृकाणि ज्योतींषि कृण्वन्, सर्तवै अपः अवसृजत्— वह कीर्तिमान् उत्तम कर्म करनेवाला वीर मातृभूमिके साथ बढनेवाला, अपने सामर्थ्यसे शत्रुके बनावटी किले नष्ट करता है, आवरणरहित तेज फैलाता है और जलप्रवाहोंको बहाता है। (मं. ६)

२८. ते सारथयः यामिष्ठासः, केताः भूर्णयः त्वा न आदभ्नुवन्ति— तेरे सारथी रथनियन्त्रणमें कुशल हों, तेरे शिक्षित घोडे (समयपर) तुझे कष्ट न दें। (मं. ७)

(ऋ. १।५६)

२९. त्वावृधा देवी तविषी ऊतये सिषक्ति— तुझसे बढाई गयी दिव्य सेना (जनताकी) रक्षा करनेके लिये (समयपर) तेरी सेवा करती है। (मं. ४)

३०. वृत्रं अहन्, अपां अर्णवं औब्जः— तूने वृत्रको मारा और जलप्रवाहोंको नीचे बहाया। (मं. ५)

३१. समया पाष्या वृत्रस्य वि अरुजः, अपः अरिणाः— कठोर शस्त्रसे वृत्रको मारा और जलप्रवाहोंको बहा दिया। (मं. ६)

(ऋ. १।५७)

३२. त्वं तं महान् पर्वतं वज्रेण पर्वशः चकर्तिथ— तूने उस बडे पर्वत (पर रहनेवाले शत्रुके) वज्रसे टुकडे कर दिये। (मं, ६)

३३. निवृताः अपः सर्तवे अव सृजः— रुके जलप्रवाहोंको बहा दिया। (मं. ६)

इन मन्त्रभागोंमें युद्धविद्याके संबंधमें अनेक बातोंका उल्लेख है। कपटी शत्रुसे कपटी कूट-युद्ध करना, शत्रुके शस्त्रास्त्रोंसे अपने शस्त्रास्त्र अधिक प्रभावी बनाना और पश्चात् शत्रुसे युद्ध करना, घेरनेवाले शत्रुकोही स्वयं घेरकर उसका नाश करना, पर्वतपर रहनेवाले शत्रुसे पर्वतीय युद्ध करना, रथीसे रथी होकर, भूमि-युद्ध करनेवालेसे भूमिपर युद्ध करना और उसको परास्त करना, ये बातें प्रमुख स्थान रखती हैं।

अहि, वृत्र, नमुचि, शम्बर, दस्यु, करंज, पर्णय, वंगृद, शुष्ण आदि नाम शत्रुके हैं। (वंगृदस्य शताः पुरः अभिनत्। १।५३।८) वंगृदके सौ किले तोड दिये, (नवतिं नव पुरः दम्भयः। १।५४।६) शत्रुके निन्यानवे नगर या किले तोड दिये। इस तरह शत्रुका सामर्थ्य इन मंत्रोंसे मालूम होता है। 'पुरः' का अर्थ वे नगर हैं कि जो किलेकी घात दिवारोंसे वेष्टित हों, युद्धके तथा सुखोपभोगके सब साधनोंसे वह परिपूर्ण है। इस तरह जो परिपूर्ण होता है वही पुः या पुर है। शत्रुके

नगर ऐसे थे। इससे पता चलता है कि इन्द्रके शत्रु बडे प्रबल थे। इन शत्रुओंका पराभव करनेका कार्य इन्द्रने किया है। कई समझते हैं कि वृत्र आदि शत्रु अनाडी, अपढ और गंवार थे। पर यह कल्पना अशुद्ध है। उक्त प्रकारके बडे भारी नगर बसानेवाले ये शत्रु थे, उत्तम सामर्थ्यवान् किलोंमें वे रहते थे, उनके दुर्ग पर्वतपर, भूमिपर और जलमें रहते थे और ऐसे सैंकडों किले थे जिनको तोडकर इन्द्रने शत्रुका पराभव किया था। अर्थात् बडेही प्रबल शत्रुके साथ सामना इन्द्रको करना पडा था, इसमें संदेह नहीं है।

पूर्वोक्त स्थानोंमें कहा है कि इन असुरोंका वध करनेमें इन्द्रकी सहायता कई ऋषियोंको प्राप्त हुई थी। यहां प्रश्न होता है कि, ये ऋषि असुरोंका विरोध क्यों करते थे? ये सब ऋषि हमेशा असुरोंका विरोध करते हैं। असुर अनाडी नहीं थे, उनके नगर सब सुखसाधनोंसे संपूर्ण थे अर्थात् वे उत्तम ज्ञान-विज्ञान कार्य-कुशलतासे संपन्न थे। उनके बडे राज्य थे। पर ऋषि उनकी राज्यव्यवस्थासे सन्तुष्ट न थे। इसलिये ऋषि उनके साम्राज्यको तोडकर नयी अच्छी शासन व्यवस्थाकी स्थापना करना चाहते थे। यही ऋषियों और असुरोंके मध्यमें झगडेकी बात थी। इन्द्रने ऋषियोंकी सहायता की और असुरोंका नाश किया। इस विषयका विशेष वर्णन 'अग्नि' ऋषिके दर्शनमें विशेष विस्तारसे आनेवाला है। पाठक इसको वहां देखें।

असुर राक्षसोंका नाम '**पूर्व-देवाः**' है। अर्थात् ये पहिले देवही थे। साम्राज्य करनेके बाद वे स्वार्थी होनेके कारण वध्य हुए। ऐसाही हुआ करता है। देवोंकेही दानव अथवा 'रक्षकोंके ही राक्षस' बनते हैं। राक्षस प्रारभमें सुरक्षाके कार्य करते थे, क्षत्रियही वे थे। पर वेही जनताकी रक्षा करते करते जनताको सताने लगे, इसलिये ऋषियोंको उनके विरुद्ध हलचल करनी पडी।

राज्य चलानेवाले प्रथम अच्छेही होते हैं, पर कुछ समयके बाद वेही शनैः शनैः स्वार्थपरायण होनेके कारण दुष्ट समझे जाते हैं। 'पूर्व-देव' शब्दका यह अर्थ देखिये। राक्षस प्रथम देवही थे, पश्चात् घोर कर्म करने लगे। 'असुर' शब्दके भी ऐसेही दो अर्थ हैं, पहिले ये जनताकी भलाईके लिये (असु-र) अपने प्राण अर्पण करते थे, पश्चात् वे अपने प्राणोंके भोग बढानेके लिये जनताको दुःख देने लगे, तो वेही (अ सुर) राक्षस कहलाये। यह कारण है कि ये ऋषि दस्युओंके विरुद्ध हलचल करते थे। इन्द्र अश्विनौ आदि ऋषियोंके सहायक हैं। साधारणतः देवासुर-संग्राम। यह मुख्य कारण है और ऋषियों-का उसके साथ यह संबंध है।

इन्द्र शत्रुका नाश करके जलप्रवाहोंको अपने अधीन करता है। यही युद्ध-नीति है। जिसके अधीन जल वह विजयी होता है। इसलिये असुर प्रथम जलप्रवाहोंपर कबजा करते थे और इन्द्र उन प्रवाहोंको अपने अधीन कर लेता था।

उक्त मंत्रभागोंमें संक्षेपसे इस तरहकी युद्ध-नीति आगयी है। पाठक अधिक विचार करके अधिक बोध प्राप्त कर सकते हैं।

आज्ञा-पालन

(ऋ. १।५४)

१. **यः शासं प्रति इन्वति**- जो (इन्द्रकी) आज्ञाका पालन करता है, (इन्द्रका) शासन मानता है। (मं. ७)

२. **जनः सत्पतिः राजा शूशुवत्**- जनहितकारी जनोंका सच्चा पालन-कर्ता राजा बढ जाता है, उन्नत होता है। (मं. ७)

इन्द्र सबका राजा है और प्रायः वह युद्धोंमेंही रहता है। सदा युद्ध करना पडे तो राज्य-शासनमें आज्ञा-पालनका महत्त्व अधिक रहना आवश्यकही है। असुर-राज्योंको तोडनेके लिये ऋषियोंकी हलचलें और ऋषियोंकी सुरक्षा करनेके लिये इन्द्रादि वीरोंके युद्ध येही वर्णन वेद भरमें प्रायः अनेक सूक्तोंमें हैं। अतः हम कह सकते हैं कि वेदमें वीर-इतिहासही है। वीरताके समय राजाकी आज्ञापालन करना आवश्यकही है।

सोम-पान

(ऋ. १।५४)

१ **इन्द्रपानाः अद्रिदुग्धाः चमूसदः बहुलाः चमसाः तुभ्यं इत्, वि अश्नुहि, कामं तर्पय, वसु-देयाय मनः कृधि**- पीने योग्य, पत्थरोंसे कूटकर निकाले, कलशोंमें रखे, बहुत पात्रोंमें भरे, ये सोमरस तुम्हारे लिये ही हैं, इनका पान करो, इन भक्तोंकी इच्छाकी तृप्ति करो और इनको धन देनेका विचार करो। (मं. ९)

इन्द्रके सूक्तोंमें तथा अन्य सूक्तोंमें भी सोमपानका वर्णन है। इन्द्र तथा सब युध्यमान सैनिक प्रथम सोमपान करते थे और पश्चात् युद्ध करनेके लिये शत्रुपर कूद पडते थे और विजय पाते थे। इस तरह सोमपानका संबंध आर्यजीवनके साथ अत्यंत घनिष्ठ है।

लूट

(ऋ. १।५३)

(सः) ससतां इव (शत्रूणां) रत्नं आविदत्- असावध या सोनेवाले शत्रुओंके धनको वह इन्द्र प्राप्त करता है। (मं.१)

इन्द्र अपने सैनिकोंके साथ लेकर शत्रुपर हमला करता था, शत्रुको परास्त करनेके पश्चात् उसकी संपत्ति लूटकर लाता था और वह धन अपने लोगोंमें यथायोग्य रीतिसे बांट देता था।

वृत्र

(ऋ. १।५२)

१ इन्द्रः नदीवृतं वृत्रं अवधीत्- इन्द्रने नदीमें रहनेवाले, नदीको घेरनेवाले वृत्रका वध किया। (यहां नदीपर रहनेवाला वृत्र है, यह बर्फही हो सकता है, मेघ नहीं।)

२. धरुणेषु पर्वतः न अच्युतः- जलस्थानों-तालाब आदिकोंमें यह वृत्र पर्वत जैसा स्थिर रहता है। (अर्थात् यह बर्फ जल स्थानोंमें स्थिर रहता है, नीचेसे जल बहते रहनेपर ऊपरका बर्फका कवच स्थिर रहता है।

३. अर्णांसि उब्जन्- (इन्द्र) जलप्रवाहोंको नीचेकी गतिसे चलाता है। (मं. २)

वृत्र मेघ है, ऐसा निरुक्त आदि ग्रंथोंमें कहा है। वेदमंत्रोंमें जो वर्णन आया है उसका विचार करनेसे वृत्र मेघ ही है, ऐसा निश्चय नहीं होता। सूर्य आतेही वृत्रसे जलप्रवाह शुरू होते हैं, वह वृत्र पर्वत, भूमि, नदी आदिपर पड़ा रहता है, जलप्रवाह इसके कारण रुक जाते हैं। अर्थात् बर्फ ही वृत्र है जो हिमकालमें भूमिपर पडता है और सूर्य आनेसे पिघलता है और नदियोंमें महापूर आते हैं। सदाही वृत्रको मारा और जलप्रवाह बहने लगे ऐसे वर्णन हैं। ये मेघके विषयमें सत्य नहीं होते, क्योंकि सूर्य आनेसे मेघोंसे जल नहीं बहने लगते। परन्तु बर्फसे जलप्रवाह सूर्यके कारण बहने लगते हैं।

अन्धेरेके साथ भी वृत्रका संबंध है। उत्तरीय ध्रुवके पास तथा उसके आसपासके भूमिप्रदेशमें अनेक मास रहनेवाली रात्रियां होती हैं, उसी समय अन्धेरा होता है, सर्दी शुरू होती है, बर्फ पडता है, जलप्रवाह रुक जाते हैं। जब योग्य समयपर सूर्यका उदय होता है, तब अन्धेरा दूर होता है, प्रकाश आता है, बर्फ पिघलकर जलप्रवाह बहने लगते हैं, धनधान्य अन्नादिकी समृद्धि होती है। अस्तु। वृत्र बर्फही है ऐसा प्रतीत होता है।

अर्थात् ये युद्ध काल्पनिक, आलंकारिक तथा काव्यमय हैं। तथापि वेदमें क्षत्रियकी विद्या इनही काव्योंसे दिखाई देती है और वर्णन ऐसे शब्दोंसे किये हैं कि वे सदाही सत्य प्रतीत हों।

अध्यात्मक्षेत्रमें भी ये युद्ध वैसेही सत्य हैं। इसलिये ऐसे शब्दप्रयोग वेदमंत्रोंमें किये हैं कि जो ये सब अर्थ व्यक्त करनेमें सदा समर्थ दिखाई देते हैं। इस कारण इनही सूक्तोंमें ऐसे भी वर्णन हैं कि जो परमात्मामें ही घट सकते हैं। देखिये-

परमात्माके कार्य

निम्नलिखित कर्म इन्द्रके हैं, परन्तु यहां इन्द्र परमात्माका रूप मानना उचित है-

(ऋ. १।५१)

१. दृशे सूर्य दिवि आ अरोहयः- सबको प्रकाश दिखानेके लिये सूर्यको द्युलोकमें ऊपर चढाया। (मं. ४)

(ऋ १।५२)

१ दृशे सूर्य दिवि आ अधारयः- प्रकाश दिखानेके लिये सूर्यको द्युलोकमें ऊपर धारण किया। (मं. ८)

२ स्वभूति-ओजाः त्वं अवसे अस्य व्योमन: रजसः पारे ओजसः प्रतिमानं चकृषे, परिभूः दिवं पपि- अपने निज बलसे युक्त तुमने मानवोंकी सुरक्षाके लिये इस आकाशके और अन्तरिक्षके भी परे अपने बलकी प्रतिमा जैसी करके रखी है, शत्रुका पराभव करता हुआ तू द्युलोक-तक व्यापता है। (मं. १२)

४ त्व पृथिव्याः प्रतिमानं भुवः — तू पृथ्वीका प्रतिरूप हुआ है, अर्थात् तेरे लिये पृथ्वीकी उपमा है।

५ ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिः भूः— महान् वीरोंके निवास-स्थानरूप इस विस्तृत द्युलोकका तू स्वामी है।

६ त्वं महित्वा सत्यं विश्वं अन्तरिक्षं आप्राः- तूने अपनी महिमासे इस सब अन्तरिक्षको व्याप लिया है।

७. त्वावान् अन्यः नकिः- तेरे जैसा दूसरा कोई भी नहीं है। (मं. १३)

८. द्यावापृथिवी यस्य व्यचः न अनु आनशे— द्युलोकसे पृथ्वीपर्यंतका सब विश्व जिसके विस्तारको नहीं व्याप सकता।

९. रजसः सिन्धवः अन्तं न आनशुः— अन्तरिक्ष और समुद्र जिसका पार नहीं व्याप सकते।

१०. एकः अन्यत् विश्वं आनुषक् चकृषे— एकही प्रभु दूसरे विश्वको क्रमपूर्वक करता है। (मं. १४)

(ऋ. १।५४)

११. ते शवसः अन्तः नहि— तेरे बलका अन्त नहीं है। (मं. १)

१२. रोरुवत् नद्यः वना अक्रन्दयः- गर्जना करनेवाली नदियोंको गर्जना करते हुए तुमने प्रवाहित किया।

१३ क्षोणीः भियसा कथा न से आरत ?— पृथ्वी तेरे भयसे क्यों न कांपेगी? अवश्य भयभीत होगी। (मं. १)

(ऋ. १।५५)

१४. अस्य वरिमा दिवः वि पप्रथे, पृथ्वी मह्ना इन्द्रं न प्रति— इस इन्द्रका बडापन द्युलोकसे भी और पृथ्वीसे भी विस्तृत है। (मं. १)

ये वर्णन परमात्माके विषयमें ही सार्थ दीखते हैं।

प्रार्थना

(ऋ. १।५३)

१. राया, इषा, वाजेभिः, वीरशुष्मया, गोअग्रया, अश्ववत्या, प्रमत्या सं रभेमहि— हमें धन, अन्न, बल, वीरोंका प्रभाव, गौ और घोडोंसे युक्त उत्तम बुद्धि मिले और उससे हम बडे कार्योंका प्रारंभ करें। (मं. ५)

२. उदृचि देवगोपाः सखायः शिवतमाः असाम। सुवीराः द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः- मंत्रोंका अध्ययन होनेके बाद हम देवोंसे रक्षित, उनके मित्र और उनको अत्यंत प्रिय हों। हम उत्तम वीर होते हुए लंबी आयुको अधिक लंबी करके धारण करें। (मं. ११)

(ऋ. १।५४)

३. शेवृधं जनाषाट् महि तव्यं क्षत्रं अस्मे अधिधाः- शान्तिको बढानेवाला, शत्रुको परास्त करनेवाला बडा क्षात्रबल हमें दे। (मं. ११)

४. सूरीन् पाहि, मघोनः रक्ष, नः सु अपत्ये इषे राये धाः- विद्वानोंकी और धनवानोंकी सुरक्षा कर, हमें उत्तम संतान, अन्न और धन दे। (मं. ११)

युद्धसे उपरति

(ऋ. १।५४)

१. अस्मिन् अंहसि मृत्सु नः मा (प्रक्षेप्सीः)- इस पापमय युद्धमें हमें न डाल। (मं. १)

इस तरह युद्धसे निवृत्त होनेके विचार भी यहां हैं। अस्तु। इस रीतिसे सव्य ऋषिके ये दिव्य काव्य बडे उत्साहपूर्ण, स्फूर्ति देनेवाले और बडे बोधप्रद हैं। पाठक इनका विचार करें।

सव्य ऋषिका दर्शन समाप्त

सव्य ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(७)

नोधा ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदमें एकादशवाँ अनुवाक)

लेखक

भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

सवत् २००३

मूल्य १) रु०

नोधा ऋषिका तत्त्वज्ञान

गोतम ऋषिका पुत्र नोधा नामक ऋषि है। इसका दर्शन ऋग्वेदके ग्यारहवे अनुवाकमें है। इसके साथ आठवे मण्डलमें ८८ वाँ सूक्त और नवम मण्डलमें ९३ वाँ सूक्त इसीके दर्शन में शामील है। इसके दर्शनकी सूक्तवार गणना ऐसी है—

सूक्तानुसार मन्त्र-गणना

ऋग्वेदमें प्रथम मण्डल

एकादश अनुवाक

नोधा गौतम ऋषि

सूक्त	देवता	मंत्र संख्या
५८	अग्निः	९
५९	,, वैश्वानरः	७
६०	,,	५
६१	इन्द्र	१६ (अथर्ववेद २०।३५।१-१६)
६२	,,	१३
६३	,,	९
६४	मरुत.	१५
	अष्टम मण्डल	प्रथम दो मन्त्र
८८	इन्द्र	६ (अथर्व २०।९।१२, ,, २०।४९।४५)
	नवम मण्डल	
९३	पवमान· सोम	५
	कुलमन्त्र संख्या	८५

देवतावार मन्त्र-संख्या

१ इन्द्र	४४
२ अग्नि	२१
३ मरुत	१५
४ सोम	५
कुलमन्त्र-संख्या	८५

*

अग्निके मन्त्रोंमें ५९ वे सूक्तके मंत्र 'वैश्वानर अग्नि' के हैं। इस नोधा ऋषिके मंत्र अथर्ववेदमें हैं पर ऋग्वेदकेही मंत्र वैसेके वैसे अथर्ववेदमें हैं-

ऋग्वेद	देवता	अथर्ववेद
१।६१।१-१६	इन्द्रः	२०।३५।१ १६
८।८८।१-२	,,	२०।९।१ २
		२०।४९।४-५

अर्थात् ऋ. ८।८८ सूक्तके प्रथम दो मंत्र अथर्ववेदमें दो वार आये हैं। अथर्ववेदके नोधाके मत्र ऋग्वेदकेही हैं इसलिये उनका पृथक् विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अथर्व. २०।३५) का ऋषि ऋग्वेदमें नोधा गौतम है, अथर्व बृहत्स-र्वानुक्रमणीमें इसका ऋषि नोधा लिखा है, पर विकल्पसे भर-द्वाज भी कहा है वह नितान्त अशुद्ध है। अथर्व सर्वानुक्रमणीमें इस तरहकी भूलें बहुत हैं। इसलिये यह सूक्त भरद्वाजका नहीं है, नोधाका ही है।

अथर्ववेदमें नोधा ऋषिका उल्लेख निम्नलिखित मन्त्रोंमें है—

तं श्यैतं च नोधसं च सप्तर्षयश्च ॥२६॥
श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च॥२७॥
श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च॥२८
(अथर्व १५।२।२६-२८)

'नोधस्' का यह उल्लेख स्पष्ट है, ऐतरेय ब्राह्मणमें इसका नाम दो तीन वार आया है-

बृहता त्वाविमां नौधसेनेयममू जिन्वति।
(ऐ ब्रा ४।२७)

अस्मा इदु प्रतवसे तुरायेति नोधाः
त एते प्रात. सवने षळहस्तोत्रियांच्छस्त्वा
माध्यंदिनेऽहीनसूक्तानि शसति। (ऐ. ब्रा ६।१८)
नौधसं च कालेयं चानूच्ये। (ऐ ब्रा ८।१२,१७)

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

नोधा ऋषिका दर्शन

[ऋग्वेदका एकादश अनुवाक]

(१) अजर अमर अग्नि ।

(ऋ.१।५८) नोधा गोतमः । अग्निः । जगती, ६—९ त्रिष्टुप् ।

नू चित् सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद् दूतो अभवद् विवस्वतः ।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ॥ १
आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥ २
क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥ ३

अन्वयः— १ नू चित् सहो-जाः अमृतः (अग्निः) नि तुन्दते । यत् विवस्वतः दूतः अभवत्, साधिष्ठेभिः पथिभिः रजः वि ममे, देवताता हविषा आ विवासति ॥

२ अजरः (अग्निः) स्वं अद्म युवमानः तृषु अविष्यन् अतसेषु तिष्ठति । प्रुषितस्य पृष्ठं, अत्यः न, रोचते । दिवः सानु न स्तनयन् अचिक्रदत् ॥

३ क्राणा, रुद्रेभिः वसुभिः पुरोहितः, होता, अमर्त्यः रयि-षाट् निषत्तः देवः, रथः न, विक्षु ऋञ्जसानः आयुषु आनु-षक् वार्या वि ऋण्वति ॥

अर्थ— १ निःसन्देह बलके साथ उत्पन्न हुआ यह अमर (अग्नि देव) कभी व्यथित नहीं होता । जिस समय वह विवस्वानका सहाय्यकारी हुआ, उस समय उत्तम सहाय्यक मार्गोंसे उसने अन्तरिक्ष लोकमें गमन किया (प्रकाश किया और) देवताओंकी शक्ति फैलानेके कार्यमें (यज्ञमें) हविके अर्पणसे (देवोंका) आदरातिथ्य भी किया॥

२ जरारहित (अग्नि) अपने भक्ष्यके साथ मिलता हुआ, तुरन्तही (खाद्य) खाकर, काष्ठोंपर (जलता) रहता है । घी सिंचित होनेपर वह, घोडेके समान, शोभता है । और द्युलोकके शिखर (पर रहनेवाले मेघ) के समान गर्जता हुआ (वारंवार) शब्द करता है ॥

३ कर्तृत्वशाली, रुद्रों और वसुओंद्वारा प्रमुख स्थानमें रखा हुआ, हवनकर्ता, अमर (शत्रुके) धनोंको जीत कर लानेवाला (यहां) विराजमान (हुआ) देव, रथकी तरह, प्रजाओंमें वर्णनीय होकर, सब लोगोंमें क्रमसे, स्वीकार करने योग्य धन लाता है ॥

वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥ ४ ॥
तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥ ५ ॥
दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥ ६ ॥
होतारं सप्त जुह्वो यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥ ७ ॥
अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात् पूर्भिरायसीभिः ॥ ८ ॥
भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन् मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥

---

४ वात-जूत अतसेषु जुहूभि सृण्या तुविष्वनि वृथा वि तिष्ठते । हे अजर रुशदूर्मे अग्ने ! यत् तृषु वनिन वृषायसे, ते एम कृष्णम् ॥

५ वातचोदितः तपुर्जम्भ वने साह्वान्, यूथे वंसग न, अव आ वाति । अक्षित रज पाजसा अभि व्रजन्, पतत्रिण स्थातु चरथ भयते ॥

६ हे अग्ने ! भृगव मानुषेषु, जनेभ्य सुहव चारु रयिं न, होतार अतिथिं वरेण्य त्वा दिव्याय जन्मने, शेव मित्र न, आ दधु ॥

७ होतार यजिष्ठ य अध्वरेषु वाघत सप्त जुह्व वृणते, (त) विश्वेषा वसूनां अरतिं प्रयसा सपर्यामि, रत्न यामि ॥

८ हे सहस सूनो, मित्रमह ! अद्य न स्तोतृभ्य अच्छिद्रा शर्म यच्छ । हे ऊर्जो नपात् अग्ने ! आयसीभि पूर्भि गृणन्त अंहस उरुष्य ॥

९ हे विभाव ! गृणते वरूथ भव । हे मघवन् ! मघवद्भ्य शर्म भव । हे अग्ने ! गृणन्त अंहस उरुष्य । धियावसु प्रात मक्षु जगम्यात् ॥

४ वायुद्वारा प्रेरित होकर लकडियोंमें (जब अपनी) ज्वालाओंकी तेजस्विताके साथ बडा शब्द करता हुआ सहजहीमें तू ठहरता है, हे जरारहित तेजस्वी ज्वालाओंवाले अग्ने ! तब तत्काल वृक्षोंमें अपना बल प्रकट करते हुए तुम्हारा मार्ग काला (दिखाई देता है) ॥

५ वायुद्वारा प्रेरित हुआ, ज्वालारूप दंष्ट्रावाला (अग्नि) वनमें बलसे, गौसमुदायमें सांडकी तरह, घूमता है । जब यह अक्षय अन्तरिक्षमें अपने बलसे घूमता है, तब सारे स्थावर जंगम इस पक्षी (के समान वेगसे जानेवाले) से डरते हैं ॥

६ हे अग्ने ! भृगुलोगोंने मानवोंमें, लोगोंके सुखसे प्रार्थना करनेयोग्य, सुंदर धनकी तरह (पास रखनेयोग्य) श्रेष्ठ अतिथि ऐसे तुझको, दिव्य जन्मवालोंकी भी सेवा करनेयोग्य मित्रकी तरह, धारण किया ॥

७ देवोंको बुलानेवाले यजनीय, हिंसारहित यज्ञोंमें प्रशंसनीय जिस (देवको) सात ऋत्विज स्वीकार करते हैं, उस सब धनोंके दाताकी अन्नके समर्पणद्वारा मैं सेवा करता हूं। (इससे) मैं धन भी (प्राप्त करना)चाहता हूं ।

८ हे बलसे उत्पन्न होनेवाले (अग्ने) ! मित्रका महत्त्व बढानेवाले अग्ने ! आज हम सब स्तोताओंके लिये अखण्ड सुख दो। हे बलको न गिरानेवाले (अग्ने) ! लोहेकी नगरियोंसे (जैसा जनताका बचाव करते हैं वैसा) स्तोताका पापसे रक्षण करो।

९ हे तेजस्वी देव ! स्तोताको सुख दो। हे धनवान् ! धनवानोंको सुख दो । हे अग्ने ! स्तोताको पापसे बचाओ । बुद्धिसे धन देनेवाला अग्निदेव आज प्रातः समयमें शीघ्रही आवे ॥

१६ आयुषु आनुषक् वार्या वि ऋण्वति— मानवोंमें सदा स्वीकार करनेयोग्य जो धन है उनको लाता है, प्राप्त करता है। अयोग्य वस्तुका स्वीकार नहीं करता, प्रत्युत योग्य वस्तुकाही स्वीकार करता है। (मं ३.)

१७. वातजूतः— वायुसे प्रेरित। सदाही वायुकी साथ रहनेसेही अग्नि जलता है।

१८. अतसेषु तिष्ठति- (देखो टिप्पणी सं. ८)

१९ जुहुभिः सृण्या— ज्वालारूपी शस्त्रके साथ, ज्वालारूप शस्त्रसे अग्नि लकडियोंको काटता है, लकडियोंका जला देता है,

२०. रुशदूर्मिः— (रुशत्-ऊर्मिः)- तेजस्वी लहरोंवाला, तेजस्वी ज्वालाओंसे युक्त। यहां ऊर्मि' पद ज्वालाके लिये प्रयुक्त हुआ है, जो समुद्रकी लहर का वाचक है।

२१. वनिनः वृषायसे— वनमें रहनेवाले वृक्षों, उनकी लकडियोंपर अपना प्रभाव जमा देता है। यहांका 'वनिन्, वन' पद वृक्ष, लकडी, समिधाका वाचक है। लकडीपर प्रभाव जमानेका तात्पर्य जलाना है।

२२ ते कृष्णं एम— तेरा काला मार्ग है। वनमें अग्नि वृक्षोंको जलाता हुआ जब जाता है तो वह उसका गमन मार्ग काला दीखता है। इस काले मार्गको देखनेसे पता चलता है कि इस मार्गसे अग्नि गया है। (मं. ४)

२३. वात-चोदितः— वायुसे प्रेरित। (टिप्पणी १७ देखो)

२४ तपुर्जम्भः — तपुः = उष्णता, आग, ज्वाला। जम्भ- जबडा, मुख, दंष्ट्रा। ज्वाला ही जिसका जबडा है।

२५ वना साहन्— वनका-वृक्षोंका-पराभव करता है, वृक्षोंको जलाता है।

२६ अक्षितं रजः पाजसा अभिव्रजन्-अक्षय अन्तरिक्षमें बलसे भ्रमण करता है। धधकती हुई दावानलकी ज्वालाएं अन्तरिक्षमें घूमती हैं।

२७ पतत्रिणः स्थातुः चरथं भयते- इस पक्षीरुदश वेगसे घूमनेवाले दावानल-अग्नि-को देखकर स्थावर जंगम, सबका सब वस्तुजात भयभीत होता है। (मं ५)

२८. भृगवः मानुषेषु जनेभ्यः द्वित्वाय जन्मने परेण्यं आ दधुः- भृगुवंशके ऋषियोंने सब मानव समाजमें सब मानवोंके (कल्याण करनेके) लिये, उनका दिव्य जन्म, द्विजत्व सिद्ध करनेके लिये, उनमें इष्ट परिवर्तन करनेके लिये इस श्रेष्ठ (अग्नि) को धारण किया। यज्ञमें स्थापित किया। भृगुवंशके ऋषियोंने सब जनताकी उन्नति करनेके लिये यज्ञसंस्थाके द्वारा जो रचना की उसमें अग्नि-उपासना प्रमुख स्थान रखती है।

२९. सुहवः, चारुः, होता, अतिथिः- उत्तम प्रार्थना करनेयोग्य, सुंदर रमणीय, देवोंको बुलानेवाला, अतिथिके समान पूजनीय। अतिथिः- (अति, अतति) खाता है, जाता है। जब अग्नि लकडियोंको खाता हुआ आगे जाता है, तब उसको 'अतिथि' कहा जाता है। (मं. ६)

३०. अध्वरेषु वाघत- हिंसारहित अकुटिल कर्मोंमें जिसकी प्रशंसा की जाती है।

३१. यजिष्ठः- पूजनीय, यजनीय,

३२. विश्वेषां वसूनां अरतिः- सब धनोंका दाता (मं. ७)

३३. सहसः सूनुः— बलका पुत्र (देखो टिप्पणी सं. १)

३४. मित्रमहः- मित्रकी महत्ता बढानेवाला,

३५. अच्छिद्रं शर्म यच्छ- अक्षय सुख देता है।

३६. ऊर्जः न पात्- शक्तिका नाश-पतन-न करनेवाला (टिप्पणी १ और ३३ देखो) शक्तिको बढानेवाला।

३७. आयसीभिः पूर्भिः गृणन्तं उरुष्य- लोहेकी नगरियोंसे-कीलोंसे स्तोताकी सुरक्षा कर। स्तोताके चारों ओर कीलेका दिवारें हों, ऐसा और इतना धन उसके पास-तुम्हारे भक्तके पास हो। (मं. ८)

३८. वि-भा-वसुः— विशेष प्रकाशसे युक्त,

३९. मघवा- धनवान्, प्रकाशरूप धनसे युक्त,

४०. धिया-वसुः- बुद्धिसे, कर्मसे धन देनेवाला, प्रथम बुद्धि सुसंस्कृत करे, तत्पश्चात् उत्तम कर्म करे, तो धन मिलेगा।

परमेश्वरका स्वरूप

यहां इस सूक्तमें 'अमृत, अजर, अमर्त्यः, देवः, मघवा' ये पद परमेश्वर, परमात्माके स्पष्ट वाचक हैं। " सहोजाः, क्राणा, पुरोहितः, रयिषाट्, रुशदूर्मिः, वरेण्यः, सुहवः, चारुः, होता, अतिथि, अध्वरेषु वाघतः, यजिष्ठः, विश्वेषां वसूनां अरतिः, मित्रमहः, सहसः सूनुः, ऊर्जो न पात्, विभावसुः, धियावसुः " ये

पद भी परमात्माके वाचक हो सकते हैं। इसी तरह कई वर्णन इस सूक्तके परमात्माके वर्णन जैसेही हैं।

इसका कारण यह है कि ऋषि 'अग्नि' पदसे जीव, शिव (परमेश्वर, परमात्मा, परब्रह्म) और प्राकृतिक अग्नि आदि देव इनका ग्रहण करते थे। 'तत् एव अग्निः' (वा. य. ३२।१) 'एकं सत्, विप्रा बहुधा वदन्ति, अग्निं यमं।' (ऋ १।१६४।४६) वह ब्रह्मही अग्नि है, सत् एकही है, ज्ञानी लोग उसी एकका वर्णन अग्नि, यम आदि अनेक नामोंसे करते हैं। ऋषिलोग इस सचाईसे परिचित थे। इसलिये वे अग्निका वर्णन करते करते वह परमात्माका रूप है ऐसा अनुभव करके उसके वर्णनमेंही परमात्माकाही वर्णन करते हैं।

यदि 'सत्' एकही है, तब तो अग्नि परमात्माकाही रूप है। वास्तवमें विश्वरूपही परमात्मा है। अर्थात् विश्वान्तर्गत अग्नि भी परमात्माका रूप हुआ। इसलिये अग्निके वर्णनके साथ परमात्माका वर्णन होना युक्तियुक्तही है।

एकही सत् है, परमात्मा विश्वरूप है, अतः सब विश्व एकही सत्का रूप है। हमारी इंद्रियां संपूर्ण सत्का ग्रहण कर नहीं सकतीं, परन्तु एक एक गुणका ग्रहण कर सकतीं हैं। आंखने रूपका ग्रहण किया और कानने शब्दका ग्रहण किया, इससे रूपवान् अग्नि और शब्दगुणवान् आकाश परस्पर तत्त्वत विभिन्न नहीं हो सकते। जो विश्वरूपमें एक 'सत् तत्त्व' प्रकट हुआ उसके ही गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं। एक सत् तत्त्व ये पांच गुण हैं। हमारी इंद्रियां एक एक गुणका ग्रहण करती हैं, दूसरे गुणका नहीं करतीं, यह हमारे इंद्रियोंकी कमजोरी है, इस कारण उस सत्में किसी तरह न्यूनता नहीं होती।

ऋषि दिव्यदृष्टिसे संपूर्ण सत्तत्त्वका ग्रहण कर सकते थे, इसलिये वे अग्निके रूपमें परमात्माका अनुभव करते थे। यह उनकी दृष्टिकी दिव्यता है। जिसको यह दिव्यता नहीं प्राप्त हुई वह अग्निको परमात्मासे विभिन्न मानता है, यह अपूर्ण दृष्टि है। ऋषिकी दृष्टि संपूर्ण दिव्यदृष्टि थी इसीलिये वे विश्वको परमात्मरूप मानते और विश्वान्तर्गत अग्नि आदि देवताओंको भी भगवद्रूपही अनुभव करते थे। इसलिये उनके वर्णनमें, अग्निके वर्णनमें भी-परमात्माका वर्णन हुआ करता था। पूर्ण दृष्टि और अपूर्ण दृष्टिका यह भेद है। जिसकी दृष्टि पूर्ण होगी वह विश्वभरमें एकही सत्को देखेगा और ऐसाही वर्णन करेगा।

(२) विश्वका नेता

(ऋ १।५९) नोधा गौतमः। अग्निर्वैश्वानरः। त्रिष्टुप्।

वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद् ययन्थ ॥ १

मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥ २

अन्वयः- १ हे अग्ने! अन्ये अग्नयः ते वयाः इत्। विश्वे अमृताः त्वे मादयन्ते। हे वैश्वानर! क्षितीनां नाभिः असि। उपमित् स्थूणा इव जनान् ययन्थ ॥

२ अग्निः दिवः मूर्धा, पृथिव्याः नाभिः। अथ रोदस्योः अरतिः अभवत्। तं त्वा देवं देवासः अजनयन्त। हे वैश्वानर! आर्याय ज्योतिः इत् ॥

अर्थ- १ हे अग्ने! दूसरे सब अग्नि तेरी शाखाएं हैं। सब देव तेरे पासहेही आनन्द पाते हैं। हे विश्वके नेता! सब मानवों-प्राणियोंका-तू नाभि हो। समीपस्थ स्तम्भके समान सब जनोंका तू आधार हो ॥

२ यह अग्नि द्युलोकका सिर और पृथ्वीकी नाभि है, यह द्यावापृथ्वीका स्वामी है। उस तुझ देवको सब देव प्रकट करते हैं। हे विश्वके नेता! आर्योंके लिये तूने प्रकाशका (मार्ग) बताया है ॥

आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥ ३

बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो३ न दक्षः ।
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ॥ ४

दिवश्चित् ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ५

प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत् काष्ठा अव शम्बरं भेत् ॥ ६

वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ॥ ७

३ सूर्ये ध्रुवासः रश्मयः न, वैश्वानरे अग्ना वसूनि आ दधिरे । या पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु या मानुषेषु तस्य राजा असि ॥

४ रोदसी सूनवे बृहती इव । मनुष्यः न, दक्षः होता स्वर्वते सत्यशुष्माय नृतमाय वैश्वानराय पूर्वीः यह्वीः गिरः ॥

५ हे जातवेदः वैश्वानर! ते महित्वं बृहतः दिवः चित् प्र रिरिचे । मानुषीणां कृष्टीनां राजा असि । युधा देवेभ्यः वरिवः चकर्थ ॥

६ वृषभस्य महित्वं प्र वोचं नु । पूरवः यं वृत्रहणं सचन्ते । वैश्वानरः अग्निः दस्युं जघन्वान् । काष्ठाः अधूनोत्, शम्बरं अव भेत् ॥

७ वैश्वानरः महिम्ना विश्वकृष्टिः, भरद्वाजेषु यजतः विभावा । शातवनेये पुरुणीथे सूनृतावान् अग्निः शतनीभिः जरते ॥

३ सूर्यमें जिस तरह स्थायी प्रकाश किरण रहते हैं, उसी तरह इस विश्वके नेता अग्निमें सब धन रहते हैं। जो पर्वतों, औषधियों, जलों, तथा मानवोंमें संपत्तियाँ हैं, उसका तू राजा है ॥

४ द्यावापृथिवी इस पुत्र (रूप विश्वनेताके लिये) बडी भारी विस्तृत सी हो गयी हैं । मनुष्यके समान दक्ष होता इस सामर्थ्यवान, सत्य बलसे युक्त, मानवश्रेष्ठ विश्वनेताके लिये प्राचीनकालसे चली आयी विशाल स्तुतियां गाते हैं ॥

५ हे वेदज्ञाता विश्वनेता ! तेरी महिमा बडे द्युलोकसे भी बडी है । मानवी प्रजाओंका तू राजा है । तुम युद्धसे देवोंके लिये धन देते हो ॥

६ मैं बलवान् देवका महात्म्य वर्णन करता हूं। सब नागरिक जन इस वृत्रनाशकके पास पहुंचते हैं । विश्वनेता अग्नि दस्युका वध करता है, दिशाओंको हिला देता है, और शम्बरका भेदन करता है ॥

७ यह विश्वनेता अपनी महिमासे सब मानवही है । अन्नका दान करनेवालोंमें यह पूजनीय और वैभवशाली है । शतवनके पुत्र पुरुनीथ (के यज्ञ) में यह सत्यवचनी अग्निदेव सैकडों गानोंसे गाया जाता है ॥

विश्वका संचालक

यह सूक्त विश्वके नेताका वर्णन करता है । यह भी एक कविही है । इस सूक्तमें सात मंत्र हैं । प्रत्येक मंत्रमें एकवार 'वैश्वानर' पद है, अर्थात् इस सूक्तमें ७ वार 'वैश्वानर' पद है । 'अग्नि' पद केवल पांचही वार आया है । इस कारण इस सूक्तका देवता 'वैश्वानर' है और गौण रूपसे 'अग्नि' है ।

१. वैश्वानरः— विश्व + नरः- विश्वका नेता, विश्वमें प्रमुख, विश्वका संचालक, सबका अगुआ चालक (मं. १)

२. वैश्वानरः महिम्ना विश्वकृष्टिः- (मं. ७)

यह वैश्वानर कौन है ? यह अपनी महिमासे सब मानवरूप, सब प्राणीका रूप धारण करके है । यह वैश्वानरका स्वरूप है । यही जनता जनार्दन है । यही 'नारायण' (नर + अयनः) है । नरोंका समूहही नारायणका रूप है ।

पुरुष एव इदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्।
एतावान् अस्य महिमा० ॥ (ऋ. १०।९०।२-३)

' पुरुषही यह सब है जो भूतकालमें था और जो भविष्य में होगा। यह इस पुरुषकी महिमाही है।' पुरुष-सूक्तमें जो ' महिमा ' पद है वही यहां इस सूक्तमें है और दोनों जगह सब मानव-समाजही उस प्रभुका स्वरूप है ऐसा बताया है—

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥
(ऋ. १०।९०।११-१२)

'जिस पुरुषका वर्णन किया गया उसके मुख, बाहु, ऊरू और पांव कौनसे हैं? ब्राह्मण इसका मुख है, क्षत्रिय इसके बाहु है, ऊरू वह है जो वैश्य कहे जाते हैं और पावोंके लिये शूद्र हैं।' अर्थात् यह पुरुष 'ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य–शूद्र' रूप है। इसीका नाम ' विश्वकृष्टि ' अथवा ' सब मानवसंघ ' है, यही वैश्वानर है।

३. या पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु मानुषेषु तस्य राजा (मं. ३)– जो भी कुछ पर्वतों, औषधियों, जलों और मानवोंमें है अर्थात् जो इस विश्वमें है, उसका यह राजा है, उस सबका यह स्वामी या अधिपति है। इस सबका व्यय इसकी भलाईके लिये होना चाहिये। इसके यजनके लिये सबका समर्पण होना उचित है।

४. मानुषीणां कृष्टीनां राजा असि (मं. ५)— मानवी प्रजाजनोंका यह राजा है। सब मानवी प्रजाजनोंका शासन सब मानवी प्रजाओंके द्वारा ही होवे। इसीका नाम स्वराज्य है। सब मनुष्यही अपना शासन अपनी संमतिके अनुसार करें। समाजका शासन समाजद्वारा समाजकी उन्नतिके लिये हो।

५. युधा देवेभ्यः वरिवः चकर्थ (मं.५)- युद्धसे देवोंके लिये धन दो। धन देवोंकोही मिलना चाहिये। देव वे हैं कि जो दैवी संपत्तिसे युक्त हैं। उनकाही धनपर अधिकार है, धन इनको ही मिलना चाहिये। मानवसमाजमें देव-असुर, देव-दानव, आर्य-दस्यु, आर्य-अनार्य, भद्र-पाप, सुष्ट-दुष्ट ऐसे दो प्रकारके मनुष्य होते हैं। इनमें केवल देवोंकाही सब धनपर अधिकार है। ये देव उस धनका उपयोग करके सबकी पालना योग्यरीतिसे करें। किसी तरह असुरोंका अधिकार धनपर नहीं होना चाहिये। इसलिये युद्ध करना आवश्यक हो तो युद्ध भी करना चाहिये और देवोंके हाथमेंही धन रहे ऐसा प्रबंध करना चाहिये। धनपर कब्जा राक्षसोंका हुआ तो जगत्में अनर्थ होते हैं, जनता इससे दुःखी होती है। इसलिये युद्ध करके असुरोंका नाश करके देवोंके अधीन शासनप्रबंध रखना चाहिये।

६. आर्याय ज्योतिः (मं. २)– आर्योंके लिये ही प्रकाश का मार्ग खुला किया है। राक्षस असुरोंका नामही **'निशाचर'** है, क्योंकि उनका मार्ग अन्धेरेका है। इसीलिये अनार्योंके अधीन राज्यप्रबंध नहीं रहना चाहिये। जो आर्य हैं उनकेही अधीन राज्यप्रबंध, सब धन (खजाना), और सब बल रहना चाहिये। इसलिये अन्यत्र कहा है —

विजानीहि आर्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते
रंधय शासद् अव्रतान् ॥८॥
अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः। (ऋ. १।५१)

सव्य ऋषि कहते हैं कि– 'आर्य कौन हैं और दस्यु कौन हैं इसको जान लो, नियमानुसार कौन चलते हैं और नियमोंको कौन तोडते हैं, इसको देखो। अनुकूल कर्म करनेवालोंके हितके लिये अपव्रतियोंका नाश करो तथा मातृभूमिके भक्तोंका हित करनेके लिये जो मातृभूमिका तिरस्कार करते हैं उनको दण्ड दो।

आर्य	दस्यु
व्रती	अव्रत
अनुव्रत	अपव्रत
आभूभिः	अनाभुवः
देव	असुर

इन पदोंसे वैदिक-शासनकी कल्पना हो सकती है।

७. पूरवः वृत्रहणं सचन्ते। वैश्वानरः अग्निः दस्युं जघन्वान् (मं.६)— नागरिक जन शत्रुका वध करनेवाले कीही सेवा करते हैं। सार्वजनिक अग्रणी दस्युका वध करता है। क्योंकि आर्य और दस्यु ये परस्परके सहायक नहीं हैं। प्रकाश मार्गसे जानेवाले और रात्रीके अंधकारमें जानेवालेकी मित्रता कैसी होगी? आर्य सबकी भलाई चाहते हैं और दस्यु

अपनी पेट पूर्तिके लिये दूसरोंको लूटते हैं। इसलिये दस्युको दण्ड देकर आर्योंकी सुरक्षा करना योग्य होता है। गुणकर्मोंसे आर्य और दस्यु निश्चित होते हैं।

' वैश्वानर, विश्वनर, सर्वजन, सार्वजनीन, सार्वलौकिक' ये शब्द समान भाव बतानेवाले हैं। वेदमें ' वैश्वानर ' पदसे जो भाव प्रकट होता था, वही आज 'सार्वजनीन, सार्वलौकिक' पदोंसे प्रकट होता है।

८ **स्ववंते सत्यशुष्माय वैश्वानराय नृतमाय यह्वी गिरः** (मं. ४)— आत्मज्ञानी सत्यबली सार्वजनिक हित करनेवाले अत्यन्त श्रेष्ठ नेताके लिये ही विशेष प्रशंसा योग्य है। सब मानवरूपी वैश्वानर है, सर्व मानवही प्रभुका रूप है इसमें संदेह नहीं है, पर इस जनसंमर्दका नेतृत्व किसको मिलना चाहिये इसका उत्तम निर्देश इस मन्त्रभागमें है। वह ज्ञानी चाहिये, सत्यनिष्ठाका बल उसके पास चाहिये, सार्वजनिक हित करनेमें वह तत्पर होना चाहिये और सब मानवोंमें वह श्रेष्ठ चाहिये। वही प्रशंसायोग्य है अर्थात् वही पूज्य है और वही उनका नेता होनेयोग्य है।

९ **वैश्वानरः नाभिः क्षितीनां** (मं. १)- सार्वजनिक हित करनेवाला यह श्रेष्ठ पुरुषही सब मानवोंका, सब जनताका नाभि या केन्द्र अथवा मध्य बिन्दु है। सबके आंख इसी नेता पर लगने चाहियें। शरीरमें जैसी नाभी, वैसा यह नेता राष्ट्रमें होगा।

१०. **स्थूणा इव जनान् ययन्थ** (मं. १)- जिस तरह स्तंभ सब घरके लिये आधार होता है, उसी तरह यह नेता सब मानवोंके लिये आधार होता है। यह श्रेष्ठ नेता सब जनोंको इस तरह चलाता है जिससे वे उत्कृष्ट सुख शीघ्र ही प्राप्त कर सकते हैं।

११ **अन्ये अग्नयः ते वया इत्** (मं १)— सभी मानव इस वैश्वानरका रूप हैं ऐसा कहा है (देखो टिप्पणी स २ मं. १) इसलिये सभी मानव वैश्वानरके रूप हुए, फिर कहा है कि जो ' नृ तम ' अत्यंत श्रेष्ठ मानव होगा वही उनका नेता होनेयोग्य है (टिप्प. ८)। फिर अन्य मानवों का स्थान क्या है ? इस प्रश्नका उत्तर इस मन्त्रभागने दिया है— 'अन्य अग्नि इसकी शाखाएं हैं।' यह नेता वृक्ष है और अन्य मानव इस वृक्षकी शाखाएं, टहनियाँ, पत्ते आदि हैं। सब मिलकर एकही अखण्ड वृक्ष है। तथापि नेता स्कंध है और अन्य मानव छोटी मोटी शाखाएं हैं। नेताका जनताके साथ यही संबंध रहना चाहिये।

१२. **विश्वे अमृताः त्वे मादयन्ते** (मं. १)— सब देव तुझमेंसे आनन्द प्राप्त करते हैं। सार्वजनिक हितमें आनन्द माननाही देवत्वका लक्षण है। यहां ' त्वे ' का अर्थ 'वैश्वानर' है अर्थात् सर्व मानव-समाज। इसके हितमेंही श्रेष्ठ लोग आनन्द प्राप्त करते हैं।

१३. **दिवः मूर्धा, पृथिव्याः नाभिः, रोदस्योः अरतिः** (मं. २)— यह वैश्वानर द्युलोकका सिर, पृथ्वीका मध्य, और दोनों लोगोंका स्वामी है। ' अरति ' का अर्थ- असंतोष, रति न रखना, विरक्ति, क्रोध, गति, व्यवस्थापक, प्रबंधकर्ता, स्वामी, बुद्धिमान् ज्ञानी।

१४. **देवासः वैश्वानरं अजनयन्त** (मं. २)- सब देवोंने वैश्वानरको प्रकट किया। सब मानवसंघही सबका उपास्य है, यही यहाँ मुख्य है यह तत्त्व ज्ञानियोंनेही सबको सुनाया, प्रसिद्ध किया।

१५ **सूर्ये रश्मयः न, वैश्वानरे वसूनि आ दधिरे** (मं. २)— सूर्यमें जैसे किरण रहते हैं, वैसेही इस वैश्वानरमें सब धन रहते हैं। सूर्यमें जैसे किरण निजरूप होकर रहते हैं, वैसेही सब धन इस मानवरूप देवकेही अपने हैं। अर्थात् सब धन मानवसंघके हैं, किसी भी व्यक्तिके नहीं हैं। इसीलिये व्यक्तिको सब धनोंका त्याग समाजके हितके लिये करना आवश्यक है क्योंकि व्यक्तिका धन हैही नहीं, सब धन समाज, या समष्टिकाही है। (टिप्प. १ देखो)

१६. **सूनवे रोदसी बृहती** (मं. ४)— प्रत्येक सुपुत्रके लिये यह द्यावापृथिवी एक बडा भारी कार्यक्षेत्र है। प्रत्येक मानवके लिये यही कार्यक्षेत्र है, यह हरएकको ध्यानमें रखना चाहिये।

१७ **दिवः चित् वैश्वानरस्य महित्वं प्र रिरिचे** (मं ५)- द्युलोकसे भी इस वैश्वानर सब जनताका-महत्त्व अधिक है, क्योंकि यही सबका उपास्य और सेवा करनेयोग्य है।

१८. **काष्ठाः अधूनोत्, शंबरं अव भेत्** (मं. ६)- सब दिशाओंमें रहनेवाले शत्रुओंको इसने हिला दिया, शंबरका नाश किया। सार्वजनिक शत्रुका नाश करनेमें किसी तरह कसूर करनी नहीं चाहिये।

१९. भरद्वाजेषु यजतः (मं. ७)— अन्नदान करनेवालोंमें यही पूजनीय देव है। अन्नदान करनेमें सब जनोंकी सुस्थिति ही मुख्यतया देखनी होती है।

इस तरह इस सूक्तमें राज्यशासनका रहस्य कहा गया है। वास्तवमें प्रकट तौरपर यह अग्निसूक्त है, इसलिये इसमें अग्नि का वर्णन है। पर अग्निके अनेक रूपोंमेंसे यहां 'वैश्वा-नर' (सार्व-मानुष) अग्निका विशेष रीतिसे वर्णन है।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव।
(कठ. २।५।९)

'अग्नि सब पदार्थोंमें प्रविष्ट हुआ है इसलिए प्रत्येक रूपमें वह उस रूपवाला बना है।' अर्थात् वही अग्नि मानवोंमें मानवरूप लिये कार्य कर रहा है। इसीलिये (वैश्वा-नर) सर्व मानवसंघ यह अग्निका रूप है जिसका वर्णन इस सूक्तमें है।

इस कारण जिस तरह इस सूक्तमें 'मानव-संघ'की सुव्यवस्था के निर्देश हैं, उसी तरह अग्निके और परमात्माके भी इन्हीं पदोंसे मुख्य तथा गौणवृत्तिसे वर्णन हैं। इस सूक्तके कौनसे वर्णन केवल अग्निपरक हैं और कौनसे परमात्मपरक हैं इसका विवेक पाठक स्वयं कर सकते हैं। यहां सार्वमानुषरूपका वर्णन स्पष्टीकरणके साथ बताया है, जो मानवों की उन्नतिके लिये अत्यावश्यक है।

शेष बातें पाठक मननद्वारा जान सकते हैं।

(३) आदर्श प्रजापालक

(ऋ. १।६०) नोधा गौतम. । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम् ।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद् भृगवे मातरिश्वा ॥ १ ॥
अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः ।
दिवश्चित् पूर्वो न्यसादि होता ऽऽपृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः ॥ २ ॥
तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत् सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ॥ ३ ॥

अन्वयः— १ यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं सद्योअर्थं द्विजन्मानं दूतं, रयिं इव प्रशस्तं, रातिं वह्निं मातरिश्वा भृगवे भरत् ॥

२ हविष्मन्तः उशिजः, ये च मर्ताः, उभयासः अस्य शासुः सचन्ते। आपृच्छ्यः वेधाः होता विश्पतिः दिवः चित् पूर्वः न्यसादि ॥

३ हृदः आ जायमानं तं मधुजिह्वं, अस्मत् नव्यसी सुकीर्तिः अश्याः। प्रयस्वन्तः ऋत्विजः आयवः मानुषासः यं वृजने जीजनन्त ॥

अर्थ— १ यशस्वी, यज्ञका ध्वज, सम्यक् रक्षाके योग्य, तत्काल अर्थ-प्राप्ति करनेवाला द्विजन्मा दूत, प्रशस्त धनके समान, दाता अग्निको, वायु (प्रदीप्त करके) भृगुवंशीके पास ले आवे ॥

२ हविवाले (उन्नतिकी) इच्छा करनेवाले (याजक) और जो (साधारण) मानव हैं, वे दोनो इसके शासनमें रहते हैं। यह प्रशंसनीय, कर्मकुशल, हवनकर्ता, प्रजापालक, दिनका उदय होनेके पूर्व ही (यहां तैयार होकर) बैठा है ॥

३ (भक्तोंके) हृदयमें प्रकट होनेवाले उस मधुरभाषणी (अग्नि)को हमारी नवीन सुकीर्ति प्राप्त हो। अन्न लेकर (यज्ञ करनेवाले) ऋत्विज प्रगतिशील मानव इस (अग्नि) को यज्ञस्थानमें प्रकट करते हैं ॥

उशिक् पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु ।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद् रयिपती रयीणाम् ४
तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः ।
आशुं न वाजंभरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ५

४ उशिक् पावकः वसुः वरेण्यः होता विक्षु मानुषेषु अधायि । दमूना गृहपतिः रयीणां रयिपतिः अग्निः दमे आ भुवत् ॥

५ हे अग्ने ! वयं गोतमासः तं त्वा रयीणां पतिं मतिभिः प्र शंसामः । वाजंभरं आशुं न मर्जयन्तः, धियावसुः प्रातः मक्षू जगम्यात् ॥

४ (उन्नति) चाहनेवाले, शुद्ध करनेवाले, निवास देनेवाले, श्रेष्ठ आह्वान करनेवाले (अग्नि) को मानवी प्रजाओंमें स्थापन किया है। (शत्रुका) दमन करनेवाला गृहस्वामी, धनोंका अधिपति, अग्नि अपने स्थानमें प्रकट होता है ॥

५ हे अग्ने ! हम गोतमवंशी लोग उस तुझ धनोंके स्वामी (अग्नि) की अपनी बुद्धियोंसे प्रशंसा करते हैं जैसे अन्नको ढोकर लानेवाले घोडेको शुद्ध करते हैं । बुद्धिवैभववान् (यह अग्नि) प्रातः सत्वर ही (हमारे पास) आ जावे ॥

प्रजापतिका शासन

आदर्श स्वामी

इस सूक्तमें आदर्श स्वामीका वर्णन है, यह प्रजाओंका स्वामी है, यह प्रजाओंका पालक और रक्षक है, सब प्रकारकी प्रजाकी उन्नति करनेवाला है, देखिये इसका वर्णन किन शब्दोंसे किया है—

१. यशाः– यशस्वी, जो कार्य हाथमें लेगा वह यथा योग्य रीतिसे पूर्ण करनेवाला, अन्ततक पहुंचानेवाला,

२. विदथस्य केतुः—यज्ञका ध्वज, युद्धका झण्डा, ज्ञान-प्रसारका सूचक,

३. सुप्राव्यः— उत्तम रक्षा करनेवाला, रक्षणीय,

४. सद्योअर्थः— जो प्राप्तव्य अर्थ है उसको शीघ्र देनेवाला, अर्थात् उसकी सिद्धि करनेवाला,

५. द्विजन्मा— दोवार जन्मनेवाला, एक मातासे और दूसरा विद्यासे ऐसे जो जन्मोंसे युक्त, अर्थात् अत्यंत विद्वान्, विद्यामत स्नातक ।

६. दूतः– सेवकके समान प्रजाकी सेवा करनेवाला (नेता होना चाहिये),

७. रयिः इव प्रशस्तः– धनके समान प्रशंसायोग्य,

८. रातिः– दाता, दानशील,

९. वह्निः– पहुंचानेवाला, उन्नतितक ले जानेवाला (मं. १)

१०. उभयासः अस्य शासुः सचन्ते– दोनों प्रकारके लोक इस प्रजाशासककी आज्ञा मानते हैं, इसीकी सेवा करते हैं दोनों प्रकारके लोग अर्थात् ज्ञानी अज्ञानी, धनवान् निर्धन, सबल-निर्बल आदि,

११. आपृच्छ्यः– वर्णन करनेयोग्य, कठिनताके विषयमें, कठिनता दूर करनेके उपाय जिसके पास जाकर पूछे जा सकते हैं,

१२. वेधाः— जो नवीन रचना उत्तम रीतिसे कर सकता है,

१३. होता— (ज्ञानी आदिकोंको) अपने पास बुलानेवाला,

१४. विश्पतिः– प्रजाजनोंका पालनकर्ता, रक्षक,

१५. दिवः पूर्वे न्यसादि– सूर्यके उदय होनेकेही पूर्व अपना कर्तव्य करनेके लिये जो बैठता है, निरलस, (मं. २)

१६. हृदः आ जायमानः— प्रजाओंके हृदयोंमें जो प्रकट होता है, अन्तःकरणोंमें जिसने स्थान प्राप्त किया है ।

१७. मधुजिह्वः– मधुरभाषण करनेवाला,

१८. अस्मत् सुकीर्तिः अस्याः– हमारी प्रशंसा जिसे प्राप्त होती है, हम जिसका वर्णन करते हैं, हमारी कीर्तिही जिसका ध्येय है ,

१९. आयवः मानुषासः यं वृजने जीजनन्त— प्रगति करनेवाले मनुष्य जिसकी कठिन समयमें प्राप्ति करते हैं।

सृजनः तेज, शक्तिमान्, गतिमान्, पाप, आपत्ति, शक्ति, युद्ध, द्वन्द्व । (मं. ३)

१०. उशिक्- उन्नतिकी इच्छा करनेवाला,

११. पावकः— शुद्धता, पवित्रता करनेवाला,

१२. वसुः— सबका निवासक, रहनेके लिये स्थान देनेवाला,

१३. वरेण्यः— श्रेष्ठ, वरिष्ठ,

१४. विक्षु मानुषेषु अधायि— जो जनतामें मिल जुलकर रहता है,

१५. दमूना— शत्रुका दमन करनेवाला,

१६. गृहपतिः— अपने घरका संरक्षण करनेवाला, अपने स्थानकी सुरक्षा करनेवाला,

१७. रयीणां रयिपतिः— धनोंका पालक, सब प्रकारके धनोंकी सुरक्षा करनेवाला.

१८. दमे आभुवत्— अपने घर, स्थान वा देशमें प्रभावी रीतिसे रहता है (मं. ४)

१९. रयीणां पतिः— धनोंका स्वामी,

२०. वाजंभरः— अन्न और बलका पोषक,

२१. धियावसुः— बुद्धिसे धन प्राप्त करनेवाला, (मं.५)

यहां प्रजाका पालक कौन हो, उसमें कौनसे गुण हों, इसका वर्णन इन शब्दोंमें पाठक देख सकते हैं। इन शब्दोंसे जिन गुणोंका वर्णन होता है वे गुण आदर्श शासकमें होने चाहिये। अथवा इन गुणोंसे जो युक्त हो, उसको प्रजापतिके स्थानके लिये नियुक्त करना योग्य है। पाठक इन गुणोंका अच्छी तरह मनन करें।

यहां वास्तवमें अग्निका वर्णन है, पर अग्निके वर्णनके मिषसे उत्तम नेताके, उत्कृष्ट प्रजापालकके गुण यहां बताये हैं, वे निःसंदेह उत्तम आदर्श शासनाधिकारीके सूचक हैं।

ऋषिका नाम

इस सूक्तके अन्तिम सप्तम मन्त्रमें ' वयं गोतमासः ' (हम गोतम-गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषिगण) ऐसा अपना गोत्र नाम ऋषि बता रहा है।

ऋ. १।५८ में ' भृगवः ' पद भृगु गोत्रके ऋषियोंका वाचक दीखता है। ऋ. १।५९में 'भरद्वाज' पद है। 'शातवनेय' पद है। शातवनेय यह राजा भरद्वाज ऋषिका आश्रयदाता प्रतीत होता है। ऋषि भरद्वाज शातवनेयका पुरोहित होगा।

इन तीन सूक्तोंमें ऋषिका पता इतनाही लगता है।

(४) प्रभावी इन्द्र

(ऋ. १।६१; अथर्व २०।३५।१-१६) नोधा गौतमः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ १ ॥
अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥ २ ॥

अन्वयः- १ अस्मै इत् उ तवसे तुराय माहिनाय ऋचीषमाय अध्रिगवे इन्द्राय, प्रयः न, ओहं स्तोमं राततमा ब्रह्माणि प्र हर्मि ॥

२ अस्मै इत् उ, प्रयः इव, प्र यंसि । बाधे सुवृक्ति आङ्गूषं भरामि। प्रत्नाय पत्ये इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा धियः मर्जयन्त ॥

अर्थ- १ इसही समर्थ शीघ्रकारी, महिमावाले, वर्णनीय गुणवाले, अप्रतिबंधगतिवाले इन्द्रके लिये मैं, अन्नके (दानके) समान, मननीय स्तोत्र और दातृत्वकी जिनमें अधिक प्रशंसा है ऐसे मंत्र अर्पण करता हूं (कहता हूं) ॥

२ (मैं) इस (इन्द्र) के लिये, अन्न देनेके समानही (सोमरस) देता हूं। शत्रुका नाश करनेवाले (इन्द्र) के लिये उत्तम स्तोत्र अर्पण करता हूं। (विप्रोंने) पुराने रक्षक इन्द्रके लिये हृदय, मन और बुद्धिसे विचारोंको शुद्ध करनेवाले (अनेक स्तोत्र) किये हैं ॥

अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ३

अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ४

अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३ समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ५

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय ।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ६

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ७

अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ८

---

३ मतीनां सुवृक्तिभिः अच्छोक्तिभिः मंहिष्ठं सूरिं वावृधध्यै अस्मै इत् उ त्यं उपमं स्वर्षां आङ्गूषं आस्येन भरामि ॥

४ (अहं) त्वष्टा इव रथं न, अस्मै इत् उ तत्सिनाय गिर्वाहसे मेधिराय इन्द्राय स्तोमं गिरः विश्वं इन्वं च सुवृक्ति सं हिनोमि ॥

५ वीरं दान-ओकसं पुरां दर्माणं गूर्तश्रवसं वन्दध्यै अस्मै इत् उ इन्द्राय, सप्तिं इव, श्रवस्या जुह्वा अर्कं सं अञ्जे ॥

६ कियेधा ईशानः तुजन् येन तुजता वृत्रस्य मर्म चित् विदत् रणाय (तं) स्वपस्तमं स्वर्यं वज्रं त्वष्टा अस्मै इत् उ तक्षत् ॥

७ सहीयान् अद्रिं अस्ता विष्णुः अस्य इत् उ महः मातुः सवनेषु सद्यः पितुं चारु अन्ना पपिवान् पचतं मुषायत्, वराहं तिरः अस्ता ॥

८ देवपत्नीः ग्नाः चित् अस्मै इत् उ इन्द्राय अहिहत्ये अर्कं ऊवुः । (अयं) उर्वी द्यावापृथिवी परि जभ्रे, ते अस्य महिमानं न परि स्तः ॥

३ बुद्धिपूर्वक किये उत्तम शत्रुभावनाशक शुभ वाणियों-द्वारा महान विद्वान् (इन्द्र) की महत्ता बढानेके लिये, उसी इन्द्रको, उस उपमायोग्य धनप्रापक घोषको अपने मुखसे मैं भर देता हूं, बोल देता हूं॥

४ जैसे कारीगर रथको (बनाता है वैसे) इसही सब सिद्धि करनेवाले प्रशंसनीय बुद्धिमान् इन्द्रके लिये मैं अपनी वाणियोंके द्वारा सबको उत्तेजित करनेवाले स्तोत्रको प्रेरित करता हूँ॥

५ वीर, दानका घर, शत्रुके कीलोंको तोडनेवाले, प्रशंसनीय अन्नवाले इन्द्रकी वन्दनाके लिये इसी इन्द्रके पास, घोडेके समान, यशस्वी जिह्वासे स्तुतिस्तोत्रको हम प्रेरित करते हैं ॥

६ कईयोंका धारण करनेवाले इस (विश्वके) स्वामी इन्द्रने (वृत्रको) मारते हुए जिस मारक वज्रसे वृत्रके मर्म-स्थानको ठीक तरह प्राप्त किया था, (मर्मपरही आघात किया था), उस रणके समय उत्तम कर्म करनेवाले शत्रुपर फेंकने योग्य वज्रको त्वष्टाने इसी इन्द्रके लिये बनाया था ॥

७ शत्रुका पराभव करनेवाले, वज्र फेंकनेवाले विष्णुने इसी महान् जगत्के निर्माता इन्द्रके सवनोंमें शीघ्रही अन्न और सुन्दर भोजनका सेवन किया, पके हुए (शत्रुके) अन्नको उठा ले आया और जलभोजी (वृत्र) को तिरच्छा करके वज्र मार दिया ॥

८ पृथिवी आदि देवपत्नियाँ इसी इन्द्रके लिये वृत्रवधके समय स्तुतिस्तोत्र गाती रहीं। यह इन्द्र इन बडी द्यावापृथिवीको भी अपने अधीन रखता है पर वे (दोनों लोक) इसकी महिमाको नहीं घेर सकते। (क्योंकि इसका महिमा बहुतही बडा है।)

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ९

अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १०

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत्।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११

अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३

अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ॥ १४

---

९ अस्य इत् एव महित्वं दिवः पृथिव्याः अन्तरिक्षात् परि प्र रिरिचे। स्वराट् दमे विश्वगूर्तः स्वरिः अमत्रः इन्द्रः रणाय आ ववक्षे ॥

१० इन्द्रः अस्य इत् एव शवसा शुषन्तं वृत्रं वज्रेण वि वृश्चत्। सचेताः श्रवः दावने, गाः न, व्राणाः अवनीः अभि अमुञ्चत् ॥

११ यत् सीं वज्रेण परि अयच्छत्, (तत.) सिन्धवः अस्य इत् उ त्वेषसा रन्त। ईशानकृत् तुर्वणिः दशस्यन् (इन्द्रः) तुर्वीतये गाधं कः।

१२ तूतुजानः कियेधाः ईशानः अस्मै इत् उ वृत्राय वज्रं प्र भर। अपां चरध्यै अर्णांसि इष्यन् तिरश्चा, गोः न, पर्व वि रद ॥

१३ उक्थैः नव्य अस्य इत् उ तुरस्य पूर्व्याणि कर्माणि प्र ब्रूहि। यत् युधे आयुधानि इष्णानः ऋघायमाणः शत्रून् नि ऋणाति ॥

१४ गिरयः च यस्य इत् उ भिया दृढाः। (अस्य) जनुषः द्यावा भूम च तुजेते। नोधा वेनस्य ओणिं उप जोगुवानः सद्यः वीर्याय भुवत् ॥

९ इस (इन्द्र) कीही महिमा द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वीसे बहुतही बडा है। स्वयंशासक, शत्रुदमनमें सब प्रकारके सामर्थ्योंसे युक्त, उत्तम प्रकारसे शत्रुसे लडनेवाला, अपने बलसे सुरक्षा करनेवाला इन्द्र युद्धके लिये सेनाको आगे बढाता है ॥

१० इन्द्रने इसी अपने बलसे शोषक वृत्रको वज्र-द्वारा काटा। सचेत इन्द्रने अन्नके दानमें प्रवृत्ति रखकर, गायके समान, रुके हुए नीचेकी ओर जानेवाले जलप्रवाहोंको खुला किया (बहा दिया) ॥

११ जिस कारण वज्रसे इन (जलों) को चारों ओर बहने दिया, उस कारण सब नदियाँ इसीके तेजसे चलने-बहने लगीं। स्वामित्व करनेवाले, त्वरासे लेने और दान करनेवाले इन्द्रने तुर्वीतिके लिये जलको थोडासा उथला कर दिया ॥

१२ शत्रुका नाश करनेवाले बलवान् स्वामी (इन्द्र) ने इसी वृत्रपर वज्र मारा। जलप्रवाहोंको बहानेके लिये जलोंको प्रेरित करके, गायके समान, तिरछी गतिसे वृत्रके टुकडे कर (दिये)।

१३ जो स्तोत्रोंद्वारा वर्णन किया जाता है, इसी शीघ्रतासे कार्य करनेवाले (इन्द्र) के प्राचीन कर्मोका वर्णन कर। जब यह युद्धके लिये शस्त्रोंको चलाता है, तब शत्रुवध करनेकी इच्छा करता हुआ, वह शत्रुओंके पास पहुंचता है।

१४ पर्वत इसीके भयसे सुदृढ बने हैं। इसके प्रकट होनेसे द्यावापृथिवी कांपती है। नोधा (ऋषि) इस प्रिय (इन्द्र) के दुःखनाशक गुणका वारंवार गान करता हुआ तत्कालही अपना पराक्रम (बढानेमें) समर्थ हुआ ॥

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद् वव्ने भूरेरीशानः।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥

१५ इन्द्रः सौवश्व्ये सूर्ये पस्पृधानं सुष्विं एतशं प्र आवत्। यत् भूरेः ईशानः एकः वव्ने, (तदा) अस्मै इत् उ एषां त्यत् अनु दायि ॥

१६ हे हारियोजन इन्द्र! गोतमासः एव ते सुवृक्ति ब्रह्माणि अक्रन्। एषु विश्वपेशसं धियं आ धाः। (सः) धियावसुः प्रातः मक्षु जगम्यात् ॥

१५ इन्द्रने स्वश्वपुत्र सूर्यके साथ स्पर्धा करनेके समय सोमयाग करनेवाले एतशकी सुरक्षा की। जब अनंत धनोंका स्वामी इन्द्र प्रसन्न होता है, तब इसी इन्द्रके लिये ये स्तोत्र दिये जाते हैं, (गाये जाते हैं) ॥

१६ हे घोडोंके रथवाले इन्द्र! गोतम गोत्रके लोगोंनेही तेरे ये उत्तम स्तोत्र किये हैं। इनमें अपनी सब प्रकारसे तेजस्वी बुद्धि रख (एकाग्रतासे श्रवण कर)। वह बुद्धिसे किये कर्मद्वारा धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र सबेरे अतिशीघ्र हमारे पास आ जावे ॥

आदर्श वीर

इस सूक्तमें इन्द्रके वर्णनसे आदर्श वीरका वर्णन किया है, वह देखिये—

१. **तवस्**— शक्तिमान्, सामर्थ्यवान्।
२. **तुरः**— त्वरासे कर्म करनेमें प्रवीण,
३. **माहिनः**— आनंदपूर्ण, हर्षयुक्त, नित्य उत्साही, बडा, महान्, आनन्द देनेवाला, राज्याधिकार, राजशक्ति, राज्यशासनमें समर्थ,
४. **ऋचीषमः**— (ऋचि-समः) विद्यामें निपुण,
५. **अध्रिगुः**— जिसकी गौ या संपत्ति कोई चुरा नहीं सकता, ऐसा सामर्थ्यवाला, (मं.१)
६. **प्रत्नः**— पुरातन (प्रथाको सुरक्षित रखनेवाला),
७. **पतिः**— रक्षक, अधिपति, (मं.२)
८. **मंहिष्ठः**— बडा, महान, प्रशंसनीय दाता,
९. **सूरिः**— ज्ञानी, विद्वान, भाष्यकार,
१०. **उपमः**— उपमा देनेयोग्य, उत्तम, सर्वोत्कृष्ट, सबसे श्रेष्ठ, (मं.३)
११. **तत्सिनः**— अश्ववान्
१२. **गिर्वाहाः**— प्रशंसनीय,
१३. **मेधिरः**— (मेधि-रः)- बुद्धि देनेवाला, ज्ञानदाता, (मं.४)
१४. **वीरः**— शूर, पराक्रमी
१५. **दान-ओकाः**— दान देनेका घर, दानका घर,
१६. **पुरां दर्मा**— शत्रुके कीलोंको तोडनेवाला,
१७. **गूर्तश्रवाः**— प्रशंसनीय यशवाला, (मं.५)
१८. **कियेधाः**— (कियत् धाः)- कितनी विलक्षण या विशेष धारण-शक्तिसे युक्त,
१९. **ईशानः**— स्वामी, राजा, अधिपति,
२०. **तुजन्**— शत्रुका नाश करनेवाला, वज्र, शस्त्र,
२१. **मर्म विदत्**— शत्रुके मर्मस्थानका वेध करनेवाला,
२२. **स्वपस्तमः**— (सु- अपः-तमः) उत्तम कर्म करनेमें प्रवीण, (मं. ६)
२३. **सहीयान्**— शत्रुका पराभव करनेवाला,
२४. **अद्रि अस्ता**— शत्रुपर शस्त्र फेंकनेवाला,
२५. **विष्णुः**— शत्रुकी सेनामें घुसकर उसका नाश करनेवाला वीर, (मं. ७)
२६. **स्वराट्**— अपना अधिकार चलानेवाला, स्वयं-शासक,
२७. **दमे विश्वगूर्ताः**— शत्रुदमनके कार्यमें सर्व-समर्थ,
२८. **स्वरिः**— उत्तम प्रकारसे शत्रुके साथ लडनेवाला,
२९. **अमत्रः**— (अम-त्रः)- अपने बलसे सुरक्षा करनेवाला, (मं.९)

३०. इन्द्रः शवसा वज्रेण शुष्मन्तं वृत्रं वि वृश्चत्- इन्द्रने अपने बलसे वज्रसे बलवान् वृत्रको काटा,

३१. सचेताः- बुद्धिमान्, उत्साही, दक्ष,

३२. श्रवः दावन्- अन्नका दान करनेवाला, (मं. १०)

३३. वज्रेण परि अयच्छत्- शत्रुको वज्रसे मारा,

३४. ईशान-कृत्- अधिपति, शासकका निर्माण करनेवाला,

३५. तुर्वणिः- शत्रुका त्वरासे नाश करनेवाला,

३६. दशस्यन्- दाता, शत्रुका संहारकर्ता, (मं. ११)

३७. तूतुजानः— शत्रुका नाश करनेवाला, (मं. १२)

३८. युधे आयुधानि इष्णानः शत्रून् निऋणाति- युद्धमें शत्रुपर शस्त्रास्त्र फेंकता है और शत्रुका नाश करता है। (मं. १३)

इस तरह आदर्शवीरका वर्णन इस सूक्तमें इन शब्दोंसे किया है। इन शब्दोंके वारंवार मनन करनेसे उत्कृष्ट आदर्श वीरका चित्र सामने आ जाता है। क्षत्रियोंमें ये गुण उत्कट रीतिसे रहने चाहिए।

ऋषिका नाम

इस सूक्तके मंत्र १४में (नोधाः) पद है और मंत्र १६ में (गोतमासः) पद गोत्रनाम है। इसलिये इस सूक्तका ऋषि 'नोधा गौतमः' माना गया है। (गोतमासः ब्रह्माणि अक्रन्) गौतम गोत्रीय ऋषियोंने स्तोत्र किये। (नोधा वेनस्य औणिं जोगुवानः) नोधा ऋषि अपने प्रिय उपास्य देवकी रक्षाशक्तिका गुणगान करता है। इस तरह इस सूक्तमें वीरका वर्णन है।

(५) वीर इन्द्र

(ऋ० १।६२) नोधा गौतमः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत्।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १ ॥
प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥ २ ॥
इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत् सरमा तनयाय धासिम्।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ॥ ३ ॥

अन्वयः-१ (वयं) अङ्गिरस्वत् शवसानाय शूषं आङ्गूषं प्र मन्महे। स्तुवते ऋग्मियाय नरे विश्रुताय सुवृक्तिभिः अर्कं अर्चाम ॥

२ नः पूर्वे पदज्ञाः अङ्गिरसः येन अर्चन्तः गाः अविन्दन्, (हे स्तोतारः!) वः महे शवसानाय (तत्) महि नमः आङ्गूष्यं साम प्र भरध्वम् ॥

३ सरमा इन्द्रस्य अङ्गिरसां च इष्टौ तनयाय धासिं विदत्। बृहस्पतिः अद्रिं भिनत्, गाः विदत्। नरः उस्रियाभिः सं वावशन्त ॥

अर्थ-१ (हम) अङ्गिरा गोत्रमें उत्पन्न लोगोंके समानही बलवान् और प्रशंसनीय इन्द्रके लिये सुखकारक साम गाते हैं। स्तुत्य वर्णनीय नेता सुप्रसिद्ध इन्द्रकी स्तोत्रोंद्वारा हम पूजा करते हैं ॥

२ हमारे पूर्वज मार्ग जाननेवाले अंगिरस् गोत्रमें उत्पन्न ऋषियोंने जिस (साम)से (इन्द्रकी) पूजा की और गौएं प्राप्त कीं, तुम भी बडे बलवान् इन्द्रके लिये वही आगूष्य साम बडी नम्रताके भावसे गाओ (आलापोंसे भर दो)॥

३ सरमाने इन्द्रकी और आंगिरसोंकी इष्टीमें अपने पुत्रके लिये अन्न प्राप्त किया। बृहस्पतिने पर्वत (पर रहकर लडनेवाले) शत्रुको नष्ट किया और उससे गौवें प्राप्त कीं। नेताओंने उन गौओंके साथ रहकर बहुत जयजयकार किया।

*

स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो३ नवग्वैः ।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥ ४

गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः ।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ॥ ५

तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः ।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन् मध्वर्णसो नद्य१श्चतस्रः ॥ ६

द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः ।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद् रोदसी सुदंसाः ॥ ७

सनाद् दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥ ८

सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद् दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद् रोहिणीषु ॥ ९

---

४ हे शक्र इन्द्र ! सः सः सुष्टुभा स्तुभा स्वरेण स्वर्यैः सरण्युभिः नवग्वैः दशग्वैः सप्त विप्रैः रवेण अद्रिं फलिगं वलं दरयः ॥

५ हे दस्म इन्द्र ! अङ्गिरोभिः गृणानः उषसा सूर्येण गोभिः अन्धः वि वः । भूम्याः सानु वि अप्रथयः । दिवः रजः उपरं अस्तभायः ॥

६ यत् उपह्वरे उपराः मधु-अर्णसः चतस्रः नद्यः अपिन्वत् । तत् उ अस्य प्रयक्षतमं कर्म । दस्मस्य चारुतमं दंसः अस्ति ॥

७ अयास्यः स्तवमानेभिः अर्कैः सनजा सनीळे द्विता वि वव्रे । सुदंसाः भगः न, परमे व्योमन् मेने रोदसी अधारयत् ॥

८ विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिः एवैः दिवं भूम सनात् परि (चरतः)। अक्ता कृष्णेभिः उषा रुशद्भिः वपुर्भिः अन्या अन्या आ चरतः ॥

९ सुदंसाः शवसा सूनुः स्वपस्यमानः सनेमि सख्यं दाधार । आमासु चित् अन्तः पक्वं (पयः) दधिषे । कृष्णासु रोहिणीषु रुशत् पयः (दधिषे) ॥

४ हे समर्थ इन्द्र ! वह तू उत्तम स्तुति और काव्यके स्वरसे गाये जानेपर प्रशंसित हुआ । उस तेजस्वी (इन्द्रने) प्रगतिशील नवग्व और दशग्व सात विप्रोंद्वारा गाये गये स्वरके साथ पर्वत-पर रहनेवाले जलको रोकनेवाले बलको छिन्न भिन्न कर दिया ॥

५ हे दर्शनीय इन्द्र ! तूने अङ्गिरा लोगोंसे प्रशंसित होकर उषा और सूर्यके साथ और किरणोंसे अन्धकारको दूर किया। भूमिके उच्च भागको विशेष फैला या, (खुला किया) और द्युलोक और अन्तरिक्षको ऊपर सुदृढ किया ॥

६ (इन्द्रने) जो उतराईसे चलनेवाली मीठे जलकी चार नदियाँ पुष्ट कीं, (बहा दीं) वह इसका अत्यन्त पूज्य कर्म है। वह इस दर्शनीय इन्द्रका अत्यन्त सुन्दर कर्म है ॥

७ न थकनेवाले (इन्द्र) ने गाये जानेवाले स्तोत्रोंके साथ सदा एकत्र रहनेवालों तथा एक घरमें रहनेवालोंको दो प्रकार विभक्त किया। उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रने, धनके समान, बडे आकाशमें सन्मान्य द्यावा-पृथिवीको धारण किया ॥

८ भिन्न रूपवाली पुनःपुनः उत्पन्न होनेवाली (रात्री और दिनप्रभाएं) दो स्त्रियां अपनी गतिसे द्यु और भूलोकोंपर अनादि-कालसे घूम रही हैं। उनमेंसे रात्री काले और उषा चमकीले शरीरोंसे एक दूसरेके पीछे चलती हैं ॥

९ उत्तम कर्म करनेवाले बलके साथ उत्पन्न हुए इन्द्रने, शुभ कर्मकी इच्छा करते हुए, सनातन मित्रताका धारण किया। इन्द्रने छोटी आयुवाली (गायों) में भी पक्व दूध धारण किया है, और काली तथा लाल रंगवाली गौओंमें भी उज्वल श्वेत दूध रखा है॥

सनात् सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् १०
सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन् मनीषाः ११
सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः १२
सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १३

---

१० सनीळाः अवाताः अमृताः पत्नीः अवनीः सहोभिः जनयः न, सनात् (इन्द्रस्य) पुरु सहस्रा व्रताः रक्षन्ते। स्वसारः अह्रयाणं दुवस्यन्ति ॥

११ हे दस्म! (त्वं) अर्कैः नव्यः। सनायुवः वसूयवः मतयः नमसा (त्वा) दद्रुः। हे शवसावन्! मनीषाः, उशतीः पत्नीः उशन्तं पतिं न, त्वा स्पृशन्ति ॥

१२ हे दस्म! गभस्तौ तव रायः सनात् एव, न क्षीयन्ते, न उपदस्यन्ति। हे इन्द्र! (त्वं) धीरः द्युमान् क्रतुमान् असि। हे शचीवः! तव शचीभिः नः शिक्ष ॥

१३ हे शवसान इन्द्र! नोधाः गोतम- सनायते, हरियोजनाय सुनीथाय नः नव्यं ब्रह्म अतक्षत्। (सः) धियावसुः प्रातः मक्षु जगम्यात् ॥

१० एक घरमें रहनेवाली चंचलतारहित अमर धर्मवाली पत्नियाँ, परंपरासंरक्षक स्त्रियोंके समान, सदाही इन्द्रके अनेक सहस्रों कर्मोंकी सुरक्षा करते हैं। ये बहिनें अकुटिल इन्द्रकी सेवा करती हैं।

११ हे दर्शनीय इन्द्र! तू स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करनेयोग्य है। सनातन कालसे धनकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् स्तोतागण नम्रभावसे तेरे पास पहुंचते हैं। हे बलवान् इन्द्र! हमारे मनसे की हुई प्रशंसाएँ, प्यारी पत्नियाँ प्यार करनेवाले पतिके पास जैसी जाती हैं, वैसी तुम्हारे पास पहुंचें ॥

१२ हे दर्शनीय इन्द्र! तेरे हाथमें तेरे धन सदा रहते हैं। तेरे धन कभी क्षीण नहीं होते। न नष्ट होते हैं। हे इन्द्र! तू धैर्यवान् बुद्धिमान् है। हे बुद्धिमान्, तू अपनी बुद्धियोंसे हमें उत्तम शिक्षा दे ॥

१३ हे बलवान् इन्द्र! नोधा गोतमपुत्रने सत्यसनातन घोडे जोते रथमें बैठनेवाले उत्तम नेता इन्द्रके लिये हमारा यह नया स्तोत्र बनाया है। यह बुद्धिसे धनकी प्राप्ति करानेवाला इन्द्र सबेरे शीघ्रही हमारे यज्ञमें आ जावे ॥

आदर्श वीर

इस सूक्तमें भी आदर्श वीरका वर्णन है, निम्नलिखित गुण आदर्श वीरका वर्णन कर रहे हैं—

१. शवसानः- बलवान्, सामर्थ्यवान्,
२. ऋग्मियः- विद्वान्, बहुश्रुत, श्रुतिवान्,
३. नरः (नृ, ना)- नेता, अगुआ, संचालक,
४. विश्रुतः- प्रख्यात,
५. अर्कः- पूज्य, (मं. १)
६. पृथुस्पातिः- अत्यंत ज्ञानी, विशेष प्रबुद्ध, (मं. ३)
७. शग्मः- समर्थ, प्रबल, बलिष्ठ, (मं. ४)
८. दस्मः— दर्शनीय, शत्रुका पूर्ण नाश करनेवाला (५)
९ अ-यास्यः- न थकनेवाला, प्रयास जिसको प्रतीतही नहीं होते,
१०. सुदंसाः- उत्तम कर्म कुशलतासे करनेवाला, शत्रुका नाश पूर्णतया करनेवाला, (मं. ७)
११ स्वपस्यमानः (सु अपस्यमान)- उत्तम कर्म करनेवाला, (मं ९)
१२. तव रायः गभस्तौ— तेरा धन हाथमें रखा है,
१३. न क्षीयते, न उपदस्यति— वह नाश नहीं होता, कम भी नहीं होता,

१४. शचीवान्— शक्तिवान्, बुद्धिमान्, मतिमान् (१२)

१५. धीरः द्युमान् ऋतुमान् आसि— धीर, तेजस्वी, पुरुषार्थी है।

१६. शचीभिः शिक्ष— अपनी बुद्धियोंसे पढाओ। (१२

१७. सुनीथः— उत्तम प्रकारसे चलानेवाला, (मं. १३)

ये पद आदर्श वीरके गुण बता रहे हैं। पाठक इनका मनन करें।

आदर्श स्त्री

इस सूक्तमें आदर्श स्त्रीका वर्णन देखनेयोग्य है। निम्नलिखित पद आदर्श स्त्रीके गुणोंका वर्णन कर रहे हैं-

१. विरूपाः- विशेष रूपवाली,

२. पुनर्भूः- पुनः पुनः अपनी सजावट करके नयीसी बनने-वाली, वारंवार अपनी सजावट करनेमें दक्ष। [सूचना— 'पुनर्भूः' पद लौकिक संस्कृतमें विधवा, मृतभर्तृकाका तथा पुनः विवाहित हुई स्त्री-पुनर्विवाहित स्त्रीका वाचक है। परंतु यहां यह अर्थ नहीं है। यहां दिनप्रभा उषा और रात्री ये दो स्त्रियाँ पुनः पुनः सजकर आती हैं और इस वर्णनमें यहां यह शब्द प्रयुक्त हुआ है।]

३. युवती- तरुण स्त्री,

४. एवः- चलनेका सुंदर ढंग

५. एवैः सनात् परि (चरति)- अपने चलनेके अपूर्व ढंगसे चलती है।

६. कृष्णेभिः रुशद्भिः वपुर्भिः आचरति- काले रंगकी और चमकीले रंगकी साडियां अपने शरीरपर पहनकर चलती है।

७. अन्या अन्या- दूसरी दूसरी सी बनकर, अपनी सजावटके ढंगसे विलक्षण शोभावाली बन कर जाती आती है, (मं. ८)

८ सनीळा- समान रीतिसे घरमें रहनेवाली,

९. अयाता- जो चपल नहीं है, स्त्रियोंमें चपलता यह दोष है अतः जिनमें यह दोष नहीं है, शान्त चित्त,

१०. अमृता- मुरदा जैसी जो नहीं है, पूर्ण जीवित, पूर्ण उत्साही, दक्ष,

११ पत्नी- पालक, कुटुंबका उचित पालन-पोषण करनेवाली,

१२. अवनी- सुरक्षा करनेवाली, घरबारकी रक्षा दक्षतासे करनेवाली,

१३. सहोभिः (युक्ता)— अनेक बलोंसे युक्त,

१४. जनिः- उत्तम संतान उत्पन्न करनेवाली,

१५. सहस्रा व्रता रक्षन्ते- सैकडों सहस्रों व्रतोंकी सुरक्षा करते हैं।

१६. स्वसा— बहिनके समान (अन्य पुरुषके साथ) रहनेवाली, (मं. १०)

१७. मनीषा— बुद्धिमती,

१८. उशती— पतिका हित करनेकी इच्छावाली (मं ११)

गृहस्थकी गृहिणी किन गुणोंसे युक्त होनी चाहिये इसका यह वर्णन है। वेदमें स्त्रियोंके वर्णन बहुतही थोडे हैं, इसलिये पाठकोंको इन पदोंका विशेष मननपूर्वक अभ्यास करना उचित है।

यहां यह स्त्रीका वर्णन नहीं है, पर उषा, और रात्री ये दो स्त्रियां हैं ऐसा मानकर उनके मिषसे यहां उत्तम गृहिणीका वर्णन किया है, जो अत्यंत मननके योग्य है।

ऋषिका नाम

इस सूक्तके १३ वें मंत्रमें 'नोधा गोतमः' ये पद हैं वे इस सूक्तके ऋषिके वाचक हैं। 'नोधा गोतमः नव्यं ब्रह्म अतक्षत '= गोतमपुत्र नोधा ऋषिने यह नया सूक्त बनाया ऐसा यहां कहा है। अतः यह वर्णन ऋषिदर्शक है।

'नवग्व, दशग्व' (मं.४)— नौ गौवें अपने पास रखनेवाले, दस गौवें अपने पास रखनेवाले। नौ मास या दस मासतक यज्ञ करनेवाले। 'अङ्गिरस्' ऋषिका नाम इस सूक्तमें चार बार आया है। यह ऋषि नोधाके पूर्व समयका प्रतीत होता है।

दृश्यका वर्णन

१. उषसा सूर्येण गोभिः अन्धः वि वः, भूम्याः सानु वि अप्रथयः—उष कालके बाद सूर्य-उदय हुआ, सूर्य-किरणोंसे अन्धकार दूर हुआ और भूमिपर जो ऊंचे स्थान थे वे प्रकाशित हुए। यह सूर्योदयके दृश्यका मनोहर वर्णन है।

९. उपह्वरे उपराः मध्वर्णसः चतस्रः नद्यः अपिन्वन्, तत् अस्य प्रयक्षतमं कर्म, चारुतमं दंसः अस्ति— पर्वतकी उतराईपरसे नीचे बहनेवाली मीठे जलकी चार नदियाँ महापूरसे भरी हुई बह रही हैं, यही इस इन्द्रका वर्णनीय कर्म और अत्यंत सुंदर कर्म है।

ये इसके काव्यमय वर्णन हैं। ये काव्यमाधुरीकी दृष्टिसे बडेही उत्तम वर्णन हैं। अन्य उपदेश मंत्रोंमें है, जो मनन करनेसे अधिक बोधक हो सकता है।

(६) प्रबल वीर

(ऋ० १।६३) नोधा गौतमः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः।
यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृळ्हासः किरणा नैजन् ॥ १ ॥
आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात्।
येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान् पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥ २ ॥
त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान् त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट्।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥ ३ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद् वज्रिन् वृषकर्मन्नुभ्नाः।
यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ॥ ४ ॥

अन्वयः— १ हे इन्द्र! त्वं महान् (असि), यः ह जज्ञानः शुष्मैः द्यावापृथिवी अमे धाः। यद् ह ते भिया विश्वा अभ्वा दृळ्हासः गिरयः चित् किरणाः न ऐजन्॥

२ हे इन्द्र! यत् विव्रता हरी आ वेः, (तदा) जरिता ते बाह्वोः वज्रं आ धात्। हे अविहर्यतक्रतो पुरुहूत! येन अमित्रान् पूर्वीः पुरः इष्णासि ॥

३ हे इन्द्र! (त्वं) सत्यः, एतान् धृष्णुः। त्वं ऋभुक्षाः। नर्यः त्वं षाट्। त्वं वृजने पृक्षे आणौ द्युमते यूने कुत्साय सचा शुष्णं अहन् ॥

४ हे वृषकर्मन् वज्रिन् शूर वृषमनः इन्द्र! यत् ह वृथाषाट् योनौ दस्यून् पराचैः वि अकृतः यत् वृत्रं उभ्नाः, (तदा) सखा त्वं ह त्यत् चोदीः ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र! तू महान् है, जिसने प्रकट होतेही अपने बलोंसे द्यावापृथिवीको शक्तिमें धारण किया। तब तेरे भयसे सब बडे सुदृढ पर्वत भी, किरणोंके समान, कांपने लगे थे ॥

२ हे इन्द्र! जब (तूने) विविध कर्म करनेवाले घोडोंको चलाया, (तब) स्तोताने तेरे दोनों हाथोंमें वज्र रखा, (तुझसे ग्रहण कराया)। हे निष्प्रतिबंधतासे कर्म करनेवाले बहु प्रशंसित (इन्द्र)! जिससे तूने शत्रुओंको और उनके प्राचीन नगरोंको— या कीलोंको— गिरा दिया, (तोड दिया या उनपर हमला किया) ॥

३ हे इन्द्र! तू सत्य है। तू इन शत्रुओंका नाशकर्ता है। तू कारीगरोंको बसानेवाला है। तू जनताका हितकारी और शत्रुका पराभव करनेवाला है। तूने युद्धके समय अन्नदानके समय तथा शस्त्रोंके युद्धमें, तेजस्वी जवान कुत्सके हित करनेके लिये उसके साथ रहकर शुष्णका वध किया ॥

४ हे बलके कर्म करनेवाले वज्रधारी शूर बलिष्ठ मनवाले इन्द्र! जब सहजहीसे शत्रुका नाश करनेवाले तूने युद्ध-स्थानमें शत्रुओंको पीछे हटाकर घट डाला, और वृत्रको मारा, तब मित्र बनकर तूनेही स्तोताको वह (यथेष्ट धन) दिया ॥

त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन् दृळ्हस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।
व्य१स्मदा काष्ठा अर्वते वर्घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ५

त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ६

त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्दः ।
बर्हिर्न यत् सुदासे वृथा वर्गंहो राजन् वरिवः पूरवे कः ७

त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ८

अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ९

---

५ हे इन्द्र ! त्वं ह मर्तानां त्यत् दृळ्हस्य चित् अजुष्टौ अरिषण्यन्, अस्मत् अर्वते काष्ठाः आ वि वः । हे वज्रिन् ! घना इव, अमित्रान् श्नथिहि ॥

६ हे इन्द्र ! नरः अर्णसातौ स्वर्मीळ्हे आजा त्यत् त्वां ह हवन्ते । हे स्वधावः ! समर्ये वाजेषु तव इयं ऊति: अतसाय्या भूत् ॥

७ हे वज्रिन् इन्द्र ! युध्यन् त्वं ह त्यत् सप्त पुरः पुरुकुत्साय दर्दः । हे राजन् ! यत् सुदासे बर्हिः न वृथा वर्क (तदा) अंहोः वरिवः पूरवे कः ॥

८ हे देव इन्द्र ! त्वं नः त्यां चित्रां इषं, आपः न, परिज्मन् पीपयः, हे शूर ! यया विश्वध क्षरध्यै, अस्मभ्य, ऊर्जं न, त्मनं प्रति यंसि ॥

९ हे इन्द्र ! गोतमेभिः ते (स्तोत्रं) अकारि । (तव) हरिभ्यां नमसा ब्रह्माणि आ उक्ता। (त्वं) नः सुपेशसं वाजं आभर। (सः) धियावसुः प्रातः मक्षु जगम्यात् ॥

५ हे इन्द्र ! तूही मनुष्योंकी उस सुदृढ शत्रुकी अप्रेमके कारण उसका नाश करता हुआ, हमारे घोडेके लिये सब दिशाएँ खुली कर दीं- मार्ग खुला कर दिया। हे वज्रधारी इन्द्र ! तू वज्रके समान, शत्रुओंका नाश कर ॥

६ हे इन्द्र ! नेता लोग सोमरसपानके समय अथवा आत्मबलके बढानेके समय, आवश्यक हुए युद्धमें उस तुझकोही सब बुलाते हैं । हे अपनी शक्तिके धारक ! मनुष्यों और घोडोंसे होनेवाले युद्धोंमें तेरी यह सुरक्षा प्राप्त करनेयोग्य है ॥

७ हे वज्रधारी इन्द्र ! शत्रुओंसे लडनेके समय तूनेही उन शत्रुओंकी वे सात पुरियें पुरु कुत्सकी सुरक्षाके लिये तोड दीं। हे राजन् ! जब सुदासके हित करनेके लिये शत्रुओंको, दर्भोंके समान, सहजहीसे काट दिया, तब अंहुका-पापी शत्रुका-धन नागरिकोंके हितके लिये किया, दिया ॥

८ हे देव इन्द्र ! तूने हमारे ऊपर उस श्रेष्ठ अन्नकी, जलके समान, चारों ओरसे ऐसी वृष्टी की, हे शूर ! कि जो सब ओरसे बढने लगी, हमारे लिये, बल प्राप्त होनेके समान, आत्मिक उत्साह भी प्राप्त हुआ ॥

९ हे इन्द्र ! गोतम-वंशियोंने तेरे काव्य किये हैं। तेरे घोडोंके लिये अन्नदानके साथ जल (या स्तोत्र) भी कहा (दिया)। तू हमारे लिये सुन्दर रूपवाला बल भर दे, (बढा दे)। वह बुद्धिसे धन देनेवाला इन्द्र प्रातःसमय शीघ्र ही हमारे पास आ जाय ॥

अतुल प्रतापी वीर

अतुलनीय प्रतापवाले वीरका वर्णन इस सूक्तमें है। यह वर्णन इन्द्रका है, इस वर्णनके मिषसे बडे वीरका गुण-वर्णन किया

१. त्वं महान्- तू बडा है,

२. जज्ञानः शुष्मैः क्षमे धाः- प्रकट होतेही अपने बलोंसे सर्वत्र शक्तिका प्रभाव जमा दिया,

३. ते भिया विश्वा दृळ्हाः एजन्- तुझ प्रबल वीरके

भयसे सभी सुदृढ शत्रु कांप उठे। (मं. १)

४. विव्रता हरी आ वेः- विशेष कर्म करनेवाले घोडे युद्धके लिये खुले हुए हैं,

५. ते बाह्वोः वज्रं आधात्- तेरे बाहुओंपर वज्र रखा गया, तूने अपने हाथोंसे वज्र पकडा,

६. अ-वि-ह्र्यत-क्रतुः- जिसके पुरुषार्थके कर्म प्रतिबंध न होते हुए वेगसे चलते रहते हैं,

७. पुरुहूतः- बहुत लोग जिसको अपनी सहायतार्थ बुलाते हैं,

८. अमित्रान् पूर्वीः पुरः इष्णासि- शत्रुओंको और उनके प्राचीन कीलोंको तोड देता है, नष्टभ्रष्ट कर देता है। (मं. २)

९. सत्यः- सत्यका पालनकर्ता,

१०. एतान् धृष्णुहि- इन सब शत्रुओंको परास्त कर,

११. त्वं ऋभु-क्षाः- तुम कारीगरोंको अपने राज्यमें बसा दो, बढाओ,

१२. नर्यः- मनुष्योंका, जनताका हित कर,

१३. त्वं षाट्- तू शत्रुका पराभव कर,

१४. वृजने पृक्षे आणौ द्युमते सचा शुष्णं अहन्- युद्धमें, अन्नकी स्पर्धामें, शस्त्रकी लडाईमें तेजस्वी वीरके साथ रहकर प्रबल शोषक शत्रुका वध कर, (मं ३)

१५. वृषकर्मा— बलके साथ वीरताके कर्म करनेवाला,

१६. वृषमनः— जिसका मन बलशाली है,

१७. वज्रिन् शूर- वज्रधारी शूर वीर

१८. वृथाषाड् योनौ दस्यून् पराचैः वि अक्रत— सहजहीसे शत्रुका पराभव करनेवाला वीर युद्धभूमिमें शत्रुओंको नीचे गिराकर काट देवे,

१९. वृत्रं उब्जाः— घेरनेवाले शत्रुका पूर्णरूपसे नाश कर,

२०. सखा त्वं त्यत् चोदीः— तू मित्र बनकर अपने वीरोंको प्रेरित कर। (मं.४)

२१. त्वं मर्तानां दृढस्य अजुष्टौ अरिषण्यन्— तू मानवोंके हित करनेके लिये उनके सुदृढ शत्रुका नाश करता है,

२२. अस्मत् अर्वते काष्ठाः आविवः— हमारे घोडोंके लिये सब दिशाएं खुली कीं, हमारे घोडेकी गति सर्वत्र होनेयोग्य मार्ग खोल दिये गये,

२३. अमित्रान् श्नथिहि- शत्रुओंका नाश कर। (मं.५)

२४. नरः आजा त्वां हवन्ते- नेता लोग युद्धमें तुम्हें बुलाते हैं।

२५. समर्ये वाजेषु तव ऊतिः अतसाय्या भूत्- युद्धमें और स्पर्धाओंमें तेरी सुरक्षा शस्त्र जैसी सहाय्यक हुई है। (मं.६)

२६. युध्यन् त्वं सप्त पुरः दर्दः- लडते हुए तूने शत्रुके सात कीले तोड दिये।

२७. वृथा पर्क, अंहोः वरिवः पूरवे कः— जब तूने सहजहीसे शत्रुका नि-पात किया, तब पापी शत्रुका धन नगरवासियोंके हितके लिये दिया। (मं.७)

२८. नः सुपेशसं वाजं आभर— हमें सुन्दर बल दे। ये वचन अतुल प्रतापी वीरके शुभ गुणोंका वर्णन कर रहे हैं। जो वीर इन गुणोंसे युक्त होगा वह नि:संदेह जनतामें पूजनीय बनेगा।

(अष्टम मण्डल)

(७) वीर भाव

(ऋ० ८।८८; (प्रथमौ द्वौ मंत्रौ) अथर्व २०।९।१-२; २०।४९।४-५) नोधा गौतमः। इन्द्रः। प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १

अन्वयः— १ वः तं दस्मं, ऋतीषहं, वसोः अन्धसः मन्दानं इन्द्रं, धेनवः स्वसरेषु वत्सं न, गीर्भिः अभि नवामहे ॥

अर्थ— १ तुम्हारे उस सुन्दर दर्शनीय, शत्रुके आक्रमण का प्रतिकार करनेवाले, उत्तम निवासक सोमरससे आनन्दित होनेवाले इन्द्रकी, गायें गोशालामें बछडेको चाहती हैं वैसे प्रेमसे, अपनी वाणीद्वारा हम स्तुति करते हैं ॥

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २
न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः ।
यद्दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ॥ ३
योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना विश्वा जाताभि मज्मना ।
आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन् ॥ ४
प्र हि रिरिक्ष ओजसा दिवो अन्तेभ्यस्परि ।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमनु स्वधां ववक्षिथ ॥ ५
नकिः परिष्टिर्मघवन्मघस्य ते यद्दाशुषे दशस्यसि ।
अस्माकं बोध्युचथस्य चोदिता मंहिष्ठो वाजसातये ॥ ६

२ द्युक्षं, सुदानुं, तविषीभिः आवृतं, गिरिं न, पुरुभोजसं, क्षुमन्तं, गोमन्तं शतिनं सहस्रिणं वाजं मक्षु ईमहे ॥

३ हे इन्द्र ! यत् मावते स्तुवते वसु दित्ससि, बृहन्तः वीडवः अद्रयः त्वा न वरन्ते । ते तत् नकिः आ मिनाति ॥

४ क्रत्वा शवसा उत दंसना योद्धा असि । मज्मना विश्वा जाता अभि (भवसि) । गोतमाः यं अजीजनन्, अयं अर्कः त्वा ऊतये आ ववर्तति ॥

५ हे इन्द्र ! (त्वं) ओजसा दिवः परि अन्तेभ्यः प्र रिरिक्षे हि । पार्थिवं रजः त्वा न विव्याच । (त्वं) स्वधां अनु ववक्षिथ ॥

६ हे मघवन् ! यत् दाशुषे दशस्यसि, ते मघस्य परिष्टिः नकिः । चोदिता मंहिष्ठः वाजसातये अस्माकं उचथस्य बोधि ॥

२ हम द्युलोकमें निवास करनेवाले, दान देनेयोग्य, अनेक शक्तियोंसे युक्त, पर्वतके समान, बहुतोंको भोजन देनेवाले, स्वयं अन्नरूप, गौओंके (दूधके) साथ मिले सैकडों और सहस्रोंको बल देनेवाले (सोमको) शीघ्रही चाहते है ॥

३ हे इन्द्र ! जब मेरे सदृश भक्तको तू धन देना चाहता है, तब बडे सुदृढ पर्वत भी तुझे नहीं रोक सकते । तेरे उस कर्मको कोई नहीं तोड सकता ॥

४ तू अपनी बुद्धि, बल और कर्मसे योद्धा है। तू अपने बलसे सब उत्पन्न पदार्थोंको घेरता है । गोतम गोत्रके लोगोंने जिसको बनाया, वह यह स्तोत्र तुझे सुरक्षाके लिये हमारी ओर आनेको (प्रवृत्त) करता है ॥

५ हे इन्द्र ! तू अपने बलसे द्युलोकके परले अन्तोंसे भी बहुतही बडा है। पृथ्वी और अन्तरिक्ष भी तुझे ढांक नहीं सकते, (तुमने हमारा दिया शरीर) धारक अन्न (देवोंको) दिया है ॥

६ हे धनसंपन्न इन्द्र । जो धन तू दाताको देना चाहता है उसकी मर्यादा नहीं है । (सबका) प्रेरक और (सबसे) बडा तू अन्नदानके समय हमारे स्तोत्रकी ओर ध्यान दे (श्रवण कर)॥

वीरताके गुण

इस सूक्तमें वीरताके साथ रहनेवाले निम्नलिखित गुण वर्णन किये गये हैं—

१. ऋतीषाट्— (ऋति-षाट्)- ' ऋति ' का अर्थ है= सेना, गति, शत्रुका हमला, शत्रुका आक्रमण, गाली, दुःख, आपत्ति, कष्ट । इनका प्रतिकार करना वीरका कर्तव्य है अतः उसको ' ऋति-षाट् ' कहते हैं (मं. १)

२ बृहन्तः वीडवः अद्रयः त्वा न वरन्ते— बडे स्थायी प्रबल पर्वत अथवा शत्रु तुझे नहीं रोक सकते ।

३. ते तत् नकिः आ मिनाति— तेरे शुभकर्मको कोई भी तोड नहीं सकता। तेरी योजना बीचहीमें कभी असफल नहीं होती । (मं. ३)

४. क्रत्वा शवसा उत दंसना योद्धा असि— पुरुषार्थ, बल और शत्रुनाशक सामर्थ्यकी दृष्टिसे तू निःसंदेह

योद्धावीर है ।

५. मज्मना विश्वा जाता अभि भयसि- अपने महत्त्वसे सब उत्पन्न हुई आपत्तियोंको दूर करता है, सब शत्रुओंको परास्त करता है ।

६. ऊतये त्वा आ ववर्तति— अपनी सुरक्षाके लिये सब तुझे बुलाते हैं। (मं. ४)

७. ओजसा (त्वं) प्र रिरिक्षे, त्वा न विव्याच- अपने बलसे तू सबसे बढकर श्रेष्ठ है, तेरेसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। (मं.५)

८. ते मघस्य परिष्टिः नकिः— तेरे धनकी कोई सीमा नहीं है, तेरे सामर्थ्यकी कोई सीमा नहीं है।

इस सूक्तके ये गुण अन्य इन्द्र सूक्तोंके वर्णनोंके साथ देखने योग्य हैं। इन्द्र सूक्त जिस क्षात्रवियाका उपदेश करते हैं वह विद्या यही है। ये गुण जो लोग अपनेमें बढा लेंगे वेही वीर बनकर दिग्विजयी होंगे ।

(८) वीर काव्य

(ऋ० १।६४) नोधा गौतमः । मरुतः । जगती, १५ त्रिष्टुप् ।

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः ।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥ १ ॥
ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥ २ ॥
युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।
दृळ्हा चिद् विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥ ३ ॥

अन्वय.— १ हे नोधः ! वृष्णे सुमखाय वेधसे शर्धाय मरुद्भ्य सुवृक्तिं प्र भर। धीरः सुहस्त्यः मनसा, विदथेषु आभुवः गिरः, अपः न, सं अञ्जे ॥

अर्थ— १ हे नोधा नामक ऋषि ! बल पानेके लिये, उत्तम यज्ञ करनेके लिये, ज्ञानी बननेके लिये, सांघिक बलके लिये, मरुतोंके उत्तम काव्य निर्माण कर। बुद्धिमान् और हाथका कुशल मैं मनसे (उनकी भक्ति करता हूँ और) युद्धोंमें प्रभावयुक्त भाषण, जल प्रवाहके समान, (धारा प्रवाह) करता हूं ॥

२ ते ऋष्वासः उक्षणः असुराः अरेपसः, सूर्या इव शुचयः द्रप्सिनः न घोरवर्पसः रुद्रस्य मर्याः दिवः जज्ञिरे ॥

२ वे ऊँचे बडे (अपने) जीवनका अर्पण करनेवाले पापरहित और पवित्रता करनेवाले, सूर्य (किरणोंके) समान शुद्धता करनेवाले (द्रप्सिनः) रसपान करनेवाले सामर्थ्ययुक्त वीरोंके समान बडे शरीरवाले, मानो रुद्रके मरनेके लिये सिद्ध हुए ये वीर स्वर्गसेही प्रकट हुए हैं ॥

३ युवानः अजरा· अभोग्घन अध्रिगाव· पर्वता इव रुद्रा· ववक्षुः, पार्थिवा दिव्यानि विश्वा भुवनानि दृळ्हा चिद् मज्मना प्र च्यावयन्ति ॥

३ युवा जरारहित, कृपणोंको दूर करनेवाले, आगे बढनेवाले, पर्वतोंके समान अपने स्थानमें स्थिर रहनेवाले, शत्रुको रुलानेवाले ये वीर (जनताको सहायता) पहुंचाते हैं। ये वीर पृथ्वीपर रहनेवाले, द्युलोकमें और अन्य सब भुवनोंमें रहनेवाले सभी सुदृढ शत्रुओंको अपने बलसे उखाड देते हैं ॥

*

चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥ ४
ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान् विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥ ५
पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद् विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥ ६
महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ॥ ७
सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः ।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समित् सबाधः शवसाहिमन्यवः ॥ ८

---

४ वपुषे चित्रैः आञ्जिभिः वि अञ्जते, वक्षःसु शुभे रुक्मान् अधि येतिरे, एषां अंसेषु ऋष्टयः नि मिमृक्षुः, नरः दिवः स्वधया साकं जज्ञिरे ॥

५ ईशानकृतः धुनयः रिशादसः तविषीभिः वातान् विद्युतः अक्रत, परिज्रयः धूतयः दिव्यानि ऊधः दुहन्ति, भूमिं पयसा पिन्वन्ति ॥

६ सुदानवः आभुवः मरुतः विदथेषु घृतवत् पयः अपः पिन्वन्ति, अत्यं न वाजिनं मिहे वि नयन्ति, स्तनयन्तं उत्सं अक्षितं दुहन्ति ॥

७ महिषासः मायिनः चित्रभानवः गिरयः न, स्वतवसः रघुष्यदः हस्तिनः मृगा इव, वना खादथ, यत् आरुणीषु तविषीः अयुग्ध्वम् ॥

८ प्रचेतसः सिंहा इव नानदति, पिशा इव सुपिशः विश्ववेदसः क्षपः जिन्वन्तः शवसा अहिमन्यवः पृषतीभिः ऋष्टिभिः सबाधः सं इत् ॥

४ शरीरकी सुन्दरता बढानेके लिये भान्ति भान्तिके आभूषणोंसे (अपने शरीर) सजाते हैं। छातियोंपर शोभा बढानेके लिये सुवर्णके हारोंको धारण करते हैं। इनके कन्धोंपर भाले चमकते हैं। ये नेता वीर द्युलोकसे अपने धारक बलके साथ प्रकट हुए हैं॥

५ राजाके निर्माणकर्ता, शत्रुको हिलानेवाले, शत्रुका पूर्ण नाश करनेवाले अपनी शक्तियोंसे वायु और बिजलियोंको निर्माण करते हैं (प्रचण्ड हलचल मचाते हैं।) चारों ओर वेगपूर्वक चढाई करनेवाले, शत्रुको उखाडनेवाले दिव्य (मेघ) स्तनोंका दोहन करते हैं और पृथ्वीको दूध (या जल) से भरपूर करते हैं॥

६ अच्छे दानी प्रभावशाली मरुद्वीर युद्धस्थलोंमें घीके साथ दूध तथा जलको भरपूर रखते हैं। घोडेके समान बलयुक्त मेघको वर्षाके लिये विशेष ढंगसे घुमाते हैं, पश्चात् गर्जनेवाले झरनेरूप मेघसे अक्षय जलका दोहन करते हैं॥

७ भैंसे जैसे बलवान् निपुण कारीगर अतितेजस्वी पर्वतोंके समान अपने बलसे अपने स्थानमें स्थिर रहनेवाले, (परंतु समयपर) शीघ्र दौडनेवाले (हे वीरों तुम) हाथियों और मृगोंके समान, वनोंको भी खा जाते हो, (वनोंको भी तोड देते हो), तुम तो लाल रंगकी घोडियोंमेंसे केवल बलवाली घोडियोंकोही (अपने रथोंके साथ) जोत देते हो॥

८ उत्कृष्ट ज्ञानी वीर, सिंहोंके समान गर्जना करते हैं। आभूषण धारण करनेवालोंके समान, सुन्दर भूषण धारण करनेवाले, सब धनों और ज्ञानोंसे युक्त होकर शत्रुदलको भगा देनेवाले, (जनताको) संतुष्ट करनेवाले, बलशाली होनेके कारण सदा उत्साही वीर धब्बोंवाली घोडियोंके साथ और हथियारोंके साथ पीडित (जनोंकी सुरक्षा करनेके लिये) त्वरासे इकट्ठे होते हैं॥

रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ९
विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः १०
हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो३ न पर्वतान् ।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ११
घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये १२
प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति १३

---

९ हे गणश्रियः नृषाचः शूराः शवसा अहिमन्यवः मरुत ! रोदसी आ वदत । वन्धुरेषु रथेषु, अमतिः न, दर्शता विद्युत् न, वः आ तस्थौ ॥

१० रयिभिः विश्ववेदसः समोकसः तविषीभिः संमिश्लासः विरप्शिनः अस्तारः अनन्तशुष्माः वृषखादयः नरः गभस्त्योः इषुं दधिरे ॥

११ पयोवृधः मखाः अयासः स्वसृतः ध्रुवच्युतः दुध्रकृतः भ्राजदृष्टयः मरुतः आपथ्यः न, पर्वतान् हिरण्ययेभिः पविभिः उज्जिघ्नन्ते ॥

१२ घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि, श्रिये रजस्तुरं तवसं वृषणं ऋजीषिणं मारुतं गणं सश्चत ॥

१३ हे मरुतः ! वः ऊती यं प्र आवत, स मर्तः शवसा जनान् अति नु तस्थौ, अर्वद्भिः वाजं नृभिः धना भरते, पुष्यति, आपृच्छ्यं क्रतुं आ क्षेति ॥

९ हे *समुदायमें शोभनेवाले, जनताकी सेवा करनेवाले शूर*-वीर, बलके कारण अधिक उत्साहसे युक्त, मरुत् वीरो ! द्युलोक और भूलोकमें तुम्हारा वर्णन हो रहा है । उत्तम आसनवाले सुन्दर आकारवाले रथमें बिजलीके समान तेजस्वी तुम्हारा तेज फैलता है ॥

१० अपने पास उत्तम धनोंके रखनेके कारण सर्व धनोंसे युक्त, एकही घरमें रहनेवाले, अनेक बलोंसे युक्त, विशेष सामर्थ्यवान् शत्रुपर अस्त्र फेंकनेवाले, असीम प्रभाववाले बडे आभूषण धारण करनेवाले, नेतालोग हाथोंमें बाण धारण करते हैं ।

११ दूध पीकर पुष्ट होनेवाले, यज्ञ करनेवाले, प्रगति करनेवाले, अपनी इच्छासे गति करनेवाले, स्थिर शत्रुओंको भी उखाडनेवाले, दूसरोंसे न घेरे जानेवाले, तेजस्वी हथियारवाले, मरुत् वीर, *मार्गपर चलनेवालेके समानही, पर्वतोंको भी सुवर्णमय* रथोंके पहियोंसे पार कर देते हैं ॥

१२ शत्रुको परास्त करनेवाले, पवित्रता करनेवाले, वनमें घूमनेवाले, विशेष हलचल करनेवाले, रुद्रके पुत्रस्वरूप इस वीर समूहकी हम प्रार्थनापूर्वक प्रशंसा करते हैं । धन प्राप्त करनेके लिये, धूली उडानेवाले बलिष्ठ वीर्यवान् और सोमरस पीनेवाले इन वीर मरुतोंको प्राप्त होओ ॥

१३ हे मरुत् वीरो, तुम अपनी संरक्षक शक्तिके द्वारा जिसकी सुरक्षा करते हो, वह मनुष्य बलमें अन्य मनुष्योंसे बढकर श्रेष्ठ बनता है । घुडसवारोंसे अन्न प्राप्त करता है, वीरोंकी सहायतासे धन पाता है, पुष्ट होता है और वर्णनीय कर्म करता है ॥

चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥ १४
नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १५

१४ हे मरुतः ! मघवत्सु चर्कृत्यं पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं धनस्पृतं उक्थ्यं विचर्षणिं तोकं तनयं धत्तन, शतं हिमाः पुष्येम ॥

१५ हे मरुतः! अस्मासु स्थिरं वीरवन्तं ऋतीषाहं शतिनं सहस्रिणं शूशुवांसं रयिं नु धत्त, प्रातः धियावसुः मक्षु जगम्यात् ॥

१४ हे मरुत् वीरो! धनिकोंमें उत्तम कर्म करनेवाला, युद्धोंमें विजयी, तेजस्वी, बलिष्ठ धनसे युक्त, वर्णनीय, जनता का हितकारी पुत्र और पौत्र प्राप्त हो और हम सौ वर्षतक पुष्ट होते रहें ॥

१५ हे मरुतो! हममें स्थायी, वीरोंसे युक्त, शत्रुका पराभव करनेवाला, सैकडों और सहस्रों प्रकारका बढनेवाला धन दे दो। हमारे पास प्रातःकालही बुद्धिद्वारा कर्मोंका संपादन करनेवाला वीर शीघ्रही आजावे ॥

वीरोंका कर्म

यह वीर काव्य है। इसमें वीरोंके कर्मोंका उत्तम वर्णन है। इस काव्यका प्रत्येक शब्द वीरोंके शुभ गुणोंका वर्णन करता है। मंत्रोंका सरल अर्थ दिया है और वहीं प्रत्येक पदका अर्थ स्पष्ट कर दिया है, इसलिये इसका अधिक स्पष्टीकरण करनेकी आवश्यकता नहीं है। जो भी मंत्र पाठक पढकर देखेंगे वह निःसंदेह बोधप्रद और वीरताकी उत्तेजना करनेवाला प्रतीत होगा।

बल प्राप्त करना और बढाना, ज्ञान प्राप्त करना और बढाकर उसका फैलाव करना, संघशक्ति बढाना, प्रत्येक कर्म कुशलतासे और पूर्णतासे करना, युद्धभूमिपर अपना प्रभाव जमाना, पापरहित हो कर पवित्र जीवन व्यतीत करना, शरीरको हृष्टपुष्ट बलवान् और सामर्थ्यवान् रखना और उसको सर्वजन-हितकारी कार्योंमें लगाना, युद्धमें अपने स्थानमें सुस्थिर रहना, शत्रुका कैसा भी हमला आ जाय, उससे न डरते हुए अपने स्थानमें रहना, पर जिस समय शत्रुपर हमला किया जाय उस समय शत्रु कितना भी बलवान् हुआ तो भी उसको उखाडकर फेंकना, इत्यादि अनेक बातें इन मंत्रोंमें हैं. जो मानवोंको सदा ध्यानमें रखनेयोग्य हैं। इन मंत्रोंका प्रत्येक शब्द मननीय और बोधप्रद है। इसलिये पाठक प्रत्येक मंत्रका एक एक शब्द मननपूर्वक देखें और उसका अभ्यास करके बोध प्राप्त करें।

वीरता बढानेवाला यह सूक्त है। इन्द्रके साथ मरुतोंका संबंध है, वह वीरताकाही संबंध है।

(नवम मण्डल)

(९) सोमरस

(ऋ० ९।९३) नोधा गौतमः। पवमानः सोमः। त्रिष्टुप्।

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ १

अन्वयः- १ साकमुक्षः स्वसारः मर्जयन्तः दश धीतयः धीरस्य धनुत्रीः। हरिः सूर्यस्य जाः परि अद्रवत्। अत्यः वाजी न द्रोणं ननक्षे ॥

अर्थ— १ साथ साथ जलका छिडकाव करनेवाली, स्वयं हलचल करनेवाली, शुद्धता करनेवाली दस अंगुलियाँ बुद्धिदाता (सोम) को प्रेरणा करनेवाली हैं। हरे रंगका यह (सोम) सूर्यसे उत्पन्न दिशाओंके चारों ओर भ्रमण कर रहा है। गतिशील घोडेके समान (यह सोम) द्रोणके पास पहुंचता है ॥

सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः　　२
उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः　　३
स नो देवेभिः पवमान रदेन्दो रयिमश्विनं वावशानः ।
रथिरायतामुशती पुरंधिरस्मद्र्यगा दावने वसूनाम्　　४
नू नो रयिमुप मास्व नृवन्तं पुनानो वाताप्यं विश्वश्चन्द्रम् ।
प्र वन्दितुरिन्दो तार्यायुः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्　　५

---

२ वावशानः वृषा पुरुवारः, मातृभिः शिशुः न, अद्भिः से दधन्वे । मर्यः योषां न, निष्कृतं अभि यन् कलशे उस्रियाभिः सं गच्छते ॥

३ उत अघ्न्यायाः ऊधः प्र पिप्ये । सुमेधाः इन्दुः धाराभिः सचते । गावः चमूषु मूर्धानं पयसा, निक्तैः वसुभिः न, अभि श्रीणन्ति ।

४ हे पवमान ! सः (त्वं) नः देवेभिः रद । हे इन्दो ! वावशानः अश्विनं रयिं (प्रयच्छ)। रथिरायतां उशती पुरंधिः वसूनां दावने अस्मद्र्यक् आ (गच्छतु) ॥

५ पुनानः (त्वं) नः नु नृवन्तं रयिं उप मास्व । विश्वचन्द्रं वाताप्यं (कुरु) । हे इन्दो ! वन्दितुः आयुः प्र तारि । धियावसुः प्रातः मक्षु जगम्यात् ॥

२ देवताओंको प्राप्त होनेकी इच्छावाला बलवान अनेकों द्वारा स्वीकारने योग्य (सोम), मातासोंसे जैसा पुत्र (पुष्ट किया जाता है वैसा) जलोंके साथ मिलाया जाता है । पुरुष जैसा स्त्रीके पास जाता है, वैसा शुद्ध स्थानके पास जाता हुआ (सोम) कलशमें गौओं (के दूध) के साथ मिलता है ॥

३ और गौका दुग्धाशय (औषधिरूप सोम) पुष्ट करता है । उत्तम मेधा बुद्धि बढानेवाला सोम (दुग्धकी) धाराओंसे संमिश्रित होता है । गौवें पात्रोंमें रहे (सोमको) अपने दूधसे, धोये वस्त्रोंसे (आच्छादित करनेके) समान, आच्छादित करती हैं (मिलाती हैं) ॥

४ हे स्वच्छ होनेवाले (सोम)! वह तू हमें देवोंके साथ (दान) दे । हे सोम ! (दानकी) इच्छा करता हुआ तू घोडोंसे युक्त धन (हमें) दे । महारथी वीरोंको चाहनेवाली तेरी बुद्धि धनोंका दान करनेके लिये हमारे पास आवे ॥

५ छाना जानेवाला (तू सोम) हमारे पासही वीरोंसे युक्त धन ले आ । सबको आनंद देनेवाला वायुको प्राप्त होनेका (कार्य कर) । हे सोम ! (तुम्हारे) भक्तकी आयु बढाओ । बुद्धिसे कर्म करनेवाला सबेरे शीघ्रही (हमारे पास) आ जावे ॥

सोमरस

इस सूक्तमें सोमरसको कैसा तैयार किया जाता है सो बताया है । दसों अंगुलियोंसे सोमपर जल छिडका जाता है, बारंबार उसको स्वच्छ किया जाता है, अंगुलियोंसे दबानेसे उसका रस चारों ओरसे बाहर आने लगता है । पश्चात वह छाना जाता है और कलशमें भरकर रखा जाता है, उस समय गाइयोंका दूध उसमें मिलाते हैं । सोमरसका रंग हरा होता है, उसका दूध जैसा श्वेत रंग होने तक दूध उसमें मिलाया जाता है । तब वह दूध जैसा दीखने लग जाता है । फिर उसको एक बर्तनसे दूसरे बर्तनमें उण्डेलते हैं, जिससे उसमें (वाताप्यः=वात+आप्यं) वायु मिलता है और वह (विश्व-चन्द्रः) सबको आनंद देनेवाला होता है । यह सोमरस आयु बढानेवाला है । बल बढाता है और शरीरकी पुष्टि भी करता है ।

यह सब वर्णन पाठक इस सूक्तमें देख सकते हैं ।

नोधा ऋषिका दर्शन समाप्त

नोधा ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(८)

पराशर ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका बारहवाँ अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औंध, [जि० सातारा]

संवत् १००३

मूल्य १) रु०

पराशर ऋषिका तत्त्वज्ञान

ऋग्वेदमें पराशर ऋषिके मंत्र प्रथम मण्डलके बारहवें अनुवाकमें हैं और सोमके मंत्र नवम मण्डलमें ९७ वें सूक्तमें हैं, इनका ब्यौरा ऐसा है–

सूक्तवार मन्त्र-संख्या

ऋग्वेद प्रथममण्डल

द्वादशवाँ अनुवाक

सूक्त	देवता	मंत्रसंख्या	छन्द	
६५	अग्निः	१०	द्विपदा विराट्	
६६	,,	१०	,,	
६७	,,	१०	,,	
६८	,,	१०	,,	
६९	,,	१०	,,	
७०	,,	११	,,	
७१	,,	१०	त्रिष्टुप्	
७२	,,	१०	,,	
७३		१०	,,	९१
	नवम-मंडल			
९७	पवमानः सोमः	१४	,,	१४

कुलमंत्र-संख्या १०५

अर्थात् पहिले ६१ मंत्र चार चरणोंके बनाये तो ये केवल ३०॥ ही होंगे। द्विपदा विराट् छन्दका मंत्र आधे मंत्रके समान ही होता है।

अथर्ववेदमें इस ऋषिके मंत्र नहीं हैं।

'पराशरः' पद निघण्टु ४।३ में पदनामोंमें लिखा है। इसका विवरण श्री. यास्कमुनि निरुक्तमें ऐसा लिखते हैं–

पराशरः पराशीर्णस्य वसिष्ठस्य स्थविरस्य जज्ञे। 'पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः' (ऋ. ७।१८।२१) इत्यपि निगमा भवति। इन्द्रोऽपि पराशर उच्यते, पराशातयिता यातूनाम्। 'इन्द्रो यातूनां अभवत् पराशरः' (ऋ. ७।१०४।२१) इत्यपि निगमो भवति॥ निरुक्त. [६।५।३०।(१२१)]

अत्यंत वृद्ध वसिष्ठका (माना हुआ) पुत्र पराशर है। इन्द्रको भी पराशर कहते हैं, क्योंकि वह शत्रुओंका बडा दमन करता है। इस विषयमें दो मंत्र देखनेयोग्य हैं–

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः। न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान्॥ (ऋ. ७।१८।२१)
इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम्। अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं

धनका नाश होता है, अथवा (मिट्टीके) बर्तन जैसे तोडे जा सकते हैं," यहां इन्द्रका विशेषण 'परा-शर' (दूर करके नाशकर्ता) इस अर्थका आया है। पूर्व मंत्रमें यह नाम ऋषिका नाम है और यहां यह पद इन्द्रका सामर्थ्य बता रहा है। ऋग्वेदमें इन दोही मंत्रोंमें 'पराशर' पद आया है। अथर्ववेदमें दो वार पराशर पद है वे मंत्र अब देखिये—

अव मन्युरवायताव बाहू मनोयुजा।
पराशर त्वं तेषां पराञ्चं शुष्ममर्दयाधा नो
रयिमा कृधि ॥ (अ. ६।६५।१)

अथर्ववेदमें आया दूसरा मंत्र, ऊपर दिया दूसरा मंत्रही है, अतः उसके यहां पुनः लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

'क्रोध दूर हो, शस्त्र दूर रहें, मनसे (मारनेके लिये) प्रेरित हुए हाथ दूर हों, हे (पराशर) दूरसे शत्रुको मारनेवाले वीर! तू उन शत्रुओंके बलको दूर करके नष्ट कर और हमें धन दे।' यहां भी दूरसे शत्रुका नाश करनेवाले वीर इन्द्रकाही यह वर्णन है। यह पराशर ऋषिका वाचक पद नहीं है। अन्यत्र संहिताओंमें पराशर पद नहीं है। ऊपर दिये मंत्र 'पराशर' का अर्थ तथा उसकी व्युत्पत्ति बताते हैं। **'यातूनां पराशरः'** (शत्रुओंका नाश करनेवाला), **'परा शुष्मं अर्दय'** (दूर करके शत्रुके बलका नाश कर) ये मंत्रभाग 'परा-शर' की व्युत्पत्ति तथा अर्थ बता रहे हैं।

पराशीर्णस्य स्थविरस्य जज्ञे ॥ (६।३०)

इसके अर्थका अक्षरशः ग्रहण करते हुवे कई लोग **पराशरको वसिष्ठ** पुत्र मानते हैं, परन्तु यह मानना ठीक नहीं। आगे लिखी हुई कथासे ऐसा निश्चय हो जाता है कि, वृद्धावस्थामें सब पुत्रोंका निधन होनेसे दुःखी होगये हुवे **वसिष्ठको पराशर** आधारभूत हुवे। यही निश्चय ठीक है। महाभारतमें भी इसीका अनुवाद किया है।

एक वार पुत्र निधनसे विरक्त होकर **वसिष्ठजी** अपने आश्रमसे चल पडे। वसिष्ठके मृत पुत्र **शक्तिकी** विधवा पत्नी **अदृश्यन्ती** भी उनके पीछे चलने लगी। अचानक **वसिष्ठजीको** ज्ञात हुवा कि अपने पीछेसे कहींसे वेदध्वनि सुनाई दे रही है। ध्यान देकर सुननेपर वे समझ गये कि **अदृश्यन्तीके** उदरमें जो गर्भ है, वही वेदगान कर रहा है। तब उन्हें विश्वास आगया कि उनका वंश अभी जीवित है। वे वापस लौटे। कुछ दिनोंके बाद '**अदृश्यन्ती**' प्रसूत होकर **पराशरजीका** जन्म हुवा। इनका लालन-पालन इनके पितामह **वसिष्ठजीने** ही किया। इसलिये ये **वसिष्ठजीको** ही "पिताजी" कहकर यह पराशर बालपनमें पुकारा करते। **अदृश्यन्तीने** कईबार इन्हें समझाया कि वे तुम्हारे दादा हैं, नकि पिता हैं। परन्तु उस बिचारे छोटे बच्चेको दादा और पिता इनका भेद क्या मालूम? परन्तु **पराशर** बडे हो जानेपर **अदृश्यन्तीने** एक दिन उन्हें राक्षसके द्वारा मृत हो गये हुवे उनके पिता **शक्तिकी** कहानी सुनाई। **पराशरजी** अत्यन्त क्रुद्ध होकर सारे विश्व नाश करनेके लिये प्रवृत्त हुवे। जब **वसिष्ठजीको** इस बातका पता चला, तब उन्होंने **पराशरजीको और्वकी** कथा सुनाकर इस निश्चयसे परावृत्त किया। फिर भी **पराशरजीके** मनमें राक्षसोंके विषयमें जो क्रोध निर्माण हुवा था, वह शान्त न होने पाया। आगे चलकर इन्होंने सर्व आबाल वृद्ध राक्षसोंका वध करनेके हेतुसे राक्षस-सत्रका प्रारम्भ किया। इस बार **वसिष्ठजी** कुछ नहीं बोले। परन्तु निरपराध राक्षसोंका संरक्षण करनेके लिये **पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, महाक्रतु** इत्यादि बडे बडे मुनि वहां आ पहुंचे। महर्षि **पुलस्त्यने पराशरजीको** कहा कि निरपराध, निर्दोष राक्षसोंकी हत्या निष्कारण ही हो जायगी। यह बात उचित नहीं है। तब **वसिष्ठजीने** अपने पौत्रको उपदेश कर उस राक्षससत्रसे निवृत्त किया। फिर **पुलस्त्यजीने** सन्तुष्ट होकर **पराशरको** "तुम सकलशास्त्रपारगत और पुराणवक्ता हो जाओगे।" ऐसे दो वर दिये।

पुराणसंहिताकर्ता भवान्वत्स भविष्यति।
देवतापारमार्थ्यं च यथावद्वेत्स्यते भवान् ॥
(विष्णु० १।२६)

पराशरजीने राक्षससत्रके लिये जो अग्नि सिद्ध किया था उसे उन्होंने हिमाचलके उत्तरी दिशाके एक अरण्यमें भर दिया। ऐसा कहते हैं कि वह अग्नि आज भी पर्वदिनपर राक्षस, पाषाण और वृक्षोंको खाता है।

ततो दृष्ट्वाऽऽश्रमपदं रहितं तैः सुतैर्मुनिः।
निर्जगाम सुदुःखार्तः पुनरप्याश्रमात्ततः ॥ १ ॥
अथ शुश्राव संगत्या वेदाध्ययननिःस्वनम् ॥१३॥
अनुव्रजति को न्वेष मामित्येवाथ सोऽब्रवीत् ॥१४॥

अदृश्यन्त्युवाच—
शक्तेर्भार्या महाभाग तपोयुक्ता तपस्विनम् ।
अहमेकाकिनी चापि त्वया गच्छामि नापरः ॥१५॥
वसिष्ठ उवाच—
पुत्रि कस्यैष साङ्गस्य वेदस्याध्ययनस्वनः ॥ १६ ॥
अदृश्यन्त्युवाच—
अयं कुक्षौ समुत्पन्नः शक्तेर्गर्भः सुतस्य ते ॥१७॥
गन्धर्व उवाच—
एवमुक्तस्तया हृष्टो वसिष्ठः श्रेष्ठभागृषिः ।
अस्ति सन्तानमित्युक्त्वा मृत्योः पार्थ न्यवर्तत १८ ·
(म. आ. १९३)

गन्धर्व उवाच—
आश्रमस्था ततः पुत्रमदृश्यन्ती व्यजायत ।
शक्तेः कुलकरं राजन् द्वितीयमिव शक्तिनम् ॥१॥
जातकर्मादयस्तस्य क्रियाः स मुनिसत्तमः ।
पौत्रस्य भरतश्रेष्ठ चकार भगवान्स्वयम् ॥२॥
परासुः स यतस्तेन वसिष्ठः स्थापितो मुनिः ।
गर्भस्थेन ततो लोके पराशर इति स्मृतः ॥३॥
स तात इति विप्रर्षिं वसिष्ठं प्रत्यभाषत ॥५॥
तातेति परिपूर्णार्थं तस्य तन्मधुरं वचः ।
अदृश्यन्त्यश्रुपूर्णाक्षी शृण्वन्ती तमुवाच ह ॥६॥
मा तात तात तातेति ब्रूह्येनं पितरं पितुः ।
रक्षसा भक्षितस्तात तव तातो वनान्तरे ॥७॥
स एवमुक्तो दुःखार्तः सत्यवागृषिसत्तमः ।
सर्वलोकविनाशाय मतिं चक्रे महामनाः ॥९॥
तं तथा निश्चितात्मानं स महात्मा महातपाः ॥१०॥
वसिष्ठो वारयामास ... ... ॥११॥
(म. आ. १९४)

वसिष्ठ उवाच—
तस्मात्त्वमपि भद्रं ते न लोकान्हन्तुमर्हसि ॥१३॥
(आ. १९६)

एवमुक्तः स विप्रर्षिर्वसिष्ठेन महात्मना ।
न्ययच्छदात्मनः क्रोधं सर्वलोकपराभवात् ॥१॥
ईजे च स महातेजाः सर्ववेदविदां वरः ।
ऋषी राक्षससत्रेण शाक्तेयोऽथ पराशरः ॥२॥
न हि तं वारयामास वसिष्ठो रक्षसां वधात् ॥४॥
तथा पुलस्त्यः पुलहः क्रतुश्चैव महाक्रतुः ।
तत्राजग्मुरमित्रघ्न रक्षसां जीवितेप्सया ॥९॥
पुलस्त्य उवाच—
कच्चित्तातापविघ्नं ते कच्चिन्नन्दसि पुत्रक ।
अजानतामदोषाणां सर्वेषां रक्षसां वधात् ॥११॥
गन्धर्व उवाच—
एवमुक्तः पुलस्त्येन वसिष्ठेन च धीमता ।
तदा समापयामास सत्रं शाक्तो महामुनिः ॥२२॥
सर्वराक्षससत्राय संभृतं पावकं तदा ।
उत्तरे हिमवत्पार्श्वे उत्ससर्ज महावने ॥२३॥
स तत्राद्यापि रक्षांसि वृक्षानश्मन एव च ।
भक्षयन्दृश्यते वन्हिः सदा पर्वणि पर्वणि ॥२४॥
(म. आ. १९७)

एकबार जबकि पराशरजी तीर्थयात्रा कर रहे थे, उन्होंने यमुनाके जलमें नाव चलाती हुई सत्यवतीको देखा। पराशरजी उसपर लुब्ध हुवे और उन्होंने उसके पास कामपूर्तिकी इच्छा प्रकट की, उन्होंने चारों ओर धूंवा निर्माण किया। सत्यवतीने कौमार्यभंग होनेकी शंका प्रकट करनेपर इन्होंने तपश्चर्याके बलपर उसे दूर किया और सत्यवतीके शरीरको मछलियाँ पकडनेके कारण जो दुर्गंधि आया करती थी उसे हटाकर उसके शरीरकी सुगंधि एक योजनतक पहुंचेगी ऐसी व्यवस्था की। इन दोनोंके समागमसे वेद व्यासजी जन्म पा चुके। वे द्वीपमें पैदा हो गये थे, इसलिये उन्हे द्वैपायन कहने लगे।

भीष्मस्तु... सत्यवतीमानयामास मातरं ।
यामाहुः कालीति । तस्यां पूर्वं पराशरात्कन्यागर्भो द्वैपायनः॥ (म. आ. ६३।५१,५२)
सत्यवतीकाही दूसरा नाम काली है।

महाभारतमें पराशरजीके धर्मविषयक मतोंका उल्लेख बडे गौरवके साथ किया हुवा है।

वृद्धः पराशरः प्राह धर्मं शुभ्रमनामयम् ॥
(म. अ. १४६.४)

इन्होंने युधिष्ठिरको रुद्रमाहात्म्य कथन किया है। परीक्षितके प्रायोपवेशनके समयपर ये गंगातटपर उपस्थित हुवे थे। ऐसा भी उल्लेख पाया जाता है कि आप इन्द्रसभामें उपस्थित थे।

पराशरः पर्वतश्च । (म. स. ७।१०)

इनके वंशमें **वसिष्ठ, मित्रावरुण** तथा **कुण्डिन** इन तीन प्रवरोंके **गौरपराशर, नीलपराशर, कृष्णपराशर, श्वेतपराशर, श्यामपराशर** और **धूम्रपराशर** एवं छः भेद हो गये। इन छः में फिर पाच उपभेद हुवे। जिनके नाम-

गौरपराशर— कांडशय (काण्डूशय), गोपालि, जैह्मप (समय), भौमतापन (समतापन), वाहनप (वाहयौज)

नीलपराशर— केतुजातय, खातेय, प्रपोहय वाह्ममय, हर्यश्वि

कृष्णपराशर— कपिमुख (कपिश्रवस्), काकेयस्थ (कार्केय) कार्ष्णायन जपातय (ख्यातपायन), पुष्कर

श्वेतपराशर— इषीकहस्त, उपय, बालेय, श्राविष्ठायन, स्वायष्ट।

श्यामपराशर— क्रोधनायन, क्षैमि, बादरि, वाटिका, स्तब

पराशरजीने जनकको किये हुवे तत्वज्ञानके उपदेशका अनुवादही **भीष्मजीने युधिष्ठिरसे** महाभारतके शान्ति पर्वमें २९६ वे अध्यायसे लेकर ३०४ वें अध्यायतक कहा है, जिसका कि नाम **पराशर** गीता है। **सारस्वतने पराशरजीको** और उन्होंने **मैत्रेयको** विष्णुपुराण कहा। भागवतमें कहा है कि सांख्यायन ऋषीने **पराशर** और **बृहस्पति** इन्हें भागवत पुराण कथन किया। आगे चलकर **पराशरजीने मैत्रेयको** भागवत कथन किया।

पराशरजीके नामपर और भी कुछ ग्रन्थ हैं।

(१) बृहत्पाराशर होराशास्त्र। (१२००० श्लोकोंका ज्योतिषविषयक ग्रन्थ)

(२) लघु पाराशरी।

(३) बृहत्पाराशरीय धर्मसंहिता। (३३०० श्लोक)

(४) पाराशर धर्मसंहिता। (स्मृति)

(५) पराशरोदित वास्तुशास्त्रम्। (जिसका कि उल्लेख विश्वकर्माने किया है।)

(६) पाराशर संहिता। (वैद्यकशास्त्र)

(७) पराशरोपपुराण (माधवाचार्यद्वारा इसके कुछ उद्धरण लिये गये हैं।)

(८) पराशरोदितं नीतिशास्त्रम्। (जिसका उल्लेख विष्णुशर्मा, तथा चाणक्यने किया है।)

(९) पराशरोदित केवलसारम्।

पराशरजीने अपने ज्योतिष-ग्रन्थमें वसन्तसम्पातस्थितिका वर्णन किया है। उस परसे यह अनुमान हो सकता है कि वसन्तसम्पातका वर्णन करनेवाला **पराशरजी** ख्रिस्ताब्दिपूर्व तेरहवे अथवा चौदहवे शतकमें जन्म पा चुके होंगे।

पराशरजी स्मृतिकार हैं। इनकी स्मृति याज्ञवल्क्यस्मृतिके जैसीही प्राचीन है। धर्मशास्त्रके अनेक लेखकोंने उसे प्रमाण मानकर उसके वचन उद्धृत किये हैं। गरुडपुराणमें इस स्मृतिका साराश दिया हुवा है। **कौटिल्यने** राजधर्मपर विवेचन करते समय इसका उल्लेख किया है। इस स्मृतिमें **१२** अध्याय तथा ५९२ श्लोक हैं। उनमें आचार और प्रायश्चित्त इनका विचार किया है। इस स्मृतिमें क्षत्रियोंके कर्तव्योंके सम्बन्धमें अधिक विवेचन किया है। यह स्मृति कलियुगके लिये है। कृत, त्रेता, द्वापार और कलि इन युगोंमें क्रमवार **मनु, गौतम, शंख-लिखित** और **पराशर** ये ऋषि धर्मरक्षा करेंगे, ऐसा भी एक विधान इसमें है।

कलौ पाराशरः स्मृतः।

पराशरजीने पुत्रोंके औरस, क्षेत्रज, दत्तक तथा कृत्रिम ऐसे चार भेद किये हैं। सती होनेके सम्बन्धमें भी इन्होंने कुछ विचार प्रकट किये हैं। इनकी स्मृतिमें मनु आदि धर्मशास्त्रकारोंका उल्लेख है। **मनुके** उल्लेखमें इन्होंने उन्हें सर्व शास्त्रोंके ज्ञाता बताया है। इन्होंने वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र तथा स्मृति, इनका भी विचार किया है। अपने स्मृतिके ग्यारहवे अध्यायमें इन्होंने कुछ ऋग्वेदके तथा शुक्ल यजुर्वेदके मन्त्र उद्धृत किये हैं। मिताक्षरा, अपरार्क, स्मृतिचन्द्रिका, हेमाद्रि इत्यादि ग्रन्थकारोंने इनकी स्मृतिके उल्लेख किये हुवे हैं। विश्वरूपने भी कई बार इनकी स्मृतिका उल्लेख किया है, इससे अनुमान होता है कि, नौवे शतकके पूर्वार्धमें इस स्मृतिके वचन प्रमाणभूत माने जाते थे। जीवानन्द संग्रहमें वृद्धपाराशर संहिता पायी जाती है। उसमें १२ अध्याय तथा ३३०० श्लोक हैं। यह संहिता **पराशरजीने** सुव्रतसे कही है। आज जो पराशर स्मृति उपलब्ध है, वह **सुव्रतने** की हुई संक्षिप्त आवृत्ति होगी। बृहत्पाराशर यह ग्रन्थ इस स्मृतिके ऽथानका हो सकता है। **अपरार्क** और **माधवने** वृद्ध पाराशरका उल्लेख किया

हुवा है। और हेमाद्रि तथा भट्टोजी दीक्षित ने भी ज्योतिःपराशरका उल्लेख किया है।

धूम्रपराशर– खल्यायन, तन्ति (जंति), तैलेय, यूथप, वार्ष्णायन.

इन सबके प्रवर **पराशर, वसिष्ठ और शक्ति** ये तीन हैं।

काण्डशयो वाहनपो जैह्मपो भौमतापनः।
गोपालिरेषां पञ्चम एते गौराः पराशराः ॥३३॥
प्रपोहया वाह्यमयाः ख्यातेयाः कौतुजातयः।
हर्यश्विः पञ्चमो येषां नीला ज्ञेयाः पराशराः॥३४॥
कार्ष्णायनाः कपिमुखाः काकेयस्था जपातयः।
पुष्करः पञ्चमश्चैषां कृष्णा ज्ञेयाः पराशराः ॥३५॥
श्राविष्ठायनवालेयाः स्वायष्टाश्चोपयाश्च ये।
इषीकहस्तश्चैषे वै पञ्च श्वेताः पराशराः ॥३६॥
वाटिको वादरिश्चैव स्तम्बा वै क्रोधनायनाः।
क्षैमिरेषां पञ्चमस्तु एते श्यामाः पराशराः ॥३७॥
खल्यायना वार्ष्णायनास्तैलेयाः खलु यूथपाः।
तन्तिरेषां पञ्चमस्तु एते धूम्राः पराशराः ॥३८॥
पराशराणां सर्वेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो मतः।
पराशरश्च शक्तिश्च वसिष्ठश्च महातपाः ॥३९॥

(१) यह **पराशर** व्यासजीके ऋक्शिष्यपरम्पराके बाष्कलका शिष्य था। इसके नामको उद्देश करके इसकी शाखाको पाराशरी नाम मिला है। यह ऋग्वेदका श्रुतर्षि तथा ऋषिक ब्रह्मचारी है।

(२) वायु और ब्रह्माण्ड पुराणके मतानुसार एक **पराशर** व्यासजीके सामशिष्यपरम्पराके हिरण्यनाभका शिष्य है।

(३) व्यासजीके सामशिष्यपरम्पराके कुथुमीके एक शिष्यका नाम **पराशर है।**

(४) ब्रह्माण्ड पुराणके मतानुसार व्यासजीके यजुःशिष्यपरम्पराके याज्ञवल्क्यका एक वाजसनेय शिष्य भी **पराशर** नामका था।

(५) एक **पराशर** ऋषभ नामक शिवावतारका शिष्य है।

(६) **पराशर** यह नाम जनमेजयके सर्पसत्रमें मरे हुवे एक सर्पका भी पाया जाता है।

पराशरके विषयमें इस तरह महाभारतादिमें लिखा मिलता है। पराशर अनेक हुए हैं, उनमें सूक्त द्रष्टा पराशर वसिष्ठका पौत्र और शक्तिऋषिका पुत्र है, इसलिये उसको 'पराशरः शाक्त्यः' सूत्रकारने कहा है। अन्य पराशर उसके पश्चात्के हैं। तथापि इस बारेमें और अधिक खोज होनी चाहिये।

निवेदक
औंध जि. सातारा, १५ भाद्रपद संवत् २००३
श्री. दा. सातवळेकर
स्वाध्याय-मण्डल

वसिष्ठ-वंशमें पराशर ऋषि

मित्रा-वरुणौ

|

वसिष्ठः (ऋ. मं. ७)

|

- इन्द्रः प्रमतिः (९।९७।४-६)
- उपमन्युः (९।९७।१३-१५)
- कर्णश्रुत् (९।९७।२२-२४)
- चित्रमहाः (१०।१२२।१-८)
- द्युम्नीकः (ऋ. ८।८७।१-६)
- शक्तिः
  ऋ ७।३२।२६-२६,
  ७।९७।१९-२१।
  ९।१०८।३,१४-१६
  (पत्नी अदृश्यन्ती)
  |
  पराशरः
- प्रथः (१०।१८१।१)
- मन्युः (ऋ. ९।९७।१०-१२)
- मृळीकः (९।९७।२५-२७)
- वसुक्रः (९।९७।२८-३०)
- वृषगणः (९।९७।७-९)
- व्याघ्रपाद् (ऋ. ९।९७।१६-१८)

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

पराशर ऋषिका दर्शन

[ऋग्वेदका बारहवाँ अनुवाक]

(१) अग्निः

(ऋ. १।६५) पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । द्विपदा विराट् ।

पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम् ॥ १ ॥ १
सजोषा धीराः पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन् विश्वे यजत्राः ॥ २ ॥ २
ऋतस्य देवा अनु व्रता गुर्भुवत् परिष्टिर्द्यौर्न भूम ॥ ३ ॥ ३
वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिश्विमृतस्य योना गर्भे सुजातम् ॥ ४ ॥ ४
पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शंभु ॥ ५ ॥ ५
अत्यो नाज्मन्त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते ॥ ६ ॥ ६

अन्वयः— १-२ गुहा चतन्तं, नमः युजानं, नमः वहन्तं, पश्वा तायुं न, सजोषाः धीराः पदैः अनु ग्मन्, विश्वे यजत्राः त्वा उप सीदन् ॥

३-४ देवाः ऋतस्य व्रता अनु गुः । परिष्टिः भुवत्, भूम। द्यौः न (भुवत्)। ऋतस्य योना गर्भे सुजात पन्वा सुशिश्विं ईं आपः वर्धन्ति ॥

५-६ पुष्टिः न रण्वा, क्षितिः न पृथ्वी, गिरिः न भुज्म, क्षोदः । न शंभु, अत्यः न अज्मन् सर्गप्रतक्तः, सिन्धुः न क्षोदः, ईं कः वराते ?

अर्थ- १-२ गुहामें रहनेवाले, अन्नको सिद्ध करनेवाले, अन्नको साथ रखनेवाले, पशुकी (चोरी करके उसके साथ रहनेवाले) चोरको जैसे, मिलकर रहनेवाले धीर वीर लोग, (उसके) पावोंके चिन्होंसे (पता लगाकर) प्राप्त करते हैं, वैसे वे सभी याजक तेरे समीप चारों ओर बैठते हैं ॥

३-४ देवोंने सत्यके व्रतोंके अनुकूल गमन किया (व्रतोंका पालन किया) । बडी खोज चारों ओर हुई । भूमि स्वर्ग समान (सुख देनेवाली बनायी गयी) । सत्यके बीचमें उत्तम प्रकार उत्पन्न, स्तुतिसे बढनेवाले इस (देवको) जलप्रवाह बढा रहे हैं ॥

५-६ पुष्टि जैसी रमणीय (होती है), भूमि जैसी विस्तीर्ण (होती है), पर्वत जैसा भोजन (देता है), जल जैसा हितकारी होता है, घोडा जैसा (युद्धके स्थानपर) वीरद्वारा प्रेरित होता हुआ दौडता (जाता है) जैसी नदी किनारोंको तोडती हुई (आगे बढती है, वैसाही यह अग्नि है) । इसको कौन रोक सकता है ?

जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यत्ति	७	७
यद् वातजूतो वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः	८	८
श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत्	९	९
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः	१०	१०

(२) [ऋ. १।६६]

रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः	१	११
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा	२	१२
दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम्	३	१३
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति	४	१४
दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै	५	१५
चित्रो यदभ्राट् छ्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु	६	१६

७-८ सिन्धूनां जामिः, स्वस्रां भ्राता इव, इभ्यान् न राजा, वनानि अत्ति। यत् वातजूतः वना वि अस्थात्, अग्निः ह पृथिव्याः रोम दाति ॥

९-१० क्रत्वा विशां चेतिष्ठः, उषर्भुत्, सोमः न वेधाः, ऋतप्रजातः, पशुः न शिश्वा, विभुः, दूरेभाः हंसः सीदन् न अप्सु श्वसिति ॥

११-१२ रयिः न चित्रा, सूरः न संदृक्, आयुः न प्राणः, नित्यः न सूनुः, तक्वा न भूर्णिः, पयः न धेनुः, शुचिः विभावा वना सिषक्ति ॥

१३ १४ ओकः न रण्वः, पक्वः यवः न, क्षेमं दाधार। जनानां जेता, ऋषिः न स्तुभ्वा, विक्षु प्रशस्तः, प्रीतः वाजी न, वयः दधाति ॥

१५-१६ दुरोकशोचिः नित्यः क्रतुः न। योनौ जाया इव विश्वस्मै अरम्। चित्रः यत् अभ्राट् श्वेतः न, विक्षु रथः न रुक्मी, समत्सु त्वेषः ॥

७-८ यह नदियोंका मित्र, बहिनोंका भाई जैसा (हितकारी), शत्रुओंका जैसा राजा (नाश करता है, वैसा यह) वनोंको खा जाता है। जब वायुसे प्रेरित होकर यह वनोंपर आक्रमण करता है, (तब यह) अग्नि पृथ्वीके बालों (औषधियोंको) काटता है ॥

९-१० कर्म करके सब प्रजाओंको जगानेवाला, स्वयं उषःकालमें जागनेवाला, सोमके समान सबकी वृद्धि करनेवाला, सत्यके लियेही जो प्रकट हुआ है, पशुके समान चपल, सर्वत्र व्यापक और दूरतक प्रकाश फैलानेवाला (यह अग्नि) हंसके समान जलोंमें छिपा रहकर गति करता है ॥

११-१२ धनके समान वांछनीय, ज्ञानीके समान सम्यक् द्रष्टा, आयु देनेवाला जैसा प्राण है, निज पुत्रके समान सदा (हितकारी), चपल घोडेके समान पोषणकारी अन्न लानेवाला, जैसा दूध गौ धारण करती है वैसा यह पवित्र और प्रभावशाली अग्नि वनोंमें रहता है ॥

१३-१४ घरके समान रमणीय (यह अग्नि) पके जौके समान कल्याण करता है। जनोंको विजय प्राप्त करानेवाला, ऋषिके समान स्तुतिमें मग्न, प्रजाजनोंमें प्रशस्त, संतुष्ट हुए बलवान् (वीर) के समान (सबकी भलाईके लिये) जीवन अर्पण करता है ॥

१५-१६ जिसका तेज सहन करना अशक्य है (ऐसा यह अग्नि) नित्य शुभ कर्मके कर्ता (वीरके समान) कर्म करनेवाला है। घरमें स्त्रीके समान यह सबके लिये पर्याप्त (सुखदायी है)। विलक्षण तेजस्वी होकर जब यह प्रकाशता है तब तेजस्वी(वीर) के समान, प्रजाजनोंमें महारथी वीरकी तरह यह शोभता है, और समरोंमें तेजस्वी विजयी होता है ॥

सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत् त्वेषप्रतीका	७	१७
यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम्	८	१८
तं वश्चराथा वयं वसत्यास्तं न गावो नक्षन्त इद्धम्	९	१९
सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्व१र्दृशीके	१०	२०

(३) [ऋ. १।६७]

वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम्	१	२१
क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत् स्वाधीर्होता हव्यवाट्	२	२२
हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान् धाद्गुहा निषीदन्	३	२३
विदन्तीमत्र नरो धियंधा हृदा यत् तष्टान् मन्त्राँ अशंसन्	४	२४
अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः	५	२५
प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः	६	२६

१७-१८ सृष्टा सेना इव अमं दधाति । त्वेषप्रतीका दिद्युत् अस्तुः न । जातः ह यमः, जनित्वं यमः । कनीनां जारः, जनीनां पतिः ॥

१९-२० अस्तं न गावः । तं वः (त्वां) चराथा । वसत्या वयं इद्धं नक्षन्ते । सिन्धुः न क्षोदः नीचीः प्र ऐनोत् । स्वः दृशीके गावः नवन्ते ॥

२१-२२ वनेषु जायुः, मर्तेषु मित्रः, अजुर्यं राजा इव, श्रुष्टिं वृणीते । साधुः क्षेमः न, भद्रः क्रतुः न, होता हव्यवाट् स्वाधीः भुवत् ॥

२३-२४ विश्वानि नृम्णा हस्ते दधानः, गुहा निषीदन्, अमे देवान् धात् । धियंधाः नरः अत्र ईं विदन्ति, यत् हृदा तष्टान् मन्त्रान् अशंसन् ॥

२५-२६ अजः न क्षां पृथिवीं दाधार, द्यां सत्यै मन्त्रेभिः तस्तम्भ । हे अग्ने ! विश्वायुः (त्वं) पश्वः प्रिया पदानि नि पाहि, गुहा गुहं गाः ॥

*

१७-१८ (शत्रुपर) भेजी हुई सेनाके समान यह बलको धारण करता है । वेगसे फेंके तेजस्वी विद्युत् सदृश अस्त्रके समान (यह भयप्रद है) । जो जन्मा है वह यमही है, और जो जन्मनेवाला है वह भी यमही है । यह कुमारिकाओंका प्रिय और स्त्रियोंका पति (अग्निही) है ॥

१९-२० घरके पास जैसी गौवें (आती हैं) वैसे (मनुष्य) तुम (अग्निके पास) आते हैं । (अपनी) बस्ती (के लोगोंके साथ) हम प्रदीप्त अग्निके पास पहुंचते हैं । नदी जैसी भरकर बहती है, वैसे नीचेकी ओर जलप्रवाह (इसने) चलाये हैं । वैसे अपनी दीप्तिसे दर्शनीय (अग्निके साथ) गौवें पहुंच जाती हैं ॥

२१-२२ वनोंमें जैसा वैद्य, मानवोंमें मित्र सदृश (यह अग्नि), जरारहित वीरको जैसा राजा (स्वीकारता है) वैसा जनताके सहाय्यकारीको (यह) अपने पास स्वीकारता है (अपना मानता है) । जैसी साधुता हितकारी (होती है), और कर्तृत्वशक्ति जैसी कल्याण करती है, (वैसाही यह अग्नि) दाता, अन्नदानकर्ता और उत्तम कर्मकर्ता होता है ।

२३-२४ (दानके लिये) सब धन अपने हाथमें रखकर, गुहामें रहते हुए इस (अग्निने) सब देवोंको बलमें रखा है । धारणावती बुद्धिसे युक्त नेताजन यहां इस (अग्नि) को तब जानते हैं, जब मनःपूर्वक बनाये मन्त्रोंको गाया जाता है ॥

२५-२६ अजन्मा जैसा (होकर इसने) विस्तृत भूमिका धारण किया है, और सत्य मंत्रोंसे द्युलोकको आधार दिया है । हे अग्ने ! संपूर्ण आयु (देनेवाला तू) हमारे पशुओंके प्रिय स्थानों-की सुरक्षा कर, और गुहाओंके अत्यंत गुप्त स्थानमें संचार कर ॥

य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य	७	२७
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै	८	२८
वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः	९	२९
चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः	१०	३०

(४) [ऋ. १।६८]

श्रीणन्नुप स्थाद्दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून् व्यूर्णोत्	१	३१
परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद् देवो देवानां महित्वा	२	३२
आदित् ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद् यद् देव जीवो जनिष्ठाः	३	३३
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः	४	३४
ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः	५	३५
यस्तुभ्यं दाशाद् यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान् रयिं दयस्व	६	३६

२७-२८ य ईं गुहा भवन्तं चिकेत, य ऋतस्य धारां आ ससाद, ये ऋता सपन्तः वि चृतन्ति, आत् इत् अस्मै वसूनि प्र ववाच ॥

२९-३० यः वीरुत्सु महित्वा वि रोधत्, उत उत प्रजाः प्रसूषु अन्तः । चित्तिः अपां दमे विश्वायुः (तं) धीराः संमाय, सद्म इव, चक्रुः ॥

३१-३२ भुरण्यु श्रीणन् दिवं उपस्थात्, स्थातुः चरथं अक्तून् वि ऊर्णोत् । एषां विश्वेषां देवानां एकः देवः महित्वा यत् परि भुवत् ॥

३३-३४ हे देव ! यत् जीवः शुष्कात् जनिष्ठाः, आत् इत् विश्वे ते क्रतुं जुषन्त ! अमृतं एवैः सपन्तः विश्वे नाम ऋतं देवत्वं भजन्त ॥

३५-३६ ऋतस्य प्रेषाः, ऋतस्य धीतिः (अग्नि) विश्वायुः विश्वे अपांसि चक्रुः । यः तुभ्यं दाशात्, यः वा ते शिक्षात्, चिकित्वान् रयिं दयस्व ॥

२७-२८ जो इस (अग्नि) को गुहामें रहनेके समय जानता है, जो सत्यकी धाराको (प्राप्त करनेके लियेही) बैठा होता है, जो सत्यसे (उसका) सन्मान करते हुए (उसीका) विशेष गुणगान करते हैं, (वह) निःसन्देह उसके लिये धनोंकी (प्राप्तिके मार्ग) कहता है ॥

२९-३० जो वृक्षोंमें अपनी महिमासे रहता है, जो उनकी सन्तान (जैसा होता हुआ भी अपनी) माताओं (लकडियोंमें) रहता है । जो ज्ञानरूप जलोंके रूपमें विश्वका जीवन (जैसा होकर रहता है, उसको) बुद्धिमानोंने सम्मानपूर्वक घरके समान (अपना निवास-स्थान) बनाया है ॥

३१-३२ भरणपोषण कर्ता शोभाको बढाता हुआ द्युलोकके समीप गया है । (उसने) स्थावर जंगमोंको और रात्रियोंको भी प्रकाशित किया है । इन सब देवोंमें यही एक देव अपनी महिमासे सर्वोपरि (मुख्य) हुआ है ॥

३३-३४ हे देव ! जब जीव (बनकर) शुष्क काष्ठसे तूने जन्म लिया, तब सबोंने तेरी कर्तृत्वकी प्रशंसा की । (तुझ) अमर (देवकी) सब प्रगति करनेवालोंने जब प्राप्ति की, तब सबहीको यश, सत्य और देवत्व प्राप्त हुआ ॥

३५-३६ सत्यका प्रेरक, सत्यका रक्षक, सब विश्वका प्राण (यह अग्नि है, इसकी प्रेरणासे) सब अपने अपने कर्म करते रहते हैं । (हे अग्ने !) जो तुझे अर्पण करता है अथवा जो तुझसे ज्ञान प्राप्त करता है, उसको (योग्यता) जानकर(उसे तू) धन दे ॥

होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्न्वासां पती रयीणाम्	७	३७
इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः	८	३८
पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन् ये अस्य शासं तुरासः	९	३९
वि राय और्णोद् दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः	१०	४०

(५) [ऋ. १।६९]

शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः	१	४१
परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन्	२	४२
वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम्	३	४३
जने न शेव आहूर्यः सन् मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे	४	४४
पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत्	५	४५
विशो यदह्वे नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः	६	४६

३७-३८ (अयं अग्निः) मनोः अपत्ये होता निषत्तः, सः चित् नु आसां रयीणां पतिः । तनूषु मिथः रेतः इच्छन्तः, अमूराः स्वैः दक्षैः सं जानत ॥

३९-४० पितुः न पुत्राः अस्य शासं तुरासः ये श्रोषन् ते क्रतुं जुषन्त, पुरुक्षुः रायः दुरः वि और्णोत्, दमूनाः नाकं स्तृभिः पिपिशे ॥

४१-४२ उषः न जारः शुक्रः शुशुक्वान्, समीची दिवः न ज्योतिः पप्रा । प्रजातः क्रत्वा परि बभूथ, देवानां पुत्रः सन् पिता भुवः ॥

४३-४४ वेधाः अदृप्तः विजानन् अग्निः, गोनां ऊधः न, पितूनां स्वाद्म । जने न शेवः, मध्ये आहुर्यः सन्, दुरोणे निषत्तः रण्वः ॥

४५-४६ पुत्रः न जातः, दुरोणे रण्वः, वाजी न प्रीतः विशः वि तारीत् । नृभिः सनीळाः विशः, यत् अह्वे, अग्निः विश्वानि देवत्वा अश्याः ॥

३७-३८ (यह अग्नि) मनुकी संतानोंमें यज्ञ संपादनकर्ता करके बैठा है, वही सचमुच सब संपत्तियोंका स्वामी है । (स्त्री-पुरुष दोनोंके) शरीरोंमें परस्पर वीर्यके संबंधकी जब इच्छा होती है, (तब वे) अमूढ (उस विषयके ज्ञानी होकर) अपनेही सामर्थ्योंसे (उस पुत्र-प्राप्तिका मार्ग) ठीक तरह जानते हैं ॥

३९-४० जिस तरह पिताके (अधिकारको) पुत्र (प्राप्त करते हैं) इसकी शासन (आज्ञा) का त्वरासे जो पालन करते हैं, वे कर्तृत्वशक्तिको प्राप्त करते हैं। सबका पोषण करनेवाले (इस अग्नि) ने सब संपत्तिके द्वार खुले करके रखे हैं, (अपने) स्थानमें (संयमसे रहनेवाले इस अग्निने) स्वर्गको नक्षत्रोंसे सुशोभित किया है ॥

४१-४२ उषाके प्यारे (पति)के समान, यह तेजस्वी तथा दीप्तिमान् (अग्नि) परस्पर मिले द्युलोक (और भूलोक) में अपनी प्रभासे तेज भर देता है । उत्पन्न होतेही अपने कर्तृत्व (की प्रभासे सब विश्व इसने) घेर लिया, यह देवोंका पुत्र होता हुआ भी (उनका) पिता (पालनकर्ता) हुआ ॥

४३-४४ यह (सबका) विधाता गर्वहीन, ज्ञानी अग्नि, गौओंके दुग्धाशय (के दूध) के समान, अन्नोंको स्वादु करनेवाला है । जनोंमें यह सेवाके योग्य (वा सुखदायी है), (कठिन समयके) बीचमें (सहायार्थ) बुलानेयोग्य है, घरमें रहनेपर बडा शोभा देनेवाला है ॥

४५-४६ पुत्रका जन्म होनेसे जैसा घरमें वह रमणीय (प्रतीत होता है), संतुष्ट हुआ सामर्थ्ययुक्त वीर जैसा प्रजाजनोंका तारण करता है । नेताओंके साथ एक घरमें रहनेवाले प्रजाजन जिसको (सहायतार्थ) बुलाते हैं, वह अग्नि सब देवभावोंको प्राप्त करता है ॥

नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ	७	४७
तत् तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद् युक्तो विवे रपांसि	८	४८
उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै	९	४९
त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन् नवन्त विश्वे स्वर्दृशीके	१०	५०

(६) [ऋ. १।७०]

वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यश्याः	१	५१
आ दैव्यानि व्रता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म	२	५२
गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम्	३	५३
अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः	४	५४
स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणां दाशद् यो अस्मा अरं सूक्तैः	५	५५
एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्तांश्च विद्वान्	६	५६

४७-४८ ते एता व्रता नकिः मिनन्ति, यत् एभ्यः नृभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ। ते तत् तु दंसः, यत् अहन्, समानैः नृभिः युक्तः रपांसि, यत् विवेः ॥

४९-५० उषः न जारः विभावा उस्रः संज्ञातरूपः अस्मै चिकेतत्। त्मना वहन्तः, दुरः वि ऋण्वन्, दृशीके स्वः विश्वे नवन्त ॥

५१-५२ पूर्वीः मनीषा वनेम। सुशोकः अर्यः अग्निः विश्वानि अश्याः। दैव्यानि व्रता चिकित्वान् मानुषस्य जनस्य जन्म आ (जानन्) ॥

५३-५४ यः अपां गर्भः, वनानां गर्भः, स्थातां चरथां च गर्भः, अस्मै दुरोणे अद्रौ चित् अन्तः। अमृतः स्वाधीः। विश्वः विशां न ॥

५५-५६ सः हि अग्निः क्षपावान्, रयीणां दाशत्, यः अस्मै सूक्तैः अरं (करोति)। हे चिकित्वः ! (त्वं) देवानां जन्म, मर्तान् च विद्वान्, एता भूम नि पाहि ॥

४७-४८ तेरे इन नियमोंको कोई नहीं तोड सकता, क्योंकि तू इन मानवोंके लिये सहायता करता है। वह तुम्हारा पराक्रमही है कि जो (शत्रुका) वध तुमने किया और साधारण मानवोंसे युक्त होकर दुष्टोंको भी भगा दिया ॥

४९-५० उषाके प्रियकरके समान तेजस्वी सबको जाननेवाला (अग्नि) इस (कर्मकर्ता) को जाने। स्वयं (प्रकाशको फैलानेवाले (किरणोंने) सब द्वार खोल दिये और सूर्यके दर्शनके समय सभी आनन्दसे स्तुति करने लगे ॥

५१-५२ हम पूर्व (अर्थात् अपूर्व उत्तम) स्थान बुद्धिकी वृद्धिसे प्राप्त करेंगे। यह तेजस्वी स्वामी अग्नि सबको स्वाधीन कर लेता है। दिव्य व्रतोंको यह जानता है, और मनुष्य प्राणीके जन्मका (भी ज्ञान इसको है) ॥

५३-५४ यह (अग्नि) जलोंके मध्यमें, वनोंके मध्यमें, स्थावरों और जंगलोंके मध्यमें है, इसके लिये घरमें अथवा पर्वतके बीचमें (हवि अर्पण करते हैं), यह अमर देव (सबके लिये) उत्तम ध्यान करनेयोग्य है। जैसा सब (प्रजाको बसानेवाला राजा) प्रजाजनोंका आधार देता है ॥

५५-५६ यह अग्नि रात्रीमें (प्रज्वलित होकर) धनोंका (उसको) दान करता है कि, जो इसको सूक्तोंसे अलंकृत करता है। हे ज्ञानी (अग्नि देव) ! तू देवोंके जन्मों और मानवों(के जीवनों) को जानता है, इन भूप्रदेशोंकी सुरक्षा कर ॥

वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम्	७	५७
अराधि होता स्वर्निषत्तः कृण्वन् विश्वान्यपांसि सत्या	८	५८
गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः	९	५९
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन् पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त	१०	६०
साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु	११	६१

(७)

(ऋ० १।७१) पराशरः शाक्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः।		
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुष्रञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः	१	६२
वीळु चिद् दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण।		
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः	२	६३

५७-५८ पूर्वीः क्षपः विरूपाः यं वर्धान्। स्थातुः रथं च ऋतप्रवीतम्। स्वः निषत्तः होता अराधि, विश्वानि अपांसि सत्या कृण्वन्॥

५९-६० वनेषु गोषु प्रशस्तिं धिषे। विश्वे नः स्वः बलिं भरन्त। त्वा नरः पुरुत्रा वि सपर्यन्। जिव्रः पितुः न वेदः वि भरन्त॥

६१ साधुः न गृध्नुः अस्ता इव शूरः, याता इव भीमः, समत्सु त्वेषः॥

६२ उशतीः सनीळाः जनयः उशन्तं नित्यं पतिं न उप प्र जिन्वन्। श्यावीं उच्छन्तीं अरुषीं उषसं न गावः, चित्रं स्वसारः अजुषन्॥

६३ नः आङ्गिरसः पितरः उक्थैः वीळु चित् दृळ्हा अद्रिं रवेण रुजन्। बृहतः दिवः गातुं अस्मे चक्रुः, स्वः अहः केतुं उस्राः विविदुः॥

५७-५८ पूर्व समयकी रात्रियोंसे अनेक रूपोंमें इसकी वृद्धि हुई है। स्थावरों और जंगमोंमें (भी) सत्य नियमों द्वारा (इसका) वर्धन हुआ है। अपने निज तेजमें (प्रकाशित) रहनेवाला (देवोंको) बुलानेवाला (यह अग्नि) हमारे द्वारा पूजित हुआ है। सब प्रकारके पुरुषार्थोंको यह सत्य करता है॥

५९-६० तू वनों और गौओंकी प्रशंसा (हमसे) करवाता है। सब हम (तुम्हारे लिये) आत्मसर्वस्वका बलि अर्पण करते हैं। तेरी पूजा सब मानव अनेक स्थानोंमें करते हैं। जैसा वृद्ध पिताका (धन पुत्रको मिलता है तुमसे) उनको धन मिलता है।

६१ यह साधु सत्पुरुष जैसा सत्कारयोग्य है, शूरके समान अस्त्र चलाता है, हमला करनेवालेके समान भयंकर है, और युद्धोंमें उत्साही है॥

६२ (पतिकी) इच्छा करनेवाली एक घरमें रहनेवाली स्त्रियाँ (पत्नी समागमकी) इच्छा करनेवाले, सदा साथ रहनेवाले पतिको जैसी संतुष्ट करती हैं। तथा श्यामवर्ण परन्तु अन्धकार दूर करनेवाली तेजस्वी उषाको (देखकर) जैसी गौवें (संतुष्ट होती हैं), वैसेही इस विलक्षण अग्निकी (हाथ जोडनेसे) बहिनें (अंगुलियां) सेवा करती हैं॥

६३ हमारे अंगिरस पितरोंने मंत्रोंके शब्दोंके (बलसेही) बडे पर्वतपरके सुदृढ कीले तोड दिये। बडे द्युलोकको जानेवाला मार्ग हमारे लिये बनाया। तथा प्रकाश, दिन, किरण और गौवें प्राप्त कीं॥

दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो३ विभृत्राः ।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥ ६४

मथीद् यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं१ भृगवाणो विवाय ॥ ४ ॥ ६५

महे यत् पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत् पृशन्यश्चिकित्वान् ।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ॥ ५ ॥ ६६

स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून् ।
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद् राया सरथं यं जुनासि ॥ ६ ॥ ६७

अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः ।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥ ७ ॥ ६८

---

६४ ऋतं दधन्, अस्य धीतिं धनयन् आत् इत् अर्यः दिधिष्वः विभृत्राः अतृष्यन्तीः अपसः प्रयसा देवान् जन्म वर्धयन्तीः अच्छ यन्ति ॥

६५ मातरिश्वा ईं यत् मथीत्, विभृतः, श्येतः गृहे गृहे जेन्यः भूत् । सचा सन् सहीयसे राज्ञे न आत् ईं भृगवाणः दूत्यं आ विवाय ।

६६ महे पित्रे दिवे ईं रसं यत् कः पृशन्यः चिकित्वान् अव त्सरत् । अस्ता धृषता अस्मै दिद्युं सृजत् । देवः स्वायां दुहितरि त्विषिं धात् ॥

६७ तुभ्यं स्वे दमे यः आ विभाति, अनु द्यून् उशतः नमः वा दाशात् । हे अग्ने ! अस्य द्विबर्हाः वयः वर्धाः, सरथं यं जुनासि राया यासत् ॥

६८ विश्वाः पृक्षः अग्निं अभि सचन्ते, स्रवतः सप्त यह्वीः समुद्रं न । जामिभिः नः वयः न वि चिकिते, देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् विदाः ॥

६४ सत्यका धारण करनेवालोंने इसकी धारक शक्तिको धारण किया । पश्चात् स्वामिनीरूप धारण करनेवाली, पोषण करनेवाली, तृष्णारहित कर्मशील अन्नदानसे देवोंको और जन्म (लेनेवाले मानवोंको) बढानेवाली (प्रजायें इस अग्निके) पास जमा होती हैं ॥

६५ वायुने जब इस (अग्नि) को मथकर प्रकट किया, तब यह श्वेत प्रकाश (प्रकट करता हुआ) घर घरमें विजयी हुआ है । साथ रहकर बलिष्ठ राजाके लिये (सहायक होनेके) समान, प्रकट होनेके पश्चात् भृगु ऋषिपर प्रेम करनेवाले (इस अग्निने उसकी सहायतार्थ) दूतकर्म किया ॥

६६ महान् पितृभूत द्युलोकको (अर्पण करनेके लिये तैयार किये) इस (सोम) रसको कौन हमला करनेवाला (शत्रु इस अग्निके प्रभावको) जानता हुआ नीचे गिरा सकता है ? अस्त्र फेंकनेवाले वीरने इस (शत्रु) पर तेजस्वी अस्त्र (जब) फेंका, तब इस (सूर्य देव) ने अपनीही पुत्री (उषा) में तेज रख दिया ॥

६७ तुम्हारे लिये अपने स्थानमें जो प्रकाशता है, और प्रतिदिन (तुम्हारा हित) चाहनेवाले (अग्निके लिये) जो हवि देता है, हे अग्ने ! दोनों स्थानोंमें वृद्धिंगत होता हुआ तू इस भक्तकी आयु बढा । जिसके रथमें सहायतार्थ तू रहता है, उसको धन देता है ॥

६८ सब अन्न अग्निकेही पास आते हैं, जैसी बहनेवाली सात नदियां समुद्रको जा मिलती हैं । भाइयोंको भी हमारी आयुका पता नहीं है, (पर तू) देवोंके मनमें जो है उसको भी अच्छी तरह जानता है ॥

आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् छुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत् सूदयच्च ८ ६९
मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ९ ७०
मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन् ।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि १० ७१

(८) [ऋ. १।७२]

नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।
अग्निर्भुवद् रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा १ ७२
अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः ।
श्रमयुवः पदव्यो धियंधास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः २ ७३

६९ यत् शुचि द्यौः तेजः, नृपतिं इषे आ आनट्, अभीके निषिक्तं रेतः अग्निः जनयत्, शर्धं अनवद्यं युवानं स्वाध्यं सूदयत् च ॥

७० यः एकः सूरः अध्वनः सद्यः एति, मनः न (सः) वस्वः सत्रा ईशे । सुपाणी राजाना मित्रावरुणा गोषु प्रियं अमृतं रक्षमाणा ॥

७१ हे अग्ने ! पित्र्याणि सख्या मा प्र मर्षिष्ठाः । कविः सन् अभि विदुः । नभो न रूपं जरिमा मिनाति । अभिशस्तेः तस्याः पुरा अधीहि ।

७२ शश्वतः वेधसः काव्या, नर्या पुरूणि हस्ते दधानः नि कः । अग्निः विश्वा अमृतानि सत्रा चक्राण रयीणां रयिपतिः भुवत् ॥

७३ अस्मे परि सन्तं वत्सं इच्छन्तः विश्वे अमूराः अमृताः न विन्दन् । श्रमयुवः पदव्यः धियंधाः अग्नेः परमे पदे चारु तस्थुः ॥

६९ जब शुद्ध दिव्य तेज, मनुष्योंके स्वामी (अग्नि)के पास अन्नके लाभके लिये प्रकाशित हुआ, तब पासही रहे अपने वीर्यको अग्निने फैलाया, उस समय सांघिक बल, अनिंद्य तारुण्य और उत्तम धारक शक्ति (यह सब) परिपक्व हुआ ॥

७० जो एकही (अग्निरूपी) सूर्य मार्गके पार सत्वरही जाता है, मन जैसा (वेगवान् वह) साथही साथ धनपर अपना अधिकार जमाता है। उत्तम हाथवाले दोनों राजा मित्र और वरुण गौओंमें जो प्रिय अमृत (दूध है उसकी) सुरक्षा करते हैं ॥

७१ हे अग्नि देव ! पितारोंसे आये हमारे सख्य भावको तू विनष्ट न कर । तू ज्ञाता यह सब जानता है। (मेघ) जैसे आकाशमें आकर रूप (दर्शानेवाले प्रकाशको नष्ट करते हैं) वैसेही बुढापा (शरीरकी सुंदरताको) नष्ट करता है। अतः विपत्ति (हमारे पर) आनेके पूर्वही उसका नाश कर ॥

७२ शाश्वत विधाताके संबंधके काव्य, मानवोंके लिये हितकर बहुतसे धन अपने हाथमें रखनेवाला (यह अग्नि अपने पास आकर्षित) करता है। यह अग्नि सब अमर (कर्तव्यों) को साथ साथ करता हुआ, सब वैभवोंका स्वामी होगया है ॥

७३ हमारे (हितके) लिये, यहां रहनेवाले इस वत्स (अग्नि) को (खोज करनेकी) इच्छा करनेवाले अमूढ (ज्ञानी) अमर देव भी (इसे) न प्राप्त कर सके। श्रम करनेवाले अग्निकी खोज करनेवाले वे बुद्धिमान् लोग (अन्तमें उसके) परम पदमें सहजहीसे पहुंच गये ॥

तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान्।
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्व१ः सुजाताः ॥ ३ ॥ ७४

आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥ ४ ॥ ७५

संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥ ५ ॥ ७६

त्रिः सप्त यद् गुह्यानि त्वे इत् पदाविदन्निहिता यज्ञियासः।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूञ्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि ॥ ६ ॥ ७७

विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक्छुरुधो जीवसे धाः।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥ ७ ॥ ७८

स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन्।
विदद्गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥ ८ ॥ ७९

---

७४ हे अग्ने ! शुचयः शुचि त्वां इत् तिस्रः शरदः घृतेन यत् सपर्यान्। सुजाताः तन्वः सूदयन्त; यज्ञियानि नामानि चित् दधिरे ॥

७५ बृहती: रोदसी आ वेविदानाः, यज्ञियासः रुद्रिया प्र जभ्रिरे। नेमधिता मर्तः परमे पदे तस्थिवांसं अग्निं चिकित्वान् विदत् ॥

७६ संजानानाः उप सीदन्, पत्नीवन्त. नमस्यं अभिज्ञु नमस्यन्। सख्युः निमिषि रक्षमाणाः सखा स्वा. तन्वः रिरिक्वासः कृण्वत ॥

७७ त्रिः सप्त गुह्यानि यत् पदा त्वे इत् निहिताः, यज्ञियासः अविदन्। तेभि अमृतं रक्षन्ते। सजोषा पशून् च स्थातॄन् चरथं च पाहि ॥

७८ हे अग्ने ! वयुनानि विद्वान् क्षितीनां जीवसे शुरुधः आनुषक् वि धाः। हविर्वाट् अध्वनः देवयानान् अन्तर्विद्वान् अतन्द्रः दूतः अभवः ॥

७९ स्वाध्यः सप्त यह्वीः दिवः आ (प्रवहन्ति)। ऋतज्ञाः रायः दुरः वि अजानन्। गव्यं दृळ्हं ऊर्वं सरमा विदत्। येन नु मानुषी विट् कं भोजते ॥

७४ हे अग्ने ! पवित्र होकर (याजकोंने) तुझ पवित्र (देव) की तीन वर्षतक जब घृतसे पूजा की। तब उत्तम कुलीन उन (याजकों)के (स्थूल-सूक्ष्म-कारण) शरीर पवित्र हुए और उनको पवित्र नाम (यश) भी प्राप्त हुए ॥

७५ बडे द्युलोक और भूलोकके अन्दर खोज करते करते उन याजकोंको रुद्रके (अग्निके सामर्थ्यका) लाभ हुआ। युद्धमें रहनेवाला मानव परम पदमें ठहरनेवाले अग्निको जानकर प्राप्त करनेमें (समर्थ हुआ) ॥

७६ (वे) जानकर तेरे समीप गये, पत्नियोंके समेत पूजनीय (अग्नि) को घुटने टेक कर नमन करते रहे। एक मित्रको निद्रा लगते ही जैसा दूसरा मित्र रक्षा करता है वैसी रक्षासे सुरक्षित हुए ये (याजक) मित्र अपने शरीरोंको (पापोंसे रहित) पवित्र करने लगे ॥

७७ जो तीन गुणा सात (अर्थात् इक्कीस) गुह्य तेरे स्थानमें रखे हैं, उनको यज्ञ करनेवालोंने जान लिया। उनसे अमरत्वकी सुरक्षा वे करते हैं। सबपर प्रीति करनेवाला तू हमारे पशुओं और स्थावर जंगम सबका रक्षण कर ॥

७८ हे अग्ने ! (सब मनुष्योंके) विचार और आचार जानकर तुम मानवोंके दीर्घजीवनके लिये क्षुधाके कष्ट दूर करनेके हेतुसे सतत यत्नवान् होते हो। तुम अन्न पहुचाते हो, देवोंके गुप्त मार्गोंको जानते हो अतः तुम (उनका) निरलस दूत हुवे हो ॥

७९ शुभकर्म (जहां होते हैं) ऐसी सात नदियाँ द्युलोकसे बह रही हैं। सत्य जाननेवालोंने संपत्तिके द्वार (खोलनेकी रीति) जान ली है। गौओंको रखनेका सुदृढ कीला सरमाने जान लिया। जिससे मानवी प्रजा सुखसे भोजन करती है ॥

आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥ ९ ॥ ८०

अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन् दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन् ।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥ १० ॥ ८१

(९) [ऋ. १।७३]

रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः ।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतेव सद्म विधतो वि तारीत् ॥ १ ॥ ८२

देवो न यः सविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा ।
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत् ॥ २ ॥ ८३

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥ ३ ॥ ८४

---

८० ये अमृतत्वाय गातुं कृण्वानासः, विश्वा स्वपत्यानि आ तस्थुः । महद्भिः पुत्रैः माता अदितिः पृथिवी धायसे मह्ना वि तस्थे, वेः ॥

८० जो अमरत्वकी प्राप्तिके लिये मार्ग (तैयार करनेके इच्छुक) हैं, वे उत्तम कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं । बडे वीर पुत्रोंसे माता अदिति पृथ्वी (सबका) धारण पोषण करनेके लिये अपनी महिमासेही बडी विस्तृत हुई है । (वहाँ, हे अग्ने ! तू) हविका सेवन करता है ॥

८१ दिवः अमृताः यत् अक्षी अकृण्वन्, अस्मिन् चारुं श्रियं अधि नि दधुः । अध सृष्टाः सिन्धवः न नीचीः अरुषी क्षरन्ति । हे अग्ने ! प्र अजानन् ॥

८१ द्युलोकसे अमर देवोंने जब दो आंख बनाये, तब उन्होंने इस (अग्नि) में सुंदर शोभादायी तेज रख दिया । पश्चात् निम्न-गतिसे जानेवाली नदियोंके समान उससे तेजस्वी दीप्तियां फैलने लगीं । हे अग्ने ! उनसे (तुम्हारा) ज्ञान सबको हुआ ॥

८२ पितृवित्तः रयिः न यः वयोधाः । चिकितुषः न शासुः सुप्रणीतिः । स्योनशीः अतिथिः न प्रीणानः, विधतः सद्म, होता इव, वि तारीत् ॥

८२ पितासे प्राप्त हुए धनके समान, यह (अग्नि) अन्नकी वृद्धि करनेवाला है । ज्ञानीके उपदेशके समान वह उत्तम मार्ग बताता है । (उत्तम अतिथि-)-सत्कारसे सन्तुष्ट हुए अतिथिके समान (यह) सुखदायी है, (यह अग्नि) यज्ञकर्ताके घरकी, हवनकर्ताके समान, वृद्धि करता है ॥

८३ देवः न सविता यः सत्यमन्मा, क्रत्वा विश्वा वृजनानि निपाति । पुरुप्रशस्तः, अमतिः न सत्यः आत्मा इव शेवः दिधिषाय्यः भूत् ॥

८३ सविता देवके समान जो सत्य (निष्ठ) बुद्धियुक्त है, जो अपने कर्तृत्वसे सबको पापोंसे बचाता है । जो अनेकोंके द्वारा प्रशंसित है, प्रगति करनेवालेके समान सत्य (यशवाला है), आत्माके समान सेवा करनेयोग्य, और सबको आश्रय देनेवाला है ॥

८४ देवः न यः विश्वधायाः, हितमित्रः न राजा, पृथिवीं उपक्षेति । पुरःसदः शर्मसदः न वीरा , अनवद्या पतिजुष्टा इव नारी ॥

८४ (सूर्य) देवके समान जो विश्वका धारक है, और हित करनेवाले (प्रजाके) मित्र राजाके समान, जो पृथ्वीपर रहता है । (युद्धमें) अग्रगामी होनेवाले तथा घरमें (गुरक्षार्थ) रहनेवाले वीरोंके समान, तथा निष्पाप पतिव्रता स्त्रीके समान (यह अग्नि पवित्र है) ॥

तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु ।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन् भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥ ४ ॥ ८५

वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥ ५ ॥ ८६

ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ॥ ६ ॥ ८७

त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः ॥ ७ ॥ ८८

यान् राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ॥ ८ ॥ ८९

अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥ ९ ॥ ९०

---

८५ हे अग्ने ! तं त्वा नरः ध्रुवासु क्षितिषु दमे नित्यं इद्धं आ सचन्त । अस्मिन् भूरि द्युम्नं अधि नि दधुः । विश्वायुः रयीणां धरुणः भव ॥

८६ हे अग्ने ! मघवानः पृक्षः वि अश्युः । सूरयः ददतः विश्वं आयुः वि (अश्युः) । समिथेषु अर्यः वाजं सनेम । देवेषु श्रवसे भागं दधानाः ॥

८७ वावशानाः स्मदूध्नीः द्युभक्ताः ऋतस्य हि धेनवः पीपयन्त । सिन्धवः सुमतिं भिक्षमाणाः अद्रिं समया परावतः वि सस्रुः ॥

८८ हे अग्ने ! सुमतिं भिक्षमाणाः यज्ञियासः दिवि त्वे श्रवः दधिरे । विरूपे उषसा नक्ता च चक्रुः । कृष्णं च वर्णं अरुणं च सं धुः ॥

८९ हे अग्ने ! यान् मर्तान् राये सुषूदः ते वयं च मघवानः स्याम । रोदसी अन्तरिक्षं (च) आपप्रिवान्, विश्वं भुवनं छाया इव, सिसक्षि ॥

९० हे अग्ने ! त्वोताः अर्वद्भिः अर्वतः, नृभिः नॄन्, वीरैः वीरान् वनुयाम । पितृवित्तस्य रायः ईशानासः सूरयः नः शतहिमाः वि अश्युः ॥

८५ हे अग्ने ! उस तुझ (अग्नि) को स्थायी नागरिकोंके घरमें नित्य प्रदीप्त करके (तेरी) सेवा करते हैं । इस (अग्नि) में बहुतही तेजस्वी धन अर्पण किया है । (तू) सबका जीवन है, उनके वैभवोंका आश्रयदाता हो ॥

८६ हे अग्ने ! धनवान् (जो यज्ञ करनेवाले हों, उनको पर्याप्त) अन्न मिले । ज्ञानी दाताओंको पूर्ण आयु मिले । युद्धोंमें जानेवाले (हम सब वीर) बल प्राप्त करें । देवोंको अन्नके भागको (अर्पण करनेके लिये) हम धारण करें ॥

८७ (सेवा करनेकी) इच्छा करनेवाली, दूधसे भरे हुए दुग्धाशयवाली, तेजस्वी (देव) की भक्ति करनेवाली, यज्ञके लिये रखी गौवें (सबको) दूध पिलाती हैं । (तेरी) शुभ बुद्धिकी इच्छा करनेवाली नदियाँ पर्वतके साथ साथ बडी दूरसे बहती हैं ॥

८८ हे अग्ने ! (तेरी) कृपाकी इच्छा करनेवाले पवित्र (विभूतियों) ने द्युलोकमें तेरे कारणही यश प्राप्त किया । विभिन्न रूपवाली उषा और रात्रि निर्माण की । लाल और काला रंग (उनमें) धारण किया ॥

८९ हे अग्ने ! जिन मानवोंको वैभवके लिये (तुमने) सिद्ध किया, वे हम सब धनवान् बन जायं । द्युलोक और भूलोक (ये दो और) अन्तरिक्षको तुमने (प्रकाशसे) भर दिया है, सब भुवनको, छायाके समान, साथ देते हो ॥

९० हे अग्ने ! तेरे द्वारा सुरक्षित (हुए हम) अपने घोडोंसे (शत्रुके) घोडोंको, अपने नेताओंसे (शत्रुके) नेताओंको, अपने वीरोंसे (शत्रुके) वीरोंको पराभूत करेंगे । पैतृक धनके स्वामी होकर हमारे विद्वान् (वीर) सौ वर्ष (की दीर्घ आयु) प्राप्त करें ॥

एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः १० ९१

(१०) सोमः

(ऋ० ९।९७) ३१—४४ पराशरः शाक्त्यः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान् ।
पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः ३१ ९२

कनिक्रदनु पन्थामृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरवान्हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम् ३२ ९३

दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम पिन्वन्धाराः कर्मणा देववीतौ ।
एन्दो विश कलशं सोमधानं क्रन्दन्निहि सूर्यस्योप रश्मिम् ३३ ९४

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ३४ ९५

---

९१ हे वेधः अग्ने ! एता उचथानि ते मनसे हृदे च जुष्टानि सन्तु । ते सुधुरः रायः यमं शकेम । देवभक्तं श्रवः अधि दधानाः ॥

९२ ते मधुमतीः धाराः प्र असृग्रन् । यत् पूतः (त्वं) अव्यान् वारान् अति एषि । हे पवमान ! गोनां धाम पवसे । जज्ञानः अर्कैः सूर्यं अपिन्वः ॥

९३ (सः) ऋतस्य पन्थां अनु कनिक्रदत् । अमृतस्य धाम शुक्रः वि भासि । मत्सरवान् सः (त्वं) कवीनां मतिभिः वाचं हिन्वानः इन्द्राय पवसे ॥

९४ हे सोम ! दिव्यः सुपर्णः, देववीतौ कर्मणा धाराः पिन्वन्, अव चक्षि । हे इन्दो ! सोमधानं कलशं आ विश । क्रन्दन् सूर्यस्य रश्मिं उप इहि ॥

९५ वह्निः तिस्रः वाचः प्र ईरयति । ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणः मनीषां (च ईरयति) । गोपतिं सोमं गावः पृच्छमानाः यन्ति । वावशानाः मतयः (सोमं) यन्ति ॥

९१ हे विधाता अग्निदेव ! ये स्तोत्र तेरे मनको तथा हृदयको प्रिय लगें । (जिससे) तेरे उत्तम नेतृत्वके साथ मिलनेवाले धनोंको हम (प्राप्त करके उनका) नियमसे (उपयोग) कर सकेंगे । तथा देवके भक्तको कीर्ति प्राप्त कर देंगे ॥

९२ (हे सोम !) तुझसे मीठी रसधाराएं बहने लगी हैं । जब छाना जाता (है तब तू) भेडीके बालोंकी (छाननीमेंसे) बहता है । हे सोम ! तू गौओंके स्थानोंके पास पहुंचता है । प्रकट होकर अपने तेजसे सूर्यको भर देता है ॥

९३ (वह सोम) यज्ञके मार्गके पास शब्द करता हुआ (जाता है) । अमृतके स्थानको स्वच्छ होकर चमकाता है । आनंदकारी प्रवाहोंको (फैलानेवाला) वह (तू) कवियोंकी बुद्धियोंसे वाणीको स्फूर्ति देता हुआ इन्द्रके लिये बहता है ॥

९४ हे सोम ! तू स्वर्गीय सुन्दर पत्तोंवाला (सोम) देवोंकी भक्तिके समय सत्कर्मके साथ रसधाराओंको प्रवाहित करता हुआ, नीचेकी ओर देख । हे सोम ! सोमरस रखनेके कलशमें प्रविष्ट हो । शब्द करता हुआ सूर्य किरणके पास पहुंच ॥

९५ (यज्ञका) अग्नि तीन प्रकारकी वाणियोंको प्रेरित करता है । वह सत्यका धारण और ब्रह्मका (स्तोत्रका) मनन (करता है) । गौओंके पति सोमके पास गौवें पूछती हुईं जाती हैं । (वैसी) इच्छा करनेवाली (स्तोताओंकी) बुद्धियां (सोमके पास) पहुंचती हैं ॥

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ३५ ९६
एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ३६ ९७
आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ३७ ९८
स पुनान उप सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि ष आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ३८ ९९
स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषाऽऽवीत् ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ३९ १००
अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ४० - १०१

---

९६ धेनवः गावः सोमं वावशानाः । विप्राः मतिभिः सोमं पृच्छमानाः । सुतः सोमः अज्यमानः पूयते । त्रिष्टुभः अर्काः सोमे सं नवन्ते ॥

९७ हे सोम ! परिषिच्यमानः पूयमानः (त्वं) नः एव स्वस्ति आ पवस्व । बृहता रवेण इन्द्रं आ विश, वाचं वर्धय, पुरन्धिं जनय ॥

९८ जागृविः ऋता मतीनां विप्रः पुनानः सोमः चमूषु आ सदत् । मिथुनासः निकामाः रथिरासः सुहस्ताः अध्वर्यवः यं सपन्ति ॥

९९ पुनानः सः धाता, सूरे न उप, उभे रोदसी आ अप्राः, सः वि आवः । प्रिया चित् यस्य प्रियसासः ऊती । सः तु धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥

१०० वर्धिता वर्धनः पूयमानः मीढ्वान् सः सोमः ज्योतिषा नः अभि आवीत् । येन पदज्ञाः स्वर्विदः नः पूर्वे पितरः गाः अद्रिं अभि उष्णन् ॥

१०१ समुद्रः राजा प्रथमे भुवनस्य विधर्मन् प्रजाः जनयन् अक्रान् । वृषा सुवानः इन्दुः सोमः अधि सानौ अव्ये पवित्रे बृहत् ववृधे ॥

९६ दूध देनेवाली गौवें सोमकी इच्छा करती हुई (जाती हैं) । ज्ञानी लोग अपनी बुद्धियोंसे सोमका वर्णन करते हैं। निचोडा हुआ सोमरस प्रवाहित होकर सबको पवित्र करता है। त्रिष्टुप् छन्दके स्तोत्र सोमके (वर्णनमें) संगत होते हैं ॥

९७ हे सोम ! सिंचित हुआ छाना जानेवाला सोम (वह तू) हमारे लिये कल्याण लानेवाला हो । बडे स्वरसे इन्द्रमें प्रविष्ट हो, स्तुतिको बढा, और बुद्धिको (उत्साहित) कर ॥

९८ जागनेवाला, सत्यभक्त बुद्धियोंसे युक्त ज्ञानी, छाना गया सोम पात्रोंमें भरा गया है । स्त्री पुरुष, शुभ इच्छा करते हुए त्वरासे जानेवाले उत्तम हाथवाले याजक जिस (सोम) के पास जाते हैं ॥

९९ पवित्र होनेवाले उस धारक (सोम) ने, सूर्यके समान, पास जाकर दोनों लोग भर दिये, और उसने (वे) प्रकट भी किये। प्रिय वस्तु जिससे अधिक प्रिय प्रतीत होती है (वह सोम सबकी) सुरक्षा करता है । वह, कारीगरको (वेतन देनेके समान) धन देता है ॥

१०० (सबका) संवर्धन करनेवाला, स्वयं संवर्धित होनेवाला, पवित्र होता हुआ, रसका सिंचन करनेवाला यह सोम अपने तेजसे हमारी सुरक्षा करता है। जिससे पदज्ञ आत्मज्ञानी हमारे प्राचीन पूर्वजोंने गौओंके लिये पर्वतको ढूंढ लिया ॥

१०१ जलसे पूर्ण हुआ राजा (सोम) प्रथम भुवनके अन्दर विविध धर्मकी प्रजा उत्पन्न करता हुआ आक्रमण करने लगा। बलवर्धक चूनेवाला तेजस्वी सोम उच्च स्थानमें भेडीके ऊनके पवित्रपर बहुत बढने लगा ॥

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान्।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ४१ १०२
मत्सि वायुमिष्टये राधसे च मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ४२ १०३
ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्तापामीवां बाधमानो मृधश्च।
अभिश्रीणन्पयः पयसाभि गोनामिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः ४३ १०४
मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च।
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् ४४ १०५

१०२ महिषः सोमः महत् तत् चकार। यत् अपां गर्भः देवान् अवृणीत। पवमानः ओजः इन्द्रे अदधात्। इन्दुः सूर्ये ज्योतिः अजनयत्॥

१०३ हे देव सोम! त्वं वायुं इष्टये राधसे च मत्सि। पूयमानः मित्रावरुणौ मत्सि। मारुतं शर्धः मत्सि। देवान् मत्सि। द्यावापृथिवी मत्सि॥

१०४ वृजिनस्य हन्ता, अमीवां मृधः च अप बाधमानः ऋजुः पवस्व। पयः गोनां पयसा अभिश्रीणन् अभि (गच्छसि)। इन्द्रस्य (सखा) त्वं, वयं तव सखायः॥

१०५ मध्वः सूदं वस्वः उत्सं पवस्व। नः वीरं च भगं च आ पवस्व। हे इन्दो! पवमानः इन्द्राय स्वदस्व। समुद्रात् नः रयिं च आ पवस्व॥

१०२ बडे शरीरवाला सोम बडा कर्म करने लगा। जो जलोंके बीचमें रहकर देवोंको वरने लगा। पवित्र सोमने बलको इन्द्रमें बढाया। सोमने सूर्यके अन्दर तेज प्रकट किया॥

१०३ हे सोम! तू वायुको इष्टसिद्धि और प्रसन्नताके लिये आनंदित करता है। पवित्र होता हुआ तू मित्र तथा वरुणको हृष्ट करता है। मरुतोंके संघको प्रसन्न करता है, देवोंको आनन्दयुक्त करता है तथा द्युलोक और पृथिवीको सन्तुष्ट करता है॥

१०४ कुटिलताका नाश करता हुआ, रोगों और शत्रुओंका निवारण करके, तू सरल छाना जा। (अपने) रसके साथ गौओंके दूधको मिश्रित करता हुआ आगे (चलता है)। इन्द्रका मित्र तू है, और हम तेरे मित्र हैं॥

१०५ मधुर रसके परिपाकको, धनके हौज (की तरह), पवित्र कर। हमें वीर और धन दे। हे सोम! पवित्र होता हुआ इन्द्रके लिये स्वादु बन। समुद्रसे हमें धन मिले॥

अग्निका वर्णन

पराशर ऋषिके कुलमंत्र १०५ ऋग्वेदमें हैं। अन्य वेदोंमें इस ऋषिके इससे विभिन्न मन्त्र नहीं हैं। इन १०५ मंत्रोंमें ९१ मन्त्र अग्नि-देवताके हैं और शेष १४ मंत्र सोम देवताके हैं। इसलिये प्रथम अग्नि-देवताके मंत्रोंका मनन करते हैं। पराशरके इस मंत्रसंग्रहरूप काव्यमें उपमा, रूपक, तुलना आदि की इतनी भरमार है कि कई मंत्रोंमें तो प्रत्येकमें चार चार उपमाएं हैं और एकसे एक अधिक रोचक है। इतनी उपमाएं किसी अन्य ऋषिके काव्यमें नहीं हैं। देखिये इस अग्निकाव्यका पहिला मन्त्र कितना गम्भीर है—

चोर और भगवान्

१ ' गुहामें संचार करनेवाले, अन्नको अपने पास रखनेवाले, (गुहामें रहनेके कारण) अपने पासके अन्नवेही अपना गुजारा करनेवाले, पशुको (चुराकर पहाडकी गुहामें रहनेवाले) चोरको उत्साही बुद्धिमान् पुरुष (गौओंके और चोरके) पदचिन्होंको देख देखकर उनके अनुसन्धानसे (उसे) ढूंडकर (उसे प्राप्त करते हैं और वे) सब लोग उसे घेरकर (उसके) चारों ओर उसके पास पासही बैठते हैं, ताकि वह न भाग सके। (मन्त्र १-२)

इस मन्त्रकी उपमाका विचार ठीक तरह समझमें आनेके लिये निम्नलिखित भाव ध्यानमें रखिये- " एक चोरने किसीकी गौवें चुरा ली और वह किसी पहाडकी गुहामें छिपकर बैठा है। किसीको पता नहीं कि वह कौन है और कहां रहता है। पश्चात् दूसरे दिन इष्टमित्र मिलनेपर चोरी होनेकी बातका विचार होता है और जो लोग पदचिन्होंसे पता लगानेमें समर्थ हैं वे आगे होते हैं और चोरके तथा गौओंके भूमिपर दिखाई देनेवाले पदचिन्होंसे

पता निकालते निकालते उस पर्वतके पास पहुंचते हैं कि जहां वह चोर रहता है और गौवें भी वहीं होती हैं। वह उस गुहामें दिनभर छिपा रहता है और अपने पासके अन्नपरही गुजारा करता है। उसकी खोज करनेवालोंके साथ शूरवीर भी रहते हैं और वे बडी सावधानतासे उस पहाडीमें जाते हैं, उस चोरको पकडते हैं और उसको बीचमें रखकर, उसको इधर उधर भागने दौडने नहीं देते और उसके चारों ओर वे वीर बैठ जाते हैं। यह वर्णन इस मन्त्रमें है।

यहां चोरको ढूढकर निकालनेका विषय है। यह चोरकी उपमा 'ईश्वरको ढूढ ढूंढकर निकालनेके लिये' यहां लिखी है। मुख्य विषय ईश्वरको ढूंढनेका है, गौण विषय अग्निको ढूंढनेका है और इसके लिये उपमा गौवें चुरानेवाले चोरकी दी है। यह उपमा ईश्वरकी निगूढता, गुप्तता, छिपे रहनेका भाव अच्छी तरह बताती है। देखिये इसका ईश्वरपरक भाव—

ईश्वर-परक अर्थ

(हृदयकी) गुहामें रहनेवाले, (भक्तोंके) नमस्कारके साथ युक्त होनेवाले, (भक्तके) नमस्कारको स्वीकारनेवाले, (इन्द्रियरूप) पशुओंको (अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले) चोर (जैसे सर्वत्र गुप्त छिपकर रहनेवाले ईश्वर) को (ढूंढनेके लिये) जोशीले धीर वीर (भक्त वेदके) पदोंके अनुसंधानसे चलते हैं, (उसे प्राप्त करते हैं और उपासना करनेके लिये) वे सब भक्तिरूप यज्ञ करनेवाले साधक साथ साथ बैठते हैं, (सांघिक उपासना करते हैं) । (१-२)

यह अर्थ स्पष्ट है और अधिक विवेचनकी इसके लिये कोई आवश्यकता नहीं है। अब इसी मन्त्रका अग्निविषयक भाव देखिये—

अग्निविषयक अर्थ

(अरणियोंमें) गुप्त रहनेवाले, (इन्धनरूप) अन्नके साथ संयुक्त होनेवाले, (आहुतिरूप) अन्नको (देवोंतक) पहुंचानेवाले (अग्निको), पशुके साथ रहनेवाले चोरकी तरह, प्रेमसे परस्पर प्रीतिसे सेवा करनेवाले बुद्धिमान् लोग, (मन्त्रोंके) पदोंसे पता लगाते हैं (और उस अग्निको) प्राप्त भी करते हैं। (इस तरह अरणियोंमें गुप्त रहा अग्नि घर्षणसे प्रदीप्त होनेके पश्चात्) सब याजक (उस अग्निके) समीप (चारों ओर) बैठते हैं (और यज्ञ करते हैं) । (१-२)

अरणिमें अग्नि छिपा है, लकडीमें अग्नि रहता है, यही चोरका गुहामें छिपकर रहना है। अरणीही पर्वत है। उसके अन्दर गुप्त अग्नि है। परमेश्वर भी ऐसाही हरएक वस्तुमें है। सर्वत्र छिपा है। इन दोनोंकी खोज करनेवाले वेदवेत्ता विद्वान् होते हैं। वेदके पदोंसे वे उसे प्राप्त करते हैं और या तो उस अग्निसे यज्ञ करते हैं, अथवा सामुदायिक उपासना करते हैं। दोनोंका परिणाम जनताकी भलाईही है।

पाठक विचार करें और देखें कि इस मंत्रमें कितनी रहस्यमयी रीतिसे ज्ञान दिया है। ईश्वरके लिये 'चोर' शब्दका प्रयोग बहुत सन्तोंके काव्योंमें भी है। अब दूसरा मंत्र देखिये—

भूमिपर स्वर्गधाम

२ 'देवोंने सत्यपालनके व्रतोंकी पालना की, बडी खोज की गई, जिससे भूमि स्वर्गके समान रमणीय बन गई।' यह आशय (**देवाः ऋतस्य व्रतानि अनु गुः, (महती) परिष्टिः भुवत्, भूमिः द्यौः न (भुवत्** ॥ मं. ३) इस मन्त्रभागका है। इस भूमिपर स्वर्गधाम स्थापन करनेका प्रयत्न वैदिक धर्म कर रहा है। इसके लिये '(१) सत्यके व्रतका पालन, और (२) बडी खोज' ये दो बातें चाहिये। खोजका क्षेत्र संपूर्ण मानवजीवनभर है। सत्यमार्गकी भी खोज करनी चाहिये। खोज करना और जो सत्य मिलेगा उसका पालन करना, इसीसे भूमिपर स्वर्गधाम स्थापन किया जा सकता है। यह मंत्रभाग विशेष महत्त्वका है, इसलिये इसका अधिक विचार होनेकी आवश्यकता है—

'**ऋत**' का अर्थ= योग्य, ठीक, सत्य, खरा, पूज्य, सन्मान्य, तेजस्वी, प्रकाशमय, उदयको प्राप्त, यज्ञ, सूर्य, नियम, विधिनियम, निश्चित किये नियम, धर्मनियम, पवित्र नियम, पावन कर्म, दिव्य नियम, दिव्य सत्य, मुक्ति, जीवन, कर्मफल, सत्य भाषण, परमात्मा।

व्रत= धर्मनियम, निश्चय, संकल्प, विश्वास, पद्धति, नियम, यज्ञ, आचार, योजना।

परिष्टिः = चारों ओर ढूंढना, खोज करना, ढूंढकर निकालना। घातपात, हिंसा।

बडा परिश्रम करके सत्यकी खोज करना, जब सत्यका पता लगे, तब उसका पालन करना और सत्यकी ही भक्ति करना। यह मत है और इसके पालनसेही इस भूमिपर स्वर्गधामकी

स्थापना हो सकती है, जो धर्मका साध्य है। सत्यके साथ अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (अपने पास भोगसाधना-का संग्रह अत्यधिक प्रमाणमें न करना), शुद्धता, संतोष, तप (शीतोष्णादि द्वन्द्व सहनेकी शक्ति), स्वाध्याय (ज्ञानकी प्राप्ति), ईश्वरभक्ति आदि गुणोंका भी संबंध है। अर्थात् इन सबकी पालना करना आवश्यकही है। सत्यकी पालना होने लगी तो क्रमशः इन सबकी पालना स्वयं हो जाती है। इसलिये सत्यकी महिमा विशेष है।

सत्य और ऋत ये एकही जीवनके दो भाग हैं। इनमें एक सचाई है और दूसरी सरलता है। सत्य और सरल मिलकर संपूर्ण सत्य होता है। यहां जिस सत्यकी पालनाका मत कहा है वह 'ऋत और सत्य' मिलकर है। सचाई भी हो, ठीक भी हो, सरल भी हो, कुटिलता न हो, इस तरहके सत्यकी पालनाका भाव यहां है। केवल सत्य है, पर ठीक नहीं है, तो उसे छोड देना चाहिये। यहां 'ऋत' पद है, जो इन सब भावोंके साथ प्रयुक्त हुआ है। केवल सत्यसे ऋत कई गुणा ऊंचा है, यह परमात्माका निज स्वरूप है। पाठक इसका विचार करें।

भूमिपर स्वर्गधामकी स्थापना करनेकी इच्छा है, तो सत्यका पालन अनिवार्य है, यह यहां बताया है।

२ ऋतस्य गर्भे योना सुजातं, पन्था सुशिश्विं ईं आपः वर्धयन्ति (म ४)— सत्यके मध्यमें उत्तम प्रकारसे प्रकट हुए, बढनेवाले, वर्णनके योग्य इसको कर्म बढाते हैं। यहां भी अग्नि, सोम, जीव तथा आत्माके वर्णन साथ साथ हैं। '**अग्नि**'= यज्ञनिष्पादक अरणीके मध्यसे उत्तम प्रकार उत्पन्न हुए, (वेदमन्त्रोंकी) स्तुतिके साथ उत्तम बालकके समान इस (अग्नि) को (यज्ञविषयक प्रशस्त) कर्म बढाते है। अरणिसे उत्पन्न हुए अग्निको प्रदीप्त करके हवना-ग्निके रूपमें बढा देते हैं। '**सोम**' सोमवल्लीसे उत्पन्न, वर्णनयोग्य रसको जल बढा देते हैं। सोमरसमें जल मिला देते है। '**जीव**'= गार्हपत्यरूप यज्ञमें उत्पन्न, उत्तम शिशुरूपमें रहे (जीव) को जल आदि पदार्थ बढाते हैं, सव-र्धन करते हैं, दुग्धादि देकर परिपुष्ट करते हैं। '**आत्मा परमात्मा**'= विश्वके बीचमें प्रकट हुए आत्माको (वेद मन्त्रोंकी) स्तुतिसे वर्णन करते हुए, अनेक शुभकर्मोंके द्वारा बढाते हैं॥ इस भूमिपर स्वर्गधामकी स्थापना करनेके लिये इस महत्तत्त्वरूप प्रकृतिके बीचमें जो आत्मा है, वह उत्तम रीतिसे प्रकट होकर, हरएकके अन्तःकरणमें सूर्यके समान स्पष्ट-रूपमें दिखाई देना चाहिये। इसीका वर्णन (वैदिक सूक्तोंमें) सर्वत्र हो रहा है और सब कर्म इसीकी बधाईके लिये अर्पण होने चाहिये।

३ कः ईं वराते ? (मं. ६) = इसे कौन रोक सकता है? इसे कौन प्रतिबंधमें रख सकता है? इस मन्त्रभागमें 'वृ' धातुका प्रयोग है। 'वृ' धातुका अर्थ ऐसा है— 'स्वीकार करना, पसंद करना, मांगना, याचना करना, ढांपना, आच्छा-दित करना, घेरना, चारों ओरसे घेरना, दूर रखना, प्रतिबंध करना, प्रेम करना, भूषित करना।' चारों ओरसे घेरने, प्रतिबंधमें रखनेका भाव यहां है। इस (प्रभु) को कौन प्रतिबंधमें रख सकता है?

४ यह प्रभु कैसा है? (**पुष्टिः न रण्वा**। म ५)= पुष्टि जैसी रमणीय होती है, वैसाही यह पोषक भी है और रमणीय भी है। (**क्षितिः न पृथ्वी**)= भूमि जैसी विस्तृत है वैसाही यह बडा विस्तीर्ण है। (**गिरिः न भुज्म**)= पर्वत जैसा भोजन देता है वैसाही यह सबको भोजन देता है। (**क्षोदः न शंभु**)= जलके समान यह कल्याणकारी, जीवनदाता अथवा हितकर्ता है। (**अत्यः न अज्मन् सर्गप्रतक्तः**)= उत्तम दौडनेवाला घोडा जैसा ऊपर बैठनेवाले वीरसे प्रेरित होकर दौडता हुआ चला जाता है, बीचमें ठहरता नहीं, वैसाही यह प्रभु भक्तिके शब्दोंसे प्रेरित होकर भक्तके पास सहायतार्थ जाता है, बीचमें रुकता नहीं। (**सिन्धुः न क्षोदः**) = नदीमें जलप्रवाह भरनेसे जैसी वह दोनों ओरकी भूमिको काटती हुई आगे बढती है, उसी तरह यह प्रभु विरोधको हटाता है और भक्तकी सहायतार्थ उसके पास पहुंचता है। इसी तरह अग्निके विषयमें भी पाठक मननपूर्वक भाव समझें।

पुष्टि रमणीयता बढाती है इसलिये प्राप्त करनी चाहिये। पृथ्वी मनुष्यका कार्यक्षेत्र है वह मनुष्यके लिये दिन प्रतिदिन विस्तृत होता रहना चाहिये। पर्वतसे भोजन मिलता है यह इस मन्त्रका तीसरा विधान है। पर्वतपर अनेक वृक्ष वनस्पति तथा औषधियां होती हैं, जो प्राणियोंके खानेमें आती हैं, पर्वतपर वृक्ष होते हैं और पर्वत मेघोंको आकर्षित करते हैं, जिससे वृष्टि होकर अन्नको उत्पन्न करती है, इस रीतिसे पर्वतसे अन्न होता

है। जल शान्तिसुख देता है यह इस मन्त्रमें चौथा विधान है, वृष्टिसे जल पृथ्वीपर आता है जो नदियों द्वारा पृथ्वीपर घूमता और शान्तिसुख देता है। नदी भरपूर भरकर दोनों ओरकी भूमिको काटती हुई आगे बढती है। यह जल अनेक प्रकारसे, मानवोंका कल्याण करता है। घुडदौडका घोडा जैसा ऊपर बैठनेवाले वीरके द्वारा प्रेरित होकर युद्धभूमिमें दौडता जाता है, वैसाही वीर शत्रुपर हमला करे और विजय प्राप्त करे। पुष्टिकी प्राप्ति, कार्यक्षेत्रमें कर्तव्य पालन, जलका सुप्रबंध, जलका प्रबंध और वीरतासे शत्रुको भगा देना ये बातें मनुष्यको अपने रहनेके प्रबंधमें करनेयोग्य बातें हैं। इस मंत्रद्वारा यह सूचना यहां मिलती है।

अग्निदेवके ये कार्य हैं। इनके करनेमें अग्निको कोई रोक नहीं सकता। अग्नि अग्रणीही है। अग्रणी भी जनताके हित साधनके लिये राष्ट्रमें येही कर्म करें। यह यहां तात्पर्य है।

५ सिन्धूनां जामिः। (मं. ७)= नदियोंका यह संबंधीही है। अग्निसे जलकी उत्पत्ति हुई है ऐसा (**अग्नेरापः**) उपनिषदमें कहा है, अथवा मेघमें बिजली चमकती है और पश्चात् वृष्टि होती है इसलिये जलप्रवाहोंका अग्निके साथ घनिष्ट संबंध है। सिन्धुनदी बहिन है और अग्नि उसका भाई है। यही बहिनभाईका संबंध आगे बताया है। (**स्वस्रां भ्राता इव**)= बहिनोंका जैसा भाई हित करता है वैसा यह अग्नि सबका भरणपोषण करने द्वारा हितकारी है। अग्नि अन्नादिका पाक करके सबका पोषण करता है।

६ इभ्यान् न राजा, वनानि अत्ति। (मं. ७)= शत्रुओंको जैसा राजा नष्टभ्रष्ट करता है वैसाही यह अग्नि वनोंको, लकडियोंको खा जाता है। लकडियोंका जलाना अग्निका कार्य है, यह राजाका या क्षत्रियका कर्तव्य बतानेके लिये यहां कहा है। जैसा अग्नि लकडीको जलाकर भस्म कर देता है वैसा क्षत्रिय वीर राजा अपने शत्रुओंका नाश करे।

७ वातजूतः अग्निः वना व्यस्थात्, पृथिव्या रोम दाति। (मं. ८)= वायुसे प्रेरित होकर अग्नि जब वनोंपर हमला करता है, तब वह अग्नि भूमिके बालोंको (वृक्षोंको) मानो काटता है। यहां भी क्षत्रियका शत्रुको काटनाही सूचित किया है।

जिस तरह अग्नि वृक्षोंको जलाकर नष्ट करता है वैसा क्षत्रिय जनताके शत्रुका नाश करे और जनताको सुखी करे।

८ कत्वा विशां चेतिष्ठः उषर्भुत्। (मं. ९)= यह अपने परम पुरुषार्थसे प्रजाजनोंको विशेष चेतना या स्फुरण देनेवाला, है और स्वयं उषःकालमें जागता रहता है। उषःकालमें उठता है, अपना कर्तव्यकर्म करने लगता है और ऐसे कर्म करता है कि जिससे सब जनताको नवजीवनही प्राप्त हो जाय।

९ सोमः न वेधाः, ऋत-प्रजातः, पशुः न शिश्वा, विभुः दुरे-भाः– सोम जैसा शरीरमें धारणाशक्ति उत्पन्न करता है वैसाही यह समाजमें विलक्षण शक्ति निर्माण करता है, सत्यके लियेही यह उत्पन्न हुआ है अतः सत्यके लिये जीवन देता है, पशु जैसा यह फुर्तिला है, सर्वत्र प्रभाव उत्पन्न करता है और दूरतक अपना तेज फैलाता है। अग्नि–अग्रणी–नेताके ये गुण हैं। नेतामें ये गुण रहें और बढें।

१० हंसः सीदन् न अप्सु श्वसिति— हंस जैसा पानीमें रहता है वैसाही यह सबके हितसाधक कर्म करता हुआही जीवन धारण करता है।

यहां कण्व ऋषिका प्रथम सूक्त समाप्त हुआ है। अग्नि, नेता, अग्रणी, आत्मा, परमात्मापरक अर्थ देखकर इन मंत्रोंका पाठक अधिक मनन करें।

११ रयिः न चित्रा= जैसा धन प्राप्त करनेयोग्य है वैसाही यह देव सबके लिये प्राप्तव्य है, धन जैसा सुखदायी है वैसा यह देव अत्यंत सुख देता है। **सूरः न संदृक्**= ज्ञानीके समान यह देव सम्यक् द्रष्टा है, ज्ञानी बनकर हरएक मनुष्य सम्यक् द्रष्टा बने। **आयुः न प्राणः**= प्राण जैसी आयु देता है वैसाही यह जीवन देता है। **नित्यः न सूनुः**= पुत्र जैसा सदा सुख देता है वैसाही यह सुखदायी है।

यहां धन, विद्या, सम्यक् दृष्टि, दीर्घ आयु, प्राणका बल अर्थात् दीर्घ जीवन और उत्तम संतान ये प्राप्तव्य हैं ऐसा सूचित किया है। पाठक इस सूचनाकी ओर विशेष ध्यान दें।

१२ तक्वा न भूर्णिः= चपल घोडा जैसा (शत्रुका पराभव करके अन्न लाकर) पोषण करता है, चपल फुर्तीला पुत्र जैसा पोषण करता है, फुर्तीला वीर जैसा शत्रुका पराभव करके दिग्विजय करके पोषण करता है, वैसा यह नेता है। **पयः न धेनुः**= गौ जिस तरह दूध देती है, वैसाही यह पोषण करता है। **शुचिः विभावा**= शुद्ध पवित्र और

विशेष प्रभावी यह (अग्नि अथवा अग्रणी या नेता) पवित्र रहता हुआ विशेष प्रभावसे युक्त हो। **वना सिषक्ति** = वनोंका सेवन करता है, अग्निपक्षमें वनोंके पास जाना जलानेके लिये है, नेताके पक्षमें वनोंकी सेवा, वनोंकी रक्षा जनताके हितके लिये है। इस मंत्रमें प्रगति या फुर्तीलापन, भरणपोषण करना, गौके दूधकी विपुलता, पवित्रता, वैभव और प्रभाव और वनोंका प्रबंध ये नेताके द्वारा संवर्धनीय विषय कहे हैं।

१३ **ओकः न रण्वः** = अपने निजके घरके समान आनन्द देनेवाला यह है। *अपना निजका घर कितना भी साधन-*विरहित हुआ, तो भी वह परकीय साधनसंयुक्त घरकी अपेक्षासे अधिक सुख देता है, *क्योंकि उसमें निज अधिकार रहता* है। अपनेपनका सुख उसमें है। **पक्वः यवः न** = पका जौ *जैसा सुखदायी, पुष्टिकारक और बलवर्धक रहता है* वैसा यह नेता है। **क्षेमं दाधार** = यह कल्याण करता है। अपने *घरके समान और पके धान्यके समान कल्याण करता है।* अपना निज अधिकार (अपने देश आदिपर) रहना चाहिये *और परिपक्व धान्य या फलके समान सब उपभोगके साधन* परिपूर्ण रीतिसे मिलने चाहिये। तब मानवको सुख होगा।

१४ **जनानां जेता** = प्रजाजनोंमें विजयी जेता। प्रजाजनोंको वही सुख देता है जो विजयी वीर होता है। **ऋषिः न स्तुभ्वा** = ऋषिके समान वर्णनमें क्रान्तदर्शी। ऋषि वह है जो अपनी दिव्य-दृष्टिसे अदृश्य स्थितिका दर्शन करता है तथा जो स्तुतिके स्तोत्रमें विशेष भाव रखता है। ऐसा नेता हो अर्थात् वह अपूर्व मार्गका दर्शन करे और करावे। **विक्षु प्रशस्तः** = प्रजाजनोंमें प्रशंसित हो। *शुभ गुणोंके कारण सब* जनताकी प्रशंसा जिसको प्राप्त हो रही हो। जो विजेता है, तत्त्वदर्शी है, दिव्य-दृष्टिसे जो देख सकता हो वही जनतामें प्रशंसित होता है। **प्रीतः वाजी न वयः दधाति** = संतुष्ट, प्रसन्न हुए बलिष्ठ (वीर) के समान सबकी भलाईके लिये अपना जीवन, अपनी आयु, समर्पित करता है। प्रसन्नचित्त घोडेके समान (*युद्धमें शत्रुका पराभव करके*) अन्न प्राप्त कर देता है। इस मंत्रभागमें जो नेताके लिये उपदेश है वह हरएकको ध्यानमें धारण करनेयोग्य है।

१५ **दुः-ओक-शोचिः नित्यः क्रतुः न, योनौ जाया इव विश्वस्मै अरम्।** = शत्रुद्वारा जिसके तेजका नाश नहीं किया जा सकता ऐसे नित्य यज्ञ करनेवाले (वीर) के समान, तथा घरमें धर्मपत्नी जैसी सबके लिये पर्याप्त सुख देती है, वैसा सुख यह देता है। प्रबल तेजस्विताका धारण करना नित्य यज्ञ अर्थात् सत्कार-संगति-दानात्मक कर्म करना और गृहमाताके समान सबपर प्रेम करना ये तीन गुण यहां वर्णन किये हैं जो महनीय हैं।

१६ **चित्रः श्वेतः न अश्रात्** = बिलक्षण धवल कीर्तिमान् तेजस्वी (वीर) के समान शोभता है। **विक्षु रथः न रुक्मी, समत्सु त्वेषः** = प्रजाओंमें रमणीय महारथी वीरके समान तेजस्वी, और युद्धोंमें यशस्वी वीरके समान उत्साही होता है। यहां सूचित किया है कि वीर निष्कलंक हो, तेजस्वी हो महारथी और सब जनतामें प्रभावी हो और युद्धक्षेत्रोंमें बडे उत्साहके साथ लडकर विजय पानेवाला हो। अग्निके वर्णनके मिषसे ये वीरताके गुण यहां सूचित किये हैं जो जनतामें संवर्धित होने चाहिये।

१७. **सृष्टा सेना इव अमं दधाति**— *शत्रुपर भेजी* सेनाके समान बल धारण करता है। सेनाही राजाका और राष्ट्रका *बल है। जब यह सेना शत्रुपर हमला करनेके लिये भेजी* जाती है तब उसका बल अपूर्व होता है। **त्वेषप्रतीका दिद्युत् अस्तुः न**— *जलनेवाली विद्युतके समान तेजस्वी* अस्त्रके समान यह वीर शत्रुके लिये महाभयंकर होता है। राष्ट्रीय वीरोंमें यही बल बडा प्रभावी होना चाहिये।

१८. **कनीनां जारः, जनीनां पतिः**— (यह वीर) *कन्याओंके लिये प्रिय और स्त्रियोंका पति होता है। कन्याएं पूर्वोक्त* वीरको चाहती हैं कि अपना पति ऐसाही वीर हो। वह जिन *प्रौढ स्त्रियोंका पति होता है वे अपने आपको धन्य मानती* हैं और उसके समान वीर संतान पैदा करती हैं। यहां कन्याओंके मनमें कैसे विचार रहते हैं वह कहा है। कन्याएं मनमें इच्छा करती हैं कि ऐसा वीरही हमारा पति होवे और जिन स्त्रियोंका वह पति होता है, वे स्त्रियां अपने आपको कृतकृत्य मानती हैं, जिनसे वीर संतान उत्पन्न होती है।

यहां '**कनीनां जारः**' ये पद संदेह उत्पन्न करनेवाले हैं इनका शब्दार्थ 'कन्याओंका जार' है। पर ये सब मंत्र जितने इस समयतक आये हैं तथा आगे आनेवाले हैं वे संक्षिप्त हैं, अर्थात् बाहरसे अनेक पद लेकरही पूर्वापर संबंधसे इनका अर्थ करना चाहिये। इस कारण '**कनीनां जारः**' का अर्थ '**कनीनां** [illegible]' है।

जनताका क्षेम और भद्र सुस्थिर रखनेका सब कार्यक्रम यहां इस मन्त्रने बताया है। 'आधि' का अर्थ 'धर्म-चिन्तन, कर्तव्य-चिंतन, उन्नतिकी आशा' आदि है, तथा मानसिक व्यथाका भी भाव इसमें है।

२३. विश्वानि नृम्णा हस्ते दधानः, गुहा निषीदन् अमे देवान् धात्। = सब पौरुषसे प्राप्त होनेवाले धन अपने हाथमें रखकर, स्वयं गुप्त स्थानमें रहकर, इसने सब देवोंको बलमें धारण किया, बलिष्ठ किया है। इसमें दो पद विशेष महत्त्वके हैं, उनके अर्थ ये हैं— '**नृम्णं**' = सुख, सुखी होना, मानवता, बल, शक्ति, धैर्य, धन, (नृ-मनः) मानवोंका मानसिक सामर्थ्य, बौद्धिक बल, धैर्य, शौर्य, वीर्य। '**अमः**' = अपक्व फल, गति, बल, शक्ति, भय, रोग, सेवक, प्राण, आत्मशक्ति, अमाप स्थिति।

इस मंत्रमें तीन विधान हैं (१) सब बलोंको अपने आधीन करता है, (२) स्वयं गुहामें बैठता है, गुप्त रहता है, और (३) दिव्य विबुधोंको बलमें स्थापन करता है, उनका बल बढाता है। प्रथम सब बलोंको, मानसिक शक्तियोंका अपने हाथमें रखना, अपने आधीन करना चाहिये। सब इंद्रियादिकोंपर अपना प्रभुत्व रखना चाहिये। जो शक्ति अपने आधीन नहीं होगी वह अपना लाभ करेगी या नहीं इस विषयमें कौन निश्चय कर सकता है? इसीलिये सब शक्तियां अपने आधीन करना पहिली और मुख्य बात है। इसके पश्चात् देवोंको बलमें धारण करना है, उनको शक्तिके साथ कर देना है। व्यक्तिमें इंद्रियगण देव हैं, समाजमें दिव्य ज्ञानी देव हैं और विश्वमें अग्नि आदि देव हैं। ये देव सामर्थ्यसपन्न रहने चाहिये और अपने आधीन भी रहने चाहिये। क्योंकि सब कार्य इन देवोंके द्वारा ही होने हैं। इनकी प्रतिकूलतासे कोई कर्म यथायोग्य रीतिसे होगाही नहीं। इसलिये इनको अपने अधीन रखकर, इनको बलवान् भी बनाना चाहिये, तत्पश्चात् इनसे कार्य कराना है। पर यह सब अपने आपको अत्यंत गुप्त रखकरही करना चाहिये। कौन कहांसे कार्य करवाता है, इसका पता न लगे। इससे दो बातें सिद्ध होती हैं, एक तो कर्ताका निरभिमान और प्रसिद्धिकी लालसाका न होना और दूसरा शत्रुसे सुरक्षित रहना।

राष्ट्रीय उन्नतिकी साधनाके लिये ये उपदेश बडेही मननीय और आदरणीय हैं।

२४ धियंधाः नरः अत्र ईं विदन्ति, हृदा तष्टान् मंत्रान् अशंसन्— बुद्धिको धारण करनेवाले ज्ञानी नेतागण यहां इस अग्रणीको प्राप्त करते हैं और हृदयसे बनाये विचारोंको उससे कहते हैं, उसको अपने हृदयके विचार सुनाते हैं। यहां स्पष्ट प्रतीत होता है कि बुद्धिवान् नेता सभामें परस्परके साथ मिलें, अपने अपने मनसे या हृदयसे निर्धारित किये विचार मनन पूर्वक बोलें, और एकमतसे जो सिद्ध हो जाय उसका ग्रहण करें। यज्ञमें यही होता है, प्रथम अग्नि (अग्रणी) यज्ञस्थानमें स्थापन किया जाता है, पश्चात् मननशील ऋत्विज उसको घेर कर बैठते हैं और अपने हृदयके मंत्र वारंवार गाते हैं। सभामें यही हो, प्रथम सभापति निश्चित हो, सब सदस्य उसके पास बैठें, पश्चात् अपने हृदयसे निर्धारित किए सूक्ष्मसे सूक्ष्म विचार कहें और इस तरह सभाका कार्य चले। (**हृदा तष्टान् मंत्रान् अशंसन्**) हृदयसे सूक्ष्मसे सूक्ष्म विचार निर्धारित करके कहनेकी बात अत्यंत मुख्य है। बारीक बारीक बातोंका विचार करनेका भाव यहां स्पष्ट है और वही मानवी उन्नतिका मार्ग बताता है।

२५ अजः न क्षां पृथिवीं दाधार, द्यां सत्यैः मन्त्रैः तस्तम्भ— अज (आत्मा अथवा सूर्य) ने इस विस्तृत भूमिको धारण किया है और सत्य अटल नियमोंसे प्रकाशलोकको भी सुस्थिर किया है। यहां 'अजः' पद मुख्य है इसका अर्थ— '(अ-जः) अजन्मा, (अजति इति अजः) गतिमान, प्रगति करनेवाला, हलचल करनेवाला। **अज** = संचालक, चलानेवाला, नेता, अग्रणी, सूर्यकिरण, किरण। नेता मातृभूमिका धारण करता है, अग्रणी राष्ट्रका संचालन सुयोग्य रीतिसे करता है, सत्य मन्त्र अर्थात् सत्यकी सुरक्षा करनेवाले सुविचारोंसे, मननीय विचारोंसे प्रकाशमय स्थानकी सुरक्षा करता है। 'द्यु' का अर्थ है– 'दिन, आकाश, प्रकाश, तेजस्वी, तेजोमय स्थान, स्वर्ग, तीक्ष्णता, अग्नि।'

२६ विश्वायुः (त्वं) पश्वः प्रिया पदानि नि पाहि, गुहा गुहं गाः।— दीर्घ आयुसे युक्त होकर तू पशुके प्रिय स्थानोंकी सुरक्षा कर और स्वयं गुप्त स्थानसे भी अधिक गुप्त स्थानमें जा कर रह॥

पशुओंको जो प्रिय स्थान होते हैं उनकी सुरक्षा करनी चाहिये। जहां घास उत्तम होता है, जहांका पीनेके लिये अच्छा पानी होता है, जहां आरामसे बैठा जाता है, वे स्थान गौआदि पशुओंके लिये प्रिय होते हैं। ऐसे स्थानोंकी राष्ट्रमें सुरक्षा होनी

चाहिये। पशुओंकी सुरक्षा राष्ट्रीय उन्नति करनेवाली है। इसलिये इसका अवश्य विचार राष्ट्रप्रबंधमें होना चाहिये।

२७ य ईं गुहा भवन्तं चिकेत, यः ऋतस्य धारां आ ससाद।— जो गुप्त स्थानमें सर्वत्र व्यापक होकर रहनेवाले इस (अग्नि या आत्मा) को जानता है, वह सत्यकी धाराको, यज्ञके मार्गको प्राप्त करता है। यह यज्ञ मनुष्योंकी उन्नति करनेवाला है।

२८ ये ऋता सपन्तः वि चृतन्ति, अस्मै वसूनि प्र ववाच— जो सत्यके साथ सत्यकी प्रशंसा करते हुए संगठन करते हैं, उनके लिये धनोंकी प्राप्तिके मार्गका वर्णन कर। उनको ही धन मिले कि जो सत्यका पालन करते हैं और सत्यके आश्रयसे सुसंगठित होते हैं।

२९ यः वीरुत्सु महित्वा विरोधत्, उत प्रजाः प्रसूषु अन्तः (विरोधत्)- जो अग्नि औषधियों, वृक्षों, लकडियोंमें अपनी महिमासे रहता है, और माताओंमें संतान जैसा लकडियोंमें रहता है। मातारूप अरणियोंसे उत्पन्न होता है। अग्नि वृक्षोंमें रहता है और उनसे प्रकट होता है। अग्नि लकडियोंमें रहता है, उनसे उत्पन्न होता है, लकडी इसकी माता है और अग्नि उसका पुत्र है, पर यह पुत्र अपनी माताका और माताके कुलकाही (विरोधत्) विरोध करता है, लकडियोंसे उत्पन्न होकर उन्हींका नाश करता है। यह विरोध यहां है, यह एक अलंकार यहां है।

३० चित्तिः, अपां दमे विश्वायुः (ते) धीराः संमाय, सद्म इव चक्रुः— जो ज्ञान स्वरूप है, जो जलप्रवाहोंके स्थानोंमें संपूर्ण आयु व्यतीत करता है, अर्थात् जो नदीके किनारोंपर सदा यज्ञ करता है, अथवा यज्ञ करवाता है, उसका ज्ञानी या बुद्धिमान् पुरुष अच्छी तरह संमान करते हैं, और उसीको अपने घरके समान अपना आश्रय मानते हैं। ज्ञानी सत्कर्म कर्ता पुरुषही जनताके लिये आश्रयस्थानसा प्रतीत होता है।

यहां तृतीय सूक्त समाप्त हुआ है।

३१ भुरण्युः श्रीणन् दिवं उपस्थात्, स्थातुः चरथं अक्तून् वि ऊर्णोत्। = सबका भरणपोषण करनेवाला और सबकी शोभा बढानेवाला (अग्निदेव प्रदीप्त होकर) द्युलोकतक (अपने प्रकाशसे) फैल गया, यह स्थावर जंगमोंको और किरणोंको व्यक्त या प्रकट करता है। अग्नि प्रदीप्त होकर वह बडा दावानलका रूप धारण करता है। यह अन्न पकाकर सबका भरणपोषण करता है, यही सूर्यरूपसे आकाशमें प्रकाशता है, अग्निरूपसे भूमिपर प्रकाश फैलाता है, जिसके प्रकाशसे स्थावर तथा जंगम सभी पदार्थ स्पष्ट और व्यक्त रूपसे दिखाई देते हैं। सूर्य जब ऊगने लगता है, तब रात्रिको भी वह प्रकाशित करता है। यही उषःप्रकाश कहलाता है। '**अक्तुः**' = रात्री, अन्धकार, धुंधलापन, प्रकाश, किरण, सुगंधित लेप। यह एकही अग्नि भूमिपर अग्निरूपसे, अन्तरिक्षमें विद्युद्रूपसे और द्युलोकमें सूर्यरूपसे प्रकाशता है। यह एकही तीन रूपोंमें दिखाई देता है।

३२ विश्वेषां देवानां एकः देवः महित्वा परिभुवत्= सब देवोंमें एकही अपनी महिमासे सर्वोपरि हुआ है। सब देवोंमें एकही देव सबका प्रमुख है, मुखिया है, श्रेष्ठ है, सबका नियामक है, जो सब विश्वपर शासन करता है।

३३ जीवः शुष्कात् जनिष्ठाः विश्वे ते क्रतुं जुषन्त। = जीव शुष्कसे जन्मा है, तब सबोंने तेरे कर्तृत्वकी प्रशंसा की। जीव सचेतन है, वह शुष्क प्रकृतिसे प्रकट होता है। प्रकृति अचेतन है, पर जब वह चेतनके साथ संयुक्त होती है, तब जीव प्रकट होता है। यहां उदाहरण अग्नि और काष्ठका है। अग्नि जलता है, काष्ठ शुष्क है वह स्वयं प्रदीप्त नहीं है, पर जब उसको अग्निका संयोग होता है तब वह अग्निके समान प्रदीप्त होता है। जीव और अग्निका वर्णन यहां समानतया किया है। प्रकृति और शुष्क काष्ठ यह क्रमशः उनका कार्यक्षेत्र है। इस तरह प्रकट हुए सभी साधक यज्ञकी सेवा करते हैं। अग्निपक्षमें हवनाग्निकी हवनक्रियासे सेवा करते हैं और जीवपक्षमें जीवनरूप जन्मसे मरणपर्यंत चलनेवाले दीर्घ सत्रका अनुष्ठान करते हैं। जीवनको यज्ञमय बनाते हैं।

३४ पद्यैः अमृतं सपन्तः विश्वे नाम ऋतं देवत्वं भजन्त = अपने प्रयत्नोंसे अमरत्वकी प्राप्ति करनेवाले सभी साधक यश, सत्य और देवत्वको प्राप्त करते हैं। **पद्यः** = (यन्ति इति) = प्रगति, प्रगतिका अनुष्ठान। अनुष्ठान करनेसे ही मनुष्य अमरत्व प्राप्त कर सकता है। जिससे उसका नाम होता है, सत्य और सरलता ये उसके सहज धर्म होते हैं, जिसका परिणामस्वरूप वह देवत्व प्राप्त करता है। जिसने अमरत्वकी प्राप्तिके लिये अनुष्ठान किया है और जो सत्यका पालन करता है वह देवत्व प्राप्त करता है। देवत्व प्राप्तिका

साधन यहां कहा है।

३५ विश्वे ऋतस्य प्रेषाः, ऋतस्य धीतिः, विश्वायुः अपांसि चक्रुः । = सभी सत्यके प्रचारक और सत्यके धारण करनेवाले, अपनी सब आयुपर्यंत अच्छे अच्छे कर्म करते हैं। और येही अपनी उन्नतिका ठीक मार्गसे साधन करते हैं। यहां ' ऋत ' का अर्थ ' सत्य और सरलता ' है। 'अपस्' का अर्थ 'व्यापक कर्म, जिस कर्मका परिणाम सब जनताके लिये हितकर होता है ऐसा शुभकर्म'। जो अपनी उन्नति चाहते हैं वे ऐसेही कर्म करते जायँ। जो केवल व्यक्तिके भोगके लिये कर्म होता है वह क्षुद्र कर्म है, पर जो संपूर्ण जनसमुदायके हितके लिये कर्म होता है, वही ' अपस् ' अर्थात् 'व्यापक कर्म' कहलाता है।

३६ यः तुभ्यं दाशात्, यः वा ते शिक्षात्, चिकित्वान् (त्वं) रयिं दयस्व । = जो तुझे दान देगा, जो तुझे सिखायेगा, ज्ञानी होकर तू उसे धन दे। जिससे सहायता प्राप्त हुई है उसको उसके बदले योग्य समयमें सहायता करना योग्य है। जिसने पढाया है उसको ज्ञानी होनेके पश्चात् गुरुदक्षिणारूपमें धन देना योग्य है। उऋण होना हरएकके लिये अत्यावश्यक है। अग्नि अरणीसे उत्पन्न होता है उस समय वह छोटा रहता है, घृताहुति दे देकर उसका परिपोष ऋत्विज करते हैं और उसको मंत्रपाठद्वारा बधाई करते हैं, अग्नि उनको धन देता है। इससे ऊपर बताये विधिके अनुसार बोध उऋण होनेके विषयमें मिलता है।

३७ मनोः अपत्ये होता रयीणां पतिः । = मनुकी संतानोंके संगठनमें जो होता या दाता है वही उनके धनोंका स्वामी है। अर्थात् जो जनताकी संघटना करनेके लिये दान देता है, अपना अर्पण करता है, वही उस जातिके धनोंका अधिपति होता है। जनता उसीको प्रमुख बनाती है जो अधिक त्याग करता है।

३८ तनूषु मिथः रेतः इच्छन्तः, अमूराः स्वैः दक्षैः सं जानत = अपने स्त्रीपुरुषोंके शरीरोंमें परस्पर वीर्य बढानेकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी वीर अपने बलोंसेही अपने साथ साथ संयुक्त होनेका ढंग जानते हैं। अर्थात् शरीर में रजवीर्यकी वृद्धि होनेके पश्चात् स्त्रीमें और पुरुषमें परस्पर मिथुन अर्थात् संमेलन करनेकी इच्छा होती है, पश्चात् वे अपने बलोंके अनुसार परस्पर संगत होनेकी रीति जानकर संगत होते हैं। यही सुप्रजाजननकी रीति है। शरीरमें वीर्य उत्पन्न होनेके पूर्व स्त्रीपुरुष-संबंध नहीं होना चाहिये।

पूर्व मंत्रमें ' मनोः अपत्ये' ये पद हैं। मनुकी संतान वहां कही हैं, इसलिये उत्तम संतान उत्पन्न करनेका विधि यहां कहा है। पूर्वके मंत्रोंके उपदेश भी यहां विचारपूर्वक देखने चाहिये शिक्षा प्राप्त करना, गुरुदक्षिणा देना, धन प्राप्त करना, पश्चात् सुप्रजा उत्पन्न करना योग्य है। ये सब मंत्र इस तरह पूर्वापर संबंधपूर्वक देखनेयोग्य हैं।

३९ पितुः न पुत्राः, अस्य शासं तुरासः ये ओपन् ते क्रतुं जुषन्त = जिस तरह पुत्र पिताके अधिकारको प्राप्त करते हैं, उसी तरह इस जगत्पिताके शासनको जो सत्वर मानते और वैसा आचरण करते हैं, वे यज्ञ करते हैं। और पिताके समान समर्थ होते हैं। व्यवहारमें पिताके वित्त आदिपर पुत्रका अधिकार रहता है, पर पुत्र पागल नहीं होना चाहिये। पिताके अनुशासनमें जो पुत्र रहता है, और जो मूढ नहीं है, उसीको पितृवित्तका संपूर्ण अधिकार मिलता है। वैसाही यहां प्रभुके शासनको जो सत्वर सुनते हैं वेही यज्ञ करते और प्रभुके परम ऐश्वर्यसे युक्त होते हैं।

४० पुरुक्षुः रायः दुरः वि औणोंत्, दमूना नाकं स्तृभिः पिपेश = बहुत अन्नका दान करनेवाला धनके द्वार खोल रखता है। जिसका मन संयमसे युक्त है, वह मानो स्वर्गको नक्षत्रोंसे सुशोभित करता है। अपने पास बहुत अन्नका संग्रह करना और यज्ञमें उसका दान करना, यह अनुष्ठान है जिससे धनके द्वार खुल जाते हैं। दानी मनुष्यके पास सब संपत्ति आ जाती है। मनका दमन करनेवालाही अपने इंद्रिय दमनसे स्वर्गकी शोभा बढाता है। संयमी मनुष्यके संयमसे स्वर्ग भी अधिक रमणीय हो जाता है।

मानवी उन्नतिका ध्येय और मार्ग

(**विश्वेषां देवानां एकः देवः परि भुषत् । ३२)**— सब देवोंमें एकही मुख्य देव है जिसका शासन सबपर होता है, (**शुष्कात् जीवः जनिष्ठाः । ३३)**— शुष्क प्रकृतिसे, प्रकृतिके साथ आत्माका संबंध आनेसे जीव जन्मा है। (**विश्वे क्रतुं जुषन्त)**— सभी ज्ञानीजन यज्ञ करते हैं। (**अमृतं एवैः सपन्त)**— अमृतत्वको नाना प्रयत्नोंसे प्राप्त करते हैं। (**भुरण्युः दिवं उपस्थात् । ३३) =** दूसरोंका भरण-

पोषण दायक करनेवाला ज्ञानी दिव्य प्रकाशमान होनेके लिये आत्माका उपस्थान करता है, उपासना करता है । यह आत्मा (स्थातु- चरथ अक्तून् वि ऊर्णोत्। ३१)- स्थावर जंगम अनंत वस्तुओंको प्रकाशित करता है और अज्ञान अन्धकारको दूर करता है। इस प्रकाशमें आकर (ऋतस्य प्रेषाः, ऋतस्य धीतिः, विश्वायुः विश्वे अपांसि चक्रुः ३३)- सत्यकी प्रेरणा और सत्यकी धारणा करते हुए सम्पूर्ण आयुभर सब ज्ञानी साधक प्रशस्ततम कर्म करते हैं। (विश्वे ऋतं देवत्वं भजन्त । ३४) ये सब सत्यकी और देवत्वकी प्राप्ति करते हैं। (अस्य शासं तुरासः श्रोषन् ते ऋतुं जुषन्त । ३६)— इस प्रभुके शासनको त्वरासे सुनकर वे जीवन भरमें यज्ञही करते रहते हैं। (पुरुक्षुः रायः दुरः वि ओर्णोत् । ४०)- जिसके पास बहुत अन्न है ऐसा दानी मनुष्य मानो धनके द्वारही सबके लिये खुला करता है, (दमूना नाकं पिपेश)— वह इन्द्रियदमन करनेवाला साधक अपने यशसे स्वर्गधामकी शोभा बढाता है । इतनी इसकी योग्यता मानी जाती है।

ऐसे साधक (तनूषु मिथः रेतः इच्छन्। ३८)— अपने शरीरोंमें रेतके संवर्धनकी इच्छा करते हुए वे (अमूराः स्वैः दक्षैः सं जानत)— ज्ञानीजन अपने बलोंसे सफलीकरणका मार्ग जानते हैं, और पश्चात् (पितुः पुत्राः) पितासे पुत्र उत्पन्न करते हैं और उसको अपना अधिकार पिता देता है ।

इस ढंगसे उक्त चतुर्थ सूक्तके मंत्रोंकी संगति देखनेयोग्य है । पाठक इस ढंगसे सूक्तके मंत्रोंकी संगति लगाकर बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं।

चतुर्थ सूक्तका विवरण समाप्त ।

४१ उषः जारः न, शुक्रः शुशुक्वान् समीची दिव न, ज्योतिः पप्रौ । = उषाका प्रियपति जैसा (सूर्य चारों ओर अपना प्रकाश विश्वभरमें फैलाता है, वैसाही) बलवान् तेजस्वी यह (अग्निदेव) दोनों द्युलोक और भूलोकमें अपनी ज्योति फैलाता है । सूर्य और अग्निके समान मनुष्योंको उचित है कि वे भी स्वयं तेजस्विता प्राप्त करके विश्वभरमें अपना तेज फैला देवें ।

४२ प्रजातः क्रत्वा परि बभूथ = उत्पन्न होतेही प्रशस्ततम कर्म करके सबपर प्रभाव डालता है । सबसे श्रेष्ठ बनता है, क्योंकि रक्षणकार्य जानता है। हरएक मनुष्य पुरुषार्थ साधनेके उत्तमोत्तम कर्म करके श्रेष्ठ बने । देवानां पुत्रः सन् पिता भुवः = देवोंका पुत्र होता हुआ भी उनके लिये पिता सदृश आदरणीय होता है। अरणीसे निकला अग्नि यज्ञाग्नि बनकर विश्वमें संमाननीय हो जाता है । आयुमें छोटा होता हुआ भी पिता, वीर्य और तेजसे सबसे बढकर होता है। हरएक मनुष्य पिता, वीर्य आदिका प्राप्ति करके श्रेष्ठ बननेका यत्न करे।

४३ वेधाः अदृप्तः विजानन् अग्निः, गोनां ऊधः न, पितूनां स्वाद्म । = कर्ममें कुशल, गर्वहीन, ज्ञानी अग्नि गौओंके दुग्धाशयके दूधसे जैसा स्वादु बनाता है वैसाही अन्नोंको भी स्वादु बनाता है । इसी तरह मनुष्य विशेष कर्तृत्वशक्तिसे युक्त होवे, घमंड न करे, ज्ञानी बने, गौओंके दूधका तथा मधुर अन्नोंका स्वाद लेवे । 'वेधाः'= वह है कि जो नयी नयी चीज बनाता है । कुशल कर्म करनेवाला विधाता यदि गर्वहीन और विज्ञानसंपन्न हुआ तो वह विशेष आदरणीय होता है । गौके गर्भाशयसे दूध निकलतेही उस धारोष्ण दूधका सेवन करना योग्य है । इसी तरह स्वादु अन्नका सेवन करना योग्य है । ये दो सूचनाएँ यहां मननीय हैं ।

४४ जने न शेवः = जनोंमें सेवा करनेयोग्य । जो पुरुषार्थी ज्ञानी और नया विधान करनेमें समर्थ होता है, विधाता-विशेष सुखदायी वस्तुओंका कर्ता होता है, वही सेवा करनेयोग्य होता है । (मध्ये आहुर्यः)= कठिन समय प्राप्त होनेपर जो सहाय्यार्थ बुलाया जाता है वही जनोंमें आदरणीय होता है । (दुरोणे रण्वः निषत्तः) = अपने घरमें रमणीय होकर जो रहता है । (अपने घरमें, नगरमें, प्रान्तमें, देशमें अथवा अपने राष्ट्रमें जो रमणीय समझा जाता है । जनताका हित करनेके कारण जो जनतामें सेवा करनेयोग्य है वही पूजनीय है । मनुष्य ऐसा बने ।

४५ जातः पुत्रः न दुर्गेणे रण्वः । = नवजात पुत्रके समान घरमें सबके लिये रमणीय प्रतीत होवे । हरएकके मनमें उसके विषयमें आदरका भाव उत्पन्न होवे ।

(वाजी न प्रीत विशः वि तारीत्)= सन्तुष्ट हुए बलवान् वीरके समान यह प्रजाजनोंका तारण करता है । जनताकी सुरक्षा करता है । इसी तरह जनताकी सुरक्षा करनेका कार्य हरएक मनुष्यको करना उचित है ।

४६ नृभिः सनीळाः विशः, यत् अह्व, अग्निः विश्वानि देवत्वा अश्याः । = नेताओंके द्वारा एक घरमें रहनेवाले प्रजाजनोंकी सुरक्षा करनेके निमित्त, जिस वीरको बुलाया जाता है, वह अग्रणी (अग्नि) देव सब प्रकारके देवभावोंको प्राप्त करता है। एक घरमें रहनेवाले प्रजाजन एक देशवासीही समझने चाहिये । इनकी सुरक्षा करनी चाहिये। यह कार्य जिसकी सहायतासे होता है वह निःसंदेह सब देवी गुणोंका धारण करता है, अथवा उसमें सब दिव्य भाव रहते हैं। जनताकी सुरक्षा करनेके लिये जो अपने आपका समर्पण करता है वह देवत्वका अधिकारी निःसंदेह है । अग्नि जैसा जनताको प्रकाश देनेके लिये संपूर्णतया आत्मसमर्पण करता है, वैसाही मानवोंको करना उचित है ।

४७ ते एता व्रता नकिः मिनन्ति, यत् एभ्यः नृभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ । = तुम्हारे इन नियमोंका कोई उल्लंघन कर नहीं सकता, जो कार्य इन मानवोंकी उन्नतिके लिये तुमने किये । मानवोंकी उन्नतिके कार्य ऐसे करने चाहिये कि जिनके अन्दर कोई भी विघ्न न कर सके ।

४८ यत् अहन्, ते वंसः समानैः नृभिः युक्तः रपांसि, यत् विवेः । = जो तुमने शत्रुका वध किया, वह तुम्हारा बडा भारी पराक्रमही है । इसी तरह तुमने साधारण मनुष्योंके द्वाराही (बडे विघ्नकारी शत्रुओंका नाश करनेके) कार्य किये और उनको भगाया (यह भी तुम्हारा बडाही पौरुष है) । वीरोंको उचित है कि वे ऐसे पराक्रम करें ।

४९ उषः न जारः, विभावा उस्रः संज्ञातरूपः अस्मै चिकेतत् । उषाके प्रियकर सूर्यके समान, यह विशेष प्रभावान् सबको जाननेवाला (अग्नि) इस (भक्तको) जाने । इसको अपना प्रिय माने । इसपर कृपा करे । सूर्य जैसा अपने प्रकाशसे सब विश्वको प्रकाशित करके यथावत् जानता है, वैसाही स्वयंप्रकाशी अग्नि जाने । और वैसाही राष्ट्रमें अग्रणी भी राष्ट्रके पुरुषोंको जाने ।

५० त्मना वहन्तः, दुरः वि ऋण्वन्, दर्शाकं स्वः विश्वे नवन्त । = अपने (प्रकाशको) फैलाते हुए, (उन्नतिके) सब द्वार खोलकर, दर्शनीय आत्मा (के प्रकाशका) सबके (सब ज्ञानी) वर्णन करते हैं । प्रथमतः सभी कार्यका भार स्वय उठाना चाहिये, विघ्नोंको दूर करके सब उन्नतिके मार्ग सबके लिये खुले होने चाहिये । तब आत्माके प्रकाशका चारों ओर फैलाव होगा। जिसका सब ज्ञानी सदा वर्णन करते हैं ॥

इस पाचवें सूक्तके उपदेश स्पष्ट समझमें आनेयोग्य और सबोंके व्यवहारमें लानेयोग्य हैं । अतः इनका विशेष विवरण करनेकी यहां आवश्यकता नहीं है ।

यहां पाचवां सूक्त समाप्त है ।

५१ पूर्वीः मनीषा वनेम । सुशोकः अर्यः अग्निः विश्वानि अश्याः ।— हम पूर्व (वैभव अपनी) बुद्धिसे प्राप्त करेंगे । यह तेजस्वी स्वामी अग्रणी (अग्निदेव) सबको अपने आधीन करता है । हरएकको अपना वैभव प्राप्त करना चाहिये । स्वामी अपनी सब शक्तियोंको अपने अधीन रखे ।

५२ दैव्यानि व्रता चिकित्वान्, मानुषस्य जनस्य जन्म आ ।— दिव्य नियमोंको जानो, दिव्य नियम वे हैं कि जो सूर्य, विद्युत्, वायु आदि देवताओंके संबधमें जाननेयोग्य हैं । क्योंकि इनपरही मानवका सुख अवलंबित है । मनुष्यका जन्म जिस तरह सफल और सुफल होगा, वह मार्ग भी तुम्हें जानना चाहिये ।

५३ यः अपां, वनानां, स्थातां चरथां च गर्भः– जो जलों, वनों, स्थावरों और जंगमोंके अन्दर रहता है । यह अग्नि सब पदार्थोंमें व्यापक है । वैसाही आत्मा है ।

५४ अस्मै दुरोणे अद्रौ चित् अन्तः । अमृतः स्वाधीः । विश्वः विशां न ।– इस (देव) के लिये घरमें तथा पर्वतपर अर्थात् सर्वत्र अपना अर्पण किया जाता है । यह अमर है और उत्तम ध्यान करनेयोग्य है । संपूर्ण सत्ताधारी राजा जिस तरह सब प्रजाजनोंको आधार देता है (वैसाही यह देव सबके लिये आश्रय देता है और सबकी उन्नति करता है) ।

५५ सः हि अग्निः क्षपावान्, रयीणां दाशत्, यः अस्मै सूक्तैः अरं (करोति) ।– यह अग्नि रात्रीमें प्रज्वलित होकर धनोंका दान उसके लिये करता है, कि जो इस अग्निको सूक्तोंसे अलंकृत करता है । जो यज्ञ करता है उसको यह सब धन देता है ।

५६ देवानां जन्म, मर्तान् विद्वान्, एता भूम नि पाहि ।– यह देवोंका जन्म, तथा मानवोंके जीवनोंको जानता है और इस मातृभूमिकी सुरक्षा करता है । सूर्य, चन्द्र, वायु, जल

आदि देवताओंके विषयका ज्ञान जानता है, मर्त्योंके विषयमें ज्ञातव्य बातें जानता है और इस मातृभूमिकी सुरक्षा करता है। मनुष्य भी ज्ञान-विज्ञानसे युक्त होकर जनताकी सुरक्षाके लिये यत्न करे।

५७ पूर्वीः क्षपः विरूपाः यं वर्धान्। स्थातुः रथं च ऋतप्रवीतम्।— पूर्वकी अनेक रात्रियोंने अनेक रूपोंमें इसकी बधाई की है। स्थावर और जंगम जिसके द्वारा सत्य-नियमोंसे वेष्टित जैसा हुआ है। अर्थात् अनेक रात्रियोंमें जिसका संवर्धन किया है और स्थावर जंगम जिससे व्याप्त है।

यहां क्रमसे अनेक रात्रियोंके होनेका उल्लेख है जो उत्तरीय ध्रुवके स्थानमें ही संभव है। क्योंकि वहां छः महिनोंकी रात्रि होती है और उस समय वहां अग्नि प्रज्वलित रखनेकी आवश्यकता होती है।

५८ स्वः निषत्तः होता अराधि, विश्वानि अपांसि सत्या कृण्वन्।— अपने निज तेजमें प्रकाशित रहनेवाला, देवोंको बुलानेवाला यह अग्नि सुपूजित हुआ है। यह सब पुरुषार्थोंको सत्य-फल-दायी करता है। अपने तेजसे तेजस्वी बनो, देवोंको बुलाकर उनको प्रसन्न करो, सब कर्मोंको सत्य फलदायी होने योग्य रीतिसे संपन्न करो।

५९ वनेषु गोषु प्रशस्तिं धिषे— वनों और गौओंके विषयमें प्रशंसा करो। गौवें वर्णनीय हैं और गौवोंकी पालना करनेके कारण वन भी प्रशंसाके योग्य हैं। (**विश्वे नः स्वः बलिं भरन्त**)- सभी हम अपना आत्मसमर्पण करते हैं। सबकी भलाईके लिये हम यह दान करते हैं।

६० त्वा नरः पुरुत्रा वि सपर्यन्। जिव्रेः पितुः न, वेदः वि भरन्त।— सब मनुष्य तेरी सर्वत्र पूजा करते हैं। जिस तरह वृद्ध पिताका धन (पुत्रको मिलता है, उस तरह) सब धन तुम्हारेसे हम सबको प्राप्त होता है।

६१ साधुः न गृध्नुः— साधुके समान (सबकी भलाई) चाहनेवाला, (**अस्ता इव शूरः**)- शूर पुरुषके समान अस्त्र चलानेवाला, (**याता इव भीमः**)- शत्रुपर हमला करनेवाले शूर सैनिकके समान भयंकर उग्र, (**समत्सु त्वेषः**) — संग्रामोंमें तेजस्वी अथवा उत्साहसे युद्ध करनेवाला जो होता है, वही विजयी होता है।

यहां छटाँ सूक्त समाप्त हुआ।

६२ (सनीळाः उशतीः जनयः)— एक घरमें रहनेवाली पतिकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली तरुण युवतियों जैसी (**उशन्तं नित्यं पतिं न**) स्त्रीकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले नित्य साथ रहनेवाले पतिके (**उप प्रजिन्वन्**) पास जा कर उसको प्रसन्न करती हैं। यहां '**जनयः पतिं उप प्र जिन्वन्**' अर्थात स्त्रियां पतिके पास जाकर उसको प्रसन्न करती हैं, ऐसा कहा है। पति स्त्रीके पास जाता है, ऐसा नहीं कहा। साथ ही साथ 'पति' पद एक वचनमें है और 'जनयः (पत्नियों) पद बहुवचनमें है। इससे एक पतिकी अनेक स्त्रियां साथ साथ होनेकी बात स्पष्ट प्रकट हो रही है। ये पत्नियां (स-नीळाः) एक घरमें रहनेवाली हैं और (उशतीः) पतिकी कामना करनेवाली अर्थात् तरुणी हैं।

श्यावीं उच्छन्तीं अरुषीं उषसं न गावः- काले वर्णवाली परंतु अन्धकारको दूर करनेवाली तेजस्विनी उषाको जैसी गौवें प्राप्त होती हैं, अर्थात् सबेरे उषःकालमें गौवें चरने के लिये खोल दी जाती हैं, वे हम्बारव करती हुई जाती हैं और उषाकी रमणीयता बढाती हैं। इसी तरह '**चित्रं स्वसारः अजुषन्।**'- विचित्र प्रकाशवाले अग्निकी बहिनें (हाथकी अंगुलियाँ) सेवा करती हैं, अग्निमें - घृत, समिधाएं तथा अन्यान्य हवनीय पदार्थ डालकर उसकी शोभाको बढाती हैं। ऋत्विजोंकी अंगुलियांही अग्निकी सेवा करती हैं और उधर उषःकालके अग्निकी तथा सूर्यकी शोभा गौवें बढाती हैं।

६३ नः अङ्गिरसः पितरः उक्थैः वीळु चित् दृळ्हा अद्रिं रवेण रुजन्।— हमारे अङ्गिरस नामक पितरोंने सूक्तोंके द्वारा बडे सुदृढ शत्रुके पर्वतीय दुर्गको मानो शब्दसे ही नाश किया। मन्त्रों द्वारा-सुविचारोंके प्रचार द्वारा ऐसी शक्ति अंगिरसोंने निर्माण की कि जिससे शत्रुके सुदृढ किले भी टूट गये। विचारवान् लोग सुविचारके प्रचारसे ऐसे परिवर्तन करते हैं और जनताके मनमें ऐसे क्रान्तिके विचार निर्माण करते हैं कि जिससे शत्रुका नाश सहजहीसे हो जाता है। '**अस्मे बृहतः दिवः गातुं चक्रुः।**'- हमारे लिये उन्हीं अंगिरसोंने बडे स्वर्गधामको प्राप्त करनेका मार्ग बना दिया। अंगिरसोंने शत्रुका नाश किया और सुखदायी शासन व्यवस्था निर्माण करनेद्वारा मनुष्योंके लिये पृथ्वीपर स्वर्ग-धाम स्थापन करनेका मार्ग बताया। (मंत्र क्रमाङ्क १ की टिप्पणी देखो)

वहां भूमिपर स्वर्ग निर्माण करनेका विचार विशेष रूपसे कहा है। 'स्वः अहः केतुं उस्राः विविदुः '— उन अङ्गिरसोंने ही अपने लिये प्रकाश, दिन, ज्ञान, किरण (अथवा गौवें) प्राप्त कीं। अर्थात् प्रकाश और ज्ञानका राज्य हुआ। अन्धकार दूर करके प्रकाशका फैलाव किया। (स्वः=स्व-र) स्व अर्थात आत्माका प्रकाश, अपने तेजका फैलाव, (अहः=अ-हः) जिसमें हानि नहीं ऐसा अवसर, (केतुं) अपना ध्वज फहरानेका समय, विजयका अवसर, ज्ञानके प्रचारका समय, (उस्राः) किरण और गायें। मानवी सुस्थितिके लिये प्रकाश और गायें बडी सहायक हैं।

६४ ऋतं दधन् अस्य धीतिं धनयन्= सत्यका धारण करनेवाले इस (प्रभु) की धारक शक्तिको धारण करनेसे धन्य होते हैं। दिव्य शक्तिसे तबही लाभ हो सकता है कि जब सत्य पालन और सरल आचरणकी उसको साथ हो। पश्चात् (अर्यः) सबकी स्वामिनी, (दिधिष्वः) धारण करनेवाली, (विभृत्राः) विशेष भरण पोषण करनेवाली, (अतृष्यन्तीः) तृष्णासे रहित, निष्काम भावसे युक्त, (अपसः प्रयसा देवान् जन्म वर्धयन्तीः) अपने कर्मोंके द्वारा तथा अन्न-दानसे देवोंको और अपने जन्मका संवर्धन करनेवाली प्रजाएं इसके पास (अच्छ यन्ति) पहुंचती हैं। प्रभुके पास वही जाते हैं जो अपनी शक्तियोंपर स्वामित्व रखते हैं, संयम रखते हैं, अपने अन्दरकी शक्ति बढाते और संयमसे उससे कार्य लेते हैं, यथाशक्ति अन्योंका पोषण करते हैं, अन्न दान करते हैं, दिव्य भावोंका संवर्धन करते हैं और अपने जन्मको सफल करते हैं, सब कार्य वितृष्ण होकर निष्काम भावसे करते हैं। येही प्रभुके पास पहुंचते हैं।

६५ मातरिश्वा ईं यत् मथीत्, विभृतः, श्येतः गृहे गृहे जेन्यः भूत्= वायुने जब इस अग्निको मथकर प्रकट किया, तब वह विशेष प्रकाशसे युक्त होकर श्वेत प्रकाशसे घर घरमें विजयी हुआ। व्यक्तिके शरीरमें प्राणायामसे आत्माका तेज प्रकट होता है और प्रत्येक देहमें यह धवल यशसे युक्त होता हुआ, विजयी होता है। समाजमें यज्ञका अग्नि वायुसे प्रदीप्त होता है और प्रत्येक यज्ञ-शालामें यही यज्ञाग्नि यज्ञ करवाकर विजय देनेवाला होता है। राष्ट्रमें अग्रणीरूपमें नेता वायुरूप क्षत्रियोंके साथ मिलकर प्रभावके कार्य करने द्वारा विजयी होता है। इस तरह सर्व क्षेत्रोंमें देखना उचित है।

सचा सन्, सहीयसे राज्ञे न ईं भृगवाणः दूत्यं आ विवाय= साथ साथ रहकर बलवान् राजाकी सहायता करनेके समान, इसने भृगुवंशके लोगोंकी सहायता करनेके लिये दूत-कर्म भी किया। देवता आनन्द प्रसन्न होनेपर दूतकर्म करके भी सहायता करते हैं। जिस तरह अर्जुनका सारथ्य भगवान् श्रीकृष्णजीने किया था, वैसाही अग्नि यहां दूत हुआ है।

६६ महे पित्रे दिवे ईं रसं कः प्रशन्यः चिकित्वान् अव त्सरत्= बडे पितृभूत द्युलोकको समर्पण करनेके लिये तैयार किये इस सोमरसको, कौन भला इस देवताके साथ संबंध रखनेका इच्छुक ज्ञानी मनुष्य, गिरावेगा? अर्थात् कोई भी नहीं गिरावेगा, इतना इसका बडा प्रभाव है। (अस्ता धृषता अस्मै दिद्युं सृजत्।)= अस्त्र फेंकनेवाले धैर्ययुक्त वीरने अपने शत्रुपर तेजस्वी अस्त्र फेंक दिया। तब (देव· स्वायां दुहितरि त्विषिं धात्।) सूर्य देवने अपनीही दुहितामें— उषामें— अपना तेज रख दिया। उत्तरीय ध्रुवकी उषा जब आती है, तब उष:कालमें बडी बिजलियाँ प्रकाशती हैं और प्रतिक्षण सूर्य-किरणोंसे उषाका तेज बढता ही जाता है। इस देशकी उषा प्रतिदिन आती है और सूर्योदयके समय विद्युत्का चमकना नहीं होता। उधर यह होता है।

६७ हे अग्ने! स्वे दमे तुभ्यं यः आविधासाति, अनु द्यून् उशतः वा नमः दाशात्, अस्य द्विबर्हाः वयः वर्धाः। = हे अग्नि देव! अपने यज्ञस्थानमें तुम्हें बुलाकर प्रदीप्त करके जो तुम्हारा सत्कार करता है, प्रतिदिन तुम्हारा सत्कार करनेकी इच्छा करता हुआ जो तुम्हें अन्नका दान करता है, इसके दोनों ओर रहकर इसकी आयु (वा अन्न) तुम बढाओ। तुम्हारे भक्तकी तुम उन्नति करो। (सरथं यं जुनासि तं राया यासत्) = *जिसके रथपर तू रहता है उसे तू धन देता है, उसे विजय देता है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके रथपर सारथ्य करते थे और उन्होंने उसका विजय प्राप्त करनेमें अच्छी सहायता की, यह कथा इसके साथ तुलना करने योग्य है।*

६८ स्रवतः सप्त यह्वीः समुद्रं न, विश्वाः पृक्षः अग्निं अभि सचन्ते। = बहनेवाली सात नदियाँ जैसी *समुद्रसे जा कर मिलती हैं, वैसेही सब प्रकारके अन्न अग्निसे*

प्राप्त होते हैं। जिस तरह प्रदीप्त अग्निमेंही आहुतियाँ डाली जाती हैं, उस तरह प्रदीप्त जाठर अग्निमेंही अन्नके कवल डालने चाहिये। (**जामिभिः नः वयः न विचिकिते । देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् विद्वाः**) ।= भाइयोंको भी हमारी आयुओंका पता नहीं लगता, पर तू तो देवोंके अन्दर जो भाव हैं वे भी सबके सब जानता है और ठीक तरह उनको समझ लेता है। यह अग्निदेवका अधिकार है।

६९ **यत् शुचि द्योः तेजः नृपतिं इषे आ आनट् अभीके निषिक्तं रेतः अग्निः जनयत्, शर्धं अनवद्यं युवानं स्वाध्यं सूदयत् च** । = जब मनुष्योंके स्वामी अग्निदेवके समीप शुद्ध दिव्य तेज अन्नके लाभके लिये प्रकट हुआ, तब समीप भागमें रहे अपनेही वीर्यको, प्रभावको अग्निने प्रकाशित किया, जिससे बडा बल उत्पन्न हुआ, अनिंद्य तारुण्य हुआ और उत्तम शक्ति जो ध्यान से प्राप्त होती है, यह सब परिपक्व होकर मिली। अग्निका तेज पवित्रता करनेवाला है, वह मनुष्योंका स्वामी या राजा है, क्योंकि यज्ञसे मानवोंकी उन्नति होती है और यज्ञ तो अग्निसे होते हैं। इसलिये यह अग्नि मानवोंका राजा है यह प्रदीप्त होता है तब उसमें अन्नकी आहुतियां डाली जाती हैं। इस यज्ञसे बडा भारी वीर्य निर्माण होता है, जो तीन रूपोंमें मानवोंको मिलता है, एक (शर्ध) सांघिक बल, दुसरा अनिंद्य अर्थात् वर्णन करने योग्य तारुण्य और तीसरा मननीय बुद्धिका, धारणावती बुद्धिका बल। यह सब यज्ञसे सिद्ध होता है।

७० **यः एकः सूर अध्वनः (पारं) सद्यः पति (स.) मनः न, सत्रा वस्वः ईशे** ।= जो एक अद्वितीय विद्वान् कर्तव्यकर्म करनेके मार्गका आक्रमण करके, मार्गको तत्कालही समाप्त कर लेता है, वह मनके समान वेगवान् वीर साथही साथ धनका भी स्वामी बनता है। धन प्राप्त करनेके लिये प्रथम अद्वितीय ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, पश्चात् कर्तव्य कर्मके मार्गको समाप्त करना चाहिये, तब वह पुरुष धन प्राप्त करता है। धन प्राप्तिका यह सरल मार्ग है।

(**सुपाणी राजाना मित्रावरुणा गोषु प्रियं अमृतं रक्षमाणा**)= उत्तम कुशलतासे कार्य करनेमें जिनके हाथ प्रवीण हैं ऐसा मित्र व वरुण ये राजा गौओंमें प्रिय अमृतरूपी दूध सुरक्षित रखते और बढाते हैं। राजाओंको उचित है कि वे अपने राज्यमें गौओंके दूधका प्रमाण बढानेका यत्न करें अर्थात् प्रत्येक गाय अधिक दूध देगी ऐसा उपाय करें और गौओंकी सुरक्षा करके उनकी भी वृद्धि करें।

७१ **हे अग्ने! पित्र्याणि सख्या मा प्र मर्षिष्ठाः** ।= पिता प्रपितासे चली आई हमारी मित्रता विनष्ट न हो, अथवा वह बढती रहे। (**कविः सन् अभि विदुः**)= तू ज्ञाता है यह सब जानतेही हैं। तू ज्ञाता है यह प्रसिद्ध बात है। (**नभो न रूपं जरिमा मिमाति**) = मेघ जैसे रूप दर्शानेवाले प्रकाशको हटाते हैं, उसी तरह बुढापा सुंदरताको हटाता है। (**अभिशस्तेः तस्याः पुरा अधीहि**) = विपत्ति आनेके पूर्वही उसके कारणको जान लो और उसको दूर कर दो, जिससे आपत्तिके क्लेश नहीं होंगे।

इस सूक्तका प्रत्येक मंत्र और मंत्रका प्रत्येक खण्ड विशेषही बोधप्रद है, इसलिये इसका विशेष विचार पाठक करें और उसको जीवनमें ढालनेका यत्न करें।

यहां सातवा सूक्त समाप्त हुआ।

७२ **शश्वतः वेधस काव्या, नर्या पुरूणि हस्ते दधानः नि कः** ।- शाश्वत रहनेवाले विधाता, विश्वनिर्माताके काव्योंको, मानवोंका सच्चा हित करनेवाले धनोंको अपने हाथमें- अपने अधीन-रखनेवाला यह देव संपूर्णतया अपने अधीन करता है। धन दो प्रकारके हैं- एक धन मानवोंका सच्चा हित करता है। और दूसरे धन ऐसे हैं जो मनुष्यको गिराते हैं। यह देव अपने पास ऐसे धन रखता है जो मनुष्योंका उत्कृष्ट हित करनेवाले हैं। देवताके काव्य मनुष्य गाये क्योंकि वे ही उसको मार्गदर्शक हो सकते हैं। वेदही देवताके-विधाताके-काव्य हैं। उनका ही गान 'सामगान' करके सुप्रसिद्ध है। (**अग्निः विश्वा अमृतानि सत्रा चक्राणः, रयीणां रयिपति भुवत्** ।)- यह अग्निदेव सब अमर कर्तव्योंको साथ साथ करता हुआ धनोंका स्वामी होता है। धनोंका पति वह होता है कि जो सब अमरत्वका प्रदान करनेवाले शुभ-कर्तव्य निरलस वृत्तिसे करता है। परमात्मा सूर्यादि अमर देवोंका निर्माता है इस कारण वह सब वैभवोंका स्वामी है। वैसाही मनुष्य भी यदि अमृततत्त्व देनेवाले शुभ कर्म करेगा तो वह भी धनका पति होगा और यह धन ऐसा ही होगा कि जो सब मनुष्योंका निःसन्देह हित करनेवाला है।

७३ **अस्मे परि सन्तं वत्सं इच्छन्तः विश्वे अमृताः अमृता न विन्दन्**- हमारा हित करनेकी इच्छासे यहां

रहनेवाले इस बचे जैसे अग्निकी खोज करनेवाले सभी अमूर अर्थात् ज्ञानी देवोंने इस अग्निको नहीं जाना था। वह कहां है, कैसा प्राप्त होगा, इसकी सहायता हमें कैसी मिलेगी, इत्यादि बातोंका पता उनको भी प्रारंभमें नहीं लगाया। (**श्रमयुवः पदव्यः धियंधाः अग्नेः परमे पदे चारु तस्थुः।**)- परिश्रम करनेवाले, पद चिह्नोंसे उसकी खोज करनेवाले, धारणावती बुद्धिको धारण करनेवाले बुद्धिमान् लोग अग्निके परम उस सुन्दर स्थानमें अन्तमें जाकर पहुंच गये। खोज करनेकी बात इस ऋषिके प्रथम मंत्रमें ही पाठक देखें। वहां पद-चिह्नोंसे कैसी खोज की गयी, उसका सुन्दर काव्यमय वर्णन है। अग्नि परम पदमें विराजता है, ऐसा यहां कहा है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी ये वाणीके चार रूप हैं। वाणी अग्निका रूप है, अतः इन चार वाणियोंके रूपोंमें अग्निका वास्तव्य है। पद-चिह्नोंसे खोज करनेकी रीति यह है कि वाणीके पदोंसे उसकी खोज हो। यह अनेक प्रकारसे हो सकती है। वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती, परा तक पहुंचकर उसके परे आत्माका दर्शन होता है। वह परम पदमें निवास करनेवाला आत्माग्नि है। इसी तरह अनेक मार्गोंसे अग्नियोंके रूपोंकी खोज होगी। काष्ठके घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होती है. मेघासे विद्युदग्नि, सूर्यसे वैश्वानर अग्नि, इस तरह अनेक प्रकारके अग्नियोंकी प्राप्ति होती है। ये सब अग्नितत्त्वके रूप हैं और सबके सब मनुष्योंका हित करनेवाले हैं।

७४ **हे अग्ने! शुचयः शुचिं त्वां तिस्रः शरदः घृतेन सपर्यान्**- हे अग्ने! पवित्र होकर याजक लोग तुझ पवित्र देवताकी पूजा तीन वर्षतक घीसे करते थे। यहां घीका तीन वर्षतक हवन करनेका उल्लेख है। यहांका घी नि. सन्देह गौके दूधसे निर्माण हुआ ही घी है, क्योंकि वेदमें गौका ही घृत है। सतत तीन वर्ष तक गौके घीका हवन होना यह एक बडी ही बात है। गो-घृतके हवनसे रोगबीज दूर होकर आरोग्यका संवर्धन होता है। (**सुजाता तन्वः सूदयन्त यज्ञियानि नामानि दधिरे।**)- उत्तम कुलीन याजकोंके शरीर पवित्र हुए और उनको पवित्र यश भी मिले। तीन वर्ष गौके घीका हवन करनेसे याजकोंके शरीर पवित्र होते हैं और उनका यश भी बढ जाता है। यहां ' तन्वः ' पद है, जिससे तीन शरीरोंका बोध होता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण ये तीन शरीर प्रति मनुष्यके पास हैं, जो परिशुद्ध होनेसे मानवकी योग्यता उच्चतर होती है। हवनसे आहुति द्रव्यके सूक्ष्म परमाणु बनते और वे शरीरमें पहुंचते और वहां शरीरसे मिलते हैं और वहांका स्थान निर्विष करते हैं। घी सबसे उत्तम विषघ्न पदार्थ है जो हवनमें मुख्य है। हवन-चिकित्सा एक बडाभारी शास्त्र है, जो अब लुप्त हो चुका है। इसलिये इस विषयमें हम अधिक स्पष्टीकरण लिख नहीं सकते, पर वेदका यह मुख्य विषय है।

प्रथम (**सुजाताः**) उत्तम कुलमें उत्पन्न होना यहां लिखा है। सुजनि शास्त्र है। आनुवंशिक संस्कार नि.संदेह होते हैं। विवाहके समय कमसे कम सात, पांच या तीन तक पूर्वजोंका विचार करना चाहिये ऐसा शास्त्रकार कहते हैं। इससे आनुवंशिक संस्कार विशेष प्रबल है यह ध्यानमें धारण करना चाहिये। कुलीन मनुष्यको अपनी उन्नति करनेके लिये सुविधा रहती है, यही यहां तात्पर्य है। अन्य मनुष्य उन्नति नहीं कर सकते, यह इसका आशय नहीं। (**सूदयन्तः**) ' सूद ' का अर्थ ' पकाकर तैयार करना, सिद्ध करना, परिपक्व करना ' है। जिस तरह अन्न पकानेवाले अन्नको सिद्ध करते हैं, उस तरह साधक अपने शरीरोंको, स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरोंको, शरीरमनबुद्धिको योगादि साधनोंसे पवित्र करते हुए सिद्ध करते हैं, सुसंस्कार-संपन्न करते हैं। जिसके संस्कार अधिक उत्तम होते हैं वही (यज्ञिय नाम) पवित्र यश प्राप्त करता है। इस मन्त्र-भागसे साधकके मार्गका पता लगता है।

७५ **बृहती रोदसी आ चेविदानाः यज्ञियासः रुद्रिया प्र जभ्रिरे**- द्युलोक और भूलोक इन दो लोकोंके अन्दर खोज करते करते उन याजकोंने इस रुद्र संज्ञक अग्निके अनेक सामर्थ्योंका पता लगा सामर्थ्य उनके सामने प्रकट हुए। यहां रुद्र नाम अग्निके लिये है। रुद्र, शंकर, और महादेव एकही है। वह नीलकण्ठ है, उसका गला नीले रंगका है। अग्नि लकडीको जलाता है उसकी ज्वालाके नीचे नीला रंग कोयलेका सूचक होता है, वही अग्निका नीलकण्ठ होना है। यह अग्नि शंकर (सुखकर) है, अन्नादि पकाकर सुख देता है, सर्दीमें गर्मी देकर सुख बढाता है, साथही साथ जलाकर भस्म कर डालनेसे संहार भी करता है। इस तरह अग्निका रुद्रत्व देखना योग्य है। (**नेमधिता मर्तः परमे पदे तस्थिवांसं अग्निं चिकित्वान् विदत्**)- युद्धस्थानमें रहनेवाले मानव परम पदमें रहनेवाले अग्निको जानकर प्राप्त करते हैं। ' नेम ' का अर्थ है— ' नियम, मर्यादा,

समय, अन्न विभाग ' । ' नेमधिति= युद्ध, स्पर्धा, विभाग । हरएक मनुष्य सदा युद्धमें है । युद्ध अनेक प्रकारके हैं। धार्मिक, सामाजिक, राजकीय, आर्थिक ऐसे युद्धोंके भेद हैं । मनुष्य सदा किसी न किसी युद्धमें रहताही है । वह उस युद्धमें रहता हुआ ' अपना लक्ष्य परम पदमें रहनेवाले प्रकाशमय प्रभुकी ओरही रखे ' । उसीका सदा मनन करे और अपना कर्तव्य करे, जिससे वह विजयी हो सकेगा ।

७६ सजानाना. उपसीदन्, पत्नीवन्त नमस्यं अभिज्ञु नमस्यन्= वे ज्ञानी लोग उसकी उपासना करने लगे, अपनी धर्म पत्नियोंके समेत नमस्कार करने, योग्य प्रभुके सामने घुटने टेक कर नमस्कार करने लगे । पहिले प्रभुका ज्ञान प्राप्त किया, उपासना की, धर्मपत्नियोंके समेत उस वदनीय के पास पहुंचे और घुटने टेककर वंदना करने लगे । यहाँ घुटने टेककर सामुदायिक उपासना करनेका भाव स्पष्ट है । पत्नियों-के समेत यह सामुदायिक उपासना है, यह ध्यानमें रखने योग्य विशेष बात है । जिसके पांवमें मोटे कपडेका पाजामा हो, शरीरपर मोटे मोटे अगरक्षाके लिये कपडे हो, वही घुटने टेककर नमस्कार करेगा । जो पतली धोती पहना हो, जिसके शरीरपर धोतीही हो वह चौकी लगाकर आसानीसे ध्यान कर सकता है । इसलिये हम ऐसा अनुमान कर सकते है कि यह रिवाज उस देशका दीखता है कि जहां अधिक भारी कपडे पेहननेके कारण चौकी लगाकर बैठना असंभव हो और घुटने टेकना आसान होता हो । यह हमारा विचार है और इसकी सत्यता अन्य प्रमाणोंसे प्रमाणित करनी चाहिये । यहां यह कहना चाहिये कि वेदमें कपासके कपडोंका उल्लेख नहीं है, ऊन-केही कपडोंका उल्लेख है । इससे कपडोंका भारी मोठा होना संभवनीय हो सकता है, कमसे कम शीतकालमें तो अनिवार्यही है। तथापि यह बात अन्वेषणीय है। (सख्युः निमिषि रक्षमाणा सखा स्वाः तन्वः रिरिकांसः कृण्वत) = एक मित्रके आख बंद होकर उसको निद्रा लगनेके समय जैसे दूसरे मित्र वहांकी सुरक्षा करने लगते हैं, वैसेही अपने शरीरोंको पापों और अशुद्धियोंसे रिक्त करनेमें ये लगातार दत्तचित्त हुए हैं, अर्थात् लगातार अपने आपको पवित्र करनेका अनुष्ठान करते हैं और पवित्र बनते हैं । यहां भी ' तन्व ' पद बहुवचनमें है, कमसे कम तीन शरीर ऐसा अर्थ यहां है । स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर अथवा शरीर, मन और बुद्धिको ये अशुद्धियोंसे रिक्त करते हैं । ये तीनों अशुद्धियोंसे भरे रहते हैं, उनको रीता करनेके अनुष्ठानसे ये परिशुद्ध होते है ।

७७ त्रिः सप्त गुह्यानि यत् पदा त्वे इत् निहिता यज्ञियासः अविदन् = तीन गुना सात गुह्य तत्त्व जो तेरे स्थानमें रखे हैं, उनका पता याजकोंको लग गया । याजकोंको इक्कीस गुह्य तत्त्वोंका ज्ञान हुआ । इक्कीस प्रकारके यज्ञ-विधि हैं जो मानवोंका हित करते हैं यह जब विद्वानोंको विदित हुआ । (तेभिः अमृत रक्षन्ते)= इन इक्कीस गुह्योंके द्वारा अमृत-की सुरक्षा की जाती है, यह ज्ञान सब विद्वानोंको हुआ । यहां का ' अ-मृत ' पद अविनाश या अमरत्वका सुख आदिका बोधक है । (सजोषाः पशून् च स्थातॄन् चरथं च पाहि) = एक मतसे अपने पशुओं और जंगमोंको सुरक्षित रखो । विश्वके गुह्य बातोंका ज्ञान प्राप्त करो, उस ज्ञानसे अपनी सब जनताकी सुरक्षा करो, एक होकर एक मतसे अपने पशुओं और स्थावर जंगमोंकी सुरक्षा करो । यही यहां स्वर्गधाम स्थापन करके अमृत सेवन करनेका मार्ग है । राष्ट्रमें जैसी मानवोंकी सुरक्षा होनी चाहिये, वैसाही पशुओं, गौवें, घोडोंकी सुरक्षा होनी चाहिये और स्थावर जंगमकी भी सुरक्षा होनी चाहिये । क्योंकि इनसेही मानव सुखी हो सकते हैं ।

७८ वयुनानि विद्वान्, क्षितिनां जीवसे क्षुधः आनुषक् विधाः । = सब मनुष्योंके आचार विचार जानकर मानवोंके दीर्घ जीवनोंको सुखमय करनेके लिये, क्षुधाके कष्टोंको रोकनेके लिये, अर्थात् पर्याप्त अन्न प्राप्त होनेके उद्देश्यसे, सतत विशेष यत्न कर । प्रथम आचार-विचारोंके यथावत् जानना चाहिये, पश्चात् मानवोंके दीर्घ जीवनके लिये यत्न करना चाहिये अर्थात् अपमृत्युको दूर करना चाहिये यह बननेके लिये (क्षु-क्षुधा) शोक उत्पन्न करनेवाली क्षुधा आदिकोंके कष्टोंको दूर करनेके लिये सतत अविरत विशेष यत्न करना चाहिये । आचार-विचारोंका यथार्थ ज्ञान, दीर्घ जीवनके लिये प्रयत्न और क्षुधादि कष्टोंको दूर करना इन बातोंके लिये सतत यत्न करना चाहिये । (देवयानान् अध्वनः अन्तर्विद्वान्, अतन्द्रः हविर्वाट् दूतः अभवः) = देवयानके मार्गोंको अन्दरसे जानकर आलस्यरहित होकर हवि पहुंचानेवाला दूत तू हुआ है । दिव्य विबुधोंके आने-जानेके मार्गोंको अन्दरकी ओरसे यथावत् जानना चाहिये, जिससे पता लग सकता है कि किस तरह

दिव्य पुरुषोंका शुभ व्यवहार होता है। इसको जानकर वैसा आचरण निरलस वृत्तिसे करना चाहिये। दिव्य जनोंको हविष्यान्न पहुंचाना और हर प्रकारसे उनकी सेवा करना योग्य है। यह इसलिये करना चाहिये कि उसके सान्निध्यसे सन्मार्गका दर्शन हो जाय और अपना जीवन भी उसके समानही दिव्य बने।

७९ **स्वाध्यः सप्त यह्वीः दिवः आ** (प्रवहन्ति)= उत्तम रीतिसे दिव्य कर्म जिनके तट पर होते हैं, ऐसी सात नदियां स्वर्गधामसे बह रही हैं। यहां का (दिवः) पद हिमालयके प्रदेशका बोधक है, हिम पर्वतका बर्फ पिघलकर सात नदियां बह रही हैं, जहां (सु-आ-धीः) उत्तम प्रकार ध्यान धारणा तथा यज्ञ याग होते हैं, ऐसे नदी किनारे इन नदियोंके साथ हैं। (**ऋतज्ञाः रायः दुरः वि अजानन्**)= सत्यके ज्ञाताओं और यज्ञ-मार्गको जाननेवालोंने वैभवको प्राप्त करनेके द्वार खोलनेकी रीति जान ली है। अर्थात् यज्ञसेही सबकी उन्नति हो सकती है, यह उन्होंने जान लिया है। (**गव्यं दृळ्हं ऊर्वं सरमा विदत्**) = गौओंके रखनेका सुदृढ किला अर्थात् शत्रुने गौवें कहां रखी हैं, यह स्थान सरमाने जान लिया है। वहां इन्द्रादि वीर जायँगे, शत्रुका पराभव करके उससे गौवें प्राप्त करके वे उनको वापस ले आवेंगे। इस तरह जो शत्रुका पराभव करते हैं वे अपने वैभवको प्राप्त करते हैं। अतः कहा है कि (**येन मानुषी विट् कं भोजते**)= जिससे मानवी जनता सुख भोग सकती है।

८० **ये अमृतत्वाय गातुं कृण्वानासः विश्वा स्वपत्यानि आतस्थुः** = जो अमरत्वकी प्राप्तिका मार्ग तैयार करते हैं, वे सब शोभन कर्मोका अनुष्ठान करते हैं। क्योंकि शुभ कर्मके करनेके विना अमरत्वकी प्राप्तिकी संभावनाही नही है। (**महद्भिः पुत्रैः माता अदितिः पृथिवी धायसे मह्ना वि तस्थे, वेः**)= अपने महान् पराक्रमी पुत्रोंके साथ बडी अदिति माता सबके धारण पोषण करनेके लिये अपनी महिमासेही विशेष रूपसे विस्तृत रूपमें स्थिर रही है, जिस तरह पक्षिणी अपने बच्चोंके पोषणके लिये यत्न करती है। (अदितिः अदनात्) अदिति वह है कि जो भोजन देकर पालना और पोषणा करती है। पृथ्वीको अदिति इसलिये कहते हैं कि वह धान्य देकर सबका पोषण करती है (महद्भिः पुत्रैः) पुत्र बडे वीर हों, प्रभावी और पराक्रमी हों, यह शिक्षा पुत्रोंको देनी आवश्यक है। ऐसे वीर पुत्रोंके साथ माता अन्योंका धारण-पोषण करे। यहां माताका (मह्ना) महत्त्व है। जिस माताको आठ आदित्योंके समान आठ वीर पुत्र हों, वह माता धन्य है।

८१ **दिवः अमृताः यत् अक्षी अकृण्वन्, अस्मिन् चारुं श्रियं अधि नि दधुः** = द्युलोकके स्थानमें अमर देवोंने जब दो आंख, सूर्य और और चन्द्र, बनाये, तब इस अग्निमें उन्होंने सुन्दर शोभा, सुन्दर दीप्ति, रख दी। अर्थात् इस अग्निको भी उन्होंने तेजस्विताके साथही बनाया। सूर्य चन्द्र, विद्युत् और अग्नि इस तरह बनाया गया। (**अध सृष्टाः सिन्धवः न नीचीः अरुषी क्षरन्ति**) इसके पश्चात् निम्न गतिसे चलनेवाली नदियोंके समान तेजस्वी दीप्तिवाली ज्वालाएं उससे चल पडीं। (**हे अग्ने ! प्र अजानन्**) हे अग्नि देव ! यह सब उन्होंने जान लिया है। ज्ञानी इसको ठीक तरह समझते हैं।

इस आठवें सूक्तमें कई बातें विशेष महत्त्वकी कहीं गयीं हैं, जो उन्नति चाहनेवाले साधकोंको सदा मननीय हो सकती हैं। सब तत्त्वज्ञान यहां अग्निके मिषसे कहा गया है, अग्निको निमित्त करके मानवी जीवनका तत्त्वज्ञान यहां कहा गया है। पाठक इसका विचार करें।

यहां आठवे सूक्तका मनन समाप्त है।

८२ **पितृवित्तः रयिः न यः वयोधाः**— पितासे प्राप्त हुए धनके समान (यह अग्नि देव) अन्न धारणा करनेवाला है। जिस तरह पिता-पितामहसे आनेवाली संपत्ति मिलनेसे अन्नकी कमाई करनेकी आवश्यकता नहीं होती, उस धनसे अन्नादि सब सुखभोग मिलते हैं, उसी तरह यह अग्नि सब सुखभोग देता है। (**चिकितुषः न शासुः सु प्रणीतिः**)- ज्ञानी शासक राजाकी तरह यह उत्तम रीतिसे चलाता है, उन्नतिके मार्गका आक्रमण करनेमें वह वैसा सहायक होता है कि जैसा उत्तम ज्ञानी राजा अपनी प्रजाका सहायक होता है। (**स्योनशीः अतिथिः न प्रीणानः**)— सुखसे विश्राम करनेवाले अतिथिके समान संतोष देनेवाला, अतिथि-सत्कारसे सन्तुष्ट होकर सुखपूर्वक आराम लेनेवाले अतिथिके समान आनन्द देनेवाला यह है। जिस तरह ऐसा सन्तुष्ट हुआ अतिथि उत्तम उपदेश द्वारा गृहस्थका हित करता है, उसी तरह यह भी हित करता है। (**विधितः सद्म, होता इव, वि**

तारीत्) यज्ञ-कर्ताके घरका, हवन-कर्ताके समान, तारण करता है। जिस तरह अग्नि-होत्र करनेवाला अग्निशालाका संरक्षण करता है, उस तरह यह यज्ञ तथा सत्कार करनेवालेके घरका तारण करता है। अग्निदेवका जहां सत्कार होता है वहां सुरक्षा रहती है। अन्नकी प्राप्ति, सन्मार्गका दर्शन, शान्ति, सुख और संरक्षण इतनी बातें इसकी उपासनासे होती हैं।

८३ **देवः न सविता, यः सत्यमन्मा, क्रत्वा विश्वा वृजनानि नि पाति**— सविता देवके समान जो सत्य मतका मननपूर्वक पालन करता है, वह अपने कर्तृत्वसे सभी पापोंसे साधकको बचाता है। सत्यका पालन करनेवाला बडे प्रशस्त कर्म करता है, जिससे सब कुटिलताओं और पापोंसे बचाव होता है। (**पुरु प्रशस्तः अमतिः न सत्यः, आत्मा इव शेवः, दिधिषाय्यः भूत्**)- अनेक लोगों द्वारा जिसकी प्रशंसा की जाती है, प्रगति करनेवालेके समान जो सत्यनिष्ठ है, आत्माके समान जो सेवाके योग्य है, वही सबका आश्रय-दाता हुआ है। '**अमति**' (अमति इति)— जो मतिमान्, उन्नतिकी ओर जानेवाला, बलवान् है, जो उन्नतिके लिये हलचल करता है, वैसा यह अग्निदेव भी प्रगति करनेवाला है। '**दिधिषाय्यः**' (धातुं योग्य.) आधार देने योग्य, जिसके आश्रयमें रहना योग्य है। संस्कृत भाषामें '**दिधिषाय्य**' का अर्थ 'आधार, आश्रय, असत्य मित्र, मद्य' ऐसा है। '**दिधिषु**' का अर्थ 'पुनर्विवाहित पति' है। यहां मूल धातुसे बननेवाला यौगिक अर्थ लेना चाहिये। 'आधार देने योग्य, आश्रय लेने योग्य' यह इसका यौगिक अर्थ है। यह प्रभु आश्रयके योग्य है। जो इसका आश्रय करेगा, वह कदापि गिरेगा नहीं। सत्यकी पालना करने और प्रशस्त करनेसे पाप दूर हो सकते हैं। यदि किसीका आश्रय करनाही हो तो जो सबसे प्रशंसनीय है, जो सत्यनिष्ठ है, जो बलवान् और सबके हित करनेके लिये हलचल करता है और आत्मा जैसा सबको उत्साह देनेवाला है, उसीका आश्रय किया जाये।

८४ **यः देवः न विश्वधायाः, हितमित्र न राजा पृथिवीं उपक्षेति**- जो देवताके समान सबका धारण पोषण करनेवाला है, जो हितकर्ता है और मित्र जैसा पालनकर्ता राजा है, जो पृथ्वीपर रहता है, वह अग्नि सबका पालनहारा, हित करनेवाला और मित्रके समान मान्य करनेवाला पृथ्वीपर रहता है। अग्निका पृथ्वी स्थानही है। जो सबका धारण कर सकता है, जो जनताका हित करता है, जो जनताके साथ मित्र जैसा व्यवहार कर सकता है, वही पृथ्वीपर राजा होने योग्य है। (**पुरःसदः शर्मसदः न वीराः, अनवद्या पतिजुष्टा इव नारी**) = युद्धस्थानमें सब वीरोंके अग्रभागमें रहकर युद्ध करनेवाला, घरमें रहकर वहांकी सुरक्षा करनेवाला, अथवा इधर उधर न भटकते हुए अपने घरमें अपने देशमें रहकर, उसकी सुरक्षा करनेवाले वीरोंके समान तथा निष्पाप पतिव्रता नारीके समान जो पापरहित है, वह पृथ्वीपर वंदनीय है।

८५ हे अग्ने! उस तुझको सब मानव ध्रुव-स्थानोंमें अथवा यज्ञ-स्थानमें प्रदीप्त करके हवनके द्वारा सुपूजित करते हैं। इस अग्निमें बहुतही तेजस्वी धन अर्पण किया जाता है। अतः तू सब पूर्ण दीर्घ आयु देकर धनोंका धारण करके, धनोंका हमें दान करनेवाला हो।

८६ हे अग्ने! धनवान् लोग जो यज्ञ करते हैं, वे पर्याप्त अन्न प्राप्त करें। ज्ञानी, जो दान करते हैं, वे दीर्घ आयु, पूर्ण आयु, प्राप्त करें। युद्ध-स्थानोंमें युद्ध करनेके लिये जानेवाले वीर, अन्न, धन और बल प्राप्त करें। देवोंको अन्न अर्पण करनेके लिये हम अन्नका भाग धारण करें और समयपर उसका अर्पण करें।

८७ यज्ञकी सेवा करनेकी इच्छा करनेवाली, दूधसे भरे हुए दुग्धाशयवाली, देवताकी भक्ति करनेवाली, अथवा सूर्य-किरणोंमें विचरनेवाली, यज्ञके लिये रखी गौवें दूध पिलाती हैं, यज्ञके लिये दूध देती है। साथ साथ नदियाँ सुमतिको चाहती हुई पर्वतके पाससे दूर दूरसे बहती हैं। इन नदियोंके तीरोंपर यज्ञ होते हैं, जिसका वर्णन ऊपरके तीन मन्त्रोंमें है।

८८ हे अग्ने! सुमति चाहनेवाले पवित्र लोगोंने स्वर्गधाममें तेरी सहायतासे ही यश प्राप्त किया। उषा प्रकाशसे युक्त और रात्रि अन्धेरेसे युक्त बनायी गयी है।

इस तरह काले और लाल रंगोंका संमीलन हुआ है। ऐसाही विभिन्न वर्णवाले लोगोंका यज्ञ द्वारा संगठन होता रहे, यह सूचना यहां दी है।

८९ हे अग्ने! जिन मानवोंको वैभवसंपन्न बनानेके लिये तुमने तैयार किया है, वे हम सब इसी यज्ञ-मार्गसे धनवान् और यशस्वी बनें। आकाश और अन्तरिक्ष इस अग्निके प्रकाशसे भर गया है। सब भुवन छायाके समान संगठित

हुआ है। जिस तरह छाया पदार्थके साथ रहती है, इस तरह सब भुवन इस अग्निदेवके साथ संगत हुआ है।

९० हे अग्ने ! तेरे द्वारा सुरक्षित हुए हम सब अपने घोडोंसे शत्रुके घोडोंका पराभव करेंगे, अपने नेताओंके द्वारा शत्रुके नेताओंको जीतेंगे, अपने वीरोंसे शत्रुके वीरोंको जीत जायेंगे। हम अपने पितृपितामहोंके धनोंके स्वामी बनकर, विद्वान्‌के सदृश ज्ञानी होकर सौ वर्षका दीर्घ आयु प्राप्त करेंगे।

९१ हे विधाता अग्निदेव! ये सूक्त तेरे मन और हृदयको प्रिय हों। तेरे उत्तम नेतृत्वसे हम धनोंको प्राप्त करेंगे और उसका अच्छा उपयोग भी कर सकेंगे। तथा प्रभुके भक्तका यश बढायेंगे।

ये मंत्र सरल और स्पष्ट हैं, इसलिये ८५-९१ तकके ७ मंत्रोंका विशेष स्पष्टीकरण, आवश्यकता न होनेके कारण, नहीं किया है।

यहां नवम सूक्त समाप्त हुआ है।

सोमरसका पान

पराशर ऋषिका दसवां सूक्त सोमदेवताका है। यह सूक्त नवम मण्डलके ९७ वे सूक्तका एक भाग, अर्थात् ३१ से ४४ तकके १४ मंत्र, हैं। इसका अर्थ पूर्व स्थानमें दिया है, परंतु विशेष मंत्रभागपर, विचार करनेयोग्य पदोंपर, कुछ टिप्पणी यहां देते हैं।

९२ **वे मधुमतीः धाराः प्र असृग्रन्**- सोमसे मीठे स्वादवाले रस-प्रवाह निकल रहे हैं। सोम कूटकर उससे रस निकाला जा रहा है। (**पूतः अव्यान् वारान् अति एषि**) यह रस भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जा रहा है, छानकर दूसरे पात्रमें रखा जाता है। (**गोनां धाम पवसे**) छाननेके बाद यह रस गौओंके स्थानको पवित्र करता है अर्थात् इस रसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है, मानो इससे गौओंका स्थान पवित्र हुआ। (**जज्ञानः अर्कैः सूर्यं आपिन्वः**) रस तैयार होनेके बाद वह तेजोंसे सूर्यको भर देता है। मनुष्यमें उत्साह बढाता है।

९३ वह सोमरस यज्ञके मार्गका अनुसरण करता है, यज्ञके धामको प्रकाशित करता है। आनन्द बढानेवाला वह सोमरस कवियोंके स्तोत्रोंके पाठोंके साथ इन्द्रको समर्पित होता है।

९४ **दिव्यः सुपर्णः देववीतौ धाराः विन्वन् अव चक्षि**— द्युलोकमें अर्थात् पर्वत-शिखरपर उत्पन्न होनेवाला सुंदर पत्तोंवाला सोम यज्ञकर्ममें धारा-प्रवाहसे रस-रूपमें नीचे उतरता या चूता है। (**सोमधानं कलशं आविश**)— सोम रखनेके पात्रमें रखा जाता है। (**सूर्यस्य रश्मिं उप इहि**)— सूर्य किरणोंमें रखा जावे। सोमरस कलशोंमें भर कर छाना जानेके बाद सूर्य-किरणोंमें रखा जाता है।

९५ **तिस्रः वाचः प्र ईरयति**= तीन सवनोंमें तीन स्वरोंमें स्तोत्र-पाठ करते हैं। (**ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणः मनीषां**)= यज्ञका धारण हो, यज्ञका कर्म सतत चले और ज्ञानकी मनीषा पूर्ण हो। ये दो कार्य अर्थात् कर्म और ज्ञान इन दो मार्गोंका प्रचार होना चाहिये। (**गोपतिं सोमं गावः पृच्छमानाः यन्ति**)= गौओंके पति सोमरसके प्रति गौवें जाती हैं अर्थात् सोमरसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है। (**वावशानाः मतयः सोमं यन्ति**)= सोमपानकी इच्छा करनेवाली बुद्धियां सोमके पास जाती हैं। सोमपान करनेको अथवा सोमका वर्णन करनेकी बुद्धियां जनोंकी हो जाती हैं।

९६ **धेनवः गावः सोमं वावशानाः**- गौवें दूध देनेवालीं सोमको चाहती हैं अर्थात् गोदुग्ध सोमरसमें मिलाया जाता है। (**विप्राः मतिभिः सोमं पृच्छमानाः**)= ज्ञानी लोग स्तोत्रोंसे सोमका वर्णन करते हैं। (**सुतः सोमः अज्यमानः पूयते**)- निचोडा गया सोमरस छाना जाता है। (**त्रिष्टुभः अर्काः सोमे सं नवन्ते**)— त्रिष्टुप् छन्दके सामगान गाये जाते हैं। यह वर्णन सोमयागके अन्दर सोम तैयार करनेका पद्धतिका है।

९७ छाना जानेवाला सोमरस ठीक तरह स्वच्छ हो जावे। (**बृहता रवेण इन्द्रं आविश**)— सोमरस बडे शब्दके साथ, सामगानके बडे आलापोंके साथ इन्द्रको दिया जावे। (**पुरंधिं जनय**)— बुद्धि बडे सोमपानसे बुद्धिको उत्तेजना मिले।

९८ **जागृविः पुनानः सोमः चमूषु आसदत्**-उत्साह बढानेवाला छाना गया सोमरस पात्रोंमें भरा जाता है। (**सुहस्ताः अध्वर्यवः यं सर्पन्ति**) उत्तम हाथवाले अध्वर्यु सोमके पास जाते हैं, उसको ठीक करते हैं।

९९ छाना गया वह सोमरस धारक शक्ति बढाता है। इससे (**ऊती**) उत्तम सुरक्षा होती है। यह सोम स्तोत्रकर्ताको धन देता है।

१०० बढाया जानेवाला और छाना जानेवाला वीर्यवर्धक सोमरस हमारी सुरक्षा करता है। जिस रसके पान करनेके बाद हमारे प्राचीन पूर्वजोंने गौओंकी खोज करनेके लिये शत्रुके किलोंकी खोज की। रसपानसे उत्साहित होकर वीरोंने शत्रुके स्थानका पता लगाया और शत्रुको परास्त किया।

१०१ **समुद्रः राजा (सोमः)... प्रजाः जनयन् अक्रान्** = जलसे साथ मिला हुआ सोम (वनस्पतियोंका) राजा विविध वीरोंमें उत्साह उत्पन्न करके शत्रुपर आक्रमण करने लगा। सोमरस पीनेके बाद वीरोंमें शत्रुपर हमला करनेका उत्साह उत्पन्न हुआ। (**वृषा सुवानः इन्दुः सोमः अव्ये पवित्रे ववृधे**) = बलवर्धक निचोडा गया सोमरस भेडीकी ऊनकी छाननीपर जलके साथ संमिश्रित होकर बढने लगा। जलका वारंवार छिडकाव करके उसको छान लेनेका कार्य होने लगा।

१०२ बलवर्धक सोमरसने बडे कार्य किये। जलोंके साथ मिश्रित होकर वह देवोंको पीनेके लिये दिया गया। इन्द्रने उसका पान किया। सूर्यकी ज्योति बढने लगी।

१०३ सोम, वायु, मित्र, वरुण, मरुत्, अन्य देव और द्यावापृथिवीको आनंदित करता है।

१०४ (**वृजिनस्य हन्ता**) सोम पाप और कुटिलताका नाश करता है, (**अमीवां मृधः च अपबाधमानः**) रोगों और शत्रुओंका नाश करता है। (**गोनां पयसा अभिश्रीणन्**) गौओंके दूधके साथ मिलाया जाता है। पश्चात् इन्द्र इस रसको पीता है। अन्य ऋत्विज् भी पीते हैं।

१०५ सोमरस मधुरताका होजही है। वह वीरता और नायकको बढावे। इन्द्र इस सोमरसको पीवे। यह हमारा धन बढावे।

इन चौदह मंत्रोंमें सोमरस तैयार करनेकी विधि है। सोम कूटनेके बाद वह ऊनकी छाननीसे छाना जाता है, उसमें पानी और गौका दूध मिलाया जाता है। पश्चात् देवताओंको देनेके बाद पिया जाता है। इतनाही वर्णन यहां है। सूक्तके आवश्यक मंत्रभाग ऊपर दिये हैं, शेष मंत्रोंका संक्षिप्त सारांश दिया है। इसमें और अधिक निर्देश नहीं है। सोमरस सिद्ध करनेके ये निर्देश पाठक इन मंत्रोंसे जान सकते हैं। सोमका यह सुंदर काव्य है, जो काव्यकी दृष्टिसे देखनेसे बडा आकर्षक प्रतीत होता है।

यहां पराशर ऋषिका दसवां सूक्त अर्थात् सोमसूक्त समाप्त होता है। पराशरका जो तत्त्वज्ञान है, वह इन मंत्रोंमें है। मंत्रोंका मनन करनेसे पाठकोंको वह प्राप्त हो सकता है।

परमात्माका दर्शन

पराशर ऋषिके दर्शनमें अग्निके ९१ मंत्र हैं और सोमके १४ मंत्र हैं। सोमके मन्त्रोंमें सोमका रस निकालनेके सिवाय और कुछ भी अन्य बातोंका उल्लेख नहीं मिलता। संभव है कि श्लेष आदिसे कुछ बोध मिल भी सके। पर अग्निके मंत्रोंमें मानवी जीवनके तत्त्वज्ञानके निर्देश अधिकतया मिलते हैं। इनका निर्देश हमने टिप्पणीमें विशेष रूपसे किया है और स्पष्ट रूपसे उसका ज्ञान होनेके लिये हम यहां भी संक्षेपसे प्रकरणसे देते हैं। इस अग्निके वर्णनके मिषसे यहां ऋषिने परमात्माका भी दर्शन कराया है, जैसा देखिये—

१ प्रथम दो मंत्रोंमें कहा है कि परमात्मा चोरके समान गुप्त स्थानमें छिपा है, उसकी खोज करनेके लिये इस विश्वमें जो उसके चिह्न दीखते हैं, उनके अनुसंधानसे ज्ञानी गुरु जनोंके साथ साथ चलना चाहिये, जिससे अन्तमें वह प्राप्त हो जाता है, तब उसकी सामूहिक उपासना करनी चाहिये और उसे फिर दूर होने नहीं देना चाहिये। यह प्रथम मन्त्रकी उपमा सर्वोत्तम है और ठीक तरह परमात्माका ज्ञान देनेमें बडी सहायक होनेवाली है। इसके अग्निपरक, आत्मा और परमात्मापरक अर्थ पूर्व स्थानमें टिप्पणीमें दिये हैं।

२ तृतीय मंत्रमें कहा है कि जो इस ज्ञानको प्राप्त करेंगे वे सत्यका व्रत पालन करनेसे इस भूमिपर स्वर्गधाम स्थापन करेंगे। यह भी ठीकही है, क्योंकि यह ज्ञान सब ज्ञानोंमें श्रेष्ठ है और इस ज्ञानसे भूमिपर स्वर्गका राज्य निःसंदेह स्थापन हो सकेगा।

३ **क ईं वराते ?** (मं. ६) इस परमात्माको कौन रोक सकता है ? अर्थात् इसको रोकनेवाला कोई नहीं है। यह इसके अतुलनीय सामर्थ्यका वर्णन है।

४ पुष्टि, स्थान, भोजन, शान्ति, उत्साह, वेगको यह देता है और सबकी उन्नति करता है, यह मंत्र ५ में कहा है।

५ राजा जैसा शत्रुओंको प्रतिबंध करता है, वैसाही यह भक्तोंके सब संकट दूर करता है (मं. ७)

६ विभुः दूरेभाः— यह विभु अर्थात् सर्वत्र व्यापक है और दूरतक प्रकाश देनेवाला है। (मं. ९)

७ रमणीय घरके समान सबका आश्रयस्थान यह प्रभु है। यह सबका क्षेम अर्थात् कल्याण करता है। (१३)

८ (अमं दधाति)- यह बल बढाता है, इसीसे सबको बल प्राप्त होता है।(१७)

९ (यमः जातं, यमः जनित्वं)— जो भूतकालमें बना था, जो भविष्यकालमें बननेवाला है और वर्तमानकालमें बना है वह सब सर्व नियन्ता प्रभुही है। यह सर्वेश्वरवादका मुख्य तत्त्व यहाँ कहा है। विश्वरूपही प्रभु है यह सिद्धान्त इस वर्णनसे यहां कहा है। (१८)

१० (मर्तेषु मित्रः) मर्त्योंमें यह सबका अमर मित्र है, नाशवानोंमें यह अविनाशी है। (२१)

११ यह साधुके समान कल्याणकारी, यज्ञके समान हितकारी, और उत्तम ध्यान लगानेयोग्य है। (२२)

१२ यह अजन्मा पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्युलोकका धारण करता है। सब विश्वको आधार देनेवाला यही एक है। (२५)

१३ (यः वीरुत्सु प्रजाः प्रसुषु अन्तः महित्वा विरोधन्) यह औषधियोंमें और सभी पदार्थों और प्राणियोंमें रहता है, सर्वव्यापक है। (२९)

१४ (स्थातुः चरथं व्यूर्णोत्)— स्थावर-जंगमोंको प्रकट करता है। सब सृष्टिको प्रकट करता है (३१)

१५ (विश्वेषां देवानां, एकः देवः महित्वा परिभुवत्)— सब देवोंमें यह एकही परमात्मदेव ऐसा है कि जो अपनी महिमासे सबमें श्रेष्ठ और सबका नियामक हुआ है। (३२)

१६ (ते एता व्रता नकिः मिनन्ति)- इस प्रभुके नियम कोई तोड नहीं सकता। (४७)

१७ (स्थातां चरथां च गर्भः)- स्थावरों और जंगमोंमें जो अन्दर रहता है। (५३)

१८ (विश्वा अमृतानि सत्रा चक्राणः रयीणां रयिपतिः भुवत्)-- सब अमर भावोंको साथ साथ बनानेवाला यह प्रभु सब धनोंका स्वामी हुआ है। (७२)

१९ (हितमित्रः विश्वधायाः देवः)— सबका हितकारी और मित्र यह देव विश्वका धारण करता है।(८४)

संक्षेपसे विश्वाधिपति प्रभुका वर्णन स्पष्ट रूपसे करनेवाले मंत्र इन सूक्तोंमें हैं। उपनिषद्में कहा है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ (कठ उ. २।५।९)

' अग्नि जैसा सब भुवनोंमें प्रविष्ट होकर प्रत्येक रूपमें प्रतिरूप बना है, वैसाही एक सर्वभूतान्तरात्मा प्रत्येक रूपके लिये प्रतिरूप हुआ है और बाहर भी है। ' यहां विश्वात्माके लिये अग्निकी ही उपमा दी है। प्रत्येक वस्तुमें अग्नि व्यापक है और उस वस्तुका रूप लेकर रहा है, वैसाही ठीक परमात्मा है, इसलिये परमात्माके लिये अग्निका उत्कृष्ट साम्य है।

सब विश्व दीख रहा है। जो दीख रहा है वह रूपवान् है और रूप अग्निका गुण है, इसलिये अग्नि सब विश्वभर व्यापक है। अग्नि व्यापक होनेसेही सब विश्व दीख रहा है। एकही अखण्ड एक रस अग्नि सब विश्वका सब रूप लिये खडा है। वैसाही परमात्मा है, क्योंकि परमात्मा अग्निका अग्नि है। इसीलिये इन पराशर ऋषिके अग्निसूक्तोंमें उक्त प्रकार परमात्माका वर्णन हुआ है, अग्निका वर्णन करनेकाही तात्पर्य परमात्माका वर्णन करना है क्योंकि—

तत् एव अग्निः। (वा. य. ३२।१)

' वह ब्रह्मही अग्नि है। ' जो अग्नि दीखता है वह ब्रह्मका रूप है। इस कारण अग्निका वर्णन ब्रह्मका या परमात्माका वर्णन होना सयुक्तिक है।

पाठक इस तरह अन्यान्य विषयोंका अर्थात् शत्रुनाशन, उन्नतिका साधन-मार्ग आदि विषयोंका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, जो टिप्पणीमें स्थान स्थानपर दियाही है।

यहां पराशर ऋषिका दर्शन समाप्त

पराशर ऋषिका दर्शन

विषयसूची

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(९)

गोतम ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदके द्वादश और त्रयोदश अनुवाक)

लेखक

प० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

सवत् २००३

मूल्य २) रु०

गौतम ऋषिका तत्त्वज्ञान

ऋग्वेदमें 'गौतम' ऋषिका स्थान बडा ऊँचा है। रहूगण ऋषिका यह पुत्र है। गौतमके दो पुत्र मंत्रोंके द्रष्टा ऋषि हुए हैं। एक नोधा ऋषि और दूसरा वामदेव है। नोधा ऋषिका दर्शन ८५ मंत्रोंका छपा है। यह ऋग्वेदके ऋषि दर्शनोंमें ७ वां है। वामदेवका दर्शन ऋग्वेदका चतुर्थ मण्डलही है, जो ५८९ मंत्रोंका है और इसमें वामदेवके मन्त्र करीब करीब ५६६ हैं, और २३ मंत्र अन्योंके उसी चतुर्थ मंडलमें हैं।

रहूगण (१२ मंत्र)
|
गौतम (२१४ मंत्र)
|
(५६६ मंत्र) वामदेव — नोधाः (८५ मंत्र)

इस तरह इन ऋषियोंके देखे मंत्र एकएक पुस्तमें बडे हैं। अब यह गौतम ऋषिका दर्शन है इसके मंत्रोंका ब्यौरा यह है—

सूक्तवार मन्त्र-संख्या

ऋग्वेद प्रथममण्डल

त्रयोदशोऽनुवाकः।

सूक्त	देवता	मंत्र-संख्या	
७४	अग्निः	९	
७५	,,	५	
७६	,,	५	
७७	,,	५	
७८	,,	५	
७९	,,	१२	४१
८०	इन्द्रः	१६	
८१	,,	९	
८२	,,	६	
८३	,,	६	
८४	,,	२०	५७

चतुर्दशोऽनुवाकः।

सूक्त	देवता	मंत्र-संख्या
८५	मरुतः	१२
८६	,,	१०
८७	,,	६
८८	,,	६
८९	विश्वे देवाः	१०
९०	,,	९
९१	सोमः	२३
९२	उषाः	१५
,,	आश्विनौ	३
९३	अग्नीषोमौ	१२

ऋग्वेद नवममण्डल

सूक्त	देवता	मंत्र-संख्या
३१	पवमानः सोमः	६
६१	,,	३

ऋग्वेद दशममण्डल

सूक्त	देवता	मंत्र-संख्या
२३	वायुः	१

कुल-मंत्रसंख्या २

येही मंत्र देवतावार ऐसे बांटे गये हैं—

देवतावार मंत्र-संख्या

देवता	मंत्रसंख्या
१ इन्द्रः	५७
२ अग्निः	४१
३ मरुतः	३४
४ सोमः	३२
५ विश्वे देवाः	१९
६ उषाः	१५
७ अग्नीषोमौ	१२
८ अश्विनौ	३
९ वायु	१
कुल-मंत्रसंख्या	२१४

इसमें इन्द्र देवताके मंत्र सबसे अधिक हैं, अग्नि, मरुत् और सोम ये उससे कम मंत्रवाले देवता हैं। अन्य देवताके मंत्र इससे भी कम हैं।

इस ऋषिके नामपर निम्नलिखित छन्दोंके मंत्र हैं—

१ गायत्री छन्द	७०
२ त्रिष्टुप् ,,	४७
३ जगती ,,	३४
४ पंक्ति ,,	३२
५ उष्णिक् ,,	१३
६ अनुष्टुप् ,,	११
७ बृहती ,,	२
(बृ+सतो बृ०=प्रगाथः)	
८ प्रस्तारपंक्ति	२
९ विराड्रूपा	१
१० विराट्स्थाना	१
कुल-मंत्रसंख्या	२१४

इन मंत्रोंमें गायत्री छन्दके मंत्र सबसे अधिक, त्रिष्टुप्, जगती और पंक्तिके मंत्र उससे कम और अन्य छन्दोंके मंत्र इससे भी कम हैं। किस देवताकी उपासना किन छन्दोंमें हुई है यह निम्न स्थानमें की तालिकामें देखिये-

इसमें स्पष्ट हो रहा है कि इन्द्रकी उपासना पंक्ति छंदमें, अग्निकी गायत्री और त्रिष्टुप्में, मरुतोंकी गायत्री तथा जगतीमें सोमकी गायत्रीमें विशेष कर हुई है। अन्य देवताओंके साथ अन्य छन्दोंका संबंध इस तालिकासे मालूम हो सकता है ब्राह्मणों, उपनिषदों और निरुक्तमें देवताके साथ छन्दका संबंध बताया है वह उस देवताकी उपासना किस छन्दमें अधिक हुई है यह देखकर बताया है। यह ज्ञान ऐसी तालिकाओंसे हो सकता है।

	१ गायत्री	२ त्रिष्टुप्	३ जगती	४ पंक्ति	५ उष्णिक्	६ अनुष्टुप्	७ बृहती	८ प्र-पंक्ति	९ विराड्रूपा	१० विराट्स्थाना	कुलमंत्र-संख्या
१ इन्द्रः	३	३	७	३२	३	६	२	...	...	...	५७
२ अग्निः	२५	१२	...	...	३	...	...	...	...	...	४१
३ मरुतः	१०	५	१६	...	...	...	...	२	१	...	३४
४ सोमः	२१	१०	...	...	१	...	...	...	...	...	३२
५ विश्वेदेवाः	८	३	६	...	...	१	...	...	...	१	१९
६ उषाः	...	८	४	..	३	...	...	...	..	...	१५
७ अग्नीषोमौ	३	५	१	...	...	३	...	...	...	...	१२
८ अश्विनौ	...		..	...	३	...	..	...	..	...	३
९ वायुः		...	..	...		१	...	..	...	...	१
	७०	४७	३४	३२	१३	११	२	२	१	१	२१४

यहां इस ऋषिके मंत्रोंके अग्नि, इन्द्र, मरुत विश्वेदेवा, सोम, उषा, अश्विनौ, अग्नीषोमौ, पवमान सोम और वायु इतने देवताओंके प्रकरण हैं। प्रत्ये० प्रकरणमें पहिला सूक्त अधिक मंत्रोंका और आगेके सूक्त कम मंत्रोंके क्रमसे हैं।

पहिले ५ सूक्तोंमें पहिला नौ मंत्रोंका है इसलिये प्रथम आया है। छठा सूक्त अनेक छंदोंवाला और विभिन्न प्रकारके देवताका, विभिन्न अग्निके स्वरूपका है, इसलिये वह अन्तमें रखा है।

इसी तरह इन्द्र सूक्त ५ हैं, सूक्तोंकी मंत्रसंख्या क्रमसे १६ ९; ६; ६ हैं, यहांतक उतरता क्रम स्पष्ट है। पांचवें सूक्त

अनेक छंद है, इसलिए यह अन्तमें रखा गया है। देवता-प्रकरणमें एकएक छन्दके सूक्त प्रथम आते है, इनमें मन्त्र-संख्याकी अधिकतासे सूक्तक्रम होता है। अनेक छन्दोंवाला सूक्त रहा तो वह इनके बाद आता है।

तृतीय ' मरुत् प्रकरण ' है, इसमें १२;१०;६;६ मंत्रोंवाले क्रमशः सूक्त उतरते क्रमसेही हैं।

चतुर्थ प्रकरणमें 'विश्वे देवा' देवता है और इसके दो सूक्त १०; ९ ये भी संख्याके उतरते क्रमसेही है।

आगेके सूक्त एकएक देवताके एकएकही हैं। इसलिये इनमें क्रमका संबंधही नहीं हो सकता। एकसे अधिक एक देवताके सूक्त दो और उनमें मंत्रसंख्यामें विभिन्नता हो, तब क्रम बनाया जा सकता है। ऋग्वेदमें जहां जहां एक देवताके अनेक सूक्त एक स्थानपर रखे गये हैं, वहां मंत्रसंख्याके उतरते क्रमसेही रखे हैं। देवताभेद अथवा छन्दभेदके कारण इस नियममें अपवाद हुआ है।

यह नियम समझमें आनेसे कोई भी सूक्त मिला तो उसका स्थान, ऋषि, देवता, छन्द और मंत्रसंख्यासे जाना और वह आज भी ठीक तरहसे निश्चित किया जा सकता है। जो आज ऋग्वेदमें है वही ठीक आ जायगा।

गोतम ऋषिका वेदोंमें नाम

' गोतम ' ऋषिका नाम वेदोंमें कहां आया है सो अब देखिये—

नोधा ऋषिके मंत्रोंमें

तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्रशंसामो मतिभि-र्गोतमासः। (ऋ. १।६०।५)

इन्द्र, ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्। (ऋ १।६३।९; अथ. २०।३६।१६)

सनायते गोतम इन्द्र नव्यं अतक्षद् ब्रह्म हरि-योजनाय। (ऋ. १।६२।१३)

अकारि त इन्द्र गोतमेभिः ब्रह्माणि०।(ऋ १।६३।९

गोतम ऋषिके मंत्रोंमें

पथाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जात-वेदाः। (ऋ. १।७७।५)

अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे ॥१॥

तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति ॥२॥ (ऋ. १।७८)

प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये। भरस्व० ॥ (ऋ. १।७९।१०)

सिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे। (ऋ. १।८५।११)

ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैः ०।

सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः॥ (ऋ. १।८८।४-५)

दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः। (ऋ. १।९२।७)

कक्षीवान् ऋषिके मंत्रोंमें

क्षरन्नपो न पानाय राये सहस्राय तृष्यते गोत-मस्य ॥ (ऋ. १।११६।९)

अगस्त्यो (मैत्रावरुणिः) ऋषिके मंत्रोंमें

युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिः दस्रा हवते अवसे०। (ऋ. १।८३।५)

अथर्ववेदमें गोतमके मन्त्र

प्रायः ऋग्वेदकेही मंत्र अथर्ववेदमें लिये हैं, देखिये—

	ऋग्वेद		अथर्ववेद	मन्त्रसंख्या
	१।८६।१		२०।१।२	१
	१।८५।६		२०।१३।२	१
(सव्यः)	१।५७।१-६	(गोतमः)	२०।१५।१-६	६
	१।८३।१ ६		२०।२५।१-६	६
	१।८४।१३-१५		२०।४१।१-३	३
	१।८१।१-३,४-६		२०।५६।१-३,७-९	६
	१।८४।७-९		२०।६३।४-६	३
	१।८४।१०-१२		२०।१०९।१-३	३
				२९

कुल उनतीस मंत्र गोतम ऋषिके ऋग्वेदसे अथर्ववेदमें लिये हैं। इनमें १-५७।१-६ ये छः मंत्र ऋग्वेदमें सव्य ऋषिके हैं जो अथर्ववेदमें गोतमके नामपर लगाये दीखते हैं। यह अथर्वसर्वानुक्रमकी अशुद्धि है, इनका ऋषि ऋग्वेदकाही योग्य है और वही अथर्ववेदमें लिखना चाहिये। ये ऋग्वेदके ही मंत्र हैं इसलिये इनका लेखन दुबारा नहीं किया है।

वामदेव ऋषिके मंत्रोंमें

तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय।

(ऋ. ४।४।११, काठ. ६।११)

अर्वावृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः।

(ऋ. ४।३२।१२)

नोधा ऋषिके मंत्रोंमें

आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन् ॥ (ऋ ८।८८।४)

अथर्ववेदमें

मृगार ऋषिके मंत्रोंमें

यो गोतममवथः ॥ (अथ. ४।२९।६)

अथर्वा ऋषिके मंत्रोंमें

भरद्वाज गोतम वामदेव ।० मृडता नः ।

(अथ. १८।३।१६)

इतने ऋषियोंके इन मंत्रोंमें 'गोतम' पद आया है और यहांके निर्देश मननीय हैं। (वयं गोतमासः त्वा प्रशंसामः) हम गोतम ऋषि तेरी प्रशंसा करते हैं । 'गोतमासः ब्रह्माणि अक्रन्' गोतम ऋषिओंने स्तोत्र किये । (गोतमः नव्यं ब्रह्म अतक्षत्) गोतम ऋषिने यह नया सूक्त तैयार किया । (गोतमेभिः ब्रह्माणि अकारि) गोतम ऋषियोंने अनेक सूक्त किये । (गोतमेभिः अग्नि. अस्तोष्ट) गोतमोंके द्वारा अग्नि प्रशंसित हुआ । (गोतम दुवस्यति)गोतम स्तुति करता है। (गोतम। अग्नये वाचः भरस्व)ः हे गोतम! अग्निके लिये वाणीसे स्तोत्र भर दे। (गोतमासः ब्रह्म कृण्वन्तः) गोतमोंने स्तोत्र किये। (गोतमेभि- दिवः दुहिता स्तवे) गोतमोंने उषाकी स्तुति की । (गोतमः अवसे हवते) गोतम अपनी सुरक्षाके लिये स्तुति करता है । (गोतमाः इन्द्रं अर्वाग्-धन्त) गोतमोंने इन्द्रकी बधाई की । (गोतमा यं अजीजनन्) गोतमोंनें स्तोत्रको जन्म दिया । इस तरह पूर्वोक्त मंत्रोंमें गोतमोंने अग्नि, इन्द्र आदि देवताओंके स्तोत्र बनाये ऐसा कहा है । यहां 'अक्रन्, अतक्षत्, अकारि, कृण्वन्त.' ये क्रियापद विचार करनेयोग्य है । 'अतक्षत्' कियापद तो लकडीसे रथ निर्माण करनेके समान स्तोत्र निर्माण करनेका भाव बता रहा है ।

यहां ' गोतमाः, गोतमासः' ये पद अनेक ' गोतम' थे ऐसा भाव स्पष्ट रूपसे बता रहे हैं। अर्थात् यह पद गोतमके वंशमें उत्पन्न ऋषियोंका वाचक है । 'गोतम' पदसे मूल 'गोतम' ऋषिका बोध होता है, पर ' गोतमासः' पद गोतम कुलमें उत्पन्न अनेक ऋषियोंका वाचक है । सभव है कि गोतम ऋषिके गुरुकुलमें जो भी विद्वान् होंगे उनका सामान्यसे यह नाम भी होगा ।

उक्त मंत्रोंमें कुछ अन्य बातें भी देखनेयोग्य हैं – (तृष्णजे गोतमाय उत्सं सिञ्चन्) प्यासे गोतमके पानी पीनेके लिये पानीका हौज भर दिया । (तृष्यते गोतमस्य पानाय अपः क्षरन्) गोतमको पानी पीनेके लिये मिले इस कारण पानीका प्रवाह बहा दिया । (यौ गोतमं अवथः) जिन दोनों अश्विदेवोंने गोतमकी सुरक्षा की थी ।

इससे पता लगता है कि गोतम ऋषिके आश्रममें जल नहीं था अश्विदेवोंने बडी दूरसे जलकी नहर लाकर आश्रमके हौज भर दिये, जिसके बाद वहां जलकी विपुलता हो गयी ।

ब्राह्मणग्रंथोंमें गोतमका नाम

विदेघो ह माथवोऽग्निं वैश्वानरं मुखे बभार, तस्य गोतमो राहूगण ऋषिः पुरोहित आस, तस्मै ह स्मामन्त्र्यमाणो न प्रतिशृणोति, नेन्मेऽग्निर्वैश्वानरो मुखान्निष्पद्यता इति ॥१०॥ तमृग्भिर्ह्वयितुं दध्रे । वीतिहोत्रं त्वा० इति ॥११॥... स ह नैव प्रतिशुश्राव । तं त्वा घृतस्नवीमह इत्येवाभिव्याहरत् । अथास्य घृतकीर्तावेवाग्निर्वैश्वानरो मुखादुज्जज्वाल, तन्न शशाक धारयितुं, सोऽस्य मुखान्निष्पेदे, स इमां पृथिवीं प्रापादः ॥१३॥ तर्हि विदेघो माथव आस । सरस्वत्यां स तत एव प्राङ् दहन्नभीयायेमां पृथिवीं, तं गोतमश्च राहूगणो विदेघश्च माथवः पश्चाद्दहन्तमन्वीयतुः, स इमाः सर्वा नदीरतिददाह, सदानीरेत्युत्तराद् गिरेर्निर्धावति, तां हैव नातिददाह, तां ह स्म तां पुरा ब्राह्मणा न तरन्त्यनतिदग्धाग्निना वैश्वानरेणेति ॥१४॥... स होवाच । विदेघो माथवः, क्वाहं भवानीत्यत एव ते प्राचीनं भुवनमिति होवाच, सैषाप्येतर्हि कोसलविदेहानां मर्यादा ते हि माथवाः ॥१७॥ अथ होवाच । गोतमो राहूगणः कथं नु न आमन्त्र्यमाणो न प्रत्यश्रौषीरिति स होवाचाग्निर्मे वैश्वानरो मुखेऽभूत्, स नेन्मे मुखान्निष्पद्याते तस्मात्ते न प्रत्यश्रौषमिति ॥१८॥ तदु कथमभूदिति । यत्रैव त्वं घृतस्नवीमह इत्यभिव्याहार्षीस्तदेव मे घृतकीर्तावग्निर्वैश्वानरो मुखादुदज्वालीत्तं नाशकं धारयितुं स मे मुखान्निरपादीति ॥१९॥ (श. ब्रा. १।४।१।१०-१८)

मथुका पुत्र विदेघ था। उसने अपने मुखमें सब मानवोंके हित करनेवाले अग्निको धारण किया था। उसका पुरोहित रहूगणका पुत्र गोतम ऋषि था। पुरोहितने राजाको बुलाया, पर राजाने उत्तर नहीं दिया, राजाको यह भय लगा था, कि यदि मैं उत्तर दूं तो मेरे मुखसे अग्नि बाहर निकल आयेगा, वह बाहर निकले इसलिये वह उत्तर नहीं देता था। (१०) उसको पुरोहितने ऋचाओंसे बुलाना चाहा और वीतिहोत्रं (ऋ ५। २६।३; वा. य. २।४) इस मंत्रसे पुकारा० ॥ (११) पर उसने उत्तर नहीं दिया। पश्चात् 'तं त्वा घृतस्नवी०' (ऋ. ५। २६।२) इस मंत्रसे बुलाया' तब 'घृत' शब्दका उच्चारण करतेही मुखमें स्थित अग्नि जलने लगा, इस कारण वह राजा उसको मुखमें धर नहीं सका तब वह अग्नि इसके मुखसे बाहर निकल आया, और भूमिपर उतरा ॥ (१३) उस समय वह राजा मथु-पुत्र विदेघ सरस्वती नदीके प्रवाहमें घुस गया। वहांसे वह अग्नि पूर्वकी ओर जलाता हुआ चला, उसके पीछे पीछे गोतम ऋषि राजा विदेघ दौडने लगे। उस अग्निने पृथ्वी पर की सभी नदियोंको जलाया, शुष्क कर दिया। पश्चात् उत्तर दिशाकी ओर जानेवाली 'सदानीरा' नामक नदि है वहांतक वह अग्नि पहुंचा, उस नदीको वह न जला सका। इसलिये उस नदीमें पानी रहा और 'सदानीरा' ऐसा उसका नाम हुआ। अग्निने जलाकर शुद्ध नहीं किया, इसलिये उसका जल अशुद्ध है ऐसा मानकर ब्राह्मण उस जलमें तैरते नहीं थे। (१४)... मैं कहाँ निवास करूं ऐसा विदेघ माथवने पूछा, अग्निने उत्तर दिया कि इस नदीके पूर्वकी ओर जो भूमि है उसमें रहो।

यह नदी आज भी कोसल और विदेहकी मर्यादा बतानेवाली नदी दीखती है। इसलिये उस विदेह देशको माथव कहते हैं। (१७) तब रहूगणपुत्र गोतम ऋषिने राजासे पूछा कि मेरे पूछनेपर तू उत्तर क्यों देता नहीं था? उसने उत्तर दिया कि मेरे मुखमें अग्नि था, वह गिर न जाय इस कारण मैं नहीं उत्तर देता था। (१८) तब क्या हुआ? जब आपने 'घृत' शब्दवाला मंत्र बोला, तब घृत शब्दके उच्चारण होतेही मेरे मुखमें रहा अग्नि जलने लगा, उसकी ज्वालायें इतनी प्रदीप्त हुई मैं मुखमें उसका धारण करनेमें समर्थ नहीं हुआ और वह अग्नि मेरे मुखसे बाहर निकल आया।

यह कथा आलंकारिक प्रतीत होती है। इसका अलंकार ठीक तरह हमारे समझमें नहीं आया। विद्वान् पाठक हो सके तो इसकी खोज करें। हमने यह शतपथका वचन यहां इसलिये दिया है कि इससे गोतम ऋषि विदेघ राजाके पुरोहित थे और उनका प्रदेश कोसल और विदेहके प्रदेशमें था जो सदानीरा नदीके पासका प्रदेश है। गोतम ऋषि इस राजाके पुरोहित बने थे। यह भी संभव है कि गोतम ऋषि किसी दूसरे देशसे इस राजाने बुलाये होंगे। पर इस राजाके यज्ञमें वे थे, यह सत्य है। और देखिये—

राष्ट्र देनेवाली इष्टि

तां हैतां गोतमो राहूगणः विदांचकार, सा ह जनकं वैदेहं प्रत्युत्ससाद, तां हांगजिह्वाह्मणेषु अन्वियेष, तामु ह याज्ञवल्क्ये विवेद, स होवाच सहस्रं भो याज्ञवल्क्य दद्मो, यस्मिन्वयं त्वयि मित्रविन्दामन्वविदामेति, विन्दते मित्रं, राष्ट्रमस्य भवति, अप पुनर्मृत्युं जयति, सर्वमायुरेति, य एवं विद्वानेतयेष्ट्या यजते ॥

(श. ब्रा. ११।४।३।२०)

इस इष्टिको रहूगणपुत्र गोतम ऋषिने जान लिया, इसका ज्ञान राजा जनकको हुआ, उस राजाने वेदवेत्ता ब्राह्मणोंमें इस इष्टिको करनेवाले ब्राह्मणको ढूंढा, उसको मालूम हुआ कि याज्ञवल्क्य इस इष्टिको जानते हैं। उसने याज्ञवल्क्यसे कहा कि सहस्रमुद्रा दक्षिणा दूंगा यदि तू इस इष्टिको मेरे लिये करा दोगे। इस इष्टिका नाम 'मित्र-विदा' (मित्र बढानेवाली इष्टि) है। इसके करनेसे बहुत मित्र मिलते हैं, अपने अधिकारमें राष्ट्र रहता है, अपमृत्यु दूर होता है, पूर्ण आयु मिलती है।

इस इष्टिका यह फल है। राष्ट्रकी स्वाधीनता करनेवाली यह 'मित्र-विदा' इष्टि है और यह इष्टि सबसे प्रथम गोतम ऋषिने खोज करके सिद्ध की थी। ये गोतम ऋषि याज्ञवल्क्य मुनि और राजाजनकके पूर्व समयके हैं इसमें संदेह नहीं है। यथा—

तस्यासत ऋषय सप्त तीर इति, प्राणा वा ऋषयः ..... अयमेव गोतमोऽयं भरद्वाजः।

(श. ब्रा. १४।५।२।६)

'इस शरीरमें सात ऋषि हैं। यह दक्षिण कान गोतम है और यह उत्तर कान भरद्वाज है।' दो कानोंके ये नाम हैं। यहां शरीरके एक कान (शब्द सुननेके इंद्रिय) को गोतम कहा है। तथा—

प्रातर्गोतमस्य चतुरुत्तरः स्तोमो भवति ।
(श. ब्रा. १४।५।१।१)

' गोतम ऋषिने अग्निष्टोमकी रचना की ' यहाँ ' प्रात. ' पद अग्निष्टोमका वाचक है । इस यज्ञका विधान सिद्ध करनेमें गोतम ऋषि मुख्य हैं । इस तरह ब्राह्मण और आरण्यक ग्रंथोंमें गोतम ऋषिका वर्णन बडे गौरवके साथ आया है । पुराणोंमें इसका नाम ' गौतम ' हुआ है, इसका वर्णन वहां जो मिलता है वह ऐसा है—

गौतम

अरुण, आग्निवेश्य, उद्दालक आरुणि, कुथि, साति तथा हारिद्रुमत इन ऋषियोंका पैतृक नाम अथवा गोत्र गौतम है । शाण्डिल्य, आनभिम्लात, भारद्वाज, आग्निवेश्य, मांटि सैतव तथा गार्ग्य ये सब गौतमके शिष्य हैं ।

महाभारतमें गौतम नाम कई स्थानोंमें पाया जाता है ।

स वै दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत ॥२२॥
जात्यन्धो वेदवित्प्राज्ञः पत्नीं लेभे स विद्यया २३
तरुणीं रूपसंपन्नां प्रद्वेषीं नाम ब्राह्मणीम् ।
स पुत्राञ्जनयामास गौतमादीन्महायशाः ॥२४॥
(म. भा. आ. १०४)

गौतमके पिताका नाम दीर्घतमा । दीर्घतमा उचथ्य ऋषिके पुत्र थे । उचथ्यके छोटे बन्धु देवोंके पुरोहित बृहस्पतिके द्वारा शापित होनेसे दीर्घतमा जन्मान्ध हुवे । वे वेदज्ञ, प्राज्ञ, बलवान् तथा बुद्धिमान् थे । प्रद्वेषी नामक ब्राह्मणीके साथ दीर्घतमाका विवाह हुवा । प्रद्वेषीने कुलका यश बढानेवाले गौतम आदि ऋषियोंको जन्म दिया ।

यही कथा अन्य स्थानमें अन्य प्रकारसे पायी जाती है ।

स शापादृषिमुख्यस्य दीर्घ तम उपेयिवान् ।
स हि दीर्घतमा नाम नाम्ना ह्यासीदृषिः पुरा ५५
आनुपूर्व्येण विधिना केशवेति पुनः पुनः ।
स चक्षुष्मान्समभवत् गौतमश्चाभवत्पुनः ॥५६॥
(म. भा शा. ३४१)

बृहस्पतिके शापसे जन्मान्ध होनेपर दीर्घतमा ऋषिने बारबार केशव नामका जप करनेसे वे नेत्रवान् हुवे और इस कारण गौतम इस नामसे पहचाने जाने लगे ।

शारद्वतस्तु दायादमहल्या समसूयत ।
शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहातपाः ॥८॥
(मत्स्य पु. ५०)

वैवस्वत मन्वन्तरके सप्तर्षिओंमेंसे गौतम एक ऋषि थे । आपका नाम शरद्वत गौतम ऐसा भी पाया जाता है । रामायणकी प्रसिद्ध सती अहल्या आपकी पत्नी थी । इन्हें शतानन्द नामक पुत्र हुवा । विद्वान् होनेपर शतानन्द जनकका पुरोहित हुआ था ।

गौतम तथा आङ्गिरस इन दोनोंका तीर्थमाहात्म्यविषयक संवाद हुआ था । महाभारतके अनुशासन पर्वमें पचीसवें अध्यायमें भीष्मने उस संवादका अनुवाद किया है ।

महाभारतमें आपके विषयमें और एक कथा पाई जाती है-

कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
विश्वामित्रो जमदग्निः साध्वी चैवाप्यरुन्धती २१
ते च सर्वे तपस्यन्तः पुरा चेरुर्महीमिमाम् ।
समाधिनोपशिक्षन्तो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥२२॥
अथाभवदनावृष्टिर्महती कुरुनन्दन ।
कृच्छ्रप्राणोऽभवद्यत्र लोकोऽयं वै क्षुधान्वितः २४
(म. भा. अनु. ९३)

कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र और जमदग्नि इत्यादि ऋषि और वसिष्ठपत्नी अरुन्धती, ये सब समाधिके द्वारा सनातन लोक पानेके लिये इस पृथ्वीपर तपस्या करते हुवे विचरते थे । अनन्तर अनावृष्टि होनेके कारण वे सब क्षुधातुर होनेके कारण बडे दुर्बल हुवे ।

पृथ्वीनाथ शैब्य वृषादर्भिने उन क्लेश पाते हुवे ऋषियोंको देखा और यह बोला—

वृषादर्भिरुवाच—

प्रतिग्रहस्तारयति पुष्टिर्वै प्रतिगृह्यताम् ।
मयि यद्विद्यते वित्तं तद्वृणुध्वं तपोधनाः ॥३०॥

' हे तपस्विगण, दान लेनेसे पुरुष क्लेशसे छूट जाता है । इसलिये आप लोग पुष्टिके लिये प्रतिग्रह ग्रहण करें । मेरे समीप जो धन है, उसे आप मांगिये । '

परन्तु उन निर्लोभी ऋषियोंके मनमें यह बात नहीं जची उन्होंने उत्तर दिया ।

ऋषय ऊचुः —

राजप्रतिग्रहो राजन् मध्वास्वादो विषोपमः ।
तज्जानमानः कस्मात्त्वं कुरुषे नः प्रलोभनम् ॥३१॥
(म. भा. अनु. ९३)

'हे महाराज, राजाओंका प्रतिग्रह मधुरकी भाँति स्वादयुक्त होता है। किन्तु वह विषके समान है। तुम उसे जानते हुवे भी हमें किस लिये लोभ दिखा रहे हो ?' ऐसा कहकर गौतमादि ऋषियोंने अन्यत्र गमन किया।

गौतमके उत्तंक नामक एक प्रिय शिष्य थे। उनके गुरुभक्तिसे प्रसन्न हुवे हुवे गौतम उन्हें बोले—

इत्थं च परितुष्टं मां विजानीहि भृगूद्वह।
युवा षोडशवर्षो हि यद्यद्य भविता भवान् ॥२२॥
ददामि पत्नीं कन्यां च स्वां ते दुहितरं द्विज।
एतामृतेऽङ्गना नान्या त्वत्तेजोऽर्हति सेवितुम् २३

'हे भृगुओंमें श्रेष्ठ! तुम्हारी भक्तिसे मैं संतुष्ट हुआ हूं। हे महान्, आज यदि तुम सोलह वर्षोंके युवक होते, तो मैं अपनी कन्या तुम्हें पत्नी रूपसे दान करता। इस कन्याके अतिरिक्त अन्य कोई भी तुम्हारे तेजको धारण करनेमें समर्थ नहीं है।

इसपर—

ततस्तां प्रतिजग्राह युवा भूत्वा यशस्विनीम्।
गुरुणा चाभ्यनुज्ञातो ... ... ॥२४॥
(म. भा. आश्व. ५६)

उत्तङ्क मुनिने युवा होकर गुरुकी आज्ञानुसार उस यशस्विनी कन्याका ग्रहण किया। गौतमके साथ यम तथा गौतमका संवाद देखिये—

पारियात्रं गिरिं प्राप्य गौतमस्याश्रमो महान्।
उवास गौतमो ... ... ॥४॥
तमुग्रतपसा युक्तं भवितं सुमहामुनिम् ॥ ५ ॥
उपयातो नरव्याघ्र लोकपालो यमस्तदा।
तमपश्यत्सुतपसमृषिं वै गौतमं तदा ॥ ६ ॥
स तं विदित्वा ब्रह्मर्षिर्यममागतमोजसा।
प्राञ्जलिः प्रयतो भूत्वा उपविष्टस्तपोधनः ॥ ७ ॥
तं धर्मराजो दृष्ट्वैव सत्कृत्यैव द्विजर्षभम्।
न्यमन्त्रयत धर्मेण क्रियतां किमिति ब्रुवन् ॥ ८ ॥
गौतम उवाच—
मातापितृभ्यामानृण्यं किं कृत्वा समवाप्नुयात्।
कथं च लोकानाप्नोति पुरुषो दुर्लभाञ्छुभान् ९
यम उवाच—
तप शौचवता नित्यं सत्यधर्मरतेन च।
मातापित्रोरहरहः पूजनं कार्यमञ्जसा ॥ १० ॥

अश्वमेधैश्च यष्टव्यं बहुभिः स्वाप्तदक्षिणैः।
तेन लोकानवाप्नोति पुरुषोऽद्भुतदर्शनान् ॥११॥
(म. भा. शा. १२९)

'पारियात्र पर्वतके समीप गौतमका विशाल आश्रम था। गौतम उसमें रहता था। उस महामुनिकी उग्र तपस्या देखकर लोकपाल यम उनके निकट गया और उस समय गौतम ऋषिको अत्यन्त कठोर तपश्चर्या करनेमें तत्पर देखा। तपस्वी ब्रह्मर्षि गौतम तेजयुक्त और प्रभावशाली यमको आया हुवा देखकर हाथ जोडकर उठकर खडे हुवे। धर्मराज यमने उन्हें देखतेही धर्मके अनुसार सत्कार करते हुवे उनसे पूछा "मैं आपका क्या कार्य करूं ?"

गौतम बोले, "क्या करनेसे पुरुष मातापितासे उऋण होता है और किस प्रकार पवित्र तथा दुर्लभ लोगोंको प्राप्त करता है ?

यम बोले, 'तपस्या और पवित्र आचारयुक्त तथा नियम और सत्य धर्ममें रत पुरुष सदा मातापिताकी पूजा करके उनका उऋण होता है। तथा बहुतसी दक्षणाये युक्त अश्वमेध यज्ञ करनेसे अद्भुत तथा दुर्लभ लोगोंको प्राप्त है।'

गौतमके उदार स्वभावके विषयमें नारदीय महापुराणमें एक कथा उपलब्ध है।

तपस्यन्तो मुनेस्तस्य द्वादशाब्दमवर्षणम् ॥
बभूव घोरं विप्रेन्द्र सर्वसत्त्वक्षयंकरम् ॥ ६ ॥
तस्मिन्दुर्गे तु दुर्भिक्षे क्षुत्क्षामा मुनयोऽखिलाः।
नाना देशेभ्य आयाता गौतमस्याश्रमं शुभम् ७
चक्रुर्विज्ञापनं तस्य गौतमस्य तपस्यतः।
देहि नो भोजनं येन प्राणास्तिष्ठन्ति वर्ष्मसु ॥८॥
गौतम उवाच—
तिष्ठध्वं मुनयः सर्वे ममाश्रमसमीपतः।
भोजनं वः प्रदास्यामि यावद्दुर्भिक्षमाहताः ॥१०॥
(ना. म. पु. अ. ७२)

गौतम गोदावरीके उगमके निकट त्र्यंबकेश्वरके समीप तप करते रहे, तब एक बार बारह वर्षोंतक अकाल पड़ा। चारों ओर हाहाकार मचा। उस दुर्भिक्षके कारण क्षीण हो गये हुवे मुनिगण नाना देशोंसे गौतमके आश्रममें आ गये। उन्होंने तप करनेवाले गौतमसे कहा, 'ऋषिवर्य, हमें अन्न देकर हमारे प्राणोंकी रक्षा करो।"

गौतम बोले, ' चिन्ता करनेका कारण नहीं है। जबतक अकाल रहेगा तबतक आप सब मेरे निकट रहिये। मैं आपके भोजनादिका प्रबंध करूंगा। '

बारह वर्षोंतक मुनिगण वहीं रहे। वर्षा होकर पृथ्वी धान्यादिसे सपन्न होनेपर प्रसन्न चित्तसे गौतमकी शुभ कामना करते हुवे वे वहांसे अपने अपने देश गये।

इस स्थानमें गौतमको मायादेवीका पुत्र कहा है। विचारक इस नामके बारेमें विचार करें।

गौतम एक धर्मशास्त्रकार थे। वे सामवेदकी राणायणी शाखाके नौ उपशाखाओंमें एक शाखाके अनुयायी थे। लाट्यायनीय श्रौतसूत्रमें—

उत्तमयोरिति गौतमः ॥१७॥

इस सूत्रकी टीका करते हुवे गौतमको आचार्य कहा है। सामवेदके गोभिल गृह्यसूत्रमें भी कई जगह गौतमका नाम आया है। गौतमस्मृति गद्यमय ग्रन्थ है। इसमें स्वयं ग्रन्थकारने किया हुवा अथवा अन्य किसीका एक भी श्लोक नहीं है। इस ग्रन्थके अट्ठाईस भाग हैं। कलकत्तामें छपी हुई गौतमस्मृतिमें उनतीस भाग हैं। परन्तु हरदत्तकी मिताक्षरामें इस उनतीसवे भागका उल्लेख न होनेसे संभवतः वह भाग प्रक्षिप्त है।

गौतम धर्मसूत्रमें व्यवहार, उपनयनादि संस्कार, विवाह तथा उसके प्रकार, प्रायश्चित्त, राजधर्म, स्त्रियोंके कर्तव्य, नियोग, महापातक तथा उपपातक, उनके प्रायश्चित्त, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र इत्यादिका विचार किया हुवा हैं। तथा इसमें संहिता, ब्राह्मण, पुराण इत्यादि ग्रंथोंके उल्लेख कई जगह किये हैं।

बौधायन धर्मसूत्रमें गौतम धर्मशास्त्रका उल्लेख पहलीबार किया हुवा पाया जाता है। वसिष्ठ धर्मशास्त्र, अपरार्क, तंत्रवार्तिक, शांकरभाष्य, इत्यादिमें भी गौतम धर्मशास्त्रका उल्लेख पाया जाता है। मनुस्मृतिमें गौतमका—

शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्यतनयस्य च।

इस प्रकार उतथ्यतनय इस नामसे उल्लेख किया हुवा है। भविष्य पुराणमें भी एक जगह गौतमका सुरापानका निषेध करनेवाला करके उल्लेख है। गौतमका नाम वसिष्ठ तथा बौधायनके ग्रन्थोंमें आनेसे यह ज्ञात होता है कि गौतम वासिष्ठ और बौधायनके पूर्व कालीन होंगे। कई सज्जनोंका मत है कि गौतम धर्मशास्त्रमें ' यवन ' शब्दका उपयोग किया हुवा दिखाई देता है। और भारतमें ' यवन ' शब्दका परिचय अलक्जन्दरके आक्रमणके बाद (खिस्तान्दपूर्व ३२२ वर्ष) होनेसे गौतमका काल इस आक्रमण कालके बाद मानना पडता है। परन्तु यह मत असंगत है। स्वयं गौतमही यवन शब्दका अर्थ ' क्षत्रिय और शूद्रीके संयोगसे जन्म पाई हुई संतति ' ऐसा देते हैं। केवल ' यवन ' शब्दपरसे गौतमका काल निश्चय करना योग्य नहीं है। तथापि कई ऐसा मानते हैं कि खि. पू. ६००-७०० वर्षके मध्यमें यह गौतम काल होना संभवनीय है पर यह भी विवादास्पद है। गौतम धर्मसूत्रपर हरदत्तने मिताक्षरा नामक टीका, और मस्करी तथा असहाय इन दो विद्वानोंने भाष्य लिखे हैं। परन्तु ये तीनों अर्वाचीन ग्रंथ हैं। मिताक्षरा, स्मृतिचन्द्रिका इत्यादि ग्रन्थोंमें **श्लोक गौतम**, और अपरार्क तथा दत्तक मीमांसामें **वृद्धगौतम** और **वृद्धगौतमका** उल्लेख है। जीवानन्दने १७०० श्लोकोंकी गौतमस्मृति प्रकाशित की है। श्रीकृष्णने धर्मराजको चातुर्वर्ण्य-धर्म-व्यवस्था कहनेके लिये यह स्मृति कथन की, ऐसा उस स्मृतिके उल्लेखपरसेही ज्ञात होता है। परन्तु संभवतः यह स्मृति महाभारतके आश्वमेधिक पर्वसे ली गई होगी। क्योंकि पराशरमाधवीय तथा अन्य कई ग्रन्थोंमें इस स्मृतिके श्लोक आश्वमेधिकपर्वसे लिये हुवे हैं। गौतमके नामपर और भी आन्हिकसूत्र, पितृमेधसूत्र, दान चन्द्रिका, न्यायसूत्र, गौतमी शिक्षा इत्यादि ग्रंथ उपलब्ध हैं। पर ये सब वैदिक कालके गौतम ऋषिके हैं ऐसा कहना कठिन है।

अब कुछ अन्य गौतमोंका वर्णन करते हैं—

द्वितीय गौतम— इस गौतमके बारेंमें महाभारतके शल्य पर्वमें—

> **आसन्पूर्वयुगे राजन्मुनयो भ्रातरस्त्रयः ॥७॥**
> **एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसन्निभाः ॥८॥**
> **तेषां तु तपसा प्रीतो नियमेन दमेन च ॥९॥**
> **अभवद्गौतमो नित्यं पिता धर्मरतः सदा ॥१०॥**
> **(म. भा. श. ३६)**

' पूर्वकालमें सूर्यके सदृश तेजस्वी ऐसे एकत, द्वित तथा त्रित ये तीन बन्धु थे। उनके पिताका नाम गौतम था, ' ऐसा उल्लेख है।

तृतीय गौतम— इस गौतमको चिरकाली नामक पुत्र था।

उस पुत्रको गौतमने अपनी दुराचारी माताका वध करनेको कहा। परन्तु चिरकाली विचारवान् होनेके कारण उसके हाथसे वह काम न हो सका। यह कथा महाभारत शान्तिपर्वके २६६वे अध्यायमें विस्तारसे कही हुई है।

चतुर्थ गौतम— इस गौतमके बारेमें भागवतमें—

मध्वादिषु द्वादशसु भगवान्कालरूपधृक्।
लोकतन्त्राय चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥१२॥
घृताची गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥१९॥
(भा. १२।११)

अर्थात् 'गौतमादि भगवान् सूर्यके साथ भिन्नभिन्न मासोंमें भ्रमण करते हैं' ऐसा कहा है।

पञ्चम गौतम— महाभारतके शान्तिपर्वमें १६८ से लेकर १७३ तक एक दुराचारी गौतमकी कथा विस्तारसे कही हुई है।

षष्ठ गौतम— यह गौतम अत्रिकुलका एक ब्रह्मर्षि था। इसके बारेमें नीचे लिखी हुई कथा पाई जाती है।

एक बार अत्रि ऋषि वैन्य राजाके यज्ञमें जाकर उसकी स्तुति करने लगे।

अत्रिरुवाच—

राजन्धन्यस्त्वमीशश्च भुवि त्वं प्रथमो नृपः ॥१३॥

'हे राजन्, तुम धन्य हो। तुम ईश्वर सदृश हो। पृथ्वीपर पहिले राजा तुमही हो।'

तब उस यज्ञमें बैठे हुवे गौतम-नामा ऋषि क्रुद्ध होकर उन्हें बोले—

मैवमत्र पुनर्ब्रूया न ते प्रज्ञा समाहिता।
अत्र नः प्रथमं स्थाता महेन्द्रो वै प्रजापतिः ॥१५
(म. भा. व. १८५)

'तुम अधिक दक्षिणा पानेके लिये राजाकी स्तुति कर रहे हो। हमारे आदिराजा इन्द्र हैं, वेही प्रजापति हैं। तुम ऐसे वचन फिर मत कहो। मेरी समझसे तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है।' इस प्रकार दोनोंमें चर्चा छिड़नेपर अन्तमें सनत्कुमारने इनका समाधान किया।

सनत्कुमारने कहा—

राजा वै प्रथितो धर्मः प्रजानां पतिरेव च।
स एव शक्रः शुक्रश्च स धाता स बृहस्पतिः॥ २६
(म. भा. व. १८५)

'राजाही धर्म तथा प्रजापति है। इसीको इन्द्र, शुक्र, धाता, बृहस्पति इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं। अत एव जो राजाकी स्तुति करता है, उसकी निन्दा न करनी चाहिये।' सनत्कुमारका यह वचन सुनकर गौतम ऋषि चुप हुए।

इस गौतमका उल्लेख और एक जगह उपलब्ध है। सावित्रीके पति सत्यवान्के पिता द्युमत्सेन अपने पुत्रके मृत्युकी आशंका कर शोक कर रहे थे। उन्हें समझाते हुवे गौतमने कहा—

अनेन तपसा वेद्मि सर्वं परिचिकीर्षितम्।
सत्यमेतन्निबोधध्वं ध्रियते सत्यवानिति ॥१३॥
(म. भा. व. २९८)

'अर्थात् मैं अपने तपो बलसे भविष्य तथा वर्तमान देख रहा हूँ। आप विश्वास कीजिये कि सत्यवान् जीवित है।' आखरी गौतमके भविष्यके अनुसार सत्यवान् वापस लौट आ गये।

गौतम और अहल्या

गौतम ऋषि और अहल्याकी कथा वाल्मीकीय रामायणमें तथा अन्यान्य पुराणोंमें है। प्रायः प्रत्येक पुराणमें इस कथामें न्यूनाधिक भिन्नता है। हमें इस लेखमें इस कथाका विचार करना नहीं है, इसलिये यह कथा कहां आयी है, उस स्थानके पते हम यहां देते हैं—

१ वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड, सर्ग ४८; स. ४९ उत्तर-काण्ड स. ३०।
२ लिंगपुराण अ. २९
३ गणेशपुराण १।३०; १।३१
४ ब्रह्मपुराण २।१६।१-४८
५ पद्मपुराण स. ५५
६ स्कन्दपुराण
७ अध्यात्मरामायण, बाल. ५
८ आनंदरामायण स. ३
९ षड्विंश ब्राह्मण (१।१), ताण्ड्य ब्राह्मण (२३।१)

इतने स्थानोंपर अहल्या और गौतमकी कथएं हैं। गौतम ऋषि तपस्यामें मग्न रहते थे। इनका विवाह तरुणी सुन्दरी अहल्याके साथ हुआ। विवाह होनेपर भी वे तपस्यामेंही मग्न रहते थे।

एक वार ये तपस्याके लिये बाहर गये थे, उस समय इनके आश्रममें इन्द्र आया। वहां अकेली अहल्या थी। गौतम ऋषि वहां नहीं थे, अपने तप करनेके स्थानमें गये थे। इन्द्र और अहल्याकी बातचीत हुई और इन्द्रका संबन्ध अहल्यासे हुआ। वा० रामायणका कहना है कि यह गौतम नहीं है और इन्द्र है, यह जानकर अहल्याने इन्द्रके साथ संबंध किया। और पश्चात् "मैं सन्तुष्ट हुई हूं, अतः तुम इस मार्गसे जाओ, गौतम आनेका समय हुआ है" ऐसा भी कहा। अन्य ग्रन्थोंमें इससे विभिन्न कथा है। पश्चात् गौतम अपने आश्रममें आये और जो हुआ वह जानकर उसने अहल्याका त्याग कर तप करनेके लिये किसी दूसरे स्थानपर गये।

पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी आये और उन्होंने उसकी शुद्धि की और वह गौतम ऋषिके साथ पुनः प्रेमसे रहने लगी।

इस कथाका तात्पर्य यह है, कि तपश्चर्या करनेवाला पुरुष तरुणी सुन्दरी युवतीसे विवाह न करें, और यदि करें, तो उसको गृहस्थ धर्मसे रहकर सन्तुष्ट करता रहे और उतनाही समय तपस्याके लिये दे कि जिससे अपनी धर्मपत्नीको कुकर्म करने तक संयम करनेका भार सहनेकी आपत्ति न भोगनी पड़े। मनके कामादि विकार बड़े प्रबल रहते हैं और दबाने पर भी अवसर आनेपर भडक उठते हैं। इसलिये पतिका ही यह उत्तरदायित्व है, यह बतानेके लिये वा० रामायणमें यह कथा इस तरह दी है।

घरमें सुन्दरी युवती रखकर यह गौतम ऋषि तपस्यामें मग्न रहता है। संयम करनेपर भी अहल्यासे समयपर प्रमाद हुआ। अर्थात् यह अपराध गौतमका था, ऐसा वा०रामायणका अभिप्राय है। अन्य पुराणोंमें कुछ अन्य प्रकारसे यह कथा लिखी है।

गौतमका परिचय होनेके लिये यह इतनी ही कथा पर्याप्त है। षड्विंश ब्राह्मणमें गौतमको देव सेनाका सेनापति बताया है। और युद्ध करते करते थकने पर वे किसी जगह विश्राम तथा निद्रा लेने लगे और सेना संचालन इन्द्र करने लगा। ऐसी अवस्थामें इन्द्र और अहल्याका संबंध हुआ। यहां तपका नामतक नहीं है। कुछ भी हो, यहां इतना सत्य है कि वा० रामायण और ब्राह्मण ग्रंथोंमें कथा आने इतना गौतम अतिप्राचीन है।

इस तरह गौतम ऋषिके विषयमें महाभारत, रामायण तथा पुराणोंमें वर्णन है। पाठक इसका मनन करें। इस वर्णनके देखनेसे अनेक गौतम थे यह बात स्पष्ट हो जाती है। इनमें जो प्राचीन थे वेही वैदिक गौतम हैं ऐसा मानना योग्य है।

औंध जि. सातारा । ११११४६ — निवेदन कर्ता श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

गोतम ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदमें तेरहवाँ अनुवाक)

अग्नि-प्रकरण

(१) अग्रणीके कर्तव्य

(ऋ. १।७४) गोतमो राहूगणः । अग्निः । गायत्री ।

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १
यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद् दाशुषे गयम् ॥ २
उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनंजयो रणेरणे ॥ ३
यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये । दस्मत् कृणोष्यध्वरम् ॥ ४
तमित् सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो । जना आहुः सुबर्हिषम् ॥ ५
आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये । हव्या सुश्चन्द्र वीतये ॥ ६

अन्वयः- १ अध्वरं उपप्रयन्तः अस्मे आरे शृण्वते च अग्नये मन्त्रं वोचेम ॥

२ यः स्नीहितीषु संजग्मानासु कृष्टिषु पूर्व्यः दाशुषे गयं अरक्षत् ॥

३ उत जन्तवः ब्रुवन्तु-रणेरणे धनंजयः वृत्रहा अग्निः उत् अजनि ॥

४ यस्य क्षये दूतः असि, हव्यानि वीतये वेषि, अध्वरं दस्मत् कृणोषि ॥

५ हे अंगिरः सहसो यहो! तं इत् सुहव्यं सुदेवं सुबर्हिषं जनाः आहुः ॥

६ हे सुश्चन्द्र ! प्रशस्तये, हव्या वीतये च, तान् देवान् इह उप आ वहासि ॥६॥

अर्थ— १ हिंसारहित यज्ञके पास जाकर, हमारे कथन पाससे (अथवा दूरसे भी) सुननेवाले अग्निका (वर्णन करनेवाले) मन्त्र हम गायेंगे ॥

२ (वह) जो युद्ध करनेके लिये जानेवाले वीरोंमेंसे सबसे प्रथम दाताके घरको सुरक्षित रखता है ॥

३ निश्चयपूर्वक लोग कहें कि - प्रत्येक युद्धमें धनको जीतनेवाला और वृत्रनामक शत्रुका नाश करनेवाला अग्नि प्रकट हुआ है ॥

४ जिसके यज्ञगृहमें तू दूत बनकर रहता है, वहां हवि (देवोंके) खानेके लिये तू ले जाता है, और उससे हिंसारहित यज्ञ प्रेक्षणीय बनाता है ॥

५ हे अंगिरा और बलके लिये प्रसिद्ध ओ! उसीको उत्तम हविसे युक्त, उत्तम दिव्य तेजसे युक्त और उत्तम आसनोंसे युक्त (यज्ञ करनेवाला) सब लोग कहते हैं ॥

६ हे उत्तम दीप्तिमान् ! स्तुतिके लिये और हवि भक्षण करनेके लिये, उन सब देवोंको यहां ले आओ ॥

न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन । यदग्ने यासि दूत्यम् ७
त्वोतो वाज्यह्रयोऽभि पूर्वस्मादपरः । प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात् ८
उत द्युमत् सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि । देवेभ्यो देव दाशुषे ९

७ हे अग्ने ! यत् दूत्यं यासि, रथस्य योः अश्व्यः कच्चन उपब्दिः न शृण्वे ॥

८ हे अग्ने ! दाश्वान् त्वोतः वाजी अह्रयः पूर्वस्मात् अपरः अभि प्र अस्थात् ॥

९ हे देव अग्ने ! देवेभ्यः दाशुषे द्युमत् उत बृहत् सुवीर्यं विवाससि ॥

७ हे अग्ने ! जब तू दूतकर्म करनेके लिये जाता है, तब तुम्हारे रथके अथवा घोडोंके गमनका कोई भी शब्द सुनाई नहीं देता है ॥

८ हे अग्ने ! जब दाताको तेरी सुरक्षा प्राप्त हुई, तब वह बलवान् बना और उसकी हीन अवस्था हट गयी, तथा वह पहिली अवस्थासे उच्च अवस्थामें पहुंच चुका (ऐसा समझना चाहिये।)

९ हे अग्निदेव ! देवोंके लिये जो हवि देता है उस दाताके लिये तू तेजस्वितासे युक्त बडा प्रभावी वीर्य देता है

अग्रणी क्या करे ?

अग्नि अग्रणी है, क्योंकि वह जो कार्य शुरू करता है वह अग्रतक, अन्ततक (अग्रं नयति) पहुंचाता है, बीचमें नहीं छोडता। अग्निके जो कर्तव्य यहां कहे हैं वे समाज या राष्ट्रमें अग्रणीके कर्तव्य हैं, देखिये इस दृष्टिसे इस सूक्तका आशय क्या होता है। यह टिप्पणी पूर्वोक्त मंत्रोंके क्रमसेही देखनी चाहिये —

१ हे अग्रणे ! तू (अपने अनुयायियोंके) जो हिंसारहित कार्य होंगे उनमें जा, और समीपसे अथवा दूरसे उनके कथनोंको सुन, (और उनके कष्टोंको दूर करनेका यत्न कर।

२ जो वीर युद्ध करनेके लिये जाते हैं, उनमें जो दाता होंगे, अथवा उदार होंगे, उनके घरोंकी सुरक्षा सबसे प्रथम कर (और पीछेसे अन्योंकी सुरक्षा कर, इससे सब वीर उदार बनेंगे और उनमें कोई स्वार्थतत्पर नहीं रहेगा।)

३ (तुम्हें देखकर) सब लोग यही कहें की युद्धोंमें निःसंदेह विजय प्राप्त करनेवाला और शत्रुका समूल नाश करनेवाला (यह अग्रणी अपने प्रभावसेही इन लोगोंमें) प्रकट हुआ है।

४ जिन लोगोंके सत्कर्ममें तू सहायक होता है, उनके उन कर्मोंसे सब दिव्य विबुधोंको योग्य भोग मिलते हैं और उनके सभी हिंसारहित कर्म दर्शनीय तथा चित्ताकर्षक होते हैं।

५ हे अंगप्रत्यंगको बलवान् बनानेवाले और बलके कार्योंके लियेही उत्पन्न हुए वीर ! (जो पूर्वोक्त प्रकार प्रशस्ततम कर्म करता है।) उसीको उत्तम हविष्यान्न देनेवाला, उत्तम तेजस्वी और उत्तम सत्कार्य करनेवाला (सब लोग) कहते हैं।

६ हे तेजस्वी अग्रणे ! तू उत्तम दिव्य विबुधों, ज्ञानियोंको यहां बुला ले आ, हम उनका वर्णन करेंगे (अथवा उनका उपदेश सुनेंगे) और उनको उत्तम अन्न अर्पण करेंगे। (अग्रणीका कर्तव्य है कि वह ज्ञानियोंको इकट्ठा करे और उनके दिव्य उपदेश जनताको सुनावे।)

७ अग्रणी जनताकी सहायता ऐसी गुप्तताके साथ करे की किसीको भी यह पता न लगे कि यह आज कहां गया और इसने इसकी सहायता इस रीतिसे की। (किसीको पता न लगे ऐसी गुप्त रीतिसे वह अनुयायियोंके पास जावे और उनकी सहायता करे।)

८ हे अग्रणे ! अपने अनुयायियोंमें जो दाता हों उनकी ऐसी सहायता कर कि जिससे वे बलवान् बनें, उनकी हीनदीन अवस्था पूर्ण रीतिसे दूर हो, और वे पूर्वकी अपेक्षा अधिक अच्छी स्थितिमें पहुंच जांय। किसी भी तरह उनकी अवस्था अधिक दीन न बने, पर अधिक उच्च और श्रेष्ठ बने।

९ हे अग्रणे ! देवोंके लिये जो अर्पण कर देते हैं, उन दाताओंके लिये दिव्य तेज और विजयी वीर्य प्राप्त हो।

पाठक इस भावार्थको पूर्वोक्त मंत्रों और उनके अर्थोंके साथ पढें और जानें कि अग्निके मंत्रोंमें किस ढंगसे अग्रणीके कर्तव्य बताये हैं। अब इन मंत्रोंमें जो बोधवचन हैं उनका थोडासा विचार करते हैं —

बोधवचन

इस सूक्तमें जो बोधवचन हैं वे यहां दिये जाते हैं—

१ अध्वरं उपप्रयन्तः (मं. १) = जिस काममें हिंसा, कुटिलता या कपट नहीं है, वह कार्य करनेके लिये मनुष्य जाय। अर्थात् हिंसायुक्त कार्य कोई न करे, छल कपटके भी काम कोई न करे।

२ शृण्वते मन्त्रं वोचेम = जो सुनता है उसीको मननीय उपदेश करेंगे। अर्थात् सुनानेपर भी जो नहीं सुनता उसको कहना व्यर्थ है।

३ स्नीहितीषु संजग्मासु कृष्टिषु गयं अरक्षत् (२) = लोग घोर संग्रामके युद्धकार्यमें लग जानेपर उनके घरबारकी सुरक्षा करनी चाहिये। यह राजका कार्य है। राज्यव्यवस्थापकोंको उचित है कि वे युद्ध करनेके लिये गये सैनिकोंके घरबारकी सुरक्षा करें। इससे युद्ध करनेवाले सैनिकोंको युद्ध करनेके लिये बडा उत्साह आयेगा और इससे राज्यका बल बढेगा।

४ रणे रणे धनंजयः अजनि, जन्तवः ब्रुवन्तु (२) = प्रत्येक युद्धमें धनको जीतनेवाला वीर (इस कुलमें) जन्मा है, ऐसा वर्णन सब मानव करें, ऐसा पराक्रम करना चाहिये।

५ अध्वरं दस्मत् कृणोषि (४) = हिंसारहित कर्मको तू सुन्दर बना दे। मनुष्य हिंसारहित कर्म करे और वह अत्यंत सुन्दर बनावे। जहांतक हो सके वहांतक जो कर्म करना हो वह सुन्दर बनावे। किसी तरह उसमें न्यूनता न रहने दें।

६ यस्य क्षये दूतः आसि, हव्यानि वीतये वेषि (४) = जिसके घरमें दूत होकर तू रहता है, उनके खानेके लिये तू हविष्यान्न पहुंचाता है। दूतके कर्तव्यका वर्णन यहां है। यह दूत घरेलु (क्षये दूतः) दूत है। जो दिनरात घरमें रहता है और अपना कर्तव्य करता है।

७ आङ्गिर. सहसो यहो ! [अङ्ग-रस-वान् बलस्य प्रवर्तकः (५)] = अंगोंमें एक प्रकारका जीवनरस है, इसी रससे शरीर जीवित और उत्साहमय रहता है। इस अंग-रस-विद्याके प्रवर्तक ऋषिका नाम " अङ्गिरस् " है। इस अंगोंरसको यमनियमानुसार बलवान् करनेवाले बलवान् होते है। ' सहस् ' का अर्थ शारीरिक बल, साहस करनेका उत्साह जिससे होता है वह ' सहः ' है। ' यहु ' का अर्थ ' प्रवर्तन करनेवाला, चलानेवाला, प्रेरक, पुत्र ' है।

८ जनाः सुहव्यं सुबर्हिषं सुदेवं आहुः (५) = सब लोक उत्तम दान देनेवाले, उत्तम यज्ञ (प्रशस्त कर्म) के कर्ता और देवके उत्तम भक्तका वर्णन करते है। ' सु-बर्हिः ' का अर्थ ' उत्तम आसन देकर अतिथिका सत्कार करनेवाला '। ' सु-हव्यः ' का अर्थ उत्तम पवित्र हविष्यान्नका दान करनेवाला और ' सु-देव. ' ईश्वरकी उत्तम रीतिसे भक्ति करनेवाला। ये सब प्रशंसाके योग्य हैं।

९ देवान् प्रशस्तये, वीतये च इह उप आ वहासि (६) = तुम उन सब देवोंको प्रशंसापूर्वक अन्नप्रदान करनेके लिये यहां ले आते हो। ज्ञानदेव, वीरदेव, धनदेव और कर्मदेव ये चातुर्वर्ण्यमें देव हैं, उनमें जो श्रेष्ठ हैं उनकी प्रशंसा करनी चाहिये और उनको उत्तम भोग भी मिलने चाहिये, इसलिये उनको आदरसे निमंत्रण देना योग्य है।

१० यत् दूत्यं यासि, रथस्य यो. अश्व्यः उपब्दिः न शृण्वे (७) = जब तू दूतकर्म करनेके लिये जाता है, तब तुम्हारे रथका तथा उनके घोडोंका शब्द भी सुनाई नहीं देता। अर्थात् दूतकर्म करनेके लिये जब दूत जाये, तब उसका पतातक किसीको न लगे, वह चुपचाप वहां जाय, चुपचाप वहांके हालका पता लेवे और चुपचाप वापस आय। राजदूतके लिये विशेषतः ऐसी गुप्तता रखना आवश्यक है।

११ दाश्वान् त्वोतः वाजी अन्हयः पूर्वस्मात् अपरः अभि प्र अस्थात् (८)- दाता मनुष्य प्रभुकी सुरक्षासे सुरक्षित होकर तथा निर्भय होकर पहिलेसे भी अधिक श्रेष्ठ स्थिति प्राप्त करता है। मनुष्य अपने धनका दान करे, प्रभुकी सुरक्षा प्राप्त करे, जो निःस्वार्थ कर्मसे प्राप्त होती है। इससे उसकी उन्नति होती है।

१२ बृहत् द्युमत् सुवीर्यं विवाससि (९)- बडा तेजस्वी उत्तम वीर्य, शौर्य, प्रभावी सामर्थ्य या पराक्रम करनेको शक्ति देता है, बढाता है। तेजस्वी वीर्य चाहिये। जिससे प्रशंसनीय कर्म होते है वह तेजस्वी वीर्य हैं।

यह प्रथम सूक्तका विवरण है। इस विवरणमें बताया है कि मन्त्रोंके छोटे छोटे विभाग किस तरह मानवधर्मका प्रकाश करते हैं। अब द्वितीय सूक्त देखिये—

(२) लोगोंका प्रियमित्र

(ऋ. १।७५) गोतमो राहूगणः । अग्निः । गायत्री ।

जुपस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् । हव्या जुह्वान आसनि १
अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम् । वोचेम ब्रह्म सानसि २
कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ३
त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ४
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् । अग्ने यक्षि स्वं दमम् ५

अन्वयः— १ (हे अग्ने !) आसनि हव्या जुह्वानः सप्रथस्तमं देवप्सरस्तमं वचः जुपस्व ॥

२ हे अङ्गिरस्तम वेधस्तम अग्ने ! अथ ते सानसि प्रियं ब्रह्म वोचेम ॥

३ हे अग्ने ! जनानां कः ते जामिः ? दाशु-अध्वरः कः ? कः ह (त्वं ?) कस्मिन् श्रितः असि ? ॥

४ हे अग्ने ! त्वं जनानां जामिः, प्रियः मित्रः असि । सखिभ्यः ईड्यः सखा (असि) ॥

५ हे अग्ने ! नः मित्रावरुणा यज । देवान् यज । बृहत् ऋतं (यज)। स्वं दमं यक्षि ॥

अर्थ— १ (हे अग्ने ! अपने) मुखमें हविष्यान्नका स्वाद लेता हुआ (तू), अत्यंत प्रख्यात (अथवा विस्तृत भावपूर्ण) और देवोंको अत्यंत प्रिय (मन्त्ररूप) वचनका स्वीकार कर।

२ हे अङ्गिरसोंमें प्रमुख अत्यंत ज्ञानी अग्निदेव ! अब तेरे लिये सेवन करनेयोग्य ऐसा प्रिय स्तोत्र हम कहेंगे ॥

३ हे अग्ने ! मानवोंके मध्यमें कौन तेरा बंधु है ? दातृत्वसे यज्ञ करनेवाला कौन है ? (तू) कौन है ? और तू कहां रहता है ?

४ हे अग्ने ! तू लोगोंका बन्धु है, (तू लोगोंका) प्रिय मित्र है, मित्रोंके लिये वर्णन करनेयोग्य मित्र (तू है) ॥

५ हे अग्ने ! हमारे लिये मित्र और वरुणका यज्ञ कर। देवोंका यजन कर। बडा यज्ञ कर। और अपने घरमें यज्ञ कर

जनताका प्रियमित्र अग्रणी

अग्नि अग्रणी है, अग्रणी वह है कि जो प्रारंभ किया कर्म अन्ततक पहुंचाता है, अनुयायियोंको अन्ततक साथ करता है, उनको बीचमेंही नहीं छोडता। वह अग्रणी अग्निरूप तेजस्वी हो, दूसरोंको प्रकाश बताकर मार्ग बतानेवाला हो, गर्मी अर्थात् उत्साहकी आग जलानेवाला हो और प्रगति करनेवाला हो। (अग्नि-रसः-तमः) अंग प्रत्यंगोंमें जीवनरसकी समृद्धि करनेवाला और (वेधस्-तमः) ज्ञानी तथा नवीन वस्तु निर्माण करनेमें, नयी रचना करनेमें प्रवीण हो(मं. २)। यह अग्रणी (जनानां जामि:) सब मानवोंको बंधुके समान आप्त जैसा प्रतीत हो, सब जनताको (प्रियः मित्रः) प्रिय हितकारी मित्र जैसा प्रतीत हो, (सखिभ्यः ईड्यः सखा) सब मित्रोंमें भी अत्यंत प्रशंसायोग्य सखा है ऐसा सबको मालूम हो। समान भाव जिसके होते हैं वह सखा कहलाता है। (मं. ४)

(जनानां कः जामिः) जनतामें अपना कौन सच्चा मित्र है, यह मननपूर्वक देखना चाहिये। 'जामिः' का अर्थ 'आप्त, बंधु, भाई, संबंधी' है। जनतामें आप्त पुरुष कौन है, यह परीक्षापूर्वक देखना चाहिये। (दाशु-अध्वरः कः) अहिंसा छल कपटरहित कर्म करनेवाला, दाता जनतामें कौन है ! यह भी विवेकपूर्वक देखना चाहिये। (कः) जो मनुष्य मिलेगा वह कौन है इसका ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करना चाहिये यह ज्ञान निश्चित रूपसे प्राप्त होगा तोही इसका परिणाम अच्छा होगा। (कस्मिन् श्रितः) इसका आश्रय कौनसा है ? किसके आधारसे यह रहता है, यह भोग भोगता है वह किसके आधारसे है, इसका पता लगाना चाहिये। जनताका मित्र कौन है ? कपटरहित कर्म कौन करता है ? यह मनुष्य कौन है, क्या करता है, किस आश्रयपर रहता है, ये प्रश्न पूछकर हरएक मानवकी पहचान करनी चाहिये। इस कसौटीसे जो उत्तम समझा जायगा वही अग्रणी होनेयोग्य है (मं. ३)

(मित्र) हितकारी सखा, (वरुण = वरणीय) वरिष्ठ, श्रेष्ठ

(देवाः) ज्ञानदेव, वीर्यदेव धनदेव और कर्मदेव अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनका (यज) सत्कार करना चाहिये। (स्वं दमं) अपने घरकी सुरक्षा करना चाहिये। यजनमें सत्कार-संगति-दानरूप त्रिविध कर्म है, वही पूर्वोक्त देवों और विशेषतः अपने घरके विषयमें करना आवश्यक है। अपना घर जैसा घर है वैसाही नगर, प्रान्त, देश और राष्ट्र भी अपना घरही है। गृहयज्ञमें घरसे राष्ट्रतक सबका सत्कार होता है। (५)

जो अग्रणी ऐसा हो वही जनतामें प्रमुख स्थानमें सत्कार करनेयोग्य है। उसीकी प्रशंसा सब करें। (१)

यज्ञमें जो अग्निका स्थान है वही अग्रणीका राष्ट्रमें है। यहांका वर्णन इस दृष्टिसे देखनेसे मानवके सार्वजनिक धर्मका ज्ञान हो सकता है।

यहां द्वितीय सूक्तका विवरण समाप्त हुआ।

(३) न दबनेवाला वीर

(ऋ. १।७६) गोतमो राहूगणः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥ १

एह्यग्न इह होता नि षीदादब्धः सु पुरएता भवा नः।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजामहे सौमनसाय देवान् ॥ २

प्र सु विश्वान् रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने ॥ ३

प्रजावता वचसा वह्निरासा ऽऽ च हुवे नि च सत्सीह देवैः।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥ ४

अन्वयः— १ हे अग्ने ! का उपेतिः ते मनसः वराय भुवत् ? का मनीषा शंतमा (भवेत्)?, कः वा यज्ञैः ते दक्षं परि आप ? केन मनसा वा ते दाशेम ?

२ हे अग्ने ! आ इहि, होता (भूत्वा) इह नि षीद। नः अदब्धः पुरएता सु भव। विश्वमिन्वे रोदसी त्वा अवताम्। महे सौभगाय देवान् यज॥

३ हे अग्ने ! विश्वान् रक्षसः प्र सु धक्षि। यज्ञानां अभिशस्तिपावा भव। अथ सोमपतिं हरिभ्यां आ वह। अस्मै सुदाव्ने आतिथ्यं चकृम॥

४ प्रजावता वचसा आसा वह्निः आ हुवे च। इह देवैः नि सत्सि च। हे यजत्र ! होत्रं उत पोत्रं वेषि। वसूनां जनितः प्रयन्तः बोधि॥

अर्थ — १ हे अग्ने ! किस तरहकी उपासना तेरे मनको संतोष देगी ? कौनसी मनकी इच्छा (तेरे लिये) शांति देगी ? कौन भला यज्ञोंसे तेरे बुद्धिबलको प्राप्त करेगा ? किस *मनोभावसे तुझे (हम) दान दें ?*

२ हे *अग्ने ! यहां आ , हवनकर्ता (होकर) यहां बैठ।* हमारा न दबनेवाला उत्तम नेता बन। सर्वत्र पहुंचे द्यु और पृथ्वी लोक तेरी सुरक्षा करें। महान् उत्तम भाग्य प्राप्त करनेके लिये देवोंका यजन कर॥

३ हे अग्ने ! सब राक्षसोंको उत्तम रीतिसे जला दे। सब यज्ञोंका संरक्षण करनेवाला हो। और सोमपान (करनेवाले इन्द्र) को घोडोंको जोतकर (रथमेंसे) यहां ले आ। इस उत्तमदाता (इन्द्र) के लिये आतिथ्यकी (सब तैयारी हमने) की है॥

४ (*हमारी सब*) *जनताके अनुकूल वचनके साथ(मैं अपने) मुखसे इस अग्निका वर्णन करता हूं। यहां देवोंके साथ आकर* बैठ जा। हे यज्ञके योग्य देव ! हवन और पवित्रता तुम करता है। धनोंका उत्पादन और बटवारा (करनेका) ध्यान रख॥

यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व　　५

५ कविः सन् कविभिः विप्रस्य मनुषः हविर्भिः यथा देवान् अयजः, (एवं) एव हे होतः सत्यतर अग्ने! त्वं अद्य मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥

५ (तू) कवि होता हुआ, (अनेक) कवियोंके साथ (रहकर) ज्ञानी मनुष्यके हवियोंसे जैसा देवोंका यजन करता है, वैसाही हे होता सत्यस्वरूप अग्ने ! तू आज आनन्द-दायक चमससे (उन देवोंको हवि) अर्पण कर ॥

हमारा पुरोगामी वीर

इस सूक्तमें हमारा नेता, अग्रेसर, कैसा हो, वह उत्तम शब्दोंमें कहा है । "नः पुरएता अ-दब्धः (मं. २) = हमारा नेता, अग्रणी, अगुवा, अग्रेसर अथवा हमारा पथप्रदर्शक, मार्गदर्शक, नायक (पुरः एता) अग्रभागमें रहकर सबका यथायोग्य संचालन करनेवाला (अ-दब्धः) कभी किसीसे न दब जानेवाला हो । 'अ-दब्धः' का अर्थ 'न दबाया हुआ, न दब जानेवाला, दूसरेके दबावमें न आनेवाला, किसीसे हिंसित न होनेवाला, किसीसे जखमी न हुआ हुआ' । हमारा वीर नेता ऐसा पुरोगामी हो और हम उसके अनुयायी बनें और उन्नत होते रहें ।

"महे सौभगाय देवान् यज (२)= महान् सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये सत्कार-संगति-दानात्मक प्रशस्ततम कर्म करो । यह यज्ञ देवोंकेही उद्देश्यसे होना चाहिये । असुरोंके लिये नहीं । देव वे हैं कि जो दैवी संपत्तिसे सुशोभित होते हैं ।

इस तरहके नेताको आदरसे बुलाना चाहिये, उसको उत्तम आसन देना चाहिये और उसका अच्छी तरह सत्कार करना चाहिये । 'आ इहि, इह नि षीद' (मं.२) = हे नेता, हे अग्रणी ! यहां हमारे पास आ, यहां इस आसनपर बैठ, तुम्हारा सत्कार हम करते हैं । अस्मै आतिथ्यं चकृम (मं. ३)= इसका हम बडा सत्कार करते हैं । यह सत्कार करनेकी रीति देखिये—

हे अग्रणी वीर !

१ आ इहि (२)— यहां आ,

२ इह नि षीद— यहां बैठ,

३ अस्मै आतिथ्यं चकृम (३)— इसका हम सत्कार करेंगे,

४ इह नि सत्सि (४)- यहां आरामसे बैठ जा,

५ ते मनसः वराय का उपेतिः भुवत् ? (१)- तेरे मनके संतोषके लिये हम तेरे साथ कैसा बर्ताव करें ?

६ का मनीषा शंतमा? (१)- कौनसी मनकी इच्छा तुझे शान्तिसुख देगी ?

७ केन मनसा ते दाशेम ? (१)- किस मनोभावसे हम तेरा सत्कार करें? किस भावसे तेरी भेंट करें?

८ कः ते दक्षं परि आप? (१)- कौन भला तेरे बुद्धिबलको प्राप्त कर सकता है, क्या करनेसे तुम्हारा बल हमें प्राप्त होगा?

९ विश्वान् रक्षसः प्र सु धाक्षि (३)- सब (घातक) राक्षसोंको ठीक तरह जला दे।

१० देवान् यज (२); देवैः नि सत्सि (४)- देवोंका यजन कर । देवोंके उद्देश्यसे प्रशस्त कर्म कर, क्योंकि तू देवोंके साथ रहता है। [पूर्वोक्त मंत्रमें 'राक्षसोंको जला दे' ऐसा कहा है और यहां देवोंके उद्देश्यसे उनकी प्रीतिके लिये शुभ कर्म कर ऐसा कहा है । राक्षसोंको दूर हटाना और दिव्य विबुधोंको अपने पास करना यहां स्पष्ट उद्देश्य है ।]

११ वसूनां जनितः प्रयन्तः, बोधि (४)- तू अनेक प्रकारके धनोंको उत्पन्न करता है और उनका यथायोग्य बटवारा करता है, इसलिये हमारी आवश्यकताका विचार कर, अर्थात् हमें आवश्यक धनादि दे ।

१२ होत्रं उत पोत्रं वेषि (४)- तू दिव्य विबुधोंको बुलाना, उनके लिये अर्पण करना और उस कार्यके लिये आवश्यक पवित्रता करनेकी विधि जानता है ।

१३ कविः सन् कविभिः यजस्व (५)- स्वयं ज्ञानी बनकर ज्ञानियोंके साथ प्रशस्त कर्म कर ।

१४ विप्रस्य मनुषः हविर्भिः देवान् अयजः (५)- ज्ञानी मनुष्यके हविष्यान्नोंसे दिव्य विबुधोंका सत्कार कर ।

१५ विश्वमिन्वे रोदसी त्वा अवताम् (२)- सब विश्व तेरी सुरक्षा करे, सब विश्व तेरी सहायता करे, अर्थात् तेरा विरोध कोई न करे।

१६ यज्ञानां अभिशस्तिपावा भव (३)- शुभकर्मोंकी प्रशंसा कर, किसीके दुष्ट कर्मोंकी स्तुति न कर, जिसके जितने शुभ कर्म होंगे, उसके उतनेही कर्मोंकी प्रशंसा कर। इससे शुभ कर्म करनेकी ओर जनताकी प्रवृत्ति होगी और सबका कल्याण ही होगा।

१७ प्रजावता वचसा आसा आ हुवे (४)- जनताकी अनुकूल संमतिके साथ मैं अपने मुखसे यह घोषणा कर रहा हूं। प्रजाकी संमतिकी अनुकूलता प्राप्त करना योग्य है।

ये सब मंत्र 'अग्नि' केही हैं। अग्निका एक सामाजिक रूप अग्रणी, पुरएता, नेता है। इसका वर्णन इन्हीं मन्त्रोंमें देखनेकी रीति ऊपर बताई है। इससे सामाजिक धर्मका बोध अच्छी तरह हो सकता है। मानवधर्मका बोध वेदमंत्रोंसे इस रीतिसे जाना जा सकता है। अग्निका वर्णन करते हुए, आतिथ्यसत्कार करनेकी रीति, नेताके दिव्य गुण कर्म स्वभाव, नेताके और अनुयायियोंके करनेयोग्य कर्म आदि सब किस ढंगसे जाने जा सकते हैं, यह इस स्पष्टीकरणमें बताया है।

यहां तृतीय सूक्तका विवरण समाप्त हुआ, अब चतुर्थ सूक्त देखिये —

(४) महारथी श्रेष्ठ वीर

(ऋ. १।७७) गोतमो राहूगणः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

कथा दाशेमाग्नये काऽस्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत् कृणोति देवान् ॥ १ ॥
यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम्।
अग्निर्यद्वेर्मर्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥ २ ॥
स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥ ३ ॥

अन्वयः- १ अस्मै अग्नये कथा दाशेम? अस्मै भामिने देवजुष्टा गीः का उच्यते? यः अमृतः, (सः) ऋतावा यजिष्ठः होता मर्त्येषु देवान् इत् कृणोति ॥

२ यः अध्वरेषु शंतमः ऋतावा होता तं उ नमोभिः आ कृणुध्वम्। यत् अग्निः मर्ताय देवान् वेः, सः मनसा बोधाति, यजाति च ॥

३ सः हि क्रतुः, सः मर्यः, सः साधुः, मित्रः न, अद्भुतस्य रथीः भूत्। दस्मं आरीः देवयन्तीः विशः मेधेषु प्रथमं तं उप ब्रुवते ॥

अर्थ— १ इस अग्निके लिये हम किस रीतिसे अर्पण करेंगे? इस तेजस्वी देवके लिये देवोंके सेवन करनेयोग्य ऐसा कौनसा स्तोत्र गाये? यह अमर सत्यनिष्ठ और पूजनीय दाता (अग्नि) मानवोंमें सब देवोंको (स्थापन करके उनका) सत्कार करता है ॥

२ जो हिंसारहित शुभ कर्मोंमें शान्तिका और सत्यका प्रकाशक है, उसका हम नमस्कारोंसे सत्कार करते हैं। जब यह अग्नि मानवके हित करनेके लिये देवोंके पास पहुंचता है, तब वह (सब कुछ) मनसे जानता है (और वैसा) कर्म भी करता है ॥

३ वह कर्मकर्ता है, वही मर्त्य है, वही सत्पुरुष है, वह मित्र जैसा (सहायक) है, और वही अद्भुत रथपर चढनेवाला महारथी (वीर) है। इस दर्शनीय देवके पास पहुंचनेवाली और देवोंकी सेवा करनेकी उत्सुक प्रजाएँ, यज्ञोंमें सबसे प्रथम इस (अग्निकोही) स्तुति गाते हैं ॥

स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम् ।
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ॥ ४
एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः ।
स एषु द्युम्नं पीपयत् स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ॥ ५

४ नृणां नृतमः रिशादाः सः अग्निः नः गिरः अवसा धीतिं वेतु । च ये तना मघवानः शविष्ठाः वाजप्रसूताः मन्म इषयन्त ॥

५ ऋतावा जातवेदाः अग्निः विप्रेभिः गोतमेभिः एव अस्तोष्ट । स एषु द्युम्नं पीपयत् । सः वाजं, सः पुष्टिं, (सः) जोषं आ चिकित्वान् याति ॥

४ मानवोंमें सबसे अधिक श्रेष्ठ, शत्रुओंका संहार करनेवाला वह अग्नि, हमारी प्रशंसाको (स्वीकार करता हुआ हमारी)सुरक्षा करके (हमारे इस) बुद्धिपूर्वक किये शुभ कर्मको प्राप्त हो । और जो बडे धनी बलिष्ठ और अन्नके दाता हैं, (वे जो) स्तोत्र प्रेरित करते हैं, (उनका भी स्वीकार करे)॥

५ सत्यनिष्ठ वेदप्रवर्तक अग्नि ज्ञानी गौतमोंके द्वारा प्रशंसित हुआ है। उसने इनको तेजस्वी धन दिया। उसने (इनको) अन्न, पुष्टि, प्रीति (दी, क्योंकि यह सब यह देव) जानता है, (और देनेके लिये)जाता है ॥

मानवोंमें श्रेष्ठ वीर

इस सूक्तमें मानवोंमें श्रेष्ठ महारथी वीरका वर्णन बडा देखनेयोग्य है । वह वर्णन देखिये —

१ नृणां नृतमः (मन्त्र ४)– मानवोंमें अत्यंत श्रेष्ठ मनुष्य, अत्यंत श्रेष्ठ नेता, नेताओंका भी नेता, श्रेष्ठ संचालक,

२ रिशादसः (रिश्–अदसः)– शत्रुको खा जानेवाला, शत्रुका नाश करनेवाला, शत्रुका पूर्णतया नाश करनेवाला,

३ अद्भुतस्य रथीः भूत् (३)– अद्भुत रथमें विराजमान होनेवाला महारथी वीर, अपूर्व विजय कमानेवाला रथी ।

४ सः क्रतुः, मर्यः, साधुः, मित्रः (३)– वह सतत, कर्म करनेवाला पुरुषार्थी है, वह समरभूमिमें मरनेके लिये सिद्ध हुआ वीर है, वह साधन करनेवाला सत्पुरुष है और जनताका वह मित्र है ।

५ सः मनसा योधाति, यजाति च (२)– वह मनमें सब ठीक तरह जानता है, और कर्तव्य यज्ञकर्म करता है । ज्ञानपूर्वक शुभकर्म करता है ।

६ सः अवसा धीतिं वेतु (४)– वह सुरक्षा करनेद्वारा धारणावती बुद्धिको प्राप्त करावे अर्थात् सबकी रक्षा करे, और धारणावती बुद्धिको देवे । 'धीति' का अर्थ सुविचार, शुभमति है ।

७ ऋतावा (१,२,५),**जातवेदाः** (५)– वह सत्य मार्गका करनेवाला, सत्यनिष्ठ, वेदको अथवा धनको प्रकट करनेवाला है । वेदस् – धन, वेद, ज्ञान ।

८ यह वीर (भामिन् । १) तेजस्वी है, (**अमृतः**)अमर है, अमर होनेयोग्य शुभ कर्म करता है, (**यजिष्ठः**) पूज्य, सत्कारके योग्य है ।

९ अध्वरेषु शंतमः (२)– हिंसा, कुटिलता, छल, कपट रहित शुभ कर्मोंमें अत्यंत शान्ति फैलानेवाला ।

१० मर्ताय देवान् वेः (२)– मनुष्यका हित करनेके लिये दिव्य विबुधोंकी सहायता प्राप्त करता है और उससे वह मनुष्यका हित करता है ।

यह श्रेष्ठ वीरका वर्णन इस सूक्तमें है । अग्निके वर्णनके मिषसेही यह वर्णन किया गया है, यही इसमें कवित्व है । इस स्थानपर कवि इस अग्निमें महारथी श्रेष्ठ वीरका दर्शन कर रहा है । अतः यह सूक्त क्षात्रधर्मको प्रकट कर रहा है । इस सूक्के अनुयायी कैसे हैं सो देखिये—

११ तना, मघवानः, शविष्ठाः, वाजप्रसूताः, इषयन्तः (४)– विस्तृत भाववाले अर्थात् संकुचित भावसे दूर रहनेवाले, धनवान्, बलिष्ठ, सामर्थ्यवान्, प्रभावशाली, बल और अन्न दानके लिये प्रसिद्ध, (और सबके लिये) अन्नकी इच्छा अर्थात् प्राप्तिका प्रयत्न करनेवाले ये पूर्वोक्त वीरके अनुयायी हैं । ये धनवान् हैं, धनका दान करते हैं, स्वयं बलिष्ठ हैं और प्रजाकी सुरक्षाके लिये अपनी शक्ति लगाते हैं ।

१२ स एषु द्युम्नं पीपयत् (५)- यह वीर अपने अनुयायियोंमें तेजस्वी धन भरपूर देता है। बढाता है।

१३ सः मर्त्येषु देवान् इव कृणोति (१)- वह वीर अपने अनुयायी मानवोंमें दिव्य विबुधोंको पूज्य बनाकर स्थापन करता है। मानवोंमें देवोंको बसाता है।

पाठक मनन करनेसे अधिक भाव इस तरह प्राप्त कर सकते हैं।

सूक्तमें ऋषिका नाम

इस सूक्तमें 'गोतम ऋषि' का नाम ५ वें मंत्रमें आया है।

'विप्रेभिः गोतमेभिः अग्निः अस्तोष्ट (मं. ५)- ब्राह्मण गोतमवंशके ऋषियोंद्वारा अग्नि प्रशंसित हुआ है। यहां 'गोतमेभिः' ऐसा बहुवचनमें प्रयोग है। बहुवचनसे तीन अथवा तीनसे अधिक संख्याका बोध होता है। तीन गोतमोंने अथवा तीनसे अधिक गोतमोंने अग्निकी स्तुति की है। अर्थात् गोतम ऋषिके कुलमें उत्पन्न हुए अनेक ऋषियोंने यह अग्निकी स्तुती की है।

चतुर्थ सूक्तका विवरण यहां समाप्त होता है।

(५) शत्रुको हिलानेवाला वीर

(ऋ. १।७८) गोतमो राहूगणः। अग्निः। गायत्री।

अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः १
तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः २
तमु त्वा वाजसातममङ्गिरस्वद्धवामहे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ३
तमु त्वा वृत्रहन्तमं यो दस्यूँरवधूनुषे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ४
अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद् वचः । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ५

अन्वयः- हे जातवेदः विचर्षणे ! त्वा गोतमाः गिरा द्युम्नैः अभि अभि प्र णोनुमः ॥

२ रायस्कामः गोतमः तं उ त्वा गिरा दुवस्यति० ॥

३ वाजसातमं तं उ त्वा अंगिरस्वत् हवामहे० ॥

४ दस्यून् यः (त्वं) अवधूनुषे, तं वृत्रहन्तमं त्वा द्युम्नैः अभि प्र णोनुमः ॥

५ रहूगणाः अग्नये मधुमद् वचः अवोचाम। (तं) द्युम्नैः अभि प्र णोनुमः ॥

अर्थ- १ हे वेदप्रकाशक विशेष ज्ञानी (अग्ने)! तुझे हम गोतम अपनी वाणीसे और दिव्य तेजस्वी स्तोत्रोंके साथ सब प्रकार वारंवार प्रणाम करते हैं ॥

२ धनकी इच्छा करनेवाला गोतम उस तुझकी अपनी वाणीसे सेवा करता है० ॥

३ धनका बटवारा करनेवाले उस तुझको अंगिरा ऋषिकी तरह हम बुलाते हैं० ॥

४ शत्रुओंको जो तू हिला देता है, उस तुझे शत्रुका नाश करनेवाले वीरको दिव्य तेजस्वी स्तोत्रोंके साथ हम सब प्रणाम करते हैं ॥

५ रहूगणके हम सब पुत्र अग्निके लिये मधुर स्तोत्रका गान करेंगे। और उसको दिव्य तेजस्वी स्तोत्रोंके साथ वारंवार प्रणाम करेंगे ॥

सूक्तमें ऋषिका नाम

इस सूक्तमें ऋषिका नाम और उसका गोत्र भी कहा है।

रहूगणाः अग्नये वचः अवोचाम। (मं. ५)
गोतमाः गिरा अभि प्र णोनुमः। (मं. १)

गोतमः तं गिरा दुवस्यति। (२)

रहूगणके पुत्र गोतम हैं यह बात यहां सिद्ध होती है। इसलिये 'गोतमो राहूगणः' ऐसा इस ऋषिका नाम हरएक सूक्तपर दिया है।

यहां ' रहूगणासः गोतमाः ' ये पद बहुवचनमें हैं और 'गोतमः' पद एकवचनमें हैं। रहूगणके अनेक पुत्र होंगे, उनका वंश नाम यह होगा अथवा आदरके लिये भी बहुवचन हो सकता है। पर स्तुति करनेवाला, देवताकी उपासना करनेवाला स्वयं अपनाही नाम आदरके लिये बहुवचनमें लिखेगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता। इसलिये गोत्रमें उत्पन्न हुए सब ऋषियोंके लिये यह बहुवचनका प्रयोग यहां किया है ऐसा मानना युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

शत्रुका नाश

इस सूक्तमें थोडासा वीरकी वीरताका वर्णन है। इसमें निम्नलिखित पद विचारणीय है।

१ दस्यून् अवधूनुषे (४)— शत्रुओंको जडसे उखाडकर दूर फेंक देता है।

२ वृत्रहन्तमः— वृत्रका, घेरनेवाले, घेर कर लडनेवाले शत्रुका नाश करता है।

३ जातवेदाः— वेद, ज्ञान और धन देनेवाला। विचर्षणिः— विशेष ज्ञानी, सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेवाला (१),

४ वाजसातमः— अन्नका बटवारा करनेवाला (३), शत्रुनाशक वीरके ये विशेषण हैं। इन गुणोंसे युक्त यहांका वीर है।

अङ्गिरा ऋषि

इस सूक्तमें अङ्गिरा ऋषिका नाम आया है। ' अंगिरस्वत् हवामहे ' (३) अङ्गिरा ऋषिने जैसी स्तुति की थी, वैसीही हम कर रहे हैं। इस वर्णनसे अङ्गिरा ऋषि गोतमके पूर्व समयका प्रतीत होता है।

अङ्गिराः
|
रहूगणः
|
गोतमः

यह वंश है। गोतमका पिता रहूगण, और पितामह अंगिरा ऋषि है। शेष मंत्र स्पष्ट हैं। यहां पांचवे सूक्तका स्पष्टीकरण समाप्त होता है।

(६) बलका स्वामी

(ऋ. १।७९) गोतमो राहूगणः। १-३ अग्निः मध्यमोऽग्निर्वा; ४-१२ अग्निः।
१—३ त्रिष्टुप्; ४-६ उष्णिक्; ७-१२ गायत्री।

हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान्।
शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ॥ १

आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम्।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात् पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥ २

अन्वयः— १ हिरण्यकेशः, रजसः विसारे अहिः धुनिः वात इव ध्रजीमान्, शुचिभ्राजाः। यशस्वतीः अपस्युवः सत्याः न उषसः नवेदाः ॥

२ ते सुपर्णाः एवैः आ अमिनन्त। कृष्णः वृषभः नोनाव। यदि इदं शिवाभिः न स्मयमानाभिः आ अगात्। मिहः पतन्ति अभ्रा स्तनयन्ति ॥

अर्थ— १ (यह अग्नि आकाशमें) सुवर्ण जैसे तेजस्वी केशों— किरणोंसे युक्त (सूर्यके रूपमें) विस्तृत अन्तरिक्षमें वायुके समान गतिमान् (तथा विद्युत् रूपमें) सर्पके समान हिलानेवाला, (और पृथ्वीपर) शुद्ध प्रकाशवाला है। यशस्विनी अपने कर्मोंमें कुशल सच्ची पतिव्रता स्त्रियोंके समान (शुद्ध) उषाएं (इसको) जानती हैं ॥

२ (हे विद्युत् अग्ने!) तेरे पक्षी जैसे (किरण) अपनी शक्तियोंके साथ (मेघमें) चारों ओरसे घुसने लगे। काला बैल (मेघ तब) वारंवार गर्जना करने लगा। तब शुभफलदायीनी हंसनेवाली (स्त्रियोंके समान बिजलियोंके साथ पर्जन्य) चारों ओरसे आगया, शुरू हुआ। धूंवाधार वृष्टि गिरने लगी, और मेघ भी गर्जने लगे।

यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ ३
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो । अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ४
स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ५
क्षपो राजन्नुत त्मनाऽग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ६
अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ७
आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ८
आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ९
प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये । भरस्व सुम्नयुर्गिरः १०
यो नो अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः । अस्माकमिद् वृधे भव ११
सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि सेधति । होता गृणीत उक्थ्यः १२

---

३ यत् ईं ऋतस्य पयसा पियानः, ऋतस्य रजिष्ठैः पथिभिः नयन्, अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा उपरस्य योनौ त्वचं पृञ्चन्ति ॥

४ हे सहसो यहो अग्ने ! गोमतः वाजस्य ईशानः । हे जातवेदः । अस्मे महि श्रवः धेहि ॥

५ सः अग्निः वसुः कविः, गिरा ईळेन्यः । हे पुर्वणीक ! अस्मभ्यं रेवत् दीदिहि ॥

६ हे राजन् अग्ने ! क्षपः । उत त्मना (क्षपः) । वस्तोः उत उषसः, हे तिग्मजम्भ ! सः (त्वं) रक्षसः प्रति दह ।

७ विश्वासु धीषु वन्द्य अग्ने ! गायत्रस्य प्रभर्मणि नः ऊतिभिः अव ॥

८ हे अग्ने ! सत्रासाहं वरेण्यं विश्वासु पृत्सु दुष्टरं रयिं नः आ भर ॥

९ हे अग्ने ! नः जीवसे मार्डीकं विश्वायुपोषसं रयिं सुचेतुना आ धेहि ॥

१० हे गोतम ! सुम्नयुः तिग्मशोचिषे अग्नये पूताः वाचः गिरः प्र भरस्व ॥

११ हे अग्ने ! नः अन्ति दूरे यः अभिदासति, सः पदीष्ट । अस्माकं इत् वृधे भव ॥

१२ सहस्राक्षः विचर्षणिः अग्निः रक्षांसि सेधति । होता उक्थ्यः गृणीते ॥

३ पहिले वह (मेघ) जलके (रूपमें प्राप्त) दूधसे पुष्ट होकर, जलके अन्तरिक्ष मार्गोंसे घुमाया जाकर (पश्चात्) अर्यमा, मित्र, वरुण और परिज्मा (ये देव) मेघके स्थानमें (उसकी) त्वचाको (जलसे) भर देते हैं ॥

४ हे बलके लिये प्रसिद्ध अग्ने ! गाइयोंसे प्राप्त अन्नका तू स्वामी है । हे वेदप्रकाशक ! हम सबको बडा अन्न दो ॥

५ वह अग्नि (सबका) निवासकर्ता और ज्ञानी है, वह वाणीसे प्रशंसनीय है । हे बडी सेनावाले ! हमें तेजस्वी धन दे ॥

६ हे राजन् अग्ने ! (शत्रुको) शान्त कर । और स्वयं (वैरीको शान्त कर) । रात्रीमें और उषःकालमें, हे तीक्ष्ण दांतवाले ! तू राक्षसोंको जला दे ॥

७ हे सब बुद्धिके कर्मोंमें वन्दनीय अग्ने ! गायत्री (छन्दमें) स्तोत्र गानेपर हमें (अपनी) सुरक्षाओंसे सुरक्षित रख ॥

८ हे अग्ने! सर्व शत्रुको परास्त करनेवाला, वरणीय और सब युद्धोंमें (शत्रुके लिये) दुष्प्राप्य धन हमें दे ॥

९ हे अग्ने! हमारे दीर्घ जीवनके लिये, सुखदायी, पूर्ण आयुतक पुष्टि करनेवाला धन विचारपूर्वक हमें दे ॥

१० हे गोतम ऋषे! कल्याण प्राप्त करनेकी इच्छावाला तू तीक्ष्ण प्रकाशवाले अग्निके (सन्तोषके) लिये पवित्र वाक्योंसे युक्त सूक्त भरपूर गाओ ॥

११ हे अग्ने ! हमारे पास या दूर (रहकर) जो (शत्रु हमें) दास करना चाहता है, उसे नीचे गिरा दे । हमारी उन्नति कर ।

१२ सहस्र नेत्रोंवाला सर्वसाक्षी अग्नि दुष्टोंको नष्ट करता है । हवन करनेवाला प्रशंसनीय (अग्नि) प्रशंसित हो रहा है ॥

बडा सेनापति

गोतम ऋषिके अग्नि-सूक्तोंमें यह अग्निसूक्त अन्तिम है। इसमें अग्निको 'बलका स्वामी' मानकर उसका वर्णन किया है। पांचवें मंत्रमें **'पुर्वणीक'** (पुरु + अनीक) पद है, इसका अर्थ 'बडी सेनावाला' है। **'अनीक'** पदका अर्थ- 'सेना, सैन्य, युद्ध, द्वन्द्व, हमला, पंक्ति, नोक, अग्रभाग, मुख, रूप' यह है। बडी सेनावाला, बडा युद्ध करनेवाला, प्रबल हमला करनेवाला वीर यह इसका आशय है। 'बल' पदके अर्थ 'सामर्थ्य और सैन्य' ऐसे दो प्रकारके होते हैं। यहां इस सूक्तमें अग्निका इन दोनों तरहसे वर्णन किया है ॥

१ **'सहसः यहुः'** (मं.४)- बलका पुत्र, बलके कार्य करनेके लिये जन्मा हुआ, बलसे प्रभाव दिखानेवाला। ये बलके अर्थात् शक्तिसे होनेवाले अथवा सेनासे होनेवाले कार्य ये हैं—

२ **हे राजन्! त्मना क्षपः। रक्षसः प्रति दह** (६)- हे राजा! हे सेनापते, हे अग्रणे! तू स्वयं जनताके सब शत्रुओंको प्रतिबंध कर, शान्त कर। वैरी प्रभावी न बनें ऐसा कर। असुरों राक्षसों और दुष्टोंको जलाकर नष्ट कर दे। यहां अग्निका विशेषण 'राजन्' है। अग्निका 'अग्रणी' रूप मानकर 'हे राजन् अग्रणे' ऐसा अर्थ करनेसे सब अर्थ प्रकरणानुकूल बनता है।

३ **यः नः अन्ति दूरे वा अभिदासति, सः पदीष्ट** (११)- जो दूरसे या समीपसे हमें दास बनाना चाहता है, जो हमारा नाश करना चाहता है वह नीचे गिर जावे।

४ **सहस्राक्षः विचर्षणिः रक्षांसि सेधति** (१२) सहस्र आंखवाला सब देखनेवाला अग्रणी दुष्टोंका नाश करता है। यहां राज-प्रकरणमें सहस्राक्ष पद सहस्रों दूतोंसे राष्ट्रके सब व्यवहारोंको देखनेवाला इस अर्थमें है। राजा, अग्रणी अपने दूतोंके सहस्रों आंखोंसे देखता है और राष्ट्रमें या राष्ट्रके बाहर जो दुष्ट शत्रु होते हैं, उनको ठीक तरह पहचान कर उनका नाश अपने बलसे अथवा सैनिकोंसे करता है।

५ **गोमतः वाजस्य ईशानः** (४)- गौओंसे युक्त अन्नका यह स्वामी है। अर्थात् यह गौओं और विविध अन्नोंकी सुरक्षा अपने राज्यमें करता है। इससे जनताका पालन-पोषण करता है।

६ **जातवेदाः** (४); **कविः** (५); **धीपु वन्द्य** (७)- ये तीनों पद इसकी ज्ञानी होनेकी साक्षी दे रहे हैं। **जात-वेदाः**- जिससे वेद, ज्ञानप्रसङ्गके मंत्र, प्रकाशित हुए, जो ज्ञानका प्रचार करता है। **कविः**- ज्ञानी, अतीन्द्रिय ज्ञानसे देखनेवाला, क्रान्तदर्शी। **धीपु वन्द्य**- बुद्धिके कामोंमें ज्ञानके विषयोंमें पूजाके योग्य। यह सेनापति अग्रणी इस तरह ज्ञानी है। इसी लिये यह पूजनीय माना गया है। सेनापति और अग्रणी ऐसा ज्ञानी होना चाहिये।

७ **तिग्मजम्भः** (६)- तीखे दांतोंवाला, शत्रुको खा जानेवाला, शत्रुका नाश करनेवाला वीर।

धन कैसा चाहिये

इस सूक्तमें जो धन मानवोंको स्वीकार करनेयोग्य है उसका उत्तम वर्णन है, देखिये—

१ **अस्मे महि श्रवः धेहि** (४)- हमें बडा महत्व देनेवाला, कीर्ति बढानेवाला धन दे।

२ **अस्मभ्यं रेवत् दीदिहि** (५)- हमें धनसे युक्त करके प्रकाशित कर अर्थात् हमें ऐसा धन दे कि जिससे हम तेजस्वी बनें।

३ **सत्रासाहं विश्वासु पृत्सु दुष्टरं वरेण्यं रयिं नः आ भर** (८)-हमें ऐसा धन दे कि, जिससे हम सुसंगठित होकर कितने भी युद्ध करने पडे तो भी उनमें कोई शत्रु उस धनको छीन न सके, ऐसे बलवान् हम बनें। यह मंत्रभाग सबको विशेषही मनन करनेयोग्य है। इसमें धन संगठना करनेवाला, शत्रुके लिये अजेय तथा शत्रुका पराभव करनेवाला और इस कारण अपने पास रखनेयोग्य हो, ऐसा धनका वर्णन किया है।

४ **जीवसे मार्डीकं विश्वायुपोषसं रयिं नः आ धेहि** (९)- ऐसा धन हमें मिले कि जो हमें दीर्घ आयु देवे सुख देवे, आयुभर हमारा पोषण करता रहे अर्थात् वह हमारी क्षीणता न करे, हमें अल्पायु न बना देवे, हमारा दुःख न बढावे। धन चाहनेवालोंको उचित है कि वे इन मंत्रोंका मनन अच्छी तरह करें।

५ **नः ऊतिभिः अव** (७)- हमारी सब संरक्षणोंसे सुरक्षा कर। अनुयायियोंकी सुरक्षा करना अग्रणीका कार्य है।

इस तरह पहिले तीन मंत्रोंको छोडकर शेष नौ मंत्रोंमें यह बोध कराया है। राजा, सेनापति, अग्रणी आदिके कर्तव्य इस तरह यहां वर्णन किये गये हैं।

धूंवाधार वृष्टि

पहिले तीन मंत्रोंमें अग्निके तीन रूप कहे हैं और बीचमें विद्युत् अग्नि वृष्टि करता है, ऐसा भी कहा है। देखिये—

१ हिरण्यकेशः (१)- सुवर्ण जैसे चमकनेवाले केशवाला यह सूर्य है। *यह अग्निका रूप आकाशमें रहता है।*

अहिः- सर्प जैसा अग्नि विद्युत्के रूपसे अन्तरिक्षमें रहता है। जब विद्युत् चमकती है, तब वह टेढीमेढी रेखा दिखाई देती है, वही सांप जैसी दीखती है इसलिये इसको यहां 'अहिः (सर्प)' कहा है। यह अग्नि (धुनिः) सबको हिला देता है। यह विद्युत् अग्नि (रजसः विसारे) अन्तरिक्षके विस्तारमें (ध्रजीमान्) गतिमान् रहता है।

तीसरा अग्नि भूमिपर (शुचि-भ्राजाः) शुद्ध प्रकाश देनेवाला है। ये तीन रूप एकही अग्निके हैं। एकके तीन और तीनिका एक यह सिद्धान्त यहां स्पष्ट हुआ। एकके तीन भी रूप हैं और तीन रूप होते हुए वह एक भी *अथवा एकही है।*

२ दूसरे मंत्रमें कहा है कि बिजलीके तेजस्वी किरण अपनी भेदक शक्तिसे मेघमें घुसते हैं, काले मेघ इस समय गर्जना करते हैं, बीच बीचमें हंसनेवाली स्त्रियोंके समान बिजलियाँ चमकती हैं, तब धूंवाधार वृष्टि होती हैं और बडी गर्जनाएँ होती हैं। *यह वृष्टिका वर्णन सुन्दर है।*

३ तृतीय मंत्रमें मेघ कैसे बनते हैं, यह कहा है। प्रथम भूमिपरके जलका पान करके, जलके भांपसे मेघ बनते हैं, वे बडे पुष्ट होते हैं, फिर वे अन्तरिक्षमें मेघमण्डलसे इधर उधर वायुसे घुमाये जाते हैं, पश्चात् अन्तरिक्षमें उसमें पानी बनकर वृष्टि होती है। (अर्यमा) अग्नि, उष्णता, विद्युत् (मित्र) सूर्य, (वरुणः) जलदेव, चन्द्रमा (परिज्मा) वायु, इनके कारण मेघमें पानी बनता है और वृष्टि होती है। इन देवोंके कौनसे रूप वृष्टि करनेके लिये सहायक होते हैं, इसकी खोज शास्त्रज्ञोंको अवश्य करनी चाहिये।

इस ढंगसे प्रथम मंत्रमें सूर्य, विद्युत् और अग्निका वर्णन है और अगले दो मंत्रोंमें पर्जन्यका वर्णन है। वही पर्जन्य अन्न उत्पन्न करता है। ' पर्जन्यात् अन्नसंभवः। ' (गीता)। इस अन्नसे प्राणियोंका आयुभर पोषण होता है, बल बढता है और वे पराक्रम करनेमें समर्थ बनते हैं और शत्रुको उखाड देते हैं और जनताको सुखी करते हैं। यह पहिले ३ मंत्रोंका आगेके ९ मंत्रोंके साथ संबंध है।

सूक्तमें ऋषिका नाम

इस सूक्तमें गोतम ऋषिका नाम १० वें मंत्रमें आया है। स्वयं गोतम अपने आपको संबोधन कर रहा है, ऐसा काव्यमय वर्णन यहां है— 'हे गोतम ! तू अग्निके काव्यका गायन कर' ऐसा गोतम ऋषिही अपने आपको यहां कह रहा है। *काव्यमें ऐसा वर्णन किया जाता है।*

इस सूक्तके १० वें मंत्रमें गोतम ऋषिको 'सुम्नयु' होनेको कहा है। किसी देवताकी उपासना करनी हो तो प्रथम 'सुम्नयु' होना आवश्यक है। 'सुम्नयु' पद 'सु-म्न-यु' अर्थात् 'सुष्टु-मन-युक्त' उत्तम शुभ संकल्पवाले मनसे युक्त होना चाहिये। शुभ मनवाला होनेसेही उपासना सफल होती है।

अग्नि-प्रकरणमें

ऋषिका आदर्श पुरुष

गोतम ऋषिके इन छः सूक्तोंका यह पहिला ' अग्नि-प्रकरण' यहां समाप्त हो रहा है। वास्तवमें अग्निदेवता वेदमें 'ब्राह्मणत्व' की द्योतक है। अग्निदेवताके मंत्रोंसे वेदमें ब्राह्मण-वर्णका धर्म प्रकाशित होता है और इन्द्र देवतासे क्षात्रधर्म प्रकाशित होता है, यह सत्य है। परंतु वेदका ब्राह्मण और आजका ब्राह्मण इसमें भूमि और आकाशका अन्तर है। वेदमें वर्णित ब्राह्मण जैसा तत्त्वज्ञानमें प्रवीण है वैसाही युद्धविद्यामें भी प्रवीण दीखता है, यह बात यहांके इन छः सूक्तोंके अग्निमंत्रोंसे स्पष्ट हो जाती है, इसलिये प्रथम इस आदर्श पुरुषके ज्ञानी होनेका वर्णन देखिये।

१ वेधस्तमः (७५।२)- ज्ञानियोंमें अत्यंत श्रेष्ठ, *कुशलतासे वस्तु निर्माण करनेमें प्रवीण। यहां ज्ञान और कर्म* इन दोनोंका एकही मनुष्यमें होनेकी बात कही है।

२ अङ्गिरस्तमः (७५।२)-(अङ्ग-रसः-तमः) शरीरके अंगप्रत्यङ्गोंमें जो जीवनरस है; उस रससे चिकित्सा करनेकी विद्या जाननेवालेको 'अङ्गिरस्' कहते हैं। इस विद्यामें प्रवीण *आंगिरसी विद्या चिकित्सा विद्याही है। सब प्रकारके अंगरसोंका* उपयोग इस विद्यामें होता है। यह एक बडा भारी शास्त्र है। मनुष्योंका पोषण और रोगनिवारण इससे होता है। इस विद्याको जाननेवालोंमें प्रवीण यह इसका अर्थ है।

३ कविः (७६।५; ७९।५)— ज्ञानी, कवि, विद्वान्, दूरदर्शी, अतीन्द्रिय विषयको प्रत्यक्ष करनेवाला।

४ मनसा बोधाति (७७।२)- मनसे सब कुछ जानता है। जिसके मनमें जाननेकी विशेष शक्ति होती है।

५ जातवेदाः (७७।५; ७८।१; ७९।४)- वेदोंका प्रवर्तन करनेवाला, वेदोंका ज्ञाता, ज्ञानका प्रसार करनेवाला, ज्ञानी।

६ धीषु वन्द्यः (७९।७)- बुद्धिवानों अथवा ज्ञानियोंमें पूजनीय वा आदरणीय, श्रेष्ठ बुद्धिमान्

इस प्रकरणके 'कवि, जातवेदाः, वेधस्तमः' ये पद यह आदर्श पुरुष, जो गोतम ऋषिने, वैदिक धर्मियोंके सामने रखा है, वह श्रेष्ठ विद्वान् है, यही भाव बता रहे हैं। मामूली पढे लिखेके लिये ये विशेषण प्रयुक्त नहीं होते। इसलिये हम कह सकते हैं कि गोतम ऋषिकी दिव्य दृष्टिसे आदर्श पुरुष वह है कि जो बडा तत्त्वज्ञानी, वेदवेत्ता, मनसे सब जाननेवाला, चिकित्सा-शास्त्रमें निपुण और विद्वानोंमें आदरणीय है।

आदर्श पुरुषका चारित्र्य

गोतम ऋषिने जिस दिव्य दृष्टिसे आदर्श पुरुषका साक्षात्कार किया, उसके चारित्र्यके विषयमें इनके सूक्तोंमें निम्नलिखित निर्देश पाये जाते हैं—

७ अध्वरं उपप्रयन् (७४।१), **अध्वरं दस्मत् कृणोषि** (७४।४), **अध्वरेषु शंतमः** (७७।२)— अध्वर वह कर्म है कि जिसमें हिंसा, कुटिलता, कपट, छल, दुष्टता न हो। यह आदर्श पुरुष ऐसा हिंसारहित कर्म स्वयं करता है, दूसरा कोई ऐसे कर्म करे, तो उसमें जाकर सहाय्यकारी होता है, उसको परिपूर्ण करता है, सुंदरतासे निभाता है और ऐसे कर्मोंमें शान्तिसे प्रसन्नतापूर्वक बैठता है। अर्थात् कभी हिंसा, कपट, कुटिलता, छल करता नहीं। सदा सरलतासे रहता है और सब कार्य इसी तरह अहिंसाभावसे करता है।

८ सुहव्यः, सुबर्हिः, सुदेवः (७४।५)- उत्तम दाता, दिव्य विबुधोंको आह्वान करनेवाला, सज्जनोंको अपने पास बुलानेवाला, उत्तम यज्ञ करनेवाला और ईश्वरका उत्तम भक्त।

९ पोत्रं वेषि (७६।४)-पवित्रता करनेका कर्म करता है।

१० यज्ञानां अभिशस्तिपावा (७६।३)— यज्ञोंकी प्रशंसा करनेवाला, प्रशस्त कर्मोंकाही स्तुति करनेवाला, कभी बुरे कार्योंका वर्णन नहीं करेगा।

११ क्रतुः साधुः मित्रः (७७।३)— वह पुरुषार्थी, साधु सज्जन, सत्पुरुष, सन्त और सबका मित्र होता है।

१२ ऋतावा(७७।१;२,५)- सत्यवान्, सरल, सदाचारी, सत्यनिष्ठ, सत्यभक्त।

इन वर्णनोंसे पता लग सकता है कि गोतम ऋषिकी दिव्य दृष्टिसे जिस आदर्श पुरुषका उनको साक्षात्कार हुआ उसका चालचलन कैसा होगा। यह आदर्श पुरुष हिंसा, छल, कपटके कुकर्म कभी नहीं करेगा, वह उदार दाता होगा, वह यथाभाग यज्ञ करेगा, वह ईश्वरकी भक्ति करेगा, विचार-उच्चार-आचार में पवित्र रहेगा, शुभ कर्मोंकाही प्रशंसा करेगा, वह स्वयं उत्तम प्रशस्त कर्म करेगा, वह साधु कहलाने योग्य आचरण करेगा और सबके साथ मित्रवत् आचरण करेगा। सत्यमार्गसे ही वह चलेगा।

आदर्श पुरुषकी वीरता

ये पूर्वोक्त गुण प्रायः ब्राह्मणवर्णके हैं, फिर वीरता भी उस आदर्श पुरुषमें चाहिये। अन्यथा वह आदर्श नहीं होगा, इस-लिये इसकी वीरता दिखानेवाले गुण अब देखिये—

१ स्त्रीहितीषु संजग्मानासु कृष्टिषु गयं अरक्षत् (१।७०।२)- सब लोग युद्ध-कार्यमें लग जानेपर यह उनके घरोंकी सुरक्षा करता है। जो राष्ट्रके हितके कार्यमें लगे रहते हैं, उनकी सुरक्षा करता है।

२ रणे रणे धनंजयः (७४।३)- प्रत्येक युद्धमें विजय प्राप्त कर धनको लानेवाला, शत्रुके धनको प्राप्त करनेवाला, प्रत्येक युद्धमें जय कमानेवाला।

३ विश्वान् रक्षसः प्र सु धाक्षि (१।७६।३)- सब दुष्टोंको पूर्णतासे जला दो। सब शत्रुओंका नाश करो।

४ नृणां नृतमः रिशादाः (१।७७।४)- नेताओंमें श्रेष्ठ नेता वह है जो शत्रुओंका विनाश करता है।

५ दस्यून् अवधूनुषे वृत्रहन्तमः (१।७८।४)- शत्रुओंको हिला देता है, तू शत्रुका नाश करनेमें सबसे अधिक प्रवीण है।

६ यः अभिदासति, सः पदीष्ट (१।७९।११)- जो हमारा नाश करना चाहता है, वह नीचे गिर जावे, उसका नाश होवे।

इस तरह आदर्श पुरुषकी वीरताका वर्णन इन सूक्तोंमें है। जो ऐसा ज्ञानी और वीर होगा, वही गोतम ऋषिका आदर्श पुरुष है। वेदपाठियोंके सामने गोतम ऋषिने यह आदर्श रखा है। इस आदर्शके अन्य गुण इन सूक्तोंमें पाठक

देख सकते हैं। वेदका ऋषि अपनी दिव्य प्रतिभासे एक आदर्श दिव्य स्फुरणसे देखता है और उसको जनताके सामने रखनेके लिये स्तोत्रमें ग्रथित कर देता है। इस तरह यह अमर काव्य हुआ है।

इन्द्र-प्रकरण

(७) स्वराज्यकी पूजा

(ऋ. १।८०) गोतमो राहूगणः। इन्द्रः; १६ इन्द्रः (अथर्वा, मनुः दध्यङ् च)। पंक्तिः।

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम्।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १
स त्वामदद् वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः।
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ २
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ३
निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः। -
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४

अन्वयः- १ ब्रह्मा इत्था हि सोमे मदे इत् वर्धनं चकार। (हे) शविष्ठ वज्रिन्! स्व-राज्यं अनु अर्चन् ओजसा अहिं पृथिव्याः निः शशाः ॥

२ (हे) वज्रिन्! सः श्येन-आभृतः सुतः वृषा मदः सोमः त्वा अमदत्। येन (त्वं) स्व-राज्यं अनु अर्चन् ओजसा वृत्रं अत्-भ्यः निः जघन्थ ॥

३ (हे) इन्द्र! प्र इहि, अभि इहि, धृष्णुहि, ते वज्रः नि यंसते न। (त्वं) स्व-राज्यं अनु अर्चन्, वृत्रं हनः, अपः जयाः, (यतः) ते शवः नृम्णं हि ॥

४ (हे) इन्द्र! स्व-राज्यं अनु अर्चन् भूम्याः अधि दिवः (अधि) वृत्रं निः निः जघन्थ। (त्वं) इमाः मरुत्वतीः जीव-धन्याः अपः अव सृज ॥

अर्थ- १ ज्ञानीने, इस प्रकारके सोमके आनन्दमें इन्द्रके उत्साहका वर्धन किया। हे बल-सम्पन्न वज्रधारी इन्द्र! तूने, स्वराज्यका आदरसत्कार करते हुए, अपने पराक्रमसे शत्रुको अपनी राष्ट्र-भूमिपर शासन किया, उसको अपने आधीन कर रखा ॥

२ हे वज्रधारी इन्द्र! उस श्येनद्वारा लाये गये कूट-छान-कर निचोडे, बल बढानेवाले आनन्ददायक सोमने तुझे आनंदित कर दिया, जिससे तूने अपने स्वराज्यका सत्कार करते हुए अपने बलसे शत्रुको मारकर उसे जलसे बाहर निकाल दिया, जल-स्थानसे दूर भगा दिया ॥

३ हे इन्द्र! शत्रुके सम्मुख जा, उसे सब ओरसे घेर ले और उसका नाश कर दे। तेरा वज्र तो कभी पराभूत नहीं किया जा सकता। तू अपने स्वराज्यका सत्कार करते हुए शत्रुको मार और जलोंको जीत, क्योंकि तेरा बल मानवोंका हित करनेवाला है ॥

४ हे इन्द्र! अपने स्वराज्यका आदरसत्कार करते हुए भूमिपर और दिव् लोकमें शत्रुको निःशेष होने तक नष्ट कर। तू इन वीरोंको अपने साथ रखनेवाले जीवन-धारक जलोंको बहनेके लिये छोड दे ॥

इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः ।
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः सर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ५

अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा ।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ६

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ७

वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्या३ अनु ।
महत् त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ८

सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः ।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ९

इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः ।
महत् तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् १०

५ इन्द्रः हीडितः स्व-राज्यं अनु अर्चन् दोधतः वृत्रस्य सानुं अभि-क्रम्य वज्रेण अव जिघ्नते, सर्माय अपः चोदयन् ॥

६ मन्दानः इन्द्रः स्व-राज्यं अनु अर्चन् शत-पर्वणा वज्रेण सानौ अधि नि जिघ्नते, सखि-भ्यः अन्धसः गातुं इच्छति ॥

७ (हे) अद्रि-वः वज्रिन् इन्द्र ! तुभ्यं इत् वीर्यं अनुत्तं ( ), यत् ह त्वं स्व-राज्यं अनु अर्चन् तं उ त्वं मायिनं मायया अवधीः ॥

८ (हे) इन्द्र ! ते वज्रासः नवतिं नाव्याः अनु वि अस्थिरन् । ते वीर्यं महत्, ते बाह्वोः बलं हितं, (त्वं) स्व-राज्यं अनु अर्चन् (वृत्रं जहि) ॥

९ (हे मनुष्याः) सहस्रं साकं अर्चत, विंशतिः परि स्तोभत। शता एनं अनु अनोनवुः । इन्द्राय ब्रह्म उत् यतं (अस्ति)। (हे इन्द्र !) स्व-राज्यं अनु अर्चन् ॥

१० इन्द्रः सहसा वृत्रस्य तविषीं सहः (च) निः अहन्। अस्य तत् पौंस्यं महत् । स्व राज्यं वृत्रं जघन्वान् (अपः) अनु अर्चन् ॥

५ इन्द्र क्रोधमें आकर अपने स्वराज्यकी प्रेमसे पूजा करते हुए प्रजाको कँपानेवाले शत्रुरूप वृत्रकी ठुड्डीपर चारों ओरसे, वज्रसे प्रहार करता है और बहनेके लिये जलोंको प्रेरित करता है ॥

६ आनन्दित हुआ इन्द्र अपने स्वराज्यकी सदा पूजा करते हुए सैकडों धाराओंवाले वज्रसे इस वृत्रके ठुड्डीपर प्रहार करता है और मित्रोंके लिये अन्नकी प्राप्तिका मार्ग ढूंढना चाहता है ॥

७ हे पर्वतपर रहनेवाले वज्रधारी इन्द्र ! तेराही पराक्रम उत्कृष्ट है, जिस कारण तूने अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए ढूंढकर पकडे उस कपटी शत्रुको कपटसे मारा ॥

८ हे इन्द्र ! तेरे वज्र वृत्रसे घिरे हुए नब्बे नावसे तरने योग्य जलके समीपके विविध स्थानोंमें ठहरे थे । तेरा पराक्रम महान् है और तेरी भुजाओंमें बहुत बल रखा हुआ है । इसलिये तू अपने स्वराज्यका सत्कार करते हुए (उस जल-शोषक वृत्रका नाश कर) ॥

९ हे मनुष्यो ! तुम सहस्रोंकी संख्यामें एक साथ मिलकर प्रभुकी प्रार्थना या पूजा करो। बीसों मिलकर उस इन्द्रकी प्रशंसा करो । सैकडों मिलकर इस प्रभुकी वारंवार प्रार्थना करो। इन्द्रके लिये यह स्तोत्र तैयार किया है । हे इन्द्र ! अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए तू उसका सेवन कर ॥

१० इन्द्रने बलसे वृत्रकी सेना और बलको नष्ट कर दिया। इसका वह पौरुष बहुतही बडा है । उसने अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए वृत्रको मारा और जलोंको बहनेके लिये खुला छोड दिया ।

स्वराज्यकी पूजा

इस इन्द्र-सूक्तमें १६ मंत्र हैं और प्रत्येक मंत्रमें '**स्वराज्यं अनु अर्चन्**' यह वाक्य है। स्वराज्यकी अर्चना करना और तदनुकूलतासे, उस स्वराज्यके लिये सहाय्यकारी होनेवाले अन्य कार्य करना। प्रत्येक मंत्रमें यह मंत्रभाग इसलिये रखा है कि स्वराज्यकी पूजा करनेका भाव प्रत्येकके मनमें सुस्थिर रहे और कोई भी स्वराज्यसे विमुख न हो।

वेदके स्वराज्यका अर्थ बडा विशाल है। अपने ऊपर अपना शासन करनेका नाम स्वराज्य है। अपने शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्तपर अपनी पूर्ण रूपसे स्वाधीनता प्राप्त करना। ऐसे स्वयंशासक, जिनपर अपना स्वयंशासन पूर्णरूपसे सिद्ध हुआ है, जो संयमी, इन्द्रियदमन और आत्मसंयममें पूर्ण रूपसे सिद्ध हुए हैं, उनके द्वारा जो राज्यशासन चलाया जाता है, वह सच्चा स्वराज्य है। स्वयंशासित लोगोंद्वारा जहांका राज्यशासन होता है, वह वैदिक स्वराज्य है, इसीको ब्राह्मण ग्रंथोंमें 'स्वाराज्य' कहा है। यह स्वराज्य इस भूमिपर स्वर्गधाम स्थापित करेगा। जो सर्वोपरि श्रेष्ठ राज्यशासन है वह यही है। इसमें ज्ञानी, मित्रवत् व्यवहार करनेवाले और व्यापक दृष्टिवाले स्वयंशासकही राज्यशासन करते हैं।

ऐसे स्वराज्यकी (स्वराज्यं अनु अर्चन्) अर्चना, पूजा, सत्कार करना चाहिये। हरएक मनुष्यको उचित है कि वह इस प्रकारकी स्वराज्यशासन-पद्धतिका आदर करे। इस तरहकी स्वराज्यपद्धतिका आदर करनेके लिये क्या करना चाहिये, यह इस सूक्तमें बताया है।

१ ओजसा अहिं पृथिव्याः निः शशाः (१)— अपने बलसे शत्रुको निःशेष शत्रुता छोड देनेतक सुशासनमें रख दिया। ऐसे नियंत्रणमें रख दिया कि जिससे वह प्रजाजनोंको किसी प्रकारके कष्ट देनेमें समर्थ न रहा। दुष्टोंकी दुष्टता दूर करनेके लिये उनका नियमन करनाही उत्तम उपाय है। (न हीयते स अहिः) जो कम नहीं होता वह अहि कहलाता है।

२ ब्रह्मा वर्धनं चकार— ज्ञानीने इस बलका वर्धन किया था, जिस बलसे ये स्वराज्यके पालक और शासक शत्रुको अपने अधीन करनेमें सफल हुए। राष्ट्रके अन्दर ज्ञानी अपने राष्ट्रका बल बढानेकी आयोजना करें और नाना साधनोंसे नाना क्षेत्रोंमें शक्तिका संवर्धन करें। जब शक्ति संवर्धित होगी तब शत्रु दब जावेंगे।

३ ओजसा वृत्रं निः जगन्थ (२)— बलसे शत्रुको मारा। यहां वृत्रका अर्थ 'घेरकर लडनेवाला शत्रु' ऐसा है। (वृणोति इति वृत्रः) जो घेरकर लडता है, उसका नाम वृत्र है। बलसेही शत्रुका नाश हो सकता है।

४ प्रेहि, अभीहि, धृष्णुहि (३)— आगे बढ, हमला कर, चारों ओरसे शत्रुको घेरकर युद्ध कर और शत्रुको भयभीत कर, प्रबल हमला करके शत्रुको घबराओ। ये युद्धकी पद्धतियाँ हैं।

५ न ते वज्रः नि यंसते— तेरे वज्रको निष्प्रभ या असफल करनेवाला कोई नहीं है, तेरे शत्रु तेरे शस्त्रका संयम नहीं कर सकते।

६ ते शवः नृम्णं— तेरा सामर्थ्य मानवोंका हित करनेमें लगनेवाला है, तेरा बल मनुष्योंको मनन करनेयोग्य प्रशंसनीय है।

७ वृत्रं हनः, अपः जयः— घेरनेवाले शत्रुका नाश कर और जीवन देनेवाले जलप्रवाहको जीतकर अपने अधीन कर। शत्रुका नाश और जलको अपने अधीन करना यह नीति है। यदि जल शत्रुके अधीन रहा तो जय मिलनेकी कोई आशा नहीं। जल न रहा, तो प्याससे ही अपने सैनिक हैरान होंगे। इसलिये जलस्थानोंको अपने अधीन रखना योग्य है।

८ वृत्रं निः जघन्थ, जीवधन्याः अपः अव सृज (४)— शत्रुका नाश कर और जीवको धन्य करनेवाले जलोंको सबके हितके लिये खुले बहने दो।

९ दोधतः वृत्रस्य सानुं अभिक्रम्य वज्रेण अव जिघ्नते (५)— जनताको दुःख देकर हिलानेवाले शत्रुके उच्च भागपर आक्रमण करके आघात करता है और (**समीय अपः चोदयन्**) जलोंको प्रवाहित करता है।

१० शतपर्वणा वज्रेण सानौ अधि नि जिघ्नते (६)— सैकडों धाराओंवाले वज्रसे शत्रुके सिरपर घाव करता है और (**सखिभ्यः अन्धसः गातुं इच्छति**)— अपने अनुयायियोंके लिये पर्याप्त अन्न देनेका मार्ग प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, पर्याप्त अन्न मिलनेका सुयोग्य मार्ग ढूंढता है।

११ मायिनं मृगं मायया अवधीः (७)— कपटी, उस शत्रुको कपटसे अथवा अत्यंत कुशलतासे मारता है। माया= कपट, छल, कुशलता, प्रवीणता, कौशल्य। मृग=

जो शत्रु ढूंढकर निकाला जाता है। (तुभ्यं वीर्यं अनुत्तमं)- तेरा पराक्रम अत्यंत उत्तम है, शत्रुका नाश करनेमें जो तुमने पराक्रम दिखाया वह अद्वितीय है।

१२ ते वज्रासः नाव्याः नवतिं अनु वि आस्थिरन् (८)- तुम्हारे वज्र नौकासे जानेयोग्य नब्बे नदियोंके समीपके देशोंमें स्थिर हो चुके हैं, प्रभावी हो गये हैं अर्थात् तुमने शत्रुके नब्बे नगर हमला करके अपने अधिकारमें लाये हैं। (ते बाह्वोः बलं हितं)- तेरे बाहुओंमें बहुत बल है।

१३ सैकडों और सहस्रोंकी संख्यामें इकट्ठे मिलकर प्रभुकी उपासना करो और स्वराज्यको स्थापन करो। (मं. ९)

१४ इन्द्रः सहसा वृत्रस्य तविषीं सहः च निः अहन् (१०)— इन्द्रने अपने बलसे शत्रुकी सेना और उसके सब सामर्थ्यका नाश किया। (अस्य तत् पौंस्यं महत्) इस वीरका वह शत्रुनाशक बल बडाभारी है।

१५ वृत्रं जघन्वान्, अपः असृजत्- शत्रुका वध किया और जलको खुला छोड दिया।

१६ आयसः सहस्रभृष्टिः वज्रः अभि आयत (१२) लोहेका सौ धाराओंवाला वज्र उस वीरने शत्रुपर फेंक दिया,

१७ वृत्रः न वेपसा, न तन्यता इन्द्रं वि बीभयत्- वृत्र अपनी गर्जनासे और अपने वेगसे इन्द्रको भयभीत न कर सका। शत्रुके किसी भी प्रयत्नसे वीरोंको भय प्राप्त न होवे, अपने वीर निर्भय हों।

१८ शत्रुपर विद्युत्प्रहार और वज्रप्रहार किया, उस समय बडा बल प्रकट हुआ। (मं. १३)

१९ तेरी गर्जना होनेपर स्थावर जंगम जगत् कांपता है और त्वष्टा भी तेरे सामने कांपता है। (१४)

२० देवाः तस्मिन् ओजांसि नृम्णं उत क्रतुं संदधुः (१५)- सब देवोंने उसमें बल, वीर्य और कर्तृत्वशक्ति रखी है। शत्रुको परास्त करनेके लिये बल, वीर्य, और कर्तृत्वशक्ति अपनेमें संघटित करनी चाहिये, इसीसे शत्रुका पराभव होता है।

स्वराज्यकी पूजा अर्चना किस रीतिसे होती है, इसका वर्णन इस तरह इस सूक्तमें है। प्रथम ज्ञानकी वृद्धि राष्ट्रमें करनी चाहिये। शस्त्रास्त्र पर्याप्त प्रमाणमें उत्पन्न करने चाहिये। उन शस्त्रोंका उपयोग करनेमें प्रवीण वीर निर्माण करने चाहिये। ये वीर शत्रुपर प्रबल हमला करें, शत्रुका पराभव करें, उसका नाश करें अथवा उसको ऐसा दबावे कि जिससे वह फिर न उठ सके। जलप्रवाह और जलस्थान अपने अधिकारमें रखे, कभी शत्रुके अधीन न होने पावें। अपने शस्त्र शत्रुके शस्त्रोंसे अधिक सामर्थ्यवान् बनावें। शत्रु कपट करनेवाला हो तो कपटसेही उसका नाश करें।

स्वराज्यके लिये कैसा प्रयत्न करना चाहिये, इसकी कुछ कल्पना इस सूक्तके मननसे आ सकती है।

वज्र

वज्र एक अस्त्र है, यह शत्रुपर दूरसे फेंका जाता है। यह (आयसः) लोहा या फौलादसे बनाया जाता है। इसमें (शतभृष्टिः) सौ नोकदार तथा धारावाले टुकडे जोडे जाते हैं, बिजली जैसा यह शस्त्र चमकता है। उत्तम फौलादके बिना यह बन नहीं सकता। देशमें जब उत्तम फौलाद बनेगा तब वज्र बन सकेगा। अर्थात् यह वज्र एक अवस्थातक उद्योगकी वृद्धि बताता है। त्वष्टा नाम कारीगरका है, जो ये शस्त्र बनाता है।

(नाव्याः नवति) नौकासे पार होनेयोग्य नदियोंके तीरपर नब्बे नगरियां या किले शत्रुको परास्त करके लेनेका वर्णन मं. ८ में है। नौकासे पार करनेवाली नदियां सिन्धु, गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्रा ये हैं। इनके तटपर नब्बे किले या नगर बताते हैं कि यह प्रदेश बडाही विस्तृत है, जिसमें स्वराज्य स्थापन किया गया था और स्वराज्यशासनके कारण जनता सुखमें थी। सब लोग स्वराज्यका सत्कार करते थे और सब लोग शत्रुको दूर करनेमें अपना भाग यथायोग पूर्ण रूपसे करते थे, स्वराज्यकी सुरक्षा दक्षतासे करते थे।

अथर्वा, मनु, दधीची

अथर्वा, (मनु) मनुष्पिता, और दधीची ऋषि इन तीन ऋषियोंके नाम इस सूक्तके १६ वे मंत्रमें आये हैं।

स्वराज्य शब्दका मूल अर्थ 'निज तेज' है। अग्नि, विद्युत्, सूर्यके तेजके लिये यह शब्द प्रयुक्त होता है। राज्य-शासन मानवका तेजही है, इसलिये राज्यशासनको स्वराज्य कहते हैं।

अब इन्द्र प्रकरणमें द्वितीय सूक्त देखिये-

(८) निडर वीर

(ऋ. १।८१) गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । पंक्तिः । *

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १

असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादादिः ।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥ ३

क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान् दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ४

आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि ।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ ॥ ५

अन्वयः— १ वृत्र-हा इन्द्रः मदाय शवसे नृ-भिः ववृधे, तं इत् महत्-सु आजिषु उत ईं अर्भे हवामहे । सः वाजेषु नः प्र अविषत् ॥

२ हे वीर ! सेन्यः असि, भूरि परा-ददिः असि । दभ्रस्य चित् वृधः असि । (त्वं) यजमानाय शिक्षसि । सुन्वते ते वसु भूरि ॥

३ यत् आजयः उत्-ईरते, (तदा) धृष्णवे धना धीयते । (हे) इन्द्र ! मद-च्युता हरी युक्ष्व । (त्वं) कं हनः, कं वसौ दधः । अस्मान् वसौ दधः ॥

४ क्रत्वा महान् भीमः अनु स्वधं शवः आ ववृधे । ऋष्वः शिप्री हरि-वान् (इन्द्रः) उपाकयोः हस्तयोः श्रिये आयसं वज्रं नि दधे ॥

५ (हे) इन्द्र ! पार्थिवं रजः आ पप्रौ । दिवि रोचना बद्बधे । (सम्प्रति) कः चन त्वा-वान् न । (त्वा-वान्) न जातः, न जनिष्यते । (त्वं) विश्वं अति ववक्षिथ ॥

अर्थ— १ वृत्रनाशक इन्द्र आनन्द और बलके लिये मनुष्यों द्वारा बढाया जाता है । हम उसी इन्द्रको बडे युद्धों और उसीको छोटे युद्धोंमें बुलाते हैं । वह युद्धोंमें हमारी रक्षा करे ।

२ हे वीर! तू सेनासे युक्त है । बहुत धन दान देनेवाला है। तू छोटेको भी बडा करनेवाला है। तू यज्ञ करनेवालेके लिये धन देता है । सोमयाग करनेवालेको देनेके लिये तेरे पास बहुत धन है ।

३ जिस समय युद्ध छिड जाते हैं, तब तेरे द्वारा निडर वीरके लिये धन दिया जाता है । हे इन्द्र ! तू अपने मद चुवानेवाले घोडोंको रथमें जोड । तूने किसी दुष्टको मारा और किसीको धनके बीचमें रखा, धनवान् बना दिया । तूने हमें धनके बीच रख धनवान् बनाया है ।

४ क्रियाशील होनेके कारण श्रेष्ठ और भयङ्कर प्रभाववान् इन्द्रने योग्य अन्नके सेवनसे अपना बल बढा दिया । उस दर्शनीय, शिरस्त्राणधारी, घोडेवाले इन्द्रने अपने समीपवर्ती दोनों हाथोंमें श्रीकी प्राप्तिके लिये लोहेका बना हुआ वज्र धारण किया है ।

५ हे इन्द्र ! तूने अपनी व्यापकतासे पार्थिव लोकोंको पूरा भर दिया है । तूने दिव् लोकमें प्रकाशमय लोक स्थापित किये हैं । कोई भी तेरे समान नहीं है । तेरे समान न कोई उत्पन्न हुआ था और न आगे उत्पन्न होगा । तूही सम्पूर्ण विश्वको चला रहा है ।

* ऋ. १।८१।१-३ तथा ७-९ ये छः मंत्र अथर्ववेदमें २०।५६।१-६ में हैं ।

यो अर्यो मर्तभोजनं पराददाति दाशुषे ।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः　　६
मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर　　७
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव　　८
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर　　९

६ यः अर्यः इन्द्रः दाशुषे मर्त-भोजनं परा-ददाति, (सः) अस्मभ्यं शिक्षतु । (हे इन्द्र !) ते भूरि वसु वि भज । तव राधसः भक्षीय ॥

७ (हे इन्द्र !) ऋज-क्रतुः (त्वं) गवां यूथा मदे-मदे हि नः ददिः (असि) । पुरु शता वसु उभयाहस्त्या सं गृभाय । शिशीहि, रायः आ भर ॥

८ (हे) शूर ! शवसे राधसे सुते सचा मादयस्व । त्वा पुरु-वसुं विद्म हि । कामान् उप ससृज्महे । अथ नः अविता भव ॥

९ (हे) इन्द्र ! एते जन्तवः ते विश्वं वार्यं पुष्यन्ति । अर्यः अदाशुषां जनानां अन्तः वेदः ख्यः हि । तेषां वेदः नः आ भर ॥

६ जो स्वामी इन्द्र दाताके लिये मनुष्योंके भोगने योग्य धन देता है, वह हमारे लिये धनका दान करे । हे इन्द्र ! तू अपना विपुल धन हमें बाँट । मैं तेरे धनका उपभोग करूँ ॥

७ हे इन्द्र! सरल कर्मवाला तू गायोंके झुण्ड प्रत्येक आनन्दके समय हमें देनेवाला है । तू बहुत सैकडों प्रकारका धन दोनों हाथोंसे ग्रहण कर । तू वीरता करके ऐश्वर्यका सम्पादन कर ॥

८ हे शूर ! बल और धनके लिये तू यज्ञस्थानमें एक साथ आनन्दित हो । हम तुझ विपुल सम्पत्तिवाले इन्द्रको निश्चय जानते हैं । तेरे सामने अपनी कामनाओंको रखते हैं, अब तू हमारा रक्षक हो ॥

९ हे इन्द्र ! ये सब प्राणी तेरे सम्पूर्ण वरणीय धनको बढाते हैं । सबका स्वामी इन्द्र तू दान न करनेवाले लोगोंके गुप्त धन जानताही है । तू उनका धन हमें ला दे ।

बलकी वृद्धि और शत्रुका नाश

यह ऋग्वेदका १।८१ वां सूक्त है । इसका देवता इन्द्र है । इन्द्रदेवता बलकी वृद्धि और शत्रुका नाश करनेके लिये प्रसिद्ध है । इस सूक्तके बोधवचन ये हैं—

१ वृत्रहा इन्द्रः शवसे नृभिः ववृधे (१)– शत्रुका नाश करता है इसलिये इन्द्रदेवताकी प्रशंसा बल बढानेके लिये करते हैं । मनुष्य इंद्रके सूक्तोंसे अपना बल बढानेके और शत्रुका नाश करनेके उपाय जानते हैं । इन्द्र सूक्त पढनेका यह उद्देश्य है ।

२ महत्सु आजिषु उत अर्भे इन्द्रं हवामहे –बडे युद्धोंमें तथा छोटे संघर्षमें अपनी सहायताके लिये इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं । इन्द्रकी स्तुतिके मंत्र पढनेसे युद्धमें विजयी होनेके उपाय मालूम हो सकते हैं ।

३ सः वाजेषु नः प्र अविषत्– वह युद्धोंमें हमारी रक्षा करे ।

४ हे वीर ! त्वं सेन्यः असि (२)– हे वीर ! तू सेनासे युक्त हो, वीर सेनाके साथ रहता है । अथवा वीर सैन्यके साथ रहे ।

५ दभ्रस्य वृधः असि– *छोटेको बडा करता है ।*

६ भूरि परा-ददिः असि– तू बहुत दान देता है । वीर बहुत दान देवे ।

७ यत् आजयः उदीरते, धृष्णवे धना धीयते (३)– जब युद्ध छिड जाते हैं, तब निडर वीरके लिये धन देना चाहिये । जिस धनसे वह प्रसन्न होवे और सेना आदि युद्धके साधन अपने पास पर्याप्त प्रमाणमें रखे ।

८ मदच्युता हरी युक्ष्व– वीरके रथके लिये मदमत्त घोडे जोते जाय ।

९ कं हनः ? कं वसौ दधः ?– किसका वध किया जावे ? और किसको धनका उपहार दिया जावे ? यह सोचना चाहिये। जो शत्रु है उसका वध करना चाहिये, और जो अपना सहायक मित्र है उसको धनका दान करना उचित है। ऐसा कभी नहीं होना चाहिये कि अपना मित्र मारा जाय और शत्रु धनवान् बन जाय।

१० क्रत्वा महान् भीमः (४)– प्रयत्नसे महा भयंकर वीर होता है। पुरुषार्थ करनेवाला बडा वीर होता है।

११ अनुस्वधं शवः आ ववृधे– अन्नके अनुसार बल बढता है। जैसा अन्न खाया जाय वैसा शरीरका बल हो जाता है।

१२ शिप्री हस्तयोः आयसं वज्रं श्रिये नि दधे– शिरस्त्राण धारण करनेवाला वीर अपने हाथोंमें फौलादका शस्त्र यशप्राप्तिके लिये धारण करता है।

१३ अर्यः दाशुषे मर्तभोजनं परा-ददाति (६)–स्वामी दाताको मानवोंके योग्य भोजन देता है। स्वामी अपने सेवकोंके लिये जीवनवेतन देता है। जो ऐसा देता है वही सच्चा (अर्य) श्रेष्ठ स्वामी कहलाता है।

१४ ते भूरि वसु वि भज— तेरे पास बहुत धन होनेपर उसको विशेष रूपसे दान कर।

१५ ऋजु-क्रतुः गवां यूथा ददिः (७)— सरल भावसे कर्म करनेवाला गायोंके झुण्डोंका दान देवे।

१६ पुरु शता वसु उभयाहस्त्या सं गृभाय— सैकडों प्रकारका बहुत धन दोनों हाथोंमें ले लो।

१७ शवसे राधसे सचा मादयस्व (८)— बलको बढानेके लिये और धनकी वृद्धिके लिये अपने साथियोंके साथ आनन्द प्रसङ्गके समयोंमें सहभागी होते रहो।

१८ नः अविता भव– हमारा रक्षक हो।

१९ अर्यः अदाशुषां जनानां अन्तः वेदः गयः (९)– स्वामी कन्जूस मनुष्योंके सुरक्षित रखे धनको जानता है अर्थात् उसको प्राप्त करके सबकी भलाईके लिये प्रयुक्त करता है।

इस तरह इस सूक्तमें अनेक बोधवचन हैं। इस सूक्तमें केवल वीरताकी और युद्धकीही बातें नहीं हैं, प्रत्युत धनका एकके पास संग्रह न हो, वह सब धन सब जनताके पास यथायोग्य रीतिसे विभक्त होता जाय। सबको आवश्यकताके अनुसार धन मिले। इस विषयके अनेक निर्देश इस सूक्तमें हैं। वे मननके योग्य हैं।

(९) घरमें रहो

(ऋ. १।८२) गोतमो राहूगणः। इन्द्रः। पंक्तिः; ६ जगती।

उपो षु शृणुही गिरो मघवन् मातथा इव।
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद् योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ १ ॥
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ २ ॥

अन्वयः— (हे) मघ-वन् ! गिरः उपो सु शृणुहि। अतथा- इव मा (भूः)। यदा (त्वं) नः सूनृता-वतः करः, आत् अर्थयासे इत्, (हे) इन्द्र ! ते हरी योज नु ॥

२ स्व-भानवः विप्राः अक्षन्, अमीमदन्त हि, प्रियाः अव अधूषत, नविष्ठया मती अस्तोषत। (हे) इन्द्र ! ते हरी योज नु ॥

अर्थ— १ हे धनवाले इन्द्र ! तू हमारी प्रार्थनाओंको पास बैठकर सुन। परायेके समान मत हो। जब तू हमें मीठी वाणीवाला करता है, तब हमारा स्तोत्र चाहताही है। हे इन्द्र ! तू अपने घोडे शीघ्र जोड (और यहां हमारे पास शीघ्र आ) ॥

२ हे इन्द्र ! अपने तेजसे तेजस्वी हुए बुद्धिमान् लोगोंने (तेरा दिया अन्न) खाया और वे बहुत आनन्दित हुए। उस आनन्दमें उन्होंने अपने प्रिय (मस्तक तेरे आदरके लिये) कँपाये। फिर प्रशंसासे भरपूर स्तोत्रसे तेरी प्रशंसा की। हे इन्द्र ! यज्ञमें आनेके लिये तू अपने घोडे शीघ्र जोड।

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ३
स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ४
युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ५
युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः ।
उत् त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान् वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः ॥ ६

३ (हे) मघ-वन् ! वयं त्वा सु-संदृशं वन्दिषीमहि । नूनं पूर्ण-वन्धुरः स्तुतः वशान् अनु प्र याहि । (हे) इन्द्र ! ते हरी योज नु ॥

४ (हे) इन्द्र ! यः हारि-योजनं पूर्णं पात्रं चिकेतति, सः घ तं गो-विदं वृषणं रथं अधि तिष्ठाति । (हे) इन्द्र ! ते हरी योज नु ॥

५ (हे) शत क्रतो ! ते दक्षिणः उत सव्यः युक्त अस्तु । तेन अन्धसः मन्दानः प्रियां जायां उप याहि । (हे) इन्द्र ! ते हरी योज नु ॥

६ (हे) वज्रिन् ! ते केशिना हरी ब्रह्मणा युनज्मि । उप प्र याहि, गभस्त्योः दधिषे । रभसाः सुतासः त्वा उत् अमन्दिषुः । पूषण् वान् (त्वं) पत्न्या सं उ अमदः ॥

३ हे ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्र ! हम लोग तुझ सुरूप इन्द्रकी वन्दना करते हैं । निश्चयसे धन-धान्यसे भरपूर रथवाला तू प्रशंसा प्राप्त करता हुआ भक्तोंकी ओर जा । हे इन्द्र ! तू अपने घोडोंको जोड दी ।

४ हे इन्द्र ! जो मनुष्य जिसके पीनेपर रथमें घोडे जोडे जायँ ऐसा भरा हुआ पात्र तुझे समर्पित करता है, वही मनुष्य उस गौएँ प्राप्त करानेवाले सुखदायी रथपर बैठता है । हे इन्द्र ! तू अपने घोडे रथमें शीघ्र जोड ॥

५ हे सेकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! तेरा दाहिना और बायाँ घोडा रथमें जोडा हुआ हो । उस रथसे तू अन्नसे तृप्त होकर प्रिय पत्नीके पास जा । हे इन्द्र ! तू अपने घोडोंको शीघ्र जोड ॥

६ हे वज्रधारी इन्द्र ! तेरे केशवाले घोडे, मैं अपने स्तोत्र-से रथमें जोडता हूँ । तू अपने घर जा, तू हाथोंमें घोडोंकी रश्मियाँ धारण करता है । वेगसे बहनेवाले सोमरसोंने तुझे तृप्त किया है । (घरपर) पुष्टिसे युक्त हुआ तू अपनी पत्नीके साथ सोमसे भली-भाँति तृप्त हो ।

रथ जोडो

इस सूक्तमें 'हे इन्द्र ! ते हरी योज'– हे इन्द्र ! तेरे घोडे रथके साथ जोड, यह आज्ञा प्रत्येक मंत्रमें है । वीर अपना रथ जोडकर प्रजाकी रक्षाका कार्य करनेके लिये सदा तैयार रहे यह इसका आशय है । अन्तिम मन्त्रमें—

'ते हरी ब्रह्मणा युनज्मि'– तेरे घोडे स्तोत्रपाठके साथ मैं जोडता हूँ । यहां उपासक कहता है कि हे इन्द्र ! तेरे रथके साथ घोडे मैं जोडता हूं । अर्थात् यहां ऐसा प्रतीत होता है कि यहां इन्द्रकी मूर्तिका महोत्सव है, उसमें रथमें इन्द्रकी प्रतिमा रखी जाती होगी और मंत्र बोलकर भक्त उस रथके घोडे जोतते होंगे । इन्द्रके वर्णनमें इन्द्रका रथ, उसके पास, उसके शस्त्रास्त्र, उसके कपडे आदिकोंका वर्णन आता है, यह वर्णन परमात्मा होगा तो आलंकारिक मानना पडेगा, वीरका होगा तो किसी जीवित मानव पुरुषका होगा, अन्यथा यह केवल मूर्तिका ही मानना पडेगा । इस समय हम इस विषयमें विशेषरूपसे कुछ कह नहीं सकते । पर देवताओंके वर्णनोंमें ऐसे वर्णन आते हैं, जो शंका उत्पन्न करते हैं, इस विषयमें अधिक विचार होना चाहिये, जो अनेक सूक्तोंके मननके उपरान्तही होना स्वाभाविक है ।

प्रिय पत्नी

इस मन्त्रमें प्रिय पत्नीका उल्लेख है । वेदमें स्त्रियोंके वर्णन बहुत ही कम हैं, जहां वे हैं वहां बडी मर्यादाके साथ आते हैं ।

'तेन अन्धसः मन्दानः प्रियां जायां उप याहि । (म ५)'– उस अपने रथपर आरूढ होकर, तथा अन्नसे तृप्त होकर, अपनी प्रिय पत्नीके पास जा । अर्थात् रथपरसे यज्ञमें आकर बैठ, यज्ञका अवलोकन कर, यज्ञीय अन्नका सेवन कर और पश्चात् उसी रथपर सवार होकर, अपने घरमें पहुच कर अपनी प्रिय जायाके पास जा और उसमें वार्तालाप आदि कर तथा और देखिये–

'उप प्र याहि, गभस्त्यो दधिषे। सुतासः त्वा उत् अमन्दिषुः। (त्वं) पत्न्या सं अमदः (म ६)- तू अपने घर जा, (जानेके समय) घोडोंके लगाम हाथमें पकडो, सोमरस पीकर तुझे आनन्द हुआ है। (अब तू घरमें जाकर अपनी) पत्नीसे मिलकर आनन्द कर, आनन्दित हो।

यहा इन्द्रकी धर्मपत्नीका उल्लेख है। पर पत्नीका नाम यहां नहा है। 'इन्द्राणी, शची' ये नाम अन्यत्र अन्य मन्त्रोंमें आये हैं। इन्द्रको "कौशिक" कहा है। देखो मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन (ऋ.१।१०।११) कुशिकका पुत्र कुशिकके गोत्रमें उत्पन्न अथवा कुशिकोंपर कृपा करनेवाला ऐसे इसके अर्थ होना संभवनीय है।

(१०) यज्ञका मार्ग

(ऋ. १।८३; अथर्व २०।२५।१-६) गोतमो राहूगण । इन्द्रः । जगती ।

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाऽभितो विचेतसः ॥ १ ॥
आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥ २ ॥
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

अन्वय.- १ (हे) इन्द्र! तव ऊतिभिः सुप्रअवीः मर्त्यः अश्ववति गोषु प्रथमः गच्छति। (त्वं) वि-चेतसः आपः अभितः सिन्धुं यथा तं इत् भवीयसा वसुना पृणक्षि ॥

२ (हे इन्द्र!) देवासः देवीः आपः न होत्रियं उप यन्ति। विततं रजः यथा अवः पश्यन्ति। देवयुं प्राचैः प्र णयन्ति। वराः-इव ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते ॥

३ (हे इन्द्र!) या मिथुना यतस्रुचा (त्वां) सपर्यतः, द्वयोः अधि उक्थ्यं वचः अदधाः। असंयत्तः ते व्रते क्षेति पुष्यति। सुन्वते यजमानाय भद्रा शक्तिः (भवति) ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र! तेरी सुरक्षाओं द्वारा सुरक्षित हुआ भक्त मनुष्य बहुत घोडोंवाले और बहुत गौओंसे युक्त स्थान प्रथम प्राप्त करता है। तू चित्तको प्रसन्न करनेवाले जल सब ओरसे जैसे समुद्रको पहुचते हैं, वैसे उसही भक्तको श्रेष्ठ धनसे पूर्ण करता है।

२ हे इन्द्र! दिव्य लोग दिव्य जलोंके पास जानेके समान यज्ञके समीप जाते हैं। वे फैले हुए विस्तृत यज्ञस्थानको देखते हैं। देवोंकी भक्ति करनेवालेको वे पूर्वकी ओर ले जाते हैं। और श्रेष्ठोंके समान ज्ञानसे प्रिय उपदेशका सेवन करते हैं।

३ जो दो जुडे हुए अन्नपात्र तेरी पूजाके लिये रखे हैं, हे इन्द्र! तूने उन दोनोंमें रखे अन्नका स्तुतिके वचनके साथ स्वीकार किया। युद्धके लिये उद्यत न होनेवाला मनुष्य भी तेरे नियममें रहनेसे सुरक्षित रहता और पुष्ट भी होता है। यज्ञ करनेवालेके लिये तेरी ओरसे मङ्गलकारी शक्ति दी जाती है।

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥ ४ ॥
यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आऽजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥ ५ ॥
बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्यस्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥ ६ ॥

४ आत् ये इद्ध अग्नयः अङ्गिराः सु-कृत्यया शम्या प्रथमं वयः दधिरे, (ते) नरः पणेः सर्वं अश्व-वन्तं गो-मन्तं भोजनं पशुं आ सं अविन्दन्त ॥

५ अथर्वा प्रथमः यज्ञैः पथः तते । ततः व्रत-पाः वेनः सूर्यः आ अजनि । काव्यः उशना सचा गाः आ आजत् । (वयं) यमस्य जातं अमृतं यजामहे ॥

६ यत् सु-अपत्याय बर्हिः वा वृज्यते, अर्कः वा (यत्र) दिवि श्लोकं आ-घोषते, यत्र उक्थ्यः कारुः ग्रावा वदति, इन्द्रः तस्य इत् अभि-पित्वेषु रण्यति ॥

४ हे इन्द्र ! तब जिन अग्नि प्रज्वलित करनेवाले अङ्गिरा लोगोंने अपने उत्तम यज्ञकर्मसे सबसे प्रथम हवि तुझे दिया, उन पणिके नेताओंने सारे घोडों और गायोंसे युक्त पशुरूप धन प्राप्त किये ।

५ अथर्वाने सर्व प्रथम यज्ञोंके मार्गको फैला दिया । उसके पश्चात् व्रतका पालनकर्ता प्रिय सूर्यका उदय हुआ । तत्पश्चात् कविके पुत्र उशनाने पणिके यहांसे एक साथही गौएँ बाहर हाँक दीं । हम उस शासन करनेके लिये उत्पन्न अमर इन्द्रकी पूजा करते हैं ।

६ जिसके घरमें उत्तम कर्मके लिये कुश काटे जाते हैं, सूर्यके उदयके बाद उसके प्रकाशमें श्लोक पढे जाते हैं, जहाँ प्रशंसनीय कुशल कारीगर (सोमके कूटनेके पत्थरके) शब्द करता है इन्द्र उसकेही अन्नोंमें आनन्द मानता है ।

अङ्गिरा, अथर्वा और उशना ऋषि

इस सूक्तमें अङ्गिरा और अथर्वा ऋषिके कर्तृत्वका वर्णन किया है । देखिये—

१ इद्धाग्नयः अङ्गिराः सुकृत्यया प्रथमं वयः दधिरे (४)–अङ्गिरा ऋषियोंने अग्नि प्रदीप्त करके उत्तम यज्ञ करते हुए उसमें प्रथम अन्नकी आहुतियां दीं । अङ्गिरोंका यह उपक्रम बडाही प्रशंसनीय है ।

२ अथर्वा यज्ञैः प्रथमः पथः तते (५)– अथर्वा ऋषिने यज्ञोंके द्वारा सबसे प्रथम धर्मका यज्ञ मार्ग फैलाया ।

अथर्वाङ्गिरस् पद वेदमें आता है । इससे अङ्गिरा और अथर्वाका संबंध प्रतीत होता है । अङ्गिराने अग्नि प्रदीप्त करके उसमें अन्नकी आहुतियां देकर यज्ञ करनेकी विद्या प्रथम सिद्ध की और अथर्वाने इस यज्ञका चारों ओर खूब प्रचार किया ऐसा इन मंत्रोंसे पता लगता है ।

३ उशना काव्यः गाः आ आजत् (५)– कविपुत्र उशना ऋषिने गौओंको प्राप्त किया । अर्थात् इसने यज्ञमें गौओंके घृत आदिका हवन करना, गोदुग्धका सोममें मिलाना, दहीका सत्तुके साथ मिलाना आदिका प्रचार किया । यज्ञ-आचरनमें गौओंका बहुत संबंध इस ऋषिके समय आ गया ।

यजमानका घर

यज्ञकर्ताके घरका यहां वर्णन उत्तम रीतिसे किया है–

१ यत् बर्हिः वृज्यते (६)– जहां दर्भ काटे जाते हैं, दर्भके आसन फैलाये जाते हैं, ।

२ अर्कः दिवि श्लोकं आघोषते– सूर्य प्रकाशमें, सूर्यके उदयके पश्चात् श्लोक—वेदमंत्रोंका-घोष किया जाता है ।

३ यत्र उक्थ्यः कारुः ग्रावा वदति– जहां प्रशंसनीय कारीगर—कुशलतासे यज्ञकर्म करनेवाला, मंत्रोंके रचयिता ऋषि मंत्र गाते हैं और सोम कूटनेके पत्थरोंका शब्द होता है ।

यज्ञ जहां होते हैं वहां ये बातें होती हैं । आसन फैलाये जाते हैं, मंत्रपाठ होते हैं, सोम कूटनेका पत्थरोंका शब्द सुनाई देता है । यह यजमान है ।

इन्द्रसे गौओंकी प्राप्ति

इन्द्रकी सहायतासे गौवें प्राप्त होती हैं ऐसा यहां बहुतवार कहा है—

१ तव ऊतिभिः सुप्रावीः मर्त्यः अश्वावति गोषु प्रथमः गच्छति (१)- इन्द्रकी सुरक्षाओंसे सुरक्षित हुआ मनुष्य घोडों और गायोंके झुण्ड प्रथम प्राप्त करता है।

२ नरः पणेः सर्वं अश्वावन्तं गोमन्तं भोजनं पशुं आसं अविन्दन्त (४)- नेता लोग पणिसे सभी घोडे, गौवें और पशुको प्राप्त करता है और सब धन भी प्राप्त करता है।

यज्ञसे इन्द्रकी प्रसन्नता होती है, इन्द्रसे गौओंकी प्राप्ति होती है, इस तरह गोओंके घृतसे यज्ञ होते हैं और यज्ञोंसे सब जनताका कल्याण होता है। यज्ञके प्रवर्तनका यह फल है।

(११) दधीचीकी अस्थिसे वज्र

(ऋ. १।८४) गोतमो राहूगणः। इन्द्रः। १-६ अनुष्टुप्; ७-९ उष्णिक्; १०-१२ पंक्तिः; १३-१५ गायत्री; १६-१८ त्रिष्टुप्; (प्रगाथ =) १९ बृहती; २० सतोबृहती।

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि। आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ १
इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्। ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ २
आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी। अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ ३
इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम्। शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥ ४
इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन। सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ५
नकिष्ट्वद् रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे। नकिष्ट्वाऽनु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥ ६

अन्वयः— १ (हे) इन्द्र ! सोमः ते असावि। (हे) शविष्ठ धृष्णो ! (त्वं) आ गहि। इन्द्रियं सूर्यः न रश्मिभिः रजः त्वा आ पृणक्तु ॥

२ हरी ऋषीणां च स्तुतीः मानुषाणां च यज्ञं अप्रतिधृष्ट-शवसं इन्द्रं इत् उप वहतः ॥

३ (हे) वृत्र-हन् ! रथं आ तिष्ठ, ब्रह्मणा ते हरी युक्ता। ग्रावा वग्नुना ते मनः अर्वाचीनं सु कृणोतु ॥

४ (हे) इन्द्र ! इमं सुतं ज्येष्ठं अमर्त्यं मदं पिब। ऋतस्य सदने शुक्रस्य धाराः त्वा अभि अक्षरन् ॥

५ (हे ऋत्विजः) नूनं इन्द्राय अर्चत (तस्मै) उक्थानि च ब्रवीतन। सुताः इन्दवः अमत्सुः। ज्येष्ठं सहः नमस्यत ॥

६ (हे) इन्द्र ! यत् हरी यच्छसे, त्वत् रथि-तरः नकिः। मज्मना त्वा अनु नकिः। (अन्य) सु-अश्वः (त्वां) नकिः आनशे ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र ! यह सोम तेरे लिये निचोडा गया है। हे बलयुक्त शत्रु-नाशक इन्द्र ! तू यहाँ आ। तेरे लिये बना हुआ, यह सूर्य जैसे किरणोंसे आकाशको व्यापता है, वैसे तुझे यह सोमरस व्याप ले। (यह तेरे शरीरमें जावे।)

२ घोडे ऋषियोंके स्तोत्र और मनुष्योंके यज्ञके पास जिसका बल अटूट है ऐसे इन्द्रहीको ले जाते हैं, पहुंचाते हैं।

३ हे वृत्र-घातक इन्द्र ! तू रथपर चढकर बैठ। स्तोत्रके द्वारा तेरे घोडे रथमें जोड दिये गये हैं। ये सोम कूटनेके पत्थर अपनी वाणीसे तेरा मन इस ओर आकर्षित करें।

४ हे इन्द्र ! तू इस निचोडे हुए सर्वोत्तम अमर आनन्द-कारक रसको पी। यज्ञके स्थानमें बलवर्धक सोमकी धाराएँ तेरी ओर बह रही हैं।

५ हे ऋत्विक् लोगो ! निश्चय तुम इन्द्रकी पूजा करो और उसके लिये स्तोत्र पढो। ये निचोडे हुए सोम-रस इस इन्द्रको तृप्त करें। तुम इस बडे बलधारी इन्द्रको नमस्कार करो।

६ हे इन्द्र ! जिस कारण तू अपने घोडोंको उत्तमतासे चलाता है इस कारण तुझसे बडा रथी कोई नहीं। बलद्वारा तेरी समानता करनेवाला कोई नहीं। कोई दूसरा उत्तम घुड-सवार भी तुझे नहीं पा सकता।

य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग　　×७
कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् । कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग　　×८
यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति । उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग　　×९

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम्　　+१०

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम्　　+११

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम्　　+१२

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव　　⊛१३

---

७ यः ईशानः अप्रति-स्कुतः इन्द्रः अङ्ग एकः इत् दाशुषे मर्ताय वसु वि-दयते ॥

८ इन्द्रः अराधसं मर्तं पदा क्षुम्पं-इव कदा स्फुरत् । नः गिरः अङ्ग कदा शुश्रवत् ॥

९ (हे इन्द्र !) यः चित् हि सुत-वान् बहु-भ्यः त्वा आ आ-विवासति । इन्द्रः अङ्ग तत् उग्रं शवः पत्यते ॥

१० याः स्व-राज्यं अनु वस्वीः इन्द्रेण स-यावरीः शोभसे वृष्णा मदन्ति (ताः) गौर्यः इत्था स्वादोः विषु-वतः मध्वः पिबन्ति ॥

११ अस्य इन्द्रस्य ताः पृशन-युवः प्रियाः पृश्नयः धेनवः सोमं श्रीणन्ति, स्व-राज्यं अनु वस्वीः सायकं वज्रं हिन्वन्ति॥

१२ ताः स्व-राज्यं अनु वस्वीः प्र-चेतसः पूर्व-चित्तये अस्य सहः नमसा सपर्यन्ति, अस्य पुरूणि व्रतानि (च) सश्चिरे ॥

१३ अप्रति-स्कुतः इन्द्रः दधीचः अस्थ-भिः नव नवतीः वृत्राणि जघान ॥

७ जिस शासकका शत्रु प्रतिकार कर नहीं सकते, वह इन्द्र शीघ्र अकेलाही दानी मनुष्यके लिये धन देता है ।

८ इन्द्र अदाता कंजूस मनुष्यको, पाँवसे सूखे पत्तोंके समान कब नष्ट कर देगा और हमारी बातोंको शीघ्रातिशीघ्र - कब सुनेगा ?

९ हे इन्द्र ! जो सोम बनानेवाला बहुत देवोंमेंसे तेरीही विशेष परिचर्या करता है, वह तू इन्द्र शीघ्र उसके लिये अपना वह तीक्ष्ण बल देता है ।

१० जो अपने राज्यमेंही बसनेवाली शोभाके लिये इन्द्रके साथ चलनेवाली, सुख-दायी सोमसे आनन्दित होती हैं वे गौर वर्ण गायें इस प्रकार साथ मिलकर मीठे विशेष निचोडे सोमरसका पान करती हैं ।

११ इस इन्द्रकी वे स्पर्शकी कामनावाली प्रिय नाना वर्णोंवाली गौएँ इन्द्रके लिये अपने दूधको सोममें मिलाती हैं । वे अपने राज्यमें बसानेवाली शत्रुपर प्राणान्त करनेवाले वज्रको भेजती हैं ।

१२ वे अपने राज्यको बसानेवाली और बुद्धिको बढानेवाली गौएँ सबसे प्रथम ज्ञानपूर्वक इस इन्द्रके बलको अपने दूधरूपी अन्नसे सेवा करती हैं । उन्होंने इस इन्द्रके बहुत पराक्रमोंसे लाभ उठाया है ।

१३ जिसके सामने शत्रु नहीं ठहर सकता उस इन्द्रने दध्यङ्की अस्थियोंके वज्रसे निन्यानवेको मार दिया ।

× अथर्व २०।६३।४-६; + अथर्व २०।१०९।१-३; ⊛ अथर्व २०।४१।१-३

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विदच्छर्यणावति ॥१४
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥१५
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥ १६
क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति ।
कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत् तन्वे३ को जनाय ॥ १७
को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।
कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥ १८
त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ १९
मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥ २०

---

१४ (इन्द्रः) पर्वतेषु अप-श्रितं यत् अश्वस्य शिरः इच्छन्, तत् शर्यणाऽवति विदत् ॥

१४ इन्द्रने पर्वतोंमें पडे हुए घोडेके शिरको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेके पश्चात् उस शिरको शर्यणावत् तालाबमें है ऐसा जान लिया ।

१५ अत्र अह गोः चन्द्रमसः गृहे इत्था त्वष्टुः अपीच्यं नाम अमन्वत ॥

१५ इसी गतिशील चन्द्रमाके घरमें, इस प्रकार सबके निर्माताके गुप्त प्रकाशको जाना ।

१६ अद्य ऋतस्य धुरि शिमी-वतः भामिनः दुः-हृणायून् आसन्-इषून् हृत्सु-असः मयः-भून् गाः कः युङ्क्ते ? यः एषां भृत्यां ऋणधत्, सः जीवात् ॥

१६ आज सत्यकी धुरामें कार्यतत्पर तेजस्वी अत्यन्त क्रोधी बाणोंका धारण और शत्रुके हृदयमें उन्हें छोडनेवाले सुखदायी गतिमान वीरोंको कौन रखता है ? जो इन्द्र इनके भरण-पोषणको करता है वह सदा जीता रहे ।

१७ कः ईषते तुज्यते (वा) । कः बिभाय । अन्ति सन्तं इन्द्रं कः कः मंसते । कः तोकाय, कः इभाय उत राये, (कः) तन्वे, कः जनाय अधि ब्रवत् ॥

१७ कौन भागता है ? कौन मारा जाता है ? कौन भय खाता है ? पास ठहरे हुए इन्द्रको कौन जानता है ? कौन पुत्रके लिये, कौन हाथी और ऐश्वर्यके लिये, कौन शरीर-सुखके लिये और कौन मनुष्योंके सुखके लिये वक्तृत्व करता है ?

१८ कः हविषा घृतेन अग्निं ईट्टे । (कः) ध्रुवेभिः ऋतुभिः स्रुचा यजाते । देवाः कस्मै होम आशु आ वहान् । कः वीति-होत्रः सु-देवः (इन्द्रं) मंसते ॥

१८ कौन हवि और घीसे अग्निकी पूजा करता है ? सदा ऋतु और स्रुचासे कौन यज्ञ करता है ? देव किसके लिये मांगा हुआ धन शीघ्र ला देते हैं ? कौन दाता तेजस्वी यजमान इन्द्रको जानता है ?

१९ अङ्ग शविष्ठ ! त्वं देवः मर्त्यं प्र शंसिषः । (हे) मघ-वन् इन्द्र ! त्वत् अन्यः मर्डिता न अस्ति । ते वचः ब्रवीमि ॥

१९ हे प्रिय बहुत बलवाले इन्द्र ! तू तेजस्वी है, अतः मनुष्यकी बात सुन । हे धनवाले इन्द्र ! तुझसे भिन्न हमारा सुखदाता दूसरा कोई नहीं है, इसलिये मैं तेरी स्तुति करता हूं ।

२० (हे) वसो ! ते राधांसि, ते ऊतयः अस्मान् कदा चन मा दभन् । (हे) मानुष ! विश्वा च वसूनि चर्षणि-भ्यः नः आ उप-मिमीहि ॥

२० हे सबके निवासक इन्द्र ! तेरे धन और तेरे रक्षा-साधन हमें कभी मत छोडें । हे मनुष्योंके हित करनेवाले इन्द्र ! तू सारे धन दुष्ट लोगोंसे छीन कर हमारे समीप कर ।

---

* अथर्व. २०।४१।१-३

दधीचिकी हड्डियाँ

दधीचि एक ऋषि था। उसकी हड्डियोंसे इन्द्रका वज्र बनाया था। वृत्रका वध करनेके लिये ऋषिकी हड्डियोंका वज्र बनाना आवश्यक हुआ था। वृत्र प्रबल होकर सबको कष्ट देने लगा। ऋषिकी हड्डिके अस्त्रके विना वृत्रका मरना असंभव था। तब इन्द्रने जाकर ऋषि दधीचिसे पूछा, तब उन्होंने जगदुपकारके लिये—विश्व-कल्याणके लिये अपनी हड्डियां दीं। उन हड्डियोंको लेकर इन्द्रने त्वष्टा-नामक कारीगरके द्वारा वज्र बनवा लिया और उससे वृत्रको मारा। यह कथा इस सूक्तके १२-१३ इन दो मंत्रोंमें सूचित की है। इस कथाके सूचक मंत्र वेदोंमें अनेक हैं।

दधीचिका सिर काटा गया था और उसपर घोडेका सिर चिपका दिया, इसका सूचक मंत्र १४ वाँ इस सूक्तमें है। इस अस्थि देनेकी कथासे ऋषिकी उदारता प्रकट होती है। राष्ट्रके हितके लिये ऋषि अपना बलिदान करते थे।

परंतु ऋषि मानव थे और किसी मानवकी हड्डियोंसे वज्र बनना, शस्त्र या अस्त्र बनना अशक्यसा प्रतीत होता है। उस ऋषिके सिरके स्थानपर घोडेका सिर चिपकाना भी असंभव है। इसलिये यह कथा आलंकारिक प्रतीत होती है। यह कथा सर्वत्र एकसी भी नहीं है।

अथर्वकुलमें दधीचिकी उत्पत्ति हुई है। दध्यच्, दधीच और दधीचि ये एकही ऋषिके नाम हैं। इन्द्रने दधीचिको मधु-विद्या तथा प्रावर्ग्यविद्या इन दो विद्याओंका उपदेश किया और कहा कि 'यदि तुमने इनका किसी दूसरेको उपदेश दिया, दूसरे-को सिखाया तो तुम्हारा सिर काट दिया जायगा।' आगे अश्वि-देवोंने दधीचिसे इस विद्याको सीखना चाहा। तब दधीचिने इन्द्रका वचन सुनाया। पश्चात् अश्विदेवोंने दधीचीका मस्तक काट कर उस स्थानपर घोडेका सिर लगा दिया और उससे उन विद्याओंका उपदेश लिया और पश्चात् फिर असली सिर उसी स्थानपर चिपका दिया। यह कथा निम्नलिखित वेदमंत्रमें सूचित की है।

दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥ (ऋ. १।११६।१२)

'अथर्व गोत्रके दधीचि ऋषिने घोडेका सिर धारण करके तुम्हें मधुविद्याका प्रवचन किया।' यह कथा शत-पथ—ब्राह्मणमें विस्तारके साथ दी है (श. प. ब्रा. १४।१।१।१८-२६)। अस्तु। इस तरह दधीचिकी कथा अनेक प्रकारसे आयी है। मंत्र, ब्राह्मण और पुराणोंसे इस कथाका उद्धरण करके सबकी संगति लगानी चाहिये। यह एक बडाभारी खोजका विषय है।

ऋषियोंके स्तोत्रोंके साथ इन्द्रके रथके घोडे जोतनेकी बात मंत्र २ और ३ में आगयी है। यह इन्द्रके उत्सवकी बात प्रतीत होती है। (इसी ऋ. १।८२में मंत्र ६ पर टिप्पणी देखो, वहां भी यही बात कही है।) इन्द्रके लिये सोम देनेका वर्णन मंत्र १,४,५ आदिमें हैं। सोम कूटनेके पत्थरोंका वर्णन मंत्र ३ है।

(हरी यच्छसे) इन्द्र घोडोंको अच्छी तरह चलाता है, वह (सु-अश्वः)अपने पास उत्तम घोडे रखता है, उसकी गति अधिक है, वह इन्द्र (रथी-तरः) उत्तम रथी है। (मं.६)वह दाता है (मर्ताय वसु विदयते), यह इन्द्र किसीके द्वारा पराजित नहीं होता (अ प्रति-स्कुतः) यह वर्णन मं. ७ में है।

(इन्द्रः अराधसं मर्तं पदा स्फुरत्) इन्द्र कंजूस मनुष्यको ठुकराकर नीचे गिराता है (म. ८), इन्द्र प्रभावी बल देता है (इन्द्रः उग्रं शवः पत्यते ।९)।

इन्द्रकी गौवें मधुर सोमरस पीती हैं (गौर्यः मध्वः पिबन्ति । १०)। इन्द्रके लिये दिये जानेवाले सोममें गौओंका दूध मिलाया जाता है (धेनवः सोमं श्रीणन्ति । म. ११)।

अन्य मंत्र स्पष्ट हैं जिनमें इन्द्रके प्रभावी शक्तिका वर्णन है।

यहां इन्द्र-प्रकरण समाप्त हुआ।

मरुत्-प्रकरण

वीरोंका काव्य

(१२) वीर मरुत्

(ऋ. १।८५) गोतमो राहूगणः । मरुतः । जगती; ५, १२ त्रिष्टुप् ।

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥ १ ॥
त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥ २ ॥
गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥ ३ ॥
वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ४ ॥

अन्वयः- १ ये सु-दंससः सप्तयः रुद्रस्य सूनवः यामन् जनयः न प्र शुम्भन्ते, मरुतः हि वृधे रोदसी चक्रिरे, घृष्वयः वीराः विदथेषु मदन्ति ॥

२ रुद्रासः दिवि सदः अधि चक्रिरे, अर्कं अर्चन्तः इन्द्रियं जनयन्तः पृश्नि-मातरः श्रियः अधि दधिरे, ते, उक्षितासः महिमानं आशत ॥

३ शुभ्राः गो-मातरः यत् अञ्जिभिः शुभयन्ते तनूषु वि-रुक्मतः दधिरे, विश्वं अभि-मातिनं अप बाधन्ते, एषां वर्त्मानि घृतं अनु रीयते ॥

४ ये सु-मखासः ऋष्टिभिः वि भ्राजन्ते, (हे) मरुतः ! यत् मनो-जुवः वृष-व्रातासः रथेषु पृषतीः आ अयुग्ध्वं, अ-च्युता चित् ओजसा प्र-च्यवयन्तः ॥

अर्थ- १ ये जो अच्छे कार्य करनेवाले, प्रगतिशील, महावीरके पुत्र वीर मरुत् बाहर जाते हैं, उस समय महिलाओंके समान अपने आपको सुशोभित करते हैं । मरुतोंनेही सबकी अभिवृद्धिके लिये द्युलोक एवं भूलोककी प्रस्थापना कर डाली तथा ये वीर शत्रुदलको तहसनहस करनेवाले शूर पुरुष हैं और यज्ञोंमें या रणांगणोंमें हर्षित हो उठते हैं ॥

२ शत्रुदलको रुलानेवाले वीरोंने आकाशमें अच्छा स्थान या घर बना रखा है । पूजनीय देवकी उपासना करते हुए, इन्द्रियोंमें विद्यमान शक्तिको प्रकट करते हुए, मातृभूमिके सुपुत्र वे वीर अपनी शोभा एवं चारुता बढा चुके हैं । वे अपने स्थानोंपर अभिषिक्त होकर बडप्पनको पा सके ॥

३ तेजस्वी, भूमिको माता समझनेवाले वीर जब अलंकारोंसे अपनेको सुशोभित करते हैं, अपनी सजावट करते हैं, तब वे अपने शरीरोंपर विशेष ढंगसे सुहानेवाले आभूषण पहनते हैं, वे सभी शत्रुओंको दूर हटा देते हैं, उनकी राहमें रुकावटें खडी कर देते हैं, इसलिये इनके मार्गोंपर घी जैसे पौष्टिक पदार्थ इन्हें पर्याप्त मात्रामें मिल जाते हैं ॥

४ जो तुम अच्छे यज्ञ करनेवाले वीर शस्त्रोंके साथ विशेष रूपसे चमकते हो, तथा हे मरुतो ! जब मनकी नाईं वेगसे जानेवाले और सामर्थ्यशाली संघ बनानेवाले तुम अपने रथोंमें धब्बेवाली हिरनियाँ जोडते हो, तब न हिलनेवाले सुदृढ शत्रुओंको भी अपनी शक्तिसे हिला देते हो ॥

प्र यद् रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥ ५

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥ +६

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद् वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥ ७

शूरा इवेद् युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥ ८

५ (हे) मरुतः! वाजे अद्रिं रंहयन्तः यत् रथेषु पृषतीः प्र अयुग्ध्वं, उत अ-रुषस्य धाराः वि स्यन्ति उदभिः भूम चर्म-इव वि उन्दन्ति ॥

६ वः रघु-स्यदः सप्तयः आ वहन्तु, रघु-पत्वानः बाहुभिः प्र जिगात, (हे) मरुतः! वः उरु सदः कृतं, बर्हिः आ सीदत, मध्वः अन्धसः मादयध्वम् ॥

७ ते स्व तवसः अवर्धन्त, महि-त्वना नाकं आ तस्थुः, उरु सदः चक्रिरे, यत् वृषणं मद-च्युतं विष्णुः आवत् ह प्रिये बर्हिषि अधि, वयः न, सीदत् ॥

८ शूराः-इव इत्, युयुधयः न जग्मयः, श्रवस्यवः न पृतनासु येतिरे, राजानः-इव त्वेष-संदृशः नरः, मरुद्भ्यः विश्वा भुवना भयन्ते ॥

५ हे वीर मरुतो! अन्नके लिये मेघोंको प्रेरणा देते हुए, जिस समय रथोंमें धब्बेवाली हिरनियाँ जोड देते हो, उस समय तनिक मटमैले दिखाई देनेवाले मेघकी जलधाराएँ वेगपूर्वक नीचे गिरने लगती हैं और उन जलप्रवाहोंसे भूमिको चमडेके जैसे भीगी या गीली कर डालते हैं ॥

६ तुम्हें वेगसे दौडनेवाले घोडे इधर ले आयँ, शीघ्र जानेवाले तुम अपनी भुजाओंमें विद्यमान शक्तिको पराक्रमद्वारा प्रकट करते हुए इधर आओ। हे वीर मरुतो! तुम्हारे लिये बडा घर, यज्ञस्थान हम तैयार कर चुके है, यहाँ दर्भमय आसनपर बैठ जाओ और मिठास भरे अन्नके सेवनसे सन्तुष्ट एवं हर्षित बनो ॥

७ वे वीर अपने बलसेही बढते रहते हैं। वे अपने बडप्पनके फलस्वरूप स्वर्गमें जा उपस्थित हुए। उन्होंने अपने निवासके लिये बडाभारी विस्तृत घर तैयार कर रखा है। जिस बल देनेवाले तथा आनन्द बढानेवालेका व्यापक परमात्मा स्वयंही रक्षण करता है, उस हमारे प्रिय यज्ञमें पछियोंकी नाईं पधार कर बैठो ॥

८ वीरोंके समान लडनेकी इच्छा करनेवाले योद्धाओंकी नाईं शत्रुपर हमला करनेवाले तथा यशकी इच्छा करनेवाले वीरोंके जैसे ये वीर संग्राममें बडाभारी पुरुषार्थ कर दिखलाते हैं। राजाओंके समान तेजस्वी दिखाई देनेवाले ये नेता वीर हैं, इसलिये इन मरुतोंसे सारे लोक भयभीत हो उठते हैं ॥

+ अथर्व २०।१३।२
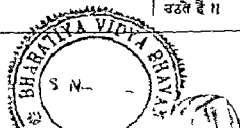
त्वष्टा यद् वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन् वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥ ९ ॥
ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद् बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥ १० ॥
जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥ ११ ॥
या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥ १२ ॥

९ सु-अपाः त्वष्टा यत् सु-कृतं हिरण्ययं सहस्र-भृष्टिं वज्रं अवर्तयत् इन्द्रः नरि अपांसि कर्तवे धत्ते, अर्णवं वृत्रं अहन्, अपां निः औब्जत् ॥

१० ते ओजसा ऊर्ध्वं अवतं नुनुद्रे, दादृहाणं पर्वतं चित् वि बिभिदुः, सु-दानवः मरुतः सोमस्य मदे वाणं धमन्तः रण्यानि चक्रिरे ॥

११ अवतं तया दिशा जिह्मं नुनुद्रे, तृष्णजे गोतमाय उत्सं असिञ्चन्, चित्र-भानवः अवसा ईं आ गच्छन्ति, धामभिः विप्रस्य कामं तर्पयन्त ॥

१२ (हे) मरुतः ! शशमानाय त्रि-धातूनि वः या शर्म सन्ति, दाशुषे अधि यच्छत, तानि अस्मभ्यं वि यन्त, (हे) वृषणः ! नः सु-वीरं रयिं धत्त ॥

९ अच्छे कौशल्यपूर्ण कार्य करनेवाले कारीगरने जो अच्छी तरह बनाया हुआ, सुवर्णमय, सहस्र धाराओंसे युक्त वज्र इन्द्रको दे दिया, उस हथियारको इन्द्रने मानवोंमें प्रचलित युद्धोंमें वीरतापूर्ण कार्य कर दिखानेके लिये धारण किया और जलको रोकनेवाले शत्रुको मार डाला तथा जलको जानेके लिये उन्मुक्त कर दिया ॥

१० वे वीर अपनी शक्तिसे ऊँची जगह विद्यमान तालाब या झीलके पानीको प्रेरित कर चुके और इस कार्यके लिये राहमें रोडे अटकानेवाले पर्वतको भी छिन्नविच्छिन्न कर चुके। पश्चात् उन अच्छे दानी मरुतोंने सोमपानसे उद्भूत आनन्दसे वाण बाजा बजा कर रमणीय गानोंका सृजन किया ॥

११ वे वीर झीलका पानी उस दिशामें टेढी राहसे ले गये और प्यासके मारे अकुलाते हुए गोतमके लिये जलकुंडमें उस जलका झरना बहने दिया । इस भाँति वे अति तेजस्वी वीर संरक्षक शक्तियोंके साथ आ गये और अपनी शक्तियोंसे उस ज्ञानीकी लालसाको तृप्त किया ॥

१२ हे वीर मरुतो ! शीघ्र गतिसे जानेवालोंको देनेके लिये तीन प्रकारकी धारक शक्तियोंसे मिलनेवाले तुम्हारे जो सुख विद्यमान हैं और जिन्हें तुम दानीको दिया करते हो, उन्हें हमें दो। हे बलवान् वीरो ! हमें अच्छे वीरोंसे युक्त धन दे दो ।

(१३) वीर मरुत्

(ऋ. १।८६) गोतमो राहूगणः । मरुतः । गायत्री ।

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥ १ ॥ ×

अन्वयः- १ (हे) वि-महसः मरुतः ! दिवः यस्य हि क्षये पाथ, सः सु-गोपातमः जनः ॥

अर्थ- १ हे विलक्षण ढंगसे तेजस्वी वीर मरुतो! अन्तरिक्षमेंसे पधार कर जिसके घरमें तुम सोमरस पीते हो, वह अत्यन्त ही सुरक्षित मानव है ॥

× अथर्व. २०।१।२

यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् ।	मरुतः शृणुता हवम्	२
उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत ।	स गन्ता गोमति व्रजे	३
अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु ।	उक्थं मदश्च शस्यते	४
अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।	सूरं चित् सस्रुषीरिषः	५
पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् ।	अवोभिश्चर्षणीनाम्	६
सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः ।	यस्य प्रयांसि पर्षथ	७
शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः ।	विदा कामस्य वेनतः	८
यूयं तत् सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना ।	विध्यता विद्युता रक्षः	९
गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् ।	ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि	१०

२ (हे) यज्ञ-वाहसः मरुतः ! यज्ञैः वा विप्रस्य मतीनां वा, हवं शृणुत ॥

३ उत वा यस्य वाजिनः विप्रं अनु अतक्षत, सः गो-मति व्रजे गन्ता ॥

४ दिविष्टिषु बर्हिषि अस्य वीरस्य सोमः सुतः, उक्थं मदः च शस्यते ॥

५ विश्वाः चर्षणीः, सूरं चित्, इषः सस्रुषीः, यः अभि-भुवः अस्य आ श्रोषन्तु ॥

६ (हे) मरुतः ! चर्षणीनां अवोभिः वयं पूर्वीभिः शरद्भिः हि ददाशिम ॥

७ (हे) प्र-यज्यवः मरुतः ! सः मर्त्यः सु-भगः अस्तु, यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥

८ (हे) सत्य-शवसः मरुतः ! शशमानस्य स्वेदस्य वेनतः वा कामस्य विद ॥

९ (हे) सत्य-शवसः ! यूयं तत् आविः कर्त, विद्युता महित्वना रक्षः विध्यत ॥

१० गुह्यं तमः गूहत, विश्वं अत्रिणं वि यात, यत् ज्योतिः उश्मसि कर्त ॥

२ हे यज्ञका गुरुतर भार उठानेवाले मरुतो! यज्ञोंके द्वारा या विद्वान्‌की बुद्धिकी सहायतासे तुम हमारी प्रार्थना सुनो ॥

३ अथवा जिसके बलवान् वीर ज्ञानीके अनुकूल हो, उसे श्रेष्ठ बना देते हैं, वह अनेक गौओंसे भरे प्रदेशमें चला जाता है, अर्थात् वह अनगिनती गौएँ पाता है ॥

४ इष्टिके दिनमें होनेवाले यज्ञमें इस वीरके लिये सोमका रस निचोडा जा चुका है। अब स्तोत्रका गान होता है और सोमरससे उद्भूत आनन्दकी प्रशंसा की जाती है ॥

५ सभी मानवोंको तथा विद्वान्‌को भी अन्न मिल जाय, इसलिये जो शत्रुका पराभव करता है, उसका काव्य-गायन सभी वीर सुन लें ॥

६ हे वीर मरुतो ! कृषकोंकी तथा मानवोंकी समुचित रक्षा करनेकी शक्तियोंसे युक्त हम लोग अनेक वर्षोंसे सचमुच दान देते आ रहे हैं ॥

७ हे पूज्य मरुतो ! वह मनुष्य अच्छे भाग्यवाला रहता है कि जिसके अन्नका सेवन तुम करते हो ॥

८ हे सत्यसे उद्भूत बलसे युक्त मरुतो ! शीघ्र गतिके कारण पसीनेसे भीगे हुए, तथा तुम्हारी सेवा करनेवालेकी अभिलाषा पूर्ण करो ॥

९ हे सत्यके बलसे युक्त वीरो ! तुम वह अपना बल प्रकट करो। उस अपने तेजस्वी बलसे राक्षसोंको मार डालो ॥

१० गुफामें विद्यमान अँधेरा ढँक दो, विनष्ट करो। सभी पेटू दुरात्माओंको दूर कर दो। जिस तेजको हम पानेके लिये लालायित हैं, वह हमें दिला दो॥

(१४) वीर मरुत्

(ऋ. १।८७) गोतमो राहूगणः । मरुतः । जगती ।

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ॥ १ ॥
उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित् पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ २ ॥
प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥ ३ ॥
स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गणो३ऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः ।
असि सत्य ऋणयावानेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥ ४ ॥

अन्वयः- १ प्र-त्वक्षसः प्र-तवसः वि-रप्शिनः अन्-आनताः अ-विथुराः ऋजीषिणः जुष्ट-तमासः नृ-तमासः के चित् उस्राः-इव स्तृभिः वि आनज्रे ॥

२ (हे) मरुतः ! वयः इव केन चित् पथा यत् उपह्वरेषु ययिं अचिध्वं, वः रथेषु कोशाः उप श्चोतन्ति, अर्चते मधु-वर्णं घृतं आ उक्षत ॥

३ यत् ह शुभे युञ्जते, एषां अज्मेषु यामेषु भूमिः विथुरा इव प्र रेजते, ते क्रीळयः धुनयः भ्राजत्-ऋष्टयः धूतयः स्वयं महित्वं पनयन्त ॥

४ सः हि गणः युवा स्व-सृत् पृषत्-अश्वः तविषीभिः आवृतः अया ईशानः । अध सत्यः ऋण-यावा अ-नेद्यः वृषा गणः अस्याः धियः प्र अविता असि ॥

अर्थ- १ शत्रुदलको क्षीण करनेवाले, अच्छे बलशाली, बडेभारी वक्ता, किसीके सम्मुख शीश न झुकानेहारे, न बिछुडनेवाले अर्थात् एकतापूर्वक जीवनयात्रा बितानेवाले, सोमरस पीनेवाले या सीदा-सादा तथा सरल बर्ताव रखनेवाले, जनताको अतीव सेव्य प्रतीत होनेवाले तथा नेताओंमें प्रमुख ये वीर सूर्यकिरणोंके समान वस्त्र तथा अलंकारोंसे युक्त होकर प्रकाशमान होते हैं ॥

२ हे वीर मरुतो ! पंछीकी नाईं किसीभी मार्गसे आकर जब हमारे समीप आनेवालोंको तुम इकट्ठे करते हो, तब तुम्हारे रथोंमें विद्यमान भण्डार हमपर धनकी वर्षा करने लगते हैं और पूजा करनेवाले उपासकके लिये मधुकी नाईं स्वच्छ वर्णवाले घी या जलकी तुम वर्षा करते हो ॥

३ जब सचमुच ये वीर अच्छे कर्म करनेके लिये कटिबद्ध हो उठते हैं, तब इनके वेगवान् हमलोंमें पृथ्वीतक अनाथ नारीके समान बहुतही काँपने लगती है। वे खिलाडीपनके भावसे प्रेरित, गतिशील, चपल, चमकीले हथियारोंसे युक्त, शत्रुको विचलित कर देनेवाले वीर अपना महत्त्व या बडप्पन विख्यात कर डालते हैं ॥

४ वह वीरोंका संघ सचमुचही यौवनपूर्ण, स्वयंप्रेरक, रथमें धब्बेवाले घोडे जोडनेवाला और भाँतिभाँतिके बलोंसे युक्त रहनेके कारण इस संसारका प्रभु एवं स्वामी बननेके लिये उचित एवं सुयोग्य है। और वह सचाईसे बर्ताव करनेवाला तथा ऋण दूर करनेवाला, अनिन्दनीय और बलवान् दीख पडनेवाला यह संघ इस हमारे कर्म तथा ज्ञानकी रक्षा करनेवाला है ॥

पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ५
श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ६

५ प्रत्नस्य पितुः जन्मना वदामसि, सोमस्य चक्षसा जिह्वा प्र जिगाति, यत् शमि ईं इन्द्रं ऋक्वाणः आशत, आत् इत् यज्ञियानि नामानि दधिरे ॥

६ ते कं श्रियसे भानुभिः रश्मिभिः सं मिमिक्षिरे, ते ऋक्वभिः सु-खादयः वाशी-मन्तः इष्मिणः अभीरवः ते प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः विद्रे ॥

५ पुरातन पितासे जन्म पाये हुए हम कहते हैं कि, सोमके दर्शनसे जीभ (वाणी) प्रगति करती है, अर्थात् वीरोंके काव्यका गायन करती है । जब ये वीर शत्रुको शान्त करनेवाले युद्धमें उस इन्द्रको स्फूर्ति देकर सहायता करते हैं, तभी वे प्रशंसनीय नाम-यश धारण करते हैं ॥

६ वे वीर मरुत् सबको सुख मिले, इसलिये तेजस्वी किरणोंसे सब मिलकर वर्षा करना चाहते हैं । वे कवियोंके साथ उत्तम अन्नका सेवन करनेहारे या अच्छे आभूषण धारण करनेवाले, कुल्हाडी धारण करनेवाले, वेगसे जानेवाले तथा न डरनेवाले वे वीर प्रिय मरुतोंके स्थानको पाते हैं ॥

(१५) वीर मरुत्

(ऋ. १।८८) गोतमो राहूगणः । मरुतः । त्रिष्टुप्; १, ६ प्रस्तारपंक्तिः; ५ विराड्रूपा ।

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः १
तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान् पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम २

अन्वयः— १ (हे) मरुतः ! विद्युन्मद्भिः सु-अर्कैः ऋष्टिमद्भिः अश्व-पर्णैः रथेभिः आ यात, (हे) सु-मायाः ! वर्षिष्ठया इषा, वयः न, आ पप्तत ॥

२ ते अरुणेभिः पिशङ्गैः रथ-तूर्भिः अश्वैः शुभे वरं कं आ यान्ति, रुक्मः न चित्रः, स्वधितिवान्, रथस्य पव्या भूम जङ्घनन्तः ॥

अर्थ— १ हे वीर मरुतो ! बिजलीसे-युक्त या बिजलीकी भाँई अति तेजस्वी, अतिशय पूज्य, हथियारोंसे सजे हुए तथा घोडोंसे युक्त होनेके कारण वेगसे जानेवाले, रथोंसे इधर आओ । हे अच्छे कुशल वीरो ! तुम श्रेष्ठ अन्नके साथ पंछियोंके समान वेगपूर्वक हमारे निकट चले आओ ॥

२ वे वीर रश्मि दीख पडनेवाले तथा भूरे बदामी वर्णवाले और त्वरापूर्वक रथ खींचनेवाले घोडोंके साथ शुभ कार्य करनेके लिये और उच्च कोटिका कल्याण संपादन करनेके लिये, सुख देनेके लिये आते हैं । वह वीरोंका संघ सुवर्णकी भाँति प्रेक्षणीय तथा शस्त्रोंसे युक्त है । ये वीर वाहनके पहियोंकी लोहपट्टिकाओंसे समूची पृथ्वीपर गति करते हैं, गतिशील बनते हैं ॥

श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा।
युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ॥ ३ ॥
अहानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम्।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ॥ ४ ॥
एतत् त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः।
पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान् विधावतो वराहून् ॥ ५ ॥
एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी।
अस्तोभयद् वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥ ६ ॥

---

३ श्रिये कं वः तनूषु अधि वाशीः (वर्तते), वना न मेधा ऊर्ध्वा कृणवन्ते, (हे) सु-जाताः मरुतः ! तुवि-द्युम्नासः युष्मभ्यं कं अद्रिं धनयन्ते ॥

३ विजयश्री तथा सुख पानेके लिये तुम्हारे शरीरोंपर आयुध लटकते रहते हैं; वनके वृक्षोंके समान (अर्थात् वनोंमें पेड जैसे ऊँचे बढते हैं, उसी तरह तुम्हारे उपासक तथा भक्त) अपनी बुद्धिको उच्च कोटिकी बना देते हैं। हे अच्छे परिवारमें उत्पन्न वीर मरुतो ! अत्यन्त दिव्य मनसे युक्त तुम्हारे भक्त, तुम्हें सुख देनेके लिये पर्वतसे भी धनका सृजन करते हैं। [पर्वतोंपरसे सोमसदृश वनस्पति लाकर तुम्हारे लिये अन्न तैयार करते हैं।]

४ (हे) गोतमासः ! गृध्राः वः अहानि परि आ अगुः, वार्कार्यां च इमां देवीं धियं अर्कैः ब्रह्म कृण्वन्तः, पिबध्यै उत्स-धिं ऊर्ध्वं नुनुद्रे ॥

४ हे गोतमो ! जलकी इच्छा करनेवाले तुम्हें अब अच्छे दिन प्राप्त हो चुके हैं। अब तुम जलसे करनेयोग्य इन दिव्य कर्मोंको पूज्य मंत्रोंसे ज्ञानसे पवित्र करो। पानी पीनेके लिये मिले, सुगमता हो, इसलिये अब ऊपर रखे हुए कुंडके जलको तुम्हारी ओर नहरद्वारा पहुंचाया गया है॥

५ (हे) मरुतः ! हिरण्य-चक्रान् अयो-दंष्ट्रान् वि-धावत वर-आहून् वः पश्यन् गोतमः यत् एतत् योजनं सस्वः ह त्यत् न अचेति ॥

५ हे वीर मरुतो ! स्वर्णाविभूषित पहियेकी शकलके हथियार धारण करनेवाले फौलादकी तेज डाढोंसे धाराओंसे युक्त हथियार लेकर भाँति भाँतिके प्रकारोंसे शत्रुओंपर दौडकर टूट पडनेवाले और बलिष्ठ शत्रुओंका विनाश करनेवाले तुम्हें देखनेवाले ऋषि गोतमने जो यह तुम्हारी आयोजना-छन्दोबद्ध स्तुति गुप्त रूपसे वर्णित कर रखी है, वह सचमुच अवर्णनीय है।

६ (हे) मरुतः ! गभस्त्योः स्व-धां अनु स्या एषा अनु-भर्त्री वाघतः वाणी न वः प्रति स्तोभति, आसां वृथा अस्तोभयत् ॥

६ हे वीर मरुतो ! तुम्हारे बाहुओंकी धारक शक्तिको (शूरताको) ध्यानमें रख कर वही यह तुम्हारे यशका पोषण करनेवाली हम जैसे स्तोताओंकी वाणी अब तुममेंसे प्रत्येकका वर्णन करती है। पहले भी इन वाणियोंने किसी विशेष हेतुके सिवा इसी भाँति सराहना की थी॥

वीर-काव्यमें वीररस

(ऋ. १।८५)

यह मरुद्देवताका प्रकरण है और इसमें मरुतोंका काव्य है। (मर्-उत्) मरनेतक उठकर लडनेवाले ये वीर हैं। मरनेके लिये तैयार ये वीर हैं। देश, धर्म, जातिका संमान सुरक्षित रखनेके लिये ये वीर कटिबद्ध रहते हैं, इसलिये इनका महत्त्व वैदिक वाङ्मयमें अत्यंत अधिक है। यहां गोतम ऋषिके मरुद्देवताके उद्देश्यसे गाये चार सूक्त और ३४ मंत्र हैं। इन मंत्रोंमें वीरोंका वीररस बढानेवाला बहुतही अच्छा वर्णन है। ये मंत्र अथवा इनका अर्थ ध्यानपूर्वक पढनेसे पढनेवालेके मनमें वीरश्री उत्पन्न होती है, उत्साह बढ जाता है और कुछ शुभ कर्म करके दिखानेका भाव बढता है। इन मंत्रोंमें विशेष मनन करनेयोग्य मंत्रभाग ये हैं—

१ सुदंससः सप्तयः, जनयः न, प्रशुम्भन्ते(१२।१)- उत्तम शुभ कर्म करनेवाले, सात सातकी कतारोंमें जानेवाले ये वीर मरुत्, स्त्रियोंके समान, अपने आपको सजाते हैं। यहां सैनिक कैसे अपने गणवेषसे सजकर रहते हैं, वह पाठक देखें। मरुत् भी आजकलके सैनिकोंके समानही सजते थे।

२ धृष्वयः वीराः विदथेषु मदन्ति (१२।१)- शत्रुका नाश करनेवाले ये प्रबल वीर युद्धोंमें जानेसे आनन्दित होते हैं। युद्ध करनेके लिये ये उत्सुक तथा उत्साहित रहते हैं।

३ पृश्निमातरः महिमानं आशत (१२।२)- जन्मभूमिको माता माननेवाले ये वीर अपने पराक्रमके कारण महत्त्वको प्राप्त करते हैं। ये वीर मातृभूमिके भक्त हैं और यही उनके महत्त्वका कारण है।

४ गोमातरः अञ्जिभिः शुभयन्ते, तनूषु विरुक्मतः दधिरे (१२।३)- गौको माता माननेवाले अथवा मातृभूमिको माता माननेवाले ये वीर अलंकारोंसे अपने शरीरोंको सजाते हैं, शरीरोंपर विशेष अलंकार धारण करते हैं। सैनिक अपने शरीर सदाही सजाते हैं और प्रत्येक आभूषण और शस्त्र चमकदार रखते हैं। इसलिये अच्छी सजावट दीखती है।

५ विश्वं अभिमातिनं अपबाधन्ते (१२।३)- सब शत्रुका अच्छी तरह प्रतिकार करते हैं, शत्रुको रहने नहीं देते। वीरतासे लडकर शत्रुको पूर्णतया परास्त करते हैं।

६ ये सुमखासः ऋष्टिभिः विभ्राजन्ते (१२।४)- ये उत्तम कर्म करनेवाले वीर चमकदार शस्त्रास्त्र धारण करनेसे विशेषही शोभते हैं।

७ मनोजुवः वृषव्रातासः रथेषु पृषतीः आ अयुग्ध्वं अच्युता चित् ओजसा प्र च्यावयन्तः (१२।४)- अपने रथोंमें मनके समान वेगवाले, प्रबल संघ करनेवाले, धब्बोंवाले घोडियोंको जोतते हैं और सुस्थिर हुए शत्रुओंको भी अपने बलसे उखाडकर फेंक देते हैं।

८ रघुष्यदः सप्तयः आ वहन्तु (१२।६)- शीघ्रगामी घोडोंसे ये वीर आते हैं अर्थात् इनके घोडे वेगवाले होते हैं।

९ रघुपत्वानः बाहुभिः प्र जिगात (१२।६)- शीघ्रगामी वीरो! अपने शक्तिवाले बाहुओंके द्वारा पराक्रम प्रकट करते हुए आओ।

१० वः उरु सदः कृतं बर्हिः आसदित (१२।६)- इन वीरोंके लिये बडा घर बनाया है, उसमें आसनोंपर ये बैठते हैं। आजकल सैनिकोंका घर अनेकोंके लिये जैसा एक होता है, वैसाही यह घर है, जो सब मरुतोंके लिये एकही है।

११ ते स्वतवसः अवर्धन्त (१२।७)- ये वीर अपने बलसेही बढते हैं। इनका बल इतना होता है कि इसी बलके कारण इनका महत्त्व समझा जाता है।

१२ उरु सदः चक्रिरे (१२।७) इनके रहनेके लिये बडा विस्तृत घर बनाया है, जिसमें ये सब रहते हैं।

१३ शूरा इव, युयुधयः न जग्मयः, श्रवस्यवः न पृतनासु येतिरे, राजानः इव त्वेषसंदृशः नरः, मरुद्भ्यः विश्वा भुवना भयन्ते (१२।८)- ये शूर हैं, युद्ध करनेवाले वीरोंके समान ये शत्रुपर चढाई करके हमला करते हैं, यशप्राप्तिकी इच्छासे लडनेवाले वीरोंके समान ये सेनाओंमें कार्य करते हैं, राजाओंके समान ये तेजस्वी नेता वीर हैं। इन वीरोंसे सब लोग भयभीत होते हैं।

(ऋ. १।८६)

१४ विश्वाः चर्षणीः इषः सचध्वे, यः अभिभुवः (१२।५)- सब मानवोंको अन्न मिले, इसलिये जो शत्रुका पराभव करता है (वही यथार्थ वीर है)।

१५ सत्यशवसः! तत् आविः कर्त, विद्युता महित्वना रक्षः विध्यत (१२।९)- हे सत्य बलवाले वीरो!

तुम अपना वह बल प्रकट करो कि जिस महत्त्वपूर्ण तेजस्वी बलसे राक्षसोंको मारते हो।

१६ विश्वं अत्रिणं वि यात (१३।१०)- सब पेटू दुष्टोंको दूर करो।

(ऋ १।८७)

१७ (प्रत्वक्षसः) शत्रुदलको परास्त करनेवाले, (प्र-तवसः) बडे बलशाली, (विरप्शिनः) अच्छे वक्ता, (अनानताः) किसीके सामने सिर न झुकानेवाले, (अविथुराः) विभक्त न होनेवाले, एकतामें रहनेवाले, (नृतमासः) मनुष्योंमें श्रेष्ठ, वीरोंमें श्रेष्ठ, नेताओंमें श्रेष्ठ नेता वीर ये मरुत् हैं। (१४।१)

१८ ते धुनयः भ्राजदृष्टयः धूतयः स्वयं महित्वं पनयन्त (१४।३)— वे वेगवान् वीर तेजस्वी शस्त्र ले कर शत्रुको उखाड कर फेंक देते हैं और स्वयं महत्त्वको प्राप्त करते हैं। इस तरह ये प्रचण्ड वीर शूर योद्धा हैं।

१९ सः गणः युवा स्वसृत् तविषीभिः आवृतः अया ईशानः (१४।४)— वह तरुण वीरोंका संघ स्वयं प्रेरणासे आगे बढनेवाला, अनेक शक्तियोंसे युक्त तथा आगे बढकर संसारका स्वामी बननेयोग्य है।

२० सः वृषा गणः ऋणयावा अनेद्यः धिया प्र अविता (१४।४)- वह बलवान् वीरोंका संघ ऋण दूर करनेवाला, अनिंदनीय कर्म करनेवाला, अपनी बुद्धिसे सबकी सुरक्षा करता है।

२१ ते वाशीमन्तः इष्मिणः अभीरवः (१४।४)- वे वीर शस्त्र धारण करनेवाले, वेगसे शत्रुपर हमला करनेवाले तथा निर्भय है। निडर वीर हैं।

(ऋ. १।८८)

२२ ऋष्टिमद्भिः अश्वपर्णैः रथेभिः आ यात (१५। १)- शस्त्रास्त्रोंके साथ वेगवान् घोडोंसे युक्त रथोंसे वे वीर यहां आवें।

२३ स्वधीतिमान् रथस्य पव्या भूम जङ्घनन्तः (१५।२)- यह वीरोंका संघ अपने शस्त्र लेता है और रथचक्रकी पट्टीसे भूमिको खोदता जाता है। इतना वेगसे जाता है कि जिसके रथके चक्रसे भूमि खुदी जाती है।

२४ तनूषु अधि वाशीः (१५।३)- इन वीरोंके शरीरोंपर शस्त्र लटक रहे हैं।

२५ अयोदंष्ट्रान् विधावतः वराहून् पश्यन् (१५। ५)— फौलादकी तेज डाढोंके सदृश धाराओंसे युक्त हथियार लेकर शत्रुपर टूट पडनेवाले और बलिष्ठ शत्रुओंको आह्वान देकर लडनेवाले ये वीर हैं।

इस तरह इस वीर-काव्यमें वीरोंका वर्णन है। पाठक सब काव्य इस तरह पढें, वीरताके उपदेश देखें और उससे बोध लेकर जीवनमें ढालें।

यहां मरुत्प्रकरण समाप्त हुआ।

विश्वे देव-प्रकरण

(१६) दीर्घायुकी प्राप्ति

(ऋ १।८९) गोतमो राहूगण.। विश्वे देवा.; (१-२, ८-९ देवा., १० अदितिः)। जगती; ६ विराट्-स्थाना; ८-१० त्रिष्टुप्।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ १ ॥

अन्वयः— १ भद्राः अदब्धासः अपरीतासः उद्भिदः क्रतवः विश्वतः नः आ यन्तु। अप्रायुवः दिवेदिवे रक्षितारः देवाः सदं इत् यथा वृधे असन् ॥

अर्थ— १ कल्याणकारक, न दब जानेवाले, पराभूत न होनेवाले, उच्चताको पहुंचनेवाले शुभ कर्म चारों ओरसे हमारे पास आजायें। प्रगतिको न रोकनेवाले, प्रतिदिन सुरक्षा करनेवाले देव हमारा सदा संवर्धन करनेवाले हों ॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे　　२
तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्　　३
तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः ।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्　　४
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये　　५
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु　　६
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह　　७

---

२ ऋजूयतां देवानां भद्रा सुमतिः, (तथा) देवानां रातिः नः अभि नि वर्तताम् । वयं देवानां सख्यं उप सेदिम । देवाः नः आयुः जीवसे प्र तिरन्तु ॥

३ तान् पूर्वया निविदा वयं हूमहे, भगं, मित्रं, अदितिं, दक्षं, अस्रिधं (मरुद्गणं), अर्यमणं, वरुणं, सोमं, अश्विना, सुभगा सरस्वती नः मयः करत् ॥

४ वातः तत् मयोभु भेषजं नः वातु । माता पृथिवी तत्, पिता द्यौः तत् (नः प्रापयतु), सोमसुतः मयोभुवः ग्रावाणः तत् (नः प्रापयन्तु), हे धिष्ण्या अश्विना ! युवं तत् शृणुतम् ॥

५ जगतः तस्थुषः पतिं धियं जिन्वं तं ईशानं वयं अवसे हूमहे । पूषा नः वेदसां वृधे रक्षिता यथा असत्, (तथा) अदब्धः स्वस्तये पायुः (भवतु) ॥

६ वृद्धश्रवाः इन्द्रः नः स्वस्ति, विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति, अरिष्टनेमिः तार्क्ष्यः नः स्वस्ति, बृहस्पतिः नः स्वस्ति दधातु ॥

७ पृषदश्वाः पृश्निमातरः शुभंयावानः विदथेषु जग्मयः अग्निजिह्वाः मनवः सूरचक्षसः मरुतः विश्वे देवाः नः इह अवसा आ गमन् ॥

२ सरल मार्गसे जानेवाले देवोंकी कल्याणकारक सुबुद्धि, (तथा) देवोंकी उदारता हमें प्राप्त होती रहे। हम देवोंकी मित्रता प्राप्त करें। देव हमें दीर्घ आयु हमारे दीर्घ जीवनके लिये देवें ॥

३ उन (देवों) को प्राचीन मंत्रोंसे हम बुलाते हैं। भग, मित्र, अदिति, दक्ष, विश्वासयोग्य (मरुतोंके गण), अर्यमा, वरुण, सोम, अश्विनीकुमार, भाग्ययुक्त सरस्वती हमें सुख देवे ॥

४ वायु उस सुखदायी औषधको हमारे पास बहा देवे। माता-भूमि उसको, पिता द्युलोक उस (औषधको हमें देवे)। सोमरस निकालनेवाले सुखकारी पत्थर वह (औषध हमें देवें)। हे बुद्धिमान् अश्विदेवों ! तुम वह (हमारा भाषण) सुनो ॥

५ स्थावर और जंगमके अधिपति, बुद्धिको प्रेरणा देनेवाले उस ईश्वरको हम अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं। (इससे) वह पोषणकर्ता देव हमारे ऐश्वर्यकी समृद्धि करनेवाला और सुरक्षा करनेवाला होगा। वह अपराजित देव हमारा कल्याण करे और संरक्षक होवे ॥

६ बहुत यशस्वी इन्द्र हमारा कल्याण करे, सर्वज्ञ पूषा हमारा कल्याण करे, जिसका रथचक्र अप्रतिहत चलता है, वह तार्क्ष्य हमारा कल्याण करे, बृहस्पति हमारा कल्याण करे ॥

७ धब्बोंवाले घोडोंसे युक्त, भूमिको माता माननेवाले, शुभ कर्म करनेके लिये जानेवाले, युद्धोंमें पहुंचनेवाले, अग्निके समान तेजस्वी जिह्वा (भाषण करने) वाले, मननशील, सूर्यके समान तेजस्वी मरुत् रूपी सब देव हमारे यहां अपनी सुरक्षाओंके साथ आ जायें ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ८
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ९
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् १०

८ हे देवाः! कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम। हे यजत्राः! अक्षभिः भद्रं पश्येम । स्थिरैः अङ्गैः तनूभिः तुष्टुवांसः यत् आयुः देवहितं वि अशेम ॥

९ हे देवाः ! शरदः शतं अन्ति इत् नु । नः तनूनां जरसं यत्र चक्र, यत्र पुत्रासः पितरः भवन्ति । नः आयुः गन्तोः मध्या मा रीरिषत ॥

१० अदितिः द्यौः, अदितिः अन्तरिक्षं, अदितिः माता, सः पिता, सः पुत्रः, अदितिः विश्वे देवाः, अदितिः पञ्चजनाः, अदिति. जातं जनित्वं (च) ॥

८ हे देवों ! कानोंसे हम कल्याणकारक (भाषण) सुनें। हे यज्ञके योग्य देवो ! आखोंसे हम कल्याणकारक वस्तु देखें। स्थिर सुदृढ अवयवोंसे युक्त शरीरोंसे (युक्त हम तुम्हारी) स्तुति करते हुए, जितनी हमारी आयु है, वहांतक हम देवोंका हित ही करेंगे ॥

९ हे देवो ! सौ वर्षतकही (हमारे आयुष्यकी मर्यादा) है। उसमें भी हमारे शरीरोंका बुढापा (तुमने) किया है, तथा आज जो पुत्र हैं वेही आगे पिता होनेवाले हैं, इसलिये हमारी आयु बीचमेंही न टूट जाय (ऐसा करो)॥

१० अदितिही द्युलोक है, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, सब देव, पञ्चजन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद), जो बन चुका है और जो बननेवाला है, वह सब अदिति ही है ॥

(१७) ऋजु नीति

(ऋ. १।९०) गोतमो राहूगणः । विश्वे देवाः । गायत्री; ९ अनुष्टुप् ।

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः १
ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः । व्रता रक्षन्ते विश्वाहा २
ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः । बाधमाना अप द्विषः ३
वि नः पथः सुवितायं चियन्त्विन्द्रो मरुतः । पूषा भगो वन्द्यासः ४

अन्वयः- १ विद्वान् मित्रः वरुणः च नः ऋजुनीती नयतु । देवैः सजोषाः अर्यमा च (नयतु) ॥

२ ते हि वस्वः वसवानाः, ते अप्रमूराः, महोभिः विश्वाहा व्रता रक्षन्ते ॥

३ द्विषः अपबाधमाना अमृताः ते मर्त्येभ्यः अस्मभ्यं शर्म यंसन् ॥

४ वन्द्यासः इन्द्रः मरुतः पूषा भगः (देवाः) सुविताय नः पथः वि चियन्तु ॥

अर्थ- १ ज्ञानी मित्र और वरुण हमें सरल नीतिके मार्गसे ले जावें। देवोंके साथ उत्साही अर्यमा भी (हमें वैसेही सरल मार्ग से ले जावे)॥

२ वे धनके स्वामी, वे विशेष ज्ञानी, अपने सामर्थ्योंसे सर्वदा अपने नियमोंकी सुरक्षा करते हैं ॥

३ दुष्टोंका नाश करनेवाले वे अमर देव हम मानवोंके लिये शान्तिसुख देते हैं ॥

४ वन्दनके योग्य इन्द्र, मरुत्, पूषा, भग (ये देव) कल्याण करनेके हेतु हमारे लिये मार्ग निश्चित करें ॥

उत नो धियो गोअग्राः पूषन् विष्णवेवयावः । कर्ता नः स्वस्तिमतः ५
मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ६
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ७
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ८
शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ९

५ हे पूषन्, हे विष्णो, हे एवयावः (मरुतः)! (यूयं) नः धियः गोअग्राः कर्त । उत नः स्वस्तिमतः (कर्त) ॥

५ हे पूषा! हे विष्णो! हे गतिमान् (मरुतो)! तुम हमारी बुद्धियोंको मुख्यतः गौओंका विचार करनेवाली बनाओ। और हमें कल्याणसे युक्त करो।

६ ऋतायते वाताः मधु क्षरन्ति, सिन्धवः मधु (क्षरन्ति)। ओषधीः नः माध्वीः सन्तु ॥

६ सरल आचरण करनेवालेके लिये वायु माधुर्यको बहा कर ले आवे, नदियां मीठा रस (बहाते ले आवें), औषधियां हमारे लिये मीठी हों।

७ नक्तं नः मधु, उत उषसः (मधुमन्ति), पार्थिवं रजः मधुमत्, पिता द्यौः मधु (भवतु) ॥

७ रात्रि मधुरता देवे, उषाएं (मधुरता लावें), पृथ्वी और अन्तरिक्ष मधुरता ले आवे, पिता द्युलोक मधुर होवे ॥

८ वनस्पतिः नः मधुमान्, सूर्यः मधुमान् अस्तु। गावः नः माध्वीः भवन्तु ॥

८ वनस्पतियां हमारे लिये मधुर हों, सूर्य मधुरता देवे। गौवें हमारे लिये मधुर हों।

९ मित्रः नः शं, वरुणः शं, अर्यमा नः शं भवतु। बृहस्पतिः इन्द्रः (च) नः शं, उरुक्रमः विष्णुः नः शं (भवतु) ॥

९ मित्र हमारे लिये शान्ति देवे, वरुण और अर्यमा हमें शान्ति देनेवाले हों। बृहस्पति और इन्द्र हमें शान्ति देवे, विशेष प्रगति करनेवाला विष्णु हमें शान्ति देवे।

दशम मण्डल

(१८) वायु

(ऋ. १०।१३७) गोतमः। विश्वे देवाः, वातः। अनुष्टुप्।

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः। त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ३

१ हे वात! भेषजं आ वाहि, हे वात! यद् रपः वि वाहि। हि त्वं विश्वभेषजः देवानां दूतः ईयसे ॥

१ हे वायु! औषध बहा कर ले आ। हे वायु! जो दोष है वह बहा कर ले जा। क्योंकि तू सब औषधिगुणसे युक्त है और देवोंका दूत होकर बहता है।

विश्वे देवा देवता

इन दो सूक्तोंका देवता ' विश्वे देवाः ' है। यह कोई एक देवता नहीं है। ' विश्वे देवाः ' का अर्थ ' सब देवता ' है। अनेक देवताएं जिन मंत्रोंमें होती हैं, उन मंत्रोंका देवता ' विश्वे देवाः ' माना जाता है। ' विश्वे देवाः, नाना देवताः, सर्वे देवाः, बहु-देवतं ' का अर्थ समानही है। इस सूक्तके मंत्रोंमें कैसी देवताएं हैं वह अब देखिये, इससे पता लग जायगा कि विश्वे देवा क्या है—

१ मित्र, वरुण, अर्यमा आदि देव हमें सरल नीतिके मार्गसे चलावें। तेढे मार्गपर हमें न चलावें। (मं. १)

२ (**ते महोभिः व्रता रक्षन्ते**)– वे अपनी शक्तियोंसे नियमोंको सुरक्षित रखते हैं, नियमोंको नहीं तोडते, इसलिये नियमोंकी रक्षा करनेके कारणही उनकी शक्ति बढी है। अर्थात् जो सुनीतिके सुनियमोंका यथायोग्य पालन करेंगे उनकी भी शक्ति बढेगी और वे श्रेष्ठ बनेंगे। यहां व्रतपालनका आदेश दिया है। (मं. २)

३ (**द्विषः अपबाधमानाः**) दुष्ट शत्रुओंको दूर करो, उनको प्रतिबंध करो, उनके दुष्ट कर्मोंको प्रतिबंध करो, यह है स्वास्थ्य-प्राप्तिका साधन। राज्यव्यवस्थासे दुष्टोंको शासन होना चाहिये। (**अमृताः मर्त्येभ्यः शर्म यंसन्**) अमर बनकर मरनेवालोंको सुख दो। यह नियम समाजके स्वास्थ्यका है। ज्ञानी बनकर अज्ञानियोंको ज्ञान देना चाहिये। शक्तिवान् बनकर निर्बलोंकी सुरक्षा करनी चाहिये। धनवान् बनकर गरीबोंकी सहायता करनी चाहिये। कर्मकुशल बनकर अकुशलोंको कौशल सिखाना चाहिये। यह भाव अमर बनकर मरनेवालोंको अमर बननेका मार्ग दिखाना चाहिये, इस सूत्रमय वेदमंत्रमें पाठक देखें। (मं. ३)

४ वन्दनके योग्य देव हमारी सुविधाका मार्ग (**नः सुविताय पथः**) हमें बतावें। उस मार्गसे हम जायँ और उन्नति प्राप्त करें। (मं. ४)

५ (**गोअग्राः धियः कर्त**) तुम्हारी बुद्धिमें गौओंको अग्र स्थान प्राप्त हो। मानवी जीवनमें गौको मुख्य स्थान है। (**स्वस्तिमतः कर्त**) गौको मानवी जीवनमें अग्र स्थान देनेसे मानवोंको कल्याण प्राप्त होगा। (मं. ५)

६ (**ऋतायते सर्वं मधु भवति**) सरल मार्गसे जानेवालेके लिये सब जगत् अर्थात् वायु, नदियां, समुद्र, औषधी, दिन, रात्र, उषा, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, वनस्पति, सूर्य, गौवें, मित्र, वरुण, अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र, विष्णु आदि सब मीठा होगा। इसलिये ऋतका मार्ग सब मनुष्य अपने आचरणमें लावें। 'ऋत्'का अर्थ 'सत्य, सरल, यज्ञ, अटल नियम' आदि है। सभी मानवी जीवनको सुखमय बनानेकी शक्ति इस ऋतमें है।

यहां विश्वे देवाका द्वितीय सूक्त समाप्त होता है।

१ तृतीय सूक्तमें कहा है कि 'वायु औषधिगुणोंको हमारेतक पहुंचावे और हमारे अन्दर जो दोष हैं उनको दूर करे।' श्वास और उच्छ्वास, तथा वायुके बहनेसे अशुद्धिका दूर होना और जीवन प्राप्त होना, यह सब क्रिया इसमें वर्णन की है। श्वाससे प्राण वायु अन्दर जाता और वह रक्तसे साथ मिलता है और उच्छ्वाससे शरीरसे दोष दूर होते हैं। इस तरह शरीर रोगरहित होता है। वायुके वेगसे बहनेसे भी नगरमें शुद्ध वायु आता है, जो नगरके दोषोंको दूर करता है। इस तरह या (देवानां दूतः) देवोंका दूतही है, जो सब औषधिगुणोंको देकर सबको नीरोग करता है।

इस तहर यह मंत्र आरोग्य-रक्षणके उत्तम निर्देश दे रहा है। इसलिये यह मननीय है।

यहां विश्वे देव-प्रकरण समाप्त हुआ।

उषा-प्रकरण

(१९) उषाः

(ऋ. १।९२) गोतमो राहूगणः। उषाः, १६–१८ अश्विनौ। १–४ जगती; ५–१२ त्रिष्टुप्; १३–१८ उष्णिक्।

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥ १

अन्वयः— १ त्याः एताः उषसः केतुं अक्रत। रजसः पूर्वे अर्धे भानुं अञ्जते। धृष्णवः आयुधानि इव, निष्कृण्वानाः गावः अरुषीः मातरः प्रति यन्ति ॥

अर्थ– १ इन उषाओंने अपना ध्वज फहराया है। अन्तरिक्षके पूर्व आधे भागमें (इन्होंने) प्रकाश किया है। साहसी योद्धा जिस तरह अपने शस्त्र (तेजस्वी करता है, उस तरह), तेज फैलाती हुई ये गौवें, तेजस्वी माताएं जैसी, इधरही ओर आ रही है॥

उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥ २
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम्।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ॥ ४
प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम्।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥ ५
अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥ ६

---

२ अरुणाः भानवः वृथा उत् अपप्तन्। उषसः स्वायुजः अरुषीः गाः अयुक्षत, पूर्वथा वयुनानि अक्रन्। अरुषीः रुशन्तं भानुं अशिश्रयुः ॥

३ नारीः विष्टिभिः समानेन योजनेन आ परावतः, अपसः न, अर्चन्ति। सुकृते सुन्वते सुदानवे यजमानाय विश्वा इत् अह इषं वहन्तीः ॥

४ उषाः पेशांसि नृतुः इव अधि वपते, वक्षः अप ऊर्णुते, बर्जहं उस्राः इव। गावः न व्रजं, विश्वस्मै भुवनाय ज्योतिः कृण्वती तमः वि आवः ॥

५ अस्याः रुशत् अर्चिः प्रति अदर्शि, वि तिष्ठते, अभ्वं कृष्णं बाधते। विदथेषु स्वरुं न अञ्जन्, पेशः (अनक्ति), चित्रं भानुं दिवः दुहिता अश्रेत् ॥

६ अस्य तमसः पारं अतारिष्म। उच्छन्ती उषाः वयुना कृणोति। श्रिये छन्दः न स्मयते। विभाती सुप्रतीका सौमनसाय अजीगः ॥

२ लाल किरणें कैसी सहजहीसे ऊपर कूद रही हैं। उषाओंके (रथको) जोते जानेवाले लाल रंगके (किरणरूपी) बैल जोते गये हैं, (अर्थात्) पूर्वके समानही (प्रकाश फैलानेका) शुभ कृत्य इन्होंने किया है। तेजस्वी (उषाओंन) तेजस्वी प्रकाश धारण किया ॥

३ (उषारूपी) स्त्रियां आवेशोंके साथ, समान रथमें बैठकर बहुतही दूरसे (आनेके समान), बडा शुभ कृत्य करनेकी इच्छासे घोषणा करके (कहती हैं) और उत्तम कर्म करनेवाले, सोमयाग करनेवाले, उत्तम दाता यजमानके लिये सदैव अन्नादि धन लाती हैं ॥

४ उषा अनेक रूप, नटीके समान, धारण करती है। यह अपनी छाती खुली रखती है जैसी गौवें अपने स्तन (खुले रखती हैं)। गौवें अपने बाडेको (छोडनेके समान) सब भुवनोंमें प्रकाश करती हुई (उषाएं) अन्धकारको दूर करती हैं ॥

५ इसका तेजस्वी प्रकाश दीखने लगा, वह प्रकाश फैल रहा है, वह गाढ अन्धकारको दूर करता है। यज्ञोंमें यूपको जैसा सजाते हैं, वैसे अपने रूपको (इस उषाने सजाया है)। यह स्वर्गीय कन्या (उषा अपने साथ) विलक्षण तेजस्वी प्रकाश लेकर आती है ॥

६ इस अन्धकारके पार हम पहुंचे हैं। यह प्रकाशनेवाली उषा नाना प्रकारके कर्म कराती है। संपत्तिकी प्राप्ति करनेके लिये वश करनेमें कुशल (मनुष्य) के समान (यह उषा) हंस रही है। तेजस्विनी उत्तम आदर्श स्वरूपवाली (यह उषा हमें) प्रसन्न करनेके लियेही आगयी है ॥

मंत्र	देवता
ऋ १।८९। १	ऋतवः, देवाः
२	देवाः
३	भगः, मित्रः, अदितिः, दक्षः, अस्रिधः (मरुतः), अर्यमा, वरुणः, सोमः, अश्विनौ, सरस्वती,
४	वातः, पृथ्वी, द्यौः, ग्रावाणः, अश्विनौ
५	ईशानः, पूषा
६	इन्द्रः, पूषा, तार्क्ष्यः, बृहस्पतिः
७	मरुतः, विश्वे देवाः
८	देवाः, यजत्राः
९	देवाः
१०	अदितिः, द्यौः, अन्तरिक्षं, माता, पिता, पुत्रः, विश्वे देवाः, पञ्चजनाः,
ऋ. १।९०। १	मित्रः, वरुणः, अर्यमा
२	ते (देवाः)
३	अमृता
४	इन्द्रः, मरुतः, पूषा, भगः,
५	पूषा, विष्णुः, एवयावः (मरुतः)
६	वाताः, सिन्धवः, ओषधीः
७	नक्तं, उषसः, पार्थिवं रजः, द्यौः
८	वनस्पतिः, सूर्यः, गावः
९	मित्रः, वरुणः, अर्यमा, बृहस्पतिः, इन्द्रः, विष्णुः ।

इन मंत्रोंके इन देवताओंको देखनेसे पाठकोंको पता लग जायगा कि इन देवताओंकी गणना करना कठिन है और गणना की भी, तो वह मंत्रके समान लंबी चौडी पंक्ति बनेगी। इसलिये ऐसे सूक्तोंके देवता ' विश्वे देवाः ' कहे गये हैं। विश्वे देवा देवताके अन्य मंत्रोंमें इनसे भिन्न परंतु ऐसेही अनेक देवताओंके नाम आयेंगे। सिवा केवल ' देवाः ' पदही रहेगा ऐसे करके दो तीन मंत्रोंमें है। इसका आशय " अनेक देवता " इत्यादि है।

पाठक इस बातको स्मरण रखें कि विश्वे देवा करके कोई विशिष्ट देवता नहीं है, परंतु अनिश्चित तथा अनेक देवताओंका उल्लेख विभिन्न मंत्रोंमें विभिन्न रीतिसे आता है। इसका विश्वे देवा देवता है। अनेक देवताओंसे अपने कल्याणकी प्रार्थना उपासक करता है, यही मुख्य विषय ऐसे सूक्तोंका होता है।

दीर्घ आयुकी प्राप्ति

इस सूक्तका मुख्य विषय यह है कि मनुष्यकी सुरक्षा होकर वह दीर्घ आयुसे युक्त होकर आनन्द प्रसन्न हो। इसके लिये जो उपाय इस सूक्तमें दिये हैं, उनका मनन करना चाहिये-

कर्म कैसे करें ?

१ क्रतवः भद्राः अदब्धासः अपरीतासः उद्भिदः (मं. १)- कर्म ऐसे हों कि जो निःसन्देह (भद्राः) कल्याण करनेवाले हों, उच्चतर अवस्थाको पहुंचानेवाले हों, (अ-दब्धासः) जिनके करनेके लिये किसीके नीचे दब जाना न पडे, किसीके दबावके अन्दर आकर कर्म न किये जायँ, प्रत्युत स्वयंस्फूर्तिसे कर्म किये जायं, और (उत् भिदः) ऊपरके दबावको दूर करके उन्नतिके मार्गको खोलनेवाले हों, जो उन्नतिका मार्ग दबावके कारण रुका है उसको खोलनेवाले हैं, ऊपरके दबावका भेद करनेवाले कर्म हों।

२ अ-प्र-युवः दिवेदिवे रक्षितारः देवाः वृधे (मं. १)- प्रगतिके मार्गको प्रतिबंध न हो और प्रति समय सुरक्षितता होती रहे, यह करनेवाले दिव्य विबुध संवर्धनके कार्य करनेमें सहायक हों।

३ ऋजूयतां भद्रा सुमतिः (मं. २)- सरल मार्गसे जानेवालोंकी कल्याण करनेवाली सुबुद्धिकी सहायता मिले। सरल स्वभाववालोंकी प्रतिकूलता कभी न हो।

४ देवानां रातिः नः अभि निवर्तताम् (मं.२)-दिव्य विबुधोंकी दानरूप सहायता हमें प्राप्त हो। हम ऐसा शुभ कर्म करें कि जिससे देवताओंकी सहायता मिलती जाय ॥

५ वयं देवानां सख्यं उप सेदिम (मं.२)- हमें देवोंकी मित्रता प्राप्त हो। हम ऐसे शुभ कर्म करें कि जिससे दैवी संपत्तिवाले विबुध हमारे मित्र बनें।

६ नः जीवसे देवाः आयुः प्रतिरन्तु (मं.२)- हमारी आयु दीर्घ होनेके लिये देव हमें अधिक आयु प्रदान करें। अर्थात् देवोंकी सहायतासे हम दीर्घायु बनें।

सूर्य, चंद्र, वायु, विद्युत्, जल, मेघ, पृथ्वी, वनस्पति, अन्न, नदी, समुद्र आदि अनेक देवता हैं। मानव-समाजमें ज्ञानी, शूर, कृषीवल और कर्मचारी ये देव है और शरीरमें सब इंद्रियां देव हैं। इन सब देवोंकी अनुकूलता और प्रसन्नता तथा सहायतासेही मनुष्य दीर्घ आयु प्राप्त कर सकता है। इनमेंसे कुछ देव भी प्रतिकूल हुए तो भी आयु क्षीण हो जायगी इसमें संदेह नहीं है। उदाहरणार्थ देखिये, शुद्ध जल अन्न तथा वायु की सहायता न हुई तो अन्य देवोंकी सहायता होने परभी वह विफल होगी। इसलिये सभी देवोंकी सहायतासे हम दीर्घायु हो सकते हैं, ऐसा जो ऊपरके मंत्रोंमें कहा है, वही सत्य है।

७ तृतीय मंत्रमें कहा है कि पूर्व समयसे चले आये वेद-मंत्रोंकी पद्धतिके अनुसार मनुष्य देवोंकी सहायता मांगे। देवों-की सहायता प्राप्त करनेकी पद्धति वेदके मंत्रोंमें लिखी है।

८ वायु औषधिगुण अपने साथ ले आवे, पृथ्वी अन्नादि देवे, द्युलोकसे सूर्यप्रकाश मिले, सोम कूटकर उससे रस सिद्ध करके पीनेके लिये मिले, अश्विदेव चिकित्सा करके रोग दूर करें। यह सहायता देवोंसे मिले, ऐसा चतुर्थ मंत्रमें कहा है।

ईश्वर-उपासना

दीर्घ आयु प्राप्त करनेमें ईश्वरकी उपासना तथा भक्ति सहायक होती है, इसलिये आगेके मंत्रमें कहा है—

९ स्थावर जंगम जगत्का एक ईश्वर है, वही सबका पालन-पोषण करनेवाला है, उसकी हम उपासना करते हैं, वह हमारी सुरक्षा करे, पोषण करे, कल्याण करे, क्योंकि वह किसीके दबावमें आनेवाला नहीं है। (मं.५)

१० इंद्र, पूषा, तार्क्ष्य, बृहस्पति, मरुत् आदि देवोंकी सहायता हमें मिले। (मं. ६-७)

मानवी व्यवहार

मानवी व्यवहार सरल और कल्याणकारी होता रहे, यह निर्देश आगेके मंत्रमें कहा है।

११ मनुष्य अपने कानोंसे अच्छे विचार सुनें और आंखोंसे अच्छे दृश्यही देखे। अपने अवयव और शरीर सुदृढ रखे और उनके द्वारा आयु रहनेतक देवहित करनेके कार्यही करे, इससे भिन्न कुकर्म कभी न करे। (मं. ८)

१२ *मनुष्यका आयु १०० वर्षोंकी निर्धारित हुई है।* अर्थात् इसमें बालपन और कुमारपनकी १६ वर्षकी आयु संमिलित नहीं है। यह १०० वर्ष पुरुषार्थ करनेकी आयु है। **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।** (वा. य. ४०।२) अनेक प्रशस्ततम कर्म करते हुए सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे ऐसा वेदवचन है। अतः ये १०० वर्ष पुरुषार्थ करनेके सौ वर्ष हैं। इनमें **(नः तनूनां जरसं)** *हमारे शरीरोंका बुढापा भी शामील है,* इसीमें **(पुत्रासः पितरः भवन्ति)** *हमारे पुत्र भी* बडे गृहस्थाश्रमी होकर कार्यतत्पर पुरुषार्थी होते हैं, उनके कार्य के लिये भी अवसर मिलना चाहिये। इसलिये **(गन्तोः मध्या नः आयुः मा रीरिषत्)** बीचहीमें हमारी आयु न समाप्त हो अर्थात् दीर्घायुकी समाप्तितक संपूर्ण आयु हमें प्राप्त हो। (मं. ९)

सदेकत्वका अनुभव

१३ द्यौ अन्तरिक्ष, पृथिवी, मातापिता, पुत्र, सब सूर्यचन्द्रादि देव, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र निषाद आदि पांच प्रकारके लोग, जो भूतकालमें हो चुका था, जो आज हो रहा है जो भविष्यमें होगा, वह सब एकही (अदितिः) अटूट एक सत् है। यह एक तत्त्व दर्शन करके सम भावसे सर्वत्र देखो, इसीसे सर्वत्र शान्ति रहेगी और सबका परम कल्याण होगा। (मं. १०)

जगत्के अन्दर विषम भावसे सब दुःख होते हैं, उस कारण अनन्त आपत्तियोंमें मनुष्य फंस रहा है। इस विषमताको दूर करके सम भावकी स्थापना करनेके लिये यहां यह एक-तत्त्व-दर्शनका उपदेश किया है। इसके पालनसे मानवोंका कल्याण होगा इसमें संदेह नहीं है।

'अदितिः विश्वे देवाः, अदितिः पंचजनाः।'
'सर्वं खलु इदं ब्रह्म।'

ये वचन एकही भाव बतानेवाले हैं। संपूर्ण विश्व तत्त्व-दृष्टिसे एक है, यह ज्ञान मानवी व्यवहारमें आना चाहिये, तब विश्वमें शान्ति और सुख होगा। यह सब सुखोंका मुख्य साधन है।

नीतिका सरल मार्ग

आगेका सूक्त **'ऋजु-नीति'** का है। सरल नीति ऐसा इसका अर्थ है। राजनीति कुटिल होती है, सरल नीति मनुष्योंके व्यवहारमें आगयी तोही मनुष्य सुखी हो सकते हैं। इस दृष्टिसे यह 'ऋजु-नीति' का सूक्त बडा मननीय है।

भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥ ७
उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥ ८
विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति ।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥ ९
पुनःपुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥ १०
व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति ।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥ ११
पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत् ।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥ १२

---

७ भास्वती सूनृतानां नेत्री दिवः दुहिता गोतमेभिः स्तवे। हे उषः ! प्रजावतः नृवतः अश्वबुध्यान् गो-अग्रान् वाजान् उप मासि ॥

७ स्वयं चमकनेवाली सत्यवचनोंकी स्फूर्ति देनेवाली स्वर्गीय कन्या (उषा है, इसकी) प्रशंसा गोतम ऋषियोंने की है। हे उषादेवी ! बालबच्चोंसे युक्त, वीरोंसे युक्त, घोडोंसे युक्त, गौवें जिनमें मुख्य हैं ऐसे सामर्थ्य तू हमें देती है ॥

८ हे उषः ! तं यशसं सुवीरं दास-प्रवर्गं अश्वबुध्यं रयिं अश्याम्। हे सुभगे ! सुदंससा श्रवसा वाजप्रसूता बृहन्तं या विभासि ॥

८ हे उषादेवी ! (तेरी कृपासे) वह यशस्वी, उत्तम वीरोंसे युक्त, अनेक सेवकोंसे युक्त, घोडोंसे युक्त धन हम प्राप्त करें । हे भाग्यवाली उषादेवी ! उत्तम सामर्थ्यसे युक्त, यशसे युक्त, सामर्थ्यको प्रकट करती हुई बडे प्रकाशको फैलाती है ॥

९ विश्वानि भुवना अभिचक्ष्य, देवी प्रतीची चक्षुः उर्विया वि भाति । विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती, विश्वस्य मनायोः वाचं अविदत् ॥

९ सब भुवनोंको देखकर, यह देवी फिरसे अपने नेत्र उज्ज्वल प्रकाशसे प्रकाशित करती है। सब जीवोंको विचरनेके लिये जगाती हुई (यह उषा) सब कवियोंकी स्तुतिको प्राप्त करती है (सब कवि इसकी स्तुति करते हैं।)

१० पुनःपुनः जायमाना पुराणी, समानं वर्णं अभि शुम्भमाना देवी, कृत्नुः श्वघ्नी इव, विजः आमिनाना मर्तस्य आयुः जरयन्ती ॥

१० पुनः पुनः उत्पन्न होनेपर भी पुरानी कहने योग्य, एक जैसे वर्णके (वस्त्रोंसे) सुशोभित होनेवाली देवी (उषा), काटनेवाली, कुत्तेको मारनेवाली और पक्षियोंका विच्छेदन करनेवाली (स्त्रीके समान) मनुष्यकी आयुका नाश करती हुई यह उषा चलती है ॥

११ दिवः अन्तान् यूर्ण्वती अबोधि, स्वसारं सनुतः अप युयोति । मनुष्या युगानि प्रमिनती, योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥

११ आकाशके अन्तभागोंको प्रकाशित करनेवाली यह (उषा) जागृत हुई है। अपनी बहिन (रात्रि) को दूर भगा देती है। मानवी आयुको कम करती हुई यह स्त्री अपने प्रियके प्रकाशसे प्रकाशित होती है।

१२ सुभगा चित्रा पशून् न प्रथाना उर्विया व्यश्वैत्, सिन्धुः न क्षोदः, सूर्यस्य रश्मिभिः दृशाना चेति, दैव्यानि व्रतानि अमिनती ॥

१२ सौभाग्यवती विलक्षण कान्तिवाली (यह उषा) पशुओंको बाहर निकालती हुई विशाल प्रदेशपर व्यापती है। नदीका जल (बहनेके) समान, सूर्यके किरणोंसे तेजस्विनी बनी उषा दिखाई देती है। यह दिव्य व्रत नियमोंको कभी नहीं तोडती॥

उपस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति । येन तोकं च तनयं च धामहे १३
उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि । रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति १४
युक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः । अथा नो विश्वा सौभगान्या वह १५
अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् । अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् १६
यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः । आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् १७
एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी । उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये १८

---

१३ हे वाजिनीवति उषः ! अस्मभ्यं चित्रं तत् आ भर, येन तोकं च तनयं च धामहे ॥

१४ हे गोमति अश्वावति विभावरि सूनृतावति उषः ! अद्य इह रेवत् वि उच्छ ॥

१५ हे वाजिनीवति उषः ! अरुणान् अश्वान् अद्य युक्ष्वा हि, अथ विश्वा सौभगानि नः आ वह ॥

१६ हे दस्रा अश्विना ! अस्मत् वर्तिः आ गोमत् हिरण्यवत् रथं समनसा अर्वाक् नि यच्छतम् ॥

१७ हे अश्विना ! यौ दिवः श्लोकं ज्योतिः इत्था जनाय चक्रथुः, युवं नः ऊर्जं आ वहतम् ॥

१८ उषर्बुधः इह सोमपीतये दस्रा मयोभुवा हिरण्यवर्तनी देवा आ वहन्तु ॥

१३ हे शक्तिवाली उषा देवी ! हमारे लिये वह विलक्षण भाग्य दे कि जिससे बालबच्चोंका धारण पोषण हो सके ॥

१४ हे गौवों घोडोंसे युक्त, प्रकाश युक्त और सत्य भाषणमयी उषा देवी ! तुम यहां हमें धनका प्रदान करो ॥

१५ हे सामर्थ्यमयी उषा देवी ! लाल वर्णके घोडे आज (अपने रथको) जोत, सब प्रकारके भाग्य हमें ला दे ॥

१६ हे शत्रुनाशकारी अश्विदेवो ! हमारा घर गौओं और घोडोंसे (शोभायुक्त करनेके लिये) अपने रथको अपने सौजन्य से इधर ले आओ ॥

१७ हे अश्विदेवो ! तुम दोनोंने प्रशंसनीय दिव्य ज्योति यहां लोगोंके लिये की है, तुम दोनों हमारे लिये सामर्थ्य लाकर देओ ॥

१८ उषःकालमें जागनेवाले देव यहां सोमपानके लिये शत्रुनाशक सुखदायी सुवर्णमय रथवाले अश्विदेवोंको यहां ले आवें ॥

उषाका उत्तम काव्य

काव्यकी दृष्टिसे यह उषाका सूक्त बडाही उत्तम रसयुक्त काव्य है। इस सूक्तका अर्थ रस लेते हुए वारंवार पढा जाय तो पढनेवाला ऋषिके हृदयसे एकरूप हो जाता है। वेदके उत्तम काव्यका यह एक उत्तम नमूना है।

यह उषा हमारी प्रतिदिनकी उषा नहीं दीखती। चार महिनोंकी प्रदीर्घ रात्रिके पश्चात् आनेवाली यह उषा है, ऐसा निम्न लिखित वर्णनसे प्रतीत होता है।

अस्य तमसः पारं अतारिष्म। (मं. ६)

'इस अन्धकारके पार हम पहुंच गये' ऐसा कविका वचन है। अन्धकार नष्ट होगा या नहीं इस विषयकी शंका उत्पन्न होनेयोग्य प्रदीर्घ अन्धकारका होना इस वाक्यसे सूचित होता है। हमारे यहांकी रात्रि १२ घंटोंकी होती है, उसमें पहिले ४।५ घण्टे मनुष्य अपना व्यवहार करता रहता है, शेष ५।६ घण्टे सोता है। उसको पता है कि हमारे जागनेके समय सूर्यका उदय होनेवाला है। इसलिये 'हम इस अन्धकारके पार पहुंचे' ऐसा वर्णन यहांकी हमारी रात्रिका कोई नहीं कर सकता। उत्तरीय ध्रुवके स्थानपर निबिड रात्रि ४।५ महिनोंकी होती है। इसीमें हिम, बर्फ, सर्दी, वृष्टि, शीत, प्रचण्ड वायु आदिकी आपत्तियां मनुष्योंको सताती थीं। इसलिये कवि कहता है कि 'हम अब इस अन्धकारके पार हो चुके' अर्थात् अब हमारे कष्ट दूर हुए और हम प्रकाशमें आचुके हैं।

नटी, नाचनेवाली स्त्री

इस उषा सूक्तके चतुर्थ मंत्रमें 'नटी' (नृतू) का वर्णन है। उषा नाचती है। 'नृतू' का अर्थ (नृत्यति) नाचनेवाली ऐसा होता है। उत्तरीय ध्रुवमें उषा तथा सूर्य प्रदक्षिणा करते हुए

घूमते हैं। जिस तरह देवताकी प्रदक्षिणा की जाती है, उस तरह उषा चारों ओर प्रदक्षिणा करती है। देखनेवाले मानवोंके पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशाओंमें वह घूमती है, इस कारण इसको नटी कहा है। यह नटी वेश्या जैसी होती है जो **(पेशांसि अधि वपते)** अनेक प्रकारके रूपोंको और वस्त्रोंको पहनती है। उसके रंग घण्टे घण्टेमें बदलते रहते हैं, इसपर कविने यह वर्णन किया है। **(वक्षः अप ऊर्णुते)** छाती खुली रखती है, स्तन खुले करके दिखाती है। धर्मपत्नी ऐसा नहीं करती, नर्तकी वेश्या ऐसा करती है यह फर्क गृहपत्नी और नर्तकीमें है।

गोतम ऋषि

सातवें मंत्रमें **(दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः)** इस द्युलोककी पुत्रीका स्तवन गोतम ऋषियोंने किया। गोतम गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषियोंने यह स्तोत्र किया है। गोतम गोत्रमें अनेक ऋषि होंगे, उनका यह नाम इस मंत्रमें आया है।

घरमें सेवक

आठवें मंत्रमें '**दास-प्र-वर्ग**' पद है। दास सेवकको कहते हैं, उन सेवकोंका बड़ा वर्ग अर्थात् दस बीस या अधिक सेवक घरमें रहें, वे घरवालोंके समान काम करें।

वैदिक ऋषि अपने घरमें बीसियों नोकर चाकर सेवक रहें, ऐसी प्रार्थना करते थे, इससे उनके बडे विस्तृत प्रपंचका पता लगता है। घरमें बहुत आदमी कर्तृत्ववान् न होंगे तो इतने नौकर क्योंकर वहां रहेंगे ? इससे सिद्ध होता है कि ऋषियोंका घर बहुत नर-नारियोंसे और अनेक बालबच्चोंसे भरा रहता था। इसीलिये इस सूक्तमें अनेक वार अनेक गौवें, घोडे और विशाल धन चाहिये, ऐसा कहा है।

कसाई स्त्री

इस सूक्तके दसवें मंत्रमें '**कृत्नु**' पद 'कसाई स्त्री' का वाचक है। 'कृत्' धातुका अर्थ 'काटना' छेदना, टुकडा करना' है। 'कृत्नु' का अर्थ काटनेवाली स्त्री, कसाई स्त्री। यह स्त्री '**श्वघ्नी**' कुत्तोंको काटकर टुकडे करती है और '**विजः आमिमाना**' पक्षियोंके पंखोंको काटती है। श्वपाक चांडाल जातिकी यह स्त्री होगी। इसका यह पेशा ही होगा। उषाके लिये यह उपमा है। जैसा यह कसाई स्त्री पशुको काटकर रक्तके लाल रंगसे रंगित होकर लाल दीखती है, वैसीही उषा **(मर्तस्य आयुः जरयन्ती)** मानवोंकी आयुको काटती है, इस कारण यह लाल दिखती है। यह सुन्दर उपमा इस मंत्रमें दी है।

जारके धनसे शोभना

जो स्त्री पतिको छोडकर दूसरे मनुष्यके साथ संबंध रखती है, उस स्त्रीको *जारिणी* कहते हैं और जिसके साथ संबंध रखती है, उसको जार कहते हैं। जार उस स्त्रीको जेवर तथा कपडे देता है और वह स्त्री जारके दिये आभूषणोंसे सुशोभित होती है। यहां उषा स्त्री है, उसका जार सूर्य है, सूर्यके प्रकाशसे यह उषा सुशोभित होती है। **(योषा जारस्य चक्षसा वि भाति । ११)** स्त्री जारके आभूषणोंसे सुशोभित होती है। 'जार' शब्दका अर्थ प्रेम करनेवाला पति ऐसा भी होना संभव है। इस अर्थसे व्यभिचार-दोषकी कल्पना दूर हो सकेगी। 'जार' का अर्थ 'प्रियकर' (lover) है। यह उषा अपने प्रियकरपर प्रेम करती है, अतः वह **(स्वसारं अप युयोति। ११)** अपने बहिनको भी दूर करती है। *अपने बहिनपर भी प्रेम नहीं रखती।* यह काव्य उषाके आनेसे रात्रि दूर होती है, इसपर है।

इस उषा-सूक्तका शेष वर्णन समझमें आ सकता है, उषाने अपना गेरुआ ध्वज फहराया है, आकाशमें प्रकाश फैलाया है, साहसी वीर अपने शस्त्रोंको चमकाता है वैसा तेज फैलाया जा रहा है, उषाके रथको लाल घोडे या बैल जोते जाते हैं, ये सूर्य-किरणही हैं। उषा आनेके बाद मानवोंको प्रकाश मिलता है और वे अनेक कर्म करने लगते हैं। अर्थात् उषाही ये सब कर्म कराती है। इस तरह इस काव्यका वर्णन समझने योग्य है।

पदोंकी उलटी योजना

हिंदी भाषाके साथ तुलना करनेपर वैदिक भाषाकी पद-योजना उलटी प्रतीत होती है, जैसी अंग्रेजीकी होती है, देखिये-

१ अर्चन्ति, नारीः अपसो न विष्टिभिः।
२ इषं वहन्तीः, सुकृते यजमानाय।
३ अपोर्णुते वक्षः।
४ बाधते कृष्णं अभ्वम्।
५ अतारिष्म तमसः पारम्।
६ नेत्री सूनृतानाम्।
७ उप मासि वाजान्।

८ अश्यां रयिं।
९ व्यूर्ण्वती दिवो अन्तान्।
१० प्रमिनती मनुष्या युगानि।
११ अमिनती दैव्या व्रतानि।
इनका अंग्रेजी अनुवाद ऐसा होता है, इसमें शब्दोंका स्थान और क्रम करीब ऐसाही रहता है-

1 They sing their song, like women, active in their tasks.

2 Bringing refreshment, to the liberal dovotee.

3 Uncovers her breast.

4 Drives away the darksome monster.

5 We have overcome the limit of this darkness.

6 The leader of charm of pleasent voices.

7 Conferrest on us strength.

8 May I gain that wealth.

9 Discovering heaven's borders.

10 Diminishing the days of human creatures.

11 Never transgressing the divine commandments.

हिंदीमें इसके उलटे शब्द-प्रयोग होते हैं। जैसा—

१ स्त्रियाँ कर्ममें लगी हुई स्तोत्र-पाठ करती हैं,
२ उत्तम कर्म करनेवाले यजमानके लिये अन्न ले जाती हैं,
३ छाती खोलती है,
४ काले अन्धकारको हटाती है,
५ अन्धकारके पार हम पहुंचे,
६ सत्य भाषणोंकी चलानेवाली,
७ बलोंको देती है,
८ धन प्राप्त करें,
९ आकाशके अन्तोंको प्रकट करती है,
१० मानवी युगोंको कम करती है, आयुष्य क्षीण करती है,
११ दिव्य नियमोंका उल्लंघन नहीं करती।

यहां छन्दके कारण शब्द आगे पीछे हुए होंगे, पर संस्कृतमें और वेदमें भी ऐसेही पद आते हैं। 'पुस्तकं रामस्य' (रामका पुस्तक) ऐसा हिंदीके उलटे क्रमसे शब्द रखकर बोलना और लिखना संस्कृतमें अधिक अच्छा माना जाता है। अंग्रेजीमें तो यही क्रम सदाही रखा जाता है।

॥ उषा-प्रकरण समाप्त हुआ ॥

अग्निसोम-प्रकरण

(२०) बल, वीर्य और दीर्घायु

(ऋ. १।९३) गोतमो राहूगणः। अग्नीषोमौ। १-३ अनुष्टुप्; ४-७, १२ त्रिष्टुप्; ८ जगती त्रिष्टुब्वा; ९-११ गायत्री।

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम्। प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥ १ ॥
अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति। तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥ २ ॥

अन्वयः— १ हे वृषणा अग्नीषोमौ! इमं मे हवं सु शृणुतं। सूक्तानि प्रति हर्यतं। दाशुषे मयः भवतम् ॥

२ हे अग्नीषोमौ! यः अद्य वां इदं वचः सपर्यति, तस्मै सुवीर्यं स्वश्व्यं गवां पोषं धत्तम् ॥

अर्थ- १ हे सामर्थ्यवान् अग्नि-सोमो! यह मेरी पुकार सुनो। इन स्तोत्रोंका स्वीकार करो। और दाताके लिये सुख देनेवाले होओ ॥

२ हे अग्निसोमो! जो आज आपको यह स्तोत्र अर्पण करता है, उसके लिये उत्तम वीर्य, उत्तम घोडे और उत्तम पुष्ट गौवें प्रदान करो ॥

अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥ ३

अग्नीषोमा चेति तद् वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥ ४

युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥ ५

आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥ ६

अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥ ७

यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद् देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥ ८

---

३ हे अग्नीषोमौ ! यः आहुतिं वां दाशात्, यः हविष्कृतिं (च दाशात्), स. प्रजया सुवीर्यं विश्वं आयुः व्यश्नवत् ॥

४ हे अग्नीषोमौ ! वां तत् वीर्यं चेति, यत् गाः अवसं पणिं अमुष्णीतम् । बृसयस्य शेषः अवातिरतम् । ज्योतिः एकं बहुभ्यः अविन्दतम् ॥

५ हे सोम ! (त्वं) अग्निः च सक्रतू, युवं रोचनानि एतानि दिवि अधत्तम् । हे अग्नीषोमौ ! गृभीतान् सिन्धून्, अभिशस्ते. अवद्यात् अमुञ्चतम् ॥

६ हे अग्नीषोमौ ! अन्यं मातरिश्वा दिवः आ जभार । अन्यं श्येनः अद्रेः परि अमथ्नात् । ब्रह्मणा वावृधानौ यज्ञाय उरुं लोकं चक्रथुः ॥

७ हे अग्नीषोमा ! प्रस्थितस्य हविषः वीतम् । हर्यतं (च) । हे वृषा ! जुषेथाम् । सुशर्माणा स्ववसा हि भूतम् । अध यजमानाय शं योः धत्तम् ॥

८ यः देवद्रीचा मनसा अग्नीषोमा हविषा सपर्यात् । यः घृतेन, तस्य व्रतं रक्षतम् । अंहसः पातम् । विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥

३ हे अग्निसोमो ! जो आपको आहुति अर्पण करता है, जो आपके लिये हवन (करता है),वह प्रजाके साथ उत्तम वीर्य और पूर्ण आयु प्राप्त करे ॥

४ हे अग्निसोमो ! आपका वह पराक्रम (उस समय) प्रकट हुआ कि जिस समय गौओंको रखनेवाले पणिसे (सब गौओंका तुमने) हरण किया । बृसयके शेष अनुचरोंको तितरबितर किया और (सूर्यकी) एक ज्योति सबके लिये प्राप्त की ॥

५ हे सोम ! (तू) और अग्नि एकही कर्म करनेवाले हैं । तुमने ये नक्षत्रज्योतियाँ आकाशमें रख दी हैं । हे अग्निसोमो ! प्रतिबंधित नदियोंको अमंगल निन्दासे मुक्त किया ।

६ हे अग्निसोमो ! (तुममेंसे) एक अग्निको वायुने आकाशसे यहां लाया । और दूसरे सोमको श्येनने पर्वत-शिखरपरसे उखाडकर लाया है । स्तोत्रोंसे बढाते हुए (तुम दोनोंने) यज्ञके लिये (यहां) बडाही विस्तृत क्षेत्र बनाया है ।

७ हे अग्निसोमो ! यहां रखे हविरन्नका स्वाद लो । (और) स्वीकार करो । हे बलवान् देवो ! इसका भक्षण करो ! तुम हमारा कल्याण करनेहारे और हमारी सुरक्षा करनेवाले होओ । और यज्ञकर्ताको सुख (देकर उसका दुःख) दूर करो ॥

८ जो देवोंकी भक्ति करनेवाले मनसे अग्निसोमोंको हवि अर्पण करता है, और घीका हवन करता है, उसके जीवन-व्रतको सुरक्षित रखो । (उसको) पापसे बचाओ । सब मानवोंके लिये बहुत सुख देदो ॥

अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः ९
अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति । तस्मै दीदयतं बृहत् १०
अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम् । आ यातमुप नः सचा ११
अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः ।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् १२

९ हे अग्नीषोमौ ! सवेदसा सहूती गिरः वनतम् । देवत्रा संबभूवथुः ॥

१० हे अग्नीषोमौ ! वां यः अनेन घृतेन वां दाशति, तस्मै बृहत् दीदयतम् ॥

११ हे अग्नीषोमौ ! युवं नः इमानि हव्या जुजोषतम् । नः सचा उप आ यातम् ॥

१२ हे अग्नीषोमौ ! नः अर्वतः पिपृतम् । हव्यसूदः उस्रियाः आ प्यायन्ताम् । मघवत्सु अस्मे बलानि धत्तम् । नः अध्वरं श्रुष्टिमन्तं कृणुतम् ॥

९ हे अग्निसोमो ! आप एक साथ सब जानते हैं, इसलिये (एक साथ हुई हमारी की) प्रार्थना सुनो । (यहां) देवोंमें तुम एकदम प्रकट हुए हैं ।

१० हे अग्निसोमो ! जो तुम्हें इस घीका अर्पण करता है, उसे बडा (धन) दो ॥

११ हे अग्निसोमो ! तुम दोनों हमारे ये हवन स्वीकारो । मिलकर हमारे पास आओ ॥

१२ हे अग्निसोमो ! हमारे घोडोंको पुष्ट करो । (हमारी) दूध देनेवाली गौओंको पुष्ट करो । हमारे धनवान् (याजकों) को अनेक प्रकारके बल स्थापन करो । हमारे यज्ञको यशस्वी करो ॥

सबको सुखी करो

इस स्तोत्रमें सुख, उत्तम वीर्य पराक्रम करनेका सामर्थ्य, पुष्ट गौवें और चपल घोडे, तथा विपुल धन और पूर्ण आयु चाहिये, ऐसा कहा है । उत्तम संतान वीर पुत्र हों ऐसा भी कहा है । (मं. १-३)

यहां अग्नि और सोम इन दो देवताओंकी प्रार्थना है । अग्निको वायुने आकाशसे लाया (मं.६)। विद्युतसे जो अग्नि उत्पन्न होता है, उसका यह वर्णन है । क्योंकि विद्युत और वायु साथ साथ रहते हैं और आकाशसे अग्नि विद्युत्में आया और बिजलीके गिरनेसे वह अग्नि पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ। यह कल्पना सुसंगत है ।

सोमको पर्वत-शिखरपरसे उखाडकर, मथकर, लाया है । क्योंकि यह एक औषधि, वनस्पति, वल्लि है । हिमालयके हिम-शिखरोंपर यह होती है, वहांसे उखाडकर यह *लायी जाती है । (मं. ६) अग्नि और सोमने यज्ञका विस्तृत क्षेत्र बनाया है, क्योंकि सभी यज्ञ अग्नि और सोमरससेही बनते हैं ।*

सोमरस इंद्र पीता है, अग्नि सब देवोंको पिलाता है, उससे *सब देव बलवान् बनते हैं और इन्द्रके द्वारा पणिका* पराभव होता है और वह *पणीने चुरायी गौवें* हरण करके पुनः वापस *लायी जाती हैं । पणीके सब अनुयायियोंका पराभव किया जाता* है और सबके प्रकाशके लिये सूर्यका उदय होता है। (मं.४) उत्तरीय ध्रुवकी प्रदीर्घ रात्रिके पश्चात्का यह सूर्यका उदय है।

प्रदीर्घ रात्रिमें अति शीत होनेके कारण जमी हुई सब नदियां सूर्य निकलनेपर पुनः बहने लगती हैं, यह उनका निम्दासे बचना है । (मं.५)

यह सूक्त सुबोध होनेसे अधिक स्पष्टीकरणकी आवश्यकता नहीं है।

॥ यहां अग्नि-सोम-प्रकरण समाप्त हुआ ॥

सोम-प्रकरण

(२१) सोमरस

(ऋ १।९१) गोतमो राहूगणः । सोमः । त्रिष्टुप्; ५-१६ गायत्री; १७ उष्णिक् ।

त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः　　१
त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः ।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः　　२
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम　　३
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन् राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय　　४
त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा　।　त्वं भद्रो असि क्रतुः　　५
त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे　।　प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः　　६
त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते　।　दक्षं दधासि जीवसे　　७

अन्वयः- १ हे सोम ! त्वं मनीषा प्र चिकितः । त्वं रजिष्ठं पंथां अनुनेषि । हे इन्दो ! तव प्रणीती नः धीराः पितरः देवेषु रत्नं अभजन्त ॥

२ हे सोम ! त्वं क्रतुभिः सुक्रतुः भूः । विश्ववेदाः त्वं दक्षैः सुदक्षः (भवसि)। त्वं वृषत्वेभिः महित्वा वृषा, नृचक्षाः द्युम्नेभिः द्युम्नी अभवः ॥

३ हे सोम ! राज्ञः वरुणस्य ते नु व्रतानि । तव धाम बृहत् गभीरम् । हे सोम ! त्वं शुचिः असि । प्रियः न मित्र अर्यमा इव दक्षाय्यः असि ॥

४ ते दिवि या धामानि, या पृथिव्यां, या पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु (वर्तन्ते), हे सोम राजन् ! तेभिः विश्वैः सुमनाः अहेळन्, नः हव्या प्रति गृभाय ॥

५ हे सोम ! त्वं सत्पतिः असि । उत त्वं राजा, वृत्रहा त्वं भद्रः क्रतुः असि ॥

६ हे सोम ! नः जीवातुं प्रियस्तोत्रः वनस्पतिः त्वं च वशः, न मरामहे ॥

७ हे सोम ! त्वं महे ऋतायते त्वं यूने जीवसे दक्षं भगं दधासि ॥

अर्थ —१ हे सोम ! तू बुद्धिमान् और विशेष ज्ञानी करके प्रसिद्ध है। तू (सबको) भूलोकपर सरल मार्गसे ले जाता है। हे सोम ! तेरे मार्गदर्शनसे हमारे बुद्धिमान् पितरोंको देवोंमें भी रमणीय भोग प्राप्त हुए थे ॥

२ हे सोम ! तू अनेक कर्म करनेसे उत्तम कर्मकर्ता करके प्रसिद्ध है। तू सब जाननेवाला अनेक चतुरताओंसे युक्त होनेसे बडा चतुर कहा जाता है। तू अनेक शक्तियोंसे युक्त होनेसे बडा बलवान् हुआ है, तथा मानवोंका निरीक्षक तू अनेक धन पास रखनेके कारण धनी हुआ है ॥

३ हे सोम ! राजा वरुणके ये सब नियम हैं। तेरा स्थान बडा विशाल भव्य है। हे सोम ! तू शुद्ध है। तू हमारा प्रिय मित्र और अर्यमाके समान चतुर कुशल है ॥

४ तेरे निवासस्थान आकाश, पृथ्वी, पर्वत, ओषधि तथा जलोंमें हैं। हे राजा सोम ! उन सब स्थानोंसे तू आनन्द प्रसन्न तथा विद्वेष न करता हुआ, हमारे हविष्यान्नोंका स्वीकार कर॥

५ हे सोम ! तू उत्तम पालक है। तू राजा है, तू वृत्रका नाश करता है, तू सब हित करनेवाला है ॥

६ हे सोम ! हमारे दीर्घ जीवनके लिये तू प्रशंसनीय औषधि है, तेरे अनुकूल होनेपर हम नहीं मरेंगे ॥

७ हे सोम ! तू सत्यपालक बडे तरुण भक्तको दीर्घ जीवनके लिये बल और भाग्य देता है ॥

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत् त्वावतः सखा ८
सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ९
इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि । सोम त्वं नो वृधे भव १०
सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः । सुमृळीको न आ विश ११
गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव १२
सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । मर्य इव स्व ओक्ये १३
यः सोम सख्ये तव रारणद् देव मर्त्यः । तं दक्षः सचते कविः १४
उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः । सखा सुशेव एधि नः १५
आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य संगथे १६
आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः । भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे १७
सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व १८

---

८ हे सोम राजन् ! त्वं अघायतः विश्वतः नः रक्ष । त्वावतः सखा न रिष्येत् ॥

९ हे सोम! ते दाशुषे मयोभुवः याः ऊतयः सन्ति, ताभिः नः अविता भव ॥

१० हे सोम ! त्वं इमं यज्ञं इदं वचः जुजुषाणः उप आगहि । नः वृधे भव ॥

११ हे सोम ! वचोविदः वयं गीर्भिः त्वा वर्धयामः । नः सुमृळीकः आ विश ॥

१२ हे सोम ! नः गयस्फानः अमीवहा वसुवित् पुष्टि-वर्धनः सुमित्रः भव ॥

१३ हे सोम ! गावः न यवसेषु आ, मर्यः इव स्वे ओक्ये नः हृदि ररन्धि ॥

१४ हे देव सोम ! तव सख्ये यः मर्त्यः रारणत्, तं कविः दक्षः सचते ॥

१५ हे सोम ! नः अभिशस्तेः उरुष्य , अंहसः नि पाहि, नः सुशेवः सखा एधि ॥

१६ हे सोम ! आ प्यायस्व, ते वृष्ण्यं विश्वतः समेतु, वाजस्य संगथे भव ॥

१७ हे मदिन्तम सोम ! विश्वेभिः अंशुभिः आ प्यायस्व । (त्वं) सुश्रवस्तमः नः वृधे सखा भव ॥

१८ हे सोम ! अभिमातिषाहः ते पयांसि सं यन्तु । वाजाः उ (वै) सं (यन्तु) । वृष्ण्यानि स (यन्तु) । हे सोम ! अमृताय आप्यायमानः दिवि उत्तमानि श्रवांसि धिष्व ॥

८ हे राजा सोम ! तू हमारा पापियोंसे चारों ओरसे रक्षण कर, तेरेसे सुरक्षित हुआ भक्त नाशको नहीं प्राप्त होगा ॥

९ हे सोम ! दाताके लिये जो सुखदायक संरक्षण तेरे पास हैं, उनसे हमारी सुरक्षा कर ॥

१० हे सोम ! तू इस यज्ञका और इस स्तोत्रका स्वीकार करके हमारे पास आ और हमारा संवर्धन कर ॥

११ हे सोम ! स्तोत्र जाननेवाले हम अपनी वाणियोंसे तेरी बधाई करते हैं, इसलिये हमारे पास सुखदायी होकर आ ॥

१२ हे सोम ! तू हमारी वृद्धि करनेवाला, रोग दूर करने-वाला, धन-दाता, पोषणकर्ता और उत्तम मित्र बन ॥

१३ हे सोम ! गौवें जैसी जौके खेतमें और मनुष्य जैसा अपने घरमें संतुष्ट होता है, उस तरह हमारे हृदयमें संतोष उत्पन्न कर ॥

१४ हे सोम देव ! तेरी मित्रतामें जो भक्त रमता है, उसीको कवि और कुशल लोक चाहते हैं ॥

१५ हे सोम ! दुष्ट भाषणसे हमारा बचाव कर, पापसे हमारी सुरक्षा कर और हमारा सेवा करनेयोग्य मित्र बन ॥

१६ हे सोम ! तू बढ जा, तेरा बल चारों ओरसे बढे, जहां बलोंका संमेलन होगा, वहां तू रह ॥

१७ हे आनन्द देनेवाले सोम ! सब अंशोंसे बढता रह ! तू अत्यंत कीर्तिमान् हमारी वृद्धि करनेवाला मित्र हो ॥

१८ हे सोम ! शत्रुओंका पराभव करनेवाले तेरे पास सब दूध आजायें । सब अन्न तेरे पास आ जायँ । सब सामर्थ्य तेरे पास पहुंच जायें । सब अमरपनेका धारण पोषण करता हुआ तू द्युलोकमें उत्तम यश संपादन कर ॥

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥ १९

सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥ २०

अपाळ्हं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥ २१

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ २२

देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥ २३

---

१९ हे सोम ! ते या धामानि हविषा यजन्ति, ता ते विश्वा यज्ञं परिभूः अस्तु। गयस्फानः प्रतरणः सुवीरः अ-वीरहा दुर्यान् प्र चर ॥

२० यः ददाशत्, अस्मै सोमः धेनुं ददाति, (तथा) सोमः आशुं अर्वन्तं कर्मण्यं विदथ्यं सदन्यं सभेयं पितृश्रवणं वीरं ददाशत् ॥

२१ हे सोम ! युत्सु अपाळ्हं, पृतनासु पप्रिं स्वर्षां, अप्सां, वृजनस्य गोपां, भरेषु जां, सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं, त्वां मदेम ॥

२२ हे सोम ! त्वं इमाः विश्वाः ओषधीः, त्वं अपः, त्वं गाः अजनयः । उरु अन्तरिक्षं त्वं आ ततन्थ । त्वं ज्योतिषा तमः वि ववर्थ ॥

२३ हे देव सहसावन् सोम ! देवेन मनसा रायः भागं नः अभि युध्य । त्वा मा आ तनत् । उभयेभ्यः वीर्यस्य ईशिषे । गविष्टौ प्र चिकित्स ॥

१९ हे सोम! तेरे जिन स्थानोंकी पूजा हवनसे की जाती है, वे तेरे सब धाम यज्ञके चारों ओरही हों। हमारा विस्तार करनेवाला, तारण करनेवाला, उत्तम वीर और शत्रुवीरोंका नाश करनेवाला, हमारे घरोंके पास आ ॥

२० जो दान देता है उसके लिये सोम गाय देता है, उसी तरह सोम वेगवान् घोडा भी देता है, तथा कर्मकुशल, युद्धमें प्रवीण, घरकी दक्षता रखनेवाला, सभामें प्रमुख, पिताका यश बढानेवाला वीर पुत्र (सोमकी कृपासे) मिलता है ॥

२१ हे सोम ! युद्धोंमें अपराजित, सेनाओंमें बल बढानेवाला, उदकोंकी वृष्टि करनेवाला, संकटके समय सुरक्षा करनेवाला, ऐश्वर्योंमें प्रकट होनेवाला, उत्तम स्थानमें रहनेवाला, कीर्तिमान, विजयी (ऐसा तू है) तुझको देखकर हम आनंदित होते हैं ॥

२२ हे सोम ! तूने ये सब औषधियाँ, जल और गायें उत्पन्न की हैं । तूने यह विशाल अन्तरिक्ष फैलाया है । और प्रकाशसे अंधकारको दूर किया है ॥

२३ हे शत्रुका दमन करनेवाले सोम देव ! दिव्य मनसे धनका भाग हमें युद्ध करके भी दे। तेरा प्रतिबंध कोई भी नहीं करेगा । दोनों प्रकारके सामर्थ्योंका तूही स्वामी है। युद्धमें अपना प्रभाव बता दे ॥

(२२) सोमरस

(ऋ ९।२१) गोतमो राहूगणः । पवमान सोमः । गायत्री ।

प्र सोमासः स्वाध्यः पवमानासो अक्रमुः । रयिं कृण्वन्ति चेतनम् ॥ १

अन्वय - १ स्वाध्यः पवमानासः सोमासः प्र अक्रमुः, (ते) चेतनं रयिं कृण्वन्ति ॥

अर्थ— १ ध्यानमें उत्तम, छाने जानेवाले सोमरस प्रवाहित हो रहे हैं, वे ज्ञानकी धन देते हैं ॥

दिवस्पृथिव्या अधि भवेन्द्रो द्युम्नवर्धनः	। भवा वाजानां पतिः	२
तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः	। सोम वर्धन्ति ते महः	३
आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्	। भवा वाजस्य संगथे	४
तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितम्	। वर्षिष्ठे अधि सानवि	५
स्वायुधस्य ते सतो भुवनस्य पते वयम्	। इन्दो सखित्वमुश्मसि	६

२ हे इन्दो ! वाजानां पतिः (त्वं) दिवः पृथिव्याः द्युम्नवर्धनः अधि भव ॥

२ हे सोम बलोंका स्वामी तू है, द्युलोक और पृथ्वीपर ऐश्वर्यका वर्धन करनेवाला हो ॥

३ हे सोम ! तुभ्यं वाताः अभिप्रियः, (तथा) सिन्धवः तुभ्यं अर्षन्ति, ते महः वर्धन्ति ॥

३ हे सोम ! वायु तेरे लिये बहता है, नदिया भी तेरे लिये बहती हैं, सब तेराही वर्धन करते हैं ॥

४ हे सोम ! आ प्यायस्व, ते विश्वतः वृष्ण्यं सं एतु, वाजस्य संगथे भव ॥

४ हे सोम ! तू बढ जा ! तेरे पास चारों ओरसे शक्ति इकट्ठी हो जावे । बलके संमेलनमें तू उपस्थित रह ॥

५ हे बभ्रो ! वर्षिष्ठे अधि सानवि तुभ्यं गावः घृतं पयः अक्षितं दुदुह्रे ॥

५ हे भूरे रंगवाले सोम ! बडे पर्वत-शिखरपर तुम्हारे लिये गायें घी और दूधके अक्षय प्रवाह बहाती हैं ॥

६ हे भुवनस्य पते इन्दो ! वयं स्वायुधस्य ते सतः सखित्वं उश्मसि ॥

६ हे भुवनोंके स्वामी सोम ! हम उत्तम शस्त्रवाले तेरी मित्रता प्राप्त करना चाहते हैं ॥

(२३) सोमरस

(९।६७।७-९) गोतमो राहूगणः । पवमानः सोमः । गायत्रीः ।

पवमानास इन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः	। इन्द्रं यामेभिराशत	७
ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः	। आयुः पवत आयवे	८
हिन्वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं मधुश्चुतम्	। अभि गिरा समस्वरन्	९

७ पवित्रं तिरः पवमानासः आशवः इन्दवः यामेभिः इन्द्रं आशत ॥

७ छाननीसे छाने जानेवाले सोमरसके गतिमान् प्रवाह, अपनीही गतियोंसे इन्द्रके पास पहुंच गये ॥

८ ककुहः पूर्व्यः आयुः इन्दुः सोम्यः रसः आयवे इन्द्राय पवते ॥

८ आनन्द देनेवाला पहिलेसे सिद्ध रखा आयुष्यवर्धक सोमरस दीर्घायुवाले इन्द्रके लिये बह रहा है ॥

९ उस्रयः मधुश्चुतं सूरं पवमानं हिन्वन्ति । गिरा अभि सं अस्वरन् ॥

९ गायें मधुरसके प्रवाहमें चूनेवाले प्रकाशमान् सोमको छाननेके समय (अपने दूधके मिश्रणसे) अधिक प्रवाहित करती हैं । वाणीसे उसकी स्तुति भी की जाती है ॥

सोमरसका वर्णन

यहां सोमके दो पूर्ण सूक्त और तीसरे सूक्तके केवल तीनही गोतम ऋषिके मंत्र दिये हैं । कुल १२ मंत्र हैं । इसमें जो सोमका वर्णन है, वह अर्थबोधके लिये सुबोध है ।

सोमरस मस्तिष्कको उत्तेजित करनेवाला है, इसलिये उस रसको (मनीषा प्र चिकितः । मं.१) बुद्धिका ज्ञान बढानेवाला कहा है । यज्ञकर्ममें सहायक होनेसे (पन्थां अनु नेषि । १) सन्मार्गसे चलाता है । सोमयागमें (प्रणीती धीराः रत्नं अभजन्त । २) पदानि देनेवालों तथा बुद्धिमानोंको रमणीय ऐश्वर्यादि देनेवाली है ।

लिये तीन प्रहर लगतेही होंगे। इसका विचार अधिक होना योग्य है। (७)

यह सोमरस (आयुः) आयु बढानेवाला है। और इस रसका पान करनेसे इन्द्रकी आयु बढी है ऐसा भी (आयवे इन्द्राय) इसमें कहा है। (८)

इस तरह इन तीनों सूक्तोंमें सोमरसका वर्णन है। अब इन सूक्तोंमें जो विशेष महत्त्वका उपदेश किया है, उसका मनन करते हैं।

सुपुत्रके लक्षण

उत्तम सुसंतति निर्माण करना वैदिक धर्मका मुख्य उद्देश्य है। इस सुपुत्रके विषयमें इस सूक्तमें जो निर्देश हैं, वे विशेष मनन करनेयोग्य हैं, वे अब देखिये-

(वीरः) पुत्र वीर हो, शूरवीर हो, (विदथ्यः) युद्धमें निपुण हो, (सभेयः) सभामें जाकर प्रमुख स्थानपर बैठनेवाला हो, (सदन्यः) घरकी सुव्यवस्था करनेवाला हो तथा (पितृश्रवणः) पिताका यश बढानेवाला हो। वेदमें पुत्रका नामही वीर है। ये सब गुण सुपुत्रके हैं और बडे मननीय हैं। (मं. २०)

सोमके मिषसे आदर्श वीरके जो लक्षण इसीके अगले मंत्रमें कहे हैं, वेभी यहां देखनेयोग्य हैं— (युत्सु अषाळ्हः) युद्धोंमें शत्रुके लिये असह्य हमला करनेवाला वीर, (पृतनासु पप्रिः) सेनाओंका सामर्थ्य बढानेवाला, जिसके होनेसे सेना उत्साहित होती है, (वृजनस्य गोपाः) कष्टके समयमें बचानेवाला, कठिन समयमें अनेक युक्तियोंसे सुरक्षा करनेवाला, (भरेषुजाः) युद्धोंमें अथवा ऐश्वर्यके प्रसंगमें जानेवाला और योग्य कर्म करनेवाला, (सुश्रवाः) यशस्वी, कीर्तिमान्, (जयन्) विजयी, (सुक्षितिः) उत्तम प्रकारसे रहनेवाला, घरकी सुव्यवस्था रखनेवाला, (स्वर्षाः) उत्तम गतिमान्, प्रगतिशील ऐसे वीरका इस मंत्रमें वर्णन किया है। यह आदर्श मानव है। ये विशेषण सुपुत्रके वर्णनके साथ देखनेयोग्य हैं। (२१)

इस प्रकार ये मंत्र अच्छी तरह मनन करनेयोग्य हैं। यहां सोम-प्रकरण समाप्त हुआ है।

गोतम ऋषिका दर्शन समाप्त

गोतम ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

उषा-प्रकरण

सोम-प्रकरण

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(१०)

कुत्स ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका १५ वाँ तथा १६ वाँ अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

संवत् २००३

मूल्य २) रु०

कुत्स ऋषिका तत्त्वज्ञान

कुत्सके कुलका विचार

कुत्स ऋषि अनेक हो चुके हैं, उनका वर्णन यहां करते हैं। देखिये सायनभाष्यमें कहा है—

" अत्र काचिदाख्यायिका श्रूयते । रुरुनामकः कश्चिद्राजर्षिः, तस्य पुत्रः कुत्साख्यो राजर्षिरासीत् । स च कदाचित् शत्रुभिः सह युयुत्सुः संग्रामे स्वयमशक्तः सन्, शत्रूणां हननार्थं इन्द्रस्य आह्वानं चकार । स चेन्द्रः कुत्सस्य गृहमागत्य तस्य शत्रून् जघान । तदनन्तरं अतिप्रीत्या तयोः सख्यं अभवत् । सख्यानंतरं इन्द्र पुनरपि स्वकीयं गृहं प्रापयामास । तत्र शची इन्द्रं प्राप्तुमागता सती तौ समानरूपौ दृष्ट्वा, अयमिन्द्रो, अयं कुत्स इति विवेकाभावेन संशयं चकार इति । अनया आख्यायिकया प्रतीयमानोऽर्थोऽत्र प्रतिपाद्यते । आ दस्युघ्ना इत्यत्र । (ऋ. ५।३१।९०)

'एक कथा सुनी जाती है । रुरु नामक एक श्रेष्ठ राजा था । उसका पुत्र कुत्स भी श्रेष्ठ राजा था। वह एक समय अपने शत्रुओंसे लडना चाहता था, पर स्वयं उनसे लडनेमें असमर्थ था, इसलिये उसने अपनी सहायताके लिये इन्द्रको बुलाया। इन्द्र कुत्सकी सहायताके लिये आया और उसने कुत्सके शत्रुओंका वध किया। इससे इन्द्र और कुत्सकी मित्रता हुई। पश्चात् कुत्स भी इन्द्रके घर जाता रहा। कुत्स और इन्द्र एकठे बैठे थे, उस समय इन्द्रकी पत्नी शची इन्द्रसे मिलनेके लिये वहां आगयी। परंतु वहां इन्द्र और कुत्स समान वेष धारण करके बैठे थे, इसलिये शची पहचान न सकी कि कौनसा इन्द्र है। यह भाव ' आ दस्युघ्ना ' मंत्रमें है । ' देखिये यह मन्त्र—

आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः । स्वे योनौ नि षदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥
(ऋ. ५।३१।९०)

(हे इन्द्र) हे इन्द्र ! (दस्युघ्ना मनसा अस्तं आ याहि) शत्रुका वध करनेकी इच्छासे तूं कुत्सके घर आया है । (कुत्सः च ते सख्ये निकामः भुवत्) कुत्स तेरी मित्रताको भी चाहताही है । (स्वे योनौ निषदतं) आप दोनों अपने घरमें बैठे हैं। (ऋतचित् नारी सरूपा वां वि चिकित्सत्) सत्य जाननेकी इच्छा करनेवाली तेरी स्त्री दोनोंका समानरूप देखकर आप दोनोंके विषयमें संदेह करने लगी।

युद्धके सेनापतिके पोषाख शरीरपर रखनेसे शची दोनोंमेंसे अपना पति कौनसा है यह न पहचान सकी, यह ठीकही है। कुत्स और इन्द्र दोनों वीर सेनापतिका कार्य करते थे। सेनापतिके लिये कवच आदि धारण करके रहना आवश्यक होता है। सब शरीरपर तथा मुखपर भी कवच रखा जाय तो वीरोंकी पहचान होना कठिन होता है। केवल आंख और नाकही खुले रहते हैं शेष शरीरपर कवच होता है। इसलिये वीरकी पोशाखमें पतिकी एकदम पहचानना कठिन होना स्वाभाविक है।

कुत्सके वर्णनमें कुत्सको ' आर्जुनेय ' कहा है। इसका अर्थ ऐसा होता है कि यह कुत्स 'अर्जुनी' नामक स्त्रीका पुत्र था। इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र प्रमाण हैं—

१ याभिः कुत्सं आर्जुनेयं शतक्रतू॥(ऋ १।११२।२३)
२ अहं कुत्सं आर्जुनेयं न्यृञ्जे ॥ (ऋ. ४।२६।१)
३ त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्सं आवः... शुष्णं कुयवं... अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥ (ऋ. ७।१९।२; अथर्व. २०।३७।२)
४ वहत् कुत्सं आर्जुनेयं शतक्रतुः ॥ (ऋ. ८।१।११)

कुत्सकी माताकानाम ऋग्वेदमें चार बार और अथर्ववेदमें एक बार आया है। वे मंत्रभाग ऊपर दिये हैं। कुत्सके लिये तथा वेतसुके हित करनेके लिये इन्द्रने इभका नाश किया ऐसा भाव निम्नलिखित मंत्रमें है—

अहं पितेव वेतसूँरभिष्टये तुग्रं कुत्साय स्मदिभं च रन्धयम् ॥ (ऋ. १०।४९।४)

' मैं (इन्द्र) ने कुत्सके लिये, पिता अपने पुत्रका हित करनेके समान, वेतसूका अभीष्ट सिद्ध कर दिया और उसके शत्रुका वध किया '। तथा–

१ त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥ (ऋ. १।६३।३)
२ त्वमायसं प्रति वर्तयो गोर्दिवो अश्मानमुपनीतमृभ्वा । कुत्साय यत्र पुरुहूत वन्वन् शुष्णमनन्तैः परियासि वधैः ॥ (ऋ. १।१२१।९)
३ मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा । वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ (ऋ. १।१७५।४)
४ वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा । प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीकेऽभि स्पृधो यासिषद् वज्रबाहुः ॥ (ऋ. १।१७४।५)
५ कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा । सद्यो दस्यून् प्र मृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ॥ (ऋ. ४।१६।१२)
६ यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥ (ऋ. ४।३०।४)

(१) तूने तेजस्वी तरुण कुत्सका हित करनेके लिये उसके साथ युद्ध करनेके लिये आये शुष्णका वध किया। (२) हे प्रशंसनीय इन्द्र! तूने कुत्सका हित करनेके लिये अनन्त शस्त्रोंसे शुष्णको घेर लिया, और द्युलोकसे लाया लोहेका पत्थर शत्रुपर फेंक दिया। (३) हे ज्ञानी वीर! अपने सामर्थ्यसे तेजस्वी चक्रको लेकर कुत्सको बचानेके निमित्त वायुके वेगसे शुष्णका वध करनेके हेतुसे हमला कर। (४) हे इन्द्र! कुत्सका हित करनेके लिये वायुके समान दौडनेवाले घोडोंसे यहाँ आ और चमकीला चक्र हाथमें लेकर पासकी शत्रुओंपर हमला चढा दे। (५) कुत्सका हित करनेके लिये सहस्रों साथियोंके साथ हमला करनेवाले शुष्णको कुयव शत्रु और सूर्यके समान तेजस्वी चक्र लेकर सब शत्रुओंका नाश कर। (६) शत्रुके साथ युद्ध करनेवाले कुत्सको बचानेके लिये उसके शत्रुओंका नाश करनेके हेतुसे सूर्यका चक्र तुमने लिया (और उससे शत्रुओंका नाश किया है।)

इन मंत्रोंमें कुत्सका कल्याण करनेके लिये इन्द्रने शुष्ण नामक असुरका वध उसके साथियोंके साथ किया यह बात कही है, इसके साथ साथ चक्रके अस्त्रका प्रयोग भी यहां लिखा है–

आयसं अश्मानं दिवः उपनीतं प्रतिवर्तयः ।
सूर्यं चक्रं ओजसा मुषाय ।
सूरः चक्रं प्र यासिषत् ।
सूर्यं चक्रं मुषाय ।

द्युलोकसे लोहेका पत्थर लाया और वह शत्रुपर फेंका, सूर्यका चक्र लिया और उसका शत्रुपर प्रयोग किया। चक्रका प्रयोग शत्रुपर किया जाता है, रथका चक्र भी शत्रुपर फेंका जाता है। यहां जो 'सूर्यका चक्र' लेनेका वर्णन है वह मननीय है। खोज होनेसेही इसका निश्चय हो सकता है। द्युलोकसे लाया हुवा लोहेका पत्थर, यह एक अस्त्रही है, जो शत्रुपर फेंका जाता है। द्युलोकका अर्थ हिमपर्वतका शिखर है यह बात सोमप्रकरणमें हमने सिद्ध की है। हिमशिखरसे लाया लोहेका पत्थर, अथवा लोहे जैसा कठिन पत्थर रस्सीके साधनसे शत्रुपर फेंका जाता है। गोफनसे पत्थर दूरतक फेंके जाते हैं, वैसाही यह समझना योग्य है। जो हो, यहां इन्द्रने कुत्सकी सहायतार्थ अनेक शस्त्र अस्त्र उपयोगमें लाये, शत्रुका पराभव किया और कुत्सका कल्याण किया यह सत्य है। पश्चात् इन्द्र और कुत्सकी मित्रता भी हो गयी थी।

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येषु आविथ । (ऋ. १।५१।६)
त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क् । (ऋ. ६।२६।३)

इनमें भी वही बात कही है कि इन्द्रने शुष्णका वध करके कुत्सका हित किया। और देखिये–

प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेऽकः । अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचः ॥ (ऋ. ५।२९।१०)

' (सूर्यस्य अन्यत् चक्रं प्रावृहः) सूर्यके रथका एक चक्र तूने उठाया और (अन्यत् कुत्साय यातवे अकः) और दूसरा चक्र उसकी गतिके लिये रख दिया। नकटे नाकवाले दुष्ट शत्रुओंका तूने वध किया और असत्य भाषण करनेवाले शत्रुओंका भी नाश किया। ' इस मंत्रमें कुत्सके लिये इन्द्रने जो काम किये उनका वर्णन है। यहांका ' अनासः ' (अ+नासः) पद नकटे नाकवाले लोगोंका बोधक है। वे दस्यु लोग होंगे ऐसा प्रतीत होता है। सूर्यके रथके दोनों चक्रोंका यहां उल्लेख

है। यदि यह सचमुच सूर्यके रथकाही चक्र है, तब तो यह निःसन्देह आलंकारिक वर्णन है। निःसन्देह यह ऐतिहासिक घटना नहीं है। इस अलंकारका विवेचन स्वतंत्र लेखमेंही करना योग्य है। तथा—

गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः।
यन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम्॥ (ऋ. ५।२९।९)

'तरुण अश्वोंके रथमें बैठकर, हे इन्द्र! तू घर आगया, यहां कुत्स अन्य देवोंके साथ था, तब तुमने आगे होकर शुष्णका वध किया।'

यहाँ इन्द्र और कुत्सका एक रथसे आना जाना, घरमें दोनोंका आगमन और इन्द्रद्वारा शुष्णवध यह सब वर्णन है। और एक मंत्र यहां देखनेयोग्य है—

प्र मुञ्चस्व परि कुत्सादिहा गहि।
किमु त्वावान् मुष्कयोर्बद्ध आसते॥ (ऋ. १०।३८।५)

इस मंत्रपर शाट्यायन ब्राह्मणमें निम्नलिखित विवरण किया है—

कुत्सश्च लुशश्च इन्द्रं व्यह्वयेताम्। स कुत्सस्य आह्वं आगच्छत्, तं शतेन वार्ध्राभिः आण्डयोरबध्नात्। तं लुशोऽभ्यवदत् 'स्वव्रजं हि' इति। ताः सर्वाः संलुप्य लुशमभि प्रादुद्रुवत्।
(शाट्यायन ब्राह्मण, जै. ब्रा. २२८, पं. विं. ब्रा ९।२।२२)

'कुत्स और लुश इन दोनों ऋषियोंने इन्द्रको बुलाया। वह कुत्सके पास गया। कुत्सने इन्द्रको उसके अण्डके मध्यमें चमडेकी सौ पट्टियोंसे बांध दिया, ताकि वह बाहर न जा सके। पश्चात् लुशने इन्द्रकी प्रार्थना की जो इस मंत्रमें है– 'क्या तुम्हारा जैसा वीर अण्डके स्थानपर बांधा जाकर इस तरह प्रतिबंधमें रह सकता है!' यह प्रार्थना सुनकर इन्द्र पाशोंसे मुक्त होकर भागता हुआ लुशके पास गया।'

ब्राह्मणोंकी यह कथा भी एक बडी भारी समस्याही है। पर इसमें कुत्सका संबंध वर्णन किया है इसलिये यहां दी है। पंचविंश ब्राह्मण (१४।६।८) में निम्नलिखित प्रकार और एक कथा लिखी मिलती है।— 'औशं कुत्सका पुरोहित उपगु सौश्रवस था। कुत्सने ऐसी घोषणा की कि जो कोई इन्द्रको हवि देगा उसका सिर मैं काट दूंगा। पश्चात् इन्द्रने कुत्ससे कहा कि मुझे सुश्रवाने हवि दिया है। यह सुनतेही साम गानेवाले उपगु सौश्रवसका सिर कुत्सने काट दिया। सुश्रवाने इन्द्रसे पूछा, तब इन्द्रने वह सिर सुश्रवाके शरीरपर उसी समय जोड दिया।' इस कथामें इन्द्र और कुत्सकी कुछ स्पर्धासी प्रतीत होती है। वेदमंत्रोंमें इन्द्रका मित्र कुत्स दीखता है, इसलिये यह कथा आधुनिकसी दीखती है।

भृगु कुलमें गोत्रप्रवर्तक एक कुत्स ऋषि दिखाई देता है। अंगिराकुलमें मंत्रदृष्टा ऋषि एक कुत्स है, उसीके मंत्र इस स्थानपर दिये हैं, जिनका विवरण आगे इस ग्रंथमें पाठक देखेंगे।

दशरथ पुत्र श्रीरामचन्द्रकी राजसभामें एक कुत्स ऋषि था। पर यह ऋषि पौराणिक होना अधिक संभवनीय है। इसके अतिरिक्त पुराणमें इस कुत्स ऋषिका वर्णन नहीं मिलता है। वेदमें आये हुवे निर्देश पूर्वोक्त स्थानमें दिये हैं। इनके अतिरिक्त वेदमें अनेक जगह कुत्सके नाम आये हैं वे मंत्र अब देखिये—

आवः कुत्समिन्द्र यस्मिन्। चाकन् (ऋ. १।३३।१४)
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं (आविथ) (ऋ. १।५३।१०; अथर्व २०।२१।१०)
इन्द्रं कुत्सो... अद्भूतये। (ऋ. १।१०६।६)
याभिः कुत्सं... आवतम्। (ऋ. १।११२।९)
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्। (ऋ. २।१४।७)
शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय। (ऋ. २।१९।६)
उग्रमयातमवहो ह कुत्सम्। (ऋ. ५।३१।८)
कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै। (ऋ. ६।१८।१३)
इन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ। (६।२०।५)
त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्र (युध्य) (ऋ. ६।३१।३)
कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषम्। (ऋ. ७।२५।५)
त्रिता कुत्साय शिश्नथो नि चोदय। (ऋ. ८।२४।२५)
य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयः। (ऋ. ८।५३।२)
कुत्सेन रथो यो असत्ससवान्। (ऋ. १०।२९।२; अथर्व.२०।७६।२)
विप्रो न कुत्सो अरित्तुर्नशायथः। (ऋ. १०।४०।६)
अहं कुत्समावमाभिरूतिभिः। (ऋ. १०।४९।३)
कुत्साय शुष्णं कृपणे परादात्। (ऋ. १०।९९।९)

आवो यद्दस्युहत्ये कुत्सपुत्रम् । (१०।१०५।११)
कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः । (ऋ. १०।१३८।१)
यौ...अवथो....कुत्सम् । (अथर्व. ४।२९।५)

इस तरह ऋग्वेदमें और अथर्ववेदमें कुत्सके वर्णनके मंत्र आये हैं। अथर्ववेदमें केवल चारही वार कुत्स पद है। ऋग्वेदमें करीब ३६ बार आया है। इन मंत्रोंके वर्णनोंसे पता लगता है कि कुत्सकी सहायतार्थ इन्द्र आता था, कुत्सके शत्रुओंसे लडता था, शत्रुका पराभव करके कुत्सकी सहायता करता था। कुत्सके साथ अतिथिग्व और आयु ये दो ऋषिनाम भी यहां दीखते हैं और कुत्सके पुत्रकी सुरक्षाके लिये भी इन्द्र आता था ऐसा उक्त मंत्रमें है। कुत्सके शत्रु शुष्ण आदि यहां हैं। कुत्सके विषयमें इतनाही पता चलता है। पुराणोंमें भी कुत्सका वर्णन किसी जगह नहीं है।

वास्तवमें इसके २५१ मंत्र वेदसंहिताओंमें मिलते हैं, पर इसके अतिप्राचीन होनेके कारण इसकी कथाएं नहीं हैं। अङ्गिरस गोत्रमें कुत्सका जन्म हुआ था। रुरु उसके पिताका नाम, अर्जुनी उसकी माताका नाम था। यह इन्द्रका मित्र था, तथा अतिथिग्व और आयुका साथी था। कईयोंके मतसे रुरुका पुत्र कुत्स कोई और है और आंगिरा गोत्रका कुत्स दूसराही है। हमारे मतसे भी ऐसाही है। अब इसके मंत्र देखिये-

कुत्स (आंगिरस) ऋषिके मंत्र

ऋग्वेद प्रथम मण्डल

सूक्त	देवता	मंत्रसंख्या	
(पञ्चदशोऽनुवाकः)			
१।९४	अग्निः	१६	
९५	,,	११	
९६	,, (द्रविणोदाः)	९	
९७	, (शुचिः)	८	
९८	,, (वैश्वानरः)	३	४७
१।१०१	इन्द्रः	११	
१०२	,,	११	
१०३	,,	८	
१०४	,,	९	३९
(षोडशोऽनुवाकः)			
१।१०६	विश्वे देवाः	७	
१०७	,,	३	१०
१।१०८	इन्द्राग्नी	१३	
१०९	,,	८	२१
१।११०	ऋभवः	९	
१११	,,	५	१४
१।११२	अश्विनौ	२५	
११३	उषाः	२०	
११४	रुद्रः	११	
११५	सूर्यः	६	
९।९७।४५-५८	पवमानः सोमः	१४	
अथर्व० १०।८	आत्मा	४४	१२०
		कुलमंत्र-संख्या	२५१

देवतानुसार मंत्र-संख्या

ऊपर दी मंत्रसंख्या देवतानुसारही है, तथापि वह पुनः दी जाती है—

१ अग्निः	४७
२ आत्मा	४४
३ इन्द्रः	३९
४ अश्विनौ	२५
५ इन्द्राग्नी	२१
६ उषाः	२०
७ ऋभवः	१४
८ पवमानः सोमः	१४
९ रुद्रः	११
१० विश्वे देवाः	१०
११ सूर्यः	६
कुलमंत्र संख्या	२५१

यहां ग्यारह देवताओंके सूक्त हैं। इनमें अथर्ववेदके मंत्र ४४ हैं और ऋग्वेदके २०७ हैं। अथर्ववेदमें कुत्स ऋषिके और ६ मंत्र हैं, पर वे ऋग्वेदकेही मंत्र हैं, उनके पते और स्थान नीचे दिये हैं—

ऋग्वेद	अथर्ववेद		
१।१०४।९	२०।८।२	मंत्र-संख्या	१
१।९७।१	१३।३	,, ,,	१
१।११५।१-२	१०७।१४-१५	,, ,,	२
११५।४-५	१२३।१-२	,, ,,	२
		कुलमंत्र-संख्या	६

छन्दानुसार मंत्र-संख्या यह है—

१ त्रिष्टुप्	१०१
२ जगती	९४
३ अनुष्टुप्	२४
४ पंक्तिः	१८
५ गायत्री	९
६ बृहती	५
	२५१

अनुष्टुप्, बृहती और गायत्रीके फुटकर भेद यहां लिये नहीं हैं। उनका निर्देश यथास्थान सूक्तके ऊपर पाठक देख सकेंगे

आत्माका सूक्त

'*आत्मा*' देवताका एक स्वतंत्र सूक्त इस ऋषिका अथर्ववेदमें मिलता है, यह इस ऋषिकी विशेषता है।

इस ऋषितकके ऋषियोंके मंत्रोंमें अग्नि, इन्द्र आदि देवताके सूक्तोंमें परमात्माका वर्णन मिलता रहा, पर इस ऋषिका एक आत्मसूक्तही स्वतंत्ररूपसे मिल रहा है। इस सूक्तमें हमें **'सर्वात्मसिद्धान्त'** अथवा **'सदैक्यसिद्धान्त'** किंवा **'सर्वेश्वरसिद्धान्त'** स्पष्टरूपसे दीखता है। पाठक इस दृष्टिसे इन मंत्रोंका मनन करें। यह आत्मसूक्त एक अच्छा उपनिषद्ही है। *ब्रह्मविद्याका यह अद्वितीय सूक्त है, जो विद्वान् संहितामें ब्रह्मविद्या नहीं है ऐसा मानते हैं, उनको इस सूक्तका* अच्छी तरह मनन करना चाहिये।

सूचना– कुत्स ऋषिके सूक्तोंमें ऋ.१।१०५यह सूक्त गिना गया है। **'त्रित आप्त्यः, कुत्स आंगिरसो वा'** ऐसा विकल्पसे कुत्सऋषि इस सूक्तका द्रष्टा माना जाता है, पर इस सूक्तके मंत्र ९;१७ में 'त्रित' का उल्लेख है, इसलिये ऋ. १।१०५ वां सूक्त त्रित ऋषिके दर्शनमें हमने रखा है। जो पाठक इस सूक्तका अर्थ देखना चाहें वे त्रित ऋषिके दर्शनमें इसे देखें।

स्वाध्याय-मण्डल औंध (जि. सातारा) ता. १।२।४७	}	निवेदक **श्रीपाद दामोदर सातवळेकर** अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, औंध

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

कुत्स ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका १५ वाँ तथा १६ वाँ अनुवाक)

[१] अग्नि-प्रकरण

(१) उन्नतिका मार्ग

(ऋ. १।९४) कुत्स आङ्गिरसः। अग्निः (जातवेदाः); ८ (अयः पादः) देवाः, १६ उत्तरार्धस्य अग्निः, मित्रवरुणादितिसिन्धुपृथिवीद्यावो वा। जगती; १५-१६ त्रिष्टुप्।

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १×

यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम्।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २

शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम्।
त्वमादित्याँ आ वह तान् ह्यु१श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३

अन्वयः— १ अर्हते जातवेदसे मनीषया इमं स्तोमं, रथं इव, सं महेम। अस्य संसदि नः प्रमतिः भद्रा हि। हे अग्ने! तव सख्ये वयं मा रिषाम ॥

२ यस्मै त्वं आयजसे, सः साधति, अनर्वा क्षेति, सुवीर्यं दधते। सः तूताव, एनं अंहतिः न अश्नोति। हे अग्ने० ! ॥

३ त्वा समिधं शकेम, धियः साधय, त्वे आहुतं हविः देवाः अदन्ति। त्वं आदित्यान् आ वह, तान् हि उश्मसि। अग्ने० ॥

अर्थ- १ सुयोग्य और बने हुएको जाननेवाले (अग्निदेवके लिये) हम अन्तःकरणपूर्वक इस स्तोत्रका अर्पण उस तरह करेंगे जिस तरह रथ (किसीको दिया जाता है)। इसकी साथमें हमारी उत्तम मति अधिक कल्याणकारिणी बनती है। हे अग्ने ! तुम्हारी मित्रतामें हमारा नाश नहीं होगा ॥

२ (हे अग्ने !) जिसके लिये तुम यज्ञ करते हो, उसको सिद्धि मिलती है, वह हिंसित न होता हुआ निवास करता है, उत्तम वीरता धारण करता है। वह बढता जाता है, इसे दुर्गति कभी प्राप्त नहीं होती। हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

३ (हे अग्ने !) हम तुम्हें अच्छी तरह प्रदीप्त कर सकेंगे, हमारी बुद्धियोंको साधनसंपन्न करो, तुम्हारेमें हवन किया अन्न देवता खाते हैं। तुम आदित्योंको यहां ले आओ, उन्हें हम चाहते हैं। हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

× अथर्व. २०, १३, ३। साम. ६६, १०६४

भरामेध्मं कृणवामा हवींपि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४ ॥

विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ५ ॥

त्वमध्वर्युरुत होताऽसि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः ।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ६ ॥

यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित् सन्तळिदिवाति रोचसे ।
राज्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ७ ॥

पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ८ ॥

---

४ इध्म भराम, पर्वणा-पर्वणा चितयन्तः वयं ते हवींषि कृणवाम । जीवातवे धियः प्रतरं साधय । अग्ने ! ० ॥

५ अस्य जन्तवः विशां गोपाः चरन्ति, यत् च द्विपत् उत चतुष्पद् अक्तुभिः । चित्र. प्रकेतः उषसः महान् असि । अग्ने० ! ॥

६ त्व अध्वर्यु, उत पूर्व्यः होता असि, प्रशास्ता पोता, जनुषः पुरोहित. (असि), हे धीर ! विश्वा आर्त्विज्या विद्वान् पुष्यसि । अग्ने० ! ॥

७ यः सुप्रतीकः, विश्वतः सदृङ् असि, दूरे चित् सन् तळित् इव अति रोचसे । हे देव ! राज्याः चित् अन्धः अति पश्यसि । अग्ने० ! ॥

८ हे देवाः ! सुन्वतः रथः पूर्वः भवतु । अस्माकं शंसः दूढ्यः अभि अस्तु । तत् आ जानीत, उत वच. पुष्यत । अग्ने० ! ॥

४ (हे अग्ने ! तुम्हारे लिये हम) इन्धन भर देंगे, प्रत्येक पर्वमें तुम्हें प्रदीप्त करते हुए हम तुम्हारे अन्दर हवि (अर्पण) करेंगे । हमारी दीर्घायुके लिये हमारी बुद्धियोंको उच्चतर बनाओ । हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

५ इसकी किरणें प्रजाओंको सुरक्षित करती हुई (सर्वत्र) चलती हैं । जो द्विपाद और चतुष्पाद है वह (इसी अग्निकी सहायतासे) रात्रीके समयमें (चल फिर सकता है)। विलक्षण तेजसे युक्त तुम ज्ञान देते हुवे उषासे भी महान् हो।। हे अग्ने! तुम्हारी० ॥

६ तुम अध्वर्यु, और प्राचीन कालसे होता हो, प्रशास्ता पोता, और जन्मसे पुरोहित हो । हे बुद्धिमन् ! तुम सब ऋत्विजोंके कर्तव्योंको जानते हो, (तुम सबको) पुष्ट करते हो । हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

७ तुम सुन्दर आदर्श हो, सब प्रकारसे दर्शनीय हो, तुम दूर होनेपर भी पासके समान प्रकाशित होते हो । हे देव ! तुम रात्रिके अन्धकारमें भी दूरका देखते हो । हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

८ हे देवो ! सोमयाग करनेवालेका रथ सबसे आगे रहे । हमारा भाषण दुष्ट बुद्धिवालोंको परास्त करनेवाला हो । वह ज्ञान तुम जान लो, और उससे अपना भाषण परिपुष्ट करो । हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ९

यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव १०

अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत् ते यवसादो व्यस्थिरन् ।
सुगं तत् ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ११

अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसेऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव १२

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव १३

---

९ वधैः दुःशंसान् दूढ्यः अप जहि, ये के चित् दूरे वा अन्ति वा अत्रिणः । अध यज्ञाय गृणते सुगं कृधि । अग्ने० । ॥

१० अरुषा रोहिता वातजूता रथे यत् अयुक्थाः, ते रवः वृषभस्य इव । आत् वनिनः धूमकेतुना इन्वसि । अग्ने० । ॥

११ अध स्वनात् उत पतत्रिणः बिभ्युः । ते द्रप्साः यवसादः यत् व्यस्थिरन्, तत् ते तावकेभ्यः रथेभ्यः सुगं । अग्ने० । ॥

१२ अयं (स्तोता) मित्रस्य वरुणस्य धायसे (भवतु) अवयातां मरुतां हेळः अद्भुतः (भवति) । नः सु मृळ । एषां मनः पुनः भूतु । अग्ने० । ॥

१३ देवः देवानां अद्भुतः मित्रः असि । अध्वरे चारुः वसूनां वसुः असि । सप्रथस्तमे तव शर्मन् स्याम । अग्ने० ॥

९ घातक शस्त्रोंसे दुष्टों और हिंसकोंको नष्ट-भ्रष्ट करो, जो दूर या समीप भक्षकोंसनेवाले (शत्रु हों उनका नाश करो)। और यज्ञ करनेवाले उपासकके लिये मार्ग सरल कर दो। हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

१० तेजस्वी लालवर्णवाले, वायुसे प्रेरित हुए घोडोंको रथमें जब तुम जोतते हो, तब तुम्हारी गर्जना सांडके समान (होती है)। तब बनके वृक्षोंको धूवेंकी ध्वजासे तुम व्यापते हो। हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

११ तुम्हारा शब्द सुननेपर पक्षी भी भयभीत होते हैं। तब तुम्हारी चिनगारियाँ घासके तिनकोंको खाती हुई चारों ओर फैलती हैं, तब वह (वन) तुम्हारे रथोंके संचारके लिये सुगम हो जाता है। हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

१२ यह (भक्त) मित्र और वरुणकी सहायताके लिये (योग्य होवे)। हमला करनेवाले मरुतोंका कोप अद्भुत (भयानक है)। हमें सुखी करो। इनका मन पुनः (प्रसन्न) हो। हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

१३ हे देव ! तुम सब देवोंके अद्भुत मित्र हो। यज्ञमें शोभायमान और सब धनोंके निवास-स्थान हो। तुम्हारे विस्तृत सुखदायी स्थानमें हम रहें। हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

तत् ते भद्रं यत् समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव १४
यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम १५
स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः १६

१४ स्वे दमे समिद्ध सोमाहुतः मृळयत्तमः जरसे ते तत् भद्रं । दाशुषे रत्नं द्रविणं च दधासि । अग्ने० ! ॥

१४ अपने स्थानमें प्रज्वलित होकर, सोमकी आहुतियां देनेपर तुम अत्यंत सुख देनेवाले होते हो, तुम्हाराही यह कल्याण करनेका कार्य है। दाताको रत्न और धन तुम देते हो। हे अग्ने ! तुम्हारे आश्रयमें रहनेसे हमारा विनाश कभी नहीं होगा ॥

१५ हे सुद्रविणः अदिते ! सर्वताता यस्मै अनागास्त्वं त्वं ददाशः । यं भद्रेण शवसा चोदयासि, ते प्रजावता राधसा स्याम ॥

१५ हे उत्तम धनसे संपन्न और अखण्डनीय अग्नि-देव ! यज्ञोंमें तत्पर रहनेवाले मनुष्यको तुम पापसे दूर करते हो। और उसे कल्याण करनेवाले बलसे युक्त करते हो, तुम्हारे प्रजायुक्त धनसे हम संपन्न हों ॥

१६ हे देव अग्ने ! सः त्वं सौभगत्वस्य विद्वान्, इह अस्माकं आयुः प्र तिर । नः तत् (आयुः) मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम् ।

१६ हे अग्निदेव ! वे तुम उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करनेका मार्ग जानते हो, यहां हमारी आयु बढाओ। हमारी वह (आयु बढानेकी प्रार्थना) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्यौ सुफल करें ॥

मानवोंका उन्नति

मानवोंकी उन्नति किस तरह हो सकती है यही मुख्य विचारणीय विषय सब धर्म जिज्ञासुओंके सामने है। धर्म इसीलिये चाहिये। मानव उन्नत होते रहें, धर्मका ध्येय यही है। इस सूक्तमें मानवोंके उत्कर्षके कुछ निर्देश हैं जो अब यहां मनन करने योग्य हैं।

१ अर्हते जातवेदसे मनीषया स्तोमं सं महेम (मं.१)। जो पूजनीय है और जो उत्तम ज्ञानी है उसीकी प्रशंसा मनःपूर्वक हम करेंगे। मनुष्य यही प्रतिज्ञा करें। जो सचमुच गरबार करनेयोग्य नहीं है, उसका सत्कार नहीं होना चाहिये। (अर्हते स्तोमः) सत्कारके योग्य जो है उसकाही सत्कार करो। अयोग्यकी झूठी प्रशंसा करनेसे मनुष्यका गिरावट होती है। साथसाथ (जात-वेदसे स्तोमः) ज्ञानीकी उसके ज्ञानके लिये प्रशंसा की जावे। जो उत्पन्न हुए पदार्थोंको यथावत् जानता है, जो ज्ञानविज्ञान संपन्न है, वही सत्कारके योग्य है। इसी तरह (मनीषया स्तोमः) मनसे अन्तःकरणपूर्वक, जो मनमें है वही भाव बतानेके लिये भाषण करना चाहिये। मनमें एक भाव हो और बाहर दूसरा बताया जावे, यह ठीक नहीं, यह तो गिरावटका मार्ग है। यहां उन्नतिके तीन साधन बताये, एक सत्कार करनेयोग्यकाही समाजमें सत्कार किया जावे, दूसरा जो ज्ञानी हो वही श्रेष्ठ माना जावे, और तीसरा यह कि अन्तःकरणपूर्वक कार्य किया जावे, उसमें छल और कपट न हो।

२ अस्य संसदि नः प्रमतिः भद्रा— इस (योग्य ज्ञानी) की संगतिमें रहनेसे हमारी पहिलेसेही उत्कृष्ट बुद्धि अधिक कल्याणकारिणी बन जाती है। सत्पुरुषोंकी संगतिसेही

बुद्धि शुद्ध होकर कल्याणकारिणी हो सकती है। संगति उसकी करनी चाहिये जो (अर्हः) सुयोग्य पूजनीय हो और (जात-वेदाः) जो उत्पन्न हुए पदार्थोंको यथावत् जानता हो । और (मनीषया) अपनी बुद्धिसे दूसरोंको अपने सुविचारोंका उप-देश करता हो। (सं-सद्) उत्तम बैठक हो, उत्तम सभा हो जहां सज्जनोंका संमेलन हो, जहां सद्विचारोंकी चर्चा चलती हो, वहां उन्नतिके इच्छुक जांय और उन सत्पुरुषोंकी संगतिसे लाभ उठावें।

३ सख्ये मा रिषाम— पूर्वोक्त सत्पुरुषोंकी मित्रतासे जो लाभ उठावेंगे, वे कभी नहीं गिरेंगे। यह तो सत्य सिद्धान्त-ही है। (अर्हन्) सुयोग्य, (जातवेदाः) ज्ञानीकी मित्रतामें रहेंगे, वेही तो निःसंदेह उत्कर्षको प्राप्त होते रहेंगे।

इस सूक्तकी देवता अग्नि है। ' अर्हन् ' (सुयोग्य) और ' जात-वेदाः ' ज्ञानी ये उसके गुण हैं। ' अग्नि ' का अर्थ ' अग्रणी ' है। (अग्निः कस्माद् अग्रणीः भवति। निरुक्त) हाथमें लिया कार्य अन्ततक पहुंचा देता है, अनुयायियोंको सिद्धितक पहुंचाता है, वह अग्रणी अग्नि है। यहां ऋषिने अपने सामने देवता-वर्णनके लिये अग्निके मिषसे ' सत्कारके योग्य ज्ञानी अग्रणी ' ही रखा है। सब मंत्रोंमें इसकाही अनुसंधान पाठक करें।

४ यस्मै त्वं आयजसे, सः साधति— जिस मानव-के लिये ऐसा सुयोग्य ज्ञानी सत्पुरुष अन्तःकरणपूर्वक अपने ज्ञानके यत्नसे सहायता करता है, वही मानव सिद्धि प्राप्त करता है, वही सिद्ध पुरुष होता है। वही ' अनर्वा क्षेति ' अहिंसित होकर सुखसे रहता है और ' **सुवीर्यं दधते** '— उत्तम सामर्थ्यवान् बनता है। सुयोग्य ज्ञानीकी सहायतासे यह लाभ है। (मं. २)

५ सः तूताव, एनं अंहतिः न अश्नोति (मं. २) – वह बढता है, उन्नत होता है। इसको आपत्ति नहीं सताती। यह प्रभाव सुयोग्य विद्वान् की सहायताकाही है।

६ धियः साधय (मं. ६)- (हे सुयोग विद्वन् !) तू धी अर्थात् बुद्धि और कर्मशक्तिको साधनसंपन्न कर। अर्थात् हमारी बुद्धिको भी बढाओ और कर्मशक्तिको भी बढाओ।

७ जीवातवे धियः प्रतरं साधय (मं. ४)- हमारी दीर्घ आयुके लिये हमारी बुद्धियों तथा कर्मशक्तियोंको उच्चतर बनाकर साधनसंपन्न करो।

८ अस्य जन्तवः यत् च द्विपत् उत चतुष्पद् अक्तुभिः विशं गोपाः चरन्ति (मं. ५)- इस (सुयोग्य ज्ञानी नेता) के अनुयायी मनुष्य (स्वयंसेवक) द्विपाद और चतुष्पाद अर्थात् मानवों और पशुओंकी सुरक्षा करनेके लिये रात्रिके समय भी (संरक्षक होकर) भ्रमण करते हैं। यह जिनका अग्रणी होता है, उनका संरक्षण करता है, जैसा दिनमें वैसाही रात्रिमें अपने अनुयायियोंसे सब प्रजा-ओंका संरक्षण करता है। यहां ' जन्तु ' ' जन्तवः ' पद प्राणिवाचक है। वेही ' गो-पाः ' अथवा ' गोपाः ' हैं। अर्थात् ये अनेक हैं। इनका कार्य (गोपाः) संरक्षण करना है अथवा विशेषतः (गो-पाः) गौओंकी सुरक्षा करना है। क्योंकि गोरक्षाही सर्वस्वकी रक्षा है। ये रक्षक ' जन्तवः ' (प्राणी) हैं। यहां मनुष्यवाचक पद नहीं, परंतु प्राणिवाचक पद है। क्योंकि सुरक्षाके कार्यमें मनुष्य, कुत्ते, घोडे, हाथी आदि अनेक प्राणी बर्ते जाते हैं। कुत्ते तो आजकल भी बर्ते जाते हैं। वीर घोडों और हाथियोंपरसे निरीक्षण करते हैं। कबूतर भी बर्ते जाते हैं। इसीलिये प्राणिवाचक ' जन्तु ' पद यहां सुरक्षाके कार्यकर्ताओंके लिये रखा है। ये ' **जन्तवः गोपाः चरन्ति,** ' ये प्राणिरक्षा करते हुए, पहारा करते हुए, इधर उधर घूमते हैं।

९ चित्रः उषसः महान् प्रकेतः (मं. ५)— इसका विलक्षण उषा जैसा (गेरुवे रंगका) बडा ध्वज है। यह विलक्षण महान् ज्ञान देनेवाला, उषाके पश्चात् उदय होनेवाले सूर्यके समान प्रकाश देनेवाला, मार्गदर्शक है। **प्रकेतः**— ज्ञानी, प्रकाशक, केतु, ध्वज, झण्डा।

१० अध्वर्युः होता प्रशास्ता पोता जनुषः पुरः हितः विश्वा आर्त्विज्या विद्वान् पुष्यसि। (मं. ६)- वह सुयोग्य ज्ञानी (अ-ध्वर-युः) हिंसारहित कर्मोंका संयो-जक, (होता) दिव्य विबुधोंको बुलाकर अपने साथ रखनेवाला, अथवा दान कर्ता, (प्रशास्ता) सुयोग्य शासन करनेवाला, (जनुषः पुरः हित.) जन्मसेही अग्रभागमें रहनेवाला अथवा जनताका हित करनेवाला, नेता बना हुआ, सब (आर्त्विज्या) ऋतुसंधिमें यज्ञ करके ऋतु-परिवर्तनके कारण उत्पन्न होने-वाले नाना रोगोंको दूर करनेवाला है। अध्वर्युके इस कर्ममें निपुण होनेके कारण यह नेता सबका पोषण करता है। ये गुण सुयोग्य ज्ञानी नेतामें हों। इससे जनताका सच्चा कल्याण होता है। यही (धीरः) सबको प्रेरणा देता है अथवा (धी-रः) समस्वर

योग्य मंत्रणा देता है, जिससे उसके अनुयायी लोग चलकर अपना हितसाधन करते हैं।

११ सुप्रतीकः विश्वतः सदृङ् (७)- उत्तम सुन्दर, सब प्रकारसे दर्शनीय आदर्श जैसा यह नेता होता है। **(दूरे चित् सन् तळिदिव अति रोचते)**- दूर होने पर भी समीप रहनेके समान, बिजलीके समान तेजस्वी होता है। **(राज्याः चित् अन्धः अति पश्यति)**- रात्रीके अन्धकारमें भी वह दूरतक देखता है। आगे होनेवाली बात यह अपने ज्ञानके बलसे स्वयं जानता है और जनताको पहलेसेही सावधान करता है।

१२ ये के चित् दूरे वा अन्ति वा अत्रिणः, वधैः दुःशंसान् दुह्यः अप जहि (मं. ९)- जो कोई खाऊ दुष्ट दुर्जन दूर या समीप रहते हैं, उन दुष्टोंका शस्त्रोंसे वध कर, उनको समाजमें रहने न दे।

१३ यज्ञाय सुगं कृधि (९)- यज्ञ करनेवाले उदार धर्मात्माके लिये सुगम मार्ग कर, इसका मार्ग निष्कंटक हो। संपूर्ण विश्वकी संपन्नता यज्ञसे होनेवाली है, इसलिये यज्ञ करनेवालेके लिये ये सब मार्ग सुखकर होने चाहिये।

१४ अरुषा रोहिता वातजूता रथे युक्ष्व (१०)- तेजस्वी लाल रंगवाले वेगवान घोडे रथको जोडो (और शत्रुपर शीघ्र हमला करो)।

१५ वनिनः धूमकेतुना इन्वसि (१०)- वनोंके वृक्षोंपर जैसा अग्नि आक्रमण करता है, वैसा आक्रमण यह नेता शत्रुओंपर करे, और शत्रुओंका वैसाही विध्वंस करे कि जैसा अग्नि वनोंका नाश करता है।

१६ अवयातां मरुतां हेळः अद्भुतः (१२) शत्रुपर हमला करनेवाले वीरोंका कोध अद्भुत होता है। सब वीर अपने शत्रुपर ऐसेही प्रचण्ड उत्साहसे हमला करें।

१७ देवानां अद्भुतः मित्रः देवः (१३)— ज्ञानियोंका अद्भुत मित्र ज्ञानीही है। विद्वानका मित्र विद्वान्ही है।

१८ अध्वरे चारुः वसूनां वसुः (१३)— हिंसारहित कर्मोंमें उत्तम सुचारु रूपसे कुशल कर्मचारी अत एव सब धनोंका निवास हेतु है। यह नेता हिंसारहित कर्म करे और सब धनोंका संग्रह भी करे अर्थात् यह धन जनताके हितके लियेही होना। जिससे **(सप्रथस्तमे शर्मन्)**- विशाल सुख देनेवाली स्थितिमें सब प्रजाजन आनन्दसे रह सकें, ऐसा प्रबंध नेताको करना चाहिये।

१९ दाशुषे रत्नं द्रविणं च दधासि (१४)- दाताके लिये धन और रत्न दिया जावे।

२० सर्वताता अनागास्त्वं ददाशः(१५)- सब प्रकारसे यज्ञीय जीवन व्यतीत करनेवालेके लिये निष्पाप जीवन प्राप्त हो।

२१ भद्रेण शवसा चोदयासि, प्रजावता राधसा स्याम (१५) सबका कल्याण करनेवाले सामर्थ्यसे जो कर्मोंकी प्रेरणा होती है उससे शुभ संतान होती है और उत्तम धन मिलता है। अर्थात् अपनी शक्तिसे ऐसे कर्म किये जाय कि जिससे सबका कल्याण हो, तथा अपने घरमें शुभ संतान हो और उत्तम धन भी बढे।

२२ सौभगत्वस्य विद्वान् (१६)- उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करनेका योग्य मार्ग जानना चाहिये।

२३ अस्माकं आयुः प्र तिर (१६)- हमारी दीर्घ आयु हो। अपमृत्यु न हो।

यहां इस तरह इस सूक्तमें सब जनताकी सच्ची उन्नतिका मार्ग बताया है। जनताका नेता क्या करे, जनता क्या करे, सब मिल किस तरह बर्ताव करें इसकी उत्तम शिक्षा यहां मिलती है। उत्तम सच्चा ज्ञान और शुभ कर्मही सबकी उन्नतिका साधन यहां बताया है जो सर्वदा सब प्रकारसे सत्य है। यहां जो उपदेश किया है वह अग्निके मिषसे किया है, यह तो पाठक जानही सकते हैं।

अग्निको प्रदीप्त करना

इस सूक्तमें केवल अग्निके वर्णनपरक भी कई मंत्र हैं, उनका विचार अब करते हैं—

पर्वणा-पर्वणा चितयन्तः, इध्मं भराम,
वयं ते हवींषि कृणवाम। (मं. ४)

हम अग्निको प्रत्येक पर्वमें प्रदीप्त करते हैं, उसमें इन्धन डालते हैं और प्रदीप्त होनेपर हविकी आहुति देते हैं। यहां 'पर्व' पद है। अमावास्या और प्रतिपदाकी सन्धिके पर्व प्रसिद्ध है और इनमें दर्शपूर्ण मास आदि यज्ञ किये जाते हैं।

ग्रन्थिर्ना पर्वपरुषी। (अमरकोश २।४।१६२)
पर्व क्लीबे महे ग्रन्थौ प्रस्तावे लक्षणान्तरे।
दर्शप्रतिपदोः सन्धौ विषुवत्प्रभृतिष्वपि ॥
(मेदिनी)

तिथिभेदे क्षणे पर्व। (अमर० ३।३।१२१)
पर्व स्यादुत्सवे ग्रन्थौ प्रस्तावे विषुवादिषु।
दर्शप्रतिपदोः संधौ स्यात्तिथेः पञ्चकान्तरे॥
(धरणिः)

'पर्व' का यह अर्थ है— ग्रंथी, गांठ, जोडा, अवयव, जैसे अंगुलियोंके पर्व, अवयवोंके जोड, विभाग, समयविभाग, चन्द्रमाके चार दिन जैसे अष्टमी, चतुर्दशी प्रतिपदाकी, पूर्णिमा, अमावास्या, चन्द्रसूर्यके ग्रहणोंका समय, निश्चित समय, आनन्दका समय, विषुव दिन जिस दिन दिन और रात्रिका समय ठीक बराबर होता है, समयमें न्यूनाधिकता नहीं होती वह दिन, अयनान्त दिन जिस दिन सूर्य उत्तर या दक्षिणमें अधिकसे अधिक भूमध्य रेखासे दूर जाता है। सूर्यका राश्यन्तर या नक्षत्रान्तर जानेका क्षण।

ये पर्व हैं। इनमें समयदर्शक जो कालविभाग हैं वे यज्ञिय पर्व हैं, पर उनमें भी कुछ मुख्य पर्व प्रायः याजक यज्ञके लिये स्वीकारते हैं। इन पर्वोंमें यज्ञ करनेके लिये अग्नि प्रदीप्त किया जाता है और उसमें हवन होता है। पर्वके समय किये जानेवाले यज्ञोंका निर्देश यहां है।

यहांके 'पर्व' पदसे वेदाङ्ग-ज्योतिष पर्वसमय निश्चित करनेमें बहुतही प्रगत हुआ था ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। विषुव और अयनान्त दिन पहिलेसे निश्चित करनेके लिये तथा दर्श-पूर्णिमाके पर्वके समय निश्चित करनेके लिये अच्छी प्रगति ज्योतिर्गणितमें अवश्यही होनी चाहिये, अन्यथा वह ठीक समय मिल नहीं सकता। वैदिक ज्योतिर्गणितकी कल्पना इससे आ सकती है।

(त्वा समिधं शकेम) अग्निमें समिधा आदि डालनेकी शक्ति हममें हो, यह इच्छा यज्ञकर्तामें रहनी चाहिये। (त्वे आहुतं हविः देवाः अदन्ति। मं. ३) अग्निमें डाली हुई आहुति सब देवोंको प्राप्त होती है और देव वह अन्न खाते हैं। यही कहा है—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥
(मनु ३।७६)

न ह वै ता आहुतयो देवान् गच्छन्ति या अवषट्कृता चाऽस्वाहाकृता भवन्ति॥ (कौ. ब्रा. १२।४)
इस तरह देवोंको यज्ञाहुति पहुंचनेके विषयमें लिखा है।

यज्ञकर्ताका सम्मान

(सुम्नवलः रथः पूर्वः भवतु। मं ८) यज्ञकर्ताका रथ पहिले आगे बढे। इसका मान सबसे अधिक है, सबसे पहिला रथ इसका होगा। (यज्ञाय गृणते सुगं कृधि। मं. ९) यज्ञके लिये जो मन्त्रपाठ करता है उसके लिये सब मार्ग सुगम हों।

यह सूक्त वस्तुतः अग्निकाही वर्णन करता है, पर अग्निके वर्णन करनेके लिये ऐसे पद रखे गये हैं कि जिनके मननसे अन्यान्य उपदेश सिद्ध होते हैं। वे उपदेश जिन पदोंके आधारसे सिद्ध होते हैं, वे पद अर्थके साथ पूर्व स्थानमें दिये हैं। पाठक उनका मनन करके मानवी उन्नतिके अनुष्ठानको जानें और वह करनेका यत्न करें। शेष मन्त्रका अग्निविषयक पदार्थ पहिले दियाही है।

(२) पुत्रोंकी पालना और राष्ट्रका उत्थान

(ऋ. १।९५) कुत्स आङ्गिरसः। अग्निः, औषसोऽग्निर्वा। त्रिष्टुप्।

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥ १

अन्वयः— १ सु-अर्थे विरूपे द्वे चरतः। वत्सं अन्या-अन्या उप धापयेते। अन्यस्यां हरिः स्वधावान् भवति। शुक्रः अन्यस्यां सुवर्चाः ददृशे॥

अर्थ— उत्तम प्रयोजन सिद्ध करनेवाली, विभिन्न रूपवाली (एक दिनप्रभा और दूसरी रात्रि ये) दो स्त्रियाँ (अपने मार्गसे) चल रही हैं। (अपने अधीन हुए) बच्चेको इनमेंसे एक एक (धाई दूध) पिलाती है। एकके आधीन रहनेवाला (बच्चा) सूर्य अन्नयुक्त होता है। वीर्यवान् (दूसरा बच्चा अग्नि) दूसरीके पास उत्तम प्रकाशसे प्रकाशित होता है॥

दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥ २

त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून् प्रशासद्वि दधावनुष्टु ॥ ३

क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातॄर्जनयत स्वधाभिः ।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान् कविर्निश्चरति स्वधावान् ॥ ४

आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात् प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ॥ ५

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥ ६

२ अतन्द्रासः दश युवतयः त्वष्टुः गर्भं जनयन्त । इमं विभृत्रं तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं सीं परि नयन्ति ॥

३ अस्य त्रीणि जाना परिभूषन्ति । समुद्रे एकं, दिवि एकं, अप्सु (एक) । ऋतून् अनु प्रशासत्, पार्थिवानां पूर्वां प्र दिशं अनुष्टु वि दधौ ।

४ निण्यं इमं वः कः आ चिकेत । वत्सः मातॄः स्वधाभिः जनयत । महान् कविः स्वधावान् गर्भः बह्वीनां अपसां उपस्थात् निश्चरति ॥

५ आसु चारुः आविष्ट्यः वर्धते । जिह्मानां उपस्थे स्वयशाः ऊर्ध्वः । उभे त्वष्टुः जायमानात् बिभ्यतुः । सिंहं प्रतीची प्रति जोषयेते ॥

६ उभे भद्रे मेने जोषयेते न । वाश्राः गावः न एवैः उप तस्थुः । यं दक्षिणतः हविर्भिः अञ्जन्ति सः दक्षाणां दक्षपतिः बभूव ॥

२ आलस्य छोडकर दस स्त्रियाँ (अङ्गुलियाँ,) दीप्तिके गर्भ (रूप अग्नि) को उत्पन्न करती हैं । इस भरण-पोषण करनेवाले, तीक्ष्ण तेजसे युक्त, अपने यशसे शोभित, जनोंमें प्रकाशमान (अग्नि) को (लोग) चारों ओर घुमाते हैं ॥

३ इस (एक अग्नि) के तीन जन्म सजाये जाते हैं । समुद्रमें (वडवानलरूप) एक, द्युलोकमें (सूर्यरूप) एक और अन्तरिक्षमें (विद्युद्रूप) एक (ये ये तीन रूप एक अग्निके हैं)। ऋतुओंकी व्यवस्था इसीने की है, पृथिवीके (ऊपरके) प्राणियोंकी व्यवस्थाके लिये पूर्वादि दिशाओंको भी सम्यक् रीतिसे इसीने निर्माण किया॥

४ गुप्त रहनेवाले इस (अग्नि)को तुममेंसे कौन जानता है ? पुत्र (होते हुए भी इसने अपनी) माताओंको अपनी धारक शक्तियोंसे प्रकट किया है । बडा ज्ञानी, अपनी निज धारक शक्तिसे युक्त और सबके अन्दर रहनेवाला (सूर्य) बडे जल-प्रवाहोंके समीप स्थानसे निकलकर संचार करता है ॥

५ इन (पदार्थों) में सुचारु रूपसे प्रविष्ट होकर यह बढता है । कुटिल निम्न गतिसे जानेवाले जलोंके मध्यमें भी यह उपस्थित रहकर अपने यशसे यह ऊर्ध्व गतिसे ऊपर चढता है । दोनों लोक इस तेजस्वी देवके उत्पन्न होनेसे डरते हैं । (तथापि इस) सिंह जैसे (तेजस्वी देव)की फिरसे आकर सेवा करते हैं॥

६ दोनों कल्याण करनेवाली माननीय (पूर्वोक्त स्त्रियाँ इसकी) सेवा करती हैं । हम्बारव करनेवाली गौओंकी तरह अपनी गतियोंसे वे इसीके पास आती हैं । जिसके दक्षिण भागमें रहकर हविद्वारा (याजक) पूजा करते हैं, वही सब बलवानोंसे भी अधिक बलिष्ठ हुआ है ॥

उद् यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ७

त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत् संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ८

उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ९

धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु १०

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११

---

७ सविता इव बाहू उद् यंयमीति, भीमः उभे सिचौ ऋञ्जन् यतते । सिमस्मात् शुक्रं अत्कं उद् अजते । मातृभ्यः नवा वसना जहाति ॥

८ सदने गोभिः अद्भिः संपृञ्चानः त्वेषं उत्तरं रूपं यत् कृणुते, कविः धीः बुध्नं परि मर्मृज्यते। सा देवताता समितिः बभूव ॥

९ महिषस्य ते ज्रयः विरोचमानं उरु धाम बुध्नं परि एति । हे अग्ने ! इद्धः विश्वेभिः स्वयशोभिः अदब्धेभिः पायुभिः अस्मान् पाहि ॥

१० धन्वन् गातुं स्रोतः ऊर्मिं कृणुते । शुक्रैः ऊर्मिभिः क्षां अभि नक्षति । विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते । नवासु प्रसूषु अन्तः चरति ॥

११ हे पावक अग्ने ! समिधा एव वृधानः रेवत् नः श्रवसे वि भाहि । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

७ सविताके समान यह (अग्नि) अपने बाहुरूप किरणोंको ऊपर उठाता है, और भयंकर होकर दोनों पिलानेवाली (धाईयों) को अलंकृत करनेका यत्न करता है । सबसे प्रकाशक कवच ऊपर उठाता है। और माताओंके लिये नये वस्त्र देता है॥

८ अपने घरमें (यह) गौओंसे और जलोंसे मिलकर तेजस्वी उच्चतर रूप जब धारण करता है, तब यह ज्ञानी बुद्धिमान (अग्नि) अपने मूल स्थानको शुद्ध करता है । वही दिव्यताका फैलाव करनेवाली (यज्ञकी) समिति होती है ॥

९ महा बलवान् तुझ (अग्निका) शत्रुका पराभव करनेवाला तेजस्वी विस्तृत स्थान आकाशमें फैला है । हे अग्ने ! प्रदीप्त होकर सब यशस्वी न दबाये जानेवाले सुरक्षाके साधनोंसे हमारी सुरक्षा कर ॥

१० निर्जल स्थानमें यह मार्ग बनाता है, जलप्रवाह और लहरियाँ निर्माण करता है । बलवान् लहरियोंसे पृथ्वीको यह भर देता है । सब अन्नोंको जनोंके उदरोंमें धारण करता है । यह नूतन वृक्ष लताओंके अन्दर संचार करता है ॥

११ हे पवित्र करनेवाले अग्ने ! समिधाओंसे बढता हुआ, धन देनेवाला होकर हमारे यशके लिये प्रकाशित होओ । हमारे इस मन्तव्यका मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक ये देव अनुमोदन करें ॥

करती रहें।

२ उक्त कारण उनको अपने बालबच्चोंकी पालना करने आदि गृहकृत्य करनेके लिये समय नहीं मिलेगा, क्योंकि स्थान स्थानपर उनको जाना पडेगा,

३ इसलिये इस तरह विश्वसेवाके लिये बाहर गयी स्त्रीके बालबच्चोंकी पालना, वह स्त्री करे कि जो घरमें रहती हो,

४ यह स्त्री दूसरीके बालबच्चोंकी ऐसी पालना करे कि जिससे उन बालकोंकी उन्नतिमें किसी तरह बाधा न हो, वे उन्नत होते जांय।

५ इस तरह हेरफेरसे स्त्रियां समाजसेवा भी कर सकती हैं और उनके घरबारका भी उत्तम प्रबंध हो सकता है।

६ घरका प्रबंध भी होना चाहिये और समाजसेवा भी होनी चाहिये। समाजमें ऐसा सुप्रबंध हो कि जिससे यह सेवा व्रत भी चलता रहे और गृह-व्यवस्था भी न बिगडे।

७ सब बालबच्चे समाजके हैं, उनमें यह मेरा और वह दूसरेका ऐसा आप पर-भाव नहीं होना चाहिये। सबकी उत्तम पालना होनी चाहिये।

८ समाजके स्त्री पुरुषोंमें यह समाज-जीवन बढे, ऐसी सुशिक्षा राष्ट्रमें बढनी चाहिये। आजकल वैयक्तिक जीवन है, उस स्थानपर समाज-जीवन आना चाहिये।

सूर्यका जन्म होतेही उसकी माता रात्री या उषाका अन्त होता है, ऐसे भी वेदमें अन्यत्र वर्णन है। इससे 'परशुरामने अपनी माताका वध किया था,' इस कथाकी उत्पत्ति हुई होगी। इस सूक्तमें परस्परके पुत्रोंकी पालना परस्परकी माताएँ करती हैं यह सामाजिक जीवनका रहस्यमय उपदेश यहां है।

द्वितीय मंत्र

(अतन्द्रासः दश युवतयः त्वष्टुः गर्भं जनयन्त) आलस्य छोडकर दस स्त्रियां त्वष्टा (की स्त्री वैरोचनी यशोधरा) के गर्भको उत्पन्न करती हैं, अर्थात् उत्तम रीतिसे यह प्रसूतिका कार्य करती है। त्वष्टा दिव्य कारीगर है, दिव्य शिल्पशास्त्रज्ञ है। इसकी स्त्री वैरोचनी यशोधरा गर्भवती होती है। प्रसूतिके समय दस स्त्रियां जो प्रसूतिशास्त्रानुसार प्रसूति कर्ममें प्रवीण हैं, उनको बुलाया जाता है, वे आती हैं, आलस्य, निद्रा अथवा सुस्तीको छोडकर कार्य करती हैं, और उससे त्वष्टाके पुत्रका जन्म होता है। प्रसूति कर्मके लिये उत्तम धाई उत्तम शिक्षिता रहे, वह अपने काममें आलस्य न करे, शास्त्रपद्धतिसे प्रसूति कर्म करे और माता तथा बालक जिस रीतिसे सुरक्षित रह सकें वैसा यत्न करें।

यहां दस दाईयोंका उल्लेख है। आवश्यकता होनेपर एकसे अधिक दाइयाँ बुलाई जावें। एक दाई कार्य करे और अन्य दाइयाँ उसकी सहायता करें। प्रसूतिका समय बडा कठिन होता है, सहायकोंके अभावके कारण माता और पुत्रका नाश न हो यह सूचना यहां है।

दस बहिनें

इस द्वितीय मंत्रमें (दश युवतयः) दश स्त्रियोंका वर्णन है अन्यत्र वेदमें (दश स्वसारः) दश बहिनोंका वर्णन है।

(अग्निः) तं ईं हिन्वन्ति धीतयो दश। ऋ. १।१४४।५

,, दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन्। ऋ. ३।२३।३

,, अजीजनन्नमृतं...दश स्वसारः ऋ. ३।२९।१३

इत्यादि मंत्रोंमें (दश धीतयः, दश क्षिपः, दश स्वसारः) दस बहिनें, स्त्रियें अग्निकी उत्पत्ति, प्रसूति कर्म, करती हैं ऐसा उल्लेख है। वैसाही यहाँ (दश युवतयः) दस स्त्रियां ऐसा है। वास्तवमें दो हाथोंकी दस अंगुलियाँही ये हैं। दो अरणीयां होती हैं, एक नीचे रहती है और उसमें दूसरी बैठती है। पीपलकी लकडीसे ये अरणियाँ बनायी जाती हैं। नीचेकी स्थिर होती है और उपरकी कारकी दोनों हाथोंकी अंगुलियोंसे घुमायी जाती है। अत्यंत जोरसे घुमानेसे अग्नि उत्पन्न होता है। इस बातका यह आलंकारिक और बोधप्रद वर्णन है।

अग्नि अरणीमें-गर्भमें-रहता है, दस बहिनें उसको उत्पन्न करती हैं। यही अग्निके जन्मका वर्णन है। पुत्र भी अग्निही है। अधरारणी (नीचेकी लकडी) स्त्री है और उत्तरारणी (ऊपरकी लकडी) पुरुष है। इनसे पुत्रका जन्म होता है जैसा अरणियोंसे अग्नि। इसी तरह पृथ्वी और द्युलोकके मध्यमें सूर्य उत्पन्न होता है। यहां पृथ्वी स्त्री है और द्युलोक पिता (द्यौः पिता = द्योष्पिता) है, इनसे सूर्यरूपी पुत्र उत्पन्न होता है।

पृथ्वी 'काली' है और आकाश प्रभा 'गौरी' है। पृथ्वीका पुत्र अग्नि और आकाश-प्रभाका पुत्र सूर्य है। ऐसे अनेक अलंकार वेदमंत्रोंमें हैं।

(इमं विभृत्रं, तिग्मानीकं, स्वयशसं, जनेषु विरोचमानं सीं परि नयन्ति) इस पवित्र अरणीगत

करनेवाले, तीक्ष्ण शक्तिवाले अथवा तीक्ष्ण प्रकाशवाले, यशस्वी, जगतमें तेजस्वी अग्निको चारों ओर घुमाते हैं। उक्त प्रकार दोनों अरणियोंसे अग्नि सिद्ध होनेपर उसको अनेक यज्ञस्थानोंमें या स्थण्डिलोंमें ले जाकर स्थापन करते हैं।

इधर पुत्रके पक्षमें दस धाइयोंके द्वारा बालका जन्म होनेके पश्चात् उसको बडे प्रेमसे सब संबंधी चारों ओर घुमाते हैं। बहिर्निष्क्रमण संस्कार करके उसे बाहर ले जाते हैं, चन्द्रदर्शन संस्कार करके इष्टमित्रोंके साथ चन्द्रदर्शन कराते हैं। रथारोहण, अश्वारोहण, यानारोहण, हस्त्यारोहण आदि संस्कार करके उस बालकको रथ, घोडा, यान, हाथी आदिपर बिठलाते हैं और घुमाते हैं। विश्वसे आनन्द लेनेकी यही रीति है।

तृतीय मन्त्र

(अस्य त्रीणि जाना परिभूषन्ति) इसके तीन जन्म होते हैं, उन जन्मोंको सब सजाते हैं, सुशोभित करते हैं। इस अग्निका एक जन्म (समुद्रे एकं) समुद्रमें वडवानल रूपसे एक अग्निका जन्म माना जाता है। समुद्रके जलकी भाप होनेका दृश्य सवेरे दिखाई देता है, शीत ऋतुमें विशेषरूपमें भाप दिखाई देती है। प्रत्येक जलाशयमें भी यह दीखता है। (दिवि एकं) द्युलोकमें सूर्यरूप दूसरा अग्नि है। सूर्य अग्निकाही रूप है। (अप्सु एकं) अन्तरिक्ष स्थानमें मेघाशयमें विद्युत्‌रूपी तीसरा अग्नि है। आकाशमें सूर्य, अन्तरिक्षमें विद्युत् और पृथ्वीपर अग्नि ये तीन रूप एकही अग्निके हैं। वास्तवमें सूर्य, विद्युत् और अग्नि ये तीन पदार्थ पृथक् पृथक् दिखाई देते हैं पर वे एकही अग्निके ये तीन रूप हैं।

यहां समुद्र पद पृथ्वीस्थानका वाचक है, पृथ्वीमें भयानक प्रखर अग्नि है, पृथ्वीके पेटमें सब पदार्थ इस अग्निके कारण उबलते रसके रूपमें हैं। इस उष्णतासे पृथ्वीके जलाशयके जलकी भाप बनती है और सूर्यकिरणोंसे भी बनती है। सूर्यसे विद्युत, विद्युतसे अग्नि होता है और काचमणिसे सूर्यकिरण केन्द्रित करनेसे भी शुष्क घासमें अग्नि उत्पन्न होता है। इस तरह ये सब आग्नेय रूप एकही अग्निके हैं अर्थात् यहां द्वैत या त्रैत नहीं है, पर एकही अग्नि अनेक रूप लेकर अनेकसा दिखाई देता है यह सदैक्य सिद्धान्त अग्निके वर्णनसे बताया है।

चतुर्थ मन्त्र

(इमं निण्यं कः चिकेत ?) इस गुप्त रहे अग्निको कौन जानता है? अग्नि सभी वस्तुओंमें अत्यंत गुप्त है। सबमें व्याप्त है, पर दीखता नहीं। ज्ञानीही उसको जानता है।

(वत्सः मातॄः स्वधाभिः जनयत) पुत्र होता हुआ भी अपनी माताओंको अपनी शक्तियोंसे प्रकट करता है। अग्निसे पृथ्वी प्रदीप्त होती है, विद्युत्‌से अन्तरिक्ष और सूर्यसे द्यौ प्रकट या दीप्तिमान होती है। पुत्र ऐसा श्रेष्ठ सामर्थ्यवान् बने, कि जिससे उसकी माताका नाम विश्वमें यशस्वी होवे। पुत्रके यशसे माता, पिता, कुल और जातिका यश बढे यह भाव यहां है। पुत्रका यश बढनेसे कुलका यश बढता है।

(महान् कविः स्वधावान् गर्भः बह्वीनां अपसां उपस्थात् निश्चरति) बडा ज्ञानी सामर्थ्यवान् होकर यह पुत्ररूप गर्भ बहुत जलप्रवाहोंके सामनेसे निकलकर संचार करता है। विद्युत्‌रूपी अग्नि वृष्टिके प्रवाहोंके मध्यमें प्रकट होता है। सूर्य महासागरके बीचमेंसे उदय हुआ है ऐसा जहां दीखता है, वहां वह जलप्रवाहोंसे प्रकट होता है ऐसा कहा जा सकता है। 'अपसां' का अर्थ 'प्रशस्त कर्म' ऐसा एक और अर्थ है। प्रशस्त कर्मोंके समीप यह बडा कवि ज्ञानी और अपने सामर्थ्यसे प्रभावी बना कुमार पहुंचता है। प्रशस्त कर्म स्वयं करता और दूसरोंसे कराता हुआ विशेष श्रेष्ठ बनता है। पहिले यह गर्भमें था, पश्चात् प्रकट होकर जन्म लेकर बाहर आया, नंतर यह बडा ज्ञानी और कवि बना और (स्व-धा-वान्) निजधारक शक्तिसे प्रभावी बना। तब यह प्रशस्त कर्मोंको करने करानेका अधिकारी हुआ।

पञ्चम मन्त्र

(आसु चारुः आविष्ट्यः वर्धते) इन जलप्रवाहोंके अन्दर, इन मेघोंके अन्दर विद्युद्रूपसे प्रविष्ट होकर यह अग्नि बढता है। नदियोंके किनारोंपर होनेवाले यज्ञोंमें यह अग्नि प्रदीप्त होकर बढता है। इन प्रशस्ततम कर्मोंमें स्फूर्तिरूपसे प्रविष्ट होकर बढता है। प्रशस्त कर्मोंको सुन्दर रीतिसे निभाकर यह अपने प्रभावसे बढता है। अग्निरूप वर्णन यज्ञपरक और विद्वान् ज्ञानीरूप वर्णन प्रशस्त कर्मपरक मानकर दोनों स्थानोंमें अर्थ देखना चाहिये।

(जिह्मानां उपस्थे स्वयशाः ऊर्ध्वः वर्धते) टेढी चालसे चलनेवाले शत्रुओंके समीप भी अपने यशसे उच्च बनकर यह ज्ञानी बढता रहता है। यह ज्ञानीके पक्षमें अर्थ हुआ। अब अग्निके पक्षमें देखिये। कुटिल गतिसे, निम्नगतिसे नीचेकी

ओर जानेवाले नदीप्रवाहोंके समीप, नदियोंके समीप यज्ञ स्थानमें रहनेवाला अग्नि अपने निज यशसे उच्च गतिसे बढता है। जलोंकी गति नीचेकी ओर होती है और अग्निकी ज्वाला ऊंची होती है। इसी तरह कुटिल दुष्ट मानवोंकी तेढी चालें होतीं हैं और ज्ञानी विद्वान्का व्यवहार सरल होता है। यह विरोध अलंकार यहां बताया है।

पहिले जो बालक माताके न होनेके कारण दाईके द्वारा पाला पोसा गया था, वही राज्यशासनद्वारा विद्यालयोंसे विद्या प्राप्त होनेके बाद विद्वान् होकर दुष्ट कुटिलोंको भी उत्तम शिक्षा देनेयोग्य महा ज्ञानी हुआ।

(उभे त्वष्टुः जायमानात् बिभ्यतुः) दोनों तेजस्वी विबुधके प्रकट होनेसे भयभीत होते हैं। उच्च नीच, ज्ञानी अज्ञानी, श्रेष्ठ कनिष्ठ, इस तरह इस जगत्‌में दो प्रकारके प्राणी या मनुष्य होते हैं। ये दोनों प्रकारके मानव सभास्थानमें तेजस्वी विद्वान् आनेपर उससे डरते हैं। विद्वान्‌की विद्याके सामने अपने अज्ञान होनेका डर इनके मनमें होता है। दूसरे पक्षमें अग्नि, विद्युत् तथा सूर्य प्रकट हो जानेपर पृथ्वी और द्यौ ये दोनों भयभीत होते हैं। अग्नि सबको जला देगा यह भय है। विद्युत्‌की गर्जनासे सभी भयभीत होते हैं और सूर्यके उदयसे भी दुष्टोंको भय होता है। 'त्वष्टा' का अर्थ दिव्य कारीगर, कुशल पुरुष और तेजस्वी ऐसा है।

(सिंहं प्रतीचीं प्रति जोषयेते) पुरुष सिंहकी, मानवोंमें श्रेष्ठोंकी पीछेसे आनेवाले सेवा करते हैं। यहांका 'सिंह' पद श्रेष्ठका वाचक है। 'प्रतीची' का अर्थ पश्चिम है, पर यहां पीछे रहनेवाली ऐसा भाव है। पीछे रहनेवाली जनता श्रेष्ठकी सेवा करे और श्रेष्ठ बने। 'प्रतिजोषयेते' का अर्थ प्रत्येककी पृथक् पृथक् सेवा करनेका भाव दिखाता है। श्रेष्ठ मनुष्य पीछे आनेवालोंको देखे और सिंहावलोकन करके प्रत्येकका निरीक्षण करे और प्रत्येकसे पृथक् पृथक् सेवा लेकर प्रत्येककी सहायता करे।

षष्ठ मन्त्र

(उभे भद्रे मेने जोषयेते न) दोनों कल्याण करनेवाली माननीय (दिनप्रभा और रात्री ये दोनों) स्त्रियाँ (पूर्वोक्त पुत्रोंकी उत्तमसे उत्तम) सेवा करनेके समान उत्तम परिचार्या करती हैं। जिससे उन दोनों पुत्रोंकी पूर्वोक्त प्रकार उन्नति हुई। इसी तरह सब स्त्रियोंको उचित है कि वे अपने पुत्रोंकी अथवा अपने पास रखे हुए संतानोंकी योग्य रीतिसे सेवा करें और संतानकी उन्नति करना अपना कर्तव्य समझें।

(वाश्राः गावः न एवैः उप तस्थुः) हम्बारव करनेवाली गायें जैसी दौडती हुई अपने बच्चोंके पास पहुंचती हैं, वैसीही माताएं अपने पुत्रोंके हित-साधनका यत्न करें। गौका बछडेपर प्रेम अत्यंत होता है वैसा प्रेम अपनी संतानोंपर करें और उनकी उन्नति करनेके कष्ट सहें।

(यं दक्षिणतः हविर्भिः अञ्जन्ति, सः दक्षाणां दक्षपतिः बभूव) *जिसकी हविसे पूजा करते हैं वह बलवानोंसे भी बलवान् होता है। बलवानोंसे अधिक बल प्राप्त करना यह ध्येय है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, विद्याविषयक, वीर्य, शौर्य पराक्रमके संबंधका बल आदि अनेक प्रकारके बल होते हैं। ये बल बढाने चाहिये और अपना सब बल जनताकी भलाईके लिये समर्पित होना चाहिये।*

सप्तम मंत्र

अग्नि अपने किरणोंको चारों ओर फेंकता है और भयंकर सामर्थ्यवाला होता है और पश्चात् यह दोनों द्यावापृथ्वीको सुभूषित करता है। अग्नि प्रदीप्त होता है और उससे यज्ञ आदिकी सिद्धि होनेके कारण वह सबके लिये भूषण बनता है। अपने तेजसे तेजस्वी और बलिष्ठ होनेकी यहां सूचना है।

(सिमस्मात् शुक्रं अत्कं उत् अजते) *सबपर अपना प्रभावी प्रकाशका कवच छोड देता है, सबको प्रकाश देता है। मानो प्रकाशसे सब कुछ घेर लेता है।* ***(मातृभ्यः नवा वसना जहाति)*** माताओंको नये वस्त्र पहिनाता है, ये प्रकाशरूपी वस्त्र हैं। जब अग्नि जलता है तब मानो वह सबपर अपने प्रकाशके वस्त्रही चढाता है। सबपर अपने सामर्थ्यका प्रभाव स्थापन करनेका उपदेश यहां है।

अष्टम मंत्र

(सद्‌नं गोभिः अद्भिः संपृञ्चानः त्वेषं उत्तरं रूपं कृणुते) अपने घरमें बहुत गौवें रहें, उनके गोबरसे और जलसे सब घर संमार्जन तथा विलेपनद्वारा शुद्ध किया जावे जिससे घरका रूप अधिक सुन्दर दीखे। अपने घरकी सुन्दरता और शुद्धताका विचार प्रत्येकको करना योग्य है। इसी तरह

अपना निजघर शरीर है उसमें इन्द्रियरूप गौवें रहती हैं, उनसे तथा उनकी शुद्धता, जल आदिके स्नानादिसे पवित्रता, तथा संपूर्ण अन्तःकरणकी निर्दोषता सिद्ध करनेसे जो उच्चतर सौंदर्य बनता है वह प्राप्त करना प्रत्येक मानवका ध्येय होना चाहिये।

(कविः धीः शुभ्रं परि मर्मृज्यते) ज्ञानी मनुष्य अपनी बुद्धिसे अपना आधारस्थान शुद्ध करता है, जिसपर वह आनंदसे रह सकता है और उन्नत भी हो सकता है। अपना स्थान अशुद्ध रहनेतक उन्नतिकी आशा करना व्यर्थ है। इस तरह स्थान-शुद्धि, गृहशुद्धि और व्यक्तिकी पवित्रता होनेपर (**समितिः बभूव**) ऐसे परिशुद्ध विचारोंके सज्जनोंकी जो सभा होती है वही सच्ची समिति कहलाती है। क्योंकि वहां (**सा देवताता**) दिव्य भावोंका, दिव्य शुभ्रर्य कर्मोंका फैलाव करनेका यत्न करती है। (देव-ताता) देवत्वका विकास करनेवाली संस्थाका नाम देवताता है। ऐसी उच्च समिति बननेके लिये स्थानशुद्धि गृहशुद्धि, व्यक्तिशुद्धि होनी चाहिये और जब ऐसी व्यक्तियाँ शुद्ध स्थानपर इकट्ठी होंगी तब वह पवित्रताका फैलाव करनेका कार्य कर सकेगी। मनुष्य अपनी शक्ति बढावे और अपनी संघटना करके सांघिक शक्ति भी बढावे। सब राष्ट्रकी एक समिति हो जो राष्ट्रको संघटित शक्ति बढानेका कार्य करे।

नवम मन्त्र

(**ते महिषस्य क्षयः ते विरोचमानं ऊरु शुभ्रं धाम परि पाति**) तू बलवान् बननेपर तेरा शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य तेरे तेजस्वी विस्तृत मूल स्थानको चारों ओरसे घेर लेता है। अर्थात् तेरे स्थानमें, तेरे देशमें वह सामर्थ्य भरपूर होकर निवास करता है। तेरे सामर्थ्यसे तेरा प्रदेश भर जाता है। सब जनतामें तेरा बल भरा रहता है। तेरे सामर्थ्यसे सब राष्ट्र बलवान् हो जाता है।

(**इद्धः विश्वेभिः स्वयशोभिः अदब्धेभिः पायुभिः अस्मान् पाहि**) स्वयं तेजस्वी बनकर सब यशस्वी तथा न दबनेवाली रक्षाशक्तियोंसे हमारी सुरक्षा कर। तू स्वयं तेजस्वी बन, यश संपादन कर, अपने पास न दबनेवाली अनेक शक्तियाँ बढा और उनसे सब राष्ट्रकी सुरक्षा कर।

दशम मन्त्र

(**धन्वन्**) मरुभूमिमें, रेतीले निर्जल स्थानमें भी पुरुषार्थी वीर (**गातुं**) उत्तम मार्ग बना सकता है। तथा (**स्रोतः ऊर्मिं कृणुते**) जलप्रवाह तथा जलकी लहरियाँ निर्माण कर सकता है। यह सब पुरुषार्थसे साध्य होनेवाली बात है। मनुष्य अपनी शक्ति बढाकर यह सब कर सकता है।

(**शुक्रैः ऊर्मिभिः क्षां अभि नक्षति**) बलवान् बनकर मनुष्य जलके प्रवाहोंसे निर्जल भूमिको भी भरपूर जलपूर्ण कर सकता है। (**विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते**) सब भोजन करनेयोग्य अन्नोंको जनताके अनेक असंख्यात उदरोंमें धारण करता है। अर्थात् जनताके भोजनके लिये सब प्रकारके अन्न उपस्थित कर देता है। अपने राष्ट्रमें अन्न न भी पैदा होते हों, पर वह वीर पुरुषार्थ प्रयत्नसे उनको प्राप्त करता है और जनताके नाना उदरोंतक पहुंचाता है। उसको खाकर लोग हृष्ट पुष्ट और आनंदित हो जाते हैं।

(**नवासु प्रसूषु अन्तः चरति**) नवीन प्रसूतिके अन्दर भी यह शक्ति संचार करती है। नूतन उत्पन्न होनेवाले बालकोंके अन्दर यह सामर्थ्य जन्मसेही रहता है। जो शक्तिका संचार राष्ट्रमें भरपूर भरा रहता है वह उस राष्ट्रकी सुप्रजामें भी स्वयं जन्मसे उत्पन्न होता है। जैसा अग्नि सब पदार्थोंमें रहता है वैसाही यह सामर्थ्य भी उस राष्ट्रकी नूतन उत्पन्न प्रजामें दीखता है।

अन्तिम मंत्र सुबोध है इसलिये उसकी विशेष टिप्पणीकी आवश्यकता नहीं है। यह सूक्त अग्निका सूक्त है। और अग्निके मिषसे मानवोंको उन्नति प्राप्त करनेका उपदेश किया है। इसका अधिक मनन करनेसे मानवोंके अभ्युदय करनेके मार्गका अच्छी तरह ज्ञान हो सकता है।

(३) प्रजाओंका रक्षक

(ऋ. १।९६) कुत्स आङ्गिरसः । अग्निः, द्रविणोदा अग्निर्वा । त्रिष्टुप् ।

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ १ ॥

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ २ ॥

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ३ ॥

स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर्विदद् गातुं तनयाय स्वर्वित् ।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ४ ॥

नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ५ ॥

अन्वयः— १ सहसा जायमानः सः सद्यः प्रत्नथा विश्वा काव्यानि बट् अधत्त । आपः च धिषणा च मित्रं साधन् । देवाः द्रविणोदां अग्निं धारयन् ॥

२ स आयोः पूर्वया निविदा कव्यता मनूनां इमाः प्रजाः अजनयत् । विवस्वता चक्षसा द्यां अपः च । देवाः ०॥

३ हे आरीः विशः ! तं प्रथमं यज्ञसाधनं आहुतं ऋञ्जसानं ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं ईळत । देवाः ०॥

४ सः मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिः स्वर्वित् विशां गोपाः रोदस्योः जनिता तनयाय गातुं विदत् । देवा. ०॥

५ नक्तोषासा वर्णं आमेम्याने समीची एकं शिशुं धापयेते । रुक्मः द्यावाक्षामा अन्तः वि भाति । देवाः ०॥

अर्थ— १ बलके साथ उत्पन्न होनेवाला वह अग्नि, शीघ्रकालही पूर्वकी तरह, सब काव्योंको ठीक रीतिसे धारण करता है। जीवन (जल) और बुद्धिके द्वारा (वह सबका) मित्र होता है। देवोंने ऐसे धनदाता अग्निको धारण किया है ॥

२ उस अग्निने आयुके स्तोत्ररूप काव्यसे सन्तुष्ट होकर मनूकी इस सब प्रजाको उत्पन्न किया। तेजस्वी प्रकाशसे द्युलोक और जलोंको व्याप्त किया। देवोंने० ॥

३ हे प्रगतिशील प्रजाओं ! उस पहिले यज्ञके साधक, हवनसे सतुष्ट, प्रगतिशील, बलसे उत्पन्न हुए, सबका भरण-पोषण करनेवाले, दानशील (अग्निदेव) की स्तुति करो। देवोंने० ॥

४ वह अन्तरिक्षमें रहनेवाला अनेकवार सबका पोषण करनेवाला, आत्मप्रकाशक ज्ञाता, प्रजाओंका संरक्षक, द्यावापृथिवीका उत्पादक है, उसने हमारे संतानोंके लिये उन्नतिका मार्ग ढूँढ निकाला। देवोंने० ॥

५ रात्री और उषा (ये दो) परस्परकी कान्ति बदलनेवाली स्त्रिया एक स्थानपर रहकर एकही (अग्निरूपी) बालकको दूध पिलाती हैं। यह तेजस्वी (अग्निदेव) द्युलोक और पृथ्वीके मध्यमें विशेष प्रकाशता है। देवोंने० ॥

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ६
नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ७
द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत् ।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ८
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ९

६ रायः बुध्नः, वसूनां संगमनः, यज्ञस्य केतुः, वेः मन्मसाधनः । एनं अमृतत्वं रक्षमाणासः देवाः ०॥

७ नू च पुरा च रयीणां सदनं, जातस्य च जायमानस्य च क्षां, सतः च भवतः च भूरेः गोपां, देवाः द्रविणोदां अग्निं धारयन् ॥

८ द्रविणोदाः तुरस्य द्रविणसः प्र यंसत् । द्रविणोदाः सनरस्य (प्र यंसत्) । द्रविणोदाः वीरवती इषं नः (प्रयंसत्) । द्रविणोदाः दीर्घं आयुः रासते ॥

९ हे पावक अग्ने ! समिधा एव वृधानः रेवत् नः श्रवसे वि भाहि । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

६ (यह अग्नि) धनका आधार, ऐश्वर्योंकी प्राप्ति करानेवाला यज्ञका ध्वज (जैसा सूचक), और प्रगतिशील मानवके लिये इष्ट सिद्धि देनेवाला है । इसे अमृतत्वकी सुरक्षा करनेवाले देवोंने० ॥

७ इस समय और पहिले भी जो संपत्तिका घर है, जो उत्पन्न हुआ है और जो उत्पन्न होगा उसका निवास करता है, जो है और होगा उन अनेक पदार्थोंका जो संरक्षक है, देवोंने० ॥

८ धनदाता (अग्नि) जंगम ऐश्वर्यका (हमें) दान करे । ऐश्वर्यदाता (अग्नि) सेवन करनेयोग्य (स्थावर ऐश्वर्यका हमें प्रदान करे) । वैभव दाता (अग्नि) वीरोंसे युक्त अन्न हमें देवे । संपत्तिदाता (अग्नि हमें) दीर्घ आयु देता है ॥

९ हे पवित्रता करनेवाले अग्निदेव ! समिधाओंसे बढता हुआ और धन देनेवाला होकर हमारे यशके लिये प्रकाशित होओ । हमारे इस अभीष्टका मित्र आदि० देव अनुमोदन करें । (ऋ. १।९५ का ११ वा मंत्र यही है, वहां इसका अर्थ देखो ।)

प्रजारक्षक अग्नि

इस सूक्तमें अग्निका वर्णन है, जो इस सूक्तके पाठ करनेसे सबको विदित हो सकता है । इस अग्निके वर्णनमें कुछ अन्य बातें भी कुछ शब्दोंके श्लेषार्थसे बतायी हैं । इनका मनन यहां हम करते हैं—

'विशां गोपाः' (मं. ४)— प्रजाजनोंका संरक्षण करनेवाला, **'सतः भवतः च भूरेः गोपाः'** (मं. ७)– जो है और जो होगा उस बडे विश्वका यह संरक्षण करता है । यह **सहसा जायमानः** (मं १)— बलके साथ प्रकट होता है, बलके क[illegible] लेके लियेही यह प्रकट हुआ है । **'मनूनां प्रजाः अजनयत्'** (मं. २)— मनुसे उत्पन्न हुई प्रजाका इसने भरण पोषण किया है ।

'विशः आरीः' (मं. ३)— प्रजा प्रगति करनेवाली हो । अपनी उन्नति करनेके लिये यत्नशील हो । प्रजाजनोंमें जो **'प्रथमं यज्ञसाधनं ऋञ्जसानं भरतं सुप्रदातुं ईळत'**(३) जो पहिला, यज्ञको संपन्न करनेवाला, प्रगतिशील, सबका पोषणकर्ता और दाता हो उसीकी प्रशंसा करो । यही मनुष्य प्रशंसाके योग्य है । **'पुरुवारपुष्टिः स्वर्वित् तनयाय गातुं विदत्'** (मं. ४)— जो अनेकवार प्रजाका पोषण करता है, आत्मज्ञान जानता है और बालबच्चोंके सुधारका मार्ग जानता है

वही श्रेष्ठ है। सुप्रजा निर्माण करना प्रत्येक विवाहित स्त्रीपुरुषका कर्तव्य है।

'समीची एकं शिशुं धापयेते' (मं. ५)— एक स्थानपर रहनेवाली दो स्त्रियाँ एक बच्चेका उत्तम रीतिसे पालन-पोषण करती हैं। बच्चेके पालन-पोषणमें विघ्न नहीं करती। स्त्रियाँ बच्चेपर प्रेम करें और उसकी पालनामें दत्त-चित्त हों।

'रायः बुध्नः' धनका आधार या आश्रय, जिसके पास बहुत धन रहता है ऐसा, 'वसूनां संगमनः' धनोंको मिलकर प्राप्त करनेवाला, 'वेः मन्मसाधनः' प्रगतिशील मानवके लिये मनन करनेयोग्य साधनोंको प्रस्तुत करनेवाला, 'अमृतत्वं रक्षमाणः' अमरत्वकी सुरक्षा करनेवाला मनुष्य हो। इसमें ऐश्वर्यकी प्राप्ति, मननयोग्य विचारोंका संग्रह और अमृत अर्थात् मोक्ष अथवा बंधननिवृत्ति करनेके उपायोंका संग्रह करनेका विचार कहा है। (मं. ६)

'रयीणां सदनं' संपत्तिका घर अथवा स्थान, 'जातस्य जायमानस्य क्षां' उत्पन्न हुए और उत्पन्न होनेवालेका निवास कर्ता, सबका आश्रय होनेवालेका यहां वर्णन है। (मं. ७) इस सूक्तका वर्ण्य विषयही 'द्रविणोदा' धनदाता है। धन प्राप्त करके उसका दान करनेवाला यहां वर्णन किया है। 'वीरवर्ती इषं नः यंसत्' (मं. ८)— वीरोंके पास जो धन रहता है वह वीरता देनेवाला धन हमें मिले। जिससे निर्बलता निर्माण होती है ऐसा धन हमें नहीं चाहिये।

इस सूक्तका यह सर्व सामान्य उपदेश है जो सबके लिये मनन करनेयोग्य है।

(४) कल्याणका मार्ग

(ऋ. १।९७) कुत्स आङ्गिरसः। अग्निः, शुचिरग्निर्वा। गायत्री।

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् १
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदघम् २
प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः । अप नः शोशुचदघम् ३
प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः शोशुचदघम् ४
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः शोशुचदघम् ५
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ६

अन्वयः— १ हे अग्ने! नः अघं अप शोशुचत्, आ रयिं शुशुग्धि०॥

२ सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे०॥

३ यत् एषां प्र भन्दिष्ठ। अस्माकासः च सूरयः०॥

४ हे अग्ने! यत् ते सूरयः वयं ते प्र जायेमहि०॥

५ यत् सहस्वतः अग्नेः भानवः विश्वतः प्रयन्ति०॥

६ हे विश्वतोमुख! त्वं हि विश्वतः परिभूः असि०॥

अर्थ— १ हे अग्ने! हमारा पाप दूर कर और धनका प्रकाश (हमारे ऊपर) हो। हमारा पाप दूर हो॥

२ उत्तम देशमें रहनेकी इच्छा, उत्तम मार्गसे जानेकी इच्छा और उत्तम धन प्राप्त करनेकी इच्छा धारण करके हम सब (तुम्हारी) पूजा कर रहे हैं०॥

३ जो इनमें यह (भक्त तुम्हारा) वर्णन करता है, और हमारे सब विद्वान (तुम्हारीही भक्ति करते हैं) ०।

४ हे अग्ने! हम सब विद्वान् तुम्हारे भक्त हुए हैं और हम तुम्हारेही बने हैं०॥

५ इस बलवान् अग्निके किरण चारों ओर फैल रहे हैं०।

६ हे सब ओर मुखवाले (अग्निदेव)! तू निःसंदेह चारों ओर सबपर प्रभाव डालनेवाला है०॥

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ६ ॥
नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ७ ॥
द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत् ।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ॥ ८ ॥
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ ॥

६ रायः बुध्नः, वसूनां संगमनः, यज्ञस्य केतुः, वेः मन्मसाधनः । एनं अमृतत्वं रक्षमाणासः देवाः ०॥

७ नू च पुरा च रयीणां सदनं, जातस्य च जायमानस्य च क्षां, सतः च भवतः च भूरेः गोपां, देवाः द्रविणोदां अग्निं धारयन् ॥

८ द्रविणोदाः तुरस्य द्रविणसः प्र यंसत् । द्रविणोदाः सनरस्य (प्र यंसत्) । द्रविणोदाः वीरवतीं इषं नः (प्रयंसत्) । द्रविणोदाः दीर्घं आयुः रासते ॥

९ हे पावक अग्ने ! समिधा एव वृधानः रेवत् नः श्रवसे वि भाहि । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

६ (यह अग्नि) धनका आधार, ऐश्वर्योंकी प्राप्ति करानेवाला यज्ञका ध्वज (जैसा सूचक), और प्रगतिशील मानवके लिये इष्ट सिद्धि देनेवाला है। इसे अमृतत्वकी सुरक्षा करनेवाले देवोंने० ॥

७ इस समय और पहिले भी जो संपत्तिका घर है, जो उत्पन्न हुआ है और जो उत्पन्न होगा उसका निवास करता है, जो है और होगा उन अनेक पदार्थोंका जो संरक्षक है, देवोंने० ॥

८ धनदाता (अग्नि) जंगम ऐश्वर्यका (हमें) दान करे। ऐश्वर्यदाता (अग्नि) सेवन करनेयोग्य (स्थावर ऐश्वर्यका हमें प्रदान करे)। वैभव दाता (अग्नि) वीरोंसे युक्त अन्न हमें देवे। संपत्तिदाता (अग्नि हमें) दीर्घ आयु देता है ॥

९ हे पवित्रता करनेवाले अग्निदेव ! समिधाओंसे बढता हुआ और धन देनेवाला होकर हमारे यशके लिये प्रकाशित होओ। हमारे इस अभीष्टका मित्र आदि० देव अनुमोदन करें। (ऋ. ११९५ का ११ वा मंत्र यही है, वहां इसका अर्थ देखो।)

प्रजारक्षक अग्नि

इस सूक्तमें अग्निका वर्णन है, जो इस सूक्तके पाठ करनेसे सबको विदित हो सकता है। इस अग्निके वर्णनमें कुछ अन्य बातें भी कुछ शब्दोंके श्लेषार्थसे बतायी हैं। इनका मनन यहां हम करते हैं—

'विशां गोपाः' (मं. ४)— प्रजाजनोंका संरक्षण करनेवाला, **'सतः भवतः च भूरेः गोपाः'** (मं. ७)— जो है और जो होगा उस बडे विश्वका यह संरक्षण करता है। यह **सहसा जायमानः** (मं १)— बलके साथ प्रकट होता है, बलके कार्य करनेके लियेही यह प्रकट हुआ है। **'मनूनां प्रजाः अजनयत्'** (मं. २)— मनुसे उत्पन्न हुई प्रजाका इसने भरण पोषण किया है।

'विशः आरीः' (मं. ३)— प्रजा प्रगति करनेवाली हो। अपनी उन्नति करनेके लिये यत्नशील हो। प्रजाजनोंमें जो **'प्रथमं यज्ञसाधनं ऋञ्जसानं भरतं सुप्रदानुं ईळत'**(३) जो पहिला, यज्ञको संपन्न करनेवाला, प्रगतिशील, सबका पोषणकर्ता और दाता हो उसीकी प्रशंसा करो। यही मनुष्य प्रशंसाके योग्य है। **'पुरुवारपुष्टिः स्वर्वित् तनयाय गातुं विदत्'** (मं. ४)— जो अनेकवार प्रजाका पोषण करता है, आत्मज्ञान जानता है और बालबच्चोंके सुधारका मार्ग जानता है

यही श्रेष्ठ है। सुप्रजा निर्माण करना प्रत्येक विवाहित स्त्रीपुरुष-का कर्तव्य है।

'समीची एकं शिशुं धापयेते' (मं. ५)— एक स्थानपर रहनेवाली दो स्त्रियाँ एक बच्चेका उत्तम रीतिसे पालन-पोषण करती हैं। बच्चेके पालन-पोषणमें विघ्न नहीं करतीं। स्त्रियाँ बच्चेपर प्रेम करें और उसकी पालनामें दत्तचित्त हों।

'रायः बुध्न' धनका आधार या आश्रय, जिसके पास बहुत धन रहता है ऐसा, **'वसूनां संगमनः'** धनोंको मिलकर प्राप्त करनेवाला, **'वेः मन्मसाधनः'** प्रगतिशील मानवके लिये मनन करनेयोग्य साधनोंको प्रस्तुत करनेवाला, **'अमृतत्वं रक्षमाणः'** अमरत्वकी सुरक्षा करनेवाला मनुष्य हो। इसमें ऐश्वर्यकी प्राप्ति, मननयोग्य विचारोंका संग्रह और अमृत अर्थात् मोक्ष अथवा बंधननिवृत्ति करनेके उपायोंका संग्रह करनेका विचार कहा है। (मं. ६)

'रयीणां सदनं' संपत्तिका घर अथवा स्थान, **'जातस्य जायमानस्य क्षां'** उत्पन्न हुए और उत्पन्न होनेवालेका निवास कर्ता, सबका आश्रय होनेवालेका यहां वर्णन है। (मं. ७) इस सूक्तका वर्ण्य विषयही **'द्रविणोदा'** धनदाता है। धन प्राप्त करके उसका दान करनेवाला यहां वर्णन किया है। **'वीरवती इषं नः यंसत्'** (मं. ८)— वीरोंके पास जो धन रहता है वह वीरता देनेवाला धन हमें मिले। जिससे निर्बलता निर्माण होती है ऐसा धन हमें नहीं चाहिये।

इस सूक्तका यह सर्व सामान्य उपदेश है जो सबके लिये मनन करनेयोग्य है।

(४) कल्याणका मार्ग

(ऋ. १।९७) कुत्स आङ्गिरसः। अग्निः, शुचिरग्निर्वा। गायत्री।

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् १
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदघम् २
प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः । अप नः शोशुचदघम् ३
प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः शोशुचदघम् ४
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः शोशुचदघम् ५
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ६

अन्वयः— १ हे अग्ने! नः अघं अप शोशुचत्, आ रयिं शुशुग्धि० ॥

२ सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे० ॥

३ यत् एषां प्र भन्दिष्ठ। अस्माकासः च सूरयः० ॥

४ हे अग्ने! यत् ते सूरयः वयं ते प्र जायेमहि० ॥

५ यत् सहस्वतः अग्नेः भानवः विश्वतः प्रयन्ति० ॥

६ हे विश्वतोमुख! त्वं हि विश्वतः परिभूः असि० ॥

अर्थ— १ हे अग्ने! हमारा पाप दूर कर और धनका प्रकाश (हमारे ऊपर) हो। हमारा पाप दूर हो ॥

२ उत्तम देशमें रहनेकी इच्छा, उत्तम मार्गसे जानेकी इच्छा और उत्तम धन प्राप्त करनेकी इच्छा धारण करके हम सब (तुम्हारी) पूजा कर रहे हैं० ॥

३ जो इनमें यह (भक्त तुम्हारा) वर्णन करता है, और हमारे सब विद्वान (तुम्हारीही भक्ति करते हैं) ०।

४ हे अग्ने! हम सब विद्वान् तुम्हारे भक्त हुए हैं और हम तुम्हारेही बने हैं० ॥

५ इस बलवान् अग्निके किरण चारों ओर फैल रहे हैं०।

६ हे सब ओर मुखवाले (अग्निदेव)! तू निःसंदेह चारों ओर सबपर प्रभाव डालनेवाला है० ॥

द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ७
स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये । अप नः शोशुचदघम् ८

७ हे विश्वतोमुख ! नावा इव द्विषः नः अति पारय० ॥

८ सः नावया सिन्धुं इव स्वस्तये नः अति पर्ष० ॥

७ हे सब ओर मुखवाले (अग्निदेव) ! नौकासे (समुद्रके पार होनेके) समान, सब शत्रुओंसे हमें पार ले जाओ० ॥

८ वह (तुम) नौकासे समुद्रके या नदीके पार जानेके समान हमारे कल्याणके लिये हमें (सब दुर्मतिसे) पार ले जाओ। हमारा पाप दूर हो ॥

उन्नतिका सत्य मार्ग

पाप न करना, पापकी वासना दूर करना अर्थात् शुभकर्म करनाही उन्नतिका सत्य मार्ग है। (अघं नः अप शोशुचत्) पाप दुःख करता हुआ हमसे दूर हो जावे। हमारे पास पापके लिये कोई किसी तरह स्थान न मिलनेसे वह पाप निराधार होकर दुःख करता हुआ दूर जावे । अर्थात् हमारे पास पापके लिये कोई स्थान न मिले। हम निष्पाप हों।

हममें तीन शुभेच्छाएं स्थिररूपसे रहें। उत्तम देशमें रहना उत्तम शुद्ध मार्गसे जाना और उत्तम धन प्राप्त करना। ये तीन शुभ इच्छाएँ मनुष्यमें स्थिर रूपसे रहें। इनके साथ यज्ञ करनेकी इच्छा भी चाहिये। क्योंकि यज्ञ मनुष्यकी उन्नति करनेवाला है। (मं. २)

(अस्माकासः सूरयः) हमारे सभी संबंधी विद्वान् ज्ञानी और सुविचारी हों। हमारे संबंधियोंमें एक भी ऐसा न हो कि जो निर्बुद्ध और अनाडी हो। (मं. ३-४)

जो (सहस्वतः भानवः विश्वतः प्र यन्ति) बलवान् है उसके तेजका फैलाव चारों ओर होता है यह नियम है। इसलिये उन्नति चाहनेवालोंको उचित है कि वे अपनेमें बल प्राप्त करें और बढावें। (मं. ५) जब बल बढेगा तब उसके यशका फैलाव चारों ओर होगाही । यह बल जो 'सहस् वत्' पदसे व्यक्त होता है वह दूसरेपर व्यर्थ आक्रमण करनेका नहीं है, प्रत्युत शत्रुके हमले होनेपर स्वयं अपने स्थानपर स्थिर रहनेका है, पराभूत न होते हुए युद्धमें अपने स्थानपर स्थिर रहनेके लिये जो बल चाहिये वह बल यह है।

बल दो प्रकारका होता है। एक बल वह है कि जिससे शत्रुपर आक्रमण करके, उसको पराभूत करके, उसको स्थानसे उखाडकर फेंक देना और तितर-बितर कर देना होता है। और दूसरा बल यह है कि जिससे युद्धमें शत्रुसे पराभूत न होते हुए डटकर अपने स्थानमें सुस्थिर होना संभव हो सकता है। ये दो बल परस्पर भिन्न हैं और जो 'सहस् वत्' पदसे इस मंत्रमें कहा है वह बल दूसरा है। विजयके लिये दोनों बल प्राप्त करना आवश्यक है।

'विश्वतो-मुखः' तथा 'विश्वतः परिभूः' ये दो पद षष्ठ मंत्रमें विशेष विचारणीय हैं। 'परिभूः' पदका अर्थ 'शत्रुका पराभव करना, अधीन करना, पादाक्रान्त करना, शत्रुका अपमान करना, शत्रुका नाश करना, शत्रुको घेरना, शत्रुके साथ स्पर्धा करना, मार्ग बताना' ऐसा होता है।

'विश्वतः परिभूः' का तात्पर्य 'शत्रुका सब प्रकारसे, सब ओरसे, सब तरहसे पराभव करना' है, शत्रुका पूर्ण नाश करके उसको अपने अधीन करना और अपना प्रभाव सर्वतोपरि स्थापन करनेका भाव यहां है। इसलिये 'विश्वतः मुखः' अपना मुख चारों ओर होना अत्यंत आवश्यक है। मुख चारों ओर रखनेका तात्पर्य शत्रुके चारों ओरका योग्य निरीक्षण करके, सबकी सब परिस्थिति अपने अधीन करना है। ईश्वर जैसा (विश्वतोमुख) सब ओर मुखवाला होनेके कारण सबका योग्य निरीक्षण करता है उसी तरह विजयी वीर चारों ओर दूतोंद्वारा शत्रुके चारों ओरका निरीक्षण करे और विजय संपादन करे। इस दृष्टिसे ये पद बडे मननीय हैं। (मं. ६)

जिस तरह नौकासे समुद्रके पार होते हैं, उसी तरह पापके समुद्रके पार, तथा शत्रुओंके समुद्रसे पार, होनेका कर्तव्य मनुष्यको करना आवश्यक है। यह तो अपनी शक्ति बढानेसेही हो सकता है और अपनी शक्ति तब बढ सकती है कि जब अपनेमेंसे पाप अर्थात् पतनके हेतु समूल दूर हो जायगे। जब

यह साध्य होगा तब 'स्वस्ति' अर्थात् कल्याण होगा। कल्याण प्राप्तिका जो मार्ग इस सूक्तमें कहा है वह संक्षेपसे नीचे दिया जाता है—

१ अघं अप शोशुचत् (मं. १)— पाप अर्थात् पतनके हेतुओंको दूर करो, (अघ्-अशुद्ध मार्गसे जाना, अयोग्य मार्गसे चलना, यही पाप है जिससे मानवका पतन होता है।)

२ रयिं शुशुग्धि— धन प्राप्तिके मार्गका प्रकाश हो,

३ सुक्षेत्रिया (मं. २)— उत्तम क्षेत्रमें रहना सहना और कार्य करना,

४ सुगातुया— प्रगतिका उत्तम मार्ग मिले,

५ वसूया— धन प्राप्त हो

६ यजामहे— जितना धन हो उससे [श्रेष्ठोंका सत्कार, जनताकी संगठना और दीनोंकी सहायता करनेके उद्देश्यसे] हम यज्ञ करते रहेंगे। अर्थात् धनसे अपनेही भोग नहीं बढायेंगे।

७ अस्माकासः सूरयः (मं. ३)— हमारे सब लोग विशेष ज्ञानी हों,

८ वयं सूरयः ते प्र जायेमहि (मं. ४)— हम विद्वान् होकर ईश्वरके भक्त बनकर बढते रहेंगे। विश्वरूप ईश्वरकी सेवा स्वकर्मसे करेंगे।

९ सहस्वतः भानवः विश्वतः प्र यन्ति (मं. ५)- बलवान् वीरका प्रकाश विश्वमें फैलता है, यह नियम सब जानें। निर्बलको इस विश्वमें कोई पूछता नहीं, इसलिये अपनी शक्ति बढानेका प्रयत्न करना चाहिये।

१० विश्वतो मुखः (मं. ६;७)— विश्वमें चारों ओर क्या चल रहा है वह ठीक तरह देखते रहो, चारों ओरका ठीक प्रकार निरीक्षण करो,

११ विश्वतः परिभूः (मं. ६)— सर्वत्र विजयी हो,

१२ नावा सिन्धुं इव द्विषः नः अति पारय (मं. ७;८)- जिस तरह नौकासे समुद्रके पार होते हैं, वैसे शत्रुओंसे पार जाओ। अन्तःकरणके शत्रु पापभाव हैं, समाजके शत्रु सामाजिक द्वेषभाव हैं और राष्ट्रके शत्रु द्वेषभाव फैलानेवाले वैरी हैं। इन सबको दूर करना चाहिये।

१३ स्वस्तये (सु-अस्ति)— अपना इस स्थानपरका निवास सुखकर करनेके लिये यत्न करो। पूर्वोक्त मार्ग इसी सिद्धिके लिये है।

मानवी उन्नतिके लिये यह उत्कृष्ट मार्ग है। पाठक इसका अधिक मनन करें और इसे जीवनमें ढालें। जिससे मनुष्यका पतन होता है उसका नाम अघ है, अयोग्य मार्गसे जानाही पाप है, जिससे अवनति होती है वही पाप है। इसको दूर करनेका उपाय इस सूक्तमें कहा है जो सदा मननीय है।

(५) जनताका हितकर्ता

(ऋ. १।९८) कुत्स आङ्गिरसः। अग्निः, वैश्वानरोऽग्निर्वा। त्रिष्टुप्।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १ ॥

अन्वयः- १ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम। हि भुवनानां कं राजा अभिश्रीः। इतः जातः वैश्वानरः इदं वि चष्टे, सूर्येण (स) यतते ॥

अर्थ— १ सब जनताका हित करनेवालेकी उत्तम मनोभावनामें हम (सदा) रहें। निःसन्देह मानवोंको सुख देनेवाला राजा (ही) बडा सामर्थ्यवान् होता है। यहां जन्मा हुआ सबका यह नेता सबको देखता है, (वह) सूर्यके साथ साथ यत्न करता रहता है ॥

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ २
वैश्वानर तव तत् सत्यमस्त्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३

२ वैश्वानरः अग्निः दिवि पृष्टः, पृथिव्यां पृष्टः, विश्वाः ओषधीः पृष्टः आ विवेश। सहसा पृष्टः सः अग्निः नः दिवा नक्तं रिषः पातु ॥

३ हे वैश्वानर ! तव तत् सत्यं अस्तु । अस्मान् मघवानः रायः सचन्ताम् । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम् ॥

२ सब जनताका हित करनेवाला (नेता या राजा) स्वर्गधाममें (भी) वर्णन करनेयोग्य है, भूमिपर (तो) वर्णन करनेयोग्य है (ही,) सब औषधियोंको (वही) वर्णनीय (नेता) प्राप्त हुआ है। बलके कारण वर्णनीय (माना हुआ वह) अग्नि (जैसा तेजस्वी नेता) हम सबको दिनमें तथा रात्रिमें दुष्टोंसे बचावे ॥

३ हे सब जनोंका हित करनेवाले नेता ! तुम्हारा वह कार्य सफल हो। हम सबको धनीलोग (पर्याप्त) धन देवें । हमारा यह मन्तव्य है, इसका अनुमोदन मित्र वरुण आदि देव करें ॥

सब मानवोंका सहायक नेता

(विश्व) सब (नर) मनुष्यमात्र, यह विश्व-नरका अर्थ है। जो सब मानवोंका हित करता है वह 'वैश्वा-नर' है। 'क्षत्रं वै वैश्वानरः' (श. ब्रा. ६।६।१।७, ९।३।१।१३) क्षात्रभावही वैश्वानर है। क्षात्रभाव जनताके दुःखोंको दूर करता है, (क्षतात् त्रायते इति क्षत्रं) दुःखसे जनताकी सुरक्षा करता है अतः उसको क्षत्र कहते हैं। यह आग्नेय गुण है। सब मानवोंको दुःखों और कष्टोंसे बचाना इसका काम है, इसलिये इसको वैश्वानर कहते हैं।

'नर' (नृणाति इति नरः) जो योग्य मार्गसे चलाता है, सब लोगोंको सच्ची उन्नतिके मार्गपरसे ले जाता है वह 'नर' है। तथा (न रमते इति नरः) जो स्वार्थी भोगोंमेंही नहीं रमता है वह नर है अर्थात् यह सब मानवोंका हित करनेके कार्योंमेंही दत्तचित्त रहता है, इसका नाम नर है। इससे विश्व-नरका ऐसा अर्थ हुआ कि- 'जो सबको सुयोग्य मार्गसे चलाता है, नेता बनकर जो अपने अनुयायियोंको उन्नतिके मार्गसे चलाता है तथा स्वयं भोगोंमें न फंसता हुआ अनासक्त रहकर जो श्रेष्ठ कार्योंमें तत्पर रहता है। ' जिसका ऐसा स्वभाव है वह नेता 'वैश्वा-नर' कहलाता है। यही सबका नेता, अग्रगामी और राजा कहलाता है।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम । (मं. १) — सब मानवोंके हित करनेके कार्यमें जो दत्तचित्त रहता है, उस नेताका शुभ आशीर्वाद हमें प्राप्त हो। अर्थात् हम सब मानव भी ऐसे उत्तम जन-हित-कारी कार्य करते रहें कि जिससे सन्तुष्ट होकर हमारा नेता हमें अपनी कृपादृष्टिमें सदैव रखे। श्रेष्ठ नेताकी कृपा उसपर होगी कि जो नेताके नियोजित कार्यमें तत्परतासे कार्य करता रहेगा। उसके विरोधी कार्य करनेवालेपर उसकी कभी कृपा नहीं होगी। यह तो निश्चित ही है। इससे यह बोध मिलता है कि जनताका नेता सब मानवोंको उन्नतिके मार्गपर योग्य रीतिसे चलावे, स्वयं भोगोंमें न फंसे, जनताको सन्मार्गपरसे चलावे और अनुयायी भी ऐसे हों कि जो नेताके आदेशानुकूल अपना नियत कर्तव्य करते जांय और अपने नेताकी आयोजना सफल करके, सफलतासे उत्पन्न हुई प्रसन्नताकी कृपाके भागी बनें।

भुवनानां कं राजा अभिश्रीः । सब मानवोंको सुख देनेवाला राजा सब प्रकारसे शोभायमान होता है। 'भुवन'— उत्पन्न हुआ, प्राणी, मानव, मनुष्यमात्र, उन्नत होनेकी इच्छा करनेवाला। 'कं'— सुख, आनन्द, जीवन, जल, धन, ऐश्वर्य, अभ्युदय, समय, मन, शरीर, शब्द, प्रकाश। 'अभि श्रीः'— तेजस्वी, प्रभावी, शोभावान्, शक्तिमान्, योग्य गुणी, मिलानेवाला, सुव्यवस्थापक। मानवोंका सुख बढानेवालाही सच्चा

राजा कहलानेयोग्य है और वही शक्तिमान् और प्रभावी होता है। अर्थात् जो राजा प्रजाको कष्ट देता है, उन्नत होनेसे रोकता है, न वह राजा है और ना ही वह कभी बलशाली होना संभव है। प्रजाको सुखी करनाही राजाका सच्चा सामर्थ्य है, प्रजाकी शक्ति जिस राजाके पीछे रहेगी वही राजा या नेता प्रभावी हो सकता है।

(इतः जातः वैश्वानरः इदं वि चष्टे) इसी समाजसे उत्पन्न हुआ यह नेता, जनताका अगुआ है, नेता होनेके बाद वह इसी समाजकी परिस्थितिका विशेष रीतिसे निरीक्षण करता है। संपूर्ण जगत्के साथ अपने समाजकी तुलना करके देखता है, परिस्थितिका निरीक्षण करता है और इसकी अधिक उन्नति करनेके उपाय निश्चित करता है। इस निरीक्षणसेही नेताका महत्त्व सिद्ध होता है।

(सूर्येण यतते) सूर्यके साथ यत्न करता है, जैसा सूर्य निरलस रहकर सबको प्रकाश बताता है, वैसाही यह नेता आलस्य छोडकर उन्नतिके कार्यमें दत्तचित्त रहता है। 'यत्'— उन्नतिके लिये प्रयत्न करना, तत्परतासे यत्न करना, पुनः पुनः प्रयत्न करते रहना, देखना, सावधानताके साथ निरीक्षण करना, उत्साह बढाना, मिलना, साथ रहना, मिलकर यत्न करना, प्रगति करना। 'यतते' क्रियाके ये अर्थ हैं। जैसा सूर्य विश्वका मार्गदर्शक हुआ है, वैसा यह नेता मानवोंको मार्ग बताता है, यह नेता अपने सामने सूर्यका आदर्श रखता है।

(वैश्वानरः अग्निः) सब मानवोंका सच्चा हित करनेवाला नेता सचमुच अग्नि है, अग्निके समान जनतामें यह नवचैतन्यकी आग उत्पन्न करता है। जैसा अग्निके पास गया (लकडी लोहा आदि) पदार्थ अग्निरूप बनता है, वैसाही इसकी संगतिमें आया मनुष्य इसके सदृश उत्साही होता है। (दिवि पृष्टः, पृथिव्यां पृष्टः) द्युलोकमें और भूमिपर भी इसकी प्रशंसा गायी जाती है। द्युलोकमें, दिव्य विबुधोंकी परिषद्में इसकी प्रशंसा होती है वैसी जनतामें भी होती है। (मं. २)

(विश्वाः ओषधीः पृष्टः) जिस तरह रोग दूर करनेके कारण सब ओषधियोंकी प्रशंसा होती है, उसी तरह यह नेता सभी राष्ट्रीय रोगोंकी चिकित्सा करता है और अपने राष्ट्रको रोगमुक्त करता है। मानो यह नेता राष्ट्रीय (ओषधी=दोष-धीः) ओषधीही है, राष्ट्रके दोषोंको धोनेवालाही है। अतः इसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है। ऐसा यह प्रशंसनीय नेता राष्ट्रमें (आ विवेश) आवेश उत्पन्न करता है, नव चेतना फैलाता है। 'आ-विश्'— प्रवेश करना, स्वामी होना, अधिकार जमाना, प्राप्त करना, प्रभाव स्थापन करना, उठना, जागना आवेश उत्पन्न करना। यह नेता (दिवा नक्तं रिषः पातु) दिनरात शत्रुओंसे हमारी सुरक्षा करे (सहसा पृष्टः) बलके कारण इस नेताकी प्रशंसा सर्वत्र होती है। (मं. २)

जनताके नेताका (तत् सत्यं अस्तु) जो यह सामर्थ्य है वह सदा सत्य रहे, कभी कम न हो, सत्य मार्गकाही यह अवलंब करे, कभी असत्य मार्गपर न जावे। (अस्मान् मघवानः रायः सचन्तां) हमें धनवान् पर्याप्त धन दें। और यह सब हमारी आयोजना प्रभुकी कृपासे सफल होती रहे इसमें कभी त्रुटि न हो। (मं. ३)

अग्निका सूक्त

यह सूक्त वस्तुतः अग्निका वर्णन करनेवाला है। अग्नि अग्रणीही है क्योंकि यह अग्रभागतक, अन्ततक, मोक्षधाम-तक पहुंचाता है। यह (वैश्वानरः) सब विश्वका नेता है, यह (सूर्येण यतते) सूर्यके साथ संबंध रखता है, सूर्यसे विद्युत् और विद्युत्से अग्नि उत्पन्न होती है। इस विषयमें निरुक्तमें कहा है—

वैश्वानरः कस्मात्? विश्वान् नरान् नयति, विश्व एनं नरा नयन्तीति वा, अपि वा विश्वानर एव स्यात्। "वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः। इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण॥" इतो जातः सर्वमिदं अभि विपश्यति, वैश्वानरः संयतते सूर्येण, राजा यः सर्वेषां भूतानां अभिश्रयणीयः, तस्य वयं वैश्वानरस्य कल्याण्यां मतौ स्यामेति॥ (नि० ७।६।२१)
तत् को वैश्वानरः? मध्यम इत्याचार्याः। वर्षकर्मणा ह्येनं स्तौति० ....। असावादित्य इति पूर्वे याज्ञिकाः। ... अयमेवाग्निर्वैश्वानर इति शाकपूणिः...आश्लिष्टे कंसं वा मणिं वा परिमृज्य प्रतिस्वरे यत्र गोमयमसंस्पर्शयन् धारयति, तत् प्रदीप्यते, सोऽयमेव संपद्यते। (निरु. ७।६।२३)

वैश्वानरका अर्थ क्या है? सब मानवोंको यह ठीक तरह ले जाता है अथवा सब मानव इसको साथ रखते हैं, यह उनका

नेता है। 'वैश्वानरस्य०' यह मंत्र इसके वर्णनका है।

मध्यस्थानीय विद्युत् वैश्वानर है ऐसा निरुक्त आचार्योंका मत है, यह वृष्टि करता है। पूर्व समयके याज्ञिक सूर्यको वैश्वानर मानते हैं। यह अग्निही वैश्वानर है ऐसा शाकपूणि ऋषिका मत है। सूर्यकिरणको मणिमें धरकर उसका केन्द्रित किरण सूखे गोबर-पर (अथवा सूखे घासपर) रखा जाय, तो आग जलने लगती है, वही वैश्वानर है।' ऐसा निरुक्तमें यास्क आचार्य लिखते हैं।

यह अग्नि स्वर्गमें सूर्यरूपमें, मेघमें विद्युत्के रूपमें और पृथ्वीपर अग्निके रूपमें विद्यमान है। यही ओषधि वनस्पति-योंमें तथा सब विश्वभरमें रहा है। इस तरह यह वर्णन अग्निका है। यह सूक्त इस रीतिसे अग्निका वर्णन कर रहा है। 'विश्वान् नरान् नयति'- सब मानवोंको सीधे मार्गसे ले जाता है, ऐसा अर्थ करके जनताके अग्रणी, जनताके नेताका अर्थ भी निरुक्तकारने बताया है। इस विषयका अर्थ हमने विस्तारपूर्वक पहिलेही बताया है। अग्निके वर्णनका सूक्त इस तरह राष्ट्रनेताका भी साथसाथ वर्णन करता है, यह वेदकी शैली देखनेयोग्य है।

यहां अग्निप्रकरण समाप्त हुआ है।

[२] इन्द्र-प्रकरण

(६) विश्वका पालक

(ऋ. १।१०१) कुत्स आङ्गिरसः। इन्द्रः (१ गर्भस्राविण्युपनिषद्)। जगती; ८–११ त्रिष्टुप्।

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥१॥

यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन् पिप्रुमव्रतम्।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥२॥

यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥३॥

अन्वयः- १ यः ऋजिश्वना कृष्ण-गर्भाः निः अहन् (तस्मै) मन्दिने पितु-मत् वचः प्र अर्चत। (वयं) अवस्यवः वृषणं वज्र-दक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

२ यः वि-अंसं (वृत्रं) यः शम्बरं, यः अव्रतं पिप्रुं (च) जहृषाणेन मन्युना अहन्, यः इन्द्रः अशुषं शुष्णं नि अवृणक् (तं) मरुत्वन्तं (इन्द्रं) सख्याय हवामहे ॥

३ यस्य महत् पौंस्यं द्यावापृथिवी (मन्येते)। यस्य व्रते वरुणः, यस्य (व्रते) सूर्यः (च तिष्ठति); सिन्धवः (अपि) यस्य इन्द्रस्य व्रत सश्चति, (तं) मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

अर्थ- १ जिसने ऋजिश्वाके साथ (वृत्रकी) अन्धेरेमें छिपी नगरियोंको नष्ट कर दिया उस आनन्दयुक्त इन्द्रके लिये अन्न देते हुए स्तुतिके वचन कहो। हम रक्षा चाहनेवाले बली, दायें हाथमें वज्र धारे हुए, मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको मित्रताके लिये बुलाते हैं।

२ जिसने कंधोंसे हीन वृत्रको, जिसने शम्बरको और जिसने व्रत-हीन पिप्रुको हर्षसे बढे हुए उत्साहसे मारा, जिस इन्द्रने सोखनेकी शक्तिसे रहित शुष्णको नष्ट कर दिया, उस मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको मित्रताके लिये हम बुलाते हैं।

३ जिसके बडे पराक्रमको द्यौ और पृथिवी मानते हैं। जिसके नियममें वरुण और जिसके व्रतमें सूर्य स्थिर है; नदियाँ भी जिस इन्द्रके नियमको स्वीकार करती हैं उस मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको मित्रताके लिये हम बुलाते हैं।

यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः ।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ४

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ५

यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ६

रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ७

यद्वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद्वावमे वृजने मादयासे ।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ८

४ यः गो-पतिः अश्वानां, यः (च) गवां वशी (अस्ति), यः आरितः कर्मणि-कर्मणि स्थिरः (भवति), यः इन्द्रः वीळोः चित् असुन्वतः वधः (अस्ति), (तं) मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

५ यः विश्वस्य जगतः प्राणतः पतिः (अस्ति), यः प्रथमः ब्रह्मणे गाः अविन्दत्, यः इन्द्रः दस्यून् अधरान् अव-अतिरत् (तं) मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

६ यः शूरेभिः, यः च भीरु-भिः हव्यः; यः धावत्-भिः, यः च जिग्यु-भिः हूयते; विश्वा भुवना यं इन्द्रं अभि सं-दधुः (तं) मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

७ वि-चक्षणः रुद्राणां प्र-दिशा एति, योषा रुद्रेभिः पृथु ज्रयः तनुते, मनीषा श्रुतं इन्द्रं अभि अर्चति (तं) मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

८ (हे) सत्य-राधः ! मरुत्वः ! (त्वं) यत् वा परमे सध-स्थे यत् वा अवमे वृजने मादयासे अतः नः अध्वरं अच्छ आ याहि, त्वा-या हविः चकृम ॥

४ जो गायोंका स्वामी है और जो घोडों और गायोंके वशमें रखनेवाला है, जो स्तुतिको पाया हुआ इन्द्र प्रत्येक कर्ममें स्थिर रहता है, जो इन्द्र प्रयत्नसे भी यज्ञविरोधी शत्रुको दण्ड देता है, उस मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको मित्रताके लिये हम पुकारते हैं ।

५ जो सम्पूर्ण चर और प्राणधारी जगत्का स्वामी है जिसने पहलेही ब्राह्मणके लिये गौएँ प्राप्त करायीं, जिस इन्द्रने दुष्टोंको नीचे गिरा दिया, उस मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको हम मित्रताके लिये बुलाते हैं ।

६ जो शूरों और जो डरपोक लोगोंसे भी युद्धमें रक्षार्थ बुलानेयोग्य है; जो भागते हुए और जो जीतते हुए वीरों द्वारा पुकारा जाता है, सारे लोग जिस इन्द्रकी मित्रता प्राप्त करते हैं, उस मरुतोंकी सेनावाले इन्द्रको मित्रताके लिये हम पुकारते हैं ।

७ बुद्धिमान् इन्द्र रुद्रोंकी दिशासे चलता है । वाणी रुद्रोंके साथ इन्द्रके विस्तृत वेगको अधिक फैलाती है । मनसे उत्पन्न स्तुति इस विख्यात इन्द्रकी अर्चना करती है, ऐसे मरुतों-की सेनावाले इन्द्रको मित्रताके लिये हम बुलाते हैं ।

८ हे अटल ऐश्वर्यवाले, मरुतोंसे युक्त इन्द्र ! तू चाहे उत्तम स्थानमें रह अथवा छोटे घरमें, यज्ञमें सोमका आनन्द ले रहा हो, वहाँसे तू हमारे यज्ञके पास आ, हमने तेरे लिये हवि बनाया है ।

त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ९

मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन् हव्यानि प्रति नो जुषस्व १०

मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११

---

९ (हे) सु-दक्ष इन्द्र ! त्वा-या सोमं सुसुम । (हे) ब्रह्म-वाहः ! त्वा-या हविः चकृम । (हे) नियुत्वः ! अध स-गणः (त्वं) मरुत्-भिः (सह) अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥

१० (हे) इन्द्र ! ये ते (हरयः, तैः) हरि-भिः मादयस्व, शिप्रे वि स्यस्व, धेने वि सृजस्व । (हे) सु-शिप्र ! हरयः त्वा आ वहन्तु, (त्वं) उशन् नः हव्यानि प्रति जुषस्व ॥

११ वृजनस्य मरुत्स्तोत्रस्य गोपाः वयं इन्द्रेण वाजं सनुयाम । मित्रः वरुण. अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः तत् नः मामहन्ताम् ॥

९ हे उत्तम बलवाले इन्द्र ! हमने तेरे लिये सोम-रस बनाया है । हे स्तुतिको स्वीकार करनेवाले ! हमने तेरे लिये हवन-सामग्री बनाई है। हे घोडोंवाले ! अब तू सेनासहित मरुतोंके साथ इस यज्ञमें आसनपर बैठकर सोमसे प्रसन्न हो ।

१० हे इन्द्र ! जो तेरे अपने घोडे हैं तू उन घोडोंद्वारा आकर हमारे यज्ञमें आनन्द मना । अपने दोनों होंठोंको फैला, और अपनी वाणीको खोल दे । हे उत्तम मुखवाले ! तेरे घोडे तुझे यहाँ ले आयें । तू चाहता हुआ हमारे अन्नोंको सेवन कर ॥

११ शत्रुओंके नाशक, मरुतोंके स्तोत्रोंके रक्षक हम इन्द्रके साथ मिलकर धन प्राप्त करें । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु पृथिवी और द्यौ उस कार्यमें हमारी सहायता करें ।

इन्द्रका वर्णन

यहांसे इन्द्रका वर्णन प्रारंभ होता है। इन्द्र और वृत्रकी कथा के मिषसे प्रतापी क्षत्रियका धर्म यहाँ बताया जाता है।

१ कृष्ण-गर्भा । (मं. १)- यह वर्णन वृत्रकी नगरीका है । वृत्र इन्द्रका शत्रु है, वह इन्द्रके साथ लडता है । अपनी नगरी-को सुरक्षित रखनेके लिये वह उस नगरीमें अन्धेरा करता है । इस अन्धेरेके कारण उस नगरीपर इन्द्रका हमला नहीं हो सकता। आजकलकी युद्ध-व्यवस्थामें भी बडी बडी नगरियाँ रात्रिके समय अन्धेरेसे व्याप्त रखी जाती हैं जिससे उनकी सुरक्षा होती है । (कृष्णः) अन्धेरा है (गर्भा) जिस नगरीके बीचमें वह कृष्णगर्भा नगरी है । ऐसी वृत्रकी अनेक नगरियाँ थीं । यह एक युद्ध-नीति है । इन्द्रने ऐसे प्रबल शत्रुको (निःअहन्) मारा था, यह इन्द्रका प्रभाव है ।

२ व्यंसं (वृत्रं)— इन्द्रने वृत्रके कन्धोंको पहिले काट था । (मं. २)

३ अव्रतं पिप्रुं अहन्- धर्म-नियमोंका पालन न करने वाले पिप्रुको भी इन्द्रने मारा था । यह पिप्रु वृत्रका साथी था । 'शंबर और शुष्ण' ये दो और वृत्रके साथी इन्द्रद्वारा मारे गये थे ।

४ यः गोपतिः, गवां वशी, अश्वानां वशी (मं.४)- इन्द्र गौओंका पालन करता है, गौओंको वशमें रखता है और घोडोंकी भी उत्तम पालना करता है और घोडोंको उत्तम शिक्षा देकर सुशिक्षित करता है ।

५ असुन्वतः वधः— इन्द्र यज्ञ न करनेवालेका वध करता है। यज्ञ जनसंघटनाका बडा उपयोगी कार्य है। जो इसको नहीं करता वह वध्यही है । जो इन्द्रकी संगठनामें रहे वह

अवश्यही यज्ञद्वारा संघटना करके जनताको बलवान् बना देवे ।

६ विश्वस्य जगतः प्राणतः पतिः (मं. ५)— इन्द्र चर और प्राणधारी संपूर्ण विश्वका अधिपति है। सब विश्व इसके आधीन है।

७ इन्द्र दस्यून् अधरान् अवातिरत्— इन्द्र शत्रुओंको नीचे गिराकर परास्त करता है।

८ ब्रह्मणे गाः अविन्दत्— इन्द्र ब्राह्मणके लिये गौएं देता है। ब्राह्मणके घर अनेक विद्यार्थी पढते रहते हैं। ब्राह्मणका घर पाठशाला होती है, वहाँ विनामूल्य पढाई होती है, इन्द्रके द्वारा ब्राह्मणको गौएं दी जाती हैं।

९ यः शूरेभिः भीरुभिः हव्यः (मं ६)— इन्द्र शूरोंद्वारा और भीरुओंद्वारा साहाय्यार्थ बुलाया जाता है।

१० यः धावद्भिः जिग्युभिः हूयते — जो आक्रमण करनेवाले और विजय पानेवाले वीरोंद्वारा साहाय्यार्थ बुलाया जाता है।

११ विश्वा भुवना इन्द्रं अभि संदधुः— सब भुवन इन्द्रके साथ अपना संबंध जोडती हैं, इन्द्रके साथ संबंध रखनेसे लाभ होगा' ऐसा सबको प्रतीत होता है।

१२ सत्य-राधः (मं. ८)— जिसको निश्चित रूपसे सिद्धि मिलती है, कभी जिसका पराभव नहीं होता।

१३ सुदक्षः (मं. ९)- उत्तम बलवान्, उत्तम दक्षताके साथ अपने सब कार्य करनेवाला, जो सदा सावधान रहता है, इसलिये विजय पाता है।

१४ ब्रह्म-वाहः— जो ज्ञानका वाहक है, ज्ञानका जो फैलाव करता है।

१५ स-गणः- जो सदा अपने अनुयायियोंके समूहके साथ रहता है, जो सैनिकोंके साथ रहता है।

१६ सुशिप्रः (मं. १०)- उत्तम हनु या होंठोंवाला, उत्तम शिरस्त्राणवाला,

१७ हरयः त्वा आ वहन्तु-- घोडे इन्द्रको लाते हैं, रथसे घोडे जोते जाते हैं, जो इन्द्रको यज्ञ स्थानपर लाते हैं।

१८ वृजनस्य (नाशकर्ता)- पाप, दुर्भाग्य, तथा दुर्गतिका नाश करनेवाला।

१९ गोपाः-- संरक्षण करनेवाला इन्द्र है। ये इन्द्रके गुण हैं। ये वीरके गुण हैं। वीरकी इनसे शोभा बढती है।

(७) शत्रुरहित प्रभु

(ऋ. १।१०२) कुत्स आङ्गिरसः। इन्द्रः। जगती, ११ त्रिष्टुप्।

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत् त आनजे।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु　　१

अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम्　　२

अन्वयः- १ यत् ते धिषणा अस्य स्तोत्रे आनजे, महः ते इमां महीं धियं प्र भरे। देवासः उत्-सवे च प्र-सवे च सं-सहिं इन्द्रं शवसा अनु अमदन्॥

२ सप्त नद्यः अस्य श्रवः बिभ्रति। द्यावाक्षामा पृथिवी (अस्य) दर्शतं वपुः (धारयन्ति)। (हे) इन्द्र! सूर्याचन्द्रमसा अस्मे अभि-चक्षे श्रद्धे कं वि-तर्तुरं चरतः॥

अर्थ— १ हे इन्द्र! जो कि तेरी बुद्धि इसके स्तोत्रमें संयुक्त होती है, मैं महान् गुणवाली तेरी इस बडी बुद्धिको धारण करता हूं। देव लोगोंने श्रेष्ठ सोम-निर्माणके विशेष सवनके समय उस शत्रुको दबानेवाले इन्द्रकी बलपूर्वक सहायता की।

२ सात नदियाँ इस इन्द्रको अन्न देती हैं। द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष इसके दर्शनीय शरीरको धारण करते हैं। हे इन्द्र! तेरे ये सूर्य और चन्द्रमा हमारे देखने और श्रद्धा ज्ञान देनेके लिये निश्चयसे परस्पर सहायक बनकर विचर रहे हैं।

तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ३

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ४

नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ५

गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ६

उत् ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत् सहस्राद् रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरंदर ७

---

३ (हे) मघ-वन् ! ते यं जैत्रं (रथं) सं-गमे अनु-मदाम, सातये तं स्म रथं प्र अव । (हे) पुरु-स्तुत इन्द्र ! आजा नः मनसा (देहि)। (हे) मघ-वन् ! त्वायत्-भ्यः नः शर्म यच्छ ॥

४ (हे) मघ-वन् इन्द्र ! वयं त्वया युजा वृतं जयेम (त्वं) भरे-भरे अस्माकं अंशं उत् अव । वरिवः अस्मभ्यं सु-गं कृधि । शत्रूणां वृष्ण्या प्र रुज ॥

५ (हे) धनानां धर्तः ! नाना हि हवमानाः विपन्यवः इमे जनाः अवसा त्वा (यन्ति) । (हे) इन्द्र ! तव नि-भृतं मनः जैत्रं हि (अतः) सातये अस्माकं स्म रथं आ तिष्ठ ॥

६ (इन्द्रस्य) बाहू गो-जिता । (सः) इन्द्रः अमित-क्रतुः, सिमः, कर्मन्-कर्मन् शतं-ऊतिः खजं-करः (तथा) ओजसा प्रति-मानं अकल्पः (अस्ति) । अथ सिषासवः जनाः वि ह्वयन्ते ॥

७ (हे) मघ-वन् ! ते श्रवः शतात् भूयसः सहस्रात् च कृष्टिषु उत् उत् उत् रिरिचे । मही धिषणा अमात्रं त्वा तित्विषे । (हे) पुरं-दर ! अध (त्वं) वृत्राणि जिघ्नसे ॥

३ हे धन-सम्पन्न इन्द्र ! तेरे जिस जयशील (रथकी, हम लोग) युद्धमें प्रशंसा करते हैं, (तू धन) देनेके लिये उस रथकी रक्षा कर । हे बहुत प्रशंसित इन्द्र ! युद्धमें, तू हमें मनःपूर्वक (धनादि दे) । हे ऐश्वर्यवाले ! तू अपने पास आनेवाले हमको सुख प्रदान कर ॥

४ हे धन सम्पन्न इन्द्र ! हम लोग तुझसे मिलकर घेरनेवाले शत्रुको जीतें । तू प्रत्येक युद्धमें हमारे भागकी रक्षा कर । धन हमारे लिये सुगमतासे प्राप्त होनेवाला कर और शत्रुओंके बलोंको तोड दे ॥

५ हे धनोंके धारक (इन्द्र) ! अनेक वक्ता विद्वान् लोग रक्षाके लिये तेरे पास आते हैं । हे इन्द्र ! तेरा शान्त मन जयशील है (अतः तू हमें धन) देनेके लिये हमारेही रथपर आकर बैठ ॥

६ इन्द्रकी भुजायें गौएँ जीतनेवाली हैं । वह इन्द्र असीम कर्मोंको करनेवाला श्रेष्ठ प्रत्येक कर्ममें सैकडों रक्षाओंसे युक्त, शत्रुओंसे युद्ध करनेवाला और बलमें बराबरी करनेवालेको न माननेवाला है । इस कारण धनकी प्राप्तिकी कामनावाले मनुष्य उसे विविध प्रकारसे बुलाते हैं ।

७ हे धनिक इन्द्र ! तेरा दान प्रजा-जनोंमें सौ, सौसे अधिक और सहस्रसे भी अधिक बढ गया है । बडी वाणी असीम गुणवाले तुझ इन्द्रको अधिक तेजस्वी बनाती है । हे गढके तोडनेवाले ! तू तो वृत्रोंको सदा मारताही है ।

त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ८
त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ९
त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन् महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय १०
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११

८ (हे) नृ-पते इन्द्र ! ओजसः त्रिविष्टि-धातु प्रति-मानं (असि)। (त्वं) तिस्रः भूमीः, त्रीणि रोचना, इदं विश्वं भुवनं अति ववक्षिथ । (त्वं) सनात् जनुषा अशत्रुः असि ॥

९ (हे इन्द्र !) त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे । त्वं पृतनासु ससहिः बभूथ । सः इन्द्रः नः इमं कारुं उप-मन्युं उद्-भिदं रथं प्र-सवे पुरः कृणोतु ॥

१० (हे) मघ-वन् ! अर्भेषु महत्-सु च आजा त्वं (धनानि) जिगेथ, धना रुरोधिथ न । (वयं) त्वां उग्रं अवसे सं शिशीमसि । (हे) इन्द्र ! अथ हवनेषु नः चोदय ॥

११ इन्द्रः विश्वाहा नः अधि-वक्ता अस्तु । (वयं) अपरि-ह्वृताः वाजं सनुयाम । मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः तत् नः ममहन्ताम् ॥

८ हे प्रजापालक इन्द्र ! तू बलवानोंके तिगुने बलकी समानता करनेवाला है । तू तीन भूमि, तीन तेज और इस सम्पूर्ण लोकको भली-भाँति संचालन कर रहा है । तू सदासे जन्मतः शत्रु-रहित है ।

९ हे इन्द्र ! हम तुझ देवोंमें प्रथम देवको अपने यहां बुलाते हैं । तू युद्धोंमें शत्रुओंको दबानेवाला हुआ था । वह यह इन्द्र हमारे इस विजयकर्ता उत्साहवाले भेदक रथको युद्धके समय आगे करे ॥

१० हे धनशील इन्द्र ! छोटे और बडे युद्धोंमें तू धनोंको जीतता है परन्तु धनोंको अपने पासही रोक नहीं रखता । हम तुझ उग्र इन्द्रको रक्षाके लिये अधिक शक्तिशाली बनाते हैं । हे इन्द्र ! तब युद्धके समय तू हमें प्रेरित कर, आगे बढा !

११ इन्द्र सब दिन हमसे बोलनेवाला हो (अर्थात् हमसे कभी रुष्ट न हो) । हम कुटिलता-रहित होकर धन प्राप्त करें । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक वह कल्याण हमें प्राप्त करावें ॥

प्रभुकी महिमा

प्रभुकी महिमा इस सूक्तमें वर्णन की है । देखिये-

१ ते महः (मं. १)- तेरी महिमा बडी है ।

२ उत्सवे प्रसवे ससहिः (२)- उत्कर्ष और प्रकर्षके समय शत्रुको तू पराभूत करता है ।

३ सप्त नद्यः अस्य श्रवः बिभ्रति (३)- सात नदियां इसको अन्न देती हैं, इसके यश या कीर्तिको धारण करती हैं । ये सात नदियाँ पंजाबकी पाँच और दो अन्य मिल कर सात मानी जायगी, तो इस वर्णित प्रदेशकी कल्पना हो सकती है । निम्नलिखित मंत्रमें अनेक नदियोंका उल्लेख है-

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या । असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ ऋ १०।७५।५

इस मंत्रमें गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि, परुष्णी, असिक्नी, मरुद्वृधा, वितस्ता, आर्जीकीया, सुषोमा इतनी नदियोंका उल्लेख है । इनमें शुतुद्रि (सतलज), परुष्णी (रावी), असिक्नी (चिनाब), वितस्ता (झेलम) ये आजकलके नदी

तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ३

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ४

नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ५

गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ६

उत् ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत् सहस्राद् रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरंदर ७

---

३ (हे) मघ-वन् ! ते यं जैत्रं (रथं) सं-गमे अनु-मदाम, सातये तं स्म रथं प्र अव । (हे) पुरु-स्तुत इन्द्र ! आजा नः मनसा (देहि)। (हे) मघ-वन् ! त्वायत्-भ्यः नः शर्म यच्छ ॥

४ (हे) मघ-वन् इन्द्र ! वयं त्वया युजा वृतं जयेम (त्वं) भरे-भरे अस्माकं अंशं उत् अव । वरिवः अस्मभ्यं सु-गं कृधि । शत्रूणां वृष्ण्या प्र रुज ॥

५ (हे) धनानां धर्तः ! नाना हि हवमानाः विपन्यवः इमे जनाः अवसा त्वा (यन्ति) । (हे) इन्द्र ! तव नि-भृतं मनः जैत्रं हि (अतः) सातये अस्माकं स्म रथं आ तिष्ठ ॥

६ (इन्द्रस्य) बाहू गो-जिता । (सः) इन्द्रः अमित-क्रतुः, सिमः, कर्मन्-कर्मन् शतं-ऊतिः खजं-करः (तथा) ओजसा प्रति-मानं अकल्पः (अस्ति) । अथ सिसासवः जनाः वि ह्वयन्ते ॥

७ (हे) मघ वन् ! ते श्रवः शतात् भूयसः सहस्रात् च कृष्टिषु उत् उत उत् रिरिचे । मही धिषणा अमात्रं त्वा तित्विषे । (हे) पुरं-दर ! अध (त्वं) वृत्राणि जिघ्नसे ॥

३ हे धन-सम्पन्न इन्द्र ! तेरे जिस जयशील (रथकी, हम लोग) युद्धमें प्रशंसा करते हैं, (तू धन) देनेके लिये उस रथकी रक्षा कर । हे बहुत प्रशंसित इन्द्र ! युद्धमें, तू हमें मनःपूर्वक (धनादि दे) । हे ऐश्वर्यवाले ! तू अपने पास आनेवाले हमको सुख प्रदान कर ॥

४ हे धन सम्पन्न इन्द्र ! हम लोग तुमसे मिलकर घेरनेवाले शत्रुको जीतें । तू प्रत्येक युद्धमें हमारे भागकी रक्षा कर । धन हमारे लिये सुगमतासे प्राप्त होनेवाला कर और शत्रुओंके बलोंको तोड दे ॥

५ हे धनोंके धारक (इन्द्र) ! अनेक वक्ता विद्वान् लोग रक्षाके लिये तेरे पास आते हैं । हे इन्द्र ! तेरा शान्त मन जयशील है (अतः तू हमें धन) देनेके लिये हमारेही रथपर आकर बैठ ॥

६ इन्द्रकी भुजायें गौएँ जीतनेवाली हैं । वह इन्द्र असीम कर्मोंको करनेवाला श्रेष्ठ प्रत्येक कर्ममें सैकडों रक्षाओंसे युक्त, शत्रुओंसे युद्ध करनेवाला और बलमें बराबरी करनेवालेको न माननेवाला है । इस कारण धनकी प्राप्तिकी कामनावाले मनुष्य उसे विविध प्रकारसे बुलाते हैं ।

७ हे धनिक इन्द्र ! तेरा दान प्रजा-जनोंमें सौ, सौसे अधिक और सहस्रसे भी अधिक बढ गया है । बडी वाणी असीम गुणवाले तुझ इन्द्रको अधिक तेजस्वी बनाती है । हे गढके तोडनेवाले ! तू तो वृत्रोंको सदा मारताही है ।

त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ८
त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ९
त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन् महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय १०
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११

---

८ (हे) नृ-पते इन्द्र ! ओजसः त्रिविष्टि-धातु प्रति-मानं (असि)। (त्वं) तिस्र- भूमीः, त्रीणि रोचना, इदं विश्वं भुवनं अति ववक्षिथ । (त्वं) सनात् जनुषा अशत्रुः असि ॥

९ (हे इन्द्र !) त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे। त्वं पृतनासु ससहिः बभूथ । सः इन्द्रः नः इमं कारुं उप-मन्युं उत्-भिदं रथं प्र-सवे पुरः कृणोतु ॥

१० (हे) मघ-वन् ! अर्भेषु महत्-सु च आजा त्वं (धनानि) जिगेथ, धना रुरोधिथ न । (वयं) त्वां उग्रं अवसे सं शिशीमसि । (हे) इन्द्र ! अथ हवनेषु नः चोदय ॥

११ इन्द्रः विश्वाहा नः अधि-वक्ता अस्तु । (वयं) अपरि-ह्वृताः वाजं सनुयाम । मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः तत् नः ममहन्ताम् ॥

८ हे प्रजापालक इन्द्र ! तू बलवानोंके तिगुने बलकी समानता करनेवाला है । तू तीन भूमि, तीन तेज और इस सम्पूर्ण लोकको भली-भाँति संचालन कर रहा है । तू सदासे जन्मतः शत्रु-रहित है ।

९ हे इन्द्र ! हम तुझ देवोंमें प्रथम देवको अपने यहां बुलाते हैं। तू युद्धोंमें शत्रुओंको दबानेवाला हुआ था। वह यह इन्द्र हमारे इस विजयकर्ता उत्साहवाले भेदक रथको युद्धके समय आगे करे ॥

१० हे धनशील इन्द्र ! छोटे और बडे युद्धोंमें तू धनोंको जीतता है परन्तु धनोंको अपने पासही रोक नहीं रखता । हम तुझ उग्र इन्द्रको रक्षाके लिये अधिक शक्तिशाली बनाते हैं । हे इन्द्र ! तब युद्धके समय तू हमें प्रेरित कर, आगे बढा !

११ इन्द्र सब दिन हमसे बोलनेवाला हो (अर्थात् हमसे कभी रुष्ट न हो) । हम कुटिलता-रहित होकर धन प्राप्त करें । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक वह कल्याण हमें प्राप्त करायें ॥

प्रभुकी महिमा

प्रभुकी महिमा इस सूक्तमें वर्णन की है। देखिये-

१ ते महः (मं. १)- तेरी महिमा बडी है ।

२ उत्सवे प्रसवे ससहिः (२)- उत्कर्ष और प्रकर्षके समय शत्रुको तू पराभूत करता है ।

३ सप्त नद्यः अस्य श्रवः बिभ्रति (३)- सात नदियां इसको अन्न देती हैं, इसके यश या कीर्तिको धारण करती हैं । ये सात नदियाँ पंजाबकी पांच और दो अन्य मिलकर सात मानी जायगी, तो इस वर्णित प्रदेशकी कल्पना हो सकती है । निम्नलिखित मंत्रमें अनेक नदियोंका उल्लेख है-

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या । असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ ऋ १०।७५।५

इस मंत्रमें गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि, परुष्णी, असिक्नी, मरुद्वृधा, वितस्ता, आर्जीकीया, सुषोमा इतनी नदियोंका उल्लेख है । इनमें शुतुद्रि (सतलज), परुष्णी (रावी), असिक्नी (चिनाब), वितस्ता (झेलम) ये आजकलके नदी

नाम हैं। गंगा, यमुना, सरस्वती ये नदियां प्रसिद्ध हैं। इसके आगेके मंत्रमें तृष्टामा, सुसर्तु, रसा, श्वेत्या, सिन्धु, कुभा, मेहत्नु क्रुमु, गोमती ये नाम हैं। नदियोंके वर्णनके लिये ऋ. १०।७५ वां सूक्त देखनेयोग्य है पर ये सब नदियाँ उत्तर भारतकीही हैं। दक्षिण भारतकी नदियाँ यहां नहीं हैं।

इनमेंसे सात नदियाँ कौनसी हैं यह अभी निश्चित रूपसे पता लगना है।

४ वयं वृतं जयेम (४)- हम घेरनेवाले शत्रुको को जीतें। अर्थात् कोई शत्रु हमें घेरकर परास्त न करे।

५ शत्रूणां वृष्ण्यः प्र रुज-शत्रुके सब बलोंको तोड दे। और उसे निर्बल बना दे।

६ निभृतं मनः जैत्रम् (५)-- भरणपोषण करनेवाला मन जयशील होता है।

७ कर्मन् कर्मन् शतं ऊतीः (६)-- प्रत्येक कर्ममें सैकडों सुरक्षा करनेके सामर्थ्य हों। (अमित-क्रतुः सिमः) अधीम कर्म करनेवालाही श्रेष्ठ होता है, परिपूर्ण वीर समझा जाता है।

८ ओजसा प्रतिमानं अकृत्पः-- अपनी अतुल शक्तिके कारण अपने समान दूसरे किसीको अपने बराबर माननेको तू तैयार नहीं है। यह अति प्रचण्ड शक्तिका दर्शक है।

९ पुरं-दरः-- (७) शत्रुके किलोंको तोडने वाला,

१० जनुषा अशत्रुः असि (८)-- जन्मसे शत्रुरहित है, अजातशत्रु वह होता है कि जो बडा प्रभावी होता है।

११ पृतनासु ससहिः (९)-- युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाला वीर हो।

१२ उद्भिदं कारुं पुरः कृणोतु-- उन्नति करनेवाले कारीगरको आगे बढावे, उसका सन्मान करे।

१३ आजा जिगेथ (१०)-- युद्धमें जय प्राप्त करता है। इस प्रकारका आदर्श वीर इस सूक्तमें वर्णन किया है।

---

(८) शत्रु वध करनेवाला वीर

(ऋ. १।१०३) कुत्स आङ्गिरसः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

तत् त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम्।
क्षमेदमन्यद् दिव्य१न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥ १ ॥

स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन् व्यंसं मघवा शचीभिः ॥ २ ॥

अन्वयः- १ (हे इन्द्र!) कवयः पुरा ते इदं परमं इन्द्रियं पराचैः अधारयन्त। समना-इव केतुः अस्य अन्यत् इदं क्षमा अन्यत् ईं दिवि सं पृच्यते ॥

२ सः पृथिवीं धारयत् पप्रथत् च। (असुरान्) वज्रेण हत्वा अपः निः ससर्ज। अहिं अहन्, रौहिणं अभिनत्। मघवा शचीभिः वि अंसं (वृत्रं) वि अहन् ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र! ज्ञानी लोगोंने पूर्वकालमें तेरे इस श्रेष्ठ बलको दूरसेही धारण किया। जैसे युद्धमें झंडा, वैसे इस इन्द्रकी एक यह ज्योति पृथिवीपर और दूसरी वह द्युलोकमें जाकर जुडती है।

२ उसने पृथिवीका धारण किया, और उसे अधिक विस्तृत किया। असुरोंको वज्रसे मारकर जलोंको मुक्त किया। अहिको मारा, रौहिणको तोड फोड दिया। इन्द्रने शक्तियोंद्वारा कंधोंसे हीन वृत्रको मार डाला।

स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद् वि दासीः ।
विद्वान् वज्रिन् दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ३

तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उपप्रयन् दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ४

तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत् सो अविन्ददश्वान्त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ५

भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ६

तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत् ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ७

---

३ सः जातू-भर्मा ओजः श्रत्-दधान॰, दासीः पुरः वि-भिन्दन् वि अचरत्। (हे) वज्रिन् ! विद्वान् (त्वं) अस्य दस्यवे हेतिं (विसृज) यद्वा दस्यवे हेतिं अस्य (= प्रक्षिप) (हे) इन्द्र ! आर्य सहः द्युम्नं (च) वर्धय ॥

४ यत् ह सूनुः श्रवसे नाम दधे तत् वज्री मघ-वा दस्यु-हत्याय उप-प्रयन् ऊचुषे इमा मानुषा युगानि कीर्तेन्य नाम बिभ्रत् ॥

५ (येन वीर्येण) सः गाः अविन्दत्, सः अश्वान् अविन्दत्, सः ओषधीः, सः अपः, सः वनानि (अविन्दत्), अस्य इन्द्रस्य तत् इदं भूरि पुष्टं (वीर्यं) पश्यत, (तस्मै) वीर्याय श्रत् धत्तन ॥

६ यः शूरः आ-दृत्य परिपन्थी-इव अयज्वनः वेदः वि-भजन् एति (तस्मै) भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्य-शुष्माय सोमं सुनवाम ॥

७ (हे) इन्द्र ! यत् ससन्तं अहिं वज्रेण अबोधयः तत् प्र इव वीर्यं चकर्थ । पत्नीः वयः च हृषितं त्वा अनु (अमदन्), विश्वे देवासः त्वा अनु अमदन् ॥

३ वह विद्युत्‌रूप शस्त्रधारी (इन्द्र) बल धारण करता और शत्रुके पुरोंको तोडता हुआ विचरने लगा । यह तू हे वज्रधारी ! शत्रुको जानता हुआ उसके नाशक शत्रुपर अपना बाण छोड । हे इन्द्र ! आर्योंके बल और तेजको तू बढा ।

४ जब कि प्रेरक इन्द्रने कीर्तिके लिये यश धारण किया तब वज्रधारी (इन्द्र) ने शत्रुके नाशके लिये उसके समीप जाते हुए ज्ञानीको ये मनुष्य सम्बन्धी युग और कीर्तनके योग्य नाम प्राप्त कराया ॥

५ (जिस पराक्रमसे) उस (इन्द्र) ने गौएँ प्राप्त कीं, उसने घोडे प्राप्त किये, औषधियाँ, जल, वृक्षादि वनस्पतिसहित वन प्राप्त किये, इस इन्द्रके उस बहुत पुष्ट पराक्रमको हे मित्रो! देखो । तथा इस पराक्रमपर श्रद्धा करो ।

६ जो शूर (इन्द्र) ज्ञानियोंका आदर कर लुटेरेके समान यज्ञ न करनेवाले असुरका धन लेकर उनको बाँटता जाता है, उस बहुत कर्मोंवाले बलवान् दाता और सत्य बलवाले (इन्द्र) के लिये हम सोम निचोडें ।

७ हे इन्द्र ! तूने जो सोते हुए अहिको वज्रसे जगाया, तूने वह एक बडा पराक्रम कर दिखाया । उस समय देवोंकी पत्नियाँ तथा पक्षी जैसे उडनेवाले मरुतोंने प्रसन्नतासे युक्त तुझ इन्द्रका अनुमोदन किया । तब सारे देवोंने भी तेरे पीछे प्रसन्नता प्रकट की ।

शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ८

८ (हे) इन्द्र ! यदा शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रं अवधीः शम्बरस्य पुरः वि (अवधीः) तत् मित्रः, वरुणः, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवि उत द्यौः नः ममहन्ताम् ॥

८ हे इन्द्र ! जब तूने शुष्ण, पिप्रु, कुयव और वृत्रको मारा और शम्बरके नगर नष्ट किये तब उस समय मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौने हमें उत्साहित किया ॥

वीरके कर्म

इस इन्द्र-सूक्तमें जो वीरके कर्म कहे हैं, वे ये हैं—

१ ते परमं इंद्रियं अधारयन्त (मं. १)- तेरे श्रेष्ठ बलको धारण किया, अर्थात् तुझमें यह बल बहुतही है।

२ समना इव केतुः- युद्धमें ध्वज खडा करते हैं, वैसा तेरा बल दूरसे प्रकट होनेवाला है।

३ अहिं, रौहिणं, व्यंसं अहन्, अभिनत् (२)- अहि, रौहिण और टूटे कन्धोंवाले वृत्रको काटा, मारा या वध किया ।

४ दासीः पुरः विभिन्दन् (३)- शत्रुकी नगरियोंको तोडा,

५ दस्यवे हेतिं अस्य- शत्रुपर हथियार छोड दिया।

६ आर्यं सहः द्युम्नं वर्धय— आर्यके बल, सामर्थ्य और तेजको बढाया ।

७ अयज्वनः वेदः वि भजन् एति (६)— यज्ञ न करनेवाले शत्रुके धनको प्राप्त कर यज्ञ करनेवालोंको देता है। यज्ञका अर्थ 'श्रेष्ठोंका सत्कार, जनताकी संघटना और दीनोंकी सहायता करनेका शुभ कर्म ' है। वीर इस कर्मकी सहायता करे ।

८ ससन्तं अहिं वज्रेण अबोधयः (७)- सोनेवाले अहि नामक शत्रुपर वज्र मारकर उसे जगाया और पश्चात् युद्धमें उसका वध किया (तत् वीर्यं) वह इन्द्रका बडा सामर्थ्य का कार्य था ।

९ शुष्ण, पिप्रु, कुयव, वृत्र, शंबर ये शत्रुके नाम ८ वे मंत्रमें हैं, इनको इन्द्रने मारा है। पिप्रु, शंबर, शुष्ण ये नाम ऋ. १।१०।१२ में आये हैं। पूर्व सूक्त देखो। शंबरके नगर तोडनेका वर्णन यहां है ।

पूर्व सूक्तोंके साथ यह सूक्त देखनेयोग्य है।

(९) वीरता

(ऋ. १।१०४) कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान् दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे १
ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित् तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन् ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम् २

अन्वयः- १ (हे) इन्द्र ! ते नि-सदे योनिः अकारि, दोषा वस्तोः प्र-पित्वे वहीयसः अश्वान् अव-साय वयः वि-मुच्य स्वानः अर्वा न तं आ नि सीद ॥

२ त्ये नरः ऊतये इन्द्रं ओ गुः। (इन्द्रः) नु चित् सद्यः तान् अध्वनः जगम्यात् । देवासः दासस्य मन्युं श्चम्नन्, ते सुविताय वर्णं नः आ वक्षन् ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र ! तेरे बैठनेके लिये स्थान हमने बनाया है, रात और दिनमें यज्ञका समय प्राप्त होनेपर ले जानेवाले घोडोंको छोडकर और लगामकी रस्सी मुँहसे खोलकर तू शब्द करनेवाले घोडेके समान उसपर आकर बैठ ॥

२ वे लोग अपनी रक्षाके लिये इन्द्रके पास पहुँचे। इन्द्रने शीघ्र उसी समय उन्हें मार्गपर पहुँचा दिया (रक्षाका मार्ग बता दिया)। देवलोग असुरके क्रोधको खा जायें, वे प्रेरणाके लिये अनिष्टवारक इन्द्रको हमारे पास ले आयें ।

अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन् ।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ३
युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः ।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ४
प्रति यत् स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात् ।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः ५
स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे ।
माऽन्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ६
अधा मन्ये श्रत् ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ७

---

३ केत-वेदाः त्मना अव भरते । उदन् फेनं त्मना अव भरते । कुयवस्य योषे क्षीरेण स्नातः, ते शिफायाः प्रवणे हते स्याताम् ॥

४ उपरस्य आयोः नाभिः युयोप । शूरः पूर्वाभिः प्र तिरते राष्टि (च)। उद-भिः हिन्वानाः अञ्जसी कुलिशी वीर-पत्नी पयः भरन्ते ॥

५ यत् स्या नीथा प्रति अदर्शि जानती ओकः न दस्योः सदनं अच्छ गात्। (हे) मघ-वन् ! अध स्म चर्कृतात् नः (रक्ष) इत् । निष्षपी मघा-इव नः मा परा दाः ॥

६ (हे) इन्द्र ! सः त्वं सूर्ये, सः अप्-सु, अनागाः-त्वे, जीव-शंसे नः आ भज । ते महते इन्द्रियाय श्रद्धितं (अतः) अन्तरां भुजं मा आ रिरिषः ॥

७ (हे) इन्द्र ! अध मन्ये ते अस्मै श्रत् अधायि । (त्वं) वृषा महते धनाय चोदस्व । (हे) पुरुहूत ! अकृते योनौ नः मा (धाः) । क्षुध्यत्-भ्यः वयः आ-सुतिं दाः ॥

३ धनको जाननेवाला कुयव अपनी शक्तिसे उनका धन छीन लाता है । वह जलमें स्थित होकर फेन युक्त जलको अपनी शक्तिसे अपने अधीन कर रहा है । कुयवकी दोनों स्त्रियाँ जलसे स्नान कर रहीं हैं । हे इन्द्र ! वे दोनों नदीके बहावमें कदाचित् मर जायँगीं ॥

४ पत्थरपरसे जानेवाले कुयवका स्थान छिपा हुआ था । वह वीर (कुयव) पूर्वाभिमुख जलोंमें तैरता था और तेजस्वी हो रहा था। जलोंसे स्वयं तृप्त होनेवाली सुन्दर परन्तु वज्रके समान वीरोंकी पालिका (नदियाँ) उस कुयवसे जल छीन लाती हैं ॥

५ जब वह ले जानेवाला पदचिन्ह दिखाई दिया, तब वह, मार्गको जाननेवाली गाय जैसे अपने घर पहुँच जाती है वैसे दस्युके घरकी ओर जा पहुँची । हे ऐश्वर्यवाले ! अब, तू वार-वार उपद्रव करनेवाले असुरसे हमारी रक्षा कर । स्त्रैण-पुरुष जैसे धनको देता है वैसे तू हमें अपनेसे दूर मत कर ॥

६ हे इन्द्र ! वह तू सूर्यमें, वह तू जलमें, पाप-रहित कर्ममें और जीव जिसकी प्रशंसा करते हैं, ऐसे धर्ममें हमें आश्रय दे । तेरे महान् बलके लिये हमारे भीतर श्रद्धा उत्पन्न हुई है, इसलिये तू हमारे पास रहनेवाली प्रजाकी हिंसा मत कर ॥

७ हे इन्द्र ! निश्चय मैं जानता हूं, तेरे इस बलके लिये विश्वास धारण किया गया है (लोग तेरे बलपर विश्वास करते हैं) । तू दानशील होकर हमें विपुल धनके लिये प्रेरणा कर । हे बहुतोंसे बुलाये गये इन्द्र ! साधन-रहित स्थानमें हमें मत डाल, किन्तु भूखे-प्यासे लोगोंके लिये भी अन्न और रस देता रह ।

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत् सहजानुषाणि ८
अर्वाङेहि सोमकामं त्वाऽऽहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः + ९

८ (हे) इन्द्र ! नः मा वधीः, परा दाः मा । नः प्रिया भोजनानि मा प्र मोषीः । (हे) मघ-वन् शक्र ! नः आण्डा मा नि भेत् । नः सह-जानुषाणि पात्रा मा भेत् ॥

९ (हे इन्द्र !) त्वा सोम-कामं आहुः, अयं सुतः, अर्वाङ् आ इहि, तस्य मदाय पिब । उरु-व्यचाः जठरे आ वृषस्व । हूयमानः पिता-इव नः शृणुहि ॥

८ हे इन्द्र ! हमें मत मार और हमें अपनेसे दूर भी मत कर । हमारे प्रिय भोजनोंको मत छीन । हे धन-सम्पन्न समर्थ इन्द्र ! हमारे गर्भगत बच्चोंको मत नष्ट कर । हमारे जानुसे चलने वाले बच्चोंके साथ योग्य सन्तानोंको भी मत नष्ट कर ।

९ हे इन्द्र ! लोग तुझे सोमरसकी कामनावाला कहते हैं । यह सोम बना हुआ है, तू उसके पास आ और उसे आनन्दके लिए पी । अपने पेटमें बडा स्थान बनाकर उसमें सोम-रस डाल । बुलाये जानेपर पिताके समान हमारी बात सुन ।

शूर वीर इन्द्र

इस सूक्तमें शूरवीर इन्द्रका वर्णन है । इसका अर्थ सुबोध होनेसे इसके वाक्य लेकर मनन करनेका कोई प्रयोजन नहीं है । तृतीय और चतुर्थ मंत्रमें कुयव नामक शत्रुको परास्त करनेका वर्णन है । उसकी दो स्त्रियां हैं, वे उसको सहायता करती हैं । वृत्रके समानही यह कुयव भी जलप्रवाहोंको अपने अधिकारमें रखता है, इसलिये इन्द्र उसका वध करके जलप्रवाहोंको खुला करता है । सातवें और आठवें मंत्रमें अपनी सुरक्षाके लिये प्रार्थना है । शेष मंत्रभाग सुगम है ।

यहां इन्द्र-प्रकरण समाप्त हुआ ।

+ अथर्व. २०।८।२

[३] विश्वे देव-प्रकरण

(१०) अनेक देवताओंकी प्रार्थना

(ऋ. १।१०६) कुत्स आङ्गिरसः । विश्वे देवाः । जगती; ७ त्रिष्टुप् ।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन १
त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शंभुवः ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन २
अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ३
नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ४
बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत् ते मनुर्हितं तदीमहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ५

अन्वयः- १ (वयं) ऊतये इन्द्रं, मित्रं, वरुणं, अग्निं, मारुतं शर्धः, अदितिं (च) हवामहे । हे सुदानवः वसवः ! विश्वस्मात् अंहसः, दुर्गात् रथं न, नः निः पिपर्तन ॥

२ हे आदित्याः देवाः ! ते (यूयं) सर्वतातये आ गत । वृत्रतूर्येषु शंभुवः भूत ।०॥

३ सुप्रवाचनाः पितरः नः अवन्तु । उत देवपुत्रे ऋता-वृधा देवी (नः अवताम्) ।०॥

४ नराशंसं वाजिनं, वाजयन् इह, क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैः ईमहे ।०॥

५ हे बृहस्पते ! सदं इत् नः सुगं कृधि । यत् (च) ते मनुः-हितं तत् शं योः ईमहे ।०॥

६ (कुत्स)

अर्थ- १ (हम सब) अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, मरुतोंका संघ, तथा अदितिकी प्रार्थना करते हैं। हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! सब संकटोंसे, जिस तरह कठिन मार्गसे रथको संभालकर चलाते हैं, उस तरह हम सबको पार करो।

२ हे आदित्य देवो ! वे (आप सब यहां हमारे) यज्ञके लिये आओ। असुरोंके नाश करनेके कार्योंमें सुख देनेवाले बनो ।०॥

३ उत्तम प्रशंसाके योग्य सब पितर हमारी सुरक्षा करें और देवकन्याएँ सत्यका संवर्धन करनेवाली देवियाँ (हम सब की सुरक्षा करें)।०॥

४ मनुष्यों द्वारा प्रशंसित बलिष्ठ वीरका बल हम यहां बढाते हैं, जिसके पास वीर रहते हैं ऐसे पूषाकी शुभ मनोभावनाओंसे हम प्रशंसा करते हैं।०॥

५ हे बृहस्पते ! सदाही हमारे मार्ग सुगम कर। जो तुम्हारे पास मानवोंका हित करनेवाला सच्चा सुख और दुःख दूर करनेका साधन है, वही हम चाहते हैं।०॥

इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ६
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ७

६ काटे निबाळ्हः कुत्सः ऋषिः ऊतये वृत्रहणं शचीपतिं इन्द्रं अह्वत् । हे सुदानवः वसवः ! विश्वस्माद् अंहसः, दुर्गात् रथं न, नः निः पिपर्तन ॥

७ देवी अदितिः देवैः नः नि पातु । त्राता देवः अप्रयुच्छन् (नः) त्रायताम् । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

६ कुवेमें पडा हुआ कुत्स ऋषि अपनी सुरक्षाके लिये शत्रुनाशक तथा शक्तिशाली इन्द्रकी प्रार्थना करता रहा । हे उत्तम दान देनेवाले वसु देवो ! सब संकटोंसे, जैसे कठिन मार्गसे रथ चलाते हैं, वैसे हम सबको पार करो ॥

७ देवी अदिति देवोंके साथ हमारी सुरक्षा करे । संरक्षक देव दुर्लक्ष्य न करता हुआ हमारी सुरक्षा करे । हमारा यह ध्येय मित्रादि देव सिद्ध करनेमें सहायक हो ॥

(११)

(ऋ. १।१०७) कुत्स आङ्गिरसः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तराऽसत् १
उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः ।
इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् २
तन्न इन्द्रस्तद् वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत् सविता चनो धात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ३

अन्वयः— १ यज्ञः देवानां सुम्नं प्रति एति । हे आदित्यासः ! मृळयन्तः भवत । वः सुमतिः अर्वाची आ ववृत्यात्, या अंहोः चित् वरिवो-वित्तरा असत् ॥

२ अङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः देवाः अवसा नः उप आ गमन्तु । इन्द्रः इन्द्रियैः, मरुतः मरुद्भिः, अदितिः आदित्यैः नः शर्म यंसत् ॥

३ तत् चनः नः इन्द्रः, तत् वरुणः, तत् अग्निः, तत् अर्यमा, तत् सविता धात् । तत् नः मित्रः वरुणः अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

अर्थ— १ यज्ञ देवोंकी शुभबुद्धि प्राप्त करता है । हे आदित्यो ! आप हमें सुख देनेवाले बनो । आपकी शुभ बुद्धि हमारे पास आजावे, जो संकटोंसे बचाती और उत्तम धन (वा यश) देती है ।

२ अङ्गिरसोंके सामोंसे प्रशंसित हुए देव सुरक्षाके साधनोंसे हमारे पास आ जायं । इन्द्र अपनी शक्तियोंके, मरुत् वीरोंके, तथा अदिति आदित्योंके साथ हम सबको सुख देवे ॥

३ यह मधुर अन्न हम सबको इन्द्र, वरुण, अग्नि, अर्यमा, सविता देवे । और इस हमारी इच्छाका अनुमोदन मित्र वरुण आदि देव करें ॥

विश्वे देव क्या है ?

'विश्वे देवाः' यह देवता क्या बताता है ? 'सब देव' ऐसा इसका अर्थ है। 'बहु देवताः, बहु दैवत्यं, नाना देवताः' इत्यादि नाम इसी देवताके हैं। इन सब संकेतोंका भाव यही है कि, इसमें दो तीनसे अधिक देवताओंका उल्लेख रहता है। अर्थात् 'विश्वे देवा' आदि नामवाली कोई देवता नहीं है, न इस गणमें निश्चित देवताएँ रहती हैं। एक सूक्तमें इस गणमें जो देवताएँ होंगी वेही इस गणके दूसरे सूक्तोंमें होंगीं, ऐसा नियम भी नहीं है। तीन या तीनसे अधिक देवताओंका जिस मंत्रमें या सूक्तमें उल्लेख होगा उसका देवता 'विश्वे देवा' देवता माना जाता है।

एक देवतावाले सूक्तके 'अग्नि, इन्द्र' आदि देवता हैं, दो देवतावाले सूक्तके 'इन्द्राग्नी, मित्रावरुणौ, सूर्याचन्द्रमसौ' आदि हैं। जहां तीन या अधिक देवता होंगे, उस सूक्तके देवताका संकेत 'विश्वे देवा' देवता है। अर्थात् यह कोई निश्चित देवता नहीं है, यह एक गण भी नहीं है, प्रत्युत 'अनेक देवताओंका वर्णन' इतनाही इसका अर्थ है।

इस सूक्तके देवता

इस सूक्तमें निम्नलिखित देवता हैं- (मं. १) इन्द्रः, मित्रः, वरुणः, अग्निः, मरुद्गणः, अदितिः, वसवः। (मं. २) आदित्याः, देवाः। (मं. ३) पितरः, देवी (दो देवियाँ)। (मं. ४) नराशंसः (अग्निः), पूषा। (मं. ५) बृहस्पतिः। (मं. ६) इन्द्रः। (मं. ७) अनेक देव और अदितिः, त्राता देवः, मित्र, वरुणः, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी, द्यौः।

इस तरह २४ देवताएँ इस सूक्तमें हैं। इनमें कुछ पुनः पुनः आयी हैं। उनको छोड दिया जाय तो १८ देवताओंका यहां उल्लेख है। अदितिका तीन वार, मित्र, इन्द्र, वरुण, वसवः का दो दो वार उल्लेख है। वसु पृथ्वीस्थानीय, मरुद्गण (रुद्र) अन्तरिक्ष स्थानीय और आदित्य द्युस्थानीय देव यहां है। तृतीय मंत्रमें दो देवियोंका उल्लेख है, वे प्रायः पृथिवी और द्यौः होंगी। सप्तम मंत्रमें 'देवैः अदितिः' है, यहांके देव प्रायः आदित्यही होंगे। इस तरह इस सूक्तका ब्योरा है।

ऋ. १।१०७ के सूक्तमें निम्नलिखित देवता हैं। (मं. १) देवाः, आदित्याः। (मं. २) देवाः, इन्द्रः, मरुतः, अदितिः। (मं. ३) वरुण, अग्निः, अर्यमा, सविता, मित्रः, सिन्धुः, पृथिवी और द्यौः ये १४ देवताएं यहां हैं। यहां हमने पुनरुक्त देवताओंके नाम नहीं लिये हैं।

इस विवरणसे 'विश्वे देवाः' देवताका भाव समझमें आ सकता है। ये देवता परस्पर पृथक् हैं ऐसा मानकरही विश्वे देवा देवता बनता है। यह देवताओंका गण है, एक देवता नहीं है।

प्रार्थनाका उद्देश्य

इन सूक्तोंमें देवताओंकी प्रार्थना करनेका हेतु स्पष्ट हो रहा है। इसकी ओर पाठकोंका चित्त आकर्षित होना चाहिये-

१ (नः) ऊतये (वयं देवान्) हवामहे (मं. १)- हमारी सुरक्षा हो इसलिये हम इन सब देवोंकी प्रार्थना करते है। इन देवताओंकी शक्ति हमारी सुरक्षा करे यह आशय यहां है।

२ सुदानवः वसवः विश्वस्मात् अंहसः नः निः पिपर्तन- उत्तम दान देनेवाले वसुदेव सब पापोंसे हमें बचावें। इसका भाव यह है कि पाप दूर होनेसेही सबकी सुरक्षा होती है। जो अपनी सुरक्षा चाहते हैं उनको यह सावधानीकी सूचना है कि वे पापसे बचते रहें।

३ पितरः नः अवन्तु (मं. ३)— पितर हमारी सुरक्षा करें। एक पितर जन्मदाता हैं। जन्मदाता अपने पुत्रोंकी अच्छी तरह सुरक्षा करें, पुत्रोंकी पालनाके कार्यमें वे उदास न रहें, दूसरे पितर रक्षक या सैनिक हैं, ये सब जनता की सुरक्षा करें।

४ देवी (नः अवतां) (मं. ३)— भूमि और द्यौ हमारी सुरक्षा करें। भूमि अन्नादि द्वारा और द्यौ प्रकाश तथा वृष्टी आदि द्वारा प्राणियोंकी सुरक्षा करते हैं।

५ अदितिः देवी देवैः नः निः पातु (मं. ७)— अदितिदेवी अपनी सब दैवी शक्तियोंसे हमारी निःशेष सुरक्षा करें। अदितिका अर्थ भूमि है, तथा (अदितिर्जातं अदितिर्जनित्वं। ऋ. १।८९।१०) जो बना है और बननेवाला है वह 'सब कुछ' ऐसा भी है।

६ देवाः अवसा नः उप आ गमन्तु (मं. १०७।१) सब देव अपनी सुरक्षाकी शक्तियोंसे हमारे पास आ जायँ और हम सबकी सुरक्षा करें। देवोंमें नाना शक्तियां है जो मानवोंकी सुरक्षा करती हैं।

इन दोनों सूक्तोंमें मानवी सुरक्षाके निर्देश इतनेही हैं। अब यहां इस बातका विचार करना है कि यह सुरक्षा किस रीतिसे हो सकती है। इस बातका सब पाठकोंको पता है कि अग्नि, सूर्य आदि देव विश्वमें हैं और अंशरूपसे गुणरूपसे देहमें भी हैं और गुणी जनोंके रूपमें राष्ट्रमें भी हैं। देखिये-

द्युलोक	विश्वपुरुष	राष्ट्रपुरुष	व्यक्तिपुरुष
	द्यौः		
	सूर्य, सविता	आदित्य-ब्रह्मचारी	नेत्र, दृष्टि
	मित्र, पूषा	तपस्वी, ज्ञानी	ज्ञानशक्ति
	आदित्याः	दूरदर्शी, मार्गदर्शक	
	त्राता देवः	रक्षकगण	
	बृहस्पति	ब्राह्मण, संन्यासी	
अन्तरिक्षलोक	इन्द्र (देवराज)	राजा, राजपुरुष	मन (इन्द्रियज्ञान)
	देवाः	व्यवहारकर्ता	इंद्रियाँ
	वरुण	शासक	
	मरुद्गण	सैनिकगण	प्राण
	अर्यमा	न्यायाधीश	
	पितरः	संरक्षक गण	प्राणादि शक्ति
भूलोक	अग्नि	वक्ता, उपदेशक	वाणी, मुख
	नराशंस	शिक्षक ज्ञानी	
	देवी अदिति	पुरंधी स्त्री	
	सिन्धुः	जीवनरस	रसना
	पृथिवी	आधारस्थान	नासिका

विश्वपुरुषके विश्वदेहमें इन सूक्तोंमें आये देवता यथास्थान रखे हैं और उनके सामने राष्ट्रपुरुष तथा व्यक्तिपुरुषके जो अंशभाक् देवतांश हैं, उनको स्थान दिया है। इससे विश्वपुरुष के देहांशरूप बृहद्देवता किस तरह एक व्यक्तिका और व्यक्ति समूह राष्ट्रका संरक्षण करते हैं, इसका ज्ञान हो सकता है। इस का विचार पाठक भी स्वयं कर सकते हैं, देखिये इसका विचार इस तरह होता है–

सूर्य अपने प्रकाशसे संपूर्ण विश्वको प्रकाशित करता है, अपने प्रकाशसे रोगबीजोंका नाश करके आरोग्य बढाता है, वनस्पतियोंका पोषण करता है। इसका प्रकाशही नेत्रका जीवन है, बिना प्रकाशके नेत्र कार्यही नहीं कर सकता, इतना सूर्य और नेत्रका संबंध है। सूर्यके प्रकाशसे नेत्रका आरोग्य बढता है। इस तरह सूर्यही नेत्रकी सुरक्षा करता है। सूर्यप्रकाशसे ज्ञान मिलता है, और ज्ञानसे ज्ञानी बने मनुष्य सब राष्ट्रकी सुरक्षा कर सकते हैं। इस तरह विचार करके विश्व शरीरके बृहद्देवता संपूर्ण जनताकी सुरक्षा किस तरह कर सकते हैं इसका ज्ञान हो सकता है।

पृथ्वी, सिन्धु (जल), अग्नि, मरुतः (वायु) आदि देव मानवोंकी सुरक्षा करनेमें शतशः रीतियोंसे उपयोगी हैं यह अब कहनेकी आवश्यकताही नहीं है। पाठक विचार करके यह सब जाननेका यत्न करें। तथा इनसे सुरक्षित होनेके उपाय भी सोचकर जाननेका यत्न करें। यही तो वैदिक अनुष्ठान है।

संरक्षण कैसे होगा ?

प्रथम मन्त्रमें **'सुदानवः वसवः'** ये पद महत्त्वके हैं। **'सु-दानवः'**– उत्तम दानी, उत्तम दान देनेवाले, उत्तम सहायता करनेवाले। **'वसवः'** बसानेवाले, जनताको निवास करनेयोग्य सुव्यवस्था करनेवाले। इन दो सज्जनोंका वर्णन आया है। ये दान देकर निर्बलोंकी सहायता करते हैं, और लोगोंको निवास करनेकी सुविधा करके रखते हैं। और एक बात है—

'विश्वस्मात् अंहसः निः पिपर्तन'– सब पापोंसे पार करते हैं जिस तरह 'दुर्गात् रथं न' कठिन स्थानसे रथको संभालकर ले चलते हैं। जहां विकट स्थान हो वहां रथको अत्यंत सभालकर चलाना चाहिये, इसी तरह अज्ञ जनताको पापसे

बचाना चाहिये, वह संभाल संभाल कर उपदेश करते करते, उनको योग्य मार्गपर लाना चाहिये। दान, निवासकी सहायता और पापसे बचानेके ज्ञानका उपदेश ये तीन साधन जनताकी सुरक्षाके लिये यहां कहे हैं।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि– **'सर्वतातये आगत'** सब जनतातक पहुंचनेवाले, सब जनताका सुख बढानेवाले यज्ञ यथा-सांग करनेके लिये श्रेष्ठ लोग आ जायँ, उस यज्ञको यथायोग्य रीतिसे परिपूर्ण करें और **'वृत्रतूर्ये शंभुवः भूत'** शत्रुओंका नाश करनेके लिये कार्यमें परस्पर सुख देनेवाले बनो। जिस समय शत्रुका नाश करनेके लिये युद्ध करना अनिवार्य हो जाता, है, तब आपसमें परस्परकी एकता चाहिये। आपसमें फूट होगी, तो वह शत्रुका बल बढायेगी और अपना नाश करेगी। इसलिये प्रत्येक समय आपसकी एकता चाहिये, पर शत्रुके नाश करनेके समय तो, परस्परका प्रेम अवश्यही सुदृढ होना चाहिये। 'शं-भुवः' परस्परका कल्याण करनेवाले बनो। कितना उत्तम उपदेश है देखिये। यदि किसी जातिकी सुरक्षा होनी है तो वह जाति ऐसा बर्ताव करेगी, तोही वह सुरक्षित रह सकती है। अन्यथा उसका नाश होनेमें संदेहही नहीं है।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि–**'सुप्रवचनाः पितरः अवन्तु'** उत्तम भाषण करनेवाले, जिनके मुखमें बुरा शब्द नहीं रहता, ऐसे रक्षक जनताकी सुरक्षा करें। रक्षक इतने सुशिक्षित हों कि उनके मुखमें एक भी बुरा शब्द न हो। (सु-प्र-वचनाः) उत्तम सुन्दर प्रकर्षको पहुंचानेवाला भाषण करनेवाले रक्षक हों। नगर-रक्षक कैसे शिक्षित चाहिये, इसका उत्तम वर्णन यह पद कर रहा है। जहां ऐसे सुशिक्षित नगर रक्षक होंगे, वहांकी जनता निःसंदेह सुरक्षित होगी। तथा **'ऋता-वृधा देवी'** सत्य और शुभ कर्मका संरक्षण तथा संवर्धन करनेवाली स्त्रियां जहां होंगी, वहांकी जनता सुरक्षित होगी। घरमें ये देवियां रक्षण करेंगी और बाहर वे संरक्षक सुरक्षा करेंगे। इस तरह सब प्रकार जनता सुरक्षित होगी।

चतुर्थ मंत्रमें कहा है कि– **'वाजिनं वाजयन्'**= बलवान् वीरका बल हम बढाते हैं। बलवान्के बलका संवर्धन करना चाहिये। ऐसा कभी नहीं करना चाहिये कि अपने वीरोंका बल घटता जाय, अथवा अपनेही प्रयत्नसे अपनेही वीर निर्बल बनते जायँ। अपने वीरोंकी संघटना और बल दिन प्रतिदिन बढता जाना चाहिये। तथा **'क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैः ईमहे।'** = जिसके आश्रयसे अनेक वीर रहते हैं, उस पोषक महाशयकी हम प्रशंसा करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जिसके पास जितना पोषण करनेका सामर्थ्य हो, उतने वीरोंका पोषण वह करे और इस तरह वीर पुष्ट होकर संघ सामर्थ्य बढता रहना चाहिये।

पंचम मन्त्रमें कहा है कि– **'बृहस्पते! नः सुगं कृधि'** ज्ञानी अपने सदुपदेशद्वारा हम सबका मार्ग सुखसे जानेयोग्य कण्टकरहित करे। हमारा प्रगतिका मार्ग सुखसे जानेयोग्य हो। **' मनुः-हितं शं योः ईमहे '**- मानवोंका हित करनेका जो साधन है वह प्रशंसा योग्य है, जिससे मनुष्योंका निःसंदेह हित होगा वही कार्य करना चाहिये। हितका अर्थ है (शं) सुखकी प्राप्ति और (योः) दुःखोंका निवारण। जिससे यह सिद्ध होगा वही करना चाहिये।

षष्ठ मंत्रका कहना है कि कुवेमें पडा सहायताके लिये पुकारता है। यह सत्य है। जो कूवेमें पडकर मर रहा है वही अपने उद्धारके लिये पुकारेगा। यही बात ऐसी है कि कुएमें पडा हूं और यहां मुझे मृत्यु खा रहा है, यह पहिले ध्यानमें आना चाहिये। नहीं तो कूवेमें पडा पडा उसी मरनेके समय बेहोशीमें पडा रहनेवाला क्यों पुकारेगा? वैसी बेखबरी कुएमें पडनेपर नहीं होनी चाहिये। इसलिये **' कुत्से निबद्धः ऋषिः '**— कूवेमें पडा जो ऋषि अर्थात् ज्ञानी होगा वही ' मैं डूब मर रहा हूं, सहायतार्थ आओ ' ऐसी पुकार करेगा, पर जो उस समय मूर्च्छित होगा वह मरनेके समय भी नहीं जान सकेगा कि मैं मर रहा हूं। अपनी अवनतिका ज्ञान होना भी एक उत्कर्ष प्राप्त करनेकी योग्यताका चिन्ह है। नहीं तो बहुत लोग ऐसे होते हैं कि परवशतामें आनंद मानते हैं और मृत्युको भी जीवन मानते हैं। ऋषिही अपनी ठीक ठीक अवस्थाको जानते हैं, उपाय योग्य रीतिसे करके सबका हित साधन करते हैं। अतः इस मंत्रमें ' ऋषि ' पद बडे महत्वका भाव बता रहा है।

सहायतार्थ बुलाना हो तो **'वृत्र-हणं शचीपतिं'**- घेरनेवाले शत्रुको परास्त करनेवाले और शक्तिमान वीरकोही बुलाना चाहिये। निर्बल और पराभूत होनेवाले भीरुको बुलानेसे कौनसा लाभ होगा?

सप्तम मंत्रमें कहा है कि– **' देवी अदितिः '** दितिका अर्थ परतंत्रता है, अदिति स्वतंत्रताका नाम है। स्वतंत्रता ही बडी भारी देवता है वह **'देवैः पातु'**– देवोंकी सहायता हमें देकर हमारी सुरक्षा करे। नहीं तो स्वतंत्रता– आजादी मिलनेपर

भी मनुष्य अनेक दुष्ट कर्म करता है और पतित होता है। दुःखकी अवस्थामें मानव सीधा आचरण करता है, परंतु स्वतंत्र होकर और अधिकारपर रहनेपरही वह मनमाने व्यवहार करता है। अतः उसी समय संभालकर रहना उसे योग्य है।

'त्राता देवः अप्रयुच्छन् नः त्रायताम्'- तारक वीर सावध रहकर हम सबकी सुरक्षा करे। सुरक्षा करनेके कार्यपर जो नियुक्त हो वह सदा सावध और सदा दक्ष रहे। दक्ष न रहनेवाला कदापि रक्षाका कार्य नहीं कर सकता।

ऋ. १।१०७ सूक्तके मंत्रोंका अब विचार करते हैं। इस सूक्तके प्रथम मंत्रमें कहा है कि 'देवानां सुम्नं प्रति एति' देवोंकी शुभ बुद्धि प्राप्त करो, आचरण ऐसा करो कि जिससे श्रेष्ठोंकी सहानुभूति मिले। द्वेष बढानेसे यह सिद्धि नहीं होगी, प्रत्युत यज्ञभावसेही यह शुभ बुद्धि प्राप्त हो सकती है।

'मृळयन्तः भवत'- सुख देनेवाले बनो, अर्थात् दुःख देनेवाले न बनो। दुःख देनेसे पडता है और सुख भी देनेसे बढताही है, इसीलिये सुख देना योग्य है।

'सुमतिः अंहोः वरिवो विसरा असत्'- सुमति वह है कि जो पापों और कष्टोंसे बचाती और उत्तम धन वा यश देती है। यही सब सुखोंका हेतु है।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि 'देवा अवसा नः उपागमन्तु'- देव हमारे पास अपनी शुभ संरक्षक शक्तिसे आजाय, और हमारी सुरक्षा करें। जो सबकी सुरक्षा करते हैं वेही देव कहलाते हैं। तृतीय मंत्रमें अनेक देवताओंकी सहायता प्राप्त करनेका उपदेश है। देवताओंकी सहायता कैसी लेनी होती है इस विषयमें इसी देवताके विवरणमें प्रारंभमें ही लिखा है।

यहां विश्वे देव प्रकरण समाप्त है।

---

[४] इन्द्राग्नी-प्रकरण

(१२) शत्रुनाशक और अग्रणी वीर

(ऋ. १।१०८) कुत्स आङ्गिरसः। इन्द्राग्नी। त्रिष्टुप्।

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १ ॥

यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम्।
तावाँ अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ॥ २ ॥

अन्वयः- १ हे इन्द्राग्नी! यः चित्रतमः वां रथः विश्वानि भुवनानि अभि चष्टे। तेन सरथं तस्थिवांसा आ यातं। अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

२ इदं विश्वं भुवनं यावत् उरुव्यचा वरिमता गभीरं अस्ति, हे इन्द्राग्नी! युवाभ्यां पातवे सोमः तावन्, मनसे अरं अस्तु ॥

अर्थ- १ हे इन्द्र और अग्नि! आपका विलक्षण वह रथ (है जो) सब भुवनोंको देखता है। उस रथमें इकट्ठे बैठकर (तुम दोनों यहां) आओ। और सोमका निचोडा हुआ रस पीओ ॥

२ यह सब विश्व जितना विस्तृत और उत्तम गंभीर है, हे इन्द्र और अग्नि! तुम्हारे पीनेके लिये (तैयार किया हुआ यह) सोमरस वैसा (ही है. यह तुम्हारी) इच्छाके लिये यह पर्याप्त हो ॥

चक्राथे हि सध्र्य१ङ्नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ॥ ३ ॥
समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥ ४ ॥
यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ५ ॥
यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो३ऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः ।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ६ ॥
यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद् ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ७ ॥

---

३ हे इन्द्राग्नी ! नाम सध्र्यक् भद्रं चक्राथे । उत हे वृत्रहणौ ! सध्रीचीना स्थः । हि हे वृषणौ ! तौ सध्र्यञ्चा निषद्य वृष्णः सोमस्य आ वृषेथाम् ॥

४ अग्निषु समिद्धेषु आनजाना यतस्रुचा बर्हिः उ तिस्तिराणा, हे इन्द्राग्नी ! तीव्रैः परिषिक्तेभिः सोमैः अर्वाक् सौमनसाय आयातम् ॥

५ हे इन्द्राग्नी ! यानि वीर्याणि चक्रथुः, उत यानि रूपाणि वृष्ण्यानि (चक्रथुः); वां प्रत्नानि शिवानि या सख्या, तेभिः सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

६ प्रथमं वां वृणानः यत् अब्रवं, 'असुरैः अयं नः सोमः विहव्यः' सत्यां तां श्रद्धां अभि आ यातं हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

७ हे यजत्रा इन्द्राग्नी ! स्वे दुरोणे यत्, यत् वा ब्रह्मणि, (यत् वा) राजनि मदथः; अतः परि हे वृषणौ ! आयातं हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

३ हे इन्द्र और अग्नि ! (तुम दोनोंका) नाम साथ साथही (रहनेसे सबका) कल्याण करनेवाला बना है । और हे वृत्रका वध करनेवालों ! (तुम दोनों) साथ रहते हो । हे बलवान् वीरो ! वे तुम दोनों साथ बैठकर बलवर्धक सोमरसका (पान करके अपना) बल बढाओ ।

४ अग्नि प्रदीप्त होनेपर जिनके लिये हवन हो रहे हैं, जिनके लिये चमस भरकर रखे हैं, आसन जिनके लिये फैलाये जा रहे हैं, ऐसे हे इन्द्र और अग्नि ! तीव्र सोमरस पानी मिलाकर तैयार होते ही आप हमारे पास सोमपानके लिये आईये ॥

५ हे इन्द्र और अग्नि ! जो वीरताके कर्म तुमने किये थे, और जो रूप बलोंके साथ (तुमने प्रकट किये), तथा तुम्हारे जो पुरातन कालसे (चले आये) कल्याण करनेवाले मित्रताके कर्म हैं, उनका स्मरण करते हुए, इस सोमरसका पान करो ॥

६ सबसे प्रथम तुम दोनोंकी प्राप्तिकी इच्छासे मैंने कहा था कि, 'ऋत्विजोंने यह हमारा सोमरस आपको देनेके लियेही (तैयार किया है ।)' अतः इस मेरी सच्ची श्रद्धाके अनुसार (तुम दोनों मेरे पास आओ, और निचोडे सोमरसका पान करो ॥

७ हे यज्ञके योग्य इन्द्र और अग्नि ! जो तुम अपने घरमें, ज्ञानी भक्तके (प्रवचनमें), अथवा राजाके (घरमें) आनन्द मनाते होंगे, तो भी वहांसे हे बलवान् देवो ! इधर आजावो, और इस निचोडे सोमरसका पान करो ॥

यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ८

यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ९

यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य १०

यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत् पृथिव्यां यत् पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ११

यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य १२

एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः १३

---

८ हे इन्द्राग्नी ! यत् यदुषु, तुर्वशेषु, यत् द्रुह्युषु, अनुषु, पूरुषु स्थः, अत हे वृषणौ ! परि आ यातं हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

९ हे इन्द्राग्नी ! यत् अवमस्यां मध्यमस्यां उत परमस्यां पृथिव्यां स्थः, हे वृषणौ ! अत परि आ यात हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

१० हे इन्द्राग्नी ! यत् परमस्यां मध्यमस्यां अवमस्यां पृथिव्यां स्थः, हे वृषणौ ! अतः परि आ यातं हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

११ हे इन्द्राग्नी ! यत् दिवि, यत् पृथिव्यां, यत् पर्वतेषु ओषधिषु अप्सु स्थः, हे वृषणौ ! अतः परि आ यातं हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

१२ हे इन्द्राग्नी ! उदिता सूर्यस्य दिवः मध्ये यत् स्वधया मादयेथे, अत. हे वृषणौ ! परि आ यातं हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

१३ हे इन्द्राग्नी ! सुतस्य एव पपिवांसा अस्मभ्यं विश्वा धनानि सं जयत । नः तत् मित्रः वरुण. अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

८ हे इन्द्र और अग्नि ! तुम दोनों यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु अथवा पुरु (के यज्ञोंमें) होंगे, तो वहांसे हे बलवान् देवो ! इधर आओ, और सोमरस पीओ ॥

९ हे इन्द्र और अग्नि ! तुम नीचले, बीचके और ऊपरले भूविभागमें होंगे, तो हे बलवान् देवो ! वहांसे इधर आओ, और यह सोमरस पीओ ॥

१० हे इन्द्र और अग्नि ! तुम ऊपरके बीचके और नीचेके भूविभागमें होंगे, तो वहांसे इधर आओ और इस सोमरसका पान करो ॥

११ हे इन्द्र और अग्नि ! जो तुम दोनों द्युलोकमें, पृथ्वीपर, पर्वतोंमें, ओषधियोंमें अथवा जलोंमें होंगे तो हे बलवान् देवो ! वहांसे यहां आओ और इस सोमरसका पान करो ॥

१२ हे इन्द्र और अग्नि ! सूर्य उदय होनेपर द्युलोकके मध्यमें (बैठकर) अन्नसेवनका आनंद लेते होंगे, तो भी हे बलवान् देवो ! यहां आओ, और सोमके रसका पान करो ॥

१३ हे इन्द्र और अग्नि ! सोमरसका पान करके हमें सब प्रकारके धन जीत कर देओ । हमारी इस इच्छाको मित्र आदि देव सहायक हों ॥

(१३)

(ऋ. १।१०९) कुत्स आंगिरसः । इन्द्राग्नी । त्रिष्टुप्।

वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।
नान्या युवत् प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥ १
अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥ २
मा च्छेद्म रश्मीँरिति नाधमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ॥ ३
युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥ ४

अन्वयः— १ हे इन्द्राग्नी ! वस्यः इच्छन् ज्ञासः उत वा सजातान्, मनसा वि हि अख्यम् । मह्यं युवत् अन्या प्रमतिः न अस्ति । सः वां वाजयन्तीं धियं अतक्षम् ॥

२ हे इन्द्राग्नी ! विजामातुः उत वा स्यालात् घ वां भूरिदावत्तरा अश्रवं हि । अथ युवाभ्यां सोमस्य प्रयती नव्यं स्तोमं जनयामि ॥

३ रश्मीन् मा छेद्म इति नाधमानाः, पितॄणां शक्तीः अनुयच्छमानाः वृषणः इन्द्राग्निभ्यां कं मदन्ति । हि अद्री धिषणायाः उपस्थे ॥

४ हे इन्द्राग्नी ! युवाभ्यां मदाय देवी उशती धिषणा सोमं सुनोति । हे अश्विना ! भद्रहस्ता सुपाणी तौ आ धावतं, अप्सु मधुना पृङ्क्तम् ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र और अग्नि ! अभीष्ट-प्राप्तिकी इच्छा करता हुआ मैं, कोई ज्ञानी और जातिबांधव (सहायार्थ मिलेंगे ऐसा) मनसे (विचार करके) देख रहा हूं। मेरे विषयमें तुम्हारी कोई विभिन्न बुद्धि नहीं है। वह (मैं) तुम्हारे सामर्थ्यका वर्णन करनेवाला स्तोत्र बनाता हूं ॥

२ हे इन्द्र और अग्नि ! आप बुरे दामाद अथवा सालेसे भी अधिक दान करनेवाले हैं, ऐसा मैं सुनता हूं। तुम दोनोंके लिये सोमरसका अर्पण करके, नवीन स्तोत्र निर्माण करता हूं ॥

३ 'हमारे (संतानरूपी) किरणोंका विच्छेद न हो' ऐसी प्रार्थना करनेवाले, तथा 'पितरोंकी शक्ति (वंशजोंमें) अनुकूलतासे रहे, ऐसी इच्छा करनेवाले बलवान् (वीर) इन्द्र और अग्निकी (कृपासे) सुख आनन्दसे प्राप्त करते हैं' (यह हमें पता है। इसलिये इन देवोंको सोमरस देनेके लिये ये) दो पत्थर सोमपात्रोंके समीप (ही रखे हैं। जिनसे रस निकालकर दिया जायगा।)

४ हे इन्द्र और अग्नि ! तुम्हारे संतोषके लिये ये दिव्य सोमपात्र सोमरस निकालकर (भरकर रखे हैं)। हे उत्तम हाथवाले कल्याण करनेवाले और घोडोंसे आनेवाले देवो ! दौडते हुए इधर आओ और जलोंमें इस मधुर रसको मिला दो ॥

युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन् प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥ ५ ॥
प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥ ६ ॥
आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥ ७ ॥
पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्ताऽस्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥

५ हे इन्द्राग्नी ! वसुनः विभागे वृत्रहत्ये तवस्तमा युवां शुश्रव । हे चर्षणी ! तौ अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि आसद्य, सुतस्य प्र मादयेथाम् ॥

६ हे इन्द्राग्नी ! पृतनाहवेषु चर्षणिभ्यः महित्वा प्र रिरिचाथे, पृथिव्याः प्र, दिवः च, सिन्धुभ्यः प्र, गिरिभ्यः प्र, अन्या विश्वा भुवना (अति रिरिचाथे) ॥

७ हे वज्रबाहू इन्द्राग्नी ! आ भरतं, शिक्षतं, अस्मान् शचीभिः अवतम् । येभिः नः पितरः सपित्वं आसन्, ते सूर्यस्य रश्मयः इमे नु ॥

८ हे वज्रहस्ता पुरंदरा इन्द्राग्नी ! शिक्षतं, भरेषु अस्मान् अवतम् । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

५ हे इन्द्र और अग्नि ! धनका बंटवारा करनेके समय, तथा वृत्रका वध करनेके कार्यके समय आप दोनों सबसे अधिक वेग (दर्शाते हैं) ऐसा हम सुनते हैं। हे फूर्तीवाले देवो ! वे आप दोनों इस यज्ञमें आसनपर बैठकर, सोमरससे आनन्द प्राप्त करो ॥

६ हे इन्द्र और अग्नि ! युद्धार्थ आह्वान करनेवाले वीरोंकी अपेक्षा महत्त्वसे तुम अधिक श्रेष्ठ हो। तथा पृथिवी, द्युलोक, नदियाँ, पर्वत तथा जो अन्य भुवन होंगे, उनसे भी (तुम प्रभावमें अधिक हैं।)

७ वज्रके समान जिनके बाहु बलवान् हैं, ऐसे हे इन्द्र और अग्नि ! धन (हमारे घरोंमें) भर दो, (हमें) शिक्षा दो और हमें सामर्थ्यसे सुरक्षित करो। जिनके साथ हमारे पितर मिले रहे, वेही सूर्यके किरण ये हैं ॥

८ हे हाथमें वज्र धारण करनेवाले, शत्रुके नगर तोडनेवाले इन्द्र और अग्नि ! हमें शिक्षित करो, युद्धोंमें हमें सुरक्षित करो। इस हमारी इच्छाको मित्र आदि देव सहायता करें ॥

इन्द्र और अग्निके वर्णनमें वीरोंका स्वरूप

इन दो सूक्तोंमें ' इन्द्र और अग्नि ' ये दो देवता हैं। प्रायः सभी मंत्रोंमें इनके नाम भी आगये हैं। ' इन्द्र ' का अर्थ (इन् शत्रून् द्राति विदारयति) शत्रुओंका विदारण करनेवाला है और ' अग्नि ' का अर्थ (अग्रं नयति) अग्रतक पहुंचाता है। अर्थात् ' इन्द्र और अग्नि ' का अर्थ ' शत्रुका नाश करनेवाला वीर और प्रारंभ किये कर्मको अन्ततक पहुंचानेवाला वीर ' ऐसा है। ये दो वीर पुरुष हैं और ये दोनों मिलकर कार्य करने लगे तोही मानवोंका कल्याण होता है।

इन दोनों सूक्तोंके मन्त्र २१ हैं, और दो चार मंत्रोंको छोडकर शेष सभी मंत्रोंके अन्तमें ' हमने तैयार किया सोमरस पिओ और आनंदित हो जाओ । ' ऐसा कहा है। वीरोंको आदरसे बुलाना और उनका सत्कार करके उनको खानपान देकर सन्तुष्ट करना वैदिक समयकी एक उत्तम प्रथा थी। जनताकी सुरक्षा करनेका यत्न करनेवाले वीर इस तरह पूजे

जाते थे । अब देखिये कि ये क्या करते थे—

१ वां रथः चित्रतमः, विश्वानि भुवनानि अभि चष्टे, तस्थिवांसा तेन सरथं आ यातम् (मं. १)– तुम्हारा रथ अत्यंत सुंदर है, उसपर बैठनेवाला सब भुवनोंका निरीक्षण करता है, उसमें बैठते हुए तुम दोनों इधर आओ । अर्थात् ये वीर एकही रथमें बैठते और सब भुवनोंका निरीक्षण करते थे, तथा इनका रथ सुन्दर था । इसी तरह वीर अपने रथपर बैठें और सब देशों और प्रान्तोंका निरीक्षण करें ।

२ इदं विश्वं भुवनं उरुव्यचा वरिमता गभीरं अस्ति (२)– यह सब भुवन विस्तृत और गहन तथा गभीर है । यही इसकी गभीरता देखनी चाहिये । वीर इसीका निरीक्षण करें ।

३ नाम भद्रं सध्रयङ् चक्राथे (३)— वीरोंको चाहिये कि वे अपना नाम जनताके कल्याण करनेके कार्यमें यशस्वी करके प्रसिद्ध करें ।

४ वृत्रहणा स्थः— घेरनेवाले शत्रुका ये वीर वध करें ।

५ समिद्धेषु अग्निषु आनजाना (४)– प्रदीप्त अग्निमें हवन करें । यह आत्मसमर्पणका पाठ है । जिस तरह प्रदीप्त अग्निमें हवि अर्पा जाता है, उस तरह वीर जनताके कल्याण करनेके लिये अपना समर्पण करें ।

६ यानि वीर्याणि चक्रथुः (५)– ये वीर पराक्रम करते हैं, पराक्रम करनाही वीरोंका स्वभाव है ।

७ वृष्ण्यानि रूपाणि चक्रथुः– बलवान् रूप बनाते हैं, अर्थात् अपने शरीर सुदृढ और बलिष्ठ बनाते हैं ।

८ सख्या प्रत्नानि शिवानि– इन वीरोंकी मित्रता स्थायी और कल्याण करनेवाली होती है । एकवार इनकी मित्रता हुई तो उससे स्थायी कल्याण होता है ।

९ स्वे दुरोणे, ब्रह्मणि राजनि वा मदथः (७)— ये वीर अपने घरमें (अपने देशमें), ज्ञानके विषयमें अथवा राज्यप्रबंधके कार्यमें आनंदित होते हैं । वीरोंकी आनंदप्राप्तिके ये केन्द्र हैं ।

१० ये वीर यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक जनोंमें रहकर उनकी सहायता करते हैं । ये नाम देशविशेषके जनोंके वाचक हैं । कई इनके गुणबोधक अर्थ करते हैं और ये विशेषण मानते हैं । (यदु) अहिंसक, (तुर्वश) हिंसक, (द्रुह्यु) द्रोहकारी, (अनु) प्राणके बलसे युक्त, (पुरु) नगरोंमें रहनेवाले नागरिक, इन पांच प्रकारके लोगोंमें ये वीर रहते हैं और उनकी उन्नतिके लिये यत्न करते हैं । अथवा ये पंचजनोंके वाचक पद कई मानते हैं । ये वीर इन पांच वर्णोंके मानवोंका हित करनेका यत्न करते हैं, यह भाव यहां है ।

११ पृथ्वीके निम्न, मध्य, ऊंचे प्रदेशमें ये वीर जाते हैं और वहांके जनोंका उद्धार करते हैं। सभी प्रदेशमें रहनेवाले मानवोंकी सेवा करते हैं, यह भाव मंत्र ९ तथा १० वे मंत्रका है । दोनों मंत्रोंका भाव एकही है । स्थानोंके नामोंमें क्रमभेद है ।

१२ आकाश, पर्वत, पृथिवी, औषधि, जलस्थान आदिमें ये वीर जाते हैं । आकाशमें संचार विमानोंसे होता है । इन सब स्थानोंमें ये वीर जाते हैं और सब स्थानोंकी सुरक्षा करते हैं । (११)

१३ उदिता सूर्यस्य दिवः मध्ये स्वधया मादयन्ते (मं. १२)– सूर्यका प्रकाश होनेपर सूर्यप्रकाशमें रहते, खानपान करते और आनंद मानते हैं । वीरोंका यही कार्य है । वीरोंका यही स्वभाव है। खुले स्थानोंमें ये खेलते, कूदते, खाते, पीते और आनन्दसे विचरते हैं ।

१४ विश्वा धनानि सं जयतम् (१३)— सब धन मिलकर जीतकर लाओ । वीर ऐसाही मिलकर विजय पाते और धन लाते हैं । ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके १०८ वे सूक्तमें वीरोंके वर्णनमें ये कार्य वीरोंके बताये हैं । सभी स्वयंसेवक वीर ये कार्य करके जनताकी सेवा कर सकते और अपने जीवन यशस्वी कर सकते हैं । अब द्वितीय सूक्तका (ऋ. १।१०९) भाव देखिये—

(ऋ. १।१०९)

१५ वस्यः इच्छन् ज्ञासः उत सजातान् मनसा वि अख्यम् (१)— धनकी इच्छा करता हुआ मैं ज्ञानी और सजातियोंकी सहायताकी अपेक्षा करता हूं । यह सब वीरोंकी सुरक्षामें रहते हुएही हो सकता है । यदि धन प्राप्त करनेकी इच्छा है, तो प्रथम ज्ञानियोंकी संगतिसे ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और सजातियोंकी सहानुभूति कमानी चाहिये ।

१६ वाजयन्तीं धियं अतक्षम्– बल बढानेवाली बुद्धि निर्माण करनी चाहिये । बुद्धि ऐसी चाहिये कि जिससे व्यक्तिका

*

और संपका बल बढता रहे।

१७ अन्या प्रमतिः न— दूसरी बुद्धि नहीं चाहिये। बल बढानेवाली बुद्धि चाहिये, पर ऐसी बुद्धि नहीं चाहिये कि जिससे अपना नाश होता रहे।

१८ विजामातुः स्यालात् वा भूरिदावत्तरा (२)- जामाता और साला जितना दान देता है उससे भी अधिक दातृत्व ये वीर करते हैं, वैसा किया जावे। जामाता पुत्रीका पालन करता है और साला तो बहिनके पतिको दान देता है। पर वीर जो देता है वह इनसे कई गुना अधिक है। यहां 'वि-जामाता' का अर्थ निकृष्ट दामाद ऐसा कई करते हैं। ऐसा निकृष्ट पुरुष पुत्रीको प्राप्त करनेके लिये पुत्रीके पिताको पर्याप्त धन देकर पुत्री खरीदता है। पर इसमें स्वार्थ है, उदारता नहीं है। पत्नीके भाईका नाम साला है। वह बहिनके पतिको दान देता है, पर वीरोंका दान इनसे कई गुना अधिक और निरपेक्ष रहता है, अतः श्रेष्ठ है।

१९ रश्मीन् मा छेद्म (३)— किरणोंका विच्छेद न करो। प्रकाशको मत हटाओ। संततिका विच्छेद न करो। परंपराको छिन्नभिन्न न करो।

२० पितॄणां शक्तीः अनुयच्छमानाः- पितरोंकी जो शक्तियां हैं, वे शक्तियाँ संतानोंमें उतरें, वे बीचमें विच्छिन्न न हों। पितरोंसे संतानोंमें अधिक शक्तियां हों, पर न्यून न हों। वंशमें उत्तरोत्तर शक्तियोंकी वृद्धि होती जाय, कभी शक्ति कम न हो।

२१ भद्रहस्ता सुपाणी अश्विना (४)- कल्याणके कर्म करनेवाले उत्तम हाथ जिनके हैं, ऐसे वीर घुडसवार हों। वीरोंसे ऐसे शुभ कर्म हों कि जिनसे जनताका कल्याणही हो जाय।

२२ वसुनो विभागे, वृत्रहत्ये तवस्तमा (५)— धनका दान करनेके समय, तथा शत्रुपर आक्रमण करनेके समय अधिक वेग बढे। वीर दान भी अधिक दें और शत्रुका नाश भी वेगसे करें।

२३ पृतनाह्येषु चर्षणिभ्यः प्र रिरिचाथे (६)- युद्धोंके समय जनताका हित करनेके लिये अधिक उत्साह वीर बताते हैं। युद्धके अवसरपर वीर पीछे नहीं हटते।

२४ महित्वा दिवः सिन्धुभ्यः गिरिभ्यः अन्या भुवना प्र रिरिचाथे— वीरोंका महत्त्व द्युलोक, नदियां, पर्वत, तथा अन्य भुवनोंसे भी अधिक है। क्योंकि इनसे होनेवाली सहायताकी अपेक्षा वीरोंकी सहायता अधिक महत्त्वकी है।

२५ भरतं, शिक्षतं, शचीभिः अवतं (७)— धन भरपूर दो, ज्ञान दो और शक्तियोंको बढाकर सबकी सुरक्षा करो। ज्ञान, धन और शक्ति इनसे ही सुरक्षा होती है।

२६ सूर्यस्य रश्मयः, येभिः पितरः सपित्वं आसन्- सूर्यके ये किरण हैं जिनसे रक्षकोंका समत्व है। जैसे सूर्यकिरण अपने प्रकाशद्वारा रोग दूर कर सबकी सुरक्षा करते हैं, वैसेही ये वीर सबके शत्रुओंको दूर करके सबको सुरक्षित करते हैं।

२७ (पुरंदरा) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले वीर, (वज्रहस्ता) वज्र शस्त्र हाथमें धरनेवाले (वज्रबाहु) बलवान् बाहुवाले वीर (शिक्षतं) जनताको युद्धविद्या सिखा देवें और (भरेषु अवतं) युद्धोंके समय सबकी सुरक्षा करें।

इन दो सूक्तोंमें वीरोंके कर्तव्योंके ये निर्देश हैं। इन निर्देशोंके मननसे वीरोंके कर्तव्योंका बोध हो सकता है। इनके मननसे पाठक स्वयं वीर बननेका यत्न करें और समाजको सुरक्षित रखनेका और दुष्टोंको दूर करनेका यत्न करें। यही वैदिक उपदेश जीवनमें ढालनेकी रीति है।

[५] ऋभु-प्रकरण

(१४) ऋभु-कारीगर

(ऋ १।११०) कुत्स आङ्गिरसः । ऋभवः । जगती; ५, ९ त्रिष्टुप् ।

ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते ।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः १

आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनाऽगच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् २

तत् सविता वोऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ३

विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ४

अन्वयः— १ हे ऋभवः ! मे अपः ततं, तत् उ पुनः तायते । स्वादिष्ठा धीतिः उचथाय शस्यते । अयं समुद्रः इह विश्वदेव्यः । स्वाहाकृतस्य सं उ तृप्णुत ॥

२ अपाकाः प्राञ्चः मम आपयः के चित् आभोगयं इच्छन्तः यत् प्र ऐतन । हे सौधन्वनासः ! चरितस्य भूमना दाशुषः सवितुः गृहं अगच्छत ॥

३ तत् सविता वः अमृतत्वं आसुवत्, यत् अगोह्यं श्रवयन्तः ऐतन । असुरस्य भक्षणं तं चमसं एकं चित् सन्तं चतुर्वयं अकृणुत ॥

४ वाघतः शमी तरणित्वेन विष्ट्वी मर्तासः सन्तः अमृतत्वं आनशुः । सौधन्वनाः सूरचक्षसः ऋभवः संवत्सरे धीतिभिः सं अपृच्यन्त ॥

अर्थ— १ हे ऋभुदेवो ! मेरा कर्तव्य कर्म समाप्त हुआ है, वही (मैं) फिरसे करूंगा । यह मीठी स्तुति (देवोंका) वर्णन करनेके लिये कही जाती है । यह (सोमरसका) समुद्र यहां सब देवोंके लिये (रखा है) । स्वाहा कहनेपर उसके (सेवनसे) तृप्त हो जाओ ॥

२ अत्यंत प्राचीन मेरे आप्त (जैसे आप) जब (सोमरसका) भोग करनेकी इच्छासे आगे बढने लगे, तब हे सुधन्वाके पुत्रो ! अपने सुचरित्रके महत्त्वसे उदार दानवीर सविताके घरपर आप पहुंच गये ॥

३ उस सविताने (उसी समय) आपको अमरत्व दिया, जब गुप्त न रहनेवाले (सविताका) यशगान करते हुए आप वहां गये । जीवनशक्तिका प्रदान करनेवाले उस देवका भक्षण करनेका एकही चमस था, उसके आपने चार बना दिये ॥

४ उपासनाका कर्म शीघ्र कुशलतासे करनेवाले ये मर्त्य होते हुए भी अमरत्वको प्राप्त हुए । ये सुधन्वाके पुत्र सूर्यके समान तेजस्वी ऋभु एकही वर्षके अन्दर स्तुतिस्तोत्रोंको भी प्राप्त हुए ॥

क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ५

आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचेव घृतं जुहवाम विद्मना ।
तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन् दिवो रजः ६

ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाऽहनि प्रियेऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ७

निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ८

वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ९

---

५ उपमं नाधमानाः, अमर्त्येषु श्रवः इच्छमानाः उपस्तुताः ऋभवः जेहमानं एकं पात्रं क्षेत्रमिव तेजनेन वि ममुः ॥

६ अन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचा इव घृतं मनीषां विद्मना आ जुहवाम । ये ऋभवः पितुः अस्य तरणित्वा सश्चिरे । दिवो रजः वाजं अरुहन् ॥

७ शवसा नवीयान् ऋभुः । नः इन्द्रः वाजेभिः वसुभिः ऋभुः वसुः ददिः । हे देवाः ! युष्माकं अवसा प्रिये अहनि असुन्वतां पृत्सुतीः अभि तिष्ठेम ॥

८ हे ऋभवः ! चर्मणः गां निः अपिंशत, मातरं पुनः वत्सेन सं असृजत । हे सौधन्वनासः नरः ! स्वपस्यया जिव्री पितरा युवाना अकृणोतन ॥

९ हे इन्द्र ऋभुमान् ! वाजसातौ वाजेभिः अविड्ढि । चित्रं राधः आ दर्षि । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

५ उपमा देनेयोग्य यशकी इच्छा करनेवाले, देवोंमें भी कीर्तिकी इच्छा करनेवाले, प्रशंसाको प्राप्त हुए ऋभु बारंबार बर्ते जानेवाले एक पात्रको, क्षेत्रके समान, तीक्ष्ण धारवाले शस्त्रसे नापा (और बना दिया) ॥

६ अन्तरिक्षमें रहनेवाले इन मानवरूपधारी (ऋभुओं) के लिये चमससे घृतकी आहुति, मनःपूर्वक की स्तुतिके साथ, हम अर्पण करेंगे । ये ऋभु इस विश्वके पिताके साथ सत्वर कार्य करनेके कारण, रहने लगे, द्युलोक और अन्तरिक्ष लोकपर बलके साथ आरोहण करने लगे ॥

७ बलसे युक्त होनेके कारण नवीन (जैसा तरुण) ऋभु हमारे लिये इन्द्रही है । बलों और धनोंके साथ रहनेवाले ये ऋभु हमें धनोंके दातेही हैं । हे देवो ! तुम्हारी सुरक्षासे (सुरक्षित हुए हम) किसी प्रिय दिनमें अयज्ञशील शत्रुओंकी सेनापर विजय प्राप्त करेंगे ।

८ हे ऋभुदेवो ! चर्मवाली (अति कृश) गौको (तुमने) सुंदररूपवाली बना दी, तब उस गोमाताके साथ बछडेका संबंध भी तुमने करा दिया । हे सुधन्वाके पुत्रो ! हे नेता वीरो ! अपने प्रयत्नसे अति वृद्ध मातापिताओंको तरुण बना दिया ॥

९ हे ऋभुओंके साथ इन्द्र ! बलसे पराक्रम करनेके युद्धमें अपने सामर्थ्योंके साथ घुस जाओ । विलक्षण धन हमें देवो । यह हमारा प्रिय मित्र आदि देवोंसे अनुमोदित होवे ॥

(१५)

(ऋ० १।१११) कुत्स आङ्गिरसः। ऋभवः। जगती, ५ त्रिष्टुप्।

तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू।
तक्षन् पितृभ्यामृभवो युवद् वयस्तक्षन् वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥ १

आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम्।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥ २

आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥ ३

ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय ऋभून् वाजान् मरुतः सोमपीतये।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥ ४

ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५

अन्वयः- १ विद्मनापसः रथं सुवृतं तक्षन्। इन्द्रवाहाः हरी वृषण्वसू तक्षन्। पितृभ्यां युवत् वयः ऋभवः तक्षन्। वत्साय मातरं सचाभुवं तक्षन् ॥

२ नः यज्ञाय ऋभुमत् वयः आ तक्षत। क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीं इषं (आ तक्षत)। सर्ववीरया विशा यथा क्षयाम तत् इन्द्रियं नः शर्धाय सु धासथ ॥

३ हे नरः ऋभवः! अस्मभ्यं सातिं आ तक्षत। रथाय सातिं, अर्वते सातिं (आ तक्षत)। विश्वहा नः जैत्रीं सातिं सं महेत। पृतनासु जामिं अजामिं सक्षणिम् ॥

४ ऋभुक्षणं इन्द्रं ऊतये आ हुवे। ऋभून् वाजान् मरुतः उभा मित्रावरुणा अश्विना नूनं सोमपीतये (आ हुवे)। नः सातये धिये जिषे हिन्वन्तु ॥

५ ऋभुः सातिं भराय सं शिशातु। समर्यजित् वाजः अस्मान् अविष्टु। नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

अर्थ- १ ज्ञानसे कुशल बने (ऋभुदेवोंने) सुंदर रथ निर्माण किया। इन्द्रके रथको जोतनेयोग्य घोडे भी बनाये। मातापिताओंके लिये तारुण्यकी आयु दी। और बछडेके लिये माताको उसके साथ रहनेयोग्य बनाया ॥

२ हमें यज्ञ करनेके लिये ऋभुओंके समान तेजस्वी (नित्य तारुण्यकी) आयु देदो। सत्कर्म करनेके लिये और बल बढानेके लिये प्रजा बढानेवाला अन्नही हमें देदो। सब वीरोंके साथ और प्रजाके साथ जिस तरह हम निवास कर सकेंगे, वैसा इन्द्रियसंबंधी बल हमारी संघटनाके लिये हममें उत्पन्न करो ॥

३ हे नेता ऋभुवीरो! हमें योग्य (सेवनकेयोग्य) धन दो। रथके लिये शोभा दो, घोडेके लिये बल दो। सदा हमें विजय देनेवाला धन दो। युद्धोंमें हमारे संबंधी हों अथवा अपरिचित (सामने हों, हम उनका) पराभव कर छोडेंगे ॥

४ ऋभुओंके साथ रहनेवाले इन्द्रको (हम अपनी) सुरक्षाके लिये बुलाते हैं। ऋभु, वाज, मरुत, दोनों मित्र और वरुण, दोनों अश्विदेव इन सबको सोमपानके लिये हम बुलाते हैं। हमें वे धनलाभ, बुद्धि और विजय प्रदान करें ॥

५ ऋभु हमें धनदान भरपूर करा देवें। समरमें विजयी वाज हमें उत्साह देवे। यह हमारी आकांक्षा मित्र आदि देव परिपूर्ण करें ॥

कारीगरोंका महत्त्व

इन दो सूक्तोंमें कारीगरोंका वर्णन किया गया है। कारीगरोंसे मानवोंकी उन्नति होती है, यह बात यहां बतायी है। ऋभुओंके विषयमें निरुक्तमें यास्क आचार्य लिखते हैं–

"ऋभुः विभ्वा वाज इति सुधन्वन आंगिरसस्य त्रयः पुत्रा बभूवुः॥" (निरु. ११।१६)

ऋभु, विभ्वा, वाज ये तीन आंगिरस गोत्रके सुधन्वाके पुत्र थे। अतः उनको "सौधन्वनासः" (सुधन्वाके पुत्र) ऐसा द्वितीय मंत्रमें कहा है। 'सौधन्वनाः' (मं. ४, ८) इस तरह गोत्रनाम इस सूक्तमें आया है।

'ऋभवः' (मं. १, ४, ५; ६; ८; १; २) 'ऋभून्' (मं. १११।४), ऋभुः (मं. ७; १११।५) इतने मंत्रोंमें ऋभुका नाम इन सूक्तोंमें आगया है, ऋभुके दो भाई विभ्व और वाज थे। इनके नाम भी यहां आये हैं। 'वाजान्' (मं १११।४), वाजः (१११।५) ये वाजके नाम हैं। विभ्वाका नाम इनमें नहीं है।

ऋभुओंकी कुशलता

१ एक चमसके समान चार चमस बनाये।

'असुरस्य भक्षणं तं चमसं एकं चित् सन्तं चतुर्वयं अकृणुत' (मं. २)— असु-र अर्थात् जीवनसत्त्व देनेवाले सोमरसका भक्षण करनेका एकही चमस था, उसके समान चार चमस ऋभुओंने बनाये।

यहां असु-र पद जीवनदाताके अर्थमें है। सोमरसमें जीवन-सत्व अत्यधिक है, इसलिये उसको असु-र कहा गया है। एक चमसके समान चार चमसका निर्माण करना कारीगरोंकाही कार्य है। यह कैसे किया गया यह भी यहां लिखा है–

'ऋभवः जेहमानं एकं पात्रं क्षेत्रं इव तेजनेन वि ममु।' (मं. ५)— ऋभुओंने बारंबार बर्ते जानेवाले उस एक पात्रको खेतके समान ठीक तरह नापकर तीक्ष्ण शस्त्रसे (एकके चार पात्र) बनाये, नाप लेकर तीक्ष्ण शस्त्रसे चार पात्र निर्माण किये। बिना मापनके नहीं, ठीक तरह नापकर बनाये।

यहां खेतके मापन करनेकी उपमा दी है, जिस तरह खेतका मापन करते हैं। वैदिक राज्यपद्धतिमें खेतोंकी लंबाई चौडाईका परिमाण नापा जाता था, यह एक नयी बात यहां ध्यानमें आगई है। मापन होनेके कारण उस खेतपर राज्यका कर लगाने, भाइयोंका विभाग भाइयोंको देने, तथा खेतकी बिक्री करने आदिकी सब बातें जो व्यवहारमें हुआ करती हैं, आजाती हैं। यह तर्खानकी विद्या है।

२ क्षीण गौको दुधारू बनाया

प्रथम सूक्तके ८ वें मंत्रमें क्षीण गौको दुधारू बनानेका वर्णन है। 'चर्मणः गां निः अपिंशत, वत्सेन सं असृजत' (मं. ८)— चर्मकी गौ, अर्थात् जिसपर केवल चर्मही रहा है, मांस नष्ट हो चुका है, ऐसे गौको सुन्दर अवयववाली हृष्टपुष्ट बनाया। पुष्ट किया और दुधारू बनाया, और पश्चात् बछडेके साथ उस गायको संयुक्त किया, अर्थात् बछडा उस गायका दूध पीने लगा।

यहां 'चर्मणः गां' का अर्थ कई ऐसा करते हैं कि 'चमडेकी गाय बनायी'। यदि मृत चमडेकी गाय बनायी, तो उसके स्तनोंसे दूध किस तरह निकलेगा? इसलिये 'चर्मणः गां' का अर्थ जिसके शरीरका मांस क्षीण होकर जहां केवल चर्मही रहा है ऐसी अत्यंत क्षीण गौ, ऐसाही समझना युक्तियुक्त है। ऐसी क्षीण गौ योग्य उपायोंसे हृष्टपुष्ट हो सकती है और अपने बच्चेको दूध भी पिलाती है। यह गोसंवर्धनकी विद्या है।

'वत्साय मातरं सचाभुवं तक्षन्' (मं. १११।१) बछडेके लिये माताको बनाया, दुधारू बनाया।

३ वृद्धोंको तरुण बनाना

ऋभुओंने वृद्ध मातापिताको तरुण बनाया।

'सपस्यया जिव्री पितरा युवाना अकृणोतन।' (मं. ११०।८)– अपने प्रयत्नसे अत्यंत वृद्ध मातापिताको तरुण बनाया। यह वैद्यकी विद्या है। इसी तरह अश्विदेवोंने वृद्ध च्यवन ऋषिको तरुण बना दिया था।

'पितृभ्यां युवत् वयः तक्षन्' — पितरोंको तरुण बनाया।

४ सुन्दर रथ बनाना

'धिषनापसः रथं सुवृतं तक्षन्।' (मं. १११।१)– अपने विज्ञानसे तथा कुशल कर्मसे सुन्दर रथ अच्छी तरह आच्छादित करके बनाया। 'धिषना' पद विज्ञानका सूचक और 'अपस्' पद कुशल कर्मका द्योतक है। विज्ञान और

कुशलतासेही सब नर्म सिद्ध होते हैं।

५ घोडोंको सिखाया

' इन्द्रवाहा हरी वृषण्वसू तक्षन्। ' (मं. १)— इन्द्रके रथके घोडे उत्तम सिखाकर तैयार किये और बलिष्ठ और हृष्टपुष्ट बनाये। यह अश्वविद्याका विषय है। इन्द्रके घोडे ऋभुओंके द्वारा सिखाये गये थे।

६ प्रजा देनेवाला अन्न

'दक्षाय सुप्रजावतो इषं (तक्षन्)।' (मं. २)- बल बढानेवाला अन्न, और जिससे सुसन्तान हो सकता है ऐसा अन्न ये ऋभु तैयार करके देते थे। जिसका सेवन करनेसे निर्बल मानव बलवान् हो जाते और जिनको संतान नहीं होता था उनको इस अन्नके सेवनसे संतान हो जाता था।

ये ऋभुओंके कौशलके कार्य थे। इससे पता चल सकता है कि कितने कौशलके कर्मोंमें ऋभु प्रवीण थे। इन्हीं कुशल कर्मोंके कारण ये मर्त्य होनेपर भी इनको देवत्व मिल गया था, देखो—

मर्त्योंको देवत्व-प्राप्ति

' वाघतः मर्तासः अमृतत्वं आनशुः ऋभवः संवत्सरे धीतिभिः समपृच्यन्त।' (११०।४)– स्तुति करनेवाले ऋभु मनुष्य होते हुए भी वे अमरत्वको–देवत्वको–प्राप्त हुए और एकही वर्षके अन्दर अन्दर उनकी स्तुतियां भी होने लगीं। इस तरह मनुष्य देवत्व प्राप्त करते थे। यह देवजातिके राज्यमें रहनेका अधिकार है। देवजाति तिब्बतमें रहती थी और मानवजाति आर्यावर्तमें रहती थी। आवश्यकतानुसार वीर तथा कुशल मानवोंको देवराष्ट्रमें रहनेका अधिकार मिलता था। इसी तरह ऋभु, मरुत ये मानव होते हुए देवराष्ट्रमें रहनेके अधिकारी बने थे। यह अधिकार बडे प्रयत्नसे प्राप्त होता था और कई देव इसका विरोध भी करते थे। इस विषयमें ऐतरेय ब्राह्मणमें कथा है—

ऋभुओंकी देवत्व-प्राप्ति

ऐतरेय ब्राह्मण (३।३०) में निम्नलिखित कथा आ गयी है— (ऋभवो वै देवेषु तपसा सोमपीथं अभ्यजयन्) ऋभुओंने तप करके देवोंमें बैठकर सोमपान करनेका अधिकार प्राप्त किया। प्रजापति और दूसरे कई देवोंने इसकी सिफारस की कि ऋभुओंको देवत्व मिले और वे देवोंमें बैठकर सोमपान करें। परन्तु प्रातःसवनकी अग्नि देवताने वसुओंको साथ लेकर अपनेमेंसे

ऋभुओं– (अग्निः वसुभिः प्रातःसवनादनुदत) को बाहर निकाल दिया।

पश्चात् प्रजापतिने उनको माध्यंदिन-सवनमें बैठकर सोमपान करानेकी योजना की। पर वहां भी (इन्द्रो रुद्रैः मध्यंदिनसवनादनुदत) इन्द्रने रुद्रोंकी सहायतासे उनको वहां बैठने नहीं दिया। बिचारे ऋभु वहांसे भी बहिष्कृत होकर बाहर निकाले गये।

फिर प्रजापतिने ऋभुओंको तृतीय सवनमें बिठलाकर सोमपान करानेका विचार किया। पर वहां विश्वे देव बैठे थे, (तान् विश्वे देवा अनोनुद्यन्त, नेह पास्यन्ति नेह इति) उन्होंने उसका विरोध किया कि यहां ये नहीं बैठकर सोमपान करेंगे, कदापि यहां ये नहीं बैठ सकेंगे।

पश्चात् प्रजापतिने सवितासे कहा कि (स प्रजापतिरब्रवीत् सवितारं, तव वा इमे अन्तेवासाः, त्वमेव एभिः सं पिबस्वेति, स तथेत्यब्रवीत्) हे सविता ! तुम्हारे ये ऋभु पडोसी हैं, अतः इनके साथ तू सोमपान कर। तब सविताने प्रजापतिका विचार मान लिया।

पर सविताने प्रजापतिसे कहा कि (त्वं उभयतः परिपिबेति) हे प्रजापति ! तू ऋभुओंके पूर्व और पश्चात् सोमपान कर, बीचमें ऋभु सोमपान करेंगे। सविताका विचार यहां ऐसा था कि मनुष्य-जातिके ऋभुओंके साथ सोमपान करनेका दोष केवल मुझेही न लगे, मेरे साथ प्रजापति रहे, जिससे दोष बांटा जायगा।

इस तरह बडे यत्नसे ऋभुओंको देवोंमें बैठनेका अधिकार प्राप्त हुआ। और वे सोमपानके अधिकारी बने। वसु, रुद्र आदि देव प्रथमसे इनको अपने साथ बिठलानेके लिये भी तैयार नहीं थे। प्रजापति तैयार था। प्रजापति सबका पालक राजा था। वह चाहता था कि ऋभुओं देवत्वके अधिकार मिले और वे देवराष्ट्रमें रहें। पर कई देव जातियाँ प्रथम तैयार नहीं थी। पश्चात् तैयार हुई। एक वर्षतक यह छुआ छूतको हटानेका विचार चल रहा था। पश्चात् अन्य देवोंके समान उनको देवत्व दिया गया और वे पूर्णतया देव बन गये।

यह इतिहास ऐतरेय ब्राह्मणमें है और इसका निर्देश [illegible] था, सूक्तोंमें भी है। (मं. ४) [illegible] कर्के- [illegible] म दोनों

अब इस सूक्तके कुछ संदेशोंका विचार करते हैं

उपदेश

१ मे अपः ततं, तत् उ पुनः तायते : (१११।१)- मेरा यह व्यापक कर्म फैल गया है, मैं वही कर्म पुनः फैलाऊंगा। 'अपस्'का अर्थ सार्वदेशिक हितका कर्म है, वह कर्म कि जिसका परिणाम सब मनुष्यजातितक अच्छी तरह पहुंचता है, जिससे जनताका हित होता है ऐसा यज्ञकर्म। यह कर्म मैंने अब किया है और फिर भी ऐसाही कर्म करूंगा। मनुष्य वारंवार शुभ कर्म करते रहें।

२ मर्तासः अमृतत्वं आनशुः (मं. ४)— मर्त्य मानव अमरत्व—देवत्व— प्राप्त करते हैं। प्रयत्नसे देवत्व प्राप्त करना मानवोंका कर्तव्य है।

३ असुन्वतां पृत्सुतीः अभि तिष्ठेम। (मं. ७)— अयाजकोंकी सेनाओंका हम पराभव करेंगे। हम याजक होनेसे हमाराही सर्वत्र विजय होगा।

४ यथा सर्ववीरया विशा क्षयाम, तत् इन्द्रियं नः शर्धाय सु धासथ (१।१११।२)- जिस तरह हम सब वीर प्रजाजनोंके साथ निवास कर सकेंगे, उस तरहका बल हमारे संघके लिये (हम सबमें) स्थापन करो। अर्थात् हमारे चारों ओर वीरोंका निवास हो, हम भी वीर बनेंगे। इसलिये हम सबमें संघका बल स्थापन हो और बढे। (नः शर्धाय इन्द्रियं) हमारे संगठनके लिये हमारा बल बढ जाय। हममें वैसा बल बढ जाय जिससे हमारी संगठना उत्तम रीतिसे बन सके।

५ नः जैत्रीं सातिं सं महेत। (मं. ३)- हमारे विजय देनेवाले वैभवका सम्मान होता रहे।

६ विश्वहा पृतनासु जामिं अजामिं सक्षणिम्। (मं. ३)— सर्वदा युद्धोंमें हमारा संबंधी हो वा परकीय शत्रु हो उन सबका हम पूर्ण पराभव करेंगे और हम नित्य विजय प्राप्त करेंगे।

७ समर्यजित् वाजः अस्मान् आविष्टु। (मं. ५)— सब शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेवाला बल हम सबमें बढे। हमारा बल ऐसा हो कि जिससे हम सदा विजयी होते रहें।

इस प्रकार इन सूक्तोंमें विजयके निर्देश हैं जो पाठक स्मरणमें रखें। इन दोनों सूक्तोंमें ऋभुओंका वर्णन है और उनका संबंध ऐतरेय ब्राह्मणकी कथाके साथ दीखता है। सविता देवने इनकी उन्नति करनेमें सहायता दी इत्यादि बातें उक्त कथाके साथ देखनेयोग्य है।

यहां ऋभु-प्रकरण समाप्त हुआ है।

---

[६] अश्वि-प्रकरण

(१६) अश्विदेवोंके प्रशंसनीय कार्य

(ऋ. १।११२) कुत्स आङ्गिरसः। १ (आद्यपादस्य) द्यावापृथिव्यौ, १ (द्वितीयपादस्य) अग्निः, १ (उत्तरार्धस्य) अश्विनौ; २-२५ अश्विनौ। जगती; २४-२५ त्रिष्टुप्।

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १

अन्वयः- १ यामन् इष्टये, पूर्वचित्तये, सुरुचं घर्मं अग्निं द्यावापृथिवी ईळे। हे अश्विना! याभिः कारं भरे अंशाय जिन्वथः, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

अर्थ-१ पहिले प्रहरमें यज्ञ करनेके लिये, तथा अपना चित्त स्थिर करनेके लिये, अच्छी दीप्तिवाले यज्ञस्वरूप अग्निकी और द्यावापृथिवीकी मैं स्तुति करता हूँ। हे अश्विदेवो! जिनसे कुशल पुरुषको संग्राममें अपना धनविभाग पानेके लिये सहाय्य करते हो, उन रक्षासाधनोंके साथ तुम दोनों यहां पधारो ॥

युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २ ॥
युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं१ पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ३ ॥
याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद् विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ४ ॥
याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद्वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ५ ॥
याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ६ ॥

२ हे अश्विना ! सुभराः असश्चतः, वचसं मन्तवे न, युवोः रथं दानाय आ तस्थुः । कर्मन् इष्टये याभिः धियः अवथः ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

३ हे अश्विना नरा ! युवं, दिव्यस्य अमृतस्य मज्मना, तासां विशां प्रशासने क्षयथः । याभिः अस्वं धेनुं पिन्वथः, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

४ परिज्मा द्विमाता तनयस्य, मज्मना याभिः तूर्षु तरणिः वि भूषति; त्रिमन्तुः याभिः विचक्षणः अभवत्, ताभिः ऊतिभिः, हे अश्विना ! सु आगतं उ ॥

५ हे अश्विना! निवृतं सित रेभं वन्दनं च याभिः अद्भ्यः स्वः दृशे उत् ऐरयतं; सिषासन्तं कण्वं याभिः प्र आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

६ हे अश्विना ! आरणे जसमानं अन्तकं याभिः; अव्यथिभिः याभिः भुज्युं जिजिन्वथुः, कर्कन्धुं वय्यं च याभिः जिन्वथः, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

२ हे अश्विदेवो ! उत्तम ढंगसे भरण पोषण करनेके इच्छुक अतएव इधर उधर भ्रमण न करनेवाले, लोग, विद्वान्के पास उसकी संमतिके लिये जानेके समान, तुम्हारे रथके पास तुमसे दान प्राप्त करनेके लिये खडे होते हैं। कर्मसे इष्ट प्राप्त करनेके लिये जिन साधनों द्वारा तुम सुरक्षा करते हो, उन सुरक्षाओंसे तुम दोनों यहां पधारो ॥

३ हे अश्विदेवो । हे नेताओं ! तुम दोनों, द्युलोकमें उत्पन्न सोमके अमृतरूप रसके बलसे, उन प्रजाओंका राज्यशासन चलानेके लिये उनमें निवास करते हो। जिनसे प्रसूत न हुई गौको पुष्ट करके दुधारु बनाया, उन सुरक्षाओंके साथ तुम दोनों यहां पधारो ।

४ चारों ओर घूमनेवाले दो माताओंके पुत्रको बलके द्वारा जिनसे त्वराके साथ अधिक तैरनेवाला अर्थात् अग्रगामी बनाया, तथा जो तीनगुणा मनन करनेसे जिन साधनोंसे अधिक विद्वान् होगया, उन सुरक्षाओंके साथ हे अश्विदेवो ! तुम दोनों यहां आओ ॥

५ हे अश्विदेवो ! पूर्णतया जलमें डूबे हुए और बंधे हुए रेभ और वन्दनको जिन साधनोंसे जलोंके ऊपर प्रकाश दिखानेके लिए तुम दोनोंने ऊपर उठाया, तथा भक्त कण्वको जिनसे सुरक्षित किया, उन रक्षासाधनोंके साथ तुम दोनों यहां पधारो ॥

६ हे अश्विदेवो ! गढेमें पडे अन्तकको जिन साधनोंसे छुडाया, जिन अन्तक रक्षासाधनोंसे तुमने भुज्युको सुरक्षित रखा, कर्कन्धुको और वय्यको जिनसे सुरक्षित रखा उनके साथ तुम दोनों यहां पधारो ॥

याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ७

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ८

याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ९

याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १०

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ११

---

७ हे अश्विना! याभिः धनसां शुचन्तिं सुसंसदं, तप्तं घर्मं अत्रये ओम्यावन्तं, पृश्निगुं पुरुकुत्सं याभिः आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

८ हे वृषणा अश्विना! याभिः शचीभिः अन्धं परावृजं चक्षसे, श्रोणं एतवे प्र कृथः, ग्रसितां वर्तिकां याभिः अमुञ्चतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

९ हे अजरौ अश्विना! मधुमन्तं सिन्धुं याभिः असश्चतं, याभिः वसिष्ठं अजिन्वतं; याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यं आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१० हे अश्विना! सहस्रमीळ्हे आजौ याभिः धनसां अथर्व्यं विश्पलां अजिन्वतं, याभिः प्रेणिं अश्व्यं वशं आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

११ हे सुदानू अश्विना! औशिजाय दीर्घश्रवसे वणिजे याभिः कोशः मधु अक्षरत्, स्तोतारं कक्षीवन्तं याभिः आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

७ हे अश्विदेवो! जिनसे धनदान करनेवाले शुचन्तिको उत्तम घर दिया; तपे हुए कारागृहको अत्रिके लिये शान्त कर दिया; पृश्निगु और पुरुकुत्सको जिनसे सुरक्षित किया, उन रक्षा-साधनोंसे तुम यहां पधारो ॥

८ हे बलवान् अश्विदेवो! जिन शक्तियोंसे तुमने अन्धे ऋषि परावृक्‌को दृष्टिसंपन्न किया, लंगडे लूलेको चलने फिरनेयोग्य बनाया, तथा (भेडियेके मुखसे) ग्रस्त चिडियाको जिनसे मुक्त किया, उन रक्षासाधनोंसे तुम यहां पधारो ॥

९ हे जरारहित अश्विदेवो! मीठे जलवाले नदीको जिनसे तुमने प्रवाहित किया, जिनसे वसिष्ठको सन्तुष्ट किया, जिनसे कुत्स, श्रुतर्य तथा नर्यका संरक्षण किया, उन रक्षासाधनोंसे तुम यहां पधारो ॥

१० हे अश्विदेवो! सहस्रों सैनिकोंकी लडाईमें जिन शक्तियोंसे धनदान करनेवाली अथर्वकुलमें उत्पन्न विश्पलाको तुमने सहायता दी, जिनसे प्रेरक अश्वपुत्र वशको सुरक्षित किया, उन रक्षासाधनोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

११ अच्छे दान देनेवाले अश्विदेवो! उशिक्‌ पुत्र दीर्घश्रवा नामक वणिक्‌के लिये जिनसे तुमने मधुका भण्डार दिया, भक्त कक्षीवान्‌को जिनसे सुरक्षित किया, उन शक्तियोंसे तुम यहां पधारो ॥

याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथु रनश्वं याभी रथमावतं जिषे ।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १२

याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १३

याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम् ।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १४

याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः ।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १५

याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः ।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १६

याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना ।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १७

---

१२ हे अश्विना ! रसां याभिः क्षोदसा उद्नः पिपिन्वथः, याभिः अनश्वं रथं जिषे आवतं, त्रिशोकः याभिः उस्रियाः उदाजत, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१३ हे अश्विना ! परावति सूर्यं याभिः परियाथः, क्षैत्रपत्येषु मन्धातारं आवतं, याभिः विप्रं भरद्वाजं प्र आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१४ हे अश्विना ! शम्बरहत्ये याभिः अतिथिग्वं, कशोजुवं, महां दिवोदासं आवतं, याभिः त्रसदस्युं पूर्भिद्ये आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१५ हे अश्विना ! याभिः विपिपानं उपस्तुतं वम्रं, याभिः वित्तजानिं कलिं दुवस्यथः, उत याभिः व्यश्वं पृथिं आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१६ नरा अश्विना ! याभिः शयवे, याभिः अत्रये, याभिः मनवे पुरा गातुं ईषथुः, स्यूमरश्मये याभिः शारीः आजतं, ताभिः ऊतिभिः आगतं उ ॥

१७ हे अश्विना ! इद्धः चितः अग्निः न, पठर्वा याभिः अज्मन् जठरस्य मज्मना आ अदीदेत्, महाधने याभिः शर्यातं अवथः, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१२ हे अश्विदेवो ! तुमने जिनसे नदीको जलसे किनारोंको तोडनेवाली बना दिया, जिनसे घोडेरहित रथको विजय पानेयोग्य सुरक्षित बना दिया, त्रिशोक जिनसे गौवें पासका, उन शक्तियोंसे तुम यहां पधारो ॥

१३ हे अश्विदेवो ! दूर गये सूर्यके चारों ओर जिनसे तुम जाते हैं, क्षेत्रोंका संरक्षण करनेके कार्यमें मन्धाताको तुमने सुरक्षित रखा, जिनसे ज्ञानी भरद्वाजकी तुमने रक्षा की, उन शक्तियोंसे तुम यहां पधारो ॥

१४ हे अश्विदेवो ! शंबरका वध करनेके युद्धमें जिनसे अतिथिग्व कशोजुव, और बडे दिवोदासकी तुमने रक्षा की, जिनसे त्रसदस्युकी शत्रुके नगर तोडनेके युद्धमें सहायता की, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

१५ हे अश्विदेवो ! जिनसे सोम पीनेवाले स्तुत्य वम्रको, जिनसे विवाहित कलिको तुमने सुरक्षित रखा और जिनसे घोडोंसे बिछुडे पृथिकी रक्षा की, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां पधारों॥

१६ हे नेता अश्विदेवो ! जिनसे शयुको, जिनसे अत्रिको, जिनसे मनुको, पूर्व समयमें तुमने मार्ग बताया, जिनसे स्यूमरश्मिको शत्रुपर बाणोंके साथ प्रेरित किया, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां आओ ॥

१७ हे अश्विदेवो ! प्रदीप्त अग्निके समान, राजा पठर्वा जिनसे गतिशील अतएव समर्थ होकर अपने शारीरिक बलसे युद्धमें अधिक तेजस्वी सिद्ध हुआ; महायुद्धमें जिनसे शर्यातकी रक्षा की, उन रक्षा-शक्तियोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १८ ॥

याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं१ ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १९ ॥

याभिः शंताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् ।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २० ॥

याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।
मधु प्रियं भरथो यत् सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २१ ॥

याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २२ ॥

---

१८ हे अश्विना ! याभिः मनसा अंगिरः निरण्यथः गो-अर्णसः विवरे अग्रं गच्छथः, शूरं मनुं याभिः इषा सं आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१९ हे अश्विना ! याभिः विमदाय पत्नीः नि ऊहथुः, याभिः वा अरुणीः घ आ अशिक्षतं, याभिः सुदासे सुदेव्यं ऊहथुः, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

२० हे अश्विना ! ददाशुषे याभिः शन्ताती भवथः, याभिः भुज्युं, याभि. अध्रिगुं अवथः, सुभरां ओम्यावतीं ऋतस्तुभं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

२१ हे अश्विना! असने कृशानुं याभिः दुवस्यथ. याभि. यूनः अर्वन्तं जवे आवतं, यत् सरड्भ्यः प्रियं मधु भरथः, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

२२ हे अश्विना ! याभिः गोषु-युधं नरं नृषाह्ये, क्षेत्रस्य तनयस्य साता जिन्वथः, याभिः रथान्, याभिः अर्वतः अवथः, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१८ हे अश्विदेवो! तुम दोनों मनसे किये अङ्गिराके स्तोत्रोंसे सन्तुष्ट हुए, और जिनसे तुम बंद रखे गौओंके झुण्डको पानेके लिये शत्रुकी गुंफामें जानेके लिये आगे बढने लगे, और शूर मनुको जिन शक्तियोंसे अन्न प्राप्त कराके सुरक्षित रख चुके, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

१९ हे अश्विदेवो ! विमदके लिये उसके घर जिन शक्तियोंसे तुम उसकी धर्मपत्नीको पहुंचा दिया, जिनसे तुमने अरुण रंग-वाली घोडियोंको सिखाया जिनसे सुदासके घर दिव्य धन तुमने पहुंचाया, उन रक्षाशक्तियोंके साथ तुम दोनों यहां पधारो ॥

२० हे अश्विदेवो ! दाता पुरुषको जिनसे तुम सुख देते हो, जिनसे भुज्युको, जिनसे अध्रिगुकी रक्षा करते हो, जिनसे पुष्टि-कारक और सुखदायक अन्नसामग्री ऋतस्तुभको तुमने दी, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां आओ ॥

२१ हे अश्विदेवो ! युद्धमें कृशानुकी जिनसे सहायता की, जिनसे तरुण घोडोंको अति वेगवान् बनकर सुरक्षित किया, जिनसे प्रिय मधु मधुमक्षिकाओंके लिये तुमने भर दिया, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

२२ हे अश्विदेवो ! जिनसे गौओंके लिये लडनेवाले नेताको युद्धमें तथा क्षेत्रकी उपजका बंटवारा करनेके समय वीरोंको सुरक्षित रखते हो, जिनसे रथों और जिनसे घोडोंको सुरक्षित रखते हो, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम्।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २३
अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम्।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ २४
द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २५

२३ हे शतक्रतू अश्विना ! याभिः आर्जुनेयं कुत्सं, तुर्वीतिं दभीतिं च प्र आवतं, याभिः ध्वसन्तिं पुरुषन्तिं आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

२४ हे दस्रा वृषणा अश्विना ! नः मनीषां अस्मे अप्नस्वतीं वाचं कृतं, वां अद्यूत्ये अवसे निह्वये, वाजसातौ च नः वृधे भवतम् ॥

२५ हे अश्विना ! द्युभिः अक्तुभिः अरिष्टेभिः अस्मान् परि पातं, नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

२३ हे सैकडों कार्य करनेवाले अश्विदेवो ! जिनसे तुमने अर्जुनीके पुत्र कुत्सकी तथा तुर्वीति दभीतिकी रक्षा की, जिनसे ध्वसन्ति और पुरुषन्तिकी रक्षा की, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां आओ ॥

२४ हे शत्रुनाशक बलवान् अश्विदेवो ! हमारी इच्छाको पूर्ण करो, हमारी वाणीको प्रयत्नयुक्त करो, तुम दोनोंको मैं अन्धकारके मार्गमें सुरक्षाके लिये बुलाता हूं। अन्नके दान करनेके समय हमारी वृद्धि करनेवाले बनो ॥

२५ हे अश्विदेवो ! दिन और रात, क्षीण न हुए ऐश्वर्योंसे हमें सुरक्षित रखो। इस हमारी इच्छाकी सहायता मित्र आदि देव करें ॥

अश्विदेवोंके कार्य

इस सूक्तमें २५ मंत्र हैं और इनमें अश्विदेवोंके शुभकार्योंका वर्णन है। "जिन रक्षाकी शक्तियोंसे अश्विदेवोंने रेभ कण्व आदिकोंकी रक्षा की थी, उन संरक्षक साधनोंके साथ ये अश्विदेव हमारे पास आजांय और हमारी सुरक्षा करें।" इतनीही मुख्य प्रार्थना इस संपूर्ण सूक्तमें है।

१ **अ-स्वं धेनुं पिन्वथ** (मं. १)— प्रसूत न होनेवाली गौको पुष्ट किया, फिर वह गर्भधारणक्षम हुई, पश्चात् अच्छी तरह दुधारू बन गयी। ऋभुओंके सूक्तमें भी कृश गौको दुधारू बनानेका वर्णन है। अश्विदेव और ऋभुदेव इन दोनोंकी इसमें समानता है।

२ इसके बाद रेभ, वंदन, कण्व (मं. ५), अन्तक, भुज्यु, कर्कन्धु, वय्य (मं ६), शुचन्ति, अत्रि, पृश्निगु, पुरुकुत्स (मं. ७), परावृज्, श्रोण, वर्तिका (चिडिया) (मं. ८), वसिष्ठ, कुत्स, श्रुतर्य, नर्य (मं. ९), विश्पला, अश्व्य वश, (मं. १०), औशिज् दीर्घश्रवा वणिक् कक्षीवान् (मं. ११), त्रिशोक (मं. १२), मन्धाता, भरद्वाज (मं. १३), अतिथिग्व, कशोजुव, दिवोदास, त्रसदस्यु (मं. १४), उपस्तुत, वम्र, व्यश्व पृथि (मं. १५) शयु, अत्रि, मनु, स्यूमरश्मी (मं. १६), पठर्वा, शर्यात (मं. १७), अङ्गिरा, मनु, (मं. १८), विमद, सुदास (मं. १९), भुज्यु, अध्रिगु, ऋतस्तुभ (मं. २०), कृशानु (मं. २१); आर्जुनेय कुत्स, तुर्वीति, दभीति, ध्वसन्ति, पुरुषन्ति (मं. २३), इनकी सहायता अश्विदेवोंने की ऐसा यहां इस सूक्तमें कहा है। यहां अत्रि, भुज्यु ये नाम दो वार आगये हैं। ये नाम दो वार क्यों आगये हैं इसका पता नहीं लगता। इन नामोंमें कई ब्राह्मण हैं, कई क्षत्रिय हैं, कई वणिक् वैश्य भी हैं, वर्तिका (चिडिया) भी इसमें है। इनमें शूद्रका नाम हो तो ढूंढना चाहिये।

भुज्यु जलमें डूब रहा था, उसको बचाया। रेभ और

वंदन जलप्रवाहमें या कुवेमें मर रहा था, इसको बचाया। अत्रिको स्वराज्यकी हलचल करनेके कारण कारागृहमें असुरोंने डाला था, वहां उसकी सहायता की। चिडियाको भेडिया खाना चाहता था, वह भेडियाके मुखमें पहुंची थी, उस समय उसका बचाव किया। विश्पलाकी टांग युद्धमें कट गयी थी, उसको लोहेकी टांग लगाकर युद्ध करनेयोग्य बनाया। इस तरह अश्विदेवोंकी सहायताके वर्णन हैं। ऐसे सामर्थ्यवान् अश्विदेव हमारे सहायक हों, हमें धन दें, अन्न दें, वीरता हममें बढावें और इन गुणोंसे संपन्न होकर हम सुखी बनें, यह इस सूक्तका तात्पर्य है।

---

[७] उषा-प्रकरण

(१७) उषाका काव्य

(ऋ. १।११३) कुत्स आङ्गिरसः। १ (उत्तरार्धस्य) रात्रिश्च; २-२० उषाः। त्रिष्टुप्।

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥

रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥ २ ॥

समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥

अन्वयः- १ ज्योतिषां इदं ज्योतिः श्रेष्ठं आ अगात्। चित्रः विभ्वा प्रकेतः अजनिष्ट। यथा रात्री प्रसूता, उषसे, सवितुः सवाय, (च) योनिं अरैक्।

२ रुशती श्वेत्या रुशद्वत्सा आ अगात्। अस्याः कृष्णा सदनानि अरैक् उ। समानबन्धू अमृते अनूची वर्णं आमिनाने द्यावा चरतः॥

३ स्वस्रोः अध्वा समानः अनन्तः। तं देवशिष्टे अन्या-अन्या चरतः। सुमेके विरूपे नक्तोषासा समनसा न मेथेते, न तस्थतुः॥

अर्थ- १ तेजोंमें यह श्रेष्ठ तेज अब प्रकट हुआ है। देखो! यह आश्चर्यकारक सर्वत्र फैलनेवाला प्रकाश अब उत्पन्न हुआ है। जैसी रात्रिसे (उषा) उत्पन्न हुई, (वैसीही) उषाको, सूर्यकी उत्पत्ति करनेके लिये भी अब स्थान होगया है।

२ यह तेजस्विनी गौरी (उषा अपने) तेजस्वी बालक (सूर्य) को धारण करके आगयी है। इसके लिये काले रंगवाली (रात्रि) सब स्थान खुले कर रही है। ये सहोदर बहिनें अमर हैं और परस्पर साथ रहनेवाली, जगत्‌का रंग बदलती हुई आकाशमार्गसे संचार करती हैं॥

३ इन दोनों बहिनोंका मार्ग एकही है और उसका अन्त नहीं है। उसपरसे ईश्वरकी आज्ञानुसार एकके पीछे एक ऐसी वे संचार करती हैं। सुन्दर अवयववाली परंतु विरुद्ध रूपवाली ये रात्रि और उषा एक मनसे रहती हुई परस्परका घात नहीं करती और नाही बीचमें कभी ये ठहरती हैं।

भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः ।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥
जिह्मश्ये३ चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उ त्वम् ।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ५ ॥
क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ६ ॥
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः ।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥ ७ ॥
परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥ ८ ॥

---

४ भास्वती सूनृतानां नेत्री अचेति । चित्रा नः दुरः वि आवः । जगत् प्रार्प्य नः रायः अख्यत् उ । उषाः विश्वा भुवनानि अजीगः ॥

५ जिह्मश्ये चरितवे, त्वं आभोगये इष्टये राये उ, दभ्रं पश्यद्भ्यः विचक्षे, उर्विया मघोनी उषाः विश्वा भुवनानि अजीगः ॥

६ क्षत्राय त्वं, श्रवसे त्वं, महीयै इष्टये त्वं, अर्थं इव इत्यै त्वं, विसदृशा जीविता अभिचक्षे, उषाः विश्वा भुवनानि अजीगः ॥

७ दिवः दुहिता युवतिः शुक्रवासाः विश्वस्य पार्थिवस्य वस्वः ईशाना एषा व्युच्छन्ती प्रत्यदर्शि । हे सुभगे उषः ! अद्य इह वि उच्छ ॥

८ परायतीनां पाथः अनु एति । आयतीनां शश्वतीनां प्रथमा व्युच्छन्ती, जीवं उदीरयन्ती, उषाः मृतं कं चन बोधयन्ती ॥

४ तेजस्विनी और सत्य धर्मोंको चलानेवाली (उषा) दीखने लगी है । इस चित्रविचित्र रंगवालीने हमारे घरोंके द्वार खोल दिये हैं । सब जगत्को (उद्यमके लिये) प्रवृत्त करके हमें धनोंका (मार्ग) बताया है । उषाने सर्व भुवनोंको जागृत किया है ॥

५ सोनेवाले चलने लगें, कोई भोग प्राप्त करें, कोई इष्ट वस्तु प्राप्त करें, कोई धन प्राप्त करें, थोडासा देखनेवालोंको बहुत दूरका भी दीखे, इसलिये यह बडी वैभवशाली उषा सब भुवनोंको जगा रही है ॥

६ शौर्यके लिये कोई, यशके लिये कोई, महत्त्वके इष्ट वस्तुके लिये कोई, धनके लिये कोई (यत्न करें, इसलिये) और विविध प्रकारके जीवनमार्ग सबको दीखें, इसलिये यह उषा सब भुवनोंको जगा रही है ॥

७ स्वर्गकी पुत्री, तरुणी, शुभ्रवस्त्रधारिणी, सब पृथ्वीपरके धनोंकी स्वामिनी यह (उषा) अन्धकारको दूर करती हुई (यहां) दीख रही है । हे भाग्यवती उषे ! आज यहां प्रकाश कर ॥

८ गत उषाओंके मार्गसे ही यह जा रही है। आनेवाली शाश्वत उषाओंमें यह पहिली प्रकाश देनेवाली है, जागृत मानवोंको (कर्ममें) प्रवृत्त करती है, यह उषा मृत जैसे सोनेवालोंको भी जगा रही है ॥

उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य ।
यन्मानुषान् यक्ष्यमाणाँ अजीगस्तद् देवेषु चकृषे भद्रमप्नः ॥ ९ ॥
कियात्या यत् समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ॥ १० ॥
ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥ ११ ॥
यावयद् द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥ १२ ॥
शश्वत् पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः ॥ १३ ॥

९ हे उषः ! त्वं अग्निं समिधे यत् चकर्थ । सूर्यस्य चक्षसा यत् वि आवः । मानुषान् यक्ष्यमाणान् यत् अजीगः, देवेषु भद्रं तत् अप्नः चकृषे ॥

१० याः व्यूषुः, नून याः च व्युच्छान् यत् समया कियति भवाति ? पूर्वाः वावशाना अनु कृपते । प्रदीध्याना अन्याभिः जोषं एति ॥

११ ये मर्त्यासः व्युच्छन्तीं पूर्वतरां उषसं अपश्यन्, ते ईयुः । अस्माभिः नु प्रतिचक्ष्या अभूत् उ । अपरीषु ये पश्यान् ते आ उ यन्ति ॥

१२ हे उषः ! यावयद् द्वेषाः ऋतपाः ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती सुमङ्गलीः देववीतिं बिभ्रती, श्रेष्ठतमा इह अद्य व्युच्छ ॥

१३ उषाः देवी पुरा शश्वत् व्युवास । अथो अद्य मघोनी इदं व्यावः । अथो उत्तरान् द्यून् अनु व्युच्छात् । अजरा अमृता स्वधाभिः चरति ॥

९ हे उषा ! तूने अग्निको प्रदीप्त किया है । सूर्यकी आंखसे (तूने) प्रकाश किया है । मानवोंको यज्ञकर्मके लिये जगा दिया है, यह देवोंमें अत्यंतही कल्याण करनेवाला कर्म (तूने) किया है ।

१० जो उषाएं चली गयीं, और जो सचमुच आनेवाली हैं, उनमें हमारे साथ (रहनेवाली यह आजकी उषा) कितनी (थोडीसी) है ? पूर्व उषाओंका स्मरण करानेवाली (यह आजकी उषा हमारे लिये) अनुकूल होकर हमें सामर्थ्य दे रही है । और प्रकाशती हुई अन्य (गत उषाओंके साथही अपना) प्रेमसंबंध जोडती हुई जाती है ॥

११ जिन मानवोंने प्रकाशनेवाली प्राचीन उषाओंको देखा था, वे चल बसे । हमने तो यह उषा देखी है (हम भी वैसेही चले जायँगे ।) आनेवाली उषाओंको जो देखेंगे, वे भी ऐसेही जायँगे ॥

१२ हे उषा ! तू शत्रुका नाश करनेवाली, सत्यका पालन करनेवाली, सरल व्यवहारके लियेही उत्पन्न हुई, वैभवयुक्त, सत्यभाषणी, सत्कर्मकी प्रेरणा करनेवाली, मंगलकारिणी, देवोंके लिये हविर्भाग लेनेवाली अत्यंत श्रेष्ठ है, (ऐसी तू) आज यहां प्रकाश कर ॥

१३ यह उषादेवी पहिले शाश्वत कालसे प्रकाशती है और आज भी उस वैभवशालिनी (उषा) ने प्रकाश किया है । और वैसाही भविष्यके दिनोंमें भी वह प्रकाश देगी। यह जरारहित और मरणरहित (उषादेवी) अपनी शक्तियोंके साथ संचार करती है ॥

व्य१ञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः । १४
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन

आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना । १५
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत्

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आऽगादप प्रागात् तम आ ज्योतिरेति । १६
आऽरैक् पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः

स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः । १७
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत्

या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय । १८
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत् सोमसुत्वा

---

१४ दिवः आतासु अञ्जिभिः वि अद्यौत् । देवी कृष्णां निर्णिजं अप आवः । अरुणेभिः अश्वैः सुयुजा रथेन उषाः प्रबोधयन्ती आ याति ॥

१५ पोष्या, वार्याणि आवहन्ती, चेकिताना उषाः चित्रं केतुं कृणुते । ईयुषीणां शश्वतीनां उपमा, विभातीनां प्रथमा, वि अश्वैत् ॥

१६ उद् ईर्ध्वं, नः असुः जीवः आ अगात् । तमः अप प्र अगात् । ज्योतिः आ एति । सूर्याय यातवे पन्थां आ अरैक् । (तस्मिन्) अगन्म, यत्र आयुः प्रतिरन्ते ॥

१७ वह्निः रेभः विभातीः उषसः स्तवानः वाचः स्यूमना उद् इयर्ति । हे मघोनि ! अद्य गृणते तद् उच्छ । अस्मे प्रजावत् आयुः नि दिदीहि ॥

१८ दाशुषे मर्त्याय गोमतीः सर्ववीराः याः उषसः वि उच्छन्ति । वायोः इव सूनृतानां उदर्के, अश्वदाः ताः सोमसुत्वा अश्नवत् ॥

१४ आकाशकी सब दिशाओंमें आभूषणोंसे शोभित होकर (यह उषा) प्रकाश रही है। इस देवीने (विश्वके ऊपरका) काला वस्त्र दूर किया है। और आरक्त रंगके घोडोंसे जुडे रथपर बैठकर यह उषा (जगत्को) जगाती हुई आ रही है॥

१५ पोषण करनेवाली, स्वीकारके योग्य धनोंको लानेवाली, ज्ञानसंपन्न उषा चित्रविचित्र तेज प्रकट करती है। जानेवाली शाश्वत (उषाओंमें) अन्तिम, प्रकाशित होनेवालियोंमें प्रथम (यह उषा यहां) प्रकाशित हो गयी है॥

१६ उठो, हमारा चैतन्य देनेवाला प्राण आ रहा है। अन्धकार दूर हुआ है। प्रकाश आ रहा है। सूर्यके गमनके लिये मार्ग खुला हुआ है। (वहां) हम पहुंचे हैं, कि जहां आयुष्य दीर्घ होता है॥

१७ तेजस्वी उपासक देदीप्यमान उषाओंकी स्तुति गाता हुआ अपनी वाणीको उत्तम, भक्ति-भावनाके साथ प्रेरित करता है। हे ऐश्वर्यवाली देवी ! आज भक्तके लिये तू प्रकाशित हो। हमें सन्तति और दीर्घ आयुष्य देदो॥

१८ दाता मानवके हितके लिये गौओंसे युक्त तथा सब वीरोंसे युक्त ये सब उषाएं प्रकाशती हैं। वायुके (वेगके) समान स्तोत्रपाठोंकी गर्जना (होनेके समय), घोडे देनेवाली वे उषाएं यागयाजीके (हितके) लिये प्राप्त हों॥

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि ।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्यु१च्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥ १९

यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २०

१९ देवानां माता, अदितेः अनीकं, यज्ञस्य केतुः बृहती वि भाहि। नः ब्रह्मणे प्रशस्तिकृत् व्युच्छ। हे विश्ववारे! नः जने आ जनय ॥

२० यत् चित्रं अप्नः उषसः ईजानाय शशमानाय भद्रं वहन्ति। नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

१९ देवोंकी माता, अदितिका बल, यज्ञका ध्वज जैसी विशाल होकर तू प्रकाशित हो। हमारे स्तोत्रकी प्रशंसा करती हुई प्रकाशित हो। हे सबके प्यारी (उषा)! हमारे लोगोंमें नवजीवन उत्पन्न कर ॥

२० जो विलक्षण ऐश्वर्य उषाएं याजक और स्तोताके कल्याण करनेके लिये लाती हैं, हमारे उस ऐश्वर्यके लिये मित्र आदिदेव अनुमोदन दें ॥

यह उषाका काव्य बडाही मनोरंजक और उत्साह बढानेवाला है। पाठक इसका पाठ वारंवार और काव्यरसका स्वाद लेते हुए करें। मनमें उत्साहका स्फुरण देनेवाला यह काव्य है, इसका बोध वारंवार पाठ करनेवालोंके मनमें स्वयं स्फुरित हो सकता है। इसलिये इसका विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं है।

{८} रुद्र-प्रकरण

(१८) शत्रुको रुलानेवाला महावीर

(ऋ. १।११४) कुत्स आङ्गिरस. । रुद्रः । जगती; १०-११ त्रिष्टुप् ।

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ १

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ २

अन्वयः— १ यथा अस्मिन् ग्रामे विश्वं पुष्टं अनातुरं असत्, तथा द्विपदे चतुष्पदे शं, तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय रुद्राय इमा मतीः प्रभरामहे ॥

२ हे रुद्र! नः मृळ, उत नः मयः कृधि। क्षयद्वीराय ते नमसा विधेम। हे रुद्र! मनुः पिता यत् शं च योः च आयेजे। तव प्रणीतिषु तत् अश्याम ॥

अर्थ— १ जिस प्रकार इस गांवमें सब प्राणिमात्र हृष्टपुष्ट और नीरोग रहें, तथा द्विपाद और चतुष्पादके लिये शांति प्राप्त हो, उस प्रकार बलवान् जटाधारी, वीरोंके आश्रय देनेवाले रुद्रके लिये ये मंत्र हम गाते हैं ॥

२ हे रुद्र! हम सबको सुखी कर, और हम सबको नीरोग कर। वीरोंको आश्रय देनेवाले तेरा हम सब नमस्कारसे सत्कार करते हैं। मनुष्योंका पालक यह वीर शांति और रोगनिवारक शक्ति देता है। हे रुद्र! तेरी विशेष नीतिसे उसको हम सब प्राप्त होंगे॥

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः ।
सुम्नायन्निद् विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ३

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद् दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद् वयमस्या वृणीमहे ४

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद् भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ५

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ६

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ७

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ८

---

३ हे मीढ्व रुद्र! क्षयद्वीरस्य ते सुमतिं अश्याम। अस्माकं विशः ते देवयज्यया सुम्नायन् इत् आचर। अरिष्टवीराः ते हविः जुहवाम ॥

४ त्वेषं यज्ञसाधं वङ्कुं कविं रुद्रं वयं अवसे नि ह्वयामहे। दैव्यं हेळः अस्मत् आरे अस्यतु। अस्य सुमतिं इत् वृणीमहे ॥

५ वराहं अरुषं त्वेषं रूपं कपर्दिनं दिवः नमसा नि ह्वयामहे। हस्ते वार्याणि भेषजा बिभ्रत्, अस्मभ्यं शर्म वर्म छर्दिः यंसत् ॥

६ मरुतां पित्रे रुद्राय स्वादोः स्वादीयः वर्धनं इदं वचः उच्यते। हे अमृत! नः मर्तभोजनं रास्व। त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥

७ हे रुद्र! नः महान्तं मा वधीः, नो अर्भकं मा, नः उक्षन्तं मा, उत नः उक्षितं मा, नः पितरं मा, उत नः मातरं मा। नः प्रियाः तन्वः मा रीरिषः ॥

८ हे रुद्र! नः तोके तनये आयौ गोषु अश्वेषु मा रीरिषः। भामितः मा वधीः। त्वा हविष्मन्तः सदं हवामहे ॥

३ हे सुखदायक रुद्रदेव वीरोंको आश्रय देनेवाले तेरी उत्तम बुद्धि में हम सब प्राप्त हों, हमारी प्रजाओंको अपने देव-यजनसे सुख देता हुआ तू हमारे लिये अनुकूल आचरण कर। हमारे वीरोंका नाश न हो और हम सब तुम्हारे लिये अन्न अथवा दान अर्पण करेंगे।

४ तेजस्वी, सत्कर्मपालक, चपल, स्फूर्तियुक्त, ज्ञानी, रुद्रको हम सब संरक्षणके लिये प्रार्थना करते हैं। देवोंके संबंधी क्रोध हम सबसे दूर हो। हम इसके उत्तम मतिको प्राप्त करेंगे ॥

५ उत्तम आहार देनेवाले, तेजस्वी, सुंदर रूपयुक्त, जटाधारी वीरको नमस्कारपूर्वक हम सब बुलाते हैं। यह अपने हाथोंमें रोगनिवारक औषधियां धारण करता है और हम सबको आत्मिक स्वास्थ्य, बाह्य दोषोंका प्रतिबंध तथा वमन विरेचन आदि देता है।

६ मरुतोंके लिये सिद्ध हुए वीरोंके संरक्षक महावीरके लिये मीठेसे मीठा और बधाई देनेवाला यह स्तोत्र गाया जाता है कि, हे अमर! तू हम सबके लिये मनुष्योंका भोजन दे, तथा मुझे तथा बालबच्चोंको सुखी रख ॥

७ हे रुद्र! हमारेमेंसे बडोंका वध न कर, हमारे छोटोंका वध न कर। हमारे बढनेवालोंका वध न कर और हमारे बढे हुएका वध न कर। हमारे पिताका वध न कर और हमारी माताका वध न कर। हम सबके प्रिय शरीरोंको दुःख मत दे ॥

८ हे रुद्र! हम सबके बालबच्चोंमें मनुष्य, गाय और घोडोंको सताया न कर। क्रोधके कारण हमारे वीरोंका वध न कर। तुझे सब दान करनेके लिए हम अपने पास बुलाते हैं ॥

उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे ।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत् ते वृणीमहे ९
आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः १०
अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११

९ हे मरुतां पितः ! पशुपा इव अस्मे सुम्नं रास्व । ते स्तोमान् उप अकरं । हि ते सुमतिः मृळयत्तमा । अथ वयं ते अवः इत् वृणीमहे ॥

१० हे क्षयद्वीर ! ते गोघ्नं उत पुरुषघ्नं आरे । अस्मे ते सुम्नं अस्तु । नः मृळ च । हे देव ! च अधि ब्रूहि । द्विबर्हाः शर्म यच्छ ॥

११ अवस्यवः अवोचाम । अस्मै नमः । मरुत्वान् रुद्रः नः हवं शृणोतु । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

९ हे मरनेके लिये सिद्ध हुए वीरोंके संरक्षक वीर! पशुओंके पालक गवालियेके समान हम सबके लिये उत्तम सुख दे। हम सब तेरी प्रशंसा करते हैं। क्योंकि तेरी उत्तम सम्मति अत्यंत सुख देनेवाली है। इसलिये हम सब तेरेसे संरक्षण प्राप्त करते हैं॥

१० हे वीरोंके आश्रय देनेवाले! तेरा गायका घातक और मनुष्यका घातक शस्त्र हमसे दूर रहे। हम सबके लिये तेरा उत्तम मन प्राप्त हो। और हम सबको सुखी कर। हे देव! हमें और उपदेश कर तथा दो तुरोंवाला तूं हम सबके लिये शांति प्रदान कर॥

११ रक्षाकी इच्छा करनेवाले हम सब कहते हैं कि इस प्रकारके वीरके लिये हमारा नमस्कार है। मरनेतक लडनेवाले वीरोंके साथ रहनेवाला यह महावीर हमारी प्रार्थना सुने। मित्र, वरुण, अदिति, सिंधु, पृथिवी और द्युलोक हम सबको उस प्रकार हमारी उस इच्छाका अनुमोदन करें॥

रुद्र सूक्तकी व्याख्या

१।११४ सूक्तमें 'रुद्र' शब्दके अनेक अर्थोंमें एक अर्थ 'वैद्य' है। क्योंकि इस सूक्तके मंत्र ५ में लिखा है कि "रुद्र हाथमें रोगनिवारक औषधियां धारण करता हुआ, मनुष्योंको आन्तरिक शांति, बाह्य संरक्षण और प्राप्त रोगोंका वमनविरेचनादिद्वारा निवारण करता है।"

इस सूक्तका 'रुद्र' मुख्य देवता है, परंतु अंतिम मंत्रमें मित्र, वरुण अदिति, सिंधु, पृथिवी और द्यौ ये देवताओंके नाम आये हैं। इनका विचार अंतिम मंत्रके विचारके समय किया जायगा।

मंत्र १– नगरका आरोग्य– ग्राम, नगर, पत्तन, पुरी आदिमें रहनेवाले मनुष्योंको तथा इतर प्राणिमात्रोंको आरोग्यसंपन्न रखकर, हृष्टपुष्ट, सुदृढ और उत्साही रखना राज्यके आरोग्यविभागका कर्तव्य है। यह बात इस प्रथम मंत्रमें स्पष्टतासे कही है। जो इस प्रकार नागरिक आरोग्यकी व्यवस्था उत्तम प्रकारसे करता है, *अथवा नागरिक आरोग्य* ठीक करनेके प्रबंधोंका उपदेश नगरवासियोंको करता है, उसीकी प्रशंसा करना योग्य है, यह इस मंत्रका तात्पर्य है। नगरवासियोंको उचित है कि वे इस प्रकारके प्रबंधकर्ताको नागरिक स्वास्थ्य-विभागकी व्यवस्थापर नियुक्त करें और उसकी संमतिके अनुसार नगरवासियोंके स्वास्थ्यकी रक्षा करें।

नागरिक स्वास्थ्यकी परीक्षा

नागरिक आरोग्यकी परीक्षा नगरवासियोंके आयुर्मर्यादासे होती है। सवा सौ वर्षतक आयुवाले मनुष्य जिस नगरमें अधिक रहते हैं, उस नगरका आरोग्य उत्तम है। सौ सौ वर्षके करीब आयुवाले मनुष्य जिस नगरमें रहते हैं, उस नगरका आरोग्य मध्यम समझना उचित है, तथा इससे अल्प आयुमें जिस नगरमें मृत्यु होती है, उस नगरका आरोग्य निकृष्ट है, ऐसा

मानना उचित है ।

इस प्रथम मंत्रमें कई शब्दोंका विशेष मनन करना आवश्यक है । देखिये निम्न शब्द—

(१) तवस्— वृद्ध, बलवान्, शक्तिशाली; बडा, महान् । वैद्य वृद्ध और धैर्यवान् होना चाहिए । वृद्ध होनेका तात्पर्य अनुभव प्राप्त होनेमें है । जिसको अधिक अनुभव होता है, वही अच्छा वैद्य होता है । वही नागरिक-स्वास्थ्य-विभागमें कार्य करनेके लिये योग्य है ।

(२) क-पर्दिन्— (कुत्सितं पर्दयति गमयति) 'पर्द्' धातुका अर्थ 'पेटकी हवामें गति उत्पन्न करके उस बुरी हवाको अपानरूपमें परिणत करके नीचे फेंकना' है । 'क' शब्दका अर्थ 'बुराई' है। पेटमें जो बुरी हवा होती है, उसको अपानवायुके रूपमें बाहिर निकालना 'क-पर्दिन्' का कार्य है । बुरा वायु भरनेसे पेट फूल जाता है, और रोगीको बडा कष्ट होता है । इसलिये औषधियोजनाद्वारा अपानवायुको ठीक प्रकार रखनेका कार्य वैद्यका है। इस अर्थसे यह नाम वैद्यके लिये आता है।

'कपर्द' का दूसरा अर्थ शिखा है । जो शिखा धारण करता है उसको भी 'कपर्दिन्' कहते हैं । जटाधारी, शिखाधारी, बडी शिखावाला ।

'पृथ्, पृद्' धातुका अर्थ 'गति देना, फेंकना' है । बुरी अवस्थामें रहे बीमारको भी जो औषधोंद्वारा हलचल करनेकी शक्ति देता है । अथवा शरीरके अंदर प्राप्त हुए विषम पदार्थोंको अथवा कुत्सित पदार्थोंको बाहिर फेंकता है । उसका भी नाम 'क-पर्द' होता है ।

'पर्द्' धातुका लंघन करना अर्थ है । बुरी अवस्थामें पडे हुए बीमारको लंघनद्वारा जो ठीक करता है उसका 'कपर्द, कपर्दिन्' नाम होता है । इस शब्दके विविध अर्थ हैं इसलिये पाठकोंको विचार करना चाहिए कि यहां कौनसा विवक्षित है ।

(३) क्षयद्-वीर- 'क्षय, क्षयत्,' आदिका अर्थ निवास करनेवाला, आश्रय देनेवाला है ।'वीर' शब्दका अर्थ शत्रुका निवारण करनेवाला प्रतिबंधक, अथवा निवारक है । जो वीरोंको आश्रय देता है, वह क्षयद्वीर है ।

'क्षयद्वीर' शब्दके अनेक अर्थ हैं । 'क्षयत्' शब्दका 'निवासक' ऐसा अर्थ होता है । 'क्षि' धातुका 'निवास करना, रखना, रहना' यह अर्थ है । 'वीरोंका निवासक' ऐसा इसका आशय होता है । मनुष्यों पर शासन करनेवाला, वीरोंका नायक, शूरोंका सेनापति आदि अर्थ इसके होते हैं ।

श्री सायणाचार्यजी इसका अर्थ निम्न प्रकार करते हैं ।

(१) 'निवसद्भिः......वीरैः पुत्रादिभिरुपेतः ।' (ऋ. ८।१९।१०) वीर अथवा पुत्रोंके साथ रहनेवाला । (२) 'यस्मिन्त्सर्वे वीराः क्षीयन्ते। (ऋ. १।१०६।४)जिसमें सब वीर होते हैं । (३) 'क्षयन्तो विनश्यन्तो वीरा यस्मिन्...... । यद्वा क्षयतिरैश्वर्यकर्मा । क्षयन्तः प्राप्तैश्वर्या वीराः ...पुत्राः......यस्य ।' (ऋ. १।११४।१) जिसमें वीर नष्ट होते हैं । अथवा 'क्षि' धातुका अर्थ ऐश्वर्यवान् होना है । जिसके वीर पुत्र ऐश्वर्यवान् हुए हैं ।

श्री महीधराचार्य 'क्षयन्तो निवसन्तो वीरा यत्र ।' (वा. य. १६।४८) जिसके साथ शूर रहते हैं । किंवा 'क्षयन्तो नश्यन्तो वीरा रिपवो यस्मात् ।'(वा.य.१६।४८)जिसके कारण शत्रु नाशको प्राप्त होते हैं, ऐसा अर्थ करते हैं ।

'शत्रुका नाश करनेवाला' यह अर्थ वैद्यके विषयमें भी ठीक लग सकता है । रोगरूपी शत्रुओंका नाश करनेवाला वैद्य होता है । शत्रुका निवारण करनेवालेको भी वीर कहते हैं ।

श्री० स्वा० दयानंद सरस्वतीजी निम्नप्रकार अर्थ करते हैं ।

'क्षयन्तो दोषनाशका वीरा यस्य ।' (ऋ. १।११४।१) जिसके दोषोंके नाश करनेवाले वीर पुरुष विद्यमान हैं ।

पाठकोंको उचित है, कि वे इन सब अर्थोंका मनन करके संपूर्ण मंत्रका आशय समझ लें ।

मंत्र २- स्वास्थ्य और व्याधि-निवारण— इस मंत्रमें 'शं' और 'योः' ये दो शब्द मुख्य हैं । 'शं' शब्द स्वास्थ्य, नीरोगता, मानसिक शांति आदि भाव बताता है और 'योः' शब्द बाहिरसे आनेवाले आपत्तियोंको रोकना बताता है ।

शं-रोगाणां शमनं,
योः-भयानां यावनं । } इति सायणाचार्यः।(ऋ. १।११४।२)

पहिला शब्द नीरोगताकी अवस्था बताता है और दूसरा शब्द आनेवाले आपत्तिका प्रतिबंध बताता है । मनुष्यको अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करना उचित है तथा भविष्यकालमें रोगोंका उपद्रव न होनेकी व्यवस्था करना भी उचित है। शांति और रोगप्रतिरोधक शक्ति हरएक मनुष्यको प्राप्त करना उचित है ।

पिता मनुः— शब्द विशेष महत्त्वपूर्ण है । 'मनु' शब्द मननशील मनुष्यका वाचक है । संरक्षण करनेवालेका

नाम लिया है । अपनी रक्षा करनेवाला तथा विचारपूर्वक अपना व्यवहार करनेवाला मनुष्य अपना स्वास्थ्य ठीक रख सकता है । यह भाव इन शब्दोंद्वारा इस मन्त्रमें सूचित किया है । मनुका मनुष्यमात्र ऐसा अर्थ कोशामें है । विचारशक्ति भी इसका एक अर्थ है ।

नीति- मार्ग बताना। **प्रणीति** (प्र- नीति) विशेष प्रकारसे व्यवहार करना । आचार व्यवहार विशेष रीतिमे विधिनियमपूर्वक करनेका तात्पर्य इस शब्दसे बोधित होता है । स्वास्थ्य-रक्षाके विशेष तत्वोंका शास्त्र इस शब्दमें सूचित होता है । वैद्यको उचित है कि वह सबको स्वास्थ्य-नीतिका उपदेश करे और लोगोंको उचित है कि वे स्वास्थ्य-नीतिके अनुसार अपना आचारव्यवहार करते रहें ।

मंत्र ३- सब प्रजाका आरोग्य- उदार वैद्यकी संमति के अनुसार सब लोक आचरण करें । यह सूचना इस मंत्रके, पूर्वार्धमें है । उदार वैद्यही योग्य सूचना कर सकता है । स्वार्थी वैद्य अपने स्वार्थके कारण लोगोंको ठीक उपदेश नहीं देगा । इसलिये उदार परोपकारी वैद्यका उपदेशही सबको सुनना उचित है ।

देव-यज्या— इस मंत्रमें यह शब्द विशेष अर्थसे प्रयुक्त किया है । '**देव**' शब्दका 'इंद्रिय' अर्थ है । 'यज्' का अर्थ 'सत्कार-संगति दान' है । इंद्रियोंका सत्कार करना अर्थात् इंद्रियोंकी प्रसन्नता रखना । विद्वानोंका सत्कार, तथा पृथिवी जल, वायु आदिकी प्रसन्नता रखना भी इसका अर्थ है । वास्तविक मनुष्योंका कल्याण इंद्रियों, विद्वानों तथा जलवायु आदिकोंकी प्रसन्नतापर निर्भर है । यही देवयजन है ।

अरिष्टवीर— 'अरिष्ट-वीर' का अर्थ दुःखोंका निवारण करना है । तथा 'अ-रिष्ट-वीर' का अर्थ जिसके शूरवीरोंका नाश नहीं हुआ है । दोनों अर्थोंके साथ इस मंत्रका विचार करना चाहिए ।

हविः— हविका मुख्य यौगिक धात्वर्थ 'दान' है क्योंकि दान अर्थके 'हु' धातुसे यह शब्द बनता है । (हु-दान-आदानयोः) इसलिये 'दान' ऐसा इसका मुख्य अर्थ है, और यज्ञ, जल, घी, हवनसामग्री आदि अर्थ लाक्षणिक हैं । वैद्यकी सहायताके लिए उसको उचित दान देना सबको योग्य है, यह आशय मन्त्रके अंतिम भागका है ।

मंत्र ४- क्रोधादि विकारोंको दूर रखो— आरोग्यके लिये क्रोध, द्वेष आदि विकारोंको दूर रखना उचित है । क्रोध आदि दुष्ट मनोविकार आरोग्यका सर्वथा घात करते हैं । क्रोधके कारण शीघ्रही, तारुण्यमेंही वृद्ध अवस्था प्राप्त होती है । इसलिये इन सब मनोविकारोंको दूर करना उचित है । यही भाव-

आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु ।

'दूर हमारेसे इंद्रियोंका क्रोध फेंका जावे ।' ऐसा इस मंत्र-भागमें कहा है । हेळ, हेड, द्वेषका भाव यहां है ।

हेड— शब्दका अर्थ अनादर, अपमान, भूल, चूक, निर्बलता; भूल जाना, अधुरा छोडना । ये सब भाव बुरे हैं, इसलिये इन सब भावोंको दूर करना चाहिए, तभी स्वास्थ्य ठीक हो सकता है । मनकी शुद्ध अवस्थापर स्वास्थ्य निर्भर है । इसलिये बुरे भावोंको दूर करके मनको शुद्ध करना आवश्यक है ।

द्वेष आदि बुरे भावोंको दूर करना और '**सुमति**' को मनमें स्थापन करना, यही आरोग्यका मुख्य साधन है, जो इस मंत्रके उत्तर अर्धने बताया है ।

मंत्रके प्रथम अर्धमें वैद्यके कई गुण वर्णन किये हैं । तेजस्वी, सत्कर्मका साधन करनेवाला, फुर्तिला ज्ञानी वैद्य चाहिए । निस्तेज, मरियल, दुराचारी, आलसी, अनपढ जो होगा उसके पास कोई भी न जायँ, क्योंकि उससे अच्छा आरोग्य प्राप्त नहीं हो सकता ।

मंत्र ५- औषधियोंकी योजना— इस मंत्रका अर्थ युरोपीयन पंडित बडा विलक्षण करते हैं । '**दिवो वराहं**' ये दो पद अलग मानकर उन्हींका अर्थ आकाशका जंगली सूअर, ऐसा करते हैं । (देखिए म. ग्रिफिथ साहबका अंग्रेजी भाषांतर ऋ. १।११४।५) डा. मूर साहब आकाशका लाल सूअर, ऐसा अर्थ करते हैं । परंतु यहां '**वराह**' का अर्थ सूअर नहीं है ।

श्री सायणाचार्य '**वराह**' का अर्थ (१) '**वराहं वराहारं उत्कृष्ट-भोजन**' उत्तम भोजन करनेवाला, ऐसा करते हैं । और (२) '**वराहवद् दृढांगं**' सूअरके समान जिसका बलवान् शरीर है, ऐसा भी करते हैं ।

'वर+आहार' शब्दोंसे 'वराह' शब्द बनाया जाता है, इसलिये यहां अर्थ इस स्थानपर उचित है । वैद्यप्रकरणमें योग्य, पथ्य और उत्तम श्रेष्ठ भोजनका संबंध प्रकरणानुकूलही है ।

इस मंत्रके पूर्वार्धमें तेजस्वी और सुंदर वैद्यकोही बुलानेको कहा है । वैद्य यदि कुरूप, मरियल, बीमार, अशक्त, दुर्बल हुआ तो उसके व्यक्तित्वका असर रोगीपर क्या हो सकता है ?

वैद्यके सुंदर और प्रसन्न मूर्तिको देखकर रोगीके मनमें यह भाव आ सकता है कि, 'हां, यह वैद्य मुझे नीरोग बना सकता है।' इसलिये मंत्रमें जो कहा है कि सुंदर और तेजस्वी वैद्यकोही बुलाओ, वह बिलकुल योग्य है। वैद्यके सुंदर मूर्तिका तथा प्रसन्नवदनका परिणाम रोगीके मनपर निश्चयसे अच्छा हो सकता है।

'वैद्य अपने हाथमें रोगनिवारक औषधियां लेकर आता है।' यह बात मंत्रमें आगे कही है। जिस समय वैद्य बीमारके पास जाता है उस समय उसके साथ थोडीसी उत्कृष्ट औषधियाँ अवश्य रहनीं चाहिए। रोगीकी अवस्थाके अनुकूल यदि कोई औषधि वैद्यके प्रेममय हाथसे रोगीको प्राप्त होगी, तो उसका परिणाम बहुतही अच्छा हो सकता है। रोग दूर करनेमें मनकी अवस्थाका विचार करना वैद्यका मुख्य कार्य है। यदि रोगीका निश्चय हो जायगा, कि 'अब मैं अच्छा हो रहा हूं,' तो उस मानसिक अवस्थासे ठीक होनेका मार्ग सुगम हो जाता है।

'शर्म' नाम उस अवस्थाका है कि, जो आरोग्यसे मानसिक शांति प्राप्त होती है। 'वर्म' नाम उस शक्तिका है कि जो बाहरसे आनेवाले बीमारीको रोकती है। वीरोंके कवचका नाम वर्म' होता है, इसलिये कि उससे शत्रुके शस्त्रोंका आघात शरीरपर नहीं होता और शरीरका बचाव उससे होता है। शरीरकी 'वर्म' शक्ति भी वही है कि जो रोगोंके आक्रमणसे शरीरका बचाव करती है। वमन विरेचन स्वेदन आदिको 'छर्दि' कहते हैं। शरीरमें प्रविष्ट हुए विषको बाहर निकालना 'छर्दि' का तात्पर्य है। (छर्द्- वमने) वमन अर्थात् कय करना, (छृद्- संदीपने) संदीपन और दीप्ति अर्थात् भूख प्रदीप्त करना तथा इन दो कर्मोंद्वारा शरीरके सब व्यवहार ठीक करना 'छर्दि' का तात्पर्य है। मनको शांत रखना, बाहरसे आनेवाले विषोंका प्रतिबंध करना तथा शरीरमें प्राप्त हुए विषोंको बाहर निकालना और इन तीन प्रकारोंसे प्राणिमात्रका स्वास्थ्य ठीक रखना वैद्यका कर्तव्य है।

मंत्र ६ — मनुष्योंके लिये योग्य अन्न— 'मरुत, मर्त्य, मर्य, मर्त' आदि शब्द एकही गोत्रके हैं और इनका अर्थ 'मरणधर्मवाला मनुष्य' ऐसा है। **'मरुतां पिता'** इन शब्दोंका अर्थ 'मनुष्योंका संरक्षक' इतनाही यहां है। वैद्य मनुष्योंका संरक्षण करता है, इस विषयमें किसीको शंका नहीं हो सकती। क्योंकि मनुष्योंका आरोग्य वैद्यके उपदेशपर बहुत अंशमें निर्भर है।

इस मंत्रके पूर्वार्धमें 'वैद्यको सबसे मीठा उपदेश' किया है और सूचित किया है, कि वैद्यकी भलाई अथवा उन्नति इसी बातसे होगी। वह मीठा उपदेश यही है कि 'रोगी मनुष्योंके लिये मनुष्योंके योग्य अन्न (मर्त-भोजनं) ही दिया जावे।' कई वैद्य रोगीको हिंस पशुके योग्य अन्न देते हैं। ऐसा करना योग्य नहीं है। मनुष्य फलभोजी, शाकाहारी तथा धान्यभोजी प्राणी है, इसलिये उसको पथ्य ऐसाही कहना चाहिए कि जो उसके लिये योग्य हो। और इस प्रकारके योग्य अन्नद्वारा बालबच्चोंको तथा बडे मनुष्योंको भी आरोग्य प्राप्त कराके सुखी करना चाहिए।

मंत्रके उत्तरार्धमें 'अ-मृत' शब्दसे वैद्यको संबोधित किया है। लोगोंको मृत्युसे दूर रखनेका कार्य वैद्यका है, यह बात इस शब्दसे सूचित होती है।

मरुत्‌का अर्थ मरनेतक उठकर लडनेवाला वीर भी है। यह अर्थ लेकर इसका वीरोचित अर्थ भी पाठक देखें।

मंत्र ७-८- वैद्य प्रमाद न करे— वैद्यके भूल अथवा दोषसे, आलस्यसे, क्रोध और अज्ञानसे रोगी मर जाते हैं। इसलिये सदा सावध रहनेकी जिम्मेवारी वैद्यपर है। इन दोषोंके कारण यदि किसीकी मृत्यु हो गई, तो उसका उत्तरदाता वैद्य होगा। यह बात अष्टम मंत्रके उत्तरार्धसे सूचित की है।

मंत्र सातमें यह आशय है, कि वैद्य अपनी असावधानताके कारण न किसीको क्रूश करे तथा न किसीका घात करे। वैद्यकी थोडीसी भूलके कारण दूसरोंके बालबच्चे अथवा मातापिता मृत्युके वशमें होना कोई अशक्य बात नहीं है। इसलिये वैद्यको उचित है कि वह सदा सावध रहे।

न केवल मनुष्यों परंतु पशुओंके विषयमें भी वैद्यको बडी दक्षता धारण करना चाहिए। दक्षता और सावधानता न रखनेके कारणही वैद्य बडेबडे प्रमाद कर सकता है और वैद्यके दोषके कारण दूसरोंको मरना पडता होता है।

'भामितो मा वधीः।' अर्थात् मनके दोषोंके कारण दूसरोंका वध न कर। यह वाक्य यहां मुख्य है। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, चित्तका वेग अथवा क्षोभ आदिके कारण किसीका वध नहीं होना चाहिए। सब वैद्योंको उचित है कि वे इस उपदेशकी ओर अपना विशेष ध्यान देवें। अपने पास जितना समय हो उतनेही बीमार देखें। पैसेके लालचसे रोगियोंका घातपात न करें॥

मंत्र ९-१०— वैद्यकी संमति— मंत्र ९ में गवालिया की उपमा वैद्यके लिये दी है। गौवोंकी रक्षा करता हुआ गवालिआ जिस प्रकार गौवोंको बुरे मार्गसे बचाता है, उस प्रकार वैद्य सब जनताको बीमारियोंसे योग्य उपदेशद्वारा बचावे। वैद्यकी संमतिही सच्चा कल्याण करनेवाली है। वैद्यकी संमतिसे संरक्षित होते हुए मनुष्य रोगोंसे बच सकते हैं। वैद्यको उचित है, कि वह सबको आरोग्यके मार्गका उपदेश करे और लोगोंको भी उचित है, कि वे वैद्यके उपदेशके अनुसार अपना व्यवहार करें।

मंत्र ११— जनताकी उन्नति- 'नः ममहन्तां' हम सबकी उन्नति होवे। सब मनुष्योंके मनमें यही भाव रहना चाहिए। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, आरोग्यविषयक, आयुष्यके संबंधमें तथा अन्य सब प्रकारसे मनुष्यमात्रकी उन्नति होना चाहिए। उत्तम नियमोंका आचरण करता हुआ मैं हरएक प्रकारकी उन्नति अवश्य प्राप्त करूंगा, ऐसाही विचार हरएकको अपने मनमें धारण करना चाहिए। दोषोंके कारण अवनति और निर्दोषतासे उन्नति होती है। इसलिये जहाकी उन्नति प्राप्त करना है वहा पूर्णताकी स्थापना करके वहांके दोषोंको दूर रखना सबको उचित है।

उन्नति करनेवाले मित्र, वरुण, अदिति, सिंधु, पृथिवी और द्यौः ये देव हैं। (१) **पृथिवी-** शब्दसे भूमि, मातृभूमी, अपना देश, राष्ट्र, अपनी जमीन आदि भाव व्यक्त होता है। (२) **सिंधु—** शब्दसे नदी, जल, समुद्र आदि पदार्थ बोधित होते हैं। (३) **द्यौ—** शब्दसे आकाश, वायु, सूर्य आदि पदार्थ ध्वनित होते हैं। (४) **अ-दिति-** शब्दसे बुद्धि, स्वातंत्र्य, स्वाधीनता, पवित्रता, नीरोगता, वक्तृत्व, गाय, दूध आदि पदार्थ सूचित होते हैं। (५) **मित्र—** शब्दसे मित्र, हित करनेवाला, प्राण आदिका बोध होता है। (६) **वरुण—** शब्दसे वरिष्ठ, श्रेष्ठ, समुद्र, जल, अंतरिक्ष, सूर्य आदिका बोध होता है॥

ये सब पदार्थ मनुष्यमात्रकी उन्नति करनेमें सहायता देते हैं। मनुष्यको चाहिए कि वह इन पदार्थोंद्वारा अपनी उन्नतिका साधन करे। पुरुषार्थ करनेवाला उन्नति प्राप्त कर सकता है। पुरुषार्थके विना उन्नति प्राप्त होना असंभव है। उक्त पृथिवीआदि शब्दोंके प्रत्येक शब्दसे एकएक पदार्थ सूचित होता है, अथवा अनेकपदार्थ सूचित होते हैं. इसका विचार इस समयतक निश्चित नहीं हुआ। इस मंत्रका उत्तरार्ध ऋग्वेदमें २० वार, और वा० यजुर्वेदमें दो वार आया है। इतने वार आनेके कारण इसका महत्त्व विशेष है। इसलिये इसपर विशेष विचार होना चाहिए। आशा है कि पाठक भी विचार करेंगे।

इस स्थानपर रुद्रदेवताका एकही भाव लेकर विवरण किया है। नागरिकोंका स्वास्थ्य, रोगनाश, आरोग्यप्राप्ति, बलप्राप्ति, पोषण, आदिका भाव प्रथम मंत्रमें स्पष्टही है। नगरके आरोग्यरक्षक वैद्यका भाव यहां प्रतीत होता है। रुद्रके अनेक अर्थोंमें एक यह अर्थ है। परंतु रुद्रके अनेक भाव हैं। शत्रुओंको (रोदयति अमित्रान्) रुलानेवाला महावीर रुद्र है। ये महावीर भी शत्रुओंको दूर रखकर नागरिक जनोंको शान्तिकेसाथ रहनेमें सहायक होते हैं। रक्षक वीर न रहे तो आततायी खडे होंगे और सर्व साधारण जनतापर आतंककी वृष्टि करेंगे, इसलिये राज्यशासनमें दण्ड अत्यन्त आवश्यक है। दण्डके विना कोई राज्यशासन नहीं चल सकता और जनता शान्त और स्वस्थ भी नहीं रह सकती।

पञ्चम मंत्रमें (भेषजा) औषधियोंका वर्णन नागरिक आरोग्यताकोही बता रहा है। सातवें और आठवें मंत्रमें कोई कृश न हो, कोई अकाल मृत्युसे न मरे आदि जो कहा है, वह नागरिकोंके उत्तम स्वास्थ्यका आदर्श है। प्रयत्नसेही यह हो सकता है।

यह सूक्त सब प्रकारके नागरिक स्वास्थ्यका वर्णन करता है। वैद्यसे रोग-निवारण, रक्षकोंसे दुष्टोंका निवारण, उपदेशकोंसे वैयक्तिक दुष्ट-विचारोंका निर्मूलन करनेसे सर्वत्र शान्ति सुख स्थापित हो सकता है। यही इस सूक्तका ध्येय है। पाठक इस सूक्तका सर्व अंगोंसे मनन करें और बोध प्राप्त करें॥

॥ यहां रुद्र-प्रकरण समाप्त हुआ ॥

[९] सूर्य-प्रकरण

(१९) जगत्प्रदीप सूर्य

(ऋ. १।११५) कुत्स आङ्गिरसः । सूर्यः । त्रिष्टुप् ।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आऽप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ×१

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् +२

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ३

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै @४

अन्वयः— १ देवानां अनीकं, मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चित्रं चक्षुः उद्गात् । (तत्) द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं आ अप्राः । सूर्यः जगतः तस्थुषः च आत्मा ॥

२ सूर्यः देवीं रोचमानां उषसं, मर्यो योषां न, पश्चात् अभ्येति । यत्र देवयन्तः नरः युगानि (तत्र) वितन्वते भद्रं प्रति भद्राय ॥

३ सूर्यस्य अश्वाः भद्राः हरितः चित्राः अनुमाद्यासः एतग्वाः । नमस्यन्तः दिवः पृष्ठं आ अस्थुः । द्यावापृथिवी सद्यः परि यन्ति ॥

४ सूर्यस्य तत् देवत्वं । तत् महित्वं । कर्तोः मध्या विततं सं जभार । यदा इत् हरितः सधस्थात् अयुक्त, आत् रात्री वासः सिमस्मै तनुते ॥

अर्थ— १ देवोंका मुख्य तेज, मित्र वरुण और अग्निका विलक्षण नेत्र (ऐसा यह सूर्य अब) उदय हुआ है । (इसने) द्युलोक, पृथ्वीलोक और अन्तरिक्षलोकको (प्रकाशद्वारा) भरपूर व्याप लिया है । सचमुच सूर्य जंगम और स्थावरका आत्माही है ॥

२ सूर्य प्रकाशमान् उषादेवीके पीछेसे जाता है, जिस तरह (युवा) पुरुष (युवती) स्त्रीके (पीछेसे जाता है)। जहां देवत्व-प्राप्तिके इच्छुक मनुष्य योग्य कर्म (करते हैं, वहां) उनका एक कल्याणसे दूसरा अधिक कल्याण करनेके लिये (यह सूर्य प्रकाशता है) ॥

३ सूर्यके अश्व (किरण) कल्याण करनेवाले, जलहरण करनेवाले, आनंद देनेवाले और सतत गतिमान् हैं । नमस्कार लेते हुए वे द्युलोकके पृष्ठपर फैलते हैं । वे द्युलोक और पृथ्वीलोकपर तत्कालही फैलते हैं ॥

४ सूर्यका वह देवपन है और वही महत्व है । (मनुष्य का) कार्य मध्यमें रहते (हुए भी) अपने फैले हुए किरण (वह) इकट्ठे करता है (और अस्त हो जाता है)। जब इसके किरण (घोडे) द्युलोकसे वह (अपने रथको) जोडता है, तब रात्रि अपना काला वस्त्र सब (विश्व) पर फैलाती है ॥

× अथर्व. ११,२,१५; २०,१०७,१४ ।
+ ,, २०,१०७,१५ ।
@ ,, २०,१२३,१ ।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ×५
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ६

५ तत् मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे द्योः उपस्थे सूर्यः रूपं कृणुते। अस्य हरितः अनन्तं रुशत् अन्यत् पाजः सं भरन्ति, कृष्णं अन्यत् ॥

६ हे देवाः ! अद्य सूर्यस्य उदिता अवद्यात् अंहसः निः निः पिपृत। नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

५ वह मित्र और वरुणका रूप दीखे, इसलिये द्युलोकके समीप सूर्य अपना रूप प्रकट करता है। इसके किरण (घोडे) अनंत तेजस्वी ऐसा एक प्रकारका रूप (दिनके समय) धारण करते हैं और दूसरा काला (रूप रात्रिके समय धारण करते हैं)।

६ हे देवो ! आज सूर्यके उदयके समयही आप संकटसे और पापसे हमारी सुरक्षा कीजिये और यह हमारी इच्छा मित्र आदि देवोंद्वारा अनुमोदित हो जावे ॥

उषाके पश्चात् सूर्य

उषाके पश्चात् सूर्यका उदय होता है। इस सूक्तमें सूर्यका वर्णन है। सूर्यका उदय हुआ है, सबके आखोंको प्रकाशका मार्ग दीखने लगा है। सूर्य स्थावर जंगम वस्तु जातका आत्माही है। सूर्य न रहा तो कुछ भी नहीं रहेगा।

सब प्रकारका जीवन सूर्यसेही मिल रहा है मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, वनस्पति, औषधि, तृण आदि सबका जीवन सूर्यके प्रकाशपरही अवलंबित है।

प्रथम उषा देवी आती है, उसके पश्चात् सूर्य आता है। इसलिये कविने रूपक किया कि तरुणीके पीछे तरुण भाग रहा है। ब्रह्माका अपनी पुत्रीके पीछे भागनेकी कथा भी इसी दृश्यपर रची है। सूर्यप्रकाशसेही सब मानवोंके उत्तमसे उत्तम कल्याणकारी यज्ञ सिद्ध होते हैं। इसीलिये कहते हैं कि 'यह सूर्य मनुष्योंके कल्याणके कर्म कराता है।'

सूर्यके किरण रोगबीजोंका नाश करके मानवोंको आरोग्य देते हैं, इसलिये कल्याणकारी हैं, जलका हरण करके अन्तरिक्षमें बादलोंका निर्माण करते और वृष्टि भी कराते हैं। येही सब शुभ कर्मोंके प्रेरक हैं।

सूर्यप्रकाशमें मनुष्य सब अच्छे कर्म करते हैं, पर यह सूर्य किसीके लिये ठहरता नहीं। समयपर अपने किरण समेटता है और चला जाता है और लोगोंको अपने कर्म बंद करके चुप रहना पडता है। इसलिये वे सूर्यका उदय होनेतक विश्राम करते हैं।

सूर्य द्युलोकपर आगया तो सबके लिये प्रकाश होता है और अस्तको गया तो रात्रि होती है। प्रकाशमय दिन और अंधकारमयी रात्रि ये दोनों रूप सूर्यकेही दो रूप हैं। सूर्यसे होनेवाले ये कालखण्ड हैं।

यह सूर्य मानवोंका संरक्षक है। वह संकटों, आपत्तियों और रोगोंसे मानवोंकी सुरक्षा करता है। इसीलिये वह सबका उपास्य है।

सूर्य जैसा सबको प्रकाशका मार्ग दिखाता है, वैसाही विद्वान् सबको सच्चा उन्नतिका मार्ग दिखावे। मानवके सम्मुख सूर्यका आदर्श वेदने रखा है। सावित्रीकी उपासनाका तत्त्व यही है। यही सूर्य उपासना है। गायत्रीमंत्रका रहस्य भी सूर्यभक्तिही है। श्रेष्ठ ब्रह्मचारी 'आदित्य ब्रह्मचारी' ही कहलाता है। अस्तु। इस तरह यह सूक्त बडा बोध दे सकता है। पाठक इसका मनन करें और बोध अपना लें ॥

॥ यहां सूर्य-प्रकरण समाप्त हुआ ॥

× अथर्व. २०,१२३,२।

[१०] सोम-प्रकरण

(नवम मण्डल)

(२०) सोम

(ऋ. ९।९७ ४५–५८) पवमानः सोमः। कुत्स आङ्गिरसः। त्रिष्टुप्।

१ सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः।
आ योनिं वन्यमसदत्पुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत्समद्भिः ४५

२ एष स्य ते पवत इन्द्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान्।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि ४६

३ एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन् ४७

४ नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा ४८

अन्वयः— १ सुतः वाजी सोमः धारया, अत्यः न, हित्वा सिन्धुः न, निम्नं अभि अक्षाः। पुनानः वन्यं योनिं आ असदत्। इन्दुः गोभिः सं, सं अद्भिः असरत् ॥४५॥

२ हे इन्द्र! उशते ते धीरः तवस्वान् स्यः एषः सोमः चमूषु पवते। स्वर्चक्षाः रथिरः सत्यशुष्मः यः देवयतां कामः न असर्जि ॥४६॥

३ प्रत्नेन वयसा पुनानः, दुहितुः वर्पांसि तिरः दधानः, त्रिवरूथं शर्म वसानः, एषः अप्सु, होता इव, रेभन्, समनेषु याति ॥४७॥

४ हे देव सोम! रथिरः त्वं नः चम्वोः पूयमानः अप्सु नु परि स्रव। स्वादिष्ठः मधुमान् ऋतावा सविता यः देवः न सत्यमन्मा ॥४८॥

अर्थ— १ निचोडा हुआ बलवर्धक सोमरस धारासे, घोडेके समान और उतारपरसे चलनेवाली नदीके समान, वेगसे चलता है। छाना जानेपर काष्ठके पात्रमें जाकर रहता है। यह सोमरस गोदुग्धके साथ, तथा जलके साथ, मिलता है ॥ ४५ ॥

२ हे इन्द्र! इच्छा करनेवाले तेरे लिये यह बुद्धिवर्धक और बलवर्धक सोमरस पात्रोंमें छाना जाता है। तेजस्वी दृष्टि-वाला, रथवान्, सत्व-सामर्थ्यसे युक्त और देवत्व-प्राप्तिके इच्छुकोंकी कामनाके अनुसार जो (यह सोम) बनाया गया है ॥ ४६ ॥

३ प्राचीन अन्नरसके साथ छाना जानेवाला, द्युलोककी पुत्री (उषा)के आभूषणोंको भी आच्छादित करनेवाला, तीनों स्थानोंमें शान्ति रखनेवाला, यह जलोंमें (मिलाया जाता है) और स्तोताके समान शब्द करता हुआ, जलोंमेंही संचार करता है ॥ ४७ ॥

४ हे सोम देव! रथमेंसे आनेवाला तू हमारे पात्रोंमें छाना जाता हुआ जलोंमें मिल जा। रुचिकर, मधुर, सत्यपालक और प्रेरक ऐसा जो तू देव है, वही तू अपना सत्यपूर्ण विचार (हमारे पास आने दे) ॥ ४८ ॥

५ अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानोऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥ ४९

६ अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याऽभ्यश्वान् रथिनो देव सोम ॥ ५०

७ अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥ ५१

८ अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात् ॥ ५२

९ उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥ ५३

---

५ गृणानः वीती वायुं अभि अर्ष । पूयमानः मित्रावरुणा अभि । नरं धीजवनं रथेष्ठां अभि (अर्ष) । वृषणं वज्रबाहुं इन्द्रं अभि (अर्ष) ॥४९॥

६ हे सोम ! सुवसनानि वस्त्रा अभि अर्ष । पूयमानः सुदुघाः धेनूः अभि । चन्द्रा हिरण्या भर्तवे नः अभि । हे देव सोम ! रथिनः अश्वान् अभि (अर्ष) ॥५०॥

७ पूयमानः दिव्या वसूनि नः अभि अर्ष । पार्थिवा विश्वा अभि । येन द्रविणं अभि अश्नवाम । आर्षेयं जमदग्निवत् नः अभि (अर्ष) ॥५१॥

८ हे इन्दो ! अया पवा एना वसूनि पवस्व । मांश्चत्वे सरसि प्र धन्व । अत्र ब्रध्नः चित्, वातः न, जूतः पुरुमेधः चित् नरं तकवे दात् ॥५२॥

९ उत श्रवाय्यस्य श्रुते तीर्थे नः एना पवया अधि पवस्व । नैगुतः षष्टिं सहस्रा वसूनि, रणाय, वृक्षं न पक्वं धूनवत् ॥५३॥

५ स्तुति होनेपर पीनेके पूर्व वायुके साथ मिल जा । शुद्ध होनेपर मित्रावरुणोंके पास जा । नेता बुद्धिमान् और रथमें बैठनेवाले वीरके पास जा और बलिष्ठ वज्रबाहु इन्द्रके पास जा ॥ ४९ ॥

६ हे सोम ! उत्तम पहननेयोग्य वस्त्र हमें दे । छाना जानेपर उत्तम दूध देनेवाली गौवोंकेपास जा । उत्तम तेजस्वी सुवर्ण हमारे पोषणके लिये हमें मिले । हे देव सोम ! रथयुक्त घोडे हमें दे ॥ ५० ॥

७ छाना जाता हुआ तू दिव्य धन हमें ला दे । सब पृथ्वीपरकी संपत्ति हमें दे, जिससे हम सब धनका उपभोग लेंगे । ऋषियोंका तेज जमदग्निके समान हमें प्राप्त हो ॥ ५१ ॥

८ हे सोम ! इस शुद्ध धाराके साथ सब धन हमें दे । आह्लाददायक सरोवरमें (रहकर तू) धन्य हो । यहां (सबका) मूल आधार, वायुके समान (वेगवान्), पूजनीय, इन्द्रके समान वीर नेता (पुत्र) प्रगतिशीलको प्राप्त हो ॥ ५२ ॥

९ (हे सोम !) कीर्तिमान् सोमके प्रसिद्ध यज्ञमें हमारे समीप इस शुद्ध धारासे छाना जा । शत्रुओंका नाश करनेवाला (सोम) साठ सहस्र प्रकारके धन, युद्धमें विजयप्राप्तिके लिये, पक्व फलवाला वृक्ष हिलाते हैं उस तरह, हिलाकर हमें देदो ॥५३॥

१०. मह्रीमे अस्य वृषनाम शूषे माँश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ५४

११ सं त्री पवित्रा विततान्येष्यन्वेकं धावसि पूयमानः ।
असि भगो असि दात्रस्य दाताऽसि मघवा मघवद्भ्य इन्दो ५५

१२ एष विश्ववित्पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।
द्रप्साँ ईरयन्विदथेष्विन्दुर्वि वारमव्यं समयाति याति ५६

१३ इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समञ्जते रूपमपां रसेन ५७

१४ त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ५८

---

१० इमे अस्य महि वृषनाम शूषे । मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे । निगुतः अस्वापयत्, स्नेहयत् च । अमित्रान् अप अच । अचितः इतः अप ॥५४॥

११ हे इन्दो ! विततानि त्री पवित्रा सं एषि । पूयमानः एकं अनु धावसि । भगः असि । दात्रस्य दाता असि । मघवद्भ्यः मघवा असि ॥

१२ विश्ववित् मनीषी विश्वस्य भुवनस्य राजा एषः सोमः पवते । विदथेषु द्रप्सान् ईरयन् इन्दुः अव्यं वारं समया वि अति याति ॥५६॥

१३ महिषाः अदब्धाः इन्दुं रिहन्ति । कवयो न गृध्राः पदे रेभन्ति । धीराः दशभिः क्षिपाभिः हिन्वन्ति । रूपं अपां रसेन सं अञ्जन्ते ॥५७॥

१४ हे सोम ! पवमानेन त्वया भरे शश्वत् कृतं, वयं वि चिनुयाम । तत् नः मित्रः वरुणः अदितिः सिंधुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥५८॥

१० ये इसके दो बडे (कर्म हैं, एक शत्रुपर बाणोंका) वर्षण (करना और दूसरा शत्रुको) नम्र (करना, ये प्रजाको) सुख देनेवाले हैं । अश्वयुद्धमें तथा बाहुयुद्धमें (शत्रुका) वधही (होता है)। शत्रुओंको (मारकर यह सोम उनको) सुलाता है, अथवा भगाता है । शत्रुओंको भगा दो । अयाजकों-को यहांसे दूर करो ॥५४॥

११ हे सोम ! विस्तृत तीन छाननियोंपर तू चढता है । शुद्ध होनेवाला तू एक छाननीपर दौडता है । तू ऐश्वर्यवान् है । तू धनका दाता है । धनवानोंसे भी ऐश्वर्यवान् है ॥५५॥

१२ सर्वज्ञ, मननशील, सब भुवनोंका राजा यह सोम छाना जाता है । यज्ञोंमें बूंदोंसे गिरनेवाला सोम, उनकी छाननीमेंसे सब ओरसे टपक रहा है ॥५६॥

१३ महान् अहिंसनीय सोमका स्वाद (देव) लेते हैं । कवि लोग लुब्ध जनोंके समान पदका गान करते हैं । ज्ञानी लोग दसों अंगुलियोंसे रस निकालते हैं । वह सुंदर (रस) जलके रसके साथ मिला देते हैं ॥५७॥

१४ हे सोम ! छाने गये तुमके द्वारा युद्धमें सदाही (हमने बडे पराक्रम) किये, (उस यशोधनको) हम संगृहीत करके रखेंगे । यह हमारी इच्छा सफल करनेके लिये मित्र आदि देव अनुमोदन करें ॥५८॥

सोमरसका पान

सोमरसका पान करनेके विषयमें इस सूक्तमें निम्नलिखित निर्देश हैं—

१ रथिरः। (मं. २, ४) सोमवल्लीको रथमें रखकर यज्ञ-स्थानतक बडे समारोहसे लाते हैं।

पश्चात् इस सोमवल्लीको फट्टेपर रखकर पत्थरोंसे कूटते हैं, अच्छी तरह कुटा जानेपर—

२ धीराः दशभिः क्षिपाभिः हिन्वन्ति। (१३)— ज्ञानी लोग उस कूटे हुए सोमको दोनों हाथोंकी दसों अंगुलियों-से अच्छी तरह दबाते और उससे रस निकाल लेते हैं।

३ इन्दुः द्रप्सान् ईरयन्। (१२)— सोमसे इस समय रसकी बूंदें नीचे टपकने लगती हैं। इन बूंदोंकी आगे धारा बनती है—

४ अया पवा पवस्व। (८)— इस धारासे नीचे जा—

५ एना पवया अधिपवस्व। (९) ,, ,,

६ सुतः सोमः धारया निम्नं अभि अक्षाः (१)— सोमसे रस निचोडकर धारासे वह नीचे उतरता है, (सिन्धुः न) जैसी नदी नीचे आती है।

७ पुनानः वन्यं योनिं आसदत्। (१)— छाना जाकर लकडीके पात्रमें वह रहता है, रखा जाता है।

८ एषः सोमः चमूषु पवते (२)— यह सोम पात्रोंमें छाना जाता है।

९ चम्वोः पूयमानः। (४)— पात्रोंमें छाना जाता है, इस तरह छाननेके लिये यह—

१० इन्दुः अव्यं वारं वि अति याति। (१२)— सोमरस ऊनकी छाननीपरसे नीचे आता है, ऊनकी छननीसे, कंबलमेंसे छाना जाता है।

११ पूयमानः एक अनु धावसि वितता त्री पवित्रा सं यासि। (११) छाननेके समय एक छाननीसे वह रस नीचे दौडता है, और फैलाये तीन छाननियोंसे छाना जाता है। इस समय यह—

१२ इन्दुः अद्भिः सं असरत्। (१)— सोमरस जलके-साथ मिलाया जाता है।

१३ हे सोम! अप्सु परि स्रव। (४) हे सोम! जलके साथ मिल। सोम जलके साथ मिलाया जावे। इस तरह यह सोमरस जलके साथ मिलाया जाता है।

१४ रूपं अपां रसेन सं अङ्क्ते (१३)— सोमका रूप जलोंके रसके साथ मिल जाता है, रसमें जल मिलाया जाता है पश्चात्—

१५ इन्दुः गोभिः सं असरत्। (१)— सोमरस गौओंके साथ मिलकर चलता है, गौके दूधसे मिलाया जाता है।

१६ पूयमानः सुदुघाः धेनूः अभि अर्ष। (६)— छाना जानेवाला सोम उत्तम दूध देनेवाली गौओंके पास जाता है, गौओंके दूधसे मिलाया जाता है।

इस तरह जल और गोदुग्धके साथ सोमरस मिलनेके बाद वह–

१७ वीती वायुं अभि अर्ष। (५)— पीनेके पूर्व वायुमें उसे उण्डेला जाय। एक पात्रसे दूसरे पात्रमें सोमरस उण्डेल गया तो उसमें वायु मिलती है और पीनेके लिये स्वादु बनती है। पश्चात् यह मित्रावरुण, नेता अश्विदेव, बलिष्ठ इन्द्र आदि देवताओंको अर्पण किया जाता है और इसके पश्चात् ऋत्विज् इसका पान करते हैं।

१८ यह सोम (धीरः २) बुद्धिवर्धक, (तवस्वान् २) शक्ति बढानेवाला, (स्वःचक्षाः २) दृष्टि-शक्ति बढाने-वाला, (सत्य-शुष्मः) स्थिर बलवाला, स्थायी बल देनेवाला, (स्वादिष्ठः ४) रुचिकर, स्वादु, (मधुमान्) मीठा, (ऋतावा ४) सरल भाव बढानेवाला, (ब्रध्नः ८) मूल आधार, बलका आधारस्तंभ, (नैगुतः ९, निगुतः १०) शत्रुओंका नाश करनेवाला, (विश्ववित् मनीषी १२) सर्वज्ञ ज्ञानी, बुद्धिवर्धक ये सोमके गुण इस सूक्तमें वर्णन किये हैं।

१९ त्रिवरूथं शर्म यसानः। (३)— स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरोंमें शान्ति सुस्थिर करनेवाला है।

इसके पीनेसे शक्ति बढती है, शत्रुसे युद्ध किये जाते हैं और शत्रु परास्त किये जाते हैं–

२० नैगुतः षष्टिं सहस्रा वसूनि धूनयत्। (९)— शत्रुके साठ हजार प्रकारके धन बलसे प्राप्त किये, जिस तरह (वृक्षं न पक्वं) पक्व फलवाले वृक्षको हिलाकर फल प्राप्त किये जाते हैं, उस तरह शत्रुको हिलाकर उससे सब धन लाये गये।

२१ पवमानेन भरे कृतं, वयं चिनुयाम (१४)= सोम रसने युद्धमें बडा शौर्य दिखाया, उसके फलोंको हम इकट्ठा करके अपने पास रखते हैं।

२२ अस्य महि वृष-नाम (१०)= इस सोमके दो बडे कार्य हैं, एक (वृष) शत्रुपर बाणोंका वर्षण करना और (नाम) दूसरा शत्रुको नम्र करना। ये सोम पीनेसे होते हैं य दोनों (श्रेय) सुखदायी हैं, जनताका सुख बढाते हैं।

२३ मौष्टत्वे, पृशने वा वधत्रे (१०)= अश्वयुद्धमें, बाहुयुद्धमें (मल्लयुद्धमें), तथा वध करनेके अन्य प्रकारके साधनोंमें सोमपानसे बल बढता है। और—

२४ निशुनः अस्वापयत् (१०)= सोम शत्रुसैनिकोंका वध करके उनको सुलाता है,

२५ अमित्रान् अप अच (१०)= शत्रुओं दूर भगाता है,

२६ अचितः इतः अप अच (१०)= अज्ञानियों, नास्तिकोंको भगा देता है,

२७ अमित्रान् स्नेहयत् (१०)= शत्रुओंका वध करता है (स्निह्-वध करना)

सोमके वर्णनमें जो अन्य मंत्रभाग हैं, वे पाठक अर्थोंके मननसे समझ सकते हैं, इसलिये उनका अधिक विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं है।

॥ यहां सोम-प्रकरण समाप्त हुआ ॥

---

(११) ब्रह्म-विद्या

(२१) ज्येष्ठब्रह्मवर्णनम्।

१–४४ कुत्सः। आत्मा। त्रिष्टुप्; १ उपरिष्टाद्विराड्बृहती २ बृहतीगर्भानुष्टुप्; ५ भुरिगनुष्टुप्; ६, १४, १९–२१, २३, २५, २९, ३१–३४, ३७–३८, ४१, ४३ अनुष्टुप्; ७ पराबृहती, १० अनुष्टुब्गर्भा; ११ जगती; १२ पुरोबृहती त्रिष्टुब्गर्भार्षी पङ्क्तिः, १५, २७ भुरिग्बृहती; २२ पुरउष्णिक्; २६ अनुष्टुब्गर्भानुष्टुप्; ३० भुरिक्; ३९ बृहतीगर्भा; ४२ विराड् गायत्री।

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति। स्व१र्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः १

स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः। स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद्यत्प्राणन्निमिषच्च यत् २

अन्वयः– १ यः भूतं च भव्यं च यः च सर्वं अधितिष्ठति। यस्य च केवलं स्वः, तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥१॥

२ इमे स्कंभेन वि स्तभिते द्यौः च भूमिः च तिष्ठतः। यत् प्राणत् यत् निमिषत् च इदं सर्वं आत्मन्वत् स्कंभे॥२॥

अर्थ– १ जो भूत कालके और भविष्य कालके तथा वर्तमान कालके भी, सबपर अधिष्ठाता होकर रहता है, जिसका स्वरूप केवल प्रकाशमय है, उस श्रेष्ठ ब्रह्मके लिये नमस्कार है॥ १॥

२ इस सर्वाधार परमात्माने थामे हुए द्युलोक और भूमि ये ठहरे हैं, जो प्राण धारण करता है और जो आंखें झपकता है, यह सब आत्मासे युक्त विश्व स्कंभमें है॥ २॥

तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन्न्य१न्या अर्कमभितोऽविशन्त ।
बृहन्ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश ३

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ४

इदं सवितर्वि जानीहि षड्यमा एक एकजः ।
तस्मिन्हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकजः ५

आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत्पदम् ।
तत्रेदं सर्वमार्पितमेजत्प्राणत्प्रतिष्ठितम् ६

एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व१ तद् बभूव ७

पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति ।
अयातमस्य ददृशे न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः ८

---

३ तिस्रः ह प्रजा अत्यायं आयन् अन्या अर्क अभितः नि अविशन्त । बृहन ह रजसः विमान. तस्थौ हरिणीः हरितः आविवेश ॥ ३ ॥

३ तीन प्रकारकी प्रजाएं अतिक्रमणको प्राप्त होती हैं, एक प्रकारकी सूर्यको प्राप्त होती है, दूसरी बडे रजोलोकको मापती हुए रहती है, और तीसरी हरण करनेवाली हरिद्वर्ण-भूमिको प्रविष्ट होती है ॥ ३ ॥

४ द्वादश प्रधयः, एकं चक्रं, त्रीणि नभ्यानि, कः ऊ तत् चिकेत । तत्र त्रीणि शतानि षष्टिः च शङ्कवः आहताः खीलाः ये अविचाचलाः ॥ ४ ॥

४ बारह प्रधियां हैं, एक चक्र है, तीन नाभियां हैं, कौन भला इसे जानता है ? इस चक्रमें तीन सौ साठ खूटियां लगायीं हैं और इतने ही खील लगाये हैं, जो हिलनेवाले नहीं हैं ॥ ४ ॥

५ सवितः इदं विजानीहि, षट् यमा एकः एकजः । यः एषां एकजः एक तस्मिन् ह आपित्वं इच्छन्ते ॥ ५ ॥

५ हे सविता! यह तू जान, कि यहां छः जोडे हैं और एक अकेला है । जो इनमें अकेला एक है उसमें निश्चयसे अपना सम्बन्ध जोडनेकी इच्छा अन्य करते हैं ॥ ५ ॥

६ गुहा जरत् नाम महत्, पदं आविः संनिहितं । एजत् प्राणत् तत्र इदं सर्वं अर्पितं प्रतिष्ठितम् ॥ ६ ॥

६ गुहामें संचार करनेवाला जो बडा प्रसिद्ध स्थान है, वह प्रकट होने योग्य संनिध भी है, जो कांपनेवाला और प्राणवाला है, वह यहीं इस गुहामें समर्पित और प्रतिष्ठित है ॥६॥

७ एकचक्रं एकनेमि वर्तते सहस्र-आरं प्र पुरः नि पश्चा । अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यत् अस्य अर्धं क तत् बभूव॥७॥

७ एक चक्र एकही मध्यनाभिवाला है, जो हजारों आरोंसे युक्त आगे और पीछे होता है । आधेसे सब भुवन बनाये हैं और जो इसका आधा भाग है, वह कहां रहा है? ॥ ७ ॥

८ एषां पञ्चवाहि,अग्रं वहति,प्रष्टयः युक्ताः अनुसंवहन्ति। अस्य अयातं ददृशे, न यातं,परं नेदीयः, अवरं दवीयः॥८॥

८ इनमें जो पांचोंसे उठायी जानेवाली है, वह अन्त तक पहुंचती है । जो घोडे जोते हैं, वे ठीक प्रकार उठा रहे हैं। इनका 'न चलना' ही दीखता है, परन्तु चलना नहीं दीखता । तथा बहुत दूरका बहुत समीप है और जो पास है, वही अति दूर है ॥ ८ ॥

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपम् ।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ९

या पुरस्ताद्युज्यते या च पश्चाद्या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।
यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा सर्चाम् १०

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद्भुवत् ।
तद्दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत्संभूय भवत्येकमेव ११

अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते ।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन्विद्वान्भूतमुत भव्यमस्य १२

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः १३

ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्यम्
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः १४

---

९ तिर्यग्बिलः ऊर्ध्वबुध्नः चमसः, तस्मिन् विश्वरूपं यशः निहितं। तत् सप्त ऋषयः साकं आसत, ये अस्य महतः गोपा, बभूवुः ॥ ९ ॥

१० या पुरस्तात् युज्यते, या च पश्चात्, या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः। यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि ऋचां सा कतमा ? ॥ १० ॥

११ यत् एजति, पतति, यत् च तिष्ठति, यत् प्राणत् अप्राणत् निमिषत् च भुवत्, तत् विश्वरूपं पृथिवीं दाधार, तत् संभूय एकं एव भवति ॥ ११ ॥

१२ अनन्तं पुरुत्रा विततं, अनन्तं अन्तवत् च समन्ते ।
अस्य भूतं उत भव्यं ते विचिन्वन् विद्वान्, नाकपालः चरति ॥ १२ ॥

१३ प्रजापतिः अदृश्यमानः गर्भे अन्तः चरति, बहुधा विजायते, अर्धेन विश्वं भुवनं जजान, यत् अस्य अर्धं सः कतमः केतुः ? ॥ १३ ॥

१४ कुम्भेन उदकं उर्ध्वं भरन्तं उदहार्यं इव। सर्वे चक्षुषा पश्यन्ति, सर्वे मनसा न विदुः ॥ १४ ॥

९ तिरछे मुखवाला और ऊपर पृष्ठभागवाला एक पात्र है। उसमें नाना रूपवाला यश रखा है। वहा साथ साथ सात ऋषि बैठे हैं जो इस महानुभावके संरक्षक हैं ॥ ९ ॥

१० जो आगे और पीछे जुडी रहती है, जो चारों ओरसे सब प्रकार जुडी रहती है। जिससे यज्ञ पूर्वकी ओर फैलाया जाता है, इस विषयमें मैं तुझे पूछता हूं ऋचाओंमें वह कौनसी है? १०

११ जो कांपता है, गिरता है, और जो स्थिर रहता है, जो प्राण धारण करनेवाला, प्राणरहित और जो निमिषोन्मेष करता है और जो होता है, वह विश्वरूपी सत्व इस पृथ्वीका धारण करता है, वह सब मिलकर एक ही होता है ॥ ११ ॥

१२ अनन्त चारों ओर फैला है, अनन्त और अन्तवाला ये दोनों एक दूसरेसे मिले हैं। एकके भूतकालीन और भविष्यकालीन तथा वर्तमानकालीन सब वस्तुमात्रके संबंधमें विवेक करता हुआ और पश्चात सबको जानता हुआ, सुखपालक चलता है ॥ १२ ॥

१३ प्रजापति अदृश्य होता हुआ गर्भके अन्दर संचार करता है, और वह अनेक प्रकारसे उत्पन्न होता है। अर्ध भागसे सब भुवनोंको उत्पन्न करता है, जो इसका दूसरा आधा है, उसका चिह्न क्या है ! ॥ १३ ॥

१४ जैसा घडेसे जलको भरकर उपर लानेवाला कहार होता है। सब आंखसे देखते हैं, परन्तु सब मनसे नहीं जानते॥ १४॥

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते ।
महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति १५
यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति ।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन १६
ये अर्वाङ्मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति ।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् १७
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन्याति भुवनानि विश्वा १८
सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ् वि पश्यति ।
प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिन् ज्येष्ठमधि श्रितम् १९
यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु ।
स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद्ब्राह्मणं महत् २०
अपादग्रे समभवत्सो अग्रे स्व१राभरत् । चतुष्पाद्भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम् २१

---

१५ पूर्णेन दूरे वसति, ऊनेन दूरे हीयते, भुवनस्य मध्ये महत् यक्षं, तस्मै राष्ट्रभृतः बलिं भरन्ति ॥ १५ ॥

१६ यतः सूर्यः उदेति, यत्र च अस्तं गच्छति, तत् एव अहं ज्येष्ठं मन्ये, तत् उ किं चन न अत्येति ॥ १६ ॥

१७ ये अर्वाङ् मध्ये उत वा पुराणं वेदं विद्वांसं अभितः वदन्ति, ते सर्वे आदित्यं एव परि वदन्ति, द्वितीयं अग्निं त्रिवृतं च हंसम् ॥ १७ ॥

१८ अस्य हरेः हंसस्य स्वर्गं पततः पक्षौ सहस्राह्ण्यं वियतौ, सः सर्वान् देवान् उरसि उपदद्य विश्वा भुवनानि संपश्यन् याति ॥ १८ ॥

१९ सत्येन ऊर्ध्वः तपति, ब्रह्मणा अर्वाङ् विपश्यति, प्राणेन तिर्यङ् प्राणति, यस्मिन् ज्येष्ठं अधि श्रितं ॥ १९ ॥

२० यः वै ते अरणी विद्यात्, याभ्यां वसु निर्मथ्यते, सः विद्वान् ज्येष्ठं मन्यते, सः महत् ब्राह्मणं विद्यात् ॥ २० ॥

२१ अग्रे अपात् सं अभवत्, सः अग्रे स्वः आभरत्, चतुष्पात् भोग्यः भूत्वा सर्वं भोजनं आदत्त ॥ २१ ॥

१५ पूर्ण होने पर भी दूर रहता है, न्यून होनेपर भी दूर ही रहता है। विश्वके बीचमें बडा पूज्य देव है, इसके लिये राष्ट्रसेवक अपना बलिदान करते हैं ॥ १५ ॥

१६ जहांसे सूर्य उगता है, और जहां अस्तको जाता है, वही श्रेष्ठ है, ऐसा मैं मानता हूं, उसका अतिक्रमण कोई नहीं करता ॥ १६ ॥

१७ जो उरेवाले बीचके अथवा पुराणे वेदवेत्ताकी चारों ओरसे प्रशंसा करते हैं, वे सब आदित्यकी ही प्रशंसा करते है, दूसरा अग्नि और त्रिवृत हंसकी ही प्रशंसा करते हैं ॥ १७ ॥

१८ इस हंसको स्वर्गको जाते हुए इसके दोनों पक्ष सहस्र दिनोंतक फैलाये रहते हैं। वह सब देवोंको अपनी छातीपर लेकर सब भुवनोंको देखता हुआ जाता है ॥ १८ ॥

१९ सत्यके साथ ऊपर तपता है, ज्ञानसे नीचे देखता है। प्राणसे तिरछा प्राण लेता है, जिसमें श्रेष्ठ ब्रह्म रहता है ॥ १९ ॥

२० जो इन दोनों अरणियोंको जानता है, जिससे वसु निर्माण किया जाता है। वह ज्ञानी ज्येष्ठ ब्रह्मको जानता है और वह बडे ब्रह्मको भी जानता है ॥ २० ॥

२१ प्रारंभमें पादरहित आत्मा एकही था। वह प्रारंभमें स्वात्मानंद भरता रहा। वही चार पांववाला भोग्य होकर सब भोजनको प्राप्त करने लगा ॥ २१ ॥

भोग्यो भवदथो अन्नमदद्बहु । यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम् २२
सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात्पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः २३
शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन्निविष्टम् ।
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद्देवो रोचत एष एतत् २४
बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते । ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया २५
इयं कल्याण्य१जरा मर्त्यस्यामृता गृहे । यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः २६
त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः २७
उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः ।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः २८
पूर्णात्पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत्परिषिच्यते २९

एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव ।
मही देव्यु१षसो विभाति सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे ॥ ३० ॥

अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता ।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ॥ ३१ ॥

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥ ३२ ॥

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम् ।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ॥ ३३ ॥

यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः ।
अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम् ॥ ३४ ॥

येभिर्वात इषितः प्रवाति ये ददन्ते पञ्च दिशः सध्रीचीः ।
य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा अपां नेतारः कतमे त आसन् ॥ ३५ ॥

---

३० एषा सनत्नी, सनं एव जाता, एषा पुराणी सर्वं परि बभूव, मही देवी उषसः विभाति, सा एकेन-एकेन मिषता विचष्टे ॥३०॥

३० यह सनातन शक्ति है, सनातन कालसे विद्यमान है। यही पुरानी शक्ति सब कुछ बनी है,यही बडी उषाओंको प्रकाशित करती है, वह अकेले अकेले प्राणीके साथ दीखती है।३०।

३१ अविः वै नाम देवता ऋतेन परिवृता आस्ते, तस्याः रूपेण इमे वृक्षाः हरिताः हरितस्रजः ॥३१॥

३१ रक्षणकर्त्री नामक एक देवता है, वह सत्यसे घेरी हुई है। उसके रूपसे ये सब वृक्ष हरे और हरे पत्तोंवाले हुए हैं ॥ ३१ ॥

३२ अन्ति सन्तं न जहाति, अन्ति सन्तं न पश्यति, देवस्य पश्य काव्यं, न ममार न जीर्यति ॥३२॥

३२ समीप होनेपर भी वह छोडता नहीं, और वह समीप होनेपर भी दीखता नहीं। इस देवका यह काव्य देखो, जो नहीं मरता और नहीं जीर्ण होता है ॥ ३२ ॥

३३ अपूर्वेण इषिताः वाचः, ताः यथायथं वदन्ति, वदन्तीः यत्र गच्छन्ति, तत् महत् ब्राह्मणं आहुः ॥३३॥

३३ जिसके पूर्व कोई नहीं है, इस देवताने प्रेरित की ये वाचाएं हैं, वह वाणियां यथायोग्य वर्णन करती हैं। बोलती हुई जहां पहुंचती हैं, वह बडा ब्रह्म है, ऐसा कहते हैं। ३३।

३४ देवाः च मनुष्याः च, नाभौ अराः इव यत्र श्रिताः, अपां पुष्पं त्वा पृच्छामि, यत्र तत् मायया हितम् ॥३४॥

३४ देव और मनुष्य नाभिमें आरे लगनेके समान जहां आश्रित हुए हैं, इस आप् तत्वके पुष्पको मैं तुझे पूछता हूं, कि जहां वह मायासे आच्छादित होकर रहता है ॥ ३४ ॥

३५ येभिः इषितः वातः प्रवाति, ये सध्रीचीः पञ्च प्रदिशः ददन्ते, ये देवाः आहुतिं अति अमन्यन्त, ते अपां नेतारः कतमे आसन् ॥३५॥

३५ जिनसे प्रेरित हुआ वायु बहता है, जो मिली जुली पांचों दिशायें धारण करते हैं, जो देव आहुतिसे अधिक मानते हैं, वे जलोंके नेता कौनसे हैं ? ॥ ३५ ॥

इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव ।
दिवमेषां ददते यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ॥ ३६ ॥
यो विद्यात्सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात्स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३७ ॥
वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३८ ॥
यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत्प्रदहन्विश्वदाव्यः ।
यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात्क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ॥ ३९ ॥
अप्स्वासीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन् ।
बृहन्ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश ॥ ४० ॥
उत्तरेणेव गायत्रीममृतेऽधि वि चक्रमे । साम्ना ये साम संविदुरजस्तद्ददृशे क्व ॥ ४१ ॥
निवेशनः संगमनो वसूनां देव इव सविता सत्यधर्मा ।
इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥ ४२ ॥

---

३६ एषां एकः इमां पृथिवीं वस्ते, एकः अन्तरिक्षं परिबभूव, एषां यः विधर्ता दिवं ददते, एके विश्वाः आशाः प्रति रक्षन्ति ॥३६॥

३७ यस्मिन् इमाः प्रजाः ओताः, यः विततं सूत्रं विद्यात्, सूत्रस्य सूत्रं यः विद्यात्, सः महत् ब्राह्मणं विद्यात् ॥३७॥

३८ यस्मिन् इमाः प्रजाः ओताः, अहं विततं सूत्रं वेद, सूत्रस्य सूत्रं अहं वेद, अथो यत् महत् ब्राह्मणम् ॥३८॥

३९ यत् द्यावापृथिवी अन्तरा विश्वदाव्यः प्रदहन् अग्निः ऐत्, यत्र परस्तात् एकपत्नीः अतिष्ठन्, तदानीं मातरिश्वा क्व इव आसीत् ॥३९॥

४० मातरिश्वा अप्सु प्रविष्टः आसीत्, देवाः सलिलानि प्रविष्टाः आसन् बृहन्, ह रजसः विमानः तस्थौ, पवमानः हरितः आ विवेश ॥४०॥

४१ उत्तरेण इव अमृते अधि गायत्रीं अधिविचक्रमे ये साम्ना साम सं विदुः, तत् अजः क्व ददृशे ॥४१॥

४२ सत्यधर्मा सविता देवः इव वसूनां संगमनः निवेशनः, धनानां समरे इन्द्रः न तस्थौ ॥४२॥

३६ इनमेंसे एक इस पृथ्वीपर रहता है, एक अन्तरिक्षमें व्यापता है, इनमें जो धारक है, वह द्युलोकका धारण करता है और कुछ सब दिशाओंकी रक्षा करते हैं ॥ ३६ ॥

३७ जिसमें ये सब प्रजा पिरोयी है, जो इस फैले सूत्रको जानता है, और सूत्रके सूत्रको जो जानता है, वह बडे ब्रह्मको जानता है ॥ ३७ ॥

३८ जिसमें ये प्रजाएं पिरोयी है, मैं यह फैला हुआ सूत्र जानता हूं। सूत्रका सूत्र भी मैं जानता हूं और जो बडा ब्रह्म है, वह भी मैं जानता हूं ॥ ३८ ॥

३९ जो द्युलोक और पृथ्वीके बीचमें विश्वको जलानेवाला अग्नि होता है, जहां दूर तक एकपत्नीही रहती है, उस समय वायु कहां था ? ॥ ३९ ॥

४० वायु जलोंमें प्रविष्ट था, सब देव जलोंमें प्रविष्ट थे, उस समय बडा ही रजका विशेष प्रमाण था, और वायु सूर्य-किरणोंके साथ था ॥ ४० ॥

४१ उच्चतर रूपसे अमृतमें गायत्रीको विशेष रीतिसे प्राप्त करते हैं। जो सामसे साम जानते हैं, वह अजन्माने कहां देखा ? ॥ ४१ ॥

४२ सत्यके धर्मसे युक्त सवितादेवके समान सब धनोंका देनेवाला और निवासका हेतु है, वह धनोंके युद्धमें इन्द्रके समान है ॥ ४२ ॥

एकही सनातन, पुरातन अथवा सबसे प्राचीन देवता है। यह देवताही स्वयं (सर्वं परि बभूव) सब कुछ बन जाती है। सब ओरसे अथवा सब प्रकारसे स्वय सब कुछ बनती है। वही एक देवता अपनी शक्तिसे इस विश्वमें प्रकाश करती है और अपनी दूसरी शक्तिसे आंखसे देखती भी है। अर्थात् प्रकाश देनेवाला सूर्य भी वही बनी है और पलकें मूंदनेवाली आंख अर्थात् द्रष्टाका नेत्र भी वही बनी है। और एकही सत्से ये दोनों रूप हुए हैं। उषा, सूर्य अर्थात् प्रकाश भी उसीका रूप है और दृश्य देखनेवाली आंख भी उसीका दूसरा रूप है। दृश्य विश्व (सर्वं बभूव), देखनेवाली आंख (एकेन मिषता वि चष्टे) और दर्शनका साधन प्रकाश (उषसो विभातीः) यह सब एकही सनातन देवतासे होता है। वही सनातन देवता (१) दृश्य विश्व, (२) दर्शन साधन प्रकाश और (३) द्रष्टाकी आंख यह सब त्रिपुटी बनती है।

सनातन एनं आहुः उताद्य स्यात् पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः॥२३॥

' (एनं सनातनं आहुः) इस देवताकोही सनातन कहते हैं। (उत अद्य पुनः नवः स्यात्) परन्तु यह आजही फिर नया बनता है। अर्थात् यह नया बननेपर भी सनातनही है। जैसे (अन्यो अन्यस्य रूपयोः) भिन्न भिन्न रूपवाले (अहोरात्रे) दिन और रात्रिके विभिन्न रूप [एक सूर्यसेही] (प्रजायेते) होते हैं।'

जैसे एकही सूर्यसे दिनका प्रकाश और रात्रिका अन्धकार ये परस्पर विरुद्ध गुणधर्मवाले दो विभिन्न रूप बनते हैं, उसी तरह इसी एक सनातन देवसे एक पुन पुनः नया बननेवाला रूप और दूसरा पुराना बनकर नाशको प्राप्त होनेवाला रूप, ऐसे दो रूप बनते हैं। एकही सनातन देवसे यह सब हो रहा है। इस विषयमें अगला मंत्र देखिये—

प्रजापतिका गर्भवास

प्रजापतिः चरति गर्भे अन्तः अदृश्यमानो बहुधा वि जायते। अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यद् अस्य अर्धं कतमः स केतुः ॥ १३ ॥

' (अदृश्यमानः प्रजापतिः) न दीखनेवाला प्रजापालक ईश्वर (गर्भे अन्तः चरति) गर्भके अन्दर संचार करता है और (बहुधा वि जायते) बहुत प्रकार विशेष रीतिसे उत्पन्न होता है। इस तरह उसने (अर्धेन) अपने आधे भागसे (विश्वं भुवनं जजान) सब भुवनोंको उत्पन्न किया है और (यत् अस्य अर्धं) जो इसका आधा भाग है, उस आधे भागको जाननेका (सः केतुः कतमः ?) वह चिह्न कौनसा भला है ?' अर्थात् किस पद्धतिसे उसका संपूर्ण ज्ञान हो सकता है ?

इस मन्त्रमें कहा है कि प्रजापति परमेश्वरही गर्भमें आकर, जन्म लेकर, नाना प्रकारकी योनियोंमें विशेष रीतिसे उत्पन्न होता है। वह स्वयं अदृश्य है, तथापि विशेष रीतिसे नाना योनियोंमें उत्पन्न होनेपर वही दृश्यमान होता है और वह दीखने लगता है। इसी ढंगसे उसने अपने एक अंशसे संपूर्ण विश्वका *सृजन किया है। विश्वके सृजन करनेकी उसकी रीति मन्त्रके* पूर्वार्धमें वर्णन की है। स्वयं ही गर्भमें आकर नाना योनियोंमें आकर नाना रूपोंका धारण करनाही वह रीति है।

प्रजापतिके गर्भ धारण करनेके विषयमें वेदमें अन्यत्र भी ऐसाही कहा है—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते। तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरा तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा। (वा. य ३१।१९)

' प्रजापति परमेश्वर गर्भके अन्दर संचार करता है। वह न जन्मनेवाला होनेपर भी अनेक प्रकारसे विविधताके साथ उत्पन्न होता है। उसके मूल स्थानको ज्ञानी लोग देखते हैं। उसीमें निश्चयसे सब भुवन रहते हैं।'

यहां भी प्रजापति परमेश्वर गर्भमें बालक-रूपसे जन्म लेता है, यह बात कही है। इसी तरह सब संसारका सृजन इससे होता है। सब भुवन इस परमेश्वरमें वैसेही हैं कि जिस तरह मृत्तिकामें घडे रहते हैं। यही मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यकमें आया है—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः । अजायमानो बहुधा विजायते। तस्य धीराः परिजानन्ति योनिं। मरीचीनां पदं इच्छन्ति वेधसः॥
(तै. आ. ३।१३)

अम्भस्य पारे भुवनस्य मध्ये। नाकस्य पृष्ठे महतो महीयान्। शुक्रेण ज्योतींषि समनुप्रविष्टः। प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः। (तै. आ. १०।१।१; महानारा. उ. १।१)

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्। तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ४३
अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान्न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ४४

४३ नवद्वारं पुण्डरीकं त्रिभिः गुणेभिः आवृतं, तस्मिन् यत् आत्मन्वत् यक्षं तत् वै ब्रह्मविदः विदुः ॥४३॥

४४ अकामः धीरः अमृतः स्वयंभूः रसेन तृप्तः न कुतश्चन ऊनः, तं एव विद्वान् मृत्योः न बिभाय, आत्मानं धीरं अजरं युवानं ॥४४॥

४३ नव द्वारवाला कमल सत्व-रज-तम इन तीन गुणोंसे घेरा हुआ है। उसमें जो आत्मावाला पूज्य देव है, उसे ब्रह्मज्ञानी जानते हैं ॥ ४३ ॥

४४ निष्काम, धीर, अमर, स्वयंभू, रससे सन्तुष्ट वह देव कहींसे भी न्यून नहीं है। उसे जाननेवाला ज्ञानी मृत्युसे डरता नहीं, क्योंकि वही धीर अजर युवा आत्मा है ॥ ४४ ॥

ज्येष्ठ ब्रह्मका सम्यक् दर्शन

शौनकीय अथर्ववेदमें (काण्ड १०, सू० ८ में) तथा पिप्पलादीय अथर्ववेदमें (काण्ड १६, सूक्त १०१ से १०३ तीन सूक्तोंमें) ज्येष्ठ ब्रह्म का उत्तम वर्णन है। जिन को ज्येष्ठ ब्रह्मका दर्शन करना हो, उन को इस मन्त्रभाग का मनन करना उचित है। इस मन्त्रभागमें पाठकों को कई प्रकारके मन्त्रों को देखना होगा। कई मन्त्र तो सरल होनेपर भी भावार्थ की दृष्टिसे बड़े ही गम्भीर प्रतीत होंगे, परन्तु कई मंत्रोंके शब्द और वाक्य कठिन और क्लिष्ट प्रतीत होने पर भी उन का आशय बिलकुलही सरल होगा। मन्त्रोंसे अर्थ और आशय प्राप्त करके हम सब को ब्रह्म का दर्शन करने का यत्न करना चाहिये। देखिये, इस सूक्त का यह प्रारम्भ है-

ज्येष्ठ ब्रह्म

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वः यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥१

'(यः भूतं भव्यं च सर्वं) भूत और भविष्य तथा वर्तमान कालमें जो है, उस सबमें (अधितिष्ठति) अधिष्ठित होता है, (यस्य च केवलं स्वः) जिसका अपना निज तेज है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस श्रेष्ठ ब्रह्मके लिये हमारा प्रणाम है।' इसी ज्येष्ठ ब्रह्मका हमें इस लेखमें दर्शन करना है।

'**तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः**' यह चरण स्कम्भसूक्तमें मन्त्र ३२-३४, ३६ इन चारों मन्त्रोंमें है। इस चरणसे इस सूक्तके पूर्वके स्कम्भसूक्तके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है। (स्कम्भ सूक्त, अथर्व० १०।७)

भूत कालमें जो हो चुका था, वर्तमान कालमें जो हो रहा है और भविष्य कालमें जो होगा, उन सबमें स्वयंप्रकाश ब्रह्म अधिष्ठित हुआ है। अधिष्ठित होनेका तात्पर्य अन्दर सर्वत्र पूर्णतया स्थित होना है, सर्वव्यापक होना है। पूर्व लेखमें बताया है कि, यहांकी व्यापकता घडेमें मिट्टीके समान अभिन्न-निमित्त-उपादान-कारणकी सर्वव्यापकता है।

इस विषयमें द्वितीय मन्त्र देखिये—

ब्रह्ममें सब समर्पित हैं

स्कम्भेन इमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।
स्कंभ इदं सर्वं आत्मन्वत् यत् प्राणत् निमिषत् च यत् ॥ २ ॥

'(स्कम्भेन वि-स्तभिते) सबके आधारस्तम्भने विशेष रीतिसे धारण किये ये द्युलोक और भूलोक (तिष्ठतः) अपने स्थानपर ठहरे हैं। (यत् प्राणत् निमिषत् सर्वं) जो प्राणधारी, निमेष उन्मेष करनेवाला तथा आत्मावाला है, वह यह सब (स्कम्भे) इस आधारस्तम्भमें ठहरा है।'

जो प्राण धारण करता है, आंखोंकी पलकें हिलाता है, जिसमें आत्मा है, वह सब इस श्रेष्ठ ब्रह्ममें है। जिस तरह घड़ा मिट्टीमें रहता है, जिस तरह जेवर सोनेमें रहते हैं, वैसा ही यह सब ब्रह्ममें रहा है। यहां प्राणधारी सजीव जगत् उस ब्रह्ममें है, ऐसा कहा है। यह कहनेका कारण यही है कि, 'जीव' ब्रह्मसे सर्वथा पृथक् सत्तावाला है, ऐसा कइयोंका मत है, उनके निराकरण करनेके लिये सब प्रकारका सजीव जगत् भी उसीमें समाविष्ट हुआ है, ऐसा यहां कहा है। शेष [illegible] है, यह ऊपर कहा ही है।

जैसी घडेमें मिट्टी और मिट्टीमें घडा रहता है, वैसेही चेतन और जड उस ब्रह्ममें है और वह ब्रह्म इस जड चेतनमें है, यह यहाके कथनका तात्पर्य है।

तत्र इदं सर्वं आर्पितं एजत् प्राणत् प्रतिष्ठितम् ॥६॥

इसी सूक्तका यह छठा मन्त्रभाग है । (तत्र) उस ब्रह्ममें (इदं सर्वं) यह सब (एजत्) हिलने डुलनेवाला, (प्राणत्) प्राण धारण करनेवाला (प्रति-स्थितं) रहा है। प्रत्येक वस्तु उसीकी बनी है और प्राण धारण करनेवाला चेतन वस्तुमात्र भी उसीका बना है। यह सब जीव जगत् (तत्र आर्पित) उसी ब्रह्ममें अर्पित है, जैसा घडा मिट्टीमें अर्पित हुआ होता है।

इसी वर्णनका अधिक स्पष्टीकरण करनेवाला इसी सूक्तका ११ वाँ मंत्र है, वह अब देखिये—

सब मिलकर एकही तत्त्व है

यद् एजति, पतति, यत् च तिष्ठति, प्राणद्-प्राणन्निमिषच्च यद् भुवत् । तद् दाधार पृथिवीं विश्वरूपं, तत् संभूय भवत्येक एव ॥ ११ ॥

पुरातन तत्त्व

**आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत् पदम् ।
तत्रेदं सर्वं आर्पितं एजत् प्राणत् प्रतिष्ठितम् ॥६॥**

'('जरत्' नाम महत् पदं) 'पुरातन' इस नामवाला एक बडा विस्तृत तत्त्व (गुहा) सर्वत्र गूढ या व्याप्त है, वह (आविः सन्निहितं) प्रकट होकर भी सम्यक् रीतिसे रहा है। जो प्राण धारण करता है, जो हलचल करता है, तथा जो स्थिर है, (इदं सर्वं) यह सब (तत्र आर्पितं) उस एक तत्त्वमें समर्पित हुआ है।'

एक पुरातन तत्त्व है, वह सबसे बडा है, तथा सर्वत्र गूढ है, अर्थात् सबमें व्यापक है। वह गुप्त अर्थात् अदृश्य भी है और प्रकट भी है। वह सबके (सन्निहितं) अत्यन्त पास है। स्थावर और जंगम, जीवित और जड, प्राणयुक्त और प्राण-रहित जो भी कुछ इस विश्वमें है, वह सब उस एक तत्त्वमें सुस्थिर होकर रहा है। यहां दोनों प्रकारका सब विश्व एक ही तत्त्वमें समर्पित है, यह बात स्पष्ट शब्दोंमें कही है अर्थात् तत्त्व दृष्टिसे सब पदार्थ एकही तत्त्वके नाना रूप हैं और वही एक सत् तत्त्व (जरत्) पुरातन तत्त्व है। यहां इस तरह समझना चाहिये—

आरे सब देव हैं। पुष्पका पराग-केन्द्र ब्रह्म है और पत्ते सब देव हैं। चक्रका नाभि-केन्द्र ब्रह्म है और आरे सब देवताएं हैं। ये दोनों उपमाएं विचार करनेयोग्य हैं। नाभी और आरे मिलकर चक्र है और पराग-केन्द्र और पत्ते मिलकर पुष्प है। इसी तरह ब्रह्म और देव मिलकर उपास्य ब्रह्म है।

उसके रूपसे विश्वका रूप

अविर्वै नाम देवता ऋतेनास्ते परीवृता।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ॥३१॥

'(अविः) 'संरक्षण करनेवाली' (वै नाम देवता) इस नामकी एक देवता (ऋतेन परीवृता आस्ते) ऋतसे चारों ओरमें घेरी हुई है। (तस्याः रूपेण) उस देवताके रूपमेंही (इमे वृक्षाः) ये सब वृक्ष (हरिताः हरितस्रजः) हरेभरे और हरी मालाओंका धारण करनेवाले हुए हैं।'

एक देवता है। यह सबकी सुरक्षा करती रहती है। उस देवताके ऋत नामके नियम अटल हैं, जो सदासर्वदा अप्रतिहत गतिसे अपना कार्य करते रहते हैं। सभी विश्व उस देवताकी सुरक्षासे सुरक्षित हुआ है और उस देवताके सनातन नियमोंके अनुसारही चल रहा है। कठोर भूमिपर भी जो ये सब वृक्ष हरेभरे और पत्तों फूलोंसे लदे दीख रहे हैं, यह सब उस देवताकाही रूप है। यह एक रूपकात्मक कथन है। इससे स्पष्ट होता है कि जैसे वृक्षोंके रूप उस देवताके रूप हैं, उसी तरह पशुपक्षी, कृमिकीट, मानव तथा अन्यान्य सब विश्वान्तर्गत रूप भी उसी देवताके रूपमेंही रूपवान् हुए हैं।

अनन्तं विततं पुरुत्राऽनन्तं अन्तवच्चा समन्ते।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान् भूतं उत भव्यं अस्य ॥ १२ ॥

'(अनन्त पुरुत्रा विततं) अनन्त ब्रह्म चारों ओर फैला है, (अनन्तं अन्तवत् च सं अन्ते) अनन्त ब्रह्म और अन्तवाले पदार्थ ये परस्पर मिलेजुले हैं। (अस्य भूत उत भव्यं विद्वान्) इस विश्वके भूत और भविष्यको यथावत् जाननेवाला ज्ञानी (नाकपालः) स्वर्गका रक्षणकर्ता ईश्वर (ते विचिन्वन्) उन अनन्त और सान्तको विशेष रीतिसे जानकर (चरति) सर्वत्र गति करता है।'

इस मन्त्रमें कहा है कि सर्वत्र एकही अनन्त ब्रह्म फैला है, यहां दूसरा कोई पदार्थ उस ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। उसी अनन्तमें सान्त पदार्थ दीखते हैं, वे सब उसीके रूपसे रूपवान् हुए हैं। अनन्त और सान्तका यह तत्त्व जानना ज्ञानसेही होता है। चूंकि एकही अनन्त तत्त्व सर्वत्र फैला है, अतः जो सान्त पदार्थोंकी सत्ता है, वह भी उसी अनन्तकी सत्तामें अन्तर्भूत है। अनन्त और सान्त ये सापेक्ष ज्ञान देनेवाले पद हैं, एकही ब्रह्ममें ये दोनों सापेक्ष भाग लीन होते हैं। अथवा ज्येष्ठ ब्रह्ममें अनन्त और सान्त लीन होकर रहते हैं।

कमलमें यक्ष

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
तस्मिन् यद् यक्षं आत्मन्वत्, तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ४३ ॥

'तीन गुणोंसे (सत्त्व-रज-तम इन गुणोंसे) घेरा हुआ एक कमल है, उसके नौ द्वार (पत्ते) हैं। इस कमलमें आत्मवान् यक्ष रहता है। इसको ब्रह्मज्ञानी जानते हैं।' यह कमल मनुष्यका शरीर है। इस शरीरमें नौ द्वार हैं। एक मुख है, यह पूर्व द्वार है। दूसरा गुदद्वार है, यह पश्चिम द्वार है। तीसरा मूत्रद्वार है, यह प्रजापतिका द्वार है। ये तीन द्वार हैं। दो नाक, दो नेत्र और दो कान मिलकर छः द्वार हैं। ये छः और पहिले कहे तीन मिलकर नौ द्वार हुए। इन नौ द्वारोंसे युक्त यह कमल-जैसा तेजस्वी यह शरीर है। इसमें सात्त्विक, राजसिक और तामसिक वृत्तियां हैं। समय समयपर ये वृत्तियां प्रबल होती हैं। इस कमल-जैसे सुन्दर शरीरमें एक पूजनीय देव रहता है, वही आत्मा कहलाता है। यही ज्ञातव्य है। आत्मज्ञानी अथवा ब्रह्मज्ञानी इस यक्षको जानते हैं। 'यक्ष' का अर्थ 'पूजनीय देव' है। इसी अर्थके दो मन्त्र अथर्व १०।२।३१-३२ में हैं, उन्हें भी यहां देखिये—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूः अयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥ ३१ ॥
तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षं आत्मन्वत्, तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ३२ ॥ (अथर्व० १०।२।३१-३२)

'आठ चक्रोंवाली और नौ द्वारोंवाली यह देवताओंकी अयोध्या नगरी है। इस नगरीमें सुवर्णमय स्वर्ग नामक कोश तेजसे प्रकाशित है। यह कोश तीन आरोंसे (सत्त्व, रजस्, तमस् नामक तीन गुणोंसे) युक्त है, तथा यह तीन स्थानोंपर (स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीरोंपर) आश्रित है। इसी

आत्मवान् पूजनीय यक्ष रहता है। इसे ब्रह्मज्ञानी जानते हैं।' यक्ष पदका अर्थ आत्मा अथवा परमेश्वर है। इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे। तस्मिञ्छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः॥

(अ० १०।७।३८)

' भुवनके मध्यमें एक बडा यक्ष (पूजनीय देव) है, वह तेजस्वितामें विशेष है, और जो प्राकृतिक जलके पृष्ठपर विराजता है। इसमें जो कोई देव हैं वे रहते हैं, जैसी वृक्षकी शाखायें वृक्षके स्तम्भके आधारसे रहती हैं।'

इस तरह ' यक्ष ' पदसे आत्मा परमात्माका बोध होता है। पूर्वोक्त स्थानमें वर्णित नौ द्वारोंवाली सुंदर नगरीमें रहनेवाला यक्ष शरीरधारी आत्मा है, क्योंकि इंद्रियोंसे काम लेनेवाला वह है। वह विश्वात्माका अंश है। ' अनन्त ' और 'सान्त' का भाव बतानेके लिये तथा जीव और शिवका विचार जानने के लिये ये मन्त्र बडे उपयोगी है। इससे जीवात्माकी योग्यता का पता लग सकता है।

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः। तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरं अजरं युवानम्॥ ४४॥

' यह आत्मा (अ-कामः) निष्काम, (धी-रः, धीरं,) बुद्धिको प्रकाशित करनेवाला, (अ-मृतः) अमर, (स्वयं-भूः) स्वयंही नाना रूपोंमें प्रकट होनेवाला, स्वयं होनेवाला, (रसेन तृप्तः) रससे तृप्त, (न कुतश्चन ऊनः) कहीं भी न्यून नहीं अर्थात् सर्वत्र पूर्णतया भरपूर, (अजरं) जरारहित, कभी क्षीण न होनेवाला, (युवानं) युवा, सदा तरुण है। (तं आत्मानं एव विद्वान्) उस आत्माको जाननेवाला (मृत्योः न बिभाय) मृत्युसे डरता नहीं।' मृत्युका भय उससे दूर हो जाता है, क्योंकि मैं 'अजर अमर हूं' यह सत्य ज्ञान उसको अपने अनुभवसे मालूम होता है।

यहां नवद्वार शरीरमें रहनेवाले जीवात्माके वर्णनके साथ साथही परमात्माका वर्णन किया गया है। इसका कारण यह है कि परमात्माका अंशही जीवात्मा है, वह सर्वथा पृथक् अथवा सर्वथा विभिन्न नहीं है। अतः तत्वतः ये दोनों एकही हैं। इसलिये साथ साथ और एकही रीतिसे दोनोंका वर्णन हुआ करता है। पाठक वेदके मंत्रोंमें सर्वत्र यही बात देख सकते हैं।

शतं सहस्रं अयुतं न्यर्बुदं असंख्येयं स्वं अस्मिन् निविष्टम्। तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद् देवो रोचत एष एतत्॥ ४५॥

' सौ, हजार, लक्ष, करोडों अथवा असंख्येय इसके (स्वं) अपने निज बल (अस्मिन् निविष्टं) इसमें अर्थात् इस विश्वमें प्रविष्ट हुए हैं। (अभिपश्यतः) सब ओर देखनेवाले सब प्राणी (अस्य तत्) इसका वह बल (घ्नन्ति) प्राप्त करते, या भोगते हैं। (तस्मात् एव देवः) इसलिये यह देव (एतत् रोचते) इसको प्रकाशित करता है।'

इस परमात्मामें अनन्त प्रकारके बल हैं। ये बल इस विश्वके नाना पदार्थोंमें फैले हैं, जैसा सूर्यमें प्रकाश, अग्निमें दाहकता, वायुमें प्राणशक्ति, जलमें शांति, अन्नमें तृप्ति, दूधमें पुष्टि, औषधियोंमें रोग दूर करनेकी शक्ति, आदि अनन्त शक्तियां इस विश्वके अनन्त पदार्थोंमें संग्रहित हुई हैं। ये सब बल परमेश्वरके (स्वं) निज बल हैं और परमेश्वरसेही यह विश्व बननेके कारण इसके वे बल (निविष्टं) भरपूर भर गये हैं। ये बल इस विश्वमें हैं, यह बात परमेश्वर देखता और जानता है। उसके देखते देखते सब प्राणी इन बलोंको प्राप्त करते, इन बलोंपर हमला करते, उनको भोगते और (घ्नन्ति) उनको खाकर समाप्त करते हैं, जिस तरह अन्न खाकर समाप्त करते हैं। परन्तु इससे उसका असंख्येय बल कम नहीं होता, प्रत्युत इससे उस प्रभुका (रोचते) तेज बढता है और वह प्रभु इस विश्वको अधिकाधिकही तेजस्वी बनाता है अर्थात् उसका बल अपरिमित और अक्षय है।

बालादेकं अणीयस्कं उतैकं नैव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया॥ ४६॥

'(एकं बालात् अणीयस्कं) एक विभाग बालसे भी सूक्ष्म है और (एकं न एव दृश्यते) दूसरा विभाग दीखता नहीं है। (ततः परिष्वजीयसी देवता) इन दोनोंको आलिंगन देनेवाली वह देवता (सा मम प्रिया) मुझे प्रिय है।'

एक देवता है, वह दोनोंको आलिंगन देकर रहती है। यहां आलिंगन देनेका तात्पर्य दोनोंको अपने अन्दर समा लेना है। जिस तरह ' ढेला ' और ' मिठास ' इन दोनोंको ' मिश्री '

आलिंगन देकर रहती है, अपने अन्दर समा लेती है, इस तरह यहां समझना उचित है। इस देवताके अन्दर जो जो विभाग समाये हैं, उनमेंसे एक बालसे भी सूक्ष्म है, परन्तु 'दृश्य' है और दूसरा 'अदृश्य' है। दृश्य और अदृश्य विश्वको अपने अन्दर समा लेनेवाला जो है, वही आनन्दरूप प्रिय प्रभु है। यह समस्या इस तरह समझना उचित है—

ढेला+मिठास = मिश्री. खडी शक्कर
क्षर + अक्षर = पुरुषोत्तम (गीता अ. १५।१५-१८)
दृश्य+ अदृश्य = परिष्वजीयसी प्रिय देवता
(अथर्व. १६।८।२५)

जड + चेतन = परमेश्वर

इस तालिकासे मन्त्रका वर्णन स्पष्ट हो जायगा। पाठक इस ढंगसे इस समस्याको समझ लेनेका यत्न करें।

इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे।
यस्मै कृता, शये स, यश्चकार, जजार सः ॥२६॥

'(इयं) यह प्रिय देवता (कल्याणी) कल्याण करनेवाली, (अ-जरा) जरारहित अर्थात् कभी क्षीण न होनेवाली (मर्त्यस्य गृहे अ-मृता) मर्त्यके घरमें अमर है। (यस्मै कृता) जिसके लिये यह देवता है, (सः शये) वह सो रहा है, (यः चकार) जो बनाता है, (सः जजार) वह जीर्ण अथवा क्षीण होता जाता है।'

पूर्वोक्त २५ वे मन्त्रमें (१) प्रिय परिष्वजीयसी देवता, (२) अणीयस्क दृश्य रूप, (३) अदृश्य तत्त्व, ऐसे तीन सत्त्वभाव कहे हैं। ये परस्पर सर्वथा पृथक् हैं, या पृथक नहीं हैं, यह प्रश्न यहां उत्पन्न होता है। पूर्व मंत्रमेंही कहा है कि जो एक प्रिय देवता है, वही अन्य दोनों भावोंको अपने अन्दर समा लेती है। देखिये—

१ तत् विश्वरूपं संभूय एकमेव भवति (११)= यह सब विश्वरूप मिलकर एकही तत्त्व होता है, अर्थात् विविधता इसमें नहीं रहती।

२ आविः, सन्निहितं गुहा, तत्र सर्वं प्रतिष्ठितं (६)= प्रकट और गुप्त ऐसा जो है, वह सब उसमें रहता है।

३ सनत्नी सर्वं परि बभूव (१०)= सनातन देवताही सब कुछ बन गयी है।

४ मही देवी एकेन विभाती, एकेन वि चष्टे (३०)= बडी देवी एक शक्तिसे प्रकाश देती है और दूसरी शक्तिसे देखती है। [अर्थात् दृश्य, दर्शन, द्रष्टा एकही है।]

५ अहोरात्रे प्रजायेते (२३)= जैसे एकही सूर्यसे दिन और रात्रि यह द्वन्द्व उत्पन्न होता है, [वैसेही अन्य द्वन्द्व एकसेही बनते हैं।]

६ प्रजापतिः गर्भे अन्तश्चरति, बहुधा विजायते, विश्वं जजान (१३)= प्रजापति गर्भमें प्रविष्ट होकर नाना रूपोंमें उत्पन्न होता है, इस तरह उन्होंने सब विश्व उत्पन्न किया है।

७ स एव जातः, स जनिष्यमाणः (वा. य. ३२।४) = बना विश्व भी वही है और बननेवाला विश्व भी वही है।

८ अनन्तं, अन्तवत् च, समन्ते (१२)= अनन्त और सान्त इकट्ठे मिले हैं।

इन सब मंत्रोंका भाव ठीक तरह ध्यानमें लानेसे सब विश्वके 'संपूर्ण पदार्थ मिलकर एकही सत्-तत्त्व होता है,' यह एकेश्वरवादका अथवा सर्वेश्वरवादका सिद्धान्त अच्छी तरह समझमें आ सकता है। वेदके सूक्तोंमें यह सर्वेश्वरवाद अनेक वचनोंद्वारा बताया है, वैसाही इस ज्येष्ठ ब्रह्मके सूक्तमें भी कहा है।

कुमार कुमारी एकही देव

त्वं स्त्री, त्वं पुमानसि, त्वं कुमार, उत वा कुमारी। त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि, त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥२७॥ उतैषां पितोत वा पुत्र एषां, उतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः। एको ह देवो मनसि प्रविष्टः, प्रथमो जातः, स उ गर्भे अन्तः ॥२८॥

'कुमार-कुमारी, स्त्री—पुरुष, पिता—पुत्र, वृद्ध-तरुण, ज्येष्ठ-कनिष्ठ, भूतकालमें जन्मा और आज जन्मनेवाला, सर्वतो-मुख तथा एकमुख आदि सब प्रकारके जो द्वन्द्व हैं, वे सब एकही देवके रूप हैं,' यह सर्वेश्वरवादका सिद्धान्त इन मन्त्रोंमें कहा है। अतः इनका अर्थ देखिये—

'तू स्त्री है, तू पुरुष भी है, तू कुमार है और कुमारी भी तूही है, तू वृद्ध होकर दण्ड लेकर चलता है; तू जब जन्मता है, तब तू सब ओर मुखवाला, सब प्राणियोंके मुख धारण करनेवाला होता

है, तू इनका पिता है और तूही इनका पुत्र है, इनमें तू ज्येष्ठ है और कनिष्ठ भी तूही है, एकही देव (मनसि प्रविष्ट.) मनमें प्रविष्ट होकर (प्रथम जात) पहिले जन्मा था, (सः उ गर्भे अन्तः) वही गर्भमें अब पुनः जन्मा है । '

जैमिनीय उपनिषद्ब्राह्मणमें यह मन्त्र इस तरह आता है—

उतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठ उतैषां पुत्र उत वा पितैषाम् । एको ह देवो मनसि प्रविष्टः पूर्वो ह जज्ञे स उ गर्भेऽन्तः ॥

[जै. उप. ब्रा. ८५ (३।१०।१२)]

श्वेताश्वतर उपनिषद्में यह ' त्वं स्त्री० ' मन्त्र अथर्ववेदके मन्त्रके समानही है । पिप्पलाद संहितामें इस तरह है—

उतेव ज्येष्ठोत वा कनिष्ठोतेव भ्रातोत वा पितेव ।

' यहां भ्राता तथा पिता भी यही देव है, ' ऐसा स्पष्ट कहा है । अर्थात् परमेश्वरही पिता, माता, पुत्र, भाई, बहिनके रूपमें आया है, यह विशेष स्पष्ट भाव पिप्पलाद शाखाके मन्त्रने बताया है । यदि सभी विश्वके पदार्थ परमात्माके रूप हैं, तब तो अपने घरके लोग भी उसीके रूप हैं, यह क्या संदिग्ध होगा ? सब विश्वमें घरके सब लोग आनेसे वे सब ईश्वररूपही हैं, अत माता, पिता, चाचा, भाई, बहिन, पुत्र, पुत्री, प्रपौत्र, प्रपौत्री, इष्टमित्र, नौकर-चाकर, गणगोत, पडौसी तथा सब अन्य ईश्वरकेही रूप हैं, अत उनको वैसा पूज्य मानकर सबकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिये । जब मानवोंका व्यवहार इस दृष्टिसे परिशुद्ध और पवित्रतायुक्त होगा, तभी मानव—समाज वैदिक धर्मके सिद्धान्तपर आरूढ समझा जायगा । अब और देखिये—

सबका एक जीवन-स्रोत

पूर्णात् पूर्णं उदचति, पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥२९॥

'पूर्णसे पूर्णका उदय होता है, पूर्णके द्वारा पूर्णको सिंचित किया जाता है, अब (अद्य तत् विद्याम) इसका वह मूल हम जानें कि (यत तत् परिषिच्यते) जिससे उसको जीवन मिलता है । ' इसी तरहका एक मन्त्र श ब्रा १४। ८।१ तथा बृ उ ५।१ में है—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णं उदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णं आदाय पूर्णं एव अवशिष्यते ॥

(बृ. उ. ५।१)

' यह ब्रह्म पूर्ण है, यह विश्व भी पूर्ण है, क्योंकि उस पूर्णसे ही इस पूर्णका उदय हुआ है । पूर्णसे पूर्ण लेनेपर पूर्णही अवशिष्ट रहता है । '

दोनों मन्त्रोंका तत्वज्ञान एकसाही है । पूर्ण ब्रह्मसे पूर्ण विश्वका उदय होता है, इस पूर्ण विश्वको उस पूर्ण ब्रह्मसे जीवन मिलता है अत. इस पूर्ण विश्वके मूल कारणरूप उस ब्रह्मको जानें कि जिससे इसको जीवन मिल रहा है । जीव और जगत्‌का आदि स्रोत एक है और सबका जीवनतत्त्व वही है । क्योंकि ' सब मिलकर एकही सत्-तत्त्व होता है । '

अन्ति सन्तं न जहाति, अन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं, न ममार, न जीर्यति ॥३२॥
अपूर्वेणेषिता वाचः, ता वदन्ति यथायथम् ।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति, तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ॥३३॥

' (अन्ति सत न जहाति) पास रहनेवालेको वह त्यागता नहीं, पर (अन्ति सत न पश्यति) पास रहनेवालेको वह देखता नहीं । (देवस्य काव्य पश्य) इस देवताका यह ज्ञान देखो, वह (न ममार) मरता नहीं और (न जीर्यति) क्षीण भी नहीं होता ॥ (अ-पूर्वेण इषिता. वाचः) जिसके पूर्व कोई नहीं है, ऐसे आत्मदेवने प्रेरित की हुई वे वाणियाँ (ता यथा॰ यथं वदन्ति) यथायोग्य बोलती हैं (यत्र गच्छन्ति, वदन्ति) जहां वे वाणियाँ जाती हैं और बोलती हैं, वे एकही बात (आहुः) कहती हैं कि (तत् महत् ब्राह्मण) वही एक श्रेष्ठ ब्रह्म है । '

वह ब्रह्म सबके पास है, तथापि दीखता नहीं, परन्तु त्यागा भी नहीं जा सकता । विश्वकी इस तरह रचना करनेमें जो उसकी दिव्य चतुराई दीखती है, वह अवर्णनीय है । यह उसका ज्ञान सदा एकसा रहनेवाला है । इस आदिदेव आत्माके द्वारा सबकी वाणियाँ प्रेरित होती हैं और उन वाणियोंसे सत्य ज्ञान प्रकट होता है । वे सब वाणियाँ एकही बात कहती हैं कि, ' यही एकही बडा ब्रह्म है ' और कुछ नहीं है । एकही सत् है और उसीके सब रूप हैं ।

ब्रह्म सब पदार्थोंके रूप धारण कर रहा है अर्थात् घडेमें मिट्टीके समान सब पदार्थोंमें वह है । सबही विश्वके पदार्थ उसी॰ के रूप हैं, तथापि वह इतना प्रत्येक पदार्थमें होनेपर भी दीखता नहीं, पर कोई उसका इन्कार भी नहीं कर सकता, क्योंकि

सबमें वही एक सत्य है। यह उसकी चतुराई है, यह उसका अपूर्व ज्ञान है, यह शाश्वत टिकनेवाला ज्ञान है, इसमें घटबध नहीं होगा। जो मनुष्य योगसाधनादि द्वारा इस मन्त्रकी प्रेरणा को अपने अन्दर अनुभव कर सकता है, वही इस यथातथ्य ज्ञानको जान सकता है। आत्माकी शुद्ध प्रेरणासेही मनुष्यमें सत्य ज्ञान स्फुरित होता है। किसी बाह्य प्रमाणोंके विना प्राप्त होनेवाला सत्य ज्ञान यही है। इस ज्ञानसे एकही घोषणा होती रहती है। वह है– 'एकही ब्रह्म सर्वत्र ओतप्रोत भरा है, दूसरा कुछ भी यहां नहीं है।' यह एकत्वदर्शनही मुख्य और सत्य-दर्शन है। (सर्वं खलु इदं ब्रह्म) 'सबही सचमुच ब्रह्म है।' यहां ब्रह्मके विना दूसरा कुछ भी नहीं है।

देखना और जानना

ऊर्ध्वं भरन्तं उदकं कुम्भेनेव उदहार्यम्।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा, न सर्वे मनसा विदुः ॥१४॥

'(कुम्भेन इव उदहार्यं) घडेसे भरकर लानेयोग्य (उदकं ऊर्ध्वं भरन्तं) जल घडेसे भरकर ऊपर उठाकर लानेके समान (सर्वे चक्षुषा पश्यन्ति) सब लोग अपने आंखसे उसको देखते तो हैं, पर (सर्वे मनसा न विदुः) सब मनसे उसे ठीक तरह जानते नहीं।'

जल घडेमें भरकर उस घडेको सिरपर रखते हैं और लाते हैं। देखनेवाले लोग घडेको तो देखते हैं, पर जलको नहीं देखते। इसी तरह सब लोग ब्रह्मकोही देखते और ब्रह्मके साथही व्यवहार करते हैं, परन्तु सब लोग यथायोग्य रीतिसे सब विश्वको ब्रह्मस्वरूप अपने मनसे अनुभव नहीं करते।

वस्तुतः सबका सब व्यवहार ब्रह्मसेही हो रहा है, क्योंकि सब विश्वही ब्रह्म है, अतः सबका सब व्यवहार ब्रह्मके साथ निश्चयसे हो रहा है। परन्तु इस सत्य बातको सब लोग नहीं जानते। सब समझते हैं कि 'हम व्यवहार तो ब्रह्मसे भिन्न जगत्से कर रहे हैं।' परन्तु सब लोग चक्षुसे जो देख रहे हैं, वह ब्रह्मही है, अतः व्यवहार भी उसीसे किया जा रहा है। परन्तु कोई भी इस सत्यको जानते नहीं। जब इस सत्यको जानेंगे, तभी उनका व्यवहार परिशुद्ध होगा।

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते।
महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये, तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति ॥ १५ ॥

'(पूर्णेन दूरे वसति) पूर्णके साथ दूरतक रहता है, वह (ऊनेन दूरे हीयते) न्यूनतासे दूरतक विरहित है अर्थात् उसमें न्यूनता नहीं है, परन्तु सर्वत्र पूर्णताही है। ऐसा बडा (यक्षं) पूजनीय देव भुवनके मध्यमें है, इसीके लिये राष्ट्रका भरणपोषण करनेवाले सब देव उसीको बलि अर्पण करते हैं।'

इस विश्वमें सर्वत्र पूर्णता है, किसी स्थानपर न्यूनता नहीं है, क्योंकि सब विश्व ब्रह्मकाही रूप है। यही पूजनीय देव इस विश्वमें है। इसको छोडकर यहां दूसरा कुछ भी नहीं है। सब अन्य देवताएं जो भी यहां हैं, वे सब इसीके रूप हैं और वे इसके तेजको धारण करती हैं और अपने कर्मसे इसीकी पूजा करती हैं।

शरीरमें जिस तरह इंद्रियाँ, कर्मों और ज्ञान द्वारा आत्माकी ही उपासना करती हैं, इसी तरह विश्वमें सूर्यादि सभी देव परमात्माकी शक्तिसे प्रकाशित होते हैं और परमात्माके लियेही आत्मार्पण करते हैं अर्थात् जो करते हैं, वह उसीके लिये करते हैं।

यतः सूर्य उदेति, अस्तं यत्र च गच्छति।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं, तदु नात्येति किञ्चन ॥१६॥

'जहांसे सूर्यका उदय होता है और जहां सूर्य अस्तको चला जाता है, वही श्रेष्ठ ब्रह्म है, ऐसा मैं मानता हूं। (तत् उ किंचन न अत्येति) उसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता।'

सृष्टिके प्रारम्भमें सूर्यकी उत्पत्ति और सृष्टिके प्रलयमें सूर्यका अस्त होना, इसी तरह अन्यान्य देवताओंकी निर्मिति और उनका प्रलय, यह सब इस महत् ब्रह्मके अपूर्व रचनाचातुर्यसे होता है, इसलिये वह ब्रह्म सबसे श्रेष्ठ है और उसके नियमोंका उल्लंघन कोई भी नहीं कर सकता। यह उस ब्रह्मका सामर्थ्य है।

चार प्रकारकी प्रजाएं

(कुत्सः। आत्मा। त्रिष्टुप्)

तिस्रो ह प्रजा अत्यायं आयन्, न्यन्या अर्कमभितोऽविशन्त। बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश ॥ ३ ॥

(अथर्व. १०।८।३)

इस मंत्रके सदृश एक मंत्र ऋग्वेदमें है, वह यह है–

(जमदग्निर्भार्गवः । पवमानः । त्रिष्टुप्)

प्रजा ह तिस्रो अत्यायं ईयुः न्यन्या अर्कं अभितो विविश्रे । बृहत् ह तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आ विवेश ॥

(ऋ. ८।१०१।१४)

इस मंत्रका विवरण शतपथब्राह्मणमें निम्नलिखित प्रकार आता है–

प्रजापतिर्ह वा इदमग्र एक एवास ।...स प्रजा असृजत, ता अस्य प्रजाः सृष्टाः पराबभूवुः, तानीमानि वयांसि... ॥ १ ॥ ...स द्वितीयाः ससृजे ता अस्य पराबभूवुः, तदिदं क्षुद्रं सरीसृपं यदन्यत्सर्पेभ्यस्तृतीयाः ससृजे...ता अस्य परैव बभूवुः, त इमे सर्पाः. ॥२॥... स प्रजा असृजत, ता अस्य प्रजाः सृष्टाः स्तनमेवाभिपद्य तास्ततः संबभूवुस्ता इमा अपराभूताः ॥ ३ ॥ तस्मादेतदृषिणाभ्यनूक्तं । ' प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुरिति । '

(श. ब्रा. २।५।१।१-७)

' प्रजापति प्रारम्भमें अकेलाही था... उसने प्रजाएँ उत्पन्न कीं, उत्पन्न होतेही वे मर चुकीं, ऐसा तीन बार हुआ । ये पक्षी, जन्तु और सर्प आदि प्राणी थे । प्रजापतिने विचार किया कि वे प्रजाएं क्यों मरती हैं ? तब उसको मालूम हुआ कि इनको अन्न मिलता नहीं, इसलिये मरती हैं । तब उन्होंने चौथी बार स्तनवाली प्रजा उत्पन्न की । स्तनमें दूध होनेसे यह प्रजा जीवित रहने लगी । इस वृत्तान्तको दर्शानेके उद्देश्यसे ऋषिने **'प्रजा ह तिस्रो अत्यायं ईयुः०'** इत्यादि मन्त्र कहा है ।' इस स्पष्टीकरणको सामने रखते हुए ऊपरके मन्त्रका अर्थ हम करते हैं–

' (तिस्रः प्रजाः अत्यायं आयन् = ईयुः) तीन प्रकारकी प्रजाएं पूर्व समयमें नाश को प्राप्त हुईं, पश्चात् (अन्याः अर्कं अभितः न्यविशन्त) चौथी बार उत्पन्न हुई प्रजा सूर्यप्रकाशमें अथवा अग्निके सन्निध रहने लगी । (रजसः विमानः बृहत् तस्थौ) अन्तरिक्षका मापन करनेवाला बडा देव वहां रहता है, (हरित हरिणीः आ विवेश) हराभरापन इरेभरे वनस्पतियोंमें उसीसे हुआ है । '

(ऋग्वेद-पाठका अर्थ)- ' (भुवनेषु अन्तः बृहत् तस्थौ) भुवनोंके मध्यमें एक बडा देव है, वह (पवमानः हरितः आ विवेश) वायु हरेभरे वृक्षोंमें प्रविष्ट हुआ है । '

तीन प्रकारकी प्रजाएं प्रथम उत्पन्न हुईं, पश्चात् चौथी मानवी प्रजा उत्पन्न हुई । यह मानवी प्रजा सूर्यकी तथा अग्निकी उपासना करती हुई समाज संगठन करके रहने लगी । सूर्य और अग्नि इनका उपास्य है, वायु भी इनका उपास्य है । ये देव औषधिवनस्पतियोंमें प्रविष्ट होकर प्राणियोंकी सहायता करते हैं । यह इस मंत्रका आशय है ।

ये सब प्रजाएं प्रजापतिने अपनेमेंसे उत्पन्न कीं, क्योंकि केवल प्रजापति अकेलाही था, अतः उसने जो प्रजाएं सर्जन कीं, वह अपनेसेही कीं । सूर्य, अग्नि तथा वायु भी उसीसे उत्पन्न हुए और वे प्रजाओंके सहायक हुए । इसी तरह वनस्पतियाँ भी प्रजाओंकी सहायक हुई हैं ।

यहां प्रजापतिके प्रजाओंके सृजनके विषयमें कहा है । सूर्यकी उत्पत्तिके पश्चात् उससे विद्युत् अग्नि वनस्पतिके सृजनकी बात कही है । ये सब विभिन्न पदार्थ नहीं हैं, परन्तु ये प्रजापतिके ही रूप हैं, यही यहांके कहनेका तात्पर्य है ।

अपाद् अग्रे समभवत्, सो अग्रे स्वराभरत् ।
चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः, सर्वं आदत्त भोजनम् ॥ २१ ॥
भोग्योऽभवद् अथो अन्नं अदद् बहु ।
यो देवं उत्तरावन्तं उपासातै सनातनम् ॥ २२ ॥

' (अग्रे अपात् सं अभवत्) सृष्टि उत्पत्तिके प्रारंभमें पादहीन सृष्टि उत्पन्न हुई । (अग्रे सः स्वः आभरत्) प्रारंभमें उसने उसमें चैतन्य भर दिया । (चतुष्पाद् भोग्यः भूत्वा) चतुष्पाद् भोगनेयोग्य होकर (सर्वं भोजनं आदत्त) सब पदार्थ भोजनके लिये उसने प्राप्त किये ॥२१॥ (भोग्यः अभवत्) भोग भोगने योग्य वह बना; (अथो बहु अन्नं अदत्) और उसने बहुत अन्न खाया । वह सनातन (उत्तरावन्तं देवं) श्रेष्ठ देवकी उपासना करेगा । '

प्रारंभमें पादहीन सृष्टि, मछली सांप आदि होती है । उस सृष्टिमें चैतन्य कार्य करने लगता है । पश्चात् गाय आदि चतुष्पाद सृष्टि होती है, वह सब घास आदि खाती है । परमेश्वर सब प्राणियोंके रूपोंमें अवतीर्ण होकर सब पदार्थोंका भोग करता है, स्वयं भोगोंको भोगता है और दूसरोंका भोग्य भी बनता है । जैसी मछली छोटी मछलीको खाती है और स्वयं

बडी मछलीका भोजन बनती है। आगे मानवप्राणीमें यही ज्येष्ठ ब्रह्मकी उपासना करके स्वयं ब्रह्म होनेका दावा करता है। मछलीसे मानवतक यह विविध सृष्टि बढीही है।

यहां सूर्यकी उत्पत्तिका वर्णन अंशमात्र है। इस सूर्यके वर्णनके मंत्र इसके आगे आते हैं—

सूर्यचक्र = कालचक्र

द्वादश प्रधयः, चक्रमेकं, त्रीणि नभ्यानि, क उ तच्चिकेत। तत्राहताः त्रीणि शतानि शंकवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥ ४ ॥

' (द्वादश प्रधयः) चक्रकी बारह हालें हैं, (एकं चक्रं) एक चक्र है, (त्रीणि नभ्यानि) तीन नाभियां हैं, (तत् कः उ चिकेत) इसको कौन ठीक तरह जानता है? (तत्र त्रीणि शतानि शंकवः आहताः) उस चक्रमें तीन सौ शंकु लगाये हैं, (षष्टिः च खीलाः ये अविचाचलाः) और साठ खील जो स्थिर रूपसे लगाये हैं। '

सूर्यचक्रका यह वर्णन है। कालचक्र भी इसे कहते हैं। चक्रपर लोहेकी हाल होती है, वैसी १२ हाल इस कालचक्रपर हैं। येही बारह महिने हैं। तीन नाभियां हैं, ये तीन काल हैं। ग्रीष्म, वृष्टि और सर्दीके मौसमही ये तीन नाभियां हैं। ३६० शंकु और खील इस चक्रमें हैं, ये चान्द्र वर्षके ३६० दिनही हैं। यहां ३०० दिनोंको शंकु कहा है और ६० दिनोंको खील कहा है, इससे वर्षके १० महीने और २ महीने ऐसे दो विभाग थे, ऐसा पता चलता है। अंग्रेजी ' दिसेंबर ' महिना दसवाँही है। सेप्टेंबर अक्टूबर, नवंबर, दिसेंबर ये क्रमशः सप्तम, अष्टम, नवम और दशम मासही हैं। दश मासकी गणना किसी समय थी और दो मास पीछेसे लगाकर वर्षके १२ महीने किये गये। यह भेद ३०० और ६० की पृथक् गिनतीसे प्रतीत हो रहा है। और देखिये—

इदं सवितर्वि जानीहि, षड् यमा एक एकजः।
तस्मिन् हापित्वं इच्छन्ते य एषां एक एकजः ॥५॥

' हे सविता! (इदं वि जानीहि) यह तुम समझ लो कि (षट् यमाः) छः जुडवे हैं और (एकः एकजः) एक अकेलाही उत्पन्न हुआ है। (एषां य एकजः एक) इनमें जो अकेला उत्पन्न हुआ है, (तस्मिन्) उसके साथ अन्य छः (आपित्वं इच्छन्ते) अपना सम्बन्ध जोडना चाहते हैं। '

छः जुडवे भाई हैं। वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर ये छः ऋतु हैं, क्योंकि एक ऋतुमें दो महिने होते हैं; अतः इनको छः जुडवे भाई कहा है। ये १२ महिने हुए। एक अकेला है, यह अकेलाही जन्मा है। यह तेरहवाँ महिना है। अधिक मास अथवा मलमास इसको कहते हैं, त्रयोदश या पुरुषोत्तम मास भी इसको कहते हैं।

इस तेरहवें महिनेके साथ अन्य बारह महिने अथवा छः ऋतु अपना सम्बन्ध जोडना चाहते हैं। इसका अर्थ इतनाही है कि चान्द्र वर्षके ३५४ दिन हैं और सौर वर्षके ३६५ दिन हैं। इन दोनों वर्षोंमें ११ दिनोंका फेर है। अतः चान्द्र वर्षका सौर वर्षके साथ मेल रखनेके लिये तीन चान्द्र वर्षोंके अन्तमें एक अधिक मास मानते हैं, यह तेरहवा महिना है। इस तरह इसका ६ ऋतुओं और १२ महिनोंसे सम्बन्ध है। इस मेलका यह वर्णन है।

(कुत्सः । आत्मा । त्रिष्टुप्)

एकचक्रं वर्तत, एकनेमि, सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा। अर्धेन विश्वं भुवनं जजान, यदस्यार्धं क्व तद् बभूव ॥ १७ ॥

(अथर्व १०।८।१७)

ऐसाही एक मंत्र प्राणसूक्तमें है, उसे यहां देखिये—

(भार्गवो वैदर्भि । प्राणः । त्रिष्टुप्)

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा। अर्धेन विश्वं भुवनं जजान, यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ २ ॥ (अथर्व ११।४।२२)

' (एकचक्रं = अष्टाचक्रं वर्तते) एकचक्र अथवा अष्टचक्र है, (एकनेमि) उसकी एक नाभि है, (सहस्र-अक्ष-र) सहस्र आरोंसे यह प्रकाश देता है और यह (पुरः प्र, पश्चा नि) आगे और पीछे घूमता है। (अर्धेन विश्वं भुवनं जजान) आधेसे सब भुवनोंको इसने बनाया है, (अस्य यत् अर्धं) इसका जो आधा भाग है, (तत् क्व बभूव) वह कहां है? तथा (सः कतमः केतुः) उसका चिह्न कहां है? '

यह सूर्यका वर्णन है। एकचक्र सूर्य है, सहस्राक्षर अर्थात् वह हजारों किरणोंसे प्रकाश देता है। वह दिनमें प्रकाश देकर सब भुवनोंको प्रकाशित करता है, रात्रिके समय अन्धेरेसे सब विश्व ढक जाता है, उस समय वह सूर्य कहां जाता है? अष्टाचक्र सूर्यही है, क्योंकि अहोरात्रके आठ प्रहर हैं। चार प्रहरोंका दिन और चार प्रहरोंकी रात्रि है। यह सूर्यही कालचक्र है,

एकही ब्रह्मके द्वारा हो रहा है। ' एकही ब्रह्मके बने ये देव हैं, जो नाना कर्म करते हैं।

इमां एषां पृथिवीं वस्त एको, अन्तरिक्षं पर्येको बभूव। दिवं एषां ददते यो विधर्ता, विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ॥ ३६ ॥

'(एषां एकः इमां पृथिवीं वस्ते) इनमेंसे एक अग्नि पृथिवीमें वसता है, (एकः अन्तरिक्षं परि बभूव) दूसरा वायु अन्तरिक्षमें व्यापता है। (एषां यः विधर्ता दिवं ददते) इनमें जो सबका धारणकर्ता है, वह द्युलोक सूर्यका धारण करता है और (एके विश्वाः आशाः प्रति रक्षन्ति) दूसरे देव सब दिशाओंकी रक्षा करते हैं। '

अग्नि पृथ्वीमें, विद्युत् अन्तरिक्षमें, सूर्य द्युलोकमें और अन्य देव सब दिशाओं रहते हैं और सबकी रक्षा करते हैं। ये सब देव एकही ज्येष्ठ ब्रह्मकी महिमा हैं, यह पहिले कहाही है।

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्यः। यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ? ॥ ३९ ॥
अप्स्वासीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन्। बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानः, पवमानो हरित आ विवेश ॥ ४० ॥

' (यत् विश्वदाव्यः अग्निः द्यावापृथिवी अन्तरा) जब सबको जलानेवाला अग्नि द्युलोक और पृथिवीके बीचमें जो है, उसको (प्रदहन् ऐत्) जलाता हुआ जाता है, तब (यत्र एकपत्नीः परस्तात् अतिष्ठन्) एक देवकी देवपत्नियां आगे कहां रहीं थीं ? और (तदानीं मातरिश्वा क्व इव आसीत्) तब वायु कहां था ? '

'(मातरिश्वा अप्सु प्रविष्टः आसीत्) वायु जलोंमें प्रविष्ट होकर रहा था, (देवाः सलिलानि प्रविष्टाः आसन्) सब देव अन्तरिक्षस्थ जलमें प्रविष्ट हुए थे, (रजसः विमानः बृहन् ह तस्थौ) अन्तरिक्षका मापन करता हुआ बडा देव वहीं ठहरा था, (पवमानः हरितः आ विवेश) शुद्धता करनेवाला देव दिशोंमें आविष्ट हुआ था। '

जब अग्नि सब विश्वको जलाने लगे और सब दिशाएं स्वरूपमी हो जावें, तब वायु क्या करता है? जब अग्नि जलाने लगता है, तब वायु उसका सहायक होता है।

यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु। स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत स विद्यात् ब्राह्मणं महत् ॥ २० ॥

' (यः ते अरणी विद्यात्) जो उन दोनों अरणियोंको जानता है, (याभ्यां वसु निर्मथ्यते) जिनसे अग्नि नामक वसुदेव मन्थनद्वारा निर्माण किया जाता है, (स मन्येत) वह माने कि (ज्येष्ठं विद्वान्) मैं ज्येष्ठ ब्रह्म जानता हूं, (स महत् ब्राह्मणं विद्यात्) वह बडे ब्रह्मको निःसंदेह जानता है। '

जिस तरह अरणियोंमें अग्नि रहता है और घर्षणसे वह प्रकट होता है, अरणिकी लकडियां सदा अग्निमय रहती हैं, उसी प्रकार सब विश्व ब्रह्ममय है, यह जो जानता है, वह ब्रह्मको यथावत् जानता है।

मन्त्र, छन्द और यज्ञ

या पुरस्ताद् युज्यते या च पश्चाद्, या विश्वतो युज्यते, या च सर्वतः। यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा सर्चाम् ॥ १० ॥

' जो ऋचा यज्ञके प्रारम्भमें बोली जाती है और जो अन्तमें कही जाती है, जो सर्वत्र बोली जाती है और जो प्रत्येक कर्ममें कही जाती है, जिससे यज्ञका फैलाव किया जाता है, वह कौनसी ऋचा है ? यह मैं तुझसे पूछता हूं। '

वेदमंत्रोंसे यज्ञ सिद्ध होता है और यज्ञ फैलाया जाता है। यज्ञ दिनके समय होता है। इसलिये सूर्य जैसा यज्ञ फैलानेवाला है, वैसाही वेदप्रवर्तक भी है।

उत्तरेणेव गायत्रीं अमृतेऽधि वि चक्रमे। साम्ना ये साम संविदुः अजस्तद् ददृशे क्व ? ॥ ४१ ॥

' (गायत्रीं उत्तरेण इव) गायत्रीके ऊपर, (अमृते अधि) अमर लोकके अन्दर (वि चक्रमे) वह देव विक्रम करता है। (साम्ना ये साम संविदुः) सामके अभ्याससे जो साम गान सम्यक् जानते हैं, तब (अजः क्व ददृशे) अजन्मा देव कहां दीखता है ? '

वेद-मंत्रोंसे यज्ञ सिद्ध होता है। गायत्री आदि छंदोंद्वारा अमर देवोंके विक्रम वर्णित हुए हैं। जिस तरह सामगानके अभ्याससे सामके गानोंकी, [illegible] पर्यालता [illegible]

होता है। ज्येष्ठ ब्रह्मसे सूर्य, सूर्यसे विद्युत् और अग्नि होते हैं। इस तरह ज्येष्ठ ब्रह्मसे सब देव उत्पन्न होते हैं, अर्थात् ज्येष्ठ ब्रह्मही सब देवोंके रूप धारण किये खडा है।

सब मंत्रोंके वर्णनमें यह भाव प्रमुख है। अरणीद्वारा मन्थनसे उत्पन्न होनेवाले अग्नि का वर्णन २० वे मन्त्रमें है। लकडीमें स्थित अग्नि का प्रकटीकरण इस तरह होता है। लकडीमें भी सूर्यकीही उष्णता संगृहीत होती है, जो अग्निरूपसे प्रकट होती है। अर्थात् ये सभी देव सूर्यके ही रूप हैं, इस सदैक्यवादकी घोषणा ये सब मन्त्र कर रहे हैं। इन मंत्रोंमें जो अन्य वर्णन है, उसका हमारे प्रस्तुत विषयसे सम्बन्ध नहीं है, अतः सूत्ररूप मुख्य वर्णन का ही आशय यहां दिया है।

' **मन्त्र, छन्द और यज्ञ** ' विषयका वर्णन करनेवाले आगे दो मन्त्र हैं। जिस मन्त्रसे यज्ञका प्रारंभ किया जाता है और जिससे यज्ञकी समाप्ति होती है, वह मन्त्र ओंकार है। इसका तत्त्व यह है—
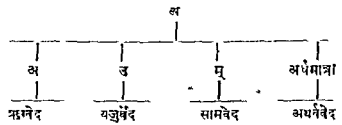
इस तरह 'अ' कारसे 'ओंकार' और ओंकारसे सब देव होते हैं। सब वर्णोंमें अकारही नाना अक्षरोंके रूप लिये रहा है, जैसा ज्येष्ठ ब्रह्म विश्वरूप बना है। यह दोनोंकी समानता पाठक देखें।

' **फलश्रुति** ' का वर्णन अन्तिम मन्त्रमें है। सविता सब विश्व का उत्पादन अपनेमेंसे करता है, इसके ये सत्य नियम इसीमें स्थायी रहते हैं। ज्येष्ठ ब्रह्मसे सविता और सविता से सब विश्वकी उत्पत्ति होती है। इसी तरह सब वस्तुओंका संगमन एक देवमें होता है, यही ज्येष्ठ ब्रह्म है। जो यह तत्त्वज्ञान जानता है, वह इन्द्रके समान युद्धोंमें विजेता होता है। वह निर्भय होता है और विजयी होता है।

सर्वेश्वरवाद अथवा सदैक्यवादका तत्त्वज्ञान ऐसा गंभीर तत्त्वज्ञान है और वेदका यही ज्ञानसर्वस्व है। पाठक इसका ग्रहण करें।

कुत्स ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(११)

त्रित ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका १६ वाँ अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

संवत् २००४

मूल्य १॥) रु०

' वृत्रके साथके युद्धमें इन्द्रके साथ रहकर युद्ध करनेवाले त्रितके बलको और कर्तृत्वशक्तिको तुमने बढाया, या सुरक्षित किया।' यहां त्रित इन्द्रके साथ रहकर वृत्रके साथ लडता है। इसलिये मरुतोंने त्रितकी सहायता की और त्रितका बल बढाया। जैसे मरुत् इन्द्रकी सहायता करते थे वैसेही वे त्रितको भी सहायता करते थे। इससे भी यह सिद्ध हो रहा है कि त्रित भी इन्द्रके समानही शूर वीर था। त्रित युद्ध करनेके लिये अपने शस्त्रास्त्र तीक्ष्ण करके सदा सज्ज रखता था, इस विषयमें अगला मंत्र देखनेयोग्य है—

शस्त्र तीक्ष्ण करनेवाला त्रित

(गय आत्रेय । अग्नि)

अध स्म यस्यार्चयः सम्यक् संयन्ति धूमिनः।
यदीमह त्रितो दिवि उप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरि यथा॥ (ऋ ५।९।५)

' धूवेंके साथ इस अग्निकी ज्वालाएँ सम्यक् रीतिसे ऊपर चल रही हैं। लुहारके समान यह त्रित आकाशमें अग्निको प्रदीप्त करता है और अपने शस्त्रको तीक्ष्ण करता है।'' यहां त्रित अग्नि जलाकर, उसको पुन पुन प्रदीप्त करके शस्त्र तैयार करता है और उसको अच्छी तीक्ष्ण धार लगाता है ऐसा वर्णन है। युद्धके पूर्व त्रितका यह कर्म युद्धकी तैयारीके लियेही है। अग्निको प्रदीप्त करके, प्रदीप्त अग्निमें तपाकर लोहे या फौलादके शस्त्र बनाना और उन शस्त्रोंको तीक्ष्ण करनेका वर्णन है। इससे पता लगता है कि त्रित ऋषि इस विद्यामें भी प्रवीण था। अब त्रितके युद्ध करनेके विषयमें मंत्र देखो—

त्रितका युद्ध करना

(त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः । इन्द्र)

अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्तरिच्छन् धीतिं पितुरेवैः परस्य। सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति॥ ७॥
स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत्। त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान् त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः॥८॥ (ऋ १०।८।७-८)

' परम पिताकी प्रेरणासे ध्यान-सिद्धिकी इच्छा करनेवाला त्रित अपने पुरुषार्थसे आन्तरिक शक्तिकी सिद्धिको भी प्राप्त हुआ। मातापिताओंके समीप रहकर उनकी सेवा करनेवाला और अपना भ्रातृत्वका संबंध कहनेवाला त्रित अनेक शस्त्रोंको भी प्राप्त करता रहा। उस त्रितने अपने पितरोंसे प्राप्त किये शस्त्रोंको अच्छी तरह जाना, और इन्द्रकी प्रेरणासे आप्त्य त्रितने बडा युद्ध किया। त्वष्टाके पुत्र त्रिशिरा सप्तरश्मिको मारा और त्रितने गौओंको खुला करके छोड दिया।' त्रितने मातापिताकी सेवा की, उनसे शस्त्र प्राप्त किये, शस्त्रोंका प्रयोग करना जान लिया, पश्चात् इन्द्रकी प्रेरणासे युद्ध किया, शत्रुको मारा और उसने बंद रखी गौवें खोलकर मुक्त कीं।

शत्रुभेदक त्रित

(भौमोऽत्रि । इन्द्राग्नी)

दृळ्हा चित् स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः॥ (ऋ ५।८६।१)

' त्रित शत्रुके तर्कोंका खण्डन करता है, वैसाही वह शत्रुके सुदृढ कीले भी तोड देता है।' यहां त्रितके दो कर्म वर्णन किये हैं, एक शत्रुके कीलोंको तोडना, और शत्रुके विचारोंका अपनी युक्ति-प्रयुक्तियोंसे निराकरण करना। पहिला कार्य शौर्यका है और दूसरा विद्वत्ताका है। तथा और देखो—

वृत्रको काटनेवाला त्रित

(अगस्त्यो मैत्रावरुणि । अन्न)

यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत्॥ (ऋ १।१८७।१)

' जिस अन्नके सामर्थ्यसे (समर्थ बनकर) त्रितने वृत्रासुरको टुकडे टुकडे करके नष्टभ्रष्ट किया।' इस मन्त्रमें वृत्रको काटकर टुकडे करनेवाला त्रित कहा है। यहाँ यह वीर इन्द्रके समान प्रभाववाला है। जिस तरह इन्द्र वृत्रके अवयव काटता है, वैसाही यहां त्रित भी करता है, अर्थात् इन्द्र और त्रितकी वीरता समान है। इसी तरह और भी देखो

वराहवध करनेवाला त्रित

(वम्रो वैखानसः । इन्द्र)

अस्य त्रितो न्वोजसा वृधानो विपा वराहमयोअग्रया हन्॥ (ऋ १०।९९।६)

' इन्द्रकी शक्तिसे बलिष्ठ बने हुए त्रितने फौलादके अग्रके शस्त्रसे वराहका वध किया । ' वराह एक राक्षस था जिसको त्रितने मारा था । त्रित इतना शूर, वीर, साहसी, विद्वान् और चतुर था इसलिये उसके आश्रयमें बहुत लोग आकर रहा करते थे, इस विषयमें अगला मंत्र देखनेयोग्य है—

त्रितके पास अनेकोंका आना

(उपस्तुतः वार्ष्टिहव्यः । अग्निः)

आ रण्वासो युयुधयः न सत्वनं
त्रितं नशन्त प्र शिषन्त इष्टये ॥

(ऋ. १०।११५।४)

' युद्धमें आनंद माननेवाले वीर जिस तरह बलवान् सेनापतिके पास जाते हैं, उस तरह इष्टकामनाकी पूर्ति करनेके लिये त्रितके पास आकर उसकी सेवा करते हैं । '

त्रितके पास आनेसे इस तरह लाभ होता है, इस तरह त्रितका महत्त्व बढनेसे ' त्रित ' पद सन्मानके लिये प्रयुक्त होने लगा । घोडेका सन्मान करनेके लिये घोडेको भी त्रित कहना योग्य माना गया । इस विषयमें एक उदाहरण अब देखो—

अश्वही त्रित है

(दीर्घतमा औचथ्यः । अश्वः)

असि यमो, असि आदित्यो अर्वन्,
असि त्रितो गुह्येन व्रतेन । (ऋ. १।१६३।३)

' गुह्य मतके अनुसार हे अश्व ! तू यम है, तू आदित्य है, और त्रित भी तूही है । ' यहां अश्वही यम, आदित्य और त्रित है ऐसा कहा है । सर्वात्मभावसे यह वर्णन है । एकही सत् वस्तुका बना यह सब संसार है, इसलिये त्रित, यम, अश्व, आदित्य ये सब एककेही रूप हैं । गीतामें भी ऐसाही कहा है—

ब्रह्मार्पणं, ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नौ, ब्रह्मणा हुतम् ।
(भ. गी. ४।२४)

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम् ।
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ (भ. गी ९।१६)

' अर्पण, रवि, अग्नि, आहुति, यज्ञ, क्रतु, स्वधा, औषधि, मंत्र, घी यह सब ब्रह्म (अथवा मैं, किंवा सत् वस्तु) है । ' उक्त मंत्रका भावही इन गीताके श्लोकोंमें कहा है ।

सर्वात्मभाव, सर्वसमभावसे यह वर्णन देखनेयोग्य है । त्रित युद्धमें जाता था, वह वीर था, इसलिये घोडेको जोतना सजाना आदि भी जानता था, देखो—

त्रितने घोडेको सजाया

(दीर्घतमा औचथ्यः । अश्वः)

यमेन दत्तं त्रित एनं आयुनगिन्द्र एणं
प्रथमो अध्यतिष्ठत् । गन्धर्वो अस्य रशनां
अगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥

(ऋ. १।१६३।२)

' यमने दिये इस (घोडे) को त्रितने सज्ज किया, और स्वयं इन्द्रने सबसे प्रथम उसपर आरोहण किया । गन्धर्वने उसकी रस्सियां पकडी थीं, ऐसे घोडेको, हे वसुओं ! तुमने सूर्यसे बना दिया था । ' यमने घोडा दिया, त्रितने उस घोडेको सजाया अर्थात् उसकी पीठपर आसन आदि ठीक तरह लगाकर तैयार किया, गन्धर्वने उसके लगाम पकडे और उसपर इन्द्र चढकर बैठा । इससे त्रितका इन्द्रसे संबंध क्या था इसका पता लगता है ।

त्रित इतना श्रेष्ठ बननेके कारण उसकी स्तुति भी विशेष रूपसे होने लगी, देखो—

त्रितकी सामुदायिक स्तुति

(नाभाकः काण्वः । वरुणः)

त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे ।

(ऋ. ८।४१।६)

' जिस तरह गौवें गोशालामें इकट्ठी होती हैं, वैसे तुम इकट्ठे होकर त्रितका वर्णन करो । ' यहां त्रितकी सामुदायिक स्तुति होनेका वर्णन है । इस सूक्तका देवता वरुण है, इसलिये यहांका 'त्रित' पद वरुणका वाचक भी माना जा सकता है । तथा—

(गयः प्लातः । विश्वे देवाः)

त्रितं ... उषसं अक्तुम् ॥ (ऋ. १०।६४।३)

' त्रित, उषा, रात्रीका मैं स्तवन करता हूं ' यहां अन्य देवोंमें त्रितकी गणना की है । इस विषयमें पूर्व स्थानमें दिया मंत्र भी यहां देखनेयोग्य है । ' देवोंमें त्रितकी गणना ' शीर्षक देखो ।

इतना होनेपर भी त्रित स्वयं प्रार्थना करता था । देखो—

त्रित ऋषिका तत्त्वज्ञान

—×—

त्रित आप्त्य एक ऋषि था। जिसके देखे सूक्त ऋग्वेदमें हैं। इसके नामका उल्लेख जैसा ऋग्वेदमें है, वैसाही अथर्ववेदमें भी है। 'त्रित' पदका अर्थ 'तीर्णतमः' अर्थात् अज्ञानसे पूर्णतया मुक्त, परम ज्ञानी, क्लेशोंसे पूर्णतया छूटा हुआ है। ज्ञान और विज्ञानसे संपन्न ऐसा इसका अर्थ है। 'अपां पुत्रः आप्त्यः' जलोंका पुत्र विद्युत् अग्नि है, वही आप्त्य त्रित है। अग्नि जैसा तेजस्वी ऋषि ऐसा इसका भाव है। यह विभावसुका पुत्र है ऐसा एक मंत्रमें कहा है, वह मंत्र यह है—

विभावसुका पुत्र त्रित

(वत्सप्रिः भालन्दनः। अग्निः)

इमं त्रितो भूरि अविन्दद् इच्छन् वैभूवसो मूर्धनि अघ्न्यायाः। स शेवृधो जात आ हर्म्येषु नाभिः युवा भवति रोचनस्य ॥ (ऋ. १०।४६।३)

'(वैभूवसः त्रितः) विभावसुके पुत्र त्रितने इस भूमिके ऊपर अग्निको प्राप्त करनेकी इच्छा की। वह अग्नि घरोंमें उत्पन्न हुआ और पश्चात् वह प्रकाशका केन्द्र बना।'

यहां त्रितका पिता विभावसु है ऐसा लिखा है। 'आप्त्य त्रित' और 'वैभूवस त्रित' ये एकही हैं, या दो विभिन्न हैं, इसकी खोज होनी चाहिये। इसके विषयमें वेदमंत्रोंमें पता नहीं मिला। यदि अन्यत्र किसीको कुछ पता लगा तो वह अवश्य प्रसिद्ध करे। त्रितकी स्त्रियोंके विषयमें आगे दिये मंत्रमें उल्लेख है—

त्रितकी स्त्रियाँ

(श्यावाश्व आत्रेयः। पवमानः सोमः)

मादीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्ति अद्रिभिः। इन्दुं इन्द्राय पीतये ॥ (ऋ. ९।३२।२)

(रहूगण आंगिरसः। पवमानः सोमः)

एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्ति अद्रिभिः। इन्दुं इन्द्राय पीतये ॥ (ऋ. ९।३८।२)

'(ये त्रितस्य योषणः) त्रितकी स्त्रियाँ पत्थरोंसे हरिद्वर्ण सोमको कूटती और इन्द्रके पानेके लिये रस निकालती हैं।' यहां त्रितकी स्त्रियाँ सोमरस निकालती हैं और इन्द्रके लिये तैयार करती हैं ऐसा लिखा है। अन्यत्र यज्ञमें ऋत्विज सोमरस निकालते हैं। यहां घरमें घरकी स्त्रियाँ सोमरस निकालनेका वर्णन है। अर्थात् यह पेय घरेलू है।

त्रित यज्ञ करता था, इससे उसकी गणना देवोंमें की जाती थी, ऐसा अगले मंत्रसे प्रतीत होता है —

देवोंमें त्रितकी गणना

(गृत्समदो भार्गवः शौनक। विश्वे देवाः)

अहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत। त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपात् ॥ (ऋ. २।३१।६)

"अहिर्बुध्न्यः, अज एकपात्, त्रितः, ऋभुक्षाः, सविता, अपां नपात्" इन देवोंमें त्रितकी गणना की है। अर्थात् त्रित ऋषि भी है और देव भी है। अथवा ऋषि होता हुआ देवत्वको प्राप्त हुआ था। क्योंकि यह त्रित इन्द्रके समान शूर था, देखो—

त्रितके समान इन्द्रका शौर्य

(सव्य आंगिरसः। इन्द्रः)

इन्द्रो यद् वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद् वलस्य परिधीँरिव त्रितः ॥ (ऋ. १।५२।५)

'अन्नसे उत्साहित हुए वज्रधारी इन्द्रने, त्रितके समान ही वलके दुर्गकी दिवारोंको तोड दिया।' इस मन्त्रमें कहा है कि इन्द्रने जो शत्रुके किले तोड दिये, वह कर्म त्रितके कर्मके समान-ही था। यहां इन्द्रके शौर्यके साथ त्रितके शौर्यकी तुलना की है। त्रित और इन्द्रकी युद्धशौर्यके विषयमें समता यहां दिखायी है। देववीरोंके समान ऋषि भी शूर, वीर, धीर तथा युद्धमें निपुण होते थे ऐसा इस मंत्रसे सिद्ध होता है। यही भाव अगले मंत्रमें देखो—

लडनेवाला वीर त्रित

(पुनर्वत्सः काण्वः। मरुतः)

अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्मं आवन् उत क्रतुम्। अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये ॥ (ऋ. ८।७।२४)

त्रित प्रार्थना करता है

(गृत्समदः भार्गवः शौनकः । मरुतः)

यद्वो निदे नवमानस्य रुद्रियाः त्रितं जराय जुरतां अदाभ्याः ॥१०॥ त्रितो न यान् पञ्च-होतॄनभिष्टय आववर्तदवराञ्चक्रियावसे ॥१४॥

(ऋ. २।३४)

'हे अदम्य वीरो ! निंदकोंको दण्ड देनेके लिये, तथा त्रितका नाश करनेवालोंको नष्ट करनेके लिये (तुम चले थे) पांच होताओंको बुलानेके समान त्रितने अपनी सुरक्षाके लिये चक्ररूप शस्त्र धारण करनेवाले श्रेष्ठ वीरोंको अपना मनोरथ सिद्ध करनेके लिये बुलाया।' यहां स्पष्टतासे कहा है कि त्रितका नाश करनेवाले दुष्ट राक्षस थे, उन राक्षसोंका नाश करनेके लिये मरुत् वीरोंकी प्रार्थना त्रितने की, उसको श्रवण करके मरुत् वीर आगये और उन्होंने उन दुष्टोंका नाश किया। यहां अपनी सुरक्षाके लिये देवोंकी प्रार्थना करनेवाला त्रित दीखता है। इस तरह बुलानेपर मरुद्वीर उनकी सहायताके लिये आते थे यह बात त्रितकी श्रेष्ठताकी दर्शक है। त्रितकी प्रार्थना और भी है, देखो—

(कुत्स आंगिरसः । विश्वे देवाः)

अमी ये सप्त रश्मयः तत्रा मे नाभिराहिता। त्रितस्तद् वेद आप्त्यः स जामित्वाय रेभति ॥

(ऋ. १।१०५।९)

'ये जो सात किरण हैं, उनमें मेरे (कार्यका) केन्द्र रहा है। आप्त्य त्रितको यह विदित है। वह अपने संबंधी आप्त पुरुषके हित करनेके लिये प्रभुकी प्रार्थना कर रहा है।' यहां त्रित आप्त्य प्रभुकी प्रार्थना कर रहा है, अपने प्रिय संबन्धीका हित करनेकी इच्छासे वह प्रार्थना करता है।

प्रजाजनोंका हित करनेके लिये भी त्रितऋषि बारबार जाया करता था इस विषयमें अगला मंत्र देखो—

प्रजाओंमें जानेवाला त्रित

(वत्सप्रिः भालन्दनः । अग्निः)

नि पस्त्यासु त्रित स्तभूयन्
परिवीतः योनौ सीददन्तः ॥

(ऋ. १०।४६।६)

'त्रित परिवेष्टित होकर घरमें रहता है और प्रजाजनोंमें जाता है।' त्रित सब लोगोंमें भ्रमण करके सबका ठीक तरह निरीक्षण करता है। और शत्रुओंको दूर करके प्रजाका हित करता है। यह त्रित पुरोहितका कार्य भी करता है—

कण्व-होता त्रित

(भौमः अत्रिः । विश्वे देवाः)

प्र सक्षणः दिव्यः कण्वहोता त्रितः ॥४॥
त्रितो नपातमपां सुवृक्ति ॥१०॥

(ऋ. ५।४१।४;१०)

कण्वका होता त्रित यहां वर्णन किया है, यही 'अपां नपात्' भी है। 'त्रितकी देवोंमें गणना' शीर्षक यहां देखो। त्रितकी श्रेष्ठताका पता अगले मंत्रसे लग सकता है। इन्द्रके साथ बैठकर यह त्रित सोमपान करता था। यह सन्मान विशेषही है, यह सन्मान हरएकको नहीं मिल सकता।

इन्द्रके साथ सोमपान करनेवाला त्रित

(पर्वतः काण्वः । इन्द्रः)

यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये।
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥

(ऋ. ८।१२।१६; अथर्व २०।१११।१)

'हे इन्द्र ! तू विष्णुके, तथा त्रित आप्त्यके, और मरुतोंके साथ सोमरस पीकर आनन्द प्राप्त करता है।' यहां इन्द्रके साथ सोमपान करनेवाले त्रित आप्त्यका वर्णन है। अथवा त्रित आप्त्यके यज्ञमें सोमपान करनेवाले इन्द्रका भी यह वर्णन हो सकता है। इससे इन्द्र, विष्णु और त्रित आप्त्यका घनिष्ठ संबंध प्रकट होता है। और ये साथ साथ बैठकर खानपान करते थे, इसमें ये श्रेष्ठ थे, इस बातका ज्ञान इस मन्त्रसे हो सकता है। त्रितके यज्ञ-संभार और सोमरस तैयार करनेके वर्णन अगले मंत्रोंमें देखो—

त्रित सोमको स्वच्छ करता है

(त्रित आप्त्यः । पवमानः सोमः)

भुवत् त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः ॥

(ऋ. ९।३४।४)

'त्रित जिस सोमको स्वच्छ करता था, वह सोमरस इन्द्रका हर्ष बढानेवाला होता है।' यहां स्वयं त्रित सोमको जाकर साफ करता है, धोता है, पवित्र करता है ऐसा कहा है। तथा—

त्रितकी छननीपर सोम

(रहूगण आंगिरसः । पवमानः सोमः)

स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत्। जामिभिः सूर्यं सह ॥ (ऋ. ९।३७।४)

' त्रितके उच्च छननीपर वह छाना जानेवाला सोम चमकने लगा, बहिनों (स्त्रियों या अंगुलियों) के द्वारा वह निचोडा गया। ' तथा और भी देखो-

त्रितका सोमरसमें जल मिलाना

(प्रस्कण्वः काण्वः । पवमान· सोम)

त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे। (ऋ. ९।९५।४)

' त्रित (समुद्रे) जलमें (वरुणं) वरणीय स्वीकारके योग्य सोमरसको (बिभर्ति) धारण करता है, मिलाता है। ' सोमरसमें पीनेके पूर्व जल मिलाते हैं, त्रित वही कार्य कर रहा है। इसके पश्चात् उसके यज्ञमें इन्द्र आता है—

त्रितके यज्ञमें इन्द्र

(आयुः काण्वः । इन्द्रः)

यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोषसि। (ऋ. ८।५२।१)

' हे इन्द्र ! जैसा त्रितके यज्ञमें मंत्र-गान सुनता था। ' यहां त्रितके घर, या यज्ञमें इन्द्र जाता था और प्रेमसे वेदमंत्रोंका गान सुनता था, ऐसा कहा है। इसमें इन्द्र और त्रितका सख्य बताया है, वही बात और अगले मंत्रमें देखो-

त्रितका सख्य

(गृत्समदः भार्गवः शौनकः । इन्द्रः)

सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून्। अस्मभ्यं तत् त्वाष्ट्रं विश्वरूपं अरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥ (ऋ. २।११।१९)

' जो तेरी सुरक्षाओंसे सुरक्षित हुए सब शत्रुओंको दूर करते हैं, आर्योंके द्वारा सब दस्युओंका नाश करते हैं। हमारे हितके लिये उस त्वष्टाके पुत्र विश्वरूप (राक्षस) का नाशकर और त्रितका हित कर। '' यहां त्रितके साथ सख्य करनेका उल्लेख है। त्रितका हित करने, त्रितके साथ जो मित्रता है उसको सुरक्षित करनेके लिये इन्द्र यत्न करता है ऐसा इस मंत्रमें कहा है। इन्द्र त्रितकी सहायता करता था इसके कई उदाहरण वेदमंत्रोंमें हैं, देखो—

त्रितको कूवेंसे ऊपर निकाला

(कुत्स आंगिरसः । विश्वे देवाः [बृहस्पतिः])

त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये। तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु ॥ (ऋ. १।१०५।१७)

' त्रित कूवेंमें गिरा, तब उसने अपनी सुरक्षाके लिये देवोंकी प्रार्थना की, तब बृहस्पतिने वह प्रार्थना सुनी, और उसका आपत्तिसे बचाव किया।' यहां बृहस्पतिने त्रितको कूवेंसे ऊपर निकाला और आपत्तिसे बचाया ऐसा कहा है। त्रितने अनेक (देवान्) देवोंकी प्रार्थना की, उनमेंसे बृहस्पतिने वह सुनी और अन्धकारमय कूवेंसे उस त्रितको ऊपर निकाल दिया और बचाया।

इस मंत्रका भाव आलंकारिक भी हो सकता है। अज्ञानको अन्धेरा कुआ और बृहस्पतिने-ज्ञानदेवने-ज्ञानकी सहायतासे अज्ञानसे मुक्त किया। यह अर्थ भी यहां संभव है। इसी तरह और भी देखो—

त्रितके लिये अर्बुदका वध

(गृत्समदः भार्गवः शौनकः । इन्द्रः)

अस्य सुवानस्य मन्दिनः त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः। अवर्तयत् सूर्यो न चक्रं भिनद् वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥ (ऋ. २।११।२०)

' इस आनन्ददायक सोमके पीनेसे बढे हुए उत्साहमें त्रितका हित करनेके लिये अर्बुद नामक शत्रुका नाश (इन्द्रने) किया। अंगिरोंके साथ रहनेवाले इन्द्रने, सूर्यके समान अपना चक्र घुमाते हुए, वल नामक शत्रुका नाश किया। '

यहां कहा है कि त्रितके लिये इन्द्रने अर्बुदका वध किया। इस तरह त्रितकी सहायता इन्द्र करता रहा दीखता है। ऐसी सहायता करके इन्द्रने त्रितको बढाया, देखो—

त्रितका यश बढाया

(अकृष्टा माषाः । पवमानः सोमः)

त्रितस्य नाम जनयत् मधु क्षरद् इन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे ॥ (ऋ. ९।८६।२०)

' इन्द्र और वायुके साथ मित्रता करनेके लिये मधुर रस निकाला गया, जिससे त्रितका यश बढ गया।' इन्द्रको सोम देनेसे और त्रितके घर आकर इन्द्रके सोमपान करनेसे त्रितका यश बढ गया यह इस मंत्रका भाव है।

त्रितको धन-प्राप्ति

(त्रित आप्त्यः । पवमानः सोमः)

उप त्रितस्य पाष्योः अभक्त यद् गुहा पदम्॥
त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेषु आ ईरया रयिम्॥
(ऋ. ९।१०२।२-३)

'त्रितके घर सोम कूटनेका गुप्त स्थान है। त्रितकी पीठपर तीन स्थानोंमें धन रख दे।' यहां त्रितने सोम कूटकर सोमरस तैयार किया वह इन्द्रने लिया और त्रितको धन दिया ऐसा वर्णन है। इन्द्रके भक्तको इसी तरह धन प्राप्त होता है। तथा और भी देखो—

त्रितके लिये गौवें दीं

(इन्द्रो वैकुण्ठः । इन्द्रः)

अहं इन्द्रो रोधो वक्षः अथर्वणः
त्रिताय गां अजनयं अहेः अधि ॥(ऋ. १०।४८।२)

' मैं इन्द्र हूं, अथर्वोंका अन्तःकरण मैंही हूं। त्रितके लिये मैंने गौवें अहि नामक शत्रुसे प्राप्त कीं।' और त्रितको दीं। इस तरह इन्द्रने त्रितकी बहुतवार सहायता की।

अब कई मंत्र ऐसे दिये जाते हैं कि जिनका स्पष्टीकरण और यथार्थ ज्ञान इस समयतक नहीं हो सका। देखो—

त्रितमें स्वप्न

(यम. । दुःष्वप्ननाशनम्)

त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नरः। (अथर्व. १९।५६।४)

' नरोंने त्रित आप्त्यमें निद्रा-स्वप्न-रख दिया है।'

त्रितमें पाप

(अथर्वा । पूषा)

त्रिते देवा अमृजत एतद् एनः
त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे ॥१॥
द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं
मनुष्यैनसानि ॥३॥ (अथर्व. ६।११३।१,३)

' त्रितमें देवोंने यह पाप धोकर रख दिया। त्रितने उसको मानवोंमें शुद्ध करके रखा। बारह प्रकारसे रखा हुआ, त्रितसे धोया हुआ, पाप मानवोंसे भी शुद्ध किया गया।'

त्रित सूर्य

(बृहद्दिवोऽथर्वा । वरुणः)

त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि ॥ (अथर्व. ५।१।१)

' सबका आधार त्रित तीनोंका धारण करता है।' भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोकका धारण करनेवाले सूर्यका अथवा वरुणका यह वर्णन है। पूर्व स्थानमें वरुणके वर्णनमें त्रित आया है उसके साथ इस मंत्रकी संगति लग सकती है।

त्रित=गर्जना करनेवाला मेघ

(श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः)

सं विद्युता दधति वाशति त्रितः। (ऋ. ५।५४।२)

' विद्युत्के साथ मिलता है और त्रित बडा शब्द करता है।' यहां त्रित शब्द मेघवाची प्रतीत होता है। इस रीतिसे त्रितका वर्णन वेदमंत्रोंमें है। पाठक इसका मनन करके त्रितका यथार्थ स्वरूप जाननेका प्रयत्न करें।

अब इस स्थानपर जो त्रितके सूक्त दिये जाते हैं उनका विवरण देवतावार और छन्दवार करते हैं—

त्रितके मंत्रोंकी क्रमवार गणना

(ऋग्वेद प्रथम मण्डल)

सूक्त	१०५	विश्वे देवाः मंत्रसंख्या १९		१९

(ऋग्वेद अष्टम मण्डल)

सूक्त	४७	आदित्याः, उषसः	१८	१८

(ऋग्वेद नवम मण्डल)

सूक्त	३३	पवमानः सोमः	६	
	३४	,, ,,	६	
	१०२	,, ,,	८	
	१०३ (द्वित)	,, ,,	६	२६

(ऋग्वेद दशम मण्डल)

सूक्त	१	अग्निः	७	
	२	,,	७	
	३	,,	७	
	४	,,	७	
	५	,,	७	
	६	,,	७	
	७	,,	७	४९
				११२

इनमें त्रितके मंत्र १०६ हैं और द्वितके ६ हैं। मिलकर ११२ हुए। अब इनकी देवतावार गणना नीचे देते हैं।

त्रितके मंत्रोंकी देवतावार गणना

१ अग्निः	मंत्रसंख्या	४९
२ पवमानः सोमः	,,	२६
३ विश्वे देवाः	,,	१९
४ आदित्याः, उषसः	,,	१८
		११२

इस प्रकार अग्निके मंत्र सबसे अधिक और आदित्योंके सबसे कम हैं। अब छन्दवार गणना देखिये—

त्रितके मंत्रोंकी छन्दवार गणना

१ त्रिष्टुप्	मंत्रसंख्या	५०
२ महापंक्तिः	,,	१८
३ पंक्तिः	,,	१७
४ उष्णिक्	,,	१४
५ गायत्री	,,	१२
६ (यवमध्या) महाबृहती	,,	१
		११२

इस तरह यह छन्दो-गणना है। त्रितके मंत्र त्रिष्टुप् छन्दमें अधिक हैं और अन्य छन्दोंमें कम हैं।

अब इनके मंत्रोंका भाव देखो जो आगे दिया जाता है।

स्वाध्याय-मण्डल
औंध (जि. सातारा)
ता. १।१।४८

निवेदक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, औंध.

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

त्रित ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका १६ वाँ अनुवाक)

[१] विश्वे-देव प्रकरण

(१) अनेक देवोंकी प्रार्थना

(ऋ. १।१०५) त्रित आप्त्यः (कुत्स आंगिरसो वा)। विश्वे देवाः । पंक्तिः;
८ यवमध्या महाबृहती, १९ त्रिष्टुप् ।

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १ ॥
अर्थमिद् वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ २ ॥
मो षु देवा अदः स्वरवः पादि दिवस्परि ।
मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ३ ॥

अन्वयः— १ अप्सु अन्तः चन्द्रमाः (आ धावते), दिवि (च) सुपर्णः आ धावते । हिरण्य-नेमयः विद्युतः वः पदं न विन्दन्ति । हे रोदसी ! मे अस्य (स्तोत्रस्य) वित्तम् ॥१॥

२ अर्थिनः अर्थं इत् वै ऊँ । जाया पतिं आ युवते । (तौ जायापती) वृष्ण्यं पयः तुञ्जाते । (सा) रसं परिदाय (पुत्रं) दुहे । मे० ॥

३ हे देवाः ! स्वः अदः दिवः परि मो सु अव पादि । शं-भुवः सोम्यस्य शूने कदा चन मा भूम । मे० ॥

अर्थ- १ अन्तरिक्षमें चन्द्रमा (दौडता है), द्युलोकमें सूर्य दौड रहा है । (बीचमें) सुवर्णके समान चमकनेवाली बिजलियोंका भी स्थान तुम नहीं जानते । हे द्युलोक और भूलोकों ! मेरी इस प्रार्थना (का भाव) तुम जानो ॥

२ इच्छा करनेवाले अपने प्राप्तव्यको निःसंदेह (प्राप्ति करतेही हैं) । पत्नी पतिके साथ मिलती है । (वे दोनों पति-पत्नी मिलकर) बलवान् वीर्यको प्रेरित करते हैं । (और वह पत्नी) रस (रूपी वीर्य) को प्राप्त करके (पुत्रको) प्रसव करती है । हे द्युलोक० ॥

३ हे देवो ! हमारा तेज इस द्युलोकके ऊपरसे कभी न गिरे । आनद देनेवाले सोमके विरहित स्थानमें (हम) कदापि न रहें । ० ॥

असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी १६
त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी १७
अरुणो मा सकृद् वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी । १८
एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः १९

---

१६ यः असौ आदित्यः पन्थाः दिवि प्रवाच्यं कृतः । हे देवाः ! सः न अतिक्रमे । हे मर्तासः ! तत् न पश्यथ । मे० ॥

१७ कूपे अवहितः त्रितः ऊतये देवान् हवते । बृहस्पतिः तत् शुश्राव । अंहूरणात् उरु कृण्वन् । मे० ॥

१८ अरुणः वृकः मा सकृत् पथा यन्तं ददर्श हि । तष्टा पृष्ट्यामयी इव निचाय्य उत् जिहीते । मे अस्य तत् हे रोदसी ! वित्तम् ॥

१९ एना आंगूषेण इन्द्रवन्तः सर्ववीराः वयं वृजने अभि स्याम । तत् नः मित्रः वरुण अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

१६ यह जो आदित्यरूपी मार्ग द्युलोकमें स्तुतिके लिये योग्य किया गया है, हे देवो ! उसका अतिक्रमण नहीं करना चाहिये । हे मानवों ! वह मार्ग तुम देख भी नहीं सकते । ० ॥

१७ कूएमें पडे हुए त्रितने अपनी सुरक्षाके लिये देवोंकी प्रार्थना की । बृहस्पतिने वह सुनी और कष्टोंसे छूटनेके लिये विस्तृत मार्ग बना दिया । ० ॥

१८ लाल रंगके भेडियेने एक बार (मुझे) मार्गसे जाते हुए देखा। पीठमें दर्द होनेवाले बढाईके समान उठकर वह मुझे चलाने लगा। हे भूलोक और द्युलोको ! यह मेरी प्रार्थना जान लो ॥

१९ इस स्तोत्रसे (हम) इन्द्रके सामर्थ्यसे युक्त होकर, हम सब वीर बनकर युद्धमें (शत्रुको) परास्त करेंगे । इस मेरी इच्छाका मित्र आदि सब देव अनुमोदन करें ॥

हमारी उन्नति हो

मनुष्यकी उन्नतिका मार्ग इस सूक्तमें बताया है । ' एक कूएमें पडे मनुष्यका उद्धार किया गया ' यह कथा इस सूक्तमें वर्णन की है, इस तरह सभी पतितोंका उद्धार हो सकता है, यह इसका आशय है ।

' विश्वे देवाः ' देवताका यह सूक्त है । अनेक देवताओंका यहां संबंध है । प्रत्येक मंत्रके अन्तिम चरणमें ' रोदसी ' पद है जो द्युलोक और भूलोकका वाचक है । इसका आशय केवल पृथ्वी और आकाश इतना नहीं है, परंतु पृथ्वीसे आकाशतक जो भी कुछ है, वह सब इस देवताके अन्दर समाविष्ट होता है । जो पृथ्वीपर है, जो अन्तरिक्षमें है और जो आकाशमें है, वह सब ' रोदसी या द्यावापृथिवी ' देवतामें समाविष्ट होता है । इस देवतासे सर्वात्मभाव प्रकट होता है । सब वस्तुमात्र जो भी कुछ इस विश्वमें है, वह सब द्यावापृथिवीमें है। ऐसी एक भी वस्तु नहीं है कि जो द्यावा-पृथिवीसे बाहर रह सकती हो । द्यावापृथिवी, रोदसी यह द्विवचनी देवता है, पर यह एकही अखण्ड वस्तु है । प्रकाश-अन्धकार, पृथ्वी—आकाश, जड—चेतन, स्थूल—सूक्ष्म मिलकर एकही विश्व बनता है। वह इस देवतासे व्यक्त होता है, उसको उद्देश्य करके यह सूक्त मानवोंके मनोभाव प्रकट कर रहा है ।

मानव इस विश्वका अंश है । मानव इस विश्वसे सर्वथा पृथक् नहीं है । मानव विश्वसे अनन्य है । इस अनन्य भावके मनोभाव इस सूक्तमें प्रकट हुए हैं ।

इस सूक्तमें संपूर्ण विश्वरूप देवताकी प्रशंसा है, तो भी

निम्न लिखित देवताओंका स्पष्ट निर्देश भी यहां है— (मंत्र १) आपः, चन्द्रमाः, सुपर्णः, द्यौः, विद्युतः; (२) जाया, पतिः, पयः, (३) देवाः, स्वः, द्यौः, सोमः; (४) यज्ञः, ऋतं; (५) देवाः, द्यौः, ऋतं, अनृतं, आहुतिः; (६) ऋतं, वरुणः अर्यमा; (७) सुतः (सोमः), अहं; (८) शतक्रतुः, स्तोता; (९) सप्त रश्मयः, नाभिः, त्रितः आप्त्यः; (१०) पञ्च उक्षणः, द्यौः; (११) सुपर्णाः, द्यौः, पन्थाः, आपः; (१२) देवासः, सिन्धवः, ऋतं, सूर्यः, सत्यं; (१३) अग्निः, देवाः; (१४) होता, देवः, अग्निः; (१५) वरुणः, ब्रह्म, मतिः, ऋतं; (१६) आदित्यः, पन्थाः, द्यौः, देवाः, मर्तासः; (१७) त्रितः, देवाः, बृहस्पतिः; (१८) अरुणः वृकः, पन्थाः, तष्टा; (१९) मित्रः, वरुणः, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी, द्यौः, इतनी देवताएं इस सूक्तमें हैं, इसीलिये इस सूक्तका देवता ' विश्वे देवाः ' माना गया है। ' विश्वे देवाः ' का अर्थ ' अनेक देवता ' है।

इनमेंसे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युस्थानमें देवताएं किस तरह विभक्त होती हैं, वह देखिये—

पृथ्वी-स्थानमें

आपः, जाया, पतिः, पयः, देवाः, सोमः, यज्ञः, ऋतं, अनृतं, आहुतिः, सुतः (सोमरसः), अहं, स्तोता, नाभिः, त्रितः आप्त्यः, पन्थाः, सिन्धवः, अग्निः, होता, मतिः, मर्तासः, वृकः, तष्टा, अदितिः, पृथिवी।

अन्तरिक्ष-स्थानमें

आपः, चन्द्रमाः, विद्युतः, पयः, देवाः, सोमः, ऋतं, वरुणः, अर्यमा, नाभिः, पन्थाः, अरुणः।

द्यु-स्थानमें

सुपर्णः, द्यौः, देवाः, स्वः, सोमः, शतक्रतुः, सप्त रश्मयः, पञ्च उक्षणाः, सूर्यः, सत्यं, ब्रह्म, आदित्याः, बृहस्पतिः, मित्रः, वरुणः।

ऐसी देवताओंकी गणना होती है। रोदसी अर्थात् द्यावा-पृथिवीमें ये देवताएं तथा अन्य सब समा जाती हैं। संपूर्ण विश्वका रूपही इस देवतामें समाविष्ट होता है। इस देवता-को यह विश्वरूप सूक्तके विचार करनेके पूर्व समझ लेना आव-श्यक है।

संपूर्ण विश्वरूपसे अपना जो अंशका-अंशका संबंध है, उसको यथावत् जानने और तदनुकूल अपना आचरण करनेसे मानवका उद्धार होता है। यह तत्त्व इस सूक्तमें प्रतिपादित किया गया है। अब क्रमशः मंत्रोंका विवरण देखिये—

मन्त्र १— (अप्सु अन्तः चन्द्रमाः) अन्तरिक्षमें चन्द्रमा भाग रहा है ऐसा दीखता है और (दिवि सुपर्णः) आकाशमें सूर्य चलता है ऐसा दिखाई देता है। पर बीचमें (विद्युतः) बिजलियाँ हैं इनका (पदं) स्थान निश्चयसे (न विन्दन्ति) कोई नहीं जानता। चन्द्रमाका तथा सूर्यका स्थान तो सब जानते हैं, यद्यपि ये दोनों गतिमान् हैं, तथापि इनका स्थान ज्ञानी जानते है, पर, विद्युत् कहांसे चमकेगी यह कोई नहीं जान सकता। यह सदा गुप्त रहती है और अचानक एकदम चमक उठती है। सब विश्वमें एकही अग्नि भरपूर भरा है, उसके अग्नि, चन्द्रमा, विद्युत् और सूर्य ये रूप हैं, पर विद्युत् रूप सदा गुप्त रहता है, अन्य रूप प्रकट दीखते हैं। मैं इस तेजकी उपासना करता हूं, आकाश पृथ्वीरूप प्रभु मेरे इस प्रार्थनाका आशय जानें।

स्थूलसे सूक्ष्म जाना जा सकता है। इसी तरह चन्द्र और सूर्य ये स्थायी अग्नि हैं। अग्नि घर्षणादि कृत्रिम उपायोंसे प्रकट होता है, और विद्युत् सदा गुप्त रहती है। स्थूलसे सूक्ष्मका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और तत्त्व दृष्टिसे सब अग्नि एकही है, यह जानना चाहिये और इसी अग्निका जाठर अग्नि मुझमें है यह जानकर सर्वत्र अग्नि-तत्त्वकी तत्वतः एकता जाननी चाहिये।

इच्छा करनेसे प्राप्ति

मन्त्र २— (अर्थिनः अर्थं इत् वै) इच्छा करनेवाले इष्ट वस्तुको निश्चयसे प्राप्त करते हैं। इच्छा न हुई तो किसको क्या प्राप्त होगा? अतः इच्छाही मानवी उन्नतिमें मुख्य प्रेरक शक्ति है। इससे सब उन्नति होनेकी संभावना है। इसलिये अपने अभ्युदयकी और निःश्रेयसकी इच्छा करो। प्रबल इच्छा करनेसे तदनुकूल प्रयत्न होंगे और पुरुषार्थ प्रयत्न योग्य रीतिसे होनेसे सिद्धि भी प्राप्त होगी। इस विषयमें कुछ उदाहरण इसी मंत्रमें दिये हैं, उनको अब देखो—

(जाया पतिं आ युवते) पत्नी पतिके साथ मिलनेकी इच्छा करती है और मिलती है। पति भी पत्नीके साथ निवास करनेकी इच्छा करता है और वैसा निवास करता है। ये दोनों पति-पत्नी (वृष्ण्यं पयः दुहाते) बलवर्धक वीर्यको प्रेरित करते हैं, अर्थात् पति

यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद् दूतो वि वोचति ।
क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद् बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ४
अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः ।
कद् व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ५
कद् व ऋतस्य धर्णसि कद् वरुणस्य चक्षणम् ।
कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ६
अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
तं मा व्यन्त्याध्यो वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ७
सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ८
अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता ।
त्रितस्तद् वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ९

---

४ अवमं यज्ञं पृच्छामि, तत् सः दूतः वि वोचति । (ते) पूर्व्यं ऋतं क्व गतम् ? कः नूतनः तत् बिभर्ति ? मे० ॥

५ हे देवाः ! ये अमी त्रिषु स्थन, (ते) दिवः आ रोचने (वर्तन्ते) । वः ऋतं कत् ? अनृतं कत् ? वः प्रत्ना आहुतिः क्व ? मे० ॥

६ वः ऋतस्य धर्णसि कत् ? वरुणस्य चक्षणं कत् ? महः अर्यम्णः पथा कत् दूढ्यः अति क्रामेम । मे० ॥

७ पुरा सुते यः अहं कानि चित् वदामि, स अहं अस्मि । तं मा आध्यः व्यन्ति, तृष्णजं मृगं वृकः न । मे० ॥

८ पर्शवः मा अभितः, सपत्नीः इव संतपन्ति । हे शतक्रतो ! मूषः शिश्ना न, ते स्तोतारं मा आध्यः वि अदन्ति । मे० ॥

९ ये अमी सप्त रश्मयः, तत्र मे नाभिः आतता । आप्त्यः त्रितः तत् वेद । सः जामित्वाय रेभति । मे० ॥

४ मैं समीपके यज्ञसे प्रश्न पूछता हूं, उसका (उत्तर) वह दूत (अग्नि) देगाही। (तुम्हारा) वह पुरातन (कालसे चला आया) सरल भाव कहा गया है ? किस नवीनने उसे धारण किया है ? । ० ॥

५ हे देवों ! जो (ये देव) तीनों (स्थानों) मे हैं, (वे) द्युलोकके प्रकाश (स्थान) में (रहते हैं) । आपकी सरलता कहा है ? आपका असत् कहा है ? आपको दी पुरातन आहुति कहा है ? । ० ॥

६ आपका सत्यका धारण करना कहा है ? वरुणकी अमर० दृष्टि कहां है ? बडे श्रेष्ठ अर्यमाका मार्ग कौनसा है जिससे हम दुष्टोंका अतिक्रमण कर सकेंगे ? । ० ॥

७ पुरातन समयमें सोमयागमें जिस यज्ञमें मैंने कई (सूक्त) पढे थे, वही मैं हूँ। उसी मुझको मानसिक व्यथाएं खा रही हैं, जैसी तृषित मृगको भेडिया खाता है । ० ॥

८ पसलियाँ मुझे चारों ओरसे पत्नियोंके समान संतप्त करती हैं। हे शतक्रतु ! जिस तरह चुहे कांजी लगे तन्तुओंको खाते हैं, वैसीही ये व्यथाएँ तेरी उपासना करनेवाले मुझे खा रही हैं । ० ॥

९ जो ये सात किरण हैं, वहांतक मेरा घर फैला है। आप्त्य त्रितको इसका ज्ञान है। इसलिये वह प्रेममय बन्धुभावके लिये प्रार्थना करता है । ० ॥

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी १०

सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ११

नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी १२

अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान् यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी १३

सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी १४

ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी १५

---

१० अमी ये पञ्च उक्षणः महः दिवः मध्ये तस्थुः, देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीनाः नि ववृतुः । मे० ॥

११ एते सुपर्णाः आरोधने दिवः मध्ये आसते । ते यह्वतीः अपः तरन्तं पथः वृकं सेधन्ति । मे० ॥

१२ हे देवासः ! नव्यं उक्थ्यं सुप्रवाचनं तत् हितं, सिन्धवः ऋतं अर्षन्ति, सूर्यः सत्यं ततान । मे० ॥

१३ हे अग्ने ! तव त्यत् उक्थ्यं आप्यं देवेषु अस्ति । सः विदुष्टरः नः सत्तः मनुष्वत् देवान् आ यक्षि । मे० ॥

१४ मनुष्वत् सत्तः होता विदुष्टरः देवः देवेषु मेधिरः अग्निः, देवान् अच्छ हव्या सुषूदति । मे० ॥

१५ वरुणः ब्रह्म कृणोति, तं गातुविदं ईमहे । हृदा मतिं वि ऊर्णोति । नव्यः ऋतं जायताम् । मे० ॥

१० ये जो पांच प्रबल बैल हैं (जो) बडे द्युलोकके मध्यमें रहते हैं, देवोंके संबधका स्तोत्र पढतेही (वे) साथ साथही निवृत्त हुए हैं । ० ॥

११ ये सुन्दर पक्षी द्युलोकके मध्यभागमें रहते हैं, वे विस्तृत जलमें तैरनेवाले भेडियेको मार्गसे हटा देते हैं । ० ॥

१२ हे देवो ! यह नवीन गाने योग्य उत्कृष्ट स्तोत्र हित कारक है । नदियाँ जलको ला रही हैं और सूर्यने यश फैलाया है । ० ॥

१३ हे अग्ने ! तेरा वह प्रशंसनीय बन्धुभाव देवोंके साथ है । वह तू विशेष ज्ञानी हमारे यज्ञमें मनुष्यके समान बैठकर देवोंको यज्ञमें ला । ० ॥

१४ मनुष्यके समान यज्ञमें बैठनेवाला ज्ञानी होता और देवोंमें अधिक बुद्धिमान् यह अग्निदेव देवोंके प्रति हव्य पदार्थोंको पहुँचाता है । ० ॥

१५ वरुण स्तोत्र करता है, उस मार्गदर्शक प्रभुकी हम प्रशंसा करते हैं । हृदयसे बुद्धिको वही खोल देता है, (इससे) नवीन सत्य प्रकट होता है । ० ॥

पत्नीमें गर्भाधान करता है, अपना वीर्य प्रदान करता है और पत्नी उसका स्वीकार करती है, इस तरह गर्भकी स्थापना होती है, (रसं परिदाय दुहे) वह पत्नी रसरूपी वीर्यका धारण करके पुत्ररूपको प्रसवती है। अथवा पतिके रसरूप पुत्रको निर्माण करती है। यह सब गृहस्थाश्रमका कार्य पति-पत्नीकी प्रबल इच्छासेही होता है। इसलिये शुभ इच्छा अवश्य धारण करनी चाहिये। शुभ इच्छाके विना इस जागतिक व्यवहारमें सिद्धि प्राप्त होना असंभव है।

हमारी अवनति न हो

मं. ३—(स्वः अदः दिवः मो परि सु अव पादि) हमारा निज तेज इस स्वर्गके मार्गसे गिरकर नीचे न पडे, अर्थात् हमारा तेज सदा ऊंचा फडकता रहे, उच्च मार्गसे ऊपर होकर उच्च स्थानमेंही विराजे। हम उच्च हों, कदापि अवनत न हों। सभी कार्यक्षेत्रोंमें हमारी उन्नति होती रहे, कदापि अवनति न हो। ऐसी इच्छा प्रत्येक मनुष्य अपने मनमें सदा धारण करे।

(शं-भुवः शूने कदा चन मा भूम) सुख उत्पन्न करनेके साधन जहां न हों, वहां कदापि हम न रहें। अर्थात् सुखके सब साधन जहां हों वहीं हम रहें। हम अपने पास सब सुखके साधन जमा करें। सब अन्न पेय, वस्त्रप्रावर्ण, औषधि-वनस्पति, गृह-उद्यान, सुरक्षाके सब साधन आदि सब हमारे पास रहें। समयपर इनका उपयोग करके हम सदा आनन्द-प्रसन्न हों।

पूर्व और नूतनका मेल

मं. ४— मैं (अवमं यज्ञं पृच्छामि) पास रहनेवाले यजनीय देवसे पूछता हूं। समीपस्थ ज्ञानी पुरुषसे ही जो कुछ पूछना हो वह पूछना चाहिये। क्योंकि शंका समाधान करना, वारंवार उससे सहायता प्राप्त करना आदि समीपस्थ ज्ञानीसेही हो सकता है। (सः विवोचति) वही मुझे कहेगा, समझा देगा, समझा देगा अथवा बता देगा।

(पूर्व्यं ऋतं क गतं ? कः नूतनः तत् बिभर्ति ?) प्राचीन सत्तत्त्व किस दिशासे जाता था ? और कौन नवीन उसको आज धारण करता है ? प्राचीन कर्तव्यके मार्ग कैसे थे और उनका स्थान आजके किन धुरीणोंने किस तरह लिया है? वह किस तरह आचरण करते थे और नवीन तरुण उसका कितना स्वीकार कर रहे हैं ? समाजका विचार करना हो, तो इसका विचार करना चाहिये। पूर्व समयमें लोगोंके आचरणोंमें (ऋतं) सरलता कितनी थी और नवीनोंमें कितनी रही है ? इसका विचार होना चाहिये। प्राचीन ज्ञानियोंके दोष हमारे आचरणोंमें न रहें, पर उनकी (ऋतं) सरलता, सचाई, सादेपन, अकुटिलता तो नवीनोंके व्यवहारमें होनीही चाहिये। वह कितनी है, इसका विचार करना चाहिये। व्यक्ति और समाज सुधर रहा है या बिगड रहा है, इसका निर्णय इससे होगा। जिसके पास वह (पूर्व्यं ऋतं) प्राचीन सरलता होगी, उसीको अपना अगुवा करना चाहिये। ऋतवादीही नेता बने, अनृतवादी नेता न बने, क्योंकि उसपर विश्वास रखना अशक्य होता है। इसलिये ' ऋतं ' (सरलता) ही सबका मार्गदर्शक हो।

सत्य और अनृतका स्वरूप जानो

मं. ५— (वः ऋतं कत्, अनृतं कत् ?) तुम्हारा सत्यधर्म कौनसा है और असन्मार्ग तुम्हारा कौनसा है, यही विचार करनेयोग्य प्रश्न है। प्रत्येक मनुष्य अपनेको सत्यप्रेमी कह सकता है, पर उसके सत्यका स्वरूप और असत्यका स्वरूप निश्चित होना चाहिये। अर्थात् एक कहेगा कि इस समय शत्रुसे मिलनेसे लाभ है और दूसरा कहेगा कि शत्रुसे युद्ध करनाही इस समय योग्य है। ऐसे विभिन्न मार्ग हो सकते हैं और विभिन्न मनुष्योंको वे विभिन्नतया प्रिय भी हो सकते हैं। इसलिये केवल ' ऋत और अनृत ' का विचार करना पर्याप्त नहीं है, प्रत्युत उसके ' ऋत ' का अभिप्राय क्या है और उसके ' अनृत ' का भाव क्या है, यह प्रथम जानना चाहिये। क्योंकि आर्य, दस्यु, राक्षसोंके दृष्टिकोन विभिन्न होनेसे उनके ध्येय और साध्य भी विभिन्न होंगे, इसलिये उनके ऋत और सत्यका भाव क्या है, यह पहिले जानना चाहिये।

(ये त्रिषु स्थन, (ते) दिवः आ रोचने) जो लोग तीनों स्थानोंमें रहते हैं, वे द्युलोकके पवित्र प्रकाशमें रह सकते हैं। यदि वे सच्चे सन्मार्गसे चलेंगे तो अवश्यही वे पवित्र प्रकाशमें परम उच्च स्थानमें रहेंगे। उनको निकृष्ट स्थानमें जानेयोग्य कोई हीन बर्ताव कभी करना नहीं चाहिये। प्रत्येक मनुष्यको सदा ऐसाही व्यवहार करना चाहिये कि जिससे उसकी योग्यता अधिक उच्च होती जाय।

(वः प्रत्ना आहुतिः क ?) हमने तुम्हें जो पूर्व समयमें अर्पण किया था वह कहां है ? हमने जो तुम्हें पूर्व समयमें

बुलाया था उसका क्या बना ? इसका विचार करना चाहिये। पूर्वसमय जो किया था उसका परिणाम क्या हुआ, उससे हित हुआ या अहित, यह विचारपूर्वक देखना चाहिये। ऐसा कभी नहीं होना चाहिये कि हम देतेही रहें और उसका परिणाम विपरीतही होता रहे, तथापि हम उसका विचार न करते हुए वैसाही करते जायँ। यह तो मूर्खताकी बात होगी। अतः पूर्वके आचरणका परिणाम क्या हुआ इसका विचार करके आगेका आचरण करना चाहिये।

हमारा ध्येय

मंत्र ६—(**दूढ्यः अति क्रामेम**) दुष्ट बुद्धिवालोंका अतिक्रमण करके हम सुबुद्धिवालोंकी संगतिमें रहेंगे। हम दुष्टोंका दमन करेंगे, जो दुष्ट होंगे उनको पीछे रखकर हम आगे बढेंगे और उत्तम अवस्थामें रहेंगे। यह हमारा ध्येय है। गीतामें कहा है कि (**विनाशाय च दुष्कृतां**) दुष्टोंका नाश करना चाहिये। दुष्ट मानव सब समाजको कष्ट देते हैं, इसलिये उनका दमन करना चाहिये, उनको बढने नहीं देना चाहिये, उनको प्रतिबंधमें रखना चाहिये, वे समाजको उपद्रव नहीं दे सकेंगे ऐसी स्थितिमें उनको दबाकर रखना चाहिये। यह सज्जनोंका ध्येय है, यह सत्पुरुषोंका साध्य है, यही श्रेष्ठ लोग आर्य लोग चाहते हैं। इस साध्यको सिद्ध करनेके तीन उपाय हैं—

१ **ऋतस्य धर्णसिः**— सत्यका समर्थ आधार,
२ **वरुणस्य चक्षणं**— वरिष्ठ द्रष्टाका निरीक्षण, और
३ **अर्यम्णः पथाः** (गमनं)—आर्य मनवालेके मार्गसे गमन.

ये तीन साधन हैं कि जिनसे दुष्टोंको दूर करके सज्जनोंका मार्ग सुगम होना संभव है। (**ऋतस्य धर्णसिः**) सत्य और सरलताका सामर्थ्ययुक्त आधार प्राप्त करना चाहिए। अपने कार्यके लिये सत्यका आधार हो, अपना पक्ष सत्यके आश्रयपर स्थित हो, अपने पक्षमें किसी तरह भी टेढी चाल, कुटिलता, ढोंग या अनाचार न हो। (**वरुणस्य चक्षणं**) वरिष्ठ या श्रेष्ठको वरुण कहते हैं, उसका निरीक्षण हो। कार्यकर्ताओंपर श्रेष्ठका निरीक्षण हो, श्रेष्ठ भद्र पुरुषके निरीक्षणके कारण कोई भी कार्यकर्ता हीन कार्य न कर सके, ऐसा होनेसे सब लोग उत्तम कार्य करेंगे और सुयश प्राप्त करेंगे। (**अर्यम्णः पन्थाः**) आर्य मन जिसका होता है, जो श्रेष्ठ मनवाला होता है वह अर्य-मा है। उसका व्यवहारका एक श्रेष्ठ मार्ग होता है, उसी मार्गसे जाना चाहिये। अनार्य मार्गसे कदापि नहीं जाना चाहिये, परंतु आर्योंके सन्मार्गसेही जाना चाहिये।

आर्यमार्गसे जाना, सत्यका आधार प्राप्त करना और श्रेष्ठ पुरुषके निरीक्षणमें अपना कर्तव्य योग्य रीतिसे करना, यह मार्ग है जिससे मनुष्यकी उन्नति होती है। इसीलिये इस मंत्रमें ये तीन प्रश्न किये हैं— (१) तुम्हारा सत्यधर्मका आधार कैसा है ? (२) तुमपर श्रेष्ठ पुरुषका निरीक्षण कैसा है ? और (३) तुम श्रेष्ठोंके विस्तृत मार्गसे जाते हो या नहीं, तो देखो और जान लो कि तुम दुष्टोंका अतिक्रमण कर सकते हो या नहीं ?

यदि तुम्हें सत्यधर्मका आधार नहीं है, यदि तुम्हारे ऊपर श्रेष्ठ सत्पुरुषका निरीक्षण नहीं है और यदि तुम आर्योंके श्रेष्ठ और विस्तृत मार्गसे नहीं जाते, तो तुम समझ लो कि तुम्हें स्थायी यश नहीं मिलेगा। असत्यका आश्रय करना, दुष्टोंके पीछे चलना और अनार्योंके मार्गसे जाना ये अपने नाशको प्राप्त होनेके साधन हैं। पाठक इस मंत्रका बहुत विचारपूर्वक मनन करें और अपने व्यवहारको देखें। इससे उनको सच्ची उन्नतिके मार्गका पता लग सकता है।

मानसिक अशान्तिका दूर करना

मन्त्र ७—(**सः अहं अस्मि**) वही मैं हूँ कि(**यः पुरा सुते वदामि**) जो पूर्व समयमें यज्ञमें वेदमंत्रोंका गान करता था। अर्थात् मैं बडा विद्वान् हूं तथापि (**तृष्णजं मृगं वृकः न**) प्यासे हिरनको जैसा भेडिया कष्ट देता है, उस तरह (**आध्यः मा व्यन्ति**) मानसिक व्यथाएं मुझे सताती हैं। विद्वत्ता प्राप्त करनेपर भी मेरा मन शान्त नहीं हुआ, भोग-तृष्णा मुझे सता रही है, क्रोध मुझे अशान्त कर रहा है, इसी तरह मानसिक कष्टोंसे अनेक प्रकार मुझे दुःख हो रहा है। यह क्यों हो रहा है ? यहां पाठक जानें कि, केवल विद्या पढने-मात्रसेही मानसिक शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती। पीछले छठे मंत्रमें कहे अनुसार आचरण करनेसे शान्ति प्राप्त होगी। मानसिक व्यथाएँ दूर करनेके लिये अतितृष्णा, भक्षेच्छा, भोगोंके पीछे पडना, क्रूरता आदि दोषोंको दूर करना चाहिये। इस अभ्याससे मानसिक व्यथा कम होगी और मनकी शान्ति प्राप्त होगी। जिस समय यह अभ्यास होगा, तबही विद्या सहायक होगी।

मंत्र ८— इस मंत्रके दोनों आधे भाग ऋ. १०।३३।२-३ मन्त्रोंमें पुनः आये हैं। (**आध्यः स्तोतारं मा मूषः**

शिश्ना न व्यदन्ति) मैं उपासक हूं तथापि मानसिक आपत्तियां मुझे खाती हैं, जिस तरह चूहे कांजी लगाये सूत्रको खाते हैं। स्तुति, प्रार्थना, उपासना, भजन, पूजन करनेवालेको भी मानसिक शान्ति नहीं मिलती, वह भी मानसिक आपत्तियोंकी अग्निमें जलता रहता है। मानो मनोव्यथाएँ उसको वैसी खा जाती हैं जैसे कांजी लगे सूतके चूहे खाते हैं। स्तुति-प्रार्थना-उपासना करनेमात्रसे मानसिक शान्ति नहीं मिलती, यह यहांके मन्त्रभागका तात्पर्य है। सूतपर कांजी लगानेसे वह सूत्र चूहे खा जाते हैं, वैसा कौनसा लेप अपने ऊपर लगानेसे मानसिक व्यथारूपी चूहे अपनेको खा सकते हैं इसका विचार करना चाहिये। जिस तरह सूत्रपर कांजीका लेपन होनेसे चूहे काटते हैं, उसी प्रकार हमपर प्रबल भोगेच्छाका लेप लगनेसे कामक्रोधादि चूहे काटने लगते हैं। इसलिये यदि हम भोगवासनासे अलिप्त रहेंगे तो कामक्रोधादि चूहे हमें नहीं खायेंगे, यह इस मन्त्रार्थका तात्पर्य है।

(सपत्नीः इव पर्शवः मा अभितः सं तपन्ति) सौतिनियोंके समान ये फरसे मुझे चारों ओरसे संतप्त करते हैं। जिस तरह सौतिनियां पतिको कष्ट देती हैं, उस तरह ये फरसे, ये शस्त्रसंभार, मुझे कष्ट देते हैं। अपनी सुरक्षाके लिये मैंने अपने चारों ओर अनेक फरसे खडे किये, अनेक शस्त्र बढा दिये, पर वेहीं मुझे सता रहे हैं, उस शस्त्रसंभारके नीचे मैं दब गया हूं। उन शस्त्रधारियोंके सामने मुझे डरना पड रहा है। जिस तरह सुख बढानेके लिये मैंने अनेक स्त्रियाँ कीं, पर उनके आपसके ईर्ष्याद्वेषके और झगडोंके कारण मुझेही कष्ट हो रहे हैं, वैसेही ये सुरक्षाके साधनही मेरे सिरपर चढकर अब मुझे दबा रहे हैं। जो मैंने अपने हितके लिये किया, वही मेरा दुःख बढा रहा है।

मनुष्यका ऐसाही व्यवहार चल रहा है। मनुष्य जो सुखके लिये करता है, वही उसके स्वाधीन न रहा तो वही उसका दुःख बढा देता है। इसलिये पत्नियाँ भी अधिक नहीं करनी चाहिये, फरसों अर्थात् शस्त्रसंभारके अधीन भी नहीं होना चाहिये और भोगोंका लेपन भी अपने ऊपर नहीं लगाना चाहिये। तब मनुष्यको मानसिक व्यथाएं कष्ट नहीं दे सकेंगी।

विश्वकुटुंबका भाव

मंत्र ९— **(ये अमी सप्त रश्मयः)** जो ये सप्त रश्मियाँ सूर्यकी फैली हैं, जहांतक सूर्यके किरण प्रकाशते हैं, **(तत्र मे नाभिः आतता)** वहांतक मेरा घर, मेरा कुटुम्बभाव फैला है। वहांतक संपूर्ण विश्वको मैं अपना घर, अपना परिवार अनुभव करता हूं। आप्त्य त्रित ऋषिको इसका अनुभव हुआ, अतः वह सर्वत्र बंधुभावकी स्थापना करनेके लिये **(जामित्वाय रेभति)** प्रवचन करता है। आप्त्य त्रित ऋषिकी जीवनकी इच्छाही यह है कि इस विश्वमें सर्वत्र बन्धुभाव स्थापित हो। जहांतक सूर्यके किरण फैलते हैं *वहांतक अपना एकही कुटुंब* है ऐसा सब मानें और उसमें संपूर्णतया बंधुभाव स्थापन करनेका सब यत्न करें। विश्वशान्तिका यह एकमात्र उपाय है।

मंत्र १०—ये जो पांच **(पञ्च उक्षणः)** बैल हैं, वे द्युलोकके मध्यमें ठहरे हैं। शरीरमें द्युलोक सिर है, इस सिरमें पञ्च इन्द्रिय रहते हैं, वे महा शक्तिशाली हैं। आंख, नाक, कान, मुख, और त्वचा ये पांच बडे शक्तिशाली हैं। इनको पंच वृषभ, पंच प्राण, पंच अग्नि आदि नाम हैं। **(देवत्रा प्रवाच्यं)** देवताओंकी उपासना प्रारंभ होतेही ये पांचों **(सध्रीचीना नियवृतुः)** एकदम विषयोंसे निवृत्त होते हैं। जब मन उपासनामें तल्लीन होता है, उसके साथ साथ ये सब इन्द्रियरूपी बैल विषयोंसे निवृत्त होते हैं और येभी उपासनामें मग्न होते हैं। मन तथा इन्द्रियोंकी शुभ प्रवृत्ति करनेका यह साधन है।

मन्त्र ११— ये **(सुपर्णाः)** उत्तम पंखवाले पक्षी द्युलोकके मध्यभागमें बैठे हैं, **(यहतीः अपः तरन्तं)** वेगसे चलनेवाली जलप्रवाहोंमें तैरनेवाले **(वृकं पथः सेधन्ति)** भेडियेको मार्गमें ही वे हटाकर एक ओर करते हैं, मार्गमें रहने नहीं देते। यहां सूर्यकिरण पक्षी हैं और भेडिया अन्धकार है। ये सूर्यकिरण अन्धकारको दूर करके प्रकाशका मार्ग खोल देते हैं। इससे मनुष्य जायँ और मुक्तिका आनंद प्राप्त करें। यहां अज्ञानरूप अन्धकारको दूर करके प्रकाशके मार्गको प्राप्त करना दुःखसे मुक्त होनेका साधन बताया है।

हितकारी स्तोत्र

मन्त्र १२— यह **(नव्यं उक्थ्यं)** नवीन स्तोत्र **(सु-प्रवाचनं)** बारंबार पढकर मनन करनेयोग्य **(हितं)** और

हितकारक है। जिस तरह (**सिन्धवः ऋतं अर्षन्ति**) नदियोंमें जल बहता है और जैसा (**सूर्यः सत्यं ततान**) सूर्य-प्रकाश फैलता है, उस प्रकार यह नया सूक्त (विद्यारूप जलकी) शान्ति और (ज्ञानसूर्यका) प्रकाश देकर सबका हित करता है। इस मंत्रमें ' सु-प्र-वाचन ' पद है। उत्तम वचन, सुभाषित, शुभवचन ऐसा इसका अर्थ है। यदि इसका अर्थ (सु-प्र-वाचन) उत्तम वाचन, उत्तम पढना हो सकेगा, तो इस पदसे सूक्त लिखे जाते थे और उनका वाचन किया जाता था ऐसा भाव उससे निकलेगा और लेखनकी कलाकी सिद्धि भी इसीसे हो सकेगी। पर यहां ' वाचन ' पद 'वचन' के अर्थमें है ऐसी विद्वानोंकी संमति है।

सज्जनोंकी संगतिमें रहो

मंत्र १३— (**देवेषु उक्थ्यं आप्यं**) दैवी संपत्तिवाले विबुधोंके साथ जो बंधुभाव होता है वही प्रशंसनीय होता है। अर्थात् दुष्टोंके साथ अपना संबंध रखना उचित नहीं है, (**विदुस्-तरः**) अत्यंत ज्ञानी बन और (**देवान् आ यक्षि**) देवोंको, दिव्य विबुधोंको यहां ला और उनका सन्मान कर।

मंत्र १४— अत्यंत ज्ञानी बुद्धिमान् अग्नि जैसा तेजस्वी पुरुष, दिव्य विबुधोंका अन्नपानादि द्वारा सत्कार करता है।

ज्ञानीके मार्गदर्शनमें रहो

मंत्र १५— (**वरुणः ब्रह्म कृणोति**) वरिष्ठ ज्ञानी स्तोत्र या काव्य करता है, विना ज्ञानके मार्गदर्शन करना असंभव है। इसलिये (**गातु विदं ईमहे**) जो मार्गदर्शन कर सकता है उसीको हम प्राप्त करना चाहते हैं, उसके मार्ग-दर्शनसे हम उन्नतिके मार्गपर चलेंगे और उन्नतिको प्राप्त करेंगे। वह ज्ञानी— (**हृदा मतिं वि ऊर्णोति**) अपने हृदयसे सद्बुद्धिको प्रकट करके जनताका मार्गदर्शन करता है। (**नव्यः ऋतं जायतां**) नयी रीतिसे सत्य मार्ग बताता है। अपनी नयी आयोजना प्रकट करता है जिससे जानेसे सबका कल्याण होता है। इसलिये अच्छे सज्जनकी संगतिमें रहना योग्य है।

मंत्र १६— यह जो सूर्यका प्रकाशमार्ग द्युलोकमें प्रशंसित हुआ है, उसका (**न अतिक्रमे**) उल्लंघन करना योग्य नहीं है। (**मर्तासः, तत् न पश्यथ**) हे मानवो! क्या आप यह नहीं देखते ? अर्थात् प्रकाशके मार्गसेही मनुष्योंको जाना चाहिये, कभी उसका उल्लंघन करना किसीको भी उचित नहीं है। सब मानव इसका महत्त्व अनुभव करें और समझें कि यही हमारी उन्नतिका साधन है।

मंत्र १७— कूपमें पडा त्रित अपने उद्धारके लिये देवोंकी प्रार्थना करता है। बृहस्पति-ज्ञानी देवने वह उसकी पुकार सुनी और अधोगतिसे उसको ऊपर उठा कर उन्नत किया।

दुःखके अन्दर रहनेवाला अपने दुःखसे मुक्त होनेके लिये दिव्य विबुधों-ज्ञानियों-की प्रार्थना करता है। उनमेंसे जो ज्ञानी उसकी सहायता करते हैं, वे उसकी सहायतार्थ उसके पास आते हैं और उसका उद्धार करते हैं अर्थात् दुःखसे उन्मुक्त करते हैं।

मंत्र १८— लाल रंगके (**वृकः**) भेडियेने, अर्थात् उदयकालके आदित्यने, मुझे देखा कि मैं ठीक मार्गसे चल रहा हूं। और (**निचाय्य उत् जिहीते**) उसने मुझे ऊपर उठाया, मेरा उद्धार किया, मुझे दुःखमुक्त किया, जिस तरह पीठमें कष्ट होनेपर तरखान ऊंचा उठता है और पीठकी पीडासे मुक्त होता है।

मंत्र १९— इस सूक्तके मननसे (**वयं सर्ववीराः वृजने अभि स्याम**) हम सब वीर बनकर युद्धमें सब शत्रुओंको परास्त करेंगे और विजयी बनेंगे। मित्र आदि सब देव हमारा इस विषयमें अनुमोदन करें।

इस सूक्तके निर्देश बडे महत्त्वपूर्ण हैं, जो पाठक इनका मनन करेंगे वे उचित लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

[२] आदित्य-प्रकरण

विजय, लाभ और निष्पापपन प्राप्त करना

(ऋ. ८।४७) त्रित आप्त्यः । आदित्याः, १४-१८ आदित्योषसः (दुःष्वप्नघ्नं) । महापङ्क्तिः ।

महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुषे ।
यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमघं नशदनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १ ॥
विदा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिम् ।
पक्षा वयो यथोपरि व्य१स्मे शर्म यच्छतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ २ ॥
व्य१स्मे अधि शर्म तत्पक्षा वयो न यन्तन ।
विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ३ ॥
यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः ।
मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ४ ॥
परि णो वृणजन्नघा दुर्गाणि रथ्यो यथा ।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मण्यादित्यानामुतावस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ५ ॥

अन्वयः- १ हे मित्र वरुण ! (हे अर्यमन् !) महतां वः अवः दाशुषे महि । हे आदित्याः ! यं द्रुहः अभि रक्षथ, ईं अघं न नशत् । वः ऊतयः अनेहसः, वः ऊतयः सु-ऊतयः ॥

अर्थ — १ हे मित्र, वरुण (और अर्यमा) ! आप जैसे श्रेष्ठोंका संरक्षण दाताके लिये बहुत (ही प्राप्त होता है) । हे आदित्यो ! जिसको द्रोही शत्रुसे आप सुरक्षित रखते हैं, उसे पाप कष्ट नहीं देता । क्योंकि आपकी सुरक्षाएँ निष्पाप हैं, आपकी रक्षाएं उत्तम हैं ॥

२ हे देवाः आदित्यासः ! अघानां अपाकृतिं विद । वयः यथा पक्षा उपरि (कुर्वन्ति), अस्मे शर्म यच्छत । वः ऊतयः० ॥

२ हे देव आदित्यो ! हमारे पापोंका नाश करनेका ज्ञान तुम्हें है । पक्षी जिस तरह अपने बच्चोंपर (पंखोंकी छाया) करते हैं, वैसा हमें सुख देओ । आपकी ० ॥

३ अस्मे अधि तत् शर्म (अस्ति तत्) पक्षा वयो न वि यन्तन । हे विश्ववेदसः विश्वानि वरूथ्या मनामहे । वः ऊतयः ० ॥

३ हमारे ऊपर आपका वह सुख (रहे), जैसा पंखोंसे पक्षी (अपने बच्चोंको) देते हैं । हे सर्वज्ञो ! सब प्रकारके संरक्षण हम चाहते हैं । आपकी० ॥

४ हे प्रचेतसः ! यस्मै क्षयं जीवातुं च अरासत, (तस्मै) इमे आदित्याः विश्वस्य घेत् मनोः रायः ईशते । वः ऊतयः ० ॥

४ हे ज्ञानी देवो ! जिसके लिये आश्रय और जीवनसाधन तुम देते हो, उसके लियेही, (उसको धन देनेके लियेही) ये आदित्य सब मानवोंके धनोंपर अधिकार स्थापित करते हैं । आपकी० ॥

५ दुर्गाणि यथा नः अघा परि वृणजन् । इन्द्रस्य शर्मणि स्याम । उत आदित्यानां अवसि । व. ऊतयः ० ॥

५ जिस तरह कठिणताओंको दूर करते हैं, वैसे हम पापोंको दूर करते हैं । इन्द्रके आश्रयमें हम रहेंगे और आदित्योंकी सुरक्षामें भी रहेंगे । आपकी० ॥

परिह्वृतेदना जनो युष्मादत्तस्य वायति ।
देवा अदभ्रमाश वो यमादित्या अहेतनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ६
न तं तिग्मं चन त्यजो न द्रासदभि तं गुरु ।
यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्वमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ७
युष्मे देवा अपि ष्मसि युध्यन्तइव वर्मसु ।
यूयं महो न एनसो यूयमर्भादुरुष्यतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ८
अदितिर्न उरुष्यत्वदितिः शर्म यच्छतु ।
माता मित्रस्य रेवतोऽर्यम्णो वरुणस्य चानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ९
यद्देवाः शर्म शरणं यद्भद्रं यदनातुरम् ।
त्रिधातु यद्वरूथ्यं१ तदस्मासु वि यन्तनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १०
आदित्या अव हि ख्यताधि कूलादिव स्पशः ।
सुतीर्थमर्वतो यथाऽनु नो नेषथा सुगमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ११

---

६ परिह्वृता इत् अना जनः युष्मादत्तस्य (धनं) वायति । हे आशवः देवा ! य अहेतन (सः) अदभ्रं (वायति), वः ऊतय० ॥

७ तं तिग्मं चन त्यजः न द्रासत् । तं गुरु (न द्रासत्) । हे आदित्यासः ! सप्रथः यस्मा उ शर्म अराध्वं, वः ऊतयः० ॥

८ हे देवाः ! (यथा) युध्यन्त. वर्मसु, युष्मे अपि (वयं) स्मसि । यूयं नः महः एनसः ऊरुष्यत । यूयं अर्भात् (ऊरुष्यत) । वः ऊतयः० ॥

९ नः अदितिः उरुष्यतु । अदितिः शर्म यच्छतु । माता मित्रस्य रेवतः अर्यम्णः वरुणस्य च (शर्म यच्छतु) वः ऊतयः० ॥

१० हे देवाः ! यत् शर्म शरणं, यत् भद्रं, यत् अनातुरं, यत् त्रिधातु, यत् वरूथ्यं, तत् अस्मासु वि यन्तन । वः ऊतयः० ॥

११ हे आदित्या ! कूलात् अधि स्पशः अव हि ख्यत । सुतीर्थं अर्वतः यथा । नः सुगं अनुनेषथ । व. ऊतयः० ॥

६ दु:खी अवस्थामें रहकर (तुम्हारी भक्तिसे) जीवित रहा (भक्त) मानव तुम्हारे दिये (धन) को प्राप्त करता है । हे शीघ्रगामी देवो ! जिसके पास तुम जाते हो वह विपुल (धन प्राप्त करता है) । आपकी० ॥

७ उसको तीक्ष्ण शस्त्र भी नहीं कष्ट देता । बडा कष्ट भी उसे नहीं सताता । हे आदित्यो ! जिसको तुम आश्रय देते हो (वह सुखी होता है) । आपकी० ॥

८ हे देवो ! जैसे युद्ध करनेवाले वीर कवचोंमें (सुरक्षित होते हैं) उस तरह तुम्हारे होकर हम रहेंगे । तुम हमें बडे पापसे बचाओ और तुम छोटे (पापसे भी बचाओ) । आपकी० ॥

९ हमें अदिति बचावे । अदिति हमें सुख देवे । मित्र वरुण अर्यमा आदि देवोंकी माता हमें सुख देवे । आपकी० ॥

१० हे देवो ! जो कवच सुखदायी कल्याणकारी और नीरोगिता देनेवाला है, वह तीनों सुरक्षाओंको धारण करनेवाला कवच हमें दे दो ॥ आपकी० ॥

११ हे आदित्यो ! नदीतीरपरसे जैसे नीचे देखते हैं, वैसे तुम हमारी ओर नीचे देखो । जैसे उतारके मार्गसे घोडोंको ले जाते हैं, वैसे सुगम मार्गसे हमें ले चलो । आपकी० ॥

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत ।
गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १२ ॥

यदाविर्यदपीच्यं१ देवासो अस्ति दुष्कृतम् ।
त्रिते तद्विश्वमाप्त्य आरे अस्मद्दधातनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १३ ॥

यच्च गोषु दुष्ष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः ।
त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १४ ॥

निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः ।
त्रिते दुष्ष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १५ ॥

तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे ।
त्रिताय च द्विताय चोषो दुष्ष्वप्न्यं वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १६ ॥

यथा कलां यथा शफं यथ ऋणं संनयामसि ।
एवा दुष्ष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १७ ॥

---

१२ इह भद्रं रक्षस्विने न, अवयै न, उत उपयै न । गवे च भद्रं, धेनवे, वीराय, श्रवस्यते च (भद्रं भवतु) । वः ऊतयः ० ॥

१३ हे देवासः ! यत् आविः अस्ति, यत् दुष्कृतं अपीच्यम्, तत् विश्वं आप्त्ये त्रिते (मयि मा भूत्), अस्मत् आरे दधातन । वः ऊतयः ० ॥

१४ हे दिवः दुहितः ! यत् च गोषु यत् च अस्मे, दुष्ष्वप्न्यं, हे विभावरि ! तत् आप्त्याय त्रिताय परा वह । वः ऊतयः ० ॥

१५ हे दिवः दुहितः ! निष्कं वा घ कृणवते दुष्ष्वप्न्यं, वा स्रजं, (तत्) सर्वं आप्त्ये त्रिते परि दद्मसि । वः ऊतयः ० ॥

१६ तदन्नाय, तदपसे, तं भागं उपसेदुषे त्रिताय द्विताय च हे उषः ! दुष्ष्वप्न्यं वह । वः ऊतयः ० ॥

१७ यथा कलां, यथा ऋणं, यथा शफं, संनयामसि, एव सर्वं दुष्ष्वप्न्यं आप्त्ये सं नयामसि । वः ऊतयः ० ॥

१२ यहां राक्षसी लोगोंका कल्याण न हो, घातकोंका कल्याण न हो और उपद्रवी लोगोंका भी न हो । बैल, गाय, वीर और यशके लिये यत्न करनेवालेका कल्याण हो । आपकी० ॥

१३ हे देवो ! जो प्रकट (पाप) हुआ हो, जो गुप्त पाप बना हो, वह सब मुझ त्रित आप्त्यमें न रहे, वह दूर भेजो । आपकी० ॥

१४ हे द्युलोककी पुत्री (उषा) ! जो गौओंमें और हममें बुरा स्वप्न बाधाकारी हो, हे तेजस्विनी उषा ! उसको त्रित आप्त्यसे– मुझसे– दूर कर ॥ आपकी० ॥

१५ हे द्युलोककी पुत्री ! अलंकार करनेवाले (सुनार) के अथवा माला बनानेवाले (माली) के पास जो दुष्ट स्वप्न हो वह सब (मुझ) आप्त्य त्रितको छोडकर दूर चला जाय । आपकी० ॥

१६ वह अन्न लेनेवाला, वह कर्म करनेवाला, अथवा भोगका अंश स्वीकार करनेवाला त्रित और द्वित है, हे उषा ! उसके पाससे वह दुष्ट स्वप्न (का कारण पाप) दूर बहा दे । आपकी० ॥

१७ जैसा सूद , जैसा ऋण और जैसा मूल जड (या धन) हम पूर्णतया दे डालते हैं, वैसाही सब दुष्ट स्वप्न आप्त्यके पाससे पूर्णतया [illegible] जाते हैं । आपकी० ॥

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् ।
उषो यस्माद्दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १८

१८ वयं अद्य अजैष्म। असनाम च । अनागसः अभूम । हे उषः ! यस्माद् दुष्वप्न्यात् अभैष्म, तत् अप उच्छतु । वः ऊतयः०॥

१८ हमने आज विजय प्राप्त किया है। हमने लाभ प्राप्त किया है। हम निष्पाप बने हैं। हे उषादेवी! जिस दुष्ट स्वप्नसे हम भयभीत हो चुके थे, वह (भय) दूर हो। आपकी०॥

विजयी बनना, लाभ प्राप्त करना और निष्पाप होना

इस सूक्तका ध्येय अन्तिम मंत्रमें कहा है, वह यह है। (मंत्र १८)

१ अद्य वयं अजैष्म—आज हम विजयी होंगे, आजही शत्रुको परास्त करेंगे,

२ अद्य वयं असनाम— आजही हम लाभ प्राप्त करेंगे, धनादि ऐश्वर्य प्राप्त करेंगे,

३ अद्य वयं अनागसः अभूम—आज हम सब निष्पाप बनेंगे, निर्दोष व्यवहार करेंगे,

पापसे दोष होते हैं, दोषसे बुरे कर्म होते हैं, बुरे कर्म हुए तो उनके दोषोंसे लाभ नहीं होता, और विजय भी नहीं मिलता। इसलिये सबसे पहिला कर्तव्य निष्पाप होना है, यही सब उन्नतिका आधार है। इसलिये इस सूक्तमें प्रायः अनेक मंत्रोंमें यही विषय कहा है—

मं. १— ये अभि रक्षथ, ईं अघं न नशत्— जिसकी (देव) सुरक्षा करते हैं उसको पाप नहीं लगता,

२— अघानां अपाकृतिं विद— तुम पापोंका निराकरण करनेका उपाय जानते हैं,

५— नः अघा परि वृणजन्— हमारे पापोंको दूर करो,

८— यूयं नः महः अर्भात् एनसः उरुष्यत— तुम हमें बडे और छोटे पापसे बचाओ,

१३ यत् आविः अपीच्यं दुष्कृतं, तत् अस्मद् आरे दधातन— जो प्रकट अथवा गुप्त पाप हुआ हो वह सब हमसे दूर करो,

१८ वयं अद्य अनागसः अभूम— हम आज निष्पाप बनेंगे, निर्दोष होंगे।

इस तरह १८ मंत्रोंमेंसे ६ मंत्रोंमें निष्पाप होनेकी सूचना दी है। क्योंकि यही मानवी उन्नतिके लिये अत्यावश्यक है। इसके साथ साथ पापसे बुरा स्वप्न होता है और मानवोंको सताता है, पाप न हुआ तो बुरा स्वप्न भी नहीं सतायेगा, यह भाव मंत्र १४—१७ तकके चार मंत्रोंमें कहा है—

१४ दुष्वप्न्यं परा वह— दुष्ट स्वप्न हमसे दूर बहा दे,

१५ दुष्वप्न्यं परि दद्मसि— दुष्ट स्वप्न चारों ओरसे दूर करो,

१६ दुष्वप्न्यं वह— दुष्ट स्वप्न दूर बहा दो,

१७ दुष्वप्न्यं सं नयामसि— दुष्ट स्वप्नको पूर्णतासे विनष्ट करो,

इस तरह दुष्ट स्वप्नका जो मूल कारण पाप है वह दूर करनेकी सूचना यहां है। कायिक, वाचिक, मानसिक दोषोंसे दुष्ट संस्कार और दुष्ट स्वप्न होते हैं। मानवी व्यवहारके स्वरूपके सूचक स्वप्न हैं, यदि स्वप्न दुष्ट होते हों, तो समझना चाहिये कि मनुष्यके व्यवहार और संस्कार बुरे हैं, उनकी सुधार अवश्य करनी चाहिये।

इस तरह इस सूक्तके १८ मंत्रोंमेंसे १० मंत्रोंमें पापों और बुरे संस्कारोंको, तथा उनके सूचक दुष्ट स्वप्नोंको हटानेका आदेश दिया है। इनसे अपना बचाव करना चाहिये।

ईश्वरसे प्राप्त होनेवाली सुरक्षाएं (अनेहस.) निष्पाप हैं और उत्तम संरक्षक (सु-ऊतयः) भी हैं, ऐसा प्रत्येक मंत्रमें कहा है। इसका उद्देश्य यह है कि लोग ईश्वरकी भक्ति करके अपने आपको उसकी सुरक्षा प्राप्त करें और पापोंसे तथा तज्जन्य संस्कारोंसे अपने आपका बचाव करें।

मं. ९— वयः पक्षा उपरि कुर्वते-पक्षी अपने छोटेछोटे बच्चोंपर अपने पंख फैलाकर उनकी सुरक्षा करते हैं,

२— पक्षा वयो न— पंखोंसे पक्षी अपने छोटे बच्चोंकी सुरक्षा करते हैं,

वैसी सुरक्षा ईश्वर भक्तोंकी करता है। भक्ति करके लोग उस सुरक्षाको प्राप्त करें। और

मं. १— द्रुहः अभि रक्षथ- द्रोही घातपात करनेवालोंसे बचाव करो,

२— अस्मे शर्म यच्छ- हमें सुख अथवा आश्रयस्थान मिले,

३— विश्वानि वरूथ्या मनामहे-सब प्रकारके कवच, संरक्षण हमें चाहिये,

४— क्षयं जीवातुं च अरासत- निवास और जीवन-साधन प्राप्त हो,

५— विश्वस्य रायः ईशते— सब धनोंका स्वामी है,

७— तं तिग्मं गुरुं त्यजः न द्रासत्— उसको तीक्ष्ण और बडा घातक शस्त्र भी न काट सके,

८— धर्मसु युध्यन्तः— कवच धारण करके युद्ध करें,

९— शर्म यच्छतु— सुख, आश्रय और आधार दें,

१०— शर्म, भद्रं, अनातुरं, वरूथ्यं, त्रिधातु अस्मासु वि यन्तन— सुख, कल्याण, निरोगिता, कवच, तीन धारक शक्तियां हमें प्राप्त हों,

११— नः सुगं अनुनेषथ— हमें सुखसे (सन्मार्गसे) ले चलो,

१२—गवे, धेनवे, वीराय, श्रवस्यते भद्रं-बैल, गाय, वीर और यशकी इच्छा करनेवालोंका कल्याण हो,

१७— जैसा (कर्ता) सूद, जैसा (ऋणं) ऋण, (यथा शफ संनयामसि) जैसा खुर, पांव या जड मूल निःशेष किया जाता है, वैसेही हमारी दुर्गति निःशेष दूर हो।

इस सूक्तका इस तरह मनन करके पाठक आवश्यक और योग्य बोध प्राप्त करें।

[३] सोम-प्रकरण

(ऋ. ९।३३) त्रित आप्त्यः। पवमानः सोमः। गायत्री।

प्र सोमासो विपश्चितोऽपां न यन्त्यूर्मयः । वनानि महिषा इव ॥ १

अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ २

सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्ति विष्णवे ॥ ३

अन्वयः- १ विपश्चित. सोमासः, अपां ऊर्मयः नः वनानि महिषा इव, (च) प्र यन्ति ॥

२ बभ्रवः शुक्राः ऋतस्य धारया, गोमन्तं वाजं द्रोणानि अभि अक्षरन् ॥

३ सुताः सोमाः इन्द्राय, वायवे, वरुणाय, मरुद्भ्यः विष्णवे (च) अर्षन्ति ॥

अर्थ— १ ये ज्ञानी सोमरस, जलप्रवाहोंके समान, (अथवा) वनोंमें भैंसों (के जानेके) समान, चलते हैं ॥

२ भूरे रंगवाले स्वच्छ (सोमरस), जलकी धाराके साथ, गौओंसे उत्पन्न (दुग्धरूपी) अन्नको (लेकर) पात्रोंमें बहते हैं ॥

३ निचोडे सोमरस इन्द्र, वायु, वरुण, मरुत् और विष्णुके लिये बहते हैं॥

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ४
अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः । मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ५
रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणः ६

४ तिस्रः वाचः उदीरते । धेनवः गावः मिमन्ति । हरिः कनिक्रदत् एति ॥

४ तीन वचन (ऋक्, यजु और साम) गाये जाते हैं। दुधारू गौवें शब्द करती हैं। हरे (रंगका सोम) शब्द करता हुआ पात्रमें जाता है ॥

५ ब्रह्मीः यह्वीः ऋतस्य मातरः अभि अनूषत । दिवः शिशुं मर्मृज्यन्ते ॥

५ ज्ञानमय प्रगतिशील सत्यज्ञानकी माताएं जैसी (वेद-वाणियां) गायी जाती हैं। द्युलोकके पुत्र (सोम) को (जलसे) शुद्ध करते हैं ॥

६ हे सोम ! रायः चतुरः समुद्रान् सहस्रिणः अस्मभ्यं विश्वतः आ पवस्व ॥

६ हे सोम ! धनके चार समुद्र और सहस्रों ऐश्वर्य हमारे पास चारों ओरसे ले आ ॥

(ऋ. ९।३४) त्रित आप्त्यः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र सुवानो धारया तनेन्दुर्हिन्वानो अर्षति । रुजद्दृळ्हा व्योजसा १
सुत इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षति विष्णवे २
वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः । दुहन्ति शक्मना पयः ३
भुवत्त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः । सं रूपैरज्यते हरिः ४
अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः । चारु प्रियतमं हविः ५
समेनमह्रुता इमा गिरो अर्षन्ति सस्रुतः । धेनूर्वाश्रो अवीवशत् ६

अन्वयः— १ इन्दुः सुवानः हिन्वानः धारया तना प्र अर्षति । दृळ्हा ओजसा वि रुजत् ॥

अर्थ— १ सोमका रस निचोडा जाकर धारासे (कलशोंके) पास जाता है। (शत्रुके) सुदृढ कीलोंको शक्तिसे तोड देता है ॥

२ (पूर्व सूक्तस्य तृतीयो मन्त्रो द्रष्टव्यः) ॥

२ (पूर्व सूक्तका तीसरा मंत्र देखो) ॥

३ वृषाणं यतं सोमं वृषभिः अद्रिभिः सुन्वन्ति । शक्मना दुहन्ति पयः ॥

३ बलवान् सामर्थ्यवान् सोमको सामर्थ्यवाले पत्थरोंसे (कूटकर) रस निकालते है, (उसमें मिलानेके लिये) सामर्थ्यसे दूध दुहते हैं ॥

४ त्रितस्य मत्सरः मर्ज्यः भुवत्, इन्द्राय भुवत्, रूपैः हरिः सं अज्यते ॥

४ त्रितका हर्ष बढानेवाला सोमरस शुद्ध हो रहा है, इन्द्रके लिये वह तैयार हो रहा है। अनेक रूपोंसे हरे रंगवाला (यह सोम) सुशोभित होता है ॥

५ ईं ऋतस्य विष्टपं प्रियतमं चारु हविः पृश्निमातरः दुहते ॥

५ सत्यके आधार, अत्यंत प्रिय और सुंदर हविरूप (इस सोमरसको) भूमिको माता माननेवाले वीर दुहते हैं ॥

६ एनं अह्रुताः गिरः सस्रुतः सं अर्षन्ति । धेनूः वाश्रः अवीवशत् ॥

६ इस (सोम) की अकुटिल वाणियां सरलतासे प्रशंसा करती हैं। दुधारू गौवें शब्द करती हुई (इस रसको) चाहती हैं ॥

(ऋ. ९।१०२) त्रित आप्त्यः । पवमानः सोमः । उष्णिक् ।

क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् । विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १
उप त्रितस्य पाष्योरभक्त यद् गुहा पदम् । यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २
त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरया रयिम् । मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३
जज्ञानं सप्त मातरो वेधामशासत श्रिये । अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यद् ॥ ४
अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः । स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत् ॥ ५
यमी गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन् । कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहम् ॥ ६
समीचीने अभि त्मना यह्वी ऋतस्य मातरा । तन्वाना यज्ञमानुषग्यदञ्जते ॥ ७
क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभिर्ऋणोरप व्रजं दिवः । हिन्वन्नृतस्य दीधितिं प्राध्वरे ॥ ८

अन्वयः- १ क्राणा महीनां शिशुः ऋतस्य दीधितिं हिन्वन्, विश्वा प्रिया परि भुवत् । अध द्विता (भवति) ॥

अर्थ— १ कर्म करनेवाला, श्रेष्ठ माताओंका पुत्र जैसा प्रिय, सत्यका आधार, (रसका) प्रेरक सोम, सब प्रिय वस्तुओंको तिरस्कृत करता है । और (द्युलोक और भूलोक) इन दो स्थानोंमें (विशेष होकर रहता है) ॥

२ त्रितस्य गुहा, पाष्योः पदं यत् उप अभक्त । अध यज्ञस्य धामभिः सप्त प्रियं (अभिष्टुवन्ति) ॥

२ त्रितके यज्ञमें, दो पत्थरोंमें जब (सोम) अपना स्थान प्राप्त करता है, (जब कूटा जाता है), तब यज्ञके धामोंसे सातों (छन्दोंसे) प्रिय (सोमकी प्रशंसा गायी जाती है) ॥

३ त्रितस्य त्रीणि धारया पृष्ठेषु रयिं आ ईरय । सुक्रतुः अस्य योजना वि मिमीते ॥

३ त्रितके (यज्ञमें) तीनों (सवनोंमें सोमरसकी) धारासे (छलनियोंके पीठपर चढकर हे सोम !) धन प्रेरित कर। उत्तम कर्म करनेवाला इस (सोमरस) की योजनाको निर्माण करता है ।

४ जज्ञानं वेधां सप्त मातरः श्रिये अशासत। यत् ध्रुवः अयं सोमः रयीणां चिकेत ॥

४ उत्पन्न हुए इस कर्मकर्ता (सोमके पास) सात नदीरूपी माताएँ शोभाको बढाती हैं । यह स्थिर सोम धन (की प्राप्तिके मार्ग) को जानता है ॥

५ अद्रुहः विश्वे देवासः अस्य व्रते सजोषसः स्पार्हाः भवन्ति । रन्तयः यत् जुषन्त ॥

५ द्रोह न करनेवाले सब देव इस (सोम) के यज्ञमें साथ साथ बैठकर (सोम) चाहनेवाले होते हैं। आनन्दित होकर सेवन करते हैं ॥

६ ऋतावृधः अध्वरे दृशे गर्भं ईं यं चारुं कविं मंहिष्ठं पुरुस्पृहं अजीजनन् ॥

६ सत्यको बढानेवाले, यज्ञमें दर्शनीय, गर्भरूप इस सुंदर, कवि, महान्, सबको प्रिय सोम (रस) को तैयार करते हैं ॥

७ समीचीने यह्वी ऋतस्य मातरा त्मना अभि यत् यज्ञं तन्वाना आनुषक् अञ्जते ॥

७ परस्पर मिले, बडे, सत्यके निर्माण करनेवाले, (द्युलोक और भूलोकमें) स्वयं (सोम) आता है जब यज्ञ करनेवाले (सोमको जलमें) मिलाते हैं ॥

८ क्रत्वा शुक्रेभिः अक्षभिः व्रजं दिवः अप ऋणोः, अध्वरे ऋतस्य दीधितिं प्र हिन्वन् ॥

८ (हे सोम !) तुम अपने कर्मसे और शुभ्र किरणोंसे आकाशके अन्धकारको दूर करो, और यज्ञमें सत्यके धारक (सोमरस) को प्रेरित करो ॥

(ऋ. ९।१०३) द्वित आप्त्यः । पवमानः सोमः । उष्णिक् ।

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम् । भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते १
परि वाराण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति । त्री षधस्था पुनानः कृणुते हरिः २
परि कोशं मधुश्चुतमव्यये वारे अर्षति । अभि वाणीर्ऋषीणां सप्त नूषत ३
परि णेता मतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः । सोमः पुनानश्चम्वोर्विशद्धरिः ४
परि दैवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम् । पुनानो वाघद्वाघद्भिरमर्त्यः ५
परि सप्तिर्न वाजयुर्देवो देवेभ्यः सुतः । व्यानशिः पवमानो वि धावति ६

अन्वयः- १ पुनानाय, वेधसे, मतिभिः जुजोषते सोमाय उद्यतं वचः भृतिं न प्र भर ॥

अर्थ— १ पवित्र किये जानेवाले, ज्ञानी और बुद्धियोंसे प्रसन्न किये जानेवाले सोमके लिये, उत्तम प्रशंसाका वचन, (सेवकको) वेतन देनेके समान, कहो ॥

२ गोभिः अञ्जानः अव्यया वाराणि परि अर्षति । हरिः पुनानः त्री सधस्था कृणुते ॥

२ गौओं (के दूधमें) मिलाया जानेवाला (सोमरस) भेडीकी ऊनकी (छलनी) परसे गिरता है । हरे रंगवाला (सोम) शुद्ध होता हुआ तीन पात्रोंको (प्राप्त) करता है । (तीन पात्रोंमें रखा जाता है) ॥

३ अव्यये वारे मधुश्चुतं कोशं परि अर्षति । ऋषीणां सप्त वाणीः अभि नूषत ॥

३ भेडीकी ऊनकी (छलनीसे) चूनेवाला मधुर रस पात्रमें भरा जाता है । (तब) ऋषियोंकी सात छन्दोंकी वाणी उसकी प्रशंसा गाती है ॥

४ पुनानः मतीनां नेता विश्वदेवः अदाभ्यः हरिः सोमः चम्वोः परि विशत् ॥

४ छाना जाकर, बुद्धियोंका आकर्षक, सब देवोंको प्रिय, न दबाया जानेवाला (उत्साहवर्धक) हरे रंगवाला सोमरस पात्रोंमें जाता है ॥

५ इन्द्रेण सरथं दैवीः स्वधाः अनु पुनानः वाघद्भिः वाघत् अमर्त्यः परि याहि ॥

५ (हे सोम !) इन्द्रके साथ रथपर बैठकर देवसेनाओंके पास, छाना जानेके बाद अमर स्वरूपमें स्तोत्रोंद्वारा प्रशंसित होकर जा ॥

६ सप्तिः न वाजयुः देवः देवेभ्यः सुतः व्यानशिः पवमानः परि वि धावति ॥

६ घोडेके समान युद्धकी इच्छा करनेवाला, दिव्य, देवोंके लिये निचोडा, फैलनेवाला और छाना हुआ सोमरस चारों ओर फैल रहा है ॥

सोमरसका पान

इन चार सूक्तोंमें २६ मंत्र हैं । इनमें त्रितके २० और द्वितके छः मंत्र हैं । इनमें सोमरस सिद्ध करनेका वर्णन है । यह वर्णन अब देखिये-

१. सोमको धोकर स्वच्छ करना

१ दिवः शिशुं मर्मृज्यन्ते— द्युलोकमें, पर्वतके उच्च शिखरपर, उत्पन्न होनेवाला सोम जलसे वारंवार धोया जाता है। (९।३३।५)

२ मत्सरः मर्ज्यः भुवत्— आनंद देनेवाला सोम पीने, वारंवार धोने योग्य हुआ है । (९।३४।४)

३ पुनानः— स्वच्छ होनेवाला सोम । (९।१०३।१-५) सोम लानेके बाद उसको बारबार धोया जाता है । पश्चात् कूटकर रस निचोडते हैं-

२. कूट कूट कर रस निकालना

१ सोमं वृषभिः अद्रिभिः सुन्वन्ति– सोमको बलवाले पत्थरोंसे कूटकर रस निकालते हैं। (९।३४।३)

२ पाष्योः पदं उप अभक्त– दो पत्थरोंमें सोम अपना स्थान प्राप्त करता है, कूटा जाता है। (९।१०२।२)

कूटनेके विषयमें ये मंत्र-भाग हैं। इसके पश्चात् छाननेका वर्णन देखो—

३. सोमरसको छानना

१ गोभिः अञ्जानः अव्यया वाराणि परि अर्षति– गौओंके दूधके साथ मिलकर भेडीकी ऊनसे छाना जाता है। (९।१०३।२)

२ अव्यये वारे मधुश्चुतं कोशं परि अर्षति–भेडीकी ऊनकी छाननीसे नीचे चूता हुआ सोमरस पात्रमें भरा जाता है। (९।१०३।३)

३ पुनानः चम्वोः परि विशत्– छाना गया सोमरस पात्रोंमें भरा गया है। (९।१०३।४)

४ पुनानः परि याहि– छाना जानेके बाद पात्रमें रखो। (९।१०३।५)

५ पवमानः परि विधावति– छाना जानेके बाद सोमरस पात्रोंमें दौड कर जा कर रहता है। (९।१०३।६)

४. सोमरसमें दूध आदिका मिलाना

सोमरसका पान करनेके पूर्व उसमें जल, दूध या सत्तूका अन्न मिलाया जाता है और पश्चात् पीया जाता है—

१ सोमासः अपां ऊर्मयः न, प्र यन्ति— सोमरस जलोंकी लहरोंके समान बनकर प्रवाहित होते हैं, इतने पतले बनाये जाते हैं। (९।३३।१)

२ बभ्रवः शुक्राः, ऋतस्य धारया, गोमन्तं वाजं, द्रोणानि अभि अक्षरन्— भूरे रंगके छाने गये सोमरस, जलकी धाराके साथ मिलाये जाते हैं, और गौके दूधके साथ तथा गोदुग्धके साथ मिलाये, अन्नके साथ मिलाकर पात्रोंमें रखे जाते हैं। (९।३३।२)

३ धेनवः गावः मिमन्ति, हरिः कनिक्रदत् एति– दुधारू गौवें शब्द करती हैं, दुहकर दूध निकाला जाता है और हरे रंगके सोमरसके साथ वह मिलाया जाता है, मिलानेके समय एक प्रकारका शब्द होता है। (९।३३।४)

४ रूपैः हरिः सं अज्यते— हरे रंगका सोम दूध आदिके मिलानेके बाद विविध रूपोंसे शोभता है। (९।३४।४)

५ धेनूः वाश्रः अवीवशत्— दुधारू गौवें शब्द करती हैं और सोमरसको चाहती हैं, सोममें अपना दूध मिलाना चाहती हैं। (९।३४।६)

६ गोभिः अञ्जानः— गोदुग्धके साथ मिला हुआ सोम। (९।१०३।२)

७ पुनानः स्वधा अनु परि याहि— छाना जानेके बाद अन्नोंके साथ सोमको मिलादो। (९।१०३।५)

इस तरह सोमरस तैयार करते हैं, देवोंको अर्पण करते हैं (देखो ९।३३।३; ९।३४।२,४; ९।१०३।६) और पश्चात् पीते हैं। पात्रोंमें रखते हैं आदि बातें स्पष्ट हैं। अतः उनका अधिक विवरण अनावश्यक है।

॥ यहां सोम-प्रकरण समाप्त हुआ ॥

[४] अग्नि-प्रकरण

(अथ दशमं मण्डलम् ।)

(ऋ. १०।१) त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान्तमसो ज्योतिषाऽगात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥ १ ॥
स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून्प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥ २ ॥
विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।
आसा यदस्य पयो अक्रत स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र ॥ ३ ॥
अत उ त्वा पितुभृतो जनित्रीरन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता ॥ ४ ॥

अन्वयः— १ बृहन् (अग्निः) उषसां अग्रे ऊर्ध्वः अस्थात् । तमसः निर्जगन्वान् । ज्योतिषा आ अगात् । सु-अंगः जातः अग्निः रुशता भानुना विश्वा सद्मानि आ अप्राः ॥

२ हे अग्ने ! ओषधीषु विभृतः जातः चारुः सः रोदस्योः गर्भः असि । चित्रः शिशुः तमांसि अक्तून् परि (भवसि) मातृभ्यः अधि कनिक्रदत् प्र गाः ॥

३ विद्वान् जातः बृहन् विष्णुः इत्था अस्य परमं तृतीयं अभि पाति । अस्य आसा स्वं पयः यत् अक्रत, अत्र सचेतसः अभि अर्चन्ति ॥

४ अतः उ पितुभृतः जनित्रीः अन्नावृधं त्वा अन्नैः प्रति चरन्ति । ईं ताः पुनः अन्यरूपाः प्रत्येषि । मानुषीषु विक्षु त्वं होता असि ॥

अर्थ—१ यह श्रेष्ठ (अग्नि) उषःकालके पूर्वही उठकर खडा हुआ है (प्रज्वलित हो रहा है।) यह अब अन्धकारसे बाहर हुआ है, प्रकाशके साथ प्रकट हुआ है। सुन्दर अंगवाला यह प्रदीप्त हुआ अग्नि अपने तेजस्वी प्रकाशसे सब स्थानोंको व्यापता है ॥

२ हे अग्ने ! तू ओषधियोंमें (लकडियोंमें) भरपूर भर कर उत्तम प्रकट हुआ है, वह तू अब इस द्यावा पृथिवीका गर्भ (केन्द्र) ही है। विचित्र प्रभावाला तू बालक जैसा अन्धकारों और रात्रियोंको पराभूत करता है और (ओषधि-लकडीरूपी) माताओंकी गोदमें बैठनेके लिये गर्जना करता हुआ जाता है ।

३ विद्वान् प्रकट हुआ बडा विष्णु (जैसा यह अग्नि) इस तरह तीसरे परम स्थानका पालन करता है। (लोग) इसके मुखमें अपना दुग्ध अर्पण करते हैं। यहां विशेष ज्ञानी इसका पूजन करते हैं ॥

४ इस कारण अन्न धारण करनेवाली माताएँ (ओषधियाँ, समिधाएँ) अन्नकी वृद्धि करनेवाले तुझ (अग्निकी) अन्नोंसे सेवा करती है। (अग्नि भी) उन विभिन्न रूप बननेवाली (ओषधियोंके) पास जाता है। क्योंकि मानवी प्रजाओंमें तू ही हवनकर्ता है ॥

होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम् ।
प्रत्यर्धिं देवस्यदेवस्य मह्ना श्रिया त्व१ग्निमतिथिं जनानाम् ५
स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः ।
अरुषो जातः पद इळायाः पुरोहितो राजन्यक्षीह देवान् ६
आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ ।
प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठाथा वह सहस्येह देवान् ७

५ अध्वरस्य होतारं चित्ररथं यज्ञस्य-यज्ञस्य केतुं रुशन्तं मह्ना देवस्य-देवस्य अर्धिं प्रति, जनानां अतिथिं अग्निं तु श्रिया (वयं स्तुमः) ॥

६ हे राजन् ! अध पेशनानि वस्त्राणि वसानः, पृथिव्याः नाभा, इळायाः पदे जातः अरुषः पुरोहितः सः अग्निः इह देवान् यक्षि ॥

७ हे अग्ने ! उभे द्यावा-पृथिवी हि सदा आ ततन्थ, पुत्रो न मातरा । हे यविष्ठ ! उशतः अच्छ प्र याहि । अथ हे सहस्य ! इह देवान् आ वह ॥

५ अहिंसक यज्ञका संपादक, विलक्षण रथमें बैठनेवाला, प्रत्येक यज्ञका ध्वज जैसा, तेजस्वी, अपनी महिमासे प्रत्येक देवताके हविका भाग स्वीकारनेवाला, लोगोंका अतिथि अग्नि विशेष शोभासे युक्त (हुआ है, उसकी हम प्रशंसा करते हैं) ॥

६ हे तेजस्वी (अग्ने !) अनेक तेजस्वी वस्त्रोंका धारण करनेवाला, पृथ्वीके मध्यमें विराजमान, भूमिके (वेदि) स्थानमें प्रदीप्त हुआ (सबका) प्रथम हित करनेवाला, एवंरूप हे अग्ने ! यहां देवोंका यजन कर ॥

७ हे अग्ने ! दोनों द्यावापृथिवीपर तू (अपना तेज) फैलाता है, जैसा पुत्र अपने मातापिताओंको (उज्ज्वल करता है) । हे तरुण अग्ने ! तू अपने भक्तोंके पास जा । और हे बलवान् अग्ने ! यहां देवोंको ले आ ॥

आदर्श यशस्वी तरुण

इस सूक्तमें यशस्वी चतुर आदर्श युवाका वर्णन अग्निके मिषसे कविने किया है । आदर्श तरुण कैसा होना चाहिये सो अब इस सूक्तमें देखिये—

मं. १— (**बृहन्**) शरीर, मन, बुद्धि शक्तिसे श्रेष्ठ हो, किसी तरह तरुण न्यून न हो । (**उषसां अग्रे ऊर्ध्वः अस्थात्**) उषःकालके पूर्व उठकर खडा हो जावे, अपना कर्तव्य करनेके लिये तत्पर हो जावे । बडी देरतक सोता न रहे, आलसी न हो, सुस्त न बने । (**तमसा निर्जगन्वान्**) अन्धकारसे दूर हो जावे, अज्ञान अन्धकारसे दूर होवे, अर्थात् ज्ञानी बने, विद्वान् हो । (**ज्योतिषा आ अगात्**) प्रकाशके साथ तेजस्वी बनकर प्रकट होवे । इसका तेज देखकर सब लोग आनंदित हों और इसके ज्ञानके तेजसे तेजस्वी बनें । (**सु-अङ्गः**) इसके शरीरके सब अवयव और अङ्ग उत्तम सुदृढ, सुडौल और दर्शनीय हों । (**रुशता भानुना विश्वा सद्मानि आ अप्राः**) वह अपने तेजसे सबके सब सभास्थान भरपूर भर देवे, सब जनताको उत्साहसे युक्त करे ॥

मं. २— (**चारुः**) वह आदर्श तरुण देखनेके लिये सुन्दर और आनन्दित तथा सुहास्यवदन हो, कभी दुर्मुख न हो । (**ओषधीषु विभृतः**) औषधि, अन्नादिके योग्य सेवनसे भरपूर भरा हुआ हृष्टपुष्ट हो । वह (**रोदस्योः गर्भः**) भूमिसे आकाशतकके सब विश्वका केन्द्र हो, अर्थात् सब विश्व इसकी ओर आदरकी दृष्टिसे देखे । (**चित्रः शिशुः**) यह शैशव अवस्थामें भी सबको प्रिय होनेवाला, जिसको सब चाहते हैं ऐसा हो, (**तमांसि अक्तून् परि**) सब प्रकारके अज्ञानान्धकारोंको दूर करता रहे । (**मातृभ्यः अधि कनिक्रदत् प्र गाः**) माताओंकी गोदमें आनन्दसे शब्द बोलता हुआ वह बालक बैठता है (आदर्श युवाका बालपन ऐसा हो) ॥

मं. ३— (विद्वान् जातः) वह आदर्श तरुण विद्या पढकर बडा विद्वान् ज्ञानी और चतुर बनता है। (बृहन्) वह सब बातोंमें श्रेष्ठ होता है। (विष्णुः) वह सर्वत्र गमन करके सबका निरीक्षण करता है। (तृतीयं परमं अभि पाति) तीसरे श्रेष्ठ स्थानको, सबसे श्रेष्ठ स्थानको सुरक्षित करता है। अर्थात् सभी स्थानोंकी सुरक्षा करता है। (अस्य आसा स्वं पयः अक्रत) इसके पीनेके लिये गौवें अपना दूध देती हैं, सब लोग इसको यथेच्छ दूध पिलाते हैं। (सचेतसः अर्चन्ति) ज्ञानी इस आदर्श तरुणकी प्रशंसा करते हैं अर्थात् ज्ञानियोंके आदरके लिये वह योग्य होता है।

मं. ४— (पितुभृतः जनित्रीः अन्नावृधं अन्नैः प्रति-चरन्ति) सुयोग्य अन्न लेकर माताएँ अन्नसेही पुष्ट होने-वाले अपने बालकको उत्तम अन्नोंसे पुष्ट करती हैं। अपने बालक-की योग्य अन्नोंसे उसकी सेवा करती हैं। अपने बालकका अन्नोंसे सत्कार करती हैं। (पुनः ता अन्यरूपाः प्रत्येषि) फिरसे वह बाल बडा होकर उन माताओंका सत्कार करनेके लिये उनके पास पहुंचता है। अर्थात् अपनी माताओंका सत्कार पुत्र भी बडा होनेपर करता है। इस तरह यह अन्योन्य सेवासे एक अपूर्व यज्ञ होता है। (मानुषीषु विक्षु होता) मानवी समाजमें यज्ञरूपी जीवन व्यतीत करनेवाला यह आदर्श तरुण होता है।

मं० ५— यह आदर्श तरुण (अध्वरस्य होता) हिंसा-रहित कर्मोंका करनेवाला, (यज्ञस्य केतुः) सब प्रकारके सत्कार- संगति- दानात्मक कार्योंका कर्ता (रुशन्, चित्र-रथः) तेजस्वी और सुंदर रथमें बैठनेवाला, (मह्ना देवस्य-देवस्य शर्धिः) अपने निज महत्त्वसे प्रत्येक विबुधके लिये हितकारी कर्म करनेवाला, (जनानां अतिथिः) जनोंके घरोंमें अतिथिवत् पूज्य होकर उनके हितके कर्म करनेके लिये जानेवाला हो। (श्रिया) इसकी यशस्विताके कारण वह सदा प्रशंसायोग्य होता है।

मं० ६— वह आदर्श तरुण अनेकानेक तेजस्वी वस्त्र पहनता है, पृथ्वीमें वह केन्द्र-स्थानमें रहता है, जहां वह रहता है वही केन्द्र- सब हलचलोंका केन्द्र बनता है, इसी स्थानमें वह सबका विशेष हित करता है, वह मानो सब ज्ञानियोंको इकट्ठा करता है और उनके द्वारा शुभ कर्म करता है।

मं० ७— वह आदर्श तरुण सब विश्वको अपने तेजसे भर देता है, मातापितरोंका नाम अधिक यशस्वी करता है। बलवान् तरुण बनकर जिनको चाहिये उनकी सहायता करता है और दिव्य ज्ञानियोंको एकत्रित करके उनसे सत्कर्मोंको सिद्ध कराता है।

इस तरह आदर्श बलवान् सत्कर्म-प्रेरक तरुणका वर्णन इस सूक्तमें अग्निके मिषसे किया गया है। सब तरुण इसका मनन करें, इन गुणोंको अपनाएँ और अपना जीवन दिव्य बनावें।

(ऋ. १०।२) त्रित आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँॠतुपते यजेह।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतॄणामस्यायजिष्ठः ॥ १

वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धाताऽसि द्रविणोदा ऋतावा।
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥ २

अन्वयः— १ हे यविष्ठ ! उशतः देवान् पिप्रीहि। हे ऋतुपते ! ऋतून् विद्वान् इह यज। हे अग्ने ! ये दैव्याः ऋत्विजः तेभिः (तेषां) होतॄणां (मध्ये) त्वं आयजिष्ठः असि॥

२ जनानां होत्रं उत पोत्रं वेषि। मन्धाता, ऋतवा द्रविणोदा असि। वयं हवींषि स्वाहा कृणवाम। अर्हन् अग्निः देवः देवान् यजतु॥

अर्थ— १ हे युवा ! इच्छा करनेवाले देवोंको संतुष्ट कर। हे ऋतुओंके स्वामिन् ! ऋतुओंको जाननेवाला तू यहां यजन कर। हे अग्ने ! जो दिव्य ऋत्विज् हैं उनके साथ रहनेवाला तू, उन होताओंके मध्यमें तूही पूजनीय है॥

२ लोगोंका यजन तथा पवित्र कर्म तू प्राप्त करता है। तू ध्यानकर्ता, सत्कर्म करनेवाला और धनदाता है। हम हविका अर्पण स्वाहाकारके साथ करते हैं। समर्थ अग्निदेव सब देवोंका यजन करे॥

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्रवाम तदनु प्रवोळ्हुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति । ३

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वमा पृणाति विद्वान्येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति । ४

यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद्विजानन्याजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति ५

विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान ।
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः क्षुमतीर्विश्वजन्याः ६

यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वाऽऽपस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान ।
पन्थामनु प्रविद्वान्पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि ७

---

३ देवानां पन्था अपि आ अगन्म । यत् शक्नवाम तत् अनु प्रवोळ्हुं (समर्थाः भवेम) । विद्वान् सः अग्निः यजात् । स इत् उ होता, सः सः अध्वरान् ऋतून् कल्पयाति ॥

३ देवोंने निश्चित किये मार्गमेंही हम जाते हैं। जो हो सकता है वह करनेके लिये (हम समर्थ हों)। ज्ञानी वह अग्नि यह यजन करे। वही होता है, वही हिंसारहित यज्ञके ऋतु नियत करता है ॥

४ हे देवाः ! अविदुष्टरासः वयं व. विदुषां यत् व्रतानि प्र मिनाम । विद्वान् अग्निः तत् विश्वं आ पृणाति । येभिः ऋतुभिः देवान् कल्पयाति ॥

४ हे देवो ! अज्ञानी हम आप ज्ञानियोंके नियमोंका उल्लंघन करते हैं, (यह सत्य है)। यह ज्ञानी अग्नि उस सबको परिपूर्ण करे। उन ऋतुओंके अनुकूल वह देवोंके लिये (यज्ञ) सिद्ध करता है ॥

५ दीनदक्षाः मर्त्यासः पाकत्राः मनसा यज्ञस्य यत् न मन्वते, तत् विजानन् होता क्रतुवित् यजिष्ठ अग्निः ऋतुशः देवान् यजाति ॥

५ क्षीण बलवाले मनुष्य बुद्धिकी अपरिपक्वताके कारण मनसे भी जिस यज्ञका विचारतक नहीं करते, उस यज्ञको जाननेवाला, हवनकर्ता, ऋतुज्ञाता, यजनकर्ममें प्रवीण अग्नि ऋतुओंके अनुसार देवोंका यजन करता है ॥

६ विश्वेषां अध्वराणां अनीकं हि चित्रं केतुं त्वा जनिता जजान । सः नृवतीः क्षाः स्पार्हाः क्षुमतीः विश्वजन्याः इषः अनु आ यजस्व ॥

६ सब हिंसारहित यज्ञोंमें प्रमुख, चित्रविचित्र ध्वज जैसा पवित्र, ऐसे तुझको जगज्जनकने उत्पन्न किया है। वह तू वीरोंसे युक्त, सज्जनोंके साथ रहनेवाले, स्पृहणीय, पोषण करनेवाले सबको प्रिय अन्नके उत्पादनके लिये अनुकूल यजन कर ॥

७ यं त्वा द्यावापृथिवी, यं त्वा आपः, सुजनिमा त्वष्टा यं त्वा जजान । हे अग्ने ! पितृयाणं पन्थां अनु प्रविद्वान् (त्वं) समिधानः द्युमत् वि भाहि ॥

७ तुझे आकाश और पृथिवीने उत्पन्न किया है। जलोंने तुझे प्रकट किया है। उत्तम सुंदर वस्तु निर्माण करनेवाले जगत्स्रष्टाने तुझे निर्माण किया है। हे अग्ने! तू पितरोंके जानेके मार्गको जानता है. ऐसा तू प्रदीप्त होकर तेजस्वी बनकर प्रकाशित हो ॥

युवाके कर्तव्य

मंत्र १— (देवान् पिप्रीहि) देवोंमें संतोष प्राप्त करना चाहिये। दिव्य विबुध सदाचारसेही सतुष्ट होते हैं। इसलिये देवोंके समान सदाचारसंपन्न होना चाहिये। **(ऋतून् विद्वान्)** ऋतुओंको यथावत् जान, किस ऋतुमें क्या होता है, उसमें वैसा व्यवहार करना चाहिये, इसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, तथा **(ऋतून् यज)** ऋतुओंके अनुकूल यजन कर। जिस ऋतुमें जो यजन करना चाहिये वैसा यजन कर। **(होतॄणां त्वं आयजिष्ठः)** होताओंमें तू यजनीय हो। यजन करनेकी विद्यामें तू सबसे विशेष ज्ञानवाला बन, जिससे ऋतुके अनुकूल यजन करके तू नीरोग, बलवान् और उत्साही बनेगा।

मंत्र २--(जनानां होत्रं पोत्रं वेषि) लोगोंके हवन और पावन कर्मोंको तू करता है। **(मन्धाता, ऋतवा द्रविणोदा असि)** मनको ध्यानमें लगानेवाला, सत्कर्म करनेवाला और धनका दाता है। **(देवः देवान् यजतु)** यह स्वयं देव है वह देवोंका सत्कार करे।

मं. ३— (देवानां पन्था अगन्म) देवोंके मार्गसे हम जाते हैं। सन्मार्गसेही हम चलते हैं। **(यत् शक्नवाम)** जितनी हमारी शक्ति होगी उतना **(तत् अनु प्रवोल्हुं)** हम कार्य करनेके लिये यत्न करेंगे। अर्थात् शक्ति होनेपर हम सन्मार्ग नहीं छोडेंगे। **(विद्वान् यजात्)** विद्वान्ही यज्ञ करे, यज्ञ-प्रक्रिया जाननेवाला यज्ञ करे। **(स अध्वरान् कल्पयाति)** वह हिंसारहित कर्मोंको यथासांग करता है।

मं. ४— (अ-विदुष्टरासः वयं विदुषां व्रतानि प्र मिनाति) हम अज्ञानके कारण विद्वानोंके निश्चित किये मार्गोंमें विघ्न करते हैं, हमारे अज्ञानके कारण मार्गमें दोष होता रहता है। इसीलिये अज्ञान दूर करना चाहिये और ज्ञानी बनना चाहिये। **(विद्वान् विश्वं पृणाति)** जो विद्वान् होता है वह सब कुछ कर्तव्य यथायोग्य रीतिसे करता है। उसमें दोष रहने नहीं देता; **(ऋतुभिः देवान् कल्पयाति)** ऋतुओंके अनुकूल वह देवोंके लिये यज्ञ करता है और उनको प्रसन्न करता है।

मं. ५— (दीन दक्षाः पाकत्राः मर्त्यास- मनसा यज्ञस्य न मन्वते) क्षीणबल अपरिपक्व मानव मनसे भी यज्ञ करनेकी बात नहीं सोच सकते। जो बलवान् पूर्ण ज्ञानी पुरुष हैं वेही यज्ञ करनेके विषयमें सोचते हैं। इसीलिये कहते हैं कि **(विजानन् ऋतुवित् यजिष्ठः ऋतुशः देवान् यजाति)** ज्ञानी यज्ञशास्त्रवेत्ता पवित्र यज्ञकर्ता ऋतुके अनुसार देवोंका यजन करता है और कृतकृत्य होता है।

मं. ६— (विश्वेषां अध्वराणां केतुं त्वा जनिता जजान) सब हिंसारहित कर्मोंका ध्वज तू है, ऐसा मानकरही संसारके जनकने तुझे- तुझको-उत्पन्न किया है। यह आदेश अग्नि मिषसे प्रत्येक मानवके लिये है। प्रत्येक मानव हिंसारहित कर्म करे और ऐसे शुभ कर्मोंका ध्वज जैसा केन्द्र भी बने। **(सः त्वं नृवतीः स्पार्हाः क्षुमतीः इषः यजस्व)** वह तू सब सज्जनोंको इकट्ठा करके इच्छा करनेयोग्य बलवर्धक अन्नोंका यजन कर अर्थात् सबको पहुंचाओ। ऐसा अन्न सबको मिले कि जिस सबकी पुष्टि हो, बल बढे, तथा सब लोग इकट्ठे हों अर्थात् आपसमें सुसंगठित हों।

मं. ७— (पितृयाणं पंथां अनु प्र विद्वान् विभाहि) अपने पूर्वजोंके मार्गको जानकर अपने तेजसे चमकता रह। अपना तेज चारों ओर फैला दे।

संक्षेपसे यह उपदेश इस सूक्तमें किया है। राष्ट्रमें युवा क्या करे, उसके निर्देश अग्निके वर्णनके मिषसे इस सूक्तमें किये हैं।

(ऋ. १०।३) त्रित आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि।
चिकिद्वि भाति भासा बृहताऽसिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥ १

अन्वयः— १ हे राजन्! इनः अरतिः समिद्धः रौद्रः सुषुमान् दक्षाय अदर्शि। चिकित् विभाति। बृहता भासा रुशतीं अपाजन् असिक्नीं एति ॥

अर्थ— १ हे राजन्! तू प्रभु प्रगतिशील, प्रदीप्त, भयानक तथा उत्तम रस निर्माण करनेवाला होकर बलवर्धन करनेके लिये अपनी दृष्टि चारों ओर फेंकता है। स्वयं ज्ञानी होकर प्रकाशता है। बडे तेजसे तेजस्विनी (उषा) को प्रकट करता हुआ रात्रिको पीछे रखता है ॥

कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन्दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥ २ ॥

भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥ ३ ॥

अस्य यामासो बृहतो न वग्नूनिन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य ।
ईड्यस्य वृष्णो बृहतः स्वासो भामासो यामन्नक्तवश्चिकित्रे ॥ ४ ॥

स्वना न यस्य भामासः पवन्ते रोचमानस्य बृहतः सुदिवः ।
ज्येष्ठेभिर्यस्तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिर्वर्षिष्ठेभिर्भानुभिर्नक्षति द्याम् ॥ ५ ॥

अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर्जेहमानस्य स्वनयन्नियुद्भिः ।
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा ॥ ६ ॥

---

२ यत् कृष्णां एनीं बृहतः पितुः जां योषां जनयन् वर्पसा अभि भूत् । अरतिः दिवः वसुभिः सूर्यस्य भानुं ऊर्ध्वं स्तभायन् वि भाति ॥

३ भद्रः भद्रया सचमानः आगात् । पश्चात् जारः स्वसारं अभि एति । सुप्रकेतैः द्युभि. वितिष्ठन् अग्निः रुशद्भिः वर्णैः रामं अभि अस्थात् ॥

४ अस्य बृहतः अग्नेः इन्धानाः यामासः वग्नून् न (बाधन्ते)। सख्युः शिवस्य ईड्यस्य वृष्णः बृहतः स्वासः अक्तवः भामासः यामन् चिकित्रे ॥

५ रोचमानस्य बृहतः सुदिवः यस्य भामासः, स्वनाः न, पवन्ते । यः ज्येष्ठेभि तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिः वर्षिष्ठेभिः भानुभिः द्यां नक्षति ॥

६ ददृशानपवेः जेहमानस्य अस्य शुष्मासः नियुद्भिः स्वनयन् । देवतमः अरतिः विभ्वा यः प्रत्नेभिः रुशद्भिः रेभद्भि· विभाति ॥

२ यह काली रात्रिको, बड़े (सूर्यरूपी) पितासे उत्पन्न हुई (उषारूपी) स्त्रीको प्रकट करके, अपनी शरीरकान्तिसे पराभूत करता है । यह प्रगतिशील देव, द्युलोकमें बसनेहारे सूर्यके किरणोंको ऊपरही ऊपर थाम कर, स्वयं प्रकाशित होता है ॥

३ कल्याणकर्ता (अग्नि) कल्याण करनेवाली (उषा) के साथ प्रकट हुआ है । जार (सूर्य) अपनी बहिन (उषा) के पीछे पीछेसे जाता है । उत्तम तेजस्वी ज्वालाओंसे ठहरनेवाला अग्नि अपने तेजस्वी किरणोंसे प्रत्येक रमणीय वस्तुको प्रकट करता है ।

४ इस बड़े अग्निके प्रकाशकिरण वक्ता भक्तोंको पीडा नहीं देते । मित्र कल्याणकारी स्तुत्य बलिष्ठ श्रेष्ठ और दर्शनीय अग्निके तेजस्वी किरण चारों ओर व्यापते हुए दीखते हैं ।

५ देदीप्यमान श्रेष्ठ तेजस्वी इस अग्निकी ज्वालाएँ, वायुके समान शब्द करती हुई फैलती हैं । जो (अग्नि) श्रेष्ठ तेजस्वी उत्तम क्रीडनशील ऊपरकी ओर जानेवाले किरणोंसे आकाशको जाकर पहुंचता है ॥

६ जिसके रथके पहिये दिखाई देते हैं, जो हलचल करता है, उसके बलवान् किरण वायुके समान शब्द करते हैं । वह अतिश्रेष्ठ प्रगतिशील देव चारों ओर व्यापता हुआ पुरातन तेजस्वी किरणोंके साथ प्रकाशता है ॥

स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः ।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः ७

७ सः नः महि आ वक्षि । युवत्योः दिवस्पृथिव्योः अरतिः आ सत्सि । सुतुकः रभस्वान् अग्निः सुतुकेभिः रभस्वद्भिः अश्वैः इह आगम्याः ॥

७ वह तू हम सबको महत्त्वके स्थानमें पहुंचा दे । तू तरुण द्युलोक और भूलोकका प्रगतिकर्ता होकर यहां निवास कर। तू प्रगति करनेवाला गतिशील अग्नि वेगवान् हिनहिनानेवाले घोडोंके साथ यहां आ ॥

तरुण राजाके कर्तव्य

इस सूक्तमें सर्वसामान्यत. अग्निके वर्णनके मिषसे राजाके कर्तव्य कहे हैं । राजा अग्निके समान तेजस्वी, मार्गदर्शक, प्रगतिशील और जनताका प्रमुख नेता हो । राजगद्दीपर आये तरुण राजाके सामने अग्निका आदर्श रखा गया है। देखिये यह सूक्त राजाका वर्णन किस तरह कर रहा है—

मंत्र १—(राजन्, राजा) राजगद्दीपर आया तरुण राजा प्रजाका रञ्जन करनेवाला हो, तेजस्वी हो, **(इनः)** सब राज्यका शासन करनेवाला हो, समर्थ शक्तिशाली अधिपति हो, **(अरतिः)** गतिमान्, प्रगति करनेवाला, हलचल करनेवाला, शत्रुपर हमला करनेवाला, सहायता करनेवाला, प्रबंधकर्ता, बुद्धिमान् योजक हो, **(समिद्धः)** प्रदीप्त, तेजस्वी और प्रतापी हो, **(रौद्रः)** शत्रुको रुलानेवाला भयानक शूर वीर हो, जिसको देखकर शत्रु भयभीत होते हैं, ऐसा महावीर राजा हो, **(सुषुमान्)** उत्तम रसोंका निर्माता हो, राष्ट्रमें पौष्टिक अन्न-रसोंका निर्माण करनेवाला राजा हो, **(दक्षाय अदर्शि)** राष्ट्रमें बलसंवर्धन करनेके लिये वह चारों ओर निरीक्षण करे । सब राष्ट्रमें बल निर्माण करनेका प्रयत्न करे। **(चिकित् विभाति)** ज्ञानको बढाता हुआ विशेष प्रकाशित होता रहे। वह राष्ट्रमें ज्ञानको बढावे और तेजस्विताको भी बढावे। **(बृहता भासा यशतीं अपाजन्)** बडे तेजसे प्रजाको तेजस्विनी करके **(असिक्नीं एति)** अन्धकारमयी रात्रिके परे पहुंचता है, प्रजाको ज्ञानयुक्त बनाकर उनके अज्ञानको दूर कर देता है। ज्ञानके तेजसे प्रजाको तेजस्वी बनाता है ।

मं. २— (कृष्णां वर्पसा अभि भूत्) अज्ञानरूपी काले अन्धकारको अपनी आयोजनासे परास्त करता है, अज्ञानको दूर करता है। (**वर्पस्**= शरीर, योजना, आयोजना, युक्ति)। **(पितुः योषां जनयन्)** अपने पितासे प्रजारूप स्त्रीको पुनः नवीन बनाकर प्रकट करता है, विद्यासे प्रजामें नवजीवन निर्माण करता है, विद्यादानकी आयोजनाओंसे प्रजाको नवीन उत्साहमय जीवन देता है। (**अरतिः**) वह प्रगति करनेवाला राजा (**विभाति**) चमकता है, जैसा (**सूर्यस्य भानुं ऊर्ध्वं स्तभायन्**) सूर्यके किरण आकाशमें फैलकर सूर्यका तेज बढाते हैं, उस प्रकार प्रजाकी उन्नति करनेवाला राजा सब प्रकार राष्ट्रभरमें प्रकाशित होता है ।

मं ३— (भद्रः भद्रया सचमानः आगात्) सबका कल्याण करनेवाला (राजा) कल्याण करनेके कार्यमें मग्न रहनेवाली प्रजाके साथ मिलकर आगे बढता है, प्रगति तथा उन्नतिका साधन करता है । **(जारः स्वसारं अभ्येति)** प्रियकर या वृद्ध मनुष्य जिस तरह बहन स्त्रीके पीछे जाता है, सूर्य जैसा उषाके साथ जाता है, वैसाही राजा प्रजाके पीछे उसका अनुसरण करता हुआ जाता है, प्रजाका अनुसरण करके उसकी सुरक्षा करता है । **(जारः —** प्रियकर, वृद्ध मनुष्य, जिसकी आयु बहुत बढी हुई है) वृद्ध पुरुष जैसा बहनके पीछे पीछे चलता है, वह बहिनकी सुरक्षा करता है, उसका हित चाहता है । **(सुप्रकेतैः वर्णैः रामं अभि अस्थात्)** तेजस्वी वर्णोंके द्वारा सब प्रजाका आराम सुस्थिर करता है । **(वर्णः-** रंग, किरण, ब्राह्मण-क्षत्रियादि वर्ण) राजा ब्राह्मणादि वर्णोंकी उत्तम सुरक्षा करके, उनको तेजस्वी बनाता है, प्रजाका आराम सब प्रकारसे सुरक्षित रखता है ।

मं. ४-- (अस्य बृहतः यामासः वग्नूः न) इस बडे राजाके प्रगतिकी योजनाके मार्ग वक्ताओंको भी कष्ट नहीं देते, बाधक नहीं होते। **(यामः--** संयम, संरक्षणका नियत समय, तीन घण्टोंका समय प्रगति करना, शत्रुपर आक्रमण, मार्ग, प्रगति, रथ) **(वग्नुः** बोलनेवाला, स्तोता, वक्ता, उपदेश करनेवाला) **(शिवस्य ईड्यस्य वृष्णः बृहतः सख्युः)** इस शुभ प्रशं-

सनाथ बलिष्ठ बडे मित्र राजाके (**स्वासः अरुचः भामासः यामन् चिकित्रे**) उत्तम मुखवाले अन्धकार दूर करनेवाले तेजस्वी मार्ग (प्रजाका दुःख) दूर करते हैं । (भामः- तेज, प्रकाश, सूर्य, क्रोध) राजा और सब राजपुरुष शुभ कार्य करनेवाले, प्रशंसायोग्य, बलवान्, बडे विचारवाले, और प्रजाके मित्र हों, उनके मुख आनन्द प्रसन्न रहें, वे अज्ञान दीनता दारिद्र्यको प्रजासे दूर करें और ऐसे कार्य करें कि जिससे प्रजाका सुख बढता जाय ।

मं. ५- (**रोचमानस्य बृहतः अस्य**) तेजस्वी इस बडे राजाके (**भामासः स्वनाः न पवन्ते**) प्रकाश शब्दोंके समानही पवित्र करते हुए चले जाते हैं। अर्थात् इस राजाके प्रगतिके मार्ग और ज्ञानके उपदेश सबको शुद्ध और पवित्र करते हुए उन्नत करते हैं । राजा ऐसी कार्यकी आयोजनाएँ करे कि सब लोग उन्नतिपथपरही बढते रहें । (**ज्येष्ठेभिः तेजष्ठैः क्रीळुमद्भिः वर्षिष्ठेभिः भानुभिः द्यां नक्षति**) श्रेष्ठ तेजस्वी क्रीडाकुशल वरिष्ठ तेजोंके साथ वह स्वर्गको पहुंचता है । इस तरहके साथियोंसे वह भूमिपर स्वर्गधाम लाता है।

मं. ६— जिसके रथके पहिये सदा चलते रहते हैं, ऐसे इस राजाके (**शुष्मासः**) बल-संवर्धनके प्रयत्न (**नियुद्भिः स्वनयन्**) वायुवेगसे चलते हैं । ऐसा यह (**देवतमः अरतिः विभ्वा**) देवोंमें भी श्रेष्ठ प्रगतिशील प्रभावी राजा (**प्रत्नेभिः रुशद्भिः रेभद्भिः विभाति**) पुरातन पर नये जैसे तेजस्वी किरणोंसे प्रकाशता है। उसके मार्ग प्राचीन परंपराको सुरक्षित रखते हैं और नया तेज उनमें भर देते हैं, इसलिये वह सबकी उन्नति कर सकता है ।

मं. ७-- (**सः नः महि आ वक्षि**) वह राजा हमें महत्त्वके स्थानको पहुंचा देवे, हमारी सब प्रकार उन्नति करे । (**अरतिः आ ससिः**) सबकी प्रगति करनेके लिये तत्पर होकर बैठे । कभी आलस्य न करे । (**सुतुकः रभस्वान्**) उत्तम प्रगति करनेवाला गतिशील वीर राजा (**सुतुकेभिः रभस्वद्भिः इह आगम्याः**) प्रगतिशील वेगवान् वीरोंके साथ यहां आवे और हमारा सहायक हो । अर्थात् स्वयं पुरुषार्थी बनकर अपने जैसे पुरुषार्थी साथियोंके साथ राष्ट्रकी प्रगतिके कार्यमें लगे ।

इस तरह यह सूक्त युवा राजाके कर्तव्य बता रहा है । वास्तवमें यह अग्निकाही वर्णन कर रहा है, पर पहिलेही मंत्रमें अग्निको 'राजा' कहकर सब सूक्तका सूक्त राजापरक देखनेकी सूचना मिली है । प्रत्येक पदके अर्थ अग्निपरक और राजापरक लगाकर जो विचार करेंगे, वे इस सूक्तके मर्मको अच्छी प्रकार जान सकते हैं ।

(ऋ. १०।४) त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्र ते यक्षि प्र त इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु ।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् ॥ १ ॥
यं त्वा जनासो अभि संचरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महाँश्चरसि रोचनेन ॥ २ ॥

अन्वयः— १ ते प्र यक्षि। मन्म ते प्र इयर्मि । नः हवेषु यथा वन्द्यः भुवः । हे प्रत्न राजन् अग्ने ! त्वं इयक्षवे पूरवे, धन्वन् इव प्रपा, असि ॥

२ हे यविष्ठ ! यं त्वा जनासः अभि संचरन्ति । गावः उष्णं इव व्रजं । देवानां मर्त्यानां दूतः असि । अन्तः महान् रोचनेन चरसि ॥

अर्थ— १ तेरे लिये मैं यजन करता हूँ । तेरे लिये मननीय स्तोत्र करता हूँ । हमारे यज्ञोंमें तू वंदनीय होकर रह । हे प्राचीन राजन् अग्ने ! तू याजक मानवके लिये, निर्जल प्रदेशमें पियाऊके समान, हो ॥

२ हे तरुण ! तेरी सब लोग सेवा करते हैं । जैसी (शीतसे पीडित) गौवें उष्ण गोशालामें जाती हैं । तू देवों और मानवोंका दूत है । इस विश्वके अन्दर बडा होकर अपने तेजसे तू संचार करता है ॥

शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना ।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ्जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः ॥ ३ ॥
मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से ।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयादन् रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन् ॥ ४ ॥
कूचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः ।
अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः ॥ ५ ॥
तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम् ।
इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः ॥ ६ ॥
ब्रह्म च ते जातवेदो नमश्चेयं च गीः सदमिद्वर्धनी भूत् ।
रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन् ॥ ७ ॥

---

३ जेन्यं त्वा, शिशुं न वर्धयन्ती माता सचनस्यमाना बिभर्ति । हर्यन् धनोः अधि प्रवता यासि । अवसृष्टः पशुः इव जिगीषसे ॥

३ तुझ विजयी वीरका, पुत्रका संवर्धन करनेवाली माताके समान (पृथ्वीमाता) धारण पोषण करती है। तू कामना करता हुआ अन्तरिक्षमें उच्च मार्गसे जाता है । जैसा बन्धनमुक्त पशु (अपने स्थानके पास जाता है वैसा तू अपने दिव्य भवनमें) जाता है ।

४ हे अमूर चिकित्वः ! मूराः वयं न (जानीमः) । हे अग्ने ! अङ्ग ! त्वं महित्वं वित्से । वव्रिः शये । जिह्वया अदन् चरति । विश्पतिः सन् युवतिं रेरिह्यते ॥

४ हे अमूढ ज्ञानवान् ! हम मूढोंको (आपके महत्त्वका ज्ञान) नहीं है । हे अग्ने ! हे प्रिय ! तूही अपने महात्म्यको जानता है । जो वृद्ध होता है वह सोता रहता है । (परंतु उत्साही तरुण) जिह्वासे (अन्न) भक्षण करता हुआ (कर्तव्य करनेके लिये) विचरता है । यह प्रजापालक बनकर स्वकीय तरुण स्त्रीका (आहुतिका) चुंबन (आस्वाद) लेता है ॥

५ नव्यः कूचित् सनयासु जायते । पलितः धूमकेतुः वने तस्थौ । अस्नाता आपः प्र वेति, वृषभः न । यं मर्ताः सचेतसः प्रणयन्तः ॥

५ नवीन (अग्नि) कचित् पुरानी लकडियोंमें उत्पन्न होता है । श्वेत धूमवाला (अग्नि) वनमें भी होता है । स्नान न करनेवाला (अर्थात् स्वयं पवित्र अग्नि) जलमें भी रहता है। जैसा बैल (पानीके पास जाता है)। इसी अग्निको ज्ञानी मानव प्रसन्न करते हैं ॥

६ वनर्गू तनूत्यजा इव तस्करा दशभिः रशनाभिः अभि अधीताम् । हे अग्ने ! ते नव्यसी इयं मनीषा । शुचयद्भिः अंगैः रथं न युक्ष्व ॥

६ वनमें जानेवाले, शरीरका त्याग करनेवाले, चोरोंसे जिस तरह दसों रस्सियोंसे बांध देते हैं (उस तरह दसों अंगुलियोंसे अरणिको बांध देते हैं और अग्नि उत्पन्न होता है) । हे अग्ने ! तेरे लिये यह नवीन स्तोत्र है । अपने शुद्ध अंगोंसे, रथको जोडनेके समान (तू इसके साथ संगत हो) ॥

७ हे जातवेदः ! ते ब्रह्म वर्धनी भूत् । नमः च, इयं गीः सदं इत् वर्धनी भूत् । हे अग्ने ! नः तनयानि तोका रक्ष । उत अप्रयुच्छन् नः तन्वः रक्ष ॥

७ हे वेद प्रकट करनेवाले ! यह स्तोत्र तेरा यश बढानेवाला हो । यह नमस्कार (तुझे प्राप्त हो) । यह वाणी सदा ही तेरे यशको बढानेवाली बने । हे अग्ने ! हमारे बालबच्चोंका संरक्षण कर और न भूलते हुए हमारे शरीरोंका संरक्षण कर ॥

राजाके कर्तव्य

इस सूक्तमें भी अग्निके वर्णनके मिषसे राजाके कर्तव्य बताये हैं। इसके सूचक शब्द प्रथम मंत्रमें " **प्रत्न राजन् अग्ने** (मं. १), **विश्पतिः**"(मं. ४) ये हैं। अग्निका वर्णन तो स्पष्ट हैही, पर राजाके वर्णनके शब्द और वाक्य इस सूक्तमें इस तरह हैं-

मंत्र १— (हे प्रत्न राजन् !) हे पुराने राजन ! हे वंश-परंपरासे राज्य चलानेवाले प्राचीन कालसे चले आये राजन् ! **(इयक्षवे पूरवे, त्व, धन्वन् प्रपा इव, असि)** यज्ञ करनेवाले नागरिकके लिये, निर्जल रेतीले प्रदेशमें पियाऊके समान, तू बन। अर्थात् निर्जल देशमें जैसे पियाऊ जनताको शान्ति-सुख देती है, उसी तरह राजा सब जनताको शान्ति-सुख देवे, परंतु विशेष कर जो नागरिक अपना जीवन यज्ञमय, यज्ञरूप बना देते हैं, उनकी तो सुरक्षा राजप्रबंधद्वारा अवश्यही होनी चाहिये। राजा यह सुरक्षाका प्रबंध करे।

मं. २— (जनासः त्वा अभि संचरन्ति) सब लोग राजाके चारों ओर आश्रयार्थ आते हैं, राजाकी सहायता या सेवा करते हैं। राजाके अनुकूल सब मिलकर व्यवहार करते हैं। पर यह कब होता है जब राजाका प्रबंध ऐसा उत्तम हो कि जिससे सब लोग सुरक्षित रह सकें। इसलिये कहा है कि **(गावः उष्णं व्रजं इव)** जब शीतसे पीडित हुई गौवें गोशालाके अन्दर जाकर उष्णता प्राप्त करती हैं। शीतसे पीडित गौओंको निश्चयसे इसका ज्ञान रहता है कि यदि हम गोशालामें जायेंगे तो हमें शीतकी बाधा नहीं होगी, इसी तरह प्रजाको इसका निश्चय रहना चाहिये, कि यदि हम राजाका आश्रय करेंगे, तो हमारे सब प्रकारके कष्ट दूर होंगे। वैसे राजाके ही पास आश्रयार्थ सब प्रजाजन आते हैं। ऐसा सुयोग्य राजा अपने राज्यके अन्दर (अन्तः रोचनेन महान् चरसि) अपने तेजसे बडा होकर विचरता है। क्योंकि उसके पीछे सब प्रजाकी शक्ति अनुकूलतापूर्वक रहती है। वह राजा **(देवानां मर्त्यानां दूतः)** देवों और मानवोंका सहायक दूत जैसा होता है, अतः देवों और मानवोंकी अनुकूलता उसे प्राप्त होती है।

मं. ३-- जो राजा पूर्वोक्त प्रकार प्रजाका हितकर्ता होता है, उसको प्रजाकी अनुकूलता रहती है, अतः प्रजाकी सब शक्ति प्राप्त करके (जेन्यं) वह विजयी वीर होता है। जो कार्य वह हाथमें लेता है उसमें वह विजय प्राप्त करता है। ऐसे सुयोग्य विजयी राजाका संवर्धन उसकी प्रजा करती है जिस तरह माता **(माता शिशुं वर्धयन्ती न)** अपने पुत्रका पालनपोषण और संवर्धन करती है। अर्थात् प्रजा कभी ऐसे राजासे विद्रोह करके विरुद्ध नहीं होती। राजा और प्रजा जहां इस तरह सहायक होते हैं वहां वे परस्परके सहायक होकर परस्परका बल बढाते हैं। **(इर्यन् प्रवता यासि)** सदिच्छा करनेवाला वह राजा सदा उच्च श्रेष्ठ मार्गसे जाता है और सबकी प्रगति करता है। **(अवसृष्टः पशुः इव जिगीषसे)** बंधनसे मुक्त हुआ पशु जिस तरह अपने स्थानमें स्वेच्छासे जाता है, उस तरह यह राजा स्वेच्छासे अपने उत्तमतम स्थानमें जाकर विराजता है। और उसे सब प्रजाकी सहायता मिलती है। अतः राजा और प्रजाका एक विचार रहा, तोही उस राज्यकी स्थिति उच्च होती रहती है। नहीं तो इसके विपरीत राजा और प्रजामें नाना संघर्ष होते हैं और सबकोही अनेक प्रकारके कष्ट भोगने पडते हैं।

मं. ४— (अमूरः चिकित्वः विश्पतिः) अमूढ ज्ञानसंपन्न प्रजापालक हो। कदापि मूढ ज्ञानहीन और प्रजाभक्षक न हो। **(वयं मूढाः)** प्रजाजन प्रायः ज्ञानहीन होते हैं, उनको ज्ञानसंपन्न बनाना ज्ञानी प्रजापालकका मुख्य कर्तव्यही है। ज्ञानी प्रजापालक **(महित्वं वित्से)** जानता है कि महत्त्वकी प्राप्ति किस तरह होती है, वह महत्त्वका स्वरूप और उसकी प्राप्तिका मार्ग जानता है। वह यह भी जानता है कि **(वव्रिः शये)** जो वृद्ध और शक्तिहीन तथा उत्साहहीन होता है वही सोता रहता है, सो जाता है, उद्योगशील नहीं होता और सोनाही अवनत होना है। इसलिये ज्ञानी प्रजापालक राजा (चरति) चलनवलन करता है। प्रयत्न करता है, नाना प्रकारके उद्योग करता है और (जिह्वया अदन्) अन्नभक्षण करता है और जिह्वासे अन्नका रस भी लेता है। रस लेता हुआ अन्न भक्षण करनाही मुख्य काम है। जो उद्यमी और प्रयत्नशील रहता है, जो आलसी नहीं होता वही क्षुधा प्रदीप्त होनेके कारण अन्नका रस ले सकता है और अन्नका पाचन भी कर सकता है। और पश्चात् **(युवतिं रेरिह्यते)** अपनी तरुण स्त्रीके साथ संबंध भी करता है। विद्या, उद्योगमें धनप्राप्ति और स्त्रीकी प्राप्ति यह क्रम सुख देनेवाला है।

मं. ५— (**सनयासु नव्यः जायते**) सनातन या पुरातन प्रजाओंमें ही नवीन विचार उत्पन्न होता है और सुदृढ होता है जिस तरह सूखी लकडियोंमें अग्नि प्रदीप्त होता है। इसलिये सनातन विचारमाला सुदृढ रखनी चाहिये और उसमें नवीन सुयोग्य विचारोंके लिये स्थान भी होना चाहिये। इस तरह प्राचीन तथा नवीनका मेल हो जानेसे समाज तथा राष्ट्र उन्नत होता रहता है। (**वने धूमकेतुः पलितः तस्थौ**) वनमें-लकडियोंमें-अग्नि प्रज्वलित होकर रहता है। लकडियां न हुई तो अग्नि नहीं होगा। अग्नि ही उत्साही युवकोंका प्रतीक है। उसके लिये उत्साह-वृद्धि होनेयोग्य साधन चाहिये। (**अस्नाता आपः प्र वेति**) जिसने स्नान नहीं किया वही जलस्थानपर स्नान करनेके लिये जाता है। अर्थात् स्नान करनेकी आवश्यकता उसको स्नान करनेके स्थानके पास पहुंचाती है। इसी तरह अज्ञानी ज्ञानीके पास, निर्धन उद्योग धंधोंके स्थानमें, और इसी तरह अन्यान्य आवश्यकताओंवाले अपनी इच्छापूर्ति करनेके लिये योग्य स्थानपर जाते हैं। अज्ञानी ज्ञानीके पास जाकर ज्ञान कमाता है, निर्धन कारीगर धनिकोंके पास जाकर धन प्राप्त करता है, इसी तरह अपनी अपनी कामनापूर्ति लोग करते रहते हैं। राजाने अपने राज्यमें इस तरह सबको अपनी कामनापूर्ति सुयोग्य रीतिसे करानेकी सहूलियत सबके लिये खुली रखना चाहिये।

(**यं सचेतसः मर्ताः प्रणयन्तः**) जिसके पास उत्साही मानव जावें, उसे प्रसन्न करें और अपनी कामना सुयोग्य मार्गसे परिपूर्ण करें। यह मार्ग सब मानवोंकी उन्नतिके लिये योग्य है।

मं. ६— (**वनर्गू तनुत्यजाः**) वनोंमें जानेवाले और शरीरका त्याग करके भी अपना कर्तव्य करनेवाले रक्षक (**तस्कराः रशनाभिः अग्निं अधीतां**) चोर डाकू लुटेरोंको रस्सीयोंसे पकडते और बांध देते हैं। इसी तरह सब राष्ट्र-पुरुष अपना कर्तव्य-पालन करते जायँ। यही राजाकी (**नव्यसी मनीषा**) प्रकट इच्छा होनी चाहिये। नवीन इच्छा यही है, पुरानी जीर्ण अथवा क्षीण इच्छा नहीं। नयी, प्रबल सुदृढ इच्छा यही है कि सब गुण्डोंका दमन हो और सज्जनोंका पालन हो। यह कार्य करनेके (**शुचयद्भिः अंगैः रथं युक्ष्व**) पवित्र अंगोंसे युक्त रथको जोतकर तैयार हो जा। रथके सब अङ्ग पवित्र अर्थात् निर्दोष हों, किसीमें किसी तरहका दोष न हो। ऐसेही सब राजपुरुष अपना कर्तव्य-पालन करनेके लिये तैयार रहें।

मं. ७— (**जात-वेदाः**) ज्ञान और धन बढानेवाला इनकी वृद्धि करनेवाला राजा हो। (**ब्रह्म वर्धनी भूत्**) ज्ञान राष्ट्रके संवर्धन करनेवाला हो, सब प्रकारका ज्ञान वर्धनका कार्य करें। (**नमः च**) अन्न और शस्त्र राष्ट्रका अच्छी तरह संवर्धन करे। (**नमः**— अन्न, शस्त्र, नमन, स्तोत्र, ज्ञान)। (**इयं गीः सदं इत् वर्धनी भूत्**) यह वाणी, यह ग्रंथरचना सदा राष्ट्रका संवर्धन करनेवाली हो। राष्ट्रमें ऐसे ग्रंथ न बनें कि जिनकी विचारधारा राष्ट्रकी उन्नतिमें विघ्न करनेवाली हो। (**तनयानि तोक रक्ष**) बालबच्चोंकी सुरक्षा हो, क्योंकि राष्ट्रका भविष्यकाल इन्हींपर अवलंबित रहता है। बालबच्चे जैसे होंगे, वैसाही राष्ट्र होगा। (**अप्रयुच्छन् नः तन्वः रक्ष**) अशुद्धि अथवा प्रमाद न करते हुए हमारे शरीरोंकी सुरक्षा कर। यहां 'तन्वः' पद है। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर अर्थात् क्रमशः शरीर, मन और बुद्धिकी सुरक्षा हो ऐसा भाव यहां है। राष्ट्रके मानवोंके शरीर, इंद्रिया, मन और बुद्धिकी सुरक्षा हो, यह इसका आशय है।

अग्निके वर्णनके मिषसे जो राष्ट्रसंवर्धनका उपदेश और राजाके कर्तव्योंका उपदेश यहां किया है, उसका यह संक्षिप्त स्पष्टीकरण है।

(ऋ. १०।५) त्रित आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

एकः समुद्रो धरुणो रयीणामस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः ॥ १ ॥

अन्वयः- १ रयीणां धरुणः भूरिजन्मा एकः समुद्रः, अस्मद् हृदः वि चष्टे। निण्योः उपस्थे ऊधः सिषक्ति। उत्सस्य मध्ये वेः पदं निहितम् ॥

अर्थ— सब धनोंका आधार, अनंत वस्तुओंमें जन्म लेनेवाला ऐसा एक (आत्माका) समुद्र है, वह हमारे सब हृदयोंको देखता है। दोनों (जड चेतनों) के स्थानमें वह रहता है। उस स्थानके मध्यमें पक्षीका स्थान है ॥

समानं नीळं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि ॥ २

ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः ॥ ३

ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ॥ ४

सप्त स्वसॄररुषीर्वावशानो विद्वान्मध्व उज्जभारा दृशे कम् ।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन्वव्रिमविदत्पूषणस्य ॥ ५

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥ ६

२ समानं नीळं वसानाः महिषाः वृषणः अर्वतीभिः सं जग्मिरे। कवयः ऋतस्य पदं नि पान्ति। गुहा पराणि नामानि दधिरे ॥

३ ऋतायिनी मायिनी सं दधाते। मित्वा शिशुं वर्धयन्ती जज्ञतुः। विश्वस्य ध्रुवस्य चरतः नाभिं कवेः तन्तुं मनसा वियन्तः ॥

४ ऋतस्य वर्तनयः प्रदिवः सुजातं वाजाय इषः सचन्ते हि। वावसाने रोदसी अधीवासं मधूनां घृतैः अन्नैः वावृधाते ॥

५ वावशानः विद्वान् अरुषीः सप्त स्वसॄः मध्वः कं दृशे उज्जभार। पुराजाः अन्तरिक्षे अन्तः येमे। पूषणस्य वव्रिं इच्छन् अविदत् ॥

६ कवयः सप्त मर्यादाः ततक्षुः। तासां एकां इत् अभि अगात् अंहुरः (भवति)। आयोः स्कम्भः पथां विसर्गे उपमस्य नीळे धरुणेषु तस्थौ ॥

२ एक घरमें रहनेवाले भैंसेके समान बलवान् वीर घोडियोंके साथ इकट्ठे होते हैं। कवि सत्यके स्थानकी सुरक्षा करते हैं। (और अपने) हृदयमें श्रेष्ठ नामोंका धारण करते हैं ॥

३ सत्य-प्रवर्तिका और कुशलकारिणी (ये दो स्त्रियाँ, अरणियाँ अग्निके पुत्रको) मिलकर धारण करती हैं। समयपर पुत्रको (अग्निको) निर्माण करती हैं और बढाती हैं। सब स्थावरजंगमका मध्य और कविके (काव्यका जो अग्नि) धागा है, वह वे मनसे निश्चित करते हैं। (अर्थात् इसको उपास्य मानते हैं) ॥

४ सत्यके प्रवर्तक, इष्ट वस्तु प्राप्त करनेवाले दिव्य विबुध उत्तम जन्मे हुए (इस अग्नि) की बल प्राप्त करनेके लिये उपासना करते हैं। सबको बसानेवाले द्यावापृथिवी ये दोनों (लोक अपने अन्दर रहनेवाले अग्निको) मधुर घृत अन्नोंसे बढाते हैं ॥

५ सबको वशमें रखनेवाले ज्ञानी (अग्नि) ने लाल रंगकी (ज्वालारूपी) सात मीठी बहिनोंको अपने सुंदर स्वरूपको दिखानेके लिये ऊपर उठाया। पहिले भी ऐसाही उत्पन्न होनेवाला (यह अग्नि) अन्तरिक्षके अन्दर (सबका) नियमन करता है। पूषाका स्वरूप प्राप्त करनेकी इच्छासे (विशाल रूप उसने) प्राप्त किया ॥

६ कवियोंने सात मर्यादाएँ बनायीं हैं। उनमेंसे एकका जो उल्लंघन करता है वह पापी (बनता है)। जो *मानवताका* आधारस्तंभ है, जहांसे नाना मार्ग चलते हैं उस उच्च स्थानमें, उन धैर्यमय सर्वाधारके स्थानोंमें (पवित्रात्मा) रहता है ॥

असच्च सच्च परमे व्योमन्दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ७

७ असत् च सत् च परमे व्योमन्। पूर्वे आयुनि अदितेः उपस्थे दक्षस्य जन्मन्। नः ऋतस्य प्रथमजाः अग्निः ह। वृषभः च धेनुः ॥

७ असत् और सत् परम स्थानमें (इकट्ठे) रहते हैं। पहिले समयमें अखंडितके समीप बलका जन्म हुआ है। वहां हमारा यज्ञप्रवर्तक प्रथम उत्पन्न हुआ अग्नि है। वहीं वृषभ और धेनु (पुरुष और स्त्री शक्तियाँ) रहती हैं ॥

सत्य तत्त्वका ज्ञान

इस सूक्तमें सत्य तत्त्वका ज्ञान प्रकट हुआ है। अतः इसका मनन विशेष रीतिसे करना चाहिये। (**रयीणां धरुणः**) एक आत्मा) है जो सब प्रकारकी शोभाओं, धनों और जीवनोंका धारक अथवा आधार है। इसीके कारण संपूर्ण विश्वमें सब प्रकारकी शोभा, रमणीयता, मनोहारिता तथा आनन्दमयता प्रतीत हो रही है, इसका आधार न होनेसे यह सब शोभा दूर होगी, ऐसा एक आत्मा है अथवा एक तत्त्वकी सत्ता है। यह (**एकः समुद्रः**) एकही एक अखण्ड अविभक्त समुद्र जैसा सर्वत्र एकरस भरा हुआ है, सर्वत्र समत्वभावसे व्यापता है, चारों ओर एक जैसा फैला है, कोई जगह इन्होंने अव्याप्त ऐसी छोडी नहीं है। इस तरह यह सर्वव्यापक होनेके कारणही (भूरि-जन्मा) अनन्त पदार्थोंमें, उन उन पदार्थोंके रूपोंमें जन्मता है, इसी कारण इसको 'विश्वरूप, सर्वरूप, अनन्तरूप' कहते हैं, क्योंकि जो भी रूप इस विश्वमें हैं वे सबके सब रूप इतनाही नहीं, प्रत्युत जो अरूप वस्तुएँ हैं वे भी इसीके रूप या इसीके भाव हैं। यह सर्वरूप धारण करनेवाला आत्मा (**असत् हृदः वि चष्टे**) हमारे सबके अन्तःकरणोंमें रहता है और सब देख रहा है। परमात्मा सबके अन्तःकरणोंमें है, सब वस्तुओंमें सब वस्तुओंका रूप धारण करके रहा है और सब विश्वका व्यवहार देख रहा है।

(**निण्योः उपस्थे ऊधः सिषक्ति**) 'निण्य' का अर्थ है 'गुप्त, गूढ, ढका, आच्छादित' और 'ऊध' का अर्थ है 'दूधका स्थान, जहाँ माताके पेटमें दूध रहता है, रसका आशय'। इसका शब्दार्थ यह है कि-'दो गुप्त वस्तुओंके निकटके रसाशयके पास वह रहता है।' इसका विचार ऐसा करना चाहिये। लकडियोंके घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होती है, उत्पत्तिके पूर्व वह उन लकडियोंमें गुप्त रहती है। ये लकडियां दो रहती है, एक अधर-अरणी और दूसरी उत्तर-अरणी। अग्निको अपने अन्दर आच्छादित रखनेवाली इन दो अरणियोंमें यह अग्नि रहती है। इनके पास सोमरसका स्थान होता है, उसके समीपवर्ती स्थानमें इन दो लकडियोंमें गुप्त रूपसे यह अग्नि रहती है। दो वस्तुओंमें गुप्त रूपसे रहनेवाली यह अग्नि है यह मुख्य आशय यहां है।

स्त्री पुरुष ये दो वस्तुएं गृहमें रहतीं है, उनमें गुप्त रूपसे पुत्ररूप अग्नि है। पूर्वोक्त मंत्रका यह भी एक आशय है। इसी तरह जड और चेतन ये दो वस्तुएं है, इनमें गुप्त रूपसे व्यापनेवाली आत्मा है, यह मुख्य आशय यहां है। प्रत्येक स्थानमें (ऊधः- रसका स्थान) विभिन्न होगा इसमें संदेह नहीं है। यज्ञाग्निके समीप सोमरसका पात्र, गृहस्थाश्रमी स्त्रीपुरुषोंके समीप पुष्टिकारक अन्नस्थान और जडचेतनमें हृदय अथवा जीवनस्थानही यह स्थान होगा। जडचेतनमें जीवन (अद्वय। प्रकृति रूप जड+जीवभावरूप चेतनमें= व्यापक आत्मतत्त्व) किस तरह रहता है यह तत्त्व यहां बताया है। इसी विषयमें और अधिक स्पष्टीकरण आगे करते हैं—

मंत्र १- (**उत्सस्य मध्ये वेः पदं निहितं**) जलाशयके मध्यमें पक्षीका स्थान नियत हुआ है। पक्षी जीव है, उसका स्थान जलाशयके मध्यमें है। यह जलाशय हृदय है, इसीको 'मानस' अथवा 'मानस सरोवर' कहते हैं। इस तरह मंत्रका आशय यह हुआ, जीवका स्थान हृदयमें है, यही जीव भाव है। जड और जीव इन दो भावोंमें व्यापक एक आत्मा रहता है, जो नरसा इसीके साथ संबंधित रहता है। यह सबके हृदयोंके अंतर्बाह्य स्थितिका निरीक्षण करता है। वस्तुतः यह एक समुद्र जैसा व्यापक आत्मा है, जो अनेक वस्तुओंको धारण करता है, एक होता हुआ

अनेक रूप धारण करता है और इसीके आधारसे सब विश्वकी शोभा और रमणीयता रहती है। इसके कारणही यह विश्व सुंदर और रमणीय दिखाई देता है।

मंत्र २— (**समानं नीळं वसानाः महिषाः वृषणः अर्वतीभिः सं जग्मिरे**) एक घरमें रहनेवाले भैंसे और बैल घोडियोंके साथ संमिलित हुए। एक शरीरमें रहनेवाले प्रबल इंद्रिय वेगवाली शक्तियोंसे संयुक्त हुए हैं। शरीर यह एक घर, घोंसला अथवा स्थान है, जहां इंद्रियाँरूप भैंसे और मनरूप बैल रहते हैं। इनका मेल प्रबल शक्तियोंके साथ यहीं होता है। प्रतिशरीरमें यह चमत्कार दिखाई देता है।

(**कवयः ऋतस्य पद नि पान्ति**) कवि ज्ञानी जन सत्यके, आत्माके, स्थानकी सुरक्षा करते हैं। ज्ञानीही इस आत्माके स्थानको जानते, समझते और उपदेश करते हैं, अर्थात् इस आत्मज्ञानको सुरक्षित रखते हैं। ज्ञानियोंमेंही यह आत्मज्ञान सुरक्षित रहता है। और ये ज्ञानीही इस आत्माके वर्णन करनेवाले (**पराणि नामानि**) श्रेष्ठ नामोंको (**गुहा दधिरे**) अपने अन्तःकरणमें धारण करते हैं। एक एक नाम आत्माके एक या अधिक गुणोंका बोध करता है और इन नामोंसे आत्माके स्वरूपका बोध होता है। इन नामोंके मननसे आत्माका स्वरूप विदित हो जाता है, यह नामोंका महत्त्व है।

मंत्र ३— (**ऋतायिनी मायिनी सं दधाते**) एक सत्य माननेवाली और दूसरी कुशल कर्म करनेवाली ऐसी दो स्त्रियां हैं, ये दोनों साथ साथ रहकर (गर्भको) धारण करती हैं। वेदमें अन्यत्र दिनकी प्रभा और रात्रीकी निशा ये दो स्त्रियां पुत्रकी पालना करती हैं ऐसे वर्णन अनेक स्थानोंपर हैं। यहां भी वही भाव देखा जा सकता है। 'मायिनी' शब्द कपट माया अन्धेरा अर्थ बतानेके कारण रात्रीका वाचक है और 'ऋत-आयनी' पद दिनका वाचक है, क्योंकि ऋतका अर्थ यज्ञ, सूर्य, प्रकाश आदि है जो दिनका सूचक है। दिन प्रभा और रात्री यह दो स्त्रियाँ सूर्य और चन्द्रका लालन-पालन करती हैं यह एक अर्थ यहां है। दूसरा अर्थ दोनों अरणियोंसे अग्नि उत्पन्न होता है, जो यज्ञवेदीपर पाला और पोसा जाता है यह है। तीसरा भाव (ऋत-आयनी) सरलताकी धर्मभावना अथवा विद्या और (मायिनी) कुशलता, कपटपटु राजनीति आदिकी वृत्ति ये दोनों वर्तनप्रणालियाँ मानवोंमें होती हैं जो एक स्थानपर रहती हैं और समाज या राष्ट्रकी धारणा करती हैं। ज्ञान और कौशल्यही राष्ट्रका संरक्षण करती हैं।

(**मित्वा शिशुं जज्ञतुः वर्धयन्ती**) कालके प्रमाणके अनुसार बालकको जन्म देती हैं और उसका संवर्धन करती हैं। प्रथम गर्भधारण होता है, प्रसव उसके पश्चात् होता है, तदनंतर बाल, तरुण आदि कालके प्रमाणसे उसका संवर्धन होता है। दो अरणियोंसे उत्पन्न हुआ बाल 'अग्नि' है, जो विविध यज्ञोंमें नाना कर्म करता है। विद्या और कुशलतासे राष्ट्रका अग्रणी तथा अनुयायी ये भी राष्ट्रभूमिपर उत्पन्न होते और अनेक कार्य करते हैं। माता-पितासे उत्पन्न बाल इसी तरह बढता है। ऐसे विविध क्षेत्रोंमें जो विविध बालक होते हैं उनका विचार इस तरह करना चाहिये और बोध प्राप्त करना चाहिये।

(**ध्रुवस्य चरस्य विश्वस्य नाभिं**) स्थावर जंगम विश्वके केन्द्रको (**कवेः तन्तुं**) ज्ञानियोंने जो सूत्र-आत्मा जाना है उसको (**मनसा वियन्तः**) मनसे वस्त्ररूपमें बुना देखते हैं। अर्थात् ज्ञानी अपने मनके मनन करनेसे जानते हैं, कि एकही यह सूत्रात्मा है जो इस स्थावरजंगम विश्वके केन्द्रमें है और उसीसे यह सब विश्व निर्माण हुआ है। अर्थात् इस विश्वरूपी वस्त्रके ताने और बानेके तन्तु एकही सूत्रात्माके हैं, एकही सूत्रात्मा विश्वरूप बना है। प्रथम मंत्रमें 'भूरि-जन्मा' पद है। अनेक वस्तुओंके रूपमें जन्म लेनेवाला, एक होकर अनन्त-रूप बननेवाला ऐसा उसका अर्थ है। वही भाव यहां है, एकही आत्माके सूत्रसे विश्वरूप वस्त्र बना है। (**विश्वस्य नाभिं तन्तुं वियन्तः**) विश्वरूपी वस्त्रके बीचके धागेको बनते हैं।

मंत्र ४— (**ऋतस्य वर्तनयः**) सत्कर्मके प्रवर्तक लोग (**प्रदिवः सुजातं**) दिव्य स्थानसे उत्पन्न हुए (**वाजाय इषः सचन्ते**) अपने बलको बढानेके लिये योग्य अन्नका सेवन करते हैं। यज्ञरूपी सत्कर्म करनेवाले उत्तम प्रदीप्त अग्निकी हवनसे सेवा करनेके लिये और अपना बल बढानेके लिये अन्नका हवन और सेवन करते है। यज्ञसे समाज और राष्ट्रका बल बढता और योग्य अन्नके सेवनसे शारीरिक बल बढता है। वैयक्तिक और सामूहिक बल बढानेका यह उपाय है।

(**रोदसी वावसाने**) ये भूलोक और द्युलोक ये दोनों सबको बसाते हैं। बसनेके लिये पर्याप्त स्थान देते हैं। इनमेंही सब बसते हैं।

(अधीवासं मधूनां घृतैः अन्नैः वावृधाते) यहां रहनेवालेको मधुर घृतामिश्रित अन्नोंसे बढाते, पुष्ट करते हैं। द्यु और भूमि यहां रहनेवालोंको अन्नादि द्वारा पुष्ट करते हैं। अग्निको घी और मिष्ट अन्नकी आहुतियां देकर प्रदीप्त करते हैं। बालकको स्निग्ध और मिष्ट अन्नोंसे पुष्ट करते हैं।

मंत्र ५—**(वावशानः विद्वान्)** बडा वक्ता ज्ञानी अग्नि **(अरुषीः सप्त स्वसॄः)** लाल रंगकी सात ज्वालारूपी बहिनोंको **(मध्वः कं दृशे उज्जभार)** मधुरिमासे सुंदर दृश्यका दर्शन होनेके लिये ऊपर उठाता है। अग्नि प्रदीप्त होकर उसकी ज्वालाएँ ऊपर उठती हैं, जब मधुर घीकी आहुतियाँ उसमें डाली जाती हैं। इसी तरह इंद्रियां आत्माकी ज्वालाएँ हैं जो आत्माकी प्रभासे प्रकाशती हैं।

(पुराजाः अन्तरिक्षे येमे) सबसे प्रथम जन्मा यह *आत्मा या अग्नि अन्तरिक्षमें प्रज्वलित होता है, रहता है,* वहांका नियमन करता है। ' पुरा+जाः ' सबसे प्रथम जो था, सबसे पूर्व जो उत्पन्न हुआ, वह आत्मा है, इस विषयमें किसीको कोई संदेह नहीं हो सकता। यह आत्मा इस आकाशभरमें व्यापक है। और सब स्थावर जंगमका नियमन करता है। विश्वकी प्रतिष्ठा इसी कारण होती है। यज्ञमें अग्नि भी प्रथम उत्पन्न होता है, तत्पश्चात् उसमें तथा उससे सब यज्ञक्रियाएं होती हैं। इसलिये अग्निको 'पुरा-जाः' कहते हैं।

(पूषणस्य वव्रिं इच्छन् अविदत्) पूषाके रूपको प्राप्त करनेकी इच्छा करता हुआ वह उस स्वरूपको प्राप्त हुआ। 'पूषा' नाम सूर्यका है। सूर्य जैसा तेजस्वी बननेकी इच्छा अग्निने की, और पश्चात् वैसा बना। जीवने भी नारायण बननेकी इच्छा की और नरसे नारायण बना। यही अन्तिम उन्नति है। जीवकी अन्तिम उन्नति-मुक्ति-शिव बन जाना है। वह जीव पूषाका चोगा पहनता है, पूषाही बनता है।

मंत्र ६— अब आचार-धर्म कहते हैं। **(कवयः सप्त मर्यादाः ततक्षुः)** ज्ञानियोंने सात मर्यादाएं मानवके लिये निर्माण की हैं। १ चोरी, २ गुरुकी भार्याके साथ असद्व्यवहार, ३ ब्रह्महत्या, ४ मद्यपान, ५ पुनः पुनः दुष्कर्म करना, ६ पातक करना और ७ उसे छिपानेके लिये असत्य भाषण करना ये सात आचारकी मर्यादाएँ सायणने कही हैं। सायनभाष्यमें इसी स्थानपर ये मर्यादाएँ कही हैं— १ मद्यपान, २ जूआ, ३ स्त्रीसे असद्व्यवहार, ४ मृगया, ५ दण्ड (राजाको छोडकर अन्योंने अपने हाथमें लेना), ६ कठोर व्यवहार करना, ७ दूसरोंको दूषण देते रहना। इस तरह ७ मर्यादाएँ मानवी आचारके लिये ज्ञानी पुरुषोंने कही हैं। **(तासां एकां इत् अभि अगात्, अंहुरः)** इनमेंसे एक मर्यादाका भी जो उल्लंघन करता है वह पापी होता है। यह बात सबसे ध्यानमें आ सकनेवाली है। जो इन सातों मर्यादाओंका उल्लंघन नहीं करता वह पुण्यात्मा होकर उच्चतम अवस्थामें विराजता है। पापीकी अधोगति होती है।

(आयोः स्कम्भः) यह पुण्यात्मा मनुष्यत्वका आधारस्तंभ है। संपूर्ण मानवता इसपर रहती है। जहांसे **(पथां विसर्गे)** अनेक मार्ग विभिन्न दिशाओंमें जाते हैं वह केन्द्र यही पुण्यात्मा है। इसका एकही धर्मपद है, इससे भिन्न भिन्न दिशाओंमें जानाही अधर्मके विभिन्न पथ हैं जो मनुष्यको गिराते हैं। मध्य केन्द्रमें कोई मार्ग नहीं होता, मार्ग तो वहांसे विरुद्ध दिशाओंमें मानवको ले जाते हैं। मध्य केन्द्रमें कोई मार्ग नहीं है, वहां मार्गका होना भी संभव नहीं। वह स्थिर पद है जो केवल धर्मरूपही है। धर्मस्तम्भ और उससे चलनेवाले विभिन्न मतवाले मार्गोंका चित्र
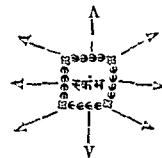
यहां दिया है। इससे पता लगेगा कि धर्मस्तम्भ और विभिन्न मार्गोंका स्वरूप कैसा परस्पर विरुद्ध है। इन मार्गोंसे जो मध्यबिन्दुकी ओर वापस आयेगा वह अवश्यही धर्मस्तम्भमें लीन होगा। इसीलिये कहते हैं कि सभी मार्ग ईश्वरतकही पहुंचते हैं। वापस केन्द्रकी ओर आनेसे धर्मपदकी प्राप्ति होगी, परन्तु इन्हीं मार्गोंसे ईश्वरसे दूर और दूरतर भी जाना संभव है। अर्थात् सब मार्ग केन्द्रमें पहुंचा देते हैं और केन्द्रसे दूर भी ले जाते हैं, किस ओर मुख करके मनुष्य चलता है उसपर वह अवलंबित है।

जो (उप-मस्य नीडे) श्रेष्ठके घरमें, समीपके घरमें पहुंचना है। 'उपम' का अर्थ है श्रेष्ठ, समीप, पास रहनेवाला। यही ईश्वर, परमात्मा, आत्मा, ब्रह्म, सत्, आदि नामोंसे जो जाना जाता है वह है। इसके घोंसलेमें, घरमें स्थानमें पहुंचना मनुष्यका आवश्यक है। यह अति समीप है, अति निकटवर्ती है। इससे और निकट कोई नहीं है। जीवनका आधारस्तम्भ, धर्मका स्थान यही है, इससे दूर जाना वहींको बुलाना है, इसमें रहना आनन्द-स्वरूपमें रहना है। (धरुणेषु तस्थौ) सबके आधारके स्थानमें यह रहता है। जहासे सबको आधार मिलता है वहां यह मानवी जीवनका आधारस्तम्भ रहा है।

ज्ञानियोंने सात मर्यादाएं नियत की हैं। मनुष्य उनका उल्लंघन करेगा, तो पापी होगा, न उल्लंघन करेगा, तो पुण्यात्मा बना रहेगा। इस पुण्यात्माका आधार मानवताका आधारस्तम्भ वहां रहता है कि जहासे दूर जानेके नाना प्रकारके मार्ग चलते हैं, इससे दूर जानाही आधोगत होना है। दूर जाना अन्धेरेमें पहुंचना है। जो सबका आधारस्तम्भ है, वह श्रेष्ठतम, उच्चतम स्थानमें खडा है, उसीके पास सबको जाना योग्य है और उससे दूर किसीको जाना योग्य नहीं है।

मं. ७—(असत् च सत् च) असत् और सत्, प्रकृति और पुरुष, जड और चेतन ये (परमे व्योमन्) परम आकाशमें रहते हैं। सर्वत्र आकाशमें जड और चेतन भरे रहते हैं। (पूर्वे आयुनि) सबसे प्रारंभके युगमें (अदितेः उपस्थे) अ-दिति जो अखण्डिता प्रकृति है उसके पास, और (दक्षस्य जन्मन्) बलवान् आत्माके प्रकट होनेके स्थानमें अदितिके साथ जब बलवान् आत्मा संगत होता है, तब सब सृष्टीका प्रसव होता है। इसका अर्थ यह है— प्रारंभमें इस विस्तीर्ण आकाशमें प्रकृति और चेतन ये साथ साथ पडे रहते हैं। जिस समय इस सृष्टीका प्रारंभ होनेका अवसर आता है उस समय प्रकृतिके पास बलशाली चेतन आत्मा जाता है और उस संगमसे सृष्टीका निर्माण होता है।

(वृषभः च धेनुः) जिस तरह किसी स्थानपर बैल और गाय रहते हैं। जब गाय पुष्पवती होती है, तब सांड उसका संबंध करता है और बच्चा उत्पन्न होता है।

यह सृष्टीका उपक्रम है। इस सूक्तमें अनेक उत्तम उत्तम तत्वज्ञानके सूक्ष्म विचार दर्शाये हैं। मनुष्योंके आचारधर्मका निर्देश भी यहां है। अतः पाठक इसका विशेष मनन करें।

(ऋ. १०।६) त्रित आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

अयं स यस्य शर्मन्नवोभिरग्नेरेधते जरिताऽभिष्टौ।
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋषूणां पर्येति परिवीतो विभावा ॥ १ ॥

यो भानुभिर्विभावा विभात्यग्निर्देवेभिर्ऋतावाजस्रः।
आ यो विवाय सख्या सखिभ्योऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः ॥ २ ॥

अन्वयः— १ जरिता अभिष्टौ यस्य अग्नेः अवोभिः शर्मन् एधते। सः अयं विभावा यः ऋषूणां ज्येष्ठेभिः भानुभिः परिवीतः पर्येति ॥

२ यः ऋतवा अजस्रः विभावा अग्निः देवेभिः भानुभिः विभाति। यः सख्या सखिभ्यः, अपरिह्वृतः अत्यः सप्तिः न, आ विवाय ॥

अर्थ— १ उपासना करनेवाला इष्टि करनेपर, जिस अग्निके संरक्षणोंसे घरमेंही उन्नत होता है। वह यह तेजस्वी अग्नि सूर्यकिरणोंके अति तेजस्वी प्रभाओंसे घेरा जाकर सर्वत्र व्यापता है ॥

२ जो सत्यपालक, अविनाशी और तेजस्वी अग्नि देवोंकी प्रभाओंसे शोभता है। जो मित्रतासे मित्रोंके हितके लिये, न थकनेवाले दौड करनेवाले घोडेके समान, जाता है ॥

ईशे यो विश्वस्या देववीतेरीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ ।
आ यस्मिन्मना हवींष्यग्नावरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः ३
शूषेभिर्वृधो जुषाणो अर्कैर्देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति ।
मन्द्रो होता स जुह्वा३ यजिष्ठः संमिश्लो अग्निरा जिघर्ति देवान् ४
तमुस्रामिन्द्रं न रेजमानमग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम् ।
आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानाम् ५
सं यस्मिन्विश्वा वसूनि जग्मुर्वाजे नाश्वाः सप्तीवन्त एवैः ।
अस्मे ऊतीरिन्द्रवाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व ६
अधा ह्यग्ने मह्ना निषद्या सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूथ ।
तं ते देवासो अनु केतमायन्नधावर्धन्त प्रथमास ऊमाः ७

---

३ यः विश्वस्याः देवहूतेः ईशे । विश्वायुः उषसो व्युष्टौ ईशे । शूषैः अरिष्टरथः यस्मिन् अग्नौ मना हवींषि आ स्कभ्नाति ॥

३ जो सब देवयजनोंका अधिपति है । जो आयुभर उषःकालके हवनोंका स्वामी है । शत्रुसेनासे जिसका रथ टूटा नहीं (ऐसा विजयी वीर) जिस अग्निमें मनके अनुकूल हविष्य पदार्थ समर्पण करते हैं ॥

४ शूषेभिः वृधः, अर्कैः जुषाणः, देवान् अच्छ रघुपत्वा जिगाति । मन्द्रः होता जुह्वा यजिष्ठः संमिश्लः सः अग्निः देवान् आ जिघर्ति ॥

४ आहुतियोंसे संवर्धित, स्तोत्रोंसे प्रशंसित, अग्नि देवोंके पास पहुंचनेके लिये अतिशीघ्र जाता है । प्रशंसनीय, हवनकर्ता, देवोंको बुलानेवाला, यज्ञके योग्य, देवोंसे संयुक्त वह अग्निदेवोंके प्रति हविष्य पहुंचाता है ॥

५ उस्रां तं रेजमानं अग्निं, इन्द्रं न, गीर्भिः नमोभिः आ कृणुध्वम् । विप्रासः सहानां जुह्वं जातवेदसं यं आ मतिभिः गृणन्ति ॥

५ उपभोगके पदार्थ देनेवाले उस प्रदीप्त अग्निको इन्द्रके समान, स्तोत्रोंसे और हविष्यान्नोंसे हमारे सन्मुख रखिये । ज्ञानी लोग बलिष्ठ देवोंको बुलानेवाले ज्ञानयुक्त उस अग्निका मननीय स्तोत्रोंसे स्तवन करते हैं ॥

६ यस्मिन् विश्वा वसूनि सं जग्मुः, एवैः सप्तीवन्तः अश्वाः वाजे न । हे अग्ने ! इन्द्रवाततमाः ऊतीः अस्मे अर्वाचीनाः आ कृणुष्व ॥

६ जिसमें सब धन एकत्रित हुआ है, जैसे गतियोंसे युक्त घोडे युद्धस्थानमें इकट्ठे होते हैं । ऐसा तू, हे अग्ने ! इन्द्रसे प्राप्त होनेवाले उत्तम संरक्षण हमारे समीप कर दे ॥

७ अध हि अग्ने मह्ना जज्ञानः निषद्य सद्यः हव्यः बभूथ । देवासः ते तं केतं अनु आयन् । अध प्रथमासः ऊमाः अवर्धन्त ॥

७ अब हे अग्ने ! तू अपने महत्त्वसे प्रकट होकर, (वेदीमें) बैठकर तत्कालही हवन करनेयोग्य बनता है । सब देव तेरे पास पहुंचते हैं । और प्रथमसे सब प्रकारके संरक्षण प्राप्त करके बढते हैं ॥

अग्निका वर्णन

इस सूक्तमें प्रमुखतासे अग्निका वर्णन किया है ।

मंत्र १— यज्ञ करनेवाला अग्निसे प्राप्त संरक्षक शक्तियोंसे सुरक्षित होकर अपनेही घरमें बढता जाता है, प्रतिदिन उन्नत होता रहता है । यह अग्नि अधिक तेजस्वी होकर अनेक वेदियों पर जाता है और नाना यज्ञोंको करता है ।

जो (उप-मस्य नीडे) श्रेष्ठके घरमें, समीपके घरमें पहुंचना है। 'उपम' का अर्थ है श्रेष्ठ, समीप, पास रहनेवाला। यही ईश्वर, परमात्मा, आत्मा, ब्रह्म, सत्, आदि नामोंसे जो जाना जाता है वह है। इसके घोसलेमें, घरमें स्थानमें पहुंचना मनुष्यको आवश्यक है। यह अति समीप है, अति निकटवर्ती है। इससे और निकट कोई नहीं है। जीवनका आधारस्तम्भ, धर्मका स्थान यही है, इससे दूर जाना कष्टोंको बुलाना है, इसमें रहना आनन्द-स्वरूपमें रहना है। (धरुणेषु तस्थौ) सबके आधारके स्थानमें यह रहता है। जहांसे सबको आधार मिलता है वहां यह मानवी जीवनका आधारस्तम्भ रहा है।

ज्ञानियोंने सात मर्यादाएं नियत की हैं। मनुष्य उनका उल्लंघन करेगा, तो पापी होगा, न उल्लंघन करेगा, तो पुण्यात्मा बना रहेगा। इस पुण्यात्माका आधार मानवताका आधारस्तम्भ वहां रहता है कि जहांसे दूर जानेके नाना प्रकारके मार्ग चलते हैं, इससे दूर जानाही अधोगत होना है। दूर जाना अन्धेरेमें पहुंचना है। जो सबका आधारस्तम्भ है, वह श्रेष्ठतम, उच्चतम स्थानमें खडा है, उसीके पास सबको जाना योग्य है और उससे दूर किसीको जाना योग्य नहीं है।

मं. ७—(असत् च सत् च) असत् और सत्, प्र और पुरुष, जड और चेतन ये (परमे व्योमन्) परम आका में रहते हैं। सर्वत्र आकाशमें जड और चेतन भरे रहते (पूर्वे आयुनि) सबसे प्रारंभके युगमें (अदितेः उपस्थे) अ-दिति जो अखण्डिता प्रकृति है उसके पास, और (दक्षस्य जन्मन्) बलवान् आत्माके प्रकट होनेके स्थानमें अदिति साथ जब बलवान् आत्मा संगत होता है, तब सब सृष्टी प्रसव होता है। इसका अर्थ यह है— प्रारंभमें विस्तीर्ण आकाशमें प्रकृति और चेतन ये साथ साथ रहते हैं। जिस समय इस सृष्टीका प्रारंभ होनेका अवसर आ है उस समय प्रकृतिके पास बलशाली चेतन आत्मा जाता और उस संगमसे सृष्टीका निर्माण होता है।

(वृषभः च धेनुः) जिस तरह किसी स्थानपर बैल और गाय रहते हैं। जब गाय पुष्पवती होती है, तब साथ उसका संबंध करता है और बच्चा उत्पन्न होता है।

यह सृष्टीका उपक्रम है। इस सूक्तमें अनेक उत्तम उत्तम तत्त्वज्ञानके सूक्ष्म विचार दर्शाये हैं। मनुष्योंके आचारधर्मके निर्देश भी यहां है। अतः पाठक इसका विशेष मनन करें।

(ऋ. १०।६) त्रित आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

अयं स यस्य शर्मन्नवोभिरग्नेरेधते जरिताऽभिष्टौ।
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋषूणां पर्येति परिवीतो विभावा ॥ १ ॥

यो भानुभिर्विभावा विभात्यग्निर्देवेभिर्ऋतावाजस्रः।
आ यो विवाय सख्या सखिभ्योऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः ॥ २ ॥

अन्वयः— १ जरिता अभिष्टौ यस्य अग्नेः अवोभिः शर्मन् एधते। स अयं विभावा यः ऋषूणां ज्येष्ठेभिः भानुभिः परिवीतः पर्येति ॥

२ यः ऋतवा अजस्रः विभावा अग्निः देवेभिः भानुभिः विभाति। यः सख्या सखिभ्यः, अपरिह्वृतः अत्यः सप्तिः न, आ विवाय ॥

अर्थ— १ उपासना करनेवाला इष्टि करनेपर, जिस अग्निके संरक्षणोंसे घरमेंही उन्नत होता है। वह यह तेजस्वी अग्नि सूर्य-किरणोंके अति तेजस्वी प्रभाओंसे घेरा जाकर सर्वत्र व्यापता है ॥

२ जो सत्यपालक, अविनाशी और तेजस्वी अग्नि देवोंकी प्रभाओंसे शोभता है। जो मित्रतासे मित्रोंके हितके लिये, न थकनेवाले दौड करनेवाले घोडेके समान, जाता है ॥

(ऋ. १०।७) त्रित आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव।
सचेमहि तव दस्म प्रकेतैरुरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः ॥ १ ॥
इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानड्वसो दधानो मतिभिः सुजात ॥ २ ॥
अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम्।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ॥ ३ ॥
सिध्रा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर्यं त्रायसे दम आ नित्यहोता।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर्द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु ॥ ४ ॥
द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम्।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त ॥ ५ ॥

अन्वयः— १ हे देव अग्ने! दिवः पृथिव्याः नः विश्वायुः स्वस्ति यजथाय धेहि। सचेमहि। हे दस्म देव। उरुभिः शंसैः तव प्रकेतैः नः उरुष्य॥

२ हे अग्ने! इमाः मतयः तुभ्यं जाताः। गोभिः अश्वैः राधः अभि गृणन्ति। यदा मर्तः ते भोगं अनु आनट्। हे वसो सुजात! मतिभिः दधानः॥

३ (अहं) अग्निं पितरं, अग्निं आपिं, अग्निं, भ्रातरं, सदं इत् सखायं मन्ये। बृहतः अग्नेः अनीकं सपर्यं। दिवि यजतं सूर्यस्य शुक्रम्॥

४ हे अग्ने! सनुत्रीः अस्मे धियः सिध्राः। दमे आ नित्यहोता, यं त्रायसे सः ऋतावा रोहिदश्वः पुरुक्षुः। अस्मै द्युभिः अहभिः वामं अस्तु॥

५ द्युभिः हितं मित्रं इव प्रयोगं प्रत्नं ऋत्विजं अध्वरस्य जारं अग्निं आयवः बाहुभ्यां अजनन्त। विक्षु होतारं न्यसादयन्त॥

अर्थ— १ हे अग्निदेव! द्युलोक और पृथ्वीलोकसे हमारे लिये संपूर्ण आयु और कल्याण (तथा सब प्रकारका अन्न) यज्ञ करनेके लिये दे दीजिये। (इससे हम तुम्हारी) सेवा करेंगे। हे दर्शनीय देव! तुम्हारे बहुत प्रशंसनीय ऐसे ज्ञानोंसे हमारी सुरक्षा कर॥

२ हे अग्ने! ये हमारी बुद्धियां तुम्हारे लियेही हैं। ये गायों और घोडोंके साथ रहनेवाले धनकी प्रशंसा करते हैं। जब मनुष्य तुम्हारेसे भोग प्राप्त करता है। हे बसानेवाले अग्ने! (हमारी) बुद्धियोंसे (तुम्हारीही प्रशंसाका) धारण होता है॥

३ मैं अग्निको पिता, आप्त, भाई और सदा साथ रहनेवाला मित्र मानता हूँ। बडे अग्निके युद्ध सामर्थ्य (सैन्य, बल) का हम सत्कार करते हैं। जैसा द्युलोकमें यजनीय सूर्यके शुभ्र प्रकाशका सत्कार होता है॥

४ हे अग्ने! स्तुति करनेवाली हमारी बुद्धियाँ सिद्ध हैं। घरमें नित्य हवन करनेवाला तू जिसकी सुरक्षा करता है, वह सत्यनिष्ठ, अश्वयुक्त और अन्नवान् होता है। इसके लिये दिन-रात प्रशंसनीय धन प्राप्त हो॥

५ तेजस्वी होनेके कारण हितकारक, मित्रके समान सहायक, प्राचीन ऋत्विज, अहिंसक कर्मके करनेवाले अग्निको मानव बाहुओंसे (मथकर) उत्पन्न करते हैं। और प्रजाजनोंमें देवोंको बुलानेवाले (अग्नि) को स्थापित करते हैं॥

मं. १- यज्ञप्रवर्तक कभी न दबनेवाला तेजस्वी अग्नि दिव्य किरणोंसे चमकता है। जिस तरह बलवान घोडा घुडदौडमें दौडता है, बीचमें थकता नहीं, उसी तरह यह अग्नि अपने उपासककी सहायता करनेके लिये दौडता है, कभी पीछे नहीं हटता।

मं. ३— अग्निही सब यज्ञोंका अधिपति है, उषाकालमें होनेवाले हवनोंका भी वही स्वामी है। कोई शत्रु इस अग्निको परास्त नहीं कर सकते। इसीमें समस्त हवनीय द्रव्योंका हवन होता है।

मं. ४— यह अग्नि हविष्यद्रव्योंको लेता और स्तोत्रोंको सुनता है और देवोंमें जाकर विराजता है। यह स्तुत्य हवनकर्ता देवोंको बुलाकर लानेवाला पवित्र देव अग्नि सब देवोंको घृतयुक्त अन्न पहुंचाता है।

मं.५— ज्वालाओंसे प्रदीप्त अग्निको इन्द्रके समान स्तुतियों और हवनोंसे संतुष्ट करो। सभी विद्वान् इस देवोंको बुलानेवाले ज्ञानी अग्निकी स्तोत्रोंसे प्रशंसा करते है॥

मं.६— जिस तरह घुडस्वार युद्धभूमि इकठ्ठे होते हैं, उस तरह जिसके पास सब धन इकठ्ठे होते हैं। वह अग्नि हमें इन्द्रसे प्राप्त होनेवाले संरक्षणोंके समान उत्तम संरक्षण हमें देवे और हमें सुरक्षित रखे।

मं. ७—अग्नि अपने वेदीपर बैठकर अपने महत्त्वसे हवनके योग्य प्रदीप्त होता है। सब देव उसके पास पहुंचते है और उसीसे उत्तम संरक्षण सबको प्राप्त होते हैं।

मानव धर्म

इस तरह अग्निका वर्णन इस सूक्तमें है। इस सूक्तके कई वाक्योंसे मानव धर्मका बोध कराते हैं उनको अब नीचे देते है—

१ **अवोभिः शर्मन् पप्रथे (मं. १)**— उत्तम संरक्षणोंसे अपने स्थानमेंही उत्तम संवर्धन होता है। अर्थात् सुरक्षाकी शक्ति न रही तो वृद्धि नहीं होती।

२ **विभावा ज्येष्ठेभिः भानुभिः पर्येति**— तेजस्वी पुरुष श्रेष्ठ तेजोंसे तेजस्वी बनकर सर्वत्र जाता है, सबको अपने तेजसे प्रभावित करता है।

३ **ऋतावा विभावा अजस्रः विभाति (मं.२)**— सरल, तेजस्वी वीर पराजित न होकर प्रकाशित होता है।

४ **अपरिह्वृतः सखिभ्यः सख्या आ विवाय**— वह करनेके लिये न थकनेवाला वीर मित्रोंका हित करनेके लिये मित्रभावसे प्रयत्न करता है।

५ **शूरैः अरिष्टरथः आ स्कभ्नाति (मं. ३)**- शत्रुओंसे अपराजित वीरही सबको आधार दे सकता है। पराजित होनेवाला आधार देनेमें कभी समर्थ नहीं है।

६ **वृधः देवान् जिगाति (मं. ४)**— जो उन्नत होता है वही देवोंको प्राप्त करता है। दिव्यता उसीको प्राप्त होती है।

७ **उक्षां रेजमानं नमोभिः आ कृणुध्वम् (मं. ५)**— तेजसे चमकनेवालेको नमनपूर्वक अपने सामने आदर्श करके रखो।

८ **विप्रासः सहानां जुष्टं जातवेदसं मतिभिः आ गृणन्ति**- जो ज्ञानी होते हैं वे बलिष्ठ वीरोंको इकठ्ठे करते और उनको संगठित करते और ज्ञान प्रकाश करनेवालेकी बुद्धिपूर्वक प्रशंसा करते हैं।

९ **यस्मिन् विश्वा वसूनि सं जग्मुः, ऊतीः अस्मे अर्वाचीनाः आ कृणुध्वं (मं.६)**- जिसके पास सब प्रकारके धन हैं वही हमें सब प्रकारके संरक्षण देवे। जिसके पास सामर्थ्यही नहीं है वह क्या सहायता करेगा?

१० **महां जज्ञानः हव्यः बभूथ (मं ७)**— जो अपना महत्त्व प्रकट करता है वही प्रशंसनीय होता है। जिसके पास महत्त्व नहीं उसकी कौन प्रशंसा करेगा?

११ **देवासः केतं अनु आयन्**— दिव्य विबुध ज्ञानके पास अवश्य पहुंचते हैं। ज्ञानीही देव कहलाते हैं।

१२ **प्रथमासः ऊमाः अवर्धन्त**— जो सबसे प्रथम अर्थात् उत्तम होता है, उसीसे सब प्रकारके संरक्षण प्राप्त होते हैं। जो स्वयं अधम होगा, वह किसीका भी संरक्षण नहीं कर सकता।

यहां पूर्वोक्त मंत्रोंसे सामान्य मानव धर्म किस तरह जाना जाता है वह बताया है, ये वर्णन अग्निकेही हैं, वे पृथक् वाक्यामें पढनेसे वेही मानव धर्मको बताते हैं। कहीं कहीं क्रिया आदिके रूपमें अल्प परिवर्तन करना आवश्यक होता है, यह सहजहीसे पाठकोंके समझमें आ सकता है।

१४ नः अविता, गोपाः, वयस्कृत्, वयोधाः भव (मं. ७)– हमारा संरक्षक, पालक, दीर्घायु देनेवाला, अन्न देनेवाला हो।

१५ नः तन्वः अप्रयुच्छन् रक्ष— हमारे शरीरोंको प्रमाद न करते हुए सुरक्षित रखो।

इन मंत्र भागोंका मनन करनेसे अनेक प्रकारके मानव-धर्मोके नियम विदित हो सकते हैं। मंत्रों या सूक्तोंमें देवता वर्णनके जो जो सामान्य पद हैं उनका मनन करनेसे मानव धर्म सिद्ध होता है। 'जैसा देव करते हैं वैसा मनुष्य करें' यह नियम है (यद्देवा अकुर्वंस्तत्करवाणि)। अतः देवोंके गुण मनुष्य धर्मके बोधक होते हैं। इस तरह वेदमूलकही सब स्मृतियाँ सिद्ध होती है। देवोंके गुण मनुष्य अपनेमें धारण करे और उन्नत होता हुआ देव बने, नरका नारायण हो, यह वेद धर्मका उन्नतिका मार्ग है। जो पाठक मंत्रोंका मनन इस तरह कर सकते हैं, वेही वेद धर्मका गुह्य तत्त्व जान सकते हैं।

त्रित ऋषिका आदर्श पुरुष

त्रित ऋषिने जिस वर्णनीय आदर्श पुरुषको अपने काव्यमें वर्णनीय रूपसे प्रकट किया वह आदर्श पुरुष यह है।— प्रथम आदर्श पुरुषमें प्रबल इच्छा-शक्ति रहनी चाहिये। क्योंकि इच्छा-शक्तिसेही सब श्रेष्ठ कर्म होते हैं और इच्छाही नहीं हुई तो कुछ भी नहीं बन सकता। प्रतिदिनके कार्य सिद्धिके प्रति पहुंचते हैं वे इच्छाशक्तिकेही बलसे पहुंचते हैं—

इच्छाशक्तिका बल

इच्छाशक्तिके बलके विषयमें निम्न स्थानमें दर्शाये मन्त्रभाग विचार करनेयोग्य हैं—

१ अर्थिनः अर्थं इत् वै (युवन्ते) [ऋ. १।१०५।२]= अर्थकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवालेही अपने अर्थके साथ संयुक्त होते हैं अर्थात् इच्छा करनेसे प्रयत्न होता है और पश्चात् सिद्धि प्राप्त होती है। इच्छाही न हो तो सिद्धीकी आशा करना व्यर्थ है।

जाया पतिं आ युवते= स्त्री पतिकी इच्छा करती और उसे प्राप्त करती है। वे दोनों पुत्रकी इच्छा करते हैं और (वृष्ण्यं पयः तुञ्जाते) बलवर्धक वीर्यको प्रेरित करते हैं, अर्थात् गर्भाधान करते है। (रसं परिदाय दुह्रे) रसरूपी वीर्यका दान करके पुत्रका उत्पादन अथवा दोहन करते हैं। यह सब पति और पत्नीकी इच्छाशक्तिका फल है।

विवाह करना, पुत्र उत्पन्न करना, धन प्राप्त करना आदि कार्य भी इच्छाशक्तिसेही सफल और सुफल होते हैं। इसी तरह इससे भी महान् महान् कार्य इसी शक्तिसे होते है, इसलिये अपनी इच्छाशक्ति बलवती और सत्प्रवृत्त बनानी चाहिये। आदर्श पुरुष सत्प्रवृत्त और उत्साहमयी इच्छाशक्तिसे संपन्न होना चाहिये।

बहुपत्नी करनेका निषेध

त्रित ऋषि बहुपत्नियाँ करनेकी कुरीतिका निषेध करता है देखो—

सपत्नीः पर्शव इव मा अभितः सं तपन्ति। (ऋ. १।१०५।८)= चारों ओरसे कुल्हाडे जैसे काटने लगते हैं, वैसी सपत्नियाँ मुझे कष्ट देती हैं। अर्थात् आदर्श पुरुष बहुपत्नीयाँ न करे। एकपत्नी व्रत आदर्श व्रत है।

अनेक पत्नियाँ करनेसे घरमें अनेक प्रकारके कलह होते हैं और सबको क्लेश होते हे। राजा दशरथके घरमें कैकेयीके कारण कैसा वैरभाव उत्पन्न हुआ, और उसका परिणाम कितना भयनक हुआ, यह सबको विदितही है। इसलिये एकपत्नी व्रत पालन करना योग्य है।

दुष्ट बुद्धियोंका निग्रह

दुर्जनोंका दमन करनेसे समाजमें सुख और शान्ति स्थापित हो सकती है इसलिये कहा है—

दूढ्यः अति क्रामेम (ऋ. १।१०५।६)= दुष्टबुद्धि-वालोंका अतिक्रमण करना चाहिये। उनको पीछे हटाकर आगे बढना चाहिये। उनको आगे बढने नहीं देना चाहिये। यही उनका निग्रह करना है। आदर्श पुरुष यह करे।

दुर्जनोंका निर्दालन करना और सज्जनोंका पालन करना चाहिये। यही आदर्श राज्यशासन है। आदर्श पुरुष ऐसाही करते रहते हैं।

उन्नतिका पथ

समाजकी उन्नति किस नियमसे होती है इसका विचार निम्न-लिखित मन्त्रभागोंद्वारा बताया है—

१. ऋतस्य धर्णसि= सत्यका धारण करना,

२. वरुणस्य चक्षणं= श्रेष्ठके निरीक्षणमें कार्य करना और

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।
यथाऽयज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात ॥ ६ ॥
भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन् ॥ ७ ॥

६ हे देव ! दिवि देवान् स्वयं यजस्व । पाकः अप्रचेताः ते किं कृणवत् । हे देव ! ऋतुभिः देवान् यथा अयजः । एव हे सुजात ! तन्वं यजस्व ॥

७ हे अग्ने ! नः अविता भव । उत गोपाः । उत वयस्कृत् वयोधाः भव । हे सुमहः ! हव्यदातिं नः रास्व च । उत नः तन्वः अप्रयुच्छन् त्रास्व ॥

६ हे देव ! द्युलोकमें देवोंका स्वयं यजन कर । पूर्ण होनेवाला अज्ञानी तेरा क्या करेगा ? हे देव ! ऋतुके अनुकूल जैसा देवोंका यजन करता है वैसाही ऋतुके अनुसार अपने शरीरका भी यजन कर ॥

७ हे अग्ने ! हमारी सुरक्षा करनेवाला हो । और बचानेवाला हो । और आयु बढानेवाला और अन्न देनेवाला हो । हे पूज्य अग्ने ! हविष्यान्न हमें दो । और हमारे शरीरोंको बिना प्रमाद किये सुरक्षित रखो ॥

मानव धर्मका संदेश

इस सूक्तमें जो मानव धर्मका संदेश दिया है वह अब हम नीचे देते हैं—

१ नः विश्वायुः स्वस्ति यजथाय धेहि (मं. १)—हमें पूर्ण आयु चाहिये और सुखसे रहनेकी परिस्थिति भी चाहिये, क्योंकि इनसे हम जीवनभर यज्ञीय आयु बिताना चाहते हैं । मनुष्य दीर्घ आयु बनें, सुखसे रहें और जीवनभर सब जनोंके हितार्थ शुभ कर्म करें ।

२ उरुभिः शंसैः प्रकेतैः उरुष्य— बहुत बडे प्रशंसनीय ज्ञान और विज्ञानसे सुरक्षा प्राप्त करें ।

३ मतयः गोभिः अश्वैः राधः अभि गृणन्ति (मं. २) जो धन गायों और अश्वोंके साथ रहता है, उसकी प्रशंसा सब बुद्धियाँ करती हैं । घरमें गौवें, घोडे और सब प्रकारका धन रहे ।

४ मर्तः मतिभिः वृधानः भोगं अनु आनट्—मनुष्य अपनी बुद्धियोंसे (इन धनोंका धारण करता है और उनका) भोग प्राप्त करता है । धनका उपयोग सद्बुद्धिसे करे और धर्मानुकूल भोग भोगे ।

५ अग्निं पितरं आपिं भ्रातरं सखायं मन्ये (मं. ३) तेजस्वी प्रभुको मैं पिता, आप्त, भाई और मित्र मानता हूं ।

६ बृहतः अनीकं सपर्य । — बडे वीरके सेनाबलका सत्कार करना योग्य है ।

७ धियः सिध्राः (मं. ४)— हमारी बुद्धियां सिद्धितक जानेवाली हों । कोई मनुष्य शुभ कर्मको बीचमेंही न छोडे ।

८ दमे यं प्रायसे सः ऋतावा रोहिदश्वः पुरुक्षुः घरमें जो सुरक्षित होता है वह सत्कर्म करता, घोडोंको रखता और बहुत अन्न प्राप्त करता है । प्रजाकी सुरक्षा होगी तो वह प्रजा अनेक कर्म करके धनधान्य प्राप्त कर सकते हैं ।

९ अस्मै द्युभिः अह्नोभिः कामं अस्तु— हमें प्रतिदिन उत्तम प्रशंसनीय धन मिले ।

१० हितं प्रत्नं मित्रं अध्वरस्य जारं आयवः अजनन्त (मं. ५)— हित करनेवाला पुराना मित्र, जो अहिंसक कर्म करता है, उसीको मनुष्य प्रकट रूपसे स्वीकार करते हैं ।

११ होतारं विक्षु न्यसादयन्त— दाताको प्रजाओंमें (मुख्य स्थानपर) रखते हैं ।

१२ अप्रचेताः पाकः किं कृणवत् (मं. ६)— अज्ञानी और अपरिपक्व (इस जगतमें) क्या कर सकेगा ?

१३ ऋतुभिः देवान् अयजः, तन्वं यजस्व— ऋतुओंके अनुकूल विबुधोंका सत्कार कर, तथा अपने शरीरकी भी सुरक्षा कर ।

१४ नः अविता, गोपाः, वयस्कृत्, वयोधाः भव (मं. ७)- हमारा संरक्षक, पालक, दीर्घायु देनेवाला, अन्न देनेवाला हो।

१५ नः तन्वः अप्रयुच्छन् रक्ष— हमारे शरीरोंको प्रमाद न करते हुए सुरक्षित रखो।

इन मंत्र भागोंका मनन करनेसे अनेक प्रकारके मानव-धर्मोंके नियम विदित हो सकते हैं। मंत्रों या सूक्तोंसे देवता वर्णनके जो जो सामान्य पद हैं उनका मनन करनेसे मानव धर्म सिद्ध होता है। 'जैसा देव करते हैं वैसा मनुष्य करें' यह नियम है (यद्देवा अकुर्वंस्तत्करवाणि)। अतः देवोंके गुण मनुष्य धर्मके बोधक होते हैं। इस तरह वेदमूलकही सब स्मृतियाँ सिद्ध होती हैं। देवोंके गुण मनुष्य अपनेमें धारण करे और उन्नत होता हुआ देव बने, नरका नारायण हो, यह वेद धर्मका उन्नतिका मार्ग है। जो पाठक मंत्रोंका मनन इस तरह कर सकते हैं, वेही वेद धर्मका गुह्य तत्त्व जान सकते हैं।

—०*०—

त्रित ऋषिका आदर्श पुरुष

त्रित ऋषिने जिस वर्णनीय आदर्श पुरुषको अपने काव्यमें वर्णनीय रूपसे प्रकट किया वह आदर्श पुरुष यह है।— प्रथम आदर्श पुरुषमें प्रबल इच्छा-शक्ति रहनी चाहिये। क्योंकि इच्छा-शक्तिसेही सब श्रेष्ठ कर्म होते हैं और इच्छाही नहीं हुई तो कुछ भी नहीं बन सकता। प्रतिदिनके कार्य सिद्धिके प्रति पहुंचते हैं वे इच्छाशक्तिकेही बलसे पहुंचते हैं—

इच्छाशक्तिका बल

इच्छाशक्तिके बलके विषयमें निम्न स्थानमें दर्शाये मन्त्रभाग विचार करनेयोग्य हैं—

१ अर्थिनः अर्थं इत् वै (युवन्ते) [ऋ. १।१०५।२]= अर्थको प्राप्तिकी इच्छा करनेवालेही अपने अर्थके साथ संयुक्त होते हैं अर्थात् इच्छा करनेसे प्रयत्न होता है और पश्चात् सिद्धि प्राप्त होती है। इच्छाही न हो तो सिद्धिकी आशा करना व्यर्थ है।

जाया पतिं आ युवते= स्त्री पतिकी इच्छा करती और उसे प्राप्त करती है। वे दोनों पुत्रकी इच्छा करते हैं और (वृष्ण्यं पयः तुञ्जाते) बलवर्धक वीर्यको प्रेरित करते हैं, अर्थात् गर्भाधान करते है। (रसं परिदाय दुहे) रसरूपी वीर्यका दान करके पुत्रका उत्पादन अथवा दोहन करते हैं। यह सब पति और पत्नीकी इच्छाशक्तिका फल है।

विवाह करना, पुत्र उत्पन्न करना, धन प्राप्त करना आदि कार्य भी इच्छाशक्तिसेही सफल और सुफल होते हैं। इसी तरह इससे भी महान् महान् कार्य इसी शक्तिसे होते हैं, इसलिये अपनी इच्छाशक्ति बलवती और सत्प्रवृत्त बनानी चाहिये। आदर्श पुरुष सत्प्रवृत्त और उत्साहमयी इच्छाशक्तिसे संपन्न होना चाहिये।

बहुपत्नी करनेका निषेध

त्रित ऋषि बहुपत्नियाँ करनेकी कुरीतिका निषेध करता है देखो—

सपत्नीः पर्शव इव मा अभितः सं तपन्ति। (ऋ. १।१०५।८)= चारों ओरसे कुल्हाडे जैसे काटने लगते हैं, वैसी सपत्नियाँ मुझे कष्ट देती हैं। अर्थात् आदर्श पुरुष बहुपत्नीयाँ न करे। एकपत्नी व्रत आदर्श व्रत है।

अनेक पत्नियाँ करनेसे घरमें अनेक प्रकारके कलह होते हैं और सबको क्लेश होते है। राजा दशरथके घरमें कैकेयीके कारण कैसा वैरभाव उत्पन्न हुआ, और उसका परिणाम कितना भयानक हुआ, यह सबको विदितही है। इसलिये एकपत्नी व्रत पालन करना योग्य है।

दुष्ट बुद्धियोंका निग्रह

दुर्जनोंका दमन करनेसे समाजमें सुख और शान्ति स्थापित हो सकती है इसलिये कहा है—

दूढ्यः अति क्रामेम (ऋ. १।१०५।६)= दुष्टबुद्धिवालोंका अतिक्रमण करना चाहिये। उनको पीछे हटाकर आगे बढना चाहिये। उनको आगे बढने नहीं देना चाहिये। यही उनका निग्रह करना है। आदर्श पुरुष यह करे।

दुर्जनोंका निर्दालन करना और सज्जनोंका पालन करना चाहिये। यही आदर्श राज्यशासन है। आदर्श पुरुष ऐसाही करते रहते हैं।

उन्नतिका पथ

समाजकी उन्नति किस नियमसे होती है इसका विचार निम्नलिखित मन्त्रभागोंद्वारा बताया है—

१. ऋतस्य धर्णसि= सत्यका धारण करना,

२. वरुणस्य चक्षणं= श्रेष्ठके निरीक्षणमें कार्य करना और

३. अर्यम्णः पथा (गमनं)- आर्यमनके योग्य मार्गसे गमन करना।

ये मार्ग उन्नतिके लिये आवश्यक हैं। आदर्श पुरुष यही मार्ग अपने आचरणमें लाता है।

मानवोंकी उन्नति करना बडा कठिन कार्य है। उसका आधार सत्य-पालन है, सत्पुरुषोंके निरीक्षणमें रहना और आर्यधर्मके अनुसार चलना उसके लिये अत्यंत आवश्यक है। जो ऐसे मतसे चलेंगे वेही आदर्श पुरुष हो सकते है।

विद्या-व्यासङ्ग

मनुष्य ज्ञानी पुरुषका आश्रय करे, ज्ञान प्राप्त करे और सबका आदर्श हो उनका मार्गदर्शक बने, इस विषयमें ऋ. १।१०५ का १७ वाँ मन्त्र अच्छा मार्गदर्शन करता है—

१ कूपे अवहितः त्रितः ऊतये देवान् हवते। तत् बृहस्पतिः शुश्राव। अंहूरणात् उरु कृण्वन्। (ऋ.१।१०५।१७) परतंत्रताकी गर्तमें त्रित ऋषि पडा था, उसने अपने उद्धारके लिये देवोंसे सहायताकी प्रार्थना की, बृहस्पति- ज्ञानदेवने वह प्रार्थना सुनी और पापपूर्ण परतंत्रताकी गर्तसे उसको निकालनेके लिये बडा विस्तृत ज्ञानका मार्ग बनाया, जिससे त्रित बाहर आया और स्वतंत्र हुआ।

विद्याका महत्त्व इस तरह त्रित ऋषि अपने अनुभवसे वर्णन कर रहा है। ज्ञानी पुरुषको गुरु करके अज्ञानमें पडे अज्ञानी अपनी मुक्तिका, स्वतंत्रताका मार्ग जान सकते हैं। इस तरह विद्याका महत्त्व यहां बताया है।

२ तमसा निर्जगन्वान्। (ऋ. १०।१।१)- अज्ञान अन्धकारसे दूर होना चाहिये। तमस् अज्ञानका वाचक है। अन्धारमें योग्य मार्ग दीखता नहीं वह अन्धकार हटनेपर दीखता है।

३ ज्योतिषा आ अगात्। (ऋ. १०।१।१)—प्रकाशरूप ज्ञानके साथ, अर्थात् ज्ञानी बनकर प्रकट होना चाहिये। ज्ञानके मार्गसे आगे बढना चाहिये, प्रगति करनी चाहिये। ज्ञानही उत्कर्षका सहायक है।

४ रुशता भानुना विश्वा सद्मानि आ अप्राः। (ऋ. १०।१।१)- तेजस्वी ज्ञानके प्रकाशसे सभी सभा-स्थान भरपूर प्रकाशित करो। सभाओंमें व्याख्यान-प्रवचनद्वारा ऐसे ज्ञानका प्रकाश करो कि जिससे वहांके सब सदस्य ज्ञानी बनें और अपना अभ्युदय करनेमें सिद्ध हो जाय।

५ विद्वान् बृहन् जातः। (१०।१।३)- बडा भारी ज्ञानी होना चाहिये। ऐसाही बडा भारी ज्ञानी सबका मार्गदर्शक अग्रणी होता है।

६ विद्वान् विश्वं पृणाति। (ऋ. १०।२।४)-विद्वान् ही सब प्रकारका कर्तव्य योग्य रीतिसे करता है।

७ विजानन् ऋतुवित् यजिष्ठः। (ऋ.१०।२।५)- ज्ञानीही कर्म करनेकी विधि जान सकता है और कुशलतासेही कर्म करके भी दिखा सकता है। ज्ञानसेही यह सिद्ध होता है। ज्ञानसेही कर्ममें कुशलता प्राप्त होती है।

८ पन्थां अनु प्रविद्वान् विभाहि। (ऋ. १०।२।७)- मार्गका जाननेवाला बनकर प्रकाशित हो। अर्थात् जो मार्गका जानकार है वही उस मार्गमें सहायकारी हो सकता है। वही मार्गके आक्रमण करनेमें सहायक होता है।

९ चिकित् विभाति। (ऋ. १०।३।१)— ज्ञानीही प्रकाशता है, अर्थात् ज्ञानका प्रकाश सबसे अधिक है।

१० चिकित्वः अमूढः। (ऋ. १०।४।४)- ज्ञानीकीही मूढता दूर होती है। ज्ञानी मूढ नहीं होता है। ज्ञानसे मूढत्व दूर होता है।

११ ब्रह्मवर्धनीः भूत्। (ऋ १०।४।७)- ज्ञानही सबकी उन्नति करनेवाला होता है। ज्ञानसेही सब शक्तियोंका संवर्धन होता है।

१२ देवासः केतं अनु आयन्। (ऋ. १०।६।७)— दिव्य विबुध ज्ञानके मार्गकाही अनुसरण करते हैं।

ज्ञान प्राप्त करना, अज्ञानसे मुक्त होना, घरघरमें ज्ञानप्रसार करना, इससे राष्ट्रकी उन्नति होती है। जो ज्ञानी होता है वही कर्तव्य और अकर्तव्य जानता है और योग्य समयमें योग्य कर्तव्य करके, अपना और राष्ट्रका नेता बनकर सबकी उन्नति करता है। यही आदर्श पुरुष है।

शूरता, वीरता और युद्धसिद्धता

वीरताके विषयमें त्रित ऋषिके निर्देश अत्यंत स्पष्ट हैं देखिये—

१ वयं सर्ववीराः पृतने अभिष्याम।
(ऋ. ५।१०५।१९)

हम सब सब प्रकारसे शूर वीर धीर और युद्धनिपुण बनकर युद्धमें शत्रुके सन्मुख खडे रहेंगे, और शत्रुको परास्त करेंगे। शत्रुका पराभव करनेयोग्य जो समर्थ बनता है वही आदर्श वीर कहलाता है।

२ अद्य वयं अनागसः अभूम, अजैष्म, असनाम। (ऋ. ८।४७।१८)— आज हम सब निर्दोष बनेंगे, विजयी होंगे और धन प्राप्त करेंगे। विजयी होनेके पूर्व अपने अन्दरके सब दोष दूर करने चाहिये, समाजके दोष दूर हुए तोही वह सामर्थ्यवान बनता है और विजयी होता है और विजयी होनेसे-ही सब प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है।

३ द्रुहः अभि रक्षथ। (ऋ. ८।४७।१)— द्रोहकारी शत्रुओंसे सुरक्षा करो। अर्थात् द्रोहकर्ताओंको दूर करो।

४ वर्मसु युध्यन्तः। (ऋ. ८।४७।८)— कवच धारण करके युद्ध करो जिससे वीर सुरक्षित रहेंगे और वे शत्रुका पराभव कर सकेंगे।

५ शर्म, भद्रं, अनातुरं, वरूथ्यं, त्रिधातु अस्मासु वि यन्तन। (ऋ. ८।४७।१०)— सुख, कल्याण, नीरोगिता और सुरक्षितता करनेवाली तीन धारक शक्तियां हमें प्राप्त हों। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक ये तीन शक्ति सबल हुई तो उनसे यह सब प्राप्त हो सकता है।

६ दक्षाय आ ददर्शी। (ऋ. १०।३।१)— बल बढानेके लिये वह अपने राष्ट्रमें चारों ओर निरीक्षण करता है।

७ अवोभिः शर्म पप्रथे। (ऋ. १०।६।१)— संरक्षण होनेसेही प्रजाका सुख बढता है। बलसे और शूरतासे यह संरक्षण होता है।

८ शूरैः अरिष्टरथः आस्कभ्नाति। (ऋ. १०।६।३)— शत्रुओंसे अपराजित वीरही सबको सुरक्षा देकर आधार या आश्रय देता है।

९ विप्रासः सहानां जुष्टं मतिभिः आ गृणन्ति। (ऋ. १०।६।५)— ज्ञानी लोग बलिष्ठ वीरोंकी संघटना करते है और उनकी विचारपूर्वक प्रशंसा करते हैं।

१० ऊतीः अस्मे अर्वाचीनाः आकृणुष्व। (ऋ. १०।६।६)— सब प्रकारके संरक्षण हमारे पास सुसज्ज स्थितिमें रहें।

११ ऊमाः अवर्धन्त, प्रथमासः। (ऋ. १०।६।७)— जो अपनी संरक्षक शक्तियोंका संवर्धन करते हैं वेही प्रथम वंदनीय नेता होते हैं।

१२ वृहतः अनीकं सपर्य। (ऋ. १०।७।३)— बडे वीरोंके सेनाबलको सत्कार करना योग्य है।

राष्ट्रके कल्याण करनेमें दुष्टोंको दूर करनेका कार्य प्रमुख स्थान रखता है। सज्जनोंका परित्राण और दुष्टोंका नाश करना आवश्यक है। यही ईश्वरके कर्तव्य है शूरता, वीरता, धीरता आदिसे यह हो सकता है। इसीलिये आदर्श पुरुषमें ये शुभ गुण होने चाहिये।

इस तरह त्रित ऋषिके बताये और वर्णन किये आदर्श पुरुषमें ये सब गुण होने चाहिये। इन सूक्तोंका विचार करके पाठक और भी अधिक गुणोंकी गणना यहां कर सकते हैं। देवता वर्णनके प्रसंगमें जो जो शुभ गुण वर्णन किये गये हैं, वे सब उन्नत मानवमें रहनेयोग्य हैं। वे गुण जहां होंगे वही आदर्श पुरुष होगा। इसी तरह वेद अनुयायियोंके सामने आदर्श पुरुषको रखता है, मनुष्य उसे देखे, जाने और वैसा बननेका यत्न करे।

त्रित ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

——×——

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(१२)

संवनन ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका ८४ वाँ अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, पारडी [जि० सूरत]

संवत् २००५, सन १९४९

मूल्य १) रु०

संवनन ऋषिका तत्त्वज्ञान

आंगिरस गोत्रका संवनन ऋषि है, अथर्वा भी इसी गोत्रका ऋषि है। यहां हम एकही गोत्रके इन दो ऋषियोंके एकही संगठन विषयपर चार सूक्त देखते हैं। इनका विचार करनेसे हमें पता लगता है कि ये ऋषि इतने प्राचीन समयमें अत्यंत परिश्रमपूर्वक जनताकी संघटना करनेका प्रचार करते थे। संगठनका कितना महत्त्व है यह इन सूक्तोंमें स्पष्ट दीख रहा है। इतने प्राचीन समयसे संगठनका प्रचार करनेवाले ये ऋषि राष्ट्रीय बलका महत्त्व अच्छी तरह जानकर उसको प्रत्यक्ष रूपमें लानेके प्रयत्नमें हैं ऐसा दीखता है।

ऋषियोंके शुद्ध अन्तःकरणमें परमेश्वरकी दिव्य स्फूर्तिसे संगठनके ये आदर्श विचार प्रकट हुए हैं। ये इस भूतलपर आदर्श दिव्य मानव निर्माण करनेके लियेही हैं। इसीलिये ऋषि यह संगठन करते थे। आजकल नाना देशोंमें जो संगठन हो रहे हैं, वे युद्धके लिये हो रहे हैं। ऋषियोंके इस संगठनका और वेदके इस दिव्य आदेशका ध्येय दिव्य मानवकी निर्मिति है। इसलिये यह वैदिक संगठन सात्त्विक है और युद्ध-पिपासासे होनेवाला आजकलका संगठन राजस है। पाठक इस दृष्टिसे इन सूक्तोंका विचार करें और योग्य बोध लें।

स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम'
पारडी (जि. सूरत)
ता १।४।४९

निवेदनकर्ता
पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

मुद्रक तथा प्रकाशक— वसंत श्रीपाद सातवळेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, पारडी (जि० सूरत)

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

संवनन ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका ८४ वाँ अनुवाक)

(१) संगठनका उपदेश

(ऋ. १०।१९१) संवनन आङ्गिरस. । संज्ञानम्, १ अग्निः । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ।

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ १ ॥
सं गच्छध्वं, सं वदध्वं, सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ २ ॥
समानो मन्त्रः, समितिः समानी, समानं मनः, सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः, समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥

अन्वयः— १ [ऋषि-प्रार्थना] हे वृषन् अग्ने ! अर्यः (त्वं असि), विश्वानि (भूतानि) इत् संसं आ युवसे, इळः पदे सं इध्यसे; सः (त्वं) नः वसूनि आ भर ॥

२ [अर्यस्य उत्तरं] (१) सं गच्छध्वम्, (२) सं वदध्वम्, (३) वः मनांसि सं जानताम्, (४) यथा पूर्वे संजानाना देवा भागं उपासते, (तथा यूयं अपि कुरुत) ॥

३ (१) (वः) मन्त्रः समानः, (२) (वः) समितिः समानी, (३) (वः) मनः समानं, (४) एषां (वः) चित्तं सह (भवतु), (५) (अहं) वः समानं मन्त्रं अभि मन्त्रये, (६) समानेन हविषा वः जुहोमि ॥

अर्थ— [ऋषियोंकी प्रार्थना] १ हे बलवान् तेजस्वी प्रभो ! (तुमही सबके) प्रभु-स्वामी-हो, सब भूतोंको तुमही मिलाते-संगठित करते-हो । इस भूमिके स्थानपर तुमही प्रकाशित होते हो; ऐसे (प्रतापी तुम) हम सबको सब प्रकारके धन भरपूर दो ॥

२ [प्रभुका उत्तर] १ (अपना) संगठन करो, २ (आपसमें) प्रेमसे वादविवाद करो, ३ तथा अपने मनोंको शुभ संस्कारोंसे सुसंस्कृत करो, ४ और जैसे प्राचीन समयके विबुध (अपने कर्तव्यके) भागको (एक-मतसे) करते थे, (वैसा तुम भी किया करो) ॥

३ १ आप सबका विचार एक हो, २ आप सबकी सभा एक हो, ३ आप सबका मन एकही विचारसे मिला हो, ४ इन (आप सब) का चित्त भी एक हो, ५ (इसीलिये तो मैं) आप सबको एकताकाही यह रहस्य कह रहा हूं, ६ एकही हविसे तुम सबका (मैं) यज्ञ करवाता हूं ॥

समानी व आकूतिः, समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो, यथा वः सुसहासति ४

४ (१) वः आकूतिः समानी, (२) वः हृदयानि समाना (नि). (३) वः मनः समानं अस्तु, (४) यथा वः सुसह असति ॥

४ १ तुम सबकी आकांक्षा एक हो, २ तुम सबके हृदय एक हों, ३ तुम सबके मन एक हों, ४ जिससे तुम सबका उत्तम संगठन होगा ॥

संगठनका रहस्य

इस सूक्तका नाम ' संज्ञान सूक्त ' है। यह संज्ञान है, अर्थात् यह सम्यक् ज्ञान, अत्यन्त आवश्यक और उत्तम ज्ञान है। इसी तरह यह सूक्त (सं एकीभूय) एक होने, मिलकर रहनेका, संगठन करके अपना बल बढानेका ज्ञान देता है। संगठनमें बल है यह बात इस सूक्तमें स्पष्ट रूपसे प्रकट हो गयी है।

इस संज्ञानसूक्तका उपदेश ऋग्वेदके अन्तिम सूक्तमें किया है। जाते जाते, उपदेश समाप्तिके समय, अन्तमें, विदा होनेके समय रहस्यकी गुप्त बात कहते हैं, वैसाही ऋग्वेदके अन्तमें यह रहस्यमय उपदेश है। ऋग्वेदकी समाप्तिके समय मानवी उन्नतिका रहस्य, गुप्त सन्देश यहां कहा है।

इस सूक्तका ऋषि ' संवनन ' है। ' सं-वनन ' का अर्थ ' परस्पर प्रेम करना-कराना, परस्पर मैत्री करना-कराना, परस्पर सद्भावना निर्माण करना-कराना, एकता करना, संगठनके बलसे सुरक्षा निर्माण करना ' आदि है। इस सूक्तके स्फुरण होनेके कारणही इस ऋषिका यह नाम प्रसिद्ध हुआ होगा। ' संज्ञान ' वह ज्ञान है कि जिससे मानवी समाजका संगठन होकर उसका बल बढता है और उसके सब बन्धन दूर होते हैं। इस विद्याका-इस संगठन-की विद्याका-सबसे प्रथम प्रकाश करनेवाले आदिम ऋषिका नाम ' संवनन ' है, एक होकर अपना बल बढाकर अपनी सुरक्षा करनेकी विद्या प्रकट करनेवालेका यह नाम अनुरूप-ही है। यह ऋषि ' आङ्गिरस ' है अर्थात् आङ्गिरस गोत्री है। अङ्ग-रसके परिपाक करनेवाली विद्याका इसने सबसे प्रथम आविष्कार किया था। प्राणियोंके शरीरोंमें, अङ्ग-अङ्गमें एक प्रकारका जीवन-रस रहता है। यह रस अङ्ग-अङ्गमें जाकर वहां रोग-बीजोंको हटाता है। इस रससे निसर्गोपचारका कार्य लेनेकी यह ' आङ्गिरसी विद्या ' वेदोंमें सुप्रसिद्ध है। इस महर्षिके गोत्रमें संवनन ऋषि हुए और उन्होंने समाजके अंग प्रत्यंगोंका संगठन करनेद्वारा समाजका बल बढानेकी विद्या प्रकट की है। समाजके अंग-प्रत्यंग ज्ञानी-शूर-कृषीबल-कारुशिल्पी ये हैं। इनमें वैमनस्य न हो और परस्पर सहकार हो यह सिद्धान्त समाज-संगठनका है। इस परस्पर प्रेम-भाव बढानेसे समाज सजीव, सबल और पराक्रमी होता है। यह ज्ञान इस संवनन ऋषिने प्रकट किया है। यही इस सूक्तमें है जो हम अब देखेंगे।

इस सूक्तके चार मन्त्र हैं। प्रथम मन्त्रमें ऋषियोंकी, भक्तोंकी, उपासकोंकी ईश्वरसे प्रार्थना है कि ' हे प्रभो! हमें पर्याप्त धन दो। ' (१)

आगामी तीन मन्त्रोंमें परमेश्वरका उत्तर है कि-' हे भक्तो! तुम अपना संगठन करो, एक विचारसे रहो, आपसमें द्वेष न बढाओ जिससे तुम सुखसे रह सकोगे। ' (२-४)

भक्तोंने क्या मांगा और ईश्वरने क्या दिया? पाठको विचार कीजिये। भक्तोंने धन मांगा था, पर परमेश्वरने धन तो दिया नहीं, परन्तु आपसमें संगठन करनेका उपदेश किया। इसका अर्थ यह है कि धन देनेसे मिलता नहीं, मिला भी तो रहेगा नहीं। परमेश्वरने या किसी औरने किसीको धन दिया, तो उसके संरक्षणकी शक्ति उसमें होगी तोही वह धन उसके पास रह सकेगा। और शक्ति न रही तो वह धन कोई उठाकर ले जायगा। इसलिये धन मुख्य नहीं है, उसके संरक्षणकी शक्ति मुख्य है। जिसके पास शक्ति होगी वह अपनी शक्तिसे धन कमा भी सकता

है और कमानेके पश्चात् सुरक्षित भी रख सकता है। समाज की भी यही अवस्था है। समाज संगठित और बलवान् होगा, तो वह धन कमा सकेगा और उसको सुरक्षित भी रख सकेगा। इसीलिये ऋषियोंके मांगनेपर भी परमेश्वरने धन दिया नहीं, परन्तु संगठन करनेका रहस्यमय उपदेश किया। परमेश्वर सर्वज्ञ होनेसे जो मानवके हितकी बात है, उसीका उपदेश वह करता है।

ऋषियोंकी प्रार्थना

"हे बलवान् अग्ने! तुमही सब विश्वका एकमात्र अधिपति है और सबको यथावत् मिलाता है, एकत्रित करता है, संगठित करता है। इस विश्वमें तुमही प्रकाश करता है, ऐसा प्रतापी ईश्वर है, जो हमें भरपूर धन देवे।" (मं० १)

इस प्रथम मन्त्रमें ईश्वरवाचक तीन पद हैं- 'वृषन्, अग्नि और अर्य।' 'वृषा' का अर्थ 'वीर्यवान्, बलवान्, समर्थ, शक्तिशाली' है। इसका दूसरा अर्थ 'कामनाओंकी वृष्टि करनेवाला है।' पर इस मन्त्रमें यह अर्थ नहीं है, क्योंकि भक्तोंकी कामना तो 'धन प्राप्त करनेकी' थी, वह तो प्रभुने पूर्ण नहीं की, अन्य उपाय बताया। 'भक्त अपनी संगठना करें, अपने प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा करें और धन कमायें और अपने सामर्थ्यसे उसको सुरक्षित रखें।' ऐसा ईश्वरने कहा। उपाय बतानेवालेको कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला नहीं कहा जा सकता। अत यहां 'वृषा' का अर्थ 'सर्व-समर्थ' ही है, 'इच्छाकी तृप्ति करनेवाला' नहीं है।

दूसरा ईश्वरवाचक पद इस मन्त्रमें 'अग्नि' है, अग्नि प्रकाश बताता है, मार्ग दर्शाता है, उष्णता उत्पन्न करता है, गति उत्पन्न करता है। जो मार्ग बताता है और प्राप्तव्य स्थानको पहुंचाता है, वह अग्नि है। अग्नि (अग्र-नी.) अग्रतक अन्ततक पहुंचाता है, उसीको समाजमें 'अग्रणी' कहते हैं। अग्रे नी, अग्रणी वह नेता है जो अपने अनुयायियोंद्वारा योग्य हलचल कराकर, उनको जो प्राप्तव्य है उसके प्रति पहुंचाता है। बीचमेंही नहीं छोड देता। अन्धेरी रात्रोमें अग्नि रहा तो मार्ग दीखता है। इसी तरह अज्ञानरूपी अन्धेरेमें ज्ञानका प्रकाश देनेवाला मार्गदर्शक नेताही अग्नि है। यह 'वृषा अग्नि' समर्थ नेता, प्रभावी अग्रणी है। सब विश्वका समर्थ अग्रणी प्रभु परमेश्वरही है इसमें क्या सन्देह हो सकता है?

'अर्यः' का अर्थ स्वामी, प्रभु, अधिपति, सरलतासे कार्य करनेवाला यह है। 'वृषा अग्निः अर्यः' का अर्थ 'समर्थ तेजस्वी अग्रणी प्रभु' है। प्रभुके गुण इन शब्दोंसे बताये हैं। प्रभु समर्थ है इसीलिये भक्त उसके पास जो चाहिये सो मांगते हैं और प्रभु सर्वज्ञ होनेसे वह उन भक्तोंका हित जिस रीतिसे होगा, वही मार्ग बताता है।

'विश्वानि सं आ युवसे इत्' = निश्चयसेही सब भूतोंको प्रभु मिलता है, सब भूतोंको एक स्थानपर लाता है, उनके अणु और परमाणुओंका मिश्रण करता है, एकसे एक नयी सृष्टि बनाता है। यह सब विविध प्रकारकी सृष्टि प्रभुके संमिश्रण करनेकी शक्तिकाही अद्भुत आविष्कार है। यह प्रभुकी शक्ति नहीं है तो और किसकी शक्ति है जो यह अद्भुत कार्य कर रही है? जिस किसीकी यह शक्ति है वही प्रभु है। क्योंकि एकही प्रभुकी शक्ति यहां सर्वत्र कार्य कर रही है, यहां प्रभुसे भिन्न दूसरा कोई हैही नहीं। सम्पूर्ण विश्वमें व्यापकर विश्वके अन्दरके सब कार्य वही करता है, ऐसा अद्भुत सामर्थ्यशाली वह प्रभुही एक है।

'इळः पदे सं इध्यसे' = भूमिके स्थानपर अग्नि रूपसे प्रदीप्त होता है। 'सः एव अग्निः' वह प्रभुही अग्नि है। अर्थात् अग्निमें रहकर आग्नेय गुणको अपनी शक्तिसे प्रकट करता है। इसी तरह पृथ्वीपर अग्नि, अन्तरिक्षमें विद्युत् और द्युलोकमें सूर्यरूपसे यही अग्नि प्रकट होता है वह प्रभुकाही सामर्थ्य है। अग्नि जलती है, विद्युत् चमकती है, सूर्य प्रकाशता है यह सब प्रभुकी शक्तिकाही आविष्कार है। सब विश्वमें प्रभुकी शक्तिही विविध कार्य कर रही है और विविध रूपोंमें प्रकट हो रही है। यह प्रभुकाही अतुलनीय सामर्थ्य है।

'सः त्वं नः वसूनि आ भर' = 'हे प्रभो! ऐसा सामर्थ्यवान् तू है अतः हमें सब प्रकारके धन भरपूर प्रमाणमें भर दो।' किसी तरह हमें धनोंकी न्यूनता न रहे। हम धनवान् और ऐश्वर्यवान् बनें सुखी बनें और आनन्दमें रहें। सब राज्यवैभव हमें प्राप्त हो और हम चक्रवर्ती राज्य करके उत्तम सुखी बनें।

ऋषियोंने यह परमेश्वरसे मागा। यह प्रार्थना सुनकर परमेश्वरने जो उत्तर दिया वह यह है—

परमेश्वरका उत्तर

" हे भक्तो! तुम अपना संगठन करो, संवाद करो, अपने मनोंको शुभसंस्कारसे सम्पन्न करो, और प्राचीन समयके विबुध जैसा अपने कर्तव्यका भाग करके सुखी बने थे, उसी प्रकार तुम भी अपने कर्तव्यका भाग करते रहो।" (मं० २)

" हे भक्तो! तुम्हारा विचार एक हो, तुम सबकी सभा एकही हो, तुम्हारा मन एकही विचार करे, तुम्हारा चित्त एकही ध्येयका चिन्तन करे, इसलिये तुम्हें यह एकताका रहस्यमय उपदेश किया है, तुम सब एकही हवन-सामग्रिका हवन करके यजन किया करो।" (मं० ३)

" तुम्हारी आकांक्षा एक हो, तुम्हारे हृदय एक हों, तुम्हारा मन एक हो, इसीसे तुम उत्तम संगठित होकर सुखी हो जाओगे।" (मं० ४)

यही तुम्हारी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन है। इस तरह अपना संगठन करो, अपना सांघिक बल बढाओ और इस विश्वमें यशके भागी बनो। यह समझो कि प्रयत्नके विना प्राप्त हुए धनसे किसीका कल्याण नहीं हो सकता, अतः तुम अपनी उन्नतिका प्रयत्न स्वयं करो और उन्नत हो जाओ।

संक्षेपसे यह उपदेश किया गया है। अब इसका अधिक विचार करना है। द्वितीय मन्त्रमें संगठनके लिये चार उपदेश किये गये हैं—

संगठन करो

१ (यूयं) संगच्छध्वम् = तुम सब संगठित हो जाओ, तुम सब मिलकर चलो, चलनेके समय पंक्ति बनाकर चलो, एक स्थानपर प्रतिदिन उपस्थित रहो, मिलकर जाओ और मिलकर आजाओ, जो करना हो वह मिलकर करो। एकताका भाव बढाओ और परस्पर वैमनस्यको दूर करो। मानवोंकी उन्नतिके लिये संगठित होना यह पहिला साधन है। एकता स्थापन होनेके पश्चात्ही अन्य साधन हो सकते हैं। संगठनके लिये एक स्थानपर मिलना, प्रतिदिन एकत्र आना अत्यावश्यक है।

पर केवल एक स्थानपर आनेसेही कुछ नहीं बनता! एक स्थानपर आना यह केवल शारीरिक संगठन है। इसके साथ विचारोंकी एकता भी चाहिये, इस वैचारिक एकताके साधनके लिये आगेका उपदेश है—

प्रेमपूर्वक संवाद

२ (यूयं) सं वदध्वम् = संवाद करो, एक स्थानमें उपस्थित होनेके पश्चात् ' संवाद ' करना योग्य है, विवाद नहीं, परन्तु संवादही करना चाहिये। एकताका संगठन बढानेके लिये जो वार्तालाप होता है उसका नाम ' संवाद ' है, और प्रत्येक अपना पक्ष समर्थन करता है और दूसरे पक्षका धिक्कार करता है, उस बातचीतका नाम विवाद है, यही आगे जाकर वितण्डवादमें परिणत होता है और एकताके स्थानपर फूट उत्पन्न करता है। इसलिये उपदेशमें ' सं वदध्वं ' ऐसा कहा है। (सं) एक स्थानपर मिलकर एकता स्थापित करके बढानेके लिये जो वार्तालाप करना है वही संवाद है। संवादसे संघटन बढता है और विवादसे संघटन टूट जाता है। इसलिये कहा है कि एक स्थानपर आनेके बाद संवाद करो, जो तुम वहां बोलोगे वह संगठन बढानेके लियेही हो। आपके बोलनेसे किसीका दिल न दुखे, पास आनेवाला दूर न चला जाय, पास आनेवाला अपने संगठनमें आवे और दूर रहनेवाला अधिक समीप आवे। इस तरहका वार्तालाप जो है उसका नाम संवाद है। अर्थात् एक स्थानपर आकर अपनी उपस्थिति बढाओ और वहां संवाद करके अपनी मधुरवाणीसे प्रेमके बंधनसे सबको ऐसा बांध दो कि उसमेंसे कोई भी मनुष्य कदापि दूर न जावे।

' संवाद ' का और भी एक कार्य है। हम जिस मार्गसे जा रहे हैं, वह योग्य है या अयोग्य, अपनेमें कुछ त्रुटि है या त्रुटि नहीं है, अपना संगठन बढानेके लिये और अधिक यत्न किस तरह करने चाहिये, इत्यादिका निर्णय करनेके लिये यह संवाद बडाही उपयोगी होता है। संवाद करनेसे मार्ग शुद्ध दिखाई देता है, त्रुटियाँ दूर की जा सकती हैं और संगठनका सामर्थ्य बढ जाता है। अर्थात् गुणदोष-विवेचन इस संवादसे होता है।

एक स्थानपर इकट्ठा होना और संगठन करनेके लिये सम्यक् रीतिसे वार्तालाप करना ये दो उपदेश हमने देखे,

अब तीसरा उपदेश इससे भी अधिक महत्त्वका है वह अब हम पाठकोंके सन्मुख प्रस्तुत करते है —

मनोंको सुसंस्कृत करना

३ वः *मनांसि सं जानताम्*=तुम्हारे मनोंको सुसंस्कृत करो, तुम्हारे मनोंमें एकताकी भावना सुस्थिर करो और यथायोग्य रीतिसे उचित ज्ञान प्राप्त करो। जो इकट्ठे हुए हैं और जो अपनी उन्नतिके विचारोंका मनन करते हैं और वार्तालापमें अपने भावोंको प्रकट करते है, उनसे सम्यक् ज्ञान मिल सकता है और वेही दूसरोंपर अपने शुभसंस्कार डाल सकते हैं। इसका फलितार्थ यह हुआ कि अपना संगठन करनेवाले, एकत्र आ जांय, अपनी संघटना करनेके लिये प्रेमपूर्वक वार्तालाप करके अपना कार्यक्रम निश्चित करें और अपने मनोंको भी संघटनाके शुभ विचारोंसे सुसंस्कृत करें। जबतक मनही एक विचारके नहीं होंगे तबतक उत्तम संगठन नहीं हो सकता। इसलिये इस आदेशका विशेष महत्त्व है। मनही बन्ध तथा मोक्षका कारण है। इसलिये जबतक मन एकमत्यसे शुभविचारमय शुभसंस्कारोंसे सुसंस्कृत नहीं होता, तबतक उत्तम प्रबल संगठन नहीं हो सकता। मनका यह महत्त्व संगठन करनेवाले जानें और अपने मनोंकोही एकताके विचारोंसे भरपूर भर दें।

यहांतक तीन उपदेश हुए हैं, (१) एक स्थानपर उपस्थित हो जाओ, (२) वहां संगठन बढानेका वार्तालाप प्रेमपूर्वक करो और (३) अपने मनोंको एकताके शुभविचारोंसे भरपूर भर दो और इन विचारोंके शुभ संस्कारोंसे अपने मनोंको सुसंस्कृत करो। संगठनके लिये इन तीनों उपदेशोंका अत्यन्त महत्त्व है। अब और एक बात है जिसमें प्राचीन इतिहासकी ओर देखना होता है। वह उपदेश अब करते हैं—

पूर्वजोंका इतिहास

४ *यथा पूर्वे संजानाना देवा भागं उपासते*= जिस तरह प्राचीन कालके सुसंगठित और एकमत हुए विबुध अपने अपने कर्तव्यके भागको किया करते थे, वैसे तुम भी इस समय करते रहो। यहां इतिहास देखनेका आदेश है। प्राचीन समयमें ज्ञानी और अज्ञानी, सुसंगठित और असंगठित, एक विचार धारण करनेवाले और विभिन्न विचार और नाना मतभेद रखनेवाले लोगोंने किस तरह आचरण किया था और उसका परिणाम क्या हुआ था, इस बातका अच्छी तरह विचार करो। सोचो और देखो। इतिहासकी साक्षी लो। आपके शत्रु और आपके मित्र कौन हैं, उनके स्वभाव कैसे हैं, पूर्व समयमें वे आपसे कैसा आचरण करते रहे थे, आज कैसा आचरण कर रहे हैं, उनकी संघटना कैसी है, आपकी कैसी है, इन सब बातोंका विचार करो। और पूर्वकालके बडे ज्ञानी विबुधोंने किस समय कैसा आचरण किया था, और अपनी कठिनताओंको किस तरह पार किया था, यह सब देखो। इस इतिहासकी आलोचनासे तुम्हें अच्छा मार्ग दीखेगा, और तुम्हारा सब प्रकारका भ्रम दूर हो जायगा।

इसीलिये अपने प्राचीन पूर्वजोंका तथा अन्य देशोंके प्राचीन धुरीणोंका इतिहास देखना चाहिये। इस तरह इस मन्त्रमें परमेश्वरने चार उपदेश किये, (१) संगठन करो, (२) प्रेमसे वार्तालाप करके शुभ विचार प्रकट करो, (३) अपने मन सुसंस्कारसम्पन्न करो और (४) प्राचीन समयके ज्ञानियोंने जैसा किया था वैसा अपना कर्तव्य करो। (मं० २)

अब इन चार मुख्य उपदेशोंका विशेष सुबोधताके लिये अधिक स्पष्टीकरण अगले मन्त्रोंमें करते हैं—

५ वः *मन्त्रः समानः* = आपका विचार एक हो, आपका जो भी कुछ रहस्य है, वह एक हो, किसी तरह मतभेद आपके विचारोंमें न हो। गुप्त विचार, गुप्त संकेत, गुह्य संकल्प, रहस्यका भाषण सबका एक हो, आप आपसमें किसीसे छिपाकर कुछ भी न करें। परस्पर खुले मनसे विश्वासपूर्वक, छलकपट छोडकर भाषण करें और अपने विचार प्रकट करें। एकताके लिये संगठनके लिये इसकी अत्यंत आवश्यकता है। यदि किसीको थोडासा भी सन्देह उत्पन्न हो जाय कि मुझसे छिपाकर ये दूसरे कुछ कर रहे हैं, तो इसीसे संघटन टूट जायगा और कटुता उत्पन्न होगी। इसलिये गुप्त विचार सबका एकही रहनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

६ वः *समितिः समानी*= आपकी सभा सबके लिये समान अधिकारसे अन्दर प्रवेश मिलनेयोग्य सबके लिये

समान हो। जिनका संगठन होना है वे सब आपकी सभामें समान अधिकारसे भाग ले सकें, किसीको 'मैं न्यून हूं' या किसीको 'मैं अधिक हू' ऐसा भाव उत्पन्न न हो ऐसी समता सभामें हो। इस सभामें सब समान अधिकारसे एकत्रित हों, वहां वे प्रेमपूर्वक वार्तालाप करके अपने कार्यक्रमोंका निर्णय करें और उसको यावच्छक्य उत्तमसे उत्तम रीतिसे निभावें।

७ वः मनः समानं= आप सबका मन समान हो, अर्थात् एकही विचारसे भरा हो, एक ध्येय, एक उद्देश्य आप सबके सामने हो, परस्पर विरुद्ध भावना किसीके मनमें न हो, तथा सबके मन उत्तम प्रकार सुविचारोंसे सुसंस्कृत हों। किसीपर विपरीत संस्कार न हों। आप सबके मनमें एक विचार रहे, आप सबके आदर्श एक हों, ध्येय और साध्य एक हों, साधन सबके समान हों, विचार, उच्चार, आचारमें समता हो। इसीसे संगठन बढेगा और प्रभावी हो सकेगा।

८ एषां वः चित्तं सह भवतु= आप सबका चित्त परस्परके साथ मिला हुआ हो। किसीके साथ विरोध न हो, मतभेद न रहे, विद्वेष तो रहनाही नहीं चाहिये। अधिक कार्य करनेके विषयमें अहमहमिका हो, पर उसमें दूसरेको हीन दर्शानेका भाव न रहे। इस मन्त्रमें 'सह' पदका विशेष महत्त्व है। सबको साथ लेकर चलनेका भाव उससे प्रकट हो रहा है। संघटनामें अनेक लोग होतेही हैं, उनमें कई विशेष विद्वान् और कई कम पढे होंगे। इस तरह न्यूनाधिक योग्यतावाले लोग सर्वत्र रहतेही हैं। ये सब (सह) साथ साथ रहें, बिखर न जांय, विरोध होनेका विचार चित्तमें भी न आजाय, यह भाव इस 'सह' में यहा है। संघटनाकी सुदृढताके लिये कितनी सावधानता रखनी चाहिये यह इस मन्त्रभागसे स्पष्ट हो रहा है। अल्पसी त्रुटी हुई तो भी संघटना टूट जाती है; इसीलिये सर्वत्र सावधानी रखनी चाहिये। चित्तका काम चिन्तन करनेका है, यह चिन्तन सबको (सह) साथ रखनेके लियेही हो। किसीको तिरस्कृत करनेके लिये न हो। तिरस्कृत हुआ मनुष्य विरोधी बनेगा और संघटनको तोड देगा। इसलिये यहां 'समान' पद नहीं रखा, परन्तु 'सह' पद रखा है। इसका विशेष ध्यान रहे।

९ अहं वः समानं मन्त्रं अभि मन्त्रये= मैं आप सबको समानताके मन्त्रका-समानताके रहस्यका-यहां उपदेश देता हूं, क्योंकि इसीसे आप सबका सच्चा कल्याण हो सकता है। इस समयतक जो समानताका उपदेश किया है वह मानवोंकी भलाईके लिये है। आप आपसमें विरोधताका विचार भी कभी न लावें इसलिये समानत्वके मन्त्रका अभिमन्त्रण किया जा रहा है। सब लोग एकत्वके मन्त्रसे अभिमन्त्रित हुए हों। अर्थात् किसीके मनमें विरोधी भावही खडा न हो।

१० वः समानेन हविषा जुहोमि= एकही प्रकारके हवनसे तुम्हारा यज्ञ होता रहे। यज्ञमें तुम सब समान रीतिसे आओ, समान भक्तिभावसे यज्ञमण्डपमें बैठो, तुम सब एकही मन्त्रको एक स्वरसे बोलो, एकही प्रकारकी हवन-सामग्री अग्निमें अर्पण करो, सब मिलकर यज्ञकी पूर्णाहुति किया करो। इस तरह एकता और समानतासे किया यज्ञही परमेश्वरके स्वीकार करनेके लिये योग्य होता है और ऐसा यज्ञ प्रभु स्वीकारता भी है। "एक समान हविष्यसे किया हुआ यज्ञ मैं स्वीकारता हूं" ऐसा यहां जो कहा है उसका भाव यह है। यज्ञमें सबकी भलाईके लिये आत्मशक्तिका समर्पण करना होता है। यह समत्वका भाव इस यज्ञमें प्रकट हो, सबकी अनुभूतिमें यह समत्व आ जाय। क्योंकि यज्ञ सबका संगठन करनेके लियेही होता है। यज्- "देवपूजा, संगतिकरण (संगठन) और दान" ये तीन भाव यज्ञमें मुख्य हैं। (मं० ३)

११ वः आकूतिः समानी= आप सबकी आकांक्षा समान हो, इच्छा और ध्येय एक हो, वह एक दूसरेका विरोध करनेवाला न हो, परस्परका सहायक हो। 'आकूति' का अर्थ है, "इच्छा, आकांक्षा, सिद्धिकी इच्छा, ध्येयसिद्धिकी इच्छा।" यह जिनकी एक होगी वेही संगठित हो सकते हैं। जिनमें स्पर्धा होगी, वे संघटित न होते हुए वे विभक्त हो जांयगे। इसीलिये कहा है कि आप सबकी मनीषा एक हो अथवा समान हो।

१२ वः हृदयानि समानानि सन्तु= आपके अन्तःकरण समान हों, एक जैसे हों। परस्पर प्रेमभावसे परिपूर्ण हों।

१३ वः मनः समानं अस्तु= आप सबका मन भी समान हो। मनके विचार एक हों, इच्छाएं एक हों, ध्येय एक हों और मनके संस्कार भी समान अर्थात् एक जैसेही हों।

१४ यथा वः सुसह असति= इससे तुम सबका शुभ सहवास होगा, तुम सबका उत्तम संगठन होगा। पूर्वोक्त प्रकार तुम्हारा ऐकमत्य हो जानेपर तुम्हारा उत्तम संगठन होगा और तुम सब उत्तम ऐश्वर्यसम्पन्न हो जाओगे, परम सुखसे युक्त हो जाओगे। उत्तम ऐश्वर्य और श्रेष्ठ धनप्राप्तिकी जो तुम्हारी इच्छा है वह इस तरह सफल होगी। (मं० ४)

सम्पूर्ण सूक्तका आशय

प्रथम मन्त्रमें ऋषियोंने परमेश्वरकी प्रार्थना की थी कि 'हमें भरपूर धन दीजिये।' यह प्रार्थना श्रवण करनेके पश्चात्, परमेश्वरने अपने भक्तोंको धन तो दिया नहीं, परन्तु संवदनका उपदेश किया। परमेश्वर भक्तोंकी प्रार्थना सुनते हैं, वह इस तरह सुनते हैं। वे धनसे भरी सन्दूक देते नहीं, परन्तु आचरणका मार्ग बतलाते हैं जिस आचरणके करनेसे मनुष्य धन प्राप्त करके यशस्वी, वर्चस्वी, तेजस्वी और सुखी हो सकते हैं। प्रभुका यह मार्ग यहां बताया है।

संगठनका उपदेश इस सूक्तमें जो प्रभुद्वारा बताया है वह इस तरह है- 'हे भक्तो! हे लोगो! तुम एकत्र मिलते रहो, अपनी सभा बनाओ, वहां एक स्थानपर बैठकर प्रेमपूर्वक वार्तालाप करो, अपने मनोंको शुभसंस्कारोंसे सुसंस्कृत करो, तथा जिस तरह तुम्हारे पूर्वजोंने, तुम्हारे प्राचीन कालके श्रेष्ठ सज्जनोंने अपने अपने कर्तव्य किये थे, वैसे तुम भी किया करो। तुम्हारा गुप्त विचार एक हो, तुम्हारी सभा सबके लिये समान हो, तुम्हारे मनके विचार सबोंके समान हों, उनमें वैपरीत्य न रहे, तुम सबका चित्त एक जैसा हो। तुम्हारा कल्याण हो इसीलिये मैं तुमको यह ऐकमत्य करनेका उपदेश दे रहा हूँ। संगठन करनेका उपदेश कर रहा हूँ। ऐसा तुम करके अपने आपको अच्छी तरह सुसगठित करो और सब मिलकर एक अग्निमें एकही हवि अर्पण करके यज्ञ करो। तुम सबकी आकांक्षाएं समान हों, मन और हृदय समान हों। ऐसा करोगे तो तुम सुसंगठित होकर यशस्वी और सुखी हो सकोगे। अपना जीवित सफल बना सकोगे।

ध्यान दीजिये

इस सूक्तमें—

१ वः मनांसि सं जानताम्। (मं० २)
२ वः मनः समानम्। (मं० ३)
३ वः चित्तं सह। ,,
४ वः मनः समानं अस्तु। (मं० ४)

इस तरह तीन वार 'मनः' शब्दका प्रयोग करके और एक वार 'चित्त' पदका उपयोग करके संगठनका उपदेश कहा है। शेष पद एकएक वार प्रयुक्त हुए हैं। 'मन' का ही तीन वार प्रयोग इसलिये किया है कि मनके कारण संगठन हो सकता है और बना बनाया संगठन बिगड भी सकता है। मनकोही दक्ष स्थितिमें सदा रखना चाहिये। मानवके इन्द्रियोंमेंसे मनकोही अधिक स्वाधीन और अधिक शुभसंस्कारसम्पन्न करना चाहिये। यह बतानेके लियेही मनको सम करनेका उपदेश इतनी अधिक वार किया है।

संगठन करनेवाले इस बातको ध्यानमें रखें। अब इसी सूक्तका अथर्ववेदका रूपान्तर देखिये—

(२) सांमनस्यम् ।

(अथर्व० ६।६४) अथर्वा । सांमनस्यं, १ देवाः । अनुष्टुप्, २ त्रिष्टुप् ।

सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते १
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम् ।
समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभिसंविशध्वम् २
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ३

इस सूक्तमें (१) सं जानीध्वं, (२) सं पृच्यध्वं (मं० १), (३) समानं व्रतं (मं० २), (४) समानं चेतो अभि संविशध्वम् । (मं० २) ये चार मन्त्रभाग ऋग्वेदके पाठसे विभिन्न हैं, इसलिये इनकाही हम विचार करेंगे। शेष मन्त्रभाग ऋग्वेदके पाठके समान हैं, अतः उनका विवरण पूर्व विवरणमें आचुका है।

१ सं जानीध्वम् = आप सब संगठित हो जाओ, परस्परको अच्छी तरह जान लो, परस्परके पास आकर रहो,

२ सं पृच्यध्वम् = तुम परस्परका सम्पर्क बढाओ,

३ समानं व्रतम् = तुम सबका एकही व्रत हो, एकही अंगीकृत कार्य हो,

४ समानं चेतो अभि संविशध्वम्= एक चित्त तुम सब धारण करो।

शेष सूक्त ऋग्वेदके सूक्तके समानही है। संगठित हो जाओ, संगठन बढानेके लिये तुम आपसमें अपना अधिकसे अधिक सम्पर्क उत्पन्न करो। नाना प्रकारके प्रसंग उत्पन्न करके परस्परका सम्पर्क बढाओ। सबका मत एक हो, नियम और निष्ठापूर्वक लिया हुआ कर्म व्रत कहलाता है। इस तरह तुम सब प्रतिज्ञापूर्वक एक व्रतका धारण करो। रहना, सहना, वेशभूषा धारण करना, अध्ययन करना आदि अनेक बातोंमें व्रताचरणकी आवश्यकता है। व्रत धारण करनेसे व्रतधारियोंका संगठन होता है और व्रतपालनसे शक्ति भी बढ जाती है। सबका एक प्रकारका चिन्तनका विषय हो। सबका प्राप्तव्य एक हो।

ये अथर्ववेदके मन्त्रभाग ऋग्वेदके मन्त्रभागोंका अभिप्राय अधिक स्पष्ट कर रहे हैं। सं गच्छध्वं=सं पृच्यध्वं= इस अथर्ववेदके पदसे ऋग्वेदके पदका अर्थ अधिक स्पष्ट हुआ है। परस्परका सम्पर्क बढानेसे संगठन होता है, यह महत्त्वका आशय अथर्वके पदसे स्पष्ट हुआ है। सं जानतां= सं जानीध्वं= ये दो पद एक जैसेही हैं।

अथर्ववेदके ' समानं व्रतं ' इस मन्त्रभागसे व्रत धारणका विशेष महत्त्व बताया है। जो संघटनके लिए अत्यन्त हितकारक है। सबका व्रत, नियम-बन्धन एकही होनेसे उन सबका अच्छी तरह संगठन हो सकता है।

अथर्व-सूक्त ' अथर्वा ' ऋषिका है और ऋग्वेद-सूक्त ' संवनन ' ऋषिका है। ऋग्वेदसूक्तमें पाठभेद करकेही अथर्वा ऋषिने अथर्वसूक्त प्रकाशित किया ऐसा पाठभेदके देखनेसे कोई कह सकता हैं। पाठभेदके कारण अर्थकी स्पष्टता अधिक अच्छी हुई है। इतनी पाठभेदसे अर्थकी स्पष्टता करनाही अथर्वाका कार्य यहां दीखता है। संवनन और अथर्वा ये दोनों ऋषि आंगिरस गोत्री हैं। अर्थात् आंगिरसी विद्याके ये विस्तारक यहां प्रतीत होते हैं।

अथर्ववेदमें कां० ३।३०।१-७ एक सूक्त है जो इसी विषयपर अधिक प्रकाश डालता है, अतः उसका अब विचार करते हैं—

(३) सांमनस्यम्।

(अथर्व० ३।३०) अथर्वा। चन्द्रमाः, सांमनस्यम्। अनुष्टुप्, ५ विराड् जगती, ६ प्रस्तारपङ्क्तिः, ७ त्रिष्टुप्।

सामान्य उपदेश—

सहृदयं, सांमनस्यं, अविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यं अभि हर्यत, वत्सं जातं इवाघ्न्या ॥ १ ॥

कौटुम्बिक स्वास्थ्य—

अनुव्रतः पितुः पुत्रो, मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥ २ ॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्, मा स्वसारं उत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ ३ ॥
येन देवा न वियन्ति, नो च विद्विषते मिथः।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे, संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥ ४ ॥

सामाजिक संगठन –

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो, मा वि यौष्ट, संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत, सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥ ५ ॥
समानी प्रपा, सह वोऽन्नभागः, समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चो अग्निं सपर्यतारा नाभिं इवाभितः ॥ ६ ॥
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन् त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥ ७ ॥

इस सूक्तमें प्रथम मन्त्र सर्वसामान्य प्रेमपूर्वक व्यवहार-का उपदेश सबको करता है, आगेके ३ मन्त्र कुटुम्बका परस्पर प्रेममय बर्ताव होनेका उपदेश देते हैं, अन्तिम तीन मन्त्रोंमें सामाजिक संगठन करनेका उपदेश है। अतः ये उपदेश क्रमपूर्वक अब देखिये—

सर्वसामान्य सहृदयताका उपदेश

इस प्रथम मन्त्रमें चार उपदेश हैं जो व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज और राष्ट्रकी सहृदयता बढानेके लिये अत्यन्त उपयोगी हैं—

१ वः सहृदयं कृणोमि = तुम्हारे अन्दर परस्पर सहृदयता रहे, प्रेमका बर्ताव तुम्हारा परस्पर होता रहे, दूसरेके दुःखसे दुखी और दूसरेके सुखसे सुखी होते रहो, तुम्हारा विचार, उच्चार, आचार तथा इङ्गितकी हलचल प्रेमपूर्ण होती रहे, कभी इसमें उदासीनता न हो।

२ वः सांमनस्यं कृणोमि = तुम्हारे अन्दर मनकी समता रहे, विषम भाव तुम्हारे अन्दर उत्पन्न न हो। समता, एकता, अद्वेष, प्रेमभाव, समभाव तुम्हारे अन्दर हो।

३ वः अविद्वेषं कृणोमि = तुम्हारे अन्दर परस्पर अद्वेषका भाव स्थापन करता हूं। तुम्हारे अन्दर द्वेष उत्पन्न न हो, प्रेम बढे और परस्पर सहानुभूति रहे।

४ अन्यः अन्यं अभि हर्यत, जातं वत्सं अघ्न्या इव = तुम एक दूसरेसे ऐसा प्रेम करो, जैसी गौ अपने नवजात बच्चेसे प्रेम करती है। नवजात वत्सपर गौका अद्भुत प्रेम होता है, वैसा प्रेम एक मनुष्य दूसरे मानवपर करे। मनुष्यमें ये गुण सुस्थिर रहें यह भाव यहां है। सहृदयता, समनस्कता, अद्वेष और अत्यन्त उत्कट प्रेम ये गुण मनुष्यके अन्दर रहें और बढें। इन गुणोंसेही मनुष्य श्रेष्ठ मानव बनता है।

आदर्श-कुटुम्ब

इस सूक्तके अगले तीन मन्त्रोंने आदर्श कुटुम्ब कैसा होता है यह बताया है, देखिये—

१ पितुः अनुव्रतः पुत्रः भवतु = पिताका प्रशस्त कार्य आगे चलानेवाला पुत्र हो, पिताके अनुकूल पुत्र रहे, विरोध न करे।

२ पुत्रः मात्रा संमनाः भवतु = पुत्र माताके साथ समान मनोभाव धारण करे। माताके मनके साथ पुत्र अपना मन मातृप्रेमसे भरपूर भरा रखे। पुत्र कभी माताके साथ उदासीनताका बर्ताव न करे।

३ जाया पत्ये मधुमतीं शन्तिवां वाचं वदतु = पत्नी पतिके साथ मधुर और शान्तियुक्त भाषण करे। कदापि कठोर शब्दोंका और कटु वाक्योंका प्रहार न करे। पति भी पत्नीके साथ इसी तरह मीठा तथा शान्ति बढानेवाला भाषण करे। जिससे घरके अन्दर प्रेमका साम्राज्य बढे। (मं० २)

४ भ्राता भ्रातरं मा द्विक्षत् = भाई भाईके साथ द्वेष न करे,

५ उत स्वसा स्वसारं मा द्विक्षत् = और बहिन बहिनका द्वेष न करे। अर्थात् भाई-बहिनका अथवा बहिन-भाईका भी कभी द्वेष न करे। घरका कोई मनुष्य दूसरेके साथ कटुताका कभी व्यवहार न करे, द्वेषका भाषण न करे, सदा प्रेमपूर्ण व्यवहारही परस्पर करता रहे।

६ सम्यञ्चः सव्रताः भूत्वा, भद्रया वाचं वदत = परस्पर प्रेम धारण करके और एकव्रतमें दत्तचित्त रहकर परस्पर मित्रता बढानेवाला प्रेमपूर्ण भाषण करते रहो। परस्पर प्रेम करो, एक नियमसे चलो और कल्याण करनेवाला भाषण करो। (मं० ३)

७ येन देवाः न वियन्ति, नो च मिथः विद्विषते, तत् संज्ञानं ब्रह्म, वः गृहे पुरुषेभ्यः कृण्मः = जिससे व्यवहार करनेवाले विबुध आपसमें विभक्त नहीं होते, और परस्पर द्वेष नहीं करते, वह एकता बढानेवाला ज्ञान, तुम्हारे घरके मनुष्योंको हम देते हैं। अर्थात् तुम विभक्त न हो, आपसमें द्वेष न करो और अपने घरके सब लोगोंमें एकताका ज्ञान बढाओ। (मं० ४)

इस मन्त्रमें 'पुरुष' शब्दका अर्थ 'मानव' है अर्थात् स्त्री और पुरुष दोनोंका समावेश इसमें होता है। इन तीन मन्त्रोंमें आदर्श कुटुम्बका वर्णन है। कौरव पांडवोंने इस वेदोपदेशको ठुकराया, इससे देशके असंख्य तरुण वीरोंका संहार हुआ। यदि वे इस उपदेशके अनुसार चलते, एक होकर दिग्विजय करते, तो आसमुद्रभूमिके अधिपति बनते।

समाजका संगठन

अन्तिम तीन मन्त्रोंमें समाजका संगठन करनेका उपदेश है। व्यक्ति-सुधार, कुटुम्बका सुधार और समाजका सुधार इसीसे हो सकता है। जो समाज सुसंघटित है वही दिग्विजयी होता है। इसलिये प्रत्येक समाजको अपना बल बढानेके लिये सुसंघटित होना योग्य है—

८ ज्यायस्वन्तः = श्रेष्ठोंका सन्मान करनेवाले बनो, श्रेष्ठोंको अपने अन्दर सन्मानसे रखो, श्रेष्ठोंका श्रेष्ठपन सन्मानके साथ देखनेवाले और उसका आदर करनेवाले बनो,

९ चित्तिनः = उत्तम विचार करनेवाले बनो,

१० मा वि यौष्ट = विभक्त न हो जाओ, सुसंगठित बनो, आपसमें विरोध न करते रहो,

११ सं राधयन्तः = उत्तम प्रकार मिलकर, संघटित होकर, कार्यसिद्धितक प्रयत्न करो, सिद्धि प्राप्त होनेतक अपना कार्य बीचमेंही न छोडो,

१२ सधुराः चरन्तः = कार्यकी धुरा लेकर, अर्थात् अग्रगामी नेता बनकर, अपने अनुयायियोंका अगुआ होकर, उनके अग्रभागमें रहते हुए आगे बढो, सिद्धितक पीछे न हटो।

१३ अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्तः एत = एक दूसरेके साथ प्रेमपूर्वक मीठा भाषण करते हुए एक स्थानपर इकट्ठे होनेके लिये आओ, प्रेमपूर्ण वार्तालाप करना यह संगठनका बडा साधन है यह न भूलो।

१४ वः सध्रीचीनान् संमनसः कृणोमि = आप सबको मैं एक ध्येयसे चलनेवाले और एक मनवाले करता हूं। अर्थात् तुम सब एक उद्देश्य अपने सामने रखो, उसीकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करो और अपने मन समान विचारोंसे शुभ संस्कारयुक्त करो, एकताके विचारसे भरपूर भर दो। (मं० ५) यही मन्त्रभाग पुनः ७ वें मन्त्रमें है।

१५ वः प्रपा समानी तथा वः अन्नभागः सह भवतु = आप सबका जलपान करनेका स्थान एक हो, तथा आप सबका अन्न सेवन, भोजन साथ साथ बैठकर होवे। जिनका संगठन करना हो उनमें खानपानमें विभेद न हो।

१६ समाने योक्त्रे वः सह युनज्मि = एकही धुराके नीचे तुम सबको मैं जोड देता हूं। अर्थात् जिनका संगठन करना हो उनको एक उद्देश्यके लिये, एक सिद्धिके लिये जो जो कार्य करने होते हैं, उनमें लगा देना योग्य है। सबपर एक कार्यका भार हो तो वे सब संघटित होते हैं। एक कार्य करनेवालोंकी संघटना होती है।

१७ अग्निं सम्यञ्चः सपर्यत, नाभिं अभितः आरा इव = अग्निके चारों ओर बैठकर अग्निकी उपासना किया करो, जैसे नाभिके चारों ओर आरे होते हैं, उस तरह अग्निके चारों ओर तुम उपासना करनेके लिये बैठो। तुम चक्रके आरे बनो और चक्रकी नाभि अग्निको मानो। ऐसा यह यज्ञचक्र घूमता रहे। यज्ञसे संगठन होता और बढता जाय। (मं० ६)

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि = यही मन्त्रभाग मन्त्र ५ में है, यहां वही फिर आया है। इस द्विरुक्तिसे यह बताया है कि इस मन्त्रभागमें कहे उपदेशकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। 'आप सबको मैं एक ध्येयसे कार्य करनेवाले और एक मनोभाववाले करता हूं।' संगठन करनेवाले इसपर विशेष बल दें।

१८ संवननेन सर्वान् एकश्नुष्टीन् कृणोमि = परस्परकी सम्यक् सेवासे मैं तुम सबको एक नेताके नीचे एकत्रित करता हूं। एक प्रकारके खानपानसे रहनेवाले, एक रहनसहनमें रहनेवाले, एक नेताके अनुगामी, एक प्रकारके परस्परकी सेवासे एकत्र हुए, इस तरहसे सुसंगठित मैं तुम्हें करता हूं। अर्थात् तुम एक नेताके अनुगामी हो, एक बंधनमें रहो, एक प्रमाणसे कार्य करो और उत्तम प्रकारकी परस्परकी सेवा करो जिससे तुम सबकी उत्तम संगठना हो जाय। तुम्हारा बल बढे और यश भी इसीसे बढे।

'वन्' धातुका अर्थ (शब्दे संभक्तौ) 'शब्द करना, सहायता करना' आदि है। परस्पर सहायता, परस्पर सेवाका भाव इसमें है। 'संवन्' का अर्थ 'योग्य रीतिसे सबने मिलकर परस्परकी सहायता, अथवा सेवा करना' है। अन्य बहुतसे इसके अर्थ हैं, पर वे गौण वृत्तिसे हुए हैं। यह 'परस्पर सहायता' का भाव इसका मुख्य अर्थ है जो संघटनाके सूक्तमें प्रमुख स्थान रखता है।

१९ अमृतं रक्षमाणाः देवाः इव, वः सायं-प्रातः सौमनसः अस्तु = अमृतको सुरक्षित रखनेवाले विबुध जिस तरह एकमतसे रहते हैं, उसी तरह तुम सायंकाल और प्रातःकाल, अर्थात् सदा, उत्तम एक विचारसे रहो। तुम्हारा सबका एक मत हो, तुम्हारेमें विरोध न हो।

इस तरह यह अथर्ववेदका संगठन सूक्त है। ऋग्वेदके सूक्तके चार मन्त्र हैं, अथवा तीनही हैं क्यों पहिला मन्त्र तो केवल प्रार्थनारूपही है और अगले तीन मन्त्रोंमें संगठनका उपदेश है। इस सूक्तके ७ ही मन्त्रोंमें संगठनका उत्तम उपदेश है। ऋग्वेदके सूक्तकी अथर्वसूक्तके साथ तुलना अब करेंगे—

ऋग्वेद (१०।१९०)	अथर्ववेद (३।३०)
१ सं गच्छध्वम्। (२)	मा वि यौष्ट। (५) संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः। (५)
२ सं वदध्वम्। (२)	मधुमतीं शन्तिवां वाचं वदतु। (२) सम्यञ्चः भद्रया वाचं वदत। (३) अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत। (५)
३ वः मनांसि सं जानताम् (२) समानं मनः, समानमस्तु वो मनः। (४)	सांमनस्यं, अविद्वेषम्। (१) न वियन्ति, नो च विद्विषते मिथः। (४) सध्रीचीनान् वः संमनसः कृणोमि। (५, ७) सायंप्रातः वः संमनसः अस्तु। (७)
४ पूर्वे संजानानाः देवा भागं उपासते। (२)	सम्यञ्चो अग्निं सपर्यत, आरा नाभिमिवाभितः। (६) देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु। (७)
५ समाना हृदयानि वः। (४)	सहृदयम्। (१)

इस तरह दोनों सूक्तोंके वाक्योंकी तुलना करके विचार करनेसे ऋग्वेदसे संज्ञान-सूक्तकाही विशेष स्पष्टीकरण अथर्ववेदमें हुआ है ऐसा दीखेगा। ऋग्वेद १०।१९० वाँ सूक्त अथर्व० ६।६४ में गया, वहां कुछ थोडा शब्दान्तर हुआ और उसीका अधिक विवरण अथर्व० ३।३० में हुआ है। किस वाक्यका कितना विस्तार है यह भी यहां विदित हो सकता है।

पाठक स्वयं इस तरह तुलना करके देखेंगे, तो उनको वेदका गम्भीर भाव अधिक ध्यानमें आ सकेगा। और वेदोपदेशका स्वारस्य भी ठीक तरह ध्यानमें आ सकता है। अकेले 'समानं मनः' पदोंका स्पष्टीकरण अथर्वके ३।३ मन्त्रोंमें हुआ है। वेदमन्त्रही वेदमन्त्रोंका स्पष्टीकरण करते हैं, यह बातही विशेष रीतिसे देखने और जानने योग्य है। वेदमन्त्रोंका भाष्य वेदमन्त्रोंमेंही इस तरह मिल सकता है।

अब अथर्ववेदके इसी तरहके २ सूक्तोंका इसके साथ साथ विचार करते हैं—

(४) सांमनस्यम्।

(अथर्व० ६।९४; ३।८।५-६) अथर्वाङ्गिराः। सरस्वती, (५-६ सांमनस्यम्)। अनुष्टुप्, २ विराड् जगती।

सं वो मनांसि, सं व्रता, समाकूतीर्नमामसि।
अमी ये विव्रता स्थन, तान् वः सं नमयामसि ॥ १ ॥
अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि, मम चित्तमनु चित्तेभिरेत।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ॥ २ ॥
ओते मे द्यावापृथिवी, ओता देवी सरस्वती।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्चर्ध्यास्मेदं सरस्वति ॥ ३ ॥

(५) सांमनस्यम् ।

(अथर्व० ७।५२) अथर्वा । सांमनस्यम्, अश्विनौ । १ ककुम्मत्यनुष्टुप्, २ जगती ।

संज्ञानं नः स्वेभिः, संज्ञानमरणेभिः ।
संज्ञानमश्विना युवं इहास्मासु नि यच्छतम् ॥ १ ॥
सं जानामहै मनसा, सं चिकित्वा, मा युष्महि मनसा दैव्येन ।
मा घोषा उत्स्थुर्बहुले विनिर्हते, मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते ॥ २ ॥

अब इन मन्त्रोंका अर्थ देखिये। ये सब सूक्त संगठनकाही उपदेश किस तरह करते हैं वह अब देखिये—

१ वः मनांसि सं नमामसि = हम आप सबके मनोंको एकताकी ओर विनम्र करके ले जाते हैं। अर्थात् उनमें एकताका भाव भर देते हैं।

२ वः व्रतानि सं नमामसि = आप सबके व्रतोंको हम एकताकी ओर विनम्र करके ले जाते हैं। अर्थात् आपके व्रतों, कर्मों और नियमोंमें हम एकताका भाव भर देते हैं।

३ वः आकूतीः सं नमामसि = आप सबकी आकांक्षाओंको हम एकताकी ओर विनम्र करके ले जाते हैं, अर्थात् आपकी आकांक्षा, इच्छा और योजनाओंमें हम एकताका भाव भर देते हैं।

४ ये अमी विव्रताः स्थन, तान् वः सं नमयामसि = जो ये विरोधी कर्म करनेवाले यहां हैं, जो विरोध मचानेवाले हैं, उन सबको हम एकत्र करके एकताकी ओर विनम्र करके ले जाते हैं। अर्थात् जो विरोध करनेवाले हैं, उनको भी उनका विरोधका भाव दूर करके अपने संगठनमें सम्मिलित करते हैं। विरोधियोंको भी अनुकूल करके संगठनमें मिलाते हैं। (मं० १)

५ अहं मम मनसा वः मनांसि गृभ्णामि = मैं अपने मनसे तुम सबके मनोंको आकर्षित करता हूं। अर्थात् मैं अपना मन ऐसा सुयोग्य बनाता हूं कि जिसके प्रभावके आकर्षणसे सबके मन एक केन्द्रमें केन्द्रित हो जांयगे। इससे संगठन बढेगा।

६ मम चित्तं वः चित्तेभिः अनु एत = मेरे चित्तके अनुकूल आप सब अपने चित्तोंके साथ आ जाइये। अर्थात् अपने नेताके विचारों, इच्छाओं और आकांक्षाओंके साथ तुम अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और विचारप्रवृत्तियोंको मिलते जुलते रखो। इससे सब लोग एक विचारके हो जांयगे और संगठन बढ जायगा। यदि प्रत्येक मानव पृथक् पृथक् दिशासे अपने अपने विचार फेंकता जायगा, तो विभेद और विद्वेषही बढ जायगा। इसलिये नेताके चित्तके अनुकूल अनुयायियोंके चित्त हों। संगठनके लिये यह आवश्यक है।

७ मम वशेषु वः हृदयानि कृणोमि = मैं अपने वशमें तुम्हारे हृदयोंको करता हूं। नेता उक्त प्रकार अपने अनुयायियोंके हृदयोंको आकर्षित करता है और उनमें ऐकमत्य स्थापित करता है।

८ मम यातं वर्त्मानः अनु एत = मेरे मार्गके अनुसार तुम सबके मार्ग हों। जिस मार्गसे मैं जाता हूं उसी मार्गके अनुकूल तुम सबके मार्ग हों। नेता यह अपने अनुयायियोंसे कहता है। जो अनुयायी ऐसा सुनकर वैसे चलते हैं उनमें संगठन प्रबल बनता है। (मं० २)

९ द्यावा-पृथिवी ओते, देवी सरस्वती ओता, इन्द्रः च अग्निः च मे ओतौ, इदं सरस्वती ऋध्यास = (देखो !) ये द्यु और पृथ्वी परस्पर नित्य सम्बन्धित हुए हैं, देवी सरस्वती (ज्ञानियोंके साथ) सम्बन्धित है, ये इन्द्र और अग्नि (विश्वके साथ) सम्बन्धित हैं। (यह सम्बन्ध अटूट और अखण्ड है, कभी ये वियुक्त नहीं होते। यह अभेद्य संघटना देखकर हम सब ऐसेही सुसंघटित

होकर इस उत्तम संघटनासे) हम सरस्वती-विद्यादेवीकी सहायतासे परम उन्नतिको प्राप्त हो जायगे।

यहां ' ओता, ओते, ओतौ ' ये पद अत्यन्त महत्वके हैं। जिस तरह वस्त्रमें ताने और बानेके धागे एक दूसरेके साथ मिलेजुले होते हैं, उस प्रकारके सुव्यवस्थित सुसंघटित मेलको ओतप्रोत कहते हैं। यही पद ' ओत ' यहां प्रयुक्त हुआ है। द्यावापृथ्वी परस्परमें जकडी हैं, इन्द्र और अग्नि परस्पर सम्बन्धित है, सरस्वती विद्यादेवी वेदमें और ज्ञानियोंमें ओतप्रोत हुई है। जिस तरह वस्त्रमें ताने और बाने ओतप्रोत हुए होते हैं, उस तरह पृथ्वी और आकाश अर्थात् पृथ्वी, (आप, तेज, वायु और) आकाश तथा विद्युत् सम्पूर्ण विश्वमें ओतप्रोत भरे हैं। पूर्वोक्त द्यावा-पृथ्वीमें दोनों ओरके दो लोक लिये, अतः इनमें इनके बीचके सब आये हैं ऐसाही समझना योग्य है। देखिये—

पृथ्वी और द्यु लेनेसे बीचके सब लोक आ जाते हैं। ये सब ओतप्रोत इस विश्वमें हुए हैं, इनके ओतप्रोत होनेसे, इनके सुसंगठित होनेसेही इस विश्वमें इतना प्रचण्ड सामर्थ्य उत्पन्न हुआ है। संघटनाकाही यह सामर्थ्य है। मानवी समाज इस तरह ओतप्रोत सुसंघटित हो जायगा, तोही उसका बल बढ जायगा। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र अथवा ज्ञानी-वीर-कृषीवल-शिल्पी ये समाजके ताने और बाने हैं। ये परस्पर मिले रहेंगे, तोही समाजरूपी वस्त्र उत्तम अवस्थामें रहता है, अन्यथा समाजरूपी वस्त्र फट जायगा। इस तरह संघटनामें रचना कैसी होनी चाहिये, परस्पर अवलम्बितता कैसी होनी चाहिये, यह सब मन्त्रके ' ओत ' पदसे बताया गया है। संगठन करनेवाले इससे योग्य बोध लें।

संघटना करनेवाले वस्त्रमें तानेबाने कैसे परस्पर सुसंगठित रहते हैं इसका विचार करें और अपनी संघटना ऐसी बनावें कि उसमें प्रत्येक स्तरके मानवके लिये योग्य स्थान रहे और उसके बलका समाजकी उन्नतिके लिये योग्य उपयोग होता रहे। वस्त्रमें श्वेत, लाल, पीले और काले धागे रखकर कितनी शोभा निर्माण की जा सकती है, यह बात नाना प्रकारके कलाकौशल्यके वस्त्र देखनेसे हरएकको विदित हो सकती है। इसी तरह ब्राह्मण (श्वेतवर्ण), क्षत्रिय (रक्तवर्ण), वैश्य (पीतवर्ण) और शूद्र (कृष्णवर्ण) के धागे समाजरूपी वस्त्रमें ओतप्रोत होनेसे समाजका वस्त्र भी सुन्दर बनता है।

इस तरह विचार करनेसे मानवोंकी संघटना कैसी अभेद्य करनी चाहिये, इसका पता लग सकता है। अत. यह मन्त्र संघटना करनेवालोंके लिये अत्यंत उत्तम मार्गदर्शक होनेवाला है। समाजका न फटनेवाला वस्त्र बनाना है। बिखरे धागे रखने नहीं हैं। तथा ये धागे ऐसे ओतप्रोत करने हैं कि जिस तरहकी बुनाईसे सुन्दर नकशीदार वस्त्र बने और वह बहुत समयतक टिक सके। इसका नाम है संगठन और वह सांमनस्य-सूक्तोंद्वारा वेदमें प्रकाशित किया है। (मं०३) अब अगला सूक्त देखो—

१० स्वेभिः नः संज्ञानम् = अपने निज लोगोंसे, अपने भाईबन्धुओंसे एकता या प्रेम करनेका ज्ञान हमें हो। (सं-ज्ञानं = एकी-भवनस्य ज्ञानं) एक होकर रहनेका ज्ञान होना चाहिये। अपने भाईयोंसे, स्वजातियोंसे, स्वदेशियोंसे, अपने सम्बन्धियोंसे मिलजुलकर, संगठित होकर रहनेका ज्ञान हमें प्राप्त हो। नहीं तो मूर्खता ऐसी होगी कि स्वजनोंसे तो झगडा करें और परकीयोंके प्रेमके लिये तडकते रहें, ऐसा न हो। इसका अर्थ यह नहीं है कि परकीयोंसे झगडा जाय। प्रेम तो सबपर करना चाहिये, पर स्वकीयोंके साथ प्रथम मिलकर रहना चाहिये।

११ नः अरणेभिः संज्ञानम् = जो परकीय हैं उनसे भी मित्रता, एकता, प्रेमभाव, सहकारिता, मिलजुलकर रहनेका भाव हो।

जिस तरह स्वकीयोंसे प्रेम करना योग्य है, वैसाही परकीयोंसे भी प्रेम करना योग्य है। पर स्वकीयोंके साथ प्रथम एकता हो और परकीयोंसे, दूरके लोगोंसे पश्चात् हो।

ऐसा कभी न हो, कि स्वकीयोंको ठुकराकर परकीयोंके प्रेमके लिये उनके पीछे पीछे दौडते जांय और वे अपनी ओर देखें भी नहीं।

१२ हे अश्विनौ! युवं इह अस्मासु संज्ञानं नि यच्छतम् = हे अश्विदेवो! तुम दोनों यहां हमारे अन्दर एकता तथा संगठन करनेका ज्ञान स्थिर करो। तुम चिकित्सक हो, इसलिये हमारे अन्दर जो बिगड जानेका दोष हो, उसको दूर करो और जिससे प्रेमभाव बढ जायगा वैसे भावको हमारे अन्दर बढा दो। जिससे हमसे उत्तम संगठन हो सके।

१३ मनसा सं जानामहे = हम मनसे संगठन करें, हमारे मनके विचार ऐसे प्रेमयुक्त हों कि जिनसे संगठन बढता जाय।

१४ चिकित्वा सं जानामहे = ज्ञानपूर्वक आयोजना भी हमारी ऐसी हो कि जिससे एकता बढे, प्रेम बढे, संगठन बढे।

१५ दैव्येन मनसा मा युष्महि = दिव्य मनसे हम झगडते न रहें। मन दिव्य शक्तिसे भरपूर भरा है, इसलिये ऐसा कभी न हो, कि हमारे दिव्य शक्तिवाले मनसेही झगडे और युद्ध बढते जांय। हम अपने मानसिक दिव्य शक्तिका ऐसा उपयोग करें कि जिससे प्रेमभाव बढे और विभक्त हुए लोग जुड जांय।

१६ बहुले विनिर्हते घोषाः मा उत्स्थुः = बडे भारी युद्धके अन्दर होनेवाले शब्द घोष न हों। अर्थात् हमारे मनके विचारोंके कारण युद्ध न उपस्थित हों और मारकाट भी न हो।

१७ अहनि आगते इन्द्रस्य इषुः मा पप्तत् = दिनके उदय होनेपर इन्द्रका बाण हमपर न गिरे। अर्थात् हमारा कोई ऐसा अपराध न हो, कि जिससे हमें दण्ड देनेके लिये इन्द्रका वज्र हमारे ऊपर गिरे। हम सदा प्रेमकाही बर्ताव करते रहें। हमसे द्वेष कभी न बढे। ऐसा हमारा बर्ताव हुआ तो इन्द्रका वज्र हमपर कदापि नहीं आयेगा।

इस तरह ऋग्वेदके एक सूक्तका और अथर्ववेदके चार सूक्तोंका विचार हुआ। अब हम यजुर्वेदमें आये सांमनस्यके मंत्रभागोंका विचार करते हैं —

संज्ञानं असि, कामधरणं, मयि ते कामधरणं भूयात्॥ (वा० य० १२।४६)

सप्त संसदो, अष्टमी भूतसाधनी, सकामाँ अध्वनस्कुरु, संज्ञानमस्तु मेऽमुना॥ (वा० य० २६।१)

संज्ञानाय स्मरकारीम्॥ (वा० य० ३०।९)

" तू एकता करनेवाला है, इष्टकामोंकी पूर्तताका धारण करो, मेरे अन्दर तेरी इष्टकामोंकी पूर्तता हो॥ ये सात सभाएँ हैं, सब भूतोंकी उन्नतिकी साधना करनेवाली यह आठवी आयोजना है। मेरे सब मार्ग कामनाओंकी पूर्णता करनेवाले हों। इनके साथ अब मेरी मित्रता हो॥ एकताके लिये प्रेम करनेवाली (हम सबकी बुद्धि) हो॥ "

यहां कहा है कि एकताके लिये, संगठनके लिये, विविध प्रकारकी सभाएं हों, उन सभाओंमें भूतोंकी उन्नतिकी साधना होती रहे, सब मार्ग इस संगठनकी पूर्णताके लिये ही हों। अर्थात् किसी मार्गसे गये तोभी संगठनकोही प्राप्त हों। किसीके साथ मेल-मिलाप होना हो तो संगठनके लियेही हो। एकता अथवा संघटना करनेके लिये प्रीति करनेवाली बुद्धि आवश्यक है। अतः इस बुद्धिसे लोग संघटना करें और एकता स्थायी रूपसे स्थापित करें और उन्नतिको प्राप्त हों।

ऋग्वेद, अथर्ववेद और यजुर्वेदमें जो संगठनके लिये आदेश हैं वे यहां संगृहीत किये हैं। इसमें ऋग्वेदके सूक्तका संदेश अथर्ववेदमें अधिक स्पष्ट हुआ है, व्याख्या द्वारा अधिक स्पष्टीकरणके साथ प्रकट हुआ है ऐसा दीखता है। शास्त्रान्तरीय पाठोंका साथ साथ विचार करनेसे ऐसा लाभ होता है। यजुर्वेदमें सात प्रकारकी सभाओंका उल्लेख है। संगठनके लिये सभाओंकी आवश्यकता रहतीही है। ' संज्ञानं कामधरणं ' एकताका सम्यक् ज्ञान, संगठनका योग्य मार्गही इष्टकामोंकी पूर्णता करनेवाला है। अपने मन और बुद्धिमें प्रेम होनेसे यह संगठनका कार्य शीघ्र सफल हो सकता है। और मानवोंको सब प्रकारका धन, यश और इष्ट शुभ फल प्राप्त हो सकता है।

संघटना करनेवाले पाठक इन सूक्तोंका विचार करें और इस मार्गसे चलकर सब प्रकारकी उन्नतिको प्राप्त हों।

संवनन ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(१३)

हिरण्यगर्भ ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका ८३ वाँ अनुवाक)

" ऐश्वर्य बढानेवाला राज्यशासन "

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, ' साहित्य-वाचस्पति '

अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, पारडी [जि० सूरत]

संवत् २००५, सन १९४९

मूल्य आठ आने.

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद् दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८

४ यस्य महित्वा इमे हिमवन्तः, यस्य (महित्वा) रसया सह समुद्रं आहुः, यस्य (महित्वा) इमाः प्रदिशः यस्य बाहू (इति आहुः), कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

४ जिसकी महिमासे ये हिमवाले पर्वत (खडे हैं), जिसकी (महिमासे) नदियोंके साथ समुद्र हैं ऐसा कहते हैं, जिसकी (महिमासे) ये सब दिशा-उपदिशाएं जिसकी भुजाएँ (हैं ऐसा वर्णन करते हैं), उस सुखमय प्रभुकी उपासना हम सब अपने अर्पणसे करें ॥

५ येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृढा, येन स्वः स्तभितं, येन नाकः (स्तभितः), यः रजसः अन्तरिक्षे विमानः, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

५ जिसने यह आकाश उग्र बनाया है, और पृथ्वी सुदृढ बनायी है, जिसने द्युलोक स्थिर किया है और जिसने यह सूर्य स्थिर रखा है, जो अन्तरिक्षके रजो लोकका प्रमाण जानता है, उस सुखमय प्रभुकी उपासना हम सब अपने अर्पणसे करें ॥

६ रेजमाने, अवसा तस्तभाने, क्रन्दसी यं मनसा अभ्यैक्षेताम् । यत्र उदितः सूरः अधि विभाति, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

६ प्रकाशमान परंतु बलसे स्थिर किये हुए द्युलोक और भूलोक जिसकी ओर एकाग्र-मनसे देखते हैं, जहां उदयको प्राप्त हुआ सूर्य प्रकाशता है, उस सुखमय प्रभुकी हम सब अपने अर्पणसे पूजा करें ॥

७ गर्भं दधानाः, अग्निं जनयन्तीः बृहतीः आपः ह यत् विश्वं आयन्, ततः देवानां एकः असुः समवर्तत, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

७ सबके गर्भका धारण करनेवाले, अग्निको उत्पन्न करनेवाले, बडे जलप्रवाह जहांसे सब विश्वमें फैल रहे हैं, वहींसे सब देवोंका प्राणरूप प्रभु प्रकट हुआ है । अतः उस सुखमय प्रभुकी पूजा हम सब अपने अर्पणसे करें ॥

८ दक्षं दधानाः यज्ञं जनयन्तीः आपः यः चित् महिना पर्यपश्यत्, यः देवेषु एकः अधि देवः आसीत्, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

८ बलका धारण करनेवाले और यज्ञकी सिद्धि करनेवाले जलप्रवाह जिसने अपनी महिमासे देखे हैं, जो सब देवोंके मध्यमें एकही मुख्य देव है, उस सुखमय प्रभुकी उपासना हम सब अपने अर्पणसे करेंगे ॥

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान ।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ९

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् १०

---

९ यः पृथिव्याः जनिता, यः सत्यधर्मा वा दिवं जजान, यः च बृहतीः चन्द्राः आपः जजान, (सः) नः मा हिंसीत्, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

९ जिसने पृथिवी उत्पन्न की, जिस सत्यधर्मा प्रभुने द्युलोक बनाया, जिसने बडे चमकनेवाले जलप्रवाह बनाये, वह हमारा नाश न करे, उस सुखमय प्रभुकी पूजा हम अपने अर्पणसे करें ॥

१० हे प्रजापते ! त्वत् अन्यः एतानि ता विश्वा जातानि न परि बभूव । यत्कामाः ते जुहुमः तत् नः अस्तु । वयं रयीणां पतयः स्याम ॥

१० हे प्रजापते ! तुझसे भिन्न दूसरा कोई भी इन सब विश्वकी वस्तुओंपर प्रभुत्व करनेवाला नहीं है। जिस इच्छासे हम सब तेरे लिये यज्ञ कर रहे है, वह हमें प्राप्त हो । हम सब धनोंके स्वामी बनें ॥

किस देवताकी उपासना हम करें ?

इस सूक्तके दस मन्त्र हैं । इनमें नौ मंत्रोंमें अन्तिम चरण 'कस्मै देवाय हविषा विधेम ? ' यह है । इसका अर्थ ' किस देवताकी हम पूजा करें ? ' ऐसा बहुतोंने किया है । इससे यह सिद्ध होता है कि इस सूक्तके द्रष्टाको अथवा रचयिताको पता नहीं कि किस देवताकी पूजा करनी चाहिये । पर मंत्र देखनेसे पता लगता है कि उनमें उपास्य-देवताका भरपूर वर्णन है । मन्त्रोंके तीन चरणोंमें उपास्यका भरपूर वर्णन है, ऐसा यह वर्णन होनेपर भी ' कस्मै देवाय हविषा विधेम ' ऐसा अन्तिम चरण है । इसलिये इस चरणका ऐसा अर्थ नहीं होगा कि जैसा समझा जाता है । ' किस देवताकी हम उपासना करें ? ' यह शंका ऋषियोंके मनमें नहीं थी, उनको उपास्य देवताका निश्चित ज्ञान था । इसलिये इस चरणकी संगति दूसरी रीतिसे लगानी उचित है ।

इस संगतिकी एक रीति ऐसी है कि इस चरणको सबसे प्रथम लें । ' कस्मै देवाय हविषा विधेम ? ' किस देवताके लिये हम हविष्य अर्पण करके यज्ञ करें ? ऐसा प्रश्न पूछें और इस प्रश्नका उत्तर मन्त्रके तीन चरण दे रहे हैं ऐसा समझें ? जैसा—

(प्रश्न) " किस देवताकी हम पूजा करें ? (उत्तर) जो हिरण्यगर्भ सृष्टिके प्रारंभमें प्रकट हुआ था, जो सब भूतमात्रका एकमात्र पति था, जिसने द्यु और आकाशका धारण किया है, (इस देवताकी उपासना तुम किया करो) । " (मं० १) इस तरह सब मंत्रोंके विषयमें समझना योग्य है ।

दूसरी रीति इस मन्त्रकी संगतिकी ऐसी है कि (कस्मै देवाय हविषा विधेम ?) का अर्थ " (ऐसे देवको छोडकर किस दूसरे देवताकी हम उपासना करें ? अर्थात् इसी देवताकी उपासना करना योग्य है, इसके स्थानपर किसी अन्य देवताकी उपासना करना योग्य नहीं ऐसा मानें । जैसा—

(मं २)– " जो आत्मिक बल देता है, जो शारीरिक सामर्थ्य देता है, जिसकी आज्ञा सब अन्य देव शिरोधार्य मानकर पालन करते हैं, जिसके आश्रयमें रहनेसे अमरत्व मिलता है, परंतु जिससे दूर होनेसे मृत्युही होता है, (ऐसे सर्वाधीश प्रभुको छोडकर) किस अन्य देवकी हम उपासना करें ? " अर्थात् किसी अन्यकी उपासना करना योग्य नहीं है । इसी एक प्रभुकी उपासना करना योग्य है ।

हिरण्यगर्भ-ऋषि

प्रजापति ऋषिका पुत्र 'हिरण्यगर्भ' था। इसके देखे ये मन्त्र यहां दिये हैं। ये मन्त्र १० हैं और इनमें पहिले ९ मन्त्रोंका चतुर्थ चरण एकही है। इसका सूक्त ऋग्वेदमें १० मण्डलमें १२१ वाँ है। इसका नाम 'हिरण्य-गर्भ' और इसके पिताका नाम 'प्रजापति' इस कारण इसको 'हिरण्यगर्भ प्राजापत्यः' कहते हैं।

दूसरा भी एक 'हिरण्यगर्भ' ऋषि है जो 'उत्तम' नामक मन्वन्तरके ऊर्ज ऋषिका पिता करके प्रसिद्ध है। पर इसके मन्त्र वेदमें नहीं है। जो मन्त्रद्रष्टा ऋषि है यह प्रजापतिकाही पुत्र है। प्रजापति ऋषिके ८ पुत्र और एक पुत्री हैं। इनके सूक्त ऋग्वेदमें ये हैं—

१ पतङ्गः	ऋग्वेदमें	१०।१७७	मंत्रसंख्या	३ है।
२ प्रजावान्	,,	१८३	,,	३
३ यक्ष्मनाशनः	,,	१६१	,,	५
४ यज्ञ.	,,	१३०	,,	७
५ विमदः	,,	२०–२६	,,	६६
६ विष्णुः	,,	१०४	,,	३
७ संवरणः	,,	५।३३; ३४	,,	१९
८ हिरण्यगर्भ.	,,	१०।१२१	,,	१०
९ दक्षिणा (पुत्री)	,,	१०७	,,	११
				१२७ कुलमंत्र

प्रजापतिके पुत्रोंके कुलमन्त्र १२७ हैं। इनमें पांचवें मण्डलमें केवल १९ मन्त्र हैं और १०८ मन्त्र दशम मण्डलमें हैं। कुल-सूक्त १५ हैं। पांचवें मण्डलमें दो हैं शेष दशम मण्डलमें हैं।

ऋग्वेदमें तीन प्रजापति ऋषि हैं इनके सूक्त और मन्त्र वेदमें ऐसे आये हैं—

१ प्रजापतिः परमेष्ठी– ऋ. १०।१२९ मन्त्र ७

२ ,, वाच्यः– ऋ. ३।३८ (मं.१०); ५४-५६(५२); ९।८४(५); १०।१।१३-१६ (४)= कुलमन्त्र ७१

३ ,, वैश्वामित्रः– ऋ. ३।३८ (मं.१०); ५४ (२२); ५५ (२२); ५६ (८); ९।१०।१।१३-१६ (४) = कुलमन्त्र ६६

वाच्य प्रजापति और वैश्वामित्र प्रजापतिके मन्त्रोंमें ३।५४; ५५;५६ इन सूक्तोंमें संकीर्णता है, अर्थात यहां ऋषिके विषयमें प्राचीन आचार्योंको संदेह है। कईयोंके मतसे एक ऋषि है और कईयोंके मतसे दूसरा है। इनमें हिरण्यगर्भका पिता कौन है यह खोजका विषय है। हमारे मतसे परमेष्ठी प्रजापतिका पुत्र हिरण्यगर्भ है।

यह हिरण्यगर्भका सूक्त अनेक संहिताओंमें गया है। ऋग्वेद, वा॰ यजुर्वेद, अथर्व-संहिता, तैत्तिरीय-संहिता, मैत्रायणी-संहिता, काठक-संहिता आदिमें ये मन्त्र आये हैं। मन्त्रोंके पूर्वापरमें तथा पदानुपूर्वीमें थोडी भिन्नता है, पर प्रायः साम्यही विशेष है। अनेक संहिताओंमें यह सूक्त आनेसे इस सूक्तकी मान्यता विशेष है।

स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम'
पारडी (जि. सूरत)
चैत्र शुक्ल ११, संवत् २००५

निवेदनकर्ता
पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
अध्यक्ष– स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

मुद्रक तथा प्रकाशक— वसंत श्रीपाद सातवळेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, पारडी (जि॰ सूरत)

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

हिरण्यगर्भ ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका ८३ वाँ अनुवाक)

" ऐश्वर्य बढानेवाला राज्यशासन "

(ऋ० मं० १०।१२१) हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः । क (प्रजापतिः) । त्रिष्टुप् ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

अन्वयः- १ अग्रे हिरण्यगर्भः समवर्तत । भूतस्य एकः पतिः जातः आसीत् । सः पृथिवीं उत इमां द्यां दाधार । कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

अर्थ— १ सृष्टिके प्रारंभमें हिरण्यगर्भ प्रकट हुआ। यही सब विश्वका एक स्वामी बना था। उसीने पृथ्वी और इस द्युलोकका धारण किया था। उस सुखमय प्रभुकी अपने अर्पणसे हम सब पूजा करेंगे ॥

२ यः आत्मदा, बलदाः यस्य यस्य प्रशिषं विश्वे देवाः उपासते; यस्य छाया अमृतं, यस्य (अच्छाया) मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

२ जो आत्मशक्ति तथा दूसरे बल देता है, जिसकी आज्ञाका पालन सब देव करते हैं, जिसकी छायामें अमृत है, और जिसकी (छायासे दूर होनाही) मृत्यु है, उस सुखमय प्रभुकी पूजा हम सब अपने अर्पणसे करेंगे ॥

३ प्राणतः निमिषतः जगतः यः महित्वा एकः राजा इत् बभूव, यः द्विपदः चतुष्पदः ईशे, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

३ प्राणधारी तथा आंखकी पलकें बंद करनेवाले जगत्-का जो अपने निज महत्त्वसे एक राजा बना है, और जो द्विपाद और चतुष्पादोंका स्वामी है, उस सुखमय प्रभुकी पूजा हम अपने समर्पणसे करेंगे ॥

'कस्मै देवाय हविषा विधेम' इसका अर्थ करनेकी और एक तीसरी रीति भी है। इसमें 'कस्मै' पदके स्थानपर 'काय' पद माना जाता है। अर्थात् 'कस्मै' यह सर्वनाम है, व्याकरणसे यह सर्वनाम जैसा दीखता है। 'कः' सर्वनाम माना जाय तो उसकी चतुर्थी 'कस्मै' ऐसी होती है और नाम माना जाय तो 'काय' ऐसी चतुर्थी होती है। इस 'कः' का अर्थ 'प्रजापति, परमेश्वर, प्रभु, ईश, ईश्वर' आदि होता है। शतपथमें 'कः वै प्रजापतिः' कहा है। श्री सायनाचार्यजीने भी इस सूक्तके भाष्यमें ३।४ युक्तियां देकर तथा ब्राह्मणवचनोंको उद्धृत करके यहांके 'कस्मै' का अर्थ सर्वनाम नहीं करना चाहिये, प्रत्युत नाम करके, 'सुखमय, सुखस्वरूप प्रजापति परमात्मा' करना चाहिये ऐसा सिद्ध किया है। यही ठीक है। 'काय' के स्थानपर 'कस्मै' ऐसा आर्षप्रयोग हुआ है। अर्थात् 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' का अर्थ 'सुखस्वरूप देवताके लियेही हम हवि अर्पण करके यज्ञ करें' ऐसा अर्थ इस मन्त्रभागका है। प्रभुका स्वरूप आनन्दमय, सुखमय है, उसी प्रभुकी उपासना करना मानवोंके लिये योग्य है यह इस विवेचनका तात्पर्य है। यही अर्थ लेकर हमने ऊपर मन्त्रोंका अर्थ किया है। अब सूक्तका अधिक विवरण करते हैं।

मंत्रोंका स्पष्टीकरण

१ अग्रे हिरण्यगर्भः समवर्तत=प्रारंभमें हिरण्यगर्भ प्रकट हुआ। सृष्टिके प्रारंभमें हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ। 'सं-अवर्तत' का अर्थ 'ऊपर आया, उदित हुआ, उदय होकर ऊपर आया, एकत्रित होकर ऊपर आया, प्रकट हुआ, संघटित हुआ' ऐसा होता है। 'संवृत्' का अर्थ घेरना भी है। प्रकाशसे इसने सब घेर लिया। प्रारंभमें हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ और उसने अपने प्रकाशसे सब विश्वको घेर लिया। 'हिरण्य-गर्भ' कौन है, जिसके अन्दर, जिसके गर्भाशयमें सुवर्ण जैसे अनेक तेजस्वी रमणीय रत्न हैं उसका नाम हिरण्यगर्भ है। प्रातःकाल उदय होनेवाला सूर्य हिरण्यगर्भही है। यह सुवर्णादि तेजस्वी धातुओंका रसही है। सब विश्व इसमें रसके रूपमें होता है। जैसा सबेरे सूर्य आता है वैसाही सृष्टिके प्रारंभमें हिरण्यगर्भ प्रकट हुआ था। मानो वह इस सूर्यका भी सूर्य था।

यही मानो आदि समयका सूर्य है जिससे सब सृष्टि उत्पन्न हुई। यह 'भूतस्य एकः पतिः' संपूर्ण विश्वका, जन्मे हुए वस्तुमात्रका एकही अधिपति था। इसको छोडकर कोई दूसरा अधिपति होनेयोग्य नहीं था। क्योंकि इसीमें सब प्रकारकी शक्तियां थीं, जिन शक्तियोंके कारण यह सर्वतोपरि सबसे श्रेष्ठ ठहरा और सबका अधिपति हुआ।

'सः पृथिवीं उत द्यां दाधार' इसीका पृथ्वीसे लेकर द्युलोकतक सब विश्वको आधार है। जिस तरह कपासका सूत्रको, और सूत्रका कपडेके लिये आधार है, इसी तरह इस हिरण्यगर्भका आधार सब विश्वके लिये है। यही हिरण्यगर्भ सब विश्वके रूपोंमें विभक्त हुआ। 'मैं एक हूं और अनेक हो जाऊंगा' (एकोऽहं, बहु स्यां) ऐसा कह कर, वह एक था परंतु स्वेच्छासे वही विश्वरूप बना।' हिरण्यगर्भ जडचेतन मिलकर अग्निमय गोलक है' उसीसे पृथ्वी और पृथ्वीपरकी सब सृष्टि बनी है। उसीसे यह सब बनता है, उसीके आधारसे रहता है और उसीसे परिपालित होता है। जैसे मिट्टीके घडे, घडे मिट्टीसे बनते हैं, मिट्टीके आधारसे रहते हैं, मिट्टीही उनकी पालना करती है, और लय होनेपर भी मिट्टीमेंही वे मिल जाते हैं। इसी तरह 'हिरण्यगर्भ' से यह सब विश्व बनता है, उसीके आश्रयसे रहता है, उसीकी शक्तिसे परिपुष्ट होता है और अन्तमें उसीमें लीन हो जाता है। पृथिवीसे लेकर द्युलोकतकके सब वस्तुओंकी ऐसीही अवस्था है।

यही सबका एकमात्र प्रभु है और यही सबका उपास्य है। सृष्टिके प्रारंभमें सूर्य जैसा जो हिरण्यगर्भ प्रकट हुआ वही सबका उपास्य है। 'हिरण्यगर्भः समवर्तत' यह पहिला परमात्म-शक्तिका आविष्कार है। इस प्रभुके लियेही हम सबको यज्ञ करने चाहिये। और इसीके लियेही सब कर्म किये जाते है।

२ भूतस्य एकः पतिः जातः आसीत्= बने हुए संसारका यही एकमात्र पालक है। पालक एकही है। यहां दूसरा कोई उपास्य नहीं है। इसके स्थानपर दूसरेकी

उपासना नहीं हो सकती। जो एक पालनकर्ता है उसीकी उपासना सबको करनी चाहिये।

३ स पृथिवीं उत इमां द्यां दाधार = उसी प्रभुने पृथिवीको और इस द्युलोकको आधार दिया है। उसी प्रभुके आधारसे पृथ्वीसे लेकर द्युलोकपर्यंतके सब लोक तथा वस्तुमात्र रहे हैं। पृथिवी और द्युलोकका ग्रहण करनेसे बीचके अन्तरिक्षका ग्रहण हुआ और इनमें समाये सब वस्तुओंका-प्राणी आदिकोंका भी ग्रहण हुआ है। अर्थात् इन सबको प्रभुकाही आधार है॥ (मं० १)

४ यः आत्मदाः, बलदाः= जो प्रभु आत्मिक बल देनेवाला है, जिससे आत्मिक शक्ति मिलती है, इसी तरह अन्यान्य बल भी जिससे प्राप्त होते हैं। स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरोंके बल, आत्म-बुद्धि-मन-इन्द्रियोंके बल इसी तरह सब अन्यान्य प्रकारके बल उसी प्रभुसेही प्राप्त होते हैं, उसीके तेजसे यह सब संसार तेजस्वी हो रहा है, उसीके बलसे यह सब संसार बलवान बन रहा है, इस तरह यह प्रभु बडा सामर्थ्यवाला है।

५ यस्य प्रशिषं विश्वे देवाः उपासते = जिसकी आज्ञाको सब अन्य सूर्यादि देव मानते हैं जिसकी आज्ञाका उल्लंघन कोई भी कर नहीं सकता।

६ यस्य छाया अमृतं, यस्य अच्छाया मृत्युः= जिसकी छत्र छायामें रहनेसे अमरत्व प्राप्त होता है, तथा जिससे विमुख होनाही मृत्युके स्वाधीन होना है। यहां छाया शब्द है और इसके संबंधकी अपेक्षासे अच्छाया शब्दकी कल्पना की है। जिसकी छायामें रहना अमृत प्राप्त करना है और जिसकी छायासे दूर होनाही मृत्यु प्राप्त करना है। ये वाक्य भावसे समझने चाहिये। जड वस्तुकी छाया होना और छाया न होना हो सकता है। परमात्मा चैतन्यरूप है इसलिये उसकी छाया नहीं हो सकती। अतः यहांका छाया पद केवल भावार्थसेही लेना योग्य है। परमात्माकी भक्तिसे अमरत्व और विरोधसे मृत्यु ऐसा भाव यहां समझना चाहिये। वास्तवमें भक्त भी मरे हैं, परंतु सद्भक्तोंकी मृत्यु देहसे होती है, उनका यश अमरही होता है। वे देहसे मरनेपर ज्ञानरूपसे अमर रहते हैं। जिस तरह वैदिक ऋषि देहसे तो मरे हैं, पर ज्ञानसे अमर हुए हैं। इसी तरह इस मन्त्रभागका आशय समझना चाहिये॥ (मं० २)

७ यः महित्वा प्राणतः निमिषतः जगतः एक इत् राजा बभूव = जो अपनी शक्तिकी महिमासे प्राणी-अप्राणी, स्थावर-जंगम, जड-चेतन आदि प्रकारके संपूर्ण विश्वका एकमात्र राजा है, अकेला एकही सबका एकही प्रभु है, सबका एकही एक नियामक है।

८ यः अस्य द्विपदः चतुष्पदः ईशे= जो एक प्रभु इस द्विपाद और चतुष्पादोंपर, सब प्राणियोंपर, सब विश्वपर अधिपति हुआ है, जो सबका एकही नियामक है। (मं० ३)

९ यस्य महित्वा इमे हिमवन्तः= जिसकी महिमासे ये हिमवान पर्वत खडे रहे हैं। पर्वतोंमें सुस्थिर खडे रहनेकी जो शक्ति है वह उसी प्रभुकीही शक्ति है। हिमवान आदि पर्वतोंमें जो भव्यता है, जो महत्ता है, जो शोभा है, जो विशालता है, जो स्थिरता है वही प्रभुका महत्त्व है, प्रभुकि शक्तिसेही यह गंभीरता है। इन पर्वतोंकी उदात्तता इनकी नहीं, अपितु यह सब परमेश्वरकी शक्तिही इस रूपमें आविष्कृत हुई है।

१० यस्य महित्वा रसया सह समुद्रं आहुः= जिसकी महिमासे नदियोंके साथ समुद्रके जलप्रवाह प्रकट हुए हैं ऐसा ज्ञानी कहते हैं। कवि ऐसा वर्णन कर रहे हैं कि इसीकी शक्तिसे रसोंमें रसता रहती है, सब रस इसीके बने हैं वह इसीके सामर्थ्यकी लीला है।

११ इमाः प्रदिशः यस्य बाहू= ये दिशा और उपदिशाएं जिसकी भुजाएं हैं। जिसका सामर्थ्य इन दिशाओंमें प्रकट होता है। (मं० ४)

१२ येन द्यौः उग्रा, येन पृथिवी दृढा, येन स्वः स्तभितं, येन नाकः स्तभितः= जिसकी महिमासे द्युलोक ऐसा उग्र तेजस्वी बना है। जिसके सामर्थ्यसे यह पृथ्वी ऐसी सुदृढ बनी है, जो अपने ऊपर रहनेवाले सब पदार्थोंको धारण करके रही है, जिसके सामर्थ्यसे यह आकाश और उसके अन्दरके नक्षत्र आदि जहांके वहां रहे हैं, इसी तरह जिसने यह सूर्यलोक ऐसा बनाया है कि जो सब प्रकारसे बीचमें रहता हुआ सबका धारण

करता है, स्वयं अपने स्थानपर रहता हुआ सब विश्वके पदार्थोंको यथास्थान रखता है। यह सब महिमा इस समर्थ प्रभुकीही है।

१३ यः अन्तरिक्षे रजसः विमानः = जो अन्तरिक्षमें रहकर संपूर्ण स्थानका परिमाण जानता है। सबका मापन करता है। कौन कहां है कितना दूर या समीप है इसका सब ज्ञान इसको यथायोग्य है। इसके ज्ञानमें थोडासा भी विक्षेप नहीं है। (मं० ५)

१४ रेजमाने क्रन्दसी अवसा तस्तभाने यं मनसा अभ्यैक्षेताम्= तेजस्वी द्यावापृथिवी ये दो लोक इसी प्रभुने अपने बलसे धारण किये हैं, अतः जिस प्रभुको मननपूर्वक अपनी सुरक्षाके लिये देखते रहते हैं। सब विश्वके आंख जिसकी ओर लगे हैं, ऐसा वह प्रभु सर्व समर्थ है।

१५ उदितः सूरः यत्र अधि विभाति= उदित हुआ सूर्य जहां प्रकाशता रहता है, जिसके प्रकाशसे प्रकाशित हुआ सूर्य सब विश्वको प्रकाशित करता है, यह सब इस प्रभुकाही सामर्थ्य है। (मं० ६)

१६ विश्वं गर्भं दधानाः, अग्निं जनयन्तीः, बृहतीः आपः ह आयन्= सब प्रकारके उत्पादक बीजशक्तिको अपने अन्दर धारण करनेवाले, और अग्निको उत्पन्न करनेवाले सब बडे बडे जलप्रवाह सर्वत्र फैल रहे हैं। जलमें बीजशक्ति है जो वनस्पति आदिको उत्पन्न करती है, मेघस्थानीय जलोंमें विद्युत् रूपी अग्नि रहता है, ऐसे जलप्रवाह वनस्पति आदिकोंको उत्पन्न करनेवाले हैं। जल न हुआ तो उत्पत्ति नहीं होगी। ये ऐसे जीवसृष्टिका उत्पादन और पोषण करनेवाले जलप्रवाह जिस प्रभुके सामर्थ्यसे उत्पन्न हुए और विश्वमें फैल रहे हैं वही प्रभु सबका उपास्य हो सकता है।

१७ ततः देवानां एकः असुः समवर्तत= उसीसे सब तेंतीस कोटी देवोंका यह प्राणरूपी प्रभु प्रकट हुआ है। सब प्रकारके अनंत देवोंमें प्राणरूपसे वर्तमान जो एक सूत्रात्मा है वह जिस प्रभुकी शक्तिकाही आविष्कार है। जो अपनेसे सूत्रात्माको निर्माण करता है और उससे सब देवोंके देवत्वका जो पोषण करता है वही उपास्य प्रभु है। (मं० ७)

१८ यः दक्षं दधानाः, यज्ञं जनयन्तीः आपः, यः महिना पर्यपश्यत्= जो बलका धारण करनेवाले तथा यज्ञको निर्माण करनेवाले जलप्रवाहोंको, जो अपनी महिमासे सब ओरसे देखता है, इन सबका निरीक्षण करता है, जलोंमें जिसने बल रखा है और यज्ञ निर्माण करनेकी शक्ति जिसने रखी है वह सबका बल बढानेवाला प्रभु है।

१९ यः एकः देवेषु अधि देवः आसीत्= जो एक देवोंमें मुख्य देव है, वही सबका उपास्य है। (मं० ८)

२० यः सत्यधर्मा पृथिव्याः जनिता, यः वा दिवं जजान, यः च बृहतीः चन्द्राः आपः जजान, सः नः मा हिंसीत् = जो सत्यधर्मा प्रभु पृथ्वी, द्युलोक और ये चमकनेवाले जलप्रवाहोंको उत्पन्न करता है वह हमारा नाश न करे, अर्थात् हमारी सुरक्षा करे। उसकी सुरक्षासे हम सुरक्षित हों।

२१ हे प्रजापते! एतानि ता विश्वा जातानि त्वत् अन्यः न परि बभूव=हे प्रजापते प्रभु! इन सब भूतमात्रपर प्रभुत्व करे ऐसा तुझसे भिन्न दूसरा कोई भी नहीं है। तू एकही सबसे अधिक सामर्थ्यवान् है, इसीलिये संपूर्ण विश्वका एकमात्र प्रभु तूही बना है। तूही एकमात्र सच्चा प्रभु है।

२२ यत्कामाः ते जुहुमः तत् नः अस्तु=जिस इच्छासे हम सब तुम्हारी उपासना करते हैं वह हमें प्राप्त हो और-

२३ वयं रयीणां पतयः स्याम= हम सब सब प्रकारके धनोंके स्वामी हों। राज्य, यश, ऐश्वर्य आदि सब प्रकारके धन हमें मिलें और हम परम सुखको प्राप्त हों।

हिरण्यगर्भ ऋषिका तत्त्वज्ञान

वैसा देखा जाय तो यह सूक्त केवल ईश्वर-उपासनाके लियेही है ऐसा दीखता है, पर इसमें एक राजकीय हेतु भी है। देखिये—

'वयं स्याम पतयो रयीणाम्।' (मं० १०)

'हम सब सब धनोंके स्वामी बनें' यह अन्तिम मांग है। इस मंत्रभागके सभी पद बहुवचनमें हैं, इससे स्पष्ट है कि यहां धन तथा ऐश्वर्य अनेक हैं, स्वामी भी अनेक हैं और धनका उपभोग करनेवाले भी अनेक हैं। हम सब लोग सब प्रकारके ऐश्वर्योंके अधिपति बनें। वे ऐश्वर्य तीन प्रकारके हैं आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक। इनमें भी प्रत्येक क्षेत्रके अनेक प्रकारके ऐश्वर्य हैं—

(१) आध्यात्मिक ऐश्वर्य– आत्मा, बुद्धि, मन, चित्त, इंद्रिय, शरीर इनके बल, बुद्धि, पराक्रम, सामर्थ्य आदि जो प्रभाव हैं वे सब इनमें आते हैं। आत्मिक बल, बौद्धिक सामर्थ्य, मानसिक शक्ति तथा इन्द्रियोंकी शक्तियां, शारीरिक ओज यह सब मुझे प्राप्त हो और ये सब सामर्थ्य मेरे आधीन रहकर मेरा प्रभाव बढावें।

(२) आधिभौतिक ऐश्वर्य– यहां 'भूत' शब्दका अर्थ 'प्राणी' है। प्राणियोंके संबंधसे उत्पन्न तथा प्राप्त होनेवाले ऐश्वर्य मुझे प्राप्त हों और ये मेरे अधीन होकर मेरा प्रभाव बढावें। राज्य, साम्राज्य, स्वराज्य, अधिराज्य, जानराज्य, लोकराज्य, महाराज्य, उद्योग, कारखाने, व्यापार, व्यवहार, हाथी, घोडे, सभाओंमें सन्मान,— सैन्य, नौका, विमान आदिके व्यवहार व उपभोग इसी तरहके ग्राम-नगरोंके आधिपत्य, तथा राज्यसंबंधी, समाज-संबंधी जो भी ऐश्वर्य होते हैं और हो सकते हैं वे सब मुझे मिलें और हम सबको प्राप्त हों। कोई ऐश्वर्य हमें अप्राप्त न हो और यह सब ऐश्वर्य मेरे अधीन रहे। मैं उनका दास न बनूं पर वे सब मेरे आधीन रहें।

(३) आधिदैविक ऐश्वर्य– पृथ्वी, जल, वनस्पति, वृक्ष, उद्यान, पर्वत आदि देवताओंसे प्राप्त होनेवाले धन ऐश्वर्य जैसे जमीन, खेतीवाडी, जलकी विपुलता, वृक्षोंकी वाटिका, उद्यानकी शोभा, पहाडोंकी शोभा, खानोंसे मिलनेवाला वैभव, इस तरह अनेकानेक देवताओंसे प्राप्त होनेवाले अनंत ऐश्वर्य हमें प्राप्त हों और वे सब हमारे अधीन रहें। वे ऐश्वर्य हमारे आधीन रहकर हमारा सुख बढावें, पर हम उनके अधीन होकर उनके दास न बनें यह इसका (रयीणां पतयः) का भाव है, (न तु वयं अर्थस्य दासाः) हम धनके दास न बनें, पर हम धनके स्वामी बनें।

इस विवरणसे पता लग सकता है कि जगत्‌के संपूर्ण ऐश्वर्य प्राप्त होनेकी इच्छा यहां है। यही मांग यहां है। इसीके साथ और भी देखिये—

'यत्कामाः ते जुहुमः तत् नः अस्तु।' (मं० १०)

जिस कामनाकी आकांक्षा करते हुए हम तुम्हारी-ईश्वरकी संतुष्टिके लिये यज्ञ करते हैं वे सब हमारी कामनाएं सफल और सुफल हों। उनमें किसी तरह न्यून न हो।

इससे तो ज्ञात, अज्ञात, भूत-भविष्य-वर्तमानके सभी ऐश्वर्य आये। ये सब ऐश्वर्य हमारे अधीन रहें। पर हम उनके अधीन न हों यह महत्त्वकी बात यहां है।

इस आकांक्षाका भाव यह है कि हमारे पास पर्याप्त ऐश्वर्य हों, पर्याप्त भोगसाधन हों, प्रभु बनकर हम उनका उपभोग लें, उनके दास हम न बनें, वे भोग हमारे सिरपर चढकर न बैठें। हमारे पास अनंत ऐश्वर्य हों, उनका समर्पण करके हम यज्ञ करें, ऐसा यह यज्ञचक्र चलता रहे। यह यज्ञ किसी तरह मध्यमें खंडित न हो।

प्रजापतिका यज्ञ

प्रजापतिके पास भक्त यह ऐश्वर्य मांगते हैं। प्रजाओंका यथायोग्य पालन करनेवालेकाही यह कर्तव्य है कि वह

इस तरह यज्ञचक्र चलानेका यत्न करे। अपने प्रजापालनके कर्तव्यमें त्रुटी न रहे, किसी स्थानपर यज्ञचक्रकी गति कुंठित न हो। ब्राह्मण ज्ञान प्राप्त करें और छात्रोंको अपने ज्ञानका अर्पण करके यज्ञ करें। क्षत्रिय बल बढावें और प्रजारक्षणार्थ उसका समर्पण करें। वैश्य धन कमावें और प्रजासुखके लिये नाना प्रकारके साधन निर्माण करें। शूद्र अपनी कारीगरी बढावें और उससे प्रजाका सुख बढावें। वन्य लोग वनकी सुरक्षा करें और उससे प्रजाको सुखी करें। अपना सामर्थ्य बढाकर उसका विनियोग करके प्रजाका सुख बढावें, यज्ञका यही हेतु है।

प्रजापालक राजा है, उसका कर्तव्य है कि सब प्रजाजनोंके द्वारा यज्ञचक्र चलावे और सबके ऐश्वर्य बढावे और सबको सुखी करे। राजाका यही कर्तव्य है। जहां यज्ञचक्रकी गति रुक जाती है वहां प्रमाद होता है। वैसा प्रमाद राज्यमें नहीं होना चाहिये। यही राजाका कर्तव्य है।

प्रजापति कौन हो ?

प्रजाके पालन करनेके स्थानपर किसकी नियुक्ति होनी चाहिये यह एक प्रश्न है। यदि प्रजापतिनेही यज्ञचक्रका संचालन करना और कराना है, तो उस स्थानपर ऐसा पुरुष या ऐसे पुरुषोंकी नियुक्ति होनी चाहिये कि जो सबसे अधिक समर्थ हो। इसलिये इसी मन्त्रमें कहा है—

यः एतानि विश्वा जातानि परि बभूव एवंविधः त्वदन्यः न अस्ति। (मं० १०)

' जो इन सब भूतोंपर प्रभाव डाल सके ऐसा तेरेसे भिन्न दूसरा कोई नहीं है। ' इस तरह विशेष प्रभाववाला जो होगा वही प्रजापतिके स्थानके लिये नियुक्त करना योग्य है। राज्यशासनके लिये प्रजापति-राजा, अध्यक्ष, मंत्री, उपमंत्री, सेनापति, न्यायाधीश आदि छोटे और बडे अनेक अधिकारी आवश्यक होते है। वे सबके सब इसी परीक्षासे नियत किये जाय। ' इससे भिन्न दूसरा कोई भी इस स्थानके लिये योग्य नहीं है ' ऐसा जो होगा वही उस स्थानपर नियुक्त किया जायगा, तोही राज्यशासन निर्दोष और उत्तम हो सकेगा। परंतु यदि किसी अन्य कारणसे नियुक्ति होगी, तो उसमें बडे दोष हो सकेंगे इसमें संदेह नहीं है।

श्रेष्ठसे श्रेष्ठ पुरुष जो जिस कार्यके लिये योग्य हो वही वहां नियुक्त होगा, तोही राज्यशासन योग्य होगा और ऐसे श्रेष्ठ अधिकारियोंसेही उत्तम राज्यशासन हो सकेगा। और येही यज्ञचक्रको यथायोग्य रीतिसे चला सकेंगे। और इस तरह यज्ञचक्र चलता रहनेपरही सबको योग्य ऐश्वर्यभोग प्राप्त हो सकेंगे और कोई दीन तथा दु:खी नहीं होगा।

यहां राजा और राजपुरुषोंकी नियुक्ति करनेके विषयमें जो गुप्त सूचना दी है वह सर्वत्र उपयोगी है। इस दृष्टिसे देखनेपर इस सूक्तका राजनैतिक भाव स्पष्ट होता जायगा। इसके अतिरिक्त इस विषयमें और भी प्रमाण हैं—

१ यः देवेषु एकः अधि देवः। (मं० ८)

२ देवानां एकः असुः समवर्तत। (मं० ७)

' (१) जो सब विबुधोंमें एकही श्रेष्ठ विबुध अधिष्ठाता होनेयोग्य है। (२) जो सब विबुधोंमें सबका प्राण जैसा एकही प्राण प्रकट हुआ है।' वही अधिदेव होनेयोग्य है। वही प्रजापतिके स्थानके लिये योग्य है। अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मंत्री आदि अनेक कार्यस्थान हैं उन स्थानोंके लिये नियुक्ति इस श्रेष्ठताके नियमसे ही करनी योग्य है। ईश्वरका वर्णन करनेके लिये जो शब्द प्रयोग किये गये हैं, उनसेही जनेश्वर या प्रजापति बनानेके नियम इस तरह प्रकट होते हैं। वास्तवमें यह केवल अध्यात्मविद्याही है पर वैदिक राज्यशासन इस तरह वेदाधिष्ठित और अध्यात्मज्ञानपर आरूढ हुआ है। इसलिये ऋषि ईश्वरका अथवा अपने अभिप्रेत देवताका गुणगान करते हुए ऐसे आदर्श पुरुषका वर्णन करते हैं कि, यही राजकीय तत्वविद्यामें राजा तथा अन्य अधिकारियोंके गुणोंका आदर्श प्रकट करता है। इसी तरह उक्त वाक्योंसे आध्यात्मिक और आधिभौतिक भाव उक्त प्रकार प्रकट होते हैं।

१ वह अधिपति ' सत्य-धर्मा ' अर्थात् सत्य नियमोंका पालन करनेहारा हो (मं० ९)।

२ ' हिरण्य-गर्भः ' अपने कोशमें सुवर्णरत्नोंको धारण करनेवाला हो (मं० १)।

३ आत्मदाः—अपनेमें आत्मिक बल बढाकर अपने अनुयायियोंको आत्मिक बल देनेवाला, जिसके पास रहनेसे

जनताका उत्साह बढता जाय, और कभी न घटता जाय (मं० २)।

४ बलदाः—जो स्वयं बलवान् हो और दूसरोंको बल बढानेके मार्ग बताता हो, जो वैयक्तिक और सांघिक बल बढानेके उपाय जानता हो और उस मार्गका उपदेश लोगोंको करता हो (मं० २)।

५ क्रन्दसी यं मनसा अभ्यैक्षेताम्–रोनेवाली दुःखी प्रजा जिसकी ओर बुद्धिपूर्वक अपनी सहायतार्थ देखती है। अर्थात् जो सबके दुःखोंको दूर करनेवाला है और सबका सुख बढानेवाला है।

ये सब पद श्रेष्ठ मानवका वर्णन गौणवृत्तिसे कर रहे हैं और मानवसमाज व्यवस्थामें यही अर्थ महत्त्वका है। अब इस प्रजापति–प्रजापालक अधिपतिके और गुण देखिये–

६ भूतस्य पतिः– प्राणियोंका पालक, बने वस्तुओंका प्रतिपालक, सबका पालन-पोषण करनेवाला (मं० १)।

७ प्राणतः निमिषतः जगतः एकः राजा= स्थावर-जंगम, प्राणी-अप्राणी, जड-चेतन जगत्का एक अधिपति, इन सबका पालक और पोषणकर्ता, अर्थात् जो अधिपति हो वह सबका रक्षण, पालन और पोषण करे।(मं०३)

८ द्विपदः चतुष्पदः ईशे= द्विपाद और चतुष्पादोंका पालक, द्विपाद चतुष्पादोंका पालन करना प्रजापतिका कर्तव्यही है। (मं० ३)

९. यस्य प्रशिषं विश्वे देवा उपासते=जिसकी आज्ञा सब अन्य विबुध मानते हैं, जिसकी आज्ञाका उल्लंघन कोई नहीं करता, जिसकी मान्यता इतनी अधिक है कि जिस कारण उसकी आज्ञा सब मानते हैं। इस तरह सब-पर प्रभाव डालनेवाला अधिपति बने।

१० यः पृथिवीं दाधार= जो भूमिका, मातृभूमिका धारण-पोषण करता है अर्थात् पृथिवीपर रहे प्राणियों और स्थावरोंका यथायोग्य पालन-पोषण धारण करता है।(मं०१)

११ यस्य छाया अमृतं, यस्य अछाया मृत्युः= जिसके आश्रयसे दुःख दूर होता है और जिसका आधार छूटनेसे दुःख होते हैं।

शेष वाक्य केवल परमात्माकेही गुणबोध कराते हैं। इन-मेंसे कुछ वाक्योंका थोडेसे हेरफेरसे अधिपति–वाचक अर्थ होना संभव है, इनका विचार ऐसा किया जा सकता है—

१२ यस्य महित्वा हिमवन्तः, रसया सह समुद्रं आहुः= जिसकी शक्तिसे हिमालय पर्वत, नदियोंके साथ समुद्र भी प्रशासित हो रहे हैं अर्थात् जिसके शासनमें पर्वत, नदियां और समुद्र हैं, इनपर जिनका राज्यशासन चल रहा है (मं० ४)।

१३ यस्य बाहू इमाः प्रदिशः= जिसकी भुजाएं इन सब दिशा उपदिशाओंमें संचार करती हैं अर्थात् जिसका कार्य इन सब दिशाओंमें सुव्यवस्थाके साथ हो रहा है। (मं० ४)

इस तरह परमात्मवर्णनका भाव देखकर वही भाव गौण-वृत्तिसे शासनके वर्णनमें लगानेसे ठीक तरह राजशासनके अर्थका बोध होता है और शासनविषयक वैदिक आदर्शका भी पता लग सकता है। इस रीतिसे परमात्माका वर्णन गौणभावसे राजाका वर्णन बनता है, वही ऋषिका 'आदर्श –मानव' है। अथवा मानवकी पूर्णता जो ऋषिने अपनी प्रतिभामें देखी वह यही है। मनुष्यका राज्यशासन ऐसा हो। परमात्माका राज्यशासन विश्वभर है और राजाका शासन अल्पक्षेत्रमें हो सकता है, तथापि शासनके सूत्र दोनों स्थानोंमें समानही होते हैं। पाठक इस तरह विचार करके बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं।

समर्पण यज्ञकी महत्ता

यहां "हविषा विधेम" ये पद नौ वार मंत्रोंमें आये हैं। 'हवि समर्पण करके यज्ञ करेंगे' ऐसा इन पदोंका अर्थ है। दस मंत्रोंमेंसे नौ वार ये पद होनेसे समर्पण यज्ञका महत्त्व विशेषरूपेण यहां माना गया है, इसमें संदेह नहीं है। 'स्वकर्मणा तं अभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति।' (भ० गी० १८।४६) अपने कर्मसे प्रभुकी पूजा करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है ऐसा गीतामें कहा है, वैसाही भाव यहां है। अपने पासका हवि समर्पण करके यज्ञ करना चाहिये। ज्ञानी ज्ञानका, शूर बलका, धनी ऐश्वर्यका, कर्मचारी कर्मका समर्पण करके यज्ञ कर सकता है। यज्ञका प्राणही यह समर्पण है। समर्पणके विना यज्ञ नहीं हो सकता। इस सूक्तमें सब जनताकी भलाई, सबको ऐश्वर्यवान् बनानेकी जो मुख्य बात है वह इसी समर्पणसे सिद्ध होनेवाली है। इस तरह विचार करके समर्पण यज्ञकी महत्ता जानना उचित है।

संक्षेपसे हिरण्यगर्भ-ऋषिके
राज्य-शासनका संदेश

राष्ट्रकी जनताको आवश्यक ऐश्वर्य अवश्य प्राप्त होने चाहिये । ऐश्वर्योंमें आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक वैभवोंका समावेश होता है । ये मानवोंको प्राप्त होने चाहियें और राज्यशासन ऐसा होना चाहिये कि जिसके सुप्रबंधसे कोई मानव किसी दूसरे मानवको इन वैभवोंको प्राप्त करनेके प्रयत्नमें बाधा न डाल सके।

राज्यपर मुख्य शासक ' प्रजापति ' नामसे अधिष्ठित हो, यह ऐसा हो कि जिसको इस कार्यके लिये अद्वितीय कहा जा सके। राज्यके अन्यान्य अधिकारी भी उस उस कार्यके लिये अद्वितीय अर्थात् सबसे अधिक योग्य हों। इस तरह निर्माण हुआ राज्ययन्त्र यज्ञचक्रका परिवर्तन अच्छी तरह करता रहे। किसी तरह यज्ञचक्रकी गतिमें रुकावट उत्पन्न न हो । ज्ञानी, शूर, वैश्य, शूद्र और निषाद ये अपने कर्तव्य करें जिससे सबका उपकार होता रहे । कोई किसीको बाधा न दे सके ।

प्रत्येक अपना कर्तव्य करके वैभव प्राप्त करे और उसका उपयोग यज्ञमें करे, इस तरह यज्ञचक्र चलता रहे उसकी गतिमें विच्छेद कभी न हो ।

जो अधिक विबुध हो, अधिक उत्तम व्यवहार करनेवाला, जो अधिक दिव्य भावसे युक्त हो, जो सब कार्यकर्ताओंको अपूर्व उत्साह देता हो वह अधिकारपर रखा जावे । ऐसे अधिकारियोंसेही राज्यशासन उत्तम होना संभव होता है।

जो स्वयं सत्य नियमोंका पालन करता हो, जो अपने कोशमें पर्याप्त धन रख सकता हो, जो आत्मिक बलसे युक्त होकर दूसरोंको आत्मिक बल देता हो, जो स्वयं बल प्राप्त करके दूसरोंको बलवान् बननेके उपाय बताता हो, त्रस्त जनता जिसकी ओर अपने आंख अपनी सुरक्षाके लिये सदा लगाती है, ऐसा मुख्य अधिपति और ऐसेही सब अन्य अधिकारी होनेयोग्य हैं ।

ये अधिकारी सबका यथायोग्य पालन-पोषण-संवर्धन आदि करें । द्विपादों और चतुष्पादोंकी उन्नतिकी आयोजनाएं करें और इनकी उन्नति करें । सब उन्नत हों, वैभवसंपन्न हों, शोभावाले हों, प्रभावी हों और सुखी हों। जिस तरह ईश्वर आनन्दरूप है इसलिये सबको आनन्द देता है, उसी तरह राजा तथा राजपुरुष प्रजाका आनन्द बढानेवाले हों । इस तरह ईश्वरके गुणोंका वर्णन देखने और मनन करनेसे राजा तथा राज-पुरुषोंके गुणोंका ज्ञान होता है । ऐसे गुणसंपन्न राजपुरुष जहां होंगे वहांका राज्यशासन अत्यन्त सुखदायी हो सकता है ।

पाठक इस तरह मनन करके बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं ।

व्यक्तिमें शान्ति ! राष्ट्रमें शान्ति !! विश्वमें शान्ति !!!

मन्त्र-सूची।

१।१ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे। ऋ० १०।१२१।१, अथर्व० ४।२।७; वा०सं० १३।४; २३।१; २५।१०; काण्व० २३।३३; तै० सं० ४।१।८।३; ४।८।२; ५।५।१।२; मै०सं० २।७।१५; ९६।१३; २।१३।२३; १६८।५, ३।१२।१६; १६५।१; काठक-सं० १६।१५; २०।५; ४०।१; का०सं० अश्व० ५।११; पं० विं० ब्रा० ९।९।१२, श० ब्रा० ७।४।१।१९; १३।५।२।२३, आश्व० २।१७।१५; ३।८।१; आप० १४।२९।१; १६।७।८; २१।४; २२।३; १७।७।१; २०।१।२; १९।१२; निरु० १०।२३; ' हिरण्यगर्भः (प्रतीकं) वा०सं० ३२।३; तै०सं० २।२।१२।१; मै०सं० ४।१२।१, १७७।१३; का०सं० ४।१६; ८।१७; १०।१३; २२।१४; ३५।१३; तै०आ० १।१३।३; १०।१।३; महाना० १।१२; शां०श्रौ० ३।१४।७; ९।२३।९; २७।१, १३।१२।११; वै०सू० १८।३४; का० श्रौ० १६।१।३५; १७।४।३; २०।५।२; २५।११।३४; मा० श्रौ० ३।५।१८; ३।६।१९; ५।१।९।११; ६।१।३; ६।१।१७; ६।२।३, ८।१९; ९।१।१; ९।२।३; ११।३; ११।७।१; पार० गृ० १।१४।३; मा० गृ० १।१०।१०; वि० ध० ६५।१३; बृ० हा० स्मृ० ५।११८; २९५; ६।४७; बृ० परा० सं० ९।३२४.

१।२ भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। ऋ० १०।१२१।१; अथर्व० ४।२।७; वा० सं० १३।४; २३।१, २५।१०; काण्व० २९।३३; तै० सं० ४।१।८।३, २।८।२; मै० सं० २।७।१५; ९६।१३; २।१३।२३; १६८।५, ३।१२।१६; १६५।१; का० सं० १६।१५; ४०।१, का० सं० आश्व० ५।११; श० ब्रा० ७।४।१।१९; निरु० १०।२३; भूतानां जातः पतिरेक आसीत्। पं० विं० ब्रा० ९।९।११.

१।३ स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्। ऋ० १०।१२१।१, अथर्व० (पा० भे०-पृथिवीं उत द्यां) ४।२।७; (पृथिवीं द्यां च) ११।५।१, वा० सं० १३।४; २३।१; २५।१०; काण्व० २९।३३; तै० सं० ४।१।८।३; २।८।२; मै० सं० २।७।१५; ९६।१४; २।१३।२७; १६८।६; ३।१२।१६; १६५।२; का० सं० १६।१५; ४०।१; का० सं० आश्व० ५।११; पं० विं० ब्रा० ९।९।१२; श० ब्रा० ७।४।१।१९, आप० श्रौ० ४।११।३; नि० १०।२३; अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यां। अथर्व० ४।११।१; प्रतीकं-अनड्वान्। कौ० श्रौ० ६६।१२; इन्द्रो दाधार पृथिवीमुतेमाम्। मै० सं० ४।१४।७; २२५।३; स्कंभो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे। अथर्व० १०।७।३५.

२।१ य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते। ऋ० १०।१२१।२; अथर्व० ४।२।१; १३।३।२४; वा० सं० २५।१३; तै० सं० ४।१।८।४; ७।५।१७।१; नृ० उ० २।४; प्रतीकं-य आत्मदा तै० ब्रा० ३।८।१८।५; वै० सू० ८।२२; २८।५; आप० श्रौ० १६।७।११, २०।१२।६; १३।२; कौ० सू० ४४।१; ४५।१; पाठभेदः = य ओजोदा बलदा यस्य विश्व०। मै० सं० २।१३।२३; १६८।९; का० सं० ४०।१.

२।२ उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। ऋ० १०।१२१।२; अथर्व० ४।२।१; १३।३।२४; वा० सं० २५।१३; तै० सं० ४।१।८।४; ७।५।१७।१; मै० सं० २।१३।२३; १६८।१०; का० सं० ४०।१; नृ० उ० २।४.

२।३ यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः। ऋ० १०।१२१।२; अथर्व० ४।२।२; वा० सं० २५।१३; तै० सं० ४।१।८।४; ७।५।१७।१; मै० सं० २।१३।२३, १६८।१०; का० सं० ४०।१; नृ० उ० २।४.

३।१ यः प्राणतो निमिषतो महित्वा- ऋ० १०।१२१।३; अथर्व०४।२।१; वा०सं० २३।३, २५।११; तै० सं०४।१।८।४, ७।५।१६।१; का० सं० आश्व० ५।१३, श० ब्रा० १३।५।२।७; प्रतीकं = यः प्राणतः तै० ब्रा० ३।८।१८।५; शां० श्रौ० ३।१४।७; ९।२७।२; का० श्रौ० १०।५।१; आप० श्रौ० १६।७।११; २०।१२।६; १३।१; यः प्राणतो निमिषतो च राजा। का० सं० ४।१६; ४०।१; मै० सं० २।१३।२३; १६८।७; ३।१२।१७; १६५।५, प्रतीकं = यः प्राणतः मै० सं० ४।१२।१; १७७।१३, का० सं० ८।१७, १०।१३; २२।१४; मा० श्रौ० ५।२।९।११; ९।२।३

३।२ एक इद्राजा जगतो बभूव। ऋ० १०।१२१।३; वा० सं० २३।३; २५।११; तै० सं० ४।१।८।४; ७।५।१६।१, का० सं० आश्व० ५।१३; एको राजा जगतो बभूव। अथर्व० ४।२।२.

३।३ य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः। ऋ० १०।१२१।३; वा० सं० २३।३; २५।११; तै० सं० ४।१।८।४; ७।५।१६।१; का० सं० ४।१६; ईशे यो अस्य द्विपदश्चतुष्पदः। मै० सं० २।१३।२३; १६८।८; ३।१२।१७; १६५।६, का० सं० ४०।१; का० सं० आश्व० ५।१३.

४।१यस्येमे हिमवन्तो महित्वा- ऋ० १०।१२१।४; वा० सं० २५।१२; तै० स० ४।१।८।४; प्रतीक- यस्येमे हिमवन्तः। शां० गृ० १।९।६; पाठभेदः— यस्येमे विश्वे गिरयो महित्वा। मै० सं० २।१३।२३, १६८।११, का० सं० ४०।१०; यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा। अथर्व० ४।२।५.

४।२ यस्य समुद्रं रसया सहाहुः। ऋ० १०।१२१।४; वा० सं० २५।१२; तै० सं० ४।१।८।४, समुद्रं यस्य रसया सहाहुः। मै० सं० २।१३।२३, १६८।११; का० सं० ४०।१; समुद्रे यस्य रसामिदाहुः। अथर्व० ४।२।५.

४।३ यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू। ऋ० १०।१२१।४; वा० सं० २५।१२, तै० सं ४।१।८।५; इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू। अथर्व० ४।२।५, दिशो यस्य प्रदिशः पञ्च देवीः। मै० सं० २।१३।२३; १६८।११, का० सं० ४०।१.

५।१ येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा (तै० सं०- दृढे) ऋ० १०।१२१।५; वा० सं० ३२।६; काण्व २९।३३, तै० सं० ४।१।८।५; मै० सं० २।१३।२३; १६८।१४, का० सं० ४०।१; प्रतीकं-येन द्यौरुग्रा- मा० गृ० १।११।१४, यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही। अथर्व० ४।२।४, येन द्यौः पृथिवी दृढा। का० सं० ३८।१२; तै० आ० ६।५।१; आप० श्रौ० १६।६।४; मा० श्रौ० ६।१।१.

५।२ येन स्वः स्तभितं येन नाकः। ऋ० १०।१२१।५; वा० सं० ३२।६; का०सं० २९।३३, तै० सं०४।१।८।५। मै० सं० २।१३।२३; १६८।१४; का०सं० ४०।१। (तै० सं० 'सुवः')

५।३ यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः। ऋ० १०।१२१।५; वा० सं० ३२।६; का० सं० २९।३३। तै० सं० ४।१।८।५; यदन्तरिक्षं रजसो विमानः। अथर्व० ९।३।१५.

६।१ यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने। ऋ० १०।१२१।६; वा० सं० ३२।७; काण्व० २९।३४; तै० सं० ४।१।८।५; पाठभेदः = यं क्रन्दसी अवसा चस्कभाने। अथर्व० ४।२।३; यं क्रन्दसी सं यते विह्वयेते ऋ० २।१२।८; अथर्व० २०।३४।८.

६।२ अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने। ऋ०१०।१२१।६। वा० सं० ३२।७; काण्व० २९।३४; तै० सं० ४।१।८।५; अधारयद्रोदसी रेजमाने। मै० सं० २।१३।२३; १६८।१६; काठक सं० ४०।१; भियसाने रोदसी अह्वयेथाम्। अथर्व ४।२।३.

६।३ यत्राधि सूर उदितो विभाति। ऋ० १०।१२१।६; वा० सं० ३२।७, काण्व० २९।३४, तै० सं० (उदितौ व्येति) ४।१।८।५; यस्मिन्नधि वि ततः सूरा एति। मै० सं० २।१३।२३; १६९।१; का० सं० ४०।१.

७।१ आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन्। ऋ० १०।१२१।७, वा० सं० २७।२५; ३२।७; काण्व० २९।३४; तै० सं० (आपो ह यन्महतीर्विश्वमायन्) ४।१।८।५; मै० सं० २।१३।२३; १६९।१;

का०सं०४०।१; तै० आ०(आपो ह यद्बृहतीर्गर्भमायन्) १।२३।८; प्रतीकं-आपो ह यत् तै० सं० २।२।१२।१; आपो अग्रे विश्वमावन्। अथर्व० ४।२।६.

७।२ गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्। ऋ० १०।१२१।७; अथर्व०(गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः) ४।२।६; वा० सं० २७।२५; मै० सं० २।१३।२३, १६९।२, का० सं० ४०।१.

७।३ ततो देवानां समवर्ततासुरेकः—ऋ० १०।१२१।७; वा० सं० २७।२५; ततो देवानां निरवर्ततासुरेकः। तै० सं० ४।१।८।६; मै० सं० २।१३।२३; १६९।३; का० सं० ४०।१.

८।१ यश्चिदापो महिना पर्यपश्यत्। ऋ० १०।१२१।८; वा० सं० २७।२६; तै० सं० ४।१।८।६; प्रतीकं- यश्चिदापः वा० सं० ३२।७.

८।२ दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्। ऋ० १०।१२१।८; वा० सं० २७।२६; तै० सं० (जनयन्तीरग्निं) ४।१।८।६; तै० आ० (जनयन्तीः स्वयंभुवं) १।२३।८.

८।३ यो देवेष्वधि देव एक आसीत्- ऋ० १०।१२१।८; वा० सं० २७।२६; तै० सं० ४।१।८।६.

९।१ यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान। ऋ० १०।१२१।९; वा० सं० १२।१०२; (यश्चापश्चन्द्रा प्रथमो जजान) तै० सं० ४।२।७।१; मै० सं० २।७।१४; ९५।३; का० सं० १६।१४; श० ब्रा० ७।३।१।२०.

९।१ यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान। ऋ०१०।१२१।९। वा० सं० (धर्मा व्यानट्) १२।१०२; तै० सं० ४।२।७।१; श० ब्रा० ७।३।१।२०; (यो दिवं सत्यधर्मा व्यानट्) मै० सं० २।७।१४; ९५।१; का० सं० १६।१४.

९।३ यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्व्यानट्- ऋ० १०।१२१।९। वा० सं० (चन्द्रा प्रथमो व्यानट्) १२।१०२; तै० सं० ४।२।७।१; मै० सं० २।७।१४, ९५।३; का० सं० १६।१४; श० ब्रा० ७।३।१।२०.

१०।१ प्रजापते न त्वेदतान्यन्यो। ऋ०१०।१२१।१०; अथर्व० ७।८०।३; वा० सं० १०।२०; २३।६५; का० सं० २९।३६; तै० सं० १।८।१४।२; ३।२।५।६; मै० सं० २।६।१२; ७।२४; ४।१४।१; (पाठभेदः—नहि त्वत्तान्यन्यः) २१५।९; का० सं० (पाठभेदः—नहि त्वदन्य एताः) १५।८; प० ब्रा० १।६।१९; श०ब्रा० ५।४।२।९; १३।५।२।२३; १४।९।३।३; तै० ब्रा० १।७।८।७; २।८।१।२; ३।५।७।१; तै० आ० १०।५४; बृ० उ० ६।३।३; आ० श्रौ० २।१४।१२; ३।१०।२३; वै० सू० १।३; २।१२; ७।१२; आ० गृ० १।४।४; १४।३; २।४।१४; कौ० ५।९; सा० मं० ब्रा० २।५।८; आप० मं० ब्रा० २।२२।१९; आ० गृ० ८।२३।९; निरु० १०।४३; प्रतीकं—प्रजापते न त्वदेतानि। आप० श्रौ० १।१०।८; ९।२।४; १३।६।११; १२।१२; १८।१६।१४; प्रजापते न त्वत्। शां० श्रौ० १६।७।३; आप० श्रौ० ९।२०।१; मा० श्रौ० १।१।२।३८; ९।१।४; प्रजापते तै० सं० २।१।१२।१; ६।१।१४; तै० ब्रा० ३।७।११।३; शां० श्रौ० ४।१०।४; १८।४; १०।१३।२३; ११।१; १५।१३।११; का० श्रौ० १५।६।११; आप० श्रौ० ३।११।२; ९।१२।४; १४।३२।६; शां० गृ० १।१८।४; २२।७; कौ० सू० ५९।१९; गो० गृ० ४।६।९; हि० गृ० १।३।६; ८।१६; ९।७; १७।६; १८।६; १९।८; २६।१४; २७।१; २८।१; २।१।३; २।२; ४।१०; ५।२; ६।२; १५।१३; बृ० प० सं० ९।३२।३.

१०।२ विश्वा जातानि परि ता बभूव। ऋ० १०।१२१।१०; वा० सं० १०।२; काण्व० ७९।३६; तै० सं० १।८।१४।२; ३।२।५।६; मै० सं० २।६।१२; ७।२४; ४।१४।१; ११५।९; का० सं० १५।८; शां० ब्रा० १।६।१९; तै० ब्रा० २।८।१।२; ३।५।७।१; तै० आ० आन्ध्र १०।५४; सा० मं० ब्रा० २।५।८; आप० मं० ब्रा० ३।२२।१९; नि० १०।४३; विश्वा रूपाणि परि ता बभूव। वा० सं० १०।२०; २३।६५; श० ब्रा० ५।४।२।९; विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान। अथर्व० ७।७९।४; ८०।३.

१०।३ यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु। ऋ० १०।१२१।१०; अथर्व० ७।७९।४, ८०।३, वा० सं० १०।२०; २३।६५; काण्व० ९९।३६; तै० सं० १।८।१४।१, ३।२।५।७, का० सं० १५।८,

शां०ब्रा० १।६।१९, श०ब्रा० ५।४।२।९, यत्कामा इदं जुहोमि । तै० ब्रा० २।८।१।२; ३।५।७।१; तै० आ० आन्ध्र० १०।५४; सा० मं० ब्रा० २।५।८; आप० मं० ब्रा० २।२२।१९; निरु० १०।४३; यस्ते कं जुहुमस्तन्नो अस्तु । मै० सं० २।६।१२; ७२।५; ४।१४।१; २१५।१०; यत्कामा इदं जुहोमि तन्मे समृध्यताम् । तै० ब्रा० ३।११।२।४.

१०।४ वय स्याम पतयो रयीणाम्- ऋ० ४।५०।६; ५।५५।१०; ८।४०।१२; ४८।१३; १०।१२१।१०; ऋ० खि० ९।८६।२; अथर्व० ३।१०।५; ६।६१।२; ७७९।४, ८०।३; १०९।६, १०।९।२७, २०।८८।६; वा० सं० १०।२०, १९।४४।५४, ६१; २३।६५; काण्व० ११।६।५; १९।३६; तै० सं० १।६।६।४; ८।१४।२; २२।२; २।६।१२।२; ३।२।५।७; ७।१; मै० सं० २।६।११; ७२।७; ३।११।१०; १५६।६; ४।१०।६; १५६।११; ४।११।२; १६३।१०; ४।१४।१; २१५।१०; का० सं० ८।१७; १५।८; १७।१८; १९; २१।१४; ३०।६; ३८।२; ऐ० ब्रा० ४।११।४; शां० ब्रा० १।६।१९; श० ब्रा० ५।४।२।९; तै० ब्रा० १।४।८।२; २।८।१।३; ३।५।७।१; ३।११।२।४; ३।१; ४।२; ५।३; तै० आ० आंध्र० १०।५४, वै० सू० २४।१; मा० श्रौ० १।४।३।१८; २।४।६।२६; ९।१।४; सा० मं० ब्रा० २।५।८; हि० गृ० २।१४।४; आप० मं० ब्रा० २।२०।३४; २२।१९; निरु० १०।४३.

हिरण्यगर्भ ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(१४)

नारायण ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका ८० वाँ अनुवाक)

" विराट् पुरुषकी उपासना "

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, साहित्य-वाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालङ्कार,

अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, आनन्दाश्रम, पारडी [जि० सूरत]

संवत् २००६, सन १९४९

मूल्य एक रुपया।

नारायण और उत्तर नारायण

नारायण और उत्तर नारायण ऋषिके विषयमें कुछ भी इतिहास नहीं मिलता। अनेक नारायण हुए हैं, पर उनका इस सूक्तके साथ कोई संबंध नहीं है। ऋ० १०।९० में पुरुष-सूक्तका द्रष्टा नारायण ऋषि है इतना ज्ञानही इस ऋषिके विषयमें मिलता है। यजुर्वेदमेंही उत्तर नारायणके ६ मंत्र अधिक हैं। सामवेद और अथर्ववेदमें भी पुरुष-सूक्तके मंत्र हैं। शतपथ ब्राह्मणमें इस सूक्तके विषयमें (श० १३।६।२ में) कुछ थोडासा लिखा है। इसका आशय इतनाही है कि पुरुष-मेधमें 'हिंसा नहीं करनी है।' जो लोग समझते हैं कि पुरुषमेध या नरमेधमें मनुष्योंकी हिंसा करनी पडती है, वे लोग शतपथके इस भागको देखें और जानें कि नरमेधमें मनुष्यवध अभीष्ट नहीं है, (श० ब्रा० १३।६।२।१२-२०)। पुरुष-सूक्तमें १६ ऋचाएँ हैं ऐसा यहीं लिखा है-'ब्रह्मा... पुरुषेण नारायणेन अभिष्टौति सहस्रशीर्षा . इत्येतेन षोडशर्चेन।' अर्थात् १६ मंत्रही इस सूक्तमें हैं। उत्तर नारायणके ६ मंत्र वा० यजु० में हैं, यह सूक्त पृथक् है।

इस सूक्तका तत्वज्ञान सामाजिक और राष्ट्रीय महत्वका है इसलिये इसका विचार इस समय सबको योग्य करना है। व्यक्तिनिष्ठा और संघनिष्ठा ऐसी निष्ठाएं हैं। इनका अच्छा समन्वय इस सूक्तमें किया है और संघनिष्ठाही सर्वरूपेण वंदनीय है ऐसा यहां बताया है।

संपूर्ण विराट् पुरुष एक पुरुष है, संपूर्ण विश्वका एक जीवन है। यह मन्तव्य इस सूक्तने प्रकट किया है। मानवोंके व्यवहार इस तत्वसे होंगे तोही सर्वत्र शान्ति स्थापन हो सकती है।

नारायणी विद्या

नारायण ऋषिने नारायण देवताकी इस नारायणीय सूक्तसे स्तुति की है, जगदीश नारायण देवताका यह वर्णन है। जिस तरह बीजसे वृक्ष होता है, उस तरह नारायणरूप बीजका विश्वरूप वृक्ष हुआ है। अर्थात् बीज और फलफूलसे युक्त वृक्षमें वृक्षही संसेव्य है, इसी तरह यह विश्वरूप संसेव्य है। वैदिक धर्मसे भिन्न मतमतान्तरोंमें इस विश्वरूपको त्याज्य, हेय, दुःखमूल, कारावास आदि माना है। वैदिक धर्म तो इस विश्वको ब्रह्म-शक्तिका प्रकटी-करण मानता है। नारायण ऋषिने जगदीश नारायणके वर्णनसे इस नारायणीय विद्यारूप पुरुषसूक्तमें यही बताया है। ब्रह्मका विश्वरूपमें प्रकट होना 'ब्राह्म' पदसेही इस उत्तर नारायण ऋषिने बताया है। जो इस नारायणीय विद्याको जानेंगे और आचरणमें लायेंगे वे विश्वशान्तिकी स्थापना करेंगे। पाठक इस सूक्तमें इस विद्याका दर्शन करें।
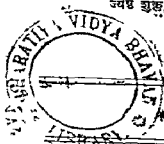
स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम'
पारडी (जि. सूरत)
ज्येष्ठ शुक्ल १, संवत् २००६

निवेदनकर्ता
पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

मुद्रक तथा प्रकाशक— वसंत श्रीपाद सातवळेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, पारडी (जि० सूरत)

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

नारायण ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका ८० वाँ अनुवाक)

विराट् पुरुषकी उपासना

(ऋ० १०।९०) ऋषिः—नारायणः । देवता- पुरुषः । छन्द - अनुष्टुप्, १६त्रिष्टुप् ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा ऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २

अथर्व-पाठः — सहस्रबाहुः पुरुषः०...... ....॥१॥
० यद्भूतं यच्च भाव्यम् । उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत्सह ॥४॥
वा० य० ,, — स भूमिं सर्वतः स्पृत्वा०....... . ...॥१॥

अन्वयः— १ सहस्रशीर्षा (सहस्र बाहुः,) सहस्राक्षः सहस्रपाद् पुरुषः ।

सः भूमिं विश्वतः वृत्वा दशाङ्गुलं अति अतिष्ठत् ॥१॥

२ यत् भूतं, यत् च भव्यं (यत् च भाव्य) इदं सर्वं (तत् सर्वं) पुरुष एव ।

उत अमृतत्वस्य ईशानः (ईश्वरः) यत् अन्नेन अति रोहति ॥२॥

अर्थ— १ सहस्रों मस्तकोंसे युक्त (सहस्रों बाहुओंसे युक्त,) सहस्रों आंखोंसे युक्त और सहस्रों पांवोंसे युक्त यह विराट् पुरुष है ।

यह विराट् पुरुष चारों ओरसे भूमिको घेर कर उस दश इंद्रियोंके क्षेत्रपर अधिष्ठाता होकर रहा है ॥१॥

२ जो भूतकालमें था, जो भविष्यकालमें होगा, तथा जो यह सब (वर्तमानकालमें) है, वह सब यह विराट् पुरुष (का ही रूप) है ।

और यह अमृतत्वका स्वामी है, जो (अमृतत्व) अन्नसे (प्राप्त होनेवाले सुखसे) बहुतही ऊंचा है ॥२॥

एतावानस्य महिमा ऽतो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ३

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ४

तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ५

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ६

अथर्व-पाठः — तावन्तो अस्य महिमानः० ॥३॥
साम ,, — तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः ॥ (६२०)
,, ,, पादोऽस्य सर्वा भूतानि० ॥ (६१९)
अथर्व ,, — त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः ।
,, ,, तथा व्यक्रामद् विष्वङ्शनानशने अनु ॥ २ ॥
,, ,, — विराडग्रे समभवद् विराजो० ॥९॥

---

३ एतावान् अस्य महिमा, अतः पुरुषः ज्यायान् च ।

विश्वा भूतानि अस्य पादः । अस्य त्रिपाद् दिवि अमृतम् ॥३॥

३ यह ऐसा इसका महिमा है । अतः यह पुरुष बहुतही बडा है ।

सब भूत इसका एक अंश है । इसके तीन अंश द्युलोकमें अमृतरूप हैं ॥३॥

४ त्रिपाद् पुरुषः ऊर्ध्व उदैत्, अस्य पादः इह पुनः अभवत् । ततः साशनानशने विष्वङ् अभि व्यक्रामत् ॥४॥

४ त्रिपाद् विराट् पुरुष उच्च द्युस्थानमें प्रकाशता है और इसका एक अंश यहां पुनः पुनः होता रहता है । अर्थात् वह खानेवाले और न खानेवालोंके रूपमें विभक्त होता रहता है ॥४॥

५ तस्मात् विराट् अजायत । विराजः अधि पूरुषः (अजायत) ।

सः जातः, भूमिं अथ पश्चात् पुरः अति अरिच्यत ॥५॥

५ उससे विराट् पुरुष उत्पन्न हुआ और इस विराट् पुरुषके ऊपर एक अधिष्ठाता पुरुष (भी हुआ है) ।

वही प्रकट होनेपर प्रथम भूमिके रूपमें तथा पश्चात् विविध शरीरोंके रूपोंमें विभक्त हुआ है ॥५॥

६ यत् पुरुषेण हविषा देवाः यज्ञ अतन्वत ।

अस्य आज्य वसन्तः, इध्मः ग्रीष्मः, हविः च शरत् आसी ॥६॥

६ जिस समय इस विराट् पुरुष रूप हविसे देवोंने अपना यज्ञ फैलाया ।

वहां इस यज्ञका घृत तो प्रत्यक्ष वसंत ऋतु था, इन्धन-समिधा ग्रीष्म ऋतु था और हवि शरत् ऋतु बना था ॥६॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये　　७

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशून्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये　　८

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत　　९

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः　　१०

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते　　११

अथर्व-पाठः- तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥ ११ ॥
„　„　मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ ५ ॥ (११)

---

७ अग्रतः जातं तं यज्ञं पुरुषं बर्हिषि प्रौक्षन् । ये देवाः साध्याः ऋषयः च ते तेन अयजन्त ॥७॥

७ प्रारंभमें प्रकट हुए उस यजनीय विराट् पुरुषको देवोंने मानस यज्ञमें संकल्पित किया । और जो देव साध्य और ऋषि थे उन्होंने उसीसे यज्ञ किया ॥७॥

८ तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात् पृषदाज्यं संभृतम् । वायव्यान् आरण्यान्, ये च ग्राम्याः तान् पशून् चक्रे ॥८॥

८ उस सर्वहुत यज्ञसे दही और घी प्राप्त हुआ । तथा उससे वायुमें संचार करनेवाले (पक्षी), अरण्यमें रहनेवाले पशु, तथा जो ग्रामीण पशु हैं, उनको भी बनाया ॥८॥

९ तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात् ऋचः सामानि जज्ञिरे । तस्मात् छन्दांसि जज्ञिरे । तस्मात् यजुः अजायत ॥९॥

९ उस सर्वहुत यज्ञसे ऋचाएं और सामगान हुए । उससे छन्द या अथर्ववेद बना । और उससे यजुर्वेद भी हुआ है ॥९॥

१० तस्मात् अश्वाः अजायन्त, ये के च उभयादतः । तस्मात् ह गावः जज्ञिरे । तस्मात् अजावयः जाताः ॥१०॥

१० उस सर्वहुत यज्ञसे घोडे हुए, जो दोनों ओर दांतवाले हैं । उससे गौवें हुईं । उससे बकरियां और भेड भी बने ॥१०॥

११ यत् पुरुषं व्यदधुः, कतिधा व्यकल्पयन्? अस्य मुखं किं? कौ बाहू, कौ ऊरू, (कौ) पादौ उच्येते? ॥११॥

११ जब विराट् पुरुषकी धारणा की गई, तब कितने प्रकारोंसे कल्पना की गयी? इसका मुख कौनसा? कौन बाहू, कौन ऊरू और कौन पांव कहलाते? ॥११॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत १२

चन्द्रमा मनसो जातः चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत १३

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् १४

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् १५

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः १६

अथर्व-पाठः- ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ६ ॥ (१२)

वा० यजुर्वेद-पाठः- श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत । (वा. य. ३१।१२)

---

१२ ब्राह्मणः अस्य मुखं आसीत् , राजन्यः बाहू कृतः, यत् वैश्यः तत् अस्य ऊरू, पद्भ्यां शूद्रः अजायत ॥१२॥

१३ मनसः चन्द्रमाः जातः, चक्षोः सूर्यः अजायत । मुखाद् इन्द्रः च अग्निः च, प्राणात् वायुः अजायत ॥१३॥

१४ नाभ्याः अन्तरिक्षं आसीत्, शीर्ष्णः द्यौः समवर्तत । पद्भ्यां भूमिः, श्रोत्रात् दिशः, तथा लोकान् अकल्पयन् ॥१४॥

१५ यत् यज्ञं तन्वानाः देवाः पुरुषं पशुं अबध्नन्, अस्य सप्त परिधयः आसन्; त्रिः-सप्त समिधः कृताः ॥१५॥

१६ देवाः यज्ञेन यज्ञं अयजन्त । तानि धर्माणि प्रथमानि आसन् । ते महिमानः नाकं सचन्त ह, यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति ॥१६॥

१२ ब्राह्मण इसका मुख है, क्षत्रिय इसके बाहू किये हैं, जो वैश्य है वह इसके ऊरू जांघें (अथवा मध्यभाग है) और पावोंके लिये शूद्र हुआ है ॥१२॥

१३ मनके स्थानके लिये चन्द्रमा बना, आंखोंके स्थानके लिये सूर्य बना । मुखसे इन्द्र और अग्नि, तथा प्राणसे वायु हुआ है ॥१३॥

१४ नाभिके स्थानमें अन्तरिक्ष हुआ, सिरके स्थानपर द्युलोक प्रकट हुआ । पावोंसे भूमि, कानसे दिशाएं, इस तरह अन्यान्य लोकोंकी कल्पना की गयी है ॥१४॥

१५ जब यज्ञका फैलाव करनेवाले देवोंने इस विराट् पुरुषरूपी पशुको यज्ञमें बांध दिया, तब उस यज्ञकी सात परिधियां थीं और तीन गुना सात समिधायें बनायीं थीं ॥१५॥

१६ विबुधोंने यज्ञसेही यजनीय देवका यजन किया । वे विधि सबसे प्राचीन थे । वे विबुध महत्त्वको प्राप्त करते हुए, स्वर्गको प्राप्त होते रहे, जहां कि प्राचीन कालके साधन-संपन्न देव पहुंचे थे ॥१६॥

अथर्ववेदके पुरुषसूक्तमें अन्तिम मन्त्र निम्नलिखित है—

मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः ।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि   १६

(अथर्व० १९।६। १६)

वा० यजुर्वेद तथा काण्व-संहितामें निम्नलिखित छः मन्त्र अधिक हैं—

(ऋषिः- उत्तर नारायणः । देवता- आदित्यः । छन्दः- त्रिष्टुप्, २०; २१ अनुष्टुप् ।)

अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे   १७
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय   १८
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते ।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा   १९
यो देवेभ्य आ तपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये   २०

---

१६ बृहतः पुरुषात् अधि जातस्य राज्ञः सोमस्य देवस्य मूर्ध्नः सप्त सप्ततीः अंशवः अजायन्त ॥१६॥

१६ बडे विराट् पुरुषके अधिष्ठाता रूप राजा सोम देवके सिरसे सात और सत्तर किरण प्रकट हुए हैं ॥१६॥

१७ अग्रे अद्भ्यः (रसः) संभृतः । रसात् पृथिव्यै विश्वकर्मणः समवर्तत । तस्य रूपं विदधत् त्वष्टा अग्रे एति । तत् मर्त्यस्य आजानं देवत्वम् ॥१७॥

१७ प्रारंभमें जलोंसे साररूप रस इकट्ठा हुआ। उस रससे पृथिवीकी रचनाके लिये विश्वकर्माके नियमानुसार सम्यक् मीलन हुआ। उसके रूपको धारण करता हुआ त्वष्टा आगे प्रगति करता है। वह मर्त्यका श्रेष्ठ देवत्व है ॥१७॥

१८ एतं महान्तं आदित्यवर्णं, तमसः परस्तात्, पुरुषं अहं वेद । तं एव विदित्वा मृत्युं अति एति । अयनाय अन्यः पन्थाः न विद्यते ॥१८॥

१८ इस बडे सूर्यके समान तेजस्वी, अन्धकारसे परे, विराट् पुरुषको मैं जानता हूं। उसको जाननेसेही मृत्युके परे साधक पहुंचता है। इस उच्च अवस्थाको प्राप्त करनेके लिये दूसरा मार्ग नहीं है ॥१८॥

१९ प्रजापतिः गर्भे अन्तः चरति। अजायमानः बहुधा विजायते। धीराः तस्य योनिं परि पश्यन्ति। तस्मिन् ह विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥१९॥

१९ प्रजापालक यह पुरुष गर्भके अन्दर संचार करता है। न जन्म लेनेवाला अनेक प्रकारसे जन्म लेता है। ज्ञानी उसकी उत्पत्तिको देखते हैं। उसमें निश्चयसे सब भुवन रहते हैं ॥१९॥

२० यः देवेभ्यः आतपति, यः देवानां पुरोहितः। यः देवेभ्यः पूर्वः जातः। रुचाय ब्राह्मये नमः ॥२०॥

२० जो देवोंके लिये तपता है, जो देवोंका अगुआ है। जो देवोंके पहिले प्रकट हुआ था। इस प्रकाशमय ब्रह्मके लिये हमारा प्रणाम है ॥२०॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात् तस्य देवा असन् वशे २१

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहो रात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण २२

२१ अग्रे ब्राह्मं रुचं जनयन्तः देवाः तद् अब्रुवन् । यः ब्राह्मणः त्वा एवं विद्यात् । तस्य वशे देवाः असन् ॥२१॥

२२ श्रीः च लक्ष्मीः च ते पत्न्यौ । अहोरात्रे पार्श्वे । नक्षत्राणि रूपम् । अश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्! इषाण । अमुं मे इषाण । सर्वलोकं मे इषाण ॥२२॥

२१ प्रारंभमें ब्रह्मसे उत्पन्न प्रकाशको उत्पन्न करनेवाले देव ऐसी घोषणा करते रहे कि जो ज्ञानी तुझ परमात्माको इस तरह जानेगा, उसके वशमें सब देव रहेंगे ॥२१॥

२२ हे प्रजापते ! श्री और लक्ष्मी ये दो तेरी पत्नियाँ हैं । दिन और रात्री तेरे दो बाजू हैं । नक्षत्राणि तेरे रूपको प्रकट करते हैं । अश्विदेव तेरा खुला मुख है । हे इच्छा करनेवाले ! ऐसी इच्छा कर कि यह मुझे चाहिये । सब लोकोंकी प्राप्ति मुझे हो जाय ॥२२॥

नारायण ऋषिका तत्त्वज्ञान

ऋग्वेदके १० वें मण्डलके ९० वे सूक्तमें नारायण ऋषिका तत्त्वज्ञान है । इसका नाम ' पुरुष-सूक्त ' है । इस सूक्तके १६ मन्त्र हैं । अथर्ववेद काण्ड १९ के छठे सूक्तमें भी यही सूक्त है, पर अन्तिम १६ वां मन्त्र दूसराही है । ऋग्वेदके इस सूक्तका १६ वाँ मंत्र अथर्ववेद ७।५।१ में है और १९।६।१६ में दूसराही मंत्र है, ऋग्वेदके और अथर्ववेदके पुरुषसूक्तके मन्त्रक्रममें भी थोडा हेरफेर है और पाठभेद भी हैं । वाजसनेयी (अ० ३१) यजुर्वेद और काण्व-यजुर्वेदमें (अ० ३५) यही पुरुष-सूक्त है । थोडासा पाठभेद है पर मंत्र १६ हैं, और उत्तर नारायण ऋषिके और ६ मंत्र अधिक हैं । अर्थात् यहां २२ मंत्र सब मिलकर हैं । सामवेदमें क्रमांक ६१७-६२१ में केवल पांचही मन्त्र हैं । अन्यान्य ब्राह्मणों और आरण्यकोंमें भी पुरुष-सूक्त है । उसका स्थान-निर्देश हम आगे करेंगे । वैदिक वाङ्मयमें अनेक वार पुनः पुनः आनेके कारण इस सूक्तका महत्त्व विशेष है । अतः इसका जीवन-तत्त्व-ज्ञानकी दृष्टिसे विशेषही महत्त्व होनेके कारण इस सूक्तका विशेष सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करना अत्यन्त आवश्यक है जो अब हम करते हैं—

सहस्रों अवयवोंवाला विराट् पुरुष

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १
(ऋग्वेद)

सहस्रबाहुः पुरुषः ... ... (अथर्ववेद)
स भूमिं सर्वतः स्पृत्वा ... (वा० यजु०)

" सहस्रों मस्तकोंवाला, सहस्रों बाहुओंवाला, सहस्रों आंखोंवाला, और सहस्रों पांवोंवाला यह विराट् पुरुष है । यह इस भूमिके चारों ओर घेर कर, दस इंद्रियों द्वारा जिसका ग्रहण होता है उस सब जगत्का वह अधिष्ठाता बना है ॥१॥ "

अथर्ववेदके मंत्रमें ' सहस्र-बाहुः ' पद है जो ऋग्वेदके मंत्रके अर्थकी पूर्णता करता है । आगे ' बाहू राजन्यः कृतः ' (ऋ०) " बाहू राजन्योऽभवत् । " (अथर्व०) ऐसे मंत्र आये हैं जिनमें विराट् पुरुषके बाहुओंका वर्णन है । इसलिये प्रथम मंत्रमें ' सहस्र-बाहुः ' पद अवश्य चाहिये । जो ऋग्वेद-यजुर्वेदमें नहीं था, इसकी पूर्णता अथर्ववेदने की है । वेदमंत्रोंके पाठभेदोंसे इस तरह अर्थकी परिपूर्णता होती है ।

इसी तरह 'स भूमिं विश्वतो वृत्वा।'(ऋ०१०।९०।१) तथा 'स भूमिं सर्वतः स्पृत्वा' ये पाठभेद भी अर्थकी स्पष्टता कर रहे हैं। इनसे सिद्ध होता है कि 'विश्वतः' का अर्थ 'सर्वतः' है। यह पुरुष भूमिके चारों ओरसे भूमिको स्पर्श करता है और दस इंद्रियोंसे जाने जानेवाले संपूर्ण विश्वका यह अधिष्ठाता बना है। 'अति-ष्ठा' धातुका अर्थ 'अधिष्ठाता होना, शासन करना, राज्य करना, शासक होकर कार्य करना' है।

'दशाङ्गुलं' (दश-अङ्गुलं) दश अंगुलोंसे, दस इंद्रियोंसे जिसका ग्रहण होता है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा और कर्ण ये पांच ज्ञानेंद्रियाँ, हाथ, पांव, मुख, उपस्थ और गुदा ये पांच कर्मेन्द्रियाँ हैं। अर्थात् इनसे जगत्के साथ कार्य होता है, और जगत्का ग्रहण इनसे होता है। मनुष्य इनसे जगतके साथ अपना संबंध रखता है। यह जीव नाकसे गंध सूंघता है, जिह्वासे रस ग्रहण करता है, नेत्रसे रूप देखता है, त्वचासे स्पर्शका अनुभव करता है और कर्णसे शब्द सुनता है, हाथोंसे पकडता है, पांवोंसे चलता है, मुखसे अन्न खाता है, उपस्थसे संतान उत्पन्न करता है और गुदासे मलका त्याग करता है। ये सब दस क्रियाएँ जगत्के साथ संबंध रखनेवाली हैं। इन दस अंगों अवयवों और इन्द्रियोंकोही 'दश-अङ्गुलं' जगत् कहा है। क्योंकि जगत्का संबंध सदा इन दस अंगोंके साथही होता रहता है।

दस अंगोंसे जिसका ग्रहण होता है वह जगत् है। उसका अधिष्ठाता, इस जगत् पर प्रभुत्व करनेवाला, जगत्का अधिपति, सबका पालक यही सहस्रों अवयवोंवाला विराट् पुरुष है। यह इस भूमिपर चारों ओर है और यही स्वयं प्रतिपालक भी है।

सहस्र बाहुओंवाला कौन है ?

इस भूमिपर अथवा इस जगत्में जितने प्राणी हैं, मनुष्य, घोडे, गौवें, बकरियां आदि पशु पक्षी आदि जो सब हैं, वह इस विराट् पुरुषका स्थूल रूप है, दृश्य रूप है, अतः संसेव्य रूप है। ये सब प्राणी सहस्रों, लाखों, करोडों होनेसे इस विराट् पुरुषके भी सहस्रों मस्तक, सहस्रों बाहु, सहस्रों नेत्र, सहस्रों पेट और सहस्रों पांव हैं ऐसा इस मन्त्रमें वर्णन किया है यह सर्वथा योग्य है। इस विराट् पुरुषका नाम 'विश्वरूपः, सर्वरूपः' ऐसा वेदोंमें आया है। सभी रूप इसी विराट् पुरुषकेही रूप हैं। इसीलिये सब रूपधारियोंकी अखण्ड भावसे सेवा विराट् पुरुषकीही सेवा है। इसका स्वरूप वेदमन्त्र किस तरह वर्णन कर रहे हैं सो देखिये—

विराट् पुरुषके अवयव

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ११
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत १२
(ऋ० १०।९०)

किं बाहू किमूरू० (अथर्व० १९।६।५)
बाहू राजन्योऽभवत्। मध्यं तदस्य यद्वैश्यः॥
(अथर्व०)

"(प्रश्न)= हजारों सिर-बाहु-नेत्र-उदर-पांववाले जिस विराट् पुरुषका आपने वर्णन किया, उसके मुख, बाहु, ऊरु और पांव कौनसे कहे जाते हैं ? (उत्तर)= ब्राह्मण इसका मुख, क्षत्रिय इसके बाहु, वैश्य इसके पेट, मध्यभाग अथवा जांघें और पांव इसके शूद्र हैं। अर्थात् ज्ञानी-वीर-कृषक-कर्मचारी ये लोग इस विराट् पुरुषके सिर-बाहु-पेट-पांव हैं।" देखिये इसका स्वरूप ऐसा है—

विराट् पुरुषके अवयव

ज्ञानी पुरुष ... ... सिर, नेत्र वागिन्द्रिय
वीर पुरुष ... ... बाहु, छाती, हाथ
धनी, कृषक ... ... पेट, जांघें, मध्यभाग
शिल्पकार ... ... पांव

संपूर्ण मानव मिलकर यह विराट् पुरुष एक अखण्ड, अटूट, अविभक्त देह है। सभी देशोंमें ज्ञानी लोग हैं, सभी देशोंमें शूरवीर, कृषि करनेवाले, व्यापार व्यवहार करनेवाले और शिल्पी हैं। ये सब इस विराट् पुरुषके रूप हैं और यही चातुर्वर्ण्य रूप विराट् पुरुष सहस्रों मस्तक-बाहु-पेट-पांवोंवाला है। जितनी प्राणियोंकी मूर्तियाँ हैं वे सब इसीके रूप होनेसे यह पुरुष सहस्रों, लाखों और करोडों सिर, बाहु, पेट, पांववाला है ऐसा वर्णन हुआ, यह वर्णन युक्तियुक्तही है।

मूर्तिमान विराट् पुरुष

ऐसा यह. ज्ञानी-शूर-कृषक-शिल्पीरूपमें प्रकट हुआ विराट् पुरुष सब मानवोंका उपास्य, सेव्य, नमस्य तथा आदरणीय है। यह इस भूमिके चारों ओरके प्रदेशोंमें है और यही समष्टिरूपसे इस भूमिपर अधिष्ठाता, शासक, चालक और प्रेरक है। मानव-समाज मानव-समाजपर शासन कर रहा है, मानव-समष्टि मानव-समष्टिपर राज्य कर रही है, मानवसमाजरूपी विराट् पुरुष मानव-समाजरूपी विराट् पुरुषपरही अधिकार कर रहा है। मानो यह स्वयं अपने ऊपरही शासन कर रहा है। (दशाङ्गुलं अति अतिष्ठत्) दश अवयवोंसे जिस जगत्का ग्रहण होता है उस जगत्पर यही स्वयं शासन कर रहा है। सब जगत्पर सब मानव-समाज समष्टिरूपसे अधिकार चला रहा है। अथवा (दश-अङ्गुलं अति अतिष्ठत्) दश अंगोंसे यह मानव-समष्टिरूप विराट् पुरुष जगत्पर प्रभुत्व कर रहा है। देखिये, आंखसे यह सब देख रहा है, हाथोंसे यह पकडता है, मुखसे भक्ष्यरूपी जगत्को यह खा रहा है। इस तरह दश अंगोंसे यह सब जगत्पर अपना अधिकार चलाता है। ज्ञानी, शूर, धनी और शिल्पी ये जगत्पर अपना सामूहिक रूपसे अधिकार इस समयमें भी करही रहे हैं, यह बात हर कोई देख सकता है।

ज्ञानी अपने ज्ञानसे, शूर अपने शौर्यसे, धनी अपने धनसे और शिल्पी अपनी कलाकौशलसे विश्वपर अपना अधिकार करही रहे हैं और अद्भुत रीतिसे अपनी छाप जगत्पर डाल रहे हैं।

ज्ञानी-शूर-कृषक-शिल्पी ये सभी देशोंमें हैं, पर इनको सुसंस्कारोंसे शुभसंस्कारसंपन्न करके उत्तम सुव्यवस्था से भारतवर्षके प्राचीन ऋषिमुनियोंने ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रके वर्णोंमें सुव्यवस्थित किया और उत्तम व्यवस्था-से समाजकी रचना की, इसका उत्तम स्वरूप मनुस्मृति आदि ग्रंथोंमें है। जबतक यह चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था चल रही थी, तबतक स्वकर्ममें तत्पर रह कर स्वकर्मसे इस विराट् पुरुषकी सेवा होनेके कारण यह विराट् पुरुष प्रसन्न रहा था। आज यह व्यवस्था टूट जानेके कारण सर्वत्र संघर्ष शुरू हुआ और सर्वत्र असाम्यस्थता दीख रही है।

चार वर्ण मिलकरही अखण्ड रूपेण यह विराट् पुरुष है और उसकी सेवा इन्हीं चारों वर्णोंने करनी चाहिये। यह अपनीही सेवा अपनेही प्रयत्नसे करनी है।

आत्मयज्ञ

यज्ञेन यज्ञं अयजन्त देवाः ॥१६॥
आत्मना आत्मानं अयजन्त देवाः ॥ (निरुक्त)
अग्निना अग्निं अयजन्त देवाः।
पुरुषेण पुरुषं अयजन्त देवाः ॥

इन सब मन्त्रोंका भाव एकही है। विराट् पुरुषही विराट् पुरुषकी सेवा करता है। राष्ट्रही राष्ट्रकी सेवा करता है, समाजही समाजकी सेवा करता है। यही सनातन धर्म है। जिस समय यह सेवा यथायोग्य नहीं होती उस समय विप्लव बढते हैं।

यहां ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्ररूपी देह इस विराट् पुरुषका है ऐसा कहा है। विराट् पुरुषके देहके सिर-बाहू-पेट-पांव क्रमशः ज्ञानी-शूर-कृषक-शिल्पी हैं। येही इसका देह है।

विराट् पुरुष बोलेगा तो ज्ञानी ब्रह्मवित् ब्राह्मणकेही रूपसे बोलेगा, यह जनताकी सुरक्षा करेगा तो शूरवीर क्षत्रियोंके द्वाराही करेगा, यह धान्य उत्पन्न करेगा तो कृषकोंके द्वाराही करेगा और शिल्पियों द्वाराही वह नाना प्रकारके शिल्पोंकी निपज करके भोग-साधन बढावेगा। इसीकी प्रेरणासे ऋषियोंके अन्तःकरणोंमें वेदमन्त्रोंकी स्फूर्ति हुई और उनसे ज्ञान-विज्ञानका प्रकाश हुआ। इसी तरह इतिहासमें हम देख सकते हैं।

यहां मानव-समाजरूपी यह विराट् पुरुष है ऐसा कहा है। पर इतनाही यह विराट् पुरुष नहीं है, इससे भी यह बडा है, देखिये—

महान् विराट् पुरुष

एतावानस्य महिमा अतो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ३
(ऋग्वेद १०।९०)
तावन्तो अस्य महिमानः० ॥ ३ ॥ (अथर्व०)
तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः। (साम०)
पादोऽस्य सर्वा भूतानि० ॥ (साम०)

" इतना यह इसका महिमा है, वस्तुतः इससे बहुतही बड़ा यह विराट् पुरुष है। इसका एक अंश ये सब भूत या सब प्राणी हैं, और इसके तीन भाग द्युलोकमें अमृतरूपमें है। " उसके एक अंशसे यह सब विश्व बना है और उसके शेष अंशोंसे द्युलोकमें यह प्रकाशरूपमें चमकता है। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्ररूपमें अर्थात् मानव-समष्टिके रूपमें जो इस भूमण्डलपर यहां दीखता है यह उस विराट् पुरुषका दृश्य महिमा है। उस विराट् पुरुषका ज्ञान-गुण ज्ञानीके रूपसे, वीर्यगुण क्षत्रियके रूपसे, उपजाऊपणसे वृद्धि करनेका गुण श्रेष्ठियोंके रूपसे, तथा कौशल्यगुण शिल्पियोंके रूपमें प्रकट होता है। यह तो उसके गुणोंकीही महिमा है। उसके सामर्थ्यका यह दिव्य प्रकाश है। पर उस विराट् पुरुषका वास्तविक स्वरूप इससे बहुतही बडा है। उसके एक छोटेसे अंशमें यह सब पृथिव्यादि भूत अथवा मानवादि सब प्राणी समाये हैं। और उसका शेष भाग द्युलोकमें विराजता है। अर्थात् यह सब विश्व उसके एक छोटेसे अंशमें समाया है। इतना विशाल वह विराट् पुरुष है।

इसका अधिक स्पष्टीकरण वेदमंत्रही करते हैं—

एक अंश विश्वरूप पुनः पुनः होता है

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥४॥
(ऋग्वेद १०।९०)

त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत्पुनः।
तथा व्यक्रामद् विष्वङ्ङशनानशने अनु ॥२॥
(अथर्व० १९।६)

" तीन भाग उस विराट् पुरुषके द्युलोकमें चमक रहे हैं और उसका एक अंश यहां पुनः पुनः विश्वरूपमें प्रकट हो रहा है। अर्थात् यह पुरुष भोजन करनेवाले और भोजन न करनेवालोंके विविध रूपोंमें अपने आपको विभक्त करके प्रकट करता रहता है। "

अर्थात् इस विराट् पुरुषका एक छोटासा अंश अपने आपको विभक्त करके विश्वके नाना रूप बनाता है। उदाहरणके लिये देखिये—
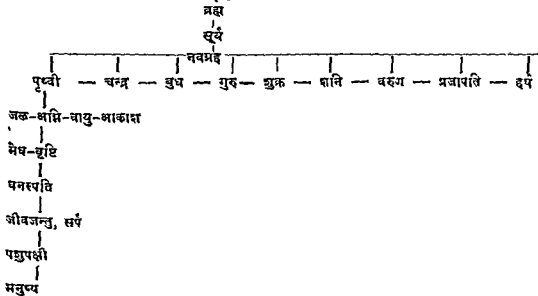
इस तरह सूर्यही इन रूपोंमें विभक्त हुआ है। (विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि) सजीव निर्जीव सृष्टिके विविध रूपोंमें वही विभक्त हुआ है। सजीव निर्जीवके रूपोंमें वह व्याप रहा है। सूर्यके रूपमें वह प्रथम प्रकट हुआ और पश्चात् सूर्यही नाना रूपोंमें विभक्त हुआ। सूर्यमें जडचेतन सब एक रस मिलाही है और वही विविध रूपोंमें विभक्त होकर वही सब विश्वसृष्टि बना है। इस तरह एकसे विविधता हुई है। इसीका और स्पष्टीकरण देखिए—

तस्माद्विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥
(ऋग्वेद १०।९०)

विराडग्रे समभवद्विराजो अधि पूरुषः ॥ (अथर्व०)

' उस (यज्ञ-पुरुषके एक अंश) से यह विराट् पुरुष उत्पन्न हुआ और उस विराट् पुरुषका एक अधिष्ठाता भी हुआ। वह उत्पन्न होतेही विभक्त होने लगा, प्रथम भूमिके रूपमें प्रकट होकर, पश्चात् भूमिके ऊपरके नानाविध शरीरोंके रूपोंमें भी वही प्रकट हुआ। '

इससे स्पष्ट हुआ कि विराट्से यह सृष्टि किस तरह बनी। इसका मानचित्र इससे पूर्व दियाही है, सूर्यसे ग्रह, पृथ्वीसे वनस्पति, जलचर, स्थलचर, पशुपक्षी, मानव ऐसे क्रमसे यह सृष्टि हुई जो हमें अपने सन्मुख दीख रही है। यहां 'भूमि' और 'पुरः' ये पद हैं। भूमिका अर्थ पृथिवी है और ' पुरः ' का अर्थ पृथिवीके ऊपरके प्राणियों और स्थावरोंके शरीर हैं। वही विराट् पुरुष प्रथम भूमिके रूपसे प्रकट हुआ और पश्चात् उसपरके नानाविध शरीरोंके रूपोंमें प्रकट हुआ। इससे उत्पत्तिके क्रमका पता लगता है।

त्रिपाद् और एकपाद्

त्रिपाद् और एकपाद् ये शब्द ऊपर आये हैं। ये ठीक ठीक माप कर तीन और एक विभाग ऐसा समझना योग्य नहीं है। एक अल्प अंश और शेष स्वरूप ऐसा भाव इसका समझना योग्य है। इस चित्रसे पाठकोंको पता लग जायगा
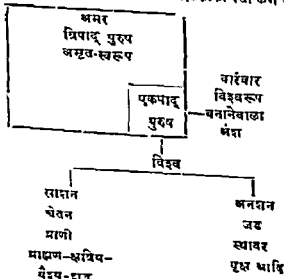
कि त्रिपाद् और एकपाद्का परस्पर संबंध कैसा है और सृष्टि उत्पन्न किस तरह होती है। यहां हमने चतुष्कोन चित्र बनाया है। पर यह न चतुष्कोण है और नाही दूसरी कोई आकृति है। जितना है वह है, और वही अमृत-स्वरूप है। जिसका एक अंश यहां वारंवार जन्म लेता, जीवित रहता और पश्चात् स्वरूपमें विलीन होता है। ऐसा यह वारंवार होता रहता है। यह वर्णन अनेक प्रकारसे किया जा सकता है, परंतु संक्षेपसे इसीका वर्णन करना हो तो ऐसा करते हैं, जो वेदमंत्रनेही इस सूक्तमें किया है—

यह सब पुरुषही है

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥
(ऋग्वेद० १०।९०)

उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत्सह ॥ (अथर्व०)
यच्च भाव्यम्। (यजु०)

" विराट् पुरुषही यह सब है, जो भूतकालमें था, जो इस समय है और जो भविष्यमें होनेवाला है, वह सब अखण्ड विराट् पुरुष एकही है। यह अमृतत्वका अधिपति है, जो अन्नादिसे (सुख मिलता है उससे यह अमृतत्व कई गुना) श्रेष्ठ है। "

इस मन्त्रसे स्पष्ट हुआ कि इस विश्वमें (इदं सर्वं) जो कुछ है वह सब (पुरुष एव) विराट् पुरुषही है। इससे विभिन्न कुछ भी यहां नहीं है (भूत-वर्तमान-भविष्यमें जो था, है और होगा यह सब यही पुरुष है, वह सब इसीका रूप है। यही (अमृतत्वस्य ईश्वरः) अमरपनका स्वामी है। यह समष्टिरूपसे अमर है, व्यष्टिरूपसे नष्ट होता है। एक प्राणी नष्ट होगा, पर समष्टिरूपसे सृष्टि अमर है। इसलिये इस विराट् पुरुषको यहां (अमृतत्वस्य ईशानः) अमरपनका स्वामी कहा है। समष्टिरूपसे यह अमर है, अविनाशी है, अमृतका महासागर है, अनाद्यनंत है, सच्चिदानन्द है, इस तरह अनेक प्रकार इसका वर्णन करते हैं। सब कुछ यही विराट् पुरुष है ऐसा जो यहां कहा है उसका मंत्रोंके द्वारा स्पष्टीकरण देखिये—

विराट् पुरुषका विश्वरूप

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्
॥ १४ ॥ (ऋ० १०।९०)

श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥
(वा० य० ३१)

" इसके मनसे चन्द्रमा, आंखसे सूर्य, मुखसे इन्द्र और अग्नि, प्राणसे वायु, नाभिसे अन्तरिक्ष, सिरसे द्युलोक, पांवसे भूमि, कानोंसे दिशाएँ, (कानोंसे वायु, और प्राण, मुखसे अग्नि) इस तरह अन्यान्य लोकोंकी कल्पना इस पुरुषमें की गयी है । " इन मंत्रोंका शब्दार्थ ऐसा है, परंतु यह अर्थ ठीक नहीं है क्योंकि अवयवोंके स्थानपर सूर्यादि लोकोंकी यहां (लोकान् अकल्पयन्) कल्पना की है, न कि उसके अवयवोंसे इन लोकोंकी उत्पत्ति हुई है । प्रश्न भी (मुखं किं अस्य ?) इसका मुख क्या है ऐसा है, न कि इसके मुखसे क्या उत्पन्न हुआ ऐसा प्रश्न है । (देखो मंत्र ११) प्रश्नके अनुसार उत्तर चाहिये । प्रश्न है, ' इसका सिर कौन है ? ' इसका उत्तम ' द्युलोक इसका सिर है । ' यही उत्तर ठीक हो सकता है, ' इसके सिरसे द्युलोक उत्पन्न हुआ ' यह उस प्रश्नका उत्तर नहीं हो सकता । इस कारण उक्त प्रकार इन मन्त्रोंका अर्थ करना अशुद्ध है । अतः इन मन्त्रोंका अर्थ ऐसा समझना उचित है—

" विराट् पुरुषके मनके स्थानमें चन्द्रमा, आंखके स्थानमें सूर्य, मुखके स्थानमें अग्नि और इन्द्र, प्राणके स्थानमें वायु, नाभिके स्थानमें अन्तरिक्ष, सिरके स्थानमें द्युलोक, पांवके स्थानमें पृथिवी, कानोंके स्थानमें दिशाएँ मानी गयी हैं । "

जो कल्पना करते हैं कि इसके सिरसे द्युलोक उत्पन्न हुआ और मुखसे ब्राह्मण हुआ, यह अर्थ सर्वथा विपरीत है । वास्तविक अर्थ ' इस विराट् पुरुषके सिरके स्थानमें द्युलोक और मुखके स्थानमें ब्राह्मण है । ' अथवा ' ब्राह्मण इसका मुख है और द्युलोक इसका सिर है । ' प्रश्नके अनुसार तथा पूर्वापर संबंधके अनुसार यही अर्थ योग्य है । इससे विश्वरूपी विराट् पुरुषका चित्र ऐसा बनता है—

विश्वरूप विराट् पुरुष

(व्यष्टि)	(मानव-समष्टि)	(स्थिरचर समष्टि)
सिर	ब्राह्मण	द्युलोक
आंख	,,	सूर्य
मुख	,,	अग्नि,
श्रोत्र	,,	वायु, प्राण, दिशाएं
बाहु	क्षत्रिय	इन्द्र, मरुत्
नाभि, पेट, जंघा, मध्य	वैश्य	अन्तरिक्ष
पांव	शूद्र	पृथिवी

(पुरुष एव इदं सर्वं) विराट् पुरुष यह सब कुछ है, इससे स्पष्ट हुआ है कि जो भी इस विश्वमें है वह सब विराट् पुरुषका देह है । विराट् पुरुषके देहसे विभिन्न ऐसा कुछ भी यहां नहीं है । इससे सिद्ध है कि ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद आदि मानव अथवा ज्ञानी, शूर, कृषक और शिल्पी ये सभी मानव विराट् पुरुषके शरीरावयवही हैं । इसीलिये इस सूक्तके प्रथम मन्त्रमें कहा है कि यह विराट् पुरुष सहस्रों सिर-बाहु-पेट-जंघा-पांव-वाला है, वह सत्य प्रतीत होता है क्योंकि सब प्राणियोंके शरीर और उनके सब अवयव मिलकर उसी विराट् पुरुषका अखण्ड अविभक्त एकही शरीर है । अर्थात् विश्वशरीरधारी यह विराट् पुरुष है ।

इसी तरह सूर्य, अग्नि, द्यु, चन्द्र, वायु, दिशा, अंतरिक्ष, पृथिवि तथा इनमें रहनेवाले सब स्थिरचर ये भी विराट् पुरुषके शरीरकेही भाग हैं । ये सब मिलकर एक अविभक्त अखण्ड शरीर इस विराट् पुरुषका होता है ।

पाठक यहां यह समझनेका यत्न करें कि यह विश्व एक अखण्ड एकरस अविभक्त अकेला एकही देह है । इसमें परस्पर विभिन्न और परस्पर पृथक् टुकडे नहीं हैं । ३३ कोटी देवता मिलकर विश्वरूप विराट् देह एकही एक होता है । इसी तरह सब मानव प्राणी मिलकर एकही अखण्ड देह होता है । सब विश्व मिलकर एकही जीवन है, एकही देह है, एकही अस्तित्व है, यह एकत्वका अनुदर्शन (एकत्वं अनुपश्यतः । यजु० ४०। ६) करना चाहिये । यही महत्त्वका वैदिक तत्त्वज्ञान है ।

इसी एकसे यह सब विश्व बना है, एककाही यह प्रकाश है, यह आविर्भाव है, यह विस्तार है, यह महिमा है। सब पशुपक्षी आदि सब इसी विराट् पुरुषके शरीरसे बने हैं, देखिये—

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः॥१०
पशूंस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये॥
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्॥८॥ (ऋ०)

" उस विराट् पुरुषसे घोडे आदि पशु, जिनको दोनों ओर दांत होते हैं, हुए। गौवें, बकरियाँ और भेड भी उसीसे बने हैं। वायुमें संचार करनेवाले पक्षी, ग्रामीण पशु तथा अरण्यमें रहनेवाले पशु भी उसीसे बने। उस यज्ञरूप सबसे पूजनीय विराट् पुरुषसे बने। उक्त गौ आदि पशुओंसे दही और घी भी प्राप्त होने लगा।" इस घीका उपयोग यज्ञमें होने लगा। सब विश्वही विराट् पुरुषका विश्वदेहही है, अर्थात् विश्वदेहमें गौ आदि पशु हैं इसलिये ये भी विराट् पुरुषके विश्वदेहके अंशही हैं। और दही घृत आदि भी विराट् पुरुषके विश्वदेहकेही अंश हैं, क्योंकि विराट् पुरुषके विश्वदेहमें सब कुछ (पुरुष एव इदं सर्वं। ऋ० १०।९०।२) समाया है, उससे बाहर कुछ भी नहीं है। इसलिये विराट् पुरुषके लिये यज्ञ किया जाता है, घृतादिकी आहुतियोंसे यज्ञ होता है और ऋषि यज्ञ करते हैं, ये तीनों पदार्थ विराट् पुरुषही है यह यहां सिद्ध हुआ।

विराट् पुरुष-(दैवीरूप)-द्यु, सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथ्वी, जल, अग्नि;
" " -(मानवरूप)-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र;
" " -(पशुरूप)-गौ, बकरी, भेड, दूध, दही, घृत;
" " -(स्थावररूप)-पृथ्वी, धान्य, समिधा, आदि,

ये सब विराट् पुरुषका शरीरही है। यज्ञकर्ता ऋषि, यज्ञसाधन धान्य घृत समिधा आदि, यज्ञस्थान भूमि आदि, पूज्यदेव यह सब एकही विराट् पुरुष है। यही भाव देखिये—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥ (गीता)

' अर्पण, हवि, आहुति, अग्नि आदि सब ब्रह्मही है। इसी तरह ऋषि, घृत, समिधा और देवता यह सब विराट् पुरुषही है। यही बात इसी सूक्तके अन्तिम मन्त्रमें कही है—

यज्ञेन यज्ञं अयजन्त देवाः। (ऋ० १०।९०।१६)
आत्मनाऽऽत्मानं अयजन्त देवाः। (निरुक्त)
तेन (तं) अयजन्त देवाः साध्या ऋषयश्च ये।
(ऋ० १०।९०।७)

' यज्ञसे यज्ञका देवोंने यजन किया। आत्मासे आत्माका यजन देवोंने किया। उसी साधनसे उसका देवों ऋषियों और साध्योंने यज्ञ किया।' इस परिभाषाका अर्थ अब उक्त विवरणसे स्पष्ट हुआ है। देखिये—

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥७॥
(ऋग्वेद०)

' आरंभमें प्रकट हुए उस पुरुष-विराट् पुरुषको यज्ञमें देवोंने प्रोक्षित किया, और उसीसे उसका यज्ञ देव-ऋषि-साध्योंने किया।' यहां यज्ञकर्ता देव, ऋषि और साध्य हैं, यज्ञिय देव विराट् पुरुष जो प्रथम प्रकट हुआ है, और यज्ञ-साधन अग्नि, समिधा, धान्य और घृत हैं, ये सब रूप विराट् पुरुषकेही हैं। इसलिये ऐसा कहा जा सकता है—

पुरुषेण पुरुषं अयजन्त पुरुषाः॥

(पुरुषं) विराट् पुरुषके लिये (पुरुषेण) विराट् पुरुषके अंशरूप हवन सामग्रीसे (पुरुषाः) विराट् पुरुषरूपी ऋषि या देव यज्ञ करते रहे। इस यज्ञका वर्णन देखिये—

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञं अतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥६॥
(ऋग्वेद०)

' देवोंने जिस विराट् पुरुषरूपी हविसे विराट् पुरुषरूपी उपास्य देवके लिये यज्ञ किया, उस यज्ञमें वसन्त ऋतु घी था, ग्रीष्म ऋतु समिधाएं थी, और शरदृतु हवि था।' पुरुषोंने पुरुषसे पुरुषके लिये जो यज्ञ किया, उसका यह वर्णन है। यह एकवाक्याभ्यास है, यह महत्त्वपूर्ण एकात्म्यकी वृत्ति है।

और देखिये—

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ९

'इसी सर्वपूज्य यज्ञ-पुरुषसे-उसी विराट् पुरुषसे-ऋचाएँ, सामगान, छन्द अर्थात् अथर्ववेदके मंत्र और उसीसे यजु भी उत्पन्न हुए।'

इस विराट् पुरुषका मुख ब्राह्मण है, ऋषिगण भी उसका मुख है, अतः ऋषिगणोंके द्वारा प्रकट हुए वेदमंत्र उसीसे हुए यह सिद्धही है।
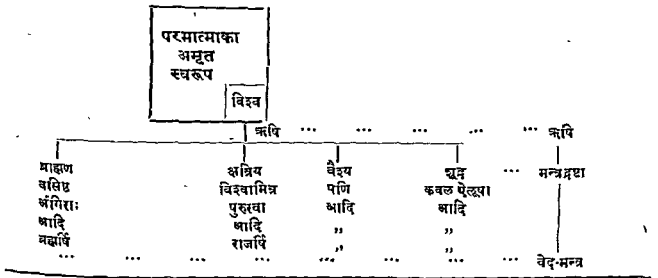
मन्त्रद्रष्टा येही ऋषि हैं। ये विराट् पुरुषके शरीरके अवयव हैं। अतः इनसे जो हुआ वह साक्षात् विराट् पुरुषकी प्रत्यक्ष प्रेरणासेही प्रकट हुआ है। इसीलिये वेद विराट् पुरुषसेही प्रकट हुए। ऐसा कहना ठीकही है।

इस तरह विराट् पुरुषसे ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य ये यज्ञकर्ता द्विज उत्पन्न हुए, भूमी उत्पन्न होकर यज्ञस्थान बना, नाना प्रकारके वृक्ष उत्पन्न हो कर समिधाएं बनीं, उनसे अग्नि सिद्ध हुआ। नाना प्रकारके धान्य बने, गौ बनी उससे दूध और घी बना जो यज्ञमें प्रयुक्त होने लगा। उसीसे होताके ऋग्वेद-मंत्र, अध्वर्युके यजुर्वेद-मंत्र, उद्गाताके सामगायन, ब्रह्माके अथर्व-मंत्र बने। इस तरह सब यज्ञ-व्यवस्था सिद्ध हुई और वैदिक समाज इस यज्ञ-व्यवस्थासे सुसंघटित होता रहा, इस विषयमें इस पुरुष-सूक्तमें इस तरह वर्णन है—

यज्ञकी सात परिधियाँ

सप्तास्यासन् परिधयः त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् १५

"इस यज्ञकी सात परिधियां थीं। तीन गुना सात समिधाएं की थीं। देवोंने इस यज्ञका विस्तार करनेके समय इस विराट् पुरुषरूपी पशुको इस यज्ञमें बांधा था।"
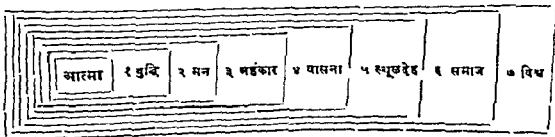
यज्ञके ये सात परिधि हैं, इन परिधियोंमें साधक यज्ञ करते हैं। इनके अन्दरही सब यज्ञ होते हैं। कोई इनका उल्लंघन कर नहीं सकते। मानव समाज जो भी कर्म करता है वह इन मर्यादाओंके अन्दरही करता रहता है। प्रत्येकका बुद्धि, मन आदिका क्षेत्र मर्यादित हुआ रहता है, उसीके अन्दर वह सोचता और कर्म करता रहता है। कर्म बडे हों अथवा छोटे, वे होंगे इन मर्यादाओंके अन्दर। इसीलिये कहा है कि यज्ञकी ये ७ मर्यादाएँ हैं।

समिधाएं ३×७=२१ कहीं हैं। सत्व-रज-तम भेदसे प्रत्येक पदार्थ पृथक् होता है। मन, बुद्धि, वासना, देह प्रभृति ये सब सत्व-रज-तम रूपसे त्रिविध होती हैं और सात तीनगुना होनेसे इक्कीस समिधा अर्थात् हवनीय पदार्थ, दानके लिये अर्पण करने योग्य पदार्थ होते हैं।

देवोंने यज्ञ किया और इस यज्ञमें विराट् पुरुषकोही यज्ञसाधन मानकर यज्ञमें प्रयुक्त किया। जिन पदार्थोंका यज्ञ किया जाता है वे सब पदार्थ विराट् पुरुषके रूप हैं इसलिये विराट् पुरुषके लिये यज्ञ किया और उस यज्ञमें चावल, घी, दूध आदि हवनीय पदार्थ जो विराट् पुरुषके ही रूप हैं यज्ञमें प्रयुक्त किये। इसका वर्णन इससे पूर्व आ चुका है। यज्ञकर्ता, यज्ञसाधन, यज्ञिय देव सब एकही विराट् पुरुष है।

द्वैत और अद्वैत

यहां ऐक्य, द्वैत, त्रैतवाद करनेवाले अनेक विवाद उत्पन्न कर सकते हैं। ऐक्य माननेवाले प्रारंभमें एक पदार्थ मानते हैं, द्वैती लोग दो और त्रैती लोग तीन पदार्थ आदि कारण मानते हैं। सृष्टिके आरंभके पूर्व प्रकृति-जीव-परमेश्वर ये तीन अनादि पदार्थ हैं यह त्रैतियोंका सिद्धान्त है। ये तीन पदार्थ अद्वैती और द्वैती भी मानते हैं। प्रकृति-पुरुष भेद सांख्य सिद्ध करते हैं और इसमें किसीका मतभेद नहीं है। सृष्टिके प्रारंभमें ये तीन पदार्थ हैं इसमें सन्देह नहीं है। प्रलय-कालमें ये तीन पदार्थ शान्त स्थितिमें रहते हैं। इनमें सृष्टि करनेकी प्रेरणा परमात्माके अन्दर स्फुरित हुई और जो हलचल मची उससे प्रथम सूर्य उत्पन्न हुआ। सूर्यमें भी प्रकृति-जीव-ईश्वर मिले हुए हैं। सूर्यमें ईश्वर नहीं है ऐसा नहीं है, प्रकृति तो है ही, जीव भी हैं। इसी एक सूर्यसे हमारी पृथ्वी बनी और पृथ्वीसे वृक्ष, प्राणी, मानव आदि सृष्टि बनी। अर्थात् सब सृष्टि एक सूर्यकाही रूपान्तर है।

यो असौ असौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥
(काण्व.यजु. ४०।१६)

यो आदित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ।
(वा०य० ४०।१७)

' जो आदित्यमें पुरुष है वही मैं हूं ' ऐसा जो यजुर्वेदने कहा वह नितान्त सत्य है और वह यहां अनुसंधानद्वारा देखने योग्य है। इसको एकत्वमनुपश्यतः। (यजु० ४०।७; ईश. ७) एकत्व दर्शन करना कहते हैं। द्वैत या त्रैतके साथ इसका विरोध नहीं है। सृष्टि बननेके पश्चात्का यह एकत्व है और वह सृष्टिके आदि कारणोंमें द्वैत या त्रैत है।

मुख्य धर्म

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि
प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे
साध्याः सन्ति देवाः ॥ १६

" (देवाः) देवोंने (यज्ञं) यजनीय [विराट् पुरुष] का (यज्ञेन) पवित्र [यज्ञसाधन रूपमें विराजमान विराट् पुरुष] से यजन किया। वे धर्म इस समय मुख्य धर्म थे। ये याजक सुखमय लोकमें महत्वको प्राप्त होकर पहुंचे, जहां कि पूर्व समयके सभी साधक पहुंचे थे। "

यज्ञसे यज्ञपुरुषका यजन, आत्माका आत्मासे यजन, करनेका स्पष्टीकरण इससे पूर्व किया है। पूर्वोक्त प्रकार एकत्वानुभूतिसे यह हो सकता है। यह अनुष्ठान साधक करें और अपनी परम उन्नति प्राप्त करके सुखके भागी बनें।

पुरुष-सूक्तका ज्ञान

पुरुषसूक्तमें निम्नलिखित ज्ञान कहा है—

१ एक प्रकाशस्वरूप दिव्य पुरुष है, उसका एक अंश सृष्टिके रूपमें वारंवार प्रकट होता रहता है। संपूर्ण विश्वके रूपमें यही पुरुष प्रकट होता है।

२ इसके रूप सूर्य, चन्द्र, तारागण, वायु, जल, पृथ्वी आदि विश्वके सब पदार्थोंकेही रूप हैं, इसीके रूप ये दृश्य स्थिरचर पदार्थ हैं, इसीके रूप घोडे, गौवें, भेड, बकरी आदि पशु तथा पक्षी ये सब प्राणी हैं। इसीके ज्ञानी, शूर, कृषाण तथा शिल्पी ये रूप हैं। सभी विश्व इसीका रूप है। कोई इससे पृथक् यहां नहीं है। यही जगदीश-पुरुषका विश्वरूपमें विकास है।

३ इसीकी स्फूर्तिसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद प्रकट हुए हैं। इसीसे यज्ञ भी वेदोंद्वारा सिद्ध होते हैं जिनसे मानव-समाज सुसंघटित होता है और बलशाली भी होता है।

४ यही पुरुष यज्ञ-देव है, यही वेद है, यही यज्ञकर्ता है, यही यज्ञ है और यही यज्ञसाधन भी है। यहां यज्ञसे यज्ञका यजन होता है।

५ विश्वमें यज्ञ चल रहा है, उसमें ग्रीष्म-ऋतु अग्नि है, वसन्त-ऋतु आज्य है, शरदृतु हवि है। इस तरह यह विश्व-यज्ञ सतत होताही रहता है।

६ मनुष्यका जीवन यज्ञरूप बनेगा, तबही वह सुखमय लोकमें विराजेगा जहां इससे पूर्वके यज्ञकर्ता आनंदमें रहते हैं।

पुरुषसूक्तमें जो कहा है उसका संक्षेपसे भाव यह है। यह मननपूर्वक अपनाना चाहिये। इसके समझनेके लिये विचारपूर्वक यत्न करना चाहिये। यहां यह सब विश्व विराट् पुरुषका रूप है ऐसा कहा है। गीतामें भी विश्वरूप दर्शन ११ वें अध्यायमें कराया है, वहां भी 'विश्वरूप, सर्वरूप' आदि शब्दों द्वारा यही भाव बताया है। विश्वमें दीखनेवाला सब प्रकारका रूप एकही अद्वितीय पुरुषका रूप है यह कैसे ध्यानमें आ सकता है?

रूप अग्निका विषय है यह प्रसिद्ध बात है, सब दर्शन इसको मानते हैं। अतः विश्वका रूप एकही अग्निका रूप है यह तत्व समझमें आ सकता है। विश्वभरमें एकही अग्नितत्त्व अनुस्यूत, सर्वत्र व्यापक और ओतप्रोत है, और रूप गुण तो अग्निकाही होता है, इसलिये "सब विश्व अग्निका रूप है" ऐसा कहा जाय तो उसपर विवाद नहीं होगा। यदि यह बात समझमें आगयी, तो अग्निका भी जो अग्नि परम पुरुष है जिसके प्रभावसेही हमारा अग्नि आग्नेय गुणसे युक्त हुआ है, उस परम परात्पर पुरुषका भी, अर्थात् अग्निके अग्निकाही, यह विश्वका रूप है ऐसा कहा जाय तो वह कथन भी पाठकोंके समझमें आ सकता है। क्योंकि रूप गुण केवल अग्निकाही गुण है इसलिये विश्वका रूप भी अग्निका, अथवा अग्निके अग्निका, वा परम पुरुषका रूप है इसमें क्या संदेह है?

प्रकृति-जीव-ईश्वर यह त्रयी अनादि है। ईश्वरकी प्रेरणासे प्रकृति विश्वका सृजन करती है। यह सब ठीक है। (तस्य भासा सर्वं इदं विभाति। मुण्डक २।२।१०) *उस परमात्माकी दीप्तिसे यह सब प्रदीप्त हो रहा है, उसीका यह सब प्रकाश है इसमें भी क्या शंका हो सकती है?* पृथ्वी-आप-तेज- वायु-आकाश आदि में जो जो शक्तियां हैं वे सब परमात्माकी शक्तिके कारणही हैं, परमात्माकी शक्ति न मिली, तो अग्नि जल नहीं सकती, सूर्य-प्रकाश दे नहीं सकता, वायु बह नहीं सकता, फिर अग्नि सूर्य चन्द्र वायुके रूप या अरूप की स्थिति परमेश्वरकी शक्तिपरही अवलंबित है इसमें संदेह क्यों कर हो सकता है? इस तरह विचार करनेपर विदित होगा, कि परमात्माकी शक्तिसे ही यह सब विश्व प्रकाशित हो रहा है, इसलिये यह उसी पुरुषका रूप है। पुरुषसूक्तमें जो कहा है वह इस तरह अनुभवपूर्वक देखना चाहिये।

संपूर्ण पृथ्वीपरकी संपूर्ण मानव-जाति एक है और वह विराट् पुरुषका शरीर है। अतः इसमें विभक्तता नहीं है। संपूर्ण पृथ्वीपरके भोग इस संपूर्ण मानव-जातिके भोगके लिये हैं। इसपर अपनाही अधिकार जमाना और दूसरोंको वंचित रखना यह किसीके लिये भी योग्य नहीं है। परंतु आज देश-देशसे, जाति-जातिसे, पन्थ पन्थसे, संघ-संघसे लड रहे हैं और अपना अधिकार सब भोगोंपर जमानेके लिये अन्योंका नाश करना चाहते हैं। यह कितना अज्ञान है? वैदिक ज्ञान जो इस पुरुषसूक्तमें प्रकट हुआ है कितना उत्तम और विश्वमें शान्ति स्थापन करनेके लिये उपयोगी है इसका पाठक विचार करें। और मननद्वारा इसको अपनाएँ और इस ज्ञानके अनुसार मानवसमाजकी रचना करें और सुखके भागी बनें।

यज्ञका स्वरूप

इस पुरुषसूक्तमें 'यज्ञ' अथवा 'पुरुष यज्ञ' का वर्णन है। (यज्= देवपूजा-संगतिकरण-दानेषु) विबुधोंका सत्कार, मानवोंका संगठन और दीनदुर्बलोंके हितके लिये दान करनेका नाम- इन त्रिविध कर्मोंका नाम यज्ञ है। समाज एक है, पर उसमें कई ज्ञानी विबुध हैं उनका सत्कार करना योग्य है, अन्य मानवोंकी उत्तम संगठना होनी चाहिये और जो हीन-दीन-दुर्बल होंगे उनकी सहायता करनी चाहिये। यही यज्ञ है। इस यज्ञसेही मानव-समाज सुखी हो सकता है। संपूर्ण मानव-समाजका सुख इस प्रकारके त्रिविध यज्ञकर्मोंपर निर्भर है। समाजमें जितना इस तरहका यज्ञकर्म होता रहेगा, उतनी उस समाजकी धारणा होगी और यज्ञकर्मका विच्छेद हुआ तो समाज छिन्नविछिन्न होगा। अर्थात् यज्ञ समाजका धारक है।

एक शरीरमें देखिये सब इंद्रिय और अवयव संपूर्ण शरीरके उपकारके लिये कार्य करते हैं तबतकही शरीर है, जिस दिन एक दो इंद्रिय या अवयव अपना शरीरके हितके लिये कार्य करना छोड देंगे उस समय दुःखका प्रारंभ होगा। यह तो हरएकका अनुभवही है। इसी तरह विश्वमें सूर्य जगत्‌के लिये प्रकाश रहा है, अग्नि जगत्‌के हितके लिये जल रही है, जल जगत्‌के हित करनेके लिये बह रहा है, वायु जगत्‌के उपकारके लिये है, भूमि सबको आधार दे रही है। इस तरह सब विश्वके देव जगदुपकारके लिये कार्य कर रहे हैं। इसी तरह सब मानवोंको उचित है कि वे संपूर्ण मानव-समाज-रूपी विराट् पुरुषकी प्रसन्नताके लिये अपने कर्म करते रहें। यही उनकी उन्नतिका एकमात्र साधन है।

व्यक्तिकी इतिकर्तव्यता समष्टिकी भलाईके लिये समर्पित होनेमेंही है। इसीका नाम यज्ञ है। यज्ञ अनेक हैं, पर उन सबका साध्य यही एक है।

उत्तर-नारायणके मन्त्रोंमें तत्त्वज्ञान

पृथ्वीकी उत्पत्ति

'अद्भ्यः रसः संभृतः'=जलोंसे सारभूत रस इकट्ठा हुआ। यह रस इकट्ठा होकर इससे जो बन गयी वही 'रसा' पृथिवी है। रस इसमें रहते हैं इसलिये पृथिवीका नाम रसा है, मधुर, कटु, तिक्त, आम्ल, कषाय, लवण ये छः रस हैं ये सब रस पृथिवीमें रहते हैं। और ये ईख, मिरच, इमली आदि द्वारा प्रकट होकर मनुष्योंको प्राप्त होते हैं। यह रसवाली पृथिवी जलतत्त्वके सारभूत रससे घनी-भवन होकर बनी है।

'रसात् पृथिव्यै अग्रे विश्वकर्मणः समवर्तत'=उस रससे पृथिवी बनानेके लिये प्रारंभमें विश्वकर्माके नियमानुसार सम्यक् मलिन हुआ। नाना रसोंके अणुओंका संमीलन हुआ और यह पृथिवी बनी। यह सब जो हुआ वह विश्वकर्माके स्थायी नियमोंसेही हुआ।

'तस्य रूपं विदधत् त्वष्टा अग्रे एति'=उसका रूप बनाता हुआ त्वष्टा आगे प्रगति करता है। पृथ्वी बननेके बाद सब सृष्टिकी रचना करनेवाला त्वष्टा विविधरूपोंको बनाता है और विविध रूपोंकी निर्मिति करनेमें प्रगति

करता है। आगे आगे विविध तथा अनेक प्रकारके रूप बनाये जाते हैं और अनेक गूढ रचनावाले पदार्थ निर्माण होते हैं।

'तद् मर्त्यस्य आजानं देवत्वं '= यह ज्ञान मर्त्य मानवको श्रेष्ठ देवत्व देनेवाला है। इस ज्ञानसे नरका नारायण, मनुष्यका महादेव बनता है। यह ज्ञान प्राप्त होनेसे मनुष्य कैसा श्रेष्ठ बनता है देखिये—

मृत्युके परे जाना

'तं एव विदित्वा मृत्युं अति एति, अयनाय अन्यः पन्था न विद्यते '= इस विराट् पुरुषको जाननेसे ही मृत्युके परे साधक जा सकता है। मृत्युके परे जानेके लिये दूसरा मार्ग नहीं है। इस पुरुषके सत्य स्वरूपको जानना यही एकमात्र मार्ग मानवी उन्नतिके लिये है। यह पुरुष कैसा है सो देखिये—

'एतं महान्तं आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् पुरुषं अहं वेद '= इस महान् आदित्यके समान तेजस्वी, अन्धकारसे दूर ऐसे प्रकाश स्वरूप पुरुषको मैं यथावत् जानता हूं, ऐसा जिसका पूर्ण निश्चय है वही साधक मृत्युके परे जा सकता है। 'अहं वेद ' मैं जानता हूं ऐसा कहना निश्चयात्मक जाननेका बोध करता है। मैं इस पुरुषको निश्चयसे जानता हूं, और इस ज्ञानसे मैं अमरत्व-का अनुभव कर रहा हूं यह भाव यहां है। इस पुरुषको जाननेका तात्पर्य क्या है सो देखिये—

पुरुषका स्वरूप

१ सहस्रों मुख-बाहु-पेट-पांववाला एकही पुरुषका विशाल देह है, विश्वदेही एक अखण्ड पुरुष है।

२ जो भूतकालमें था, जो इस समय है और जो भविष्यमें होगा वह सब यह पुरुषही है। यह विश्वरूपी पुरुषही सब कुछ है।

३ द्युलोक इसका सिर, सूर्य इसके आंख, अन्तरिक्ष इसका पेट, पृथ्वी इसके पांव,ऐसा यह विश्वदेही एकही पुरुष है।

४ ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र इस पुरुषके मुख-बाहु-पेट-पांव हैं। प्राणि-समुदाय-रूप इस पुरुषका विशाल शरीर है अतः सहस्रों अवयवोंवाला यह पुरुष है।

५ याजक, यज्ञ, यज्ञसाधन, मंत्र आदि सभी इसके रूप होनेसे " यज्ञ (रूपी याजक) यज्ञ (रूपी सामग्रीसे) यज्ञ (रूपी प्रभु) का यज्ञ (अर्थात् यजन) करता है" ऐसा वर्णन इसका होता है। इस तरह इस वर्णनसे एकत्वका दर्शन होता है।

६ संपूर्ण विश्वमें एकही यह यज्ञ-पुरुष भरपूर भरा है। अतः विश्व-सेवा ही अपने कर्मसे करना इतनाही एकमात्र मानव धर्म है। इस तरह अनन्य होकर साधक स्वकर्मसे विश्वरूपी प्रभुकी सेवा करे।

७ व्यक्ति मर्त्य है, उसका संघ अमर है। अपने आपको संघरूप अनुभव करनेका नाम अमरत्व-प्राप्ति है। असंभूति (व्यक्तिभाव) से मृत्युभय है संभूतिसे अमरत्व है।

यह ज्ञान और इस ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला कर्म मृत्यु-भयसे दूर करता है। समष्टि-जीवनसे अमरत्व है। इसका अनुभव यहां उस तरह होता है। नारायण और उत्तर नारायण इन ऋषियोंके तत्वज्ञानोंका इस तरह मेल है। ऊपर ७ तत्व बताये हैं वे नारायण ऋषिके १६ मंत्रोंका सार है। 'अहं पुरुषं वेद ' का अर्थ यह है। इस ज्ञानसे मृत्युसे परे मानव जाता है।

अजन्मा प्रजापतिका जन्म

यह जो सहस्र सिरोंवाला पुरुष है वही प्रजापति है। यह प्रजापालन कर रहा है। पृथ्वी वृक्ष-वनस्पति-अन्न आदि देकर, जल प्यास दूर करके, सूर्य अपनी उष्णतासे शीत निवारण करके, वायु प्राण-जीवन देकर सब विश्वका पालन कर रहा है। अनेक रूपोंद्वारा यह प्रजापति सबका पालन कर रहा है। यही प्रजापति विश्वरूपसे अजन्मा और अमर है, पर व्यक्तिरूपसे यह अजन्मा होता हुआ गर्भके अन्दर संचार करता है, जन्म लेकर नाना रूपोंमें अवतरित होता है।

अजायमानः प्रजापतिः गर्भे अन्तः चरति,
बहुधा वि जायते ॥ (वा० य० ३१।१९)

' अजन्मा प्रजापति गर्भके अन्दर संचार करता है और अनेक रूपोंमें जन्म लेता है, उत्पन्न होता है । '

यह विरोधाभास अलंकार है । न जन्मनेवाला जन्मता है । यह ऐसा कैसा होता है यह आश्चर्य प्रतीत होता है, पर इसमें कोई आश्चर्य नहीं, विरोध दीखता है वह दूर हो सकता है । विश्वरूप प्रजापति विश्वरूपमें जन्म-जरा-मृत्युरहित है । परंतु उसका एक एक अंश जन्म-जरा-मृत्युसे युक्त है । इसलिये " विश्वरूप अजन्मा प्रजापति अपने अंशरूपसे गर्भमें संचार करता है और अनेक रूपोंमें जन्म लेता है । " ऐसा समझनेसे इसमें कोई विरोध नहीं रह सकता । हमारा शरीर भी प्रतिक्षण अंशरूपसे मर रहा है, पर शरीररूपेण जीवित है । ७ वर्षोंके पूर्व जो अणु थे वे ७ वर्षोंके बाद नहीं रहते, इतना परिवर्तन होता है । तथापि शरीर वही है ऐसा माना जाता है । अंश मृत्युके वशमें जाते रहनेपर भी अखण्ड शरीर जीवित रहता है, इसका उदाहरण प्रत्येक शरीर है । वही तत्त्व अखण्ड विश्वके विषयमें देखना चाहिये ।

प्रजापतिका स्वरूप

" तस्मिन् विश्वा भुवनानि तस्थुः । " (मं० १९)

' इस प्रजापतिमें सब भुवन रहे हैं । ' सूर्य-चन्द्र आदि लोक-लोकान्तर इस प्रजापतिमें रहते हैं इतना यह प्रचण्ड विश्वदेही विश्वरूप है । इसका आदि (उरला भाग) और अन्त (परला भाग) किसीको भी ज्ञात नहीं, इतना इसका विस्तार है ।

' धीराः तस्य योनिं परि पश्यन्ति । " ज्ञानी लोगही उसकी उत्पत्तिको जानते हैं, ज्ञानीही उसके मूल स्थानको जानते हैं । ज्ञानीही जानते हैं कि वह गर्भमें कैसा आता है, कैसा अनेक रूपोंमें उत्पन्न होता है ।

यः देवेभ्यः आतपति । (मं० २०)

' जो देवोंके लिये तपता है ।' जो देवोंमें देवत्व स्थिर रखता है । सूर्यका प्रकाश और चन्द्रमाकी चांदनी जिसके सामर्थ्यसे बनती है । इसी तरह अन्य देवोंके दिव्यगुण जिसके सामर्थ्यसे सुस्थिर हुए हैं वही यह विश्वरूप प्रभु है ।

यः देवानां पुरोहितः
यः देवेभ्यः पूर्वः जातः ॥ (मं० २०)

' जो देवोंमें अग्रेसर है, जो सब देवोंके पहिले प्रकट हुआ था ' वही यह विश्वरूपमें प्रकट होकर हमारे सन्मुख उपस्थित है । विश्व बननेके पूर्व यह ब्रह्मरूप था, विश्वरूप बननेपर यह सबमें मुख्य करके प्रसिद्ध है, यही सब देवोंको प्रकाशित करता है, देवोंका देवत्व इसीके सामर्थ्यसे है ।

ब्राह्मये रुचाय नमः । (मं० २०)

" इस ब्राह्मतेजके लिये नमस्कार है । " जो ब्रह्म तेजस्वरूपी प्रारंभमें था, जिसका यह सब विश्वरूप है उस ब्रह्मस्वरूपके तेजस्वरूपके लिये मेरा प्रणाम है ।

ब्राह्मं रुचं जनयन्तः देवाः अग्रे
तत् अब्रुवन् ।

' ब्राह्मतेजको प्रकाशित करनेवाले देवोंने प्रारंभमेंही ऐसा घोषित किया था ' कि—

यः ब्राह्मणः एवं विद्यात्
देवाः तस्य वशे आसन् । (मं० २१)

' जो ज्ञानी इस ज्ञानको जानते हैं, उनके वशमें सब देव रहते हैं । ' ये सूर्य चन्द्रादि देव (ब्राह्मं रुचं जनयन्तः) ब्रह्मकाही प्रकाश फैला रहे हैं । यह उनका निज प्रकाश नहीं है । (यस्य भासा सर्वं इदं विभाति) जिसके तेजसे यह सब प्रकाशित हो रहा है वह ब्रह्मकाही तेज इस विश्वमें विश्वरूपसे प्रकाशित हो रहा है ।

हे प्रजापते ! (श्रीः च लक्ष्मीः च ते पत्न्यौ) श्री और लक्ष्मी ये तेरी पत्नियाँ हैं । श्रीका नाम शोभा और लक्ष्मीका अर्थ तेजस्विता है । (अहोरात्रे पार्श्वे) दिन और रात्री ये तेरी दो बाहुएं हैं । (नक्षत्राणि रूपं) ये सब ग्रह नक्षत्र तेरे रूपका प्रकाश कर रही हैं, तेरे सामर्थ्यका प्रकाश इनसे होता है । यह विश्वरूपही तेरा सामर्थ्य प्रकट कर रहा है । (अश्विनौ व्यात्तम्) अश्विदेव अर्थात् धनशक्ति और ऋणशक्ति ये तेरा खुला

सुख है। सर्वत्र ये शक्तियां हैं और इनका कार्य सर्वत्र दीखता है।

इष्णन् ! इषाण ! अमुं म इषाण।
सर्वलोकं म इषाण॥ (मं० २२)

'हे सबकी भलाईकी इच्छा करनेवाले प्रजापते ! ऐसी इच्छा कर कि यह आनंद मुझे प्राप्त हो जाय। ये सब शुभ लोक मुझे प्राप्त हो जांय।'

हम सबका आचरण ऐसा हो कि प्रजापति हमारे ऊपर प्रसन्न हो जाय और सब सुखमय तथा सब आनंदमय लोक हमें प्राप्त हो जांय। हम सब आनंदसे युक्त हों और सुखी हों। यहां इस पृथ्वीपर स्वर्गीय सुखका राज्य हो और यहां कोई दुःखी न रहे।

इस तरह दुःख मुक्त होनेका ज्ञान इस सूक्तमें दिया है। इस ज्ञानके अनुसार आचार-व्यवहार करनेसेही इस सुखकी प्राप्ति हो सकती है। केवल ज्ञानसे मार्ग दीख सकता है, व्यवहारमें वह ज्ञान लानेसेही अपूर्व आनन्दकी प्राप्ति हो सकती है। सब लोग इस वेदमार्गका अवलंबन करें और आनन्दका अनुभव करें॥

व्यक्तिमें शान्ति !
समाजमें शान्ति !!
विश्वमें शान्ति स्थापित हो !!!

नारायण ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(१५)

बृहस्पति ऋषिका दर्शन

" ज्ञानका महत्त्व "

(ऋग्वेदका ७९ वाँ अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, साहित्य-वाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालङ्कार,

अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, आनन्दाश्रम, पारडी [जि० सूरत]

संवत् २००६, सन १९४९

मूल्य १) रु०

(ऋषिः-गृत्समदः । देवता-ब्रह्मणस्पतिः)

इन्धानो अग्निं वनवद्वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद्रातहव्य इत् । जातेन जातमति स प्र सर्सृते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥

(ऋ० २।२५।१)

' ब्रह्मणस्पति जिसको अपना साथी मानता है, वह पुत्रको पुत्र होनेके बाद भी जीवित रहता है, वह अग्निको प्रज्वलित करके उसमें हवन करता है, ज्ञानका प्रसार करता है और शत्रुको परास्त करता है । ' इस तरह ब्रह्मणस्पति सहायक होनेपर उसकी सहायतासे लाभ होता है । और देखिये —

(ऋषिः-गृत्समदः । देवता-बृहस्पतिः)

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥१॥
देवाश्चित्ते असुर्य प्रचेतसो
बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः ।
उस्रा इव सूर्यो ज्योतिषा महो
विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥२॥
आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च
ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि ।
बृहस्पते भीमममित्रदम्भनं
रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम् ॥३॥
सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं
यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि
बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम् ॥४॥
न तमंहो न दुरितं कुतश्चन
नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
विश्वा इदस्माद् ध्वरसो वि बाधसे
यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥५॥

(ऋ० २।२३।१-५)

यह बृहस्पति कैसा है उसका वर्णन इस मन्त्रमें किया

१ गणानां गणपतिः— गणोंके समुदायोंका अधिपति, अर्थात् इसके अधीन सैनिकोंके अनेकानेक गण रहते हैं ।

२ कवीनां कविः—ज्ञानियोंमें यह ज्ञानी है, विद्वानोंमें यह बृहस्पति अधिक विद्वान् है ।

३ उपमश्रवस्तमः--कीर्तिमानोंमें यह अधिक कीर्तिमान है ।

४ ब्रह्मणां ज्येष्ठराजः— ज्ञानियोंका सबसे श्रेष्ठ अधिराज, श्रेष्ठ ज्ञानी, जिसके ज्ञानकी तुलना दूसरे किसीके साथ नहीं होती; (मं० १)

५ असुर्यः बृहस्पति–प्राणशक्तिके प्रचण्ड बलसे युक्त यह बृहस्पति है ।

६ विश्वेषां ब्रह्मणां जनिता–सब ज्ञानोंका प्रवर्तक है, सब स्तोत्रों, सब प्रार्थना-सूक्तोंका प्रवर्तक है । (मं० २)

७ तमांसि विबाध्य ऋतस्य ज्योतिष्मन्तं रथं आ तिष्ठति– सब प्रकारके अज्ञानान्धकारको दूर करके सत्यके तेजस्वी रथपर यह बृहस्पति बैठता है ।

८ अमित्रदंभनं रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदं रथं आ तिष्ठसि—जिस रथपर बृहस्पति बैठता है वह रथ शत्रुनाशक, राक्षसोंका वधकर्ता, पर्वतपरके शत्रुके कीलोंको तोडनेवाला, अपना बल बढानेवाला होता है । (मं० ३)

९ सुनीतिभिः नयति, जनं त्रायसे—उत्तम सदाचारके मार्गसे लोगोंको तू ले जाता है और जनताकी सुरक्षा करता है ।

१० यः तुभ्यं दाशात् तं अंहः न अश्नवत्— जो इसकी भक्ति करता है, अथवा जो इसका अनुगामी होता है उसे पाप नहीं लगता ।

११ ब्रह्मद्विषः तपनः मन्युमीः असि—जो ज्ञान प्रसारका द्वेष करता है, उसको यह ताप देता है और उस दुष्टके क्रोधको वह निरर्थक बना देता है । (मं० ४)

१२ यं सुगोपाः रक्षसि तं अंहः न, दुरितं न, अरातयः न, द्वयाविनः न तितिरुः, विश्वा ध्वरसः अस्मा वि बाधसे—बृहस्पति जिसकी सुरक्षा करता है उसे पाप, अपकृत्य, शत्रु, कपटी कष्ट नहीं दे सकते, सब विनाशक योजनाओंको यह दूर करता है । (मं० ५)

' इस तरह बृहस्पतिकी सहायता लोगोंको होती है । और देखो—

(ऋषिः--कुत्सः । देवता--विश्वे देवाः--बृहस्पतिः)

त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये ।
तत् शुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु ॥

(ऋ० १।१०५।१७)

' त्रित कूवेमें गिर गया था, उसने सब देवोंकी सहायार्थ प्रार्थना की, ब्रह्मणस्पतिने यह प्रार्थना सुनी और उसको अन्धकारमय कूपसे ऊपर उठा लिया । ' बृहस्पति अन्य देवोंकी अपेक्षा सहाय्यार्थ सबसे प्रथम आनेवाला है । त्रित तो सबकी प्रार्थना करता था, पर सबसे प्रथम बृहस्पति सहाय्यार्थ आया । यह बृहस्पतिकी विशेषता है ।

(ऋषिः--भरद्वाजः । देवता--बृहस्पतिः)

यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिः आङ्गिरसः हविष्मान् । द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥

(ऋ० ६।७३।१)

' जो शत्रुके कीले तोडता है, जो सबसे प्रथम प्रकट हुआ, जो सद्धर्मपालक ऐसा जो आंगिरसोंमें याजक बृहस्पति करके प्रसिद्ध है, वह दोनों स्थानोंमें प्रगति करनेवाला हमारा पिता द्यावापृथिवीमें गर्जना करता है । ' अर्थात् यह बृहस्पति बडा शूर, सत्पक्षका संरक्षण करनेवाला पिता जैसा संरक्षण करता है वैसा हमारा संरक्षण करता है और आकाश और पृथिवीके मध्यमें धर्ममार्गकी बडी गर्जना करता है और सबको अभय देता है । और देखिये--

(ऋषिः--मेधातिथिः । देवता--ब्रह्मणस्पतिः)

यस्मादृते न सिद्ध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन ।
स धीनां योगमिन्वति ॥ (ऋ० १।१८।७)

' जिस बृहस्पतिकी सहायताके विना विद्वानोंका भी यज्ञ सिद्ध नहीं हो सकता, वह बुद्धियोग प्राप्त कर देता है । '

बृहस्पतिको ब्रह्मणस्पति, सदसस्पति, ज्येष्ठराज गणपति ऐसे अनेक नाम हैं (ऋ० १।१८।६।७, २।२३।१)। ' लोक्य ' नामक ऋषिका पुत्र एक बृहस्पति है, ऋग्वेद सर्वानुक्रमणीमें ऋ० १०।७२ का यह भी ऋषि है ऐसा कहा है, अर्थात् इस सूक्तके दो ऋषि दिये हैं ' लौक्यो बृहस्पतिः अथवा ' आङ्गिरसो बृहस्पतिः ' इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस सूक्तके ऋषिके विषयमें सर्वानुक्रमणीकारको भी संदेह था ।

चतुर्विंशतियागका रचक

चतुर्विंशतियाग आदि कई याग बृहस्पतिकी रचनासे निर्माण हुए हैं ऐसा तैत्तिरीय संहितामें कहा है—

बृहस्पतिरकामयत श्रन्मे देवा दधीरन् गच्छेयं पुरोधामिति । स एतं चतुर्विंशतिरात्रं अपश्यत् तमाहरत् तेनायजत । (तै० सं० ७।४।१।१)

बृहस्पतिने चतुर्विंशतिरात्र नामक यज्ञ सबसे प्रथम किया ।

बृहस्पतिकी पत्नी

इस बृहस्पतिकी पत्नी धेना है (गो० ब्रा० २।९)। धेनाका अर्थ वाणी है । यही बात श० प० ब्रा० में कही है जो इस प्रस्तावना लेखके प्रारंभमें दी है । वहां बृहस्पतिका आशय वाक्पतिही दिया है । ' जुहू ' भी इसकी पत्नी कही गयी है ।

बृहस्पतिने कई सामगान रचे थे ऐसा छां० उ० १।२।११ से पता लगता है । क्रौंच पक्षीके शब्दोंके समान उन सामगानोंमें आलाप लिये जाते हैं । याज्ञवल्क्यको तत्वज्ञानका उपदेश देनेवाला बृहस्पति है ऐसा जाबाल उपनिषद् (खं० १) में कहा है ।

देवोंका पुरोहित बृहस्पति है ऐसा महाभारत आदि पर्व ७६ में कहा है । पुराणोंमें यही धारणा है । स्वायंभुव मन्वंतरमें अङ्गिरा ऋषि और सुरूपा इनका पुत्र बृहस्पति है ऐसा भागवत ४।१ में, महाभारत आदि ६६, आश्वमेधिक ५ तथा ब्रह्माण्ड पुराण ३।३।१ में कहा है ।

बृहस्पतिका परिवार

बृहस्पतिको तारा और शुभा ऐसी दो स्त्रियां थी । इसको शुभा स्त्रीसे भानुमती, राका, अर्चिष्मती, महामती, महिष्मती, सिनीवाली और हविष्मती ऐसी सात कन्याएं हुई । और तारा नामक स्त्रीसे शंयु, निश्च्यवन, विश्वभुज्, विश्वजित्, बडवाग्नि, स्विष्टकृत् ये पुत्र हुए और स्वाहा नामक एक पुत्री हुई । इसका कुशध्वज नामक भी एक

पुत्र था ऐसा अन्यत्र लिखा हुआ मिलता है। इनमें शंयु मन्त्रद्रष्टा ऋषि है। इसके मन्त्र ऋ० ६।४४ (२४); ४५ (३३); ४६ (१४); ४८ (२२) सब मिलकर ९३ मन्त्र ऋग्वेदमें है, जो इसके पिता बृहस्पतिसे भी अधिक हैं।

बृहस्पतिको संवर्त और उतथ्य ये दो भाई थे। एक बार उतथ्यकी पत्नी ममता गर्भवती थी उस समय इसने उसके साथ समागम किया। उस समय उदरस्थ गर्भ इसको उस कार्यमें प्रतिबंध करने लगा, इसलिये इसने गर्भको तू जन्मसे अन्ध होगा ऐसा शाप दिया। वही जन्मान्ध दीर्घतमा ऋषि है। इस दीर्घतमाके मन्त्र ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें २४२ हैं और यह बडा तत्त्वज्ञानी करके सुप्रसिद्ध है। जन्मसे अन्ध होनेपर भी इसे दिव्य-दृष्टि प्राप्त हुई थी। इसकी धर्मपत्नी ममता थी। दीर्घतमाको ममतासे जो पुत्र हुआ उसका नाम भरद्वाज है। (देखो महाभारत आदि १०४, मत्स्य ४९; वेदार्थ-दीपिका ६।५२) इसी भरद्वाजको दुष्यन्तपुत्र भरतने दत्तक लिया था।

आपसका द्वेष

बृहस्पति और संवर्तमें बडा द्वेष था। बृहस्पति मरुत्-राजाका पुरोहित था। इन्द्रने इसे अपना यज्ञ चलानेके लिये बुलाया। इस निमन्त्रणके अनुसार यह बृहस्पति इन्द्रका पुरोहित बनकर स्वर्गको चला गया। और वहीं रहने लगा। यह देखकर मरुत् राजाने बृहस्पतिके भाई संवर्तको अपना पुरोहित बनाया और अपना यज्ञ चलाया। तब मरुत्के इस कृत्यसे बृहस्पतिको क्रोध चढा। और इसने इन्द्रसे कहा कि मरुत्का यज्ञ बन्द करो। इन्द्रने बृहस्पतिका वचन मानकर अपनी सेनाके साथ मरुत्-राजाके यज्ञस्थलपर धावा किया। परतु संवर्तने अर्थात् मरुत्राजाके पुरोहितने अपने ब्रह्मतेजके सामर्थ्यसे इन्द्रका पराभव किया। और इसके पश्चात् मरुत्का यज्ञ निर्विघ्न रीतिसे समाप्त हुआ। (म० आश्वमेध० ५-९)

एक बार इन्द्रने बृहस्पतिका अपमान किया, इसलिये बृहस्पतिने देवोंको छोड दिया। पर बृहस्पतिकी बुद्धिमत्ताके बिना देवोंकी प्रगति रुक गयी, यह देखकर देवोंने इसे फिर अपने राज्यमें सम्मानके साथ लाकर रखा। (भागवत ६।७)

बृहस्पतिका नास्तिक मत

देव और दानवोंका एक समय बडा भयानक युद्ध हुआ। इस युद्धमें देवोंका पूर्णतया पराभव हुआ। पराभूत हुए देवोंको अनेक प्रकारसे दानव दुःख देने लगे। सब दानव विजयोत्सवमें मस्त हुए हैं ऐसा देख कर, देवोंका विजय करनेकी इच्छासे बृहस्पतिने शुक्राचार्यका रूप लेकर दानवोंमें जाकर वहां नास्तिक मतका खूब प्रसार किया। जिससे दानवोंमें नास्तिक और आस्तिक ऐसे दो पक्ष हुए और वे आपसमें झगडने लगे। इससे दानवोंकी एकता नष्ट हुई।। यह देखकर देवोंने अपना संगठन करके राक्षसोंपर हमला किया और उनका पराभव किया। इससे देवोंका विजय हुआ। (पद्म पु० १३) यहां राजकारणका पता लगता है। राष्ट्रमें उत्तम संगठन होनेसे विजय होता है। इसलिये शत्रु-राष्ट्रमें मतभेद उत्पन्न करके वहां नाना पन्थ उत्पन्न करना, और अपने राष्ट्रमें संगठन करके मतभेदोंको दूर करना, यह एक विजयका साधन है। बृहस्पतिने यही किया और इससे देवोंका विजय हुआ। बृहस्पतिको नास्तिक मतका प्रवर्तक मानते हैं। पर इसमें उसका हेतु यह था कि शत्रुराष्ट्रमें मतभेद उत्पन्न हों और अपने राष्ट्रमें एकता बढे। यह एक राजकीय हेतु है।

बृहस्पति अत्यन्त बुद्धिमान था। असत्यको भी सत्य जैसा प्रतिपादन करनेमें वह चतुर था। इसलिये दैत्योंमें मतभेद उत्पन्न करके उनमें पक्षभेद बढानेके लिये उन्होंने ऐसा किया। इसीकी शिष्य परंपरामें चार्वाक् हुआ जिसको पूर्ण नास्तिक कहते हैं। इस कथामें जो राजकारण है वह पाठक विचारपूर्वक देखें।

नहुष राजाके भयसे इसी बृहस्पतिने शचीका संरक्षण किया था। शची इन्द्रकी पत्नी है। (म० उद्योग ११)

उपरिचर वसूके निमन्त्रणसे बृहस्पति उसके यज्ञमें गया था। उस यज्ञमें उन्होंने होताका कार्य किया था। उपरिचर राजा कट्टर विष्णुभक्त था। विष्णुने स्वयं आकर उपरिचरके पुरोडाशका भक्षण किया। परंतु बृहस्पतिको यह पसंद नहीं हुआ। उपरिचर राजाकाही इसमें कुछ कपट है ऐसा बृहस्पतिका विचार हुआ। और क्रोधित होकर वह उपरिचरको शाप देनेके लिये सिद्ध था। उस समय एकत,

द्वित और त्रित इन तीन मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने आगे होकर बृहस्पतिको शान्त किया जिसे शाप न हुआ। (महाभारत शान्ति० ३३६)

महादेवके पुष्करक्षेत्रमें किये यज्ञमें बृहस्पति नेष्टा नामक अध्वर्यु था। (पद्म पुराण स० ३४)

बृहस्पतिने इन्द्रको राजाके कर्तव्योंका उपदेश किया। उसमें साम-दाम-दण्ड और भेदमें साम परही विशेष बल दिया है (महाभा० शां० ८४)। इसी तरह बृहस्पतिने कोसलदेशके राजा वसुमनसको राजधर्मका उपदेश किया है। (महाभा० शां० ६८)

पृथ्वीके दोहनके समय देवोंने बृहस्पतिको वत्स किया था। (भागवत ४।१८।१४) अथर्ववेदमें बृहस्पतिके दोहन में राजा सोम वत्स हुआ ऐसा वर्णन है—

सोदक्रामत् सा सप्तऋषीनागच्छत् तां सप्तऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति ॥१३॥ तस्याः सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दः पात्रम् ॥१४॥ तां बृहस्पतिराङ्गिरसोऽधोक् तां ब्रह्म च तपश्चाधोक् ॥१५॥ तद्ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उपजीवन्ति ब्रह्मवर्चस्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१६॥ (अथर्व० ८।१०)

पूर्वोक्त भागवतकी कथामें बृहस्पतिकोही वत्स बनाया है। इसीसे ये कथाएँ आलंकारिक हैं ऐसा सिद्ध होता है।

स्कंद पुराण (२।४।१।१७)में लिखा है कि बृहस्पतिने एक सहस्त्रवर्ष तप करके शिवजीको प्रसन्न किया और वर प्राप्त किया। इसी स्थानपर बृहस्पतीश्वर नामक शिवलिंगकी स्थापना की (स्कंद पु० ७।१।७८) । पर यह कथा वेदमंत्रद्रष्टा ऋषिकी नहीं हो सकती यह तो स्पष्टही है।

बृहस्पतिने राजा युधिष्ठिरको प्राणियोंके जन्म-मरणके विविध प्रकार कथन किये (महा० अनु० १७३।११ कुं०)।

बृहस्पतिकी एक बहिन भुवना ब्रह्मवादिनी थी। इसका विवाह प्रभासके साथ हुआ था। इसका पुत्र विश्वकर्मा नामसे प्रसिद्ध है। यही विश्वकर्मा भौवन ऋषि मन्त्रद्रष्टा ऋषि है। ऋग्वेद १०।८१-८२ इन दो सूक्तोंमें इसके १४ मन्त्र हैं।

बृहस्पतिके ग्रंथ

बृहस्पतिके ग्रंथ धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र तथा अर्थशास्त्र पर अनेक होंगे। पर इनमेंसे केवल एकही स्मृति 'बृहस्पति-स्मृति' नामसे छपी हुई मिलती है। इस स्मृतिमें केवल ८० श्लोक हैं। स्व० जीवानंद विद्या-सागरके पुस्तकालयमें एक और स्मृति है। इसमें दान प्रशंसा और कुछ विषय अधिक हैं। बृहस्पति-स्मृतिके वचन मिताक्षरादि ग्रंथोंमें उद्धृत किये हैं। इन वचनोंको देखनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि बृहस्पतिकी स्मृति बडी थी। इसमें न्यायदान विभाग तथा दायभाग भी विस्तृत था। पुत्रहीन विधवा-को वित्तांश मिलना चाहिये यह बृहस्पतिने सबसे पहिले कहा था। (याज्ञ० २।१३५) इसने नाणक और दीनार नामक मुद्राओंका वर्णन दिया है। (वीर० ३८३; स्मृति चंद्रि० ९९) ब्रह्मदेवने तैयार किया हुआ बाहुदंतक ग्रन्थ इसी बृहस्पतिने तीन सहस्त्र अध्यायोंमें संक्षिप्त किया। (महा० शां० ५८।९२ कुं०) इसका नाम बार्हस्पत्य शास्त्र है। अनेक ग्रंथोंमें इसके वचन लिये मिलते हैं। कामशास्त्र-में भी इसका नाम आया है। राजाके मन्त्री सोलह हों ऐसा बृहस्पतिका वचन है। (कौ० अर्थ०) अपरार्कमें तथा दानरत्नाकरमें 'दान-बृहस्पति 'का उल्लेख है। कात्यायन और अपरार्कमें इनके वचन लिये हैं। दीनार आदि मुद्राका उल्लेख करनेके कारण इस स्मृतिलेखक बृहस्पतिका समय विक्रम संवत्के प्रारंभका प्रतीत होता है। इसका 'सभाध्याय' ग्रंथ था। वह इस समय दुष्प्राप्य ही है।

बृहस्पति, अंगिरा, नारद और भृगु इन चार ऋषियोंने मनुस्मृतिके ४ भाग किये ऐसा वचन मिलता है। बृहस्पति-की स्मृति सर्वथा मनुस्मृतिके अनुकूलही थी ऐसा प्रतीत होता है। बृहस्पतिका 'वास्तु-व्यवहार-शास्त्र' पर एक बडा ग्रंथ था। (देखो मत्स्य पु० २५२)

अंगिरा और सुरूपाका पुत्र बृहस्पति था यह स्वायंभुव मन्वंतरकी बात है। और अंगिरा और श्रद्धासे उत्पन्न हुआ दूसरा बृहस्पति है यह वैवस्वत मन्वंतरका है।

जनमेजयके सर्पसत्रमें भी एक बृहस्पति नामक ऋषि था। (महा० १२।६)

इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः ।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ९
सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः ।
किल्बिषस्पृत् पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय १०
ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः ११

(२)

(ऋ० १०।७२) ऋषिः- लौक्यो बृहस्पतिः, बृहस्पतिराङ्गिरसो वा, दाक्षायणी अदितिर्वा । देवता-देवा. । छन्द.-अनुष्टुप् ।

देवानां नु वयं जाना प्र वोचाम विपन्यया । उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे १
ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत् । देवानां पूर्व्ये युगे ऽसतः सदजायत २
देवानां युगे प्रथमे ऽसतः सदजायत । तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ३

---

९ इमे ये न अर्वाङ्, न परः चरन्ति, न ब्राह्मणासः, न सुतेकरासः । ते एते वाचं अभिपद्य पापया अप्रजज्ञयः सिरीः तन्त्रं तन्वते ॥९॥

१० सर्वे सखायः यशसागतेन, सभासाहेन सख्या नन्दन्ति । किल्बिषस्पृत् पितुषणिः वाजिनाय एषां अरं हितः भवति ॥१०॥

११ त्वः ऋचां पोषं पुपुष्वान् आस्ते, त्वः गायत्रं शक्वरीषु गायति । त्वः ब्रह्मा जातविद्यां वदति । उ त्वः यज्ञस्य मात्रां वि मिमीते ॥११॥

अन्वयः-१ वयं देवानां जाना विपन्यया प्र वोचाम नु । उक्थेषु शस्यमानेषु यः उत्तरे युगे पश्यात् ॥१॥

२ कर्मार इव ब्रह्मणस्पतिः एता सं अधमत् । देवानां पूर्व्ये युगे असतः सत् अजायत ॥२॥

३ देवानां प्रथमे युगे असतः सत् अजायत । तत् आशाः अनु अजायन्त । तत् उत्तानपदः परि ॥३॥

९ ये अज्ञानी न इधर आते न परे जाते हैं, न ज्ञानी बनते हैं और नाही यज्ञ करते हैं । वे ये वाणीको प्राप्त करके भी पापबुद्धिके कारण अज्ञानी रहकर बुननेवालीके साथ खड्डी चलाते रहते हैं ॥९॥

१० सब मित्र यशस्वी होकर आये, सभामें विजय प्राप्त किये अपने मित्रको देखकर आनन्दित होते हैं । वह पापको दूर करनेवाला, अन्न देकर पोषण करनेवाला ओजस्वी कार्य करनेके लिये समर्थ ऐसा वह इन सबका पर्याप्त हित करनेवाला होता है ॥१०॥

११ एक ज्ञानी ऋचाओंका परिपोष करता है, दूसरा ज्ञानी गायत्र गान शक्करीमें गाता है । तीसरा ब्रह्मा सब उत्पन्न पदार्थोंकी विद्याका प्रवचन करता है । और चौथा ज्ञानी यज्ञके प्रमाणका विवरण करता है ॥११॥

अर्थ-१ हम देवोंके जन्मोंका वर्णन स्पष्ट रीतिसे करते हैं, क्योंकि इन काव्योंके गानमें भविष्यकालमें उत्पन्न होनेवाले कवि (दिव्यभाव) देखेंगे ॥१॥

२ लुहारके समान बृहस्पतिने इनकी-सृष्टीकी-उत्पत्ति धौंकनी चलाकर की । देवोंके प्रथम युगमें असत्से सत् उत्पन्न हुआ ॥२॥

३ देवोंके पूर्व युगमें असत्से सत् निर्माण हुआ । उससे दिशाएँ निर्माण हुईं । उसके पश्चात् ऊपर उठनेवाली शक्तिवाले पदार्थ निर्माण हुए ॥३॥

इस तरह हमने बृहस्पतिके संबंधमें जो जो वर्णन जहां जहां आता है उसका यहां संग्रह किया है। हमारा सूक्त-द्रष्टा ऋषिका वर्णन इनमेंसे कौनसा है और कौनसा नहीं इसका विचार इस समय करना कठिन है। और प्रायः असंभव भी है।

तथापि पुराणोंका वर्णन बहुत प्रसंगमें आलंकारिक है, इसलिये उसको इतिहासका महत्व नहीं प्राप्त हो सकता। वेदमंत्रोंमें भी आंगिरस बृहस्पतिका उल्लेख है। और बृहस्पति देवताके वर्णनके सूक्तोंमें भी अनेक प्रकारके उत्तम वर्णन हैं। इन सबका जैसा होना चाहिये वैसा विचार इस समय नहीं हो सकता। इस कारण यहां यह केवल संग्रह ही है ऐसा पाठक मानें इतना कह कर, यह बृहस्पतिकी भूमिकाका विषय समाप्त करते हैं।

सूचना—ऋ० १०।७२ वां सूक्त इसमें दिया है, वह 'आंगिरस बृहस्पति' का है अथवा लोक-पुत्र बृहस्पति' का (अर्थात् लौक्य बृहस्पतिका) है अथवा 'दाक्षायणी अदिति' का है। इस सूक्तके ऋषिके विषयमें विकल्प है। यदि इस सूक्तका ऋषि आंगिरस बृहस्पतिसे भिन्न सिद्ध हुआ तो उसका यह तत्वज्ञान सिद्ध होगा।

स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम'
पारडी (जि. सूरत)
ज्येष्ठ शुक्ल १, संवत् २००६

निवेदनकर्ता
पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

मुद्रक तथा प्रकाशक— वसंत श्रीपाद सातवळेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, पारडी (जि० सूरत)

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

बृहस्पति ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका ७९ वाँ अनुवाक)

" ज्ञानका महत्त्व "

(१)

(ऋ० १० । ७१) ऋषिः- बृहस्पतिः आङ्गिरसः । देवता- ज्ञानम् । छन्दः- त्रिष्टुप्, ९ जगती ।

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥ १

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥ २

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् ।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते ॥ ३

अन्वयः—१ हे बृहस्पते ! नामधेयं दधानाः यत् प्रथमं प्रैरत, तत् वाचः अग्रम् ।

यत् एषां श्रेष्ठं, यत् अरिप्रं आसीत्, तत् एषां गुहा निहितं, प्रेणा आविः (भवति) ॥१॥

२ सक्तुं तितउना पुनन्तः इव धीराः यत्र मनसा वाचं अक्रत, अत्र सखायः सख्यानि जानते, एषां वाचि भद्रा लक्ष्मीः अधि निहिता ॥२॥

३ यज्ञेन वाचः पदवीयं आयन् । तां ऋषिषु प्रविष्टां अनु अविन्दन् । तां आ भृत्य पुरुत्रा वि अदधुः । तां सप्त रेभाः अभि सं नवन्ते ॥३॥

अर्थ—१ हे ज्ञानके स्वामिन् ! प्रत्येक वस्तुको नाम रखकर जो प्रथम स्फुरण होता है, वह वाणीका मूल है ।

जो इनमें श्रेष्ठत्व, तथा पावित्र्य है, वह इनमें गुप्त है, जो प्रेमसे प्रकट होता है ॥१॥

२ सत्तु छननीसे छानकर लेनेके समान ज्ञानी लोग जहां मनसे शुद्ध भाषण करते हैं, वहां ज्ञानीही उसका रहस्य जानते हैं, इनकी वाणीमें कल्याणकारिणी लक्ष्मी रहती है ॥२॥

३ (ज्ञानी) यज्ञसे वाणीके ज्ञानके मार्गको प्राप्त हुए । उन्होंने उस वाणीको वह ऋषियोंमें प्रविष्ट है ऐसा जान लिया । उन्होंने उस वाणीको संगृहीत किया । उसीका गान सात छन्द करते हैं ॥३॥

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं१ वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ४

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुः नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ५

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ६

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः ।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ७

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः ।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे ८

---

४ त्वः उत वाचं पश्यन् न ददर्श । उत त्वः शृण्वन् एनां न शृणोति । उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे, उशती सुवासाः जाया पत्ये इव ॥४॥

५ उत सख्ये त्वं स्थिरपीतं आहुः । एनं वाजिनेषु अपि न हिन्वन्ति । अपुष्पां अफलां वाचं शुश्रुवान् एषः मायया अधेन्वा चरति ॥५॥

६ यः सचिविदं सखायं तित्याज, तस्य वाचि भागः अपि न अस्ति । यत् ईं शृणोति अलकं शृणोति, सुकृतस्य पन्थां नहि प्रवेद ॥६॥

७ अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः, मनोजवेषु असमा बभूवुः । उ त्वे ह्रदाः आदघ्नासः, उपकक्षासः, उ त्वे स्नात्वाः ददृश्रे ॥७॥

८ हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यत् सखायाः ब्राह्मणाः संयजन्ते । अत्र अह त्वं वेद्याभिः वि जहुः । त्वे ओहब्रह्माणः वि चरन्ति उ ॥८॥

४ कोई एक (अज्ञानी) वाणीको देखता हुआ भी नहीं देखता। कोई एक (अज्ञानी) इसे सुनता हुआ भी नहीं सुनता। परंतु किसी (ज्ञानीको वह वाणी अपना) शरीर ऐसा खोलकर बताती है, कि जिस तरह भोगेच्छा करनेवाली सुवासिनी स्त्री अपने पतिको (अपना शरीर देती है ।) ॥४॥

५ नि.संदेह सख्य संवर्धनके कार्यमें उस (ज्ञानीको) परिपूर्ण कहते हैं। शास्त्रार्थमें इसको हीन नहीं मानते । पर जिसने पुष्परहित निष्फल वाणीका श्रवण किया है वह बनावटी गौके साथ चलनेवालेके समान (निष्फल होता) है ॥५॥

६ जो मित्रता बढानेवाले मित्ररूपी ज्ञानका त्याग करता है, उसकी वाणीमें सेवनीय भाग थोडा भी नहीं होता। वह जो सुनता है वह व्यर्थ सुनता है, और वह कल्याणका मार्ग भी नहीं जानता ॥६॥

७ आंखवाले और कानवाले सब लोग होते हैं, पर वे मनके वेगमें विषम होते है। ये कई जलाशय मुखतक पानीवाले और कई कटीतक जलवाले होते हैं, पर वे दूसरे जलाशय भरपूर स्नान करनेयोग्य दीखते हैं ॥७॥

८ हृदयसे निश्चित हुए मनके वेगोंमें जो मित्रभाव बढानेवाले ज्ञानी ज्ञानयज्ञ करते हैं। उस समय वे अपने ज्ञानोंसे अन्योंको पीछे रखते हैं। पर जो श्रेष्ठ ज्ञानी हैं वे ही विजयी बनकर जगत्में संचार करते हैं ॥८॥

इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः ।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ॥ ९

सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः ।
किल्बिषस्पृत् पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय ॥ १०

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः ॥ ११

(२)

(ऋ० १०।७२) ऋषिः- लौक्यो बृहस्पतिः, बृहस्पतिराङ्गिरसो वा, दाक्षायणी अदितिर्वा । देवता-देवाः । छन्द.-अनुष्टुप् ।

देवानां नु वयं जाना प्र वोचाम विपन्यया । उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे ॥ १
ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत् । देवानां पूर्व्ये युगे ऽसतः सदजायत ॥ २
देवानां युगे प्रथमे ऽसतः सदजायत । तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ॥ ३

---

९ इमे ये न अर्वाङ्, न परः चरन्ति, न ब्राह्मणासः, न सुतेकरासः । ते एते वाचं अभिपद्य पापया अप्रजज्ञयः सिरीः तन्त्रं तन्वते ॥९॥

१० सर्वे सखायः यशसागतेन, सभासाहेन सख्या नन्दन्ति । किल्बिषस्पृत् पितुषणिः वाजिनाय एषां अरं हितः भवति ॥१०॥

११ त्वः ऋचां पोषं पुपुष्वान् आस्ते, त्वः गायत्रं शक्वरीषु गायति । त्वः ब्रह्मा जातविद्यां वदति । उ त्वः यज्ञस्य मात्रां वि मिमीते ॥११॥

अन्वयः-१ वयं देवानां जाना विपन्यया प्र वोचाम नु । उक्थेषु शस्यमानेषु यः उत्तरे युगे पश्यात् ॥१॥

२ कर्मार इव ब्रह्मणस्पतिः एता सं अधमत् । देवानां पूर्व्ये युगे असतः सत् अजायत ॥२॥

३ देवानां प्रथमे युगे असतः सत् अजायत । तत् आशाः अनु अजायन्त । तत् उत्तानपदः परि ॥३॥

९ ये अज्ञानी न इधर आते न परे जाते हैं, न ज्ञानी बनते हैं और नाही यज्ञ करते हैं । वे ये वाणीको प्राप्त करके भी पापबुद्धिके कारण अज्ञानी रहकर बुननेवालीके साथ खड्डी चलाते रहते हैं ॥९॥

१० सब मित्र यशस्वी होकर आये, सभामें विजय प्राप्त किये अपने मित्रको देखकर आनन्दित होते हैं । यह पापको दूर करनेवाला, अन्न देकर पोषण करनेवाला ओजस्वी कार्य करनेके लिये समर्थ ऐसा वह इन सबका पर्याप्त हित करनेवाला होता है ॥१०॥

११ एक ज्ञानी ऋचाओंका परिपोष करता है, दूसरा ज्ञानी गायत्र गान शक्वरीमें गाता है । तीसरा ब्रह्मा सब उत्पन्न पदार्थोंकी विद्याका प्रवचन करता है । और चौथा ज्ञानी यज्ञके प्रमाणका विवरण करता है ॥११॥

अर्थ-१ हम देवोंके जन्मोंका वर्णन स्पष्ट रीतिसे करते हैं । क्योंकि इन काव्योंके गानमें भविष्यकालमें उत्पन्न होनेवाले कवि (दिव्यभाव) देखेंगे ॥१॥

२ लुहारके समान बृहस्पतिने इनकी-सृष्टीकी-उत्पत्ति धौंकनी चलाकर की । देवोंके प्रथम युगमें असत्‌में सत् उत्पन्न हुआ ॥२॥

३ देवोंके पूर्व युगमें असत्‌से सत् निर्माण हुआ । उससे दिशाएँ निर्माण हुई । उसके पश्चात् ऊपर उठनेवाले शाखा-वाले पदार्थ निर्माण हुए ॥३॥

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त ।	अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि	४
अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव	तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः	५
यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत ।	अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत	६
यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत ।	अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्यमजभर्तन	७
अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व१स्परि ।	देवाँ उप प्रैत् सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत्	८
सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप प्रैत् पूर्व्यं युगम् ।	प्रजायै मृत्यवे त्वत् पुनर्मार्ताण्डमाभरत्	९

४ उत्तानपदः भूः जज्ञे । भुवः आशाः अजायन्त । अदितेः दक्षः अजायत । दक्षात् अदितिः परि ॥४॥

४ ऊपर उठनेवाली शक्तिसे भूमि हुई । भूमिसे दिशाएं उत्पन्न हुईं । अदितिसे दक्ष हुआ । और दक्षसे फिर अदिति हुई ॥४॥

५ हे दक्ष ! या तव दुहिता सा अदितिः अजनिष्ट हि (पुत्रान्) । तां भद्राः अमृतबन्धवः देवाः अन्वजायन्त ॥५॥

५ हे दक्ष ! जो तेरी पुत्री है उस अदितिने देवोंको जन्म दिया । उससे कल्याण करनेवाले, अमरत्वके सहचारी देवगण उत्पन्न हुए ॥५॥

६ यत् देवाः सुसंरब्धाः अदः सलिले अतिष्ठत । अत्र वः नृत्यतां इव तीव्रः रेणुः अप आयत ॥६॥

६ जब देव सुसंघटित होकर इस जलमें ठहरे । तब (पार होनेके समय) वहां आपके नाचनेसे बडी धूली ऊपर उडी ॥६॥

७ हे देवाः ! यत्, यतयः यथा भुवनानि अपिन्वत । तत्र समुद्रे आ गूळ्हं सूर्यं अजभर्तन ॥७॥

७ हे देवो ! जब आप जैसे संयमियोंने इन भुवनोंको परिपूर्ण किया । तब वहां समुद्रमें गुप्त रहे सूर्यको आपने बाहर निकाल दिया ॥७॥

८ अदितेः अष्टौ पुत्रासः ये तन्वः परि जाताः । सप्तभिः देवान् उप प्रैत् । मार्ताण्डं परा आस्यत् ॥८॥

८ अदितिके आठ पुत्र हुए वे उसीके शरीरपर जन्मे । वह सातोंसे देवोंके प्रति गई । और मार्तण्डको उसने दूर फेंका ॥८॥

९ अदितिः सप्तभिः पुत्रैः पूर्व्यं युगं उप प्रैत् । प्रजायै मृत्यवे तत्, पुनः मार्ताण्डं आभरत् ॥९॥

९ अदिति सात पुत्रोंसे पहिले युगमें देवोंके समीप गयी । विश्वके जन्म और मृत्युके लिये उस मार्तण्डका उन्होंने पुनः भरण पोषण किया ॥९॥

ज्ञानही सबसे श्रेष्ठ है

ज्ञान सबसे श्रेष्ठ है । मानवोंकी उन्नति सत्य ज्ञानसेही हो सकती है । अज्ञान अन्धकारमें रहनेवाला मनुष्य कभी अपनी प्रगति नहीं कर सकता । अज्ञानसे मनुष्यका नाश और ज्ञानसे अभ्युदय होता है । इसलिये सब ऋषिमुनि ज्ञानकी महत्ता गाते आये हैं । इस सूक्तमें ज्ञानका महत्त्व दर्शाया है और अज्ञानीकी अवस्था किस तरह दयनीय होती है इसका भी योग्य वर्णन किया है ।

वाणी और ज्ञानका साहचर्य

ज्ञान शब्दोंके आधारसे रहता है, मानो शब्द या वाक्य ज्ञानका घर है । वाणी और अर्थ ये दोनों परस्पर संबंधित रहते हैं । अर्थात् यदि ज्ञान चाहिये तो वाणीकी आवश्यकता है । वाणीके विना ज्ञान नहीं दिया जा सकता । यदि मनुष्यको वाचा न प्राप्त होती तो मनुष्य अज्ञानीही रहता और इस समयतक पशुसदृशही रह जाता । इसलिये मनुष्यकी प्रगतिके लिये जैसा ज्ञान आवश्यक है वैसी वाणी भी आवश्यक है ।

मनुष्यके पास वाणीके द्वाराही ज्ञान आता है और मनुष्य वाणीसेही ज्ञानका प्रकाश करता है। वाणीसेही एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको अपना ज्ञान प्रकट करता है। मनुष्य वाणीसे व्यवहार करते हैं और वाणीके कारणही मनुष्य और अन्य प्राणीमें इतना विभेद हुआ है।

बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति

'बृहस्' किंवा 'बृहत्' नाम वाणीका है। 'ब्रह्म' नाम ज्ञानका है। इसका जो पति है वह सामान्यतः 'मनुष्य'ही है और विशेषतः 'ज्ञानी' है। मनुष्यके अन्दर बोलनेका स्फुरण होता है, और स्फुरणके पश्चात् वह बोलता है। यह स्फुरण कैसा होता है इसका वर्णन इस सूक्तके प्रारंभमें किया है जो इस तरह है —

नामधेयं दधानाः यत् प्रथमं प्रैरत।
तत् वाचः अग्रम्। (मं० १)

'प्रत्येक वस्तुको मनुष्य एक या अनेक नाम देता है। वे नाम वह मनमें स्थिररूपसे रखता है (दधानाः), और उन नामोंको ध्यानमें रखकर वह दूसरेको कुछ संदेश देनेके लिये अन्दरकी प्रेरणाके अनुसार वह बोलता है। इसमें तीन विभाग हैं—

१ नामधेयं दधानाः= वस्तुको नाम रखना, उन नामोंको स्मरण रखना,
२ प्रैरत= उन नामोंके उद्देश्यसे मनुष्यके मनमें प्रेरणाकी उत्पत्ति होना, और
३ तत् वाचः अग्रम् = वह वाणीका मूल है।

"प्रत्येक वस्तुके लिये नाम और नामके लिये वस्तु" ऐसा यह अखण्ड संबंध है। जिस समय यह टूट जाता है वहां गडबड हो जाती है और एकका भाव दूसरेके समझमें नहीं आता।

ये नाम कृत्रिम हों या स्वाभाविक हों। कैसे भी हों। पर वे होने चाहिये। स्वाभाविक नाम उसके शब्दकी अनुकृतिसे बने होते हैं, जैसे कौ कौ करता है इसलिये काक., कौवा इ०। कृतिको देखकर भी होते है, जैसे भूमिके साथ सरकता रहता है इसलिये 'सर्प'। कृत्रिम नाम मनुष्य सदा रखता है जैसा राम, कृष्ण, गोविंद आदि। मनुष्यके पास ये नाम और नामोंके उद्दिष्ट वस्तुएं रहती हैं और मनुष्य नाम, वस्तु और उनके संबंधको जानता है। इस कारण उसके मनमें बोलनेकी (प्रैरत) प्रेरणा होती है। यदि मनुष्यके पास वस्तु, नाम और उनका परस्पर संबंध न होगा, तो मनुष्यमें कोई प्रेरणा नहीं होगी। इतना नाम और रूपका प्रेरणाके साथ संबंध है।

वस्तु ज्ञात हो अज्ञात हो, काल्पनिक हो अथवा प्रत्यक्ष हो, अथवा केवल उनकी मानसिक कल्पनाही क्यों न हो। परंतु वस्तु होनी चाहिये, उसका नाम होना चाहिये। इनका संबंध इसको विदित होना चाहिये। तब इसके मनमें प्रेरणा होती है। नामरूप सत्य हो या काल्पनिक इस कोई संबंध नहीं है। वक्ताके मनमें नाम रूप होने चाहिये। रूपमें 'अरूप' का भी समावेश है और नाममें 'अनाम' का भी समावेश है। इसी तरह जैसा वस्तुका भाव है वैसा अभाव भी है। ये सब प्रत्यक्ष या काल्पनिकही क्यों न हों मानवके मनमें स्फुरण उत्पन्न करते हैं। इस स्फुरणमें वाणीका मूल है। इस विषयमें भगवान् पाणिनीमुनिने कहा है—

आत्मा बुद्ध्या समेत्य अर्थान्, मनो युंक्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निं आहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥६॥
मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम् ॥७॥
सो दीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः।
शब्दान् जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृत ॥९॥
(पाणिनीय शिक्षा)

"आत्मा बुद्धिसे संयुक्त होकर अपने भाव प्रकट करनेके लिये मनको प्रयुक्त करता है। मन शरीरस्थ अग्निपर आघात करता है, वह अग्नि वायुमें प्रेरणा करता है। प्रेरित हुआ वायु छातीमें संचार करने लगता है और मन्द्र स्वर उत्पन्न करता है। वह मुखमें अनेक स्थानोंपर ताडित होकर नाना शब्दोंको उत्पन्न करता है। ये पांच प्रकारके होते हैं।"

आत्माके अन्दरकी प्रेरणाका यह सुंदर वर्णन भगवान् पाणिनी मुनिने किया है। आत्मामें बोलनेकी-कुछ भाव प्रकट करनेकी अभिलाषा होती है और जो स्फुरण होता है वही वाणीका मूल है। वाणीके गुप्त और प्रकट ऐसे अनेक रूप वेदमन्त्रोंमें वर्णित हैं उनका यहां अधिक वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है।

वाणीमें गुप्त सामर्थ्य

यत् एषां श्रेष्ठं, यत् अ-रिप्रं आसीत्,
तत् एषां गुहा निहितम्
(तत्) प्रेणा आविः (भवति) ॥ (मं० १)

जो इन शब्दोंके अन्दर श्रेष्ठ सामर्थ्य है और पवित्रताका बल है, वह शब्दोंमें सुगूढ है, शब्दोंके अन्दर वह अन्तस्तलमें सुरक्षित रखा है । वह सामर्थ्य तब प्रकट होता है कि जब वे शब्द प्रेमसे बोले जाते हैं।" अर्थात् शुद्ध मनोभावके साथ बोले जाते हैं तब शब्दोंके अन्दर जो सुगूढ सामर्थ्य है वह प्रकट होता है। इस मन्त्रभागमें-

१ शब्दमें श्रेष्ठ और पवित्र सामर्थ्य है,
२ वह सामर्थ्य शब्दमें गूढ या गुप्त है,
३ प्रेमसे वह पूर्णतया प्रकट होता ॥

ये तीन भाव कहे हैं। शब्द व्यर्थ बोलनेके लिये नहीं होते हैं। शब्द एक महाशक्ति है । उस महती शक्तिको बडी सावधानीके साथ प्रयुक्त करना चाहिये। आजकल शब्दोंका प्रयोग अविचारसे किया जाता है, इस कारण शान्तिके स्थापन होनेके स्थानमें युद्धही बढ रहे हैं। स्वार्थ, अविचार, असत्य, अपप्रचारके लिये इस समय शब्दोंका प्रयोग हो रहा है। इसलिये दिन प्रतिदिन जनता दुःखमें डूबती जाती है। शब्दोंका प्रयोग संयमके साथ किया जाय तो ऐसा नहीं होगा।

शब्दोंमें श्रेष्ठ शक्ति है और (अ-रिप्र) पवित्र, निर्दोष तथा शुद्ध शक्ति है। शब्दके अन्तस्तलमें वह रहती है। जब मनुष्य (प्रेणा = प्रेम्णा) प्रेमके साथ अन्तःकरणपूर्वक शब्दोंका प्रयोग करेगा, (मनसा वाचं अकृत) मनके शुद्ध भावसे शब्दोंका प्रयोग होगा तब वह शक्ति शब्दके अन्दरसे बाहर आयेगी और प्रकट होगी। वेदमें अन्यत्र कहा है कि-

(ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-देवाः)

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किं ऋचा करिष्यति
य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ (ऋ० १।१६४।३९)

" ऋचाओंके अक्षरोंके अन्दर सब देव रहते हैं । यह तत्वज्ञान जिसको विदित नहीं वह वेदमन्त्र लेकर क्या करेगा? पर जिसको यह ज्ञान है वह अच्छी उन्नत अवस्थामें रहता है। " यही भाव—

एषां (शब्दानां मध्ये) श्रेष्ठं अरिप्रं गुहा निहितं।

' शब्दोंके अन्दर श्रेष्ठ और पवित्र सामर्थ्य सुगुप्त है ' इस विधानसे बताया है कि—

१ ऋचाओंके अक्षरोंमें देवताएं निवास करती हैं।
२ शब्दोंके अन्दर श्रेष्ठ और पवित्र सामर्थ्य गुप्त है।

इन दोनों वाक्योंका भाव एकही है। यह सामर्थ्य मनुष्यके अनुभवमें भी आ सकता है। कोई किसीसे प्रेमसे वार्तालाप करे तो प्रेम बढता है और वही यदि क्रोधसे गाली दे तो उसीसे झगडे उत्पन्न होकर सिर फट जाते हैं। यह सब शब्दोंकी महिमा है। आज वृत्तपत्रों और वक्तव्योंमें असावधानीसे शब्द प्रयुक्त होते हैं, इसलिये कलह बढ रहे हैं। शब्दोंकी (अ-रिप्रं बलं) दिव्य शक्ति प्रकट नहीं हो रही शब्दोंके अन्दरकी घातक शक्ति (रिप्रं-बलं) इस समय प्रकट हो रही है।

शब्दमें (श्रेष्ठं अ-रिप्रं गुहा निहितं) श्रेष्ठ पवित्र शक्ति सुगुप्त है अर्थात् (रिप्रं आविः) शब्दमें घातक सामर्थ्य है वह प्रकट है, वह सहज प्रकट हो सकता है। अनपढ मनुष्य भी गालीयां दे दे कर इस घातक सामर्थ्यको प्रकट करते हैं। क्योंकि यह अनायास होनेवाली बात है। परंतु जो शब्दमें सुगूढ श्रेष्ठ दैवी (अ-रिप्रं) पवित्र सामर्थ्य है उसको (प्रेणा प्रेम्णा) प्रेम भक्तिभावसे प्रकट करनेके लिये योग साधन, अन्तः-शुद्धि, ध्यान-धारणा आदि करनेकी आवश्यकता है जिससे अक्षर अक्षरमें जो दैवी पवित्र शक्ति है वह प्रकट हो जाती है।

माता अपने रोगी पुत्रके शरीरपर प्रेमसे हाथ फिराती है और कहती है कि है ' पुत्र ! तू अब शीघ्रही नीरोग हो जायगा। प्रेमके उच्चारे माताके शब्द पुत्रके मनके अन्तस्तल तक पहुंचते और वहां अपने अन्दरके दैवी सामर्थ्यसे सचमुच नीरोगिता उत्पन्न करते हैं।

यह हरएकके अनुभवकी बात है। प्रेमसेही शब्दोंके अन्दरका दैवी शुद्ध सामर्थ्य प्रकट होता है । यह सत्य कथन है । मनुष्यका अन्तःकरण शुद्ध निष्कलंक प्रेममय होना चाहिये, तबही उसके उच्चारे शब्दोंमें वह पवित्र सामर्थ्य प्रकट होता है।

शब्दोंका प्रयोग कैसा हो ?

शब्दमें महती शक्ति है ऐसा सिद्ध होनेपर यह बात स्वयं स्पष्ट हो जाती है कि उसका प्रयोग विचारपूर्वक किया जाय। यह उपदेश देनेके लिये इस सूक्तका द्वितीय मन्त्र है—

१ सक्तुं तितउना पुनन्तः इव
२ यत्र धीराः मनसा वाचं अक्रत ।
३ अत्र सखायः सख्यानि जानते
४ एषां वाचि भद्रा लक्ष्मीः अधि निहिता ॥

(मं० २)

(१) " सत्तुके आटेको छाननीसे छानते हैं और उससे कूडा कटकट आदि दूर करते और परिशुद्ध आटा लेकर उसकी रोटियां बना कर खाते हैं जिससे शरीर पुष्ट, नीरोग और सुदृढ बनाते हैं। यदि आटा छाना न जाय, तो परिशुद्ध आटा नहीं मिलेगा और आटा शुद्ध न होनेसे नीरोगिता और शक्ति भी प्राप्त नहीं होगी । आटा छाननेका इतना महत्त्व है। यही बात वाणीके विषयमें भी सत्य है।

(२) (धी-राः) बुद्धिसे प्रकाशनेवाले ज्ञानी लोग अपने मनकी छाननीसे (वाचं पुनन्तः) अपनी वाणोको परिशुद्ध करते हैं। अपनी वाणीमें किस शब्दका प्रयोग करना योग्य है और किन शब्दोंका प्रयोग करना नहीं चाहिये, इसका विचार वे करते हैं, और परिशुद्ध शब्दों और वाक्योंका ही उपयोग करते हैं । इसके लिये (धीराः-धैर्यधराः) धैर्य लगता है। शत्रुके अपशब्दका प्रयोग करनेपर और उसका अनिष्ट परिणाम होनेपर भी अपने शब्द-प्रयोगपर संयम रखना यह कार्य बडाही धैर्यका है। ऐसे ममपर्में भी जिसकी वाणीमें अपशब्दका प्रयोग नहीं होता वही (धीरः, धी-रः) धैर्यवान् और बुद्धिमान भी है । ऐसे पुरुषोंकी वाणीमेंही दैवी शक्ति रहती है।

(३) येही (स-खायः) ज्ञानी, समान सभ्यतावाले लोक जनताके हितके तत्त्व (स-ख्यानि) अर्थात् समव्यवहारके व्यावहार-सिद्धान्त जानते हैं । इनको ही किस तरह व्यवहार करना योग्य है और किस तरह व्यवहार करना नहीं चाहिये, इसका यथायोग्य ज्ञान होता है।

(४) इनकी वाणीमेंही (भद्रा लक्ष्मी अधि निहिता) कल्याणकारिणी लक्ष्मी रहती है। जो अपनी वाणीको पवित्र करते हैं, पवित्र शब्द शुद्ध भावके साथ प्रकट करते हैं, कभी अपवित्र वाक्यका उच्चारण नहीं करते, तथा जो हितपरिणामी विचार अच्छी तरह जानते हैं, उनकी वाणीमें कल्याण करनेवाली लक्ष्मी रहती है। कल्याण करनेवाली वाणीके पूर्व कैसा पथ्य संभालना चाहिये यह यहां पाठक देखें । ऐसे पुरुषोंकी वाणीमेंही कल्याणमयी लक्ष्मी रहती है।

यहांतकके दो मन्त्रोंमें कहा कि जगत्में अनेक पदार्थ हैं। प्रत्येक पदार्थको नाम है और रूप है। नाम और रूपसे सब व्यवहार चल रहा है। मनुष्य वस्तुको नाम रखते हैं और अपने स्फुरणके अनुसार वाणीको प्रयुक्त करते हैं । वस्तु और उसका रूप तथा नाम यह वाणीका प्रेरक मूल है। रूप और नाम न हो तो वाणीही प्रेरित नहीं होगी। अन्धेके लिये रूप नहीं होता, पर वस्तुका अस्तित्व होता है और उसके पास उस वस्तुके नाम भी होते हैं। इस कारण अन्धे बोलते हैं। गूंगेके पास रूप तथा वस्तु होती है, पर उसका नाम नहीं होता, नाम न होनेके कारण वह बोलता नहीं। पर संकेतसे अपना भाव प्रकट करता है।

इस वाणीमें श्रेष्ठता और पवित्रता रहती है, वह शब्दमें अत्यत सुगुप्त स्थानमें गुप्त रहती है, अन्दरके अन्तस्तलमें वह रहती है। रागद्वेषसे वह प्रकट नहीं होती, प्रेमभावसे-ही वह प्रकट होती है।

जिस तरह सत्तुका आटा छानकर शुद्ध किया जाता है उस तरह अपने शब्द, वाक्य और अपने प्रवचन परिशुद्ध करने चाहिये । इस तरहके परिशुद्ध शब्द-प्रयोगका रहस्य जो जानते हैं और वैसे परिशुद्ध शब्द प्रयोग प्रेमसे जो करते हैं, उनकी वाणीमें कल्याण करनेवाली लक्ष्मी रहती है। इस लक्ष्मीकी प्राप्ति करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। मनुष्यने पृथ्वीपर जन्म लेकर इसी लक्ष्मीकी प्राप्ति करनेका यत्न करना चाहिये। यह लक्ष्मी शब्दोंमें मानवोंका हित करनेके लियेही बैठी है। मनुष्य साधना करेगा तो उसे इसकी प्राप्ति होगी।

वाणीका ज्ञानमार्ग

(यज्ञेन वाचः पदवीयं आयन्) यज्ञसे ज्ञानी

लोगोंने जान लिया कि वाणीका परिशुद्ध मार्ग यह है। यहां ' पदवीय ' पद महत्वपूर्ण है।

पदेन यातव्यः पन्थाः पदवीयः।

पदसे जानेका मार्ग पदवीय है।

पांवोंसे जानेका मार्ग पदवीय कहलाता है।

' पद ' का अर्थ ' पांव और पद (शब्द) ' है। मार्ग-परसे जाना पांवोंसे होता है। मनुष्य अपने पांवसे चलता है और मार्गको काटता तथा प्राप्तव्य स्थानको पहुंचता है। इसी तरह वेदमंत्रोंके पदोंसे मनुष्य उन्नतिपथसे जाता है और परम पद प्राप्त करता है। दोनों स्थानोंमें ' पद ' ही है। वाणीके द्वारा, वेदमंत्रोंके द्वारा बताया जो उन्नतिका पथ है वह यज्ञसे प्रकाशित होता है। यज्ञ होते रहते हैं और उनसे परमपदका प्रशस्त मार्ग मनुष्योंको विदित होता है।

(तां ऋषिषु प्रविष्टां अन्वविन्दन्) वह वाणी ऋषियोंमें प्रविष्ट होकर रही है ऐसा ज्ञानी लोगोंने जान लिया। ऋषियोंके अन्तःकरणमेंही वेदमंत्र स्फुरणद्वारा प्रकट हुए हैं। वही पहिला स्फुरण है। चारों वेदोंमें इस समय करीब ३५० ऋषियोंके अन्तःकरणमें स्फुरित हुए मंत्र हैं। अनेक विभिन्न ऋषियोंके अन्तःकरणोंमें यह वाणी प्रविष्ट हुई है।

(तां आभृत्य) उस वाणीका संग्रह किया, और उस संग्रहसे जो बना वही वेदराशी है। इस संग्रहको (पुरुत्रा व्यदधुः) बहुत प्रकारसे ज्ञानियोंने धारण किया। ऋग्वेदादि चार वेद और उसकी अनेक शाखाएं यह सब उस संग्रहकाही फल है।

मनुष्य इसके उपरान्त भी ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, आदि अनेकानेक ग्रन्थ आज देख रहे हैं वे सब इसी तरहके संग्रहोंसे निर्माण हुए हैं। पर प्रारंभ तो संहिता-ग्रन्थोंसेही हुआ है। यही मूल है संपूर्ण ज्ञानका। (तां सप्त रेभाः अभि सं नवन्ते) इस वेदवाणीका गान सात छन्दोंमें किया जाता है

इस स्थानपर आद्य ऋषियोंके विषयमें परम आदर दर्शाया है क्योंकि जो कुछ परम पवित्र ज्ञान है वह उन ऋषियों-के अन्तःकरणमें था और वहींसे सर्वत्र फैला हुआ है (मं० ३)

वेदोंमें लेखन-कला

वेदोंमें लेखन-कलाका प्रमाण है या नहीं ऐसी शंका कईयोंको है। उनका कहना ऐसा है कि वेदको ' श्रुति ' कहते हैं, इसलिये वेद श्रवणसेही पढाये जाते थे, वे लिखित ग्रन्थ नहीं थे। यदि यह कथन सत्य माना जाय तो इस सूक्तका चतुर्थ मंत्रही उसका प्रतिवाद कर रहा है—

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचं

उत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम् ॥ (मं० ४)

इस मन्त्रमें दो वर्णन वाणीके हैं और उनसे सिद्ध होता है वाणी यह जैसा कानोंका विषय है वैसा नेत्रोंका भी विषय है—

१ वाचं पश्यन् वाचं न ददर्श= वाणीको देखता हुआ वाणीको देखता नहीं और—

२ वाचं शृण्वन् एनां न शृणोति= वाणीका श्रवण करनेपर भी वह न सुननेके समानही है।

' वाणीको देखना ' (वाचं पश्यन्) तब हो सकता है कि जब वाणी लिखी जाय, वाणी नेत्रका विषय बन जाय। ' अक्ष-र ' (आंख जिसमें रमते हैं) यह अक्षर भी आंख-काही विषय है, तब आंख सुन्दर अक्षरोंमें रमेंगे। यदि वाक्य लिखे जायगे, तभी वाणी देखी जायगी। मन्त्रमें (वाचं पश्यन्) वाणीको एक मनुष्य देखता है, पर उसके अज्ञानके कारण (वाचं न ददर्श) वह वाणीको नहीं देखता अर्थात् उसका नेत्र वाणीके अक्षरोंको देखता है तो भी उनसे उसको अर्थबोध नहीं होता। उसका देखना न देखनेके बराबर है। यहांके ' वाचं पश्यन् ' इस मन्त्र-भागसे स्पष्ट हो जाता है कि वाणी अथवा वेदवाणी-वेद-मन्त्र लिखे जाते थे। अज्ञानी मनुष्य उनको देखता था पर समझता नहीं था। अर्थात् उनका मंत्रोंको देखना न देखनेके समान था। इससे वेदमंत्र लिखे जाते थे और वे देखे जाते थे यह बात सिद्ध होती है।

कई सज्जन भगवान् पाणिनी मुनिको भी लेखन नहीं आता था ऐसा कहनेका साहस करते हैं। पर उन्होंने ' अदर्शनं लोपः ' अर्थात् ' अक्षरोंका न दिखाई देना लोप कहलाता है' ऐसा लोपका अर्थ किया है। यदि अक्षर

लिखेही नहीं गये तो उन अक्षरोंका दर्शन या अदर्शन कैसे हो सकता है? इसी सूत्रसे यह बात सिद्ध होती है कि पाणिनीमुनि अक्षर लिखते थे और लोप होनेके पूर्व अक्षर देखते थे और लोप होनेपर अक्षर दिखाई नहीं देते थे लेखनकला होनेकी अवस्थामेंही ऐसा सूत्र बनाया जा सकता है। जिसे लेखन न आता हो वह—

'अ-दर्शनं लोपः' ऐसा सूत्र नहीं लिखेगा, पर

'अ-श्रवणं लोपः' ऐसा सूत्र रचेगा। पर पाणिनी-मुनिने 'अदर्शनं लोपः' ऐसा सूत्र रचा है इसलिये सिद्ध है कि पाणिनीमुनि अपने आंखसे लिखे अक्षर देखते थे और अक्षरोंका लोप हो जानेपर उनका अदर्शन हो जाता था।

पाणिनी जैसे मुनिको लिखना आता था या नहीं इस विषयमें शंका करनाही मूर्खता है। पर जिस कारण शंका की जाती है उस कारण उसका उत्तर देना उचित है और यही उसका उत्तर है।

पाणिनी अक्षरोंका 'अदर्शन' होता था ऐसा कहते हैं और वेदने भी वाणीका दर्शन और वाणीका श्रवण ऐसे दो प्रकार वर्णन किये हैं। इसलिये लेखन-कलाके विना वाणीका दर्शन नहीं हो सकता, अतः 'वाचं ददर्श' इस उल्लेखसे वेदमें लेखन-कलाका निर्देश है यह सिद्ध है।

अथर्ववेदमें 'संदूकसे वेदोंको निकालना और पुनः संदूकमें रखनेका उल्लेख है देखो—

यस्मात् कोशादुदभराम वेदं
तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम्।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण
तेन मा देवास्तपसावतेह ॥
(अथर्व० १७।७२।१)

'जिस संदूकसे वेदको हमने निकाला था, उस संदूकमें हम पुनः वेदको रखते हैं। मन्त्रके सामर्थ्यसे हमने अभीष्ट कर्म सिद्ध किया है इस तपसे सब देव मेरी सुरक्षा करें।'

यहां संदूकमें वेदोंको रखा जाता था ऐसा वर्णन है। संदूकमें वेदोंको रखना और संदूकसे बाहर निकालना यह तब हो सकता है कि जब वेद लिखे हुए ग्रंथ हों। इस मन्त्रसे सिद्ध होता है कि वेद लिखित ग्रंथ थे। अस्तु, इस तरह वेदमें लेखन-कला है यह सिद्ध हुआ।

'वाचं पश्यन्' और 'वाचं शृण्वन्' ये शब्दप्रयोग स्पष्ट हैं। वाणीका दर्शन वह लेखबद्ध होनेसेही हो सकता है इसमें किसीको संदेह नहीं हो सकता। देवोंमें 'लेखाः' एक जाती थी, वह केवल लेखनका धंदाही करती थी। इससे भी लेखनकलाकी सिद्धि हो सकती है।

वाचं पश्यन् वाचं न ददर्श।
वाचं शृण्वन् एनां न शृणोति ॥

'वाणी (लेख) को देख कर भी मूढ मनुष्यके लिये वह न देखनेके समान है, उसी तरह मन्त्र, प्रवचन या व्याख्यान सुननेपर भी मूर्खके लिये वह न सुननेके समानही होता है। अर्थात् अज्ञानी मनुष्यकी स्थिति बडी अवनतिकारक है। ग्रन्थ देखनेपर भी उनका उसके लिये कोई उपयोग नहीं होता और प्रवचन सुननेपर भी उसको कुछ भी बोध नहीं होता। यह अज्ञानीकी शोचनीय अवस्था है।

ज्ञानीकी आनन्दमय स्थिति

ज्ञानी मनुष्य परम आनन्द प्राप्त करता है। इस विषय का वर्णन इसी मन्त्रके उत्तरार्धमें देखनेयोग्य है—

उशती सुवासाः जाया पत्ये तन्वं विसस्रे इव,
वाक् अस्मै (विदुषे) तन्वं विसस्रे।

'जिस तरह पतिकी इच्छा करनेवाली सुवासिनी धर्म-पत्नी अपने पतिके लिये अपना शरीर खुला कर उसको आनन्द देती है, उसी तरह यह वाणी-वेदवाणी-ज्ञानमयी वाणी श्रेष्ठ ज्ञानीको आनन्द देनेके लिये उसके सामने अपना ज्ञानमय शरीर खुला करके रखती है।' ज्ञानी शब्दके ऊपरके आवरणको दूर करता है, शब्दमयी वाणीको मानो विवस्त्र करता है और उसके अन्दर छिपा हुआ आनन्द रस लेता है। यह उपमा थोडीसी अश्लीलसी है, पर अत्यंत योग्य और अन्वर्थक है।

इसका तात्पर्य यह है कि जिस तरह समर्थ पति अपनी अनुरूप सुन्दर अनुकूल सुवासिनी धर्मपत्नीसे परम आनन्द प्राप्त कर सकता है, उसी तरह ज्ञानी वेदवाणीसे

अथवा इसी तरह अन्यान्य शास्त्रग्रंथोंसे परमानन्द प्राप्त कर सकता है। अज्ञानी मनुष्य उससे वंचित रहता है। इसलिये मनुष्योंको ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। (मं० ४)

ज्ञानी और अज्ञानीकी तुलना

(त्वं सख्ये स्थिरपीतं आहुः) इस ज्ञानीको मित्रताके संवर्धनके कार्यमें परिपूर्ण कहते हैं। यह ज्ञानी मित्रताके लिये योग्य है ऐसा सब कहते हैं। इसके प्रयत्नसे मित्रता-का संवर्धन होगा ऐसा सब मानते हैं। ' स्थिर-पीत ' जो स्थिरतासे तृप्त होनेतक विद्याज्ञान-रसका पान कर चुका है। शान्तिके साथ मननपूर्वक जिसने ज्ञानरस प्राप्त किया है। जिसने पर्याप्त विद्या प्राप्त की है और मनन करके उसको पूर्णतासे अपनाया है, ऐसा ज्ञानीही मित्रता-का संवर्धन करनेके लिये योग्य है। इसके प्रयत्नसे जनतामें—

(एनं ज्ञानिनं वाजिनेषु अपि न हिन्वन्ति) इस ज्ञानीको वाग्युद्धोंमें कोई भी हीन नहीं समझ सकते। सर्वत्र व्याख्यानों और प्रवचनोंमें उसको बुलाते और उसकी प्रतिष्ठा करते हैं। ' वाजिनेषु ' अर्थात् बल संवर्धनके कार्योंमें भी इसको कोई हीन नहीं समझता, क्योंकि यह तो बलको बढाता है, संघटनको बढाता है और समाजको समर्थ करता है।

अब अज्ञानीकी अवस्था देखिये। वह (अपुष्पां अफलां वाचं शुश्रुवान्, एषः अधेन्वा मायया चरति) पुष्प फल रहित निष्फल विद्याका अध्ययन करनेवाला अज्ञानी बनावटी गौके साथ रहनेके समान रहता है। मिट्टीकी गौका पालन करनेवाला उसका दूध नहीं पी सकता। कृत्रिम बनावटी गौ कभी दूध नहीं देती। उसका पालन करना केवल परिश्रम मात्र है। इसी तरह जो विद्याविहीन है तथा जो निष्फल विद्याका अध्ययन करता है उसको परिश्रमही होते हैं। सत्य ज्ञानसे जो परम आनंद प्राप्त होता है वह उसको नहीं हो सकता। अज्ञानीकी अवस्था ऐसी शोचनीय होती है। (मं० ५

अज्ञानीकी शोचनीय अवस्थाका आगे छठे मन्त्रमें भी वर्णन करते हैं। उस अज्ञानीने (सचिविदं सखायं तित्याज) उत्तम हितोप देनेवाले ज्ञानरूपी मित्रका त्याग किया है। ज्ञान यह मित्र ऐसा है कि आवश्यकता होनेपर वह उत्तम उपदेश देता है। कभी हीनमार्ग नहीं बताता। ऐसे सुयोग्य ज्ञानरूपी मित्रका त्याग करनेवाला सचमुच हीन है। (तस्य वाचि भागः नास्ति) इसके प्रवचनमें कुछ भी प्राह्य अंश नहीं रहता। अज्ञानीके व्याख्यानसे किस तरह बोध मिल सकता है ? जो वह सुनता है (अलकं शृणोति) व्यर्थही सुनता है अर्थात् उससे किसीका लाभ नहीं हो सकता और न उसका लाभ हो सकता है। वह (सुकृतस्य पंथां न वेद) सुकृतका मार्ग भी नहीं जानता। अज्ञानके कारण उसको सुकृत क्या और पाप क्या इसका भी पता नहीं होता और वह पापमें फंसता जाता है और उससे ऊपर उठनेका उपाय भी नहीं जानता। (मं० ६)

सबकी समता और विषमता

कई लोग कहते हैं कि सब लोग समान हैं। इस विषयमें वेद कहता है कि (अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः) सभी लोग आंखवाले और कानवाले होते हैं, अर्थात् आंख कान नाक हाथ पांव होनेमें सब लोग समान होते हैं। पर (मनोजवेषु असमाः बभूवुः) मनके वेगमें उनमें विषमता होती है। बाह्य शरीरकी समानता होनेपर भी मन, बुद्धि, आत्मबल, ज्ञान, विज्ञान आदिमें मानवोंकी विषमता होती है। और इस विषमताके कारण मनुष्योंकी योग्यतामें भी न्यूनाधिकता होती है। यह विषमता उपेक्षणीय नहीं होती। स्थूल दृष्टिसे शरीररूपसे सब मनुष्य सम हैं, पर मन-बुद्धिकी योग्यतामें विषम होते हैं और यही विषमता महत्वकी है। इसका त्याग नहीं किया जा सकता।

इसके लिये उदाहरण देते हैं (आ-दघ्नासः उपक-क्षासः स्नात्वाः ह्रदाः) कई जलाशय मुखतक पानीवाले, कई कटीभागतक पानीवाले और कई खूब कूद कूद कर स्नान करनेयोग्य अगाध जलवाले होते हैं। जलकी समानता सबमें है, पर जलकी गहराईमें न्यूनता और अधिकता होती है। इस कारण जलाशयोंकी योग्यतामें तथा उपयो-गितामें विभिन्नता होती है। इसलिये सभी जलाशय समान हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसी तरह कई लोग

अल्पज्ञ और कई विशेषज्ञ होते हैं और कई गहन विचार करनेवाले होते हैं अर्थात् ये सब समान नहीं होते। (मं. ७)

ज्ञानीकी श्रेष्ठता

जो ज्ञानी होते हैं वे (हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु संयजन्ते) हृदयसे निश्चित किये और मनके वेगोंसे बनाये गये यज्ञयागोंमें यजन करते हैं। वे (वेद्याभिः त्वं विजहुः) अपने अद्भुत ज्ञानोंसे अज्ञानीको निःसंदेह पीछे रख देते हैं और स्वयं आगे बढते हैं। ज्ञानके कारण वे आगे चलते हैं, उनकी साथ अज्ञानी कभी कर नहीं सकते। (त्वे ओह-ब्रह्माणः वि चरन्ति) ये ज्ञानके विचारमें सदा तल्लीन रहनेवाले विजयी तथा प्रभावी बनकर जगत्में संचार करते हैं। सर्वत्र उनकी श्रेष्ठता संमानको प्राप्त होती है। अपने ज्ञानके प्रभावसे वे सर्वत्र श्रेष्ठताको प्राप्त होते हैं। (मं० ८)

अज्ञानीकी दुर्दशा

जो अज्ञानी होते हैं वे (न अर्वाङ् न परः चरन्ति) न तो इधर आते हैं और नाही आगे बढते हैं। पत्थरके समान जहांके वहां रहते हैं। न तो वे (ब्राह्मणासः न सुते-करासः) ज्ञानी कहलाते और नाही कर्मयोगी कहलाते। न वे विद्वान् होते हैं और नाही किसी कर्ममें प्रवीण होते हैं। ऐसे अज्ञानी और पापवासनावाले लोग गिरते जाते हैं और अन्तमें निर्बुद्ध होनेके कारण कपडा बुननेका कार्य करते हुए यथा कथंचित् अपनी आजीविका करते हैं। (तन्त्र तन्वते) सुझी पर ताना फैलाते और कपडा बुनते रहते हैं। इन अज्ञानियोंकी उन्नति किसी तरह नहीं होती। वे हीन, हीनतर और हीनतम अवस्थामें गिरते जाते हैं, अन्तमें अत्यन्त पतित होते हैं। अज्ञानसे ऐसा नाश होता है। (मं ९)

ज्ञानीकी प्रशंसा

जो ज्ञानी (सभा-साहेन सख्या) सभामें विजयी होकर यशस्वी तथा प्रभावी बनकर आता है उसके आगमनसे (सर्वे नन्दन्ति) सभी आनंदित होते हैं। वह (किल्बिष-स्पृत्) पापको दूर करनेवाला, (पितु-सनिः) अन्न देनेवाला, सबका पोषणकर्ता होता है, इसलिये वह (वाजिनाय अरं भवति) बल-वर्धनके कार्य करनेके लिये योग्य समझा जाता है। वह सब बलके कार्य और राष्ट्र-संवर्धनके कार्य करनेमें समर्थ होता है। इस तरह ज्ञानी सबका हित करता है इसीलिये वह श्रेष्ठ समझा जाता है। (मं० १०)

ज्ञानी मिलकर कार्य करते हैं

ज्ञानीका लक्षण यह है कि वे मिलकर कार्य करते हैं, पृथक् होकर विभक्त बनकर झगडे नहीं बढाते। एक ज्ञानी ऋचाओंका परिपोष करता है, दूसरा सामगान गाता है, तीसरा ब्रह्मा बनकर बने हुए पदार्थोंकी विद्याकी व्याख्या करता है। ये सब वस्तुतः विभिन्न कर्म करनेवाले हैं, पर वे सब मिलकर एकही यज्ञको सफल बनानेके लिये एक स्थानपर संगठित होकर एकही कार्यको संपन्न करते हैं। इस तरह सबको उचित है कि वे अपनी अपनी कार्य-व्यवस्थासे संपूर्ण जनताको अथवा संपूर्ण राष्ट्रको संपन्न करनेका यत्न करें। यज्ञ इस तरह संगठनका मार्ग बता रहा है।

इस ज्ञानसूक्तमें ज्ञानीका महत्त्व बताया है और अज्ञानीकी दुरवस्था कैसी होती है उसका भी वर्णन किया है। पाठक इसका मनन करें और ज्ञानमार्गसे जाकर उन्नत हों, पर कभी अज्ञानमें फंसकर अवनत न हों।

आगे ज्ञानसे देवत्व प्राप्त होता है उस देवत्वका महत्त्व बताकर ज्ञानकाही विशेष गौरव करते हैं, वह सूक्त अब देखिये—

(ऋग्वेद १०।७२)

देवोंके जन्मवृत्तका कथन

(वयं देवानां जाना विपन्यया प्र वोचाम) हम देवोंके जन्मोंका वृत्त सुस्पष्ट रीतिसे कहेंगे। देवोंके चरित्र हम कहेंगे। क्यों कहेंगे? इसका उत्तर यह है कि-(उत्तरे युगे उक्थेषु शस्यमानेषु पश्यात्) भविष्यमें ये देव-जन्म-वृत्तोंके गान गाये जानेसे सुननेवाले इन काव्यों-में दिव्य भाव देख सकेंगे। इसलिये देवोंके काव्य होते हैं। सुननेवाले इनमें दिव्य जीवन देखें और उनको अपने अन्दर ढालें और अपना जीवनचरित्र दिव्य बनावें।

देवोंके जन्मचरित्रोंके काव्य इसलिये बनाये जाते हैं कि इनके जीवन चरित्रमें जो दिव्य भाव है उसको सुननेवाले देखें और उसे अपने जीवनमें ढालें। प्राचीन साधुओं-

देवोंके चरित्र इस तरह भविष्यमें आनेवाले लोगोंके लिये मार्गदर्शक होते हैं। यह इतिहासका महत्त्व है। इतिहास- में अच्छे और बुरे लोगोंके जीवन चरित्र होते हैं और उसका बुरा भला परिणाम भी लिखा होता है, जो भविष्य- कालीन जनताके लिये मार्गदर्शक होता है। वेदमें तथा इतिहास-पुराणोंमें देवों, दानवों, ऋषियों और मानवोंके जीवनवृत्त काव्यपद्धतिसे लिखे हैं, उनका लाभ मनुष्योंके लिये हो सकता है। मनुष्य उनसे लाभ उठावें इसी लिये वह वृत्तान्त वहां लिखा है। इस दृष्टिसे इतिहासका महत्त्व विशेष है। (मं० १)

(पूर्व्ये युगे) भूतकालमें, प्रारंभिक युगमें (ब्रह्मण- स्पतिः कर्मारः इव एता सं अधमत्) ज्ञानपति परमेश्वरने लुहार धोंकनीसे अग्नि प्रदीप्त करता है और उसमें लोहेके पदार्थ बनाता है उस तरह ये सब पदार्थ बनाये हैं। लुहार धोंकनीसे अग्नि प्रदीप्त करता है और उसमें लोहा तपाता और उससे लोहेके नाना प्रकारके पदार्थ बनाता है उस तरह ज्ञानके ईश्वर परमेश्वरने अपनी धोंकनीसे आत्मा- ग्निमें प्रकृतिरूपी लोहेको तपाकर ये सृष्टिके नाना देवगण बनाये हैं। सूर्य, चन्द्र, तारागण, सप्तऋषि, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, वायु, अन्तरिक्ष, विद्युत्, मेघ, जल, पृथ्वी, नदियां, वृक्ष, समुद्र, आदि जो अनन्त देवगण हैं जिनका वर्णन वेदमन्त्रोंमें है, उनको बनाया है। बृहस्पतिने यह बनाया अर्थात् ज्ञानस्वरूप ईश्वरने यह सब बनाया ऐसा कहनेसे यह सूचित हुआ है कि इसके बननेमें बुद्धिपूर्वक योजना है। जगत् बननेमें विशाल बुद्धिकी आयोजना है, वस्तु बनाना, उसका स्थान नियत करना, ग्रहोपग्रहोंकी गतिका निश्चय करना आदि सब बुद्धिपूर्वक कार्य हैं और यह बुद्धि ऐसी है कि जो अशुद्धि नहीं करती, जिसमें भूल नहीं, विस्मृति नहीं है, प्रमाद नहीं है। यह दर्शानेके लियेही ' बृहस्पतिने यह बनाया ' ऐसा कहा है। ज्ञानियोंमें विशेष ज्ञानी बृहस्पति है, इसलिये उससे प्रमाद नहीं होते। इस तरह यहां ज्ञानका महत्त्व दर्शाया है, जो विशेष ज्ञानी होंगे उनसे प्रमाद नहीं होंगे यह इसका भाव है।

(पूर्व्ये युगे) सृष्टिके प्रारंभमें (असतः सत् अजा- यत) असत्से सत्की उत्पत्ति हुई है। यहां ' असत् ' का अर्थ मूलप्रकृति है और ' सत् ' का अर्थ ' सूर्य आदि देवगण अर्थात् सृष्टि है। '

असद्वा इदमग्र आसीत्ततो वै सदजायत।
(तै० उ० २।७)

' प्रारंभमें असत् था, उससे सत् उत्पन्न हुआ ' ऐसा तैत्तिरीय उपनिषद्में कहा है। उसका भी आशय यही है। असत्का अर्थ अभाव नहीं है (अस्यति इति असत्) जो अपनेमेंसे कुछ बाहर फेंकता है वह असत् कहलाता है। प्रकृति अपनेमेंसे सूर्यादि देवगणोंको बाहर निकालती है, इसलिये प्रकृतिका नाम असत् है। इससे उत्पन्न हुए सूर्यादि देवगण सत् कहलाते हैं। अगले तृतीय मन्त्रमें भी यही मंत्रभाग दुहराया है। दुहरानेसे इस मंत्रभागका महत्त्व सिद्ध होता है। पुनरुच्चारित अर्थात् अभ्यस्त मंत्रका महत्त्व विशेष होता है। (मं० २-३)

असत् रूपी प्रकृतिसे जगद्रूप सत् उत्पन्न हुआ। ब्रह्मके दो रूप हैं (द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे) एक अव्यक्त और दूसरा व्यक्त। अव्यक्तसे व्यक्त उत्पन्न हुआ। (तत् आशाः अनु अजायन्त) उससे दिशाएं उत्पन्न हुई, उपदिशाएं भी उत्पन्न हुईं। (तत् परि उत्तान-पदः) उसके पश्चात् ऊपर उठनेवाले पदार्थ उत्पन्न हुए। जगत्में देखिये सर्वत्र ऊपर उठनेका यत्न हो रहा है। छोटा घास जमीनसे ऊपर उठता है (उत्तानं पद्यते), बीज भूमिमें डाला, तो वह ऊग कर ऊपर उठता है, सब वृक्ष वनस्प- तियाँ ऊपर उठती हैं। छोटे बालक भी ऊपर उठना चाहते हैं, राष्ट्र प्रतिबंधको तोडकर ऊपर उठना चाहते हैं, समाज प्रगति करते हैं। इस तरह सर्वत्र ऊपर उठनेका प्रयत्न हो रहा है। जिस शक्तिने असत्से सत्में अपनी प्रगति करके दिखाई वही शक्ति ऊपर उठनेका प्रयत्न कर रही है। सब जगत् भरमें सब ऊपर उठना चाहते हैं। हरएक मनुष्यमें स्वाभाविक प्रवृत्ति ऊपर उठनेकोही है। यह प्रवृत्ति अच्छी है। दूसरोंका नाश करके स्वयं ऊपर न उठें पर स्वयं ऊपर उठें और अन्योंको भी ऊपर उठने दें।

द्वितीय मन्त्रमें कहा है कि ' लुहार लोहेको तपाकर नाना प्रकारके पदार्थ बनाता है। ' यही विस्तारकी प्रवृत्ति जगत्में सर्वत्र है जो (उत्तान-पदः) ऊपर उठनेकी

प्रवृत्तिसे प्रकट हो रही है। यह प्रवृत्ति अच्छी है, पर संयमके साथ उसका उपयोग होना चाहिये। (मं० ३)

(उत्तान-पदः भूः जज्ञे) ऊपर उठनेवाली शक्तिसे भूमि उत्पन्न हुई। भूमिसे दिशाएं हुईं। भूमिपरके सब पदार्थ उत्पन्न हुए। अदितिसे दक्ष और दक्षसे फिर अदिति उत्पन्न हुई। यहां 'बीज-वृक्ष' न्याय कहा है। वृक्षसे बीज और बीजसे वृक्ष, मनुष्यसे वीर्य और वीर्यसे मनुष्य, प्राणीसे बीजवीर्य और वीर्यबीजसे प्राणी होते हैं। जगत्में यह परंपरा अखण्ड चली आयी है। इसी परंपरासे सृष्टि होती है। और सृष्टि अविच्छिन्न रहती है। 'अदितिसे दक्ष और दक्षसे अदिति' यह संकेत भी ऐसाही शाश्वत परंपरा बतानेवाला है।

स्वातंत्र्यसे बल और बलसे स्वातंत्र्य

'दिति' का भाव परतंत्रता, खंडित भाव, बंधन है। 'अ-दिति' का अर्थ 'स्वतंत्रता, अखण्डितता और मुक्ति' है। 'दक्ष' का अर्थ बल है। 'स्वतंत्रतासे बल और बलसे स्वातंत्र्य' यह अर्थ 'अदितेः दक्षः, दक्षात् अदितिः' का राजकीय क्षेत्रमें है। यह सिद्धान्त अनुभवसिद्धही है। (मं० ४)

'हे दक्ष! तेरी दुहिता अदितिने कल्याणकारी अमर देवोंको उत्पन्न किया।' बलसे जो स्वतंत्रता उत्पन्न हुई उसमें कल्याण करनेवाले दिव्य ज्ञानी विबुध उत्पन्न हुए। स्वातंत्र्यही दिव्य मानव निर्माण कर सकता है। (भद्राः) कल्याण करनेवाले, (अ-मृत-बंधवः) अमरत्वके भाई अथवा सहचारी देवगण (अ-दिति) स्वतंत्रतासे उत्पन्न हुए। स्वतंत्रता और दिव्यता इनका नित्य साहचर्य है। आगे ये आठ पुत्र हैं ऐसा कहा है। अदितिके पुत्र आठ हैं। उनका वर्णन आगे आनेवाला है। (मं० ५)

(सुसंरब्धाः देवाः सलिले अतिष्ठत) सुसज्ज होकर ये देव इस जलप्रवाहमें खडे रहे। जलप्रवाह जोरसे चल रहा था, उसमेंसे पार जानेके लिये सबको सुदृढ होना चाहिये, अतः वे (सु-सं-रब्धाः) सुसंघटित हुए, एक दूसरेके साथ मिलकर रहे, संघटना सबल करके संघटित होकर रहे। इस संघटनाके कारण वे जल-प्रवाहमें भी सुरक्षित रह सके। (अत्र नृत्यतां रेणुः अप अजायत) यहां वे सुरक्षित रहनेके कारण आनंदसे नाचने लगे, इस नाचके कारण धूलीका स्तंभ ऊपर उडने लगा। इतना प्रचण्ड नाच उन्होंने किया। संघटित होकर जब वे जल-प्रवाहसे सुरक्षित बाहर आये, तब उनको आनन्द हुआ और वे आनन्दके प्रदर्शनार्थ नाचने लगे। और उनके नाचसे प्रचण्ड धूली ऊपर उडने लगी।

जलप्रवाहसे पार होनेके विषयमें वेदमें एक मंत्र देखने-योग्य है—

> अश्मन्वती रीयते सं रभध्वम्
> उत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।
> अत्रा जहीमोऽशिवा ये असन्
> शिवान् वयं उत्तरेमाभि वाजान्॥
>
> (का० यजु० ३५।४३, वा०मं० ३५।१०)

'यह पथरीली नदी बडे वेगसे चल रही है, संघटित होओ, उठो, मित्रो! तैरनेका यत्न करो। जो अपने पास हानिकारक पदार्थ हैं उनको यहीं छोडो, यदि हम परले तीरपर पहुंचे, तो हम हितकारक पदार्थोंको प्राप्त करेंगे।'

इस यजुर्वेदमंत्रका भाव इस मन्त्रके साथ मिलता जुलता है। 'सं रभध्वं, संरब्धाः' ये एकही धातुके प्रयोग दोनों मंत्रोंमें हैं। भयंकर पथरीली नदी यही व्यवहारकी नदी है। कईयोंको यह कष्टमय प्रतीत होती है। उसमेंसे पार होना चाहिये। इसलियेही यहां संघटना आवश्यक है। अनावश्यक वस्तुओंका लोभ धरना योग्य नहीं है। पार होनेपर अनेक भोग प्राप्त हो सकेंगे।

पार होनेपर आनन्दसे बडे उत्सव करते हैं, नाचते हैं, मीठे पदार्थ खाते हैं। ऐसे नाचते हैं कि जिससे पृथ्वीपरकी धूली उडकर आकाशमें पहुंचती है, यह अत्यंत आनन्द होनेसेही हो सकता है। (मं० ६)

देवोंने (देवाः यतयः भुवनानि अपिन्वत) संयमी बनकर सब भुवनोंको परिपुष्ट किया। संयमसेही पुष्टि हो सकती है। असंयमसे क्षीणता निर्बलता आती है और संयमसे बल बढता है। ऐसा बल बढ जानेके बाद (समुद्रे गूळ्हं सूर्यं अजभर्तन) समुद्रमें छिपा हुआ सूर्य था उसको बाहर निकाल दिया, प्रकट कर दिया, सूर्यका उदय होकर प्रकाश होने लगा। संयमी देवोंके प्रयत्नसे विश्वमें प्रकाश फैल गया। अदितिसे जो देव उत्पन्न हुए थे उन्होंने संयमसे अपना सामर्थ्य बढा दिया और विश्वभरमें प्रकाश किया। (मं० ७)

अदितिके आठ पुत्र हुए, वे सब अदितिके शरीरसे उत्पन्न हुए। इनमेंसे सात पुत्रोंके साथ उनकी माता

देवोंके पास गयी और आठवे पुत्र मार्तण्डको उन्होंने दूर फेंक दिया। मार्तण्ड कृश, निर्बल, निस्तेज, निर्जीवसा दीखता था, इसलिये उसे यहीं फेंक कर अदिति माताने सातही पुत्रोंको अपने साथ रखा। (मं० ८)

अदिति अपने सात पुत्रोंसे पूर्व सत्ययुगमें गयी, अर्थात् सत्ययुगके समान उनका पालन-पोषण करने लगी और विश्वकी जन्म-मरणकी व्यवस्थाके लिये मार्तण्ड (सूर्य) की उपयोगिता जानकर उसका भी उन्होंने अच्छी तरह भरण-पोषण किया। अर्थात् प्रथम त्याग किये पुत्रका भी उन्होंने अच्छी तरह पालन-पोषण किया। (मं० ९)

यहां यह आलंकारिक कथा जैसा वर्णन है। इसमें गूढ संकेत भी बहुत हैं। तैत्तिरीय-संहितामें (तै० सं० ६।५।६।१) आदित्योंके नाम गिनाये हैं—मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् और आदित्य।' आदित्यका नामही मार्तण्ड है। ये सब नाम आदित्यके हैं। इसलेही उक्त रूपक है यह सिद्ध होता है।

पुराणोंमें भी अदितिकी कथा है। वे सब पुराणकी कथाएँ इस वैदिक सूक्तके साथ तुलना करनेयोग्य हैं।

सूक्तका सार

१ देवोंके जन्मोंका वृत्तान्त हम इसलिये कहते हैं कि यह काव्य भविष्यमें जब गाया जायगा, तब इस दिव्य वृत्तसे उन सुननेवालोंको अपूर्व बोध प्राप्त होगा।

२ लुहार धोंकनीसे अग्नि प्रदीप्त करता है और उसमें तपाकर लोहेके नाना पदार्थ बनाता है उस प्रकार ज्ञानी प्रभुने प्रारंभमें सूर्यादि देवगण बनाये और जहां कुछ भी नहीं था वहां यह सब विश्व निर्माण किया।

३ प्रारंभमें कुछ भी नहीं था पश्चात् यह सब सृष्टि बनी। दिशाएं बनीं और उद्यत होनेकी स्वाभाविक प्रवृत्तिके वस्तुमात्र बने।

४ प्रथम पृथिवी बनी, पृथ्वीपर दिशाएं बनीं। अमर्याद सत्तासे बल बना और उस बलसे अमर्याद सत्ता बनी।

५ अमर्याद सत्तासे अमर तथा कल्याण करनेवाले देव बने।

६ इन देवोंने संघटना करके संसारकी सरितासे पार होनेके लिये प्रयत्न किया। वे पार हुए। उस परम आनंदसे वे नाचने लगे, उससे धूलि आकाशमें उडी।

७ देवोंने संयमपूर्वक व्यवहारसे सब भुवनोंको परिपुष्ट किया। और समुद्रमें छिये सूर्यको ऊपर लाकर प्रकाशित किया।

८ अदितिको आठ पुत्र हुए। उनमेंसे सातों सहित वह देवोंके पास गयी और आठवे मार्तण्डको यहीं फेंक दिया।

९ अदितिने सात पुत्रोंसमेत देवोंके पास गमन किया। आठवां मार्तंड प्रजाजनोंके जन्ममृत्युके लिये सहायक है यह जानकर उस मार्तण्डका भी अच्छी तरहसे भरण-पोषण करके उसका भी संवर्धन उस माताने किया।

यह सूक्तका आशय है। यहां सृष्टिकी उत्पत्ति, संघटनाका महत्त्व, संयमसे बल बढानेकी प्रेरणा, पुत्रोंका उत्तम पालन-पोषण करना आदि विषय हैं जो विचारणीय हैं।

बृहस्पतिने इस स्थानमें जहां कुछ नहीं था वहां लुहारके समान सब सृष्टिकी रचना की। प्रकृतिरूप लोहेसे सृष्टिके सब पदार्थ बनाये। बृहस्पति बुद्धिमान है इसलिये उसके सृष्टिरूप कर्तृत्वमें सर्वत्र बुद्धिपूर्वक योजना दीखती है।

मनुष्योंको उचित है कि वे भी बुद्धिमान होकर बुद्धिपूर्वक सब योजना करें और अपूर्व वस्तुओंकी निर्मिति करें।

अदितिने जैसे दिव्य पुत्र उत्पन्न किये उस प्रकार संसारमें रहनेवाले दम्पती आठ पुत्र उत्पन्न करें। उनमें एकाध निर्बल उत्पन्न हुआ तो उसका त्याग न करके उसका भी उत्तम पालन-पोषण करें वह भी सूर्यके समान जनपद-हितकर्ता बने ऐसा उसका संवर्धन करें।

अदितिके आठ पुत्र ये सूर्यकेही आठ प्रहरोंके सूर्यके नाम हैं अर्थात् ये सूर्यही हैं। अदितिने जैसे सूर्यरूपी पुत्र निर्माण किये उस तरह दम्पती अपने पुत्र सूर्यसमान तेजस्वी बनें ऐसा यत्न करें। स्त्री पुरुष ऐसा यत्न करें कि अपने पुत्र तेजस्वी हों और सूर्यके समान शत्रुको ताप दें और जगत्को प्रकाशित करें।

पाठक इस तरह इस सूक्तका विचार करें। इस सूक्तकी कूट रचना बडी कठिन है अधिक खोजके पश्चात्ही वह समझमें आ सकती है। इस कारण इसका स्पष्टीकरण यहीं समाप्त करते हैं।

बृहस्पति ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(१६)

वागाम्भृणी ऋषिका का दर्शन

" ब्रह्मशक्तिसे प्रभावित राष्ट्रशक्ति "

(ऋग्वेदका ८३ वाँ अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, साहित्य-वाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालङ्कार,

अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, आनन्दाश्रम, पारडी [जि० सूरत]

संवत् २००६, सन १९४९

आम्भृणी वाक् ऋषिका का विश्वात्मासे तादात्म्य।

अम्भृण नामक एक ऋषि बडा तपस्वी था। उसकी पुत्री 'वाक्' नामकी थी। यह भी बाळपनसे तपस्विनी थी। तरुण होनेके समय उसको ब्राह्मी-भूमा-अवस्था प्राप्त हुई और वह 'अहं रुद्रेभिः चरामि' यह ब्रह्मभावका अनुभव करने लगी। उसका अन्तः स्फूर्तिसे देखा यह सूक्त है। इस विषयमें श्री सायणाचार्य लिखते हैं—

> अंभृणस्य महर्षेर्दुहिता वाङ्नाम्नी ब्रह्मविदुषी स्वात्मानमस्तौत्। सच्चित्सुखात्मकः परमात्मा देवता। तेन ह्येषा तादात्म्यमनुभवन्ती सर्वजगद्रूपेण सर्वस्याधिष्ठानत्वेन चाहमेव सर्वं भवामीति स्वात्मानं स्तौति।
>
> (ऋ० सा० भा० १०।१२५)

> 'अहं अष्टौ वागाम्भृणी तुष्टवात्मानम्।
>
> (कात्या० ऋ० अनुक्रमणी १३)

> सर्वजगत्कल्पनास्पदं सच्चित्सुखात्मकं परं ब्रह्म स्वात्मत्वेन विदुषी अम्भृणाख्यस्य महर्षेर्दुहिता वाङ्नाम्नी ब्रह्मवादिनी स्वात्मानं सर्वात्मभावेन तुष्टाव। ... ... विशुद्धसत्वपरिणामरूपस्य अन्तःकरणस्य वृत्तिविशेषः अभिमानात्मकोऽहंकारः। तदुपलक्षितानवच्छिन्नात्मिका अहं रुद्रेभिः ... चरामि। ... एकस्यैव हि ब्रह्मणः तत्तदुपाध्यवच्छेदेन वस्वादिदेवतारूपेण भेदावभासात्। वस्तुतस्तु ऐक्यमेवेति तदनुसंधाना ब्रह्मवादिनो एवं ब्रूते। ... मत्स्वरूपे अद्वितीये ब्रह्मणि सर्वं जगत् शुक्तौ रजतमिव अध्यस्तं सत् दृश्यते।
>
> (अथर्व० सा० भा० ४।३०)

इस भाष्यमें श्री सायणाचार्यजीने यह कहा है कि अम्भृण ऋषिकी पुत्री 'वाक्' ब्रह्मवादिनी और सब जगत् भरमें अपने अन्तर्गत आत्माका व्यापकत्व देखने लगी। उस अनुभवके दर्शक ये मन्त्र हैं।

वाक् ऋषिकाके विषयमें तथा इसके पिता अम्भृण ऋषिके संबंधमें कुछ भी विशेष बातें वैदिक वाङ्मयमें अथवा पुराणोंमें नहीं मिलतीं। इस कारण यहां यह प्रस्तावका भाग समाप्त करते हैं।

स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम'
पारडी (जि. सूरत)
ज्येष्ठ शुक्ल १, संवत् २००१

निवेदनकर्ता
पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

मुद्रक तथा प्रकाशक— वसंत श्रीपाद सातवलेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, पारडी (जि० सूरत)

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

वागाम्भृणी ऋषिका का दर्शन

(ऋग्वेदका ८३ वाँ अनुवाक)

" ब्रह्मशक्तिसे प्रभावित राष्ट्रशक्ति "

(ऋ० १०।१२५।१-८) ऋषिका- वागाम्भृणी । देवता- आत्मा । छन्दः- त्रिष्टुप्, २ जगती ॥
(अथर्व० ४।३०।१-८) ऋषिः- अथर्वा । देवता- सर्वरूपा सर्वात्मिका सर्वदेवमयी वाक् ।
छन्दः- त्रिष्टुप्, ६ जगती ।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा १

अन्वयः- १ अहं रुद्रेभिः वसुभिः चरामि । अहं आदित्यैः उत विश्वदेवैः (चरामि) । अहं उभा मित्रावरुणा बिभर्मि । अहं इन्द्राग्नी (बिभर्मि) । अहं उभा अश्विना (बिभर्मि) ॥

अर्थ— १ (आध्यात्मिक तथा आधिदैविक)= मैं रुद्रों और वसुओंके साथ संचार करती हूं । मैं आदित्यों और सब देवोंके साथ संचार करती हूं । मैं दोनों मित्र तथा वरुणको धारण करती हूं । मैं इन्द्र और अग्निका भरण-पोषण करती हूं। और मैं दोनों अश्विदेवोंका धारण करती हूं ॥

१ (आधिभौतिक= राष्ट्रीय)= मैं वीरों और धनिकोंके साथ संचार करती हूं । मैं स्वातंत्र्यवीरों और सब विबुधोंके साथ संचार करती हूं । मैं मित्रों और श्रेष्ठोंका धारण करती हूं । मैं शत्रुदमन-कर्ता वीर और ज्ञान-प्रसारकका पोषण करती हूं । और मैं चिकित्सक वैद्य और शल्यवैद्यका धारण करती हूं ॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये३ यजमानाय सुन्वते ॥ २ ॥
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ ३ ॥
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥ ४ ॥

अथर्वपाठः- अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्या३ यजमानाय० ॥ ६ ॥
अथर्वपाठः- ··· भूर्यावेशयन्तः ॥ २ ॥ अथर्वपाठः- ··· श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥ ४ ॥

अन्वय -२ अहं आहनसं सोमं बिभर्मि । अहं त्वष्टारं, पूषणं, उत भगं (बिभर्मि) । अहं हविष्मते सुप्राव्ये सुन्वते यजमानाय द्रविणं दधामि ॥

अर्थ— २ (आध्यात्मिक तथा आधिदैविक)= मैं शत्रु हनन-कर्ता सोमका धारण करती हूं । मैं त्वष्टा, पूषा और भग देवोंका धारण करती हूं । मैं यज्ञार्थ हवन-सामग्री अपने पास रखनेवाले, उत्तम रीतिसे रक्षण करनेयोग्य तथा सोमयाजक यजमानके लिये धन देती हूं ॥

२ (आधिभौतिक= राष्ट्रीय)= मैं शत्रुका पूर्ण पराभव करनेवाले वीरका पोषण करती हूं । मैं शिल्पी, पोषणकर्ता और धनवानोंका धारणपोषण करती हूं । मैं यज्ञार्थ हवन-सामग्री अपने पास सिद्ध रखनेवाले, अत एव उत्तम सुरक्षित रहनेयोग्य, सोमयाग करनेवाले यजमानके लिये पर्याप्त धन (यज्ञके लिये) देती हूं ॥ (जिससे वह यज्ञ करे और सबको लाभ पहुंचावे) ॥

अन्वयः- ३ अहं राष्ट्री, वसूनां संगमनी, चिकितुषी, यज्ञियानां प्रथमा (अस्मि) । तां भूरिस्थात्रां भूरि-आवेशयन्तीं मा देवाः पुरुत्रा व्यदधुः ॥

अर्थ— ३ (आध्यात्मिक तथा आधिदैविक)= मैं प्रकाश देनेवाली, धनोंको इकट्ठा करनेवाली, ज्ञान देनेवाली और पूजनीयोंमें प्रथम पूजनेयोग्य हूं । उस अनेक स्थानोंमें विराजमान, अनेकोंमें आवेश उत्पन्न करनेवाली मुझे देवोंने अनेक स्थानोंमें विशेष रूपोंमें धारण किया है ॥

३ (आधिभौतिक=राष्ट्रीय)= मैं राष्ट्रशक्ति हू, मैं धनोंका संग्रह करती, ज्ञान देती और जो सत्कारके योग्य हैं उनमें मैं सबसे प्रथम सत्कार करनेयोग्य हूं । मैं अनेक स्थानोंमें रहती हूं. अनेक वीरोंको स्फुरण कर देती हू । इसलिये ज्ञानियोंने मुझ राष्ट्रशक्तिको अनेक केन्द्रोंमें धारण किया-(और बढाया भी है) ॥

अन्वय.- ४ यः प्राणिति, य. ईं उक्त शृणोति, यः विपश्यति, स. मया अन्न अत्ति । (ये) मां अमन्तवः ते उपक्षियन्ति । हे श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि, श्रुधि ॥

अर्थ— ४ जो श्वासोच्छ्वास करता है, जो कहा हुआ सुनता है, जो विशेष रीतिसे देखता है, वे सब मेरी शक्तिसे ही अन्न खाते हैं । (जो) मेरा अपमान करते हैं वे विनष्ट हो जाते हैं । हे बहुश्रुत श्रद्धा रखनेयोग्य यह ज्ञान मैं तुझे कहती हूं, सुन ॥

[यह अर्थ आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिकमें समान ही है । इसी तरह अगले पांचवे और छठे मन्त्रका भी अर्थ सम ही है ।]

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्　　५

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश　　६

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वऽन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनाऽनु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि　　७

अथर्वपाठः- ०जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम् ॥ ३ ॥
अथर्वमन्त्रः- ॥ ५ ॥
अथर्वपाठः- तिष्ठे भुवनानि विश्वो० ॥७॥

अन्वयः- ५ अहं स्वयं एव इदं देवेभिः उत मानुषेभिः जुष्टं वदामि । यं कामये तं-तं उग्रं कृणोमि, तं ब्रह्माणं, तं ऋषिं, तं सुमेधां (च कृणोमि) ॥

अर्थ— ५ मैं स्वयंही जिसकी मान्यता देव और ऋषि करते हैं ऐसा यह ज्ञान कहती हूं । जिसको मैं चाहती हूं उसे उग्रवीर करती हूं, उसे ब्रह्मज्ञ, उसे ऋषि अथवा उसे उत्तम बुद्धिमान भी बना देती हूं ॥

अन्वयः- ६ अहं रुद्राय ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवै उ धनुः आ तनोमि । अहं जनाय समदं कृणोमि । अहं द्यावा-पृथिवी आ विवेश ॥

अर्थ— ६ मैं वीरभद्रको ज्ञानका द्वेष करनेवाले घातक शत्रुका वध करनेके लिये धनुष्य सज्ज कर देती हूं । मैं जनताके हितके लिये युद्ध करती हूं । मैं द्युलोकसे पृथिवीतक भरपूर भरकर रहती हूं ॥

अन्वयः— ७ अहं अस्य मूर्धन् पितरं सुवे । मम योनिः समुद्रे अप्सु अन्तः । ततः विश्वा भुवना अनु वि तिष्ठे । उत अमूं द्यां वर्ष्मणा उप स्पृशामि ॥

अर्थ— ७ (आध्यात्मिक तथा आधिदैविक)= मैं इसके सिरपर रक्षकको निर्माण करती हूं । मेरा उत्पत्तिस्थान समुद्रके जलप्रवाहोंमें है । वहांसे उठकर सब भुवनोंमें मैं फैलती हूं । और इस द्युलोकको अपने शरीरसे स्पर्श करती हूं ॥

७ (आधिभौतिक= राष्ट्रीय)= मैं (राष्ट्रशक्ति) इस (राष्ट्र) के ऊपर पालकको नियुक्त करती हूं । मुझ (राष्ट्रशक्तिकी) उत्पत्ति (सं) संघटित होकर (उत्) उत्कर्षके लिये (द्र) हलचलके व्यापक प्रयत्नोंमें होती है । यहांसे उत्पन्न होकर जनोंमें मैं विशेष रीतिसे ठहरती हूं । और इस द्युलोकतक अपने शरीरसे पहुंचती हूं ॥

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ८

अथर्वपाठः- एतावती महिम्ना सं बभूव ॥ ८ ॥

अन्वयः— ८ अहं एव विश्वा भुवनानि आरभमाणा वात इव प्र वामि दिवा परः एना पृथिव्या परः एतावती महिना सं बभूव ॥

अर्थ— ८ (आध्यात्मिक तथा आधिदैविक)= मैं सब भुवनोंको उत्पन्न करके वायुके समान सर्वत्र संचार करती हूं। और द्युलोकके परे और इस पृथ्वीके भी परे इतनी विस्तृत मैं अपनी महिमासे हो जाती हूं ॥

८ (आधिभौतिक= राष्ट्रीय)= मैं (राष्ट्रशक्ति) सब मानवी संस्थाओंको निर्माण करके वायुके वेग के समान सबको स्फुरण देती हूं। इससे द्युलोकसे परे और भूलोकसे भी परे मेरा प्रभाव हुआ है (ऐसा प्रतीत होता है) ॥

वागाम्भृणी ऋषिकाका सूक्त।

यह सूक्त ' आम्भृणी वाक् ' नामक ऋषिका का अर्थात् स्त्री ऋषिका का है। यह आम्भृण ऋषिकी पुत्री ब्रह्मवादिनी हुई । अध्यात्म-ज्ञानमें इसकी इतनी प्रगति हुई कि इसको छोटी आयुमेंही ब्राह्मी अवस्था प्राप्त हुई । अपने आपको यह कन्या ब्रह्मरूप अनुभव करने लगी।

मनुष्यको स्थूल-सूक्ष्म-कारण-महाकारण ऐसे चार शरीर होते हैं। स्थूल शरीर सब देखतेही हैं। यह प्रत्येकका विभिन्न होता है, इसलिये इस शरीरपर सबको एक दूसरे-से पृथक्त्वका अनुभव होता है । भेद, भिन्नता, पृथक्त्व, द्वन्द्वका अनुभव इस स्थूल शरीरपर मनुष्यको होता है। सूक्ष्म शरीर भी प्रत्येकका पृथक् पृथक्ही होता है । कारण तथा महाकारण ये शरीर सब विश्वके लिये एक होते हैं। इसलिये इन शरीरोंमें जो कार्य कर सकते हैं उनको संपूर्ण विश्वके एकत्वका अनुभव होता है। यह स्थिति 'द्वन्द्वातीत' अथवा 'ब्राह्मी' कहलाती है।'

जिस तरह स्थूल और सूक्ष्म शरीर हरएकके पृथक् होते हैं, उसी तरह कारण और महाकारण शरीर सबका एकही होता है। इसलिये इनपर जागृत रहनेवालोंको एकत्वका अनुभव आता है । द्वन्द्वातीत ब्राह्मी अवस्था यही है । ब्रह्मभावको प्राप्त होनेकी यह स्थिति है। समत्वका अनुभव यहीं आता है। अपने आपको ' भूमा ' अनुभव करनेकी यह स्थिति है।

आम्भृणी वाक् ऋषिका इस अवस्थामें पहुंची थी। इसलिये इस दिव्य स्फुरणसे यह जो बोल रही है वह ब्राह्मी-स्थितिका अनुभव है।

आम्भृणी वाक्का आत्मानुभव।

(आध्यात्मिक और आधिदैविक अनुभव)

सूक्तका भाव स्पष्ट शब्दोंमें इस तरह है—

१ मैं अन्तरिक्षस्थ ग्यारह रुद्रोंके साथ तथा पृथ्वी स्थानीय अष्ट वसुओंके साथ, भ्रमण कर रही हूं। मैं द्युस्थानीय द्वादश आदित्योंके साथ तथा सब अन्य देवोंके साथ संचार कर रही हूं। मैं मित्र और वरुणको धारण कर रही हूं। मैं इन्द्र और अग्निको धारण कर रही हूं, और दोनों अश्विदेवोंको मैनेही आधार दिया है।

२ मैं सोमरसमें शत्रुनिर्दलन करनेकी शक्ति रखती हूं। त्वष्टा, पूषा और भग देवताओंका मैं पोषण कर रही हूं। मैं ही यज्ञयाग करनेवाले यजमानको यज्ञ करनेके लिये पर्याप्त धन देती हूं।

३ मैं सबको प्रकाशित करनेवाली हूं। अष्ट वसुओंको इकट्ठा करनेवाली, ज्ञान देनेवाली और यज्ञिय देवताओंमें प्रथम स्थानमें सत्कार करनेयोग्य हूं। मैं सर्वत्र रहती हूं और सबमें आवेश उत्पन्न करती हूं। इस तरह मुझे विबुधोंने सर्वत्र उपस्थित होनेका अनुभव किया है।

४ जो श्वासोच्छ्वास करते हैं, जो सुनते हैं, जो देखते हैं, जो अन्न खाते हैं वह सब मेरी शक्तिसेही सब करते हैं। मेरा निरादर करनेवाले सब विनष्ट होते हैं। हे विशेष ज्ञानी मनुष्य ! यह जो मैं कह रही हूं, तूं इस श्रद्धा रखनेयोग्य इस वचनका श्रवण कर।

५ मैं ही स्वयं यह सब बोल रही हूं। इस वचनका सन्मान देव तथा मनुष्य भी करते हैं। मैं जिसको चाहती हूं उसको प्रतापी शूरवीर, ब्रह्मज्ञानी, अतींद्रियार्थदर्शी ऋषि अथवा उत्तम बुद्धिमान बना देती हूँ।

६ ज्ञान-प्रसारका विरोध करनेवाले मानवताके शत्रुका नाश करनेके लिये बडे शूरवीरको धनुष्य सज्ज करके मैं ही देती हूं। समय पर जनताका हित करनेके लिये युद्ध भी कराती हूं। मैं पृथ्वीसे लेकर द्युलोकतक फैली हुई हूँ।

७ मैं इस जगत्के शासनके लिये उस पर शासकको निर्माण करती हूं। (अन्तरिक्षमें मेघमण्डलके) महासागरके जलोंमें मेरा उत्पत्ति-स्थान है। वहांसे मैं सब भुवनोंमें व्यापती हूं और अपने शरीरसे द्युलोकको स्पर्श करती हूं।

८ सब भुवनोंकी रचना करनेके पश्चात् मैं वायुके समान सर्वत्र घूमती हूँ। द्युलोकके परे और पृथिवीके भी परे मैं अपनी महिमासे पहुंचती हूं॥

आध्यात्मिक और आधिदैविक भाव

वेदमंत्रोंके आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक भाव रहते हैं। आधिदैविक भावमें अग्नि-वायु-रवि-इन्द्र आदि देवताओंका वर्णन होता है। ये देवताएं इस विश्वमें दीखनेवाली देवताएं हैं। जैसा इन मंत्रोंमें वर्णन है—" मैं रुद्र वसु आदित्य तथा विश्वे देवोंके साथ संचार करती हूं। मैंने मित्र वरुण इन्द्र अग्नि और अश्विनौको आश्रय दिया है। (मं० १) मैं सोम त्वष्टा पूषा और भगका भरण-पोषण करती हूं। तथा मैं यज्ञ करनेवालेको पर्याप्त धन देती हूं। (मं० २) मैं शत्रुहनन करनेके लिये रुद्रको धनुष्य देती हूं। मैं द्यावा-पृथ्वीमें व्याप रही हूं। (मं० ६) "

यह वर्णन आधिदैविक है, अर्थात् विश्वमें दिखाई देनेवाली देवताओंका नाम-निर्देश करके यह वर्णन है। इस वर्णनके साथ विश्वात्माका संबंध है अर्थात् विश्वात्मा स्वयं यह कह रहा है ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। परमात्मा कह रहा है कि-" मैं वसु रुद्र आदित्य आदि देवोंके साथ संचार कर रहा हूं, मैं इन्द्र अग्नि आदिकोंका धारण पोषण कर रहा हूं और मैं द्यावापृथिवीमें व्याप रहा हूं।" तो यह वर्णन परमात्मापरक अक्षर अक्षर सत्य है। क्योंकि परमात्माही अकेला सर्वव्यापक है और सबके साथ संचार करनेवाला है।

जब जीव ब्रह्मीभूत होता है, ब्राह्मी अवस्थाको पहुंचता है, ब्रह्मरूप होता है, नरका नारायण बन जाता है, जीवका शिव होता है, द्वन्द्वातीत होता है, भूमा अवस्थामें पहुंचता है, तब वह भी परमात्माके समान अनुभव करता है इसलिये वह भूमा अवस्थामें वैसाही कह सकता है जैसा परमात्माका कथन हो। इस तरह आम्भृणी वाक् ब्रह्मीभूत हुई थी, इसलिये वह उस अवस्थामें यह अनुभव कर रही है और ये मन्त्र उनको स्फुरण हुए। सायणाचार्य इस विषयमें ऐसा लिख रहे हैं—

> अंभृणस्य महर्षेर्दुहिता वाङ्नाम्नी ब्रह्मविदुषी स्वात्मानमस्तौत्। सच्चित्सुखात्मकः सर्वगतः परमात्मा देवता। तेन हि एषा तादात्म्यमनुभवन्ती सर्वजगद्रूपेण सर्वस्याधिष्ठानत्वेन चाहमेव सर्वं भवामीति स्वात्मानं स्तौति॥
> (ऋ० सायण भाष्य १०।१२५)

' अम्भृण महर्षिकी पुत्री वाक् नामवाली ब्रह्मवादिनी हुई। सच्चिदानंदात्मक सर्वव्यापक जो परमात्मा देवता है उसके साथ इसका तादात्म्य हुआ था। उसका अनुभव करती हुई यह कुमारी यह अनुभवका स्फुरण इस सूक्तमें वर्णन करती है। ' यह सायण-भाष्यका तात्पर्य है। जिस तरह लोहा आगमें तपनेसे लाल होनेके समय अपने आपको अग्नि रूप अनुभव कर सकता है, उसी तरह जीव परमात्मामें तप कर ब्रह्मरूप होता है और अपने आपको ब्रह्मरूप अनुभव करता है। मुक्तिका यह अनुभव है। महाकारण शरीर पर जागृत रहनेका यह अनुभव है।

जाग्रतिमें स्थूल शरीरके भेदभावोंका अनुभव आता है। सूक्ष्म शरीरका अनुभव स्वप्नमें आता है। कारण शरीरमें पहुंचनेसे और स्थूल-सूक्ष्म शरीरोंसे संबंध

बंधन छूट जानेसे सुषुप्तिका अनुभव आता है । यही मूल अवस्था है। यही ब्राह्मी-स्थिति है, पर तमोगुणी है। इससे रजोगुण, तमोगुण दूर होनेसे और केवल शुद्ध सत्त्वगुण होनेसे मुक्तावस्था होती है वही यह स्थिति है—

स्थूल शरीर—जाग्रतिकी स्थिति
सूक्ष्म „ —स्वप्न „ „
कारण „ —सुषुप्ति, तमोगुणी ब्राह्मी-स्थिति
„ „ ...समाधि रजोगुणी „ „
„ „ .. मुक्ति सत्वगुणी „ „

वाक् ऋषिका इस सत्त्वगुणी ब्राह्मी स्थितिको प्राप्त कर चुकी थी। उस स्थितिका अनुभव वह बोल रही है। "मैं सर्वत्र व्यापक हूं और सूर्यचन्द्रमाको चला रही हूँ। मेरी शक्तिसे यह सब हो रहा है।" इत्यादि

सुषुप्ति-समाधि-मुक्तिमें कारण--महाकारण शरीर पर जीव जाग्रत रहता है और अपने आपको पूर्ववत् विश्वरूप अनुभव करता है। विश्व देहही यह कारण-देह है, यह सब विश्वका एकही प्रकृतिदेह है। स्थूल-देह प्रत्येकके पृथक् पृथक् होते हैं, कारण-देह सबका एकही होता है। मनुष्य अथवा सभी प्राणी सुषुप्तिमें कारण-देह पर पहुंचते हैं और ब्राह्मी स्थितिकोही पहुंचे होते हैं। समाधि-मुक्तिमें सुषुप्तिसे परिशुद्धता अधिक है। ' सुषुप्ति-समाधि—मुक्तिषु ब्रह्मरूपता ।' ऐसा दर्शन शास्त्र कहते हैं यह यहां अनुसंधान करनेयोग्य है। प्रत्येक प्राणी सुषुप्तिमें ब्रह्मरूप होता है, कारण शरीर पर जाकर रहता है, इस समय स्थूल सूक्ष्म शरीरोंकी मर्यादाएं--अवस्थाकी बंधनें नहीं अनुभवता। पर तमोगुण विशेष होनेके कारण वहांका आनन्द उस समय प्रकट नहीं कर सकता। जो समाधि--मुक्तिमें आनंदका अनुभव वह कर सकता है।

इतने वर्णनसे पाठकोंको ब्राह्मी अवस्थाकी कुछ न कुछ कल्पना आ सकती है। मन्त्रोंका भाव शाश्वत होता है और वे भाव विशेष अवस्थामेंही स्फुरण होते हैं। जाग्रति स्वप्न और सुषुप्तिके अनुभव विभिन्न होते हैं, इसी तरह समाधि और मुक्तिके अनुभव भी विभिन्न होते हैं।

आधिदैविक भाव देवताओंके वर्णनके साथ परमात्मतत्त्वके वर्णनमें प्रकट होता है जैसा ऊपर बताया है। आध्यात्मिक भाव जीवात्मा और शारीरिक देवी अंशोंके वर्णनमें प्रकट होता है और आधिभौतिक भाव मनुष्य समाजके वर्णनसे प्रकट होता है। ये तीनों भाव वेदमंत्रोंमें होते हैं और इनको देखनेके लिये हम एक तालिका यहां बताते हैं। इस तालिकासे किस पदका वर्णन कहां कैसा समझना चाहिये इसका स्पष्टीकरण हो सकता है।

आधिदैविक	आधिभौतिक	आध्यात्मिक
विश्व--जगत्	समाज, राष्ट्र	व्यक्ति
परमेष्ठी	समष्टि	व्यष्टि
विश्व	राष्ट्र	शरीर
द्यौ.		सिर
आदित्य, अग्नि	ज्ञानीवर्ग	नेत्र, वाणी
मित्र		
पूषा	पोषकवर्ग	पोषक शक्ति
भग	धनीवर्ग	धन्यताका भाव
अश्विनौ	वैद्य, शस्त्रवैद्य	श्वास--उच्छ्वास
अन्तरिक्ष	मध्यमवर्ग	पेट, छाती
रुद्र, मरुत.	वीर, सेना	वीरता, बाहु
इन्द्र, सोम	सेनापति, राजा	मन, जीव
वरुण	जलाधिपति	
त्वष्टा	शिल्पी	कुशलता
वसु		
अग्नि, सोम		
समुद्र, आपः		
पृथ्वी	जनता	पांव

यहां हम यह तालिका परिपूर्ण रूपसे नहीं दे सके। क्योंकि अबतक यह संपूर्ण रूपसे निर्दोष बन नहीं सकी। परंतु उपनिषदों और ब्राह्मणोंमें जो इस विषयमें सूचनाएं दीं हैं उनके अनुसंधानसे यह तालिका इस समय इतनी बन सकी है। शेष पूर्णता जब बनेगी तब हम पाठकोंके सन्मुख रख सकेंगे। इस समय जो देवता आधिदैवतमें हैं, वह अधिभूतमें और अध्यात्ममें कौन है, वह इस तालिकासे ज्ञात हो सकता है। और इस सूक्तके विवरणके लिये इतना ज्ञान पर्याप्त है।

जो भाव आधिदैवतमें परमात्मपरक है वही भाव अध्यात्ममें जीवात्मपरक शरीरमें देखना है। इस तरह शरीरमें जो सब देवताश हैं वे जीवात्माद्वारा प्रेरित होते हैं, जैसे परमात्माके द्वारा विश्वमें ये सब महान् देवताए प्रेरित होतीं है। यह दोनों स्थानोंमें समानता है। अब रही बात बीचके आधिभौतिक ज्ञानकी, यह भी पूर्वोक्त तालिकासेही स्पष्ट हो जाती है और अब उसीका वर्णन विस्तारपूर्वक करना है। शरीरमे सूक्ष्म-रूपमें और ब्रह्माण्डमें अति विस्तारके क्षेत्रमें जो परमात्माके नियमानुसार हो रहा है, वही राष्ट्रकी मानव-समष्टिमें मनुष्योंको करना उचित है। शरीरमें तथा विश्वमे जो निसर्ग स्वभावसे हो रहा है, उसका निरीक्षण करके उन नियमोंको यथावत् जानकर वैसी व्यवस्था मानव-समाजमें करनी चाहिये, इसका नाम आधिभौतिक ज्ञानका अवलंबन है।

व्यक्तिमे और विश्वमें सनातन अटूट नियमोंसे जो हो रहा है वह मनुष्योंको देखना चाहिये और उन नियमोंको मानव समाजमें ढालना चाहिये। इसीका नाम आध्यात्मिक तथा आधिदैविक नियमोंके अनुसार राष्ट्रशासन की व्यवस्था करना है। ऐसी शासन-व्यवस्था जितनी निर्दोष होगी उतना राज्यशासन निर्दोष और सुखदायी होगा। इसलिये प्रथम अध्यात्ममें कैसा चल रहा है वह देखेंगे —

अध्यात्ममें परस्पर-सहकार्य

शरीरके अन्दरके व्यवहारको अध्यात्म व्यवहार कहते हैं। इनका सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेद हम यहां प्रतिपादनकी सुकरताके लिये विचारमें नहीं लेंगे। शरीरमें मुख्यत आंख, नाक, कान, मुख, त्वचा, हाथ, पाव, पेट, गुदा, शिस्न आदि अवयव हैं। मन, चित्त, अहकार, बुद्धि ये भी आन्तरिक साधन हैं। शरीरमें ये सब रहते हैं और जबतक इनका सहकार्य होता है तबतकही शरीर सुस्थितिमें रहता है। इनमें सहकार्य न रहा तो समझ लीजिये कि शरीरकी समाप्तिकाही समय आगया है।

अब देखिये शरीरमें परस्पर-सहकारिता कैसी हो रही है। आंख किसी फलको देखते हैं, मन विचार करके निश्चय करता है कि यह खानेयोग्य है या नहीं, बुद्धिसे पता होता है कि यह इस समय कैसा प्राप्त किया जा सकता है? मन पावोंको आज्ञा करते हैं, और सब शरीर की भलाईके लिये पांव सब शरीरको उठाकर उस फलके पास ले जाते हैं, हाथ उस फलको प्राप्त करते हैं, स्पर्श द्वारा, सुवास लेने द्वारा वह फल खानेयोग्य है या नहां इसका निश्चय होता है। मुख उसको खाता है चबाकर पेटमें भेजता है, वहां पेट उसको पचाकर रुधिर बनाता है और सब शरीरभर उसको घुमाया जाता है। इससे सब शरीर हृष्ट पुष्ट, नीरोग और दीर्घायु होता है। देखिये शरीरमें प्रत्येक अग और अवयवका कार्य सब शरीरकी भलाईके लिये होता रहता है, इसलिये शरीरमे समत्वका आनन्द होता है।

जिस समय यह सहकार्य बद होता है, उसी समय व्याधि उत्पन्न होती है। देखिये जिस समय पेटमें गया अन्न पेटही अपने लिये रखने लगा, तो उसको अजीर्ण कहते हैं। यह अजीर्ण सब रोगोंका जनक है। यदि रुधिर किसी स्थानपर रुक गया तो वहां सूजन होती है, इससे भी नाना रोग उत्पन्न होते हैं। इस तरह पाठक जान सकते हैं कि अग और अवयवके स्वार्थसे नाश और सहकारितामें शाश्वत आनन्द है। इस शरीर व्यवस्थापर जितना विचार किया जायगा उतना राष्ट्र-व्यवस्थाका बोध अच्छी तरह प्राप्त हो सकता है।

आधिदैवतमें उपकारका भाव

आधिदैवत व्यवस्था विश्वमें देखी जाती है। यहां देखिये कि सूर्य प्रकाशता है वह अपने स्वार्थके लिये नहीं, परन्तु जगत्‌के मार्गदर्शनके लिये प्रकाशता है। वायु बहता है वह अपने लाभके लिये नहीं, परन्तु विश्वको जीवन देनेके लिये बह रहा है। मेघवृष्टि करते हैं अपने लिये नहीं, परन्तु वृक्षवनस्पति, पशुपक्षी आदिको नवजीवन प्राप्त हो इसके लिये वे वृष्टि कर रहे हैं। मेघ परिपूर्ण रीतिसे जगदुपकार करता है, अपना सर्वस्व वह जगदुपकारमें अर्पण करता है। अग्नि जलती है अपने लिये नहीं, पर अपना सर्वस्व समर्पण करके प्रकाश, उष्णता और मार्गदर्शन वह करती रहती है। वृक्ष सूर्यका ताप सहन करते हैं और अपने पास आनेवालोंको शीतल छाया देते हैं। भूमि सबको आधार देती है, जल सबकी तृषा शान्त करता है, चन्द्रमा

शीतल चन्द्रिका देकर सबको प्रसन्न करता है, आकाश सबको भ्रमण करनेके लिये पर्याप्त क्षेत्र देता है, वृक्ष वनस्पतियां कंद मूल, फूल, फल, पत्र तथा धान्य देकर सबका पोषण करती हैं। इस तरह देखा जाय तो ये सब देवगण विश्वकी सहायता कर रहे हैं इसी सहकार्यमें आनन्द है।

इसी तरहका सहकार्य अधिभूतमें अर्थात् मानवसमाजमें अथवा प्राणीसमूहमें होनेसे सर्वत्र आनदी आनंद होगा। अन्यथा युद्ध अपरिहार्य है जो सबका संहार करेगा। राष्ट्र-शासनके तत्त्व इस तरह अध्यात्म और अधिदैवतके मननसे सिद्ध हो जाते हैं। जो देखकर मानवोंको स्वीकार करने चाहिये और आचारमें लाने चाहिये।

राष्ट्रीसूक्तका आधिभौतिक विवरण

'भूत' का अर्थ यहां प्राणी अथवा विशेषतः मनुष्य-प्राणी है। मानवसमाज या राष्ट्रका विचार वैदिक परिभाषामें विशेषतः आधिभौतिक विचार कहलाता है। इस सूक्तका नाम 'राष्ट्री-सूक्त' है। 'राष्ट्री वाक्' का अर्थ 'राष्ट्रभाषा' है।

'अम्भृणी राष्ट्री वाक्' का अर्थ 'संपूर्ण रीतिसे भरण पोषण करनेवाली राष्ट्र-भाषा' है। राष्ट्रीय भाषा ऐसी हो कि जो राष्ट्रीय जनताका उत्तम प्रकारसे भरण-पोषण करे। यह तो अत्यंत आवश्यक है। यहां 'वाक्' का अर्थ 'भाषा, विद्या, घोषणा, धारण पोषण करनेवाली आयोजना' ऐसा है। 'राष्ट्रीय वृत्ति, राष्ट्रीय शासनप्रणाली, राष्ट्रीय भावना, राष्ट्रीय कल्पना,' आदि सब भाव 'आम्भृणी राष्ट्री वाक्' के द्वारा प्रकट होते हैं।

'भाषा' या 'वाक्' मानवोंकी ही होती है, क्योंकि किसी अन्य प्राणीके पास भाषा कहनेयोग्य कोई वाणीकी परंपरा नहीं है। परन्तु मनुष्यके पास वैदिक कालसे इस समयतक एक अखण्ड परंपराकी भाषा है। वैदिक समयको तो कई दो अब्ज वर्ष हुए ऐसा कहते हैं और कई १०।२० हजार वर्षोंका हिसाब लगाते हैं। इतनी प्राचीन परंपरा मनुष्यके पास है। भाषाही मनुष्यकी विशेषता है।

राष्ट्री शक्तिकी महत्ता

राष्ट्र सब मानवोंका होता है। राष्ट्रमें पशु-पक्षी-वृक्ष-वनस्पति-कृमि-कीट-पाषाण आदि होते हैं, परन्तु यह राष्ट्र पशुपक्षियोंका अथवा कृमियोंका है ऐसा कोई नहीं कहता। क्योंकि उनमें राष्ट्रकी परंपरासे चलनेवाली सभ्यता रह नहीं सकती। गाय बैल भैंस घोडे आदि पशु प्रत्येक राष्ट्रमें रहते हैं, पर कोई राष्ट्र उनका नहीं कहलाता। हिंदु तो गायको परमात्म-शक्तिका प्रतीक मानते, अपनी माता समझते, गोरक्षाके लिये कटमरनेको तैयार होते, तथापि भारतराष्ट्र गौओंका राष्ट्र नहीं कहलाता, वह तो हिंदुओंकाही राष्ट्र कहलाता है। क्योंकि भारतीय हिंदुओंकी यह जन्मभूमि, मातृभूमि, पितृभूमि, पुण्यभूमि, धर्मभूमि, कर्मभूमि अथवा सर्वस्व-भूमि है। इसलिये वह उनका राष्ट्र है। भोग्यभूमि माननेवालोंका यह राष्ट्र नहीं हो सकता। जन्मभूमि तो पशुपक्षियोंकी भी होगी, राष्ट्रपर पुण्यभूमि और धर्मभूमि तथा कर्मभूमि किनकी है, यह देखना चाहिये। जिनकी वह होगी, उनका वह राष्ट्र होगा। और सत्कर्म करनेके लिये वह राष्ट्र उनको प्रेरणा देगा।

(अहं राष्ट्री। मं० ३) मैं राष्ट्री शक्ति हूं। राष्ट्रमें जो अनेक प्रकारकी शक्तियाँ हैं उनका केन्द्र मैं हूं। भाषा, विद्या, धन, शिल्प, ऐश्वर्य आदि अनेक शक्तिकेन्द्र राष्ट्रमें होते हैं, मानवके बुद्धिवैभवसे वे प्रकाशित होते हैं, उन सब शक्तिकेन्द्रोंका समावेश 'राष्ट्र' में होता है। राष्ट्र जिसका होता है वह केन्द्रभूत शक्ति सब राष्ट्रको अपने अन्दर धारण करनेवाली राष्ट्री कहलाती है। (राजते सा राष्ट्री) जो चमकती है, जो प्रकाशती है, जिसका तेज चारों दिशाओंमें फैलता है, जिस केन्द्रपर सब जगत्के आंख लगे होते हैं, वह राष्ट्री शक्ति है। राष्ट्रसे जगत्को प्रकाश मिलना चाहिये, मार्गदर्शन होना चाहिये, योग्य अथवा अयोग्य पथप्रदर्शन होना चाहिये, सब जगत्को ऐसा प्रतीत होना चाहिये कि यह राष्ट्र हमारा नेता होनेयोग्य है, यह हमारा अगुआ होनेयोग्य है, इसके पीछे पीछे जानेसे हमारा कल्याण होगा। जिस राष्ट्रके विषयमें ऐसी भावना होती है, वहां राष्ट्रशक्ति जाग्रत और जीवित है ऐसा समझना चाहिये। जहां ऐसी शक्ति होगी वहांकी मानवजाति ही बलशालिनी होगी।

मानवका विकास

मनुष्यका कार्यक्षेत्र बढता जाता है। कई मनुष्य अपने लियेही जीवित रहते हैं, वे पशु सदृश होते हैं। फिर कई अपने कुटुंब या परिवारतक का ही हित देखते हैं, कुटुंबियोंके हितके लिये वे रात दिन यत्नवान् होते हैं। इसके नंतर कई ऐसे होते हैं कि जो अपनी जातिके लिये आत्म-समर्पण करते हैं, जातिके हितके लिये लडते मरते प्रयत्न करते हैं। इससे भी आगे चलकर कई अपने राष्ट्रके लिये सब कुच्छ करते हैं। राष्ट्रहितही शिरोधार्य मानते हैं। इसके भी परे जाकर 'संपूर्ण वसुधाको अपना परिवार (वसुधैव कुटुंबकं) माननेवाले होते हैं। यद्यपि ऐसे विरल होते हैं, तथापि भारतीयोंने यह अन्तिम ध्येयतक अपनी प्रगति की थी। पर इस समयतक 'राष्ट्र' तक प्रगति जिनकी हुई है ऐसे लोग बहुत हैं। इनकी मानस शक्ति राष्ट्रतक विकासको प्राप्त हुई होती है। राष्ट्रसे अधिक विकास इनका नहीं होता, तथापि राष्ट्रसे न्यून मर्यादातक इनका आत्मा समाधान नहीं मान सकता।

'राष्ट्र' नाम (ईश्वरी) शासन-शक्तिका है। ईश्वर नामोंमें 'राष्ट्री' पदकी गणना है। राष्ट्रहित करनेके लिये जो अपना सर्वस्व अर्पण करते हैं, इससे कम क्षेत्रमें जिनका समाधान नहीं होता, अर्थात् जिनकी मानस-शक्तिकी मर्यादा राष्ट्रतक व्याप रही है वे 'राष्ट्री' हैं। उनका संघ भी 'राष्ट्री' कहलायेगा। इनके व्यवहारसे पता चलता है कि इनका 'स्व' राष्ट्रकी मर्यादातक विस्तृत हो चुका है। राष्ट्रकी जो ईश्वरी शक्ति है, राष्ट्रकी जो शासक शक्ति है, उस शक्तिके वे अंश हैं, उस शक्तिके साथ वे एक जीव हो चुके हैं। यदि वे जीयेंगे तो राष्ट्र हितके लिये जीयेंगे और यदि उनको मरना होगा, तो वह राष्ट्रके लियेही मरेंगे, ऐसे लोगोंमें यह 'राष्ट्री शक्ति' रहती है। यह शक्ति कहती है कि (अहं राष्ट्री) मैं राष्ट्रीय शक्ति हूं। राष्ट्रकी सब शक्ति मुझमें केन्द्रित हुई है।

यज्ञियानां प्रथमा। (मं० ३) सत्कार करनेयोग्य जो, जो होंगे उनमें मैं पहिली अर्थात् प्रथम सत्कार करनेयोग्य हूं। पूजनीयोंमें मैं प्रथम पूजाके योग्य हूं। सेवा करनेयोग्य जो हैं उनमें मैं प्रथम सेवाके योग्य हूं। सेवाके लिये राष्ट्रही प्रथम सेवाके लिये योग्य है। राष्ट्रस्थित मानवोंको उचित है कि वे सबके सब अपने राष्ट्रकी सेवा करनेके लिये कटिबद्ध रहें। राष्ट्रसेवा करनाही उनका मुख्य कर्तव्य है। जितना मानव-समाज राष्ट्रमें रहता है उनके हितके लिये यत्न करना उस राष्ट्रके सब मानवोंका कर्तव्यही है।

वैदिक धर्मके तत्वज्ञानके अनुसार संपूर्ण जगत् एकही अविभक्त अटूट पुरुष है—

पुरुष एव इदं सर्वं यद् भूतं यत् च भव्यम्।
(ऋ० १।९०।२)

'जो भूतकालमें था, जो वर्तमानकालमें है और जो भविष्यकालमें होगा, वह सब मिलकर एकही अखण्ड अद्वितीय अकेला एकही पुरुष है।' अर्थात् सब विश्व एकही अविभक्त देह है। इसलिये 'एकराष्ट्र' की सर्वथा पृथक् सत्ता नहीं हो सकती। अतः एक राष्ट्रके लोग अपने राष्ट्रको अन्य राष्ट्रोंसे सर्वथा पृथक् मान कर और अन्योंका नाश करके उनके नाशसे अपना उद्धार करनेका प्रयत्न करेंगे, तो वह सर्वथा अनुचित और अवैदिक मार्ग होगा। इसलिये सब राष्ट्रसेवकोंके लिये उचित है कि वे अपने राष्ट्रको विश्वका एक अटूट अखण्डित भाग मानें और विश्वके अखण्डित भागकी सेवा अपनेको करनी है ऐसा मानें और अविरोधसे सेवा करनेका यत्न करें यही धर्म है। तब उनसे ऐसी राष्ट्र-सेवा होगी कि जिससे विश्व-शान्ति सुस्थिर होगी। परंतु जो लोग अपने राष्ट्रको अन्य जगत्से पृथक् मानते हैं और जगद्विरोधसे अपने राष्ट्रकी सेवा करते हैं वे अन्यभावसे, द्वन्द्वभावसे, विरोधी भावसे सेवा करनेके कारण जगत्में अशान्ति फैलाते हैं, और घोर युद्धका प्रवर्तन करते हैं। यही अधर्म है। इसीसे मनुष्योंको बचना योग्य है।

प्रथमा यज्ञिया राष्ट्री (मं० ३) यह राष्ट्रशक्ति सबसे प्रथम यजनीय है, अर्थात् पूजनीय, सत्कार करनेयोग्य अथवा सेवाके योग्य है। सब राष्ट्रके लोगोंको अनन्य भावसे इस राष्ट्रकी, अर्थात् राष्ट्रके सब लोगोंकी सेवा करना योग्य है। यहां अनन्यभावसे सेवा करना मुख्य और धर्म्य कहा है। अन्यभावसे सेवा करना सर्वदा

अयोग्य है। दूसरे लोग सर्वथा पृथक् हैं, उनका विरोध करके अपने राष्ट्रकी या अपनी जातिकी सेवा करनेसे जगत्‌में युद्ध होकर सर्वत्र अशान्ति फैलती है। इस कारण अनन्य भावसे सेवा करनाही मनुष्योंका धर्म है। सब विश्व एकही पुरुषका अखण्ड देह है, उस देहका एक अवयव मेरा राष्ट्र है, इसलिये मेरा राष्ट्र विश्वसे अभिन्न अथवा अनन्य है। इस कारण अन्य राष्ट्रों और जातियोंके अविरोधसे मैं अपने राष्ट्रकी सेवा करूंगा, यह शुद्ध सत्य मन्त्र मनमें धारण करके लोग अपने राष्ट्रकी सेवा करें। इससे विश्वमें शान्ति स्थापन होगी। और यही सब मानवजातिके हितके लिये अत्यावश्यक है।

प्रथमा यज्ञिया राष्ट्री चिकितुषी। (मं० ३) सबसे प्रथम सत्कार करनेयोग्य यह राष्ट्र भावना ज्ञान बढानेवाली है। सत्य ज्ञान देनेवाली है। ज्ञानवती है, विचारवती है। सामूहिक रूपसे राष्ट्रकी जनता विचारवती होती है और जब वह संगठित होकर अपना कार्य करने लगती है, तब वह अधिकही विचार करती है। अर्थात् असंघटित अवस्थामें व्यक्तिशः प्रत्येक व्यक्ति जितना विचार करती है, उससे कई गुणा संघटित जनसंमर्द अधिक विचार करता है, उसका अनुभव भी बडा होता है और उसकी शक्ति भी बडी होती है। ज्ञान प्राप्त करना और उसकी वृद्धि करना यह मानव करताही रहता है, व्यक्तिशः मनुष्यमें जन्मतः सहजसिद्ध ज्ञानशक्ति रहती है। अतः जिस समय सामुदायिक दायित्व उस पर आता है उस समय वह मिलकर विचार करने लगता है, और मिलकर विचार करनेसे उसका ज्ञान विशेष बढता है। इसलिये मनुष्यके वैयक्तिक रहनेपर उसके ज्ञानकी जितनी वृद्धि हो सकती है, उससे कई गुणा अधिक वही मनुष्य सुसंघटित सामाजिक अथवा राष्ट्रीय जीवन व्यतीत करने लग जाय तो उसमें सांघिक शक्ति बढती है और साथ साथ सांघिक शक्तिकी वृद्धिके साथ साथ उसके ज्ञानकी भी वृद्धि होती है।

(राष्ट्री वसूनां संगमनी। मं० ३) यह सामुदायिक शक्ति जिस तरह ज्ञानवृद्धि करनेवाली है, उसी तरह (वसूनां संगमनी) धनोंका संग्रह करनेवाली भी है। ज्ञान जहां होता है वहां सामुदायिक कल्याणके लिये धनोंका संग्रह अत्यंत आवश्यकही होता है। अपनी सुरक्षाके साधन ज्ञान (ब्रह्म), वीर्य (क्षत्र), धन (वसु) ये त्रिविध हैं। परंतु इस मन्त्रमें (चिकितुषी) ज्ञानी और (वसूनां संगमनी) धनोंका संग्रह करनेवाली ये दोही गुण कहे हैं। तीसरा गुण ज्ञान और धनोंकी सुरक्षाके लिये अत्यंत आवश्यक है वह क्षात्र गुण पांचवें और छठे मंत्रमें विस्तारसे कहा है। ज्ञान और धनकी अपेक्षा शूरत्वके गुणकी महिमा विशेषही वर्णन की है। इसका कारण स्पष्टही है कि यदि क्षत्र गुण न रहा तो प्राप्त हुआ धन भी नहीं रहेगा, और अधिक धन बढना तो कठिनही है। इसी तरह ज्ञानकी वृद्धि भी होना शूरवीरोंकी सहकारिताके विना अशक्य है। इसलिये (चिकितुषी, वसूनां संगमनी) ज्ञानमयी और धन संग्रहकर्त्री यह राष्ट्रशक्ति है ऐसा संकेत मात्रसे यहां कहा और आगे विस्तारसे ज्ञान और धनकी सुरक्षाके सामर्थ्यका वर्णन करेंगे। पाठक यहां यह वर्णन ध्यानपूर्वक देखें। स्वसंरक्षण करनेके सामर्थ्यके विना ज्ञान और धनका कोई विशेष महत्त्व नहीं है क्योंकि शक्तिके विना धनको अपने पास किस तरह रखा जा सकता है?

(मा देवाः पुरुत्रा व्यदधुः। मं० ३) मुझे दिव्य विबुधोंने अनेक केन्द्रोंमें कारण किया है। राष्ट्रशक्ति— राष्ट्रीदेवी (चिकितुषी) ज्ञान और (वसूनां संगमनी) धन बढानेवाली है यह अभी कहा है। इस राष्ट्रशक्तिको दिव्य विबुध-ज्ञानीजन अनेक केन्द्रोंमें अनेक प्रकारसे धारण करते हैं। ज्ञानरूपी राष्ट्रीशक्ति शिक्षकों, उपदेशकों, लेखकों, प्रवचनकर्ताओं, शास्त्रीपंडितों, संपादकों, कवियों आदि अनेक केन्द्रोंमें रहती है। इस राष्ट्रीशक्ति देवीका धारण ज्ञानी जन अनेक केन्द्रोंमें (पुरु-त्रा) करते हैं। शिक्षकोंका एक केन्द्र, उपदेशकोंका दूसरा केन्द्र, साहित्यिकोंका तीसरा केन्द्र, संपादकोंका चौथा केन्द्र है, कवियोंका पांचवां केन्द्र है, पण्डितोंका छठा केन्द्र है, इस तरह ज्ञानका विकास अनेक केन्द्रोंमें राष्ट्रमें करनाही चाहिये। (पुरु-त्रा चिकितुषी व्यदधुः) अनेक स्थानों और अनेक केन्द्रोंमें इस ज्ञानशक्तिको राष्ट्रके विबुध धारण करते और वहां उसका विकास करते हैं। यहां यह ध्यानमें सुस्थिर रखना चाहिये कि राष्ट्रकी उत्तमोत्तम ज्ञानकी (पुरुत्रा)

अनेक केन्द्रोंमें धारणा होना अत्यंत आवश्यक है। जितने ज्ञानके विविध केन्द्र होंगे और जितनी उनकी गहराई होगी, उतनी राष्ट्रकी शक्ति अधिक प्रभावी होगी। ज्ञान-सेही मानवी समाजका जीवन दिव्य होना संभव है।

(वसूनां संगमनीं राष्ट्रीं मां देवाः पुरुत्रा व्यदधुः) धनोंका संग्रह करनेवाली मुझ राष्ट्रशक्तिको देवोंने अनेक केन्द्रोंमें धारण किया है। प्रथमतः अनेक प्रकारका धन है, ज्ञानधन है, सुवर्णरत्नादि धन है, गोधन, पशुधन है, भूमि खेतीवाडी आदि धन है, स्त्री-पुत्र-गृह इष्ट-मित्र आदि बहुत धन हैं। नाना प्रकारके ऐश्वर्य हैं वे सब धन हैं। जो पैसारूपी धन है वह भी पूंजीपतियों, व्यापारियों, शिल्पियों आदि अनेक केन्द्रोंमें रहता है। वह अनेक केन्द्रोंमें घूमता रहना चाहिये। किसी एकही केंद्रमें धन रहने लगा और उसकी अपेक्षासे दूसरे केंद्र वंचित रहे तो वे अन्य केन्द्र क्षीण होते जायँगे। उदाहरणार्थ देखिये राष्ट्रके सेनापर ही धन अधिक खर्च होने लगा और विद्या तथा शिल्पपर न्यून होने लगा, तो राष्ट्रकी क्षात्रशक्ति ही बढेगी और अन्य केन्द्र क्षीण होते जायँगे। इससे राष्ट्रशक्ति क्षीण होते होते एक समय विनष्ट होगी और इस विषम वृद्धिसे राष्ट्रका नाश ही होगा। इसलिये (देवाः राष्ट्रीं पुरुत्रा व्यदधुः) विबुधोंने इस राष्ट्रशक्तिको अनेक केन्द्रोंमें विशेष रीतिसे धारण किया यह कथन अत्यंत मनन करके इसका आशय समझने योग्य है। यह अत्यंत महत्त्वका प्रतिपादन है जिसकी ओर प्रत्येक विचारकका ध्यान जाना आवश्यक है।

एकत्र धारण और पुरुत्र विधारण

शरीरमें देखिये ' रक्त ' है वही शरीरका धन है। यह रक्तरूपी धन शरीरके सब छोटे मोटे केन्द्रोंमें सदा भ्रमण करता रहता है, किसी एक केन्द्रमें नहीं रहता। जबतक यह भ्रमण करता है, तबतक ही शरीर नीरोग रहता है। पर मान लो कि यह रक्त पांवमेंही उतरकर वहीं रहने लग जाय, और उसका शरीरभर होनेवाला दौरा कम हो जाय, तो सब लोग कहेंगे कि पांव सूज गये हैं, पांवमें रोग हुआ है, सब शरीरका आरोग्य बिगडा है। जबतक यह शरीरका रुधिररूपी धन शरीरके सब केन्द्रोंमें घूमता था, तब सब कहते थे कि इसका शरीर-स्वास्थ्य अच्छा है। पर जब वही रक्त सब केन्द्रोंमें न जाता हुआ किसी एकही केंद्रमें रहने लगा, तब वहां रोगकी उत्पत्ति होती है, सूजन आती है और अंतमें सब शरीर नष्ट होता है। इससे पाठकोंके ध्यानमें यह बात आ जायगी कि (पुरुत्रा व्यदधुः) अनेक केंद्रोंमें धनका धारण होना कितना आवश्यक है। ' पुरुत्र-विधारण ' और ' एकत्र-धारण ' ये दो विरुद्ध विधारण हैं। विकेंद्रीकरण और केंद्रीकरण ये इसके पर्याय हैं। ज्ञानशक्ति तथा धनशक्ति इसी तरह आगे कही वीर-शक्ति भी ' पुरुत्र विधारित ' होनी चाहिये। राष्ट्रभरमें अनेक केंद्रोंमें वह रहनी चाहिये। किसी एकही केंद्रमें वह रहनी नहीं चाहिये।

ज्ञान, शौर्य और धन यदि किसी एकही केंद्रमें रहने लगा और सर्वत्र भ्रमण न करता रहा, तो राष्ट्रका आरोग्य ठीक नहीं रहेगा। शरीरका एक अवयव सूजनेसे जो कठिन प्रसंग शरीरपर आ जाता है वही कठिन प्रसंग ये शक्तियां (पुरुत्रा न व्यदधुः) अनेक केंद्रोंमें विभाजित न रहीं, तो राष्ट्रपर आ जाता है। ये शक्तियां एकही केंद्रमें रहने लगीं, तो अन्य केंद्र निर्बल बनेंगे और वह एक केंद्र भारी होगा। इससे राष्ट्रका समत्व विनष्ट हो जायगा। इसलिये ' पुरुत्र-विधारण ' स्वास्थ्यके लिये अत्यंत आवश्यक है।

पूंजीपति और कर्मचारियोंकी समस्या धनका पूंजीपति-योंके पास ' एकत्र धारण ' होनेसे ही उत्पन्न हुई है। यदि यही धन 'पुरुत्र विधारित ' होता तो यह प्रश्नही उत्पन्न न होता। धन, ज्ञान और वीर्यका पुरुत्र-विधारण, अनेक केंद्रोंमें प्रवर्तन, करनेके लियेही वैदिक परंपरामें ' यज्ञ ' की संस्था निर्माण हुई। यज्ञसे शक्तिका विकेंद्रीकरण, अथवा पुरुत्र-विधारण होता है।

' पुरुत्र-विधारण ' यह वेदका एक महासिद्धांत है। यह संपूर्ण जगत्में स्थायी शांति स्थापन करनेके लिये अत्यंत आवश्यक है। यह सिद्धांत अत्यन्त मननीय है।

(भूरि-स्थात्रां राष्ट्रीं देवाः पुरुधा व्यदधुः) अनेक स्थानोंमें रहनेवाली राष्ट्रशक्तिको देव अनेक केंद्रोंमें धारण करते हैं। ईश्वरीय नियमानुसार सब शक्तियां चारों ओर फैली रहती हैं। आजकल शरीर देखिये कैसे स्वास्थ्य

बालकके शरीरके सब अवयव सम विकसित रहते हैं, कोई अवयव विषम नहीं होता। राष्ट्रमें भी (भूरि-स्था त्रा राष्ट्री भूरि-स्था) अनेक स्थानोंमें रहनेवाली और वहांकी (त्रा) सुरक्षा करनेवाली शक्ति होती है । प्रारंभमें राष्ट्रशक्ति पूर्णतासे बिखरी हुई रहती है। एक एक व्यक्तिमें फैली रहती है। इस शक्तिको ग्रामसभा, प्रान्तसमिति, मंत्री-मण्डल, मध्यवर्ती राजसत्ता आदि केंद्रोंमें केंद्रित किया जाता है। इस केंद्रीकरणसे यह शक्ति प्रचण्ड रूपमें प्रकट होने लगती है और किसी किसी समय बडी विघातक भी होती है । इसलिये वेद लोगोंको सवध करता है और कहता है कि (पुरु-त्रा) अनेक केंद्रोंमें विभक्त करके इसका धारण करो। यह राष्ट्रशक्ति प्रारंभमें (भूरि-स्था-त्रा)अनेक स्थानोंमें रहती थी और वहांका परित्राण करती थी, केवल वह उस समय असंघटित थी। अब संघटित होनेपर भी वह (पुरु त्रा) अनेक केंद्रोंमें घूमती रहनी चाहिये और उन अनेक केंद्रोंमें वह विकसित होकर रहनी चाहिये। तब राष्ट्रका स्वास्थ्य ठीक रहेगा।

परमेश्वरीय नियमानुसार राष्ट्रकी शक्ति प्रारंभमें (भूरि-स्था-त्रा) अनेक केंद्रोंमें बिखरी विकेंद्रित ही थी। वह केंद्रित होकर एकके अधीन होनेसे जनताको कष्ट देने लगी। इसलिये यह शक्ति विकेंद्रित करनी चाहिये। अतः (पुरु-त्रा) अनेक केंद्रोंमें उसको फैलाना चाहिये। यह वेदकी सूचना निःसंदेह मननपूर्वक आचारमें लाने योग्य है।

अनेकोंमें आवेश उत्पन्न करो

(भूरि-आ-वेशयन्तीं राष्ट्रीं पुरुत्रा व्यदधुः) अनेकोंमें आवेश उत्पन्न करनेवाली यह राष्ट्रशक्ति है, अतः इसको अनेक केंद्रोंमें धारण करना चाहिये. इसका कारण यह है कि यह शक्ति उन अनेकानेक केंद्रोंमें रहे, वहां बढे और वहाके कर्मचारियों और कार्यकर्ताओंमें आवेश अथवा स्फुरण उत्पन्न करे और उनके द्वारा अद्भुत कार्योंकी रचना करे। इस शक्तिके द्वारा बडेबडे जनपद हितकारी कार्य होते रहें। यह शक्ति किसी स्थानपर सुप्त न रहे, परन्तु यह जाग्रत होकर सबका उत्साह बढावे, अनेकोंमें विलक्षण स्फुरण उत्पन्न करे और मनुष्योंको कार्यप्रवण करे। आवेश-का अर्थ अत्यंत उत्साह उत्पन्न होना है। एक राष्ट्रशक्तिके ज्ञान, शौर्यवीर्य, धन और शिल्प ये चार स्वरूप हैं। ये चारों एकही केंद्रमें केंद्रित नहीं रहने चाहिये, परंतु राष्ट्र-भरमें अनेक केंद्रोंमें प्रकट होकर वहां अनेकोंमें विलक्षण स्फुरण उत्पन्न करनेयोग्य प्रभावी होने चाहिये।

सब जानते हैं कि प्रत्येक मानवमें अनेक शक्तियाँ सुप्त रहती हैं। उनको जाग्रत करना चाहिये और राष्ट्रीय उन्नतिकी आकांक्षासे उनको विलक्षण उत्साहके साथ राष्ट्रभरमें अनेक केंद्रोंमें उनको प्रभावित करना चाहिये। (पुरुत्रा भूरि—आ-वेशयन्ती) अनेक केंद्रोंमें रहकर अनेकोंमें विलक्षण स्फुरण उत्पन्न करनेवाली यह राष्ट्री-शक्ति होनी चाहिये। अर्थात् ज्ञानसे, वीरतासे, धनसे और कुशलतासे जनताके अनेक केंद्रोंमें उत्तम आवेशमय स्फुरण होना चाहिये। इससे स्पष्ट होता है कि यहां एक परिपूर्ण कार्यक्रम वेदने वैदिक धर्मानुयायियोंके सामने रखा है। वैदिक धर्मी किसी न किसी राष्ट्रमें रहेंगेही। वे अपने राष्ट्रमें ज्ञान, शौर्य, अर्थ और शिल्प विषयक ऐसी आयोजनाएं करें कि जिनसे अनेक लोक उत्साहित हो जांय और वे जनपदहितके अनेकानेक कार्य करें और जनताको सुखी, संपन्न, आनंदपूर्ण, नीरोग, हृष्टपुष्ट, दीर्घजीवी, यशस्वी, पराक्रमी, परमार्थसाधक और राष्ट्रपुरुषकी सेवा विश्वरूपसे अनन्य होकर करनेवाले बन जांय। वे उत्साहपूर्ण हों और दैवी भावोंसे युक्त हों। (मं० ३)

राष्ट्रशक्तिका अपमान करनेवालोंका नाश

ऊपर तृतीय मन्त्रमें राष्ट्रशक्तिका संबंध ज्ञान-शौर्य-धन तथा शिल्प वृद्धिके साथ कैसा है यह बताया और एक परिपूर्ण कार्यक्रम पाठकोंके सामने लाया है । अब इस चतुर्थ मन्त्रके उत्तरार्धमें बताते हैं कि इस राष्ट्रशक्तिका अपमान करनेवालोंका नाश होता है—

(ये) मां राष्ट्रीं अमन्तवः, ते उप क्षियन्ति ।
(हे) श्रुत ! ते श्रद्धिवं वदामि । श्रुधि ॥

(मं० ४)

" जो इस राष्ट्रशक्तिका अपमान करते हैं, वे विनष्ट होते हैं हे बहुश्रुत ज्ञानी पुरुष ! इस श्रद्धा रखनेयोग्य ज्ञान-विज्ञानको मैं तेरे हितके लिये कहती हूं । इसको तू सुन । " और इसको तू स्मरण रख तथा तू इस राष्ट्र-शक्तिका कभी अपमान न कर । तथा इसका आदर करता

हुआ इसकी सेवा कर और संपूर्ण राष्ट्रकी उन्नतिमें अपनी उन्नति है यह जानकर अपने राष्ट्रके साथ रह कर अपनी उन्नति कर। पर कभी राष्ट्रकी शत्रुता न कर, क्योंकि ऐसा करनेसे सर्वस्व-नाशकी संभावना है।

राष्ट्रीयता एक पवित्रतामयी उपास्य देवता है। सब राष्ट्रके सज्जन राष्ट्रीयताका परिपोष करें, उसका संदेश हरएक मनुष्य तक पहुंचा देवें और सब जनोंमें एक प्रकारका राष्ट्रीय स्फुरण उत्पन्न करें। अभेद्य संघटन बनावें।

सांघिक अमरत्व

वेदमें निरंतर संघ उपासना कही है। इसका कारण यह है कि वेदके तत्वज्ञानके अनुसार व्यक्तिकी मुक्ति नहीं होती, परंतु संघकीही मुक्ति होती है। इसलिये वेदभरमें संघकी सेवाकोही मुक्तिका अनुष्ठान माना है। सबसे प्रथम यहां यह समझनेकी आवश्यकता है कि मुक्ति व्यक्तिकी नहीं होती है पर समाजकीही होती है।

देखिये व्यक्ति मरती है, संघही अमर रहता है। हिंदु व्यक्ति मरती है पर हिंदुजाति अमर है, अतः यह हजारों वर्षोंसे है और भविष्यमें रहेगी।

जिस ग्राममें मलिनता है और नाना रोगोंका वहां कारण उपद्रव होता है, वहां एक घरमें कितनी भी स्वच्छता की तो भी उसको उतना लाभ नहीं होता क्योंकि समुदाय मलिन है। एकका घर स्वच्छ रहनेपर भी आजूबाजूके मच्छर और पिसू तथा अन्यान्य रोगबीज उस घरमें आयेंगे और उपद्रव देंगेही। इसलिये सब ग्रामकी हि मलिनतासे मुक्ति होनी चाहिये। इसीका नाम संघ-मुक्ति है। वेद इसीलिये संघनिष्ठाका उपदेश करता है। वैदिक धर्म संघधर्म है। व्यक्तिका उत्कर्ष इसलिये करना है कि वह व्यक्ति संघकी सेवाके लिये समर्थ बने। क्योंकि संघसेवाही व्यक्तिका मुख्य कर्तव्य है।

> अन्धं तमः प्रविशान्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
> ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्यां रताः ॥१२॥
> संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
> विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्यामृतमश्नुते ॥१४॥
> (वा० य० ४०; ईश उ०)

"जो केवल व्यक्तिकी उपासना करते है वे अन्धेरेमें जाते हैं, और जो केवल संघ-उपासना करते हैं वे उससे भी गहने अन्धेरेमें जाते हैं। व्यक्तिवाद और संघवाद ये दोनों साथ साथ रहनेसे बडे सहायक हो सकते हैं। साधक व्यक्तिवादसे दुःखको दूर करके संघभावसे अमरत्वकी प्राप्ति करते हैं।"

यहां स्पष्टतापूर्वक कहा है कि 'संभूत्या अमृतत्वं अश्नुते' संघभावसेही मुक्ति प्राप्त होती है। वैयक्तिक मुक्तिवाद यह जैन बौद्धोंका वाद है क्योंकि ये धर्मपंथ व्यक्ति-सत्तावादी हैं। वैदिक धर्म मूलतः 'सर्वं वै पुरुषः' *सब विश्वको एक पुरुष देह माननेवाला है। यह* आध्यात्मिक संघवाद अथवा साम्यवाद है।

व्यक्तिकी सेवा स्नान-पान-खान व्यायाम आदि द्वारा करके उस व्यक्तिको समाज-सेवाके लिये समर्थ बनाना है। ऐसी समर्थ व्यक्ति समाजकी सेवा करे और सब व्यक्तियाँ इस तरह समाजसेवा-तत्पर होंगी और वे सब स्वकर्मसे समाजरूपी नारायणकी सेवा करेंगी, तो वह सब समाजही प्रसन्न होगा, यही प्रसन्नताही मुक्त अवस्था है।

जिस तरह शरीरके किसी एक अवयवकी सुस्थिति नहीं रह सकती जबतक संपूर्ण अखण्ड शरीर स्वस्थ न हो, इसी तरह किसी एक व्यक्तिकी सुस्थिति नहीं हो सकती, जबतक संपूर्ण समाज स्वस्थ और सुप्रसन्न न हुआ होगा। यह वेदका तत्त्वज्ञान है। इसी कारण वेदमें 'राष्ट्री देवी' नामक राष्ट्रसंघ-देवीके इस सूक्तद्वारा बताया है कि यह संघ उपासनाही मनुष्यमात्रका मुख्य अनुष्ठान है। यही ईश्वर-सेवा है। यहां यह राष्ट्री 'परमेश्वरी' ही है जो राष्ट्ररूपसे दीख रही है।

राष्ट्रमें जो व्यवहार चल रहे हैं वे सबके सब इस राष्ट्री शक्तिके सहारेसे चल रहे हैं, यह दर्शानेके लिये चतुर्थ मन्त्रमें कहा है कि—

> यः अन्नं अत्ति, यः विपश्यति, यः प्राणिति,
> यः उक्तं शृणोति, सः मया राष्ट्रीदेव्या एव।
> (मं० ४)

"जो अनादि भोग भोगता है, जो देखता है, जो श्वासोच्छ्वास करता है, जो बोला हुआ सुनता है, यह सब सुख राष्ट्री देवीकी शक्तिके आश्रयसेही हो रहा है।"

विश्वमें जो हो रहा है वह ईश्वरीय शक्तिसे होता है, शरीरमें जो होता है वह जीवात्मा-शक्तिसे होता है, इसी तरह राष्ट्रमें जो होता है वह भी सामूहिक राष्ट्र शक्तिसेही होता है।

यदि राष्ट्रमें सुरक्षा न होगी तो कोई भी अन्न पकाकर खा नहीं सकेगा। कोई निश्चयपूर्वक जीवित भी नहीं रह सकता। कोई किसीका सुन भी नहीं सकता। ऐसी अन्दाधुंदी राष्ट्रमें होनेपर सभी जनता अस्वस्था होगी। इसलिये राष्ट्रशक्ति की अनुकूलतासेही सब लोग भोग भोगते सुखसे जीवित रहते, एक दूसरेका सुनते हैं, अर्थात् सब व्यवहार करते हैं। राष्ट्रमें अराजकता होनेपर राष्ट्रके कुछ भी कार्य ठीक तरह नहीं चलते। इसलिये राष्ट्रकी प्रगतिके लिये राष्ट्रशक्तिकी प्रसन्नता अवश्य रहनी चाहिये। क्योंकि जैसी व्यक्तिकी वैसीही समाज या जातिकी उन्नति राष्ट्रशक्तिसेही हो सकती है। राष्ट्रशक्ति प्रसन्न रही तो यह साधक और अप्रसन्न रही तो उन्नतिमें बाधक हो सकती है। इसलिये यह राष्ट्रकी शक्ति सदा प्रसन्न रहे ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। (मं० ४)

वीरका निर्माण

राष्ट्रकी शक्ति कैसे चमत्कार करती है देखिये—

यं कामये तं तं उग्रं कृणोमि,

तं ब्रह्माणं, तं ऋषिं, तं सुमेधाम्। (मं० ५)

राष्ट्रशक्ति स्वयं कहती है कि "जिससे मैं वीरताका कार्य लेना चाहती हूं। उसको मैं उग्र शूरवीर बनाती हूं। किसीको मैं ज्ञानी, ऋषि और उत्तम मेधावान् भी बनाती हूं।" राष्ट्रमें ऐसी परिस्थिति निर्माण होती है, कि जिससे राष्ट्रमें कई वीर पुरुष निर्माण होते हैं, किसी समय ज्ञानी, अतीन्द्रियार्थदर्शी और बडे बुद्धिमान भी निर्माण होते हैं। समय समय पर राष्ट्र-शक्ति ऐसे पुरुषोंको निर्माण करती है। भगवान् श्रीकृष्ण, श्री शंकराचार्य, गौतम-बुद्ध, श्री छत्रपति शिवाजी महाराज, राणा प्रतापसिंह, और झांसीकी रानी लक्ष्मीबाई ऐसे ज्ञानी और शूर निर्माण होनेमें राष्ट्र-शक्तिकी सहायता होती है। राष्ट्रशक्ति स्वयं कहती है—

देवेभिः उत मानुषेभिः जुष्टं इदं

स्वयं अहं एव वदामि। (मं० ५)

"देवों और मानवों द्वारा जिसका आदर हुआ है ऐसा यह (पूर्वोक्त वचन) मैं स्वयं कह रही हूं।" इसलिये हे सब लोगो! इसपर श्रद्धा रखो। और इस राष्ट्रीशक्तिको श्रेष्ठ मानकर उसकी सेवा अनन्य भावसे करो और उसे प्रसन्न रखो। हे मानवो! कभी तुम इस राष्ट्रीका अपमान न करो। इसका अपमान करनेसे तुम्हारा ही नाश होगा। स्मरण रखो।

पांचवे मन्त्रमें कहा है कि (अहं उग्रं वीरं कृणोमि) मैं राष्ट्रमें उग्र वीरका निर्माण करती हूं। वही भाव इस छठे मन्त्रमें अधिक स्पष्ट किया जा रहा है—

ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवै उ

अहं रुद्राय धनुः आ तनोमि। (मं० ६)

"ज्ञानके विरोधी घातक शत्रुका नाश करनेके लिये मैं राष्ट्रीशक्ति वीरभद्रके लिये धनुष्य सज्ज करके देती हूँ।" शूरवीरोंके शस्त्र राष्ट्रशक्तिही अतितीक्ष्ण बनाती है। विचार करनेवालोंके सामने यह सब अतिस्पष्ट हो सकता है। इसका भी अधिक स्पष्टीकरण देखिये—

अहं जनाय समदं कृणोमि;

अहं द्यावा-पृथिवी आ विवेश॥ (मं० ६)

"मैं राष्ट्रीशक्ति समय आनेपर जनताके हित करनेके लिये महासमर करती हूं। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगता है कि आकाशसे पृथिवीतक सबमें भयानक आवेशही उत्पन्न हुआ है।" ऐसा प्रलयकालीन झंझावात चलता है वैसा राष्ट्रके आवेशका जिस समय झंझावात शुरू होता है उस समय सर्वत्र महाविनाश होता है। ऐसे भयानक युद्ध इस राष्ट्रीशक्तिसे होते हैं।

ऐसे युद्धोंसे कुछ न कुछ लाभही जनताको होता है। भारतीय युद्धमें भगवद्गीताकी प्राप्ति हुई। इस तरह युद्धसे कुछ न कुछ नयी शासन व्यवस्था निर्माण होती है। (मं० ६)

शासकका निर्माण

जहां राष्ट्र होता है वहां शासककी आवश्यकता रहती है।

बिना शासकके राष्ट्रशासन योग्य रीतिसे नहीं चल सकता। इसलिये यह राष्ट्रशक्ति कहती है कि—

अहं राष्ट्री अस्य राष्ट्रस्य मूर्धन्
पितरं सुवे ॥ (मं० ७)

"मैं राष्ट्री शक्ति इस राष्ट्रके सिरपर राष्ट्रका शासन चलानेके लिये राष्ट्रपिताको निर्माण करके स्थापन करती हूं।" राष्ट्रशासकके निर्माणके लिये 'राज-सूय' यज्ञ करनेके लिये वेदमें कहा है। राष्ट्रके लोगोंकी एक महा-परिषद् होती है और वहां बडा यजन होता है। सभाओंमें बडे वक्तृत्व होते हैं और सर्व संमतिसे राष्ट्रशासककी निर्मिति होती है। राजाका सर्जन करनेके लिये ये महायज्ञ किये जाते थे और उनमें प्रजाकी अनुमतिसे चुना हुआ शासक राष्ट्रपर आता था। इस विषयमें वेदमें अन्यत्र कहा है—

(ऋषिः-ध्रुव आंगिरसः। देवता-राजा। छन्दः-अनुष्टुप्)

आ त्वाऽहार्षमन्तरेधि, ध्रुवस्तिष्ठ, अविचाचलिः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु, मा त्वत् राष्ट्रमधि-भ्रशत् ॥१॥
इहैवैधि, माऽप च्योष्ठाः, पर्वत इवाविचाचलिः।
इन्द्र इवेह ध्रुवास्तिष्ठ, राष्ट्रमु इव धारय ॥२॥
ध्रुवा द्यौः, ध्रुवा पृथिवी, ध्रुवासः पर्वता इमे।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद्, ध्रुवो राजा विशामयम् ॥४॥
(ऋ० १०।१७३)

(ऋषिः-अथर्वा। देवता-देवाः, २ पञ्च प्रदिशः)

आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि
प्राङ् विशां पतिरेकराट् त्वं वि राज।
सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तु
उपसद्यो नमस्यो भवेह ॥१॥
त्वां विशो वृणतां राज्याय
त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व।
ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥२॥ (अथर्व ३।४)

प्रजाजनोंका प्रतिनिधि राजासे कहता है—"हे राजन्! मैंने तुझे यहां लाया है, अन्दर चलो, स्थिर रहो, चंचलता छोड दो, सब प्रजाजन तुझेही राज्यशासकके स्थानपर रखनेकी इच्छा करें, तुझसे राष्ट्रका अधःपतन न हो (१) यहांही आओ, पीछे न हटो, पर्वतके समान अपने कर्तव्य पर सुस्थिर रहो, इन्द्रके समान स्थिर रहो, राष्ट्रका उद्धार करो। (२) द्यौः पृथिवी, ये पर्वत और यह सब विश्व स्थिर है, उसमें यह राजा भी स्थिर रहे। (३)"

यह अर्थ ऋग्वेद-सूक्तका है। अब अथर्ववेदके सूक्तका अर्थ देखो—

"हे राजन्! सुदैवसे तेरे पास यह राष्ट्र आगया है। अब तू अपने तेजस्विताके साथ प्रकाशित हो जाओ। सब प्रजाजनोंका उत्तम अद्वितीय पालन करनेवाला होकर यहाँ विराज। सब प्रजाजन तेरेपास आयें और अपने कष्टोंके विषयमें तेरी सहायता मांगे। तू सबको प्राप्त होने-योग्य आदरणीय बन कर रहो। (१) सब लोग राज्य-शासनके लिये तुझेही चाहें। सब दिशा उपदिशाओंमें रहनेवाले लोग तेरीही इच्छा करें। जनताकी सहानुभूतिसे तू राष्ट्रके मुख्य स्थानपर विराजता रह और वहांसे योग्य धनका विभाग हम सब प्रजाजनोंमें कर। (२)"

इस तरह राजाके अथवा शासकके निर्वाचनके विषयमें वेदमें अनेक स्थानपर कहा है। इसीका आशय इस राष्ट्री सूक्तमें—

अहं राष्ट्री अस्य राष्ट्रस्य मूर्धन् पितरं सुवे।
(मं० ७)

"मैं राष्ट्री देवी इस राष्ट्रके अध्यक्ष स्थानपर संरक्षक की नियुक्ति करती हूं।" इस मन्त्रभागमें कहा है। मानो पूर्वोक्त ऋग्वेद और अथर्व मन्त्रोंमें जो कहा है उस-का संक्षेपही इस मन्त्रभागमें है।

समुद्र

'मम योनिः समुद्रे' मेरी-राष्ट्री देवीकी-उत्पत्ति समुद्रमें है। यहां 'समुद्र' शब्द है। इसमें अर्थका थोडासा गूढ है, देखिये। (सं) एक होकर (उत्) उत्कर्षका साधन करनेके लिये जो (द्र, द्रा) हलचल की जाती है, उसका नाम 'समुद्र' (सं+उत्+द्रा) है। यह मानवोंका अगाध जनसंमर्द जब हलचल करने लगता है, तब वह समुद्रके समानही दीखता है। संसारमें समुद्र जैसा भयानक दिखाई देता है, वैसाही हलचल करनेवाला

जनसमर्द भी भयानकही होता है। इस समाजके समुद्रमें अर्थात् समाजके संघटित होकर अपने उत्कर्षके लिये चलाये हलचलमें राष्ट्री शक्तिकी उत्पत्ति है। ऐसे हलचलोंसेही नूतन शक्ति राष्ट्रमें उत्पन्न होती है। यह शक्ति (अप्सु अन्तः) यहाका 'आप्' शब्द मानवी जीवनका वाचक है। जलवाचक 'जीवन' शब्द है क्योंकि जलसेही प्राणियोंमें जीवन रहता है। जनताके जीवनमें यह राष्ट्री शक्ति रहती है। जनताका जैसा जीवन होगा, वैसा उसमें राष्ट्रशक्तिका आविर्भाव होगा। इसलिये आवश्यक है कि मानवोंके जीवन शुद्ध पवित्र, स्वच्छ रहें, अपवित्र न हों, जिससे अच्छी राष्ट्री शक्ति प्रकट हो सके। हीन और दुष्ट मानवोंके राष्ट्रमें आसुरी शक्ति होगी और शुद्ध निर्मल जीवनवाले मानवोंके राष्ट्रमें दैवी राष्ट्री शक्ति उत्पन्न होगी। राष्ट्री शक्तिकी उत्पत्ति 'समुद्रके जलोंमे' होती है। इस वर्णनमें जो श्लेष अर्थ है वह ऊपर बताया है। इस श्लेष अर्थको जाननेसेही मन्त्रका गंभीर आशय प्रकट होता है।

पूर्वोक्त प्रकार उत्पन्न हुई राष्ट्री शक्ति निर्माण होनेके पश्चात् (विश्वा भुवना अनु वि तिष्ठे) सब मानवोंमें फैलती है और (वर्ष्मणा द्यां उपस्पृशामि) अपने शरीरसे मैं स्वर्गको पहुंचती हूं इतनी मैं बढ जाती हूं। राष्ट्रका उदय होनेके पश्चात् वह अपना उत्तम विकास करता है मानो सब विश्वकोही उत्साहसे परिपूर्ण करता है। (म० ७)

(अहं वात इव प्र वामि) मैं झंझावातके समान संचार करती हूं। प्रचण्ड वायुमें जैसा बल होता है वैसाही इस बढनेवाली राष्ट्री शक्तिमें होता है। उदय होनेवाले राष्ट्रकी हलचलोंको देखनेसे इस बलका अनुभव होता है। ऐसी अवस्थामें इसके वेगको कोई प्रतिबंध नहीं कर सकता।

(विश्वा भुवनानि आरभमाणा) सब भुवनोंमें, सब स्थानोंमें नवीन प्रचण्ड कार्योंका आरंभ किया जाता है। कार्यकर्ताओंके अन्दर यह राष्ट्रशक्ति संचार करती है और उनके द्वारा यह शक्ति प्रचण्ड कार्य कराती है। राष्ट्रके उदयके समय इतिहासमें ऐसाही प्रचण्ड उद्योग होता है ऐसा दिखाई देता है।

(दिवः पर पृथिव्या परः) द्युलोकसे भी परे और पृथ्वीसे भी परे यह शक्ति पहुंचती है, ऐसी बडी बडी आयोजनाएं यह मानवोंसे कराती है और उसमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह राष्ट्री शक्ति (महिना एतावती बभूव) अपनी महिमासे इतनी प्रचण्ड हुई है।

आज भी कई राष्ट्रोंमें कैसे कैसे प्रचण्ड दीर्घ उद्योग हो रहे हैं, उनको देखनेसे उदयोन्मुख तथा उदित हुए राष्ट्रमें कैसा प्रचण्ड आवेश संचारित होता है इसका पता लग सकता है। उनको स्वर्ग नीचे प्रतीत होता है, पृथ्वी छोटी दीखती है, उनकी इच्छा चन्द्र और मंगल पर उडकर जानेकी होती है। जो सहसा न बन सकनेवाला कार्य है, वह कार्य उस राष्ट्रके लोग सहजहीसे करके दिखा देते हैं।

सूक्तके प्रथम दो मन्त्र अब देखेंगे। मन्त्र ३ से अन्तिम मन्त्रतक विवरण यहांतक हुआ और इसमें राष्ट्री शक्ति कितनी प्रचण्ड होती है इसका दर्शन हुआ। अब पहिले दो मन्त्रोंको विचार करते हैं।

रुद्रेभिः वसुभिः आदित्यैः विश्वदेवैः
सह अहं चरामि। (म० १)

"मैं राष्ट्री शक्ति रुद्रों, वसुओं, आदित्यों तथा सब देवोंके साथ संचार करती हूं।" इन देवोंके नामोंसे राष्ट्रके कौनसे वर्ग ज्ञात होते हैं यह देखिये—

देवगण	राष्ट्रगण
रुद्र	शूर, वीर, युद्ध कुशल, वीरभद्र
आदित्य	स्वातं यवीर
वसु	धनपति
विश्वेदेव	सर्व ज्ञानी

देवता-गणोंके नाम सांकेतिक होते हैं। इन नामोंसे राष्ट्रके गण व्यक्त होते हैं। और इन राष्ट्र गणोंसे राष्ट्रीय व्यवहारका बोध होता है। ऊपर बतायी तालिकासे यह स्पष्ट हो जायगा। 'रुद्र'=ये वीर होते हैं, वीरभद्र ये रुद्रोंमेंसे एक प्रचण्ड वीरका नाम है। शत्रुको रुलानेवाले ये वीर हैं। युद्धोंमें ये अत्यंत कुशल होते हैं। शत्रुका पराभव करते हैं और शत्रु पक्षका संपूर्ण नाश करते हैं। 'आदित्य'= नाम स्वातन्त्र्यवीरोंका है। ये प्रचण्ड वीर

होते हैं। अ-दितिके ये आदित्य हैं। स्वतंत्रताका नाम अदिति है, जो अदीन होती है। कभी दीनता इसके पास नहीं होती। शत्रुको आदान ये करते हैं। अर्थात् शत्रुको ये पकडकर रखते हैं। शत्रुको ये घेरते हैं। आदान और संदान ये दो युद्धके मार्ग हैं। शत्रुका आदान करनेवाले आदित्य होते हैं। अतः इनका नाम स्वातंत्र्यवीर कहा है। 'वसु'= नाम धनपतियोंका है। धन अनेक प्रकारके हैं, उनका संग्रह करनेवाले ये हैं। ये सब जनपदहितके लियेही धन-संग्रह करते हैं। 'विश्वे देवाः'= ये सब विबुध, सब ज्ञानी हैं। अनेक प्रकारके ज्ञान और विज्ञान होते हैं, उनमें प्रवीण जो होते हैं उनको विबुध कहते हैं। वीरों, युद्ध-कुशलों, धनिकों और विबुधोंके साथ राष्ट्री शक्ति संचार करती है। यह नितान्त सत्य है।

राष्ट्रकी चिंता करनेवाले वे होते हैं कि राष्ट्रके नाशसे जिनका सर्वस्व नाश होता है। अन्य लोग जो डरपोक होते हैं, युद्धसे भागनेवाले, निर्धन, निर्वीर्य, अल्प-शक्ति, विद्याविहीन तथा अल्पज्ञ होते हैं, उनको राष्ट्र विनष्ट हुआ अथवा स्वतंत्र हुआ दोनों एक जैसेही हैं। इसलिये राष्ट्री शक्ति इन निर्वीर्योंके साथ कभी नहीं रहती। सदा यह ज्ञानी, सुवीर और धनी राष्ट्रहितत्तत्पर पुरुषोंके साथ रहती है। जिनके नाम 'देव, वसु और रुद्र तथा आदित्य' हैं।

इतिहासमें राष्ट्री शक्ति श्री रामदास, तुकारामके साथ, तथा छत्रपति शिवाजी और तानाजीके साथही संचार करती दीखती है। इतिहास पूर्वकालमें देखा जाय तो राष्ट्र-शक्ति वसिष्ठ-वामदेवके साथ, अथवा भगवान् रामचन्द्र, भगवान् गोपालकृष्ण और अर्जुनके साथ रही थी। यह इतिहास भी मन्त्रोक्त कथनकी ही साक्षी देता है। सत्य बात तो यह है कि राष्ट्र निर्बलोंका नहीं होता है, वह बलवान् वीर पुरुषोंका होता है, अगाध ज्ञानियोंका होता है, राष्ट्रसेवातत्पर धनिकोंका होता है। इसीलिये राष्ट्रशक्ति देवों (ज्ञानियों), रुद्रों (वीरों), तथा वसुओं (धनिकों), के साथ संचार करती है ऐसा इस मन्त्रमें कहा है यह सत्य है।

इस समय कहा जाता है कि 'राष्ट्र सबका है', यह पालनीयताकी दृष्टिसे योग्य है। राष्ट्रमें ज्ञानी-अज्ञानी, वीर-निर्बल, धनी-निर्धन, शिल्पी-अज्ञ इन सबकी उत्तम पालना राष्ट्रमें होनी चाहिये। कोई भूखा नहीं रहना चाहिये, कोई अन्न-वस्त्र-गृहहीन नहीं रहना चाहिये, भोजनके लिये उत्तम अन्न, ओढनेके लिये वस्त्र, रहनेके लिये घर और रोगनिवारणके लिये औषधि सबको मिलनी चाहिये। कुमारोंके लिये विद्या, तरुणोंके लिये पर्याप्त विस्तृत कार्यक्षेत्र, वृद्धोंके लिये आवश्यक विश्रामकी व्यवस्था होनी चाहिये। यह तो सबके लिये होनाही चाहिये। पर किसी भी राष्ट्रमें ज्ञानीकी संमतिके साथ अज्ञानीकी संमतिकी समानता नहीं मानी जायगी। शूर-वीरके समान भीरुके लिये स्थान नहीं मिल सकेगा, कुशल शिल्पीके समान अनाडीका मान नहीं होगा, इसी तरह व्यापार कुशलके समान व्यापारमें फंसनेवालेका स्थान नहीं होगा। भोजनमें सबकी समानता रहेगी, परंतु कर्तव्यके क्षेत्रमें उसकी शक्तिके अनुसार उसकी योग्यता होगी। (अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः मनोजवेषु असमा बभूवुः। ऋ० १।७१) सभी लोग आंखवाले और कानवाले होते हैं, पर वे मनके वेगमें विषम होते हैं। यह वेदका कथन सर्वदा सत्यही है।

अब आगे इसी मन्त्रमें कहा है कि-(अहं राष्ट्री मित्रा-वरुणा, इन्द्र-अग्नी, उभा अश्विना बिभर्मि)= मैं राष्ट्री शक्ति मित्र-वरुण, इन्द्र-अग्नि और दोनों अश्वि-देवोंका धारणपोषण करती हूं। अब ये देव राष्ट्रमें कौनसे हैं देखिये—

देवगण	राष्ट्रगण
मित्र	मित्र भाववाले
वरुण	श्रेष्ठ शक्तिवाले
इन्द्र	शत्रुनाशक वीर
अग्नि	प्रवक्ता, ज्ञानी
अश्विनौ	चिकित्सक
,,	शल्यवैद्य

इस तालिकासे पाठकोंको पता लग जायगा कि ये देवताओंके नाम किन राष्ट्रपुरुषोंके सूचक हैं। (१) 'मित्र'=हितकर्ता, जनताका कल्याण करनेवाला, मित्रवत् आचरण करनेवाला, सहायक। (२) 'वरुण'= श्रेष्ठ, वरिष्ठ पुरुष। (३) 'इन्द्र'=शत्रुओंका विनाश करनेवाला

वीर, सेनापति, राष्ट्रशासक, युद्धमें कुशल, परमैश्वर्यवान् वीर। (४) 'अग्नि' = जातवेदा, जातविद्य, ज्ञानी, पुरोहित, मार्गदर्शक, प्रकाशक, (५) 'अश्विनौ' = एक चिकित्सक, औषधिसे रोग-निवारण करनेवाला और दूसरा शस्त्रवैद्य, रोगी अवयवको काटकर रोगको दूर करनेवाला।

राष्ट्री शक्ति इन राष्ट्रपुरुषोंका धारण-पालन-पोषण करती है। क्योंकि ये सब राष्ट्रपुरुष राष्ट्रका हित करनेवाले हैं। देखिये 'मित्र' गणके लोग विद्वेष छल कपट दूर करते हैं और जनताकी संघटना करते हैं। 'वरुण' गणके लोग आदर्श पुरुष कैसा श्रेष्ठ होता है वह अपने आदर्शसे बताते हैं। 'इन्द्र' गणके वीर शत्रुसे युद्ध करते, उस शत्रुको परास्त करते और राष्ट्रको निर्भय करते हैं। 'अग्नि' गणके पुरुष धार्मिक प्रवचनों द्वारा धर्ममार्गका प्रचार करते हैं, यज्ञयाग प्रवर्तनद्वारा राष्ट्रकी सुस्थिति रखते हैं, जनताको सन्मार्ग दर्शाते हैं, सत्य धर्मका प्रकाश करते हैं और यज्ञचक्रका प्रवर्तन करते हैं। तथा औषधि-चिकित्सक और शस्त्रवैद्य जनताका आरोग्य बढाते हैं। पाठक विचार करके जान सकेंगे कि ये सब लोग जनताका हित करनेवाले हैं, इस कारण राष्ट्री शक्ति इनका धारण-पालन-पोषण और संवर्धन करती है। इनके पालनसे जनताका सुख बढता है और जनता सुखी होती है। जिनसे लोग सुखी होते हैं उनका पालन करना चाहिये यह आदेश यहां मिलता है। यहां परीक्षा तो जनपद-हित करनेसेही उत्तीर्ण होती है। राष्ट्र उनका संरक्षण करे कि जो जनताका कल्याण करनेकी इच्छासे उसकी सेवा करते हैं। (मं० १)

(अहं आहनसं सोमं, त्वष्टारं पूषणं भग बिभर्मि) = मैं राष्ट्री शक्ति शत्रुनाशक सोम, त्वष्टा, शिल्पी, पोषणकर्ता और भाग्यवान् अथवा धनवान्का धारण भरण और पोषण करती हूं।

'सोम' एक वनस्पतिका नाम है, जो हिम पर्वतपर होती है, उत्साहवर्धक, दीर्घायुष्य देनेवाली, सब रोग दूर करनेवाली है। 'आहनसं सोमं' अर्थात् शत्रुका वध करनेवाला यह सोम है। सोमरस पीनेसे उत्साह बढता है जिससे वीर उत्साहित होकर शत्रुका वध करते हैं। अथवा 'सोम' का अर्थ (स+उमा=उमा सहित, विद्या सहित) विद्वान् ज्ञानी है। जो जनताका उत्साह अपने ज्ञानसे बढाते हैं और उससे शत्रुका नाश कराते हैं। 'उमा' उस विद्याका नाम है कि जो (अवति) जनताका संरक्षण करती है। राष्ट्रका संरक्षण करनेवाली विद्या उमा कहलाती है, वह जिसके पास होती है वह सोम होता है। राष्ट्रसंरक्षक विद्यावान् जो होते हैं वे सब सोम कहलायेंगे।

'त्वष्टा' नाम शिल्पी कारीगरोंका है। शिल्प अनेक प्रकारके हैं। सुतार, लुहार, कुंभार, सुनार आदि सब शिल्पी हैं। ये सब त्वष्टा है। त्वष्टाका अर्थ तोड ताड कर रथ आदि अनेक वस्तुएं जो बनाता है। ये शिल्पी राष्ट्रकी जनताका सुख बढाते हैं। शिल्पी न हुए तो जनता जंगली अवस्थामें रहेगी। उन्नत सुसंस्कृत अवस्थामें जनताको लानेका कार्य ये करते हैं। इसलिये त्वष्टाका महत्त्व नागरिक सभ्यतामें बहुतही है। विद्या १४ हैं और कलाएं ६४ हैं। ये ६४ कलाओंसे नागरिकोंके सुखकी वृद्धि करते हैं। इस कारण राष्ट्री शक्ति शिल्पियोंका तथा कलावानोंका पालन-पोषण करती है। कलाहीन जीवन पशुजीवन ही है।

आगे 'भग' है यह धनवानका नाम है। ऐश्वर्य, धन, संपत्ति भाग्य यही है। भाग्यवान् पुरुष राष्ट्रमें रहने चाहिये। राष्ट्रकी समृद्धि इनसे होती है। इन धनवानोंका कर्तव्य है कि वे अन्योंका पोषण करें। ऐसे उद्योग करें कि जिससे जनताका पोषण हो।

इतना विचार करनेसे 'सोम, त्वष्टा, भग और पूषा' का मैं धारण-पोषण करती हूं, राष्ट्रमें इनका धारण करती हू इस कथनका महत्त्व ध्यानमें सहजहीसे आ जाता है। इनसे राष्ट्रका महत्त्व बढता है। राष्ट्रका भाग्य इनसे वृद्धिगत होता है। इसलिये राष्ट्र चाहता है कि ये लोग अपनेमें बढ जांय। जिससे राष्ट्र भाग्यशाली बने और चारों ओर इस राष्ट्रकी प्रतिष्ठा बढती रहे।

(यजमानाय अहं द्रविणं दधामि) यज्ञ करनेवालेके लिये मैं पर्याप्त धन देती हूं। यज्ञचक्र प्रवर्तन होते रहना चाहिये। "यज्ञसे मेघ, मेघोंसे पर्जन्य, पर्जन्यसे धान्य,

धान्यसे यज्ञ " यह एक चक्र हुआ। यह यज्ञचक्र सतत चलना चाहिये। इसमें किसी स्थानपर प्रतिबंध नहीं होना चाहिये। यज्ञचक्रके सतत परिभ्रमणसे जगत्का सुख बढता है। देखिये पर्जन्यसे वृक्ष-वनस्पतियोंकी वृद्धि होनेके कारण सब विश्वका कल्याण होता है। धान्यसे अन्न होता है और पर्जन्यसे जल मिलता है। इससे प्राणियोंके खानपानका प्रबंध होता है। ये सब लाभ यज्ञ-चक्रके परिवर्तनसे होते हैं।

यज्ञचक्र अनेक रूपोंमें जगत्में चल रहा है। गृहस्थ धर्ममें पति गर्भाधानसे अपनी जायामें गर्भकी स्थापना करता है। वहां वीर्य आकर पुत्ररूपमें परिणत होता है, दशम-मासमें पुत्ररूपसे बाहर आता है। वह बढता है। आठवें वर्ष ब्रह्मचर्याश्रममें प्रविष्ठ होता है और २५ वेवर्ष ब्रह्मचर्य समाप्त कर गृहस्थमें प्रविष्ट होता है। वहां वह वीर्य प्रदानद्वारा स्त्रीमें गर्भाधान करता है। इस तरह यह गार्हस्थ्य यज्ञचक्र चलता है। यह धर्मनियमपूर्वक चलता रहे, इसमें विघ्न न हो। इस यज्ञचक्रके चलनेसेही सब समाजकी सुस्थिति रहती है।

गुरु अपने छात्रको विद्या देता है। वह छात्र विद्या लेकर १२ वर्षोंके अध्ययनके पश्चात् विद्वान् होता है। विद्याका मनन १०।२० वर्ष करनेके पश्चात् वह फिर आचार्य बनता और दूसरे छात्रोंको लेता और उनको विद्या पढाता है। इस तरह यह यज्ञचक्र चलता रहता है। यह ब्रह्म-यज्ञ-चक्र चलता रहा तोही राष्ट्रमें ज्ञानका और सभ्यताका प्रवाह सुचारु, रूपसे चलता रहता है।

यज्ञ तो अनेक प्रकारके हैं। मनुष्यका जीवनही यज्ञमय है। इसका—

बाल्यके . . उपनयनानतर ८ वे वर्ष यज्ञका प्रारंभ
पुरुष यज्ञका प्रात सवन २४ वर्षोंका है
... .. माध्यंदिन-सवन ३६ „ „
. ...सायं-सवन ४८ „ „

११६

११६ वे वर्ष मनुष्य-जीवनरूपी यज्ञकी समाप्ति होती है। इस समय मनुष्यकी मृत्यु होनी चाहिए ऐसा इसका अर्थ नहीं है। पर मनुष्यके जीवनका यज्ञ ९ वें वर्ष प्रारंभ होता है और ११६ वे वर्ष समाप्त होता है। इसके पश्चात् १०।२० वर्ष अथवा अधिक भी मनुष्य जीवित रह सकेगा, और वह तपस्याका जीवन व्यतीत करेगा। यह जीवन-यज्ञका चक्र है। जन्म-जन्मान्तरमें यह चलता है।

मानवी संपूर्ण जीवनका भी एक जीवन यज्ञ है। इसके अतिरिक्त मनुष्यकी आयुके प्रत्येक वर्षमें एक यज्ञ मनुष्यको करना चाहिये। ऐसे १०० यज्ञ करके मनुष्य शतक्रतु बनता है। ये जीवनके १०० सौ वर्ष मुख्य जीवनके होते हैं। इसके पूर्व बाल्यके ८ वर्ष और ब्रह्मचर्यके १२ मिलकर २० वर्ष हैं, ये मिलानेसे (२०+१००) कुल १२० वर्षकी मानवी आयु होती है। इसके पश्चात् भी मनुष्य जीवित रहता है वह उसकी तपस्याकी आयु है। इसलिये कहते हैं कि मानवी आयु १२५ वर्षकी है। उसमें तैयारीकी पहिली आयु २० वर्ष की गयी तो बीचकी १०० वर्षकी पुरुषार्थकी आयु है, वही यज्ञीय आयु है। इसीलिये कहते हैं कि ' शतायुर्वै पुरुष. ' नागरिक मानवकी आयु-यज्ञीय आयु- १०० वर्षोंकी है। इसका यह अर्थ नहीं कि मनुष्य १०० से अधिक जीवित् नहीं रहता। यह सौ वर्ष यज्ञकी आयु है। बालपन तैयारीका, मध्य १०० वर्ष पुरुषार्थके और पश्चात् तपस्याका जीवन होता है। यह व्यवस्था जीवन यज्ञचक्रकी है। यह जीवन यज्ञ है। यह यज्ञचक्र अच्छी तरह चलना चाहिये, बीचमें किसी कारण यह यज्ञचक्र रुकना नहीं चाहिये।

इस तरह अनेकानेक यज्ञ हैं। ये सबके सब उपयुक्त हैं। यज्ञमें मुख्यतः (१) सज्जनोंका सत्कार, (२) भद्र पुरुषोंकी संघटना और (३) दीनोंकी सहायता ये तीन विषय महत्वके रहते हैं। यज्ञ कितने ही क्यों न हों उनमें ये तीन मुख्य विभाग अवश्य होने चाहिये। इनके विना यज्ञका क्रिया कलाप सार्थ नहीं हो सकता। यज्ञमें सत्कारके योग्य सज्जनोंका सत्कार होता है, जनताकी संघटना होती है और दीनोंका उद्धार होता है इस कारण ही राष्ट्रीदेवी यज्ञकर्ताको धन देती है और यज्ञ करनेके लिये प्रोत्साहन देती है। (मं० २)

शेष मंत्रोंका स्पष्टीकरण प्रारंभमें हो चुका है। अस्तु। यह सूक्त जैसा आध्यात्मिक दृष्टिसे महत्वका है वैसाही

राष्ट्रीय दृष्टिसे भी महत्वका है। पाठक दोनों दृष्टियोंसे इसका मनन करें और उचित बोध प्राप्त करें।

आध्यात्मिक उन्नति

सब मनुष्य स्थूल और सूक्ष्म शरीर पर जाग्रत रह कर कार्य करते हैं और सर्वत्र द्वन्द्वस्थिति–भेददर्शन–का अनुभव करते हैं। यह सर्व सामान्य स्थिति है। जाग्रत और स्वप्नका अनुभव द्वन्द्वोंका अनुभव है। भेददर्शनका अनुभव है।

पर सब शास्त्र कहते हैं कि निर्द्वन्द्व स्थिति प्राप्त करनी चाहिये।

भेदके स्थानपर अभेद अथवा एकत्वका दर्शन करना चाहिये।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।
(वा० य० ४०; ईश उ० ७)

'एकत्वका दर्शन करनेवालोंको शोक वा मोह नहीं होते।' यह स्थिति कारण शरीरपर जानेसे प्राप्त हो सकती है। सर्व साधारण मनुष्य सुषुप्तिमें कारण शरीरपर जाते हैं, सर्व प्राणी भी सुषुप्तिमें कारण शरीरपर पहुंचते हैं। योगी अनेक प्रयत्नोंसे समाधिस्थिति प्राप्त करते हैं, यही कारण शरीरकी स्थिति है। यहां स्थानभेद, कालभेद, व्यक्तिभेद नहीं रहता। सब एकरस अवस्थाका यह अनुभव है। यहां बैठकर योगीजन जिस स्थानका चाहे अनुभव प्रत्यक्षसा प्राप्त करते हैं। इस स्थितिमें भारतमें रहना और अमेरिकामें रहना एक जैसा ही है। *यह भूमा अवस्था है।* इस समय संकुचित व्यक्तिभाव दूर होता है और विश्वव्यापक भूमाभाव अनुभवमें आता है।

इस समय मैं ही सूर्य-चन्द्रमें, आकाश और अन्तरिक्षमें हूं, मैं भूमिपर सर्वत्र हूं, मैं स्थिरचर व्यापता हूं, मैं ज्ञानियोंको, शूरवीरोंको, धनिकों और कृषकोंको, शिल्पियों और कर्मचारियोंको अपने अपने कर्मोंमें प्रेरित करता हूं। यह अनुभव आता है। जो इस सूक्तमें वर्णन किया है।

संक्षेपसे योगीकी समाधि सिद्ध होनेपर यही अनुभव होता है। सुषुप्तिमें सृष्टिके भेददर्शन नहीं होते इसका कारण उपनिषदोंमें यह दिया है कि, यह भूमा और व्यापक अवस्था है अतः—

तत् केन कं पश्येत्? यत्र द्वैतमिव न स्यात्।

'जहां द्वैत नहीं वहां कौन किसे देखेगा?' देखने सुननेके लिये दूसरा चाहिये। यदि सब एकही हुआ, तो कौन किसे देख सकेगा। अतः इस समय सब विश्वभर मैं हूं यह भूमाभावका अनुभव आता है। विश्वमें मैं हूं जो विश्वमें हो रहा है वह मैं कर रहा हूं, अथवा मुझसे हो रहा है।

इस सूक्तका वर्णन ऐसाही है। भाग्यवान योगी सिद्ध बननेके पश्चात् जो अनुभव लेते हैं वह यह अनुभव है।

पिण्ड-ब्रह्माण्डकी समता

'जो पिण्डमें है वही ब्रह्माण्डमें है।' व्यष्टि-समष्टिका न्याय एक है। यह वैदिक सिद्धान्त है। इसीसे व्यक्तिके अन्दर आनेवाला एकत्वका अनुभव मानव-समष्टिमें लेना योग्य है अथवा ले सकते हैं, किंवा लेना चाहिये।

राष्ट्रमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र होते हैं। ये सर्वथा पृथक् नहीं हैं, परंतु एक विराट् पुरुषके शरीरके ये मुख, बाहु, उदर और पांव हैं। अर्थात् ये चार वर्ण मिलकर एक पुरुषका एक शरीर है और इसमें राष्ट्री शक्ति संचार कर रही है। ज्ञानी शूर कृषीवल और शिल्पी ये एक राष्ट्र शरीरके अवयव हैं। ये पृथक् व्यक्ति, परस्पर विभिन्न नहीं हैं। जैसे मानव-शरीरके सिर-बाहु-उदर-पांव ये सर्वथा परस्पर पृथक् नहीं, परंतु एकही शरीरके अंग हैं, उस तरह ये चार वर्णके लोग, तथा ये चार वर्ण परस्पर विभिन्न नहीं, परंतु सबका मिलकर एकही अखण्ड जीवन है। और उनमें एकही राष्ट्रशक्ति कार्य करती है। इन वर्णोंको परस्पर पृथक् मानना भूल है। इस पार्थक्यसे अधर्म होता है जो एक राष्ट्रीयताका नाश करता है। एक राष्ट्रीयताका एक अद्भुत स्फुरण है जो अनन्यभावसेही जनतामें आता है।

जो यहां 'राष्ट्री' है वह सब राष्ट्रमें एकही शक्ति है। जैसी वह ज्ञानीमें है वैसीही क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रोंमें रहती है और जहां जैसा स्फुरण चाहिये वैसा वहां राष्ट्रकी परिस्थितिके अनुसार करती है। यह एकता सबको देखकर अनुभव करनी चाहिये। अब इस सूक्तमें आये देवताओंका विचार करेंगे—

शस्त्रधारी देवगण

सब देव सशस्त्र रहते हैं। ये स्वभावसे कभी हिंसक नहीं होते हैं, पर स्वसंरक्षण करनेके लिये सशस्त्र रहना आवश्यक है, यह तत्त्व वे जानते हैं। प्रायः कोई देव शस्त्रके बिना नहीं है। देखिये क्रमशः—

१ रुद्र=रुद्र ग्यारह हैं। ग्यारहकी संख्यामें ये रहते हैं। ग्यारहकी संख्या सैनिकोंके छोटे गणकी है। सबसे छोटा रुद्रगण ११ का होता है। आगे ग्यारहकी गिनतीमें वे अपनी संगठना बढाते हैं। पहिला गण ११ का है। ऐसे ११ गण मिलकर एक १२१ सैनिकोंका दूसरा संघ होता है। इस तरह आगे ११ की श्रेणीसे सैनिकोंकी संख्या बढती है। ११, १२१; १३३१ ऐसे सेनाके गण, गण-संघ, गण-मण्डल आदि नामोंसे होते हैं।

सभी रुद्र बडे शूरवीर, युद्धमें निपुण और बडे पराक्रमी होते हैं। इसीलिये सब युद्धकर्म इनके पासही आया दीखता है। धनुष्यबाण, खड्ग, तोमर, गदा, मुसल, खट्वाङ्ग, शक्ति, पाशुपत अस्त्र, इसी तरह नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र इनके हाथोंमें दीखते हैं, रुद्रोंमें शंकर, वीरभद्र तथा अनेक प्रबल वीर प्रसिद्ध हैं। ये सबके सब शूरवीर और महाप्रतापी करके प्रसिद्ध हैं।

यजुर्वेदके रुद्राध्यायमें (वा० यजु० अ० १६ में) रुद्रोंके सैकडों नाम गिनाये हैं। वे सभी शस्त्रधारी और बडे योद्धा हैं। सेना, सेनापति, इषुहस्त, आततायी आदि सभी शस्त्रधारी रुद्र हैं। संहार, युद्ध, विनाश ये रुद्रकेही कर्म हैं। इस अध्यायमें ब्राह्मण-वर्गके रुद्रके नाम ये हैं— अधिवक्ता (प्रवचन करनेवाला), गृत्स, श्रुत, रुद्र (वक्ता), पुलस्तिः, गृत्सपतिः, मन्त्री, भिषक्, औषधीनां पतिः, सभा, सभापतिः, श्रवः, पतिश्रवः, श्लोक्यः (ये सब विविध प्रकारके ज्ञानी हैं)। भिषक् वैद्य है और मन्त्री राजाका मन्त्री है। अन्य विद्वान् अन्य शास्त्रोंके पारंगत हैं।

अब वीर वर्गके रुद्र देखिये—रुद्र (अपनी वीरतासे शत्रुको रुलानेवाला वीर), क्षेत्राणां पतिः, वनानां पतिः, कक्षाणां पतिः, अरण्यानां पतिः, पत्तीनां पतिः, स्थपतिः (ये राज्याधिकारी हैं, स्थानस्थानके ये अधिकारी हैं)। वनोंके अधिकारी, अरण्योंके रक्षक, पदाति, सेना-विभागके अधिकारी, वाजूओंके पालक, स्थानोंके परिपालक ऐसे ये अधिकारी हैं। राज्यशासनमें इनका कार्य इनके नामोंसेही विदित हो सकता है। और देखिये—

व्याधिनीनां पतिः=शत्रुका वेध करनेवाली जो महावीरोंकी सेना होती है उस वीर सेनाका सेनापति। निकृन्तानां पतिः= चढाई करके शत्रुको काटनेवाली सेनाका सेनापति, शूरवीरोंकी सेनाका मुख्य अधिकारी। कुलुञ्चानां पति = शत्रुओंके विभाग करके एक एक विभागका पूरा नाश करनेवाली सेनाके सेनापति। गणपतिः, व्रातपतिः=सेनाके गण-समूहके अधिकारी। सेना, गण, व्रात= ये सैन्य विभागोंके नाम हैं। शूर, विचिन्वत्क, रथी, अरथ, आशुरथ, उगण= ये सेनामें रहनेवाले शूरवीरोंके नाम हैं, विचिन्वत्क वीर वह है कि जो शत्रुके सैनिकको ढूंढ ढूंढ कर मारता है, रथमें रहकर लडनेवाला रथी, अरथ रथके बिना लडनेवाला, आशुरथ वह है जो शीघ्रगामी रथपर आरूढ होकर लडता है। जो अपने शस्त्र ऊपर उठाकर शत्रुपर प्रचंड हमला करते हैं उनका नाम उगण है। ये सभी शूरवीर शस्त्रधारी हैं।

आशुषेण= जिसकी सेना शत्रुपर हमला करनेके लिये सदा सिद्ध रहती है। श्रुतसेन= वह है कि जिसकी सेनाका यश चारों दिशाओंमें फैला हो। सेनानी = सेनापति है, जो सेनाका सचालन करता है।

दुन्दुभ्यः=सैन्यके साथ ढोल आदि बजानेवाले होते हैं, वे ये हैं।

असिमत्, इषुमत्, सृकायी, निषंगी, धन्वायी, आयुधी, शतधन्वा, तीक्ष्णेषु, स्वायुध, सुधन्वा, वर्मी, कवची, बिल्मी, वरूथी=ये सब नाम वीरोंके, शस्त्रधारी शूर वीरोंके हैं। इनमें अकेले वीरोंके भी नाम हैं और सेना समूहोंके भी हैं।

कृत्स्नायतया धावन्, निव्याधी, जिघांसत्, आहनन्य, विध्यत, अवभेदी, हन्ता, हनीयान्, विक्षिणत्क, आनिर्हत, अभिघ्नन्, अग्रेवध, दूरेवध, आहनन्य, धृष्णु=ये सब शूर वीरोंके नाम हैं जो शत्रु-सेनामें घुसकर उनका वेगसे वध करते हैं और नाश करते हैं।

आतन्वान, प्रतिदधान, आयच्छत्, अस्यत्,

विसृजत्, प्रमृश=ये सब नाम शस्त्रधारी वीरोंके विविध अवस्थाओंके हैं, शस्त्र लेना, जोडना, छोडना आदि भाव ये नाम बताते हैं।

आखिदत्, प्रखिदत्=ये उन वीरोंके नाम हैं कि जो शत्रुओंके मनमें घबराहट उत्पन्न करते हैं।

आव्याधिनी, विविध्यन्ती, सुंहती=ये नाम उन सेनाविभागोंके हैं कि जो शत्रुसेनाका संहार करनेमें अति कुशल होते हैं।

अश्वपति, श्वपति, मृगयु=ये नाम उन वीरोंके हैं कि जो घोडे और कुत्ते पालते और मृगया करते हैं।

धनुष्कृत्, इषुकृत्=ये नाम शस्त्र बनानेवालोंके हैं।

पथीनां पतिः, अवसान्यः=ये नाम उन वीरोंके हैं कि जो मार्गपर रह कर प्रवासियोंका संरक्षण करते हैं, अवसान्य वे होते हैं कि जो अन्तिम सीमाका संरक्षण करते हैं।

इसी तरह वैश्य, शूद्र, निषाद वर्गके रुद्रोंके नाम रुद्र-सूक्तोंमें है।

उपवीती (उत्तरीय धारण करनेवाला), उष्णीषी (सिरपर साफा बांधनेवाला), हिरण्यबाहु (बाहुओंपर सुवर्णके आभूषण धारण करनेवाला), कपर्दी (बालोंवाला, जटाधारी), व्युप्तकेश (जिसके केश कटे हों), जाग्रत् (जागते हुए पहारा करनेवाला रक्षक), धावत् (शत्रुपर हमला करनेवाला वीर) ये सब नाम वीरोंके हैं। ये सब रूप रुद्रके हैं, देखो यजुर्वेद अ० १६ के मंत्र। इस रुद्राध्यायमें कहा है कि जो संपूर्ण विश्वसृष्टिमें हैं वे सब रुद्रके रूप हैं। स्थिरचर, द्विपाद, चतुष्पाद जो कुछ है वह रुद्र-देवताका रूप है। उसमें विशेष कर जो उग्र रूप हैं, शूरवीर युद्ध-प्रवीण हैं वे रुद्रके विशेष रूप हैं। ये सभी शस्त्रधारी हैं। राजकीय प्रकरणमें ये ही वीररूपी रुद्र विशेष महत्वका स्थान रखते हैं। रुद्रोंके शस्त्र अनेक हैं। अथवा सभी शस्त्र रुद्रकेही हैं।

दूसरी देवता 'वसु' है। वसु आठ होते हैं। शतपथमें कहा है—" कतमे वसव इति । अग्निश्च पृथिवी च वायुश्च अन्तरिक्षं च आदित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमा च नक्षत्राणि च एते वसव एते हीदं सर्वं वासयन्ते, ते यदिदं सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति ॥ (श० ब्रा ११।६।३।६) अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा, और नक्षत्र ये ८ वसु हैं क्योंकि इसमें सब रहते हैं, ये रहनेके लिये सबको स्थान देते हैं। मानवोंमें धनपति वसु कहलाते हैं। वसु धनका नाम है वह जिसके पास होता है उनको भी वसु कहते हैं। ये धनपति अपने धनके संरक्षणके लिये शस्त्र अपने पास रखते हैं अथवा शस्त्रधारी वीरोंको अपने पास रखते हैं।

तीसरी देवता 'आदित्य' है। आदितिके आदित्य होते हैं। अ-दिति स्वतंत्रता है, दितिका नाम बंधन अथवा परतंत्रता है। अदितिकेही आदित्य होते हैं। अतः इनको 'स्वातंत्र्यवीर' कहना योग्य है। 'द्वादश आदित्याः' आदित्य बारह होते हैं। जिस तरह रुद्रोंका गण ११ का होता है और वसुओंका ८ का तथा मरुतोंका ७ का होता है, वैसा आदित्योंका १२ का गण होता है। आदित्य देवताका दैवी अर्थ सूर्य है और सूर्य अन्धकाररूपी शत्रुका नाश करके सब जगत्को स्वातंत्र्यका प्रकाश देता है। सूर्य भी स्वातंत्र्य और प्रकाशकी देवता है। सूर्य जैसा अपने शत्रुरूपी अन्धकारको भगा देता है, वैसा मनुष्य तेजस्वी बने और अपने अज्ञानान्धकारको दूर करे, यह उपदेश वेद इस देवताके वर्णनसे देता है।

आगे 'विश्वे देवाः, मित्र, वरुण, अग्नि, इन्द्र और अश्विनौ ये देवताएं प्रथम मंत्रमें हैं। मित्र नाम सूर्यका है, इसका वर्णन पूर्व स्थानपर किया है। वरुण एक देव है जिसके पास अन्य शस्त्रोंके साथ 'पाश' रहता है। वरुणका पाश यह उसकी विशेषता है। अंगुली इतनी मोटी और २५।३० हाथ लंबी रस्सी होती है। यह भागनेवाले शत्रुपर ऐसी फेंकी जाती है कि थोडीसी खींचनेसे शत्रु उससे बांधा जाता है। यह पाश आजकल भी सैनिक वर्तते हैं। यह वेदमें वर्णन किया वरुणका पाश है। 'वरुणका पाश हमपर न आये' ऐसी वेदकी प्रार्थना होती है। इससे इस पाशका भय प्रतीत होता है।

अग्निका ज्वलन, तथा इन्द्रका वज्र सुप्रसिद्ध है। शत्रुको जलानेका कार्य अग्निका है और इन्द्र वज्रसे शत्रुका वध करता है। अन्यान्य शस्त्र भी इन्द्रके पास होतेही हैं।

मरुतोंकी सेना इन्द्रके पास होती है वह सब शस्त्रधारीही होती है।

अश्विदेव वस्तुतः वैद्य हैं। इनमेंसे एक औषधियोंसे चिकित्सा करता है और दूसरा शस्त्र-प्रक्रियामें कुशल रहता है। इसके अतिरिक्त ये अश्वविद्या, युद्धविद्या, शस्त्र-संचालन आदिमें भी प्रवीण हैं।

सोम, त्वष्टा (रथकार) पूषा, भग ये देव भी शस्त्र-धारी हैं। सोमवल्लीका रस वीरोंको उत्तेजित करता है और इस रस पानसे उत्तेजित हुए वीर शत्रुपर चढाई करके उनका विनाश करते हैं। त्वष्टा शस्त्र बनाकर तथा रथ बनाकर युद्धमें सहायक होते हैं। पूषा यह वीरोंके पोषणके कार्यमें लगा रहता है और भग धन देकर युद्धकी सहायता करता है। इस तरह ये देव युद्ध सहायक होते हैं।

इन सब देवोंमें अग्नि और अश्विनौ ये ब्राह्मण देव हैं। शेष सभी देव क्षात्र देव हैं। इस सूक्तका वर्णन देखनेसे भी इसमें ब्राह्मण्यका वर्णन बहुत कम है, परंतु क्षात्रधर्मका वर्णन अधिक है। इससे स्पष्ट होता है कि यह सूक्त राष्ट्रीय विद्याका-राजकीय विद्याका-प्रकाश कर रहा है। अध्यात्म-विद्या इसकी आधार शिला है, और इसका विस्तार राष्ट्रविद्या है, राष्ट्रका संरक्षण क्षात्रविद्या-सेही होता है, इसलिये क्षात्रबलका वर्णन इस सूक्तमें विशेष है।

वेदमें वर्णित ब्राह्मण देव भी शस्त्रधारी देव हैं। एक भी देव शस्त्रोंके विना नहीं है। यदि ब्राह्मण देव शस्त्रधारी हैं। तब तो क्षात्रदेव शस्त्रधारी होनेमें संदेहही क्या हो सकता है? राष्ट्रके सभी लोग शस्त्र धारण करनेमें समर्थ वीर होने चाहिये यह इसका तात्पर्य है। सामान्यतः सब लोग शस्त्र चलानेमें सिद्ध हों, पर क्षत्रिय विशेष प्रवीण हों। क्षत्रियोंके युद्धमें भाग लेनेके समय अन्य लोग राष्ट्रकी अन्तर्गत सुरक्षाका कार्य करें यह बोध इससे मिल सकता है।

इन शस्त्रधारी देवोंके साथ यह राष्ट्रीदेवी संचार करती है, इनमें आवेश उत्पन्न करती है, इनसे युद्ध करवाती है, प्रचण्ड हलचल मचाती है, झंझावातसे जैसे वृक्ष प्रकंपित होते हैं और समुद्र जैसा प्रक्षुब्ध होता है उस तरह सब राष्ट्र इस राष्ट्रीदेवीके आवेशसे क्षुब्ध होता है। यह इस सूक्तका आशय है। इसका विचार और विचार-पूर्वक मनन करनेसे यह बात स्पष्ट है कि यह सूक्त राष्ट्रीयताके अनेक उपयुक्त निर्देश करनेवाला है।

अध्यात्मके आधारपर राष्ट्रशासन कैसा हो सकता है, यह इस सूक्तके मननसे प्रकट हो सकता है।

यज्ञका कार्य

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि 'यह राष्ट्री-शक्ति यज्ञकर्ता-को पर्याप्त धन देती है।' ये सब यज्ञयाग क्रतु अन्ततो गत्वा राष्ट्रके पालन अर्थात् जनताका हित करनेके लियेही हैं। अर्थात् यज्ञको केवल धार्मिक और युद्धको राष्ट्रीय समझना भूल है। वैदिक धर्ममें सब प्रक्रियाओंका एकही उद्देश्य है और वह यह कि संपूर्ण जनताका सब प्रकारका कल्याण साधन करना। क्योंकि सब मानवजाति मिलकर एकही अखण्ड अद्वितीय पुरुष है और उसका कल्याण करनेकीही ये सब आयोजनाएं हैं।

इसमें एक उपजातिको दूसरी जातिके विरोधमें खडी करना और उनमें युद्ध करना या कराना अयोग्य है। पर कोई उपजाति दस्युता करनेपर तुली, तो सब विश्वके कल्याणके लिये उसको योग्य दण्ड देना आवश्यक है। यह कार्य समर्थ जातिको करनाही चाहिये।

ऊपर कहा है कि सब देव शस्त्रधारी होते हैं। शस्त्र-धारी होनेपर भी वे हिंसक नहीं कहाते। आर्तत्राणके लिये वे शस्त्र धारण करते हैं। असुर स्वभावसे हिंसक होते हैं। देवोंको कोई असुर नहीं कह सकता। इससे दैवी संपत्तिका विकास करना आवश्यक है और आसुरी आक्रमकोंको दूर करना आवश्यक है। यही राष्ट्रधर्म होता है। अर्थात् देवोंके शस्त्रधारणके समान मानवी राष्ट्र अहिंसकवृत्तिका होता हुआ भी दुष्ट दमनके लिये और अखिल जनताके परम कल्याणके लिये शस्त्र धारण करें, इसीलिये क्षात्रशक्तिकी राष्ट्रमें वृद्धि की जाय। इसका प्रधान उद्देश्य जनताके व्यवहार अहिंसक वृत्तिसे चलते रहें यही होना चाहिये। शस्त्र निःसंदेह हिंसक हैं, उनका उपयोग उसी समय करना योग्य है कि जिस समय दस्युदल क्रूर कर्म करके जनताको संत्रस्त करनेपर तुला हो।

परमेश्वरके नामोंमें 'शंकर' (कल्याण करनेवाला) यह नाम जैसा है वैसा ही 'संहर्ता' (संहार करने-

वाला) यह भी नाम है। यदि परमेश्वर संहार न करेगा तो कल्याण भी नहीं कर सकेगा। अयोग्य दुष्टोंका संहार करनेसेही सज्जनोंका कल्याण होना संभव है। परमेश्वर केवल अहिंसाशीलही नहीं और केवल हिंसाशील भी नहीं, परंतु सबके कल्याणके लिये वह अहिंसाशील है और उस अहिंसाकी सिद्धिके लिये यदि किसीकी हिंसा करनी आवश्यक हुई तो वह उतनी हिंसा भी अवश्यही करता है।

मुख्य उद्देश्य सबका सच्चा कल्याणही है। इसलिये सबकी सुरक्षा होना आवश्यक है। सबकी सुरक्षाका दूसरा नाम अहिंसा है। यह ध्येय है। सबको इस जनताके परम कल्याणके लियेही यत्न करना चाहिये। यह करनेके समय कई दस्यु ऐसे खडे होते हैं कि वे विना दण्ड दिये अथवा किसी समय उनका वध किये विना वे शान्त नहीं होते और अच्छे कार्यमें विगाड करते हैं। सबके कल्याण करनेके लिये इनको दूर करना आवश्यक ही होता है। इतनी हिंसा आवश्यक होनेके कारण क्षम्य है।

इसलिये इस सूक्तमें कहा है कि "ब्रह्मद्विषे [illegible] हन्तवै रुद्राय धनुः आ तनोमि। (मं० ६)" ज्ञा[illegible] द्वेष करनेवाले घातपात करके सबको कष्ट देनेवाले [illegible] वध करनेके लिये वीरभद्रके हाथमें [illegible] धनुष्य देती है। जिससे वह वीरभद्र उस [illegible] वध करके जनताको शान्तिसुख दे सकता है। ज्ञानका विरोधी या घातपात करनेवाला जो होगा वही दस्यु वधार्ह है। यहां हिंसा वृत्तिपर मर्यादा रखी है। पर राष्ट्रशासनमें इसकी आवश्यकता है इतनाही यहां कहा है।

पाठक इस सूक्तका मनन अच्छी तरह करें और वैदिक राज्य शासनके विषयका इससे ज्ञान प्राप्त करें। वेदका राज्यशासन किस तरह अध्यात्माधिष्ठित है वह बात इस सूक्तसे सिद्ध होती है।

व्यक्तिमें शान्ति !

राष्ट्रमें शान्ति !!

और विश्वमें शान्ति स्थापन हो !!!

वागाम्भृणी ऋषिका के दर्शनकी

विषयसूची

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(१७)

विश्वकर्मा ऋषिका दर्शन

" विश्वकल्याणके लिये सर्वस्व समर्पण "

(ऋग्वेदका ७९ वाँ अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, साहित्य-वाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालङ्कार,

अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, आनन्दाश्रम, पारडी [जि० सूरत]

संवत् २००६, सन १९४९

विश्वकर्मा ऋषि

प्राचीन कालमें ' विश्व-कर्मा ' इस नामके अनेक सुप्रसिद्ध पुरुष हुए थे। स्वायंभुव मन्वंतरका प्रजापति विश्वकर्मा था—

विश्वकर्मा-कृतिपतिः ततो मनुश्चाक्षुषोऽभूत् ।
(श्री० भा० ६।६।१५)

यह विश्वकर्मा आकृतिका पति था। इससे चाक्षुष मनु उत्पन्न हुआ।

विश्वकर्मा नामक एक देवता भी ऋग्वेदमें है और ऋषि भी है। इन सूक्तोंमें (ऋ० १०।८१-८२) देखो। यह देवता यज्ञके लिये योग्य थी इतनाही नाहीं अपितु सब देवताओंके नाम यही अकेला धारण करता था, इतना इसका महत्त्व था।

यह सूक्त-द्रष्टा ऋषि था। ऐ० ब्रा० में इसके विषयमें ऐसा लिखा है—

एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण कश्यपो विश्वकर्माणं भौवनं अभिषिषेच । तस्मादु विश्वकर्मा भौवनः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन्, परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे । भूमिर्ह जगावित्युदाहरन्ति, 'न मा मर्त्यः कश्चन दातुमर्हति, विश्वकर्मन् भौवन ! मां दिदासिथ। निमंक्ष्येऽहं सलिलस्य मध्ये, मोघस्त एष कश्यपायाऽऽस संगर इति ॥
(ऐ० ब्रा० ८।२५)

'इस ऐन्द्रमहाभिषेक विधिसे कश्यप ऋषिने भुवन-पुत्र विश्वकर्मा राजाको अभिषेक किया था। इसके प्रभावसे चारों दिशाओंकी भूमि उसने विजय करके प्राप्त की और उसने अश्वमेध किया । दक्षिणाके रूपने उसने भूमि कश्यपको देनेका निश्चय किया। भूमि उस राजाके पास उस समय गयी और कहने लगी कि- 'हे भौवन विश्वकर्मन् राजन् ! आजतक किसी मर्त्यने भूमिका दान नहीं किया। (सर्वस्व दानके प्रसंगमें भी भूमिदानका निषेध है। ऐसा होते हुए भी तू मुझे कश्यप ऋषिको दान देना चाहता है।) इस कारण मैं समुद्रमें डूब जाती हूं और ऐसा होनेपर भूमिदान करनेका तेरा प्रयत्न व्यर्थ होगा। '

इस तरह यह विश्वकर्मा भुवनपुत्र सम्राट् है, यह महाप्रतापी राजा था और इसका ऐन्द्रमहाभिषेकसे बडा महोत्सव किया गया था। कश्यप ऋषि इसके सम-कालीन थे। वेही इसके यज्ञके पुरोहित थे । इसने कश्यपको भूमिका दान किया, परंतु वह भूमि कश्यप ऋषिके पास न रही ऐसा उक्त ऐतरेय ब्राह्मणके वचनसे स्पष्ट प्रतीत होता है। शतपथ-ब्राह्मणमें भी ऐसाही कहा है—

तेन हैतेन विश्वकर्मा भौवन ईजे । तेनेष्ट्वा अत्यतिष्ठत् सर्वाणि भूतानि । इदं सर्वमभवत् अतितिष्ठति सर्वाणि भूतानि । इदं सर्वं भवति। य एवं विद्वान् सर्वमेधेन यजते । यो वा एतदेवं वेद॥१४॥ तं ह कश्यपो याजयांचकार । तदपि भूमिः श्लोकं जगौ । ' न मा मर्त्यः कश्चन दातुमर्हति विश्वकर्मन् भौवन मंद आसिथ। उपमंक्ष्यति स्या सलिलस्य मध्ये मृषैष ते संगरः कश्यपाय ' इति ॥१५॥
(श० ब्रा० १३।४।३।७।१४-१५)

" उस सर्वमेध यज्ञसे भुवनपुत्र विश्वकर्माने यज्ञ किया। सर्वमेध यज्ञ करके अपने सर्वस्वका दान करनेसे वह सबसे श्रेष्ठ बना । जो इस तरह सर्वमेध करता है और जो यह जानता है वह सबसे श्रेष्ठ होता है। इसका पौरोहित्य कश्यप ऋषिने किया था। विश्वकर्माने कश्यपको भूमिका दान करनेकी तैयारी की उस समय भूमिने कहा-' हे बुद्धिहीन (मन्द) विश्वकर्मन् ! आजतक कोई मर्त्य मेरा दान करनेमें समर्थ नहीं हुआ। मैं इस जलमें डूब जाऊंगी। तुम्हारी यह प्रतिज्ञा मिथ्या सिद्ध होगी और कश्यपको भूमि नहीं मिलेगी। ' "

इस कथाका तात्पर्य ऐसा प्रतीत होता है कि सम्राट् विश्वकर्माने कश्यप ऋषिको उनके पौरोहित्य करनेके कार्यके लिये दक्षिणा रूपमें भूमिका दान तो किया, पर वह भूमि या तो नदी-प्रवाहसे बह गयी अथवा वह भूमि जलके अन्दर डूब गयी या वहां पानी अधिक आकर निकम्मी हुई। जो कुछ भी हुआ हो। यह सर्वमेध करनेवाला

सम्राट् विश्वकर्मा था और पूर्वोक्त ऐतरेय ब्राह्मणके वचनके साथ इस शतपथके वचनका मेल है।

शिल्पी विश्वकर्मा

कईयोंके मतसे 'भुवना' स्त्रीका विश्वकर्मा पुत्र है। प्रभास वसु और वरस्त्रीका पुत्र विश्वकर्मा है ऐसा कईयोंकी संमति है। वरस्त्रीका नामही 'भुवना' होगा। देवोंके लिये इस विश्वकर्माने विमान बनाये और देवोंके अनेक नगरोंकी रचना भी इसीने की थी।

विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा -

इस विश्वकर्माकी कन्या 'संज्ञा' नामकी थी वह विवस्वान्के साथ ब्याही थी। संज्ञाको विवस्वान् सूर्यका तेज नहीं सहन हुआ, इसलिये उसने अपने स्थानपर 'छाया' को रखा और स्वयं पिताके घर आकर रहने लगी !! जब विवस्वान्को पता लगा कि अपनी धर्मपत्नी संज्ञा घरमें नहीं है और उसके स्थानपर उसकी संमतिसे दूसरी ही स्त्री आकर रहने लगी है, तब उस विवस्वान् सूर्यने अपने श्वशुर विश्वकर्माके पास जाकर, सब वृत्तान्त उसेको निवेदन किया।

तब विश्वकर्माने अपनी पुत्री 'संज्ञा' से पूछा कि ऐसा क्यों किया ? तब उसने कहा कि 'मैं क्या करूं, मैं विवस्वान्का तेज सहन नहीं कर सकती।' यह सुनकर विश्वकर्माने विवस्वान् सूर्यको तेज कम किया, और अधिक हुआ उसका तेज उससे निकाल दिया और अपने पास रख लिया। यह देखकर 'संज्ञा' तप करनेके लिये पिताके घरसे भी चली गयी। पतिके घर नहीं गयी !

विवस्वान्से जो तेज उन्होंने निकाल कर अपने पास रखा था उस तेजसे उन्होंने शस्त्र बनाये। 'सुदर्शन' बना कर विष्णुको दिया, त्रिशूल बनाकर श्री शंकरको दिया और वज्र बनाकर इन्द्रको दिया।

(देखो- पद्मपुराण सृ० ८)

विश्वकर्माके रचे नगर

विश्वकर्माने अनेक नगरोंकी रचना की थी धृतराष्ट्रके लिये इन्द्र-प्रस्थ नगर बसाया—

इन्द्र-प्रस्थ

ततः पुण्ये शिवे देशे शान्तिं कृत्वा महारथाः।
स्वस्तिवाच्य यथान्यायं इन्द्रप्रस्थं भवत्विति ५८
तत्पुरं मापयामासु द्वैपायनपुरोगमाः।
ततः स विश्वकर्मा तु चकार पुरमुत्तमम् ॥ ५९ ॥
(म० भा० आदि० २२७, कुंभ०)

'पुण्य प्रदेशमें शान्तिपाठ और स्वस्तिवाचन करके इन्द्रप्रस्थकी रचना करनेका प्रारंभ किया। व्यास महर्षि आदिकोंने उस भूमिका माप लिया और विश्वकर्मासे उत्तम नगरकी रचना की।'

यह धृतराष्ट्रके समयका विश्वकर्मा है। यह श्लोक कुंभकोणके म० भारतमेंही मिलता है। इसलिये यह उतना विश्वास रखनेयोग्य भी वचन नहीं होगा। यह विषय खोज करनेयोग्य है। भगवान् श्रीकृष्णके लिये द्वारका नगरीकी रचना विश्वकर्माने की थी—

द्वारका

इति संमन्त्र्य भगवान्दुर्गं द्वादशयोजनम्।
अन्तः समुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥५०॥
दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम्।
रथ्या च त्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम् ॥५१
(भा० भा० ८।५०)

ऐसा विचार करके द्वादश योजन लंबी चौडी समुद्रके अन्दर द्वारका नामक नगरी बसायी। इस नगरीकी रचनामें त्वष्टाकी शिल्पनिपुणता देखी जा सकती है। मार्ग, गलियाँ, चौराहे आदि सब सुख-साधन वहां बनाये थे।' त्वष्टाकी निपुणता विश्वकर्माकीही है।

'वृंदावन' निर्माण करनेकी कथा ब्रह्मवैवर्त-पुराणमें (४।१७ में) है। इन्द्रके लिये लंका बनानेका वर्णन वाल्मीकीय रामायणमें है—

लंका

तेर्बध्यमानास्त्रिदशाः सर्षिसंघाः सचारणाः।
त्रातारं नाधिगच्छन्ति निरयस्था यथा नराः॥१८॥
अथ ते विश्वकर्माणं शिल्पिनां वरमव्ययम्।
ऊचुः समेत्य संहृष्टा राक्षसा रघुसत्तम ॥१९॥

गृहकर्ता भवानेव देवानां हृदयेप्सितम् ।
अस्माकमपि तावत्त्वं गृहं कुरु महामते ।
महेश्वरगृहप्रख्यं गृहं नः क्रियतां महत् ॥२२॥
विश्वकर्मा ततस्तेषां राक्षसानां महाभुजः ।
निवासं कारयामास शक्रस्येवामरावतीम् ॥२३॥
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायता ।
स्वर्णप्राकारसंवीता हेमतोरणसंवृता ।
मया लंकेति नगरी शक्राज्ञेन निर्मिता ॥२६॥

(वा० रा० उत्तर० ५)

" उन्होंने शिल्पिश्रेष्ठ विश्वकर्माको बुलाया और कहा कि एक नगरी हमारे लिये बना दो। उसने ३० योजन चौडी और सौ योजन लंबी लंका नगरी इन्द्रकी आज्ञासे बनायी।" इस लंकाका बनानेवाला विश्वकर्माही था।

तिलोत्तमा अप्सरा भी विश्वकर्माने निर्माण की (म०भा० आदि० २३१), त्रिपुरासुरकी नगरीको जलानेके समय जिस रथपर वीरभद्र रुद्रदेव विराजे थे वह रथ भी इसीने बनाया था (म०कर्ण २६)। दधीचि ऋषिकी हड्डियोंके अस्त्र भी इसीने बनाये थे—

वज्र-निर्माण

दध्यङ्ङाथर्वणस्त्वष्ट्रे वर्माभेद्यं मदात्मकम् ।
विश्वरूपाय यत्प्रादात् त्वष्टा यत्त्वमधास्ततः ॥५३॥
ततस्तैरायुधश्रेष्ठो विश्वकर्माविनिर्मितः ।
येन वृत्रशिरो हर्ता मत्तेज उपबृंहितः ॥५४॥

(श्री० भाग० ६।१०)
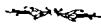
' अथर्व-कुलोत्पन्न दधीचि ऋषिकी हड्डियोंसे विश्वकर्माने वज्र बनाया जिससे इन्द्रने वृत्रासुरका सिर काटा था।'

विश्वकर्माने एक वार यज्ञमें ब्रह्माका मुण्डन किया था। अर्थात् यह हजामत बनानेमें भी प्रवीण था।

(पद्म पु० स० १६)

विश्वकर्माने एक ग्रंथ वास्तुशास्त्र-स्थापत्यविद्या-पर लिखा है। (मत्स्य पु० २५२)

घृताची अप्सरा

विश्वकर्माके साथ घृताची अप्सराका शरीर-संबंध हुआ। यह विदित होतेही उस अप्सराको देवोंने ऐसा शाप दिया कि 'तुम्हारा जन्म पृथ्वीपर होगा।' शापसे गोपीके घरमें घृताचीका जन्म हुआ। उसको पूर्वजन्मका स्मरण था इस कारण उन्होंने विवाह नहीं किया। विश्वकर्माको भी उक्त कारण शाप हुआ। तदनुसार वह एक ब्राह्मणके घरमें जन्मा। पश्चात् बहुत समय व्यतीत होनेपर प्रयाग-क्षेत्रमें गंगातीरपर इन दोनोंका परस्परको दर्शन हुआ। उनमें प्रेम भी बना। इन दोनोंके संबंधसे माली, कासार, सुतार, सुनार, कुम्हार, पत्थरका काम करनेवाले आदि अनेक जातिके लोग निर्माण हुए। इस समयमें भी इन दोनोंको पूर्वजन्मका स्मरण था, तो भी वे परस्पर प्रेम करने लगे। (ब्रह्मवै० पु० १।१०)

त्वष्टा तथा विरोचनकी पुत्री यशोधरासे भी एक विश्वकर्मा जन्मा है। तथा वसुवर्ती देवोंमें एक विश्वकर्मा है। ऐसे ४।५ विश्वकर्मा उत्पन्न हुए हैं। हमारे मतसे जिसका वर्णन ब्राह्मण-ग्रंथोंमें है वही हमारे सूक्तोंका द्रष्टा विश्वकर्मा है।

स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम'
पारडी (जि. सूरत)
श्रावण शुद्ध १, संवत् २००६

निवेदनकर्ता
पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

मुद्रक तथा प्रकाशक— वसंत श्रीपाद सातवलेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, पारडी (जि० सूरत)

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

विश्वकर्मा ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका ७९ वाँ अनुवाक)

[विश्वकल्याणके लिये सर्वस्व समर्पण]

(ऋ० १०।८१) ऋषिः- विश्वकर्मा भौवनः । देवता- विश्वकर्मा ।
छन्दः- त्रिष्टुप्, २ विराड् रूपा ।

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश
किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः २

अन्वयः- १ नः ऋषिः होता पिता न्यसीदत्, यः इमा विश्वा भुवनानि जुह्वत्, सः आशिषा द्रविणं इच्छमानः प्रथमच्छत् अवरान् आ विवेश ॥

अर्थ-१ हमारा अतीन्द्रियार्थदर्शी याजक पिता यज्ञस्थानमें बैठ गया । उसने इन सब भूतोंका हवन किया । वह शुभेच्छासे धन चाहता हुआ, प्रथम सबको आच्छादन करनेवाला अर्थात् सर्वोपरि होता हुआ भी, पश्चात् नीचेसे नीचे रहनेवालोंमें भी मिल गया ॥

अन्वयः-२ किं स्वित् अधिष्ठानं आसीत् ? आरम्भणं कतमत् स्वित् ? कथा आसीत् ? विश्वचक्षाः विश्वकर्मा यतः भूमिं जनयन्, महिना द्यां वि और्णोत् ॥

अर्थ-२ उसके लिये भला कौनसा आधार था ? उसने आरम्भ कहांसे किया ? और कैसा किया ? इस सर्वद्रष्टा विश्वकर्माने किससे भूमिको बनाया और पश्चात् अपनी महिमासे द्युलोकको कैसे भला विस्तृत बना दिया ?

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ ३

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ ४

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥ ५

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ ६

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥ ७

अन्वयः- ३ विश्वतः- चक्षुः, उत विश्वतः- मुखः, विश्वतः- बाहुः, उत विश्वतः- पात् एकः देव, द्यावा-भूमी जनयन्, पतत्रैः बाहुभ्यां सं स धमति ॥

अर्थ-३ सब ओर आंखवाला, और सब ओर मुखवाला, सब ओर बाहुवाला और सब ओर पाववाला एक देव, द्युलोक और भूलोकको बनाकर, अपने पावों और बाहुओंसे सबको इकट्ठा करके उनमें गति उत्पन्न करता है ॥

अन्वयः-४ किं स्वित् वन, क उ स वृक्ष आस, यतः द्यावा-पृथिवी निष्टतक्षुः । यत् भुवनानि धारयन् अध्यतिष्ठत्, तत् इत् उ हे मनीषिणः ! मनसा पृच्छत ॥

अर्थ-४ वह कौनसा वन है, उसमें वह कौनसा वृक्ष है, जिससे द्युलोक और भूलोक बनाये गये हैं ? जो सब भुवनोंको धारण करके उसका अधिष्ठाता होता है, उसके विषयमें निश्चयसे, हे ज्ञानी लोगों ! मननपूर्वक विचार करो ॥

अन्वय -५ हे विश्वकर्मन् ! ते या परमाणि धामानि, या अवमा, या उत इमा मध्यमा, हविषि सखिभ्यः शिक्ष; हे स्वधावः स्वयं वृधानः तन्वं यजस्व ॥

अर्थ-५ हे विश्वकी रचना करनेवाले प्रभो ! तेरे जो परमश्रेष्ठ धाम हैं, तथा नीचले और बीचके धाम हैं, उनके विषयमें ज्ञान हवनके समय हम सब मित्रोंसे कहो, हे अपनी शक्तिसे रक्षण करनेवाले ! स्वय बढकर अपने शरीरका यज्ञ करो ॥

अन्वयः-६ हे विश्वकर्मन् ! हविषा वावृधानः स्वयं पृथिवी उत द्यां यजस्व । अन्ये जनासः अभितः मुह्यन्तु । इह अस्माकं सूरिः मघवा अस्तु ॥

अर्थ-६ हे विश्वके रचयिता प्रभो ! हवनके अर्पणसे बढता हुआ तू स्वयं पृथिवी और द्युलोकका यजन कर ! अन्य लोग (जो यज्ञमें भी नहीं आते वे) चारों ओर मूढ बनकर भटकते फिरें । यहां हमारा प्रमुख ज्ञानी धनवान् बने ॥

अन्वय- ७ अद्य वाचस्पतिं मनोजुवं विश्वकर्माणं ऊतये वाजे हुवेम । सः नः विश्वानि हवनानि जोषत्, साधुकर्मा विश्वशम्भूः अवसे भवतु ॥

अर्थ-७ आज ज्ञानपति मनोवेगवाले विश्वके रचयिता प्रभुको हम अपनी सुरक्षा और अन्नप्राप्तिके लिये यज्ञ करते हैं । वह हमारे सब यज्ञोंका सेवन करे, वह उत्तम कर्म करनेके कारण सबका कल्याण करता है, वही हमारी सुरक्षा करे ॥

(ऋ० १०।८२) ऋषिः-विश्वकर्मा भौवनः । देवता- विश्वकर्मा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अदद्दहन्त पूर्व आदिद्द्यावापृथिवी अप्रथेताम् १
विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन्पर एकमाहुः २
यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ३
त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ४
परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ५

अन्वयः-१ चक्षुषः पिता, मनसा हि धीरः,घृतं एने नम्नमाने अजनत् । यदा इत् पूर्वे अन्ताः अदद्दहन्त, आत् इत् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥

अर्थ-१ एक दृश्य विश्वका पिता, मनसे भी गम्भीर है, उसने जल और ये नम्रायमान द्यु और पृथिवी बनायी। जब पहिले इसके अन्तिम भाग सुदृढ हुए, तब द्यु और पृथिवी विस्तृत हो गयी ॥

अन्वयः- २ विश्वकर्मा विमनाः आत् विहायाः धाता विधाता परमा उत संदृक्, सप्तऋषीन् परः एकं आहुः । यत्र तेषां इष्टानि इषा सं मदन्ति ॥

अर्थ-२ विश्वरचक, मननशील, सर्वव्यापक, निर्माता विधारक, परमश्रेष्ठ और सर्वद्रष्टा है, वह सप्त ऋषियोंके परे अकेलाही एक है ऐसा कहते हैं । जहां उनके अभीष्ट मिष्ट अन्नसे आनन्द देनेवाले होते हैं ॥

अन्वयः-३ यः नः पिता, जनिता,यः विधाता विश्वा धामानि भुवनानि वेद । यः देवानां नामधाः एक एव । तं संप्रश्नं अन्या भुवना यन्ति ॥

अर्थ-३ जो हमारा पिता, जनक है,जो धारणकर्ता और सब भुवनोंको जानता है । जो सब देवोंके नाम स्वयं धारण करता है वह एकही है । उस वर्णनीयको सब अन्य भुवन प्राप्त होते हैं ॥

अन्वयः-४ ते पूर्वे जरितारः ऋषयः, भूना न, अस्मै द्रविणं सं आयजन्त । ये असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते इमानि भूतानि समकृण्वन् ॥

अर्थ-४ वे प्राचीन समयके ऋषि, अपनी महिमासे इस प्रभुके लिये अपने संपूर्ण धनका यज्ञ करते रहे । और वे अचल तथा चल इस रजोलोकमें निमग्न हुए इन भूतोंको निर्माण करते रहे ॥

अन्वयः-५ दिवः परः, एना पृथिव्याः परः, देवेभिः असुरैः परः यद् अस्ति । आपः कं गर्भं स्वित् प्रथमं दध्रे, यत्र विश्वे देवाः समपश्यन्त ॥

अर्थ-५ द्युलोकके परे, इस पृथिवीके परे, तथा देवों और असुरोंके भी परे जो है । (उसमेंसे) जलोंने द्वारा कौनसा गर्भ प्रथम धारण किया गया जहां सब देव इकट्ठे होकर परस्परोंको देखते रहते हैं ॥

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ६

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ७

अन्वयः- ६ तं गर्भं इत् प्रथमं आपः दध्रे, यत्र विश्वे देवाः समगच्छन्त । अजस्य नाभौ अधि एकं अर्पितं, यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥

अर्थ- ६ इस गर्भको निःसंदेह प्रथम जलोंने धारण किया था, जिसमें सब देव एकत्रित हुए थे । अजन्मा आत्माकी नाभिमें एक सत्त्व रखा है, जिसमें सब भुवन रहते हैं ॥

अन्वयः- ७ तं न विदाथ, य इमा भूतानि जजान । अन्यत् युष्माकं अन्तरं बभूव । नीहारेण प्रावृताः जल्प्या च असुतृपः उक्थशासः चरन्ति ॥

अर्थ- ७ उसको तुम नहीं जानते, जिसने ये सब भुवन निर्माण किये ? दूसराही तुम्हारे अन्दर बडा अन्तर हुआ है । कुहरसे ढंके जगत्के समान कई बकवास करनेवाले, कई अपने प्राणोंको तृप्त करनेवाले और कई वेदाज्ञाकी केवल प्रशंसाही करनेवाले मानव यहां चारों ओर घूम रहे हैं ॥

विश्वकर्मा ऋषिका तत्त्वज्ञान

यहां ऋषि विश्वकर्मा है और देवता भी विश्वकर्माही है । वेदमें कई स्थानोंपर ऋषि नाम और देवता-नाम एक भी हैं । इसका अर्थ ऋषि और देवता एकही है ऐसा नहीं है । परंतु विश्वकर्मांका वर्णन करनेसे उसको विश्वकर्मा नाम प्राप्त होनेका संभव अधिक है ।

'विश्व-कर्मा' का अर्थ 'सब कर्म करनेवाला, अथवा विश्वका निर्माता' यह है । दूसरा अर्थ यहां अभीष्ट है । अर्थात् इस सूक्तका देवता 'विश्वका निर्माता' परमेश्वर है । इसका वर्णन करनेके कारण ऋषिका नाम भी यही हुआ । यह ऋषि विश्वकर्मा है और 'भुवन' का पुत्र भी है । भुवन नाम जगत्का है । जगत् रचनाका विचार करनेवाला, भुवनोंका निर्माण कैसा किया जाय अथवा कैसा हुआ इसका मनन करनेवाला यह ऋषि है । इस विषयका मनन करके अपनी विद्याका जो प्रकाश किया, वही स्फुरणद्वारा इस सूक्तमें प्रकाशित हुआ, वही यह सूक्त है । इस विश्वविद्याके अतिरिक्त अन्यान्य उपदेश भी इस सूक्तमें पाठक देख सकेंगे । जिनका विचार हम स्थान स्थानपर करेंगे और बतायेंगे कि इस मन्त्रभागसे यह बोध मानव-व्यवहारका मिलता है और यह बोध अध्यात्म-विद्याका है, तथा यह समाज-धारणका है । इत्यादि रीतिसे हम आगे स्थान स्थानपर बतायेंगे ।

पारिवारिक उपासना

पति, पत्नी, पुत्र, भाई, बहिन, इष्टमित्र आदि बैठकर जो उपासना की जाती है, उसका नाम पारिवारिक उपासना है । प्रथम मन्त्रका प्रथमार्ध पारिवारिक उपासनाका निर्देश करता है—

नः पिता न्यसीदत्, जुह्वत् । (मं० १)

"हमारा पिता बैठता है और हवन करता है ।" साथ साथ हम भी बैठते हैं । अर्थात् पुत्र-पुत्रियां भी बैठती हैं, और उपासना करती हैं । यह उपदेश अन्यत्र आये वेदमंत्रके अनुसारही है—

सम्यञ्चो अग्निं सपर्यत
आरा नाभिं इव अभितः । (अथर्व ३।३०।६)

'इकट्ठे मिलकर अग्निकी उपासना करो, और उपासनाके समय चक्रकी नाभि स्थानमें अग्नि सिद्ध किया हो और

उपासक चारों ओर आरो जैसे बैठे हों। 'इस (३।३०) अथर्वसूक्तमें इस मन्त्रके पूर्वमन्त्रोंमें पिता, माता, भाई, बहिन आदिका उल्लेख है, वे पद अनुवृत्त होकर इस मन्त्रमें आते हैं और वे सब पारिवारिक जन चारों ओर बैठकर अग्निकी उपासना अर्थात् हवन करें ऐसा बोध मिलता है। इस (३।३०) सूक्तके अनुसंधानसे इस प्रथम मन्त्रको देखना योग्य है। 'न पिता न्यसीदत्, जुह्वत् (मं० १), हमारा पिता हमारे साथ यजन स्थानमें बैठ गया और उसने हवन किया। यहां बोलनेवाले पुत्र हैं, उनका प्रतिदिनका पारिवारिक उपासनामें बैठनेका अनुभव है।' हमारा पिता यज्ञस्थानमें बैठता है और हवन करता है।' यह पिताकी दैनंदिन परिपाटीही यहां कही जा रही है।

हवनकर्ता पिता

'न होता पिता न्यसीदत् जुह्वत् (मं० १),— हमारा पिता प्रतिदिन हवन करता है, हवन करनेके लिये यज्ञशालामें बैठता है। वह प्रतिदिन हवन करता है, इसी लिये उसका नाम 'होता' हुआ है। यह हवन करनेवाला होनेके कारणही वह नित्य नियमसे (जुह्वत्) हवन करता रहता है। यह पिता अपने दैनंदिन हवनसे सब पारिवारिक जनोंको आदेशही देता रहता है कि इसी तरह प्रतिदिन हवन करना चाहिये। यह पिता अपने आचरणसे दूसरोंको उपदेश देता है। वह स्वयं करता है और दूसरोंको वैसा करनेका उपदेश भी देता है। जैसा तुम स्वयं करोगे वैसा ही दूसरोंको कहो, तो उस उपदेशका परिणाम अच्छा होगा।

पिता ऋषि है

हमारा पिता यज्ञशालामें बैठता है और हवन करता है वह ऋषि है,वह अतीन्द्रिय दिव्य दृष्टिवान् है। वह द्रष्टा है, ज्ञाता है,संशोधक है, निर्माता है, वह कवि है, वह बहुश्रुत, है। ऐसा परम ज्ञानी पिता जिन पुत्रोंको मिला हो, वे पुत्र धन्य हैं। क्योंकि वे अपने पिताके आचरणके समान स्वयं आचरण करके कृतकृत्य होते हैं। कितना धन्य है ऐसा परिवार जहां मुख्य पुरुष ऋषि होता है।

शुभविचारसे द्रव्यप्राप्ति

वह हमारा पिता 'स आशिषा द्रविणं इच्छमानः' (मं० १)- शुभ कल्याणमयी विचारधाराओंसेही धनकी वृद्धि करना चाहता है। सबका कल्याण हो और हमारा धन भी बढे ऐसी उसकी इच्छा रहती है। बुरे साधनोंसे अपने धनको वृद्धि वह करना नहीं चाहता, प्रत्युत कल्याण मंगल कामनाके साथ धन बढे यह उसकी इच्छा होती है। यहां 'साधनकी शुद्धि' रखनी चाहिये यह उपदेश है। मेरा पिता मंगल कामनाके साथ अपने धनकी वृद्धि करना चाहता है, इससे पुत्र भी साधन-शुद्धिका विचार अवश्य रखें यह बोध मिलता है। यह प्रत्येक कायम अत्यावश्यक है। साध्य भी शुद्ध चाहिये और उसके साधन भी शुद्ध रहने चाहिये।

श्रेष्ठोंका कनिष्ठोंसे मेल

'स प्रथमच्छद् अवरान् आ विवेश' (मं० १)— वह सबको आच्छादन करनेवाला था अर्थात् वह सर्वोपरि था, तथापि वह नीचसे नीचके साथ रहने लगा। वह अपनी उच्चताकी घमण्डसे न रहा, परंतु स्वयं (होता ऋषि पिता) याजक ऋषि और पिता होता हुआ भी, अर्थात् स्वयं विद्वान् ऋत्विज होता हुआ भी (अवरान् आ विवेश) नीचसे नीच जो हैं उनमें यह जाकर रहने लगा। अर्थात् इतना बडा होनेपर भी कनिष्ठोंमें मिलता रहा, इसलिये यह अधिक जनताद्वारा सन्मान पाने लगा।

अर्थात् जो इस तरह स्वयं श्रेष्ठ होते हुए भी अपनी श्रेष्ठताकी घमण्डमें न रहकर नीचोंमें भी जो अत्यन्त कनिष्ठ होंगे उनमें मिलजुलकर रहने लगा, अपने आचरणसे उनपर प्रभाव डालकर उनकी भी पवित्रता बढाने लगा, उनकी अवस्थाका सुधार करने लगा, तो उसकी योग्यता निःसंदेह अधिक समझी जायगी। यहां श्रेष्ठोंका मेल कनिष्ठोंके साथ होना चाहिये यह उपदेश है। ज्ञानसे वीर्यसे धनसे और कौशलसे मनुष्य श्रेष्ठ होता है और इनसे जो हीन होंगे वे नीच या कनिष्ठ समझे जाते हैं। श्रेष्ठ अपने आपको कनिष्ठोंसे पृथक् न समझें, प्रत्युत कनिष्ठोंमें जाना, उनका उद्धार

करना, उस कार्यके लिये उनकी सेवा करना ये अपने कर्तव्य समझें।

परमात्माका वर्णन

इस मन्त्रमें तथा आगामी मंत्रोंमें परमात्माका वर्णन है, पर वह ऐसे शब्दोंसे किया है कि उससे मनुष्य अपने लिये भी योग्य बोध प्राप्त कर सकता है। (सः प्रथमच्छद् अवरान् आ विवेश) वह पहिलेसे सब विश्वको आच्छादन करनेवाला है, परंतु वह क्षुद्रसे क्षुद्र पदार्थमें भी घुस कर रहा है। इस वर्णनसे मनुष्य उक्त बोध ले सकते हैं और हीनोंकी सेवा करके उनके उद्धारका यत्न कर सकते हैं।

परमेश्वर सदाही (आशिषा द्रविणं इच्छमानः) शुभ कामनासे धनकी वृद्धि करनेवाला है क्योंकि वहां अशुभ इच्छा होना भी संभव नहीं है। परमेश्वर ऋषि होता और सबका पिता है ही। वह यज्ञ (न्यसीदत्) करनेके लिये बैठता है और सब (विश्वा भुवनानि जुह्वत्) भुवनोंकाही हवन करता है। सब विश्व उसके पास होता है, वही उसका धन है, वह सब वह विश्वके कल्याणके लिये अर्पण करता है। इस यज्ञका उत्तम वर्णन शतपथ ब्राह्मणमें है वह देखिये—

सर्वमेध

ब्रह्म वै स्वयम्भु तपोऽतप्यत। तदैक्षत, न वै तपस्यानन्त्यमस्ति। हन्ताहं भूतेषु आत्मानं जुहवानि भूतानि चात्मनि इति, तत् सर्वेषु भूतेषु आत्मानं हुत्वा भूतानि चात्मनि, सर्वेषां भूतानां श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यं आधिपत्यं पर्यैत्, तथैवैतद्यजमानः सर्वमेधे सर्वान् मेधान् हुत्वा सर्वाणि भूतानि श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यं आधिपत्यं पर्येति ॥१॥......तेन हैतेन विश्वकर्मा भौवन ईजे। तेन हैष्ठात्यतिष्ठत्सर्वाणि भूतानीदं सर्वमभवत्, अतिष्ठति सर्वाणि भूतानि, इदं सर्वं भवति य एवं विद्वान् सर्वमेधेन यजते यो वैतदेवं वेद ॥१४

(श० ब्रा० १३।२।७।१-१४)

" स्वयंभु ब्रह्मने तप किया। और देखा कि तपकी अनन्तता नहीं है। यह देख कर उसने कहा कि मैं अपने आपको सब भूतोंमें और सब भूतोंको अपने आत्मामें हवन करूंगा। उसने पश्चात् अपने आपका सब भूतोंमें हवन किया और सब भूतोंका अपने आत्मामें हवन किया। इससे वह सब भूतोंमें सबसे श्रेष्ठ बना और उसे स्वाराज्य और सबका आधिपत्य प्राप्त हुआ। जो यजमान इस तरह अपना सब भूतोंमें हवन करेगा वह सबसे श्रेष्ठ बनेगा और स्वाराज्य और आधिपत्य उसे प्राप्त होगा (१) ... इस सर्वमेध यज्ञका अनुष्ठान भुवनपुत्र विश्वकर्माने किया। जिससे वह सब भूतोंमें श्रेष्ठ हुआ और वही यह सब बना। जो इस सर्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करता है, वह सब भूतोंमें श्रेष्ठ बनता है और वह यह सब बनता है।"

यह सर्वमेध यज्ञ है। सर्वमेधमें अपने सर्वस्वका समर्पण किया जाता है। यह यज्ञ सबसे प्रथम स्वयभु ब्रह्मने किया। देखिये स्वयंभु ब्रह्म अर्थात् परमात्माने सर्वमेध यज्ञ कैसा किया। (सर्वेषु भूतेषु आत्मानं जुहवानि) मैं अपने आपको सब भूतोंमें सब भूतोंके हित करनेके लिये समर्पित करता हूं ऐसा संकल्प करके वैसाही तत्काल परमात्माने किया अर्थात् परमात्माने अपना सर्वस्व सब भूतोंमें समर्पित किया।

इस परमात्माके सर्वमेध यज्ञसे यह सब सृष्टि बनी है। परमात्मा प्रारंभमें अपने सर्वस्वका इस तरह समर्पण न करता तो यह सृष्टि इतनी रमणीय और आनन्दपूर्ण न बनती। परमेश्वरने-परमात्माने-अथवा परब्रह्मने अपना तेज दिया जिसे सूर्य बना, अपना आल्हाद दिया उससे चन्द्र बना, अपनी जीवन-शक्ति दी जिसे वायु बना, अपनी उष्णता दी जिससे अग्नि बना, शीतता अर्पण करनेसे जल बना, अपनी आधारशक्ति देनेसे पृथ्वी बनी, अपना दोष धोनेका सामर्थ्य अर्पण करनेसे ओषधियां (दोष-धि) बनी इस तरह सृष्टिमें जो जो पदार्थ आज दीख रहा है वह परमात्माके इस अतुल सर्वमेध यज्ञका फल है। सब विश्वके परम कल्याणके लियेही केवल परमात्माने यह अपने सर्वस्वका इस तरह हवन सब भूतोंमें किया और सब भूतोंमें पारमात्मिक ऐश्वर्य वैभव अथवा विभूतिमत्व प्रकट हुआ।

इस तरहका सर्वमेध यज्ञ भुवनके पुत्र विश्वकर्माने किया जिसका यह सूक्त है।

इस तरह सर्वमेध यज्ञ करनेसे परमात्माने (सर्वेषां भूतानां श्रेष्ठ्यं) सब भूतोंमें श्रेष्ठत्व प्राप्त किया और (स्वाराज्यं आधिपत्यं) स्वाराज्य तथा सबका आधिपत्य भी प्राप्त किया। भुवनपुत्र विश्वकर्माके सर्वमेध यज्ञ करनेसे उसे भी यही प्राप्त हुआ। इसलिये शतपथ-ब्राह्मणने कहा कि (यः एवं सर्वमेधेन यजते अतिष्ठति सर्वाणि भूतानि) जो सर्वमेध यज्ञ करता है वह सब भूतोंसे श्रेष्ठ होता है। यह सर्वमेधका फल है। अस्तु, परमात्मा अथवा ईश्वर सबसे श्रेष्ठ बना उसका कारण उसने पूर्ण रूपसे सर्वमेध यज्ञ किया। प्रथम मंत्रमें कहाही है कि—

सः प्रथमच्छद् अवरान् आ विवेश। (मं० १)

' जो सर्वोपरि था वह स्वयं सब निम्नस्तरवासियोंमें भी मिलजुलकर रहने लगा। ' परमात्मा यदि केवल सातवें आसमानमेंही रहता और कभी नीचेके भूमिपर रहनेवालोंसे न मिलता, तो उसे कोई पूछता भी नहीं। वैदिकधर्मका ईश्वर (प्रथमच्छद्) पहिले सबको आच्छादित करनेवाला अर्थात् सर्वोपरि था, पश्चात् सब भूत उत्पन्न हुए और वह (अवरान् आ विवेश) छोटेसे छोटे, हीनसे हीन, क्षुद्रसे क्षुद्र वस्तुमें भी घुसकर रहने लगा अर्थात् वह सर्वव्यापक होकर रहने लगा। इस कारण उसका महत्त्व विशेष हुआ। जो इस तरह सर्वमेध यज्ञ करेगा उसका भी महत्त्व बढेगा।

मनुष्योंका सर्वमेध

राष्ट्रमें रहनेवाले मनुष्य सर्वमेध यज्ञ किस रीतिसे करें यह प्रश्न यहां उत्पन्न होता है। ईश्वरने अपना सर्वस्व जगत्को दिया, सब भूतोंके लिये अर्पण किया, वैसा मनुष्य करें।

मानवसंघमें ज्ञानी, वीर, धनी और शिल्पी ऐसे चार प्रकारके लोग रहते है। उनके पास ज्ञान, वीर्य, धन और शिल्पी रूप धन रहता है, यदि वे अपना अपना धन जनताके लिये अर्पण करेंगे, और अपने उच्च स्थानपर न रहते हुए हीनतर मानवी श्रेणीमें आकर वहांकी जनतामें मिलजुल कर रहेंगे, तो वह उनका सर्वमेध यज्ञ ब्रह्माके सर्वमेधके समानही होगा। सर्वमेधमें दो तत्त्व मुख्य हैं-

१ यः भुवनानि जुहृत्। (मं० १)

अहं आत्मानं भूतेषु जुहवानि। (श० ब्रा०)

२ सः प्रथमच्छद् अवरान् आ विवेश। (मं० १)

अर्थात् "(१) अपना सर्वस्व सब भूतोंके हितार्थ समर्पण करना, और (२) अपना उच्च ऊपरका स्थान छोडकर निम्नतम स्तरके लोगोंमें आकर उनके साथ मिलजुलकर रहना। " ये सर्वमेधके दो सिद्धान्त हैं। ये यदि आचरणमें आये तो राष्ट्र-कल्याण कितना हो सकता है इसका विचार हरएक विचारी मानवको करना योग्य है। देखिये-

ब्राह्मणका सर्वमेध-ब्राह्मणका सर्वस्व ज्ञानही है। यदि यह ब्राह्मण विना प्रतिबंध अपना सत्य ज्ञान राष्ट्रके कुमारोंको देकर अपने सर्वस्व रूप ज्ञानका समर्पण करेगा, और वह ज्ञानी तत्त्वदर्शी ब्राह्मण अपने ज्ञानकी घमंड छोडकर अज्ञानियोंके अज्ञानको दूर करनेके लिये तथा उनको सदाचार और शिष्टाचारकी दीक्षा देनेके लिये उनमें आकर खूब प्रचार करेगा तो राष्ट्रका अभ्युत्थान अतिशीघ्र हो सकता है। मनुस्मृतिमें कहा है कि ' ब्राह्मणोंके अदर्शनसे म्लेंच्छ जाति बढ गयी है ' यह यहां अनुसंधान करके देखने योग्य है। वैदिक धर्म विश्वभरमें था, इसके प्रमाण आज भी मिलते हैं। प्रायः देशमें हरएक संस्कृत नामके स्थान, पर्वत, नदियां, ग्राम, लोगोंके नाम है। ये आज भी बता रहे हैं कि संस्कृत सभ्यता इन देशोंमें थी। पर अब वह कहां है ? ब्राह्मण अपनी ज्ञानकी घमण्डमें स्वकीय आश्रममेंही रहने लगे, देशदेशान्तरमें उनका भ्रमण बंद हुआ, इस कारण देशदेशान्तरके लोग वैदिक धर्मको छोडकर अन्य धर्ममें प्रविष्ट हुए। वैदिक-आर्य-धर्मके क्षेत्रके संकोचका कारण ब्राह्मणोंका सर्वमेध न होनाही है। ब्रह्मचर्य समाप्तिके पश्चात्, ब्रह्मचारियोंको और ब्राह्मण संन्यासियोंको धर्म प्रचारके लिये जगत् भरमें भ्रमण करना अत्यंत आवश्यक ही है। ईश्वरने स्वयं करके दिखा दिया और वह वेदमें कहा। इसको कण्ठ करनेवाले ब्राह्मणही वैसा न करें तो बडा अनर्थ होना स्वाभाविकही है। और ब्राह्मणोंके इस सर्वमेधके न करनेसे जो हानि हुई है उस हानिसे आर्य-धर्मका उद्धार होना आज कठिन प्रतीत होता है। चारों ओरसे आर्यधर्मके कार्यक्षेत्र संकुचित हो रहे हैं और अन्य मतमतान्तर फैल रहे हैं। यह सर्वत्र दिखाई देगा। ब्राह्मणोंका ज्ञानमय सर्वमेध न होनेसे भारतवर्षकी सब

प्रकारकी अधोगति हो चुकी है। ब्राह्मण विनष्ट हुए उसका ज्ञान नष्ट हुआ और आय राष्ट्रका जीवन भी क्षीण हुआ। और अज्ञान बढनेके कारण अज्ञानसे सब प्रकारके बन्धन उत्पन्न हुए और इन बन्धनोंमें सब विश्वको आर्य बनानेवाली जाति स्वयं पडी है। इससे अपना सब भूतोंमें हवन करनेसे और हीनतमोंमें जाकर प्रचार करनेसे कैसा लाभ होता है यही सिद्ध हुआ है। अस्तु इस तरह ब्राह्मणोंके सर्वमेधका स्वरूप पाठकोंको विदित हो सकता है।

क्षत्रियोंका सर्वमेध क्षत्रियोंका धन, वीर्य, शौर्य, सुरक्षा, सामर्थ्य है। यह संपूर्णतया जनताके लिये समर्पण करनेसे क्षत्रियोंका सर्वमेध होता है। क्षत्रियोंमें राजा, राजपुरुष, सैनिक सेनापति, ग्रामरक्षक आदि सब लोग होते हैं, ये सब इस तरह अपने सर्वस्वका जनताके हितके लिये समर्पण करेंगे तो सबका अत्यंत कल्याण हो सकता है। इसी तरह अपना संरक्षण करनेयोग्य पुरुषोंको सिखाकर उनका संरक्षण करनेके लिये योग्य बनाना भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। अपने सर्वस्वका जनताके लिये हवन करना और 'न मम' (यह मेरा नहीं, यह जनताकी भलाईके लिये अर्पण किया है) ऐसा कहना। यह क्षत्रियोंका सर्वमेध है।

वैश्योंका सर्वमेध-वैश्य धन, धान्यसंपन्न रहते हैं, इनको अपने धनका ऐसा उपयोग करना चाहिये कि जिससे सब जनताके लिये उसका उपयोग हो और उनका सुख बढ जाय। प्राचीन समयमें वापी कूप-तडाग आदि बनानेसे जनताका सुख बढ सकता था। इस समय धर्मग्रंथोंका प्रकाशन, प्रचारकोंके कार्य, सद्ग्रंथ निर्माण रुग्णालयोंका प्रबंध, शिक्षा-संस्थाओंका प्रसार, धर्मालय निर्माण, आदि अनेक ऐसे कार्य हैं कि जो धनिकोंके धनसे हो सकते हैं और इनसे जनताका लाभ हो सकता है। धनिक वर्ग अपना धन जनताके सहाय्यार्थ समर्पण करें और वे अपने आपको पृथक् न मानकर निर्धनजनोंके साथ मिलजुल कर रहें और इस तरह जनताको स्थापना करें। यह वैश्योंका सर्वमेध है।

शिल्पियोंका सर्वमेध- अपने इंद्रियोंसे शिल्पोंकी निर्मिति होती है। शिल्पकोंने अपना शिल्प-विद्याको जनतामें प्रस्तुत करके नाना शिल्पोंसे जनताका सुख बढावें। शिल्पोंसेही नाना प्रकारके सुखसाधन निर्माण होते हैं जो लोगोंका सुख बढाते है।

चारों वर्णोंका सर्वमेध-यज्ञ किस तरह हो सकता है इसका वर्णन यहांतक किया। " अहं आत्मानं सर्वेषु भूतेषु जुहवानि " अर्थात् मैं अपने आत्म सर्वस्वको सब भूतोंमें समर्पण करता हूं यह परमात्माका संकल्प है। मैं अपना सर्वस्व समर्पित करता हूं और उनका हित होगा ऐसा करता हूं। सर्वमेधका वह संकल्प है।

परमेश्वरका संकल्प

ऊपर कहा है कि ' स्वयंभु परब्रह्मने अपने आपको सब भूतोंमें हवन किया और सब भूतोंको अपने आत्मामें हवन किया।' यह परब्रह्मका सर्वमेध यज्ञ है। परमात्माके इस सर्वमेध यज्ञसेही यह सब सृष्टि हुई है। हरएक वस्तु में परमात्माकी शक्तिका परिपूर्ण समर्पण है, इस कारण यह वस्तु इस रंग रूपमें दीख रही है। ईख मीठा है और मिर्च तीखी है, इमली खट्टी है यह सब परमेश्वरके सर्वस्व समर्पणकाही परिणाम है। परमेश्वरने अपनी शक्ति प्रत्येक रूपसें तदाकार होकर वहां रखी है।

' आत्माका भूतोंमें और भूतोंका आत्मामें समर्पण यहां कहा है। अभिन्न निमित्त उपादान कारण परमात्मा होनसे ही यह हो सकता है। सोना और जेवर इनका यह संबंध है। सोनेने जेवरोंमें अपने आपको डाला, और जेवरोंने सोनेको अपनी आकृतिमें धारण किया। इसीका नाम ' आत्माका भूतोंमें, और भूतोंका आत्मामें हवन है। ' जेवरोंमें सोना है और सोनेके आधारसे जेवर हैं। इसीका नामपर ब्रह्मका सब भूतोंमें और सब भूतोंका परब्रह्ममें हवन होना है। कापासका वस्त्रोंमें और वस्त्रोंका कपासमें, मिट्टीका घडोंमें और घडोंका मिट्टीमें हवन होता है। इसका नाम एकत्व-दर्शन है,—

एकत्व-दर्शन

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥
(वा० य० ४०।७, ईश० ७)

'जिस समय सब भूत आत्माही हुए, वहां एकत्व देखनेवालेके लिये शोक और मोह किस तरह हो सकते हैं! अर्थात् वह शोक, मोहसे दूर होता है। एकत्व-दर्शन हुआ तो द्वन्द्व भाव हट गया और समभाव आ गया। यही श्रेष्ठ स्थिति है। इसीका वर्णन यहां यज्ञकी परिभाषासे किया है (अहं आत्मानं सर्वेषु भूतेषु जुहवानि, सर्वाणि भूतानि आत्मनि च) अपने आपका सब भूतोंमें हवन और सब भूतोंका आत्मामें हवन यह यज्ञीय परिभाषा है। इसका अर्थ एकत्वही है। मिट्टीका हवन घडोंमें और घडोंका मिट्टीमें होनेसे दोनोंका अटूट अभिन्न संबंध स्थिर हुआ। दोनों एकही हैं यह यहां सिद्ध हुआ। कपास वस्त्रमें है और वस्त्र कपासमें है। यह वर्णन भी एकत्वकाही है।

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥
(वा० य० ४०।६; ईश. ६)

'जो सब भूतोंको आत्मामें और आत्माको सब भूतोंमें देखता है वह निन्दित नहीं होता।' यह देखनेमें द्वैतका वर्णन है, पर यह शुद्ध एकत्वकादी दर्शन है। सब जेवर सोनेमें और सोना सब जेवरोंमें जो देखता है वही ठीक देखता है।

इतने विवरणसे मन्त्रके प्रथम विधानका स्पष्टीकरण हुआ। (*नः पिता विश्वा भुवनानि जुह्वत्*) हमारे पिता परमात्माने सब भुवनोंका हवन किया इसका भाव ब्राह्मण ग्रंथमें जो आया है वह ऊपर बताया अब निरुक्तमें इसका जो भाव बताया है वह देखते हैं—

विश्वकर्मा सर्वस्य कर्ता। तस्यैषा भवति। विश्वकर्मा विमना आद्विहाय० इति। तत्र इतिहासमाचक्षते। विश्वकर्मा भौवनः सर्वमेधे सर्वाणि भूतानि जुहवांचकार। स आत्मानमपि अन्ततो जुहवांचकार। तदभिवादिनी एषा ऋक् भवति। य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वत् इति॥ (निरु १०।२६)

'विश्वकर्माका अर्थ सर्वकर्मा है। विश्वकर्मा विमना यह मंत्र इसका वर्णन करता है। इस विषयमें एक इतिहास कहते हैं- भुवनपुत्र विश्वकर्माने सर्वमेध यज्ञ किया। इसमें सब भूतोंका हवन उसने किया और अन्तमें स्वयं अपना भी हवन किया। इसका वर्णन करनेवाला '*य इमा विश्वा*' यह मंत्र है।

इस सूक्तके जिस मंत्रपर जो निरुक्त है वह अन्तमें देंगे। और उसका विवरण भी अन्तमेंही करेंगे। अस्तु। इस तरह—

(१) विश्वकर्माका भूतोंमें हवन और सब भूतोंका विश्वकर्मामें हवन, तथा—

(२) विश्वकर्मा पिता, होता और ऋषि तथा पहिला सर्वोपरि आच्छादक होता हुआ भी वह स्वयं कनिष्ठोंमें जाकर बसने लगा।

इन दो मन्त्रभागोंका आशय क्या है इसका स्पष्टीकरण यहांतक हुआ और मानवी व्यवहारमें इसका बोध क्या लेना है इसका भी विवरण हुआ। अब थोडासा अधिक स्पष्ट करते हैं।

(१) पिता अपना वीर्य प्रदान करके पुत्रकी आकृतिमें अपने आपको हवन करता है। पुत्रके रूपमें पिताका हवन यह है।

(२) गुरु अपनी विद्याका हवन शिष्यमें करता है और उसे विद्वान् बनाकर अपनीही प्रतिकृति उस विद्वान् ब्रह्मचारीमें देखता है। यह गुरुका शिष्यमें हवन है।

इस तरहके नाना प्रकारके हवन होनेसेही यह जगद्व्यवहार सुखसे होकर फूलता फलता दिखाई देता है। यदि यह हवन बंद होगा, तो मानव मानव नहीं रहेगा, प्रत्युत मानव पशु बनेगा। मानवकी मानवता इस हवनने सुरक्षित रखी है। पाठक इसका अनुभव करें और विविध क्षेत्रोंमें इस तरहके यज्ञों और हवनों द्वारा किस तरह मानवताकी उन्नति, प्रगति और विस्तृति हो रही है यह देखें और वेदमंत्रको गम्भीरताका अनुभव करें।

प्रथम मंत्रमें '**स आशिषा द्रविणं इच्छमानः**' यह एक भाग है। धन तो सबको चाहिये। गृहस्थीकोही धन चाहिये ऐसी बात नहीं वह तो ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी और संन्यासीको भी चाहिये। धनके विना किसीका कुछ होताही नहीं। संन्यासीके लिये जो धन लगता है वह गृहस्थी व्यय करते हैं। व्यय कोई करे, पर संन्यासीके जीवनके लिये व्यय होता है। अर्थात् सबको जीवन निर्वाहके लिये धन चाहिये। यह 'आशिषा'

अर्थात् ' मंगल कामना ' से ही प्राप्त करना चाहिये। चोरी, छल, कपट, ठगी आदि कुव्यवहारोंसे धन नहीं कमाना चाहिये। परंतु मंगल व्यवहारसेही धन प्राप्त करना चाहिये। यह उपदेश राष्ट्रीय उन्नतिके लिये विशेष महत्वका है। (मंत्र १)

सृष्टिकी उत्पत्ति

जो पूर्व स्थानमें परमेश्वरने सर्वमेध यज्ञ किया ऐसा कहा उसका अर्थ सब सृष्टिके आकारोंमें अपने आपको डाल दिया अर्थात् सृष्टि बनायी, अपनेसे सृष्टि बनायी ऐसा है। सुवर्णने आत्मयज्ञ किया और जेवरोंमें अपने आपका हवन किया, मिट्टीने आत्मयज्ञ किया और वर्तनोंमें अपने आपका हवन किया, इसका अर्थ सुवर्णके आभूषण और मिट्टीके पात्र बने इतनाही है। इसी तरह भौवन विश्वकर्माने अपने आत्माका सब भूतोंमें हवन किया, इसका अर्थ अपनेसे सब भूत बनाये ऐसा है। इसीका स्पष्ट शब्दोंमें भाव कहते हैं—

यतः भूमिं विश्वकर्मा जनयन्
विश्वचक्षाः महिना द्यां वि और्णोत् ॥ (मं० २)

' विश्वकर्मा परमात्माने भूमिको बनाया और द्युलोकको अपनी महिमासे इसी सर्वसाक्षी प्रभुने अति विस्तृत बनाया। ' अर्थात् सब सृष्टिकी उत्पत्ति की। यहां द्युलोक और पृथिवी लोकका नाम लेनेसे बीचके अन्तरिक्षका स्वयं अन्तर्भाव हो जाता है और इन तीनों लोकोंमें जो जो अनन्त पदार्थ हैं उन सबका ग्रहण स्वयं हो जाता है।

द्युलोक- सूर्य,,तारागण, नक्षत्र-मण्डल आदि,
अन्तरिक्षलोक- विद्युत्, चन्द्रमा, वायु, मेघमण्डल आदि,
पृथिवीलोक- अग्नि, औषधि, सब प्राणी, नदी, समुद्र, पर्वत आदि सब पदार्थ।

तीनों लोकोंमें सब सृष्टि आ जाती है। यह सृष्टि परमेश्वरने बनायी। परमात्माके आत्मसमर्पण रूप यज्ञसे इस तरह यह सब सृष्टि बन गयी। यह द्वितीय मन्त्रके उत्तरार्धका वर्णन है।

यहां विश्वकर्मा और विश्वचक्षा ये दो पद हैं कि जो परमेश्वरका वर्णन कर रहे हैं। परमेश्वर (विश्व-कर्मा= सर्वकर्मा) सब कर्म करता है और वह (विश्व-चक्षा = सर्वद्रष्टा) सब देखनेवाला है। उससे कुछ भी छिपा नहीं है। सब जानता है और सब देखता है इसीलिये वह सब कार्य निर्दोष करता है। वह ऋषि (ज्ञानी), पिता (संरक्षक, पालक), होता (दाता और उदाता, विश्व-चक्षाः) (सर्व-साक्षी) है, इस कारण वह विश्वकर्मा (सब कर्म यथायोग्य रीतिसे करनेवाला) है।

आदर्श मानव

उसको पूर्ण ज्ञान है, वह सबका संरक्षण करता है, समय पर अपना सर्वस्व दान करता है, सर्वत्र उत्तम निरीक्षण करता है, ऐसा वह होनेके कारणही वह सर्व कार्य यथायोग्य रीतिसे करता है। ज्ञान, सरक्षण करनेकी शक्ति, दातृत्व-शक्ति, उदारता, निरीक्षण करनेका सामर्थ्य जिसमें होगा वही उत्तम कर्म कर सकता है। यह महत्वका बोध यहां मिलता है। मनुष्य ज्ञानी बने, स्वसंरक्षण और अपने परिवारका संरक्षण करनेवाला बने, दानी उदार हो, सब कार्य देखनेवाला उत्तम निरीक्षण हो, और स्वयं सब कर्म उत्तम रीतिसे करनेकी कुशलता अपने अन्दर धारण करे। इन दो मंत्रोंने जो आदर्श मानव बताया वह यह है।

प्रश्न पूछकर ज्ञान प्राप्त करो

परमात्माने सृष्टि बनायी ऐसा यहां कहा है, उसपर शंका होती है कि (यतः जनयन्) किस सामानसे उसने यह इतनी बडी सृष्टि बनायी ? (किं अधिष्ठानं आसीत्) उसने किसका आधार लिया था, अर्थात् कहां रह कर उसने इस सृष्टिको रचना की ? (कतमत् स्वित् आरंभणं) किस तरह उसने इसका आरंभ किया ? अर्थात् प्रथम क्या किया, पश्चात् क्या किया, किस क्रमसे इस सृष्टिकी रचना उसने की ? तथा (कथा आसीत्) यह रचना किस तरह की ? ये शंकाएं है। स्वयंही भूतोंकी आकृतिमें उसने अपने आपको डाल दिया, इसका ज्ञान होनेसे इन शंकाओंका उत्तर स्वय मिल जाता है। तथापि पाठकोंकी चतुरता बढानेके लिये ये प्रश्न यहां पूछे हैं। इस प्रकार प्रश्न पूछकर नाना प्रकारके ज्ञान प्राप्त करने चाहिये। किसीने कहा तो सुनकर चुप रहना नहीं चाहिये, प्रत्युत

उसपर नाना प्रकारके सुयोग्य प्रश्न पूछकर उत्तर सांगोपाङ्ग ज्ञान पूर्णरूपसे प्राप्त करना चाहिये। (मं० २)

परमेश्वरकी निश्चित कल्पना

इस सूक्तके मन्त्र देखनेसे इस बातका पता लगता है कि इसमें परमेश्वरकी कल्पना निश्चित रूपसे है। तथापि प्रश्न ऐसे किये हैं कि उनको देखनेसे किसीको संदेह प्रतीत हो जाय।

प्रथम तथा द्वितीय मन्त्रोंमें " होता, पिता, ऋषि, प्रथमच्छद् (पहिला सर्वव्यापक), विश्वकर्मा, विश्वचक्षाः " ये पद ऐसे हैं कि जिनसे परमात्माके श्रेष्ठ गुण स्पष्ट हो जाते हैं। अतः यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इस सूक्तमें परमात्माकी संपूर्ण कल्पना है और किसी तरह संदेह नहीं है। अगले मन्त्रमें ' देवः एकः ' देव एकही है ऐसा स्पष्ट कहा है।

द्यावा-भूमी जनयन् देवः एकः (मं० ३)

' द्युलोकसे भूलोकतककी सब सृष्टि बनानेवाला देव एकही-अकेलाही एक है। ' उसके एक होनेमें संदेहही नहीं है। वेदमें परमात्माकी एकता निःसन्देह रीतिसे कही है उसका दर्शक यह मंत्र है। यहां ' जनयन् ' पद है यह बताता है कि माता जिस तरह अपनेमें पुत्रका प्रजनन करती है, उस तरह परमात्माने यह सृष्टि अपनेमेंसे सर्जन की है। सुतार या कुम्हार पात्र या सामान बनाता है वैसी नहीं। मकडी अपना घर अपनेमेंसे बनाती है। वैसी इस सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है यह बात ' जनयन् ' पदसे स्पष्ट हो जाती है। ' एकः देवः ' ये पद यह दर्शाते हैं कि यह परमेश्वर अद्वितीय अकेलाही एक है, इसका सधर्मी या विधर्मी जो सृष्टिका प्रजनन कर सकता हो ऐसा दूसरा कोई भी नहीं है।

यह ईश्वर ' बाहुभ्यां पतत्रैः द्यावभूमी सं धमति ' अपने बाहुओं और अपने पांवों अथवा पंखोंसे द्युलोकसे भूलोकतककी सब सृष्टिको उत्तम प्रकारसे अन्दरही अन्दर गतिमान करता है।

यहां ' बाहुभ्यां, पतत्रैः ' इन पदोंसे शरीरधारीकासा वर्णन है। इसी तरह इसी मन्त्रमें ' चक्षु, मुख, बाहु, पात् ' ये भी पद हैं, इनसे तो परमात्मा शरीरधारी है यह स्पष्ट हो जाता है। पर जो शरीरधारी होता है वह (प्रथम-च्छद)प्रथमसे सबका पूर्णतासे आच्छादन करनेवाला, सर्वव्यापक नहीं हो सकता, तथा (आ विवेश) व्यापता है, सबमें व्यापक है यह वर्णन भी सावयव शरीरधारी-का नहीं है, क्योंकि शरीरधारी सर्वव्यापक नहीं हो सकता, निरवयवही सर्वव्यापक हो सकता है। शरीरधारी एकदेशी होता है, निरवयव सर्वत्र व्यापता है। इसलिये यहांके पद परमात्माको निरवयव अशरीरी भी बताते हैं और सावयव भी बताते हैं। अतः ऐसे दोनों प्रकारका भाव बतानेवाले पद देखनेसे पाठकोंके मनोंमें संदेह उत्पन्न हो सकता है कि सचमुच परमेश्वर साकार है या निराकार? इसका उत्तर यह है—

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च। (छां० उ०)

' ब्रह्मके दो रूप हैं, एक मूर्त और अमूर्त। ' अर्थात् ऊपर जो देहधारी करके वर्णन है वह मूर्त ब्रह्मका वर्णन है। और जो निराकार जैसा वर्णन है वह अमूर्त ब्रह्मका वर्णन है।

त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्। (श्वे० उ०)

' ब्रह्म-जीव-प्रकृति ' इनकी जो एक संमीलनात्मक एक अवस्था है उसका नाम ब्रह्म है। ' अर्थात् ' ब्रह्म ' पदका अर्थ ही ' परमात्मा-जीव-प्रकृति ' का संमीलन है। जिसके अन्दरसे सृष्टिका प्रजनन होता है। इसलिये पूर्वोक्त वर्णन योग्यही है। अब इस परमेश्वरका वर्णन देखिये—

यह परमेश्वर (विश्वतः-चक्षुः) चारों ओर आंखवाला है, (विश्वतः-मुखः) चारों ओर मुखवाला है, (विश्वतो-बाहुः) चारों ओर बाहुवाला है और (विश्वतः-पात्) चारों ओर पांववाला है। यह देखनेमें साकार देहधारीके वर्णनके समान वर्णन है, पर यही वर्णन विचार करनेपर निराकार-वादी प्रतीत होगा। चारों ओर आंख, मुख, बाहु और पांव होंगे तो उसका एक देह होही नहीं सकता। ये अवयव सर्वत्र होंगे तो ये अवयवही नहीं हो सकते। जो मुख सर्वत्र होगा वह मुखही नहीं होगा। और यदि मुख होगा तो सर्वत्र नहीं होगा। इसलिये इसका अर्थ मुख-आंख-बाहु-पांवके कार्य जिसके चारों ओर एक जैसे होते हैं ऐसा यह परमात्मा है ऐसा अर्थ करनेसे मन्त्रका भाव

अधिक स्पष्ट होता है और परमेश्वरकी निराकारता भी सिद्ध होती है। इसके तो पावके स्थानपर भी मुख होंगे और मुखके स्थानपर भी पांव होंगे। उसके सब अवयव सर्वत्र हैं यह आशय यहां है। इस कारण मुख–आंख–बाहु-पांव कहनेसे कोई आपत्ति नहीं आ सकती। इसलिये साकार वाचक पदोंको देखकर घबराना नहीं चाहिये।

इसके अतिरिक्त यह परमात्मा सर्व प्राणिरूप होनेसे साकार भी है। (अहं सर्वेषु भूतेषु आत्मानं जुहवानि) मैं सब भूतोंमें अपने आपको हवन करता हूं ऐसी प्रतिज्ञा करके उसके अपने सर्वस्वका हवन सब भूतोंमें किया और इन सब सृष्ट पदार्थोंमें रूपोंसे वह प्रकट हुआ है। वह इन रूपोंमें ढाला गया। इस कारण वेदमंत्रोंमें इसका नाम 'विश्वरूप' हुआ है। विष्णु-सहस्र नामोंमें प्रारंभमेंही 'विश्वं विष्णुः' अर्थात् विश्वही विष्णुका रूप कहा है और गीताके ग्यारहवें अध्यायमें भी इस परमात्माको 'विश्वरूप' कहा है। इसलिये ग्यारहवें अध्यायका नाम 'विश्व-रूप-दर्शन' है। विश्वका रूप जिसने धारण किया है वह परमात्मा है इसका दर्शन इस ग्यारहवें अध्यायमें कराया है। अस्तु। जो विश्वरूप है उसके सब रूप हैं यह निश्चितही है। इसलिये सूर्य, चन्द्र, सप्तर्षि, नक्षत्र, तारका, अग्नि, विद्युत्, पृथिवी, वायु, वृक्ष वनस्पति, नदी नद, समुद्र, मेघ, जल, पर्वत, मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि, कीट, पतंग, गौ, घोडे, बैल, ऊंठ, हाथी, जलचर, स्थलचर आदि सभी रूप उस प्रभुके हैं यह 'विश्वरूप' का अर्थ है।

जब परमेश्वरने अपने आपका हवन (अहं सर्वेषु भूतेषु आत्मानं जुहवानि) सब भूतोंमें किया, तो हरएक वस्तु और हरएक प्राणिमें परमात्मा भरपूर भरा है यही इससे सिद्ध हुआ। फिर वह वस्तु मनुष्य शरीर, कुत्तेका शरीर हो अथवा स्थावर पदार्थ हो। सब वस्तुओंमें परमात्माका हवन हो चुका है, इसलिये सबमें ओतप्रोत परमात्मा भरा है।—

स ओत-प्रोतश्च विभूः प्रजासु। (वा० य० ३२।८; काण्व ३५।२७, तै० आ० १०।१।३; म० ना० उ० २।३)

'वह प्रजाओंमें ओतप्रोत है।' पाठक यहां समझें कि ओतप्रोत ये पद कपडेके लंबाई और चौडाईके धागोंके लियेही प्रयुक्त होते हैं। सब विश्व एक अखण्ड वस्त्र है और उनकी लंबाईके और चौडाईके धागे परमात्माके अर्थात् सूत्रात्माके हैं। परमात्माको सूत्रात्मा इसीलिये कहते हैं कि उसके धागेसे यह सृष्टिका वस्त्र बना है। ओतप्रोत इसका नाम है। कपासका हवन सूत्रमें और सूत्रका हवन कपडेमें होता है। इसी तरह ब्रह्मका सूत्रात्मा और आत्माके सूत्रसे विश्वका वस्त्र हुआ। इसलिये परमात्मा ओतप्रोत है ऐसा कहते हैं।

यदि परमात्माके सूत्रसे विश्वका वस्त्र बना है, और यदि परमात्माका हवन सब भूतोंमें हुआ है तब तो मनुष्य, पशुपक्षी कृमिकीट आदिमें परमात्मा ओतप्रोत है। इस कारण उसके (विश्वतो–मुखः) मुख चारों ओर हैं, (विश्वतः चक्षुः) आंख चारों ओर हैं, (विश्वतो-बाहुः) बाहु चारों ओर हैं और (विश्वतः-पात्) चारों ओर पांव है। यह वर्णन सार्थ है क्योंकि चारों ओर अनंत प्राणी हैं और उनके ये अवयव चारों ओर हैं। यह प्रत्यक्ष दीखनेवाली बात है। अप्रत्यक्ष नहीं।

उपास्य देव

अपना यह उपास्य देव है जिसके मुख ब्रह्मज्ञानी हैं, जिसके बाहु शूरवीर दीन-संरक्षक क्षत्रिय हैं, जिसके पेट मंगल कामनासे धनसंचय करनेवाले श्रेष्ठी हैं और जिसके पांव सब प्रकारके शिल्पी हैं (ऋ० १०।९०।१२) इसी तरह अन्यान्य प्राणी उसके शरीर हैं अतः वह चारों ओर मुख–बाहु–आंख–कान–पेट–पांववाला है। यह उपास्य देव प्रत्यक्ष है और यह संसेव्य, उपास्य, परिचर्य और आदरणीय है। उसको हम कुशल प्रश्न पूछ सकते हैं और यह उपास्य देव हमें अपनी आवश्यकताएं कह सकता है। इसीका वर्णन 'सहस्रों सिरोंवाला' इन शब्दोंसे अन्यत्र ऋ० १०।९० में किया है। देखिये—

ऋ० १०।९०	ऋ० १०।८१
सहस्र-शीर्षा पुरुषः	विश्वतो-मुखः एकः देवः
सहस्राक्षः ,,	विश्वतश्चक्षुः ,,
सहस्रपात् ,,	विश्वतस्पात् ,,
सहस्र-बाहुः (अथर्व०)	विश्वतो-बाहुः ,,

देखिये दोनों वैदिक सूक्तोंका भाव कैसा समान है और वह किन शब्दोंद्वारा किस तरह प्रकट किया है। यह उपास्य देव चारों ओर आंखवाला अथवा सहस्रों आंखों-वाला कैसा है यह इस वर्णनसे पाठक जान सकते हैं। और यह ठीक तरह जानना अत्यंत आवश्यक है।

इस उपास्य देवसे हम बातचीत कर सकते हैं और इसके साथ हम अपना दैनंदिन व्यवहार कर रहे हैं। यह कौमार अवस्थामें अध्ययनके लिये गुरुके पास जाता है, वही गृहस्थी बनता है और वही उपदेशक होता है और श्रोता भी वही है। रोगी तथा वैद्य इसीके रूप हैं।

पुरुष एव इदं सर्वं यत् भूतं यच्च भव्यम्।
(ऋ० १०।९०।२)

'जो भूतकालमें था, जो वर्तमान कालमें है और जो भवि-ष्यमें होगा वह सब पुरुषही है। वह सब इस सर्वव्यापक प्रभुका रूप है। इस वेद-वचनकी सत्यता अब पाठकोंके सम्मुख आयी होगी। जनताने इसको पहचाना नहीं है। आज कल यही पढाया जाता है कि जो दीख रहा है संसार वह उपास्य प्रभुसे भिन्न है। जगत्‌को छोडनेके विना प्रभुका साक्षात्कार नहीं होता। परंतु वेद वारंवार कहता है कि 'जो यह सब है वह प्रभुही स्वयं है।' यह वेदो-पदेश न माननेसेही संपूर्ण विश्व दुःखसागरमें डूबने लगा है। यदि 'विश्वं विष्णुः' यह साक्षात्कार होगा तो सब लोग विश्वसेवा स्वकर्मसे करने लगेंगे और जिससे संपूर्ण दुःखोंका अन्त होगा और निज आनन्द प्राप्त होगा। प्रत्यक्ष प्रभुकी सेवा करना त्याग दिया है और अप्रत्यक्षके पीछे लोग जा रहे हैं। वैदिक धर्मका त्याग करनेसेही यह अनर्थ हो रहा है। (मं० ३)

(किं स्वित् वनं? क उ स वृक्ष आस? यतः द्यावा-पृथिवी निष्टतक्षुः) जिस वृक्षकी लकडीसे काट कूट कर यह द्यावापृथिवी बनायी गयी है वह वृक्ष कौनसा है और वह किस वनमें पैदा होता है। जहां ईंट, मिट्टी, पत्थर या चूना आदिसे मकान नहीं बनाते, जहां घर और उसके अन्दरके मञ्चक आदि लकडीकेही बनाये जाते हैं, वहां ऐसे ही प्रश्न पूछे जा सकते हैं। जहां मिट्टीसे घर बनाते हैं वहां किस मिट्टीसे द्यावापृथिवी बनायी ऐसा प्रश्न होगा।

विश्वकर्मा पद भी तर्खाण, त्वष्टा अथवा सुतारको अर्थात् विशेषतः लकडीका काम करनेवालेका वाचक है। इसलिये वृक्षकी लकडीसे यह सृष्टि बनायी ऐसा यहां सूचित किया है। मिट्टीका कार्य होता तो कुम्हारका नाम आता। विश्वकर्मा लकडीका काम करनेवाला शिल्पी है। इसलिये उसके उपादान 'वन और वृक्ष' यहां है। यह अलंकाररूप वर्णन होनेपर भी कुम्भकार, सुवर्णकार, लोहकारका उल्लेख न होता हुआ काष्ठ कर्म करनेवाले विश्वकर्माकाही उल्लेख है। यह निःसंदेह मननीय है।

(हे मनीषिणः! मनसा पृच्छत पृच्छत) हे मननशील पुरुषो! तुम मननपूर्वक इसका विचार करो और जानो कि किस उपादान कारणसे यह सब द्यावाभूमी और अन्दरके सब पदार्थ बनाये गये है?

अधिष्ठाता

(यत् विश्वा भुवनानि धारयन् अध्यतिष्ठत्) सब भुवनोंका धारण करके इस सब विश्वका अधिष्ठाता कौन होता है? इसका मननपूर्वक विचार करो। अर्थात् इस विश्वका धारण करनेवाला जो है वही इसका अधिष्ठाता होता है। शरीरमें एक मुख्य जीवात्मा होता है वही इस शरीरका अधिष्ठाता होता है। इसके पश्चात् यह पृथ्वी है उसका अधिष्ठाता पृथ्वीको व्यापनेवाला सूत्रात्माही है। इस तरह सूर्यमालाको व्यापनेवाला सूत्रात्मा सूर्यमालाका अधिष्ठाता होता है। इस तरह यह परंपरा सूक्ष्मसे सूक्ष्म और बडेसे बडे विश्वांशमें है। शरीरके अन्दर भी आंख, नाक, कान, पेट आदि अवयवोंके इतनाही कार्य करनेवाले सूक्ष्म अधिष्ठाता होते हैं। मनुष्यके पेटमें भी जो छोटे छोटे कृमि होते हैं उनमें प्रत्येकका पृथक् अधिष्ठाता है।

इस अधिष्ठाताका निर्माण होनेकी एक रीति है।

स भूमिं विश्वतो वृत्वा
अत्यतिष्ठत् दशाङ्गुलम्॥
पादोऽस्येहाभवत्पुनः॥
तस्माद्विराळजायत
विराजो अधिपूरुषः
स जातो अत्यरिच्यत
पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥ (ऋ० १०।९०।१-४)

' वह पुरुष भूमिको चारों ओरसे घेर कर दश इंद्रियोंसे ग्रहण होनेवाले विश्वपर अधिष्ठाता होता है । इसका एक अंश यहां पुनः पुनः होता है । विराट् पुरुष हुआ और उसका अधिष्ठाता भी बना । वह विभक्त होने लगा, पहिले भूमि बनी और पश्चात् उस भूमि परके शरीर बने। ' अर्थात् भूमि बनी तो भूमिका अधिष्ठाता बना और शरीर बने तो शरीरोंके विभिन्न अधिष्ठाते भी हुए। इस तरह यह अधिष्ठाता बननेकी रीति है । एक विभाग होतेही उसका एक अधिष्ठाता होता है ।

इसका उदाहरण देखना हो तो वृक्षमें देखिये । एक वृक्षका एक जीव अधिष्ठाता होता है वह उस संपूर्ण वृक्षपर अपना अधिकार चलाता है । यदि उसकी शाखा काट कर लगायी और लगी, तो वह स्वतंत्र वृक्ष होता है और उसका जीव उस वृक्षका अधिष्ठाता बनता है । इस तरह एक वृक्षकी २०।२५ शाखाएं लगायीं और वह लग गयीं तो उन प्रत्येकमें एक एक अधिष्ठाता उसी सूत्रात्मासे निर्माण होता है, बाहरसे लाना नहीं पडता ।.

एक महा सभा हुई तो उसका एक अध्यक्ष उसीमेंसे किया जाता है, पश्चात् इसकी उपसमितियां १०।२० की गयीं तो उन प्रत्येकका पृथक् पृथक् अध्यक्ष उन्हींमेंसे बनाया जाता है । बाहरसे लाना नहीं पडता। इसी तरह एक सर्वव्यापक सूत्रात्मा संपूर्ण विश्वमें है, उसके जितने जीवित स्वतन्त्र विभाग होंगे उतने छोटे बडे अधिष्ठाता स्वयं बनेंगे और वे वहांके कार्यके उत्तरदायी होंगे । क्योंकि यह संपूर्ण विश्व एक जीवित और जाग्रत संस्था है और वह प्रत्येक अंशमें स्वयंपूर्ण है । किसी तरहकी न्यूनता यहां नहीं है ।

> पूर्णं अदः पूर्णं इदं पूर्णात् पूर्णं उदच्यते ।
> पूर्णस्य पूर्णं आदाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

' वह परमात्मा पूर्ण है, यह विश्व भी पूर्ण है क्योंकि उस पूर्णसे इस पूर्णकी उत्पत्ति हुई है । पूर्णसे पूर्ण लेनेपर पूर्णही अवशिष्ट रहता है। ' इस तरह परमात्मा पूर्ण है और उसकी शुभ प्रेरणासे उसीमेंसे निर्माण हुआ यह विश्व भी पूर्णही है । इसलिये जहां जो बनता है उसका वहां अधिष्ठाता वहां उसीमेंसे बनता है, इसीलिये इनको स्वयं पूर्ण कहते हैं । ऐसा यह सब स्वयंपूर्ण है । यही विचारपूर्वक देखनेयोग्य है । (मं० ४)

(हे विश्वकर्मन् ! या ते परमा मध्यमा उत अवमा धामानि सखिभ्यः शिक्ष) हे विश्वके निर्माणकर्ता ! जो तेरे श्रेष्ठ, मध्यम और निचले धाम हैं उनका वर्णन करके हमें उनके विषयमें कहो हमें शिक्षा देकर ज्ञान दो । यहां द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और भूलोकको क्रमशः ' परमानि, मध्यमानि उत अवमानि धामानि ' कहा है । इन तीनों लोकोंमें जो भूत है, जो पदार्थ है जो शक्तियां हैं वे सब परमात्माके स्थान हैं, वहां परमात्मा रहता है । इसलिये उसका वहां कार्य कैसा चल रहा है इसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । प्रत्येक स्थानमें कुछ न कुछ विशेषता है। द्युलोकमें सूर्य तथा ,तारागण, अन्तरिक्षमें चन्द्रमा, मेघमण्डल, विद्युत् तथा वायु और इस भूमण्डलपर सब विविध प्राणी, वृक्ष, वनस्पति, पर्वत, नदी आदि सब पदार्थ हैं, प्रत्येकमें कुछ न कुछ विशेषता है । यह विशेषता परमात्माकी शक्ति वहां उन पदार्थोंमें कार्य करती है इसलिये है। इस शक्तिकी यह अद्भुतता, यह विशेषता तथा यह विलक्षणता विचार पूर्व देखनी चाहिये और जिसके अनुभवमें वह आयी होगी उसको उसका व्याख्यान करके दूसरोंको बतानी चाहिये । (सखिभ्यः शिक्ष) समान विचार धारण करनेवालोंको शिक्षा देकर उनका ज्ञान बढाना चाहिये । इस रीतिसे सर्वत्र ज्ञानका प्रचार खूब होना आवश्यक है ।

इस प्रकारके ज्ञान प्रसारसेही मनुष्य विश्वकर्मा बन सकता है । मनुष्यको विश्वकर्मा अर्थात् सब कर्म कुशलतासे करनेमें समर्थ बनना चाहिये । कुशलतासे शिल्पमें प्रवीण बनना चाहिये । नाना प्रकारके सुखसाधन बनाने चाहिये । परमात्मा विश्वकर्मा है और जीव उसका अमृत-पुत्र है अतः पुत्रको पिताके समान विश्वकर्मा बनना चाहिये । पुत्र इसीलिये भूमण्डलपर अवतीर्ण हुआ है कि वह अपने परम पिता परमात्माकी अद्भुत कारीगरी देखे और वैसा कुशल बने । परमात्माने विविध शिल्पोंमें अपने आपको कुशल सिद्ध किया है । और ज्ञानी इसी कौशलका वर्णन करके जनताको कुशल बननेकी ओर प्रवृत्त करते हैं। परमात्माके वर्णनका यह फल है । विश्वकर्माके वर्णनसे जनतामें स्वयं कुशल बन जानेकी स्फूर्ति होनी चाहिये ।

वैदिक सूक्त जो प्रेरणा (चोदना) मानवोंमें करते हैं वह यही है। पुत्र पिताके समान हो, हरएक प्रकारसे पुत्र उन्नत हो, विकसित हो, कुशल और ज्ञानी हो, अन्तमें नरका नारायण बने।

अपनी वृद्धि करके उसका यज्ञ करो

(स्वयं वृधानः तन्वं यजस्व) अपनी वृद्धि करके पश्चात् अपने शरीरका यज्ञ करो। (स्वयं वृधानः) अपनी वृद्धि करो, ज्ञानसे, वीरतासे, धनसे और शिल्पसे अपनी वृद्धि करो, जो अपनी शक्ति बढ सकती है उस शक्तिको बढाओ, अपनी शक्तिका परम विकास करो। विकसित शक्ति अपने पासही न रखो, वह दुःख बढायेगी, अतः उसका यज्ञ करो।

ब्रह्मचर्यमें अपनी शक्तियोंका संवर्धन किया जाता है और पश्चात् उन शक्तियोंका यजन होता है। ब्राह्मण अपने ज्ञानकी वृद्धि करे, क्षत्रिय अपना सुरक्षा करनेका सामर्थ्य बढावे, वैश्य अपना धन बढावे और शूद्र अपना शिल्प बढावे और ये चारों अपने संवर्धित धनका यज्ञ करे। यह आदेश कितना उपयोगी है इसका विचार जो करेंगे वेही इसका महत्त्व जानेंगे।

ब्राह्मण अपने ज्ञानका संवर्धन करे और ब्रह्मचारीमें उसका यज्ञ करे, क्षत्रिय अपनी संरक्षण शक्ति बढावे और जनपदकी सुरक्षाके लिये उसका यज्ञ करे, वैश्य अपना धन बढावे और नाना प्रकारके यज्ञ करके जनपदका भला करे, इसी तरह सब करें। नियम यह है कि अपना संवर्धन करो और अपनी संवर्धित शक्तिका यजन करो। यदि इस तरह यजन न किया तो वह संवर्धित शक्ति वहीं रहेगी और जनपदमें उपद्रव करती रहेगी। भोग बढनेपर उनका संग्रह यदि किसीके पास अत्यधिक हुआ तो वह कष्टदायक होता है। अतः अपरिग्रह करना चाहिये।

देखिये ब्राह्मणके पास ज्ञान रहा और उस ज्ञानी ब्राह्मणने ज्ञानयज्ञ अथवा ब्रह्मयज्ञ नहीं किया तो वह ज्ञान उसके शरीरके साथ नष्ट होगा। ऐसाही अन्यान्य वर्णोंके गुणकर्मोंके विषयमें जानना चाहिये। यज्ञनेही सबकी उन्नति होती है। यज्ञ न करनेसे अवनतिही होगी। इसलिये इस मन्त्रमें कहा है कि (स्वयं वृधान तन्वं यजस्व) अपनी शक्तिकी वृद्धि करो और फिर अपनी शक्तिका यज्ञ करो। यह सुवर्णनियम है अतः प्रत्येक मनुष्य इसको अच्छी तरह ध्यानमें रखे।

जीवनका सुवर्णनियम

" मैं अपनी शक्ति बढाऊंगा और उस शक्तिका यज्ञ करनेके लिये समर्पण करूंगा। " यह जीवनका सुवर्ण नियम है। (मं० ५)

यज्ञसे बढो

(हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व) हवनमें समर्पण करनेसे बढते रहो और अपनी संवर्धित संपत्तिका फिर यज्ञ करो। आपके पास जो है उसका यज्ञके लिये समर्पण करो और यज्ञसे जो भी तुम्हारी शक्ति बढेगी उस शक्तिका फिर समर्पण करके फिर भी यज्ञ करो। इस तरह यह यज्ञचक्र घूमता रहे।

यजुर्वेदमें यज्ञमें समर्पण और संवर्धन होता है इस विषयमें विशेष रूपसे कहा है।

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च मे आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२॥ वित्तं च मे वेद्यं च मे...यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ (वा० य० १८)

' मेरा प्राण, अपान, व्यान, असु, धन, अध्ययन, वाणी, मन, चक्षु, श्रोत्र, बल, संपदा, ज्ञान यह सब यज्ञमें समर्पित होकर बढे। ' इस अध्यायमें अपनी शक्तिके अनेक नाम कहे हैं। उन सबको यहां दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है। परंतु इस वर्णनसे इस मंत्रका अधिक स्पष्टीकरण हो जाता है। अपनी शक्तिका यज्ञ करके अपनी शक्ति बढाओ और अपनी संवर्धित शक्तिका फिर यज्ञ करो (हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व)। यहां पाठक वा० यजुर्वेदके १८ वे अध्यायका अवश्य पाठ करें और समझें कि यज्ञसे बढना और फिर यज्ञ करनेका तात्पर्य क्या है?

(पृथिवीं उत द्यां यजस्व) पृथिवीसे लेकर द्युलोक पर्यंत जो ३३ प्रकारकी देवताएं हैं उनके उद्देश्यसे हविर्भाग देकर यज्ञ करो। सब लोग जो यज्ञ करते हैं वे जानते कि यज्ञमें ३३ देवताओंके उद्देश्यसे हवन किया जाता है।

पृथिवीपर अग्नि, अन्तरिक्षमें वायु और द्युलोकमें सूर्य ये तीन देव मुख्य हैं और अन्य देव इनके साथ रहनेवाले हैं। पर जो यज्ञ होता है वह इनके उद्देश्यसे होता है।

ये ३३ देवता जैसे विश्वभरमें हैं वैसे प्रत्येक शरीरमें अंशरूपसे हैं। विश्वमें विशाल सूर्य है शरीरमें नेत्र है, विश्वमें वायु है शरीरमें प्राण है। इनका पिता-पुत्र जैसा संबध है। सूर्य पिता है और नेत्र उसका पुत्र है, वायु पिता है प्राण उसका पुत्र है, इस तरह सबके विषयमें समझना चाहिये।

सूर्यश्चक्षुर्भूत्वा अक्षिणी प्राविशत्।
वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्॥ (ऐ० उ०)

'सूर्य आंख बनकर नेत्रमें घुसा है, वायु प्राण होकर नाकमें घुसा है।' ऐसा वर्णन उपनिषदमें है। यह वर्णन यहां देखना उचित है। सब ३३ देवताओंका ऐसा अंशावतार शरीरमें हुआ है। अर्थात् शरीर यह बीजरूप विश्व है और विश्व यह विस्तृत शरीर है। सर्वत्र संवर्धन यज्ञसेही होता है। शरीर और विश्वके बीचमें राष्ट्र होता है

जो व्यक्तिमें है और जो विश्वमें है वह राष्ट्रमें भी है। अर्थात् राष्ट्रका संवर्धन भी यज्ञसेही होना है। (वावृधान. स्वय यजस्व) स्वय बढो और अपनी शक्तिका यज्ञ करो। यज्ञसे समाजका संवर्धन होता है।

पंचम मन्त्र—स्वयं वृधानः तन्वं यजस्व।
षष्ठ मन्त्र—हविषा वावृधान. स्वयं यजस्व।

ये दोनों मन्त्र प्राय. समानार्थक हैं। इस तरह मंत्रोंकी तुलना करना बडा बोधप्रद है।

अपनी धारकशक्ति

पञ्चम मन्त्रमें एक पद 'स्वधावः' है। (स्व-धा-अव) अपनी धारण-शक्तिसे सबकी सुरक्षा करनेवाला। हरकोई अपनी धारक-शक्तिसेही रहता है। जिसमें धारक-शक्ति अपनी सुरक्षा करनेके पश्चात् भी पर्याप्त अवशिष्ट रहती है वही अन्योंकी सुरक्षा कर सकता है। इसलिये अपने अन्दरकी धारणा-शक्ति जितनी बढ सकती है उतनी बढानी चाहिये। जिससे अपनी और अन्योंकी भी अपने द्वारा धारणा हो सकती है। यह 'स्वधावः' पद भी बडा बोधप्रद है, यह व्यक्ति और समाजकी धारणा-शक्ति बढानेका उपदेश कर रहा है। समाज भी सुसंघटित होकर अपनी धारक शक्ति बढावे और अन्यान्य समाजोंकी सुरक्षा करनेका सामर्थ्य अपने अन्दर रखे।

जिसके अन्दर धारक-शक्ति नहीं होगी, वह स्वयं जीवित भी नहीं रह सकता। अपनी जीवनदशाके लिये भी अपने अन्दर धारक-शक्ति बढानेकी आवश्यकता है।

'पृथिवीं उत द्यां' इसका अर्थ सब विश्व है। द्युलोकसे पृथ्वीतकके सब पदार्थ। इनमें सब विश्व आ जाता है। यह संपूर्ण जगत् यज्ञपर निर्भर है यह यहां बताया है। (द्यां पृथिवीं यजस्व) द्युलोकसे पृथिवीतकके संपूर्ण विश्वके लिये यज्ञ करो, यज्ञसे सबका संवर्धन करो।

ज्ञानी शूर और धनी

(अस्माकं सूरिः मघवा अस्तु) हमारे अन्दर जो ज्ञानी होगा वह धनवान् हो। प्रायः जगत्के अन्दर ऐसा दीखता है कि ज्ञानीके पास धन नहीं और धनीके पास ज्ञान नही होता। ऐसा होनेसे राष्ट्रका घात होता है। ज्ञान और धन एकत्र रहना चाहिये। ज्ञानी पुरुष धनी होवे और धनी पुरुष ज्ञानी होवे।

सूरिः मघवा अस्तु।
मघवा सूरिः अस्तु।

इसका अर्थ दोनों प्रकारसे होता है क्योंकि दोनों अर्थ आवश्यकही हैं। राष्ट्र वही श्रेष्ठ होगा कि जहां ज्ञानी धनी होंगे और धनी ज्ञानी होंगे। मघवा इन्द्रका नाम है और वह शूरवीर भी है। यह अर्थ लेनेपर 'ज्ञानी' शूरवीर और धनी हों, 'शूरवीर' ज्ञानी और धनी हों, और 'धनी' शूरवीर तथा ज्ञानी हों ऐसा अर्थ होगा और यह सत्य अर्थ है क्योंकि इसकी सत्यता प्रत्येक राष्ट्रमें अनुभवमें आ सकती है। यदि 'ज्ञानी' भीरु और निर्धन हों, यदि 'शूर' अज्ञानी और निर्धन होंगे और 'धनी'

मनाडी और भीरु होंगे, तो वह राष्ट्र कदापि सची उन्नति प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये ज्ञान शौर्य और धन सर्वत्र रहना आवश्यक है।

'अन्ये जनासः अभितः मुह्यन्तु।'=अन्य लोग अर्थात् जो यज्ञमें संमिलित नहीं होते वे मूढ इतस्ततः भटकते फिरें। अर्थात् सब लोग ऐसे न भटकें और कोई मूढ भी न बने। पर सब लोग यज्ञमार्गमें आ जाय और ज्ञानी-शूर-धनी बनकर अपने जीवनको आनन्दपूर्ण बना देवें। (मं० ६)

(अद्य विश्वकर्माणं ऊतये वाजे च हुवेम।) आज हम सब मिलकर सब कर्म कुशलतासे करनेवालेको हमारी सुरक्षा और पर्याप्त अन्न तथा पर्याप्त बल प्राप्त होनेके लिये बुलाते हैं।

सुरक्षा अन्न और बल

मानवी समाजको प्रथम सुरक्षा चाहिये, पश्चात् अन्न चाहिये अनन्तर वस्त्र और रोग निवारणके लिये औषधका भी समावेश मानव चाहिये। इसी तरह वाज पद बल-वाचक भी है। इसलिये सुरक्षा, अन्न और बलकी मानवों-के लिये अत्यंत आवश्यकता है। यह तो सब जानते ही हैं। हम जो प्रभुकी प्रार्थना करते हैं वह इसीलिये करते हैं। हमारा समाज सुरक्षित हो, अन्न वस्त्रसे परिपूर्ण हो और साथ साथ बलवान भी बने। इसलिये हम विश्वकर्माकी प्रार्थना करते हैं।

'विश्व-कर्मा' सब प्रकारके कर्म अत्यत कुशलताके साथ करनेवाला होता है। यह जो कर्म करता है उससे अपनी सुरक्षा होती है, अन्न, वस्त्र और बल भी मिलता है क्योंकि सब कर्मोंमें इनके लिये आवश्यक कर्मोंका समावेश होता है। यह विश्वकर्मा 'मनोजुवं वाचस्पतिं' है। अर्थात् यह मनसे भी वेगवान् है और वाणीका भी स्वामी है अर्थात् विद्यावान् भी है। इसका आशय यह हुआ कि 'जो (वाचस्पतिं) ज्ञानी विद्वान् (मनोजुवं) मनके समान वेगवान्, स्फूर्तिवान और (विश्वकर्माण) सब कर्म कुशलताके साथ करनेवाला है वही सब जनताकी सुरक्षा करे और उसे अन्न, वस्त्र तथा बल प्राप्त होनेयोग्य प्रयत्न करे।

इस मन्त्रके उत्तरार्धमें (साधुकर्मा) हितकारक शुभकर्म करनेवाला तथा (विश्व-श-भू) सबका कल्याण करनेवाला ये दो पद हैं। ये पद भी विश्वकर्माके गुण बता रहे हैं। ऐसा यह विश्वकर्मा (अवसे सः नः विश्वानि हवनानि जोषत्) हम सबकी सुरक्षाके लिये हमारे सब यज्ञ यथासांग परिपूर्ण करे और प्रीतिपूर्वक उनका सेवन करे। अर्थात् हमारे यज्ञोंको देखकर आनन्द प्रसन्न हो। हमारी सुरक्षा हो और हम सबका कल्याण हो। (म.७)

यहां प्रथम-सूक्तका विवरण समाप्त हुआ।

(ऋ० १०।८२)

इस सूक्तमें भी विश्वकर्माकाही वर्णन है। यह विश्वकर्मा (चक्षुषः पिता) आंखका पिता है, अर्थात् आंखका जो क्षेत्र है उस रूपवाले जगत्का पालक है। जो रूपवान् मूर्तिमान् जगत् है उसका पालन करनेवाला यह है। आंखका संरक्षक है।

(मनसा धीर) मनसे यह धैर्यवान् है, भीरु नहीं है। मनुष्यको उचित है कि वह अपने आंखका सरक्षण करे, आंख यह उपलक्षण है सब शरीरका। सब शरीरकी सुरक्षा करे और मनसे धैर्यवान बनें, भीरु न हो। आदर्श मानवके ये लक्षण हैं।

परमात्माने प्रारंभमें 'घृतं' अर्थात् जल बनाया। यह विश्वव्यापक प्राथमिक प्राकृतिक स्वरूपका जल है। इस जलमें 'नम्नमाने एने अजनत्' दोलायमान पृथ्वी आदि लोक बनाये। ये प्रारंभमें स्थिर तथा सुदृढ नहीं थे। पश्चात् ये सुदृढ हुए। (यदा पूर्वे अन्ताः अदद्दृहन्त) जब प्रथम इसके अन्त भाग सुदृढ हुए, तब (द्यावा-पृथिवी अप्रथेतां) द्युलोक और पृथिवी विस्तृत हो गयी।

१-प्राकृतिक प्रारंभिक जल

२-अर्ध द्रवरूप पृथिवी आदि लोकान्तर

३-पश्चात् घनीभूत पृथिव्यादि लोक

४-पश्चात् चल अचल सृष्टि

यह क्रम यहां विश्वसृजनका बताया है जो अत्यंत

शान्त-शुद्ध है। इस विश्वमें एक स्थानमें नयी सृष्टि बनती है और दूसरे स्थानमें प्रलय होता रहता है, इस तरह इस विश्वमें सदा परमात्माके सृष्टिकी रचना--सुरक्षा--संहारके गुण धर्म कार्य करते रहते हैं। (मं० १)

यह विश्वकर्मा (वि--मनाः) विशेष मननशील है, (वि--हायाः) सर्वत्र विविध रीतिसे प्राप्त, सर्वत्र व्यापक अथवा बडा विशाल और महान, (धाता विधाता) विश्वकी रचना करनेवाला धारणकर्ता, विधाता, निर्माण-कर्ता, (परमा संदृक्) परमश्रेष्ठ, विशाल, विस्तृत और सर्वद्रष्टा, सबका सम्यक् दर्शन करनेवाला, सबका उत्तम निरीक्षण करनेवाला, ऐसा यह सब विश्वका प्रशासक है। मनुष्यको ये गुण अपने अन्दर धारण करने चाहिये।

सात इंद्रियाँ और प्रशासक आत्मा

(सप्तऋषीन् परः एक आहुः) सप्तऋषियोंके परे एकही तत्त्वन्हें जो सूत्रात्मा करके प्रसिद्ध है। शरीरमें अध्यात्म-पक्षमें सात इंद्रियां सप्त ऋषि हैं, इन इंद्रियोंके परे मन है, मनके परे, बुद्धि और बुद्धिके परे आत्मा है। सप्त-ऋषियोंके परे एकही मुख्य तत्त्व है वह एकही है। पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि मिलकर सात हैं और इनके परे एक आत्मा है। वह सबका अधिष्ठाता है। ये जो इंद्रियां हैं (तेषां इष्टानि इषा सं मदन्ति) उनके इष्ट तथा अनिष्ट ऐसे दो विभेद होते हैं, जैसा आंख है सुरूप और कुरूप ऐसे दो प्रकार आंखके सन्मुख आते हैं। कान है उसके सामने मधुर और कठोर शब्द आते हैं। इस प्रकार सब इंद्रियोंके सन्मुख दो विभिन्न विषय खडे होते हैं. (तेषां इष्टानि) इनमें प्रत्येक इंद्रियके लिये जो इष्ट विषय इष्ट स्वरूपमें आता है, वह उस प्रकारके (इषा मदन्ति) अन्नसे आनन्द देते हैं। अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय--का इष्ट विषय निश्चित है, और उसके पोषक अन्न भी निश्चितही है। आंखका सुन्दर रूप और सौंदर्य पोषक अन्न आंखके आनन्दके लिये (इषा सं मदन्ति) आनन्द-संवर्धनके लिये सहायक होता है। सृष्टिके अन्दर ऐसाही यह व्यवहार चल रहा है। सुन्दर वस्तुओंसे आंखको आनन्द होता है और आंखकी यह भूख शान्त करनेवाले अन्न भी निश्चितही हैं। सात इंद्रियोंका यह व्यवहार जगत् भरमें ऐसाही चल रहा है। इन सात इन्द्रियोंपर शासन करनेवाला एक आत्मा इन सातोंके परे है। इसका संबंध इन सात इंद्रियोंसे कैसा है यह जानना चाहिये। (मं० २)

वर्णनीय एक देव

(यः नः पिता जनिता) जो परमात्मा हम सबका पिता और जनक है। पिता रक्षक होता है और जनिता जनक होता है। जनक अपने अन्दरसे वीर्य प्रदानद्वारा-पुत्र निर्माण करता है। यह प्रजनन सुतार, लुहार, सुनार जैसा नहीं है। सुतार लकडीसे, लुहार लोहेसे और सुनार सोना लेकर अपनी रचना करते हैं। इनके लिये दूसरा सामान लगता है। पर जनककी बात वैसी नहीं। जनक अपने अन्दरसे वीर्य प्रदान करता है, माता अपने शरीरके अन्दरसे गर्भका पोषण करती है और बालकका प्रजनन शरीरके अन्दरसे होता है। जनक जो निर्मिति करता है वह अपने शरीरसे है।

(यः विधाता) जो निर्माण करता है। यह नवीन निर्माण करता है। निर्माण करनेके पश्चात् (विश्वा धामानि भुवनानि वेद) सब स्थानों और भुवनोंको यथावत् जानता है। उसको अज्ञात ऐसी कोई वस्तु नहीं होती। अतः इसको सर्वज्ञ कहते हैं।

(देवानां नाम-धा एक एव) अनेक देवोंके नामोंको अपने लिये धारण करनेवाला यह देव एकही है। अर्थात् सब देवोंके नाम इसके नाम होते हैं। अन्यत्र वेदमें कहा है—

एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः। (ऋ० १।१६४)

' एकही सत् है ज्ञानीजन उसका विविध रीतिसे वर्णन करते हैं। उसीको इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि आदि कहते हैं। ' वास्तविक बात यह है कि इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण आदि देवताएं पृथक् पृथक् हैं। परंतु (देवानां नामधा एक एव) इन सब देवोंके नाम इस एक देवने अपने लिये धारण किये हैं। इसलिये इन सब नामोंसे उस एक देवका वर्णन होता है। नाम अनन्त हैं परंतु उनसे बोध होनेवाला देव एक है। देवता अनंत हैं, परंतु उनके अन्दर एकही

देवका सामर्थ्य है, इसीलिये सब देवोंके नाम इस एक देवके लिये प्रयुक्त होते हैं। जिसका सामर्थ्य इनमें प्रकट होता है उसके लिये इनके नाम भी प्रयुक्त होते हैं अर्थात् एक एक गुण अथवा एक एक शक्तिके लिये एक एक नाम होता है। और वह उसको मिलता है कि जिसकी वह शक्ति होती है।

(अन्या भुवना तं संप्रश्नं यन्ति) सब अन्य भुवन उस वर्णनीय एक देवको प्राप्त होते हैं। कोई वस्तु उस एक देवको अप्राप्य नहीं है। (मं० ३) क्योंकि सबमें वह है और उसमें सब हैं। वह ' सं-प्रश्न ' है अर्थात् प्रश्न करके पूछने योग्य है। जो ज्ञानविषयक प्रश्न पूछे जाते हैं वे इसके संबंधमेंही प्रश्न होते हैं। कोई भी प्रश्न पूछा जाय उसके साथ इसका संबंध होता है। इसका कारण यह है कि विश्वान्तर्गत सब पदार्थ परमात्माकी शक्तिसे धारे गये हैं और प्रभावित हुए हैं। (मं०३)

ऋषियोंका यज्ञ

(पूर्वे जरितारः ऋषयः अस्मै द्रविणं आयजन्त) प्राचीन स्तोता ऋषि गणोंने इस परमात्माके लिये अपने धनका यज्ञ किया। अर्थात् प्राचीन ऋषि इसकी प्रसन्नताके अपने सर्वस्वका यज्ञ करते रहे। पुरुष-सूक्तमें भी ऐसा वर्णन है—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥ (ऋ० १०।९०।१६)

' प्राचीन कालके विबुध यज्ञसे यजनीय देवका यजन करते थे। ये धर्म प्राचीन थे। इससे वे महिमा प्राप्त करके उस सुख स्थानमें पहुंचे, जहां प्राचीन साध्य देव पहुंचे थे। ' इस तरह अनेक सूक्तोंमें वर्णन है। ऋषि यज्ञ करते थे जिससे सबको सुख और आनन्द प्राप्त होता था।

(असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते इमानि भूतानि समकृण्वन्)= अचल और चल ऐसे इस रजोलोक अर्थात् अन्तरिक्षमें इन सब भूतोंको निर्माण करके रखता है। यह स्थान है कि जहां सब जगत्‌के पदार्थ रहते हैं। इस अवकाशका नाम रजोलोक अथवा अन्तरिक्ष है। (मं० ४)

गर्भमें सब देवोंका निवास

(दिवः परः) द्युलोकके परे, (पृथिव्याः परः) इस पृथिवीके परे और (देवेभिः असुरैः परः यत् अस्ति) देवों और असुरोंसे परे, उनको भी दुष्प्राप्य जो परम तत्त्व है, उसके वीर्यसे (कं गर्भं आपः दध्रे) किस गर्भको- अथवा सुखपूर्ण गर्भको जलोंने कहां धारण किया था? कि (यत्र विश्वे देवाः समपश्यन्त) जहां सब देव एक होकर परस्परोंको सम्यक् रीतिसे देखते हैं। यहां कहा है कि—

गर्भे विश्वे देवाः सं अपश्यन्त। (मं० ५)

' गर्भमें सब देव मिलजुलकर रहते हैं। ' यही जानना चाहिये। प्रत्येक गर्भमें इस तरह सब देव मिलकर रहते हैं। यह अनुभवकी बात है। देखिये—

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्।
सूर्यश्चक्षुर्भूत्वा अक्षिणी प्राविशत्।
वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्।
दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्।
चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्।
आपः रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्। (ऐ० उ०)

इस तरह गर्भमें सब देवताओंके अंश इकट्ठे हुए हैं और वे वहां इकट्ठे होकर परस्परको देखते हैं। "अग्नि वाणीका रूप धारण करके मुखमें प्रविष्ट हुआ है। सूर्य नेत्रका रूप धारण करके आंखोंमें रहने लगा है। वायु प्राण बनकर नासिकाओंमें प्रविष्ट हुआ है। दिशाएं श्रोत्रका रूप धारण करके कानोंमें रहने लगी हैं। चन्द्रमा मन बनकर हृदयमें आकर रहने लगा है। आप् रेतका रूप लेकर शिश्नमें रहने लगा। " इस तरह सब देव अपने अपने नियत स्थानमें अपने अपने नियत रूप लेकर बसने लगे हैं। यही अर्थ ' गर्भे विश्वे देवाः सं अपश्यन्त ' गर्भमें सब देव रहते हैं, इस मन्त्रभागका है। (मं० ५)

यही मन्त्रभाग थोडा हेरफेरसे अगले छठे मन्त्रमें आया है। ' यत्र विश्वे देवाः सं अगच्छन्त ' जहां सब देव संगठित हुए हैं। अर्थात् (तं इत् गर्भं प्रथमं आपः दध्रे) उस गर्भको जलोंने सबसे पहिले धारण किया, जहां सब देव सुसंघटित होकर रहने लगे हैं।

यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे । (मं० ५)
यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे । (मं० ६)

ये दोनों मन्त्रभाग एकही आशय बताते हैं। और द्विरुक्तिके कारण इस उपदेशका विशेष महत्त्व है । अतः यह उपदेश ध्यानमें धारण करना योग्य है।

गर्भमें सब देव रहते हैं इसका अर्थ अपने शरीरमें सब देव रहते हैं यह है। अपने शरीरमें सब देवोंका निवास है, अपना शरीर यह एक देवोंका अद्भुत मन्दिर है यह स्मरण रखनेयोग्य बात है। हमारा शरीर इतना महत्त्व-पूर्ण है। वह हीन-दीन त्याज्य निंद्य नहीं है। यहां अनंत दिव्य-शक्तियोंके केन्द्र हैं इनका संवर्धन जितना किया जाय उतना होनेकी संभावना है । ऐसा महत्त्वपूर्ण यह अपना शरीर है।

(अजस्य नाभौ एकं अर्पितं यस्मिन् विश्वा भुवनानि तस्थुः) अज आत्माके मध्यमें एक- केन्द्र रखा है उसमें सब भुवन रहते हैं। इसका आशय भी पूर्वके समानही है—

यत्र विश्वे देवाः सं अपश्यन्त । (मं० ५)
यत्र विश्वे देवाः सं अगच्छन्त । (मं० ६)
यस्मिन् विश्वा भुवनानि तस्थु । (मं० ६)

ये मंत्रभाग एकही आशय बतानेवाले हैं। ' देवाः ' के स्थानपर ' भुवनानि ' पद है । आशय एकही है । (मं० ६)

जनकको जानो

(यः इमा जजान) जो इन सबका प्रजनन करता है (तं न विदाथ) उसको तुम नहीं जानते, अपने पिताको भी तुम नहीं जानते ? कितनी शोककी बात है !! इस न जाननेका कारण क्या है सो कहते हैं—

(अन्यत् युष्माकं अन्तरं बभूव) दूसराही अज्ञान तुम्हारे बीचमें हुआ है। इस कारण तुम विश्वके प्रजनन-कर्ताको नहीं जानते । यह जो बीचमें आगया है वह तुम्हारे अज्ञानजन्य भोगका भाव है, मुझे भोग चाहिये यह जो भाव तुम्हारे अन्दर उत्पन्न हुआ है इस कारण तुम्हारी दृष्टि जगन्निर्माताको छोडकर इधर आ गई है। यह जो बीचमें दूसराही भाव उत्पन्न हुआ है उसको दूर करना चाहिये।

अज्ञानका आवरण

अज्ञानका आवरण मानवी बुद्धिपर किस तरह पडा है उसका वर्णन अब देखिये । (नीहारेण प्रावृताः) कुहरसे ढंके गये हैं। जिस समय कुहर सब विश्वको ढंकता है, उस समय सब विश्व और उसके अन्दरके सब पदार्थ वहीं रहते हैं, पर हमारी दृष्टि उनपर कुहरके आच्छादनके कारण नहीं पहुंचती । ऐसाही यहां हुआ है। अज्ञानका कुहर इतना गहरा तुम्हारी बुद्धियोंको आच्छादन कर रहा है कि इस कारण तुम निर्माताको नहीं देख सकते और उसके महा सामर्थ्यको नहीं जान सकते ।

दूसरा दोष तुम्हारे अन्दर यह हुआ है कि तुम (जल्प्याः) केवल बकवास करनेवाले, केवल व्याख्यान देनेवाले केवल प्रवचनकार उपदेशक बनते जाते हो। अर्थात् स्वयं अपने आचरणमें उपदेशको लानेका विचार भी नहीं करना, पर बडे बडे व्याख्यान देना । यह बडा भारी दोष है।

(असु-तृपः) अपने जीवनको तृप्त करनेवाले तुम बनते जाते हैं। अपने भोग बढानेवाले, अपने भोगोंके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ऐसा माननेवाले और भोगोंके संग्रहके लियेही प्रयत्न करनेवाले मनुष्य उच्च मानवताके ध्येयको प्राप्त नहीं कर सकते ।

इसी तरह (उक्थ-शासः) वेदमंत्रोंकी प्रशंसा करनेवाले, परंतु वेदका उपदेश आचरणमें लानेका प्रयत्न भी न करनेवाले यह एक दोष है।

यहां (१) बकवास करते रहना, केवल व्याख्यानबाजी करना, (२) केवल भोग संग्रह करनेका प्रयत्न करना और (३) केवल धर्मग्रंथके वचनोंकी प्रशंसा करते रहना ये तीन दोष मानवोंके आचरणके कहे हैं । पाठक इनका विचार करें और ये दोष अपने अन्दर न बढें ऐसा प्रयत्न करें। ये दोष दूर होनेपर मनुष्य अपना आचारव्यवहार-का सुधार करनेका प्रयत्न करेगा और अपना अज्ञान दूर कर सकेगा तो उसकी उन्नति हो सकेगी ।

यहां विश्वके प्रजननकर्ताको जाननेका महत्त्व बताया है। इसको जाननेसे क्या होगा इसका हम अब विचार करते हैं । यहां विश्वकर्मा विश्वका प्रजननकर्ता वर्णन किया है। इसके गुणोंका मनन करनेसे मानवोंका आदर्श पुरुष कैसा है इसका ज्ञान हो सकता है। इसलिये

विश्वकर्माके वर्णनके मिषसे जो 'आदर्श-मानव' यहां वर्णन किया है, उसका स्वरूप देखिये—

विश्वकर्माका आदर्श

विश्वकर्माके वर्णनसे जो आदर्श पुरुष यहां वर्णन किया है उसके गुण ये हैं—

ज्ञानी विश्वकर्मा

विश्वकर्मा यह शिल्पी होनेपर भी ज्ञान-गुणसे विशिष्ट है। (ऋषिः) अतीन्द्रियदर्शी है; (होता) हवन करनेमें, यज्ञ-प्रक्रियामें प्रवीण है; (आशिषा द्रविणं इच्छमानः) मंगल विचारोंके प्रवर्तनसेही धन-प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला है, मंगल विचारोंका प्रवर्तन करना इसका साध्य है (मं० १)। (विश्व-चक्षाः) सब देखनेवाला, सबका निरीक्षक, सबका व्याख्याता, सबका ज्ञाता (मं० २); (सूरिः) ज्ञानी, विद्वान्, बहुश्रुत, ग्रंथोंपर भाष्य या टीका लिखनेवाला, प्रगाढ विद्वान् (मं० ६); (वाचस्पतिः) भाषापर प्रभुत्व रखनेवाला, विद्वान् वक्ता, (हवनानि जोषत्) यज्ञों और हवनोंको देखनेवाला, उसमें होनेवाले कर्मकी सेवा करनेवाला (मं० ७); (मनसा धीरः) मनसे धैर्यशाली, मनन शक्तिसे धीर, मनसे (धी-रः) बुद्धि-प्रदाता, योग्य संमति देनेवाला, मनन करके किसी विषयके संबंधमें सुयोग्य संमतिका प्रदान करनेवाला (मं० २।१); (वि-मनाः) विशेष मनन करनेवाला, विशेष विचारक, (सं-दृक्) उत्तम निरीक्षक, उत्तम देखनेवाला (मं० २।२); (विश्वा भुवनानि वेद) सब भुवनोंको जाननेवाला, सर्वज्ञ (मं० २।३)।

ये सब गुण ज्ञानी विश्वकर्माके हैं। ज्ञानमें विश्वकर्मा कम नहीं होना चाहिये। ये गुण अच्छे विद्वान्केही हो सकते हैं। इतना बडा विद्वान् विश्वकर्मा शिल्पी हो। उन्नत राष्ट्रके शिल्पी ऐसे महाज्ञानी होने चाहिये। शिल्पी कितने प्रबुद्ध हैं इससे राष्ट्रकी उन्नतिका पता लग सकता है।

'ऋषि, वाचस्पति, सूरि, विश्वा भुवनानि वेद' ये पद इसकी विद्वत्ता बता रहे हैं। 'विश्व-चक्षाः, 'सं-दृक्' ये पद उसका निरीक्षणमें प्राविण्य बताते हैं। 'होता, हवनानि जोषत्' ये पद यज्ञप्रक्रियाका इसका प्राविण्य बता रहे हैं। 'आशिषा द्रविणं इच्छमानः' ये पद मंगल कामनासे ऐश्वर्य चाहनेवाला, अथवा यज्ञका आशीर्वाद प्राप्त करनेवाला, यज्ञ-सिद्धिवक जानेवाला यह भाव बताते हैं। 'वि-मनाः, मनसा धीरः' ये पद उसकी मनन शीलता बता रहे हैं। इतना विद्वान् यह होता हुआ भी यह ('प्रथमच्छद्*अवरान् आ विवेश') सर्वोपरि रहनेवाला, सबका शिरोमणी होता हुआ हीनसे हीनके पास जाकर उसमें स्फूर्ति उत्पन्न करता है, यह उसके कार्यका स्वरूप है।

संरक्षक विश्वकर्मा

अब संरक्षक क्षात्र धर्मवाले विश्वकर्माके गुण देखते हैं— विश्वकर्मा वास्तविक शिल्पी है, पर वह संरक्षणका क्षात्रकर्म करनेमें भी समर्थ है-(पिता) संरक्षण करता है, (मं० २) (अध्यतिष्ठत्) अध्यक्ष होता है, अधिष्ठाता बनता है, प्रशासक होता है (मं० ४); (स्व-धा-अवः) अपनी धारक-शक्तिको बढाकर उस शक्तिसे सब जनताका संरक्षण करनेवाला, (धामानि धारयन्) सब स्थानों और प्रदेशोंका धारण करनेवाला, (तन्वं वर्धमानः) अपने शरीरकी शक्तिका संवर्धन करनेवाला, इस शक्तिसे जनताकी सुरक्षा करनेवाला (मं० ५); (मघवा) धनवान् शत्रु निर्दालन करनेवाला प्रबल इन्द्र, (मनोजुवं) मनके समान वेगवान्, वेगसे कर्म करनेवाला, वेगसे शत्रुपर हमला करनेवाला, (विश्व-शं-भूः) सब जगत्का कल्याण करनेवाला, सब जनताका हित करनेवाला, (साधुकर्मा) शुभ कर्म करनेवाला जनपद-हितके कर्म करनेवाला, (ऊतये वाजे हुवेम) अपनी सुरक्षा और अपने बलवर्धनके लिये जिसको बुलाते हैं (मं० ७); (चक्षुषः पिता) दृश्य जगत्का संरक्षण करनेवाला, (मनसा धीरः) मनका शूर (मं०२।१); (धाता) धारण करनेवाला, शक्तिसे राष्ट्रका धारण करनेवाला, (वि-धाता) विशेष रीतिसे धारण करनेवाला (मं० २।२); (सं प्रश्नः) विशेष रीतिसे प्रश्न पूछनेयोग्य।

ये सब पद संरक्षक विश्वकर्माके गुण बता रहे हैं। यह राष्ट्रका अधिष्ठाता है, संरक्षण करता है, अपनी शक्तिसे राष्ट्रकी सुरक्षा करता है। यह अपनी शक्ति बढाता है और उससे जनताकी सुरक्षा करता है। यह मनके वेगसे

अपने कर्तव्य करता है। सदा शुभ कर्म करता है। यह मनसे धैर्यवान् है, कभी डरेगा नहीं, राष्ट्रमें नये नये कार्य करता रहेगा, शुभ कर्मोंका पोषण करेगा और इस तरह सबका संरक्षण करता रहेगा।

धनवान् विश्वकर्मा व्यापारी

विश्वकर्मा धनवान् है यह बात " मघ-वा " पदसे सिद्ध होती है। धन-वान् यही अर्थ ' मघ-वान् ' का शब्दार्थ है। यह इन्द्र है और इन्द्रके विषयमें एक सूक्त वाणिज्यके विषयमें है वह यहां देखिये। जिससे व्यापार धंधेके विषयमें इसके कर्तव्योंका बोध हो सकता है—

(अथर्वा । इन्द्राग्नी । त्रिष्टुप्, १ भुरिक्)

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु। नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् ॥१॥
ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति। ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहरामि ॥२॥
शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु ॥४॥
येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः। तन्मे भूयो भवतु मा कनीयो ऽग्ने सातघ्नो देवान् हविषा नि षेध ॥५॥

(अथर्व ३।१५)

" मैं इन्द्ररूपी वाणिज्य करनेवाले बनियेको प्रेरित करता हूं, वह हमारा अगुआ बने। दस्यु, बटमार तथा चोरको दूर करे और वह हमारा राजा बनकर हमें धन देनेवाला होवे॥ जो आनेजानेके मार्ग हैं वे सब हमारे लिये खानेपीनेके पदार्थ तथा धन देनेवाले हों। व्यापार करके हम धन लायेंगे॥ खरीदी, बिक्री तथा व्यापार हमारे लिये लाभदायी होवे॥ जिस मूल धनसे मैं व्यापार करता हूं, धनसे धन बढाना चाहता हूं, वह मेरे लिये जितना चाहिये उतना होवे। व्यापारमें जितना चाहिये उतना धन पर्याप्त रहे, कभी कमी न हो। लाभका नाश करनेवाले जो होंगे उनका यह इन्द्र नाश करे और हमारे लाभका मार्ग निष्कंटक हो॥ "

यहां बनियेके रूपमें इन्द्रकी प्रशंसा है। इन्द्र तो क्षत्रिय है, पर वह व्यापारियोंका मार्ग सुकर करता है, लाभमें रुकावटें उत्पन्न करनेवालोंको दूर करता है, चोर डाकू, लुटेरे, बटमार आदिकोंको दूर करता है। अपने देशके व्यापारियोंको लाभ होनेके लिये जो करना आवश्यक है वह सब करता है। ये इन्द्रके कर्तव्य हैं। वे इस सूक्तमें ' मघवा ' पद द्वारा बताये हैं। यह बतानेवाला ' मघ-वा ' (धनवान्) यह पद यहां विशेष हेतुसे प्रयुक्त किया है।

शिल्पी विश्वकर्मा

विश्वकर्मा सब शिल्पोंके अनंत पदार्थ निर्माण करनेके कारण शिल्पी है। यह देवोंका कारीगर करके पुराणोंमें सुप्रसिद्ध है। इसके शिल्पोंकाही इस सूक्तमें वर्णन किया है। सब विश्वके सब पदार्थ बनानेवाला यह अद्भुत कारीगर है। (द्यावाभूमी जनयन्) द्युलोकसे भूमीतक सब पदार्थोंको इसने बनाया है, यह (सं धमति) धोंकनी चलाकर सबको तपाता है और तपानेके बाद जैसे चाहिये वैसे पदार्थोंको आकार देता है। (अजनयन्) वह सबको अपने अन्दरसे निर्माण करता है इसलिये इसको ' जनिता ' कहते हैं, अतः यह ' पिता ' भी कहा जाता है इस तरह इसके शिल्पी होनेका वर्णन इस सूक्तमें है।

इस तरह चारों वर्णोंके गुणकर्म इस विश्वकर्मामें दीखते हैं। राष्ट्रकी शिक्षामें ज्ञान, शौर्य, वाणिज्य और शिल्प इन चारों वर्णोंके कर्तव्योंकी सामान्य शिक्षा सबको समानतया मिलनी चाहिये और पश्चात् एक एक वर्णका विशेष ज्ञान उस उस वर्णके तरुणोंको देना चाहिये। इसीलिये विश्वकर्माका वर्णन चारों वर्णोंके गुणकर्मोंका हुआ है। यह सूक्त यही बता रहा है।

विश्वकर्मा ऋषिका यह आदर्श पुरुष है। पाठक इसका विचार करें। अब इस सूक्तमें जो विशेष बोधवचन हैं उनको यहां अर्थके साथ देते हैं—

विश्वकर्मा-सूक्तके बोधवचन

१ पिता ऋषिः होता न्यसीदत् जुह्वन्। (मं० १)= कुटुंबका मुख्य पुरुष, गृह-पुत्रियोंका पिता ज्ञानी बने,

हवन करनेके लिये बैठे और हवन करें। प्रतिदिन पारिवारिक उपासना की जावे।

२ आशिषा द्रविणं इच्छमानः=मंगल कामनासे धनका संवर्धन करनेका यत्न किया जावे। अमंगल साधनसे धनी बननेका यत्न कोई न करे।

३ प्रथमच्छद् अवरान् आ विवेश=सबको आवरण करनेवाला, सर्वोपरि रहनेवाला होकर भी नीचसे नीचके पास उनके बीचमें जाकर रहे और उनमें स्फुरण उत्पन्न करे।

४ अधिष्ठानं आरंभणं किं कतमत् कथा आसीत् (मं० २)=किसी कार्यका अधिष्ठान-आधार क्या है, उसका आरंभ कैसा होता है, आगे कैसा बढता है, कितने प्रमाणसे होता है इसका विचार करना योग्य है। (मं० २)

५ विश्वकर्मा विश्वचक्षाः= सब शिल्पोंका निर्माण करनेवाला शिल्पी सबका उत्तम निरीक्षण करनेवाला हो।

६ द्यावा-भूमी जनयन् देवः एक=द्युलोकसे भूलोकतक सब सृष्टिका निर्माण करनेवाला देव एकही है। अनेक नहीं हैं। (मं० ३)

७ बाहुभ्यां पतत्रैः सं धमति=बाहुओंसे और पावोंसे आग जलानेके लिये धोंकनी चलाता है। हाथसे अथवा पांवसे धोंकनी चलाकर अग्निको लुहार प्रदीप्त करते हैं और ऐसी अग्निमें सुवर्णादि धातुओंको तपाते और उसके नाना पदार्थ बनाते हैं।

८ किं वनं, कः वृक्षः, यत निष्टतक्षुः=कौनसे वनका कौनसा वृक्ष है कि जिससे ये सब चाकी आदि वस्तुएं बनायीं जाती हैं। इसकी खोज करो। प्रत्येक वृक्षकी लकडी पृथक् पृथक् शिल्पके उपयोगी होती है, इसलिये लकडीका विज्ञान प्राप्त करना योग्य है। (मं० ४)

९ मनीषिणः मनसा पृच्छत=विद्वान् मननद्वारा विज्ञानकी खोज करें।

१० भुवनानि धारयन् अध्यतिष्ठत् यत् ?=भुवनोंको आधार देकर उसका अधिष्ठाता हुआ वह कौन है? खोज करो।

११ सखिभ्यः शिक्ष=समान विचारवालोंको शिक्षा दो। उनको ज्ञान-विज्ञान सिखाओ। (मं० ५)

१२ स्वधावः (स्व-धा-अवः)=अपनी शक्ति बढाओ और उससे सबका संरक्षण करो।

१३ स्वयं वृधानः तन्वं यजस्व=स्वयं बढो और अपनी शक्तिका यज्ञ करो। धन कमाओ और दान दो। ज्ञान प्राप्त करो और ज्ञान सिखाओ।

१४ वावृधानः स्वयं यजस्व=स्वयं बढो और यज्ञ करो। बहुत कमाओ और दान भी बहुत दो। (मं० ६)

१५ अन्ये जनासः मुह्यन्तु= जो (लोग हमारे साथ यज्ञमें संमिलित नहीं होते) वे अन्य लोग मूढ होकर भटकते रहें। हमारे लोगोंमें मोह अज्ञान आलस्य आदि उत्पन्न न हो।

१६ अस्माकं सूरिः मघवा अस्तु= हमारा ज्ञानी 'शूर और धनी' हो, हमारा वीर 'ज्ञानी और धनी' हो, और हमारा धनी 'ज्ञानी और वीर' हो। हमारे अन्दर अज्ञानी, भीरु और दरिद्री कोई न रहे।

१७ विश्वकर्मा वाचस्पतिः=हमारा शिल्पी ज्ञानी हो। (मं० ७)

१८ मनोजुवं ऊतये वाजे हुवेम=वेगवान् वीरको हम अपनी सुरक्षाके लिये और बलवर्धनके लिये बुलाते हैं। हमारे वीर अपना बल बढावें, संरक्षण करनेकी शक्ति बढावें और अपना वेग भी बढावें।

१९ विश्व-श-भूः=सबका कल्याण करो।

२० साधु-कर्मा=शुभ कर्म करो।

२१ विश्वानि हवनानि जोषत्= सब यज्ञोंको बढाओ, जहां यज्ञ होते हों वहां जाओ, उन यज्ञोंकी सहायता करो।

२२ चक्षुषः पिता=आंखकी पालना करो, आंख सुरक्षित रखो, आखका क्षेत्र सुरक्षित रखो। (मं० ३।१)

२३ मनसा धीरः=मनसे धैर्यवान् बनो।

२४ पूर्वे अदृहन्त, अप्रथेताम्=पहिले सुदृढ करो और पश्चात् बढाओ। जो मिला हो उसको दृढ करो और पश्चात् और बढाओ।

२५ विश्वकर्मा विमनाः विहायाः धाता विधाता परमः संदृक्= शिल्पी विशेष मननशील, सर्वत्र पहुंचनेवाला, निर्माता, विशेष रीतिसे निर्माता श्रेष्ठ और सम्यक् निरीक्षण करनेवाला हो। ऐसा शिल्पी श्रेष्ठ होगा। (मं० २।२)

२६ तेषां इष्टानि इषा सं मदन्ति= उनके इष्ट ध्येय अन्नके मिलनेसे आनन्दकारक होते हैं। उनकी तृप्ति पर्याप्त अन्न मिलनेसे होती है।

२७ जनिता पिता=जनक (पुत्रका) पालन करे। (मं० २।३)

२८ विश्वा भुवनानि धामानि वेद=सब भुवनों और स्थानोंको जानो। सब प्रांतों और राष्ट्रोंको जानो।

२९ देवानां नामधा= दिव्य जनोंके यशोंको धारण करो, उन्होंने जो यश प्राप्त किया है वह कैसे प्राप्त किया यह देखकर वैसा तुम भी करके तुम भी वैसाही यश धारण करो।

३० यः एक. पश्य तं संप्रश्नं अन्या भुवना यन्ति= जो एक अद्भुत अद्वितीय शक्तिवाला प्रशंसायोग्य होता है उसके पास सब अन्य लोग पहुंचते हैं।

३१ पूर्वे ऋषयः द्रविणं आ यजन्त=प्राचीन ऋषि अपने धनका यज्ञ करते थे। वैसा तुम भी किया करो।

३२ भूतानि सं अकृण्वन्= भूतोंको मिलाकर उनकी वृद्धि किया करते थे। वैसी संघटना तुम भी किया करो। (मं० २।४)

३३ विश्वे देवाः यत्र (गर्भे) सं अपश्यन्त=सब देव गर्भमें इकट्ठे होकर परस्परको देखते हैं। (मं० २।५) सब विबुध अपनी संघटना करें।

३४ विश्वे देवाः यत्र (गर्भे) सं अगच्छन्त=सब देव गर्भमें संमिलित हुए हैं। प्रत्येक गर्भमें ३३ देव संगठित होकर रहते हैं। सब विबुध संघटित होकर रहें।

३५ एकं यस्मिन् (एकस्मिन्) विश्वा भुवनानि तस्थुः=एक परमात्मामें सब भुवन रहते हैं। (मं० २।६)

३६ यः इमा जजान तं न विदाथ=जिसने यह विश्व बनाया उसको भी तुम नहीं जानते! यह कितनी आश्चर्यकी बात है? अतः उसको जाननेका प्रयत्न करो। अपने पिताको जानो।

३७ युष्माकं अन्तरं बभूव=तुम्हारे और उसके अन्दर बडा अन्तर हुआ है। परमात्मा और तुम मानव इनमें अज्ञानका अन्तर हुआ है इसलिये तुम परम-पिताको नहीं जानते।

३८ नीहारेण प्रावृता= कुहरसे सृष्टि आच्छादित होनेपर वह नहीं दीखती, पर वह वहीं होती है। वैसा बीचमें कुहर आया है इसलिये तुम्हे परम पिता दीखता नहीं, पर वह यहीं है। कुहर जानेके बाद दीखेगा। कुहर-को दूर करो।

३९ जल्प्याः असुतृपः उक्थशासः चरन्ति= कई बकवादही केवल करनेवाले, कई अपने प्राणोंको तृप्त करनेमेंही रात दिन लगे, और कई धर्मवचनोंकी केवल प्रशंसाही करते रहनेवाले पर स्वयं धर्माज्ञाको अपने जीवनमें ढालनेका प्रयत्न भी न करनेवाले ऐसे लोगही चारों ओर भटकते रहते हैं। इनकी उन्नति नहीं होगी। परंतु जो विचारपूर्वक बोलनेवाले होंगे, जो त्यागसे तृप्त होनेवाले तथा जो धर्मकी आज्ञाके अनुसार आचरण करनेका यत्न करनेवाले होंगे वेही उन्नत हो सकते हैं।

निरुक्तमें यास्काचार्य

इस सूक्तके विषयमें निरुक्तकार यास्काचार्यजीने निम्नलिखित प्रकार अध्याय १० में लिखा है—

विश्वकर्मा सर्वस्य कर्ता । तस्यैषा भवति ॥२५॥

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः ॥

विश्वकर्मा विभूतमनाः व्याप्ता धाता च विधाता च परमश्च संद्रष्टा भूतानाम् । तेषामिष्टानि वा, कान्तानि वा, क्रान्तानि वा, गतानि वा, मतानि वा, नतानि वा । अद्भिः सह समोदन्ते ॥ यत्र एतानि सप्त ऋषिणानि ज्योतींषि । तेभ्यः पर आदित्यः । तानि एतस्मिन् एकं भवन्ति । इति अधिदैवतम् ॥

अथ अध्यात्मम् । विश्वकर्मा विभूतमनाः व्याप्ता धाता च विधाता च परमश्च संदर्शयिता इन्द्रियाणाम् । एषामिष्टानि वा, क्रान्तानि वा, गतानि वा, मतानि वा, नतानि वा । अन्नेन सह संमोदन्ते । यत्र इमानि सप्त ऋषिणानि इन्द्रियाणि । एभ्यः पर आत्मा । तानि अस्मिन् एकं भवन्ति । इति आत्मगतिं आचष्टे ।

अत्र इतिहासमाचक्षते । विश्वकर्मा भौवनः सर्वमेधे सर्वाणि भूतानि जुहवां चकार । स आत्मानमपि अन्ततो जुहवां चकार । तदभिवादिनी एषा ऋक् भवति । य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वत् इति तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनाय ॥२६॥

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥

विश्वकर्मन् हविषा वर्धयमानः स्वयं यजस्व पृथिवीं च दिवं च ।
मुह्यन्तु अन्ये अभितः जनाः सपत्नाः । इह अस्माकं मघवा सूरिः अस्तु ॥

(निरुक्त अ० १०।२५-२७)

'विश्व-कर्मा' का अर्थ 'सबका कर्ता' है। संपूर्ण विश्वका कर्ता। जो कुछ बनता है वह विश्वकर्मा करता है।

विश्वकर्मा 'विमना' है। 'वि-मना'-का अर्थ जिसका ज्ञान व्यापक है, जो सर्वज्ञ है। 'विहाया'-सबको व्यापनेवाला, सबसे बड़ा, महान्। 'धाता विधाता'-उत्पादक और विधाता। 'परमः'-उत्कृष्ट। 'संदृक्'-सबका द्रष्टा, सम्यक् देखनेवाला। निरीक्षणका कार्य करनेमें इससे अधिक श्रेष्ठ कोई नहीं है।

(तेषां) उन भूतोंके (इष्टानि) प्रिय लोगोंने किये हुए कर्म, (कान्तानि) उस विश्वकर्माको प्रिय होनेवाले कर्म, (इष्टानि) यज्ञमें उसको अर्पण किये हुए, (क्रान्तानि

विश्वकर्मा ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(१८)

सप्त-ऋषियोंका दर्शन

(भरद्वाज-कश्यप-गोतम-अत्रि-विश्वामित्र-जमदग्नि-वसिष्ठ इन ऋषियोंका दर्शन)

(निसर्गोपचार)

(ऋग्वेदका ८४ वाँ अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर,

साहित्य-वाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालङ्कार,

अध्यक्ष- स्वाध्याय मंडल, आनंदाश्रम पारडी [जि सूरत]

संवत् २००६, सन १९४९

वा नतानि) आक्रमण करके जानेके कर्म, जहां पहुंचने चाहिये वहां गये हुए, वहां निःसंदेह पहुंचनेवाले कर्म, (मतानि वा नतानि) उसको समत होनेवाले कर्म अथवा नम्र भावसे किये हुए कर्म हैं । (इषा अद्भिः सह सं मोदन्ते) इष्ट जलोंके साथ हर्षको प्राप्त होते हैं ।

यहां (एतानि सप्त ऋषिणानि ज्योतींषि) ये सात किरण अथवा तेज हैं । (तेभ्य परः आदित्यः) उनसे परे आदित्य हैं । (तानि एतस्मिन् एकी भवन्ति) वे इस आदित्यमें एकीभूत होते हैं । यह अर्थ अधिदैवतपर है ।

अब अध्यात्मपरक विवरण करते हैं । विश्वकर्मा (विभूत-मनाः) सबने अपनी बुद्धियोंसे जाना हुआ, व्यापक, धाता विधाता परम श्रेष्ठ (संदर्शयिता) इन्द्रियोंको अपने अपने विषय जतलानेवाला इनके इष्ट संमत अभिमत प्राप्त विषय अन्न प्राप्त होनेसे आनन्दयुक्त प्रतीत होते हैं । वहां ये सब इन्द्रियां हैं । इनसे परे आत्मा है । उस आत्मामें ये सब इंद्रिय एक होते हैं । इस तरह यह अध्यात्मपरक वर्णन है ।

इस विषयमें यह इतिहास कहते हैं । विश्वकर्मा परमात्माने (भौवनः) सब भुवनोंके साथ मिलकर रहते हुए सर्वमेध यज्ञ करनेका प्रारंभ किया और उसमें उसने सब भूतोंका हवन किया । और उसने अन्तमें अपनी भी आहुति डाल दी । इसका वर्णन करनेवाली यह ऋचा है । 'य इमा० ' इत्यादि । इसके आगेका मन्त्र ' विश्वकर्मन् हविषा० ' इत्यादि है । [इसका अर्थ सूक्तके अर्थमें दिया है इसलिये पुनः यहां देनेकी आवश्यकता नहीं है ।]

निरुक्तकारके कहनेका तात्पर्य यह है कि ' जिस तरह विश्वकर्मा सब भुवनोंके साथ मिलजुलकर रहा और जैसी उन्होंने अपने सर्वस्वकी आहुति दी और, जिस तरह उसने सबका कल्याण करनेके लिये अपना सर्वस्व अर्पण किया, उस तरह जो यजमान सर्वमेध यज्ञ करेगा अर्थात् सबकी भलाईके लिये आत्मयज्ञ करके अपना सर्वस्व अर्पण करेगा, वह भी विश्वकर्मा परमात्मा जैसा पूर्वोक्त कारण सबसे श्रेष्ठ बना, वैसाही यह यजमान भी सबसे श्रेष्ठ और सबको पूजनीय बनेगा । '

यह निरुक्तकारने दिया आशय है जो शतपथ ब्राह्मणके आशयके अनुकूल है ।

मन्त्रोंकी सूची

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वत्- ऋ० १०।८१।१; वा० सं० १७।१७; तै० सं० ४।६।२।१; मै० सं० २।१०।२; १३३।१; का० सं० १८।१; मा० श्रौ० १७।१४।२; मा० श्रौ० ६।२।५.

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं- ऋ० १०।८१।२; वा० सं० १७।१८; तै० सं० ४।६।२।४; मै० सं० २।१०।२; १३३।६; का० सं० 'आरंभणमधिष्ठानं' १८।२.

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखः- ऋ० १०।८१।३; वा० सं० १७।१९; तै० सं० ४।६।२।४; तै० ब्रा० १०।१।३; म० ना० उ० २।२; श्वे० उ० ३।३; यो विश्वतश्चर्षणिर्विश्वतः सतर्णं, वयं- मै० सं० ४।१२।१; १७८।३.

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस- ऋ० १०।३१।७; ८१।४, वा० सं० १७।२०; तै० सं० ४।६।२।५; मै० सं० २।१०।२; १३३।३; का० सं० १८।२; तै० ब्रा० २।८।९।६.

या ते धामानि परमा यावमा- ऋ० १०।८१।५; वा० सं० १७।२१, तै० सं० ४।६।२।५; मै० सं० २।१०।२; १३३।१०; का० सं० १८।२; आ० श्रौ० २।१८।१९; ३।८।१.

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः- ऋ० १०।८१।६; साम० २।९३९; वा० सं० १७।२२; काण्व सं० ८।२०।१; तै० सं० ४।३।१३।८; ६।३।६; मै० सं० २।१०।२; १३३।१६; का० सं० १८।२; २१।१३; आ० श्रौ० २।१८।१९; ३।८।१; निरु० १०।२७.

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये- ऋ० १०।८१।७; वा० सं० ८।४५; १७।२३; तै० सं० ४।६।२।५; मै० सं० २।१०।२; १३३।१८; का० सं० १८।२; २१।१३; ३०।५; श० ब्रा० ४।६।४।५; आ० श्रौ० २१।२१।८.

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरः- ऋ० १०।८२।१; वा० सं० १७।२५; तै० सं० ४।६।२।४; मै० सं० २।१०।३; १३४।१; का० सं० १८।२; आ० श्रौ० १७।१४।२.

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया- ऋ० १०।८२।२; वा० सं० १७।२६; मै०सं० (विमने यो विहायाः) २।१०।३; १३४।३; का० सं० (विमना यो व्योमा) १८।१; आ० श्रौ० ३।८।१; निरु० १०।२६.

यो नः पिता जनिता यो विधाता- ऋ० १०।८२।३; वा० सं० १७।२७; तै० सं० ४।६।२।१; मै० सं० (विधर्ता) २।१०।३; १३४।८; का० सं० १८।१; आ० श्रौ० ३।८।१.

त आ यजन्त द्रविणं समस्मा- ऋ० १०।८२।४; वा० सं० १७।२८; तै० सं० ४।६।२।२; मै० सं० (द्रविणा समस्मिन्) २।१०।३; १३४।६; का० सं० १८।१.

परो दिवा पर एना पृथिव्या- १०।८२।५; १२५।८; अथर्व० (दिवो) ४।३०।८; वा० सं० १७।२९; तै० सं० ४।६।२।२; मै० सं० २।१०।३; १३४।१२; का० सं० १८।१.

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपः- ऋ० १०।८२।६, वा० सं० १७।३०; तै० सं० ४।६।२।३; मै० सं० २।१०।३; १३४।१४; का० सं० १८।१.

न तं विदाथ य इमा जजान- ऋ० १०।८२।७; वा० सं० १७।३१; तै० सं० (इदं) ४।१।२।२; मै० सं० २।१०।३; १३५।१; का० सं० (इदं) १८।१; निरु० १४।१०.

सप्त-ऋषियोंका निसर्गोप०

सप्त-ऋषियोंका आश्रम था। इस आश्रममें भरद्वाज, कश्यप, गोतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि और वसिष्ठ ये सात ऋषि तप करते थे, इनके विषयमें कहा है --

कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गोतमः।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च साध्वी चैवाप्यरुन्धती ॥

ये सात ऋषि हैं। वैदिक सारस्वतमें इनकी बडी भारी प्रतिष्ठा है। केवल ऋग्वेदमें ही इनके देखे मंत्र हैं और मण्डल भी है—

कश्यप ७१; अत्रि १४०; भरद्वाज ५३२ (षष्ठ मंडल); विश्वामित्र ५०१ (तृतीय मण्डल); गोतम २१४; जमदग्नि ९३; वसिष्ठ ८६०, (सप्तम मण्डल)

इनमें सबसे अधिक मान वसिष्ठ ऋषिका समझा जाता है। मन्त्र क्रमसे इनका क्रम ऐसा लगता है --

वसिष्ठ	८६० मंत्र	सप्तम मण्डल
भरद्वाज	५३२ ,,	षष्ठ मण्डल
विश्वामित्र	५०१ ,,	तृतीय मण्डल
गोतम	२१४ ,,	प्रथम मण्डल
अत्रि	१४० ,,	पंचम मण्डल
जमदग्नि	९३ ,,	
कश्यप	७१ ,,	

इस तरह यह क्रम लगता है। वसिष्ठ ऋषिके मन्त्र अन्य ऋषियोंकी अपेक्षा अधिक हैं, इसलिये वसिष्ठ सप्त-ऋषियोंमें प्रमुख समझा जाता है। कात्यायन मुनिने ऋग्वेदकी सर्वानुक्रमणी लिखा है, इसमें ऐसा कश्यप ऋषि (ऋ. ११९९ सूक्तपर) लिखा है -

जातवेदस एका, जातवेदस्यं, एतदादीनि एकभूयांसि सूक्त सहस्रं एतत्कश्यपस्य आर्षम्।
(सर्वानुक्रमणी ११९९

ऋ. ११९९ के स्थानसे एक सहस्र सूक्त लुप्त हुए हैं जो प्रथम सूक्त एक मंत्रका, दूसरा दो मन्त्रोंका, तीसरा तीन मंत्रोंका ऐसा सहस्र वा सहस्र मंत्रोंका ऐसे सहस्र सूक्त थे। ये सूक्त अब नहीं प्राप्त होते। करीब करीब पांच साडे पांच लाख मन्त्र इन सूक्तोंमें कश्यप ऋषिके थे। इतना महान् सारस्वत कश्यप ऋषिने निर्माण किया था। जिसमेंसे अब केवल ऋ. ११९९ में एक ही मंत्र बचा है। शेष सब मन्त्र गुप्त हुए हैं। इतना वैदिक वाङ्मय कश्यप ऋषिके नामपर प्रसिद्धि पाया था इसलिये 'काश्यपी पृथिवी' कहते हैं। सब पृथिवी ही कश्यप ऋषिकी है, जिसका गोत्र विदित नहीं है उसका कश्यप गोत्र माना जाता है। सब ऋषियोंमें कश्यपका इस तरह महत्त्व अधिक था। अब भी वैदिक सारस्वतमें कश्यपका मान बडा है, पर इसके मन्त्र नहीं मिलते, इसलिये यह मान वसिष्ठको प्राप्त हुआ है।

वसिष्ठके साथ अरुन्धति ऋषिपत्नी भी रहती है। इन ऋषियोंने निसर्गद्वारा रोग दूर करनेकी व्यवस्था निर्माण की और उसका प्रचार किया था। सप्तऋषियोंके आश्रममें निसर्गोपचार होता था। अतः अब इस सूक्तका विचार करते हैं।

स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम'
पारडी (जि. सूरत)
मार्गशीर्ष शुक्ल १, संवत् २००६

निवेदनकर्ता
पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

मुद्रक तथा प्रकाशक— वसंत श्रीपाद सातवलेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, पारडी (जि० सूरत)

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

सप्त ऋषियोंका दर्शन

(ऋग्वेदका ८४ वाँ अनुवाक)

(निसर्गोपचार)

(ऋ० १०।१३७) ऋषयः-सप्तर्षयः। देवता-विश्वे देवाः। छन्दः-अनुष्टुप्।

१ भरद्वाजः—

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः १

२ कश्यपः—

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः २

अन्वयः- १ भरद्वाजः— हे देवाः! उत अवाहितं, हे देवाः! पुनः उन्नयथ। हे देवाः! आगः चक्रुषं, हे देवाः! पुनः जीवयथ॥

२ कश्यपः— इमौ द्वौ वातौ, वातः सिन्धोः आ, परावतः आ। अन्य ते दक्षं आ वातु। अन्यः यत् रप तत् परा वातु॥

अर्थ—१ भरद्वाज ऋषि—हे देवो! सच मुच (मैं) नीचे अधोगतको पहुंचा हूं, अतः फिरसे, हे देवो! मेरी उन्नति करो। हे देवो! मैंने पाप किया है, हे देवो! पुन मुझे जीवन देओ।

२ कश्यप ऋषि—ये दो वायु हैं, एक वायु समुद्रसे आनेवाला है, और दूसरा दूरकी भूमीपरसे आनेवाला है। एक वायु तेरे अन्दर बल ले आवे। और दूसरा जो दोष है उसे दूर करे॥

३ गोतमः—

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥ ३

४ अत्रि —

आ त्वागमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥ ४

५ विश्वामित्रः—

त्रायन्तामिह देवास्त्रायतां मरुतां गणः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥ ५

६ जमदग्नि —

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ ६

७ वसिष्ठ —

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ॥ ७

अन्वय.— ३ गोतम.— हे वात! भेषजं आ वाहि। हे वात! यत् रपः तत् वि वाहि। हि त्व विश्वभेषजः देवानां दूतः ईयसे ॥

४ अत्रिः— त्वा शं-तातिभि अथो अ-रिष्ट-तातिभिः आ अगमम्। ते भद्रं दक्षं आभार्ष, ते यक्ष्मं परा सुवामि ॥

५ विश्वामित्र —इह देवाः त्रायन्ताम्। मरुतां गणः त्रायताम्। विश्वा भूतानि त्रायन्ताम्। यथा अयं अरपाः असत् ॥

६ जमदग्नि.— आप इत् वा उ भेषजीः। आप अमीवचातनीः। आपः सर्वस्य भेषजीः। ताः ते भेषजं कृण्वन्तु ॥

७ वसिष्ठ. — दशशाखाभ्यां हस्ताभ्यां, वाचः पुरो-गवी जिह्वा। ताभ्यां अनामयित्नुभ्यां त्वा त्वा उपस्पृशामसि ॥

अर्थ—३ गोतमऋषि— हे वायो! औषधिका सत्व मेरे पास बहा कर ले आ। हे वायो! जो दोष होगा उसे मुझसे दूर कर।

४ अत्रि ऋषि-(हे रोगी मनुष्य!) तेरे पास सुख करनेवाले और आरोग्य बढानेवाले बलोंके साथ मैं आया हूं। तेरे अन्दर कल्याण करनेवाले बलको मैंने भर दिया है, और जो तुम्हारे अन्दर रोग था उसे दूर किया है ॥

५ विश्वामित्र ऋषि— यहां सब देव इसकी सुरक्षा करें। मरुतोंका गण इसको सुरक्षित रखे। सब भूत इसको सुरक्षित रखे। जिससे यह नीरोग बने ॥

६ जमदग्नि ऋषि- जल निःसंदेह औषधि रखती है। जल निःसंदेह रोग दूर करनेवाला है। जल सब रोगोंकी औषधि है। वह जल तेरे लिये औषध करे ॥

७ वसिष्ठ ऋषि— वाणीको प्रथम प्रेरणा करनेवाली यह मेरी जिह्वा है। तथा इन नीरोगिता करनेवाले दस शाखोंवाले हाथोंसे तुझे मैं स्पर्श करता हूं (इससे तुम्हारा आरोग्य बढेगा) ॥

सप्त-ऋषियोंका निसर्गोपचार

सप्त-ऋषियोंके इस आश्रममें रहनेसहनेका ऐसा उत्तम प्रबंध था, दिनचर्या, मासचर्या, ऋतुचर्या, अयनचर्या इस तरह होती थी, कि जिससे रोगोंका आक्रमण ही नहीं होता था। परंतु किसी कारण रोग हुए तो उनका निराकरण ये ऋषि निसर्ग द्वारा चिकित्सा करके करते थे। इसका वर्णन इस सूक्तमें है।

भरद्वाज-ऋषि

इस सूक्तके प्रथम मंत्रका ऋषि 'भरद्वाज' है। इसका अर्थ 'भरत्+वाजः' अन्नसे भरण करना, अन्नको भरना, बलका पोषण करना, इसकी विधि जाननेवाला भरद्वाज कहलाता है। अन्नसे उत्तम पोषण करना, रोग दूर करना और बल बढाना यह कार्य करनेवाला। किस ऋतुमें, किस रोगमें, किस अवस्थामें कौनसा अन्न सेवन करना चाहिये इस विषयकी विद्या जाननेवाला यह ऋषि है। योग्य अन्नसे रोग दूर करना, पुष्टि करना और बल संवर्धन करना योग्य है। इस विद्याको प्राप्त करना चाहिये।

कई अन्न कफकर, कई अन्न पित्तकर और कई अन्न वातकर होते हैं। इसका अनुसंधान करके ऋतु तथा अवस्थाके अनुसार अन्नका हेरफेर करनेसे योग्य अन्न इष्ट परिवर्तन हो सकता है और त्रिदोषका शमन हो सकता है। संक्षेपसे 'भरत्+वाजः' पदसे इस ज्ञानवालेका बोध हो सकता है।

पापसे अधःपतन

भरद्वाज ऋषि कहते हैं कि पापसे अधःपात होता है जिससे रोग होते हैं। इसलिये पापसे बचना चाहिये। यावच्छक्य पाप करना नहीं चाहिये। देखिये इसका कहना यह है —

हे देवाः! उत अवहितं, पुनः उन्नयथ।
हे देवाः! उत आगः चक्रुषं, पुनः जीवयथ॥
(मंत्र १)

'हे देवो! मैंने बुरा आचरण किया है, कृपा करके मुझे ऊपर उठाओ। हे देवो! मैंने पाप किया है, मुझे जिलाओ।' इसका तात्पर्य यह है कि पाप और दुराचार ये दोष उत्पन्न करते हैं। और उन दोषोंसे रोग होते हैं। इसलिये लोगोंने अपना आचरण सुधारना चाहिये और पाप करना नहीं चाहिये।

पाप बहुत प्रकारोंसे होता है। धर्माचरणसे पतन होनेसे पाप होता है। पापोंकी गणना नहीं की जा सकती। इसलिये धर्महीन आचरणका नाम पाप है ऐसा समझना योग्य है। यह पाप कदापि नहीं करना चाहिये जिससे आरोग्य और दीर्घ जीवन प्राप्त हो सकता है।

यहां देवोंको संबोधन करके पाप करनेका निर्देश है। इसलिये देवताओंके सामने पाप किस तरह बनता है यह थोडासा देखेंगे।

सूर्य देव है। उससे दूर रहनेसे जो पाप होता है वह नेत्रदोष तथा चर्मदोष उत्पन्न करता है। वायु देव है। इससे दूर रहनेसे फेफडोंका विकार, रक्तक्षय, तथा राजयक्ष्मा होता है। अग्नि देव है इससे दूर रहनेसे नेत्ररोग, शीतविकार आदि होते हैं। गौ देवता है, इससे दूर रहनेसे निर्बलता बढती है। औषधि देव हैं इनसे दूर रहनेसे अनेक दोष निर्माण होते हैं जिनसे शरीर रोगी होता है। इस तरह देवोंका द्रोह करनेसे पाप होते हैं जिनसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। मनुष्योंको उचित है कि वे इन देवोंके साथ अपना योग्य संबंध जोडें और नीरोग रहें।

यहां इस प्रथम मन्त्रमें साफ शब्दोंद्वारा कहा है कि "मैंने दुराचार किया और पाप किया है, जिसका परिणाम यह रोगी अवस्था है। अब देवो! मुझे पुनः ठीक नीरोग करो।" (मं. १) यहां रोगी होनेका कारण भी कहा, और रोगमुक्त होनेका उपाय भी बताया है। उपचार तो देवोंके साथ संबंध करना ही है। यह संबंध ठीक पद्धतिसे होना चाहिये। देवही रोग करनेवाले और देवही उसको दूर करनेवाले हैं। मनुष्यका संबंध देवोंसे ही सदा है, फिर ठीक तरह वह संबंध रखकर आरोग्य क्यों न प्राप्त किया जाय? आगे कश्यप ऋषि प्राणचिकित्साका सूत्र बताते हैं -- देखिये कि वे क्या कहते हैं —

कश्यप-ऋषि

कश्यप ऋषि (पश्यति इति पश्यकः, पश्यक एव कश्यपः) जो ठीक तरह देख सकता है वह कश्यप है।

जोग कैसे होते हैं, बढते कैसे हैं, कम कैसे हो सकते हैं और नीरोग किस तरह रह सकते इसके जाननेका नाम यथावत् जानना है। जो इसको जानता है वह ठीक जानता है और वही कश्यप कहलाता है। इस ऋषिने कहा है कि —

" दो वायु है। एक सिन्धुसे, या समुद्रसे, आनेवाला है और दूसरा भूमिके ऊपर ही दूरसे आनेवाला है। इसमेंसे एक वायु तेरे पास बल लाता है और दूसरा दोष दूर करता है। " (मं. २)

शरीरमें भी देखिये — " एक प्राण है वह शरीरमें जाता है और वहां जाकर रक्तको शुद्ध करता है और शरीरका आरोग्य और बल बढाता है। और दूसरा प्राण है जो शरीरसे उच्छ्वास रूपमें बाहर निकलता है और शरीरके दोष दूर करता है। " श्वास और उच्छ्वास ऐसे इनके नाम है। एक बल भर देता है और दूसरा दोष दूर करता है।

इनमें भी एक प्राण एक नाकसे चलता है और दूसरा दूसरे नाकसे चलता है। किसी समय दोनों नाकोंसे समरूपसे भी चलता है। ऐसी समस्थिति बहुत कम रहती है, परंतु किसी एक नाकसे श्वास चलना यही दिनभर चलता रहता है। करीब अढाई घण्टे एक नाकसे श्वास चलता है और पश्चात् उतनाही समय दूसरेसे चलता है। ऐसा दिनभर एकसे और पश्चात् दूसरेसे चलता है। दक्षिण नासिकासे श्वास चलनेसे शरीरकी उष्णता बढती है और दूसरी नासिकासे चलनेपर शरीरकी उष्णता घटती है। इससे कृत्रिम रीतिसे इष्ट नासिकासे श्वास चलाकर शरीरकी उष्णता घटना या बढाना भी हो सकता है। व्याधित होनेपर किसी एकसे ही श्वास चलता है और शरीरकी समस्थिति बिगडती है। इसलिये 'स्वरोदय' शास्त्र इससे हुआ है। इसका वर्णन यहां करनेकी आवश्यकता नहीं है। पर यहां इतना ही कहना आवश्यक है कि शरीरमें उष्णता बढ गयी होगी तो वाम नासिकासे श्वास चलाना और सर्दी लगती हो तो दक्षिण नासिकासे चलाना। ऐसा करनेसे जो दोष हुआ हो वह दूर हो जाता है। जिस बाजूके श्वासको चलाना है उसके विरुद्ध बाजूपर सोनेसे बहुत करके दूसरी ओरका श्वास शुरू होता है। इस तरह दायी बायीं ओरकी नासिकासे श्वास चला कर इष्ट आरोग्य प्राप्त हो सकता है।

भूमिपर भी समुद्रसे आनेवाला वायु और भूप्रदेशपरसे आनेवाला वायु ऐसे दो वायु है। समुद्रपरसे आनेवाला वायु प्राणशक्तिका बल अधिक होता है। और भूमिपरसे आनेवाले वायुमें दोष दूर करनेकी शक्ति अधिक होती है। पर वायु चलाना मनुष्यके अधीन नहीं है। यह दैवी घटना है जो वायु चले तो चले। पर मनुष्यकी नासिकासे प्राणके स्वरका संचालन करना और उससे आरोग्य प्राप्त करना मनुष्यके स्वाधीन है। मनुष्य इस अनुष्ठानको जानेगा तो उसका बडा लाभ हो सकेगा। अब गोतम ऋषि भी इसी बातको दुहराते हैं —

" हे वायो ! औषधिगुणको यहां मेरे पास ले आ। हे वायु ! जो दोष है उसे तू मुझसे दूर ले जा। हे वायो ! तू सब औषधियोंका स्वरूप है, तू देवोंका दूत होकर इस जगतमें घूम रहा है। " (मं. ३)

यह गौतम ऋषिका कहना है।

वायु एक स्थानकी औषधियोंके गुण अपने साथ लाता है और दूसरे स्थानमें पहुंचाता और वहांके रोगबीजोंको दूर करता है। हिमालयके अन्दर यह स्पष्ट अनुभव होता है, केवल औषधिके सुगन्धसे मनुष्यका चित्त बढता है, चक्कर आता है और कई स्थानपर मनका अपूर्व आल्हाद बढता है। यह केवल औषधियोंके सुगन्धसे ही होता है।

इस वायुके गुणका विचार करके ही हवनसे चिकित्सा करनेकी विधि शुरू हुई। यदि वायु इधरसे उधर औषधि-गुण ले जाता है तो उसमें हमने औषधिगुण कृत्रिम रीतिसे रखे तो उनको भी वह ले जायगा और वैसा ही परिणाम करेगा। यह तत्त्व हवन चिकित्सामें है।

नाना प्रकारकी औषधियां हवनमें होती हैं, उनके सूक्ष्म अणु अग्नि बनाता और वायुके पास देता है और वह चारों ओर फैलाता और आरोग्य उत्पन्न करता है। यह शास्त्रशुद्ध विचार हवन चिकित्सामें कार्य करता है। निसर्ग वनस्पतियोंको सुगन्धसे भी रोगबीज दूर होते हैं जैसे तुलसी, निलगिरीवृक्ष आदिसे हिमज्वरके बीज दूर होते हैं। इसी तरह उग्रगन्धी औषधियोंके गन्धसे ही कार्य होता रहता है।

पहिले मंत्रमें देवोंके संबंधसे हमारे पापसे रोग होते हैं इसलिये देवोंकी सहायतासे उनको दूर करनेकी बात कही है। यहां पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-सूर्य आदि देवताओंका संबंध बताया है।